श्री दयाल बाणी

(आत्म दर्शन)

सजीवनी टीका दृष्टान्तों सहित

टीका कर्ता :-

पं० भूरादास स्वामी

R-58-5-1 (1)

R
८६०
मू ४६द

3925

विज्ञान महाविद्यालय पुस्तकालय,
गुरुकुल कांगड़ी

१. पुस्तक केवल १४ दिन को वितरित की जाती है

२. १४ दिन के अन्दर पुस्तक न लौटाने पर ५ पै० प्रतिदिन अर्थ दण्ड लगेगा।

३. पुस्तक पर निशान लगाना पृष्ट, फाड़ना सर्वथा मना है। ऐसा करना दण्डनीय है।

४. पुस्तक को साफ तथा सुन्दर रखें।

Stock Verification 2024

ग्रंथ विषय सूची

विषय	पृष्ठ
मंगलाचरण	१-१२
श्री गुरूदेव का अंग १	१३-१०२
स्मरण का अंग २	१०३-१५८
विरह का अंग ३	१५९-२२४
परिचय का अंग ४	२२५-३६३
जरणा का अंग ५	३६४-३७८
हैरान का अंग ६	३७९-३८८
लै का अंग-७	३८९-४०४
निष्कामी पतिव्रता का अंग ८	४०५-४५०
चितावणी का अंग ९	४५१-४६३
मन का अंग १०	४६४-५१९
सूक्ष्म जन्म का अंग ११	५२०-५२३
माया का अंग १२	५२४-५८७
सांच का अंग १३	५८८-६५७
भेष का अंग १४	६५८-६७२
साधु का अंग १५	६७३-७२२
मध्य का अंग १६	७२३-७६४
सारग्राही का अंग १७	७४७-७५५
विचार का अंग १८	७५६-७७२
विश्वास का अंग १९	७७३-७९७
पीव पहचान का अंग २०	७९८-८०९
समर्थाई का अंग २१	८१०-८२९
शब्द का अंग २२	८३०-८४०
जीवित मृतक का अंग २३	८४१-८५८
सूरातन का अंग २४	८५९-८८५
काल का अंग २५	८८६-९१७
सजीवनी का अंग २६	९१८-९३२
पारिख का अंग २७	९३३-९४६
उपजन का अंग २८	९४७-९५२
दया निर्वैरता का अंग २९	९५३-९६३
सुन्दरी का अंग ३०	९६४-९७३
कस्तूरिया मृग का अंग ३१	९७४-९७९
निन्दा का अंग ३२	९८०-९८६
निगुणा का अंग ३३	९८७-१०००

Stock Verification 2024

विषय	पृष्ठ
विनती का अंग ३४	१००१-१०२८
साक्षीभूत का अंग ३५	१०२९-१०३४
बेली का अंग ३६	१०३५-१०३९
अबिहड़ का अंग ३७	१०४०-१०४३

शबद भाग

विषय	पृष्ठ
राग गौड़ी १	१०४५-११२२
राग माली गौड २	११२३-११३७
राग कल्याण ३	११३८-११३९
राग कान्हड़ा ४	११४०-११४९
राग अडाणा ५	११५०-११५४
राग केदार ६	११५५-११७५
राग मरू ७	११७६-११९८
राग राकली ८	११९९-१२४३
राग आस्वरी ९	१२४४-१२७०
राग सिन्दू १०	१२७१-१२७९
राग देवगन्ध ११	१२८०-१२८३
राग कलिंगड २	१२८४-१२८५
राग परजिया	१२८६-१२८७
राग भाणमली १४	१२८८-१२९०
राग सारंग १५	१२९१-१२९५
राग टोडी १६	१२९६-१३१२
राग हुसेनी बंगाल १७	१३१३-१३१४
राग नट नारायण १८	१३१५-१३२१
राग सोरठ १९	१३२२-१३३४
राग गुंड २०	१३३५-१३५२
राग विलावल २१	१३५३-१३७१
राग सूहा २२	१३७२-१३७३
ग्रंथ काया बेलि	१३७४-१४१६
राग बसंत २३	१४१७-१४२४
राग भैरूं २४	१४२५-१४५३
राग ललित २५	१४५४-१४५८
राग जैत श्री २६	१४५९-१४६०
राग धना श्री २७	१४६१-१४९२
श्री दयाल बाणी का महात्मय	१४९३-१४९६
आरती अष्टक	१४९७-१५१५
अन्य पद	१५१६-१५१८
आय-व्यय	१५१९-१५२०

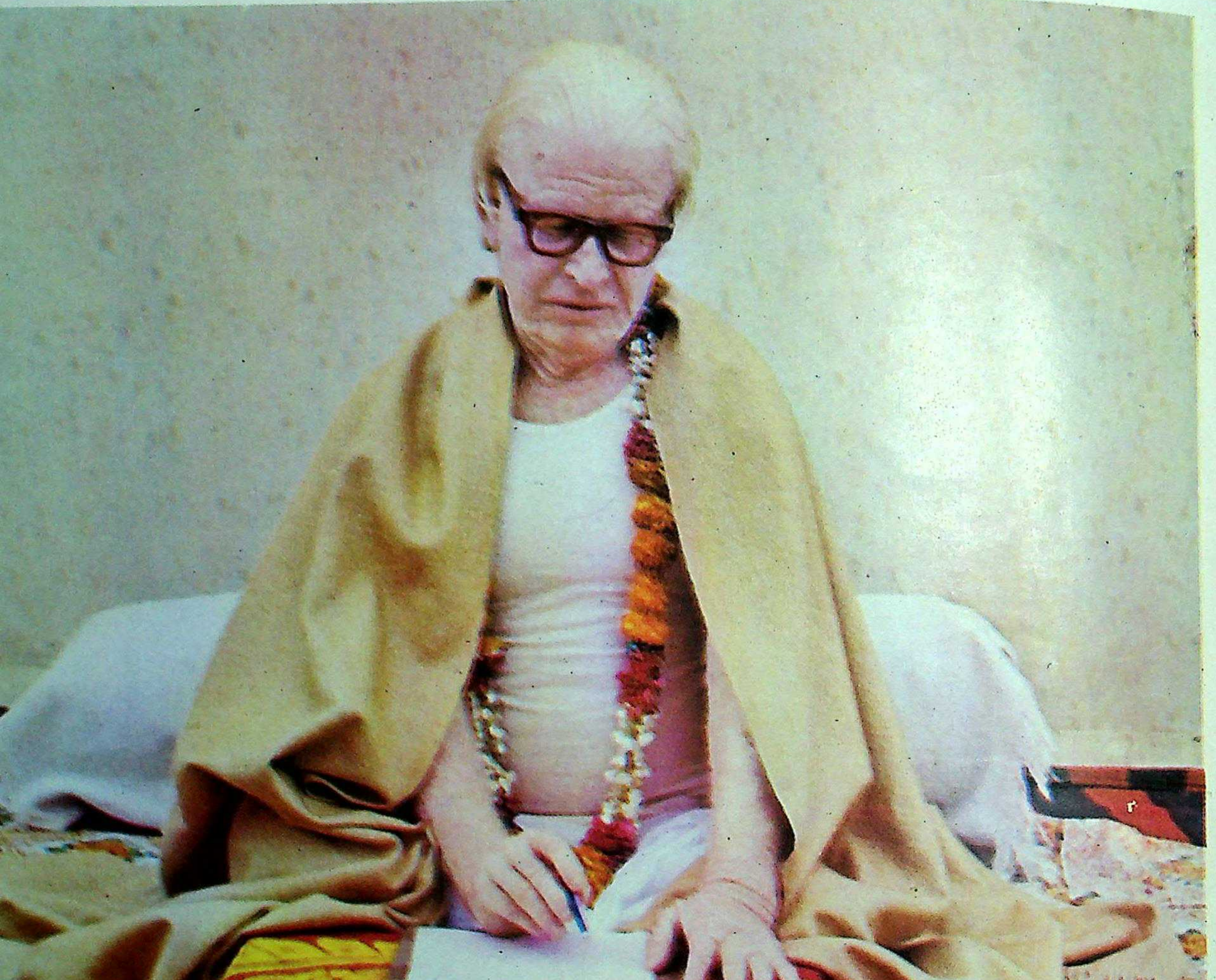

श्री दयाल बाणी की टीका कर्त्ता :-

महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ पण्डित
श्री १०८ स्वामी भूरादास जी महाराज ।

भूमिका

अनन्त विभूषित श्री ब्रह्मऋषि जगतगुरू दादू दयाल महाराज के, जन्म कर्म बाणी के कुछ अंश, यहां प्रस्तुत करते हैं ।

अतः माया विशिष्ट अनादि ईश्वर ने जीवों के पूर्व सृष्टि कर्म अनुसार, सृष्टि की रचना की है । और जीव का स्थान, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि अनेकों शरीर और उनके जुदे जुदे भोग रचे हैं । फिर जैसे जीव शुभ अशुभ कर्म करते हैं, उनके अनुसार ही आगे फल तैयार होता है । विक्रम संवत १३००, १४००, १५००, १६०० आदि शताब्दियों में देश के कोने कोने में मुगल साम्राज्य व्याप्त हो रहा था । रंक से राजा पर्यन्त साम्प्रदायिक लोग, मत मतान्तरों की ताना तानी में फंसकर, मानवता से हाथ धो बैठे थे । और दानवता की तरफ झुके जा रहे थे । उस समय हिन्दू मुसलमान भाई भाई के संघर्ष को देखकर, समाज के सच्चे जती सती देश भक्तों को दुख होने लगा । वह सर्वशक्तिवान सर्वज्ञ ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि हे परमेश्वर ! इस दानवता की ओर जाती हुई जनता को आप ही अपना मार्ग दर्शन कराइये । तब भक्त वच्छल भगवान अपने जनों की प्रार्थना सुनकर, अपने अंश तीन सिद्ध योगी जो समुद्र के टापू में ध्यान करते थे, उनमें एक को आकाशबाणी हुई । आज्ञा दी की तुम गुजरात देश अहमदाबाद नगर में जाकर, वहां जो मेरा भक्त लोधी राम नागर ब्राह्मण पुत्र की इच्छा से मेरी भक्ति कर रहा है, उसके पुत्र बनकर जन समुदाय का कल्याण करो ।

मनहर छंद :-

सागर में टापू तामें तीन सिद्ध ध्यान करैं,
एक को जु आज्ञा भई जीव निसतारिये ।
नभ वाणी भई एक सिद्ध सो गुपत भये,
पीछे दोय रहे उन प्रभु उर धारिये ।
धरा गुजरात तहां नदी बहीं जात एक,
ब्राह्मण सु न्हात सौंज पूजा की संवारिये ।

पुत्र की थी चाह अति बैठो तट साबरमती,
पींजरो आयो तिरत याको तो संभारिये।

ऐसी आकाशबाणी सुनकर, एक सिद्ध योगी गुप्त हुए और अहमदाबाद नगर में आये। साबरमती नदी के किनारे लोधी राम जी सन्ध्या कर रहे थे। उस तरफ गये। प्रसन्न मुद्रा से योगी को आते देखा। पंडित जी खड़े होकर पांच कदम सामने आये। चरणों में नमस्कार किया और हाथ जोड़कर बोले :- पधार कर घर पवित्र करिये। योगी साथ हो गये। लोधी राम जी घर आये, सुन्दर आसन बिछाया। योगी को विराजमान किया। चरण धोकर चरणामृत लिया। केसर चन्दन से पूजा की। सुगन्धित पुष्पों की माला धारण कराई। धूप दीप, नई वेद्य सहित आरती उतारी। चरणों में नमस्कार करके, चौकी लगाई। भोजन का थाल लगाकर सामने लाकर रखा। सिद्ध योगी ने भगवान के भोग लगाया और पाया। आचमन करके प्रसन्न मुद्रा में बोले:- जो इच्छा है मांगो ? भक्त जी बोले :- एक पुत्र प्राप्त होवै, यही इच्छा है। योगी बोले :- कल प्रातःकाल ईश्वर साबरमती नदी के प्रवाह में पुत्र भेजेंगे। वह आपका है, उठा लाना। यह कहकर प्रस्थान कर गये। विक्रम संवत् १६०१ चैत्र सुदी अष्टमी गुरूवार को प्रातःकाल प्रतिदिन की भांति पंडित जी नदी पर गये, स्नान किया और वस्त्र धारण कर नदी की तरफ मुंह करके बैठे। धूप दीप जगाकर सन्ध्या करने लगे। कुछ देर बाद एक छोटा विमान नौका रूप में तैरता हुआ आया। सामने चक्कर खाने लगा। आवाज हुई कि इस को संभाल। आप विमान को खोलकर देखा तो उसमें एक शिशु प्रसन्न मुद्रा से, अपने दाहिने पांव का अंगुष्ठ मुंह में चूस रहा है। जिसके चेहरे का प्रकाश, सर्द पूर्णिमा के चन्द्रमा जैसा हो रहा है। अंग अंग में तेज दिखाई दे रहा है। दोनों हाथों से उठाकर, मष्तक पर चढाया और छाती से लगाया। बालक ने अपनी दोनों बांह भक्त के गले में लगा दी। और आकाशवाणी हुई कि मेरा भेजा हुआ आया है, तुम्हारे शोक को दूर करके, करोड़ान करोड़ जनता का उद्धार करेगा।

दोहा :- **सिद्ध शक्ति कर पलटी काया।**
बालक रूप हो दर्श दिखाया॥

अर्थात् जो योगी वरदान दिया था, वही बालक रूप बनकर प्राप्त हो गये।

श्री ब्रह्मऋषि जगतगुरू दादू दयाल महाराज के जन्म दिन के विषय में ५२ शिष्यों में से प्रमाण।

१. सन्तदास जी महाराज कहते हैं :-

संवत सोलह सो लागत हीं, गुजरात धरा मध्य अहमदाबादू।
ब्रह्म प्रकाश उदय भयो भान जु, आन दुनी मध्य ओतरे दादू०।

3925

२. सनाड्य ब्राह्मण महाराज माधोदास जी का सन्तगुण सागर ग्रन्थ :-

३. वैश्य कुल में महाराज जन गोपाल जी ।

४. महाराज राधोदास जी की भक्तमाल ।

५. महाराज सुखराम दास जी पोह वाले कहते हैं :-

छंद :-

विष्णु का अंश भक्त हित नर तन धारा,
संवत् सोलह सो एक, चैत्र सुद अष्टमी गुरू बारा ।
सत चित आनन्द ब्रह्म, तास शिष्य दादू दासा,
नगर अहमदाबाद रूप बुढ़न प्रकाशा ।
सात वर्ष में मिले, मंत्र ग्यारस मै दीना,
निराकार की भक्ति, पंथ प्रगट जग कीन्हा ।
सो सिख बावन ज्ञान घन, देव ऋषि मुनि ओतरे,
सुखराम यह सम्प्रदा दादू आदू सिर धरे ।

परम परागत प्रमाण :- श्री गरीबदास ओत, माननीय महन्त त्यागमूर्ति उपनिषदों केज्ञाता, श्री स्वामी चेतनदेव जी महाराज के मुख से भी ऐसा ही सुना है ।

महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ तपोधन प० श्री १०८ स्वामी गिरधारी दास जी महाराज, मेरे सतगुरू थे । वे इस समाज की प्राचीन गति विधियों को पूर्णतया जानते थे । उन्होंने भी चैत्र सुदी अष्टमी का ही जन्म बतलाया और बोले कि नरैना का मेला दो सो साल पहले चैत्र सुदी अष्टमी के उपलक्ष में ही लगा करता था । किन्तु यह पता नहीं चलता था कि उस दिन का त्याग करके, फाल्गुन शुक्ला अष्टमी क्यों अपनाई गई ? अनुमान से जाना जाता है कि गर्मी आने के कारण या काशत का समय नजदीक आने से, ऐसा किया होगा । क्योंकि समाज की बाग डोर पुज्य आचार्य जी के हाथों में थी । परन्तु यह समाज के लिये ठीक नहीं हुआ । जिस दिन से चैत्र सुदी अष्टमी का त्याग किया है, तभी से समाज गिरने लगा । और वही परिपाटी अब चल रही है । कहावत है कि :-

"घण जीतै सूरा हारै परसराम० ।"

इसलिये अब मैं करबद्ध होकर समाज के सभी महानुभावों से विनय करता हूं कि चैत्र सुदी अष्टमी को जयन्ती उत्सव मनाकर, श्री ब्रह्मऋषि जगतगुरू दादू दयाल महाराज के दर्शन करिये । सुना है कि अहमदाबाद में स्वामी सुखराम दास जो चैत्र सुदी अष्टमी को ही जन्म दिन मनाते हैं । रायगढ़ श्री दादू द्वारे में भी उसी रोज जयन्ती करते हैं । श्री दादू तपस्वी भवन (दादू बाग) कनखल हरिद्वार में भी कुछ सालों से चैत्र सुदी अष्टमी को ही जयन्ती समारोह मनाया जाता है ।

उपरोक्त जब श्री ब्रह्मऋषि सात वर्ष की अवस्था के हुए, तब पिता जी से बोले :- कि मैं विद्या पढ़ूंगा । पिता जी इनको लेकर नागरों की पाठशाला में पंडित गोविन्दराम जी के पास गये । ब्रह्मऋषि ने प्रधानाध्यापक को नमस्कार किया और बोलेः-मुझे विद्या पढ़ाओ । विद्यागुरू बोले :- क्या पढ़ोगे ? मेरी पट्टी पर 'श्री राम जी सत्य' यह लिख दो । यह शब्द आज भी हस्त लिखित पुस्तकों में सर्वो प्रथम लिखा हुआ मिलता है । वैसा ही लिख दिया । पंडित लोधी राम जी के दरवाजे पर याचक लोग आकर जो भी कुछ मांगते, वही वस्तु घर में से लाकर, यह उनको दे दिया करते थे । इसलिये इनको 'दादू दयाल' नाम से सभी लोग पुकारने लगे ।

दोहा :- दा का दाता अर्थ है, दू का खंडक जान ।
दादू पद का सक्य है, बईया करण प्रमाण ।।

एक रोज गोविन्द राम जी ने वेद का मंत्र उच्चारण किया । ब्रह्मऋषि उसी मंत्र को तत्काल बोल उठे । गोविन्द राम जी ने पूछा :- यह कहां से याद किया ? आप बोलेः-आप उच्चारण किया । तभी याद हो गया । इसका अर्थ भी जानते हो? ब्रह्मऋषि बोलेः-थोड़ा जानता हूं । सुनाओ । जब ब्रह्मऋषि भक्ति, वैराग्य ज्ञान रूप त्रिवेणी की धारा बहाई, तब पंडित जी खड़े होकर बोले :- "मैं आपको नहीं पढ़ा सकता ।" सेवा बतलाओ । दादू दयाल बोले :- पाठशाला के बालक बालिकाओं को दो घंटा मेरे साथ भेजा करो । उसी रोज से अपने साथ लेकर कंकरिया तालाब पर गये और बोले :-जो मैं खेल खिलाऊंगा वह आप खेल खेलोगे । सब बोलेः-हां भईया, वही खेलेंगे । तो पहले तालाब में स्नान करो । दादू दयाल के सहित सभी ने स्नान किया । कपड़े धारण करके सब गोल चक्र से बैठे । बीच में दयाल महाप्रभु बैठकर बोले :-आंखें बन्द कर लो और मुंह से राम राम कहो । इस प्रकार रोजाना कीर्तन कराने लगे । एक रोज भगवान प्रगट होकर, दूर से देखकर अन्तर्ध्यान हो गए । जब ग्यारह वर्ष की अवस्था हुई तो भगवान वृद्ध रूप से प्रगट हुए और सर्व के हृदय में, अपने रूप की एक झलकी दिखा कर गुप्त हो गए । बालक बालिकाओं की आंखे खुल गई । सामने एक वृद्ध स्वरूप देखने में आया । डर कर सब इधर उधर दौड़ गये । तब दादू दयाल नेत्र खोलकर देखा तो सामने वृद्ध रूप प्रभु खड़े हैं । चरणों में नमस्कार किया । हाथ जोड़कर सामने खड़े होकर बोले :- हे नाथ ! उपदेश करिये । भगवान ने अपना शुद्ध परब्रह्म रूप की दीक्षा दी । मस्तिष्क पर हाथ रखा, तत्काल दादू दयाल के हृदय में अनुभव ज्ञान उत्पन्न हुआ और बोले :-

गैब मांहि गुरूदेव मिल्या, पाया हम परसाद ।
मस्तक मेरे कर धर्या, दीक्षा अगम अगाध ।।

दोहा :- बालपने दरसन दियो, भगवत् बूढन होइ ।
नगर अहमदाबाद में, दादू भज तूं मोइ ।।

छन्द :-

बालक खेलत देख मैदान मै, वृद्ध स्वरूप हरि नै बनायो ।
बाल सुफेद कियो तन दीर्घ, बालसू आनरू बैन सुनायो ।
और भयभीत व्है भाज गये सब, दादू जी दौड़ समीप सू आयो ।
पान पईसा के लाइ दया करि, होई मुदित तामुल सु लायो ।
ब्रह्म प्रकाश उदय भयो भान जु, दादू दयाल दुनी मध्य आयो ।।

परमेश्वर बोले :- एक पैसा दे । दादू दयाल अपनी जेब में से एक पैसा दोनों हाथों में लेकर, हरि के अर्पण किया । भगवान ने हाथ लगाया और बोले :- नगर में जाओ, जो वस्तु पहले मिले, वही ले आओ । पान वाले की दुकान मिली । दो पान के बीड़े लाए । भगवान बोले :- एक मेरे मुंह में दे । दूसरा बीड़ा भगवान अपने हाथ में लेकर बोलेः-तुम्हारा मुंह खोलो । तब भगवान ने दादू जी के मुंह में बीड़ा दिया । उस समय परमेश्वर मुस्कराए और उनके मुख से एक पीप की बूंद दादू दयाल के दहिने चरण के अगुष्टे पर गिरी । हे नाथ ! यह तो मुखांबिन्द में पड़ने का प्रसाद था, पावों पर गिरा, बड़ा पाप हुआ । भगवान बोलेः- मेरी इच्छा से यह पुण्य हुआ है ।

चौ० :- एक बूंद पग ऊपर आई, चरणों लाग मुक्त हो जाई ।
एक जनम के दूजे तीजे, कलजुग मांहि मुक्त सब कीजे ।
इष्ट मांही पग रोपे रहै ही, ताकी राम करी हैं सहाई ।
इष्ट भृष्ट को ठाहर नांही, कर विचार देखहु मन मांहीं ।।

हरि बोले छह महीना घर में और रहना, फिर घर का त्याग करके, भ्रमण करते हुए जनता का कल्याण करना । यह आज्ञा देकर अन्तर्ध्यान हो गये । फिर दादू दयाल बालक बालिकाओं के सहित अपने अपने घर आ

गये । इस प्रकार साढे ग्यारह वर्ष की अवस्था हुई तब एक रोज घर का त्याग करके चल दिये । नड़ीयाद में आये । वहां आपके पूर्व जन्म के दो शिष्य, ज्ञान दास, माणकदास आकर नमस्कार किया । फिर वहां से जहां तहां घूमते हुए, आबू के पहाड़ पर बिराजे । एक रोज प्रातःकाल ब्रह्मऋषि खड़े होकर, आकाश की ओर देखकर नमस्कार किया । शिष्यों ने पूछा :- गुरूदेव किसको नमस्कार करते हो ? आप बोले :- आज मेरे माता पिता परमधाम को प्राप्त हो रहे हैं । शिष्यों ने कहा :- हमें भी दर्शन कराइये । तब उनकी दिव्य दृष्टि बनाई जैसे भगवान व्यास ने संजय की दृष्टि बनाई थी । तब उन्होंने भी दर्शन किया । फिर एक रोज भगवान ने आज्ञा दी कि हे मेरे रूप दादू दयाल ! इन दोनों शिष्यों को आप केदार देश में भेजकर, मेरी राम की भक्ति का प्रचार कराइये । वैसा ही किया । फिर आज्ञा दी कि आप मारवाड़ में भ्रमण करिये । जब करड़ाला पहाड़ के पास आए, तब कहा :- इस पहाड़ में आप बिराजो । तब एक वृक्ष के नीचे निवास किया । उस जगह अब दादू द्वारा बना हुआ है । सूके पत्ते तथा जल का आहार करके, साधना करने लगे । कुछ समय के बाद आज्ञा हुई कि अब आप बाजरा भिगोकर पान किया करो । तब बाजरे का आहार करने लगे । दूसरी एक पहाड़ी पर तिबलिया प्रेत रहता था । वह प्रेत स्वभाव के बस मार्ग में आने जाने वाले यात्रियों की जान ले लिया करता था । ब्रह्मऋषि के सामने भी चेष्ठा करने लगा । गुरूदेव बोले:-तू कौन है ?

दोहा :- करड़ाले स्वामी रहै, तहां एक आवत प्रेत ।
पूछी प्रभु मैं ग्वाल हो, बड़ आयु बर लेत ।।

वह बोला :- मैं प्रेत हूं । तूं प्रेत किस प्रकार बना ? पहले जन्म में मैं ग्वाला था । एक सिद्ध योगी की सेवा करता था । एक रोज वह बोले :- जो इच्छा है मांग । मैं बोला :- मेरी हजार वर्ष की उमर हो जाय । वह बोले :-इस जन्म में तो नहीं अगला हजार वर्ष का जन्म मिल जाएगा । तब यह प्रेत योनी मिल गई । अब मैं आपकी शरण हूं मेरा उद्धार करिये । गुरूदेव ने अपनी झारी में से जल लेकर सत्यराम कहकर, उसके छींटे मारे । प्रेत शरीर छूट गया । दिव्य रूप होकर, जय जयकार करता हुआ परमधाम को चला गया । आस पास के गांव वालों को पता चला कि तिबलिया प्रेत का उद्धार दादू दयाल महाराज ने कर दिया । बहुत से यात्री महाराज के दर्शन करने आने लगे और भगवान के गुणानवाद गाने लगे ।

उन दिनों में वहां के जंगल पहाड़ों में एक प्रीतम सिंह डाकू अपनी पाल्टी के सहित घूमता और डाके डालता था । एक रोज आकर गुरूदेव के दर्शन करके नमस्कार किया । महाराज ने पूछा :- "तुम कौन हो ?" उसने अपना सब वृत्तांत सुना दिया । आप बोले :- मनुष्य जन्म मिला है, इससे परमेश्वर का स्मरण करो और दीन दुःखियों की तथा समाज की सेवा करो । चोरी डाके नहीं करना । उसके तुरन्त मानसिक भाव बदल गये और बोला :- आज ही मैंने हिंसा आदि सब कर्म त्याग दिये हैं । परमगुदेव में गुरूभाव धारण किया और नमस्कार करके चला गया । अपनी पाल्टी वालों को उपरोक्त सब जा सुनाया । एक रोज रास करने वाले किसी गांव में आकर रास कर रहे थे । एक डाकू भी आकर रास देखा । वह जाकर प्रीतमसिंह

को बोला :- रास बहुत अच्छा होता है। अपन भी पहाड़ में रास करावें। वह बोला :- यहां कौन रास करने आवेगा ? तब पाल्टी वाले कहने लगे :- धन देवेंगे तो वे जरूर आ जावेंगे। प्रीतमसिंह :- मैं तो डाका डालना त्याग दिया है। वह बोले :- अपने लिये त्यागा है, परोपकार के लिये डाका डालें तो क्या पाप है ? वह सब धन उन्हीं को दे देंगे। तब प्रीतमसिंह रास्ते पर गये और एक विदेश से आते हुए साहूकार को लूट कर चम्पत हो गये। उस साहूकार को गांव वालों ने कहा :- दादू दयाल महाराज के पास जाओ, वह उनका शिष्य है। यह सुनकर वह दादू दयाल महाराज के पास आकर नमस्कार किया और रोने लगा। सब लूटने का वृतांत सुना दिया। महाराज बोले :- जाओ अमुक पहाड़ में वह बैठे हैं, प्रीतमसिंह को ले आओ। साहूकार डरता हुआ गया। बोला :- गुरू महाराज आपको याद करते हैं। प्रीतमसिंह की एकदम आंखें नीची हो गई और साथ आया। दादू दयाल महाराज को साष्टांग प्रणाम किया। हाथ जोड़कर बोला :- आज्ञा। महाराज बोले :- इसको आपने लूटा है। बोला :- हां। आपने कहा था "मैं अब नहीं लूटूँगा, तब प्रीतमसिंह उपरोक्त रास देखने की बात सुनाई। महाराज बोले :- आप लोग रास देखने के ऐसे प्रेमी हो, तो हम आपको रास दिखावैंगे। आज रात को आप अपनी सारी पाल्टी को लेकर, अमुक पहाड़ में आ जाना। इसका धन दे दो। साहूकार को धन दे दिया। फिर गुरूदेव को नमस्कार करके चला गया। रात्रि को सब साथियों को लेकर जिस पहाड़ की आज्ञा दी थी, उसमें आ बैठे। ब्रह्मऋषि भी उस पहाड़ में गये। सब लोग चरणों में नमस्कार किया। आसन देकर महाराज को विराजमान किये। महाराज बोले :- आप लोग रास देखने को आये हैं। सबने कहा :— जी हां। तब गुरूदेव ने परमेश्वर को नमस्कार करके, यह शब्द उच्चारण किया :—

घटि घटि गोपी घटि घटि कान्ह,
घटि घटि राम अमर अस्थान ।।टेक।।

(शब्द नं० ४०६ से)

आकाश में से तेज पुंजमय रास मंडल उतरा और वहां भगवान ने भारी रास किया। डाकू सब मूर्छित हो गये। दयाल महाराज ने सब रात रास देखा। प्रातःकाल भगवान बोले :— हे मेरे रूप ! अब मैं साकेत लोक जा रहा हूं। जो इच्छा हो वह मांगो। हे नाथ ! आपका सदैव नाम का स्मरण करते रहें। यही मांगते हैं। फिर गुरूदेव ने सबको चेत कराया। सब लोग चरणों में नमस्कार करके धन्य धन्य कहने लगे और परम गुरूदेव के उपदेश को धारण करके खोटे कर्म त्यागकर, सच्चे मानव बनने की परमेश्वर की भक्ति, जन समुदाय की सेवा करने की प्रतिज्ञा की, प्रीतमसिंह के सहित।

दोहा :- **गंग जमन उलटी बहै, पछिम उगै भान।**
प्रीतम चोरी ना करै, गुरू दादू की आन ।।

इस प्रकार उन डाकुओं को पवित्र बनाये और फिर परमेश्वर ने आज्ञा दी कि आप अब सांभर झील छत्री में जाकर निवास करो। महाप्रभु करड़ाले से चलकर, छत्री में आ विराजे। वह छत्री अब जीर्ण हो गई थी। सतगुरूदेव की प्रेरणा रूप आज्ञा से उस छत्री को ठंडी कराकर, उस जगह 18 फुट लम्बा तथा 18 फुट चौड़ा एक आठ दरवाजे का खुला कमरा और बीच में छत्री चरण पादिका तथा ऊपर पांच छत्री, बनाई हैं। अब उसमें यात्री बैठकर कीर्तन भजन द्वारा, चरणों की पूजा करते हैं। यह नव निर्माण **महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ पं० भूरादास स्वामी ने कराया।**

उपरोक्त छत्री में जब ब्रह्मऋषि बिराजते थे, तो फिर उनके जनता दर्शन करने आने लगी और भगवान ने आज्ञा दी ~~श्री~~ कि हे मेरे रूप ! अब आप अपने अनुभव से भक्ति वैराग्य, ज्ञान का उपदेश करें। तब सतगुरूदेव मारवाड़ी, गुजराती, पंजाबी, सिंधी, अरबी, इन पांच भाषाओं से हिन्दी द्वारा मध्य मार्ग का उपदेश करने लगे।

साखी :- दादू हद्द छाड बेहद्द में, निर्भय निर्पख होइ।
लाग रहै उस एक सौं, जहां न दूजा कोइ॥
जहं वेद कुरान की गम नहीं, तहां किया परवेश।
तहं कछु अचरज देखिया, यहु कछु और देश॥
दादू हिन्दू तुरक न होइबा, साहिब सेती काम।
षट् दर्शन के संग न जाइबा, निर्पख कहिबा राम॥
दादू ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मुसलमान।
षट् दर्शन में हम नहीं, हम राते रहमान॥
दादू अल्लह राम का, द्वै पख तैं न्यारा।
रहिता गुण आकार का, सो गुरू हमारा॥
दोनों हाथी व्है रहे, मिल रस पिया न जाइ।
दादू आपा मेट कर, दोनों रहैं समाइ॥
दादू एकै अल्लह राम है, समर्थ सांई सोइ।
मैदे के पकवान सब, खातां होइ सो होइ॥

इस प्रकार पक्षपात रहित एक सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित निर्गुण परब्रह्म रूप राम की भक्ति वैराग्य ज्ञान मिश्रित उपदेश करने लगे, तो मजहब की जंजीरों में जकड़े हुए हिन्दू मुसलमान भड़कने लगे और परम गुरुदेव के निरपक्ष उपदेश मार्ग को न अपना कर, संघर्ष करने को तुल गये। और यहां तक कि न्यायालय के न्यायधीशों को भी अपने अनुकूल बना लिये। उस समय सांभर में काजियों का राज्य था। कानून बनाया कि

“जो दादू के दर्शन को जाइये, सौ के पांच दंड का लइये”

इस प्रकार नगर में ढिंढोरा करवा दिया, फिर तो दर्शन करने कोई भी नहीं जाने लगे। एक साहूकार अनन्य भक्त प्रणधारी जाकर दर्शन करके नमस्कार किया। महाराज बोले :-राम जी आप सरकार की आज्ञा के उपरान्त आये हो। वह राजपुरुष आपको ले जाएंगे और हाकिम के सामने आपको दंड देना पड़ेगा। साहूकार बोला :-महाराज जब तक मेरे पास पैसा है, दंड देता रहूंगा और दर्शन करूंगा। फिर श्री चरणों में निवास करने लगूँगा। महाराज बोले :-आप फायल बांचकर दंड देना। भक्त नमस्कार करके चल पड़े। राजपुरुष उसको साथ लेकर न्यायालय में गये और बोले :-यह गये थे। काजी आफिसर बोले:-“जितनी तुम्हारी हैसियत है, उस पर पांच प्रतिशत दंड जमा कराओ।” भक्त बोले:-सरकार फायल दीजिये, उस पर जमा कर दूँ। जब फायल दी, तो उसमें लिखा था कि

“जो दादू के दर्शन को न जाइये, सौ के पांच दंड का लइये”

भक्त बोले :-इसमें तो और ही लिखा है।

पलट अंक पत्री के चीन्ही, भक्त की मन भाई कीन्हीं०।

जब आफिसर ने फाइल देखी तो अक्षर बदले पाये गये। विचार करने लगे कि वे तो कोई खुदा के दोस्त हैं। उनके मैं चलकर दर्शन करूं। काजी जी जाकर दर्शन किया और नमस्कार करके बोले :-मुरसिद, यह जीव जिस प्रकार खुदा का दर्शन करै, वैसा उपदेश दीजिये। तब सतगुरु महाराज बोले :—

इश्क महब्बत मस्त मन, तालिब दर दीदार।
दोस्त दिल हरदम हजूरी, यादगार हुसियार॥
जीव ब्रह्म सेवा करै, ब्रह्म बराबर होइ।
दादू जानै ब्रह्म को, ब्रह्म सरीखा सोइ॥
आपा गर्व गुमान तज, मद मत्सर अहंकार।
गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार॥

सब घट एकै आतमा, जानै सो नींका ।
आपा पर मै चीन्ह् ले, दर्शन है पीव का ।।

काजी जी इस्तिफा देकर, श्रीचरणों में ही निवास करने लगे । यह बात देश देशान्तरों में जा पहुंची । जनता जनार्जन का सतगुरू के दर्शन करने को तांता बंध गया । और कहा है :—

भक्त वच्छल भक्तन हितकारी, युग युग प्रगटे राम ।
मोक्ष कर दीने नरनारी, दया निधि दादू शुभकारी,
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी० ।

उपदेश सुन सुनकर जीवों के अज्ञान रूपी पड़दे फटकर स्वरूप साक्षात्कार करने लगे । दूर दूर से साधक लोग आकर, श्री चरणों की शरण लेने लगे । साधूराम जी, जयमल जी, मोहनदास जी, हरि सिंह जी, तेजानन्द जी, चतरदास जी, संतदास जी, जग्गा जी, माधोदास जी आदिक और माधोदास जी ने कहा है :—

छंद :-

विप्र सनाड्य में सीकरी शहर को, दादू दयाल धर्यो कर शीशा ।
मोहि मिले गुरू सांभर के मध्य, सवंत् चन्द ऋतु गुन तीसा ।
जन्म कथा गुरू को हम बूझत, मोहि बतावत आप मुनीसा ।
अहमदाबाद कथा बरणी जन, माधव में अपने द्रीघ दीसा ।।

माधवदास जी, बादशाह अकबर के तुलसीराम मंत्री के जमाई थे । इनको ग्रहस्थ से वैराग्य हो गया । ये जहां तहां संतों के दर्शन करते करते सांभर आए । ब्रह्मऋषि के दर्शन और सतसंग करके, इनका मन शान्त हो गया । विक्रम स० १६२९ में, ये गुरुदेव के श्री चरणों की शरण ग्रहण की । इस प्रकार जब

नीर पर बैठे हरि ध्यावै, सप्त तन धर भोजन पावै ।
दुष्ट के मन में नहीं भावै, जुगल तन वाको दरसावै० ।।

एक रोज सात भक्त क्रम क्रम से आकर, भोजन का निमन्त्रण देने लगे । भगवान ने आज्ञा दी कि हे मेरे रूप ! इनके निमंत्रण मार लो । सतगुरू ने मान लिये । उस रोज परमेश्वर दादू दयाल जी के

सात रूप धार कर, सातों भक्तों के घर भोजन किया । फिर सबको पता चला कि आज सतगुरुदेव ने सात शरीर धारण किये और सातों भक्तों के यहां भोजन किया तब तो जय जयकार की ध्वनि करने लगे । जब बिलन्दखान खोजा न्यायालय में आया, तो उसके पास हिन्दू मुसलमान मजहबी लोग खैंचातानी में फंसे हुए, न्यायालय में जाकर बोले कि हुजूर ! यहां पर एक दादूदयाल नाम के संत अमुक जगह निवास करते हैं । उनका अजीब ज्ञान है । न वह हिन्दुओं की सम्प्रदा में दिखाई पड़ते हैं और न मुसलमानों के सिद्धान्त में ही देखे जाते हैं । दुनियां को अपने ज्ञान से बहकाते हैं । बिलन्दखान ने यह सुनकर हुकम दिया कि उसको लाकर काराग्रह में बन्द कर दो । वैसा ही किया गया । भगवान ने दूसरा दादू दयाल का रूप बनाकर, पद गाने लगे । राजपुरूषों ने जाकर कहा :-"हुजूर उसको छोड़ दिया क्या ? वह छत्री में बैठकर पद गा रहा है । तब काराग्रह में देखे तो वहां भी बैठे हुए स्मरण कर रहे हैं । बाहर निकाले, चरणों की रज काजी ने अपनी दाढी को लगाई और नमस्कार किया । सतगुरू ने उपदेश किया :-

हुशियार हाकिम न्याय है, सांई के दीवान ।
कुल का हिसाब होगा, समझ मूसलमान ।।टेक।।
नीयत नेकी सालिकां, रास्ता ईमान ।
इखलास अंदर आपणे, राखणां सुबहान ।।१।।
हुक्म हाजिर होइ बाबा, मुसल्लम महरबान ।
अकल सेती आपना, शोध लेहु सुजान ।।२।।
ह~~अ~~क सौं हजुरी हूंणों, देखना कर ज्ञान ।
दोस्त दाना दीन का, मानना फरमान ।।३।।
गुस्सा हैवानी दूर कर, छाड दे अभिमान ।
दुई दरोगा नांहि खुशियां, दादू लेहु पिछान ।।४।।

साखी :- किससे बैरी व्है रह्या, दूजा कोई नांहि ।
जिसके अंग थैं ऊपजे, सोई है सब मांहि ।।
सब हम देख्या सोधि कर, दूजा नांही आन ।
सब घट एकै आतमा, क्या हिंदू मुसलमान ।।

दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान ।
दोनों भाई नैन हैं, हिंदू मुसलमान ॥
खंड खंड कर ब्रह्म का, पंख पंख लिया बांट ।
दादू पूरण ब्रह्म तज, बंधे भरम की गांठ ॥

इस प्राकर तत्व सार उपदेश सुनकर, साम्प्रदायिक हिन्दू मुसलमान, शर्मिन्दे होने लगे और आफिसर नत मस्तक होकर, चरणों में नमस्कार किया । जब स्व स्थान पर आये, तो वहां भगवान अर्न्तध्यान हो गये और महाप्रभु आ बिराजे । एक रोज एक काजी आया और दादू दयाल महाराज के मुंह पर मारने को घोंसा ताना, हाथ वैसे ही रह गया और भयंकर पीड़ा होने लगी । हाथ सूज गया । कुछ दिनों के बाद हाथ गलकर टूट गया और जान निकल गई । फिर उसका जवांई उरमायल बोला कि मैं दादू दयाल को जान से मारूंगा । उसने रूई का सौदा किया था । अचानक गोदाम में आग लगी और तमाम सात सौ मण रूई तथा उसकी स्त्री बाल बच्चे सब जलकर खाक हो गये । यह देखकर मन में डर गया और सोचने लगा कि उनका बुरा चाहने वाले का पहले ही बुरा होता है । खुदा से माफी चाहने लगा ।

एक रोज महाराज बाहर से नगर में आ रहे थे, उसी समय वहां के शासकों ने, उन पर खूनी मतवाला हाथी छोड़ा । मार्ग की जनता में हाहाकार मच गया, किन्तु महाराज निर्भय रहे । हाथी ने आकर महाराज के चरण छुए और चरणों की रज उठाकर, मस्तक पर डाल ली । महाराज ने राम राम का हाथी को उपदेश दिया । मद उतर गया और वापिस लौट गया ।

इसी प्रकार बिट्ठल व्यास अपरनाम दामोदर जी रोज एक पुष्पों की माला लेकर जाता और महाराज को धारण कराके नमस्कार करता । एक रोज माला घर भूल आये । स्त्री पुरुष दोनों ने विचार किया कि आज माला नहीं लाये । व्यास मन में सोचने लगा कि महाराज हमारे मन की भावना - देखैं पूरी करेंगे क्या ? जब छत्री में जाकर पहुंचे और बोले :-आज माला घर भूल आये । तब महाराज ने वही माला अपनी योग शक्ति से मंगा कर उनको दी और बोले :-राम जी लो, पहना दो । महाराज को माला धारण कराके नरस्कार किया और कृत्य कृत्य हो गये ।

एक रोज गलता से चार बैरागी साधु आये और कंठी तिलक महाराज के सामने रखकर नमस्कार किया और बोले :- इसको आप धारण कर लें । आपने उत्तर दिया :-

माला तिलक सो कुछ नहीं, काहू सेती काम ।
अन्तर मेरे एक है, अहनिस उसका नाम ॥

साधू उदास होकर बोले:-अगर आमेर का राज्य होता तो हम आपको अवश्य यह धारण करा देते। परम गुरूदेव बोले :-आमेर भी भगवान इस शरीर को जरूर लावेंगे। फिर साधू रूष्ट होकर चले गये।

इस प्रकार लगभग चौदह साल सांभर में निवास किया और अज्ञान तथा मोहरूप निद्रा से अनेक जीवों को जगाया। फिर भगवान की आज्ञा हुई कि हे मेरे रूप! अब आप भ्रमण करिये। तब मोरड़ा ममाना पालू इत्यादिक गांवों में रामत करने लगे और बणजारा बैलों का उद्धार किया। टौंक में माधोकाँणी बैरागी महात्मा के काम पूरे किये। लोहरवाड़े में उपदेश करके, करोली में होते हुए मार्ग में गऊओं का उद्धार किया और आमेर पधारे। आमेर का राजा भगवन्तदास आकर नमस्कार किया और पहाड़ के किनारे आप बिराजे, वहां आज दादू द्वारा बना हुआ है। राजा प्रजा महाराज का सतसंग करने लगे। जगन्नाथ दास जी, गरीबदास जी आंधी ग्राम वाले, नवाब वाजीन्द जी, रज्जब जी इत्यादि कई शिष्यों ने वहां श्री चरणों की शरण ग्रहण करी तथा केदार देश में राजा प्रजा महाराज के दर्शनों की इच्छा की। ज्ञानदास माणकदास जी ने मन से महाराज को प्रार्थना की, तब आप आमेर से सुरति रूप शरीर से केदार देश पधारे और सबने महाराज के दर्शन पाये। और दूसरे राजा अमरसिंह के यहां देवी बोली :-कि उन दोनों साधुओं का गुरू आ गया है और वह यहां भी आवैगा, मुझे यहां से जाना पड़ेगा। तब अमर सिंह ने मन्दिर के चारों तरफ सेना का पहरा लगवा दिया, ताकि कोई न घूसने पावै। सतगुरूदेव मन्दिर में सफेद चद्दर तानकर जा सोये, और मन्दिर से देवी प्रस्थान कर गई। राजा आया और देखा :-"बोला इसको उठाकर, लेजाकर पहाड़ के किनारे डालो। ले गये और वैसे ही डाला। फिर दूसरा वैसा ही रूप मन्दिर में लेटा हुआ दिखाई दिया। इस प्रकार मन्दिर से पहाड़ तक, अनेक शरीरों की लाईन लग गई। तब अमरसिंह घबराकर हाथ जोड़कर विनय करने लगा :-

हूं बापरो एक हूं कहा करूं भगवन्त,
कहो कहां मस्तक निवाइयो, दादू भये अनन्त।

जो मन्दिर में लेटे थे, वह बैठे हो गये और बोले :- यहां नमस्कार कर ले। वह सब रूप अन्तर्ध्यान हो गये। फिर राजा प्रजा का बाम मार्ग मत छुड़ाकर, रामभक्ति का उपदेश किया और आमेर पधार गये। एक रोज समुद्र में यात्रियों का जहाज आ रहा था। अचानक तूफान में फंस गया और धीरे धीरे डूबने लगा। कहा है :-

सात सै साहूकार सात करोड़ माल भर्यो,
सिन्धु बिच आइ कर जहाज अड़ गई है।
हिंगोल कपिल मुनि दादू जी को धरो ध्यान,
सब मिल टेर करी, सागर पार भई है।

उस जहाज में साहूकार घबराये और अपने अपने इष्ट को मनाने लगे । तब नन्द सेठ ने हिंगोल और कपिल मुनि दो महात्माओं का स्मरण किया । वह जहाज में प्रगट हो गये । उन सबकी विनय सुनकर, जहाज के एक डंडा मारा और बोले :- चल । तो नीचे बैठने लगी । तब ध्यान धर कर देखा और बोले :- गुरू महाराज का अवतार हो गया है । आप लोग सब ऊपर के खण पर चढ़कर, दादू दादू टेर लगाओ, तब जहाज तैरेगा । वैसा ही किया । उनकी प्रार्थना आमेर में आपने सुनी । सुरति रूप शरीर से जहाज तारा । जब समुद्र के किनारे जहाज लगा, उन्होंने साढे तीन करोड़ रूपया, महाराज के नाम पर गरीब अनाथों को बांटा और फिर नन्द आदि सेठ हिंगोल और कपिल मुनि के साथ आमेर आकर गुरूदेव को भेट चढाई और नमस्कार किया । राजा भगवन्त दास जी, सुपुत्र मान सिंह ने यह समाचार सुने । महाराज ने वह सब रूपया वहां ब्राह्मणों और गरीबों को दान करा दिया । वह सब महाराज का उपदेश सुनकर, परमेश्वर की भक्ति में लग गये, और नमस्कार करके चले गये ।

एक रोज वह माधोदास जी महाराज के शिष्य सीकरी वाले बोले कि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपनी जन्मभूमि के जाकर दर्शन करूं । तब गुरूदेव बोले :- आप जाओगे तो हमें भी आना पड़ेगा । आज्ञा दी 'जाइये' । माधोदास जी सीकरी में एक मन्दिर के सामने जाकर बैठे । रात्रि को योग निद्रा में मन्दिर की तरफ पांव हो गये । सवेरे पुजारी आकर बोला :- तूं कैसा साधु है ? जो मन्दिर की तरफ पांव करके लेटा है । आप बोले :- भगवान तो सर्वज्ञ हैं । पुजारी बोला :- तूं बड़ा नामदेव आ गया ? आप बोले :- नामदेव ने क्या किया था ? पुजारी :- नामदेव ने पत्थर की मूर्ति को दूध पिला दिया था । माधोदास :- अपना भाव और भक्ति होनी चाहिए, तो भगवान अवश्य पी लेते हैं । तब पुजारी ने बादशाह अकबर के दरबार में जाकर सब वृत्तान्त सुना दिया । अकबर ने दूध का कटोरा भिजवाया । पुजारी बोला :- तूं भी नामदेव की तरह पिला दे । आप कटोरा लेकर दीवार की तरफ किया और बोले :- हे नाथ ! आप तो सब जगह व्यापक हो, यह दूध पान करिये । भगवान दूध पी लिया ; माधोदास जी ने दर्शन किया, परन्तु उन अज्ञानियों को न दिखाई पड़े । अकबर को जाकर बोले :- कोई सेवड़ा है, दूध को गायब कर दिया । बादशाह ने हुकम दिया कि शेर के पिंजरे में बन्द कर दो । शेर भोजन कर लेगा । सब सिद्धाई खतम हो जाएगी । वैसे ही किया ।, शेर महापुरूष को नमस्कार करके, पींजरे के कोने में जा बैठा । सवेरे अकबर को पता चला तो बीरबल टोडरमल, अबलफजिल, तुलसीराम आदि को साथ लेकर आया । पिंजरे से बाहर निकाले । नमस्कार करके चरण रज दाढी के लगाई । और बोला :- यह फकीर, खुदा का दोस्त है । तब तुलसीराम उनको पहचान लिये और बोले :- हुजूर, यह तो मेरा दामाद है । इसके गुरू को बुलाइये, वह आमेर राजा भगवन्तदास के यहां निवास कर रहे हैं । भगवन्तदास जी को बुलाया । बादशाह बोले :- आपके यहां महात्मा दादू दयाल निवास करते हैं ? राजा :- हां करते हैं । तो उनको यहां सिकरी में लाओ । राजा यह सुनकर अपने स्थान पर आए और चिन्ता में तीन रोज बीत गये । कुछ भी दिनचर्या नहीं करते हैं राजा का दीवान सूरजमल राजा से विनय की । राजा ने उपरोक्त सब समाचार सुनाये और बोले :- मैं महाराज को यहां किस प्रकार आने के लिए कह सकता हूं ? और बादशाह का हुकम है । तब दीवान बोले :- आप दिनचर्या करिये । मैं जाता हूं,

और जरूर महाराज को यहां लाऊंगा । आमेर गये, मानसिंह जी को साथ लिया और महाराज की गुफा पर आकर नमस्कार किया । उपरोक्त सब वृत्तान्त सुना दिया । महाराज बोले :—

साध न कबहू पग भरै, कबहू राज द्वार ।
दादू उलटा आप मैं, बैठा ब्रह्म बिचार ॥

ब्रह्मऋषि बोले :-हमें राजा महाराजाओं के यहां जाकर क्या लेना है ? दीवान बोले:-भक्तों की रक्षा तथा अज्ञानी मोह नीद में सूते हुए जीवों को जगाने के लिये तो आपका अवतार ही हुआ है । परमेश्वर ने आज्ञा दी है कि मेरे रूप ! आप सीकरी पधारिये, आपके सब काम सिद्ध होंगे । दादू दयाल महाराज बोले :-हम आज के सातवें दिन वहां आ रहे हैं । आप चलकर राजा जी से बोल दो । दीवान जाकर सब समाचार सुना दिये । इधर महाराज सात शिष्यों को साथ लिये । मानसिंह जी आकर नमस्कार किया बोले :-आप कुछ जंत्र मंत्र जानते हो तो जाओ, वह बादशाह अकबर बड़ा तेज है । कितने ही साधुओं को काराग्रह में बन्द कर रखे हैं । तब स्वामी जी बोले :-

चौ० :- जंत्र मंत्र का नहीं कछु सहारा, राजा राम बचावनहारा ।

मानसिंह नमस्कार करके चले गये, और सातों शिष्यों के साथ महाराज सिकरी को रवाना हो गये । जग्गा जी ने भी सुना कि महाराज सिकरी पधार रहे हैं, तब वह भी सिकरी पहुंच गये । माधोदास जी वहां पहले ही थे । सातवें दिन दादू दयाल महाराज सिकरी जा पहुंचे । दोनों शिष्यों ने आकर चरणों में नमस्कार किया । यह दस अवतार रूप में वहां उपस्थित थे । राजा भगवन्त दास जी आये । महाराज को नमस्कार करके, अकबर बादशाह को जाकर समाचार दिये । बादशाह ने बीरबल और अबल फजल को हुकम दिया कि तुम जाकर परीक्षा करो कि कैसे महात्मा हैं । वह दोनों आए, महाराज के चरणों में नमस्कार किया और आज्ञा लेकर प्रश्न किये । साखी न० १२७ से १४४ तक (पेज ११६ से २७५) परिचय के अंग में देखिये । फिर बादशाह को जाकर बोले :-ऐसे महात्मा आपके यहां, आज तक और नहीं आया । उनका ज्ञान बहुत गहरा है । बादशाह बोले :-उनको भोजन के लिये पूछो "क्या खावें पीवेंगे ?" महाराज को आकर पूछा, बोले :-हम राज का अंश नहीं खाते, भीक्षा लेकर खा लेवेंगे । बादशाह सुनकर रुष्ट हो गया । शहर के दरवाजे बन्द करवा दिये, और बोला :-भूख लगेगी, तब हमसे ही लेकर खाएंगे । इधर जग्गा जी को आज्ञा दी कि आप नगर से भीक्षा लाकर, संतों को भोजन कराओ । जग्गा जी नगर के चारों तरफ दरवाजे बन्द देखकर वापिस आ गए । महाराज बोले :-राम जी पुरुषार्थ करो, संतों के लिये दसों दिशा खुली हैं । तब योग शक्ति से बड़ा शरीर बनाकर दरवाजे को पार किया । फिर लगवां सिद्धि से सुन्दर रूप बन गया । घरों में भीक्षा लेने गये । थोड़ी देर में भीक्षा लेकर लौटे । और फिर महान रूप बनाकर दरवाजे से पार हो गये । संत रूप से गुरू महाराज के सामने जाकर भीक्षा रखी । सब संतों ने भोजन पाया । यह बात अकबर

को दरवान ने जाकर सुनाई । बादशाह मन में समझ गया कि उनका खाना कौन बन्द कर सकता है ? फिर राजा भगवन्तदास और बीरबल को आज्ञा दी कि आप दादू दयाल को यहां लाओ । दोनों आयें, नमस्कार किया । अकबर के समाचार सुनाये । महाराज साथ चले । अकबर सामने आकर नमस्कार किया और सुन्दर आसन देकर बैठाए । आज्ञा लेकर प्रश्न किया । आप संत क्यों हो गये ? "भजन करने के लिये" । बादशाह :-कबीर ने ऐसा कहा है :-

तन है मटकी मन मही, प्राण बिलोवणहार ।
तत्त कबीरा ले गया, छाछ पिओ संसार ॥

यह सुनकर दयाल महाराज बोले :-

चीड़ी चंच भर ले गई, नीर निघट नहीं जाइ ।
ऐसा बासण न किया, सब दरिया मांहि समाइ ॥

फिर बोले :—आपने जो साखी बोली, वह ऐसे नहीं है, ऐसी है :—

तन है मटकी मन मही, प्राण बिलोवणहार ।
तत्त कबीरा गह रह्या, औरौं को आधार ॥

बादशाह चुप हो गये और फिर बोला :—

अकबर बूझै फक्कड़ से, तीन बात अड़ी ।
ऐरन हथौड़ा संडासी, पहले कौन घड़ी ॥

खुदा ने तीन लोक में से पहले कौनसा लोक रचा ? अथवा पृथ्वी, अग्नि, आकाश इनमें से प्रथम कौनसा तत्व हुआ । अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति बूझ रहा है । सतगुरु बोले :— इस उत्तर को वहां देंगे, जहां साधु लोग कारागृह में चक्की पीस रहे हैं । अकबर के सहित वहां पहुंचे और बोले :— इन साधुओं से चक्की न पिसवाओ । अकबर बोला :— चक्की कौन चलाएगा ? हम चलाएंगे । पहले आपको आटा पीस दें, महाराज एक चक्की के छड़ी लगाई और बोले :— राम जी महाराज चक्कियां चलवाइये । सब चक्कियां स्वतः ही चलने लगी । अनाज पिसकर ढेर हो गया । यह देखकर बादशाह डरने लगा । उपरोक्त प्रश्न का उत्तर भी इस प्रकार दिया :—

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय

साखी :- एक शब्द में सब किया, ऐसा समर्थ सोइ ।
आगै पीछै वै ~~सो~~ करै, जो बल हीना होइ ।।

बादशाह समझ गया, चरणों में नमस्कार किया । ब्रह्मऋषि ने बादशाह से साधुओं की पूजा कराई और उनको उपदेश किया कि उत्तराखंड में जाकर भगवान का भजन करो । वह ही सौ गुप्त शिष्य कहे जाते हैं। फिर महाराज जहां ठहरे थे वहां आ गये । एक रोज फिर बादशाह ने प्रश्न किया कि खुदा की जाति अंग, शरीर और रंग कैसा हैं ।

इश्क अलह की जाति है, इश्क अलह का अंग ।
इश्क अलह औजूद है, इश्क अलह का रंग ।।

प्रश्न :- आपका मत क्या है ?

उत्तर :-

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै विकार ।
निर्बैरी सब जीव सै, दादू यह मत सार ।।

बादशाह अकबर निश्चय किया कि यह सच्चे महापुरुष हैं। नत मस्तक होकर नमस्कार किया। महाराज बोले :—गऊ बद्ध बन्द करवा दीजिये । और हिन्दू मुसलमान का भेद खतम करिये, क्योंकि एक ही परमेश्वर ने दोनों के शरीर पंचीकृत पंचभूतों से समान ही बनाए हैं ।

अलह राम छूटा भरम मोरा, हिन्दू तुरक भेद कुछ नांही,
देखूं दर्शन तोरा ।।टेक।।
सोई प्राण पिण्ड पुनि सोई, सोई लोही मांसा ।
सोई नैन नासिका सोई, सहजैं कीन्ह तमासा ।।
श्रवणों शब्द बाजता सुनिये, जिह्वा मीठा लागै ।
सोई भूख सबन को व्यापै, एक युक्ति सोई जागै ।।
सोई संधि बंध पुनि सोई, सोई सुख सोइ पीरा ।
सोई हस्त पांव पुनि सोई, सोई एक शरीरा ।।

यहु सब खेल खालिक हरि तेरा, तैं हि एक कर लीना ।
दादू जुगति जान कर ऐसी, तब यहु प्राण पतीना ॥

साखी :- दादू सब हम देख्या सोधि करि, दूजा नांही आनि ।
सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मुसलमान ॥
दादू नारी पुरुष का नाम धर, इहि संशय भरम भुलान ।
सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मुसलमान ॥
आये एकंकार सब, सांई दिये पठाइ ।
दादू न्यारे नाम धर, भिन्न भिन्न व्है जाइ ॥
आये एकंकार सब, सांई दिये पठाइ ।
आदि अंत सब एक है, दादू सहज समाइ ॥

इत्यादिक ब्रह्मऋषि के उपदेश सुनकर, बादशाह अकबर के दिल से भेद भाव नष्ट हो गये । और गऊ बद्ध वगैरा, खुदा की सप्त के साथ बन्द कर दिया । तब काजी मुल्ला बोले : हुजूर ! एक साधु के उपदेश सुनकर ही आप गऊ वद्ध बन्द कर दिया, उसकी कुछ करामात तो देखते । तब फिर अकबर के मन में विचार हुआ और राजा भगवन्त दास तथा बीरवल को, दादू दयाल महाराज को, दरबार में बुलाने को भेजे । दोनों ने जाकर चरणों में नमस्कार किया । उपरोक्त बादशाह का आदेश सुना दिया । महाराज बोले :- वह तो चमत्कार देखना चाहता है । चलो हम आ रहे हैं । दरबार में बादशाह को जाकर बोल दिया । परन्तु पीछे से बादशाह ने दरबार का रूपान्तर कर दिया । एक फर्श पर सब राजा महाराजा मीर उमराव नवाब बैठे थे । बीच एक तख्त पर बादशाह बैठे थे । दादू दयाल महाराज के बैठने को कहीं आसन नहीं देखा । बीरबल और भगवन्तदास मन में विचार करने लगे, महाराज यहां कहां बिराजेंगे ? इतने में आकाश में एक तेजपुंज के तख्त पर बिराजे हुए दादू दयाल महाराज के दर्शन हुए । बादशाह के सहित सारा दरबार हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे और बादशाह बोला :-

दोहा :- दादू नूर अल्लाह है, दादू नूर खुदाइ ।
दादू मेरा पीर है, कहै अकब्बर सहाइ ॥

छंद :- अकबर महिमा सुन दादू जु बुलाय लिये,
गये पल मांहि वेग ढील ना लगाई है ।
अकबर बीरबल बुद्धि के आगर दोउ,
दादू अनुभव घर चरचा चलाई है ।
गोष्टि समझायो गैबी तखत दिखायो ताहि,
जाहि तेजवंत देखि करत बड़ाई है ।
गऊ छुड़वाई कोउ जीव न सताई अरू,
सौगन कढाई अजू साहिब दुहाई है ।

छप्पय छंद :-

देख तखत पुनि नूर को, शाह अकबर को संशय मिट्यो ।
खड़ो करत अरदास, पार किन्हुं नहीं पायो ॥
तुम जहान के बीच, खुदाई दोस्त पठायो ।
मेरी बगसो चूक, अकब्बर ऐसे भाखे ॥
यही करत अरदास, खुदा तुम शरने राखे ।
ऐसे आप प्रकाशिया, अफताब उदय ज्यों तम हट्यो ॥
देख तखत पुनि नूर को, शाह अकबर को संशय मिट्यो ॥

इस प्रकार बादशाह अकबर दरबार के सहित हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगें, तब तख्त कुछ नीचे आया । दोनों समाज ने चरणों की पूजा की और तख्त वापिस ही आकाश मार्ग से लौट गया । फिर जहां महाराज बीरबल के यहां ठहरे थे, वहां सब लोग आये । चरणों में नमस्कार किया । महाराज बोले :- अब हम लोग यहां से रामत करना चाहते हैं । बीरबल बादशाह अकबर को जाकर यह समाचार सुनाये, बादशाह ने हुकम दिया कि मोहर रूपयों के थाल भरकर महाराज के भेट करो । बीरबल वैसा ही किया । महाराज बोलेः- रामजी हमतो यह नहीं लेंगे और आप राजा हो हमारे चढ़ा चुके, इसलिये ब्राह्मणों और गरीबों को बांट दो । बादशाह को जाकर कहा । तब बादशाह एक सोने के पिंजरे में कुरान पढ़ा हुआ तोता साथ लेकर आया और

महाराज को नमस्कार किया। बोला :- मुरसिद, यह तोता कुरान शरीफ पढ़ा हुआ है, इसको आप ले पधारिये। सतगुरुदेव बोले :- हमारे पास पिंजरा और तोता है, कुरान पढ़ा हुआ। अकबर बोले :- कहां है ?

साखी :- दादू यह तन पींजरा, मांही मन सूवा।
एकै नाम अल्लाह का, पढ हाफिज हूवा ॥

दोहा :- गुरू दादू अकबर मिले, कही सूवो ले जाइ।
हमरे संग तो आप है, सुनो अकब्बर सहाइ ॥

यह सुनकर बादशाह अकबर नत मस्तक होकर, नमस्कार किया। इस प्रकार चालीस रोज तक सीकरी शहर में महाराज बिराजे। राजा प्रजा दर्शन करके, उपदेश सुनकर जय जयकार करने लगे। राम जी महाराज ने दादू दयाल जी और अकबर बादशाह की ज्ञान गोष्टि में समता ज्ञान रूपी रस पूर्ण बनाये रखा। बहुत दूर तक बादशाह अकबर दरबारियों तथा जनता के सहित महाराज को विदा करने गये। फिर महाराज की आज्ञा पाकर जय जयकार करते हुए सीकरी की ओर लोट गये। ब्रह्मऋषि शिष्यों के सहित जहां तहां रमते हुए आ रहे थे। गावों की जनता दर्शन करके अपने भाग्य की सराहना करती थी। इस प्रकार दौसा नगर में आए। भोजन की समय होने से शिष्य लोग पूछने लगे नगर वासियों से। परन्तु किसी ने भी बिना पहचान के, संतों को भोजन के लिये नहीं कहा।

जे निधि कहीं न पाइये, सो निधि घर घर आइ।
दादू महंगे मोल बिन, कोई न लेवै ताइ ॥

फिर गेटोलाव बांध के उपर जाकर बिराजे। वहां :-

प्रकृति को आज्ञा फरमाई, जलेबी ताजा मंगवाई।
भोजन कर वा बंद पै, करी भक्त की सहाइ०।

इस प्रकार संतों को गर्म जलेबी का भोजन करा कर, फिर घूमते हुए जनता का कल्याण करते करते आमेर आ पहुंचे। वहां एक कनफटा नाथ रहता था। उसने महाराज को कुछ खोटा शब्द कहा। महाराज तो जरणा कर ली। शिष्य टीला जी ने जिस सिला पर योगी बैठा था, उस सिला के सहित योगी को आकाश में उड़ा दिया। जब ब्रह्मऋषि बोले :-ऐसा करना ठीक नहीं है, तब योगी सिला के सहित ही वापिस जमीन पर आ गया। गुरुदेव के चरणों में नत मस्तक होकर नमस्कार किया और अपना अपराध क्षमा

कराया। वह सिला आज भी पहाड़ी पर पड़ी है । फिर परमेश्वर ने आज्ञा दी कि हे मेरे रूप ! अब आप रामत करिये । नरेना का राजा नारायण सिंह जी को नागपुर में रात्रि के समय स्वप्न में भगवान कृष्ण ने आज्ञा दी कि मेरे रूप, दादू दयाल जी को नरेना में लाकर पधराओ । तब वह आकर महाराज के दर्शन करके नमस्कार किया और बोला :-महाराज नरेना पधारिये । सतगुरूदेव को भी भगवान ने आज्ञा दी कि हे मेरे रूप ! अब आप अंतिम धाम नरेना बनाइये । राजा के साथ महाराज [redacted] नरेना में रघुनाथ जी के मन्दिर में प्रथम आकर बिराजमान हुए और जनता दर्शन करने लगी । उपदेश सुनकर अपने जीवन को पवित्र बनाया । फिर भगवान की आज्ञा से त्रिपोलिया के ऊपर आकर बिराजमान हुए । वहां बखना जी आदि कई शिष्य श्री चरणों की शरण में आए। कुछ दिन के बाद शेष जी के साथ खेजड़ा जी के नीचे आकर बैठे । वहां फिर महाराज के निवास के लिये एक कुटिया बनाई गई । उसमें महाराज निवास करने लगे । इस प्रकार नरेना में बिराजने लगे, तब तो फिर चारों दिशाओं से महन्त सन्त महात्मा राजा महाराजा तथा जनता के झुंड के झुंड दर्शनों के लिये आने लगे । दर्शन और नमस्कार करके निरपक्ष समत्व भक्ति वैराग्य ज्ञान के उपदेश सुन सुन कर, नीच ऊंच आदि विषमता का त्याग कर, एकत्व भावना रूप प्रेम की गंगा में स्नान करने लगे ।

भजन :-

एक प्रेम की गंगा बहती है, गुरूदेव तुम्हारे चरणों में ।
फल मिलता है सब तीर्थों का, स्नान तुम्हारे चरणों में ।।टेक।।
एक प्रेम की गंगा ....० ।
हम जन्म जन्म से भटक रहे, अब शरण तुम्हारी आये हैं।
हम भूले भटके जीवों का, कल्याण तुम्हारे चरणों में ।।
एक प्रेम की गंगा ....० ।
दुखियों का कष्ट मिटाते हो, दुख लेकर सुख पहुंचाते हो ।
मिलै जन्म मरण से छुटकारा, जो आवै तुम्हारे चरणों में ।।
एक प्रेम की गंगा ....० ।
एक बार जो दर्शन पाते हैं, दिल तुम ही को दे जाते हैं ।
क्या गुप्त भरी है भक्ति के, भंडार तुम्हारे चरणों में ।।
एक प्रेम की गंगा ....० ।

जन्मों के बिछुड़े शरण पड़े, हम हाथ जोड़ तेरे द्वार खड़े ।
चौरासी के काटो चक्कर, हैं दास तुम्हारे चरणों में ।।
एक प्रेम की गंगा ....० ।

इस प्रकार ब्रह्मऋषि के दर्शन करके, जनता अपने भाग्य की सराहना करती है और भगवान के गुणानवाद गा गा कर, दादू दयाल महाराज की जय बोलते हैं ।

एक रोज बीरबल हिमालय की भंभर घाटी से गिरते समय गुरुदेव को पुकारा । तत्काल वहां प्रगट होकर, उसकी रक्षा की ।

परयो हिम गिरि तै कर सहाई० ।

फिर एक रोज रात्रि के समय गुप्त प्रगट सिद्ध नभ मार्ग से आये, ज्ञान गोष्टि करने को । तब ब्रह्मऋषि ने उनका स्वागत किया ।

दादू मम सिर मोटे भाग, साधू का दर्शन किया ।
कहा करै जम काल, राम रसायन भर पिया ।।

शब्द :- आज हमारें राम जी, साधू घर आये ।
मंगलाचार चहुं दिस भये, आनन्द बधाये ।।टेक।।
चौक पुराऊं मोतियां घिस चन्दन लाऊं ।
पांच पदारथ पोइ के यहु माल चढ़ाऊं ।।
तन मन धन करूं वारणें प्रदक्षिणा दीजे ।
शीश हमारा जींव ले, न्योछावर कीजे ।।
भाव भक्ति कर प्रीति सौं प्रेम रस पीजे ।
सेवा बंदन आरती, यहु लाहा लीजे ।।
भाग हमारा हे सखी, सुख सागर पाया ।
दादू को दर्शन भये, मिले त्रिभुवन राया ।।

रात भर ज्ञान गोष्टि हुई । प्रातःकाल नभ मार्ग से, सब प्रस्थान कर गये । शिष्यों ने आकर नमस्कार किया और बोले गुरुदेव रात को कौन आये थे ? जिनके साथ गोष्टि हो रही थी । महाराज ने उपरोक्त

सब वृत्तान्त सुना दिया । फिर भगवान ने आज्ञा दी कि हे मेरे रूप ! आप अपने साकार रूप से अब निराकार रूप में लय हो जाइये । तब महाराज गरीबदास जी हाथ जोड़कर प्रार्थना पूर्वक बोले कि हम लोग आपके पीछे क्या करें ? किसको मानें ? किसकी उपासना करें ? तब गुरूदेव बोले :- कि राम को मानो । राम की उपासना करो और आप लोग चाहो तो यह शरीर न गलेगा, न सड़ेगा, ज्यों का त्यों रहैगा । जो पूछोगे सब कहैगा । इसकी सेवा पूजा करो । यह तेज पुंज का है । इस पर हाथ फेरो । जब गरीबदास जी महाराज हाथ घुमाया, तो शरीर केवल ज्योतिमय प्रतीत हुआ । फिर बोले :- यद्यपि आपके वचन सत्य हैं, तथापि जनता कहेगी, यह शव की उपासना करते हैं । तब परम गुरूदेव बोले कि मेरे मुख से जो वाणी उच्चारण हुई है, उसी की आप लोग पूजा सेवा आरती करना । इसको मेरा ही रूप मानना, तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे । तत्काल बाणी जी को मस्तक पर धारण करी और जय जयकार की ध्वनि गूंज उठी । फिर गरीबदास जी महाराज ने प्रश्न किया कि आपके पीछे और भी कोई आप जैसा महापुरूष प्रगट होगा ? परम गुरुदेव बोले :- सौ वर्ष के बाद, एक महापुरूष यहां ही जैत राम जी नाम से होगा । फिर शिष्यों ने जयकारा बोला । इससे यह सिद्ध होता है कि दादू दयाल महाराज अपना सौ साल के बाद एक शरीर धारण करते हैं, अधिकारी पुरूषों का कल्याण अर्थ । श्री स्वामी हरिदास दास जी महाराज बावन शिष्यों में उनके पोता शिष्य महाराज स्वामी नितानन्द जी त्रिकालिज्ञ योगी कहते हैं :-

साखी :- दादू जी तुमको नमो, सब संतन के साथ ।
नितानन्द दिल से करे, सुनियो सतगुरू नाथ ॥
दादू आदू पीर है, अमर पुरी के राव ।
नितानन्द सिजदा करे, बड़ी भेट है भाव ॥
दादू जी आगे गये, हम भी पीछे जांहि ।
नितानन्द से मिल लियो, लम्बी करके बांहि ॥
अमर पुरी के चौक में, दादू का निशशान ।
नितानन्द देखी कहैं, समझैं संत सुजान ॥
दादू आदू जुगों के, आज काल के नांहि ।
रामचन्द्र लंका चढे, दादू दल के मांहि ॥

और भी

सत्य बचन दादू कहै, सौ बरसां एक संत ।
रैण दरयायी औतरै, उधरै जीव अनंत ॥

इससे यह सिद्ध होता है कि पहली शताब्दि में दादू नाम से, दूसरी में जैत साहिब जी नाम से, तीसरी में दरयाथी साहिब नाम से, चौथी में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी नाम से, यह महापुरुष भगवान की आज्ञानुसार जीवों को अज्ञान और मोहरूप निद्रा से, समता ज्ञान द्वारा जगाये हैं और इसी प्रकार जनता जनार्दन की भक्ति वैराग्य ज्ञान द्वारा, सेवा करते रहेंगे। यह स्व इच्छाचारी वशिष्ट भीष्म की तरह हैं। इनका प्रारब्ध एक कल्प पर्यन्त का है। भगवान ने इन्द्र आदि देवों को आज्ञा दी कि आप विमान लेकर, मेरे रूप दादू दयाल के लिये जाओ।

रचि बिमान सुरपति ले, औ मुदित भये सब साध।
दादू दीन दयाल दया कर, दयो दया प्रसाद ।।
परस्पर मिल हरषे भारी, दया निधि दादू शुभ कारी।
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी, दया निधि दादू शुभ कारी ।।

संत रूप से विमान लाकर दो रोज पहले रखा। सभी संतजन विमान को देखकर, संतों से मिलकर हर्ष को प्राप्त हुए। परन्तु पहचान न पाये। जब दयाल महाराज का दर्शन किया, तो महाराज जान गये और बड़े हर्ष से सुरपति के साथ मिले और भगवान की सैन को समझ गये। फिर आप बोले कि इस शरीर को भैराणा पहाड़ में ले जाकर रखना और बोले :-

हमहु हमारा कर लिया, जीवत करणी सार।
पीछे शंसा को नहीं, दादू ज्ञान बिचार ।।
दादू राखी राम पर, अपनी आप संबाहि।
दूजा को देखूं नहीं, ज्यूं जाणै त्यूं निबाहि ।।

वि स० १६६० ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी शनिवार को एक पहर दिन चढे ब्रह्मऋषि सहज समाधि द्वारा ब्रह्मलीन हो गए। तब सभी सम्प्रदाओं के संत, महन्त, महात्मा और शिष्यों ने विमान में पधरा कर, जय बोलते हुए कीर्तन के साथ, विमान को लेकर, भैराणा की ओर प्रस्थान किया। जब भैराणा पहाड़ की खोल में ले जाकर विमान रखा और जय जयकार की ध्वनि करके, सभी ने साष्टांग प्रणाम किया। इतने में विमान अदृश्य हो गया। तब सब ही के शरीर रोमांच होकर, नेत्रों में आंसू बहने लगे और बोले :-

दोहा :- दादू दास कबीर की, काया भई कपूर।
रज्जब अज्जब देखिया, सर्गुण निर्गुण नूर ।।

पद :- बिछड़िया राम सनेही, म्हारै मन पछतावो येही।
बिछड़िया बन दहिया, म्हारै हिवड़े करवत बहिया ।।टेक।।
बिलखी सखी सहेली, ज्यूँ जल बिन नागर बेली।
मैं ढूंढ रही जग मांही, कोई उस ऊणीहारे नांही।
वा मुलकन की छवि छाई, म्हारै रह गई हृदय मांही।
मंडली को मन्डण नांही, मंडली को मंडण नाहीं।
कौण सभा में सो है, जाकी निर्मल बाणी मोहै।
भर भर प्रेम पिलावै, कोई दादू आण मिलावै।
बखनौं बिरह बिसुरै, दरसन के कारण झूरै।

इस प्रकार महाराज ५९ वर्ष डेढ मास धरातल पर रहकर, लोक कल्याण अर्थ उपदेश करते रहे। जब संतों ने बिरह से पुकार करी, तो पहाड़ के बीच गुफा के दरवाजे पर फिर विमान के दर्शन हुए और महाराज बोले :- संतों ! राम की इतनी ही आज्ञा थी। अब राम का भजन करना और हृदय में दर्शन करते रहना, सत्यराम। यह कहकर अन्तर्ध्यान हो गये। उस समय निमार्क सम्प्रदा के महन्त परसराम जी महाराज बोले :-

हरी हीरों की खान थी, गुरू दादू के पास।
सभी घसियारे परसराम, खोद खायेंगे घास ।।

फिर गरीबदास जी के साथ सभी संत, महन्त, महात्मा, और जनता, नरेना आ गये और महाराज के पाठ, गरीबदास जी को बैठा दिये। गलता के वैष्णों महन्त छीतरदास जी बोले :-

दादू को आसन ब्रह्म सिंहासन, ता पर दास गरीब बिराजै।
संतन में सुखदायक लायक, जोग जुगति लिये नित गाजै।
ज्ञान अरू ध्यान सबै विधि पूरण, धीर गंभीर महामुनि छाजै।
है छीतर औपमा नारद की छवि, दास गरीब सबै सिर ताजै।

फिर महाराज गरीबदास जी ने एक महीने तक भारी उत्सव और भंडारे चलाये। इस प्रकार ब्रह्मऋषि के राजस्थान में पांच प्रमुख धाम हैं, करड़ाला, सांभर, आमेर, नरेना और भैराणा। और दयाल महाप्रभु के बावन शिष्य हुए। जिनके नाम और ग्राम इस प्रकार हैं :-

दादू जी दयालु पाट गरीब मसकीन ठाट,
युगल बाई निराट निराने बिराज हीं ।
बखनो संकरपाक जैसो चांदो प्रागटाक,
बडोहु गोपाल ताके गुरू द्वारे राज हीं ॥
सांगानेर रज्जब सो देवले दयालदास,
घड़सी कड़ेल वसी धर्म हीं की पाज ही ।
ईंडवे दूजनदास तेजानन्द जोधपुर,
मोहन सो भजनीक आसोप निवाज ही ॥१॥

गूलर में माधोदास, विद्याद में हरिसिंह,
चत्रदास सिंघावट किये तन काज ही ।
वियांणी प्रयागदास डिडवाणे है प्रसिद्ध,
सुंदरदास भूसर सु फतेपुर गाज हीं ॥
बाबा बनवारी हरिदास दोउ रतिया जंगल मध्ये,
साधुराम मांडोली में नीके नित्य छाज ही ।
सुन्दर प्रह्लाददास घाटड़े सु छींण मांहि,
पूरब चतुरभुज रामपुर राज हीं ॥२॥

निराणदास मांगल्यो सुडांग मांहि एकलोद,
रणत भंवर गढ चरणदास जानियो ।
हाडोती गंगाइचा में माखूजी मगन भये,
जग्गो जी भड़ूच मध्य प्रचाधारीं मानियो ॥
लालदास नायक सो पीरांणी पटणदास,
फोफले मेवाड़ मांहि टीलो जीं प्रमानियो ।
सादा परमानन्द इंदोखली रहे जप,
जैमल चौहाण सो तो खालड़े हरि गानियो ॥३॥

जैमल जोगी कछावो, वनमाली चोकन्यों सू,
सांभर भजन रूप सो वितान तानियो ।
मोहन दफतरी सो मारोठ चिताई भले,
रघुनाथ मेड़ते सु भाव कर आनियो ॥
काले डहरे चत्रदास टीकूदास नांगल में,
झोटवाड़े झांझूमांझू लघु गोपाल धानियो ।
आमावती जगन्नाथ राहोरी में जन गोपाल,
बारह हजारी संतदास चांवडे लुभानियो ॥४॥

आंधी में गरीबदास भानगढ माधवा के,
मोहन मेवाड़ा योग साधन से रहे हैं ।
टहटड़े में नागर निजाम हू भजन कियो,
दास जगजीवन सु दौसा हरि लहे हैं ॥
मोहन दरियाई सो समाधि नागर चाल मध्य,
बोकड़ास संतजु हिंगोल गिरि भये हैं ।
चैनराम कांणोत म गौदेंर कपिलमुनि,
श्यामदास झैलाणा में चौड़े का में ठये हैं ॥५॥

सौंक्या लाखा नरहरि आलूदें भगतिकर,
महाजन खंडेलवाल दादू गुरू गहे हैं ।
पूर्णदास ताराचंद महाजन सू महरवाल,
आंधी में भगति कर काम क्रोध दहे हैं ।
रामदास राणीबाई कांजल्यां प्रगट भये,
महाजन डंगायीच सो जाति बोल सहे हैं ।
बावन ही थाम्बा अरू बावन ही महन्त ग्राम,
दादू पंथी चतुरदास सुने जैसे कहे हैं ॥६॥

महाराज के अनेक भूपति सेवक हुए जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं :- बादशाह अकबर, विद्यापति बीरबल, अब्वलफजल, तुलसीराम, टोडरमल, आमेर के राजा भगवन्तदास जी, सुपुत्र मानसिंह जी, बीकानेर के भरूँट्या राव, नवाब बाजींद जी, नारायण सिंह जी, भोजराज जी इत्यादिक।

यह संक्षिप्त रूप में मैंने ब्रह्मऋषि का जन्म, कर्म और बाणी का परिचय आप लोगों के सामने दिया है। इसमें किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो तो, उसके लिये मैं क्षमा याचना करता हूं। इस प्रकार श्री दयाल बाणी की यह सजीवनी टीका मैंने महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ तपोधन प० श्री १०८ स्वामी गिरधारी दास जी महाराज, मेरे सतगुरूदेव से परम परागत, गुरू प्रणाली अर्थ, दृष्टान्तों सहित जैसा सुना था, वैसा यहां मैंने विवेचन किया है। परन्तु इस श्री दयाल बाणी में जो पद्य में पुरानी हिन्दी थी, वही ज्यों की त्यों रखी गई है, क्योंकि यह ब्रह्मऋषि जगत्गुरू दादू दयाल महाराज के मुखारबिन्द के वचन हैं। इसलिये इसमें हेर फेर करना ठीक नहीं समझा। टीका अवश्य शुद्ध हिन्दी में लिखी है। इस टीका में कुछ विशेषता है। मंगलाचरण, अविचल मंत्रों की टीका और मुक्तिवाद में अन्य पुस्तक की सहायता ली है। यद्यपि गुरूदेव ने अर्थ बहुत कुछ बताया था, परन्तु फिर भी, मैं विचार कर ऐसा किया है। सौंज मंत्र, गोपी का गीत, नसीयतनामा, काया बेली ग्रंथ की टीका, पतिव्रता का प्रसंग, और बाणी की साखी तथा शब्दों पर दृष्टान्त, छंद कवित्त, शेर, दोहे चौपाई, अरिल छंद, रेखता आदि सभी महात्माओं के, मैंने बहुत प्रयास करके, इसमें लिखे हैं। सभी विज्ञजनों से मैं विनय करता हूं कि इसमें कोई त्रुटि रह गई हो या बाणी छपाई में कोई अक्षरों की कमी रही हो तो उसका विचार नहीं करेंगे और भविष्य में उसको मुझे बतावें ताकि आगे की आवृति में वैसा ही छपाया जावे।

अब मैं मेरे शिष्य बाबू मुरलीधर जी गुप्ता (एम०एस०सी० फीजिक्स, बी०एड०) निवासी दयाल भवन ए-१५५ विकासपुरी, नई दिल्ली-११००१८ वालों की जो मुझे सहायता मिली है, उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता हूं। क्योंकि यह दयाल महाराज के पूर्व जन्म में कोई उनकी अति उत्तम आत्मा मालूम पड़ती है। इन्होंने अपने सम्पूर्ण ग्रहस्थ के काम काज को त्याग कर, लगभग नौ मास तक, रात दिन सेवा करी है। श्री दयाल बाणी की टीका की लिपि लिखना, तथा छपवाना, तथा प्रूफ का सोधन करना, यह सब आपने अपने सिर पर भार उठाया। और तन, मन, धन वचन से हर समय मेरी आज्ञा में हाजिर रहे। और यह हिन्दी के ज्ञाता इतने नहीं हैं, परन्तु अंग्रेजी के अच्छे जानकार हैं। इनकी संत साहित्य में बहुत रूचि रहती है। मैं इनकी सेवा का हृदय से प्यार करता हूं और ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज से प्रार्थना करता हूं कि इनको अपने चरणों की भक्ति, श्रद्धा और संत साहित्य में प्रेम की वृद्धि करें।

आपका :-

महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ पं० स्वामी भूरादास

शांति ! शांति ! शांति

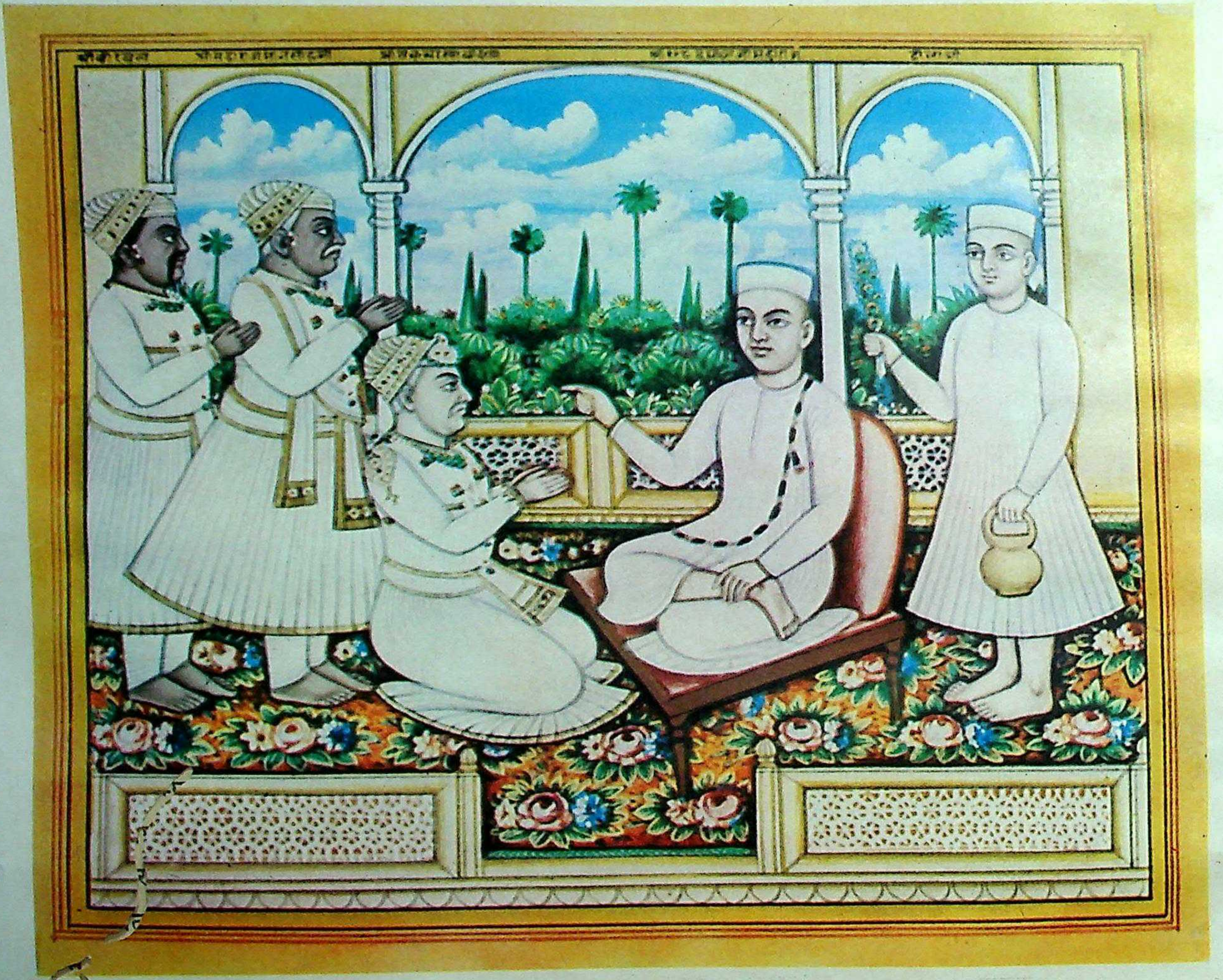

श्री पं विद्यापति
रबल

श्री राजा
मानसिंह

श्री बादशाह
अकबर

अनन्त विभूषित
श्री ब्रह्मऋषि
जगत् गुरू दादू दयाल
जो महाराज

श्री शिष्य
टीला जी

卐 ॐ 卐

॥ दोहा ॥

नासै विघ्न समूलतैं, श्री गनपति को नाम ।
जा चिंतन बिन व्है नहीं, देवनहू के काम॥

अनन्त विभूषित श्री ब्रह्मऋषि दादूदयाल जी की अनुभव बाणी

(टीका सहित)

॥ प्रथम गुरूदेव का अंग ॥

मंगलाचरण

(श्री राम जी सत्य)

श्री कहिये माया अतः शोभा ॥ तिस कर के युक्त होवैं, सो श्री राम कहिये और जिसके विषय योगीजन रमैं अथवा सबके विषय आप रमा होवैं, सो राम कहिए है । ॥ अतः रम्निति योगीनो यस्मिन्रामः ॥ सत्य कहिये त्रिकाल बाध्यत्त्वम् सत्यत्त्वम् ॥ सत्य सः सत्यं त्रिकाल सत्यम् ॥

साईं मेरा सत्य है, निरन्जन निराकार ।
नाम निरन्जन निर्मला, दूजा घोर अन्धार ॥

तीन काल में जिसका नाश नहीं होता वह सत्य है । अतः ऐसे श्री राम जी, जो सत्य स्वरूप हैं, वे हमारी रक्षा करैं । अतः श्री स्वामी दादूदयाल जी हमारी रक्षा करैं । श्री कहिये शोभा अथवा सम्प्रदा के आचार्य, और स्वामी कहिये अपनी महिमा करके, युक्त और संप्रदा के प्रवर्त्तक अथवा आश्चर्यवान होवैं, सो स्वामी कहिए है, और भक्ति ज्ञान विज्ञान रूप दान को देवै, सो दादू कहिए है और दया जिसके विद्यमान होवै, सो दयाल कहिए है । वे हमारी रक्षा करैं । चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षैत्रिय, वैश्य, शूद्र), चार आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बानप्रस्थ, सन्यस्थ) में जो संत हुए हैं, सो हमारी रक्षा करैं । अतः हमारे विघ्न हरैं ।

प्रश्नः- हरि गुरू संतों का आपने नाम मात्र चिंतन किया, परन्तु इस में नमस्कार का तो. उल्लेख है ही नहीं, तो मंगलाचरण की क्या सिद्धि हुई ?

उत्तरः- मंगलाचरण दो प्रकार का है। प्रथम :- स्वरूपात्मक। द्वितीयः - स्मरणात्मक। स्वरूपात्मक का अर्थ है - नमो आदि शब्दों से युक्त, जैसे :- नमो स्वन्नताये सहस्त्रमूर्तये०। स्मरणात्मक का अर्थ है - चितवनमात्र, जैसे :- रामायेनमः, कृष्णायेनमः। यद्यपि स्वरूपात्मक मंगल नहीं है, तो भी स्मरणात्मक मंगल से ही सर्व विघ्न दूर हो जाते हैं।

प्रश्नः- वे विघ्न कौन हैं ?

उत्तरः- वे तीन प्रकार के विघ्न हैं। (१) बुद्धि के :- जो अर्थ को न ग्रहण करे। (२) बाणी के : जो विकल्पादि, यानि कहै रोटी और निकल जाए टोटी। (३) काया के :- जो रोग आदि।

हरि गुरू सन्तों के स्मरणमात्र से ये तीन प्रकार के विघ्न नष्ट हो जाते हैं। ये लेखक का नमस्कार सिद्ध हुआ। श्री स्वामी दादू दयाल जी का अनुभवकृत, नतुभाषा भारतवत्त नहीं है, किन्तु स्वतन्त्र कृत है।

प्रश्नः- और दूसरे ग्रन्थों में सर्ग, अध्याय, काण्ड आदि करके विवेचन है, किन्तु यहां किस प्रकार ग्रन्थ का आरम्भ करते हो ?

उत्तरः- सो यहाँ अंग, राग, भजन, आदिक से आरम्भ किया है।

॥ प्रथम गुरू देव का अंग ॥

ग्रन्थकर्त्ता श्री दादू दयाल जी निर्विघ्नता के लिए मंगलाचरण करते हैं।

प्रश्नः- तहां मंगलाचरण में प्रमाण क्या है ?

उत्तरः- वेदों की श्रुत्ति, गीता आदि समृत्ति श्रेष्ठ पुरुषो का आचरण ही प्रमाण है। ग्रन्थ समाप्ति की कामना वाले पुरुष को, इसलिए मंगलाचरण करना चाहिए।

दादू नमो नमो निरंजनम् नमस्कार गुरू देवतः।
बन्दनं सर्वसाधवा, प्रणामं पारंगतः ॥ १ ॥

टीकाः- निरंजन कहिए माया आदि उपाधि रहित, ऐसा जो परमात्मा देव, ताको मेरा नमस्कार होवै और गुरूदेव जो ज्ञानमूर्ति हैं, उनको मेरा नमस्कार होवै। सभी साधु भूत, वर्तमान और भविष्यकाल में हुए उन सबको मेरी बन्दना होवै।

प्रश्नः– हरि गुरू संतों को करी जो प्रणाम, ताका क्या फल है ?

उत्तरः– जो सर्व विघ्नों से रहित ग्रन्थ की समाप्ति होवै, यही फल है ।

प्रश्नः– ग्रंथ जो हैं, उनके विषय तीन प्रकार का मंगलाचरण होता है । सो तो यहाँ नहीं है ?

उत्तरः– यहाँ भी है ।

प्रश्नः– सौ कौन है ?

उत्तरः– इष्ट समुच्चय, ग्रंथ समुच्चय, सर्व समुच्चय । श्री प्रमात्मनें नमः, श्री निरंजनाये-नमः, इत्यादि शब्दों का तात्पर्यं केवल निरंजन शब्द में ही दिखाते हैं । क्योंकि निरंजन का ही हमारे इष्ट है, इसलिए यह इष्ट समुच्चय जानिए और यह ग्रंथ निरंजन का ही प्रतिपादक है, ताथैं ग्रंथ समुच्चय जानिए । और 'निरंजन' इस नाम का सभी स्मरण करते हैं और मानते हैं, इसलिए यह सर्वसचमुचय भी जानिए, यह सिद्ध हुआ, और भी मंगलाचरण के भेद दिखलाते हैं ।

श्लोकः– अशीर्वाद नमस्कारं वस्तुनिर्देशभेदतः ।
मंगलंत्रिविधं प्रोत्तं शास्त्रादिनांमुखादिषु ॥

शास्त्र के आदि में, मध्य में, अन्त में, मंगल तीन प्रकार का होता है । आशीर्वाद कहिए, जैसे जै जै जै जगदीश तूं० नमस्कार मंगल, जैसेः- नमो नमो हरि नमो नमो० । वस्तुनिर्देश कहिए आत्मा का निर्णय, जैसेः- निर्मल तत्त निर्मलतत्त निर्मलतत्त ऐसा०। एक निरंजन शब्द में ही तीनों मंगलाचरण का चरत्ता अर्थ (वर्णन) अर्थ होता हैं, अर्थात् निरंजन को ही हम आशीर्वाद देते है, क्योंकि उससे नाम का दान प्राप्त हुआ है । और निरंजन को ही हम नमस्कार करते हैं, एवं निरंजन का ही निर्देश करते हैं, अर्थात निरन्जन का ही निर्णय करते हैं । इसलिए निरंजन ही के विषय, तीनों मंगलाचरण की सिद्धी होती है ।

शंका पूर्व पक्षीः- आप निरंजन को नमस्कार करते हो, उसमें तो मन बाणी का पहुंच नहीं है ? क्योंकि निरंजन तो सर्व माया प्रपंच से रहित है और मन बाणी तो माया के कार्य प्रपंच को ग्रहण करती है, उसको कैसे विषय करेगी अर्थात जानेगी ?

वेदमन्त्रः- यतोवाचो निव्रतन्ते अप्राप्ये मनसासहः ।

यह मंत्र भी ऐसे कहता है कि शब्द की प्रवृति चार प्रकार की होती है, गुण, क्रिया, जाति, संबन्ध । गुण कहिए, श्वेत रंग, पीला रंग वाला । क्रिया कहिए -पाक आदि अर्थात पकाई

हुई चीज । जाति कहिए-गौत्र ब्राह्मण आदि । सम्बन्ध कहिए बोध्य बोधक आदि, । और भी अनेक सम्बन्ध हैं- पुत्र, पिता, गुरू, शिष्य आदि । तातैं निरंजन स्वरूप में तो, यह कोई भी प्रवेश नहीं कर सकते ? उसमें आपका नमस्कार कैसे पहुंचेगा ?

उत्तर :- सुनो भाई ! ब्रह्म का स्वरूप शास्त्रों में, दो प्रकार का निरूपण किया है । प्रथम - विधिमुख करके, द्वितीय - निषेध मुख करके । यहां विधि मुख से वेद मंत्र बतलाता है ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मः । ब्रह्म सत्य है, ब्रह्म ज्ञान सवरूप है, ब्रह्म अनन्त है । दूसरा निषेध मुख करके, वेदमंत्र बतलाता है :

ननिरोधो नचोत्पत्तिर्नबद्धो नचसाधकः ।
नमुमुक्षुर्नवैरमुक्त्ता इत्त्येषाः परमार्थातः ॥

अब एक दम निषेध मुख करके तो कहा नहीं जाता ! इसलिए कहते हैंः -

श्लोक:- **अध्यारोप अपवादाभ्यां निषप्रपंच प्रपन्चतः ।**
कार्यो उपाधीर्जीवः कार्णोउपाधीर् ईश्वरः ॥

श्लोकः- **कार्यकारण तागंहित्त्वा पूर्ण बोधोवशीश्यते ।**

'निष प्रपंच' कहिए, प्रपंचरहित परमात्मा के बीच में, प्रपंच का आरोप करके, फिर निषेध करके कहते हैं कि कारण अविद्या, कार्य अन्तःकरण, इनका त्याग करके, पूर्ण बोधरूप आत्मा ही अवशेष रहता है ।

आत्मा सावेबवादी निरंजन शब्द में शंका करता है कि आपका निरंजन तो मिथ्या होता है ? क्योंकि निरंजन कहिए आकार रहित, सो तो मिथ्या होता है ?

कैसे ? आकाश पुष्पवत्, बांझपुत्रवत, शसासृंगवत । यद्यपि यह ठीक है तथापि मिथ्या तो, मिथ्या को कभी भी प्रकाशित नहीं करता है, उससे दूसरा कोई और प्रकाशक है । वह जो मिथ्या शब्द का प्रकाशक है, वही स्वरूप निरंजन का है, जिसमें मिथ्या का भी अध्यारोप होता है ।

ऐसे वेद कहता है :

सत्यस्य सत्यं प्राणावै सत्यं, तेषां सः सत्यं त्रीकाल सत्यं ।

सत्य कहिए प्राणादिकों का भी सत्य है, जिसका तीन काल में भी नाश नहीं होता ।

साईं मेरा सत्य है, निरन्जन निराकार०।

प्रश्न:- तो आप का भ्रम सिद्ध निरंजन होगा कैसे ? मरीचिका बारीवत (मृग तृष्णा का जल) सुक्ति रजतवत (सीपी), रज्जुभुंजगवत (रस्सी में सांप) इति, शंका ?

उत्तर:- कहते हैं कि भ्रम का स्वरूप तो भाई ! भ्रांति काल में प्रतीत होता है और भ्रांति के नाश के पश्चात् उत्तरकाल में प्रतीत नहीं होता और यहाँ तो निरंजन के लिए गीता भी कहती हैं

श्लोक:- कविं पुराण मनुसासितार, रणोरणीयां समनुस्मरेद्य ।
सर्वस्यधातारम् अचिन्त्यरूपम्, आदित्यवर्ण तमस: परस्तात् ॥

उस परम पुरुष के ये विशेषण हैं। वह परम पुरुष कैसा है ? वह परमपुरुष सर्वज्ञ, अनादि-सिद्ध, निमन्ता अर्थात् प्रेरक, सूक्ष्म से अति सूक्ष्म, सबका पालन करने वाला, अचिंत्य, शक्तिवान होने से एवं अप्रमाण महिमा और गुण प्रभाव होने से, अचिन्त्यरूप, आदित्यवत, स्वप्रकाशरूप अर्थात् ज्ञान स्वरूप, केवल शुद्ध ज्ञान, चेतन्य मात्र अनुभव करना चाहिए। अज्ञान से परे पूर्वोक्त पुरुष का अर्थात् शुद्ध ब्रह्म का जिज्ञासु स्मरण करता है। वह उसी दिव्य परमपुरुष को प्राप्त होता है, इसलिए निरंजन भ्रम रूप नहीं है।

शंका:- कि आपका निरंजन आश्रय आश्रितवान होगा ! जैसेः- यंत्र रागवत, वस्तु रूप भी है और आकार रहित भी है। तो भी जैसे आश्रय बिना प्रगटता होती नहीं , वैसे ही आपका निरंजन होगा ?

समाधान:- किन्तु आश्रय आश्रितभाव तो परिछिन्न वस्तु, अर्थात् नश्वर वस्तु होती है और परमात्मा को तो अनन्त करके कहते हैं, अर्थात् देश काल वस्तु प्रच्छेद रहित है। ऐसे परमात्मा को वेद कहता है।

सर्वाधारं निराधारं०। इति

दादू निराधार निज देखिये, नैनौं लागा बन्ध।
तहां मन झूलै आतमा, अपने साईं संग ॥

शंका:- तो हमने जाना कि आपका निरंजन अतज प्रमाण का विषय है, जैसेः-बट प्रेतवत (बड़ में भूत)

समाधान:- अतज प्रमाण तो कथन श्रवण मात्र को ही विषय करता है। वस्तु के स्वरूप को विषय नहीं करता है, और यहाँ तो वस्तु विद्यमान (प्रगट) है, जो ज्ञानी को अनुभव होता है।

वेदवाक्य:- आत्मावारे दृष्टव्य श्रोतव्य०। इति

दादू अविनासी अंग तेज का, ऐसा तत्त अनूप।
सो हम देख्या नैन भर, सुन्दर सहज स्वरूप॥

इस वास्ते अतज प्रमाण का विषय नहीं है पूर्व पक्षी ने जो 'विकल्प' कहिए प्रश्न किए, उसका समाधान करके, अब जो निरंजन का स्वरूप है सो कहते हैं :--

परम तेज परापरं, परम जोति परमेश्वरम्।
स्वयं ब्रह्म सदई सदा, दादू अविचल अस्थिरं॥

अनेक शब्द जिनका प्रतिपादन अर्थात् वर्णन करते हैं, ऐसे निरंजन को हमारी नमस्कार होवै।

प्रश्नः— उस निरंजन की प्राप्ति किस प्रकार से होती है ?

उत्तरः- निरंजन की प्राप्ति का हेतु गुरू उपदेश है। किन्तु जैसे समुद्र के पार जाने के साधनों में जहाज ही एक सुन्दर साधन है, वैसे ही परमात्मा को जानने के साधनों में श्रेष्ठ साधन गुरू ज्ञान ही है। इस वास्ते गुरू को नमस्कार करते है।

शंकाः— गुरू के लक्षण कैसे हैं।

गुरू लक्षण

समाधान:— अखंड मंडलाकारं व्याप्तंयेनचराचरं।
तत्पदं दर्शितंऐन तस्मै श्री गुरूवेनमः॥

अज्ञान त्तिमरान्धस्य ज्ञाना अन्जन शलाकया।
चक्षुरून्मीलितंऐन तस्मै श्री गुरूवे नमः॥

दादू गुरू गरवा मिला, तावैं सब गम होइ।
लोहा पारस परस्तां, सहज समाना सोइ॥

दीन गरीबी गही रहा, गरवा गुरू गंभीर ।
सुक्ष्म शीतल सुरती मति, सहज दया गुरु धीर ॥

सोधी दाता पलक में, तिरे तिरावन जोग ।
दादू ऐसा परम गुरू, पाया किहि संजोग ॥

सतगुरू ऐसा कीजिए, राम रस माता ।
पार उतारै पलक में, दर्शन का दाता ॥

ऐसे सतगुरू जिनका अहंकार एवं मोह दूर हो गया है और शास्त्र श्रोत्री ब्रह्मनिष्ट अनेक लक्षणयुक्त जो गुरूदेव हैं, ऐसे गुरूदेव को मेरी नमस्कार है । तत्पश्चात्, सब संतों को हमारी बन्दना है ।

शंका:-वे सन्त कैसे हैं ?

संत लक्षण

समाधान :-

श्लोक :- निर्मानमोहा जित संग दोषा अध्यात्मनित्या बिनिबृत कामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ता सुखदुखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमब्ययंतत्तः ॥

दूर हो गये हैं मोह और मान जिनके, जीत लिया है संग का दौष जिन्होंनें, वेदान्त के श्रवण मनन विचार में सदैव लगे रहते हैं और समस्त कामनायें इस लोक परलोक की नष्ट हो चुकी हैं चित से जिनकी, सुख दुख आदि द्वन्द्वों से छूटे हुए ज्ञानी संत, आत्मतत्व के जानने वाले, उस निर्विकार पद को प्राप्त होते हैं ।

श्लोक:- अक्रोध वैराग्य जितैंईन्द्रियत्वं, क्षमा दया सर्वजनप्रियत्वं ।
निर्लोभदातां भय सोक हिना, ज्ञाना प्रलबद्धा दशलक्षणानी ॥

घट की भान अनित सब, मन की मेट उपाध ।
दादू परहर पंच की, राम कहैं ते साध ॥

सोई साधु शिरोमणी, गोबिन्द गुण गावै ।
राम भजै विषया तजै, आपा न जनावै ॥

मिथ्या मुख बोलै नहीं, पर निन्दा नाँहि ।
औगण छाडै गुण गहै, मन हरि पद माँहि ॥

निर्बैरी सब जीव से, पर आतम जानै ।
सुखदायी समता गहै, आपा नहीं आनै ॥ [इत्यादिक]

अति कृपालु द्रोह नहि जानै, क्षमावंत अरू सत्य बखानै ॥

अनेक देवी, सम्पत्ति के लक्षणों से पूर्ण हैं, उन संतों को हमारी बन्दना है ।

शंका :- ऐसे हरि गुरु सन्तों को नमस्कार करी, इसका क्या प्रयोजन है ?

समाधान :- सो कहते हैं कि सर्व विघ्नों की निवृत्ति और निर्विघ्नता पूर्वक ग्रन्थ की समाप्ति होती है ।

शंका :- ईश्वर सर्वज्ञ है एवं जीव अल्पज्ञ है, तो फिर आप ईश्वर से अभेद (एकरूप) करके गुरू को कैसे कहते हो ?

समाधान :- यद्यपि जीव ईश्वर का व्यावहारिक भेद तो है, परन्तु परमार्थिक दृष्टि से भेद नहीं है, अर्थात एक है । इसलिए जान लिया है जिन गुरू ने अपना लक्ष्य रूप, वे ब्रह्म से एक ही हैं, अलग नहीं हैं ।

वेदवचन :- ॥ ब्रह्मवित्त ब्रह्मयुभवत्ति ॥

श्लोक :- यस्येदेवः पराभक्त्ति, यथा देवः तथा गुरौ ।
तस्येते कथीता हर्ता प्रकाशयन्ते महात्मनः ॥

इस लिए ब्रह्मवेता के विषय शंका नही बनती ।

प्रश्न :- जो ग्रंथ होते हैं सो चार अनुबन्ध युक्त होते हैं और जिस ग्रंथ में अनुबन्ध नहीं होते, सो उन्मत प्रलाप अर्थात पागल का बकना कहा जाता है इसलिए यहां अनुबन्ध का उल्लेख तो दिखाई नहीं पड़ता ।

उत्तर:- किन्तु यहां भी अनुबन्ध है ।

प्रश्न :- सो कैसे हैं ?

उत्तर :- विषय अधिकारी, संबन्ध और प्रयोजन, इन चार को अनुबन्ध कहते हैं । विषय कहिये जीव ईश्वर की एकता । सो वेद के बचन हैं ।

जीव ब्रह्म सेवा करै, ब्रह्म बराबर होइ ।
दादू जाने ब्रह्म को, ब्रह्म सरीखा सोइ ॥
जीव ब्रह्म की एकता, कहत बिषय जन बुद्धि ।
तिनको जो अन्तर लहै, ते मति मन्द अबुद्धि ॥

यह विषय है जिसको यह ग्रन्थ विषय करै (बतावै) सो ब्रह्म तो प्रतिपाद्य है और ग्रन्थ प्रतिपादक है । सोई प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है ।

अनुभव बाणी अगम को, ले गई संग लगाई ।
अकह कह अगह गह, अभेद भेद लहाई ॥

दोहा :- प्रतिपादक प्रतिपाद्यता ग्रंथ ब्रह्म सम्बन्ध ।
प्राप्य प्रापकता कहत, फल अधिकृत्त को फन्द ॥

(अधिकारी का लक्षण)

साईं सौं सांचा रहै, सतगुरू सै सूरा ।
साधों सौं संमुख रहै, सो दादू पूरा ॥

दोहा :- प्रथम विवेक वैराग्य पुनि, समाधि खट संपत्ति।
कहे चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चव साधन चत्य॥

हंस गियानी सो भला, अंतर राखै एक।
विष में अमृत काढ़ ले, दादू बड़ा विवेक॥

दोहा :- अविनाशी आत्म अचल, जगता तै प्रतिकूल।
अैसो ग्यान विवेक है, सब साधन को मूल॥

(वैराग्य लक्षण)

सूक्ष्म गुण घट माहिं ले, तिन को कीजे त्याग।
सब तज राता राम सौं, दादू यह वैराग्य॥
ब्रह्म लोक लौं भोग जो, चहै सबन को त्याग।
वेद अर्थ ज्ञाता मुनि, कहत ताहिं वैराग॥

(षट संपत्ति)

समदम श्रद्धा तीसरी, समादान उपराम।
छठी तितीक्षा जानिये, भिन्न भिन्न ये नाम॥

समाधान:- सम कहिए बाहर के बिषयों का त्याग और अन्तर विषय वासनाओं का त्याग।

जब अन्तर उरझा एक सौं, तब थाके सकल उपाय।
दादू निश्चल थिर भया, तब चल कहीं न जाय॥

दोहा -: मन विषयन तें रोकनो, समतिही कहत सुधीर।
इन्द्रियगन को रोकनो, दम भाखत बुद्धिवीर॥

और दम कहिए बाहर विषयों से इन्द्रियों का रोकना।

कच्छिब अपने कर लिए, मन इन्द्रि निज ठोर।
नाम निरंजन लागि रहु, दादू पर हर और॥

उपरती कहिए सब कर्मों से उपराम।

दादू सब बातन की एक है, दुनियां से दिल दूर।
साईं सेती संग कर, सहज सुरति लय पूर॥

चौ० - साधन सहित कर्म सब त्यागै, लखि विषसम विषयन ते भागै।
दृग नारी लख व्है जी गलाना, यह लक्षण उपराम बखाना॥

तितिक्षा कहिए शीत उष्णादि का सहन करना।

माँहि थैं मन काढ कर, ले राखै निज ठोर।
नाम निरंजन लागी रहु, दादू परहरि ओर॥

श्रद्धा कहिए गुरू शास्त्र में विश्वास।

सतगुरू कह सो कीजिए, जे तूं शिष सुजान।
जहाँ लाया तहाँ लागि रहु, बूझै कहा अजान॥

दो० - वेद वाक्य गुरू वाक्य सत्य, श्रद्धा अस विश्वास।
समाधान ताको कहत, मन विक्षेप को नास॥

समाधान कहिए चित्त की एकाग्रता श्रवणादि में।

प्रेम पियाला राम रस, हम को भावै येह।
ऋद्धि सिद्धि मांगै मुक्ति फल, चाहे तिन को दे॥

मुमुक्षु कहिए मोक्ष की कामना वाला।

तुम हरि हीरदय हेत सौं, प्रगटहु परमानन्द।
दादू देखै नैन भर, तब केता होई आनन्द॥

दोहा :– ब्रह्म प्राप्ति अरू बन्द कि, हानी मोक्ष को रूप।
ताकि चाह मुमुक्षुता, भाखत मुनिवर भूप॥

ऐसे चार साधनों करके सहित जो होवे, वह अधिकारी कहिए है। अधिकारी नाम ग्रन्थ पढ़ने वाला। यहां निरंजन शब्द करके ही, जीव ब्रह्म की एकता का विषय नाम वर्णन किया है। 'परणामं पारंगतः' इत्यादि शब्द करके परमात्मा की प्राप्ति और सम्पूर्ण दुखों की निवृत्ति रूप दोनों प्रकार का प्रयोजन कहिए मतलब है। सो कहते हैं।

सदा लीन आनन्द में, सहज रूप सब ठोर।
दादू देखे एक को, दूजा नांहि ओर॥

प्रश्नः–अर्थात् अधिकारी संबन्ध आदिक तो हमने जाने, परन्तु आपके मंगल करने में 'नमो, नमस्कार, बन्दना प्रणाम' इत्यादिक में पुनरूक्त दोष आता हैं, जैसे चाबे का चबाना, वैसा आपका कहना है।

उत्तरः–कहते हैं कि भाई!

दोहा :- हरष करष आमरस पुनी, भय दीनता युक्त।
अस्तुति निन्दा बाद में, दोष नहिं पुनरूक्त॥

और हे भाई! नमो, नमस्कार बन्दना, प्रणाम कहने का और भी प्रयोजन है। इससे यहां निरपक्षता को भी जान लेना। (नमस्कार ब्राह्मणों का, बन्दना जैनियों का, प्रणाम बैरागी आदि साधुओं का शब्द है। ब्रह्मऋषिदादू जी का किसी से भी फर्क नहीं था। उनकी दृष्टि में सब समान हैं।) ऐसे सब प्रकार समाधान करके मंगलाचरण के बाद में प्रथम यानि ग्रन्थ की शुरुआत में दिखलाते हैं।

(गुरू प्राप्ति और फल)

दादू गैब मांहि गुरूदेव मिल्या, पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धर्‌या, दिक्षा अगम अगाध ॥ २॥

गैब कहिए अकस्मात् राह में अचानक, अनायास अहंकार रूपी मस्तक अर्थात् सिर पर करुणामय कहिए उपदेश रूपी हाथ रखा। अगम कहिए छः प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान अर्थापत्ति अनुपलब्धि) से अप्राप्य, अगाध, अथाह, अतलस्पर्शी, अगम अर्थात् मन बुद्धि द्वारा अलक्ष्य अगाध, त्रिगुणातीत, माया से पवित्र, अकस्मात् श्री स्वामी दादू दयाल जी महाराज ब्रह्मऋषि को बालपन में वृद्ध स्वरूप हरि भगवान के दर्शन हुए, जिनसे आत्मज्ञान रूपी उपदेश मिला। कृपालु गुरूदेव प्रभु ने आर्शीवाद देकर अगम अगाध यानि निर्गुण ब्रह्म का नाम स्मरण रूप उपदेश दिया। जिसके प्रभाव से अगम अगाध जो जीवन मुक्ति रूप फल है सो प्राप्त हुआ।

दोहा :- बाल समय दर्शन दियो, भगवत बूढण होय।
नगर अहमदाबाद में, दादू भजतू मोहि ॥ २॥

सवैया :- बालक खेलत देख मैदान में, वृद्ध स्वरूप हरि नैं बनायो।
बाल सफेद कियो तन दीरघ, बाल सु आनरू बैन सुनायो।
ओर भयभीत वे भाज गए जब, दादू जी दौड़ समीप सूं आयो।
पान, पईसा के लाथ दया करि, होई मुदित तामूल जु लायो।
ब्रह्म प्रकाश उदय भयो भान जू, दादू दयाल दूनी मध्य आयो॥ २॥

दृष्टान्त :—संवत् सोलह सौ सात से ग्यारह तक ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज ने नगर के बालक बालिकाओं को साथ लेकर कांकरिया तालाब अहमदाबाद में हरि कीर्तन स्वयं किया और कराया। अचानक भगवान ने प्रगट होकर देखा। दुबारा ग्यारह साल की अवस्था में ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी को दर्शन हुआ और उपरोक्त दृष्टान्त अनुसार दीक्षा दी।

दोहा :- ज्यों गुरू दादू को मिले, त्यूं नानक यधू राय।
काना को गैबहि मिले, भाना रघुगण गुरू पाय॥

दृष्टांत:– जैसे ब्रह्मऋषि जगत्गुरू दादूदयाल को दर्शन हुए, वैसे ही गुरू नानक देव जी को हरि दर्शन देकर 'वाहि गुरू' का उपदेश दिया। राजा यधू को दत्तात्रीय महाराज वैसे ही दर्शन देकर उपदेश किया। काना और भाना, भाना सेठ था एवं काना मुनीम था। नगर के किनारे एक नदी बहती थी। नदी के दूसरे किनारे एक सेठ का बगीचा था। संत चतुर्मास के लिए बगीचे में ठहरे हुए थे। भाना रोज स्वयं भोजन लेकर जाया करता था। चतुर्मास पूरा होने को आया। संत के मन में यह भावना हुई कि आज भाना को आशीर्वाद देंगें। उस रोज वर्षा बहुत भारी हुई। नदी में पानी बहुत चढ़ा हुआ था। भाना डर गया। मुनीम काना ने भोजन लेकर नदी पार की और संत की कुटि पर पहुंचे। संत ध्यान में थे। संत जी बोले, कौन है ? मुनीम ने कहा मैं काना हूं। संत जी बोले-भाना। परन्तु उसने कहा, मैं काना हूं। तीसरी बार संत जी ने कहा-काना ही सही, इतना सुनते ही काना के दिव्य चक्षु खुल गए। ऐसे ही राजा रघू को जड़भर्त ने उपदेश देकर मुक्त किया (श्री भागवत०)

दोहा :- गैबी मारग बिन जतन, ताका अद्‌भुत खेल।
फल टूट धरती पर्‌यो, लियो पंगु मुख झेल॥

दृष्टांत :– एक पंगुल मनुष्य जामुन के वृक्ष के नीचे सीधा सोया हुआ था। अनायास उसको उबासी आई। ऊपर से एक जामुन का फल टूट कर, उस मनुष्य के मुहँ में जा गिरा। वह बहुत खुश हुआ, क्योंकि पंगुल को कोई फल खाने की इच्छा थी नहीं, परन्तु वह जामुन अचानक से उसके मुख में जा गिरी। इसको गैबी मार्ग कहते हैं। ऐसे ही ईश्वर प्राप्ति होवै।

दोहा :- निमित्त निगम आगम अगम, अनवंच्छित हो जाय॥
राघौराम रसायनी, मिले गैब में आय॥ २ ॥

दृष्टांत :– एक नगर में सुनार भक्त रहता था। वह संतों की सेवा करता था। उसके मन में सोना बनाने की इच्छा थी। वह संतों से सोना बनाने के बारे में यह आम प्रश्न करता था कि सोना कैसे बनाया जाय ? एक संत ने उसे बताया कि आप रोज तांबा गलाकर उस में नई नई बूंटी लाकर निचोरा करो। कभी उसमें सोना बनाने वाली बूंटी भी आ जाएगी। कुछ दिन पश्चात् वह

सुनार पहाड़ों में चला गया। वह वहां भट्टी बनाकर तांबा गलाने लगा। जहां भट्टी बनाई थी, वहीं पर सोना बनाने की बूंटी लगी थी। उसे इस बूंटी के बारे में पता नहीं था। पीछे से एक संत आ गये। संत जी ने विचार किया :- 'यह आदमी देखो कितना चतुर है'। इसने तो बूंटी के साथ ही भट्टी बनाई है ताकि दूर नहीं जाना पड़े। संत जी बोले "निचोड़ दे"। भक्त, संत जी के दर्शन करके बोला "गुरू के सामने चेला क्या निचोड़ दे, आप ही कृपा करो"। संत जी ने बूंटी के पत्ते तोड़ कर दोनों हाथों से निचोड़ा। कठोती में रस पड़ते ही सोना बन गया। न तो संत जी को इच्छा थी कि आज सोना बनाना है और न ही उस सुनार को भान था कि आज सोना बन जाएगा। अनायास यह काम हुआ, इसको गैबी मारग कहते हैं। ऐसे ही ब्रह्मऋषि दादू दयाल को गैब में हरि-दर्शन हुआ।

जो बिना परिश्रम ही गुरूदेव मिले हैं तो उपकार भी कम ही हुआ होगा? इसका समाधान करते हुए, श्री दयाल जी महाराज सहज उपकार का वर्णन करते हैं।

दादू सतगुरू सहज में, कीया बहु उपगार।
निरधन धनवंत करि लिया, गुरू मिलिया दातार ॥३॥

निर्धन - दरिद्र तृष्णामय अन्तःकरणवाला।

कोवा दरिद्रोहि विशाल तृष्णः, श्रीमान्स्च कोयस्य समस्ततो सः॥

धनवन्त कहिए धनवान अर्थात् संतोषमय धन देकर, धनवान बना लिया।

टीका :- सतगुरू भगवान ने बिना फल की इच्छा के ही अनेक उपकार किए हैं। जिनकी महिमा नहीं कही जा सकती है। मोक्षफल के देने वाले दातार गुरूदेव ने, भक्ति ज्ञान वैराग्य आदिक से शून्य निर्धनता को दूर कर आत्म ज्ञान देकर धनी बनाया है।

दोहा :- हंस हंसनी पैपीयो, धर्‌यो धर्‌या की आस।
रामरतन धन प्रगट्यों, सु कहि जगजीवनदास ॥३॥

दोहा :- सिर चढ़ाई धरी गुहा में, प्रगट कीयो सुस्थान।
कहि जगजीवन दरीद्र, दूर कीयो गुरूज्ञान ॥ ३ ॥

दृष्टान्त :-एक नगर से साहूकार लोग विदेश कमाने के लिए निकल पड़े। उस नगर में एक वैश्य का लड़का रहता था। वह संतों का सेवक था। वह लड़का भी माता पिता के अदेशानुसार उनके साथ चल पड़ा। सभी लोग जहाज में बैठकर रवाना हुए। रास्ते में एक टापू पर जहाज रुका। सब लोग अपनी दिनचर्या करने लगे। वह लड़का स्वभाव अनुसार संतों की खोज में निकला। जंगल में एक संत मिल गए। नमस्कार कर, वह संत जी के पास बैठ गया। गांव वाले साहूकार जब वहां से रवाना होने लगे तब, उस लड़के को भी चलने को आह्वान किया। परन्तु उसने चलने से मना कर दिया। उसने कहा—मैं संत सेवा करूगां। संत जी ने उसे एक गाय दिलाई। जंगल में चराने लगा और दूध निकाल कर संत जी को पिलाता एवं स्वयं पीता। एक रोज संत जी बोले कि आप एक पाव दूध समुद्र के किनारे एक कुंडे में रख आया करो। तब वह लड़का दूध रख कर आया, तो वहाँ हंस हंसनी आया करते थे। उन्होंने कुंडे में मोती डाल दिए और दूध पी लिया। हंस हंसनी उड़ गए। वह दूसरे दिन दूध डालने गया तो उसको कुंडे मे चार मोती मिले। वह ले आया और कुंडे में दूध डाल आया। वह मोती लाकर, गुरू जी को बताये। गुरू जी बोले—इसी प्रकार रोज ले आया करो। वह लड़का संत जी के आदेशानुसार गाय के गोबर की चार थापड़ी बनाता। उनमें से दो थापड़ी में एक एक जोड़ा मोती का रख देता। बहुत सी मोतियों की थापड़ियां हो गई थीं। कुछ समय के बाद उन साहूकारों का जहाज वापिस लौटा। वह जहाज उसी टापू में रुका। सभी साहूकारों ने उस लड़के को गांव चलने को कहा। उस लड़के ने गूरू जी से पूछा। गुरू जी बोले—सौम्य ! आप गांव अवश्य जाओ। परन्तु जहाज में एक कमरा किराए पर ले लो। उस कमरे में अपनी की हुई कमाई वाली थापड़ियां अपने घर ले जाओ। शिष्य ने वैसा ही किया। कमरे के भीतरी हिस्से में मोतियों वाली थापड़ियां तथा बाहर के हिस्से में खाली थापड़ियां लगा दी। कमरे का किराया एवं रास्ते का खर्चा भी गुरू जी ने उसे दिलबा दिया। गुरु को प्रणाम कर, वह लड़का जहाज में सवार हो गया। गांव पहुंच कर जब राजा के दरबार में सभी लोग राजा से मिलने और नजर करने गए, तब यह लड़का भी दो मोतियों वाली थापड़ी लेकर चल पड़ा। राजा के सामने किसी ने हीरा, किसी ने मोहर वगैरा नजर किया, परन्तु इस लड़के ने दो थापड़ियां नजर कीं। राजा ने जब थापड़ियों को तुड़वाया, तो एक एक में दो दो नग निकल पड़े। सब चकित हो गए, क्योंकि ये नग उन हीरे जवाहरातों से कहीं ज्यादा कीमत वाले थे। क्योंकि यह संत सेवा और ईश्वर भक्ति का परिणाम था। तत्पश्चात् सभी नगरवासी ईश्वर के भक्त तथा संतों के सेवक बन गए।

इस साखी में मध्यम शिष्य का निरूपण किया गया है। मध्यम शिष्य को 'गुरू प्राप्ति का मार्ग, विहगंम है। जैसे पक्षी अपने प्रयास से भोजन प्राप्त करता है, वैसे ही शिष्य गुरू को खोज द्वारा प्राप्त करें।

दादू सतगुरू सूं सहजै मिल्या, लीया कंठि लगाइ।
दया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥४॥

टीका :- उन ब्रह्मनिष्ट सतगुरूओं से "सहजै" कहिए स्वभाव से ही हम मिल गये। उन्होंने अपनी दया करके, अपने उपदेशरूपी कण्ठ से हमें लगा दिया। उन दयालु गुरू ने हम पर ऐसी दया करी कि तत्काल ही हमारे अन्तःकरण में ज्ञानरूपी दीपक प्रदीप्त हो गया। अर्थात् जिनने भक्ति ज्ञान आदि दान से अज्ञानी जीव को आत्मज्ञानी बना लिया, और सत्गुरू कृपा से सुषुप्त अन्तःकरण, आत्मज्ञान रूपी प्रकाश से प्रकाशित हो गया।

दादू देखु दयाल की, गुरू दिखाई बाट।
ताला कुंची लाई कर, खोले सबै कपाट ॥५॥

टीका :- बाट कहिए राह अर्थात् सन्मार्ग, और कर्मबन्धन, ही मानो किवाड़ हैं और उनके अज्ञान ही ताला रूप है। सतगुरू ने चाबी कहिए जो रामनाम उपदेश है, उसमें लगाकर एकाग्र करके, जिज्ञासु को भव बन्धन से मुक्त कर दिया है, अर्थात् चाबी अनासक्ति उपदेश देकर, भ्रम संशय, मिथ्याज्ञान, तर्क अज्ञानरूपी कपाट खोल दिए हैं।

दोहा :- सकल कर्म ताला भया, जीव जङ्या तामांहिं।
रज्जब गुरू कूंची बिना, कबहु खुलि है नांहिं ॥५॥

दोहा :- त्रिगुन रहित कूँची गुरू, ताला त्रिगुन शरीर,
जन रज्जब जीव तो खुलै, जो योग्य मिलै गुरू पीर॥५॥

(सतगुरू समर्थाई)

दादू सतगुरू अंजन बाहिकर, नैन पटल सब खोले।
बहरे कानों सुणने लागे, गूंगे मुख सौं बोले ॥६॥

टीका :- सतगुरू ने ज्ञानरूपी अंजन से कहिए सुरमा से, नेत्रों के मलस्वरूप माया के आवरण को हटा कर, प्रभु के दर्शन योग्य दृष्टिवान बनाया। कानों के बहिरापन को मिटा करके प्रभु की महिमा सुनने की कानों में रुचि पैदा की। जो प्रभु भजन में नहीं लगे थे, उनमें बल, तत्व शक्ति प्रभु की महिमा बखान करने की प्रवृत्ति, उत्पन्न की।

(ज्ञानोपदेश नेत्र-बुद्धि की ज्ञान विज्ञान प्रवृत्ति पटल, भ्रम संशय। बहरे कहिए—धन, विद्या, रूप, बल, पद, जाति ऐसे मद वाले। गूंगे कहिए—हरि स्मरण विहीन, बाणी बोलने वाले।)

दोहा :-
सतगुरू अंजन आंजिया, भर ज्ञान सलाई।
ज्यों को त्यों ही दीखियो, बखना कूँ भाई ॥ ६ ॥

सतगुरू दाता जीव का, श्रवन सीस कर नैन।
तन मन सौंज सवारि सब, मुख रसना अरू बैन ॥ ७ ॥

टीका :- इस प्रकार कान, सिर, हाथ, मुख बाणी आदि जो तन मन की सौंज कहिए सामग्री है; उन्हें सुन्दर बनाकर ईश्वर सन्मुख करके, कृपासिन्धु सतगुरू ने जीव को जीवन अमरत्व का ज्ञान दिया है।

राम नाम उपदेश करि, अगम गवन यहु सैन।
दादू सतगुरू सब दिया, आप मिलाये अैन ॥ ८ ॥

टीका :- दयालु सतगुरू ने राम नाम का उपदेश करके, न जान सकने योग्य, निराकार ब्रह्म को साक्षात्कार करने का भक्ति मार्ग बताया है। कृपालु सतगुरू जीव को जन्म जन्मान्तरों के पापों से मुक्त करके, उसके जीवन को सफल बनाया है।

दोहा :-
सुन्दर सतगुरू यों कह्यौ, सकल शिरोमणि नाम।
ताको निस दिन सुमरिये, सुखसागर सुखधाम ॥ ८ ॥

सतगुरू कीया फेरि कर, मनका औरै रूप।
दादू पञ्चों पलटि कर, कैसे भये अनूप ॥ ९ ॥

टीका :- सतगुरू ने ज्ञानउपदेश द्वारा, जीव के सांसारिक विषयों में संलग्न मन का, ओर ही रूप बना दिया है, अर्थात् ब्रह्म परायण कर दिया है । यद्यपि सतगुरू ने तो कृपा करके, जिज्ञासु के मन को निर्मल बना दिया है, किन्तु इन्द्रियों के सम्बन्ध से मन पुनः मैला हो जाएगा । उत्तर में, सतगुरू उपदेश करते हैं कि 'दादू पंचों पलटि कर' अर्थात् पांचो जो ज्ञानेन्दियां हैं, इन सभी इन्द्रियों को पलटकर कहिये बाह्य विषयों से बदलकर, आत्म सन्मुख करके गुरूदेव ने, जीव को परमात्मा स्वरूप बना दिया है ।

दोहा :- मन को साधन एक है, निसदिन ब्रह्म विचार।
सुन्दर ब्रह्म बिचार तैं, ब्रह्म होत नहीं बार ॥९॥

साचा सतगुरू जे मिलै, सब साज संवारै ।
दादू नाव चढ़ाई कर, ले पार उतारै ॥१०॥

टीका :- जो कदाचित् सौभाग्य से यदि आत्मानुभवी सतगुरू की प्राप्ति हो जाये, तो उनकी कृपा से जीव के सम्पूर्ण कर्त्तव्य पूर्ण हो जाते हैं, क्योंकि सतगुरू ही रामनाम रूपी नौका में बैठा करके, अज्ञानी जीव को संसार सागर के दुःख बन्धन से मुक्त करते हैं ।

दोहा : सुन्दर सतगुरू जगत में, पर उपकारी होई।
नीच ऊंच सब उधरै, शरण जु आवै कोई ॥१०॥

हरि गीतक छंदः- जो आइ शरणहि होइ प्राप्ति, ताप तीन तन की हरै ।
पुनि फेर बदलै घाट उनको, जीव तैं ब्रह्महि करैं ॥
कछु ऊंच नीच न दृष्टि जिनके, सकल को विश्राम है।
दादू दयाल प्रसिद्ध सतगुरू, ताहि मोरि प्रणाम है ॥१०॥

सतगुरू पसु मानस करै, मानस थैं सिध सोइ।
दादू सिध थैं देवता, देव निरंजन होइ ॥११॥

टीका:- दयामूर्ति सतगुरू दृढ़ मति (निश्चल बुद्धि) जिज्ञासु को प्रथम विषयों की दासता रूप पशुता से मनुष्य बनाते हैं। द्वितीय स्त्री, पुत्र, पौत्र आदि की कामना वाले मनुष्य को ज्ञान उपदेश द्वारा सिद्ध बनाते हैं। अर्थात् राम नाम में एकाग्र बुद्धि करते हैं। तत्पश्चात् चमत्कार अहंकार की सिद्धाई से, देव अर्थात् सगुण या निर्गुण ब्रह्म में एकाग्र करते हैं। जिससे वह असीम ऐश्वर्य अनुभव करने लगता है, किन्तु सिद्ध और देव पद भी मायिक ही हैं, अर्थात् मायावी हैं। तो सतगुरू की अति सामर्थ्य क्या हुई ? इस शंका का समाधान करके कहते हैं कि "देव निरंजन होई" अर्थात् सर्व सामर्थ्यावान सतगुरू जिज्ञासु को देव पद से उपदेश द्वारा, निरंजन निराकार स्वरूप भी बना लेते हैं। अतः सतगुरू ऐसे समर्थ हैं।

सर्व सामर्थ्यवान सतगुरू पशु को भी कृपा करके, राम नाम उपदेश द्वारा मुक्त करते हैं, जैसे :- बनजारे के बैलों और करोली के प्रदेश में गायों का उद्धार किया है। और मनुष्यों को भी राम नाम के उपदेश द्वारा, संसार बन्धन से मुक्त किया है। जैसे :- रज्जब जी, बखना जी, सुन्दरदास जी आदि का प्रसंग है। ज्ञानोपदेश द्वारा सतगुरू सिद्धों को भी मुक्त करते हैं, जैसे आमेर में काबुल के घोड़ों को देखते हुए, दो सिद्धों का प्रसंग है।

दोहा :- दोइ सिद्ध स्वामी पै आयै, घोड़ा देखरू मन मुसकाये।
स्वामी कहैं कहां चित दीन्हां, नीले कान सु आगै कीन्हा ॥११॥

दृष्टान्त:- दो सिद्ध उत्तराखंड से सुरति रूपी शरीर द्वारा, आमेर में दादू जी की गुफा में पहुंचे। दादू जी ध्यानावस्था में थे। वे दोनों सिद्ध सुरति से काबुल में, दौड़ के घोड़े देखने लगे और यह विचार किया कि इस आनन्द को हम ही देखते हैं, दादू जी नहीं देख रहे हैं। तब दादू दयाल जी ने उन सिद्धों को उपदेश किया :- मायिक पदार्थो में क्या दिल दिया ? और दिया तो भी ठीक से देखो। आगे कौन सा घोड़ा है ? सिद्धों ने कहा दोनों बराबर हैं। दादू जी ने कहा, नीले घोड़े के कान आगे हैं। सिद्धों का अहंकार यह जान कर निवृत हो गया, और ब्रह्मऋषि के चरणों में गिर पड़े। इसी प्रकार देवताओं को भी कृपालु सतगुरू राम नाम के प्रभाव से मुक्त करते हैं। जैसे करडाले में प्रेत का आख्यान आता है। मनुष्यों की चार श्रेणी मानी हैं—पामर, विषइ, जिज्ञासु और मुक्त। शास्त्रों में पहले पामर श्रेणी के मनुष्य को उपदेश का अधिकारी नहीं माना जाता है। तथापि श्री सतगुरू की अति कृपा से ज्ञानोपदेश द्वारा, तीनों श्रेणी के जिज्ञासुजनों को मुक्त करते हैं, यही सतगुरू की अति सामर्थ्य है।

दोहा :- भोज नृपति को देखि के, कन्या ढ्क्यों न शिष।
नृप पूछो गुरू पै गयो, मनुष्य लक्षण बत्तीस ॥११॥

R
८९0
मू. ४६ द
3925

दृष्टान्तः- एक समय राजा भोज दौरा करके अपने नगर में वापिस लौट रहे थे। चार कन्याएं कुंए पर खड़ी थी। राजा को देखकर तीन लड़कियों ने सिर ढक लिया। उनमें से एक ने नहीं ढका। बाकी तीन सहेलियों ने, उसे भी सिर ढकने को कहा, क्योंकि राजा आ रहा है। उसने कहा ये राजा नहीं, ये पशु है। राजा ने पूछा :- पुत्री, मैं पशु कैसे हूं ? कन्या ने कहा, मेरे गुरू बताएंगे, जो नाग पहाड़ में रहते हैं। राजा वहां पर गया। गुफा के दरवाजे पर सिला लगी देखी। राजा ने आवाज लगाई। दर्शन करने आया हूं। अन्दर से संत जी बोले :- कौन हो ? मैं राजा हूं। फिर अन्दर आ जाओ। राजा ने कहा, सिला लगी है। संत जी बोले :- तुम सत्य बोलो, कौन हो ? फिर कहा मैं राजा हूं। संत जी बोले, राजा तो एक राम हुआ है, उसके समान हो तो हाथ लगाओ, सिला स्वयं हट जाएगी। राजा ने हाथ लगाया परन्तु सिला नहीं हटी। संतः जी ने कहा :- सत्य बोलो। तब राजा बोला, मैं क्षत्रिय हूं। संत जी बोले :- क्षत्रिय तो एक अर्जून हुआ है। वैसा पराक्रम है तो हाथ लगाओ, सिला हट जायेगी। राजा बोला :- सिला नहीं हटती। संत जी पुनः बोले :- सत्य बोलो, कौन हो ? राजा बोला, मैं मनुष्य हूं। संत जी बोले, इस समय मनुष्य तो एक राजा भोज है। आप वह हैं तो हाथ लगाओ, सिला हट जाएगी। राजा ने हाथ लगाया, सिला एक दम हट गई। सन्त को नमस्कार किया और दर्शन करके राजा भोज उनके उपदेश से अपने में, एक मानव का निश्चय करके, कृत्य कृत्य हो गया।

(मनुष्य लक्षण बत्तीस)

छंद :- सुकृत प्रमाण पराक्रम, कुल रूप क्रिया,
सज्जन सू बुद्धि सत, शील व्रतधारी है।
बिछेछन विनय, विश्वास सू बन्दनीक,
विद्या निर्लोभ सूर, दया दान उपकारी है।
तुच्छ निद्रा इन्द्री जित, सुचि सु प्रकाश बुद्धि,
हरि गुरू मात पितु, भगति पियारी है।
शास्त्रज्ञ धर्मज्ञ, सुमति सू भूख बस,
निर्गुण सम्पन्न सो तो, नगर मंझारि है।

अब ब्रह्मऋषि सतगुरू जीवन मुक्ति के विरोधी, जो काम क्रोध आदि हैं, उनकी निवृत्ति का निम्नलिखित चार साखियों से उपदेश करते हैं।

दादू काढे काल मुखि, अंधे लोचन देई।
दादू अैसा गुरू मिल्या, जीव ब्रह्म करि लेई ॥ १२॥

टीका :- ज्ञान से दृष्टिहीन जीव को ज्ञानरूपी नेत्र तथा, शील कहिए ब्रह्मचर्यव्रत का उपदेश देकर, दयालु सतगुरू कामरूपी काल से जीव की रक्षा करते हैं। एवं सतगुरू की प्राप्ति होने पर जीव ब्रह्मरूप हो जाता है। यह महिमा सतगुरू की है।

दोहा :- काम काल गरजै सदा, काया नगरी माहि।
रज्जब हारे देवता, सुर नर छूटे नाहि ॥ १२॥

दादू काढे काल मुख, श्रवनहु सबद सुनाइ।
दादू ऐसा गुरू मिल्या, मृत्तक लिये जिलाइ ॥ १३॥

टीका :- ज्ञानमय शब्द तथा क्षमा उपदेश द्वारा, सतगुरू शिष्य को क्रोध रूपी काल से मुक्त करते हैं, कहिए निकालते हैं। सतगुरू की ऐसी महिमा है कि उनकी कृपा से मृतक, स्वस्वरूप से विमुख जीव, जीवित स्वरूप में लीन हो जाता है।

मालती छंद :- क्षमा अब सुन शिष्य मोसौं, सहनता कहूं अब तोसौं।
दुख दुष्ट देही ज्यो भारी, दुसह मुख बचन पुनि गारी।
कबहु नहिं क्षोभ को पावै, उदधि ज्यौं अग्नि बूझ जावै।
बहोरी तन त्रास दे कोई, क्षमा कर सहै शिष्य सोई ॥१३॥

दादू काढे काल मुखि, गूंगे लिये बुलाइ।
दादू अैसा गुरू मिल्या, सुख में रहे समाइ ॥ १४॥

टीका :- जीव की विषयों में प्रवृत्ति होने से, जिह्वा से राम नाम नहीं लिया जाता है। किन्तु कृपालु सतगुरू उपदेश द्वारा, वैराग्य एवं राम नाम में प्रवृत्त कराके, अज्ञानी जीव की लोभरूपी काल से रक्षा करते हैं। अर्थात् सतगुरू कृपा से आज्ञाकारी जीव, सदा सुख का अनुभव करने लगता है।

दोहा :- गुरू आज्ञा से शिष्य जन, शिर भी दे तत्काल ।
माधव समरथदास को, देकर हुआ निहाल ॥ १४ ॥

दृष्टान्त :-माधवदास सूरत में गन्ज के निवासी, एक सौदागर सिसौदिया वंश के सूर्यवंशी क्षत्रिय करवर्तासिंह एवं हिरलदेवी के पुत्र के रूप में वि०सं० १६०८ में जन्मे थे । पहले यह बड़े विषयी थे । किन्तु एक बार माता के विशेष चेतावनी देने पर, उन्हें सहसा वैराग्य हो गया और वे गुरू की खोज में निकल पड़े । सूरत के किले के बाहर अशोक वृक्ष के नीचे समरथदास नामक एक योगी थे । उनके शिष्य हो गए । गुरू नें इनकी परीक्षा करने के लिए इनका सिर मांगा । तब माधोदास जी ने तुरन्त अपने हाथ से सिर काट कर गुरू के चरणों में रख दिया और गुरुदेव ने फिर से जीवित कर दिया एवं 'मात्तमाधव' की उपाधि भी दी । आगे चल कर वह एक अच्छे संत हो गए ।

दादू काढे काल मुखि, मिहरि दया करि आइ ।
दादू अैसा गुरू मिल्या, महिमां कही न जाइ ॥ १५ ॥

टीका :- सतगुरू ने मोह रूपी काल से अज्ञानी जीव की रक्षा की है, क्योंकि सतगुरू की महिमा अपार है । मन बुद्धि वाणी से अवर्णनीय है । सतगुरू महाराज ने काम, क्रोध, लोभ, मोह चारों कालों के बोध के लिए ही 'दादू काढे काल मुखि' इस पद का चार बार उल्लेख किया है ।

(काल के मुख से निकालने की विधि)

सतगुरू काढे केस गहि, डूबत इहि संसार ।
दादू नाव चढाइ करि, कीये पैली पार ॥ १६ ॥

टीका :- संसार सागर में डूबते हुए जिज्ञासु के आत्म कल्याण के, जिज्ञासा रूप केशों को, हित साधन भावना के हाथों से पकड़ कर, सतगुरू संसार सागर से जिज्ञासु को उबारते हैं । जिज्ञासु को अति परिश्रम करके, सतगुरू ने शिष्य को उबार भी लिया, तो पुनः संसार में डूबने का भय रहेगा । इसका समाधान करते हैं । "दादू नाव चडाइ करि किये पैलि.पार" ---नाव उपदेश रूपी नौका, उस पर चढ़ाकर, जाप द्वारा इस संसार से परले किनारे किया, अथवा "पार कहिये" जिसका पार सम्भव है, ऐसा जो संसार है, इससे "पैली" अर्थात् पहिले जो इस संसार का कारण पार रहित है, उस सुखरूप राम के रूप बना दिए ।

भो सागर में डूबतां, सतगुरू काढै आय ।
दादू खेवट गुरू मिल्या, लीये नाव चढाइ ॥ १७ ॥

टीका :- जिस प्रकार समुद्र में डूबते हुए प्राणी को नौका का चलाने वाला पार उतारता है। तदनुरूप ही आवागमन जरा मरणादि के चक्र से, सतगुरू जीव की रक्षा करते हैं अर्थात् ज्ञान उपदेश आदि द्वारा जीव के कर्म बन्धन काट देते हैं।

सवैया :- भव जल में बहे जात हुते जन, काढ लीयो अपनो कर आदू।
और संदेह मिटाय दिए सब, कानन टेर सुनाय कै नादू।
पूरण ब्रह्म प्रकाश कियो जिन, छूट गए सब बाद बिबादू।
ऐसी कृपा जो करी हम ऊपर, सुन्दर के उर हैं गुरू दादू ॥ १७ ॥

दोहा :- सूर पंगु पुर में बसै, और लोग गए काम।
अग्नि लगी दोऊ बचे, पुनः वाक्य मध्यराम ॥ १७ ॥

दोहा :- ज्ञान कर्म दोऊ मिले, तबही होइ उबार।
जथा अंध के कंध पै, पंगु होइ असवार ॥ १७ ॥

दृष्टांत :- एक नगर में एक अन्धा और दूसरा पंगुला, दो रहते थे। नगरवासी लोग खेतों में काम करने चले गए। पीछे से नगर में आग लग गई। पंगुला ने सूरदास को को कहा 'आग लग गई'। 'मैं तो पंगुला' और आप अंधे दोनों कैसे बचेगें। सूरदास बोला, मेरे कंधे पर तूं चढ़ जा। तूं मुझे रास्ता बताते रहना क्योंकि तेरे आंखें हैं और मेरे पैर हैं। इसलिए जिधर तूं बताएगा उधर मैं चलकर, दोनों नगर के बाहर निकल चलेगें, और अग्नि से बच जाएगें। वैसे ही ज्ञान और कर्म-ज्ञान के आँख है परन्तु उसमें क्रिया नहीं है और कर्म के क्रिया रूपी पैर हैं। मनुष्य ज्ञान और कर्म दोनों के द्वारा ही संसार से पार होता है।

(सतगुरू महिमा)

दादू उस गुरूदेव को, मैं बलिहारी जाऊँ।
जहाँ आसण अमर अलेख था, ले राखे उस ठाऊँ ॥ १८ ॥

टीका :- शिष्य प्रार्थना करता है कि उस समर्थ सतगुरू की मैं वन्दना करता हूं कि जिसने जहां आसण कहिए, अन्तःकरण में अमर अलेख था, जो परमेश्वर का स्थान है ऐसे स्थान में अपनी 'शरण में' कहिए उपदेश

में लेकर सतगुरू ने हम को रखा है । जिससे हम अमर हो गए हैं । परन्तु इन्द्रियों के द्वारा अन्तःकरण बाहर भ्रमता है । जिससे प्राणी को स्वस्वरूप का बोध नहीं होता है । किन्तु परमार्थी सतगुरू ने काम क्रोधादि जो बाह्य विषय हैं, उनसे अन्तःकरण को विमुख, अर्थात् हटा करके, जैसे—ऊपर 'दादू काढे काल मुखि' आदि साखियों में कह चुके हैं, वैसे ही अर्न्तवृत्ति कर दिया है, जिससे शुद्ध मन परमानन्द का अनुभव करता है । जब मन अन्तर्मुखी होकर निष्पाप हुआ तो उसको तत्वज्ञानरूप परमात्मा का अनुभव होने लगा । जिसका आगामी महावाक्यों में प्रतिपादन करते हैं ।

(ज्ञानोत्पत्ति)

आत्म मांहैं ऊपजै, दादू पंगुल ज्ञान ।
कृत्तम जाइ उलंघि करि, जहां निरंजन थान ॥ १९ ॥

टीका :- पंगुल कामना रहित अर्थात् नाना वासना ही मानो जीव के पग है । ज्ञान दिशा में उन वासनाओं का नाश हो जाता है । इसलिए वासना शून्य ज्ञान को पंगुल कहते हैं । तात्पर्य कामनाशून्य तत्व पदार्थं को जानने वाला जो ज्ञान है, उसका आत्मा से ही उदय होता है । उसका फल क्या हुआ ? कृत्तम पूर्वंजन्म संचित एवं माया के रचे हुए जो पदार्थ हैं, उनको त्यागकर अर्थात् बाह्य विषयों को छोड़ करके, जहां अन्तःकरण में निरंजन निराकार का निवास है, वहां चला गया अर्थात् इन्द्रियार्थी मन अपने विषयों को त्याग, आत्मपरायण बनकर, स्वरूपानन्द का अनुभव करने लगा ।

(आत्मज्ञान के विशेषण)

आत्म बोध बन्झ का बेटा, गुरू मुखि उपजै आइ ।
दादू पंगुल पंच बिन, जहां राम तहं जाइ ॥ २० ॥

टीका :- बंझ नाम आत्मा का है एवं भक्ति का भी है । तात्पर्य यह है कि आत्मज्ञानी जरा मरण से मुक्त हो जाता है । किन्तु आत्मज्ञान का प्रादुर्भाव कहां से होता है ? अतः गुरूमुख उपजै आई" जो जिज्ञासु एकाग्र भाव से सतगुरू के शब्दों में श्रद्धा रखता है, उसको ही आत्मबोध होता है । गीता में भी कहा है : **"श्रद्धावान लभ्यते ज्ञानं"** पूर्व प्रसंग में वासनाओं को ही पैर माना है और तत्व शून्य ज्ञान को पंगुल ज्ञान कहा है । अब स्पष्ट रीति से उसका उल्लेख करते हैं । 'दादू पंगुल पंच बिन' कहिये यांचों विषयों को त्यागने से पंगुला हुआ जो निर्मल मन है, वह आत्मा आनन्द का अनुभव करता है ।

(अनहद शब्द)

सांचा सहजैं ले मिलै, शब्द गुरु का ज्ञान ।
दादू हमको ले चल्या, जहं प्रीतम का अस्थान ॥ २१ ॥

टीका :– सतगुरू का जो सत्य शब्द है उससे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान, बिना परिश्रम ही परमेश्वर का जो स्थान सत्चित् आनन्द है, वहां हमको ले चला। जिज्ञासुजनों को वह ज्ञान अपने साथ लेकर चला, जिससे प्रीतम परमेश्वर की प्राप्ति हुई ।।

पूर्व साखी से उत्तम अधिकारी को उपदेश देकर के अब मध्यम अधिकारी को उपदेश देते हैं :---

दादू शब्द विचार करि, लागि रहे मन लाइ।
ज्ञान गहै गुरूदेव का, दादू सहिज समाइ ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासु जनो ! सतगुरू के ज्ञानमय शब्दों को ग्रहण करो। अर्थात श्रवण, मनन निदिध्यासन द्वारा जो मुमुक्षु, मन को दृढ़ करेंगे, वे उसका फल जो ज्ञान है, उसको प्राप्त होंगे। जिससे सहज ही में सच्चिदानन्द जो ब्रह्म है, उसमें समाकर एक रुप होंगें। शिष्य के बारम्बार प्रार्थना करने पर सतगुरू शिष्य पर दयालु होकर, शिष्य की मुक्ति के लिए-प्रभु से विनती करते हैं।

(दया विनती)

दादू कहै सतगुरू सबद सुणाई करि, भावै जीव जगाइ।
भावै अन्तरी आप कहि, अपने अंग लगाई ॥२३॥

टीका :- हे परमेश्वर ! आप इन अज्ञानी जीवों, को जगावें, सचेत करें। आप अन्तर्यामी हैं। 'अंतरि कहिए अन्तः करण में प्रेरणा पैदा करके, अपने अंग स्वरूपानन्द में लगाओ, अथवा गुरू से शिष्य प्रार्थना करता है, कि हे सतगुरू ! भले ही आप इस जीव को अपने शब्द उपदेशों से, सन्यमार्ग का बोध कराओ या हमारे हृदय में अपनी कृपा दृष्टि द्वारा' राम नाम में प्रेम पैदा करो। अतः जैसे भी बने, इस अज्ञानी जीव को आप अपनी शरण में लीजिए।

शिष्य की विनती सुनकर दयालु सतगुरू ने शब्द द्वारा शिष्य को उपदेश किया। जिसका शिष्य पर जो प्रभाव हुआ, वह निम्न साखी से स्पष्ट करते है :-

(सतगुरु शब्द बाण)

दादू बाहरि सारा देखिये, भीतरि कीया चूर।
सतगुरू सबदौं मारिया, जाण न पावै दूर ॥२४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज उपदेश करते हैं कि ज्ञान उपदेश द्वारा, सतगुरू ने शिष्य की वाह्य बासनाओं का नाश किया, जिससे बाहरी व्यवहार में सारे शरीर की स्थूलतादिक या बाहरी पठन

पाठन वा उपदेशादि, देखने में आते हैं, किन्तु भीतरी अहंकार, काम, क्रोधादि वासनामय अन्तःकरण का, अत्यन्त अभाव प्रगट करने के लिए श्री सतगुरू महाराज ने 'चूर' पद का प्रयोग किया है। अर्थात पुनः वासनाओं का उदय होना कदापि सम्भव नही है। इसीलिए आगे कहते हैं कि ''जण न पावै दूर'' अर्थात् आसुरी विभूतियों के नाश हो जाने से , अन्तःकरण में जो महानन्द हुआ है, उसको छोड़कर, गुरू उपदेश से विमुख, मायाकृत पदार्थों में आसक्त नहीं होता है।

दोहा :- सेवग नोंते सन्त सब, जीमत उबरी रिध।
जग्गो जीमते सब गयो, गुरूदादू की बिध॥२४॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज अकबर को उपदेश दे कर लौटे। मार्ग में एक नगर में रुके। वहां एक वैश्य भक्त ने दादू जी के आकर दर्शन किये। भोजन का निमन्त्रण दिया। उसने भोजन बनवाया, हजार मूर्तियों का। दादू जी सहित वे दस संत थे। उसने सुना था कि ये बहुत अधिक भोजन खाने वाले हैं। तद् अनुसार ही बनाया। जब भोजन करने पधारे तो इच्छानुसार भोजन किया। भक्त ने कहा भोजन तो बना हुआ बहुत है। मैंने सुना था कि आपके साथ बड़े बड़े खाने वाले हैं, परन्तु मैंने यहां देखा कि आप लोग तो बड़े अल्पाहारी हैं। तब ब्रह्मऋषि बोले कि एक ही संत आप की इच्छा पूरी कर देंगे। तब जग्गा जी को आज्ञा दी, आप प्रस्तुत भोजन पाइए। ज्यों ही भोजन पाने लगे, त्यों ही भक्त चकित हो गया और थोड़े समय में ही सम्पूर्ण भोजन पा लिया। तब भक्त को बोले, भूख बहुत लगी है, भोजन और दीजिए। तब भक्त आश्चर्य पूर्वक घबरा कर दादू दयाल ब्रह्मऋषि के चरणों में जा गिरे और कहा, रक्षा करो। तब ब्रह्मऋषि ने शिष्य जग्गा जी को बुलाया और एक मुट्ठा भोजन का पत्तल पर रखा, तो वह जीमने लगे। वह मुट्ठा समाप्त न हुआ, उसी में पूर्ण तृप्त हो गये। इस दृश्य को ज्यों ही भक्त ने देखा, तो कृत्य कृत्य हो गया, और फिर कभी सन्तों की परीक्षा नहीं करूगां, उसने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली।

दोहा :- लूट लिये सब संत जन, चोरन कियो बिचार।
तुम मारन के हाथ थे, सतगुरू काटे डार॥२४॥

दृष्टान्त:- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज के शिष्य पण्डित जगजीवन राम जी, दौसा नगर के टहलड़ी आश्रम में निवास करते थे। आप के यहां संतों की खूब सेवा होती थी। एक समय चोरों ने विचार किया कि इस स्थान में हम लोग चोरी करैं, क्योंकि यह स्थान धन धान्य सम्पन्न है। वे चोरी करने आए और सम्पत्ति के गट्ठर बांधने लगे। संत लोग लेटे हुए देख रहे थे। चोरों ने विचार किया कि ये लोग हमें मना

क्यों नहीं करते ? इनसे पूछना चाहिए । चोर बोले :- "महाराज हम आपकी सम्पत्ति बांध कर ले जाने को तत्पर हैं । आप हमें मना क्यों नहीं करते हो ? आप बड़े बली हो, आप में से एक ही, हमें सबक सिखा सकता है ।" संत जी बोले :- "तुम्हारे को सबक देने के जो हाथ थे, वे सतगुरू ने हमारे काट दिये । अब दया, पालन, रक्षा करने के हाथ सतगुरू ने बना दिये । आप सम्पत्ति को ले जाओ और बच्चों को खिला देना ।" यह सुनकर चोर चरणों में पड़ गए और कुकर्म छोड़कर, सच्चे मानव बन गए ।

दोहा :- एक रैन की त्रास तै, देखि नृपति यह अंग ।
जिनके डर गुरू ज्ञान का, तिनके किसा अनंग ॥ २४ ॥

दृष्टांत :- एक राजा संतों का सेवक था । बहुत से संत आते, सबकी सेवा करता । एक रोज राजा को यह शंका मन में उठी कि हम लोग दाल-रोटी खाते हैं । हमें ही कामदेव सताता है, तो संतों के लिए तो हम बहुत अच्छा भोजन कराते हैं, क्या इनको काम नहीं सताता है ? यह विचार कर एक संत से प्रश्न किया :- हे महाराज ! क्या आपको कामदेव नहीं सताता है ? संत बोले :- राजन् ! आंख से देखोगे या कान से सुनोगे ! राजा ने कहा :- 'आंख से दिखला दीजिए तो कोई संदेह नहीं रहेगा ।' संत ने कहा :- आप एक महान भूखे नंगे मनुष्य को बुलाइये । राजा ने बुलाया । संत कहने लगे :- इसको एक मकान में रखिए और इसको सुबह, दोपहर में, सायंकाल, रात्री को अनेक प्रकार के प्रतिदिन भोजन, मेवा, मिष्ठान, दुग्ध पान कराइये और रोज आप इसके दर्शन करके आना । बारह महीने तक महाराज की आज्ञानुसार सेवा की । वह बड़ा भारी बलिष्ठ हो गया । चेहरे पर बड़ा औज आ गया । राजा ने कहा :- महाराज, अब उसके बल का कोई ठिकाना नही हैं । संत ने कहा, कल उसके पास अपनी महान रूपवती दासी को राजसी परिधान पहना कर, भोजन का थाल देकर, उसके पास भेजें, और बोलें :- कि मैं आज की रात आपकी सेवा करने आई हूँ, जैसा आप कहोगे वैसा करूंगी । यह मुझे राजा साहब और गुरू महाराज का आदेश है । मैं खुद महारानी हूं । परन्तु कल के दिन अमुक समय आपको फांसी लगेगी । यह भी गुरू महाराज की आज्ञा है । इसलिए आज रात, जो आपको भोग भोगने हों, सो भोग लो । यह सुनते ही उसके मुंह पर स्याही फिर गई । और रोमांच हो गया तथा कांपने लगा और रोने लगा । और कहने लगा :- कि क्या गुरू महाराज ने मुझे फाँसी लगवाने के लिए, यही भोग प्राप्त कराये थे ? सारी रात रोता रहा । दासी निश्चेष्ट रही । प्रातःकाल थाल लेकर, राजा के पास गई और रात का सारा वृत्तान्त कह सुनाया । राजा गुरू महाराज के पास पहुंचा और सारी बात कह दी । गुरू महाराज बोले :- राजपुरुषों के द्वारा उसको यहां बुलाओ । जब राजपुरुष उसको लेकर गुरू महाराज के पास आये, तो उसने जाना कि अब फांसी का हुकम लगेगा और मैं दुनियां से विदा ही जाऊंगा । इस भय से वह शुष्क हो गया । गुरू महाराज राजा को बोले :- राजन् ! एक रात की त्रास कहिए भय से, इसके शरीर की क्या दशा हो गई ? वह कामदेब कहां छुप गया ? हे राजा ! जिनको ईश्वर, गुरू, संसार, धर्म,

और समाज का भय है, उनको कामदेव कैसे विचलित कर सकता है ? राजा गुरू के सामने नत मस्तक हो गया ।

दादू सतगुरू मारै शब्द सौं, निरखि निरखि निज ठौर ।
राम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥२५॥

टीका :- पूर्व कही हुई साखी के ही भावार्थ का उल्लेख करते हैं । निज अहंत्व या कामना आदि कृपा सिन्धु सतगुरू, बाह्य विषयों में, शिष्य की अहंत्व या ममत्व का शारीरिक या मानसिक चेष्टाओं को खोज खोज करके, शब्द से मारते हैं । ज्ञान उपदेश व ताड़ना द्वारा, उनका समूल नाश करते हैं । इसका फल क्या हुआ ? 'चित न आवैं और' - अर्थात् जब सतगुरू ने उपदेश द्वारा शिष्य को निरावरण किया, तो फिर अनात्म वासना चित में नहीं उठती है, जिससे फिर राम अकेला ही रह जाता है । केवल निरंजन राम ही व्याप्त रहता है ।

दोहा :- **गुरू शिष्य रहे सेठ के, शिष्य के अटके नैन ।**
लखि गुरू सुत्त की तिय, कछूक कहाए बैन ॥२५॥

दृष्टांत :- एक गुरू और शिष्य थे । वे अपने सेवक सेठ के घर चर्तुमास ठहरे । जब भोजन करने को घर में जाते, तब उनकी शिष्या सेठानी प्रेम से भोजन कराती । एक रोज गुरू जी ने क्या देखा कि अपना शिष्य और सेठ की पुत्रवधू, दोनों युवा होने के नाते, आपस में आंखें लड़ाने लगे । गुरू जी ने समझा कि ये तो बड़ा अन्याय है । साधुत्व को भारी धकका लगेगा । गुरू जी सेठानी को बोले, कि तुम अपनी पुत्रवधू से बोलो कि कल जब गुरू महाराज और उनका शिष्य भोजन करने आवैं, तब तुम्हारी तरफ उनका शिष्य देखे तो, उस समय तुम उसको कटुक शब्दों से अर्थात् गालियों से खूब झाड़ना । ऐसा अगर नहीं करेगी तो तेरी जबान खींच लूंगी । पुत्रवधू शरमा गई और दूसरे दिन वैसा ही किया । उसकी गालियां सुनकर और शर्मिंदा होकर शिष्य ने गुरू महाराज से क्षमा याचना की । गुरूदेव शिष्य की कमियों को देख-देख कर, उसके अन्दर से इसी प्रकार निकालते हैं ।

अब पूर्व कहे हुये उपदेश का अनुवाद करके, श्री सतगुरू महाराज मध्यम अधिकारी को, पद प्राप्ति का विवेचन करते हैं ।

दादू हमको सुख भया, साध सबद गुरू ज्ञान ।
सुधि बुधि सोधी समझकर, पाया पद निर्वाण ॥२६॥

टीका :- सतगुरू उपदेश करते हैं कि हे शिष्य ! जो साधु त्रिगुणमयी माया के आवरण को हटा चुके हैं, ऐसे श्रेष्ठ सतगुरू का जो शब्द उपदेश है, जिससे आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई है, उस आत्मज्ञान से हमको सुख हुआ है । अर्थात् परम सुख मिला है । कैसा है यह सुख ? “सुधि बुधि सोधी समझकर पाया पद निर्वाण”- अर्थात् प्रेम भक्ति द्वारा, शुद्ध परमात्मा निष्ठ हुई बुद्धि से, ‘सोधि’ निश्चय कर और समझकर, धारणा द्वारा, निर्वाण कहिये जहां काल के बाण नहीं लगते है, ऐसा परम पद अमरतत्व को प्राप्त किया है ।

जैसे शस्त्र और अस्त्र ये दो भेद आयुद्धों के हैं, जिनका नाम शस्त्र है, वे सामान्य हैं, और जिसका नाम अस्त्र है, वे अति सामर्थ्य वाले हैं, जैसे :- राम अर्जुनादि के थे । इसी प्रकार शब्दों के भी दो भेद हैं :- एक तो सामान्यजनों के और दूसरे अमोघ शक्ति वाले महापुरुषों के । यहां पर जिन शब्दों में अमोघ शक्ति है उनके गुण कहते हैं :-

(सतगुरू शब्द बाण)

दादू शब्द बाण गुरू साध के, दूरि दिसन्तरि जाइ ।
जिहीं लागे सो ऊबरे, सूते लिये जगाइ ॥२७॥

टीका :- श्रेष्ठ गुरू के शब्द रूपी बाण दूर दिसंतरि कहिये, देशान्तरों में एवं जो निकृष्ट प्राणी सत्योपदेश के अधिकारी नहीं है, वहां भी जाएं अर्थात् वहां भी जाकर प्रेरित करते हैं । इससे क्या फल की प्राप्ति हुई ? **उत्तर :-**सतगुरू उपदेश करते हैं कि “जिहीं लागे सो ऊबरे”—जिस प्राणी को सतगुरू का उपदेश मिला है, वही जन्म और मरण के चक्र से छुटकारा पा गया हैं । **शंका :-** प्राणी क्यों बन्धन में था और कैसे छुटकारा पाया ? **उत्तर :-** सो कहते हैं “सूते लिये जगाई”—अर्थात् जीव अनादि काल से, अज्ञान निद्रा में सो रहा था, जिससे यह अज्ञानी प्राणी आत्म ज्ञान से विहीन था । सतगुरू के सत्य उपदेशों ने प्राणी को ‘जगाइ’ कहिये, आत्म बोध कराया । इसी से जन्म और मरण के बन्धन से जीव मुक्त हुआ है ।

सतगुरू शब्द मुख सौं कह्या, क्या नेड़े क्या दूर ।
दादू सिख श्रवणहु सुण्या, सुमिरण लागा सूर ॥२८॥

टीका :- नेड़े, समीप या उत्तम अधिकारी, दूर देश में या काल की दूरी या अधिकारी को सतगुरू ने ज्यों ही उपदेश किया, तो जिज्ञासु ने उस उपदेश को, श्रवणहुं कानों से, निश्चयपूर्वक सुना, जिससे “क्या नेड़े क्या दूर”—कहिए भले ही सतगुरू के श्री चरणों में उपदेश सुना हो अथवा दूर देशों में परम्परा से उपदेश सुना हो, परन्तु दोनों ही प्रकार से सतगुरू के शब्द को सुनकर ‘सूर’ कहिये दृढ़ निश्चय होकर शिष्य, “सुमिरण लागा”—कहिए प्रभु भजन में दत्तचित हो गये ।

दोहा :- रज्जब बखनों आदि दे नेड़ै लागे बाण।
साधु तेजानन्द जी, माता दूरिहिं जाण ॥ २८ ॥

दृष्टांत :- रज्जब जी महाराज सांगानेर कस्बा के निवासी थे और दूल्हा बनकर, आमेर में शादी हेतु बारात गई। वहां ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज निवास करते थे। रज्जब जी ने उनको जाकर, साष्टांग प्रणाम् किया। दादू जी महाराज ने अधिकारी जानकर उपदेश किया।

दोहा :- कीया था किस काम को, सेवा करने साज।
दादू भूला बन्दगी, सर्‌या न एकौ काज ॥

ये उपदेश सुनते ही मोर खोल डार्‌यो। तन, मन, धन वार्‌यो गुरू के। ये महान बीतराग महापुरुष बन गए और बोले :-

दोहा :- रज्जब तैं गज्जब किया, सिर पर बांध्या मोर।
आया था हरि भजन को, करि नरक को ठोर ॥

दृष्टांत :- इसी प्रकार बखनां जी नरैना के निवासी थे। त्रिपोलिया पर ब्रह्मऋषि दादूदयाल बिराजते थे। फाल्गुन मास में फाग गाते हुए ब्रह्मऋषि के दर्शनार्थ साथियों सहित, बखनां जी नरैना त्रिपोलिया पर पहुंचे और साष्टांग प्रणाम् गुरूदेव को किया। उसी साखी से इनको भी उपदेश कर दिया। ये भी श्री चरणों में निवास करने लगे और बोले :-

म्हारा गुरू कह्या, सोई करस्यां ॥ टेक ॥

खार समुद्र में अमृत बेरि, निर्भय घड़लो भरस्यां ०।

ये भी महान बीतराग महापुरुष हुए। इन दोनों के उपदेश नजदीक लगा।

दृष्टान्त :- साधुराम जी मांडोठी ग्राम के निवासी ब्राह्मण थे। इन्होंने दादू जी के शब्द तालाब पर बंजारों से सुने। उसी समय वैराग्य हो गया। माता के साथ सांभर झील में ब्रह्मऋषि के दर्शन किए और उपदेश 'तत्व ज्ञान' प्राप्त किया। आज्ञानुसार मांडोठी ग्राम मे वापिस आकर, तालाब पर ही निवास किया और अधिकारी पुरुषों को उपदेश द्वारा जागृत करते रहे। ये महान आत्मदर्शी पुरुष थे।

दृष्टान्त :- महाराज तेजानन्द जी भी ब्रह्मऋषि दादूदयाल महाराज का उपदेश प्राप्त करके, जोधपुर पहाड़ के ऊपर बिराजते थे। उनके आश्रम पर एक कास्तकार ने गाय का एक लूला बच्छा चढा दिया, क्योंकि वह उसके काम का नहीं था। उस बछड़े का नाम उन्होंने मंगलदास रख दिया। एक कूंडे में पानी और एक कूंडे में चारा उसे दिया जाता था। एक रोज रात्रि को शेर आ निकला, बछड़े ने जोर से पुकारा। तेजानन्द जी महाराज ने बाहर आकर देखा कि शेर गर्जता हुआ आ रहा है। उन्होंने शेर को कहा :-- आओ मंगलदास के साथ भोजन करो और जल पिओ। तुम दोनो गुरू भाई हो। शेर महाराज के चरणों को जीभ से चाटने लगा और मंगलदास के साथ भोजन और जल ग्रहण करने लगा। इन महापुरुषों ने पशुओं में प्रेम की भावना उत्पन्न करी। ये महान् समदर्शी थे।

दृष्टान्त :- सिंध में ठट्टाभकर निवासी, एक माता ने ब्रह्मऋषि दादूदयाल के उपदेश सुने। वह वहां से चल पड़ी और आमेर में आकर महाप्रभु के दर्शन किए। ब्रह्मऋषि बोले, माता बहुत दूर चल कर आई हो, क्या रास्ते में और संत नहीं मिले ? माता बोली :--

दोहा :- चाहूँ ते पाऊं नहीं, पाऊं ते न सुहाई।
लक्ख भसो ईहीं धग्गड़े, उज्जड़ मेरे भाई ॥२८॥

माता बोली :-- मैंने जो चाहा वो मिला नहीं और जो मिला वो मुझे भाया नहीं भले ही इस संसार में लाखों हों, पर मेरे लिए तो उजाड़ ही है। माता के ये शब्द सुनकर ब्रह्मऋषि ने तत्व ज्ञान का माता को उपदेश दिया। माता महान परमानन्द को प्राप्त कर, कृत्य कृत्य हो गई।

अब शब्दों के गुण सहित, विचार में, सतगुरू की आवश्यकता कहते हैं।

(करनी बिना कथनी)

सबद दूध घृत राम रस, मथि करि काढ़ै कोइ।
दादू गुरू गोबिन्द बिन, घट घट समझि न होइ ॥२९॥

टीका :- 'करनी बिना कथनी' का स्वरूप आप तो शब्दों को विचारते नहीं, और अन्य को उपदेश करते हैं, उनको स्वरूप वर्णन करते हैं। तात्पर्य यह है कि "अहं ब्रह्मास्मि सोहम्" आदि महावाक्य यह सतगुरु के उपदेश ही मानो दूध है, जिसमें निर्गुण राम का रूप ही मानो घी है, किन्तु सतगुरू एवं परमेश्वर की कृपा के बिना, शरीर में कहिए, अन्तःकरण में, यह विचार नहीं होता है, इसलिए सतगुरु और परमेश्वर

की कृपा से, कोई बिरले ही मुमुक्षु, महावाक्यों एवं सतगुरु के उपदेशों का, श्रवण, मनन, निदिध्यासन से, राम रस घीव को 'काढ़ै' कहिए-निकलते हैं। अर्थात् स्वस्वरूप आतमा का अनुभव करते हैं। इसी अर्थ को पुनः प्रतिपादन करते हैं।

सबद दूध घृत राम रस, कोई साध बिलोवणहार।
दादू अमृत काढ़ि ले, गुरू मुख गहै विचार ॥३०॥

टीका :-वेद के महावाक्य और संत गुरूओं की, बाणी ही मानो दूध है, उसमें राम रस ही घृत है। जैसे दूध को बिलोने वाला होता है, वैसे ही श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा, कहिये अनुभव करने वाला, कोई बिरला ही साधु है। ऐसा साधु कौन है? "गुरु मुखि गहै बिचार-" जो जिज्ञासु सतगुरु के उपदेश का अनुगमन करके स्व आत्मानन्द का सुख अनुभव करता है, वही श्रेष्ठ है।

घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बक्ता बहुत है, मथि काढै ते और ॥ ३१ ॥

टीका :-जिस प्रकार दूध के अणु अणु में घी व्यापक होता है, उसी प्रकार परमेश्वर भी सर्वत्र व्यापक है। तथापि 'सर्वं मिदं खलं ब्रह्मः' इस प्रकार के उपदेश करने वाले ही अधिक हैं और जो आत्म साक्षात्कार करने वाले हैं, कहिए उनसे भिन्न हैं।

अब श्री सतगुरू उपरोक्त उपदेश को गऊ के दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं।

कामधेनु घटि घीव है, दिन दिन दुरबल होइ,
गौरू ज्ञान न उपजै, मथि नहिं खाया सोइ ॥३२॥

टीका :-काम धेनु कहिए, बहुत दूध देने वाली गाय, उसके शरीर में ही घृत होता है, किन्तु उस अज्ञानी पशु को इस तत्व का ज्ञान नहीं होता, जिससे स्वयं देह स्थित घी को 'मथि' कहिए पुरुषार्थ करके नहीं खाया, इसी कारण प्रतिदिन दुर्बल ही होती जाती है। अर्थात् बिना धारणा वाले गुरू पंडित आदि एवं शिष्य उनके शरीर में जो शब्द ज्ञान है, वही दूध के सदृश्य है उसमें ब्रह्मानन्दरूपी घृत विद्यमान है, परन्तु देहाध्यासी पुरूषों ने शब्दों के तत्व को मथि कहिए, विचार पूर्वक अनुभव नहीं किया है, यानी उनको आत्म बोध नहीं हुआ है। इसीलिए जन्म जन्मान्तरों में वाचक, ज्ञानी, दुर्बल कहिये-दुखी ही रहते हैं।

अब करणी बिना कथनी के अंग को समाप्त करके, आत्मज्ञानी सतगुरू की महिमा और उनकी आज्ञाकारिता के फल का प्रतिपादन करते हैं।

(योगाभ्यास)

साचा समर्थ गुरू मिल्या, तिन तत्त दिया बताइ।
दादू मोटा महाबली, घट घृत मथि करि खाइ ॥ ३३ ॥

टीका :- सौभाग्य से यदि सत्योपदेश देने वाले सतगुरू मिलैं, तो वे आत्मानन्द रूपी तत्व का उपदेश करते हैं। जिससे शिष्य उस उपदेश को मथि कहिये-विधि पूर्वक साधनों के द्वारा विचार करके, "खाय" कहिये-अनुभव करता है। इसका फल क्या हुआ ? "दादू मोटा महाबली" कहिए-ऐसा उत्तम शिष्य अर्थात राम नाम में एकाग्र होकर "महाबलि" कहिये अविद्या कृत कार्यों के उलंघन करने में, समर्थ होता है। इसलिए सतगुरू उपदेश या शास्त्र वाक्यों को धारण करना ही सर्वोत्तम है।

पूर्व प्रसंग में राम रस को घी की उपमा दी है। जैसे घी से दीपक प्रकाशमान होकर, 'सर्वत्र प्रकाशता है। अर्थात जीवन मुक्ति और विदेह मुक्तिरूप अमृत फल होता है, उसका स्वरूप वर्णन करते हैं :-

मथि करि दीपक कीजिये, सब घट भया प्रकाश।
दादू दिवा हाथि करि, गया निरंजन पास ॥ ३४ ॥

टीका :- 'मथि' कर विधिपूर्वक आत्म अनात्म का विचार करके, दीपक आत्मबोधरूप जगाना चाहिए। जिससे "सब घट भया प्रकाश"—अर्थात् संपूर्ण शरीर में आत्म ज्ञान का प्रकाश हुआ। जीवन मुक्ति रूप दीवा "अहं ब्रह्मास्मि" वृत्तिरूप हाथ में लेकर, अर्थात् तत्स्वरूप होकर, निरंजन माया रहित, शुद्ध चेतन में, विदेह मोक्ष हो गया।

(परमारथी अंग)

दीवै दीवा कीजिये, गुरू मुख मार्ग जाइ।
दादू अपने पीव का, दर्शन देखै आइ ॥ ३५ ॥

टीका :- जैसे व्यवहार में प्रकाशमान दीपक से, दूसरे दीपक को भी जलाया जाता है। तद्नुरूप ही सतगुरू का उपदेश पालन करके, अपने शरीर में दीपक ज्ञानरूपी बुद्धि है, उसको दीवा रूप सतगुरू उपदेश से प्रकाशमान बनाना चाहिये। अर्थात् बाह्य विषयों से आत्म सन्मुख करना चाहिए। इस प्रकार मन को आत्म सन्मुख बनने से, जो फल की प्राप्ति होगी, उसका सतगुरू निर्देश करते हैं। "दादू अपने पीव का, दर्शन देखैं आइ"—आर्थात् हे जिज्ञासुजनों ! 'आइ' कहिये, पूर्व कहा जो गुरूमुख मार्ग है, उसका अनुसरण करने वाले जिज्ञासु, अपने पीव का पालन करने वाले जो परमेश्वर हैं, उन्हीं का दर्शन देखें, अर्थात् आत्म साक्षात्कार करें।

दादू दिया है भला, दिया करौ सब कोइ ।
घर में धर्‌या न पाइये, जेकर दीया न होइ ॥ ३६ ॥

टीका :- दीवा अच्छा है, क्योंकि हाथ में दीवा नहीं हो तो घर में सुरक्षित धन भी नहीं प्राप्त होता है और दिया नाम यहां पर दान का भी है । यदि हाथों से दान किया हुआ नहीं हो तो, इस संसार में संचित किया जो धन, परलोक में काम नहीं आता है । इसलिए सब कोई दान करो एवं 'दिया' दया का वाचक भी है । दृष्टांत मे श्री सतगुरू महाराज उपदेश करते हैं कि, हे संतों ! जो आत्म ज्ञान है, सोइ अच्छा है, इसको सब कोइ सम्पादन करो । क्योंकि अन्तःकरण में ज्ञानरूपी दीपक नही होगा, तो हृदय में व्याप्त जो निरंजन परमेश्वर है, उसकी प्राप्ति नहीं होगी । अभिप्राय यह है कि, प्रथम दया, दानादि से, मन को शुद्ध करो । तत्पश्चात् भक्ति से आत्म ज्ञान करके उसका विचार करो ।

अब पूर्व कहे अर्थ का ही विस्तार पूर्वक विवेचन करते हैं ।

दादू दीये का गुण तेल है, दीया मोटी बात,
दीया जग में चान्दणां, दीया चालै साथ ॥ ३७ ॥

टीका :- दीपक का मुख्य गुण तेल है, किन्तु उसके लिए मोटी बत्ती आदिक ओर भी सामग्री चाहिए । चन्द्रमा, सूर्य अस्त होने पर जग में कहिए--घर में दीपक से ही प्रकाश होता है, और अन्धकार में दीपक को साथ लेकर ही चलना हो सकता है । दान के विषय में भी सतगुरू उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु जनो ! दीया अर्थात् अन्न वस्त्रादि का जो दान, वह उनको ही परलोक में फल प्राप्त होता है । इसके अतिरिक्त दान के ओर भी गुण हैं । 'दीया मोटी बात'—"क्या दीया जग में चांदणां" अर्थात्—जो कोई भी अन्न वस्त्र औषधि, विद्या आदि का दान देते हैं, उसका फल तो परमेश्वर देवेगें ही ।

दोहा :- रोटि कोपी दोवटी, तंदुल पैसा रोक ।
जगन्नाथ ते ऊबरें, जो बावै हरि की ओक ॥ ३७ ॥

दोहा :- रोटी देती बीर, बांदि एक दीवान की ।
टपक लगै नहीं तीर, खैर खसम आडि भई ॥

दृष्टांत :- कन्नौज शहर में, वहां के दीवान की दासी यानि नौकरानी, दीवान के निमित्त कहिए--रक्षा के लिए एक रोटी रोज साधु को दिया करती थी। परन्तु दीवान की घर वाली उसके काम से रूष्ठ रहती थी और कहती, मूर्ख ! रोज एक रोटी क्यों देती है ? परन्तु वह उसकी बात नहीं मानती और चुपके ही साधु को दे देती। एक समय कन्नौज पर शत्रुओं ने हमला किया। दीवान सेना लेकर लड़ने को गया। जंग में यह देखा कि गोल गोल रोटी के आकारमय चक्कर, उसके सारे शरीर को ढ़क लेते। शत्रु के हथियार नहीं लग पाते और जब यह शत्रुओं पर प्रहार करता, तब वह गोल रोटी चक्ररूप धरकर शत्रु की सेना को कत्ल करते, इसे दिखलाई पड़ते। दीवान की विजय हुई। घर में आकर एक साधु से पूछा :- कि युद्ध की बात मुझे समझ में नहीं आई। युद्ध में वह रोटी जैसा गोल गोल क्या था ? साधु ने कहा :- तेरी रक्षा के लिए घर से कोई रोटी दान करती है, मालूम करो। दीवान ने घर में मालूम किया, तो दासी को हृदय से प्यार किया तथा अपनी स्त्री को ठुकरा दिया और बोला :- तुमने मेरे राजा की, नगर की और मेरी रक्षा की है, आपको धन्य है।

दोहा :- सिर की सोभा उतार कर, द्रौपदी पूज्या साध।
भखना नंगी ना भइ, नृप कीना अपराध ॥

द्वितीय दृष्टान्त :- एक समय दुर्वासा ऋषि पांडवों के यहां चतुर्मास ठहरे थे। वह एक ही कोपीन धारण करते थे। जब गंगा स्नान को गए. कटि-पर्यन्त जल में घुस कर स्नान किया। फिर लगोंट को वहीं खोल और धोकर बांध लेते थे। एक रोज हाथ से लंगोट छूट गई और गहरे पानी में बह गई। ऋषि ने बाहर नंगे नहीं आना चाहा और वहीं खड़े रहे। द्रौपदी महारानी ऊपर महलों से देख रही थी, कि गुरू जी आज जल के बाहर नहीं आ रहे है, सो क्या कारण है ? तब वह गंगा के किनारे आई और ऋषि जी को प्रणाम करके बोली :-- 'आज प्रभु गंगा में ही कैसे खड़े हो' ? ऋषि बोले :- पुत्री ! हमारी लंगोट हाथ से छूट गई, नंगे बाहर कैसे आवें ? यह सुनकर द्रौपदी ने अपने सिर से चीर उतार, उसमें से एक लंगोटी का कपड़ा फाड़ कर, ऋषि की तरफ फेंक दिया। वह उस लंगोट को लगाकर गंगा के किनारे बाहर आए। द्रौपदी जी ने चरण स्पर्श किया। ऋषि बोले बेटी ! तैंने हमारी लाज रखी है, भगवान कृष्ण तेरी लाज बचायेंगे। महाभारत के समय जब द्रौपदी जी को दुशासन ने नग्न करना चाहा, तब भगवान ने उसका चीर बढ़ाया और भक्त की लाज बचाई। मुनी का आशीर्वाद सत्य किया।

तृतीय दृष्टान्त :- कबीर भक्त सच्चे महापुरुष थे और उदारवृत्ति संतोषी, सत्यवक्ता इत्यादिक इनमें भारी गुण थे। वह एक रेजी रोज हाथ से बनाते थे। आधी रेजी रोज दान कर दिया करते थे और आधी रेजी बेच, दूसरे दिन के लिए सूत लाकर घर की रोजी चलाते थे। एक रोज इनकी परीक्षा भगवान ने स्वयं

की । भगवान ब्राह्मण रूप में आकर बोले :- भक्त कपड़ा चाहिए । कबीर जी बोले :- महाराज ! आधी रेजी ले जाइये । ब्राह्मण बोला :- आधी से काम नहीं चलता । तब कबीर जी ने पूरी रेजी दान कर दी । ब्राह्मण ने आशीर्वाद दिया, 'आपकी जय हो', कहकर प्रस्थान कर गया । कबीर सोचने लगे अब, सूत और कैसे लाऊं, तथा घर की रोजी कैसे चलाऊं । घर वाले खाने को मांगेंगे, कहां से दूंगा ? यह सोच कर भाग निकले और काशी में अस्सी घाट के नलों में छुप गए । तीन रोज बाद भगवान कबीर का रूप बनाकर, 'बालध' भरकर कबीर के घर आए और सब माल उनके घर में डाल दिया । फिर संत रूप मे कबीर को जाकर बोले :- यहां क्यों पड़ा है ? कबीर के घर जा, वहां संतों की सेवा अन्न वस्त्र से हो रही है, तूं भी जाकर खा । मह उस रेजी दान का फल हुआ कि भगवान कबीर के यहां तीन बार बालध भर कर लाए, कलिकाल में ।

चतुर्थ दृष्टान्त :- सुदामा ब्राह्मण था और भगवान कृष्ण का मित्र भी था । क्योंकि दोनों ने सांदीपन ऋषि के यहां, साथ विद्या पढ़ी थी । एक रोज ऋषि ने एक एक मुट्ठी चने देकर सभी विद्यार्थियों से कहा :- जंगल से ईंधन लाओ । भगवान कृष्ण और सुदामा भी विद्यार्थियों के साथ जंगल में पहुंचे और ईंधन काटने लगे । अनायास बड़े जोरों से अंधेरी और वर्षा आ गई । सभी लोग जहां तहां छुप गए । सुदामा और कृष्ण भी एक पेड़ के सहारे अर्थात् एक तरफ सुदामा तथा दूसरी तरफ कृष्ण बैठ गए । जो गुरू जी ने चने दिए थे, सो दोनों का हिस्सा सुदामा के पास था । भूख लगने पर सुदामा चबाने लगे । कृष्ण बोले :- मित्र क्या चबाते हो ? सुदामा बोले :- गुरू जी के दिए हुए चने । कृष्ण बोले :- मेरे हिस्से के चने ? सुदामा बोले :- मैंने सब चबा लिए । कृष्ण बोले :- अरे जा दरिद्री ! उसी दिन से सुदामा दरिद्री बन गया । कृष्ण द्वारका पधार गए तथा सुदामा अपने घर रहने लगा । परन्तु सुदामा को कृष्ण की मित्रता का भारी गौरव था कि मेरे मित्र त्रिलोकी नाथ कृष्ण हैं । एक रोज इनकी पतिव्रता स्त्री बोली :-

एक मित्र भोगै बहु भोगू । एक मित्र के अन का सोगू ॥

यह कैसी मित्रता । आप जानते हो कि सुदामा की पत्नी ने सुदामा जी को चावल की कणी, प्रेम भरी कृष्ण के लिए भेंट देकर, सुदामा को द्वारका भेजा । जब सुदामा भगवान कृष्ण से जाकर मिले और भगवान कृष्ण भाभी जी के प्रेम भरे, तंदुल कहिए चावल कच्चे चबाते ही, सुदामा के यहां घर पर आठ सिद्धि, नौ निद्धि जाकर बस गई । यह भगवान के अर्पण करने का फल देखिए द्वापर में ।

पांचवां दृष्टांत :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज की कीर्तन भक्ति देखकर अहमदाबाद कांकरिए तालाब पर भगवान सहसा वृद्ध रूप धरकर प्रगट हुए और एक पैसा मांगा । दादू दयाल महाराज ने तब दोनों हाथों में एक पैसा लेकर भगवान को भेंट किया । भगवान बोले :- इसके तामुल नाम पान ले आओ । जब तामुल लाए तो भगवान के मुख में दादू जी ने एक पान का बीड़ा दिया । दूसरा पान का बीड़ा भगवान ने

अपने हाथ से दादू जी के मुंह में दिया। ऐसी लीला भगवान भक्तों के साथ किया ही करते हैं। भगवान के मुख से एक पान के पीप की बून्द, दादू जी के दहने पांव के अंगूठे पर हंसते समय गिरी। दादू जी बोले :- प्रभु, यह तो प्रसाद मेरे मुख में डलना चाहिए था। यह बड़ा अनर्थ हुआ, कि पांव पर प्रसाद गिरा। तब भगवान बोले :

चौपाई:- एक बून्द पग ऊपर आई, चरणों लागि मुक्त हो जाई।
एक जनम के दूजे तीजे, कलयुग माँहि मुक्त सब कीजे॥

हे मेरे रूप ब्रह्मऋषि दादू दयाल! आपके चरण पर मेरे मुख की एक बून्द गिरी है, आपके चरणों की जो जीव शरण ग्रहण करेंगे, उनको मैं कलियुग में सबको मुक्त कहिए, अपने स्वरूप में विलय कर लूंगा। यह आशीर्वाद देकर त्रिलोकीनाथ अन्तर्ध्यान हो गए। दादू दयाल ने रोकड़ी एक पैसा प्रभु को भेंट किया था। उसका फल देखिए, दादू जी के सम्पूर्ण काम भगवान ने सिद्ध किए।

इसलिए इस लोक में दान देने वाले की कीर्ति होती है और दान से सब प्राणीमात्र बस में हो जाते हैं। यहां तक समझो कि बैरी लोग बैर छोड़कर, मित्र बन जाते हैं। पराये लोग भी अपने भाई बन जाते हैं। दान एक ऐसा उत्तम कर्म है कि यह सब बुराईयों को दूर कर देता है। सत्य तो यह है कि जिसको दान देने की आदत पड़ जाती है, उनको फिर अन्य कोई व्यसन सूझ ही कैसे सकते हैं? उसका धन तो परोपकार में ही लगता है।

इसलिए धन, दान धर्म में लग गया तो, ठीक ही है, अन्यथा उसकी गति अच्छी नहीं होती। दान में नहीं लगेगा तो, दुर्व्यसनों में जायेगा अथवा नष्ट हो जाएगा क्योंकि कहा है :-

दोहा :- धन की गति तो तीन हैं, दान भोग और नाश।
दान भोग जो ना करै, निश्चय होय विनाश॥

दान से वंश, जाति, देश की, मान प्रतिष्ठा की, इससे वृद्धि होती है। यह सब फल तो सुखी अवस्था के हैं। परन्तु दुखी अवस्था में भी इससे ही फल मिलता है कहिए रक्षा होती है। 'दीया चालै साथ'—देहान्त होने पर भी हाथों से किया हुआ दान ही साथ चलता है। ज्ञान पक्ष में 'दीया सतगुरू' का जो सत्योपदेश है, उसे वे जिनमें गुरू भक्ति, श्रद्धा आदि गुण विद्यमान हैं, वे लहैं—नाम प्राप्त करते हैं। 'दीया मोटी बात' अर्थात्—मनुष्य देह प्राप्त करके, मन अनेक विषयों से आकर्षित होता है, किन्तु परमार्थी सतगुरू से सत्य का ही ज्ञान मिलता है। यही प्रशंसायुक्त बात है। "दीया जग में चांदणा"—जैसे घर में धरी हुई इष्ट अनिष्ट वस्तु का बोध, प्रकाश से होता है, वैसे ही जगत् प्रपंच में, इष्ट जो आत्मतत्व और अनिष्ट जो अनात्मतत्व हैं, उनका भी ज्ञानरूपी प्रकाश से ही बोध होता है। "दीया चालै साथ"—आत्मज्ञान से ही प्राणी अजर,

अमर, होता है। जिस से अन्त में केवल ज्ञान ही साथ चलता है। भावार्थ यह है कि प्रथम तो अन्तःकरण की शुद्धि के निमित्त निष्कामभाव से दानादिक करने चाहिए, और अन्तःकरण की शुद्धि के अनन्तर सतगुरूओं की शरण में उपस्थित होकर, आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए। मनुष्यत्व की इसी में सफलता हैं।

अब आत्मज्ञान की अत्यन्त महिमा का वर्णन करके, उसके साधनों का विवेचन करते हैं।

(गुरू का अंग)

निर्मल गुरू का ज्ञान गहि, निर्मल भक्ति विचार।
निर्मल पाया प्रेम रस, छूटे सकल बिकार॥ ३८ ॥

टीका :- जिज्ञासु, गुरू और ज्ञान भक्ति आदि तीनों के ही साथ निर्मल पद का व्यवहार सम्भव है। साखी में तीनों ही विकल्पार्थ युक्ति-युक्त हैं। प्रस्तुत में ज्ञान भक्ति के साथ ही, निर्मल पद का सम्बन्ध करके, शब्दार्थ करते हैं। गुरू का 'निर्मल ज्ञान गहि' सतगुरू तो सब तरह समर्थ हैं, वह जिज्ञासु के अनुसार, कर्म धर्म तथा व्यवहार आदि की भी शिक्षा दे सकते हैं। किन्तु उनसे निर्मल आत्मज्ञान ही ग्रहण करो। 'निर्मल भक्ति विचार' -- भक्ति अन्य देवी देवादि की भी सम्भव है, परन्तु उसका परित्याग करके, निर्मल, निरंजन, निराकार, की भक्ति ही निर्मल है। उसको ही ग्रहण कहिए - विचार करो। नाना सांसारिक विषय प्रपंच में तो मन की तर्कना होती ही है, किन्तु, उनसे मन को हटाकर के निर्मल विचार, सत्य-असत्य का विचार करो। इससे प्रभु का निर्मल प्रेम रस प्राप्त होता है अर्थात् पुत्र, धन आदि की प्राप्ति भी प्रभु कृपा से सम्भव हैं। तथापि जिज्ञासु को स्वरूपानुरूप बनना ही, प्रभु का निर्मल प्रेम है और वह उत्तम जिज्ञासु को ही प्राप्त होता है। इन सम्पूर्ण निर्मलताओं का फल क्या हुआ ? 'छूटै सकल विकार'—कहिए जन्म मरणादि विकार हैं, उनसे जिज्ञासु मुक्त होता है।

उत्तम बीज और उत्तम समय भी भूमि की उत्तमता के बिना, शेष उत्तमता सार्थक नहीं होती है। अब प्रस्तुत में भूमि सदृश जिज्ञासु की उत्तमता के लिए, सतगुरू उपदेश करते हैं।

निर्मल तन मन आतमा, निर्मल मनसा सार।
निर्मल प्राणी पंच करि, दादू लंघे पार॥ ३९॥

टीका :- सतगुरू महाराज उपदेश करते हैं कि हे प्राणी ! तन को निर्मल कर, अर्थात् चोरी, जारी आदि का त्याग कर। मन की निर्मलता संकल्प, विकल्प, तृष्णा एवं चिन्ता का त्याग कर। और दुर्वासनारूप जो बुद्धि की मलीनता है उसको दूर कर। निषिद्ध कार्यों से निग्रह करना, इन्द्रियों की निर्मलता है। मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियों को निदिध्यासन द्वारा कर्त्तव्य मार्ग में एकाग्र करके, पवित्र बनाओ। अहंत्व आदि

व्यष्टिभाव, जीवात्मा की अपवित्रता है। अतः सब प्राणियों में समत्व भावना द्वारा, आत्मा को पवित्र बनाओ।

प्रश्न :- इन सब निर्मलताओं से क्या होगा ?

उत्तर :- जन्म, मृत्यु माया बन्धन, जो असार तत्व हैं, उनसे मुक्त होकर पार जो संसार है, उसको 'लंघै' कहिए पार करके, जिज्ञासु परमात्मास्वरूप हो जाता है।

परापरी पासै रहै, कोइ न जाणै ताहि।
सतगुरू दिया दिखाइ करि, दादू रह्या ल्यौ लाइ ॥४०॥

टीका :- 'परापरी' कहिए परमेश्वर, माया और जीव से, तथा कारण कार्य भाव से दूर रहता है। इसलिए सर्वव्यापक होने से पास रहता है। और देहधारियों के शरीर में विद्यमान है। फिर भी उस सर्वव्यापक को कोई नहीं जानता है। अर्थात् अविद्यावशात इस तत्व पदार्थ को अब बहिर्मुख नहीं जान सकते। परन्तु सतगुरू जब ज्ञानरूपी दीपक का प्रकाश करते हैं, उस समय जिज्ञासु सतगुरू के उपदेश में एकाग्र वृत्ति करके आत्म प्रत्यक्ष करता है। 'परापरी' शब्द से, सगुण एवं निर्गुण का भी ज्ञान होता है।

पूर्व प्रसंग में सतगुरू के उपदेश से शिष्य को परमात्मा का अप्रत्यक्ष ज्ञान हुआ है, अर्थात् परोक्ष ज्ञान हुआ है। अब आत्मप्रत्यक्ष कहिये, अपरोक्ष ज्ञान के लिए सतगुरू से प्रार्थना करता है।

(शिष्य जिज्ञासा)

जिन हम सिरजे सो कहां, सतगुरू देहु दिखाइ।
दादू दिल अरवाह का, तहं मालिक ल्यौ लाइ ॥४१॥

टीका :- जिस प्रभु ने हमारी रचना की है वह कहां है ? हे सतगुरू ! कृपा करके उस अन्तर्यामी का प्रत्यक्ष ज्ञान कराओ।

हे शिष्य ! जीवात्मा उसका जो दिल हृदय गुहा (गुफा) बुद्धि है, उसमें मालिक कहिये तेरा प्रभु विराजता है। उस जगह अर्थात् अपने आत्मस्वरूप में ही, मन की वृत्तियों को तत्स्वरूप बनाओ।

पूर्व साखी में सतगुरू ने प्रभु को हृदय में बताया है, किन्तु अविद्या का पड़दा दूर नहीं हीने से, शिष्य को स्वरूप का बोध नहीं होता है। अब शिष्य पुनः सतगुरू से नम्र भाव से, अविद्या अन्धकार को दूर करने की प्रार्थना करता है।

मुझ ही मैं मेरा धणी, पड़दा खोलि दिखाइ ।
आत्म सौं परमात्मा, परगट आण मिलाइ ॥४२॥

टीका :- हे दयामूर्ति ! यदि मेरा मालिक मेरे अन्दर ही है, तो 'पड़दा' कहिये अविद्या अन्धकार को हटा करके, आत्मसाक्षात्कार कराओ । हे सतगुरू ! आप दयालु हो, इसलिए मेरे चित्त को प्रभु भक्ति में एकाग्र करके, सर्व व्यापक प्रभु का साक्षात्कार कराइए एवं अपरोक्ष रूप से मुझ अज्ञानी को प्रत्यक्ष दर्शन कराइए ।

भरि भरि प्याला प्रेम रस, अपणे हाथि पिलाइ ।
सतगुरू के सदिकै किया, दादू बलि बलि जाइ ॥४३॥

टीका :- हे गुरूदेव ! मैं तन, मन, धन, बचन आदि आपके भेंट करता हूं, ओर मैं आपकी बारंबार बन्दना करता हूं। क्यों ? किस लिए ? 'भरि भरि प्याला प्रेम रस अपणे हाथ पिलाइ'-अर्थात् अपने हित भावनारूपी हाथों से, प्रेमरूपी प्याला रामरस से, भर भर कर, बारंबार पिलाइए । यही आपसे प्रार्थना है ।

जब सतगुरू ने परमेश्वर को जिज्ञासु के हृदय में ही बताया है, तो अब शिष्य स्वयं ही आतमसाक्षात्कार कर लेगा । आप सतगुरू की बन्दना क्यों करते हो ? इसका उत्तर कहते हैं ।

सरवर भरिया दह दिसा, पंखी प्यासा जाइ ।
दादू गुरू प्रसाद बिन, क्यों जल पीवै आइ ॥४४॥

टीका :- दशों दिशाओं में अपार समुद्र भरा हुआ है । तथापि 'पक्षी प्यासा जाइ' - कहिये जलाशय यदि बिना घाट का है, तो प्यासे पक्षी आदि उसमें कैसे जल पी सकते हैं ? अर्थात् प्यासे ही उड़ जाते हैं । इसी तरह दाराष्टांत में भी , जो संसार है, वह दशों दिशाओं में जलरूपी सरोवर की भांति व्यापक है और जो आनन्द चेतन्य है, वह अगाध एवं अपार मनेन्द्रियों से न जानने योग्य है, और पक्षी आदि की भांति जो अज्ञानी जिज्ञासु जन हैं, वे 'आइ' इस संसार में आ करके, प्यासा आत्म साक्षात्कार के बिना, दुःखी ही चला जाता है । क्यों ? 'दादू गुरू प्रसाद बिन कयों जल पीवै आइ' - अर्थात् सतगुरू को कृपा ही मानों इस सागर से, राम रस रूपी जल पीने का घाट है, और उसके नहीं प्राप्त होनें से, यह जीव प्रभु की महिमा, कैसे पहचान सकता है ? सतगुरू कृपा से ही मुमुक्षु का कल्याण होता है ।

अब सतगुरू कृपा से ही आत्म साक्षात्कार होना सम्भव है । तो स्वयं सतगुरू ही कृपा करके क्यों न ज्ञान देवें ? जो समर्थ होकर भी उपदेश नही देते हैं, तो उन्ही को दोष होवेगा । अब इसके उत्तर में निरूपण करते हैं ।

('सतगुरू वेपरवाही')

मान सरोवर मांहि जल, प्यासा पीवै आइ।
दादू दोष न दीजिये, घर घर कहण न जाइ ॥४५॥

टीका :- अपार जलाशय में भरपूर जल होता है, जिसको प्यास हो, वह स्वयं ही पिपासु आ करके मानसरोवर में जल पीता है। परन्तु मानसरोवर किसी के घर घर में नहीं कहता फिरता है। इसलिए उसको कोई व्यवहार में दोष नहीं देना। इसी प्रकार सतगुरू तो मानसरोवर रूप हैं, और उन्हों में जो आत्म अनुभव रूप, जो जल भरा हुआ है, उसको उत्तम जिज्ञासु, सतगुरू की शरण में आ कर के, आत्मा का अनुभव करता है। किन्तु, सतगुरू 'घर घर'—कहिए अनाधिकारी, बिना जिज्ञासा कै कहिए बिना इच्छा के, आत्म उपदेश नहीं करते हैं। इसमें सतगुरू का दोष नहीं है।

(अब सतगुरू तीन श्रेणी के माने गए हैं)

दोहा :- बर परमोधै आन को, पूछे तैं बरीयान।
बतलायां बोलै नहीं, सो बरिष्ठ कर जान ॥४५॥

भावार्थ यह है कि 'बर', 'बरियान', 'बरिष्ठ', बर श्रेणी के सतगुरू, अधिकारी, अनाधिकारी का विचार न करके, परोपकार भावना से जीव मात्र को सत्योपदेश करते हैं। किन्तु 'बरीयान' —व्यवहार कोटि से मुक्त होते हैं, एवं इच्छा करने पर ही शिष्य को उपदेश करते हैं। और वरिष्ठ श्रेणी के सतगुरू देहाध्यास से मुक्त, अर्थात् विदेह होकर रहते हैं। ऐसे महात्माओं के दर्शनों से ही अपूर्व लाभ होता है। अब तीसरी श्रेणी के सतगुरू की महिमा कहते हैं।

(गुरू लक्षण)

दादू गुरू गरवा मिल्या, ताथैं सबगमि होई।
लोहा पारस परसतां, सहज समाना सोई ॥४६॥

टीका :- प्रस्तुत में 'गरवा' शब्द से वरिष्ठ श्रेणी के सतगुरू का संकेत है। यदि सौभाग्य से ऐसे 'गरवा' नाम सर्वशक्तिवान, सतगुरू की प्राप्ति हो जावे, तो उसकी कृपा दृष्टि से ही, संपूर्ण जो परमेश्वर है, उसमें गति (लय) होती है। जैसे :- लोहा पारस के स्पर्श मात्र से कन्चन बन जाता है, तद् अनुरूप ही लोहा स्थानीय जो जिज्ञासु हैं, वे पारस स्वरूप गुरूदेव के चरण-स्पर्श या दर्शन मात्र से ही, तत्स्वरूप हो जाते हैं, अर्थात् सतगुरू की भांति ब्रह्मलीन होते हैं।

दोहा :- लोहा हिंसक कठिन कालिमां, अनादर नित्यभंग।
षट विकार शिष्य लोह के, गुरू पारस सत्संग ॥४६॥

दीन गरीबी गहि रह्या, गरवा गुरू गम्भीर।
सूक्ष्म शीतल सुरति मति, सहज दया गुरू धीर ॥४७॥

टीका :- 'दीन गरीबी' वह पर्यायवाचक शब्द है। किन्तु यहां पर दीन शब्द से बाह्य नम्रता और गरीबी शब्द से अन्तर निराभिमानता का संकेत है। क्योंकि व्यवहार में तो अपने से बड़ों के या जिनसे स्वार्थ विशेष होता है, उनके सामने सभी कोई नम्र होते हैं। किन्तु अन्तःकरण में निराभिमानता, प्रभु की प्रभुता को पूर्ण रूप से जान लेने पर ही, सम्भव है। सतगुरू उपदेश करते हैं कि सच्चे गुरू, उपरोक्त बताई हुई 'दीन गरीबी' को धारण करते हैं। और 'गरबा' कहिए देहाध्यास व लोक व्यवहार से मुक्त हैं, एवं अत्यन्त गंभीर हैं। फिर कैसे हैं ? वे 'सूक्ष्म, शीतल, सुरति, मति सहज दया गुरू धीर'—जिनकी सुरति अति सूक्ष्म है अर्थात् उत्पत्ति विनाश आदिक पदार्थों के जानने वाले हैं, ऐसे गुरूदेव की मति अर्थात् जो बुद्धि है, वह अति शीतल है। और बुद्धि के अत्यन्त शान्त होने से, दया तो स्वभाव से ही होती है और विषय विकारों से बुद्धि का निग्रह करते हैं।

सोधी दात्ता पलक मैं, तिरै तिरावण जोग।
दादू अैसा परम गुरू, पाया किंहि संजोग ॥४८॥

टीका :- पूर्व लक्षण सम्पन्न, ऐसे जो गुरू हैं, वे पलक में दर्शन मात्र से, निर्मल बुद्धि के देने वाले हैं और ऐसे परम सामर्थ्यवान सतगुरू का जिनको, सत्योपदेश मिला है, कि वे स्वयं तो इस दुःख रूपी संसार से मुक्त हुए ही हैं, परन्तु दूसरे जिज्ञासुजनों को भी ज्ञान, उपदेश द्वारा मुक्त करते हैं। ऐसे परमार्थी सतगुरू, परमेश्वर की दया से ही मिलते हैं।

दादू सतगुरू अैसा कीजिये, राम रस मात्ता।
पार उतारै पलक मैं, दरशन का दात्ता ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो महापुरुष ज्ञान भक्ति, वैराग्य में मस्त हों, वे दया करते ही पलक मात्र में संसार दुःखों से मुक्त कर देते हैं। ऐसे समर्थ सतगुरू की शरण में आकर रहो, क्योंकि ऐसे सतगुरू ही परमात्मा का प्रत्यक्ष परिचय कराने में समर्थ हैं, और दूसरे नहीं।

पूर्व साखी में जो ''पार उतारैं पलव मैं'' का प्रसंग आया है, उसकी स्पष्टता के लिये दो साखियों में संसार से पार उतारने के साधनों का निरूपण करते हैं ।

देवै किरका दरद का, टूटा जोड़ै तार।
दादू सांधै सुरती को, सो गुरूपीर हमार॥५०॥

टीका :– विरह का कणमात्र 'साल' कहिए ऐसी वेदना द्वारा, श्री सतगुरू 'टूटा जोड़ै तार' —कहिए जिज्ञासु को ब्रह्म की एकता का बोध कराते हैं और चतुष्टय अन्त:करण की जो वृति है, उसको एकाग्र करते हैं । अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा, मन नाना विषयों में भ्रमता है' परन्तु सतगुरू उसको प्रभु भजन में ही एकाग्र करते हैं । जिससे जीव ब्रह्मरूप होता है । इस प्रकार की अपरम्पार महिमा वाले महापुरुष ही, हमारे गुरू हैं और अविद्या अन्धकार का नाश करने वाले हैं । वही हृदय की विरह रूप पीड़ा को मिटाने वाले हैं । प्रस्तुत में 'टूटा जोड़े तार' —की जो उपमा दी है इसमें जीव ब्रह्म की एकता का संकेत है, जैसे :- सूत वस्तुत: है तो एक ही ! किन्तु टुकड़े हो जाने से, भिन्नता प्रतीत होती है, जोड़ने पर पुन: अभेद हो जाता है, इसी प्रकार जीव सुरति विषयाकार हो जाने से, जीव को ब्रह्म स्वरूप से भिन्नता प्रतीत होती है । किन्तु परमार्थ में जीव ब्रह्म एक ही है ।

दादू घाइल व्है रहे, सतगुरू के मारे ।
दादू अंग लगाय करि, भौ सागर तारे ॥ ५१ ॥

टीका :- सतगुरू के शब्दों को अमोघ बाणों की उपमा देकर, श्री सतगुरू महाप्रभु उपदेश करते हैं कि सांचे गुरू के सत्य शब्द रूपी बाणों के लगने से, जिज्ञासु घायल नाम बिरह सहित, प्रभु भक्ति में अत्यन्त विह्वल हो रहे हैं । जिससे अज्ञान का जो पड़दा है, वह दूर हो जाता है और हृदय की शुद्धि होने से जो परमेश्वर है, उसमें मन को एकाग्र करके, 'भव सागर', जैसे :—सागर में जल होता है, तद्वत ही संसार रूपी सागर में भी मानों जन्म-मरण, यश-अपयश, पाप-पुण्य, आदि का भय है । जल की भांति व्याप्त है । उनसे 'तारे'-कहिए पार उतारते हैं, अथवा निर्भय करते हैं ।

'पार उतारै पलक मै' का स्पष्ट अर्थ करके, अब दो साखियों में 'दरसन का दाता'—पद का फल सहित स्पष्ट अर्थ करते हैं ।

दादू सांचा गुरू मिल्या, सांचा दिया दिखाइ।
सांचे कूं सांचा मिल्या, सांचा रह्या समाइ॥५२॥

टीका :- सांचे जिज्ञासु को सांचा गुरू मिला, तो सांचा जो परमेश्वर है, उसका सतगुरू ने, सांचे शिष्य को साक्षात्कार कराया है। जिससे सांचा शिष्य, सांचा परमेश्वर स्वरूप में 'समाया रह्या' नाम, अभेद हो रहा है।

सांचा सतगुरू सोधि ले, सांचे लीजै साध।
सांचा साहिब सोधि करि, दादू भक्ति अगाध ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! यदि प्रभु की अगाध भक्ति का आस्वादन करना है तो, 'सांचा, सतगुरू सोधि ले'--अर्थात् ब्रह्म परायण सतगुरू खोज ले, और ऐसे सतगुरू की खोज करने के लिए अथवा सतगुरू के उपदेश को दृढ़ करने के लिए, सच्चे साधुओं की संगति करो। पुनः सच्चे माया रहित जो निराकार प्रभु हैं, उनमें दृढ़ निश्चय करके, वासनारहित भक्ति करो।

"पार उतारै पलक में दर्शन का दाता"--इन उभय पदों का स्पष्ट अर्थ करके, अब दो साखियों में शिष्य के कर्त्तव्य को दिखाते हैं।

सनमुख सतगुरू साध सौं, साईं सूं राता॥
दादू प्याला प्रेम का, महा रसि माता ॥५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! आत्मज्ञानी सतगुरू के सन्मुख कहिए आज्ञा में रहो और श्रेष्ठ साधुओं की जो करणी है, उसको धारण करो। 'सांई परमेश्वर से राता'--नाम अनन्य भक्त होकर रहो। इससे क्या फल की प्राप्ति होगी? सो वर्णन करते हैं, 'दादू प्याला प्रेम का महा रसि माता'--अर्थात् प्रेम ही है प्याला, और उसमें महारस नाम आत्मानन्द ही जल है और सर्व गुण संपन्न जो उत्तम जिज्ञासु हैं, वे आत्मानन्द का अनुभव करके, इस संसार में 'माता'--मस्त जीवन मुक्त होकर रहते हैं।

सांई सौं सांचा रहै, सतगुरू सौं सूरा।
साधौं से सनमुख रहै, सो दादू पूरा ॥५५॥

टीका :- हे संतो ! सांई परमेश्वर उससे, 'सांचा'--नाम अनन्य भक्त होकर के रहो और 'सतगुरू सौं सूरा'-- अर्थात सतगुरू के उपदेश में श्रद्धा सहित सलग्न रहो और साधु कहिए श्रेष्ठ पुरूषों के सन्मुख रह कर, उन्हीं की आज्ञा के अनुसार व्यवहार करो। ऐसे जिज्ञासु जन 'पूरा' कहिए, सर्व लक्षण संपन्न, उत्तम हैं।

पूर्व प्रसंग में सतगुरू ने उत्तम शिष्य के उत्तम लक्षणों का वर्णन किया है, परन्तु योग्य शिष्य को सतगुरू की प्राप्ति से जो अमृत फल मिलता है, अब उसको दो साखियों में वर्णन करते हैं।

सतगुरू मिलैं तैं पाइयें, भक्ति मुक्ति भंडार ।
दादू सहजैं देखिए, साहिब का दीदार ॥५६॥

टीका :- उत्तम भाग्य से यदि पवित्र जिज्ञासु को सतगुरू मिल जावें, तो भक्ति और मुक्ति को उत्तम शिष्य प्राप्त करता है । अथवा मुक्ति का भंडार रूपी, भक्ति को प्राप्त करता है । जिससे 'दादू सहजैं देखिए साहिब का दीदार'--'सहजैं'--कहिए सहजावस्था सुख दुखादि द्वन्द्वों से उदासीन वृत्ति धारण करके, सतगुरू की कृपा से साहिब, परमेश्वर का दर्शन देखिए— नाम मुमुक्षुजन साक्षात्कार करते हैं ।

दादू सांई सतगुरू सेविये, भगति मुक्ति फल होई ।
अमर अभय पद पाइये, काल न लागै कोई ॥५७॥

टीका :- हे मुमुक्षुजनों ! सांई और सतगुरू अथवा सतगुरू को सांई रूप जान करके, सेवा करने से भक्ति और जीवन मुक्ति रूप फल होता है । जिससे जिज्ञासु अमर जरामरण से मुक्त व अभय काम क्रोधादि के भय से भी मुक्त हो जाते हैं । कैसा है यह अमर अभय पद ? 'काल न लागै कोई'--जहां किसी भी काल की गति नहीं है, अर्थात जिसका कभी भी क्षय नहीं होता है ।

अब निम्न दो साखियों से गुरू बिना ज्ञान सम्भव नहीं है, इसका वर्णन करते हैं ।

(सतगुरू बिमुख ज्ञान)

इक लख चन्दा आणि घरि, सूरज कोटि मिलाय ।
दादू गुरू गोबिन्द बिन, तो भी तिमर न जाय ॥५८॥

टीका :- सतगुरू और प्रभु अथवा गोबिन्द स्वरूप सतगुरू की कृपा बिना, 'घर' कहिए-मनुष्य शरीर में एक लाख चन्द्रमाओं के, 'आणि' कहिए—प्रगट करने से, और उनमें 'कोटि' करोड़ों सूर्यों का प्रकाश मिलाने पर भी, 'तिमिर' कहिए—अन्धकार, अविद्या का नाश सम्भव नहीं है ।

पूर्व कहे हुए भावार्थ को ही पुनः प्रदर्शित करते हैं ।

अनेक चंद उदै करै, असकं सूर प्रकास ।
एक निरंजन नांव बिन, दादू नही उजास ॥५९॥

टीका :- अनेक गिनती रहित असंख्य चन्द्रमाओं का प्रकाश, 'उदै करै' नाम-प्रगटै और असंख्य सूर्यों का प्रकाश उनमें और मिलावैं, तो भी सतगुरू उपदेश बिना, अविद्या का कहिए अज्ञान का नाश नहीं होता

है। सतगुरू का उपदेश एक अद्वितीय निरंजन निराकार जो प्रभु है, 'उसका' नाम कहिए—चिन्तनरूपी आश्रय बिना, 'उजास' कहिए—प्रकाश नहीं होता है। यहां पर चन्द्र आदि से तो नाना शास्त्र ज्ञान का, और सूर्य पद से वेद आदि का लक्ष्य है। अर्थात् सतगुरू का ज्ञान उपदेश ही शास्त्र आदि की सफलता में हेतु है।

अब ज्ञान प्राप्ति के निमित्त, जो ज्ञान प्रतिबन्धक हैं, उनकी निवृत्ति के लिए जिज्ञासु, सतगुरू से प्रार्थना करता है।

दादू कदि यहु आपा जाइगा, कदि यहु बिसरै और।
कदि यहु सुक्ष्म होइगा, कदि यहु पावै ठौर ॥ ६० ॥

टीका :- हे सतगुरू ! यह प्रत्यक्ष अनुभव होने वाला, 'आपा' कहिए—अहंकार, मैं और मेरे का जो यह मिथ्या अभिमान है, वह कब दूर होवेगा ? 'और' कहिए—सब अनात्म पदार्थों में सत्य की भ्रान्ति को यह अज्ञानी जीवात्मा, 'मैं' कैसे भूल सकूंगा। हे दयामूर्ति यह जीवात्मा कब आवरण रहित हो जावेगा, और निज स्वरूप परमेश्वर प्राप्ति रूप जो स्थान है, उसका किस समय और कौन से साधन से प्रत्यक्ष दर्शन होगा ?

आत्म कल्याण के लिए शिष्य पुनः सतगुरू से बिनय करता है।

दादू विषम दुहेला जीव कौं, सतगुरू सैं आसान।
जब दरवै तब पाइए, नेड़ाई असथान ॥ ६१ ॥

टीका :- हे दीनों के उद्धारक ! इस अज्ञानी जीव को तो ईश्वर प्राप्ति का मार्ग अति कठिन है और समर्थ गुरूदेव से सहज है। यदि समर्थ गुरू ही प्रसन्न होकर कृपा करें, तो परमेश्वर प्राप्ति का स्थान, निश्चय कहिए, समीप ही है। इसलिए हे गुरूदेव ! आप कृपा करके, मुझ जीवात्मा का कल्याण करो।

पहली साखी में सतगुरू ने प्रभु प्राप्ति के लिए जिस स्थान का प्रतिपादन किया है, किन्तु व्यवहार में उसका प्रत्यक्ष परिचय तो होता नहीं है ? तो फिर परमेश्वर की अति समीपता कैसे बतलाई ? अब सप्रमाण जिज्ञासु के भ्रम निवारणार्थ, परमात्मा की सामिप्यता को स्पष्ट करते हैं।

(गुरू ज्ञान)

दादू नैनन देखै नैन को, अन्तर भी कुछ नांहि।
सतगुरू दर्पण कर दिया, अरस परस मिलि मांहि॥ ६२ ॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! नेत्र अपने आपको नहीं देखता है, यद्यपि उसमें कुछ भी अन्तर नहीं है। इसी प्रकार यह जीवात्मा परमात्मा से 'अभिन्न' कहिए—अलग नहीं है। फिर भी परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता ?

मतलब यह है कि अत्यन्त सामिप्य भी, देखने की क्रिया में प्रतिबंधक है। जो उक्त प्रमाण से स्वयं अनुभव सिद्ध है और एक ही वस्तु में विषय और विषयी भाव बनता भी नहीं ? क्योंकि घट, पट आदि पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय हो सकते हैं, किन्तु जीब और ब्रह्म में अभिन्नता होने से, दृश्य और दृष्टा भाव असम्भव है, कहिए बनता नहीं।

(शिष्य जिज्ञासा)

जीवात्मा को परमात्मा का प्रत्यक्ष दर्शन सम्भव नहीं है, तो पूर्व प्रसंग में ५०वीं साखी में सतगुरू को 'दर्शन का दाता' कहने में दोष आपत्ति होवेगी। इसलिए अब प्रकारान्तर से, सतगुरू कृपा द्वारा, परमात्मा के दर्शन, सप्रमाण स्पष्ट करते हैं। कृपा सिन्धु सतगुरू ने ब्रह्म विषयिणी बुद्धि रूप जो हाथ है, उसमें आत्मज्ञान रूपी दर्पण दिया, तो वह जीवात्मा परमात्मा से, अरस परस अनन्य भाव को प्राप्त करके, स्वस्वरूप में स्थिर हो जाता है।

अब फिर से श्री सतगुरू इसी भाव को और दो साखियों में स्पष्ट करते हैं।

घटि घटि राम रत्तन है, दादू लखै न कोइ।
सतगुरू सबदौं पाइयें, सहजैं ही गम होइ॥ ६२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! सभी शरीरों में राम रूपी रतन व्याप्त है, परन्तु सतगुरू की कृपा के बिना आत्मानुभव नहीं होता है। अब सतगुरू के उपदेश से बिना प्रयतन के ही, निश्चय से राम रत्तन को जानने की बुद्धि होती है। जिससे अनायास ही प्रभु की प्राप्ति हो जाती है।

दोहा :- **संत बणिक की हाट पर, सहजैं बैठे आइ।**
तूँ निरधन तव धन घणों, पारस दियो बताइ॥ ६२॥

दृष्टान्त :- एक संत घूमते हुए जा रहे थे। रास्ते में एक वैश्य की दुकान आई। वह वैश्य भक्त था। उसने संत को नमस्कार किया और बोला, महाराज ! आओ दुकान में बिराजो। संत उसका प्रेम देखकर उसकी दुकान में बैठ गया। उसने भुने हुए चने महाराज जी को दिए और पाने के लिए कहा। जब संत जी चने पा चुके थे और जल पी चुके थे, तो वैश्य हाथ जोड़कर बोला :-महाराज, कृपा करो। मैं गरीब हूं निर्धन हूं। संत ने उसके बांटों की ओर देखा, तो उसमें एक पारस दिखाई दिया। संत जी बोले--तूं निर्धन कैसे है ? तेरे पास तो बहुत धन है। वैश्य ने कहा "महाराज ! धन कहां है ?" तब संत जी ने उसे एक बट्टा उठाकर कहा कि ये पारस है, लोहे को जो लगाया कि स्वर्ण हो गया। वैश्य की निर्धनता खत्म हुई,

संत के द्वारा। उदाहरण में सतगुरू ने वैसे ही परमात्मा रूपी पारस को, जिज्ञासु के हृदय में बताया, जिससे उसकी जन्म जन्मान्तरों की निर्धनता नष्ट हो गई और जिज्ञासु कृत्य-कृत्य हो गया।

जब ही कर दीपक दिया, तब सब सूझन लाग।
यूँ दादू गुरू ज्ञान सै, राम कहत जन जाग ॥६४॥

टीका :- जैसे अन्धकार में कोई वस्तु नहीं मिलती है। किन्तु जब हाथ में दीपक हो तो, सब इष्ट पदार्थ दिखने लगते हैं, इसी प्रकार दाराष्टान्त में सतगुरू के 'तत्वमसि' आदि उपदेश से निर्गुण राम का स्मरण, ज्ञान अवस्था में करते हैं।

अब सतगुरू भगवान चार साखियों में आत्म कल्याण के लिए, आत्मार्थी भेष का प्रतिपादन करेंगे।

(आत्मार्थी भेष)

दादू मन माला तहं फेरिये, जहं दिवस न परसै रात।
तहां गुरू बानाँ दिया, सहजै जपिये तात ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों! यह मन ही मानों माला है, इसकी अन्तर्मुखी वृत्ति करिए। मन की नाना फुरना ही माला के मणियों के समान है। और माला के मणिए, जैसे अपनी ओर ही फेरे जाते हैं, उसी प्रकार, मन की वृत्तियों को भी अनात्म पदार्थों से हटा करके, 'दिन' कहिये--ज्ञान, और रात्रि कहिए--अज्ञान, दोनों ही जहां नहीं व्याप्त होते हैं, ऐसा जो स्वरूप है, तहां 'फेरिये' कहिए--मन को लगाइए। हे मुमुक्षु! तभी तुम्हारे परिछिन्न अहंकार का नाश होगा। तहां बुद्धि व्यवधान रहित जो आत्माकार वृत्ति है, सोइ बाना कहिये--नाम भेष या दीक्षा, श्री सतगुरू ने शिष्य को दिया है। तात् हे परमेश्वर! या 'तात' कहिए हे प्रिय, अथवा 'तात' तत्पर होकर, 'सहजै' कहिए निष्काम भाव से जपिये। अर्थात् प्रभु का स्मरण करिए।

अब शिष्य के "कदि यहु बिसरै और" इस प्रश्न का समाधान करते हैं।

दादू मन माला तहं फेरिये, जहं प्रीत्तम बैठे पास।
आगम गुरू थैं गम भया, पाया नूर निवास ॥६६॥

टीका :- जहां कहिए--हृदय में परम स्नेही परमेश्वर जीवात्मा के समीप, अन्तःकरण में ही विद्यमान है। अब 'तहां' मन की माला स्वरूप वृत्तियों को, विषय विकारादि से हटाकर, आत्मा के सन्मुख करिये हे जिज्ञासु! प्रभु से संसार की जो भिन्न प्रतीति होती है, उसको बिसारने का यही सर्वोत्तम साधन है। और

त्रिकालदर्शी सतगुरू अथवा सतगुरू कृपा से परमेश्वर में गम भया, नाम साक्षात्कार बुद्धि हुई है, जिससे मोक्ष रूप, परम पद मिलेगा । अर्थात् अब "कदि यहु सूक्ष्म होइगा" इस तीसरे प्रश्न का समाधान करते हैं ।

दादू मन माला तहं फेरिये, जहं आपै एक अनन्त ।
सहजैं सो सतगुरू मिल्या, जुग-जुग फाग बसन्त ॥६७॥

टीका :- हे मुमुक्षुजन ! जहां जिस स्थान में कहिये--सजातीय, विजातीय आदि भेद रहित अनन्त, कहिए देश काल आदि परिच्छेद रहित, जो केवल आपै आप रूप ब्रह्म है, तहां मन की माला रूप वृत्तियों को फेरिये अर्थात् नामरूप पदार्थों से उदासीन बनाकर, निरंजन निराकार प्रभु में एकाग्र करिये । इससे सहज ही में, मन सूक्ष्म नाम, निर्मल होवेगा, और सतगुरू की कृपा से जिज्ञासु जन 'सहजैं' कहिये सहजावस्था को प्राप्त करके, ब्रह्म का प्रत्यक्ष दर्शन करेंगे । इसका फल क्या हुआ ? ,जुग-जुग फाग बसन्त'--जैसे बसन्त ऋतु में, संसारिक जन 'फाग' कहिये आनन्द प्रमोद करते हैं, उसी प्रकार परमात्मा से एकाग्र वृत्ति होने पर युग-युगान्तर में सदा ही आनन्द स्वरूप होकर अमर रहेंगे ।

अर्थात् अब "कदि यहु पावै ठौर" इस चौथे प्रश्न का समाधान करते हैं ।

दादू सतगुरू माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोइ ।
बिन हाथों निस दिन जपै, परम जाप यूँ होइ ॥ ६८ ॥

टीका :- सतगुरू ने मनरूपी माला शिष्य को दी है । किन्तु माला में तो धागा भी चाहिए । सो धागे का स्वरूप कहते हैं । श्वास और सत्वगुण की परिणाम वृत्ति, ये तो माला का धागा है । जिसमें 'पोइ' नाम मणिये रूप मन की, संकल्पात्मक और विकल्पात्मक वृतियों को एकाग्र करिये । अब अपूर्व माला की जाप विधि की अपूर्वता कहते हैं । 'बिन हाथों निस दिन जपै'—कहिये व्यवहारिक भावना के बिना निष्काम भाव से, आठों पहर जपता रहै । इसी प्रकार से परम जाप, शुद्ध ईश्वर भक्ति होती है । जिससे उत्तम जिज्ञासु परमेश्वर की प्रसन्नता स्वरूप, निज स्थान पावेंगे ।

अब श्री सतगुरू ६६वीं साखी में जो 'गुरू बाना' का प्रसंग आया है, उसका कर्त्तव्या-कर्त्तव्य सहित विस्तृत वर्णन करते हैं ।

दादू मन फकीर मांही हुवा, भीतर लिया भेष ।
शब्द गहै गुरूदेव का, मांगै भीख अलेख ॥६९॥

टीका :—सतगुरू के उपदेश से जिज्ञासुजनों का जो मन है, वह फकीर हुआ है अर्थात् संसारिक विषयों से उदासीन हो गया। फकीर मन का भेख क्या है ? स्वस्वरूप में एकाग्र होना ही मानो, फकीर मन का भेख है। फकीर मन भीख क्या मांगता है ? सतगुरू के शब्द जो सत्य उपदेश हैं, उन्हें ग्रहण करना ही मानो फकीर मन की भिक्षा मांगने की झोली है और "जो न लखने में आवै" कहिए, परमेश्वर उसी के दर्शन रूप भिक्षा माँगता है।

दादू मन फकीर सतगुरू किया, कहि समझाया ज्ञान।
निश्चल आसणि बैस करि, अकल पुरूष का ध्यान ॥७०॥

टीका :- सतगुरू ने ज्ञान का उपदेश करके समझाया, नाम कर्त्तव्य बोध कराके मन फकीर को, विषय विकार आदि संसारिक प्रपंचों से मुक्त किया है। इससे चंचल मन निश्चल कहिए, शांत आसन जो अन्तःकरण है, तहां बैस "करि" अर्थात् एकाग्र चित्त हो करके, 'अकल' कहिए—कला रहित, जिसमें घटने बढ़ने की कोई कला नहीं है, अजर अमर ऐसा जो निरंजन निराकार प्रभु है, उसी का मन फकीर, ध्यान करने लगा है।

दादू मन फकीर जगथैं रह्या, सतगुरू लीया लाइ।
अह निस लागा ऐक सौं, सहज सुन्य रस खाइ ॥ ७१ ॥

टीका: :- सतगुरू ने उपदेश से मन को फकीर किया, तो फकीर मन जगत् से अनासक्त हो गया है। इसलिए सतगुरू ने प्रसन्न होकर, शिष्य को अपनी शरण में लिया है, और नाम उपदेश के द्वारा, परमेश्वर में शिष्य की वृत्ति लगा दी है। जिससे आठों पहर एक अद्वितीय पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर में एकाग्र चित हुआ। सहज कहिए—ध्यान धारणा द्वारा सहजावस्था प्राप्त करके, शून्य रस निर्द्वन्द्व निर्विकल्परूप जो परमानन्द है, उसको उत्तम जिज्ञासु अनुभव करता है।

दादू मन फकीर अैसैं भया, सतगुरू के परसाद।
जहां का था लागा तहां, छूटै बाद बिवाद ॥ ७२॥

टीका :- फकीर मन शुद्ध चेतन का अंश था। श्री गुरूदेव की कृपा द्वारा, परमेश्वर में एकाग्र हुआ, जिससे मन के सब संशय दूर हो गए। अब सतगुरू शिष्य को मध्यम मार्ग का उपदेश करते हैं।

ना घरि रह्या न बन गया, न कुछ किया कलेस॥
दादू मन ही मन मिल्या, सतगुरू के उपदेश ॥७३॥

टीका :- उत्तम जिज्ञासु को घर में रह करके, घर का अभिमान नहीं करना चाहिए और बन में रह करके, बन का अभिमान नहीं करना चाहिए। अथवा आत्म साक्षात्कार के लिए, न घर ही उत्तम है और न बन ही। निरपेक्ष भाव से जहां भी हो, वहीं पर प्रभु का भजन करो। कष्ट साध्य जो ब्रतादि हैं, उनसे प्रभु का साक्षात्कार होना सम्भव नहीं है। तो प्रभु का साक्षात्कार कौनसे साधन से होता है ? उत्तर :- सतगुरू उपदेश करते हैं कि "दादू मन ही मन मिल्या सतगुरू के उपदेश"--अर्थात् सतगुरू का जो उपदेश है, उसी के पालन से मन जो व्यष्टि चेतन है, वह मन समष्टि चेतन्य से एक रूप हुआ है।

पूर्व उपदेश से जिज्ञासु का घर बन व्रत आदि का संकल्प, तो जाता रहा, किन्तु मन्दिर मस्जिद तीर्थादि से मुक्ति का भ्रम करता है ? अब सतगुरू उपदेश करते हैं।

(भ्रम विध्वंस)

दादू यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुरू दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ॥७४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह शरीर ही मानो, मन्दिर और मजिस्द है। ऐसा ज्ञान सतगुरू ने बताया है। जैसे मन्दिर में देवताओं की सेवा करते हैं और मुसलमान वैसे मस्जिद में नमाज पढ़ते हैं, तदवत् कहिए हे जिज्ञासु ! वैसे ही अन्तःकरण में स्थित जो चेतन्य रूप परमात्मा है, उसकी बन्दगी और सेवा करो। 'बाहरि काहे जाइ' —अर्थात् मनुष्य आदि कृत मन्दिर और मस्जिद में क्यों दौड़ते हो ? प्रसिद्ध है कि इस साखी से नागर, ब्राह्मण और निजाम मुसलमान को उपदेश किया था। अर्थात् व्यवहार में तो मन्दिर में पुजारी और मस्जिद में मौलवी उपदेष्टा होते हैं अर्थात् उपदेश देने वाले होते हैं, सो यहां पर भी उपदेष्टा और उपदेश विधि का स्वरूप बताते हैं।

(कस्तूरिया मृग)

दादू मंझे चेला मंझि गुरू, मंझे ही उपदेश।
बाहर ढूढैं बावरे, जटा बधाये केस ॥७५॥

टीका :- देह के अन्दर ही शिष्य की सात्विक वृत्ति है, वह तो चेला है और भीतर गुरू का सत्य उपदेश जो है, वह गुरू है। और गुरू के ज्ञान का जो बार-बार श्रवण, मनन, निदिध्यास करना है, वही मानो उपदेश मंत्र है।

इसलिए सच्चे गुरू के, सच्चे उपदेश से, आत्म अनुभव करो। शेष जो ऊपरी चिन्ह, भेष बाना बनाकर बाहर कहिए, मंदिर तीर्थ, व्रत आदि में परमेश्वर की खोज करते हैं, वे आत्म ज्ञान से शून्य हैं। वे

लोग कस्तुरिया मृग की भांति निष्फल ही रहते हैं ।

अब पूर्व प्रसंग में मन को फकीर कहा है, उसके केशादि के मुंडन की विधि का प्रतिपादन करते हैं ।

(मन का दवन)

मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केश ।
दादू विषय विकार सब, सतगुरू के उपदेश ॥७६॥

टीका :- काम क्रोध लोभ मोह आदि विषय विकार ही मानो, फकीर मन के केश हैं । गुरू उपदेश आदि उस्तरा से, इन केशों का मुंडन करना चाहिए ।

(भ्रम विध्वंस)

दादू पड़दा भ्रम का, रह्या सकल घटि छाइ ।
गुरू गोबिन्द कृपा करै, तो सहजैं ही मिट जाइ ॥७७॥

टीका :-सम्पूर्ण शरीर में भ्रम नाम अनात्म पदार्थों में आसक्ति जन्य पड़दा, अज्ञान व्याप्त है । गोबिन्दरूप सतगुरू जब कृपा करें, तो 'सहजैं'--कहिए बिना प्रयत्न ही ''मिट जाय'' अर्थात् अज्ञान का नाश हो जाए, इसलिए हें जिज्ञासुजनों ! सदैव सतगुरू की शरण में रहो ।

(सूक्ष्म मार्ग)

दादू जिहिं मत साधू उधरैं, सो मत लिया सोध ।
मन लै मारग मूल गहि, यहु सतगुरू का परमोध ॥७८॥

टीका :-जिस मत का अनुसरण कहिए--प्राप्त करके सर्व संत परमेश्वर का साक्षात्कार किया है । हे जिज्ञासुजनों ! ऐसे मत को विचार पूर्वक ग्रहण करो, अर्थात् धारण करो । ऐसा वह मत क्या है ? एक निष्ठा का जो मार्ग है, उसको धारण करके सबका आदि कारण जो परमात्मा है, उसमें अपने मन को लय के द्वारा लीन करो । सतगुरू का केवल यही उपदेश है ।

दादू सोई मार्ग मन गह्या, जिहिं मारग मिलिए जाइ ।
वेद कुरानौं नां कह्या, सो गुरू दिया दिखाइ ॥७९॥

टीका :- जिस साधना द्वारा प्रभु का साक्षात्कार होता है, मन को ऐसे मार्ग साधना में एकाग्र करो, और अनात्म पदार्थों से उदासीन करके, अन्तर्मुखी बनाओ । वेद और कुरान जिस प्रभु का शक्ति वृत्ति करके,

साक्षात्कार नहीं कर सकते, सतगुरू उसका लक्षणावृत्ति से प्रत्यक्ष अनुभव कराते हैं । अथवा 'नैति-नैति'--इस प्रकार से वेद जिस प्रभु का वर्णन करते हैं, सतगुरू उसका प्रत्यक्ष बोध कराते हैं । अथवा नाम द्वारा वेद कुरान जिस प्रभु का प्रतिपादन कहिए वर्णन करते हैं, सतगुरू उसका परिचय कराते हैं ।

अब सर्प के दृष्टान्त द्वारा गुरू की महिमा व मनोनिग्रह का उपदेश करते हैं ।

(विचार)

दादू मन भुजंग यहु विष भर्‌या, निर विष क्योंहीं न होइ ।
दादू मिल्या गुरू गारड़ी, निरविष किया सोइ ॥८०॥

टीका :- भयंकर सर्प जिस प्रकार विष से भरा हुआ होता है, और वह सर्प जिस किसी भी प्राणी को डसे, वही मर जाता है । तद्‌अनुरूप ही यह मन भी मानो भयंकर सर्प की तरह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषयों के आकर्षण रूपी विष से व्याप्त है और जिस प्रकार भयंकर सर्प जिसको डस लेवे, तो जहर उतारने वाला, वैद्य तो फिर भी रक्षा कर सकता है, अन्यथा निर्विष होना सम्भव नहीं है । इसी प्रकार मनरूपी सर्प से डसे हुए विषयों से लिपायमान प्राणी को भी, सतगुरू रूपी गारुड़ी, वैद्य ही, भले ही रक्षा कर लेवै अन्यथा विषयासक्ति से मुक्त होने का और कोई उपाय नहीं है ।

अब जिज्ञासुजनों के कर्त्तव्य कहते हैं ।

ऐता कीजै आपथैं, तन मन उन मन लाइ ।
पंच समाधी राखिये, दूजा सहज सुभाइ ॥८१॥

टीका :- 'एता' नाम इस प्रसंग में कहे जा रहे हैं, जो उत्तम साधन हैं, सो तो स्वयं जिज्ञासु को धारण करने योग्य हैं, जैसे :--शरीर और मन को विषयासक्ति से उदासीन बनाकर, प्रभु में एकाग्र करो और पांच जो ज्ञानेन्द्रियां हैं उनको निग्रह करके, समाधि में लगाओ । 'दूजा' कहिये-प्रेमा भक्ति अजपा जाप आदि साधन सहित, जिज्ञासु को सतगुरू कृपा से सहज ही कहिए--स्वभाव से ही प्राप्त होने योग्य हैं । अब तन मन आदि की निर्मलता के अति कठिनता और उसके उपाय कहते हैं ।

दादू जीव जंजालौं पड़ि गया, उलझ्या नौ मण सूत ।
कोई एक सुलझै सावधान, गुरू बाइक अवधूत ॥८२॥

टीका :- गुरूदेव उपदेश करते हैं कि यह अज्ञानी जीव, संसार के विषय विकारों आदि प्रपंचों में 'पड़ि गया' कहिए, आसक्त हो गया है । और नौ नाम कान, नेत्र, नाक, जिह्वा, त्वचा, चतुष्ठ अन्तःकरण, इसके विषय

विकारों में बुद्धि उलझ रही है, उसको कोई धैर्यवान ही सुलझा सकता है, अन्यथा इस कच्चे सूत्र का सुलझना अति कठिन है। इसी प्रकार विषयादि में पड़ा हुआ जीव भी कोई बिरला ही विषयों से मुक्त होता है। ऐसा पुरूष कौन है? जो गुरू के वचनों में सावधान कहिये, श्रद्धा पूर्वक तत्पर हो एवं सतगुरू व शास्त्र के उपदेश के अनुसार, जिसने मन की पाप-वृत्तियों का नाश कर लिया है, ऐसा कोई जिज्ञासु सुलझता है।

अब सतगुरू के वचनों की अति सामर्थ्य और मन के अज्ञ स्वभाव, इन उभय पक्ष का, एक साखी में सूत्र रूप से वर्णन करते हैं।

(मन का निग्रह करना)

चंचल चहुं दिसि जात है गुरू बाइक सु बंधि।
दादू संगति साध की, पार ब्रह्म सूँ संधि ।।८३।।

टीका :- यह मन अति चंचल है, क्योंकि नाना विषय वासनाओं में आसक्त हो रहा है। इसलिए हे जिज्ञासु! परमेश्वर साक्षात्कार के लिए, गुरू उपदेश से मन का निग्रह कहिए,—रोकिए। अन्य किसी साधन से नहीं। अब पुनः पूर्व सूत्र के ही व्याख्यान स्वरूप मन की चंचलता, आदि अज्ञता का स्वरूप प्रतिपादन करेंगे।

गुरू अकुंस मानैं नहीं, उदमद माता अंध।
दादू मन चेतै नहीं, काल न देखै फंध ॥८४॥

टीका :- गुरू का जो उपदेश है, उसका यह विषयी मन पालन नहीं करता है। क्योंकि विषयों का जो 'मद' नाम, आसक्ति है, उसके उदय होने से अविवेकी यह मन, मतवाला हो रहा है। जिससे यह कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का कोई विचार नहीं करता है और यहां तक कि जन्म मरणादिक दुःख बन्धनों को भी नहीं विचारता है। इसलिए मन के मते नहीं चलिए।

अब मन को चेत कराने का उपाय कहते हैं :--

दादू मार्‌यां बिन मानै नहीं, यहु मन हरि की आन।
ज्ञान खड़ग गुरूदेव का, ता संगि सदा सुजान ॥८५॥

टीका :- हें संतो! यह चंचल मन विषयों से उपराम किये बिना, मर्यादा या सत्ता को नहीं मानेगा। व्यापकता रूप से मुक्त पुरुष, यह हरि की ,आन' कहिये साख देकर कहते हैं कि सतगुरू के उपदेश को भी

नहीं मानता, इसलिए हे सुजान ! सतगुरू का जो तीव्र वैराग्यमय ज्ञान है, उससे इस चंचल मन को सदा मारिए, अर्थात् बाह्य विषयों से अन्तंमुख वृत्ति बनाइए।

अब श्री सतगुरू मन निग्रह की रीति कहते हैं।

जहां थैं मन उठि चलै, फेरि तहां ही राखि।
तहां दादू लैलीन करि, साध कहैं गुरू साखि ॥८६॥

टीका :- सतगुरू ने जो परमेश्वर सुमिरन का उपदेश किया है, उस उपदेश से, जब मन इद्रियों द्वारा बाह्य वृत्ति होने लगे, तब विषयों से हटाकर, निश्चय पूर्वक सतगुरू के उपदेश में एकाग्र करो। अथवा मन स्वंय जड़ है, किन्तु आत्मचेतन से प्रतिबिम्बित होकर, वहां से इन्द्रियों द्वारा विषय आदिकों की ओर जाता है। इसलिए हे जिज्ञासुजनों ! विषयों में जाते हुए मन को, आत्म परायण बनाओ। प्रथम बार-बार विषयों की ओर दौड़ेगा, परन्तु तुम उसको बारंबार व्यापक परमेश्वर में तत्स्वरूप करो। सतगुरू और महात्मा, मनोनिग्रह की, इस विधि का उपदेश कहते हैं।

अब साधन सहित मन की निर्मलता का उपदेश करते हैं।

दादू मनही सैं मल उपजै, मन हीं सौं मल धोइ।
सीख चली गुरू साध की, तौं तू निर्मल होइ ॥८७॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! जब मन विषयों में सलग्न होता है, तब उससे पाप उत्पन्न होते हैं और यदि मन, प्रभु भजन में लगता है, तो पाप वृत्ति का नाश हो जाता है। सतगुरू 'सीख' कहिए उपदेश और साधु संतों के पद चिन्हों पर निरंतर चलै, अनुकरण करै, तो हे जिज्ञासु ! मन निर्मल हो सकता है, और कोई भी दूसरा उपाय नहीं है।

दोहा :- **दोइ सिद्ध रहै बाज में, सेवक दर्शन जाइ।**
कहि हाल मत जाइ तूँ, लिप्यो कीच कुल आइ ॥८७॥

दृष्टान्त :- एक नगर के भीतर कुटिया बनाकर महात्मा रहते थे। भक्त लोग उनका सतसंग करने हर रोज जाते थे। एक समय नगर के बाहर राजा के बगीचे में भी, एक महात्मा आ कर ठहरे। वह भी

सत्संग करते थे। राजा के सहित नगरवासी भक्त लोग भी, उनका सत्संग करने जाते थे। एक रोज बगीचे वाले संत बोले, अब हम अमुक दिन यहां से प्रस्थान करेंगे। तब भक्त लोग जो नगर में रहने वाले संत थे उन को बोले :-महाराज! आप सत्संग थोड़ी देर किया करो, क्योंकि वे बगीचे में जो संत ठहरे हुए हैं, वे कुछ दिन बाद प्रस्थान करने को कहते हैं। इसलिए उनका सत्संग हमको मिलना फिर कठिन है। आप के प्रवचन तो हम सुनते ही रहेंगे। आप हमें आज्ञा दो, जिससे हम उनके प्रवचन सुन सकें। महात्मा जी बोले अभी तो वे कीचड़ में दबे हैं। कुछ देर में भक्तों ने फिर पूछा :--महाराज! अब हम लोग जाएं? महात्मा जी बोले :-- हां, अब जाओ। वे नहा धो कर बैठे हैं, दर्शनों का फल होगा। भक्त लोग चले और बगीचे में पहुंच कर, संत जी के दर्शन किए। इधर-उधर देखने लगे तो, वहां कोई कीचड़ नहीं दिखाई दिया। तब संत ने उनसे पूछा :--भाई, इधर उधर क्या देख रहे हो? भक्त बोले :--महाराज हमारे नगर के संत ने कहा था, वे कीचड़ में दबे हैं। वह कीचड़ हम देख रहे हैं। हमें कहीं दिखाई नहीं पड़ता? संत :-- उन्होंने सत्य ही कहा है, मेरे प्रवचन में आपको मालूम है, राजा साहब आते हैं, और मेरे पीछे के कुटुम्बी, भाई इत्यादि आए थे। जो मुझ से बोले :--आपके पास राजा आते हैं। आप राजा से बोल दो कि राजन्! इन बिचारों के ऊपर, जो मुकदमा विपक्षी के द्वारा चलाया जा रहा है वह सरासर झूठा है। इसको खत्म करवा दो। जिससे हम दंड से बच जाएंगे। मैंने उनसे कहा :--तुम कल आ जाना। मैं राजा से कह दूंगा। परन्तु रात्रि को जब मैंने विचार किया, मैं राजा से क्या कहूंगा? गरीब बताऊंगा तो राजा बोलेगा :--महाराज, आपको राजकथा से क्या प्रयोजन? आप तो संत है। अगर मैं यह कहूंगा कि ये मेरे कुल बांधव हैं, तो राजा बोलेगा:- आप अभी तक कुल का मोह लिये ही बैठे हो क्या? आपके तो सम्पूर्ण संसार के प्राणी ही कुटुम्ब हैं। इस मोह रूपी कीचड़ में मुझे कुछ सत्य असत्य न सूझा, तब फिर मैंने ईश्वर से प्रार्थना की कि प्रभु मैं किस चक्कर में पड़ गया। मुझे सद्बुद्धि दो, तब परमेश्वर ने मेरा भ्रम दूर करके, सद्बुद्धि दी, और मैं परमेश्वर का भजन करने लगा। यही मेरा स्नान है। जिससे मेरा कुलरूपी कीचड़ मन से धुल गया, अब आपको मेरे दर्शनों का पुण्य हुआ है। उस महापुरूष ने आपको सत्य ही कहा था। ये सुनकर सभी भक्तों ने निश्चय किया कि कुल का कीचड़ वास्तव में ही भारी कीचड़ है। इससे तो कोई संत ही निकल सका है। मन परमेश्वर में लगने से पापरूपी कीचड़ धुल जाता है। और मन परमेश्वर से विमुख होने पर पापरूपी कीचड़ में दब जाता है।

अब प्रमाण सहित विषय निर्वृत्ति और प्रभु स्मरण का उपदेश करते हैं :--

---

दादू कछब अपने करि लिये, मन इन्द्रि निज ठौर।
नाम निरंजन लागि रहु, प्राणी परहरि और॥८८॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों! जैसे :--कछुवा चुगा पानी के लिए इन्द्रियों को बाहर निकालता है, किन्तु कोई विघ्न आता है तो अपनी इन्द्रियों को खोपड़ी में कर लेता है। इसी प्रकार हे जिज्ञासु! विषय विकारादि

को त्याग कर, प्रभु के भजन में दत्तचित्त हो। तात्पर्य यह है कि शरीर के लिए आवश्यक व्यवहार सिद्धि के अतिरिक्त, अपनी इन्द्रियों को प्रभु भजन में एकाग्र करो। इसी में जीवन की सफलता है।

(अधिकारी अनाधिकारी के लक्षण)

मन के मतै सब कोई खेलै, गुरू मुख बिरला कोइ।
दादू मन की मानैं नहीं, सतगुरू का सिख सोइ ॥८९॥

टीका :- सतगुरू उपदेश करते हैं कि सभी पुरुष, मनमुखी हैं। बिना सत्य असत्य का ज्ञान किये ही, मन के प्रभाव में बहने वाले हैं। सतगुरू का आज्ञाकारी शिष्य, तो कोई बिरला ही है। जो जिज्ञासु अपने मन को विषयों के सन्मुख नहीं होने देता है, ऐसा जिज्ञासु ही सतगुरू का आज्ञाकारी योग्य शिष्य है।

दोहा :- जो मन की मानैं नहीं, जीत सके मन सोय।
जीता हालीपाव नें, शुन्य संकल्पसु होय ॥८९॥

दृष्टान्त :- एक समय गोरखनाथ महाराज जी रास्ते पर चले जा रहे थे। जंगल में एक जाट खेत जोत रहा था। धूप तेज होने के कारण योगी, वृक्ष की छाया में खड़े हो गए। उधर से जाट भी वृक्ष की छाया में आकर खड़ा हुआ। संत को पूछने लगा :--तुम कौन हो? संत ने कहा :--तेरे सामने खड़ा हूं, देख लो। जाट बोला :--तेरा नाम क्या है? संत जी बोले :--मेरा नाम गोरखिया है। जाट ने कहा :--वो गोरखनाथ सिद्ध तूं ही है? संत जी बोले, सिद्ध तो मैं नहीं हूं। जाट कहने लगा :--नहीं मैंने तो सुना है तुम सिद्ध हो। बताओ ये लाठी मैं तेरे शरीर पर कहां मारूंगा? संत जी चक्कर में पड़ गए। मन में विचार करने लगे इसको अगर मैं कहूंगा, कि तुम सिर पर मारोगे, तो यह मेरे पैरों पर मारेगा और अगर मैं कहूंगा कि तुम पैरों पर मारोगे, तो यह सिर पर मारेगा। क्योंकि यह बचन सिद्धि देखना चहाता है। तब संत के अपने हाथ में छड़ी थी, उससे जमीन पर एक गोल चक्र बना दिया और बोले :--कि तूं इसमें मारेगा। जाट ने दोनों हाथों से लाठी तान कर गोल चक्र के बाहर, जमीन पर दे मारी। लकड़ी के दो टुकड़े हो गए। जाट बोला :--तेरी तो बात सत्य नहीं हुई। संत जी बोले :--मैंने तो पहले ही कहा था कि मैं सिद्ध नहीं हूं। संत जी मन में विचार करने लगे कि मूर्ख! मुझे तो अपना शरीर बचाना था। परन्तु फिर संत जी के दर्शन करके, जाट में सद्बुद्धि आ गई और जाट बोला :--मुझे तूं अपना शिष्य बना ले। संत जी बोले कि मन का कहना कभी न मानना। यही सतगुरू का शिष्य बनना है। फिर जाट ने मन का कहना नहीं माना और चौरासी सिद्धों में 'हाली पाव' नाम का सिद्ध कहलाने लगा (हाली नाम है हल का)

सब जीवों को मन ठगै, मन को बिरला कोइ।
दादू गुरू के ज्ञान सौं, सांई सन्मुख होइ ॥९०॥

टीका :- गुरू के उपदेश बिना सम्पूर्ण प्राणियों को मन अपने वश में कर लेता है। किन्तु गुरू उपदेश से मन को अपने वश में करने वाले उत्तम जिज्ञासु 'भरथरी' जैसे, कोई बिरले ही होते हैं। वही उत्तम पुरूष हैं जो, प्रभु का साक्षात्कार करते हैं और मुक्त होते हैं।

दोहा :- **मन को ठग्यो जु भरथरी, हलुआ डार तलाब।**
मूरती वन्तो होइ मन, मांगत दियो नसाव ॥९०॥

दृष्टान्त :- एक रोज भरथरी महाराज रास्ते में चले जा रहे थे। सर्दी का मौसम था। थाल में गरम गरम हलवा लेकर, खोमचे वाला भी 'गरम-हलवा' 'गरम हलवा' कहता चला जा रहा था। महाराज के मन में भी हलवा खाने का विचार आया। खोमचे वाला आगे निकल चुका था। तब भरथरी जी के मन ने भरथरी को बाजार में, हलवाइ के यहां ला खड़ा किया। हलवाई ने पूछा :--क्या लोगे ? भरथरी ने कहा :-हलवा लूंगा। हलवाई ने पूछा :--कितने का चाहिए ? भरथरी जी बोले, जितने का तुम दो। हलवाई ने कहा :--उन मजदूरों के साथ पत्थरों को उठा-उठा कर डालो। शाम को पैसे कमा कर लाना तब हलवा दूंगा। भरथरी ठेकेदार के पास पहुंचे। हम भी मजदूरी करेंगे। ठेकेदार बोला :--महाराज ऐसे ही सेवा बतलाओ। भरथरी बोले :--नहीं मजदूरी करेंगे। ठीक है, फिर ये पत्थर उठाओ और मिस्त्रियों के पास पहुंचाओ। संत ने वैसा ही सारे दिन किया। सांयकाल को मजदूरी के पैसे लेकर, हलवाई के पास आए, और बोले :--हलवा दो। हलवाई ने हलवा दिया और पैसे ले लिए। जब संत ने हाथ में हलवा आया तो उनको चेत हुआ कि आज मन ने मुझ को ठग लिया। रास्ते में जाते समय गोबर पड़ा था, वो भी संत जी ने उठा लिया। तालाब पर बैठ कर हलवा और गोबर दोनों अपने सामने रख लिए और मन को बोले :-क्या खाओगे ? हलवा या गोबर। मन ने कहा :-हलवा। संत ने कहा :-हमने तुम्हारा कहना माना है। अब तुम भी हमारा कहना मानो। एक ग्रास हलवे का खाओ तथा एक ग्रास गोबर का खाओ। संत ने दाहिने हाथ में हलवा लिया और बाएं हाथ में गोबर लिया। जब हलवे की तरफ मन ने मुख खोला, तब संत ने झट मुख में गोबर रखा और हलवा तालाब में मछलियों को फेंक दिया। इसी प्रकार सम्पूर्ण हलवा मछलियों को डाल दिया और मन को एक ग्रास भी नहीं दिया। मन मूर्ति रूप से प्रकट होकर, योगी राज से क्षमा याचना की, और वचन दिया कि अब कभी आपको नहीं ठगूंगा।

दादू एकसूं लै लीन हूंणा, सबै सयानप येह।
सतगुरू साधु कहत है, परम तत्त जपि लेह ॥६१॥

टीका :– सब चतुराइयों की यही एक चतुराई है कि हे जिज्ञासुजनों ! एक परमात्मा में लै लगावै। सतगुरू और साधु यहि उपदेश करते हैं। इसलिए हे जिज्ञासुजनों ! जो निरन्जन निराकार है, उसका भजन करो।

सतगुरू शब्द विवेक बिन, संयम रह्या न जाइ।
दादू ज्ञान विचार बिन, विषय हलाहल खाइ ॥६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! सतगुरू के शब्दों का मनन, निदिध्यासन द्वारा युक्तिपूर्वक, विचार किए बिना, विषय विकार आदि को त्याग कर, प्रभु भजन में सलग्न हुए बिना कदापि संभव नहीं है। इसलिए सतगुरू के ज्ञान को, बिना विचार किए शब्द आदि जो विषय हैं उन्हें, चंचल मन भोगता है। अब दृष्टान्त देकर प्रस्तुत पक्ष का फलाफल सहित विवेचन करते हैं।

घरी घरी घट कोलू चलै, अमी महारस जाइ।
दादू गुरू के ज्ञान बिन, विषै हलाहल खाइ ॥६३॥

टीका :– सतगुरू भगवान उपदेश करते हैं कि जैसे घरों में कोल्हू चलता है, तब रस जो सार है, वह तो बह-बह कर कोल्हू के बाहर जाता है और निस्सार खलिक नाम छिलके आदि रह जाते हैं। ऐसे ही दाराष्टान्त में स्त्री पुरूषों के शरीर तो मानो कोल्हू हैं और उनमें जो सप्तमी धातु वीर्य बिन्दु है, वह ही महारस अर्थात् अमी कहिए अमृत है, अथवा ब्रह्मानन्द ही महारस है। और वही अमृत तुल्य है। सतगुरू के ज्ञान बिना प्राणी, अज्ञानता में निस्सार विषय विकार आदि के भोग में, इस अमृत तत्व को व्यर्थ ही गंवाता है। सतगुरू की आज्ञा न मानने से जो फल की अनिष्टता है, सो दो साखियों में कहते हैं।

(गुरू शिष्य प्रमोद)

सतगुरू शब्द उलंघि करि, जिन कोई सिष जाइ।
दादू पग पग काल है, जहां जाइ तहं खाइ ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! सतगुरू के शब्द नाम, आज्ञा का उलंघन करके, कोई भी शिष्य संसारिक विषयों में चित्त न लगाओ, क्योंकि सतगुरू की आज्ञा के विपरीत विषयासक्ति में पल-पल में मृत्यु है।

अर्थात् सतगुरू विमुख शिष्य, स्वर्गादि स्थानों को त्रिशंकु आदि की तरह, प्राप्त भी करले, तो भी, स्वर्ग आदि स्थानों में भी विषयासक्ति होने से, और पुण्य का नाश होने से, पुनरागमनरूप मृत्यु होती ही रहती है।

दोहा :- केसो सिष खानै गयो, गुरू को बचन निवार।
दब्यो गार तलि जाइ के, संतन लियो निकार ॥९४॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज आमेर में निवास करते थे। केशोदास जी शिष्य भंडारी, अर्थात् भोजन बनाने वाले थे। एक रोज चूल्हे के मिट्टी लगाने के लिए मिट्टी लाने गए। दयाल महाराज ने पूछा 'कहां जाते हो ?' बोले :- 'मिट्टी लेने।' महाराज बोले :- "आज मत जाओ। कल जाकर लाना।" परन्तु केशोदास जी ने मन में सोचा कि रोटी तो मुझे बनानी हैं, चूल्हा टूटा है। आज लाऊंगा तो भी मैं ही लाऊंगा और कल भी मुझे ही लानी है, सो आज क्यों न ले आऊं ? तब बोले :- महाराज ! आज ही मिट्टी ले आता हूं। यह कह कर मिट्टी लेने चले गए। जब मिट्टी की खान में मिट्टी खोदने घुसे। एक फावड़ा खोदा कि ऊपर से खान धंस गई और यह नीचे दब गए। तब दयालु महाप्रभु संतों से बोले कि केशोदास जी खान में दब गए हैं। आप जाकर निकाल कर ले आओ। शिष्य लोग गए और मिट्टी के नीचे से लाश निकाल कर महाराज के सामने ले आए। सतगुरू महाराज ने 'सत्यराम' कह कर, उनके शरीर पर हाथ फेरा। वे जीवित हो गए और गुरूदेव के चरणों में नमस्कार किया। उसी समय महाराज ने उपरोक्त साखी से उपदेश किया था।

दोहा :- गुरू बचन ना सत करै, सो कुल कमअसल ढोर।
जन राघौ प्रतीति बिन, भयो साह से चोर ॥९४॥

दृष्टान्त :- एक वैश्य ने यह सुना कि दादू दयाल महाराज भगवान से मिले हुए हैं। वे मुझे भी भगवान से मिला देंगे। यह विचार करके, महाराज के पास आया और बोला महाराज ! आप भगवान से मिले हो, सो मुझको भी भगवान के दर्शन करा दो। ब्रह्मऋषि बोले, 'रामराम किया करो।' वैश्य बोला, यह तो बहुत लम्बी बात है। मुझे तो तत्काल भगवान के दर्शन हो जावें, ऐसी युक्ति बताओ। महाराज बोले, ऐसी भी बता देंगे परन्तु आपसे होगी नहीं। वैश्य बोला :- महाराज, मैं कठिन से कठिन भी कर सकता हूं। ब्रह्मऋषि बोले :- एक 'सेल' लेकर निर्जन स्थान कहिए, जहां कोई मनुष्य न होवे, वहां पेड़ के नीचे गाड़कर पेड़ के ऊपर चढ़ जाना और आवाज देना कि भगवान दर्शन दो, नहीं तो इस सेल अर्थात् अंकुश पर गिर कर मरता हूं। न दर्शन हों तो, 'सेल' पर गिर जाना। राम जी मरने नहीं देंगे। वह नमस्कार करके चल पड़ा। और वैसा ही वैश्य ने करने का विचार किया। पेड़ पर चढ़कर नीचे देखा सेल की तरफ, तो रोमांच खड़े हो गए, कि तूं पड़ा और तेरे प्राण निकले। ऐसे भी कभी भगवान मिला है ? पेड़ के नीचे उतर गया और फिर

विचार किया कि संतों के बचन तो सत्य हैं। अबके दर्शन नहीं हुआ तो, अवश्य गिरूंगा। यह विचार कर फिर से पेड़ पर चढ़ गया। यह काम पुनः पुनः करने लगा। एक राजा का घोड़ा चुराकर चोर भी उधर आ निकला। चोर ने देखा यह क्या करता है? चोर बोला :- "भाई राम-राम। आप यह क्या कर रहे हो, कभी ऊपर चढ़ते हो कभी नीचे उतरते हो।" वैश्य ने उपरोक्त वृत्तान्त सब चोर को सुना दिया। चोर के पीछे राजा घोड़े के खोज निकालता हुआ, सेना के साथ चला आ रहा था। चोर जान गया कि मुझे पीछे से पकड़ने वाले आ रहे हैं। घोड़ा छीन लेंगे, और जेल में बन्द कर देंगे। इसलिए यह महापुरूष का बचन और सेल मैं ले लूं, तो अच्छा रहेगा। यह सोच कर चोर बोला :- भइया! आप कौन हो? वैश्य बोला :- मैं बनिया हूं। चोर बोला, सौदा कर लो। वैश्य बोला :- कैसा सौदा? कि यह सेल और वचन मुझे दे दो और घोड़ा आप ले जाओ। वैश्य का मन, संत बचन से विचलित हो गया और बोला कि यह सेल और बचन आप लो और घोड़ा मुझे दो। वैश्य घोड़े पर चढ़कर, घर की तरफ रवाना हुआ। चोर पेड़ के नीचे सेल गाड़कर, पेड़ पर चढ़ गया और बोला हे राम जी! संतों के बचन सत्य हैं। आप दर्शन दो, नहीं तो इस सेल पर पड़ कर जान दे दूंगा। दो बार आवाज लगाई। जब राम जी दिखाई नहीं दिये तो, तीसरी बार आवाज देकर सेल के ऊपर धड़ाम से गिरा। परन्तु राम जी ने प्रगट होकर, उसको अधर ही में बचा लिया। चोर संत बचन में विश्वास रख कर, भगवत् भक्त बन गया और राम जी के दर्शन पा लिए।

उधर पीछे से राजा, सेना के सहित आ रहा था और वैश्य को रास्ते में ही जा पकड़ा और ताड़ना देकर, घोड़ा छीन लिया तथा वैश्य को जेल में भेज दिया। क्योंकि गुरू के बचन में विश्वास त्यागने से ऐसा हुआ। अब पानी के दृष्टान्त से इस पक्ष को स्पष्ट करते हैं।

सतगुरू बरजै सिष करै, क्यूँ कर बंचै काल।
दह दिस देखत बहि गया, पाणी फोड़ी पाल ॥९५॥

टीका :- दशों दिशाओं में जैसे जल फैल जाता है, वैसे ही दशों इन्द्रियां विषयों में सलग्न होकर, शास्त्र मर्यादा और गुरू आज्ञा का उलंघन करके, जैसे जल बांध को तोड़कर, सब दिशाओं में व्याप्त हो जाता है, वैसे ही संसारीजनों का अज्ञानी मन, गुरू आज्ञा को बिसार कर इन्द्रियों के विषयों में मग्न रहता है। इसीलिए संसारीजनों के आत्म कल्याण का, कोई भी उपाय नहीं है। अभिप्राय यह है कि जैसे फैला हुआ जल, वायु के द्वारा, सूख जाता है, उसी प्रकार नाना विषयों में आसक्त मन, स्वस्वरूप को भूल जाता है। इसीलिये संसारीजनों का मरण प्रत्यक्ष है। अब गुरू आज्ञाकारी शिष्य का इस लोक में और परलोक में सफलता का रहस्य बताते हैं।

दादू सतगुरू कहै सो सिष करै, सब सिधि कारज होइ।
अमर अभय पद पाइऐ, कालन लागै कोइ ॥९६॥

टीका :- सतगुरू उपदेश का पालन करने से, शिष्य का मन, काम क्रोध आदि काल और विषयों की तरफ नहीं जाता और उत्तम जिज्ञासुजनों का सम्पूर्ण कर्त्तव्य पूरा हो जाता है। महाप्रभु उपदेश करते हैं कि ऐसे उत्तम जिज्ञासु, एकरस सुखरूप जो प्रभु का स्वरूप है, उसका साक्षात्कार कर लेते हैं। गुरू उपदेश से प्रभावित जिज्ञासु, अपने मन को चेतावनी देता है।

दादू जे साहिब कूं भावैं नहीं, सो हमथैं जिन होइ।
सतगुरू लाजै आपना, साध न मानैं कोइ ॥९७॥

टीका :- हे मन ! हमारे व्यवहार गुरू को प्रिय नहीं लगते। वे निषिद्ध काम हमारे से नहीं होवें, क्योंकि एक तो हमारे सतगुरू हैं वे लाजेंगे और ईश्वर विमुख होने से, कोई भी साधु भला नहीं कहेंगे। इसलिए हे मन ! प्रभु के सुमिरण और पर उपकार में सलग्न हो।

दादू हूं की टाहर है कहौ, तन की ठाहर तूं।
री की टाहर जी कहौ, ज्ञान गुरू का यूँ ॥९८॥

टीका :- सतगुरू उपदेश करते हैं कि हे मुमुक्षुजनों ! 'हूं' कहिए यह शब्द, परिछिन्न अहंकार का बाचक है। इसके स्थान में समष्टि वाचक 'है', यह शब्द कहो। 'तन' शब्द, माया आवरण का बाचक है। इस स्थान में परमेश्वर का बोध कराने वाला 'तूं कहो' और 'री' शब्द तृष्णावाचक है, इसके स्थान में संतोषवाचक 'जी' कहो। पहला यह अर्थ है कि 'हूं तनरी' अर्थात् 'मैं' शरीर रूप हूं। अब दयाल महाराज अज्ञान की इस अवस्था का निषेध करके 'तूं है जी' अस्ति भांति प्रिय रूप से, अथवा सत्चित्त आनन्द स्वरूप से, हे जिज्ञासु ! तूं ब्रह्म है। ऐसा निश्चय करके इस प्रकार सतगुरू के उत्तम ज्ञान, को जो मनन करता है वह पुरुष मोक्ष पद पाता है।

दोहा :- गुरू दादू पै आय कर, भर्यो कलावत्त नाद।
ताको यह साखी कही, हरि बिन बोलन बाद ॥९८॥

दृष्टान्त :- एक रोज सतगुरू महाराज के दरबार में एक गायक आया और वह सुर बनाकर अलाप देने लगा "हूं तनरी, हूं तनरी,......।" इसके उत्तर में सतगुरू महाराज बोले :- हे भाई ! ऐसा नहीं, ऐसा बोल "है तू जी, है तू जी······, शब्द बोल। हे परमात्मा तूं है, सत्चित्त आनन्दरूप।" गायक को ज्ञान हो गया और सतगुरू महाराज के चरणों में नतमस्तक होकर 'हूं तनरी' इस शब्द का त्याग कर दिया। अब सतगुरू मन को निग्रह करने का उपाय कहते हैं।

दादू पंच सवादी पंच दिस, पंचे पंचौं बाट ।
तब लग कह्या न कीजिये, गहि गुरू दिखाई घाट ॥९९॥

टीका :- पंच ज्ञान इन्द्रियां, पंचविषय अर्थात् जब तक पांचों ज्ञान इन्द्रियां अपने अपने विषयों में सलग्न हैं, ऐसी दशा में मन की प्रेरणा को नहीं मानना चाहिए। दयामय सतगुरू ने अपनी शरण ले करके, यही उत्तम मार्ग बताया है। अथवा जब तक ज्ञानेन्द्रियां अपने विषय व्यापार में लगी हुई हैं, तब तक मन सतगुरू ज्ञान के सन्मुख नहीं होवेगा। इसलिए बिषया शक्ति से मन को मुक्त करिए अर्थात् हटाइये।

दादू पंचौं एक मत, पंचौं पूर्या साथ ।
पंचौं मिल सनमुष भये, तब पंचौं गुरू की बाट ॥१००॥

टीका :- पांचों ज्ञानेन्द्रियां दृढ़ निश्चय हो करके, अपने पांचों विषय एक साथ त्याग दिये हैं। इस प्रकार पांचों ज्ञानेन्द्रियां सतगुरू की आज्ञानुसार, आचरण करने लगी हैं। अब पांचों ज्ञानेन्द्रियों को एकाग्र करके जिज्ञासुजन, प्रभु के सन्मुख होकर साक्षात्कार करते हैं।

(सतगुरू विमुख ज्ञान)

दादू ताता लोहा तिणाँ सूं, क्यूँ करि पकड्या जाइ ।
गहण गति सूझै नहि, गुरु नहि बूझै आइ ॥१०१॥

टीका :- जैसे अत्याधिक गर्म लोहा घास आदि के कोमल तिनकों से नहीं पकड़ा जा सकता है, उसी प्रकार स्वयं को तो आत्मज्ञान है नहीं और सतगुरू का उपदेश जानता नहीं। तो ऐसे संसारीजनों का गर्म लोहे रूपी जो चंचल मन है, सो तीर्थ आदि बहिरंग साधनों से, आत्म परायण नहीं होता। अथवा सतगुरू के राम नाम 'तत्वमसि' आदिक उपदेश बिना, नाना देवी-देवताओं की उपासना से, संसारीजनों को ताता लोहा समान, भगवत् दर्शन एवं स्वस्वरूप बोध कदापि संभव नहीं है।

(गुरूमुख कसोटी)

दादू औगुण गुण करि माने गुरू के, सोई शिष्य सुजाण ।
सतगुरू औगण क्यों करै, समझै सोई सयाण ॥१०२॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! जो शिष्य बुद्धि विभ्रम से प्रतीत होने वाले, सतगुरू के औगुणों को भी गुण ही करके मानता है, वही शिष्य बुद्धिमान है। दयालु और सत्य उपदेश, हित चिन्तक, निष्काम भावना वाले,

सतगुरू शिष्य का, अपकार कर ही कैसे सकते हैं ? उनसे तीन काल में भी शिष्य का, अनिष्ट नहीं होता है । ऐसी जिसकी धारणा है, वही शिष्य श्रेष्ठ है और बुद्धिमान है ।

दोहा :- कंठ काटत नैना ढकै, ओगुण ही गुण जान ।
मन प्रतीत ऐसी धरै, सोई शिष्य सुजान ॥१०२॥

दृष्टान्त :- एक गुरू और शिष्य थे । वे दोनों अपने सेवकों में घूमते और उपदेश करते थे । एक रोज नगर के बाहर बट वृक्ष के नीचे ठहरे । दोपहर का समय था । शिष्य सो रहा था । गुरू जी बैठे भजन करते थे । एक काला सर्प दूर से आता गुरू जी ने देखा । वह सर्प गुरू जी के शिष्य के समीप आने लगा तो, गुरू जी बोले :-ठहर भाई । कहां आता है ? साधु सो रहा है । सर्प बोला :- साधु के पास ही तो आता हूं । गुरू जी बोले :- किस लिए ? सर्प बोला :-इसके कण्ठ में डसूंगा । गुरू जी बोले :-ऐसा क्यों करते हो ? सर्प :-पहले जन्म में, मैं ऐसे ही सोया था और यह सर्प होकर, मेरे कण्ठ में डसा था । अब मैं अपना बदला लूंगा । गुरू जी बोले :-खून और कहीं से पिला दें आपको । सर्प बोला :-नहीं, कंठ का ही खून पीऊंगा । गुरू जी बोले, कंठ का खून बगैर डसे पिला दें, तो फिर नहीं डसोगे ? सर्प :-जब कंठ का खून आप पिला दोगे, तो मैं क्यों डसूंगा ? मेरा बदला पूरा हो जाएगा । तब गुरू जी ने एक पत्ते का दोना बनाया और चाकू हाथ में लेकर, शिष्य के सीने पर अपना घुटना रख कर, शिष्य के गले की चमड़ी चाकू से काटने लगे । शिष्य की आंख खुली । देखा :-गुरू महाराज हैं । मन में विचार किया कि गुरूदेव कभी बुरा नहीं कर सकते । यद्यपि मुझे गला काटते दीखते है, परन्तु इसमें भी कुछ रहस्य है । यह सोचकर आंखें बन्द कर ली । गुरू जी ने शिष्य के गले का खून दोने में लिया और सर्प के सामने ले जाकर, रख दिया और गले पर दवा लगा दी । सर्प खून पीकर बोला :-आपकी जय हो । गुरू आप जैसे ही होने चाहिएं, जो शिष्य की जान बचा ली और बदला भी चुका दिया । यह कहकर सर्प चल दिया । तब गुरूदेव ने, शिष्य को जगाया, उठो भाई ! शिष्य ने गुरू को प्रणाम किया । गुरू बोले :-आकाश में बादल हैं । शिष्य ने ऊपर देखा तो, बादल एक भी नहीं था । मन में सोचने लगा कि बादल है नहीं । अगर मैं बादल बतलाता हूं, तो ईश्वर से झूठा बनता हूं और यह कहता हूं बादल नहीं हैं, तो गुरू के बचन का नाश होता है । तब शिष्य ईश्वर की प्रेरणा से बोला:-गुरूदेव ! बादल होंगे, परन्तु मुझ अज्ञानी को प्रतीत नही होते है । यह सुनकर गुरू बोले :-हमने जब तेरा कण्ठ काटा तो, उस वक्त तुमने आंखें खोल कर, वापिस बन्द क्यों कर ली ? शिष्य बोला, आपके दर्शन के होते ही मैंने जाना कि इस में मेरा कल्याण है । गुरू बोले :-देखो वह सर्प जा रहा है । तुम्हारे गले का खून 'पीकर' बदला लेने आया था । अब कभी भी किसी से बैर भाव नहीं करना । इसी में तुम्हारा कल्याण है । शिष्य को गुरू बचन से ज्ञान हो गया और ईश्वर भक्ति करके, अपना कल्याण कर लिया ।

अब सतगुरू शिष्य के औगुण नहीं करें, तो अति ताड़ना उसको क्यों देते हैं ?

सोने सेती बैर क्या, मारै घण के घाइ।
दादू काटि कलंक सब, राखै कंठ लगाइ ॥१०३॥

टीका :- जैसे सुनार सोने को तपा करके, उसका मैल निकालता हैं और कूट पीट कर माला बना कर, कण्ठ में धारण करने योग्य बना देता है, वैसे ही सतगुरू शिष्य को हेत रूप बुद्धि से ताड़ना देकर, उसके तन मन को निर्दोष बना कर, भगवान और भक्तों का प्रिय बना देता है।

दोहा :- रज्जब देख मुरीद को, कहै दुख क्यों पाइ।
नहीं नाथ गुरू ईस है, मैं ही मूरख आइ ॥१०३॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी के शिष्य रज्जब जी सांगानेर कस्बे में निवास करते थे। वहां आज भी दादू रज्जब द्वारा है। उनके पड़ौस में एक मुसलमान फकीर था। उसका एक शिष्य था। वह उस शिष्य को रोज ताड़ना करता था। वह शिष्य बोलता :-हे मुरसिद ! अब कभी गलती नहीं करूंगा। ऐसा रोज ही रज्जब जी उनका व्यवहार देखते। रज्जब जी ने सोचा :-यह अधिकारी है। एक रोज रज्जब जी मार्ग में आ रहे थे। सामने यह लड़का मिल गया। इसने रज्जब जी के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। रज्जब जी बोले :- तेरा गुरू बड़ा निर्दयी है, तुझे रोज पीटता है। शिष्य बोला :-नहीं नाथ, गुरू तो ईश्वर हैं, मैं मूर्ख हूं। रज्जब जी ने यह सुनकर अपनी दया दृष्टि उस पर डाली, जिससे कि उसके दिव्य चक्षु खुल गए। और उस विशुद्ध अधिकारी का कल्याण हो गया।

पाणी माहैं राखिये, कनक कलंक न जाइ।
दादू गुरू के ज्ञान सों, ताइ अगनि में बाहि ॥१०४॥

टीका :- सोना रूपी जो शिष्य है उसको सतगुरू का अगिन रूप जो ज्ञान है, उससे 'ताइ' नाम, तपा कर बाह्य विषयों की, निसारता का बोध कराके, कृपालु सतगुरू आज्ञाकारी शिष्य को, प्रभु भजन में एकाग्र करते हैं। परन्तु मोह बुद्धि से तपाने की अपेक्षा यदि सोने को शीतल जल में रखा जाये, तो वह निष्कलंक नहीं बनेगा। इसी प्रकार मोह बुद्धि से यदि सतगुरू शिष्य को ताड़ना नहीं करै, तो शिष्य निर्दोष नहीं होवेगा।

दोहा :- मन रूपा निर्मल भया, सतगुरू सोनि हाट ।
रज्जब शिझे शब्द सूँ, कटै कलंक की काट ॥१०४॥

दोहा :- ज्यौं धोबी की धमस सहि, ऊजल होय सुचीर ।
त्यों शिष्य तालिब निर्मले, पारस है गुरूपीर ॥१०४॥

दादू माहैं मीठा हेत करि, ऊपरि कड़वा राष ।
सतगुरू सिष कौं सीष दे, सब साधूं की साषि ॥१०५॥

टीका :- हृदय में सतगुरू हित्त रूप भावना करके दयालु हैं । किन्तु ऊपरी कहिए व्यवहार में, अथवा उपदेश की अवस्था में, गम्भीर होकर, सतगुरू शिष्य को उपदेश देते हैं । भूत, वर्तमान, भविष्य काल में जितने महात्मा हुए हैं, वे सब ही इस बात को प्रमाणित मानते हैं ।

दोहा - सेवक कुम्भ कुम्हार गुरू, घड़ि घड़ि काढै खोट ।
रज्जब मांहि सहाय करि, तो बाहिर दे चोट ॥१०५॥

दोहा :- दैइ कसौटी शिष्य को, गुरू निपजावन काज ।
कुंभ मेल शिष्य चालतां, कलस कह्निजा आज ॥१०५॥

दृष्टान्त :- एक संत के पास अधिकारी आया, और बोला :- मुझे ईश्वर प्राप्ति का उपदेश करो । संत उसकी परीक्षा के लिए रात्रि को बोले :- कुम्हार के यहां से एक घड़ा ले आओ । अब इसे पानी से भर लाओ । शिष्य पानी का घड़ा लेकर आया और आवाज दी—"गुरूदेव, मैं पानी, ले आया ।" गुरू बाहर आकर देखा और एक डंडा घड़े के ऊपर मारा । घड़ा टूटकर शिष्य पानी से भीग गया । गुरू जी बोले :- मूर्ख ! बिना स्नान किए ही ले आया । फिर जाओ और लाओ । इसी प्रकार कभी बोले :- जूती पहने ही ले आया, कपड़े पहने ही ले आया इत्यादिक कहकर, छह घड़े शिष्य के ऊपर तोड़ दिए । जब सातवां घड़ा लेकर शिष्य कुएं पर गया और घड़े को रक्खा और विचार करने लगा, क्या उपदेश देंगे ? यह तो प्राण लेने का काम कर रहे हैं । चलो किसी और गुरू के पास चलकर उपदेश ले लेंगे । यह सोचकर जाने लगा । तब घड़ा बोला :-"सुन, कहां जाता है ?" बने बनाए काम को क्यों छोड़ता है । शिष्य बोला :- "तूं भीमे रे सिर

पर छह दफा टूट चुका है, अबकी बार तेरे साथ मैं भी खत्म हो जाऊंगा, गुरू जी का डंडा पड़ते ही।" घट बोला :-अरे पागल ! मेरे गुरू जैसी त्रास तो तुझे दी ही नहीं। शिष्य बोला, घट को, तेरे गुरू ने क्या त्रास दी ? घट बोला :-सुन, मैं एक जंगल में पड़ा था। मेरा गुरू कुम्हार ने मुझे जाकर कुदाली मार-मार कर मेरे टुकड़े कर दिए। फिर गधे पर चढ़ाया और घर पर ला कर, जोर से डाला और मोगरा लेकर खूब पीटा। पीट-पीट कर चूर्ण बना दिया और मुझ में ला कर पानी डाला, फिर मुझे रोंदा, मेरा गोला बनाया, चाक पर चढ़ाया, खूब घूमाया, फिर उतारा, गला काट दिया, फिर बारीक राखी लेकर मेरी आंखों में डाल-डाल कर, पीटना शुरू किया। पीट-पीट कर मुझे फुला दिया, जो तेरे सामने मौजूद हूं। फिर अग्नि में तपाया। इतनी गुरू की कसौटी मैंने सही हैं, उसका फल मेरे अन्दर का जल, बड़े-बड़े ऋषिमुनि, महात्मा राजा महाराजा पीते हैं और सबके सिर पर मैं चढ़ता हूं। तेरे सिर पर भी छः दफा चढ़ गया और अब सातवीं बार चढूंगा। यह गुरू की कसौटी का फल है। अबके तेरा भी कल्याण होने वाला है। मुझे लेकर चल। शिष्य को विचार हुआ--सचमुच मैंने तो ऐसी कसौटी नहीं सही, जैसे घड़े ने अपने गुरू की सहन की है। धैर्य धर कर पानी भर कर, निराधार होकर, गुरू के पास आया। आवाज दी, "गुरूदेव ! पानी मैं ले आया।" गुरू ने शिष्य के सिर से घड़ा उतार लिया और प्यार करते हुए उसे हृदय से लगा लिया। तत्वज्ञान का उपदेश देकर, मुक्त कर दिया।

अब एक साखी से सतगुरू बरदान, श्राप आदि से बचने का उपदेश करते है।

दादू कहैं सिष भरोसै आपणै, व्है बोलो हुसियार।
कहैगा सो बहैगा, हम पहली करैं पुकार ॥१०६॥

टीका :- जो जिज्ञासु कर्म फल का विचार किए बिना, कदाचित किसी को वर या श्राप आदि देवेगा, तो उसको ही वे पूरा करने को जन्मान्तर में फिरना होवेगा। इसलिए सतगुरू जिज्ञासु को सावधान करते हैं कि भगवत् की रचना के विपरीत, किसी को भी बर या श्राप नहीं देना चाहिए।

दोहा :- **गुरू शिष्य अरु नृपति को, पुनः गुसांई जान।**
तीजै जग्गा को सुणों, सूत हि पूत बखानि ॥१०६॥

दृष्टान्त :- एक संत थे। एक राजा उनके दर्शन करने गया। राजा को देखकर संत करमण्डलु लेकर घूमने निकल गए और कुटिया पर शिष्य को छोड़ गए। राजा आया। पूछा गुरू जी कहां हैं ? शिष्य बोलाः- गुरू जी से क्या काम है ? जो गुरू जी काम करेंगे, वह तो मैं भी कर दूंगा। राजा बहुत खुश हुआ, भेट

पूजा चढ़ाई और बोला :-महाराज ! एक पुत्र चाहिए । शिष्य बोला :-जाओ हो जाएगा । राजा नमस्कार करके चला गया । संत आए और बोले :-बेटे, यह आज घोड़ों के खोज कैसे हो रहे हैं यहां ? कौन आया था ? शिष्य बोला :-गुरू जी राजा आया था आपके पास । क्यों ? किस लिए ? शिष्य बोला :- पुत्र लेने के लिए । फिर ? मैंने कह दिया हो जाएगा । यह सब भेट चढ़ा गया है । गुरू बोले :-तेरे पास बेटा है ? शिष्य :-नहीं । गुरू :-तो कैसे बोल दिया ? शिष्य :-आप बोलते हो वैसे ही । गुरू :-मूर्ख ! हम तो देख कर कहते हैं, जाओ, यह शरीर छोड़कर राजा का बेटा बनो, नहीं तो साधुओं के बचन झूठे होंगे । यह तुम्हें दंड है । शिष्य :-मेरा उद्धार ? गुरू :-तुम्हें इस जन्म की याद रहेगी । शिष्य शरीर छोड़कर राजा का पुत्र बना । जन्म लिया तो बड़ा दान पुण्य होने लगा और गाजे-बाजे बजने लगे । पांच साल की अवस्था उस बच्चे की हो गई । परन्तु न हंसता है और न बोलता है । राजा को चिन्ता हुई कि लड़का हुआ, परन्तु बोलता नहीं, गूंगा है, क्या करें ? हमारे पुत्र को जो बुला दे, तो उसे मुंह मांगा इनाम दें । बहुत से डाक्टर आए । देखा और बोले :-यह गूंगा नहीं है, परन्तु बोलता नहीं, इसका क्या कारण है ? पता नहीं ? फिर तो राजा ने खेल-तमाशे करने वाले कितने ही बुलाए, बच्चे को दिखाया । देखता है परन्तु बोलता नहीं । इसी प्रकार जंगल के रहने वाले शिकारी आए और लड़के को जंगल में ले गए, इनाम के भूखे । लड़के को बोलते हैं-- "यह मृग है यह शेर है, यह भालू है आप भी बोलो ।" लड़का नहीं बोलता । इतने में ही एक वृक्ष पर तीतर बोला और बोलते ही शिकारी ने गोली मारी । तीतर मर गया । लड़का बोला :-बोला और मारा । शिकारी लोग बड़े खुश हुए । राजपुत्र को लेकर दरबार में तुरन्त आ गए । राजा को बोले :-महाराजा, राजकंवर बोल गए । राजा बोला, अब बुलाओ । फिर नहीं बोलता । राजा :-तुमको फांसी होगी, तुमने झूठ बोला है । तब लड़के ने देखा अगर मैं नहीं बोलूंगा तो, इन बिचारों को फांसी हो जाएगी । और अब गुरू जी के पास भी चलना है । यह सोचकर लड़का बोला :-राजन् ! जंगल में तीतर बोला था । शिकारी ने उसको गोली से मार दिया, वैसे ही मैं भी आपको पुत्र देने को बोला था । आपके पुत्र था नहीं । मैं मर कर आपका पुत्र आकर बना । मैं बोला तो मैं मरा, तीतर बोला तो तीतर मरा । अब मैं अपने गुरूदेव की शरण में जाता हूं, आप ईश्वर भजन करो । राजा को उपदेश करके, लड़का गुरू के चरणों में आ गया ।

दूसरा दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज आमेर में निवास करते थे । एक रोज शिष्य जग्गा जी को बोले :-डोरी बनाने के लिए माता लोगों से सूत ले आओ । जग्गा जी नगर में चले और बोले:- सूत देओ । किसी ने नहीं दिया । तब एक स्थान पर देखा कि बहुत सी माई लोग, चरखा कात रही हैं । तब युक्ति लगाई और बोले, "ल्या माई सूत, होगा तेरे पूत ।" इस प्रकार सभी माई लोगों को बोलते गए और पांच-पांच सूत की कुकड़ी उनको देती गई । सूत का अच्छा गट्ठर बन गया । सिर पर रखकर गुरूदेव के पास आए और गुरूदेव को साष्टांग प्रणाम किया और बोले :-महाराज, मैं यह सूत ले आया । गुरूदेव बोले:- बहुत महंगा लाये, आपके पास इतने लड़के हैं, देने को । जग्गा जी बोले नहीं । तो फिर अब आपको सबके जन्म लेना पड़ेगा, ऐसा गुरूदेव बोले । जग्गा जी कांपने लगे कि गुरूदेव रक्षा करो । गलती क्षमा करो । तब गुरूदेव

बोले :-जितना-जितना सूत जिस-जिस से लिया है, वह देकर अपना बचन वापस लौटाओ और वह एक जिस से पहले सूत लिया था, उस बाई का सूत ले आओ और बोलो तेरे पुत्र होगा। वैसा ही जग्गा जी ने किया। परन्तु गुरुदेव ने एक जन्म दंड जरूर दिया। उस बाई की शादी महाराज की आज्ञा से दोसा नगर में, वैश्य कुल में हुई। और जब दयाल महाप्रभु दोसा नगर में गेटोलाव बांध पर बिराजे, उस समय वह बाई अपने सास एवं परिवार के सहित, महाराज के दर्शन करने गई और पुत्र की याचना की। महाराज ने आज्ञा दी कि आपके पुत्र होगा, परन्तु ग्यारह वर्ष की जब आयु होगी तो हमें ही आकर मिल जाएगा। वही महाराज की आज्ञा से जग्गा जी शरीर छोड़कर, उस बाई के पुत्र बने और फिर सुन्दरदास जी नाम से प्रसिद्ध हुए। वैश्य कुल को उजागर किया। आगे चल कर वे महान योगी और भारी विद्वान बने। जिनके ग्रन्थ ४२ छोटे बड़े हैं, और सुन्दर ग्रंथावली नाम से प्रसिद्ध है।

अब सतगुरू शिष्य को उपदेश में, एकाग्र होने का उपदेश करते हैं।

दादू सतगुरू कहै सों कीजिये, जे तूं सिष सुजाण।
जहां लाया तहं लागि रहु, बूझै कहां अजाण ॥१०७॥

टीका :- हे शिष्य ! तू चतुर है तो सतगुरू जो उपदेश करें, उसे उत्तम कर्त्तव्य जान कर, तदनुसार आचरण करना चाहिए। हे संशय आत्मन् ! किस हेतु से संशय करता है। जिस साधन में सतगुरू ने लगाया है उसी साधन में एकाग्र लयलीन रहो। अब दो साखियों में उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ जिज्ञासुओं को उपदेश का वर्णन :--

गुरू पहली मन सौं कहै, पीछै नैन की सैन।
दादू सिष समझै नहीं, कहि समझावै बैन १०८॥
कहै लखै सो मानवी, सैन लखै सो साध।
मन की लखै सो देवता, दादू अगम अगाध ॥१०९॥

टीका :- जो उत्तम अधिकारी हैं, उनको सतगुरू अपनी भावना द्वारा ही उपदेश करते हैं। ऐसे जिज्ञासु दिव्य साधन संपन्न हैं। जिससे उत्तम अधिकारी तो मन की जानते हैं एवं मध्यम अधिकारी को सतगुरू नैन की सैन से, उपदेश करते हैं। ऐसे जिज्ञासु उत्तम गुणों से युक्त हैं और सतगुरू के सांकेतिक उपदेश को हृदय में धारण करते हैं। तीसरी श्रेणी अब कनिष्ट जिज्ञासु की है, जो मन और सैन से तो सतगुरू के उपदेश को ग्रहण कर नहीं सकते हैं, ऐसे पुरुषों को सतगुरू बाणी द्वारा आत्मोपदेश करते हैं। ऐसे मनुष्य उचित सद्गुणों से युक्त हैं। सतगुरू के उपदेश से सभी जिज्ञासुओं को, अगम अगाध भगवत् प्राप्ति रूप फल मिलता है।

दोहा :- मन की जग जीवन लही, नैन सैन गोपाल।
बचन रज्जब बखनै लहे, गुरू दादू प्रतिपाल ॥१०६॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज आमेर में विराजिते थे। जगजीवन राम जी कांशी में पढ़कर दिग् विजय करने के लिए चले, जहां तहां शास्त्रार्थ में विद्वानों को जीतते हुए, जीत का पत्र प्राप्त करते थे। इसी प्रकार आमेर नगर में भी आ पहुंचे, जहां राजा मान सिंह राज करता था। वहां के समस्त विद्वानों को शास्त्रार्थ में जीत लिया। वे विद्वान ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज के पास जाकर बोले :-हमारी लाज रखो गुरूदेव ! हमसे जीत का पत्र जगजीवन राम पण्डित चहाता है और आप भी यहाँ विराजते हो। इस आम्बावत्ति नगर की महिमा आपसे सुशोभित हो रही है। हमने उसको बोला है कि हमारे गुरू हैं, उनको तुम विजय कर लो। तो हम आपको जीत का पत्र लिख देंगे। ब्रह्मऋषि यह बात सुनकर, प्रभु की प्रेरणा से बोले :-आप लोग आम खास दरबार में राजा के समक्ष उनको बुलाओ, शास्त्रार्थ के लिए। परमगुरूदेव जिस रोज शास्त्रार्थ होनी थी, उस रोज दरबार में विराजते थे। पण्डित जी को बुलाया। वे जब सतगुरू के दूर से दर्शन किए तो, उसके मन में यह भावना उठी कि यह तो कल्याण करने वाले हैं। इनसे आत्मोपदेश लेकर मुझे अपना कल्याण करना चाहिए। यह वाद-विवाद के योग्य नहीं हैं। पण्डित जी शास्त्रार्थ की भावना को भूल गए और आकर गुरूदेव को साष्टांग प्रणाम किया। हाथ जोड़कर सामने बैठ गए और बोले :-हे सतगुरू ! जिस प्रकार जीव का कल्याण हो, उस मार्ग को मुमुक्षुओं के लिए दिखाइए। समस्त दरबार में सन्नाटा छा गया। यह अनहोनी बात कैसी बनी ? परम गुरूदेव जी ने पण्डित जी को उपदेश किया। राग रामकली में उपदेश का यह शब्द लिखा है। यह उपदेश सतगुरू ने मन से किया और मन से ही पण्डित ने उत्तम जिज्ञासु होने के नाते धारण कर लिया।

द्वितीय दृष्टांत :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जब अकबर बादशाह के बुलाने से उस के पास जब सिकरी गए तो नगर में जाते समय एक सन्यासी साधु, दुकानों पर हरमोनियम बजाता गाता हुआ, भीख मांग रहा था। महाराज ने उसकी तरफ देखा। उसने भी महाराज की तरफ देखा। गुरूदेव ने नेत्र का इशारा किया। मध्यम अधिकारी होने के नाते भीख मांगना छोड़ दिया। बाजा डाल दिया। अन्तःकरण में विरह का दर्द जाग उठा। उसी समय गुरूदेव के साथ हो गया और गुरूदेव के अमृतमय बचनों से तृप्त होकर, जीवन मुक्त हो गया। उन्होंने फिर कई ग्रन्थ बनाए हैं। ध्रुव संवाद ग्रन्थ, प्रहलाद् संवाद ग्रन्थ, दादू दयालु महाराज की जन्म लीला इत्यादिक ग्रन्थों की रचना की। यह जन गोपाल के नाम से दादू जी के शिष्यों में प्रसिद्ध हुए।

तीसरा दृष्टान्त :- रज्जब जी और बखना जी कनिष्ठ श्रेणी के अधिकारी थे। इनको गुरूदेव ने बाणी से उपदेश दिया। यह प्रसंग हम पूर्वोक्त गुरूदेव के अंग में कह चुके हैं वहां देखो।

जिज्ञासुजनों के अन्तःकरण में, चार प्रतिबन्धक हैं एक बुद्धि की मन्दता, द्वितीय संशय बुद्धि, तृतीय विषयासक्ति, चतुर्थ विपरीत भावना । अब क्रम से चार साखियों में, चारों दोष परमगुरू दर्शाते हैं ।

(कठोरता)

दादू कहि कहि मेरी जीभ रही, सुनि सुनि तेरे कान ।
सतगुरू बपुरा क्या करै, चेला मूढ़ अजान ॥११०॥

टीका :- हे अजाण ! बपु शरीर आदिक असत्य पदार्थों में आसक्ति क्यों करता है ? इनसे प्रीति छोड़ कर, परमात्मा में चित्तवृत्ति लगा । सतगुरू कहते हैं कि आत्मोपदेश करते हुये, मेरी तो जिह्वा थक गई है और उपदेश श्रवण करते हुए, तेरे कान थक गए । किन्तु हे मूढ़ ! तूं कर्त्तव्य को भूल कर, अकर्त्तव्य में लग रहा है । अब सावधान हो ।

दोहा:- **आज्ञा अवज्ञी मन मुखी, व्यभीचारी व्रत नाश ।**
रज्जब रीता रति बीना, नाहीं चरन निवास ॥११०॥

गुरू आज्ञा का उलंघन करने वाला, सनमुखी मन के काम करने वाला, व्याभिचारी, अर्थात् कुकर्म करने वाला, गर्भवास में जो प्रभु से प्रतिज्ञा की थी उससे भूठा । रज्जब जी कहते हैं ज्ञान रूप रति बिना, उसका हृदय खाली है, गुरू के चरणों में जिसके मन का निवास नहीं है ।

(गुरू शिष्य प्रमोद)

एक सबद सब कुछ कह्या, सतगुरू सिष समझाइ ।
जहां लाया तहं लागै नहीं, फिर फिर बूझै आइ ॥१११॥

टीका :- कृपालु सतगुरू ने बाणी द्वारा, शिष्य को विवेक वैराग्य आदि का उपदेश किया है किन्तु आत्म चिन्तन आदि जिन साधनों में, सतगुरू ने शिष्य को लगाया है, उनमें तो शिष्य दृढ़तापूर्वक लगता नहीं है और गुरू वाक्यों में संशय करता है । इसलिए संशय करने वाले शिष्य का कल्याण होना असंभव है ।

दोहा :- **गुरू की आज्ञा में रहै, सो शिष्य कोइ एक ।**
रज्जब रहै बिन रोग मन, आज्ञा अवज्ञी अनेक ॥१११॥

गुरू की आज्ञा में चलने वाला, कोई एक आध शिष्य होता है वही जन्म-मरण आदि रोग से रहित होता है और अनाधिकारी आज्ञा का उलंघन करने वाले अनेक शिष्य होते हैं, उनका कल्याण नहीं होता ।

(अज्ञ स्वभाव अपलट)

ज्ञान लिया सब सीषि सुणि, मन का मैल न जाइ ।
गुरू बिचारा क्या करै, सिष विषै हलाहल खाइ ॥११२॥

टीका :- शिष्य ने सतगुरू से संपूर्ण जो परमेश्वर है, उसकी महिमा सुन करके भी, मन को पाप विक्षेप आवरण रूप, विषयासक्ति से अपनी मनोवृत्तियों का निग्रह नहीं किया है और अति उग्र विष की तरह जो विषय है, उनमें आसक्त होता है । अब विचारवान सतगुरू ऐसे जिज्ञासु का क्या करें ? अर्थात् किस प्रकार कल्याण कर सकते हैं ।

दोहा :- **असलि आज्ञा में चलै, बाहिर धरै न पांव ।**
रज्जब कपटी कम असल, खेलै अपना दाव ॥११२॥

असली मां बाप का बेटा, गुरू आज्ञा में ही चलता है । आज्ञा का उलंघन नहीं करता, और जो कपटी है, वह कम असल है, अर्थात् असली मां बाप का बेटा नहीं है । और वह अपना मतलब निकालने वाला होता है ।

सतगुरू की समझै नहीं, अपणै उपजै नांहि ।
तो दादू क्या कीजिए, बुरी बिथा मन मांहि ॥११३॥

टीका :- सतगुरू कहते हैं कि सैन आदिक उपदेश को तो मानता नहीं और स्वयं विवेक वैराग्य आदि साधनों से रहित हैं, तो ऐसे जिज्ञासु का किस प्रकार आत्म कल्याण हो सकता है ? क्योंकि विषयों से प्रीति करने वाली बुद्धि का, दुराग्रह आदि जो दोष है । इसलिए अज्ञानी जीवात्मा को छुटकारा दिलाने का, और कोई भी उपाय नहीं है ।

दोहा :- सीतां सुरति उलंघिया, राम लीक गुरू बैन ।
रज्जब रावण काल कर, चढ्या न पावै चैन ॥११३॥

(सत्य असत्य गुरू पारख)

गुरू अपंग पग पंष बिन, सिष साखा का भार ।
दादू खेवट नाव बिन, क्यूँ उतरैगें पार ॥११४॥

टीका :- भेखधारी नाममात्र के गुरू शुभ कर्मों से अर्थात् निस्काम कर्म रूपी पैरों से तो अपंग है और पक्षी जैसे दो परों से उड़ता है, वैसे ही मोक्ष मार्ग में भी गमन करने के लिए, ज्ञान भक्ति रूपी परों से वह, गुरू हीन है, अर्थात् न व्यवहार का ज्ञान है, और न परमार्थ का ज्ञान है जिनको, और शिष्य नाम चेला चेलियों का बोझा और भी सिर पर रख लिया है, जिससे मल्लाह रूप ज्ञानी सतगुरू और भक्ति वैराग्य रूपी नौका के बिना, वह झूठे गुरू और शिष्य, इस दुःख रूप संसार समुद्र से कैसे पार उतरेंगे ?

दादू संसा जीव का, सिष साषा का साल ।
दोनों को भारी पड़ी, व्हैगा कोण हवाल ॥११५॥

टीका :- प्रथम तो असत्य गुरूओं को, अपना ही कल्याण होने में सन्देह है । एक तो यही दुःख उन्हें बना रहता है दूसरा, शिष्य प्रशिष्य आदिकों का सिर पर बोझा लिया है, यह भारी दुःख है। दयाल महाप्रभु आज्ञा करते हैं कि हमको असत्य मार्ग पर चलने वाले जीवों का कल्याण होने में संदेह है और वे असत्यमार्गी जीव, शिष्य पर शिष्य करें तो, अति ही संशय है, क्योंकि असत्य गुरू और उनके शिष्य, उन दोनों को अन्तकाल में भारी व्याकुलता होती है । क्योंकि शास्त्रों में पापी पुरूषों के लिए नरक आदि में प्राप्त होना कहा है । इसलिए अब इनकी क्या अधोगति होगी ? इसको ईश्वर ही जानता है ।

दोहा :- देख कन्सलो दुखित अति, चिटीं लगी अनेक ।
पहली यह सबै शिष्य थे, यह इन का गुरू एक ॥११५॥

दृष्टान्त :- एक रोज गुरू नानक, भाई बाला और मर्दाना के साथ चले जा रहे थे। मार्ग में एक कनखजूरे के अनेक चिटींयां लग रही थी और उसका खून पी रही थी। वह उल्टा-पुल्टा

होता था, नानक जी देखकर हंस पड़े। मर्दाना ने पूछा सतगुरू ! इसको तो चिटींयां चोंट-चोंट कर खा रही हैं, और आप हंस रहे हो ? हंसने का क्या कारण है ? नानक जी बोले :-भाई ! भूतकाल में यह साधु कहलाता था और चिटींयां इसके चेले चेली थे। इनको इसने यथार्थ कहिए, सच्चा ज्ञान नहीं दिया। अपनी सेवा कराता रहा। इसीलिए यह चौरासी का जन्तु कनखजूरा बना और यह चेले चेलियां चींटे चींटी बनी। यह जानते हैं कि तेरी शरण में हम आए थे। तूने हमें सच्चा ज्ञान नहीं दिया और हमारे धन सम्पत्ति से तूं, अपनी हमसे सेवा कराता रहा, उसका यह फल हुआ कि तुम कनखजूरा बने और हम चौरासी चीटीं बनी। अब हम तेरा खून पीते हैं। हे भाई ! यह देखकर, मुझे हंसी आ गई कि देखो :-"झूठे गुरू और झूठे शिष्यों की यह गति होती है।"

(दृष्टान्त सहित झूठे गुरू और झूठे शिष्यों की गति का वर्णन)

अंधे अंधा मिल चले, दादू बंधी कतार।
कूप पड़े हम देखतां, अंधे अंधा लार॥११६॥

टीका :- जैसे अंधे पुरुषों की कोई मण्डली होवै और उनका अगवा कहिए आगे चलने वाला भी अन्धा ही होवै और उनको ऐसे अपरिचित मार्ग से जाना हो, कि जिसमें कूप आदि बने हों, तो निश्चय ही वे सब कुएं में गिरेंगे। इसी प्रकार सत्य असत्य को न जानने वाला गुरू और जिसके ऐसे ही अज्ञानी शिष्यों की मण्डली हो और उनका गुरू भी विचार रूपी नेत्रों से अन्धा हो, तो यह सब जन्म मरण रूपी दुखों के इस संसार रूपी कुएं में गिरेंगे।

दोहा :- **सूरदास मार्ग चल्यो, रोटी लेकर चार।**
अन्य प्रति कह्नि बिचार के, रोटी ले पहुचाय दे॥११६॥

दृष्टान्त :- एक सूरदास नगर में रहता था। कुछ रोज बाद उसने विचार किया कि इस नगर से अब दूसरे नगर में चलूं। तब उसने चार रोटी बनवाई और चार प्याज भी साथ में रोटियों के बांध ली। आगे चला। जहां तक वह रोज जाया करता था, उस रास्ते का उसको अनुभव था। शहर के बाहर निकल कर आवाज लगाई, कोई मजदूर है ? जो मुझे अमुक गांव पहुंचा दे। वहां बाहर में एक सूरदास और रहता था। उसने उसकी आवाज सुनी और वह बोला मजदूर है, क्या देगा ? यह बोला :- दो रोटी और दो प्याज दूंगा। बाहर वाला सूरदास बोला :-मेरे पास आ जा। मेरी आवाज के ऊपर चला आ। वह कहने लगा बैठ जा। ला रोटी और प्याज दे और तूं भी ले ले और यहां पर खा लें, पानी पी लें, तम्बाकू पी लें, मैं फिर तेरे को फटाफट ले चलूंगा। उसने दो रोटी और दो प्याज उसे दे दिए। दो रोटी और दो प्याज खुद लिए। रोटी

प्याज खाकर पानी पिया। वह बाहर वाला सूरदास एक हाथ में अपनी लकड़ी रक्खी और दूसरे हाथ में उसकी लकड़ी पकड़ी और ले चला। कुछ दूर के मार्ग का उसको अनुभव था। वहां तक तो ठीक चला, फिर जंगल में उज्जड़ रास्ते पर चल पड़ा। जिस रास्ते में कांटे झाड़, झंकड़ गढ्ढे वगैरा बहुत आते थे। पीछे वाले सूरदास ने कहा :- कभी तूं भी तो अन्धा नहीं है, किधर चल रहा है। इधर बहुत कांटे हैं। अगवा बोला :- अरे अबके पानी बहुत बरसा है, इसलिए रास्ते में झाड़ झंकड़ बहुत हो गए। यह नहीं बतलाता कि मैं अन्धा हूं, क्योंकि उसकी शान में फरक आ जाता। पीछे वाले को घसीटे ले जा रहा है। आगे जमीन से सटा हुआ एक कूप आ गया। लोगों ने आवाज दी, अरे अन्धे हो आगे कुंआ है, गिर जाओगे, बचो। पीछे वाला कहने लगा :- अरे आगे तो कुआं बतलाते हैं। वह बोला, कुआं नहीं है। लोग अपना मखौल करते हैं। चला आ। इतने में ही आगे वाला और पीछे वाला दोनों धमाधम कुएं में गिर पड़े। दाराष्टान्त में झूठे गुरू और झूठे शिष्य भी, इसी प्रकार दुःख रूपी संसार कूप में पड़ते हैं।

सोधि नहीं शरीर की, ओरों को उपदेश।
दादू अचरज देखीया, ये जांहिगे किस देस॥११७॥

टीका :- सतगुरू महाराज आज्ञा करते हैं कि जिनको अपने आतमा का कल्याण करने का तो ज्ञान ही नहीं है, और दूसरों को मोक्ष प्राप्ति के लिए उपदेश देते हैं। ऐसे गुरू और शिष्य किस गति को प्राप्त होंगे, अर्थात् संसार बन्धन में ही भ्रमते रहेंगे।

दादू सोधि नहीं शरीर की, कहैं अगम की बात।
जान कहावैं बापुड़े, आवध लिए हाथ॥११८॥

टीका :- अविवेकी गुरूओं को अपने आत्म स्वरूप का तो ज्ञान है नहीं और शिष्य प्रशिष्य आदिकों को परमेश्वर प्राप्ति का उपदेश देते हैं, और अपने को जानकार कहलाते हैं कि हम सब कुछ जानते हैं। ऐसे देह अध्यासी कहिए शरीर में आसक्ति रखने वाले मिथ्यावादी और ऊपरी लोग दिखावे के लिए माला तिलक, घोटमोट, कासाए वस्त्र धारण करके लोक में अपने आप को ज्ञानी कहलाते हैं।

(सत्यासत्य गुरू पारख लक्षण)

दादू माया मांहै काढि करि, फिर माया में दीन्ह।
दोऊ जन समझै नहीं, एको काज न कीन्ह॥११९॥

टीका :- सतगुरू भगवान कहते हैं कि केवल भेखधारी गुरू अपने शिष्य को माता पिता, स्त्री पुत्र पौत्र आदि रूप जो माया है, उनमें से निकाल कर पुनः संप्रदाय झगड़ों में बांधते हैं। इसी प्रकार झूठे गुरू और

शिष्य अपने कर्त्तव्या कर्त्तव्य को भूल कर, माया में ही आसक्त रहते हैं। उनसे इस लोक एवं परलोक का उत्तम कार्य कोई भी नहीं होता है।

दोहा :- चेलो भयो जो चौधरी, भेज्यो तीरथ काज।
बिभो दिखायो अति घणु, मेरै ही हो राज॥११९॥

दृष्टान्त :- एक कोई गृहस्थी पैसे वाला जाट था। उसको सहसा गृहस्थ आश्रम से वैराग्य हो गया और गुरू की खोज में चला। एक नगर के बाहर कूप पर साधु पानी खैंच रहा था। उसे वह बोला महाराज! जल पीलाओगे। साधु बोला :-पिला देंगे। जल पिलग्या और साधु पूछने लगा, तुम कहां के हो? और कहां जाते हो? वह बोला :- मैं अमुक गांव का हूं, और सतगुरू की खोज करता हूं। साधु बोला :-हमारे गुरू बहुत भारी महापुरूष हैं और ठाकुर जी का मन्दिर है, बहुत सेवक है, उनके शिष्य बन जाओ। वह गुरू के योग्य हैं। उसको साथ लेकर साधु महन्त के पास आया और महन्त को साष्टांग प्रणाम किया। उस जाट राम ने भी वैसा ही प्रणाम किया। साधु बोला :-महाराज! यह चेला बनने आया है। पहले कहा :-जाओ चार धाम की यात्रा करके आओ। चार धाम करके जब आया, उसके कण्ठी तिलक बांध दिया और महन्त बोला :-यह मन्दिर मकान हाथी घोड़े, बैल जमीन जायदाद सब तुम्हारी हैं। सेवा करो और यहां रहते रहो। जाट बोला :-यह सब महाराज मेरे भो थे। मुझे तो सनातन धर्म का उपदेश करो। महाराज बोले :-सुनो :

जाली खुरपा दृढं कृत्वा, हरि हरि दूब निकंदनम्।
अश्विनी कुमार भुक्तव्यं, एवं धर्म सनातनम्॥

सुन यह जाली और खुरपा इसको तो अपने पास रखना और नदी पर जा कर हरि-हरि दूब खोदना। जाली में बांधना और मेरी सवारी का जो घोड़ा है, वह भूखा है इसको खूब दूब चराना। यही सनातन धर्म है। जाट ने हाथ जोड़कर कहा :-धन्य हो महाराज। आप जैसे साधु तो संसार के जीवों का अवश्य उद्धार कर देंगे। यह कह कर जाट आगे झूठे गुरू को छोड़, सच्चे गुरू की खोज में चल पड़ा।

असत्य गुरू को त्याग कर, सतगुरू का लक्षण बताते हैं।

दादू कहै सो गुरू किस काम का, गहि भ्रमावै आन।
तत्त बतावैं निर्मला, सो गुरु साध सुजान॥१२०॥

टीका :- जो गुरू शिष्य को अपनी शरण में लेकर, परमात्मा से विमुख बाहर के विषय वासनाओं में प्रवृत्ति कराता है, अर्थात् लगाता है, तो ऐसा असत्यमार्ग पर चलने वाला गुरू कल्याण मार्ग कहिए, आत्म

प्राप्ति के मार्ग का बोध कराने के योग्य नहीं है इसलिए जो सतगुरू निर्मल तत्व कहिए, शुद्ध निरंजन निराकार प्रभु का ज्ञान कराते हैं, वही श्रेष्ठ और सुजान प्रभु के स्वरूप को जानने वाले सतगुरू हैं। अर्थात् आत्मवेत्ता हैं : अब भेख धारी नकली गुरू और शिष्यों का लोक व्यवहार कहते हैं।

तूं मेरा हूं तेरा, गुरू सिख कीया मंत।
दोन्यों भूले जात हैं, दादू बिसर्या कंत॥१२१॥

टीका :- झूठे गुरू और झूठे शिष्यों ने यह निश्चय किया है कि तूं तो हे शिष्य ! मेरी बड़ाई कर, कि मेरे गुरू बचन सिद्ध हैं और मैं तेरी बड़ाई करूंगा कि मेरा शिष्य तो इतना आज्ञाकारी है कि जैसे रामचन्द्र जी के आज्ञाकारी हनुमान थे। ऐसा मत दोनों ने बना लिया है। माया के चक्र में फंस करके, दोनों ही सत्य स्वरूप परमात्मा का मार्ग ज्ञान भक्ति वैराग्य इसको भूलकर, परमात्मा को बिसार दिया है। इसलिए सच्चे सतगुरू का निर्णय करके ही, उनका सत्संग करके पार उतरो।

दुहि दुहि पीवै ग्वाल गुरू, सिष है छेली गाइ।
यहु औसर योंही गया, दादू कहि समझाइ॥१२२॥

टीका :- जैसे ग्वाल जंगल में गाय और बकरी को दूहि कर आप ही दूध पी लेवै, तो महादोष कहिए, पाप का भागी होता है। ऐसे भेखधारी साधु गुरू तो ग्वाल रूप हैं और शिष्य प्रशिष्य आदि गाय रूप हैं गृहस्थ आश्रम में ही उनको कंठी तिलक देकर चेला बनाते हैं। वे सब बकरी रूप हैं इसलिए भेखधारी गुरू उनको असत्य उपदेश कर करके, अपने स्वार्थ आदि के लिए उनसे द्रव्य आदि लेते हैं। वही दूध का पीना है और आत्म कल्याण का जो उत्तम ज्ञान मार्ग है, उसको जानते ही नहीं तो बतलावें क्या ? इस प्रकार इन झूठे गुरू और झूठे शिष्यों का मानव जीवन निष्फल ही जाता है। अब शिष्य से सेवा लेने वाले गुरू के लक्षण कहते हैं।

शिष गोरू गुरू ग्वाल है, रक्षा करि करि लेइ।
दादू राखै जतन कर, आणि धणी कौं देय॥१२३॥

टीका :- जैसे ग्वाल दिन भर गाय बकरी आदि की रक्षा करता है और किसी का नुकसान नहीं कराता है, और पेट भरके उनको चराता तथा पानी भी पिलाता है। सांयकाल को मालिक के घर लाकर संभलवा देता है तो फिर उसके ग्वाली लेने में कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार ग्वाल रूपी सतगुरू, गऊ रूपी शिष्य आदि को विषय विकारों से रक्षा करके, यत्नपूर्वक सत्योपदेश द्वारा, आत्मचिंतन में लगाये रहैं, और

जिज्ञासुजनों को धणी जो परमेश्वर है उनके सन्मुख कर देवै, तो फिर ऐसे सतगुरू शिष्यादि से सेवा लेवै, तो कोई दोष नहीं होता। उस सेवा से जिज्ञासुजनों का ही कल्याण है।

अब भेषधारी कपटी गुरूओं का व्यवहार कहते हैं।

झूठे अंधे गुरू घणें, भरम दिढावै आइ।
दादू सांचा गुरू मिलै, जीव ब्रह्म व्है जाइ ॥१२४॥

टीका:- ईश्वर विमुखी कर्त्तव्या कर्त्तव्य से शून्य गुरू बहुत हैं जो भरम कर्म में निश्चय कराके, संसारीजनों को जन्म मरण में डालते हैं किन्तु अच्छे भाग से जो सतगुरू मिल जावें, तो उनके उपदेश से जीव ब्रह्म रूप हो जाता है।

झूठे अंधे गुरू घणे, बंधे विषय विकार।
दादू सांचा गुरू मिल्या, सनमुख सिरजनहार ॥१२५॥

टीका :- विषय विकार आदिकों में बंधे हुए ईश्वर विमुखी और कर्त्तव्य शून्य गुरू तो बहुत हैं, किन्तु सच्चे गुरू कोई-कोई हैं। परन्तु भाग्य से उन सतगुरू की प्राप्ति हो जावे तो, वह दयालु सतगुरू शिष्य को परमात्मा का साक्षात्कार अर्थात् परिचय कराते हैं।

झूठे अंधे गुरू घणें, भरम दिढ़ावै काम।
बंधे माया मोह सौं, दादू मुख सौं राम ॥१२६॥

टीका :- कहें कुछ और, करें कुछ और विचार रहित जो मैं और मेरा में फंसे पड़े हैं, किन्तु लोक दिखावा के लिए मुख से राम-राम कहते रहते है। और अपने शिष्यों को कर्म काण्ड का उपदेश देते हैं। ऐसे भेदवादी कहिए जीव और ब्रह्म को अलग मानने वाले गुरू तो बहुत हैं।

झूठे अंधे गुरू घणे, भटकैं घर घर वारि।
कारिज को सीझै नहीं, दादू माथैं मारि ॥१२७॥

टीका :- नकली भेषधारी, ज्ञान विज्ञान से रहित, इस लोक के ऐश्वर्य आदि सुख में फंसे हुए, तथा उनको मोक्ष सुख की तो सिद्धि प्राप्त होती नहीं है, ऐसे झूठे गुरूओं को चौरासी लाख योनियों के शरीरों में

भटकना पड़ता है। महाप्रभु कहते हैं कि ऐसे झूठे गुरूओं के सिर पर, यमराज की मार पड़ती है अथवा ऐसे पुरूष त्यागने कहिए, छोड़ने योग्य हैं।

(बेखरच बिसनी)

दादू भक्त कहावै आपको, भक्ति न जानै भेव।
सुपनै ही समझै नहीं, कहां बसै गुरूदेव ॥१२८॥

टीका :- बहुत से पुरुष तो जगत् में अपने को भक्त कहलाते हैं किन्तु भक्ति का तो वे भेद भी नहीं जानते हैं कि कितने प्रकार की भक्ति है ? और कैसे करी जाती है ? और भक्ति के उपदेशक सतगुरू का तो उनको कभी स्वप्न में भी दर्शन नहीं होता है, जो भक्ति का उपदेश देने वाले हैं।

अब पण्डित और मौलवीयों ने जगत् को भ्रमा दिया है।

(भ्रम विध्वंस)

भ्रम कर्म जग बंधिया, पंडित दिया भुलाइ।
दादू सतगुरू ना मिले, मारग देइ दिखाइ ॥१२९॥

टीका :- आत्म उपदेश करने वाले सतगुरूओं की प्राप्ति तो दुर्लभ है और सर्व जगत् को भ्रम रूपी कर्मों में कहिए देवी भैरू की उपासना में लगा कर, पाप रूपी कर्म करवाते हैं। ऐसे जगत् को बांधकर, संज्ञा नाम मात्र के पण्डितों ने, परमेश्वर को भुला दिया है। वे सतगुरू आतम उपदेश देने वाले नहीं मिले। अगर भाग्य से मिल जावें, तो आत्म उपदेश देकर, परमात्मा से जीव को अभेद करते हैं।

दादू पंथ बतावै पाप का, भ्रम करम विश्वास।
निकट निरंजन जे रहै, क्यों न बतावै तास ॥१३०॥

टीका :- संज्ञा मात्र के वामतंत्री पण्डित लोग, संसारी मनुष्यों को, भ्रमरूप कर्मों में विश्वास कराके, पाप का पंथ नाम, मार्ग बताते हैं। किन्तु जो प्रभु हृदय में व्याप्त है, उसका उपदेश नहीं करते हैं। कारण कि वे उसको जानते ही नहीं हैं ? फिर क्या उपदेश करेंगे ?

(विचार)

दादू आपा उरझे उरझिया, दीसै सब संसार।
आपा सुरझे सुरझिया, यह गुरू ज्ञान बिचार ॥१३१॥

टीका :- सतगुरू कहते हैं कि जो उपदेश देने वाला स्वयं नाम, आपा अहंकार में उलझा हुआ है, तो उसको सारा संसार ही उलझा हुआ दिखाई देता है। और वह उपदेश भी वैसा ही करता है। यदि स्वयं उपदेश करने वाला, भ्रम रूप कर्मों का त्याग करके, मिथ्या आपा, अहंकार से सुलझता है विचारपूर्वक, तो उसको सम्पूर्ण संसार ही सुलझा हुआ दिखाई देता है ओर उपदेश भी वैसा ही करता है। यही गुरू का ज्ञान है।

(गुरू मुख कसौटी)

साधु का अंग निर्मला, तामैं मल न समाइ ।
परम गुरू परगट कहै, ताथैं दादू ताइ ॥१३२॥

टीका :- साधु का स्वरूप कहिए, उसके मन इन्द्रिय निर्मल पाप रहित हैं और उनमें किसी प्रकार की वासना नहीं होती है। सतगुरू महाराज प्रगट कहिए, प्रत्यक्ष कहते हैं कि इसीलिए सतगुरू जिज्ञासुओं को 'ताइ' कहिए, कसौटी देकर, उनके अन्तःकरण को अति पवित्र बना देते हैं।

अब मन को उपलक्ष करके जिज्ञासु उपदेश।

(सुमिरण नाम चितामणि)

राम नाम गुरू सबद सौं, रे मन पेलि भरम ।
निह करमि सूं मन मिल्या, दादू काटि करम ॥१३३॥

टीका :- रे मन कहिए हे जिज्ञासुजनों ! सतगुरू के रामनाम उपदेश से अपने मन के भ्रम संशय को दूर करो और पूर्वजन्म कृत सकाम कर्मों के बन्धन को काटकर, मुक्त हो। इस प्रकार मन कहिए जीव, चेतन को निष्कर्मी परमात्मा का साक्षात्कार होवेगा।

(सूक्ष्म मार्ग)

दादू बिन पाइन का पंच है, क्यौं करि पहुचै प्राण ।
बिकट घाट औघट खरे, मांहि सिखर असमान ॥१३४॥

टीका :- आत्म प्राप्ति का मार्ग कहिए, साधन कठिन है, क्योंकि हाथ पांव आदि इन्द्रियों से उस पर चलना असम्भव है। अतः परमात्मा के मार्ग में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, यह भारी पहाड़ हैं। वहां

जीवात्मा किस प्रकार पहुंच सकता है। अर्थात् सतगुरू कृपा बिना हुए, आतम साक्षात्कार करना अति कठिन है।

अब परमात्मा प्राप्ति में सतगुरू कृपा का महात्म्य कहते हैं :-

मनता जी चेतन चढै, ल्यौ की करि लगाम।
सबद गुरू का ताजणां, कोइ पहुंचै साध सुजाण॥१३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! पूर्वोक्त मार्ग को तय करने के लिए मन रूप ताजी घोड़े पर जीवात्मा चढै, और परमेश्वर के नाम में लय लगाना ही मानो, उस घोड़े की लगाम है। ब्रह्मवेत्ता गुरू का जो ज्ञान उपदेश, वही हंटर है। इस प्रकार से उपरोक्त साधनों के द्वारा, कोई उत्तम जिज्ञासु कहिए, मल विक्षेप से रहित, वह ब्रह्म परायण होता है। इसी प्रकार संसारीजनों का मन अति चंचल घोड़ा है, जिसकी आत्माकार वृत्ति लगाम है। और ताजणां [हण्टर] रूप गुरू उपदेश है। श्री सतगुरू भगवान उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुजनों ! जो पुरूष गुरू उपदेश में स्थिरता करके, अपनी विषय उन्मुख वृत्तियों को आतमपरायण बनाएंगे, वही मनरूपी घोड़े को अपने वश करके, उसके द्वारा प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन करेंगे।

(पारख लक्षण)

साधौं सुमिरण सो कह्या, जिहि सुमिरण आपा भूल।
दादू गहि गंभोर गुरू, चेतन आनन्द मूल॥१३६॥

टीका :- साधु पुरूषों ने निष्काम भाव से प्रभु का नाम स्मरण किया है, जिससे जगत् की मिथ्या विषयों में आसक्ति दूर होती है और वे संत ऐसा ही स्मरण का उपदेश जिज्ञासुओं को देते हैं। हे जिज्ञासुओ ! ऐसें बरियान गुरू की प्राप्ति और उनके उपदेश अनुसार सुमिरन करने से, उत्तम जिज्ञासु ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं। इसलिए सदैव सच्चे सतगुरू के उपदेश में सलग्न रहो

(स्वार्थी परमार्थी)

दादू आप स्वारथ सब सगे, प्राण सनेही नांहि।
प्राण सनेही राम है, कै साधु कलि मांहि॥१३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू महाराज आज्ञा करते हैं कि अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए सम्पूर्ण जगत् के सम्बन्धी स्थूल शरीर से प्यार करते हैं। परन्तु प्राणों का उद्धार वह नहीं कर सकते। प्राणों को मुक्त करने वाले तो राम जी महाराज हैं और इस कलयुग में कोई-कोई तत्त्ववेत्ता संत हैं।

सुख का साथी जगत सब, दुख का नाहीं कोइ ।
दुख का साथी साईयां, दादू सतगुरू होइ ॥१३८॥

टीका :- सम्पूर्ण संसार सुख का तो साथी है, किन्तु दुःख का कोई भी साथी नहीं है। अर्थात् सभी स्वार्थ के सगे सम्बन्धी हैं। अपने स्वार्थ के लिए प्यार करते हैं और जीवात्मा का कोई भी उद्धार नहीं चाहता है। परन्तु दुःख के साथी परमेश्वर एवं सतगुरू ही हैं। अर्थात जीवात्मा के सच्चे स्नेही प्रथम तो राम हैं और द्वितीय राम का ज्ञान देनें वाले, कोई कोई संतपुरूष हैं।

दोहा :- देख दुखीत एक बणिक सुत, संतन दियो उपदेश ।
रोग कट्यो अब वाहि को, विरक्त कियो विशेष ॥१३८।

दृष्टान्त :- एक नगर में बनिये का एक लड़का जिज्ञासु था। उसको स्वतः यह विचार हुआ कि इस संसार में परमार्थी और स्वार्थी कौन है ? वह संतों की सेवा और सतसंग किया करता था। एक रोज एक संत से विचारकर उसने प्रश्न किया कि महाराज ! संसार में साधु बनना सहज है या गृहस्थी बनना सहज है ? और परमार्थी कौन है ? स्वार्थी कौन है ? उत्तर :—गृहस्थी तो तूं बना है तुझे अनुभव है और संत बन कर देख ले जिससे पता चल जाएगा, कौन सा मार्ग सरल है ? लड़का बोला :—तो मुझे आप संत बना लो। संत बोले :—खबरदार हम को यह नहीं बोलना। परन्तु वह सत्संग में रोज आता था और यह प्रश्न भी बार बार करता था। एक रोज संत बोले :—तेरे माता, पिता और स्त्री से पूछ कर आ, फिर संत बना लेंगे। वह घर जाकर माता से बोला, स्त्री से बोला, क्या मैं संत बन जाऊ ? वह यह सुनकर भारी अफसोस में पड़ गई और सोचा कि इसे किसी संत ने बहका दिया है। इसे सत्संग में जाने नहीं देंगे। कुछ रोज के बाद मौका पाकर संत के पास गया और बोला महाराज ! मुझे तो संत बना ही लें। संत जान गए यह जिज्ञासु है। यह संसार में फंस गया है। इसको निकालना उचित ही है। उसको प्राण निरोध की युक्ति बतला दी और बोले :—कि जब तक हम तेरे घर न आ जावें तब तक कुम्भक बनाए रखना। वह बहुत खुश हुआ और घर गया। पलंग पर जाकर लेट गया। प्राण चढ़ा लिए। माता और स्त्री ने देखा तो रोने लगी। सेठ आया। वह भी रोने लगा। सम्पूर्ण कटुम्ब एकत्रित हो गया और कहने लगे यह तो खत्म हो गया है। कोई कहता शरीर में गरमाइश मालूम पड़ती है। डाक्टर, वैद्य और झाड़ा फूंकी करने वाले सभी को सेठ ने बुलवाया और बोला, 'मेरे लड़के को जो जीवित कर दे, उसको मुंह मांगी इनाम दूंगा। परन्तु किसी का चारा न चला। किसी ने कहा :—यह उन संतों के पास जाया करता था, उनको बुलवा लो। संत आए और इसको देखा। बोले मर तो अवश्य गया, परन्तु हम उपाय करेगें इसके जीने का। पर इसके बदले, किसी एक को मरना पड़ेगा। सब ने

कहा :—हम मर जाएंगें, हम मर जाएगें · · · · · । संत बोले एक की ही जरूरत है मरने की । फिर संत बोले :—एक सेर दूध खूब उबाल देकर, उसमें थोड़ी चीनी तथा कुछ सुगन्धी के पदार्थ इलायची वगैरा डालो और यहाँ ले आओ । तुरन्त ले आए । संत उस दूध के कटोरे को हाथ में लेकर लड़के के सिर से पाँव तक सात बार घुमाया और फिर पावों की तरफ रख दिया । कुछ देर मंत्र बोलते हुए ध्यान किया और फिर बोले इसकी मृत्यु इस दूध में आ गई है । जो इस दूध को पीएगा, वह मर जाएगा और यह लड़का जी जाएगा । आओ कौन पीएगा ? सन्नाटा छा गया । एक दूसरे की तरफ देखने लगे । संत बोला :- सेठ जी आप पी लो, लड़का जी जाएगा । सेठ बोला :—महाराज ! यह नादान है इसको क्या पता, किस से क्या लेना और क्या देना है ? संत बोले :- सेठानी तुम पीलो । तुम्हारा पुत्र जी जाएगा । सेठानी बोली :- महाराज ! आपकी कृपा होगी तो और हो जाएगा, मरे के साथ तो मरा नहीं जाता है । इसी तरह सब इनकार कर गए । तब एक युवक बोला :- महाराज ! संत तो परमार्थी होते हैं आप पी लो । आपका भंडारा करा देंगे और सेठ का लड़का जीवित हो जाएगा तथा हम सब के दुःख मिट जाएंगे । संत बोले :- ठीक है परन्तु अगर राम जी हमको भी न मरने दें और इसको भी जिन्दा कर दें, हम इसको अपना चेला बना लेगें । सब लोग बोले :- हमको यह बात मंजूर है । संत बोले :- तुम मरने को तैयार थे, लेकिन तुम में से किसी ने भी इसके बदले मरने के लिए दूध नहीं पीया, वैसे ही आप चेला बनाने से भी इनकार कर दोगे । इसलिए लिखतम पढ़तम कर लो । सेठ ने वैसा ही कर लिया । संत ने दूध को उठाकर सत्यराम कह कर पी लिया । कुछ देर राम राम करते रहे । लोगों ने देखा अब महात्मा मरने वाला है । मौत का नशा कुछ कुछ आने लग गया है । कोई बोला :- अरे दूध पीता हुआ भी कोई मरता है । दूध पीकर यह तो बैठा है । तब महात्मा जी बोले :- अरे लड़के ! क्या हमें मार कर ही जीएगा । उठ जा, राम नाम के प्रताप से । ऐसा संत जी दो बार बोले । तीसरी बार बोलते ही लड़के ने कुम्भक छोड़ दिया और बैठा हो गया और जो मृतक मनुष्य के दाह के लिए जो सामान होता है सब रखा हुआ देखा । संत उठकर चल पड़े । लड़का भी उनके साथ चलने लगा । कुटुम्बी लोगों ने लड़के को पकड़ लिया और रोना पीटना शुरू कर दिया । लड़का बोला :- तुम सब स्वार्थी हो, परमार्थी एक राम और संत ही इस लोक में हैं । मैं यही देखना चाहता था । गुरूदेव मैंने अब यह भी जान लिया कि गृहस्थी बनना आसान है और संत बनना कठिन है । संत बनने के लिए मुझे मरना पड़ा, तब यह मार्ग हाथ लगा । इसलिए सतगुरू महाराज कहते हैं, परमार्थी तो राम और संत हैं । वही राम और संत दुःख में भी साथ देते हैं ।

अब साधु और परमेश्वर की विशेषता कहते हैं ।

सगे हमारे साध हैं, सिर पर सिरजन हार ।
दादू सतगुरू सो सगा, दूजा धंध विकार ।।।१३९।

टीका :- जो संत पुरुष जीवात्मा की विषय प्रवृत्ति से रक्षा करते हैं वे ही जीवों को सब प्रकार हित नाम रक्षा करने वाले हैं। और परमेश्वर तो क्षण क्षण में जीव की रक्षा करते हैं, किन्तु भगवान की भक्ति और सतसंग में प्रवृत्ति कराने वाले गुरुदेव तो, हरि और संतों से भी, जीव को अधिक प्यारे हैं। बाकी संसारिक प्राणी सभी विषय-विकारों में प्रवृत्ति कराने वाले हैं, इसलिए त्यागने योग्य हैं।

(दया निर वैरत्ता)

दादू कै दूजा नहीं, एकै आत्मराम।
सतगुरू सिर पर साध सब, प्रेम भक्ति बिसराम ॥१४०॥

टीका :- सतगुरू महाराज अपने को ही उपलक्ष करके कहते हैं कि हमारे तो केवल आत्मास्वरूप परमात्मा और ब्रह्मनिष्ठ सतगुरू और ब्रह्म श्रोत्रिय साधु यही सच्चे सगे हैं। इसलिए हे जिज्ञासुजनों ! संसार की आसक्ति को त्याग कर, साधु संगति में चित्तवृत्ति स्थिर करो और गुरू वाक्यों को श्रद्धा सहित धारण करो। इससे माया का आवरण नाम अज्ञान नाश हो जाता है और फिर राम का स्वरूप हो जाओगे। इसलिए सतगुरू जिज्ञासुओं को समत्व भाव का उपदेश करते हैं कि संपूर्ण संसार में हमारा आत्मस्वरूप, समष्टि चेतन ही व्यापक है। इसलिए किसी से भी द्वेष बुद्धि नहीं करनी चाहिए। संत तथा सतगुरू की आज्ञा को सिर पर धारण करके, प्रेमपूर्वक प्रभु की भक्ति करनी चाहिए। जिससे मुक्तिरूप अपूर्व फल प्राप्त होगा।

दादू सुध बुध आत्मा, सतगुरू परसे आइ।
दादू भ्रंगी कीट ज्यों, देखत ही व्है जाइ॥१४१॥

टीका :- छल कपट से रहिल जो निष्कामी और निष्पापी जिज्ञासु हैं, वे प्रभु कृपा से सतगुरू का साथ करके बाह्य विषयों से उदासीन होकर, आत्म स्वरूप में सलग्न हो जाते हैं। अब उदाहरण देकर इस भाव को स्पष्ट दिखाते हैं कि जैसे पीली लट भृंग से मिलकर, उसका शब्द सुन करके, उसी का ध्यान करके भृंगी रूप हो जाती है, वैसे ही वरिष्ठ सतगुरू के दर्शन मात्र से ही उत्तम जिज्ञासु सतगुरू की तरह ब्रह्मरूप हो जाते हैं।

दोहा :- कृपा करैं गुरूदेव यदि, क्षण में हों साक्षात।
मूकन्द ने करवा दिया, जयन्त को विख्यात ॥१४१॥

दृष्टान्त :- नरसिंह के पुत्र राजा जयन्तपाल, अपने राज्य में आने वाले विद्वान साधुओं को अपनी सभा में बुलाकर, यह प्रश्न करते कि आप तो ब्रह्मज्ञान की बात करते हो ? इसलिए क्या आपने ब्रह्म का साक्षात्कार किया है ? और किया है तो क्या आप मुझे साक्षात्कार करा सकते हो ? परन्तु केवल शब्द ज्ञानी इसका क्या उत्तर देते ? ऐसे ज्ञानियों को वह कारागार में बन्द करवा देता । करीब ६०० साधु ब्राह्मण, राजा के काराग्रह में थे । श्री रघुनाथ के शिष्य मुकन्दराज, उन्हें छुड़वाने की इच्छा करके, जयन्तपाल के पास गए । उनसे भी वही प्रश्न किया । मुकन्दराज ने कहा, 'तुम जहां कहो साक्षात्कार करा दूं ।' यह कह कर, एक घोड़ा मंगाया और राजा को कहा, 'इस पर चढ़ो ।' राजा ने जब पायड़े में पैर रखा और घोड़े पर चढ़ा, तो मुकन्दराज ने राजा के सिर पर हाथ रखा तो घोड़े के ऊपर ही राजा को समाधि लग गई । तीन दिन और तीन रात, राजा घोड़े पर ही सवार रहा । समाधि खुलते ही राजा, मुकन्दराज का ही शिष्य हो गया और साधु ब्राह्मणों को सम्मानपूर्वक बिदा किया ।

दादू भ्रंगी कीट ज्यूं, सतगुरू सेती होइ ।
आप सरिखे करि लिये, दूजा नांहि कोइ ॥१४२॥

टीका :- कीट रूपी उत्तम जिज्ञासु भृंग रूपी ब्रह्मवेत्ता सतगुरू के मिलते ही तत्वस्वरूप हो जाते हैं । दाराष्टान्त में यह है कि जैसे भृंग लट को अनेक दुःखों से छुड़ा करके, अपने समान आकाशगामी पक्षी बना लेता है, उसी प्रकार संसार दुःखों से मुक्त करके, सतगुरू भी जीव को आत्मपरायण बनाते हैं । इसी से सच्चे गुरू के समान परमार्थी कोई भी नहीं है । अथवा जब सतगुरू ने शिष्य को अपने समान किया तो, शिष्य की दृष्टि में अपने एक आत्मा से अन्य दूसरा कोई भी नहीं है । सर्वत्र परमात्मा का ही साक्षात्कार करता है ।

छंद :- ज्यों लट भृंग करै अपने सम, तास ज्यूँ भिन्न कहै नहीं कोइ ।
ज्यूं द्रुम ओर अनेक न भांतिन, चंदन के ढिग चन्दन होइ ।
ज्यूं जल क्षुद्र मिलै जब गंगहि, होइ पवित्र व्है जल सोइ ।
सुन्दर जाति स्वभाव मिटै सब, साधु की संगति साधु ही होइ ॥१४२॥

सतगुरू शिष्य को अपने समान बनाते हैं, उसका वर्णन करते हैं ।

दादू कद्दब राखै दृष्टि मै, कुँजों के मन मांहि ।
सतगुरू राखै आपणां, दूजा कोई नांहि ॥१४३॥

टीका :- कछुवा आप तो जल मैं रहता है और अंडे जल के किनारे मिट्टी में देता हैं और क्षण क्षण में उन पर अपनी दृष्टि रखता है । इसी प्रकार 'कुन्ज पक्षी' भी हिम में जा कर अपने अंडे देता है । आप देशान्तर में चला जाता है तथापि कुन्जों की, अंडों में सुरति रहती है । इसी प्रकार दोनों के बच्चों का पालन होता है । ऐसे ही सतगुरू भी अपने शिष्यों की विघ्न, व्याधि और संसारिक विषयों से रक्षा करते हैं । अर्थात् सतगुरू के समान परमार्थी और कोई भी नहीं है । क्योंकि कछुवा और कुंज तो अपने बच्चों का एक जन्म में ही पालन करते हैं । किन्तु सतगुरू तो शिष्य को जन्म जन्मान्तरों के चक्र से ही मुक्त कर देते हैं ।

बच्चों के माता पिता, दूजा नांही कोइ ।
दादू निपजै भाव सूं, सतगुरू के घटि होइ ॥१४४॥

टीका :- जैसे बच्चे केवल माता पिता के भाव से ही पनपते हैं और उन्हीं पर भरोसा रखते हैं ऐसे ही गुरू बचनों में श्रद्धा विश्वास सहित, अनन्यभाव होकर, मुमुक्षुजन ब्रह्म भाव को प्राप्त होते हैं, और ब्रह्मवेत्ता सतगुरू उनकी रक्षा करते है ।

(सतगुरू बेपरवाही)

एक शब्द अनन्त सिख, जब सतगुरू बोलै ।
दादू जड़े कपाट सब, दे कूँचि खोलै ॥१४५॥

बिन ही कीया होइ सब, सनमुख सिरजनहार ।
दादू करि करि को मरै, सिख साखा सिर भार ॥१४६॥

टीका :- सतगुरू कृपा दृष्टि करके जब एक ही शब्द बोलते हैं, तो अनन्त शिष्य ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, क्योंकि सतगुरू की बाणीरूपी चाबी से जीवों के जन्म जन्मान्तरों के, कर्म बन्धन रूपी ताले, सहज में ही खुल जाते हैं । और बहिरंग साधन यज्ञ, व्रत आदि के बिना ही केवल गुरूदेव की कृपा से ही मुमुक्षुजन भगवान का दर्शन करते हैं ।

दोहा:- गुरू दादू से मान नृप, कही शिष्य क्यों कीन्ह।
स्वामी कहै मैं ना किये, भाव भये लय लीन ॥१४६॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज आमेर में बिराजते थे। बहिर्मुख लोगों के कहने से राजा मानसिंह एक रोज महाराज से नमस्कार करके बोला :-आपने इतने शिष्य क्यों बनाए हैं? गुरूदेव बोले :- हमने तो एक भी नहीं बनाया, यह सब अपनी श्रद्धा और भाव से स्वतः ही बने है। राजा ने नमस्कार करके क्षमा याचना की।

दोहा :- स्वामी रामानुज जी, टेर अर्ध निश दीन।
श्रवण बहत्तर के पड़ि, मुक्त भये सब चोन ॥१४७॥

दृष्टान्त :- विष्णु कान्द्दीपुरी के ऊपर रामानुज स्वामी ने एक रोज आधी रात्रि में तीन दफा राम मंत्र का उच्चारण किया। यह मंत्र सुनकर बहत्तर मनुष्यों की नींद खुल गई और उसी समय उनको याद हो गया। वह अपने भाव द्वारा रामानुज जी को गुरू मानने लगे और मुक्त हो गए। हे राजा! वैसे ही यह भी अपने भाव से लयलीन हो रहे हैं।

दोहा :- गोरख देवी कै गये, मानुष्य भक्ष छुड़ाई।
केते मारे जुगन के, कीने शिष्य जीवाई ॥१४७॥

दृष्टान्त :- जम्नू नरेश साल में दो दफा दुर्गा अष्टमी पर देवी को मनुष्य का बलिदान चढ़ाया करते थे। वह मनुष्य, बारी बारी से नगर में हर एक घर से लिया जाता था। एक रोज एक बुढ़िया का नम्बर आया। उसके एक ही लड़का था। राजा के प्रतिहार आकर बुढ़िया को बोले :- कल तेरे लड़के की बलि का नम्बर है। तुम कल मीठे गुल-गुले और पूड़ी बना कर, लड़के को साथ लेकर देवी के मन्दिर आ जाना। बुढ़िया यह सुनकर रोने लगी। परन्तु राजा का हुक्म था। क्या करती? दूसरे रोज गुलगुले और पूड़ी बनाती है और रोती है। इतने में गुरू गोरखनाथ बुढ़िया के दरवाजे पर आए और अलख जगाया। बुढ़िया ने नमस्कार किया। योगी बोले माई, गुलगुले और पूड़ी बनाती है और रोती है इसका क्या कारण है? महाराज! यहाँ एक देवी है उसके राजा साल में दो वार मनुष्य का बलिदान चढाता है। आज मेरे लड़के का नम्बर है। मेरे एक ही लड़का है। आज इसकी जीवन लीला खत्म हो जाएगी। मैं क्या करूंगी? इसलिए रोती हूं। योगी बोले :-फिर यह गुलगुले और पूड़ी क्यों बनाती है? इसका भी उसको भोग लगेगा। योगी बोले :-"माई यह गुलगुले और पूड़ी तुम मुझे खिला दो और मैं तुम्हारे लड़के के बदले बलिदान होने को चला जाऊंगा।" बुढ़िया बोली :-आप को राजपुरूष कैसे ले जाएंगे? योगी बोले :-तुम

बोलना, यह मेरा बेटा है, बाहर रहता था, अब आया है। बुढ़िया ने सोचा महात्मा भूखे हैं, इन्हें भोजन तो करा दूं और ज्यादा क्या होगा ? रांड मुझे भी मार देगी। योगी ने सम्पूर्ण पूड़े-पूड़ी का भोजन कर लिया। राज पुरूष आ पहुंचे, लेने के लिए। यह बोले, 'चलो भाई, मैं चलता हूं'। वह बोले :-तुम कौन हो ? योगी बोले :-मैं बुढ़िया का बेटा हूं। गोरखनाथ जी को लेजा कर जब देवी के सामने खड़ा किया तो राजा तलवार लेकर उनकी गर्दन पर प्रहार करने लगा, तब देवी प्रगट हो गई और राजा का हाथ पकड़ लिया। और तलवार छीन कर राजा सहित जितने भी वहां थे, सब के सिर काट दिए। गोरखनाथ जी के सामने हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगी यह बड़े दुष्ट हैं, मेरी आड़ लेकर जीवों को हिंसा करके, मांस खाते हैं। मेरा कोई अपराध नहीं है। योगी बोले :-युगों से तेरे यहां पर जितने मनुष्यों का बलिदान किया है, उन सबको तूं जीवित कर दे, मैं उन सब का उद्धार करूंगा। तब देवी ने उस जंगल में एक जल का छींटा लगाया। अनेक मनुष्य जीवित हो गए। गोरखनाथ जी ने अपने नाद से एक ही शब्द का उच्चारण किया। वे समस्त मनुष्य सुन कर, ज्ञान द्वारा मुक्त हो गए। उसी दिन से वह देवी वैष्णो देवी कहलाती है। हे राजा मान सिंह ! वे क्या किसी को शिष्य बनाने गए थे ? सब अपने भाव से ही, अपना उद्धार कर लेते हैं।

सूरज सनमुख आरसी, पावक किया प्रकास।
दादू सांई साधु बिच, सहजैं निपजै दास॥१४८॥

टीका :- आरसी शीशा जैसे सूर्य के सन्मुख करने से, उससे तुरन्त अग्नि पैदा हो जाती है, इसी प्रकार आरसी रूपी उत्तम जिज्ञासु हैं मल विक्षेप रहित। और सूर्य रूप ब्रह्मनिष्ठ सतगुरू हैं, उनकी शरण में जिज्ञासु आते ही, पावक स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं।

(मन इन्द्रिय निग्रह)

दादू पंचौं ये परमोधि ले, इन हीं कौ उपदेश।
यहु मन अपणा हाथि कर, तो चेला सब देस॥१४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! इन पांच ज्ञान-इन्द्रियों को शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन पांचों विषयों से इनको परमेश्वर के स्मरण करने का, उपदेश दो। इसके अतिरिक्त इन्द्रियों की विषयों में प्रवृत्ति का कारण जो मन है, अपने "हाथि" कहिए, बस में करो। इसके बाद सम्पूर्ण संसारीकजन और इष्ट पदार्थ सभी आपकी आज्ञा में बरतेंगे। सतगुरू सन्मुख ज्ञान और विमुख ज्ञान का फल कहते हैं।

अमर भये गुरू ज्ञान सौं, केतें इहि कलि मांहि।
दादू गुरू के ज्ञान बिन, केते मरि मरि जांहि ॥१५०॥

टीका :- इस संसार में सतगुरूओं के ज्ञान से अनगिनत असंख्य जीव अमर हुए हैं और सतगुरूओं के ज्ञान बिना, इस संसार में असंख्य पुरुष, जन्म मरण को प्राप्त होते हैं।

औषद खाइ न पछि रहै, विखम व्याधि क्यौं जाइ।
दादू रोगी बावरा, दोष बैद कौं लाइ ॥१५१॥

टीका :- जैसे कोई रोगी औषधि का तो सेवन करता है, परन्तु परहेज नहीं करता, तो रोग से छुटकारा नहीं मिलता है। इसी प्रकार वैद्य रूपी सतगुरू से संसारीजन, उपदेश तो श्रवण करते हैं, परन्तु इन्द्रिये निग्रह रूपी परहेज नहीं करते हैं,तो उनका जन्म मरण रूपी दुःख और विषयों का दुःख नष्ट नहीं होता है और कर्त्तव्या-कर्त्तव्य से शून्य संसारी पुरुष, सतगुरू को व्यर्थ ही दोष देते हैं।

बैद बिथा कहै देखि करि, रोगी रहै रिसाइ।
मन मांहैं लिये रहै, दादू व्याधि न जाइ ॥१५२॥

दादू बैद बिचारा क्या क़रै, रोगी रहै न सांच।
खाटा मीटा चरपरा, मांगै मेरा बाच ॥१५३॥

टीका :- वैद्य तो रोगी का जैसा रोग देखता है वैसा ही निदान करता है, किन्तु रोगी वैद्य के बताए हुए साधनों को करता नहीं, और रोग से दुखी होकर, वैद्य के प्रति क्रोध करता है, तो ऐसा करने से रोगी रोग से मुक्त नहीं होता। ऐसे ही सतगुरू तो जिज्ञासु के अन्दर जो दोष प्रबल देखते हैं, उन्हीं की निवृत्ति का उपदेश करते हैं, किन्तु जिज्ञासु सतगुरू की आज्ञा नहीं मानते और मन में क्रोध करके यह समझते हैं कि आप तो सतगुरू सहज वृत्ति से रहते हैं, और हमको कष्ट के साधनों में प्रवृत्त करते हैं। दयालु सतगुरू आज्ञा करते हैं कि ऐसे जिज्ञासुओं के संशय रूपी कष्ट नहीं मिटते हैं और कष्ट निवृत्ति नहीं होने से कहते हैं कि वैद्य का इलाज ठीक नहीं है। वैसे ही अनाधिकारी बोलते हैं कि सतगुरू का उपदेश कष्टप्रद है, इसलिए दुःख निवृत्ति सम्भव नहीं है। इसी प्रकार जिज्ञासु, सतगुरू की आज्ञा में तो रहते नहीं हैं और श्रोत्र आदिक इन्द्रियों को अपने अपने विषयों में सलग्न करै, तो ऐसे अनाधिकारी का सतगुरू क्या करैं ? इसलिए जिसको आत्म कल्याण की इच्छा है, वह सतगुरू की आज्ञा मानै।

(गुरू उपदेश)

दुर्लभ दर्शन साध का, दुर्लभ गुरू उपदेश ।
दुर्लभ करबा कठिन है, दुर्लभ परस अलेख ॥१५४॥

टीका :- पूर्व पुण्य बिना, उत्तम प्रभु भक्त, साधु संतों का दर्शन, और उनका सतसंग प्राप्त होना दुर्लभ है, और यदि सतगुरू मिल भी जावें, तो उनका सत्य उपदेश करना कठिन है, और जो दया करके, उपदेश भी कर दें, तो फिर अनादि काल से विषयों में आसक्ति वाला मन, उसका पालन नहीं करता । और जो कदाचित् आज्ञा का पालन भी कर लेवे, तो इस लोक के स्त्री धन पुत्र के सुख, मान प्रतिष्ठा तथा परलोक के ऋद्धि सिद्धि आदि इन सब प्रलोभनों को छोड़कर, परमात्मा का साक्षात्कार करना तो, अति कठिन है । परन्तु फिर भी सतगुरू महाराज कहते हैं कि निष्काम भाव से सच्चे साधु महात्माओं का सतसंग करके, और श्रद्धा सहित गुरूजनों का उपदेश सुनकर, निरन्तर उसके अनुसार अनन्य भक्ति से, परमात्मा के पवित्र नामों के जपने से ही, जीवों का कल्याण सम्भव है । इसके अलावा और परमात्मा की प्राप्ति का कोई साधन नहीं है ।

दोहा :- **जोगेश्वर गये जनक के, मिल्यो बाथ भर सोइ ।**
नाथ अलफ जिवन यह, बार बार नहीं होइ ॥१५४॥

दृष्टान्त :- एक समय ऋषभदेव के पुत्र नो जोगेश्वरों ने विचार किया कि राजा जनक ज्ञानी है तो चलो उनकी परीक्षा करें । यह विचार कर राजा के नगर के समीप पहुंचे । राजा जनक ने सुना कि नो जोगेश्वर आ रहे हैं । वह बहुत प्रसन्न हुआ । थाल में पूजा की सामग्री सजाकर, पण्डित और मन्त्रियों को साथ लेकर, सामने लेने को चला । दूर से राजा ने विचार किया कि ये तो नौ हैं और मैं एक हूं । किस प्रकार इनसे मिलूं ? क्योंकि शरीर क्षणिक है । तब राजा ने यह सोचा कि एक दफा नौ के नौ से बाथ भरके मिल लूं । फिर यथायोग्य पूजा करूंगा । इतने में नौ जोगेश्वर समीप आए । राजा दौड़कर भुजा पसार कर, नौ के नौ से बाथ भरके मिला । जोगेश्वर बोले :- राजन् ! यह क्या मिलना ? तब राजा बोला :-

श्लोक : **दुर्लभो मानसो देहा, देहि नाम क्षण भंगुरः ।**
तत्रापि दुर्लभो मन्ये, बैकुण्ठः प्रिये दर्शनम् ॥

हे नाथ ! प्रथम तो मनुष्य का देह मिलना कठिन है और फिर यह शरीर एक क्षण में नाश होने वाला है । क्या पता इसका कब नाश हो जावे ? इसके उपरान्त भगवान बैकुण्ठवासी विष्णु उनके प्रिय भक्त, आप लोगों का दर्शन होना दुर्लभ है । मैंने विचार किया कि एक से मिलूं और कदाचित् शरीर छूट जावे, तो अन्य से मिलने की इच्छा रह जाएगी । इसलिए मैंने विचार किया कि एक दफा सबसे बाथ भरके मिल लूं ।

यह कह कर राजा ने विधिपूर्वक योगेश्वरों की पूजा की और फिर बड़े हाव-भाव से लाकर, महलों में ठहराये। अनेक प्रकार से सेवा की और उनका ज्ञानोपदेश सुनकर कृत्य-कृत्य हो गया।

अब जो परमात्मा के पवित्र नाम बतलाए हैं जिनके स्मरण करने से परमात्मा का साक्षात्कार होता है उन नामों का विवेचन करते हैं। वह कौनसे नाम हैं ? सो अब नीचे बतलाते हैं। इनको गुरू मंत्र कहते हैं। यह गुरू मंत्र की टीका गुरूदेव के अंग के अन्त में अविचल मंत्र नाम से, महाराज दादू दयाल जी ने जिस गुरू मंत्र का, साधक को निर्देश किया है, उस अविचल मन्त्र में एक-एक पाद में, पांच-पांच उस परब्रह्म के विशेषणों का स्वरूप बताने वाली विशेषता का निर्देश किया गया है। अर्थात् प्रत्येक पाद में एक-एक फल निर्देशक वाक्य है। इस तरह इन चौबीस वाक्यों द्वारा सतगुरू भगवान ने—निर्गुण ब्रह्म की उपासना कैसे करनी चाहिए"—यह जिज्ञासुओं को उपदेश किया है। प्रत्येक वाक्य के विशेषण के आगे मंत्र शब्द है, ताका प्रयोग किया है। मंत्र शब्द का अर्थ है कि किसी गूढ रहस्य का जिसके द्वारा ज्ञान हो। इसी अर्थ में वहां मंत्र शब्द का प्रयोग समझना चाहिए।

(दादू अविचल मंत्र)

दोहा :- अविचल दादू राम जी, अविचल जाके बैन।
अविचल संत उद्धार के, अविचल पावे चैन ॥१॥

टीका :– 'दा' शब्द का अर्थ है ज्ञानादिक देने वाले, 'दू' शब्द का अर्थ है अज्ञानादिक का छेदन करने वाले, सम्पूर्ण त्रिगुणात्मक सत, रज, तम, समष्टि--व्यष्टि जगत् है। वह सब चल है। गतिमान है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण, त्रिविध शरीर भी जल है अर्थात् परिवर्तनशील है। इससे जो विपरीत चेतन सत्ता है, वह अविचल है। अविचल के आरम्भ में अकार शब्द का प्रयोग, शुद्ध ब्रह्म का बताने वाला है।

आत्मा का अविचल विशेषण, परातपर रूप का जताने वाला है। अज्ञानादि हर्त्ता, ज्ञानादि के दाता, ऐसे सतगुरू श्री दादू दयाल साधक को, मंत्रत्वेन निगूढार्थ बोधक, इस विशेषण वाक्य से निर्देश करते हैं कि हे साधक ! उस सर्व गुरू, सर्व विकार शून्य निरंतर प्रत्यज्ञ अभिन्न देवरूप चित शक्ति को अविचल मान कर, नित्य सत्य, स्थिर एक रस, समझ कर, उसका ध्यान कर।

(अमर मंत्र)

दोहा :- अमर अनुपम आप है, अमर हरि का नाम।
अमर हरि के संत है, अमर लहै सुखधाम ॥२॥

टीका :- प्राण से पंच भूतात्मक पिंड का वियोग होना, मृत्यु कहलाती है। दृश्यमान जितनी भी जड़ चेतन सृष्टि है, वह काल कवलित होती दिखाई पड़ती है। जितने भी जड़ पदार्थ हैं, वे सब नाशवान हैं। केवल एक आत्म पदार्थ ही ऐसा है, जिसका कभी विच्छेद नहीं होता। भावात्मक पदार्थों में ही उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, परिवर्तन ह्रास और विनाश, ये छः विकार रहते हैं। आत्मा इन विकारों से रहित है। विकारहीनता है। वही अमर तत्व का ज्ञापक हैं, एवं साधक संसार के सब पदार्थों को विनाशी समझ, और अविनाशी आत्मा को अमर भावना से, अनवरत चिन्तन करे।

(अखै मंत्र)

दोहा :- अखै अखंडित एक रस, सब में रहा समाय।
आपे आप उधार हरि, सुमिर सुमिर सुख पाय ॥ ३ ॥

टीका :- अक्षय धातु व्याप्ति अर्थ में हैं। अक्षय का अभिप्राय है, निरत्तिशय व्यापक। यह शब्द उपरति का बोधक है। अक्षय आत्मा का अर्थ है, माया तथा माया के कार्य तथा धर्मों से रहित साधक, इस अक्षय मंत्र से आत्मा को जीव, ईश्वरादि अविद्या माया सापेक्ष चेतन को साक्षी समझ, उसको सर्व व्यापी तथा सब से अक्षय असंग समझकर, उसका चिंतन करे।

(अभय मंत्र)

दोहा :- अभय एक रस अजित अति, सत चित आनन्द गोय।
अज अविनासी ब्रह्म जन, घ्याय अभय भय सोय ॥ ४ ॥

टीका :- रिपुराज समाज मृत्यु जन्मादि जन्य विविध भय हैं। किसी भी रूप का भय न होना, अभय कहलाता है। भय का हेतु है, भिन्नता। अपने से भिन्न की कल्पना, किसी दूसरी वस्तु की सत्ता स्वीकार करने ही से, नानात्मक भय का अनुबन्ध बनता है। द्वैत या भिन्नता भौतिक वस्तु में ही हो सकती है। कारण उनको उत्पन्न करने वाले भूतों का संयोग, विविध रूप में होता है। हेतु व चिन्य के कारण, जड़ में ही नानात्व है। आत्म अनेकत्व भेद से रहित है। आत्मा एक है और आत्मा का अभेद होने से, वह सर्वदा अभय है। सतगुरू इस मंत्र द्वारा, साधक को निर्देश करते हैं कि वह आत्मा को एक ही समझकर, जन्म मरणादिक सब प्रकार के भय से, उस को मुक्त मान कर, अभय रूप से ही उसका चिन्तन करे।

(राम मंत्र)

दोहा :- राम रमे रमतीत नित, ररंकार रट सोय।
गुरू कृपा गम सुरति से, राम रूप तब होय ॥ ५ ॥

टीका :- जिसके ध्यान में, अनन्त मुनिजन लगे रहते हैं जो आध्यात्मिक मर्यादा का संस्थापक है, वही राम है। इसी राम को परम पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए, साधक काल कर्म रहित निरतिशय, सुखदायी मानकर, ध्यान लगाये।

(निज सार मंत्र)

दोहा :- निज चेतन तत सार है, ता बिन सकल असार।
कार्य कारन रूप है, समझरू ज्ञान बिचार ॥ ६ ॥

टीका :- यहां 'निज' शब्द का प्रयोग अत्तिशय अर्थ में है। आत्मा पदार्थ है, वही सर्वोपरि सार वस्तु है। भावरूप से संसार के सभी पदार्थ जन्म, स्थिति, वृद्धि आदि षट् विकार गृहित हैं अर्थात् नाशवान हैं। इसी से संसार को असार कहा जाता है। षट् विकार हीन आत्मा है। वही "अविनाशो" है। वही सर्वात्तिशय सार मय है। इसीलिए साधक आत्मा को शुद्ध बुद्ध मुक्त, स्वयं प्रकाश सर्वात्मा परमानन्द रूप सर्वात्तिशय सार समझ, उसी में अपना ध्यान लगावै।

(सजिवन मंत्र)

दोहा :- सजिवन सत्य सार सुख, ता बिन असत्य निसार।
दृढ़ नोका निज नाम गही, जन भव उतरै पार ॥ ७ ॥

टीका :- कालानुबन्धी भौतिक संयोग का आत्मा से सम्बन्ध इसी का नाम जीवन है। आत्मा ही जीवन तथा जीवन का आधार रूप है। भोग्य तथा भोक्ता रूप में आत्मा ही से जीवन की स्थिति है। भोग्य-भोक्ता प्रेरक, जीव परमात्मा ब्रह्म सब आत्म तत्व में ही है। इसलिए हे साधक ! आत्मा को भोक्ता भोग्य एवं प्रेरक मान कर, सजीवन रूप से उसका चिन्तन करै।

(सविरज मंत्र)

दोहा :- सवीर्य समर्थ हरि, सचराचर में पूर।
गुरू ज्ञान से गम भई, अग जन भागत दूर॥८॥

टीका :- वीर्य शब्द का लौकिक अर्थ बल या शक्ति होता है। पर भौतिक तत्व अस्थायी है, और परिवर्तनशील भी है, क्योंकि उनके परिवर्तन के साथ साथ उनकी शक्ति में भी अन्तर पड़ता रहता है। आत्मिक तत्वमें देशकाल जन्य कोई परिवर्तन नहीं होता और उसके बल में भी कभी 'कमी बेशी' नहीं होती। इसलिए भौतिक शक्ति से आध्यात्मिक शक्ति अधिक बलशाली है। इस विशेषण से सतगुरू भगवान साधक को ज्ञात कराते हैं कि वह आत्मा को सवीर्य अशेष शक्ति सम्पन्न, अविजित मानकर, उसको ध्यान में दत्तचित्त होवै।

(सुन्दर मंत्र)

दोहा :- सुन्दर सिरजनहार है, निरामयी निज नूर।
पारब्रह्म परमात्मा, रहे सर्व भरपूर॥९॥

टीका :- सुन्दर शब्द मनोहारी अर्थ में प्रयुक्त होता है। जो वस्तु मन को भावे, अच्छी लगे, वह सुन्दर कही जाती है। भौतिक वस्तुएं भी अपेक्षाकृत सुन्दर कही जाती हैं। बहुत सी वस्तुएं वस्तुतः सुन्दर न होते हुए भी, मन की आशक्ति के कारण, सुन्दर प्रतीत होती हैं, और भौतिक जगत् का सौन्दर्य, उसके स्वयं के अस्थिर होने के कारण, अस्थायी होता है। दृश्य संसार की सुन्दर मानी जाने वाली वस्तुएं, काल पाकर जीर्ण-शीर्ण होने से, सौन्दर्य-विहीन हो जाती हैं। अब सतगुरू भगवान का इस विशेषण द्वारा, साधक को संकेतं मिलता है कि वह विनाशी सौन्दर्य वाली संसारिक वस्तुओं में अपने को न उलझावे। नित्य सत्य रहने वाली है ओर जो सब सुन्दरताओं का मूल है, उस चिदात्मा को मनोज्ञ से, मनोज्ञ मान, उसके चिन्तन में अपने को स्थिर करे।

(शिरोमणि मंत्र)

दोहा :- सत्य शिरोमणि सबन में, व्याप रहा समभाय।
साँच शील संतोष गहे, सतगुरू ज्ञान लखाय॥१०॥

टीका :- शिरोमणि में दो शब्द हैं, शिर और मणि । शिर सम्पूर्ण अंगों में सबसे ऊपर रखा गया है । इसका अभिप्राय है शीर्य स्थानीय । सर्वोपरि मणि शब्द रत्न वाचक है । रत्न सब तेजों में, प्रकाशमय माने गए हैं । इस विशेषण से अभिप्राय यह है कि साधक अपने अभिष्ट आत्मा को सर्वोपरि, सबका शीर्य स्थानीय, परम प्रकाशमय मान कर, उसके ध्यान में निमग्न हो ।

(निर्मल मंत्र)

दोहा:- निरमल अपनि आत्मा, निरमल गुरू का ज्ञान।
निरमल हरि का संत है, निरमल नाम बखान॥ ॥११॥

टीका: - मल शब्द पाप और दोष दोनों का वाचक है । जैसे मल शब्द का प्रयोग, प्रायः पुरीष स्वयं कफ स्वेदनादि एवं विकृत बात, पित् कफ के लिये भी प्रयुक्त होता है । अविद्या जन्य कार्य भी, मलिन शब्द से कहे जाते हैं । मलिनता से रहित का नाम है, निर्मल रोगादि पापादि तथा बातादि दोषों से मुक्त रहने का नाम निर्मल है । संसार की दृश्यमान एवं न दिखने वाली भौतिक वस्तुएं, सभी मलिन हैं । उन्हों में किसी न किसी तरह की सदोषता रहती है । एक केवल चित्त शक्ति ही ऐसी है, जो सब मलों से रहित है । अर्थात् इस मंत्र का अभिप्राय है कि साधक आत्मा को सब रागादि दोषों से मुक्त, परम पवित्र समझकर ही, उसका चिन्तन करे ।

(निराकार मंत्र)

दोहा :- निराकार निर्गुण मई, निरालंब निरधार।
निजानन्द निज बोधमय, सतगुरू ज्ञान बिचार॥ १२॥

टीका :- निर्मलता वा पवित्रता आत्मा में ही है । क्योंकि इस शंका का निवारण इस मंत्र द्वारा किया गया है । साकार नाम उसी वस्तु का हो सकता है, जो देश काल परमाण आदि से बंधित है । किसी न किसी तरह का आकार हो, वही साकार है । आत्मा में किसी तरह के अवयव अंग उपांग नहीं हैं । आकार न होने से ही आत्मा असंग कहा जाता है । भौतिक द्रव्य हैं, वे सब परमाणु या अणु संयोग से बनते हैं । चेतन द्रव्य परमाणु रहित है । आत्म जिज्ञासु साधक को चाहिए कि वह आत्मा को परम पुनीत असंग निराकार मान कर, उसका ध्यान करे ।

(अलख मंत्र)

दोहा :- अलख निरंजन एक रस, सतगुरू दीन दयाल ।
समरथ सिरजन हार जप, शरणागत प्रतिपाल ॥ १३ ॥

टीका :- स्पृहा या इच्छा लख शब्द का क्षेत्र है। जिसको देखे समझे, उसको भी 'लखना' कहा जाता है। यह भी एक तरह की चाह ही है। अलख से अभिप्राय है कि जिसको समझ न सके, देख न सके। किन्तु परिणामी वस्तु सब समझी व देखी जा सकती है। अपरिणामी वस्तु ही वस्तुतः अलख है। इसलिए इस मंत्र से महाराज का साधक को संकेत है कि वह सूक्ष्म कारण स्थूल के अधिष्ठान आत्मा को असंग इच्छा रहित अलख मानकर, उसी के ध्यान में लै लगावै ।

(अकल मंत्र)

दोहा :- अकल अनुपम अमित्त गत्ति, अविनाशी अज एक ।
जन जप तत्त सत उभरै, सतगुरू ज्ञान विवेक ॥ १४ ॥

टीका :- परम पुण्य सुख दुखादि भावों एवं भोगों को भोगने वाले का नाम है 'कलनधर्मो' । मर्यादा रहित वेद विरुद्ध मार्ग का नाम भी कल है। कल या कलमष से कलन धर्मवाला वा पापादि फल भोगने का संकेत है। इनसे रहित का नाम है अकल । साधक आत्मा को कलन रहित, पापादि फल भोगों से रहित, निष्पापमान कर, उसका चिन्तन करै ।

(अगाध मंत्र)

दोहाः- अगाध अगोचर एक रस, अतोल अमोल अमाप।
सिद्ध, साधिक, मुनि थक रहे, वेद थके जप जाप॥१५॥

टीका :- गाध से अभिप्राय यह है कि अन्त या तल। अगाध का मतलब है अतलस्पर्श। भौतिक वस्तुएं सब सकारण हैं, अर्थात् तलस्पर्शी हैं। आत्मा अकारण है, अर्थात् अतलस्पर्शी है। इस मंत्र से साधक यह समझे कि आत्मा निराधार है। वह अवधि रहित है। उसको अगाध मानकर, ही चिन्तन किया जाये ।

(अपार मंत्र)

दोहा:- अपार पार नहिं जास्को, सनकादिक रहे हार।
पार न पावै शेष शिव, ब्रह्मा बेंद विचार॥१६॥

टीका :- पार अन्तवाली वस्तु का नाम है। अन्त या अवधि देश जन्य है और काल जन्य है। जो वस्तु देश-काल की परिधि से रहित है, वह अपार है। भौतिक द्रव्य, सब देश काल की अवधि से युक्त है। अतः शान्त है। आत्मा उनकी परिधि से रहित है, अर्थात् अनन्त है। इससे महाराज ने आत्मा को निरबधित तथा सर्वदेश वा सर्वकाल गत बताया है। इसलिए साधक आत्मा को सर्वदेशी, सर्वकाल व्यापी मानकर, उसका अपार बुद्धि से ध्यान करें।

(अनंत मंत्र)

दोहा :- अनन्त रूप परमात्मा, अनन्त रूप गुरूदेव।
अनन्त संत हरि को भजै, लहजु बिरला भेव॥१७॥

टीका :- जिसका अवश्य अवसान है, जिसमें समाप्ति की इयत्ता है। वह वस्तु अन्त शब्द वाच्य है। अन्त से रहित का नाम ही अनन्त है। इस विशेषण द्वारा ही महाराज साधक का ध्यान आर्कषित करते हैं कि वह आत्मा को निरावरण अपरिच्छिन्न अनंत मानकर, उसका चिन्तन करता है।

(राया मंत्र)

दोहा :- राया सतगुरू राम जी, सकल भवन के ईस।
अखिल चराचर में बसै, ब्रह्मादिक के शीश॥१८॥

टीका :- लौकिक व्यवहार में राया का अर्थ है, अधिपति स्वामी मुखिया और राजा अर्थ का भी द्योतक है। इसका अभिप्राय है कि शक्तिमान हो। सब कुछ लेने एवं सब कुछ देने की शक्तिवाला है। वही रायों का राया है। इस विशेषण से चित्तशक्ति में त्रिभुवनपति, राया की सत्ता व्यक्त की गई है। साधक इस आत्मा को सर्वशक्तिमान, सर्वग्राही, सर्वदाता मानकर, उसका निरंतर चिन्तन करता रहै।

(नूर मंत्र)

दोहा :- नूर रूप परब्रह्म है, नूर रूप गुरूदेव।
नूर रूप सब सन्त हैं, करैं नूर की सेव ॥ १९ ॥

टीका :- नूर शब्द का समान्य प्रयोग स्वरूप में है। वर्णवाली वस्तु ही रूपवान है। वर्णविहीन वस्तु है वह अरूप है। आत्मा का रूप सत्ता या स्फूर्ति से निर्देश किया जाता है। इसलिए साधक आत्मा को उत्पादक प्रेरक, रक्षक, संहारक, सत्तामय जान, सम्पूर्ण स्फूर्णाओं का मूल समझ, नूर स्वरूप आत्मा के चिन्तन में लगै।

(तेज मंत्र)

दोहा :- तेज तत्त तिहु लोक में, व्याप रहा इक सार।
समझे ते भव सिन्धु ते, हरिजन उतरे पार ॥ २० ॥

टीका :- तेज का सामान्य अर्थ है तेजसीपना अर्थात् दूसरे से दबना नहीं। जिस पर और किसी का दबाव वा असर न पड़े, उसको लोक में तेजसी कहते हैं। सतगुरू भगवान साधक को इस मंत्र द्वारा, आत्मा की अजयता का निर्देश करते हैं, क्योंकि भौतिक संसार में, एक दूसरे का एक दूसरे से हारना देखा जाता है। परन्तु आत्मतत्व को कोई हराने वाला नहीं है। इसलिए साधक आत्मा को किसों से न दबने वाला और किसी से न जीता जाने वाला समझ कर, उसके चिन्तन में अपने को दृढ़ बनाया रखै।

(जोति मंत्र)

दोहा :- परमजोति जगदीश की, सब में रही समाय।
सकल जोत्ति उस जोत्ति से, प्रकाशत सं भाय ॥ २१ ॥

टीका :- जोति शब्द का लाक्षणिक प्रयोग सार वस्तु में है। जिसके बिना सब वस्तुएं तत्व रहित हो जायें, उसको तात्विक पदार्थ को ही जोति कहते हैं। यहाँ पर ज्योति शब्द को प्रकाश के लिये युक्त नहीं समझना क्योंकि आगे वाला मंत्र प्रकाश ही है। इसलिए और भी विचारै तो भौतिक पदार्थ भी शक्तिमय या सारमय होते हैं। पर उनकी शक्ति काल पाकर क्षीण हो जाती है। इसलिए वह दूसरा ही आत्मा या चित्त शक्ति है। वही परमात्मा रूप से समष्टि संसार एवं व्यष्टि व्यक्ति के लिंग शरीर का आधार है। वह आत्मा ही

हिरण्य गर्भ के रूप में समष्टि व्यष्टि के स्थूल शरीर का जनक है और मायादि प्रपंच रहित जीव, परमात्मा ब्रह्मरूप में, आत्मा ही सबका आश्रय है । उसी को सार रूप समझकर उसी का चिन्तन करो ।

(प्रकाश मंत्र)

दोहा :– सब घट ब्रह्म प्रकाश है, ब्रह्म दृष्टि कर देख ।
वेद कहैं पुनि साधु सब, सतगुरू ज्ञान विवेक ॥ २२ ॥

टीका :– प्रकाश यहां उजाले का द्योतक है। दिखाई पड़ने वाले सूर्य, चन्द्रमा, तारे आदि प्रकाश पिंड हैं। वे सब एक ही प्रकाश के भिन्न रूप है । इन सब में जिसका प्रकाश है, वही प्रकाशवान है । दादू जी महाराज कहते हैं कि हृदय गगन ने उसी परम प्रकाशमय आत्मा को ज्योतिर्धन समझ सर्वदा उसी का चिन्तन करना चाहिए ।

(परम मंत्र)

दोहा :– परमगुरू परब्रह्म है, परम हरि जन सोई ।
परम प्रभु का जाप है, भेद भाव नहिं कोई ॥ २३ ॥

टीका :- परम शब्द का प्रयोग उत्कृष्ट प्रधान एवं प्रणवें के लिये किया गया है । इस मंत्र द्वारा सतगुरू भगवान साधक को ज्ञात कराते हैं कि नाना पदार्थ जो हम देखते हैं या सुनते हैं उनमें चेतनतत्व ही सर्वोत्कृष्ट तत्व है । इन्द्रादि देवों का देव ब्रह्मा विष्णु महेश आदि का आधार सब स्वामियों का स्वामी वही है इसलिए उस आत्मा को सबसे श्रेष्ठ, सब का मान्य समझ कर उसका चिन्तन करो ।

(पाया मंत्र) उपदेश दिया)

दोहा :- पाया परम दयाल गुरू, पाया सतगुरू बैन ।
पाया वहि जिहि उधर्या, यह आतम की सैन ॥ २४ ॥

टीका :- ऊपर जिन तेईस विशेषणों से आत्म-तत्व की विशेषता सतगुरू भगवान ने साधक को समझायी है । अपने उस निर्देश का इस मंत्र द्वारा उपसंहार करते हुए दादू जी महाराज कहते हैं कि जिस साधक ने इस तरह आत्मतत्व का दृढ श्रद्धा से चिन्तन किया है, उसी ने अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान पाया है । और जिसने अपना स्वरूप प्राप्त किया वही मुक्त है, एवं वही परमानन्द का उपयोग करता है । गुरूदेव के

अंग की इस अविचल मंत्र के साथ समाप्ति होती है। गुरू से पाए ज्ञान का जो फल होता है या होना है वह इस मंत्र से व्यक्त किया गया है। यह मंत्र आतम उपदेश का सारभूत है। इस वास्ते साधक इसका चिन्तन करै। जिससे गुरू उपदेश के फल की प्राप्ति होवै।

उपरोक्त मंत्रों के गुरूमुख श्रवण करने से ही अपूर्व फल मिलता है और महाप्रभु गुरू विधि का उपदेश करते हैं।

दादू सब ही गुरू किए, पशु पंखी बन राइ।
तीन लोक गुण पंच सौं, सबही माँहि खुद आइ॥१५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों! पशु पक्षी आदि जितने जगत् के चराचर प्राणी हैं उनमें आत्म कल्याण के लिये गुरू किये हैं जैसे पशुओं में कामधेनु, पक्षियों में गरूड़, काक भुशंडी, और वृक्षों में कल्पवृक्ष, नदियों में गंगा, पर्वतों में विन्ध्याचल। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् में परमेश्वर ने उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ की रचना की है। इसलिए सभी प्राणियों ने गुरू कृपा से ही आत्म साधन किया है। इसी से गुरू अवश्य करना चाहिए। अथवा सतगुरू उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुजनों! सारग्राही दृष्टि से पशु पक्षी आदि सभी को हमने गुरू किए हैं। क्योंकि तीनों गुण एवं पांच तत्वों से यह तीन लोक रचकरके, सबमें परमातमा आप ही बिराजमान हैं। इसलिए तीनों लोक भगवत् स्वरूप ही हैं। अथवा दयाल जी महाराज उपदेश करते हैं कि पशु पक्षी बनराय कहिए, सम्पूर्ण अस्थावर जंगम, जगत् गुरू परमात्मा की ही रचना है, अर्थात् सब में आप परमेश्वर ही विराजमान हैं। किन्तु सतोगुण रजोगुण तमोगुण इन गुणों के प्रभाव से सब में आपस में विषमता है। जिनमें सतोगुण प्रधान है, वे उत्तम हैं। जिनमें रजोगुण या तमोगुण प्रधान है वे मध्यम एवं कनिष्ठ हैं। इस लिए सब में उत्तम मध्यमभाव है। तातैं सम्पूर्ण में गुरू शिष्य भाव देख पड़ता है।

दोहा :- **गरीबदास असवारि लखि, करी खेचरी नाथ।**
अर्थ फेरि उत्तर दियो, रहे राम संग साथ॥१५६॥

दृष्टान्त :- महाराज गरीबदास जी एक रोज मोजाज गांव बुलाने पर, सेवकों के यहां घोड़े की सवारी से जा रहे थे। रास्ते में नाथों का डेरा पड़ा। वह मन में सोचा कि गरीबदास जी आ रहे हैं उनसे मखौल करेंगें। परन्तु उनमें जो पूरे संत थे, वे बोले :- गरीबदास जी से मखौल करना ठीक नहीं। यह नारद के अवतार हैं। किन्तु वे हुड़दंगे कब मानने वाले थे। डेरे के सामने से जब गरीबदास जी जाने लगे, तब बोले :- गरीबदास जी सत्यराम। उन्होंने करा सत्यराम। आप अपने गुरू पर ही चढ़े जा रहे हो क्या? गरीबदास जी बोले कैसे? बोले दादू जी महाराज ने कहा है सभी गुरू किए, हमने सबको ही गुरू बनाया है पशु पक्षियों

को। गरीबदास जी कुछ नहीं बोले, चले गए। जब सेवकलोगों के यहां से वापिस लौटे, उसी रास्ते से तब विचार किया कि यदि ये लोग मुझे ही ऐसा कहते हैं तो पीछे पता नहीं क्या करेगें? यह विचारते हुए नरेणा गद्दी पर आ गए। रात्रि को अपनी योग शक्ति से, उन नाथों के शरीर पर जो भेष बाना था वह सब सूते हुयों का उतरवा कर नरेणा मंगवा लिया। जब वह लोग सोकर सुबह उठे तो कानों में तो मुद्रा नहीं, बदन पर सेली नहीं, गले में सीगीं नहीं। तब तो सोचा, यह क्या हुआ? उसमें जो महापुरुष थे वे बोले :- कल जो गरीबदास जी से मखौल किया था उसी का यह दण्ड है। जाओ नरेणा उनके चरणों में पड़ो। अपराध क्षमा चाहो। तब वहां से दौड़कर नरेणा आए। महाराज के चरणों में दण्डवत् करके क्षमा मांगी। महाराज बोले :- हस तो गुरू पर ही चढ़ते हैं हम क्या क्षमा करें। नाथ बोले :- हम मूर्ख हैं। आप तो गरीब निवाज कहिए, गरीबों को तारने वाले हो। दया करो जिससे हमारा बाना हमारे शरीर पर आ जावे। गरीबदास जी बोले :- फिर कभी तो ऐसी मखौल साधुओं से नहीं करोगे? तब कहा :- महाराज जी, अब कभी नहीं करेंगें। महाराज ने कहा :- इनका बाना इनके शरीर पर आ जावे। इतना कहते ही उनका बाना उनके शरीर पर आ गया। गरीबदास जी को नमस्कार कर, वे अपने डेरे पर चले गए।

जे पहली सतगुरू कह्या, सो नैनहुं देख्या आइ।
अरस परस मिलि एक रस, दादू रहे समाइ ॥१५७॥

टीका :- जो नाम अगम अगाध कि जिस दीक्षा का सतगुरू ने प्रथम गैब मांहि गुरूदेव मिल्या कहिए, अहमदाबाद कांकरिया तालाब पर हरि वृद्ध रूप में दर्शन देकर उपदेश किया था, उसका फल अन्तःकरण में स्थिर हो करके उसे 'नैन हूँ' कहिए, दिव्य नेत्रों से साक्षात्कार किया है। और अरस परस कहिए अन्तराय रहित हो करके, एक रस नाम परमात्मा में महाराज सतगुरू कहते हैं, हम समाय रहे हैं। अवरिल भक्ति से सलग्न हो रहे हैं। अथवा हे जिज्ञासुजनों! जिस प्रभु के सुमिरन करने का उपदेश किया है, उसे आत्मचिन्तन द्वारा ज्ञान रूपी नेत्रों से अनुभव करो। और एक रस हो करके, भगवत् भक्ति में सलग्न हो रहो।

(इति श्री गुरूदेव का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्त:)

॥ अथ स्मरण का अंग–२॥

अगाध तत्व की प्राप्ति के लिए गुरुदेव के अंग में पूर्वोक्त प्रकार से जो कहा है "राम नाम उपदेश करि, अगम गवन यहु सैन०" तथा "राम नाम गुरू शब्द सौं, रे मन पेलि भरम०" इत्यादिक जो साधन सूत्र रूप से बतलाए हैं उनके अर्थ स्वरूप परम आचार्य ब्रह्मऋषि जगत्गुरु दादू दयाल महाराज स्मरण के अंग का निरूपण करते हैं, अर्थात् नाम उच्चारण सहित नामी का जो चिन्तन है, सो स्मरण का स्वरूप है । प्रथम स्मरण के प्रकरण की निर्विघ्न समाप्ति के लिए मंगलाचरण करते हैं ।

दादू नमो नमो निरन्जनम्, नमस्कार गुरू देवतः।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः॥१॥

टीका :- 'पूर्व गैब मांहि' कहिए अचानक जो सतगुरू रूप भगवान मिले बृद्ध रूप धरके, उन्होंने परमात्मा के स्मरण का उपदेश किया है । इसलिए अब स्मरण के अंग की निर्विघ्नता के लिए, प्रथम सर्व व्यापक हरि की बन्दना करते हैं । तद्नन्तर गुरूदेव को नमस्कार करते हैं । कैसे हैं गुरूदेव ! कि ब्रह्मनिष्ट, ब्रह्मश्रोत्री, जिनके लक्षण अनेक शास्त्रों में वर्णन किए हैं, ऐसे गुरू ब्रह्मस्वरूप गुरूदेव को हमारी नमस्कार है । गुरू के अनन्तर सर्व भूत, वर्तमान भविष्य काल में, जिन साधु महात्माओं ने भगवत् का स्मरण किया है, उनको भी हमारी वन्दना है । इस प्रकार हरि गुरू सन्तों को नमो, नमस्कार, वन्दना प्रणाम करके 'पार' कहिए दुखरूप संसार से पार होकर, 'गतः' कहिए, भगवत् स्वरूप होते हैं ।

पूर्व प्रकरण में 'महाप्रभु के घटि-घटि राम रतन है' इस उपदेश से जिज्ञासुजनों की चीटीं से हाथी पर्यन्त, जीव मात्र में परमात्मा बुद्धि हो रही है । जिससे जिज्ञासुजनों को नाम योग्य अयोग्यता में संदेह होने से नाम स्मरण में दृढ़ता नहीं होती है । इसलिए परमेश्वर के नाम में जिज्ञासुजनों की दृढ़ता कराने के लिए तथा सुख से स्मरण होने के निमित्त, श्री ब्रह्मऋषि गुरूदेव अल्प अक्षरों में परमेश्वर के नाम का संकेत करते हैं ।

एकै अक्षर पीव का, सोई सत्त करि जाण।
राम नाम सतगुरू कह्या, दादू सो परवाणि॥२॥

टीका :- नामी एक है। अक्षर कहिए क्षय भाव से रहित है। और पीव कहिए सचराचर जगत् का पालन करने वाला है और नामी का स्वरूप सत कहिए सत्चित् आनन्द स्वरूप है और परमात्मा का नाम 'रं' यह एक अक्षर है। इसलिए हे जिज्ञासुजनों ! नाम को सत्य करके मानिए, क्योंकि सतगुरू देव ने राम नाम मंत्र का ही उपदेश किया है। इस वास्ते राम नाम ही सर्व श्रेष्ठ है, अथवा 'पीव' कहिए पालन करने वाला परमेश्वर का बाचक प्रणवैं नाम ओ३म अक्षर है। इस प्रणवैं में अर्ध चन्द्र है, यह तो रकार है। और अनुस्वार है वह मकार है। सोई सत्य करके जानो। उस परब्रह्म के वाचक नाम को और नामी को सत्य करके मानो। यही सतगुरू का उपदेश है।

अब हेतु स्वरूप फल की अवधि को बताने के लिये, स्मरण की चार अवस्था कहते हैं।

पहली श्रवण दुत्तिये रसन, तृत्तीयें हिरदै गाइ।
चत्तुर दशी चेतन भया, तब रोम रोम ल्यौ लाइ॥३॥

टीका :- सद्गुरू द्वारा जो ब्रह्म उपदेश श्रोत्र से सुना, वह स्मरण में हेतु है और रसना से राम नाम का उच्चारण स्मरण का स्वरूप है और जिज्ञासुजनों की तीसरी अवस्था 'अहनिस' कहिए रात दिन हृदय में ही नाम उच्चारण की होती है। यह स्मरण का फल है और जब रोम-रोम में ध्वनि होने लगे, तो जिज्ञासुजन चेतन्य कहिए राम रूप हो जाते हैं।

दोह-: **आठ मास जिह्वा रटै, सोला मास कंठजाप।**
बत्तीस मास हृदय जपै, रह न तीनों ताप॥३॥

तीन ताप—अध्यातम अधिदैव्य, अधिभौतिक।

दोहाः- **पाव भजन जिह्वा कह्यो, कंठ कह्यो अध सेर।**
तीन पाव हृदय कह्यो, रोम रोम कह्यो सेर॥३॥

भजन का तोल।

(मन प्रमोद)

दादू नीका नावं है, तीनि लोकतत्त सार।
राति दिवस रटिबो करि, रे मन इहै विचार॥४॥

टीका :- परमात्मा का नाम ही सर्वश्रेष्ठ है। यही तीनों लोकों में तत्व का सार है। इसलिए हे जिज्ञासुजनों ! अपने अन्त:करण में यह निश्चय करके कि प्रति क्षण में ईश्वर का चिंतन करो। अब विशेष वर्णन प्रस्तुत साखी में तत्तसार पद का उल्लेख है। इसका अभिप्राय यह है कि तत्व का अर्थ तत्त पद से लक्षित ईश्वर का वाचक है अर्थात् तत्त कहिए ईश्वर और ईश्वर की सत्ता, सगुंण निर्गुंण उपाधि भेद से दो प्रकार की है। इस विकल्पात्मक स्थिति में यह प्रश्न उठता है कि तत्त पद से केवल सगुण ईश्वर का ग्रहण किया जाये या निर्गुंण का ? उत्तर :-शब्द के दो अर्थ होते हैं, एक बाच्यार्थ जो कि शब्दार्थ है और दूसरा लक्ष्यार्थ जो कि भावार्थ है। शब्द अर्थ बुद्धि से, तत्व का अर्थ होता है सगुण ईश्वर, और लक्ष्यार्थ बुद्धि से निर्गुंण ब्रह्म का बोध होता है। अब जिज्ञासुजनों के संदेह निवारणार्थ सार पद का उल्लेख करके, दया मूर्ति ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव ने लक्ष्यार्थ निर्गुंण ब्रह्म के प्रति आप संकेत किया है, क्योंकि केवल बाच्यार्थ ही अभिष्ट होता तो, सार पद का वर्णन नहीं करते। परम आचार्य ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज निर्गुंण ब्रह्म के ही उपासक थे। इसलिये यही लक्ष्यार्थ में प्रमाण है।

दोहा:- गुरू दादू पै आइयो, शिष्य होण एक वृद्ध।
या साखी सुण लग रह्यो, मग्न भयो अरू सिद्ध॥४॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज आमेर में विराजते थे। एक रोज एक वृद्ध पुरूष ने महाराज को आकर नमस्कार किया और अपने उद्धार का साधन पूछा। गुरूदेव बोले :-बाबा राम राम किया करो। कुछ दिन बाद संतों ने कहा, बाबा बैठे बैठे आप राम राम ही करते हो ? कुछ साखी श्लोक याद किया करो। बाबा बोले :-गुरू महाराज का तो यह आदेश है कि रात दिन राम राम कहो। अब रात दिन से कोई और समय होवे, तो आप मुझे बताओ, आपके साथ साखी शब्द याद करूंगा। रात दिन तो गुरू महाराज की आज्ञा का हो पालन करूंगा। साधु चकित हो गए। बाबा राम नाम के प्रताप से बचन सिद्ध हो गये।

दादू निकां नाव है, हरि हीरदय न बिसारि।
मूरत्ति मन मांहै बसै, सांसै सांस सभांरि॥५॥

टीका :- हरि का नाम सर्वो उत्तम है। हरि स्मरण से कदापि विमुख नहीं होना चाहिए, क्योंकि अति मनोहर परमेश्वर का शुद्ध स्वरूप है। वह मन में ही बसता है, अर्थात् मन तदाकार वृत्ति होकर, प्रत्येक क्षण क्षण में परमात्मा का ही स्मरण करता रहै।

सासै सांस संभालतां, इक दिन मिलि है आइ।
सुमिरण पैंडा सहज का, सतगुरू दिया बताइ॥६॥

टीका :- सतगुरूदेव उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओं! श्वास प्रति श्वास के साथ ईश्वर का स्मरण करो। तो एक रोज व्यष्टि चेतन जीव कुटस्थ, समष्टि चेतन ब्रह्म से अभेद हो जाएगा। यह स्मरण 'पैंडा' कहिए साधना, सहज कहिए ब्रह्म में मिलने का सतगुरू ने मार्ग बता दिया है।

दादू नीका नांव है, सो तु हिरदय राषि।
पाखंड प्रपंच दूर करि, सुनि साधुजन की साषि॥७॥

टीका :- प्रति क्षण अपने मन को प्रभु के नाम स्मरण में ही लगाए रखो। यही सर्वो उत्तम साधन है। पाखंड कहिए तन के, मन के, वाणी के दोषों को त्याग करके, साधु महात्माओं की शिक्षा को सुनो। अर्थात् पवित्र हृदय और श्रद्धावान होकर, सत्संग करो। इसी से नाम स्मरण में एकाग्र वृत्ति होगी।

सोरठा:- चोरी जारी हिसंता, तन दोष है तीन।
निन्दा झूठ, कठोरता, बाक चाल बक चीन॥
तृष्णा चिन्ता द्वेष बुध्दि, नरसिंह त्रिय मन दोष।
कायक बाचक मानसिक, दसों दोष तज मोक्ष॥७॥

दोहाः- एक देखा त्रिन धारि, सो तो ले गया सहा की नारी।
एक देखा फलाहारी, उन हिंसा की रैंन सारी।
एक देखा सिला धारि, उन नगरी मुसी रैंन सारी।
एक देखा राजा ढोर, पकड़ै साह और छोड़ै चोर॥७॥

दृष्टान्त (पाखंड पर) :-एक साहुकार ईश्वर का भक्त और संतों का सेवक था। एक रोज एक पाखंडी, साधु भेष में उसके घर आया। घर के बाहर एक कमरे में उसको ठहरा दिया। सेवा अन्न पानी की, कई दिनों तक की। परन्तु वह साहूकार की स्त्री को बहकाने लगा और यहां तक कि उसे अपने प्रभाव से उसको आर्काषित कर लिया। साहूकार एक रोज बाहर गया हुआ था। वह स्त्री सम्पूर्ण घर का द्रव्य पेटी में डालकर साधु के साथ चल पड़ी। पीछे से साहूकार आया, न साधु को देखा, न स्त्री को देखा और न द्रव्य ही घर में मिला। साहूकार उनकी खोज करने को चल पड़ा। एक जंगल में सायंकाल को पहुंचा। वहां भी एक साधु रहता था। साहूकार ने सोचा, आज रात महात्मा के पास विश्राम करूंगा। महात्मा बोला :-रात को हम किसी को यहां रहने नहीं देते। हम फलाहारी हैं। साहूकार समझ गया यहां भी दाल में काला है। कुछ दूर जाकर वापस आया और एक पेड़ के नीचे छुप कर बैठ गया। क्या देखा? कि उस साधु बेषधारी ने हिंसक एक जाल निकाला और वृक्ष पर फैंका। वृक्ष के सभी पक्षियों को जाल में लेकर, उनको भूना। आप खाया और बाकी अपने रिस्तेदारों को दे दिया। सवेरे साहूकार चला। शाम होते-होते, एक शहर के किनारे पहुंचा। वहां देखा एक भेषधारी पाखण्डी सिला पर बैठा है। साहूकार ने जाकर नमस्कार किया। बोला :-महाराज! रात को मैं यहीं विश्राम करूंगा। पाखण्डी बोला :-हम त्यागी बैरागी हैं, रात को किसी को रहने नहीं देते हैं। साहूकार ने सोचा यहां भी कुछ विशेषता है। कुछ दूर जाकर, कहीं छुप कर बैठ गया। आधी रात्रि पर चोर आए जो उसके साथी थे। उन सभी ने मिलकर राजा के महलों में जा कर चोरी की। माल लाकर सिला के नीचे गढ्ढें में डाल दिया और वह आसन लगाकर बैठ गया। प्रातः काल पुलिस खोज करने लगी। साहूकार पुलिस के धक्के चढ गया। उसे सिपाही पकड़कर ले गए और बन्द कर दिया। वह सोचने लगा कि यह भी होना था, सो ठीक है। कोतवाली राजा के महल के समीप थी। रात्रि को साहूकार ने पूर्वोक्त दोहा बोला। राजा ने उसका सारा वृतान्त सुना। उसी समय कोतवाल को बुलाया और कहा कि आज के मुलजिम के बयान सुबह हम लेंगे। उसको हिफाजत से रखो। सवेरे राजा के समक्ष उसे पेश किया। राजा ने पूछा कि रात वाला दोहा फिर बोलो। साहूकार ने दोहा बोला। राजा ने तुरन्त पुलिस को आज्ञा दी। उस फलहारी की तलाशी ले आओ। पुलिस ने जब तलाशी ली तो हिंसा करने के जाल आदि सभी मिल गए। वे उसे गिरफ्तार कर ले आए। सिलाधारी की तलाशी लेकर आओ। वह नगर के पास सिला पर बैठा था। नगर में जितनी चोरियां हुई, वह सारा माल उसकी सिला

के नीचे निकला । माल के सहित पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया । राजा ने साहूकार के कहने के अनुसार उसकी स्त्री और पाखण्डी साधु जो बोलता था, हम किसी का त्रिन भी नहीं ले जाते, उनका वारण्ट कटवा दिया । कुछ दिन बाद वे मिल गए चारों को पुलिस ने राजा के सामने दरबार में पेश किया । साहूकार ने यह श्लोक बोलाः-

श्लोक :- कुशपत्र न चीनै ब्रह्म ज्ञान, फल फूल न छूवै बगुल ध्यान ।
नर निकट न राखै डंडधार, पर पुरुषन छूवै येही नार ॥

राजा ने चारों के बयान सुनकर, साहूकार से पूछा क्या दण्ड दें ? साहूकार बोले :-हजूर ! इन चारों को काला पानी भेज देना चाहिए । ये देश में रहने के काबिल नहीं हैं । इनके लिए यही सजा ठीक होगी । सतगुरू महाराज उपदेश करते हैं कि तन, मन, वचन के पाखण्ड को त्याग कर, प्रभु का भजन करने से कल्याण होता है ।

दादू निका नाव है, आप कहै समझाइ ।
और आरम्भ सब छाड़ दे, राम नाम ल्यौ लाइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! राम नाम का स्मरण ही सर्व उत्तम है । यही राम नाम सतगुरु ने समझाकर उपदेश किया है । अथवा भगवान ने अपने भक्तों को बतलाया है कि हे जिज्ञासु ! तुम स्वयं अपने मन को समझा करके, यही उपदेश कर । अथवा नाम के स्मरण में मन को निश्चल कर । इसके अतिरिक्त जितने भो सकाम कर्म हैं, उन सबको त्याग करके, चित्तवृत्ति को केवल राम नाम में ही लगा ।

राम भजन का सोच क्या, करता होइ सो होइ ।
दादू राम संभालिये, फिर बूझिये न कोइ ॥९॥

टीका :- राम का भजन करने वाले को क्या सोच है ? अर्थात् शरीर निर्वाह के लिए उसको चिन्ता नहीं है, क्योंकि 'करता होइ सो होइ', नाम स्मरण करते हुए शरीर आदि की यथायोग्य क्रियाएं, परमेश्वर की कृपा से उसका योग्य क्षेम स्वतः ही पूरा होगा । सकामी शिष्य सतगुरू से प्रश्न करता है कि हे दयालु ! प्रभु भजन का फल क्या है ? प्रत्युत्तर में श्री सतगुरू उपदेश करते हैं कि 'राम भजन का सोच क्या' ? हे मंदबुद्धि ! राम का भजन करने से क्या फल होता है ? इसकी तूं क्या चिन्ता करता है ? क्योंकि जो कुछ

फल होना है वह राम का भजन करते-करते, आप ही हो जाएगा। राम भजन को ही तूं कार्य और फल समझ। इसलिए हे जिज्ञासु ! राम भजन का स्मरण करता हुआ, किसी संसारिक पदार्थ की चिन्ता मत करें।

(नांव चेतावनी)

राम तुम्हारे नांव बिन, जे मुख निकसै और ।
तो इस अपराधी जीव को, तीन लोक कित ठौर ॥१०॥

छिन-छिन राम संभालतां, जे जिव जाइ त जाउ ।
आत्म के आधार कौं, नाहीं आन उपाउ ॥११॥

टीका :- हे राम जी ! आपके नाम स्मरण के अतिरिक्त, जो कदाचित् अज्ञानी जीवों के मुख से और कहिए आप से विमुख प्रवृत्ति कराने वाला, दूसरा कोइ प्रसंग हो तो, ऐसे अज्ञानी जीवों को, त्रिलोकी में सुख की ठौर कहां है ? हे जिज्ञासुओ ! तुम्हारे मुंह से राम स्मरण के बिना अन्य तुच्छ देवी, देव, भूत, प्रेत आदि की स्तुति या कामना सहित तुच्छ मंत्रों का जाप संसारिक विषयों की कामना, यह सब परमात्मा से विमुख करने वाले हैं। यदि यह तुम्हारे मुंह से निकलें तो इस अपराधी जीव को तीन लोक में कहीं भी सुख का स्थान नहीं है। इसलिए हे जिज्ञासुओ ! "स्वासैं स्वास", नाम स्मरण करते हुए यदि प्राण चले जावें तो अति उत्तम है। क्योंकि राम के स्मरण के अतिरिक्त, आत्मा के उद्धार का कोई भी उपाय नहीं है।

(स्मरण महातम)

एक महुरत मन रहै, नावं निरन्जन पास ।
दादू तब ही देखतां, सकल कर्म का नास ॥१२॥
सहजैं ही सब होइगा, गुण इन्द्री का नास ।
दादू राम संभालतां, कटै करम के पास ॥१३॥

टीका :- यदि एक क्षण भर भी परमात्मा के नाम में निष्काम वृत्ति से, यह मन एकाग्र हो जावै, तो उसी क्षण पूर्व संचित सकाम कर्मों का क्षय हो जाता है। श्री सतगुरू उपदेश करते हैं कि राम नाम का

ध्यान करने से, सहज ही में सत, रज और तम गुण एवं इन्द्रियों के सम्पूर्ण विषय विकारों का भी नाश हो जाएगा । इस प्रकार से कर्म फांसी स्वतः कट जाएगी ।

(स्मरण नाम चितावणी)

राम नाम गुरू सब्द सों, रे मन पेलि भरम ।
निह करमी सौं मन मिल्या, दादू काटि करम ॥१४॥

टीका :- हे मन ! सतगुरू के राम नाम उपदेश से अपने भ्रम संशय को दूर करो और एकाग्र चित्त से राम नाम का स्मरण करो । क्योंकि निश्कर्मी परमेश्वर में मन के एकाग्र प्रवृत्ति होने से, सम्पूर्ण कर्मों का स्वतः नाश हो जाता है ।

एक राम के नाम बिन, जीव की जल निन जाइ ।
दादू केते पचि मुऐ, करि-करि बहुत उपाइ ॥१५॥

टीका :- राम नाम बिना जीवों की अध्यातम, अधिभौतिक अधिदैविक जो ताप हैं, वह अन्य साधन जो यज्ञ ब्रतादिक हैं, उनसे दूर नहीं हो सकती हैं । क्योंकि दयाल जी महाराज कहते हैं कि कितने ही पुरूष, अनेक साधन करके मर गए हैं किन्तु राम नाम बिना, किसी को भी अमर सुख नहीं मिला है ।

दादू एक राम ~~नाम~~ की टेक गहि, दूजा सहज सुभाइ ।
राम नाम छाडै नहीं, दूजा आवे जाइ ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! एक राम नाम की दृढ़ धारणा करो और जीवन निर्वाह के निमित्त जो दूसरे व्यावहारिक कार्य हैं उनमें उत्तम भावना से अर्थात् ईश्वरीय बुद्धि से, निष्काम भाव से स्वभाविक प्रवृत्ति से लगे रहो । जो जिज्ञासुजन एक राम नाम का आश्रय नहीं छोड़ते हैं, उनकी उदर पूर्ति आदि जो दूसरे व्यवहार हैं, वे भगवत्कृपा से बिना प्रयत्न के ही पूरे होते हैं । इसलिये व्यवहारिक कार्यों के लिए परमात्मा से विमुख होना योग्य नहीं है । अथवा दूजा कहिए नाम स्मरण के अतिरिक्त तीर्थ, व्रत, यज्ञ आदि साधन करने से आना जाना ही लगा रहेगा । अर्थात् संसार दुःख से छुटकारा नहीं मिलेगा । इसलिए प्रतिक्षण राम नाम का स्मरण करो ।

(नाम अगाधता)

दादू राम अगाध है, परिमित्त नाहीं पार ।
अवरण वरण न जाणिये, दादू नाम अधार ॥१७॥
दादू राम अगाध है, अविगत लखै न कोइ ।
निर्गुण सर्गुण का कहै, नाम विलम्बन होइ ॥१८॥

टीका :- श्री ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुजनों ! राम जो सर्वव्यापक चेतन्य है, वह अति गम्भीर है । अथवा गाध जो माया उससे परे है और अमुक प्रकार का है। ऐसे राम का कोई भी स्वरूप नहीं जान पाता । क्योंकि अवरण कहिए मन वाणी से प्रभु का स्वरूप वर्णन करना सम्भव नहीं है और वरण कहिए नाम स्मरण द्वारा, प्रभु का स्वरूप सम्भव भी है । इसलिए परमेश्वर के सत्य स्वरूप को जानने के लिए, एक नाम ही आधार है । अवरण, वरण पद से श्वेत, पीत आदि रूप और अक्षर, आश्रम या ब्राह्मण क्षत्रित वैश्य क्षुद्र, इन चारों वर्णों के अर्थ का द्योतन होता है तथा सर्वव्यापक होने से, रूप आदि में परमेश्वर की सत्ता, यद्यपि विद्यमान है किन्तु सर्वव्यापकत्व होने के अतिरिक्त भी, परमेश्वर की सत्ता सर्वत्र जड़ चेतन्य सम्पूर्ण सृष्टि में विद्यमान है । अतः न तो रूप अक्षर आदि में ही प्रभु की एकान्त स्थिति है और न इनसे अन्यत्र ही प्रत्युत सर्वत्र सम स्थितिवान है । इसलिए अवरण और वरण करके प्रभु का कोई भी वर्णन करना सम्भव नहीं है । अथवा अवरण, वरण कहिए साकार निराकार अर्थात् परमेश्वर साकार है या निराकार, इस वृथा प्रपंच में न पड़ो । क्योंकि प्रभु सर्वशक्तिमान हैं, जिससे उसमें साकार निराकार का भेद संगत नहीं है । क्योंकि भेद कहो या अवधि कहो, यह परिमित वस्तु में ही होती है और प्रभु अपरिमेय है । किन्तु भेद और अवधि तो ज्ञेय वस्तु में ही बन सकती है और प्रभु मन वाणी इन्द्रियों से अज्ञेय है, अर्थात् जाना नहीं जाता । वस्तुतः सर्वज्ञभाव होने से प्रभु में विषय विषयी भाव हो नहीं सकता । इसलिए श्री ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज उपदेश करते हैं कि राम की महिमा अपार है इसलिए इन्द्रियों की उसमें गति सम्भव नहीं है । हे संशय आत्मन् ! निर्गुण सर्गुण का विवाद छोड़कर, प्रभु का नाम स्मरण में क्िन्चित भी अब बिलम्ब न करो ।

दादू राम अगाध है, बेहद लख्या न जाइ ।
आदि अंति नहि जाणिये, नाम निरन्तर गाइ ॥१९॥

टीका :- ईश्वर की सत्ता अपार असीम इन्द्रियातीत अनादि और सनातन है, इसलिए निरन्तर श्वांस प्रति श्वांस प्रभु का स्मरण करना चाहिए ।

रामादिक नामों का उपास्यदेव एक है या अनेक ? इस बात की पुष्टि श्री सतगुरू तीन साखियों से करते हैं ।

(अद्वैत ब्रह्म)

दादू राम अगाध है, अकल अगोचर एक ।
दादू नाम बिलम्बिऐ, साधू कहैं अनेक ॥ २० ॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह राम हाथ पैर आदिक कला रहित और अजर अमर तथा अगोचर कहिए मन इन्द्रियों का अविषय और अति गम्भीर माया से रहित है । सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित, वह ब्रह्म अद्वितीय है, जिससे नानात्व का भ्रम है । वह त्यागने योग्य है । इसलिए हे जिज्ञासुओं ! परमेश्वर के साक्षात्कार के लिए, नाम स्मरण कीजिए, इसमें देर न करो । अनेक साधु महात्माओं ने ऐसा ही उपदेश किया है, और इसी प्रकार नाम का स्मरण करते आए हैं ।

यदि नामी परमेश्वर एक ही है, तो अल्लह और राम के सम्प्रदायवादी पुरुषों में भेद क्यों है ?

दादू एकै अलह राम है, समर्थ सांई सोइ ।
मैदे के पकवान सब, खाताँ होइ सु होइ ॥ २१ ॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अल्लह राम और समर्थ सांई, यह एक ही हैं । अल्लह और राम से तात्पर्य यह है कि इसी प्रकार से परमेश्वर बोधक भिन्न भिन्न धर्मों के जितने भी नाम हैं, वे सब एक ही परमात्मा का बोध कराने वाले हैं । अब उन सब का फल कहते हैं कि जैसे एक ही मैदा के अनेक पदार्थ बनते हैं जो कि इच्छा और स्वाद भेद से वे भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं, किन्तु उनके खाने से क्षुधा निवृत्ति और पुष्टि रूप, एक ही फल प्राप्त होता है वैसे ही दाराष्टांत में भी, परमेश्वर के नाम सम्प्रदायवादी पुरुषों की कल्पना व रुचि के अनुसार, भिन्न भिन्न हैं । परन्तु एकाग्रता से उन सभी नामों में से, किसी भी एक नाम के स्मरण करने से आत्म साक्षात्कार व मोक्ष रूप एक ही फल की प्राप्ति होती है ।

(निर्गुण सर्गुण विवाद की निवृत्ति)

सरगुण निरगुण व्है रहै, जैसा है तैसा लीन ।
हरि सुमिरण ल्यौ लाइऐ, का जाणों का कीन ॥ २२ ॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! प्रभु को चाहे साकार मानो या निराकार मानो, किन्तु जिसकी जैसी धारणा हो, उसी में अपनी वृत्ति को एकाग्र करो, क्योंकि प्रभु किसी का बनाया हुआ तो है नहीं। इसलिए मैं उस प्रभु का स्वरूप कैसे जान सकता हूं। वह सर्वशक्तिवान दयालु परमेश्वर न मालूम किस रूप में प्रसन्न होता है। पूर्व भक्तों ने उस परमेश्वर का किस किस रूप में साक्षात्कार किया है ? अभिप्राय यह है कि पूर्ण समर्थ होने से प्रभु, उनके लिए निर्गुण सर्गुण का प्रतिबन्ध सम्भव नहीं है। इसलिए जिज्ञासुजनों को अपनी भावना अनुसार, प्रभु का पूर्ण सलग्नता से जाप करना चाहिए।

दोहा :- गुरू दादू पै बादि द्वै, आए द्वै पष देखि।
तिन दोनों की बात सुन, भाख्यो भजन बिशेष ॥ २२ ॥

दृष्टान्त :- एक निर्गुण और दूसरा सर्गुण, दोनों उपासक परस्पर विचार करने लगे। एक कहता है निर्गुण है प्रभु, दूसरा कहता है सर्गुण है प्रभु। दोनों अपनी अपनी उपासना की सिद्धि, आपस में बतलाने लगे। एक बांस लेकर आकाश में घुमाने लगा और बोला हे प्रभु ! आप सगुणरूप हो तो यह बांस आपसे टकराना चाहिए। तब बांस ज्योंहि आकाश में घुमाया त्यों ही टकराता हुआ मालूम पड़ा। बोला, देखो प्रभु सगुण है। तब निर्गुण उपासक ने हाथ में बांस लेकर बोला :- हे प्रभु ! यदि आप निराकार हैं तो यह बांस आपके कहीं भी न टकरावे। बांस घुमाया तो बांस कहीं भी आकाश में नहीं टकराया। तब दोनों ने विचार किया कि दोनों की उपासना तो सत्य है, परन्तु यह पता नहीं चला कि प्रभु वास्तव में सर्गुण है या निर्गुण है ? तब ब्रह्मऋषि दादू दयाल के पास आए। दोनों ने अपना अपना प्रश्न किया। गुरूदेव ने उपरोक्त साखी से उत्तर दे दिया। वह दोनों ने ही अपनी अपनी धारणा के द्वारा, प्रभु प्राप्त कर लिया।

(नाम चित्त आवै सो लेय)

दादू सिरजनहार के, केते नाम अनन्त।
चित्त आवै सो लीजिये, यौं साधु सुमरैं संत ॥ २३ ॥

टीका :- जिज्ञासु प्रश्न करता है कि हे सतगुरू ! सिरजनहार परमात्मा के कितने नाम हैं ? गुरूदेव उत्तर देते हैं कि अनन्त। तो हे महाप्रभु ! हम कौन से नाम का स्मरण करें ? गुरूदेव बोले :- जो नाम आपको अच्छा लगे अथवा बहिर्मुख चित्त की वृत्ति अन्तर्मुख होवे या गुरूदेव बतावें, वही नाम लीजिए। हे जिज्ञासु! इस प्रकार मुक्त पुरुष जीवन मुक्ति के विशेष सुख के लिए, और साधन कोटि में चलने वाले साधक पुरुष ऐसे ही स्मरण करते आए हैं।

(आप कौनसा नाम लेते हो ?)

दादू जिन प्राण पिण्ड हमकौं दिया, अंतर सेवैं ताहि ।
जे आवै ओसाण सिर, सोई नाम संवाहि ॥२४॥

टीका :- जिन कृपालु परमेश्वर ने हमको प्राण और स्थूल शरीर आदिक दिया है, उसका एकाग्र वृत्ति से अन्तःकरण में सेवा कहिए, हम आराधना करते हैं, उपरोक्त नामों द्वारा ।

दोहा :- अकबर बूझी बीरबल, सिरै कौण हथियार ।
हाथी आवत देखि कर, श्वान दियो सीर मार ॥२४॥

दृष्टान्त :- अकबर बादशाह बीरबल से पूछने लगा कि बीरबल, हथियारों में सबसे अच्छा हथियार कौनसा है ? बीरबल बोला :- हुजूर ! जिससे मौके पर जान बच जाये, वही हथियार अच्छा है । एक रोज बादशाह हाथी पर सवार होकर परीक्षा के लिए जमुना के किनारे, जहां बीरबल संध्या करता था, वहां पहुंचा और महावत को बोला बीरबल के ऊपर हाथी चढ़ा दो । बीरबल ने देखा कि बादशाह हथियार देखना चहाता है । बीरबल उठा और एक सोये हुए कुत्ते के पांव पकड़कर, घुमाकर, हाथी के सिर में दे मारा । हाथी वापिस लौट गया । बादशाह सिंहासन पर बैठा हुआ हंस पड़ा और बोला बीरबल हथियार ठीक है, जिससे जान बच जाये, वही हथियार अच्छा है ।

सतगुरू महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! जिस परमात्मा के नाम से काल से मुक्त हो जावे वही नाम ठीक है ॥

(चितावणी)

दादू ऐसा कोण अभागीया, कछू दिढावै और ।
नाम बिना पग धरन कूं, कहौ कहां है ठौर ॥२५॥

दादू निमख न न्यारा कीजिये, अंतर थैं उरि नाम ।
कोटि पतित पावन भये, केवल कहतां राम ॥२६॥

टीका :- हे संशय बुद्धि ! ऐसा कौन मन्दभागी है, जो ईश्वर के नाम के अतिरिक्त, अन्य नामों का उपदेश करे । अर्थात् सांसारिक देव भूत आदिक की उपासना करने वाले भाग्यहीन हैं, क्योंकि प्रभु के नाम के बिना

भक्त जनों का क्षण भर भी जीवन सम्भव नहीं है। इसी से है जिज्ञासुजनों ! प्रभु के नाम को क्षण भर भी नहीं भूलिये, क्योंकि केवल राम नाम के उच्चारण मात्र से ही, अजामिल जैसे असंख्य अधम प्राणी, पावन नाम पवित्र होकर, संसार कष्ट से मुक्त हो गए हैं। यह राम नाम का ही महात्म्य है।

(मन परमोद)

दादू जे तैं अब जान्या नहीं, राम नाम निज सार।
फिर पीछै पछिताहिगा, रे मन मूढ गंवार ॥२७॥

टीका :- हे मन ! तूं बहुत मूर्ख है, क्योंकि तीनों लोकों का सार जो राम का नाम है उसके महत्व को मनुष्य देह प्राप्त करके भी, तैंने नहीं समझा। हे गंवार ! विषयों के यार ! अविवेकी, अन्त समय में जब तन और मन बुढ़ापे के नाना दुखों के कारण से धैर्य छोड़ देगें, तब तुझे 'मैंने मनुष्य देह प्राप्त करके भी कुछ नहीं किया', इत्यादिक पश्चाताप मात्र ही रहेगा।

दादू राम संभाल ले, जब लग सुखी सरीर।
फिरि पीछै पछिताहिगा, जब तन मन धरै न धीर ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! इस समय जबकि तन मन तुम्हारा सुखी है, राम नाम का स्मरण कर लो अन्यथा तन मन के धैर्य त्यागने पर, केवल पश्चाताप ही होता रहेगा।

दुख दरिया संसार है, सुख का सागर राम।
सुख सागर चलि जाइऐ, दादू तज बेकाम ॥२९॥

टीका :- हे मन ! यह संसार मानो दुःख की नदी है और राम नाम का स्मरण ही सुख का सागर है। इसलिए व्यर्थ के कामों को छोड़कर, नाम का स्मरण करो, क्योंकि जिस प्रकार नौका आदि की सहायता से दरिया को पार किया जा सकता है। इसी भाव को दर्शाने के लिए, प्रस्तुत संसार दुःख दरियाव की उपमा दी है। सागर के समान ही रामभक्ति एवं राम के स्वरूप का सुख भी अविनाशी और एक रस है।

दादू दरिया यहु संसार है, तामै राम नाम निज नाव।
दादू ढीलन कीजिये, यहु औसर यहु डाव ॥३०॥

टीका :- यह संसार दुखरूपी सागर है और राम नाम रूपी उत्तम नौका है। हे जिज्ञासुजनों ! नौका में बैठ कर पार होने में विलम्ब न करो, अर्थात् ईश्वर भजन द्वारा संसार के आवागमन से मुक्त हो, क्योंकि यह मनुष्य देह स्वर्ण अवसर है और नाम चिन्तन सर्वो उत्तम सुलभ साधन है। अब इसमें तनिक भी देर करना योग्य नहीं है।

(स्मरण नाम निर्संशय)

मेरे संसा को नहीं, जीवण मरण का राम।
सुपिनैं ही जिनि बीसरै, मुख हिरदै हरि नाम ॥३१॥

टीका :- श्री ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज, जिज्ञासुजनों के कल्याण के निमित्त, स्वयं को ही उपलक्ष कर के, प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे रामजी ! हमारे जीने और मरने का तो हमें कोई संशय नहीं है। न जीने से आसक्ति (हर्ष) है और न मरने से अनासक्ति (भय) है, किन्तु पापों के हरने वाले हे हरि ! आपका पवित्र नाम मुख और हृदय से हम कभी क्षण भर भी न भूलें ऐसी आप कृपा करो। अथवा हे जिज्ञासुजनों ! जीवन और मरण का अन्तिम आश्रय एक नाम ही है। इसमें कोई भी संशय नहीं है। इसलिए राम नाम को क्षण भर भी मत भूलो। रात दिन प्रभु स्मरण में सलग्न रहो।

(स्मरण नाम बिरह)

दादू दुखिया तब लगै, जब लग नाम न लेहि।
तब ही पावन परम सुख, मेरी जीवनि येहि ॥३२॥

टीका :- जब जब संतों के नाम स्मरण में विक्षेप पड़े, तब तब ही वे दुखी होते हैं, क्योंकि संत पुरूषों का जीवन राम नाम स्मरण ही है और चितावणी पक्ष में, जब तक यह जीवात्मा परमेश्वर का नाम नहीं लेता, तब तक यह दुखी रहता है। और जब एकाग्र चित्त से परमेश्वर के नाम का स्मरण करता है, तो पवित्र होकर, परम सुखी हो जाता है। ब्रह्मऋषि सतगुरू आज्ञा करते हैं कि हे जिज्ञासुजनों ! 'जीवनि' कहिए जिज्ञासुओं को मेरी नाम स्मरण के लिए यही आज्ञा है।

(स्मरण नाम पारख लक्षण)

कछु न कहावै आप कौं, सांई को सेवै।
दादू दूजा छाड़ि सब, नाम नीज लेवै ॥३३॥

टीका :- देह वासना, शास्त्र वासना और लोक वासना द्वारा, जिज्ञासुजनों को अपनी प्रशंसा नहीं करानी चाहिए और निष्काम भाव से परमेश्वर का स्मरण करना चाहिए। सो स्मरण का प्रकार कहते हैं, अर्थात् परमेश्वर से विमुख करने वाले, सम्पूर्ण कर्मों को त्याग कर, केवल भगवान का ही नाम स्मरण करना चाहिए।

(नाम स्मरण से जीवों के संशय की निवृत्ति)

जे चित्त चहुंटै राम सौं, सुमिरण मन लागै।
दादू आत्म जीव का, संसा सब भागै॥३४॥

टीका :- यदि गुरुदेव की कृपा से, जिज्ञासुजनों का चित्त राम नाम के स्मरण में सलग्न हो जावै और वह विषयाकार मन, बाहर के विषयों को छोड़ कर, हरि के स्मरण में एकाग्र वृत्ति से लग जावै, तो आत्मा कहिए व्यष्टि चेतन, उसने अंशभूत जीव के सम्पूर्श संशय, नष्ट हो जाते हैं।

(स्मरण नाम चितावणी)

दादू पिव का नाम ले, तौर मिटै सिर साल।
घड़ी महुरत चालनां, कैसे आवै काल॥३५॥

टीका :- सब का पालन करने वाला 'पीव' कहिए परमेश्वर का नाम स्मरण करने से जन्म मरण का, जो अन्तःकरण में दुख है, वह दूर हो जाता है। इसलिए दृढ़तापूर्वक प्रभु का नाम स्मरण करो। न मालूम एक क्षण के बाद कैसा समय आवै ? यह शरीर रहै, या न रहै अथवा रोगों से पीड़ित होने पर हरि का स्मरण हो सके या नहीं, कौन जानै ?

(स्मरण बिना सांस न ले)

दादू औसर जीवते, कह्या न केवल राम।
अंति काल हम कहैगें, जम बैरी सैं काम॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! तैंने मनुष्य देह प्राप्त करके और बाल्य, युवा अवस्था पाकर और सत्संग का अमूल्य अवसर प्राप्त करके भी, निष्काम भाव से परमेश्वर का नाम स्मरण नहीं किया और मायिक पदार्थों में

आसक्त होकर, यह सोचता है कि वृद्धा अवस्था आने पर हम प्रभु का स्मरण कर लेंगे। किन्तु हे नादान ! अन्त काल में भय त्रास आदि जमराज के समान जो भयंकर शत्रु है, जब तेरा उनसे वास्ता पड़ेगा, तब प्रभु का स्मरण कैसे करेगा ? फिर तो पश्चाताप मात्र ही रहेगा। हे नादान ! प्रभु भजन में जो तेरी संशय बुद्धि है, इसका क्या परिणाम होगा ? यह बात हम मुक्तजन तेरे को अन्त समय में बतलाएंगे जब यमराज के भय और संताप से तूं अति व्याकुल होगा।

दादू ऐसे मंहगे मोल का एक सांस जे जाइ।
चौदह लोक समान सो, काहे रेत मिलाइ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब भजन की पूर्ण अवधि हो जाती है, तब भजन करने वाले का, एक-एक श्वास चौदह लोक के समान मूल्यवान होता है। जैसे कोई मूर्ख मनुष्य को रत्तन प्राप्त हो जावै और वह उसके मूल्य को न समझकर, पत्थर से पीस कर मिट्टी में मिला दे, तद्वत ही रत्तन रूप तो मनुष्य देह के अमूल्य श्वास हैं, और पत्थर रूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध जो विषय हैं, इनको भोगते हुए, संसारीजन इस अमूल्य जीवन को व्यर्थ ही गमा रहे हैं। ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज उपदेश करते हैं कि हे नादानजनों ! अमूल्य रत्तनरूप इस मनुष्य जीवन तथा इसके श्वासों को व्यर्थ क्यों खोते हो ? प्रभु के भजन द्वारा इस जीवन को सफल बनाओ।

दोहा:- कस्यप चौदह लोक को, श्वांस सटै दे राज।
जाट खेत को दूसरो, लाल गमाये बाद ॥३७॥

दृष्टान्त :- कश्यप ऋषि जिन्होंने अपने नाम से कश्मीर बसाया था उनका जब अन्त समय आया, तब उनके पुत्र, देवता और राक्षस सब आकर दर्शन किये और बोले :-पिता हमें आपकी, सेवा के लिए आज्ञा करो। कस्यप बोले, सेवा करोगे ? देवता और असुर बोले, जरूर करेंगे। कश्यप ऋषि ने विचार किया कि इनको मैं मनुष्य देह के श्वांसों की कीमत से अवगत कराऊं। बोले :-पुत्रो ! इस समय आप लोग मुझे एक श्वास दे दो, तो मैं ईश्वर भजन कर लूं। यह सुनकर देवता लोग आपस में देखने लगे और विचार कर बोले :- पिता जी और कुछ मांग लो, यह तो हम दे नहीं सकते। कश्यप बोले :-जो एक श्वास तुम मुझे दे दो, तो मैं उसे चौदह लोक का राजा बना दूं। देवता बोले, कि आप राजा बना सकते हो, परन्तु हमारे पास श्वांस देने को नहीं हैं। कश्यप ने यह ज्ञान करा दिया कि यह सांस इतना अमूल्य है कि जो चौदह लोक का राज देने पर भी नहीं प्राप्त होता है।

द्वितीय दृष्टांत :- एक जाट अपने खेत में पक्षियों को उड़ता था। उसने नदी में जाकर पानी पीया और पक्षी उड़ाने के लिये किनारे से मिट्टी के डले उखाड़ने लगा। उस जगह एक घड़ा निकल आया। उसको खोलकर देखा तो गोल गोल पत्थर के समान भरे थे। उठा कर ले आया। खेत में जो ढूला बना हुआ था, उस पर लेकर चढ़ गया। उन गोल गोल पत्थरों को गोफिया में रख कर, घुमा घुमाकर पक्षियों को उड़ाता हुआ, गहरे पानी में फैंकने लगा। एक पत्थर गोफिया में से निलक कर, जमीन पर गिर पड़ा। इतने में उसके घरवाली बच्चे को गोद में लिए रोटी लेकर आ पहुंची। वह रोटी खाने लगा। बच्चा खेलता खेलता उस पत्थर को उठा कर, मां के पास ले आया। वह बोली :-यह तो बड़ा अच्छा लाल-लाल पत्थर है। पहले आती तो झोली भर देता। ऐसे पत्थर तो मैंने सब पक्षी उड़ा उड़ाके, एक एक करके सब नदी में फैंक दिए। वह बोली :-चलो ! इससे बच्चा खेलेगा। घर में जाकर बच्चे ने उसको डाल दिया। जाटनी ने उसको उठाकर घर की एक ताक में रख दिया। कुछ समय के बाद काल पड़ गया। जाट बौरा से बोला कि खाने को अनाज दे दो। बौरा बोला :- भाई ! अनाज तो इस समय देने को है नहीं। तब जाट को जाटनी ने वह पत्थर दिया और कहा :-इसी का कुछ लाओ, यह चमकता हुआ दिखता है। वह पत्थर लेकर जाट ने बौरा को दिया। बौरा ने देखा और मन में समझा कि यह तो कोई कीमती पत्थर लगता है। उसने जाट को एक धड़ी अनाज दे दिया। जाट बहुत राजी हुआ और मन में सोचने लगा:-मैंने बनिये को ठग लिया, पत्थर का एक धड़ी अनाज ले आया। बनिया उस पत्थर को अपने रिस्तेदार के द्वारा जौहरी के पास ले गया। जौहरी बोला :-यह तो लाल है, राजा के दरबार में इसकी कीमत होगी। राज दरबार में राजा के समक्ष जौहरियों ने कीमत की। यह लाल ऐसे ऐसे सात राजाओं के राज्य की कीमत के समान है। राजा ने पूछा :-यह लाल तुम कहां से लाए ? बनिए ने उपरोक्त सब कथा दरबार में सुना दी। राजा ने जाट को बुलाया। जाट आया, राजा को नमस्कार किया, और उस लाल पत्थर को वहां रखे हुए देखा। राजा बोले:- यह तुम कहां से लाए ? जाट बोला :-मुझे तो एक घड़ा भरा मिला था। होरिया उड़ा उड़ा कर सब नदी में फैंक दिए। यह एक नीचे गिर गया था। पूर्वोक्त कथा जाट ने कह सुनाई। राजा बोला :-मूर्ख ! यह पत्थर नहीं है लाल है। इसकी कीमत बहुत है। जाट :-कितनी है ? राजा :-जो हमारा यह राज्य है, ऐसे ऐसे सात राज्यों की कीमत के समान, इस लाल की कीमत है। जाट उन सब लालों को याद करके, फूट फूट कर रोने लगा, और 'हार्ट फेल' होकर मर गया। वैसे ही, हे जिज्ञासुओं ! इस मनुष्य देह के अमूल्य श्वांस हैं।

दोह-: कहता हूँ कह जात हूं, क्या बजाऊं ढोल।
स्वांसा खालि जात है, त्रिलोकी का मोल ॥ ३७॥

(अमूल्य श्वास)

सोइ सांस सुजाण नर, सांई सेती लाइ।
करि साटा सिरजनहार सौं, महगें मोल बिकाइ॥ ३८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वही जिज्ञासु चतुर है, जो अपने मनुष्य शरीर के श्वांसों को, प्रभु भजन में लगाता है, क्योंकि जो श्वांस ईश्वर भजन में लगते हैं, मानो वही श्वांस महंगे मोल में बिके हैं। शेष तो सब व्यर्थ ही जाते हैं। क्षण-क्षण में नष्ट होने वाले नश्वर श्वांसों के बदले में, अक्षय राम धन को संचित करना ही बुद्धिमानी है।

(व्यर्थ जीवन)

जतन करै नहीं जीव का, तन मन पवना फेरि।
दादू महगें मोल का, द्वै दोवटी इक सेर ॥ ३९ ॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! जो अज्ञानी जीव अपने तन मन और सुरति को संसार की ओर से हटा कर, अपने जीवात्मा के कल्याण के हेतु तो, प्रयत्न नहीं करता है और केवल दो धोती और एक सेर अन्न के उपाय में ही, बहुमूल्य नर तन और श्वांसों को खोता है, वह मन्दभागी है। हे जिज्ञासुजनों ! अपने जीवन को सफल बनाने का उपाय करो। अन्न वस्त्र तो बिना उपाय भी स्वयं हरि पूर्ण कर रहे हैं और ईश्वर विमुख प्राणी को, इस मनुष्य देह के अमूल्य श्वासों के बदले में, दो धोती और एक सेर अन्न भी कठिनता से प्राप्त हो रहा है। नादान संसारी जन, अपनी आत्मा के उद्धार का तो प्रयत्न करते नहीं हैं और महगें मोल का जो हरि भजन है, उसे केवल दो धोती और एक सेर अन्न के निमित्त ही बेच रहे हैं। अर्थात् यही कीमत समझ रहे हैं। जिससे उसका जीवन व्यर्थ है।

(सफल जीवन)

दादू रावत राजा राम का, कदेन बिसारै नांव।
आत्मराम संभालिये, तौ सुबस काया गांव ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जैसे राजा का कोई जागीरदार अर्थात् राव राजा होता है। वह राजा की आज्ञा कहिये राजा के कानून का सदा ध्यान रखता है, तो उसके नगर में सदा सुख और शान्ति बनी रहती है। इसी प्रकार दाराष्टान्त में राम तो राजा है और मनुष्य आदि सब जागीरदार हैं। और मनुष्य शरीर ही उनकी

जागीरी है। ब्रह्मऋषि उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुजनों ! रावत कहिए, जो मनुष्य, राम राजा के नाम को कभी नहीं भूलेगा और अपनी आत्मा के उद्धार का ध्यान रखेगा, उसका मनुष्य जीवन सफल और धन्य है।

(स्मरण चितावणी)

दादू अह निशि सदा शरीर में, हरि चिंतत दिन जाइ।
प्रेम मगन लै लीन मन, अन्तर गति ल्यौ लाइ ॥ ४१ ॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! सदा कहिए रात दिन अन्तर्मुखवृति होकर, ईश्वर के भजन करने में जो दिन जाता है, वह श्रेष्ठ है। इसलिए प्रभु के प्रेम में मग्न होकर, अपने मन को ईश्वर के भजन में सदा लगाओ।

निमक एक न्यारा नहीं, तन मन मंझि समाइ।
एक अंगि लागा रहै, ताको काल न खाइ ॥ ४२ ॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! पल भर भी परमेश्वर को मत भूलो और तन मन को आत्मा के सन्मुख बनाकर, 'अंगि' कहिए जो परमेश्वर है, उसमें लगा कर रहो। हे मुमुक्षुओं ! इस प्रकार के करने से आत्म भाव को प्राप्त होगे।

दादू पिंजर पिंड शरीर का, सुवटा सहज समाइ।
रमता सेती रमि रहै, बिमल बिमल जस गाइ ॥ ४३ ॥
अविनाशी सौं एक व्है, निमख न इत उत जाइ।
बहुत बिलाई क्या करै, जे हरि हरि सब्द सुणाइ ॥ ४४ ॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! स्थूल शरीर रूपी पिञ्जरे में जीव रूपी सूवा, सहज निष्काम भाव से, समाया कहिए, परमेश्वर में एक रूप हो रहा है। और आत्मानन्द में प्रफुल्लित होकर, प्रभु के परम पवित्र यश का गायन करता है। तो 'इत' कहिए इस लोक के राज्य पद आदि और 'उत' कहिए परलोक के स्वर्ग बैकुण्ठ आदि में, पलक मात्र भी चित्त नहीं जाता है। हे जिज्ञासुजनों ! इस प्रकार अविनाशी जो परमेश्वर है, उससे तुम एक स्वरूप हो जाओगे। फिर हरि के अनन्य भक्त की वह 'बिलाई रूप' मायावी प्रपंच, उसका क्या बिगाड़ कर सकते हैं ?

दादू जहां रहूं तहं राम सौं, भावै कंद लिजाइ ।
भावैं गिरि परवत रहुं, भावै ग्रहै बसाइ ॥ ४५ ॥
भावै जाइ जल हरि रहूं, भावै सीस नवाइ ।
जहां तहां हरि नाम सौं, हिरदय हेत लगाइ ॥ ४६ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज अपने को उपलक्ष करके प्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे नाथ ! इस शरीर का भ्रमण आदि का जैसा प्रारब्ध हो, वैसा ही रहै । परन्तु इस जीवात्मा का ध्यान, सर्वत्र आपके ही नाम स्मरण में लगा रहै । इसलिए हे प्रभु ! ऐसी कृपा करो कि इस जीव की चित्तवृत्ति 'अहनिश' कहिए, रात दिन आप में ही लगी रहै । हे जिज्ञासुओं ! आप लोग ऐसी ही प्रभु से प्रार्थना करते रहो ।

(मन परमोध)

दादू राम कहे सब रहत है, नख सिख सकल सरीर ।
राम कहे बिन जात है, समझी मनवां बीर ॥ ४७ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज अपने मन को उपलक्ष करके कह रहे हैं । हे भाई मन ! तूं समझ, कि राम नाम का भजन करने से, नख से सिखा पर्यन्त जो शरीर और उसमें जो इन्द्रियां हैं, वे विषय विकारों से रहित होती हैं । और राम का स्मरण किए बिना, अपने अपने विषय विकारों में लीन रहती हैं । इसलिए हे मन ! अब राम नाम का स्मरण कर और परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है । इस शरीर में उसकी सत्ता, नख से चोटी पर्यन्त विद्यमान है । उसके विचारने से यह शरीर सफल होता है । और नाम स्मरण के बिना तो यह जीवन, व्यर्थ ही जाता है । हे मन भाई ! नख से चोटी पर्यन्त जो देहाध्यास व्याप्त हो रहा है, उससे तूं राम नाम के स्मरण के द्वारा मुक्त हो । राम नाम के स्मरण के बिना यह मनुष्य जीवन, देहाध्यास में ही बीता जा रहा है ।

दादू राम कहे सब रहत है, लाहा मूल सहेत ।
राम कहे बिन जात है, मुरख मनवां चेत ॥ ४८ ॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! राम के भजन से ही व्याज सहित मूल की रक्षा होती है, अर्थात् यह लोक और परलोक दोनों सफल हो जाते हैं । और राम भजन के बिना, मनुष्य का यह जीवन निःफल ही जा रहा है । इसलिए हे जिज्ञासुओं ! अपने इस मन को सावधान करके, प्रभु के स्मरण में लगाओ । हे मूर्ख मन ! तूं सावधान होकर प्रभु का स्मरण कर, इसी में तेरा कल्याण है ।

दादू राम कहे सब रहत है, आदि अंति लौं सोइ ।
राम कहे बिन जात है, यहु मन बहुरी न होइ ॥४९॥

टीका :- महाराज ब्रह्मऋषि दादू दयाल अपने मन को उपलक्ष्य करके जिज्ञासुओं को उपदेश कर रहे हैं कि राम भजन से ही मनुष्य का जन्म से मरण पर्यन्त, जीवन सफल होता है। क्योंकि आदि अन्त कहिए इस लोक और परलोक में, यह एक राम का भजन ही सुख और दुख में साथ रहेगा। हे मन ! राम भजन के बिना यह तेरा जीवन निष्फल ही जा रहा रहा है। इसलिए हे जिज्ञासुओं ! अपने मन को सावधान करके राम के भजन में लगाओ। इसी में हे मूर्ख मन ! तेरा कल्याण है, क्योंकि यह मनुष्य जीवन बारम्बार नहीं मिलता है।

दादू राम कहे सब रहत है, जीव ब्रह्म की लार ।
राम कहे बिन जात है, रे मन हो हुसीयार ॥५०॥

टीका :- ब्रह्मऋषि कहते हैं हे मन ! तूं सावधान कहिए साधन सम्पन्न होकर, राम नाम का स्मरण कर। क्योंकि राम नाम के प्रभाव से ही, यह जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप होता है। जिसके प्रभाव से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जीव आत्मा की आज्ञा में वर्तते हैं और राम नाम का स्मरण किये बिना, ये सब जीवात्मा का साथ छोड़ देते हैं। इसलिए हे जिज्ञासुओ ! अपने मन को स्थिर करके, परमेश्वर का भजन करो।

(परमारथी)

हरि भजि साफिल जीवना, पर उपगार समाइ ।
दादू मरणा तहाँ भला, जहां पसु पक्षी खाइ ॥५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! मनुष्य देह प्राप्त करके, दो काम अवश्य करने योग्य हैं। प्रथम तो अपनें जीवन को सफल बनाने के लिए, प्रभु का भजन करना चाहिए। पुनः समय अनुकूल दूसरे प्राणधारियों की सेवा करनी चाहिए, क्योंकि परोपकार भी हरि भजन के समान ही, आत्म कल्याण का साधन है एवं मुमुक्षुओं को परोपकार और हरि भजन से मनुष्य जीवन को सफल बनाना चाहिए। अब परोपकार का स्वरूप कहते हैं कि शरीर का त्याग करना भी वहां सफल है, जहां पशु पक्षी आदि इस पंच भौतिक देह का भक्षण कर लेवें।

दोहा :- कबीर मरना तहां भला, जहां अपना नाही कोइ ।
माटी भखैं जिनावरां, सहज महोरछा होइ ॥५१॥

(स्मरण)

दादू राम सबद मुखि ले रहै, पीछै लागा जाइ ।
मनसा वाचा कर्मना, तिहि तत सहजि समाइ ॥५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! सर्व माया प्रपंच को मन से त्याग कर, नाम में ही सलग्न रहो, क्योंकि जितनी भी ऋद्धि सिद्धि आदिक मायिक विभूतियां हैं, वे सभी भगवत् की आज्ञा अनुसारिणी हैं। अर्थात् महाप्रभु व्यावहारिक जिज्ञासुओं के प्रति उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुजनों ! राम नाम को ही सब व्यावहारिक कार्यों में मुख्य मान कर, व्यावहारिक कार्य करने से, सब कामों में सफलता मिलेगी। इस लिए शरीर से व्यावहारिक कार्य करते हुए भी मन, वाणी, कर्म से, प्रभु में ही सलग्न रहो और कर्म भी भगवत् निमित्त ही करो। जिससे निष्काम कर्म कर्त्ता पुरुष, कर्म बन्धन से मुक्त रहेगा

(अब तिहि तत्त में समाने की विधि का वर्णन)

दादू रचि मचि लागे नाम सौं, राते माते होइ ।
देखैंगें दीदार कौं, सुख पावैंगें सोइ ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो गुरू बचन और शास्त्र बचन में श्रद्धा रखने वाले पुरुष प्रीति के सहित पूर्ण अनुराग युक्त होकर, राम नाम के स्मरण में एकाग्र रहते हैं, वह परमेश्वर के प्रेम में विभल होकर, मतवाले बन जाते हैं। उनको अपने शरीर का अध्यास भी नहीं रहता। ऐसे उत्तम जिज्ञासु, परमेश्वर का साक्षात्कार करके मोक्ष को प्राप्त होंगे।

(चेतावनी)

दादू सांइ सेवै सब भले, बुरा न कहिये कोइ ।
सारों मांहि सो बुरा, जिस घटि नाम न होइ ॥५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! जो कोई भक्त, जिस किसी भी नाम से प्रभु की भक्ति करता है, वह धन्य है । प्रभु भक्तों में कोई भी बुरा नहीं है । जगत् के सम्पूर्ण अधम प्राणियों में अधम से अधम तो वह है, जिस के हृदय में भगवत् का नाम नहीं है । इसलिए निरन्तर परमेश्वर के नाम का चिंतन करो, दत्त चित्त होकर ।

दोहा :- आगै निरमल और सी, पीछै मलिन विकार ।
आगे पीछे और सी, क्यूं न परे मुख छार ॥५४॥

दोहा :- निन्दा महान दोस है, इसे न छोटा मान ।
व्रती नारियों को बमन, हुई रक्त की जान ॥५४॥

दृष्टान्त :- एक समय संत मोहम्मद पैगम्बर की स्त्री आशा बोली :-स्वामी उस स्त्री के घर में एक पुरूष आता है । मोहम्मद बोले :-ऐसा मत कहो, निन्दा में बड़ा दोष है । हे प्रिय ! दो स्त्रियों ने निन्दा की थी, उनके मुंह से रक्त की कै हुई तुम भी थूको । आशा के मुख से खून का थूक गिरा । उस दिन से फिर आशा ने कभी निन्दा नहीं की ।

(ईश्वर विमुख प्राणी की दुर्गति)

दादू जियरा राम बिन, दुखीया इही संसार ।
उपजै बिनसै षप मरै, सुख दुख बारम्बार ॥५५॥

टीका :- जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के भजन बिना संसार के अज्ञानी मनुष्य अति दुखी रहते हैं, क्योंकि सतगुरू और शास्त्र की कृपा के बिना, वह जीव नाना कष्ट साध्य कर्म तो करता है किन्तु उन कर्मों से सुख तो बहुत थोड़ा होता है । और दुःख तो बार बार ही होता रहता है । इस प्रकार ईश्वर विमुख प्राणि इस संसार में जीते हुए तो नाना सकाम और निषिद्ध कर्मों में पच पच कर मरते हैं और शरीर छूटने के बाद नाना प्रकार के नरक के दुःख भोगते हैं । उसके बाद में अधम योनियों में जैसे भूत, प्रेत, सांप, बिच्छू आदि जन्म मरण रूप आवागमन के चक्र में घूमते रहते है, इसलिए परमेश्वर विमुख प्राणियों की अति दुर्गति होती है ।

(स्मरण नाम महिमा महात्तम)

राम नाम रूचि उपजै, लेवै हित चित लाइ ।
दादू सोई जीयरा, काहे जमपुरि जाइ ॥५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूर्व जन्म के सुकृत कर्मों से मनुष्य शरीर में जन्म लेकर, सत्संग के द्वारा जिस मनुष्य की प्रथम राम नाम स्मरण में रूचि उत्पन्न होती है और फिर प्रीतिपूर्वक परमेश्वर में चित्त एकाग्र करके, ऐसा पुरूष क्यों यमलोक में जावेगा ? अर्थात् यम आदि की त्रास को क्यों भोगने लगा ? वह पुरूष तो जरा मरण रूपी संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाएगा ।

दादू नीकि बरियां आय करी, राम जपि लीन्हां ।
आत्म साधन सोधि कर, कारज भल कीन्हां ॥५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रथम तो मनुष्य का शरीर प्राप्त होना, यह एक बड़ा सुन्दर अवसर है, क्योंकि मनुष्य के शरीर में राम के भजन का पूर्ण लाभ प्राप्त हो जाता है । इसलिए जो जिज्ञासु जिस समय में जिस जाति में, जिस कुल में परमेश्वर का स्मरण करता है । वह युग कहिए समय, वह जाति और वह कुल श्रेष्ठ है । क्योंकि जिस जिज्ञासु ने अपने आत्मा का कहिए जीव का, कल्याण के लिए नाम का स्मरण रूप साधन को दृढ़ धारण कर लिया है उसने समय अनुसार सर्वश्रेष्ठ कार्य कर लिया है । अभिप्राय यह है कि जैसे किसी जौहरी को व्यापार में पूर्ण लाभ प्राप्त हो उसको प्रातःकाल या मध्याह्नकाल या सांयकाल, उसके लिए वही अवसर श्रेष्ठ है, जिसमें उसने लाभ प्राप्त कर लिया है । वैसे ही जो समय प्रभु चिन्तन में लगता है वह उसके लिए अमूल्य वही समय धन्य है ।

दोहा :- कोउ जन स्वामी से कही, और युगन अवतार ।
निको युग सो जानिये, दर्शन दे करतार ॥५७॥

दृष्टांत :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज से एक भक्त ने आकर नमस्कार किया और पूछने लगा कि हे गुरूदेव ! आपका अवतार तो सतयुग में होना चाहिए था । इस भयंकर कलि काल में क्यों हुआ ? सतगुरू बोले :- भाई ! वह युग श्रेष्ठ है, जिसमें भगवान का दर्शन हो जावै, क्योंकि उसके लिए वही समय सतयुग है । और सतयुग में जन्म होवे, त्रेता में होवे, द्वापर में होवे और प्रभु दर्शन प्राप्त नहीं करै, तो उस युग से उसको क्या लाभ प्राप्त हुआ ? यह सुनकर भक्त ने गुरूदेव के चरणों में नमस्कार किया और कहा हे गुरूदेव ! सत्य है ।

दादू अगम वस्त पानैं पड़ी, राखो मंझि छिपाइ।
छिन छिन सोई संभालिए, मति वै बीसरी जाइ ॥५८॥

टीका :- श्री सतगुरू उपदेश करते है कि हे जिज्ञासुओ! जो यह मनुष्य शरीर है वह उत्तम पुण्य से तुम्हें प्राप्त हुआ है । इसलिए रक्षा करने वाला जो राम नाम स्थान है, उसमें इस शरीर को काम, क्रोध, लोभ, मोह इन सबसे हटा कर, उस राम नाम में रखो और मनुष्य जीवन का जो कर्त्तव्त है, उसका क्षण प्रति क्षण में उसका चिन्तन करो, क्योंकि मन्द बुद्धि पुरुष मानव के कर्त्तव्य को भूल कर, कहीं विषयों में न चला जावे। इसलिए सावधान रहो ।

(स्मरण नाम महिमा महात्म्य)

दादू उज्जल निर्मला, हरि रंग राता होइ।
काहे दादू पचि मरै, पानी सेती धोइ ॥५९॥

टीका :- सतगुरू महाराज उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओं ! उज्जवल और निर्मल पद क्रम से तन और मन की शुद्धि के वाचक हैं और पानी शब्द से सकाम कर्म देवी देवताओं की उपासना का ग्रहण है । अथवा तीर्थ व्रत आदि का भी यही फल समझो । ब्रह्मऋषि सतगुरू आज्ञा करते हैं कि हे जिज्ञासुओं ! परमेश्वर के भजन में एक रूप होने से ही, यह तन और मन निर्मल होते हैं, और ईश्वर भजन को छोड़कर जो तीर्थ व्रत सकाम कर्मों से मन को पवित्र करने के प्रयत्न करते हैं, वे व्यर्थ ही पच पच कर मरते हैं ।

शरीर सरोवर राम जल, माहैं संजम सार।
दादू सहजैं सब गए, मन के मैल विकार ॥६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! मनुष्य का शरीर ही मानो मानसरोवर रूपी तीर्थ है । मानसरोवर में जैसे अमृत तुल्य जल भरा है, वैसे ही अन्तःकरण में भी मानो निष्काम राम नाम का स्मरणरूपी जल भरा है और संयम कहिए बाहर के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पांचों विषयों से मन और इन्द्रियों को अन्तर्मुख करके अर्थात् राम नाम में लगाना ही मानो स्नान है । सब तीर्थों से यह सार तीर्थ है । इसका स्नान सम्पूर्ण पापों और तापों को शान्त करने वाला है ।

दादू रामनाम जलं कृत्वा, स्नानं सदा जीतः।
तन मन आत्म निर्मलं, पंच भू पापं गत: ॥६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! प्रभु के नाम स्मरण को जल समझ करके, इन्द्रियों का दमन रूप स्नान करो । जिससे श्रोत्र, नेत्र, घ्रांण, जिह्वा, त्वचा ये पांच जानेन्द्रियां हैं इनसे 'भू' नाम उत्पन्न हुए, जो विषय और कामादि विकार, इनसे जो उत्पन्न होते हैं, पाप 'गतः' कहिए नष्ट हो जाते हैं । अथवा 'भू' नाम भूमिरूप जो बुद्धि है, उसके भी हरि के स्मरण से सम्पूर्ण पाप नष्ट होकर, शुद्ध हो जाती है । किन्तु हरि भजन से पांचों ज्ञानेन्द्रियां निर्जीव कहिए निर्वासनिक होती हैं । फिर तन, मन, आत्मा आदि सभी निर्मल होते हैं ।

दादू उत्तम इन्द्री निग्रहं, मुच्यते माया मनः ।
परम पुरुष पुरातनं, चिंतते सदा तनः ॥६२॥

टीका :- हे श्रद्धालु जिज्ञासु ! तूं उत्तम मनुष्य शरीर प्राप्त करके, अब इन्द्रियों का निग्रह कर । जिससे तेरा मन माया के प्रपञ्च से छुटकारा पाकर, तूं देह अध्यास से मुक्त हो जाएगा और पुरातन कहिए, अनादि जो परम पुरुष परमेश्वर है, उसको चिंतन कर, जिससे तूं, उसे ही प्राप्त करेगा ।

दादू सब जग विष भर्या, निर्विष बिरला कोइ ।
सोई निर्विष होइगा, जाके नाम निरंजन होइ ॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! सम्पूर्ण संसार में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और ईर्ष्या आदि विषय विकार ही व्याप्त हो रहे हैं। कोई संत पुरुष ही इन सब विषय विकारों से मुक्त हैं । जिसके हृदय में निरंजन निराकार प्रभु का नाम स्मरण है, वही इन विषय विकारों से मुक्त होता है ।

दोहा :- चोर हुरं नृप बैन सुनै, कथा सुनै मन लाइ ।
पुत्री ब्याहत्त नाम तैं, निरवासी भयो आइ ॥६४॥

दृष्टान्त :- एक बादशाह और उसकी हूरम कहिए उसकी रानी दोनों महात्मा की रोज कथा सुनने जाया करते थे । कथा मेंप्रसंग आया कि स्मरण करने वाले पुरूष के साथ जो रहता है, वह भी कल्याण को प्राप्त होता है । रात्रि को दोनों स्त्री पुरूष बिचार करने लगे कि अपनी लड़की शादी के योग्य हो गई है । किसी भक्त के साथ इसकी शादी करें, तो अति उत्तम रहे । रानी ने कहा :-बादशाह सलामत आप मालूम कराओ यानि ढूंढवाओ, यदि कोई ऐसा भक्त मिल जाये तो उसी के साथ लड़की की शादी कर दें । बादशाह ने कहा ठीक है ऐसा ही करूंगा ।

उसी दिन रात को एक चोर बादशाह के महलों में चोरी करने आया था । उसने यह बात सुनी और मन में विचार किया कि तूं क्यों चोरी करता फिरता है ? चल जमुना के किनारे जंगल में भक्त बन

कर बैठ जा। और राम राम जप। जब राजा और रानी आवेंगे तभी में अपनी आंखे खोलूंगा। वह चोर ऐसा विचार करके जंगल में जा बैठा। राहगीर लोगों ने उसे बैठा देखा और शहर में शोर मचा दिया कि बड़ा भारी महात्मा अमुक जगह बैठा है। दुनियां कोई कुछ चढ़ाती है और कुछ ले जाती है, परन्तु वह आंख नहीं खोलता। वह बात बादशाह के दरबार में भी पहुंची गई। बादशाद ने रानी को बताया कि भक्त तो, जैसा हम चाहते थे वैसा ही जंगल में बैठा है। चलो दर्शन करने चलें। दोनों जब आकर दर्शन पाये तो नौकर को इशारा किया कि लड़की को ले आओ। लड़की आई और उसके सामने खड़ी हो गई। बादशाह और रानी ने कहा :-कि आप हमारी लड़की को सेवा के लिए अंगीकार कर लो। तब उसने आंखें खोली और लड़की को देखा और फिर आंखें बन्द कर ली और बोला :-अब वह नहीं है, अगर मैं इस प्रकार की भावना लेकर बैठता तो, परमात्मा भी प्रगट होकर मुझ को दर्शन दे देते। मुझे यह पता नहीं था कि प्रभु के नाम स्मरण से जो मांगे वही मिल जाता है। सच्चा भक्त होकर, प्रभु के नाम स्मरण से वह मुक्त हो गया।

दादू निर्विष नाम सौं, तन मन सहजैं होइ।
राम निरोगा करैगा, दूजा नांही कोइ ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं! परमेश्वर के नाम स्मरण से ही यह तन और मन विषयों से मुक्त होकर, सहजावस्था को जिज्ञासु प्राप्त होता है। केवल राम नाम द्वारा ही यह मन सम्पूर्ण संसार के विषय विकारों से मुक्त होता है। इसके अतिरिक्त मन को पवित्र करने के लिए और कोई भी उपाय नहीं है।

दोहा :- **हुरम देखि भंगी विकल, कहि त्तीये समझाय।**
कियो भजन सकामी व्है, निष्कामी व्है जाय ॥६४॥

दृष्टान्त :- बादशाह की भंगन जनाने महलों में रोज झाड़ू देने जाती थी। एक रोज भंगन की तबीयत खराब होने से अपने पति से बोली :- तुम झाड़ू दे आओ। जब झाड़ू देने महलों में गया और झाड़ू निकालने लगा, बादशाहजादी अचानक कमरे से बाहर आई। उसके रूप को देखकर भंगी व्याकुल हो गया। जैसे तैसे झाड़ू तो निकाली, पर घर आकर मूर्छित होकर पड़ गया। भंगन ने पति को मूर्छित देखा और चेत कराया। बोली:- क्या हो गया? भंगी बोला :-मुझे बादशाहजादी मिले तो मेरा जीवन हो। भंगन बोली :-चुप, बादशाह सुन लेगा तो बच्चों के सहित तुझ को फांसी पर लटका देगा। भंगी बोला :-मैंने पहले ही कहा है, मेरी मौत आ आ गई। बादशाहजादी नहीं मिलेगी तो मरूंगा। तब भंगन विचार करके बादशाहजादी के पास गई और

रोने लगी । बादशाहजादी ने पूछा क्या बात है ? कैसे रोती है ? भंगन ने उपरोक्त वृत्तान्त कह सुनाया । बादशाहजादी हंसी और मन में सोचा, कहां भंगी और कहां मैं? फिर सोचा भंगी मर जाएगा तो हमारी भंगन रांड हो जाएगी । यह सोचकर वह भंगन को बोली:-उसको जाकर बोल दे कि साधु बनकर जंगल में जा बैठ । जब तक बादशाहजादी न आवे तब तक आंखें नहीं खोलना और राम राम जपना । तब भंगन ने पति से जा कर बोल दिया । फिर वह साधु भेष बना कर जंगल में जा बैठा । आने जाने वालों ने देखा और विचार किया कि यह तो भारी महात्मा है । यह बात बादशाह के कानों में भी पहुंच गई । फिर वह भी दर्शन करने आया । और बादशाहजादी को जाकर बोला :-एक बड़े भारी महात्मा अमुक जगह बैठ कर तप कर रहे हैं । बादशाहजादी बोली, हमको भी दर्शन कराओ । बादशाह बोले :-कल आप सवारी से जा कर दर्शन करना । दुसरे रोज बादशाहजादी सवारी में बैठ कर चली और उसके सामने जाकर खड़ी हो गई । जिस के लिए आप ध्यान करते थे, वह आपके सामने हाजिर हो गई है । हुकम करो । तब उसने आंखें खोली । और बादशाहजादी को देखा । और फिर आंखें बन्द कर ली । बादशाहजादी बोली, आंखें क्यों बन्द कर ली ? वह बोला :-जो तुम्हें चहाता था, वह अब नहीं रहा । फिर वह फूट फूट कर रोने लगा और बोला :-मुझे यह पता नहीं था कि प्रभु चिंतन करने वाला जो कुछ मागें वही उसे मिल जाता है । आज मैं चहाता तो तुम्हारी तरह भगवान भी मेरे सामने आ जाते । वह सच्चा साधु बन गया ।

ब्रह्म भगति जब ऊपजै, तब माया भगति बिलाइ ।
दादू निर्मल मल गया, ज्यूँ रवि तिमर नसाइ ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जैसे सूर्य उदय होने के पश्चात रात्रि का अन्धकार स्वतः ही नाश हो जाता है । इसी प्रकार मन में ब्रह्म की कहिए परमात्मा की सच्ची पराभक्ति उत्पन्न होते ही, 'माया की भक्ति' कहिए, विषय विकार आदिकों में आसक्ति और मोह जाल सम्पूर्ण नष्ट हो जाता है । और अन्तःकरण निर्वासनिक होकर पवित्र हो जाता है । ब्रह्म से, अन्य देवी देवताओं की भक्ति से, तीर्थ व्रत आदि के करने से, कदापि अन्तःकरण का अज्ञान नष्ट नहीं होता है । दाराष्टान्त में जैसे दीपक तारे आदि के उदय होने से, रात्रि रूप अन्धकार नहीं जाता है, परन्तु सूर्य के उदय होने से, तत्काल अन्धेरा निवृत्त हो जाता है ।

दोहा :- लक्ष्मी विष्णु भक्त पैं, ले गई भेट बनाइ ।
वै अचाह ताड़त भये, आई मुँह लपकाइ ॥६५॥

दोहा :- कनक कटोरा दिखाइ करि, सेवक लिए लुभाइ।
धक्का दिवाया विष्णु कै, आपन रहि छिपाइ ॥६५॥

दृष्टांत :- एक रोज भगवान विष्णु और लक्ष्मी दोनों की विनोद वार्ता होने लगी । लक्ष्मी बोली :- मेरे भक्त ठीक है । भगवान बोले :- मेरे भक्त निर्वासनिक हैं । वह उत्तम हैं । लक्ष्मी बोली :- आप के भक्तों को तो मैं अपने अधीन कर सकती हूं । परन्तु मेरे भक्तों को आप अधीन नहीं कर सकते हो । भगवान बोले :- तेरे भक्तों को तो हम अपने अधीन कर भी सकते हैं, परन्तु तूं हमारे भक्तों को अधीन नहीं कर सकती है । लक्ष्मी बोली :- अमुक नाम का मेरा भक्त है, मृत्यु लोक में । उसके आप जाकर ठहर जाओ । भगवान बैकुण्ठ धाम से संत रूप में चले और इस भक्त की दुकान पर पहुंच गये । संत बोले :- भक्त राम राम । वह राम राम नहीं बोला । तब एक नौकर सेठ जी को जाकर बोला :- सन्त क्या कह रहे हैं ? उनकी सुनो । सेठ बोला :- क्या कहता है ? सन्त बोले :- भाई ! शरीर वृद्ध हो गया, तेरे बाग बगीचे बहुत हैं, हमारे ठहरने का कोई जगह बता दो । तो वहां ठहर कर राम राम करते रहें । सेठ बोला :- और कुछ तो नहीं मागेंगा । संत बोले:- नहीं । तो नौकर को कहा :- जाओ वह बगीची बतला दो, जिसकी दीवारें टूटी हुई हैं । संत बोला :- परन्तु फिर तुम निकालोगे तो, मैं निकलूगां नहीं । अपनी इच्छा से चाहे कभी चला जाऊं । सेठ बोला :- मर जाएगा तो उठवा कर फिकवा देगें । संत बोले :- ठीक है । फिर संत नौकर के साथ चल पड़ा । बगीचे में पहुचे । सफाई कर आसन लगाकर बैठ गए और माला फेरने लगे । लक्ष्मी ने देखा :- मेरे भक्त के यहां भगवान ने डेरा जा लगाया है । तब लक्ष्मी साधु भेष में चली और भक्त के यहां आकर पहुंची । भक्त नें देखा जरी की अलफी पहन रखी है, जो हीरों से जड़ी हुई है। बगल में एक झोली जरी की डाल रखी है, उसके भी हीरे जड़े हुए हैं और मोतियों के झूमके लटक रहे हैं । हाथ में एक सोने का करमण्डलु है, उसमे भी हीरे जड़े हुए हैं । गले में हीरे, मोती, लाल और पन्नों की माला पहन रखी है । हाथ में सोने का चिमटा भी नगों से जड़ा हुआ है । एक जरी का डुपट्टा हीरों से जड़ा हुआ, अलफी के ऊपर ओढ रखा है । सेठ ऐसा रूप देखकर, गद्दी से खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर बोला :- महाराज, गद्दी पर बिराजो, आज्ञा फरमावो । संत बोले, प्यास लगी है । सेठ ने ठण्डाई बनवा कर मंगवाई । गिलास में देने लगे । संत ने अपनी झोली से एक सोने का कटोरा निकाला । कहा, इसमें दे दो । ठण्डाई पीई और सेठ को कटोरा दे दिया । कटोरा धोकर सेठ सन्त को देने लगा । संत बोले :- हम एक दफा जिसमें खा पी लेते हैं, फिर उसको वापिस नहीं लेते हैं, उसी को दे देते हैं । तुम्हीं रखो । इस प्रकार संत ने खान-पान के चार कटोरे दे दिए और फिर बोले :-अब तो भक्त चलेंगे ! तब हाथ जोड़ कर सेठ बोला :-महाराज ! ज्यादा नहीं तो अब छः महीने तो रुक जाओ । हम आपके ही बच्चे हैं, दया करो । संत बोले :-भाई ! हम एकान्त में तो ठहर सकते हैं, यहां नहीं । सेठ ने कार में बैठा कर बड़े बड़े, महल और बगीचे दिखलाए । संत बोले :-वह किसकी बगीची है ? वह आपकी ही है, वहां चलो । कार जा कर

पहुंची। सन्त कार से बाहर आए। सेठ के साथ बगीची में गए तो देखा वहां एक सन्त ठहरे हैं। संत बोले सेठ से, कि यह जगह ठीक है, परन्तु यहां तो यह महात्मा रुके हुए हैं। सेठ बोले :-यह संत नहीं है, तह तो पाखण्डी है महाराज! इसको अभी भगा देते हैं। सेठ बोला :-निकल बगीची से बाहर। संत बोलेः- तुमने कल कहा था कि नहीं निकालूंगा, अब हम नहीं निकलते। सेठ ने उनके डंड करमण्डलु बाहर फैंक दिए। धक्के देकर बाहर निकाल दिया। संत अपने कमण्डलु उठा कर बोले, भाई तेरे दुगना हो। यह कह कर चल पड़े। महाराज अब यहां ठहरो। नहीं भाई! हम नहीं ठहरेंगे। तुमने हम को सिद्ध जानकर उस महात्मा को धक्के दिए। कल हमसे बड़ा सिद्ध आ जाएगा, तो तुम हमको धक्के देकर निकालोगे। हम नहीं रहते। बगीची के बाहर जा कर गुप्त हो गए। जब सेठ को चेत हुआ तब बोला :-

दोहा :- सुजा श्याम पधारिया, सरते सब ही काम।
दुविध्या में दोऊ गए, माया मिलि न राम॥

आगे लक्ष्मी जी और भगवान मिले। भगवान बोले :-तुम्हारे भक्तों के तो हम ठहर गए। हमारे भक्तों के तुम जा भी नहीं सकती। तब बोली :- आपके भक्त बताओ। भगवान बोले :- उस भक्त के पास चली जा। लक्ष्मी ने अपना स्वरूप महारानी का बनाया। थाल में अनेक प्रकार के मोदक लेकर चली। सामने से संत बोले :- अरे डाकन, कहां आती है! खड़ी हो जा। बोली :-दर्शन करने आती हूं। संत ने धूणी में से एक जलता डंडा उठाया एक बाईं तरफ मारा, दूसरा दाहिनी तरफ मारा और बोले :- भाग जा। तब दूर खड़ी होकर लक्ष्मी बोली :- दुष्ट तूं रोटी पर रोटी रख कर नहीं खाना। सन्त बोले :- चल हम सवा सेर का एक ही रोट बना लेगें। बोली :- जा दुष्ट! तुझे साग सब्जी नहीं मिलेगा। बोला :- चल हम घी चीनी से ही काम काढ़ लेगें। बोली :- तुझे ओढ़ने को कपड़े नहीं मिलेंगे। चल हम धूनी रमा कर ही गुजारा कर लेगें। अभी बकवास करती है। फिर लक्ष्मी जी श्राप देकर चल पड़ी।

भगवान विष्णु के पास पहुंची। भगवान हंस रहे थे। कहो लक्ष्मी जी क्या हुआ? लक्ष्मी जी बोली :- जिन पर आपका हाथ है, वह भक्त ही मेरी छाती पर पांव रख कर, आपको प्राप्त हो जाते हैं। आपको और आपके भक्तों को धन्य है।

(मनहरि भावरि)

दादू विषय विकार सौं, जब लग मन रात्ता।
तब लग चिति न आवई, त्रिभुवन पति दात्ता॥६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! जैसे किसी चीटीं के मुख में नमक की कंकरी होवै और वह मिश्री की कंकरी को भी देख कर खाने को ललचाती है । परन्तु अज्ञानतावश जब तक वह चीटीं नमक की कंकरी को नहीं त्यागती है, तब तक मिश्री का रसास्वादन कैसे कर सकती है ? इसी प्रकार सतगुरू उपदेश करते हैं कि जब तक यह मन विषय और विकारों में सलग्न रहता है, तब तक तीनों लोकों के पति जो परमेश्वर हैं, उनके पवित्र नाम स्मरण में यह मन एकाग्र नहीं हो सकता । इसलिए अपने मन को उन सब से हटा कर, अपने अन्तःकरण में ही परमेश्वर के स्मरण में सलग्न करके, परमात्मास्वरूप बनाओ ।

(विरह-जिज्ञासा)

दादू क्या जाणों कब होइगा, हरि सुमिरण इक तार।
क्या जाणों कब छाड़ि है, यहु मन विषै विकार ॥६७॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! तुम्हारा यह चंचल मन, न मालूम कब विषय विकारों को त्यागेगा, और हरि स्मरण में कब एक रस होगा । क्योंकि प्रथम तो मनुष्य जीवन ही दुर्लभ है और मनुष्य जन्म मिला, तो यह मन्द बुद्धि मन, विषयों में आसक्त हो रहा है । वे विषय अनन्त हैं । इसलिए विषयों से छुटकारा पाने की, इसकी कोई भी आशा नहीं है ।

है सो सुमिरण होता नहीं, नहीं सो कीजै काम ।
दादू यहु तन यूँ गया, क्युँ कर पइये राम ॥६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! 'है' कहिए परमेश्वर सत्‌चित् आनन्द, हस्थि भांति प्रिय रूप है । उसका तो बहिर्मुख स्मरण करते नहीं और जो माया, माया का कार्य संसार वास्तविक विचार कर देखिए, तो यह सत्य है नहीं, क्योंकि मध्यस्थ है, अर्थात् मिथ्या है । परन्तु अज्ञानी जीव इन ही संसार के मिथ्या कामों में आसक्त रहता हैं । इस प्रकार यह मनुष्य देह व्यर्थ ही विषय वासनाओं में जा रही है । उन अज्ञानियों को आत्मास्वरूप राम की प्राप्ति कैसे होगी ? वह संसार में जन्म मरण के चक्र में ही भटकते रहेगें ।

(स्मरण नाम महिमा महात्म्य)

दादू राम नाम निज मोहनी, जिन मोहे करतार ।
सुर नर शकंर मुनि जना, ब्रह्मा सृष्टि विचार ॥६९॥

दादू राम नाम निज औसधी, काटै कोटि विकार ।
विषम व्याधि थैं ऊबरैं, काया कन्चन सार ॥७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम स्मरण मन को निग्रह करने का अति उत्तम साधन है, राम नाम के स्मरण से परमेश्वर प्रसन्न होते हैं । इसलिए राम नाम की महिमा अपार है । राम नाम के स्मरण से सुर, देवता, नारद आदि, सृष्टि रचयिता ब्रह्मा, शंकर महाराज, मुनिजन, इन सब से आदि लेकर, राम नाम के प्रभाव से सभी मोहित हो जाते हैं । तथा इस नाम की महिमा सभी देवगण और मुनिजन गाते गाते थक रहे हैं । किसी ने भी राम के नाम तथा राम के स्वरूप का अन्त नहीं पाया है । इसी से यह राम नाम अति मोहनी मंत्र है । इसकी प्रत्यक्ष महिमा देखो कि 'राम नाम निज औषधि' कहिए, राम नाम मन के अज्ञान आदि सम्पूर्ण रोगों की दवा है । और फिर जन्म जन्मान्तरों के विषय वासना रूपी रोगों को भी दूर करती है । और शरीर में जीव बुद्धि को भी नाम का स्मरण, स्वर्ण के समान शुद्ध बना देता है । फिर जन्म-मरण रूप 'विषम' कहिए, कठिन व्याधि से भी जीवात्मा को मुक्त कर देता है ।

दादू निरबिकार निज नांव ले, जीवन इहै उपाय ।
दादू कृत्तम काल है, ताकै निकट न जाइ ॥ ७१ ॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! परमेश्वर निराकार, निर्गुण स्वरूप है । इसलिए निष्काम वृत्ति से प्रभु का नाम स्मरण करो । अथवा परमेश्वर के नाम को मन के विषय विकारों को हटा कर लेना चाहिये । मनुष्य जन्म को सार्थक बनाने का यही एक श्रेष्ठ साधन है । 'कृत्तम' कहिए पूर्व जन्मकृत या मायाकृत जो ब्रह्म लोक पर्यन्त माया की विभूति है, वह जिज्ञासुजनों के लिए काल रूप है और नासवान है । इसलिए उन जिज्ञासुओं को मायावी पदार्थों की तनिक मात्र भी इच्छा नहीं करनी चाहिए । किन्तु सम्पूर्ण माया प्रपंच परमेश्वर के भजन के विरोधी हैं ।

(स्मरण)

मन पवना गहि सुरति सों, दादू पावैं स्वाद ।
सुमिरन माँहि सुख घणा, छाड़ि देहु बकवाद ॥७२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! 'श्वांस' कहिए मन की वृत्ति को राम नाम में एकाग्र करके, मन को वश में करना चाहिये । मन, सुरति और श्वास इन तीनों को एकाग्र करके, राम नाम का स्मरण करो । इसी से

जिज्ञासु परमानन्द का आस्वादन लेते हैं। क्योंकि राम नाम के स्मरण में ही सुख है। इसलिए सम्पूर्ण बकवाद' कहिए माया प्रपंचों को त्याग करके, एक राम नाम में ही, मन को एकाग्र करो।

(माया प्रपंच का त्याग)

नाम सपिड़ा लीजिए, प्रेम भगति गुण गाइ।
दादू सुमिरण प्रीती सौं, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के नाम को बिरह पूर्वक लेना चाहिए और प्रेम व श्रद्धा से प्रभु के गुणानवाद गाओ। अपनी जिह्वा से प्रभु के नाम के बिना और कोई भी नाम नहीं लेना चाहिए। इसलिए अन्तःकरण की प्रीति से, प्रभु का स्मरण कीजिए और प्रेमपूर्वक उसी में अपने मन को लगाओ।

(लय लगाने की विधि)

प्राण कवल मुख राम कहि, मन पवना मुख राम।
दादू सुरति मुख राम कहि, ब्रह्म सुन्य निज ठाम ॥७४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! अपने प्राण, मन और सुरति यह सब सदैव ब्रह्म की ओर लगे रहें। सो ब्रह्म कैसा है ? वह ब्रह्मशून्य कहिए निरविकार और सत्‌चित् आनन्द धन, जहां माया भी पाखंड और प्रपंच का उसमें अत्यन्त अभाव है। ऐसा जो ब्रह्म है वह जिज्ञासुजनों का आत्मस्वरूप ही है। इसलिए प्रतिक्षण में उसी का स्मरण करना चाहिए।

दादू कहतां सुणातां राम कहि, लेतां देतां राम।
खातां पीतां राम कहि, आत्म कवल विश्राम ॥७५॥

टीका :- सतगुरू महाराज आज्ञा करते हैं कि जिज्ञासुजनों को राम नाम का आधार रख करके ही, मन, वाणी शरीर का सम्पूर्ण व्यवहार करना चाहिए। आत्म आनन्द को अनुभव करने का, यही एक एक उत्तम साधन है।

ज्यूं जल [illegible] पैसे दूध में, ज्यूँ पाणी में लूंण।
अैसे आत्मराम सूं, मन हठ साधै कोंण ॥ ७६ ॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! जैसे जल दूध में मिलकर, दूध रूप होता है और जल में नमक मिलकर, नमक जल रूप हो जाता है। ऐसे परमेश्वर की भक्ति करके परमेश्वर रूप हो जाते हैं। ऐसे सँतों के समक्ष में यह बिचारा मन क्या हठ करेगा ? अर्थात् संतों के अतिरिक्त, इस मन को और कोई भी जीत नहीं पाते । सतगुरू से जिज्ञासु कहता है कि हे गुरूदेव ! दूध और जल, जल और नमक की तरह, परमेश्वर में एक रूप होने वाले कौन हैं ? उत्तर :- हे जिज्ञासु ! जो मन का हठ पूर्वक निग्रह करते हैं, वही जिज्ञासु परमात्मा से मिलकर एक रूप हो जाते हैं।

दादू राम नाम में पैसकर, राम नाम ल्यौ लाइ।
यहु इकंत त्रिय लोक में, अनत काहे कौं जाइ ॥७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम में 'पैसकर' कहिए, आप अपने मन को स्थिर करो और राम नाम का ही स्मरण करो। यही तीनों लोकों में एकान्त स्थान है। और कहीं भी जाओगे वहां सब जगह अन्तराय पड़ेगा। इसलिए राम नाम को छोड़कर, दूसरी जगह और दूसरे साधनों में कभी मत जाओ। अथवा एकान्त कहिए सब मायावी प्रपंच का माया सहित, एक व्यापक राम में ही अन्त करो, विचार के द्वारा। यही एकान्त है।

दोहा :- गये भाजि वशिष्ठ जी, छोड़ यह ब्रह्मंड।
रची कुटि संकल्प की, बांध हिरदै बिन भंड ॥७७॥

दृष्टान्त :- एक रोज वशिष्ठ ऋषि ने विचार किया कि एकान्त में भजन करें। तब आकाश में संकल्प की कुटिया बनाई। उसमें बैठ कर भजन करने लगे। जब वह भ्रमण करने को गए। पीछे से एक मुनि एकान्त स्थान देखता हुआ आया। उसे यह कुटिया मिल गई। वह उसमें बैठ कर ध्यान करने लगा। वापिस आ कर वशिष्ठ जी बोले :- यह कुटिया मेरी है, मैंने अपने संकल्प से बनाई है। दूसरा मुनि कहता है :- मेरी कुटिया है, मेरे संकल्प से मिली है। दोनों में वाद-विवाद हुआ। दोनों ब्रह्मा जी के पास पहुंचे। पिता को प्रणाम किया। पूर्वोक्त सब कह सुनाया। ब्रह्मा जी बोले :- पुत्रो ! एकान्त तो अपना हृदय है, उसमें राम नाम की गुफा बना कर और राम नाम का स्मरण करो, यही त्रिलोकी में एकान्त है। दोनों को ज्ञान हो गया । पिता को नमस्कार करके चल पड़े।

दोहा :- जगजीवन आंबेर में, भवँरे कुए जाइ ।
भजन करतभ रियो नही, गुरू दादू समझाइ ॥७७॥

दृष्टान्त:- ब्रह्मऋषि दादू दयाल आमेर में विराजते थे । उनके शिष्य पण्डित जगजीवन राम जी भजन करने के लिए, एकान्त में जहां परियों का बाग है उस बाग में सीढियों से कुएं में उतर कर और कुएं को गुफा में जा बैठे । भजन करने लगे । वर्षाकाल के दिन थे । सबके कुएं पानी से भर गए । वह कुआं नहीं भरा । कुएं का मालिक कुएं को देखकर मन में बहुत दुखी रहता था कि मेरा कुआं पानी से नहीं भरता है क्या बात है ? एक रोज उसने ऊपर से देखा तो अन्दर महाराज, जगजीवन राम जी बिराज रहे हैं । उस कुए के मालिक ने गुरूदेव के सामने आकर प्रणाम किया । बोला :- आपके शिष्य मेरे कुएं मे बैठें हैं । सबके कुएं पानी से भर गए हैं, मेरा कुआं खाली पड़ा है । गुरूदेव ने संतो को भेजा और बोलेः-उनको बुला लाओ । आते ही महाराज को प्रणाम किया । राम जी आप इस बिचारे गरीब के अन्तराय करने को, आप कुए में क्यों जा बैठे ? महाराज एकान्त देख कर भजन करने के लिए बैठा था । तभी ब्रह्मऋषि ने उपरोक्त साखी से उपदेश किया:- "जगजीवन जी राम नाम की गुफा बना लो और राम नाम की लय लगाओ यही एकान्त है त्रिलोकी में ।" ज्ञान के द्वारा राम के स्वरूप में ही माया और माया का कार्य प्रपंच, इन सबका अन्त होता है । इसी को एकान्त कहते हैं । जगजीवन जी ने गुरूदेव के चरणों में नत मस्तक होकर, वैसा ही किया ।

(मध्य मार्ग)

ना घर भला न बन भला, जहाँ नहीं निज नाँव ।
दादू उनमनी मन रहै, भला त सोई ठाँव ॥७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! 'न तो घर ही भला है' अर्थात् प्रवृति मार्ग, और 'न बन ही भला है' साधुओं का निवृत्ति मार्ग, जहां कि अपने हृदय में प्रभु का नाम नहीं है । जहां यह मन विषयों से उदासीन होकर भगवत् भजन में एकाग्र रहता है, वही स्थान सर्वो उत्तम है । अर्थात् जिज्ञासुओं को घर का अभिमान कहिए गृहस्थ आश्रम का अभिमान और बन का कहिए मैं तपस्वी हूं, मैं साधु हूं, बन में रहता हूं, यह अभिमान करना, योग्य नहीं है । दोनों को ही अभिमान छोड़कर, प्रभु का स्मरण करें, तो उनके लिए वही स्थान ठीक हैं ।

(निर्गुण नाम महिमा महात्तम)

दादू निर्गुणं नामं मई, हृदय भाव प्रवर्त्तितम् ।
भरमं करमं कलिविषं, माया मोहं कंपितम् ॥७९॥
कालं जालं सो चितम भयानक जम, किंकरम ।
हरिखं मुदितं सतगुरं, दादू अविगत दर्शनम ॥८०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निराकार प्रभु का नाम ही स्वरूप है । इसलिए राम नाम में अपने मन को एकाग्र करके, हृदय में प्रति क्षण राम नाम का ही जाप करो । इस जाप से भ्रम कर्म इत्यादि और कलियुग के सम्पूर्ण पाप तथा माया और मोह भयभीत हो जावेंगे, कहिए डर जावेंगे । नाम स्मरण के प्रभाव से काल के जाल का भी नाश होवेगा और यम के दूत भी भयभीत होंगे ।

यदि सभी को भय 'कहिए' डर उत्पन्न हो गया तो फिर भजन का क्या फल हुआ ? सतगुरू उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! मोक्ष मार्ग की सफलता में सतगुरू तो प्रसन्न होंगे कि हमारा उपदेश आज सफल हो गया, क्योंकि शिष्य को परमात्मा का दर्शन हो गया है और परमेश्वर भी अति मोद को प्राप्त होगें कि आज मेरे अंश भूत जीवात्मा ने अपने शुद्ध सत्स्वरूप को पहचान लिया है । इस अनन्य भक्ति के बिना और किसी भी साधन की गम्य नहीं है ।

(भगवत् दर्शन का अनुपम महात्म्य)

दादू सब सुख स्वर्ग पयाल के, तोल तराजू बाहि ।
हरि सुख एकै पलक का, ता समि कह्या न जाइ ॥८१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! क्षण भर हरि का भजन करने से, जो अनुपम सुख मिलता है, उसकी तुलना में स्वर्ग और पाताल के संपूर्ण वैभवों को, विचार रुपी तराजू में रखकर, विवेक से निश्चय किया, तो स्वर्ग आदि के वैभव का सुख राम नाम के, एक पल स्मरण के सुख की बराबर नहीं होता । इसलिए राम नाम की महिमा अपार है ।

दोहा :- सात स्वर्ग अपबर्ग सुख, धरिये तुला इक अगं ।
तुलै न ताहि सकल मिल, जो सुख लव सतसगं ॥८१॥

दोहा :- विश्वामित्र वशिष्ट कै, अड़वी पड़ी विशेष।
शिव ब्रह्मा हरि पच रहै, न्याव नवेड़्यो शेष ॥८१॥

दृष्टांत :- विश्वामित्र मुनि का अपर नाम था कोशिक । वे जमनिया (बनारस के पास) के राजा थे । एक समय वे सेना के सहित दौरा करते हुए, वशिष्ठ ऋषि की कुटिया पर पहुंच गए । ऋषि को जाकर नमस्कार किया । ऋषि बोले :- राजन ! आज यहीं विश्राम करो । महाराज वशिष्ठ ने इनकी सेवा के लिए स्वर्ग से कामधेनु गऊ को बुलाया । गऊ ने आकर ऋषि को प्रणाम किया । ऋषि बोले :- आज, राजा और राजा की सेना के लिए मन इच्छा पदार्थ रच दो । राजा ने अपनी सेना के सहित ऐसा सुख भोगा जो स्वर्ग में भी दुर्लभ है। कामधेनु अपनी कला समेट कर सुबह खड़ी हो गई । राजा ने पूछा :- ऋषि राज रात को अदभुत लीला कहाँ से रच दी? ऋषि :- कामधेनु ने आपकी सेवा की है । राजा बोला :-यह गऊ मुझे दे दो । ऋषि :- हमारी नहीं है, पंचायत की है और स्वर्ग में रहती है, हम नहीं दे सकते । राजा :- जबरदस्ती ले जाऊंगा । ऋषि :- जैसी इच्छा हो करो। राजा ने गऊ को खोलने का आदेश दिया । गऊ ने दस प्रकार की मलेच्छ सेना, मय हथियारों की रच ली । भारी युद्ध हुआ । राजा राज छोडकर, तप करने चले गए । सेना खतम हो गई । कामधेनु ने अपनी सेना को देशान्तरों में भेज दिया और स्वर्ग में चली गई । विश्वामित्र ने तप करके अस्त्र शस्त्र विद्या शंकर आदि से सीखी । फिर आकर वशिष्ठ के ऊपर आक्रमण किया । वशिष्ठ ने ब्रह्म डंड पर सब अस्त्र शस्त्रों का प्रहार झेल लिया । विश्वामित्र शस्त्र फैंक कर, ब्रह्मा की तपस्या, ब्रह्मऋषि बनने के लिए करने लगे । ब्रह्मा बोले :- वशिष्ट ब्रह्मऋषि कहेंगे, तों तुम ब्रह्मऋषि बन जाओगे । विश्वामित्र आए । वशिष्ट जी बोले आइए राजऋषि ! विश्वामित्र ने उनके एक लड़के को मार दिया । इसी क्रम से ९९ दिन में ९९ पुत्र वशिष्ठ के मार दिए । रात को वशिष्ठ की कुटिया के पीछे विश्वामित्र बात सुनने के लिए बैठे । वशिष्ठ जी की पतिव्रता स्त्री अरूणदती देवी वशिष्ठ से बोली :- हे नाथ ! आपके ९९ पुत्र मार दिए और एक और है, उसे भी सुबह विश्वामित्र मार देगा । आप उन्हें ब्रह्मऋषि क्यों नहीं कहते ? वशिष्ठ बोले :- हे प्रिय ! विश्वामित्र की तपस्या का प्रकाश त्रिलोकी में ऐसा हो रहा है जैसा कि आज शरद पूनम के चन्द्रमा का । उसने पुत्र नहीं मारे । विश्वामित्र ने यह सुना और गदगद् हो गया । तलवार को फैंक दिया । वशिष्ठ के सामने आया । वशिष्ठ बोले :- आओ ब्रह्मऋषि । विश्वामित्र :- आज मैं ब्रह्मऋषि कैसे बना ? वशिष्ठ :- जब राजा रूप में आप आये थे और एक पल हमारा सतसंग किया था, उसका असर आज आप पर आ गया है । विश्वामित्र :- नहीं, मैं तपस्या से ब्रह्मऋषि बना हूं । विश्वामित्र बोले :- चलो ब्रह्मा के पास । ब्रह्मा ने देखा कि यह मामला जटिल है । बोले चलो शंकर जी के पास। शंकर जी ने देखा :- यह सुलझना कठिन है, चलो भगवान विष्णु के पास । भगवान विष्णु ने देखा कि मामला बहुत बड़ा है। सभी को लेकर पाताल में शेष जी के पास पहुंचे । शेष जी बोले :- तपस्या बड़ी है तो आप तपबल से इस पृथ्वो का उठा लो । पृथ्वो नहीं उठी । वशिष्ठ से बोले आप उठाइये । वशिष्ठ बोले :- बड़े छोटे का मतलब

नहीं है । हमारा तो कहना है कि पल मात्र के सत्संग का असर इन पर पड़ गया और ये ब्रह्मऋषि बन गए । शेष जी बोले :- वशिष्ठ के उपदेश का आप स्मरण करके पृथ्वी उठाइये । ज्यों ही मन इन्द्रियों को हृदय में खेंच कर विश्वामित्र ने वशिष्ठ के उपदेश का स्मरण किया, पृथ्वी अधर हो गई । दोनों का फैसला हो गया और राम नाम की जय बोलते हुए, सब देवता अपने अपने लोक को प्रस्थान कर गये । यही राम नाम की महिमा और महात्म्य है ।

(स्मरण नाम पारिख लक्षण)

दादू राम नाम सब को कहै, कहिबे बहुत विवेक ।
एक अनेकौं फिर मिलै, एक समाना एक ॥८२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम सभी कोई स्मरण करते हैं परन्तु राम नाम का स्मरण करने में बहुत भेद है । क्योंकि कोई तो अनेक विषयों को भोगते हुए, राम नाम का स्मरण करते हैं और कई अनेक देवी देवताओं की आराधना करते हुए, भक्त पीपा जी की भांति, राम नाम का स्मरण करते हैं । कई जिज्ञासु अनेक जन्मों में धीरे धीरे निष्काम स्मरण करते हुए, अन्तःकरण को शुद्ध करके, परमेश्यर में मिलते हैं और कोई जिज्ञासु गुरू कृपा और ईश्वर कृपा से दृढ अभ्यास द्वारा, एक ही जन्म में, प्रभु के स्वरूप में अभेद हो जाते हैं ।

((स्थूल रीति से राम नाम स्मरण में भेद)

दादू अपणी अपणी हद मैं, सब कोइ लेवै नाम ।
जे लागे बेहद सौं, तिन की मैं बलि जाउं ॥८३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'हद' कहिए मर्यादा, सीमा, यह सब बुद्धि के भेद से अनेक प्रकार की है, जैसे :- देवता आदि का इष्ट और फलाफल की इच्छा, समय का विचार, इष्ट उपासना मत मतान्तरों के भेद, भाषा का भेद, इस प्रकार राम नाम के स्मरण में नाना प्रकार के भेद हैं । तात्पर्य यह है कि इन नाना मर्यादाओं में बंध करके, तो सभी पुरुष राम नाम का स्मरण करते हैं । परन्तु जो जिज्ञासु इन सब मर्यादाओं में बंध करके, तो सभी पुरुष राम नाम का स्मरण करते हैं । परन्तु जो जिज्ञासु इन सब मर्यादा कहिए हदों को संकल्पमात्र समझ कर, निष्काम बुद्धि से प्रभु का स्मरण करते हैं, उन्हों की हम बलिहारी जाते हैं । और यहां यह भी स्पष्ट होता है कि यह सब कामनाएं हैं, जो साकार ईश्वर में ही बनती हैं, निराकार में नहीं । यही युक्ति युक्त बात है । कई पुरुष सकाम भावना से साकार ईश्बर की ही उपासना करते हैं किन्तु जो जिज्ञासुजन निष्काम भाव से निराकार प्रभु का चिन्तन करते हैं उन्हीं के हम सदके जाते हैं ।

(स्मरण नाम अगाधता)

कौण पटंतर दीजिये, दूजा नांही कोइ ।
राम सरीखा राम है, सुमिर्‌यां ही सुख होइ ॥८४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम की महिमा प्रगट करने के लिए किसकी उपमा देवें, क्योंकि राम के सिवाय ऐसा तत्वस्वरूप और दूसरा कोई भी नहीं हैं । राम के नाम के समान तो स्वयं राम ही है और दूसरा कोई है ही नहीं । इसलिए उसके स्मरण मात्र से ही आत्मानन्द की प्राप्ति होती है । क्योंकि जो पुरुष राम की अनन्य शरण होकर, राम का भजन करते हैं, उनको किस की उपमा देवें । क्योंकि ऐसे भक्त के समान तो कोई दूसरा है ही नहीं । राम के भक्त तो राम के समान राम रूप ही हैं -

अपणी जाणै आप गति, और न जाणैं कोइ ।
सुमरि सुमरि रस पीजिये, दादू आनन्द होइ ॥८५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम और राम के भक्त अपनी महिमा को आप ही जानते हैं । अर्थात् राम भक्तों की महिमा जानते हैं और भक्त राम की महिमा जानते हैं। दूसरा कहिए, बहिर्मुख सांसारिक प्राणी कोई भी नहीं जानते । इसलिए हे मुमुक्षुजनों ! अनन्त भक्त की भांति आप भी राम नाम का स्मरण करके, राम रस रूपी अमृत का पान करो । इसी से आत्मास्वरूप आनन्द की प्राप्ति होवेगी ।

पुरान (नाम अगाधता)

दादू सबहि वेद पढ़ि, नेटि नाउं निरधार ।
सब कुछ इन ही मांहि है, क्या करिये बिसतार ॥८६॥

टीका :- सतगुरू महाराज उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! सारे वेद और सारे ही पुराण और भी धर्म शास्त्र आदि सब पढ़ने के बाद भी, अन्त में राम नाम का ही आसरा लेते हैं । अर्थात् मल विक्षेप, आवरण इन तीनों दोषों का राम नाम के स्मरण से ही नाश होता है । और हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण ज्ञान और ध्यान यह राम नाम के स्मरण में ही है । इसलिए अब हम राम नाम की इससे अधिक क्या महिमा कहैं ?

दोहा :- बृहस्पित गुरू पै इन्द्र पढ़, गर्व भयो मन माहिं ।
समुद्र कुम्ब अरू सीक ज्यूँ, किंचित तैंने पाहिं ॥८६॥

दृष्टान्त :- एक रोज देव गुरू बृहस्पति जी महाराज, स्वर्ग में इन्द्र के पास गए । गुरू को देखकर इन्द्र न तो उठा और न प्रणाम किया । गुरूदेव जान गए कि इसको विद्या का अहंकार आ गया । तब बोले :- इन्द्र एक समुद्र से पानी का घड़ा भर कर मंगाओ । मंगा लिया । एक सींख भी मंगाओ । सींख आ गई । देव गुरू सींख हाथ में लेकर घड़े में डुबोई । एक पानी की बूंद अपने अंगूठे के नाखून पर रखी और बोले, हे इन्द्र ! समुद्र की तरह तो विद्या का सागर है और जितना इस घड़े में पानी है, उतनी विद्या मैंने ग्रहण की है । और एक बून्द जल की यह नाखून पर है इतनी विद्या का दान, मैंने तुम्हें दिया है । आप इतने अहंकार में बैठे हो ? यह अहंकार तो आपको नीचे गिराने वाला है । इन्द्र सुनते ही अहंकार रहित होकर, गुरूदेव के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा याचना की । और बोला, हे गुरूदेव ! आपके वचन सत्य हैं । गुरूदेव अपने शिष्यों में अहंकार नहीं रहने देते हैं, और फिर राम नाम के स्मरण का उपदेश करते हैं ।

पढि पढि थाके पंडिता, किनहूं न पाया पार ।
कथि कथि थाके मुनि जना, दादू नाम आधार ॥८७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शास्त्रों के मर्म को जानने वाले, कितने ही पंडित कहिए, विद्वान थक गए हैं । किन्तु किसी ने भी शास्त्र आदि या शास्त्र प्रतिपाद्य परमेश्वर का पार नहीं पाया है और मुनिजन भी शास्त्रों का मनन करते करते थक गए हैं । परन्तु प्रभु की सत्ता कहिए, सामर्थ्य का किसी ने भी पार नहीं पाया है । अधिक क्या महिमा कहैं ? जीव आत्मा का तो, एक राम नाम का स्मरण ही आधार है ।

दोहा :- मिश्र कथा कहतै करी, रट्यो वार को वार ।
नाम का निश्चय धार कर, भई गुजरी पार ॥८७॥

दृष्टान्त :- जमुना किनारे, एक पंडित कथा बांचते थे । एक गूजरी जमुना के परले किनारे रहती थी । वह दूध लेकर रोज मथुरा में बेचने आती । एक रोज जहां कथा हो रही थी, वहां खड़ी हो गई और सुना कि राम नाम, संसार समुद्र से पार कर देता है । गूजरी ने देखा, जब राम नाम समुद्र से पार कर देता है, तो

नदी तो बहुत छोटी है। इससे पार होने में तो कोई संशय नहीं है। तब तो गूजरी यह विचार करती करती, जमुना के किनारे किनारे अपने गांव के सामने जा पहुंचीं और राम राम कहती कहती, जल के ऊपर पांव रखती हुई परले किनारे पहुंच गई और बहुत राजी हुई । विचार किया कि उस पण्डित की कथा अगर मैं पहले सुन लेती, तो नौका वालों को इतने पैसे आने जाने के क्यों देती ? खैर ! अब भी आगे को पैसे तो बच गए मेरे। कल पण्डित जी को लाऊंगी और उनको खीर का भोजन कराऊंगी। दूसरे रोज दूध लेकर, राम राम कहती हुई, जल के ऊपर होकर, सीधी मथुरा में आ गई। पण्डित जी के पास गई और बोली:-महाराज मैं दूध देकर आती हूं, आप कथा से निपट लो, फिर मेरे साथ चलना। आपको आज मैं खीर का भोजन कराऊंगी। पण्डित जी ने कहा:-ठीक है। दूध देकर वापिस आई। पण्डित जी को साथ में लेकर गांव की सीध में जमुना के किनारे किनारे चल पड़ी। पण्डित जी बोले :-माता इधर कहाँ चलती है, नौका का घाट तो पीछे रह गया। माता बोली:-महाराज! अपन को नौका घाट से क्या मतलब है? पण्डित जी ने जाना, इसके गांव की सीध में थोड़ा पानी होगा। पण्डित जी तो यह विचार करते रहे और गूजरी राम नाम कहती जमुना पार हो गई। और पीछे फिर कर देखा गूजरी ने, कि पंडित जी तो दूसरे किनारे ही खड़े हैं। गूजरी ने आवाज दी--'महाराज ! आ जावो।' पण्डित जी बोले--आए। पण्डित जी ने धोती ऊंची चढा ली और पानी में उतरे। गड़प से कमर तक पानी आ गया। पण्डित जी बाहर निकल आए। गूजरी बोली :- महाराज ! आ जाओ। पण्डित बोला :- रांड मारने को लाई है, या खीर खिलाने को ? यहां तो पानी बहुत गहरा है। गूजरी बोली :-आप कहते थे, राम नाम के स्मरण से समुद्र से पार हो जाते हैं। यह तो छोटी नदी है, इससे पार होने में क्या संदेह है ? पण्डित जी बोले :- वह तो कहने की बात थी। तो कहा, महाराज खीर वही खाएगा, जो मेरी तरह पार आ जाएगा। आपको राम नाम का निश्चय नहीं है।

जिनको नाम का आधार है, वही संसार समुद्र से पार होते हैं।

निगम हि अगम बिचारिये, तऊ पार न पावै।
ताथैं सेवग क्या करै, सुमिरण ल्यौ लावै ॥८८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! निश्चय ही चारों वेद और छह शास्त्र, और भी ईश्वर की महिमा करने वाले, जितने भी धर्म ग्रन्थ हैं, उन सबका चाहे जितना यत्नपूर्वक विचार कहिए, पठन पाठन करें, फिर भी उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर का किसी ने पार नहीं पाया है। ईश्वर की महिमा इतनी अगम अगाध है, तो हे गुरूदेव ! उसको जानने के लिए सेवक का क्या कर्त्तव्य है ? उत्तर :- नाम स्मरण में ही एकाग्र रहो।

(कथनि बिना करणी)

दादू अलिफ एक अल्लाह का, जे पढ़ि जाणै कोइ।
कुरान कतेबां इलम सब, पढि कर पूरा होइ ॥८९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यदि कोई पुरूष श्रद्धापूर्वक प्रभु का स्मरण कर सके, तो अल्लाह कहिए सर्वव्यापक राम का, 'अलिफ' एक यह नाम ही आत्म कल्याण के लिए पर्याप्त है। शेष जो कुरान कतेब आदि तो इलम नाम व्यापार है। अर्थात् सुनने सुनाने मात्र का है और कुरान कतेब आदि में परमेश्वर का जो नाम है, उसको पढ़ने से ही शिष्य के कर्त्तव्य पूर्ण हो जाते हैं। परन्तु अल्लाह का किसी ने भी पार कहिए, अन्त नहीं पाया है। इसलिए आत्म कल्याण के लिए एक नाम स्मरण का ही आधार है।

दादू यहु तन पिंजरा, मांही मन सूवा।
एकै नाम अलह का, पढि हाफिज हूवा ॥९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारा यह मनुष्य शरीर तो पिंजरा है, और यह मन जो है, इसमें तोता है। यह तोता अल्लह का जो एक नाम अलिफ है, उसको पढ़ करके, हाफिज कहिए आत्मज्ञानी हुआ है। इसलिए हम अब मायावी सुवे और पिंजरे का क्या करें।

दोहा :- गुरू दादू अकबर मिले, कही सुवो ले जाह।
हमरे संग तो आप हैं, सुनो अकबर शाह ॥९०॥

दृष्टांत :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज आमेर में विराजते थे। आमेर के राजा भगवत्दास के द्वारा अकबर ने गुरूदेव को दर्शनों के लिए सिकरी बुलाया। सिकरी में ब्रह्मऋषि ४९ रोज बिराजे। नौ प्रश्न अकबर ने किए और ४० प्रश्न विद्यापति बीरबल ने गुरूदेव से किए। यथायोग्य सभी प्रश्नों का ब्रह्मऋषि ने समाधान किया। जब बादशाह अकबर और विद्यापति बीरबल का दादू दयाल में पूर्ण दृढ़ विश्वास हो गया और यह जान लिया कि यह निरपेक्ष परमात्मा को बताने वाले, सच्चे महापुरुष हैं। तो अकबर और बीरबल ने ब्रह्मऋषि को गुरू स्वीकार कर लिया। अकबर बोला :-

दोहा :- दादू नूर अल्लाह है, दादू नूर खुदाय।
दादू मेरा पीर है, कहै अकबर सहाय ॥

जब ब्रह्मऋषि अपने उपदेशों से गऊवध बन्द कराया और हिन्दू मुस्लिम की विषमता, अकबर के दिल से दूर कर दी, तब अकबर हिन्दू और मुसलमानों को ईश्वर के पुत्र समझने लगा और सबके साथ समान व्यवहार करने लगा। अकबर ने दादू दयाल जी महाराज का अद्वैत लक्ष प्राप्त करके, दीन इलाही मजहब भी फिर निकला। इस प्रकार ब्रह्मऋषि अद्वैत तत्व के उपदेश देकर, जब चलने लगे सिकरी से, तब अकबर के दरबार से बादशाह की आज्ञानुसार, बीरबल अर्शाफियों के थाल ब्रह्मऋषि के समक्ष लाकर भेंट रखे। ब्रह्मऋषि बोले :-

ना लें हम, ना ले कोई चेला चाटी।
तुम राजा हम अतीत, देहू विप्रन को बाटीं॥

यह कह कर सम्पूर्ण अर्शाफियां ब्राह्मणों को बंटवा दी और जब चलने लगे तब बादशाह अकबर एक सुवा सोने के पिंजरे में सम्पूर्ण कुरान पढ़ा हुआ था, जो बादशाह को कुरान सुनाता था, उस तोते सहित पिंजरे को ब्रह्मऋषि को लाकर नजर किया और कहा :- महाराज इसे ले जाइये। इस तोते को कुरान शरीफ याद है। तब महाराज ने उत्तर में पूर्वोक्त ९०वीं साखो से उपदेश करके, सिकरी से रवाना हो गए। बादशाह अकबर बीरबल आदिक ब्रह्मऋषि के चरणों में नमस्कार कर, उनके चरणों की रज मस्तक पर चढ़ाई और दाढ़ी के लगाई।

(स्मरण नाम पारख लक्षण)

नाम लिया तब जाणिए, जे तन मन रहै समाइ।
आदि अंत मधि एक रस, कबंहू भूलिन जाइ ॥९१॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! प्रभु का नाम स्मरण करना तब ही सफल समझो, जब कि शरीर की सम्पूर्ण क्रियाएं और मन की सम्पूर्ण वासनाएं एक परमात्मा में ही लीन हो जायें। तथा जगत् का आदि, मध्य और अन्त में सदा रस रहने वाला, परमेश्वर का ध्यान चित्त से कभी भी नहीं हटै।

(विरह पतिव्रत)

दादू एकै दशा अनन्य की, दूजी दसा न जाइ।
आपा भूलै आन सब, एकै रहै समाइ ॥९२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो परमेश्वर का अनन्त भक्त है उसकी एक ही दशा कहिए, एक निष्ठा परमेश्वर में ही बनी रहती है। और दूसरे जो मायावी प्रपंच हैं, उनमें किंचित भी आसक्ति नहीं रखता है। ऐसा कोई

बिरला परमेश्वर का अनन्य भक्त है। वह अपने मन के मिथ्या अभिमान और बाह्य सम्पूर्ण प्रपंच भूलकर, परमेश्वर में ही एक रस रहता है।

(स्मरण बिनती)

दादू पीवै एक रस, बिसरि जाइ सब और।
अविगति यहु गति कीजिये, मन राखो इहि ठौर ॥९४॥

आतम चेतन कीजिए, प्रेम रस पीवै।
दादू भुलै देह गुण, ऐसैं जन जीवै ॥९३॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू महाराज जिज्ञासुओं के आतम कल्याण के लिये, परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभु! समस्त सांसारिक जनों का जो मन सम्पूर्ण विषय विकारों में व्याप्त हो रहा है, यह इन पदार्थों को भूल कर, अब केवल एक आपके ही नाम स्मरण का रस पान करै। हे प्रभु! इन जिज्ञासुओं की ऐसी सद् बुद्धि करो कि ये मानव सम्पूर्ण विषय विकारों से विरक्त होकर, आपके नाम स्मरण में ही एकाग्र बने रहैं। हे परमात्मन्! आतमा कहिए इस मन को चेतन्य अन्तर्मुख बनाइये, जिससे कि यह मन परब्रह्म के प्रेम का आस्वादन करै। इस प्रकार ब्रह्मऋषि उपदेश करते हैं कि जो जिज्ञासु, शरीर के सम्पूर्ण गुणों को भूल कर, परमेश्वर का स्मरण करते हैं, वही जीवनमुक्त होते हैं। और यह चेतन आत्मा ही मन और बुद्धि में प्रतिबिम्बित होकर, शरीर और इन्द्रियों में भी चेतनता प्रगट करता है। और यदि यह आत्मा देहाध्यास को त्याग कर, अन्तर्मुख हो जावे, तो विषय वासना से छुटकारा पाकर, स्वयं ही पृथक् नाम अलग हो जाएगा और शरीर को शीत, उष्ण (सर्दी, गर्मी) आदि द्वन्द्वों का तनिक भी भान नहीं होवेगा। यह जीवनमुक्त अवस्था प्राप्त होने पर, मन परब्रह्म में ही स्थिर हो जावेगा।

(स्मरण नाम अगाधता)

कहि कहि केते थाके दादू, सुणि सुणि कहु क्या लेई।
लूणि मिलै गलि पाणियां, ता सम चित्त यौं देई ॥९५॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादूदयाल महाराज उपदेश करते हैं कि कितने ही विद्वान, आतमा की व्याख्या कर करके थक गए हैं और सुन सुन करके, तो कोई ले ही क्या सकता है। हे जिज्ञासुओ! जिस प्रकार नमक जल में गल कर जलरूप हो जाता है, उसी प्रकार अपने चित्त को परमेश्वर में एकाग्र करने से, स्वस्वरूप आनन्द प्राप्त होता है। तथा ब्रह्म के प्रवचन करने से कोई ब्रह्म नहीं होता है। तो प्रवचन सुनने वालों का क्या कहना है? किन्तु आत्म साक्षात्कार तो, केवल अनुभव का ही विषय है। और आत्म साक्षात्कार हो जाता है, तब कथन और श्रवण यह दोनों ही अवस्था विलय हो जाती हैं।

दोहा :- गई पूतली लूण की, थाह सिन्धु को लेन ।
चलत चलत जल मिल गई, पलटि कहै को बैन ॥९५॥

दादू हरि रस पीवतां, रती बिलम्बन लाइ ।
बारम्बार संभालिये, मतिवै बीसरी जाइ ॥९६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! हरि की भक्ति रूपी रस पान करने में अब विलम्ब नहीं करना चाहिये । और पुनः पुनः अन्तःकरण में यह ध्यान रखै, कि कहीं मन, नाम स्मरण को भूलकर, अन्यत्र स्थान में तो नहीं जा रहा है ।

(स्मरण नाम विरह)

दादू जागत सुपना व्है गया, चितांमणि जब जाइ ।
तब ही सांचा होत है, आदि अंति उरि लाइ ॥९७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब चिन्तामणी रूप ब्रह्म तत्व की प्राप्ति हो जाती है, तो यह जागृत अवस्था फिर स्वप्नवत प्रतीत होने लगती है । अर्थात् स्वप्न अवस्था की भांति, संसारिक पदार्थ मिथ्या प्रतीत होने लगते हैं और जब जिज्ञासु राम नाम को भूल जाता है, तो वह जीवित ही मृतक तुल्य रहता है । क्योंकि जीने की सफलता तो राम नाम के स्मरण में ही है। इसलिए जन्म से मृत्यु प्रर्यन्त मन को राम के स्मरण में ही एकाग्र किए रहो ।

नांव न आवै तब दुखी, आवै सुख संतोष ।
दादू सेवग राम का, दूजा हरष न सोक ॥९८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब तक यह मानव राम नाम के स्मरण की शरण ग्रहण नहीं करता है, तब तक यह संसारिक प्राणी दुखी रहता है, और जब वह राम नाम स्मरण का आसरा लेते हैं, उस समय यह जीवात्मा सुखी और सन्तुष्ट होते हैं। जो मानव राम नाम स्मरण का सच्चा प्रेमी है, उसको हर्ष शोक आदि का कुछ भान नहीं होता ।

मिलै तो सब सुख पाइये, बिछुरे बहु दुख होइ।
दादू सुख दुख राम का, दूजा नांही कोइ ॥९९॥

टीका :- ब्रह्मऋषि उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! जब तक यह जीवात्मा परमेश्वर से विमुख रहता है, तब तक इसको नाना संसारिक कष्ट महसूस होते रहते हैं और जब परमेश्वर में एकाग्र बुद्धि होती है, तब इसको सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त हो जाता है। इसलिए यह सारा दुःख और सुख तो राम को अप्राप्ति और प्राप्ति में भक्तों को होता है। अन्य किसी भी पदार्थ में सुख और दुःख उनको नहीं व्यापता है। इसलिए परमेश्वर की प्राप्ति के लिए, राम नाम के स्मरण में एकाग्र रहो।

दादू हरि का नाम जल, मैं मीन ता मांहि।
संगि सदा आनन्द करै, बिछुरत ही मरी जांहि ॥१००॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हरि का नाम तो जलवत है और भक्तजन उसमें मछली रूप हैं। जब तक यह भक्तों का मन रूप मछली, हरि नाम रूपी जल के साथ है, तब तक सुखी रहते हैं और राम नाम स्मरण से जब उनकी मनरूपी मछली विलग होती है, तब मृतक तुल्य हो जाते हैं। जैसे मछली जल में सुख से विचरती है और जल से अलग होते ही प्राण दे देती है, ऐसे ही परमेश्वर के भक्तों को भी, राम नाम स्मरण में पतिव्रत रख कर, प्रभु का स्मरण करना चाहिए।

दादू राम बिसार कर, जीवैं किंहि आधार।
ज्यूं चातृग जल बूंद कौं, करै पुकार पुकार ॥१०१॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! राम का सच्चा भक्त, राम के स्मरण को छोड़कर, किसके आसरे जीवित रह सकता है, अर्थात् वह फिर नहीं जीवित रहता। जैसे पक्षी पपैया श्वांति नक्षत्र की जल बूंद के लिए पुकारता रहता है। जब उस नक्षत्र में पानी बरसे, उसी पानी को पपैया ग्रहण करता है। फिर उसको साल भर के लिए प्यास नहीं लगती है। पपैया का उस बूंद से पतिव्रत है, दूसरा पानी नहीं पीता। ऐसे ही हरिभक्तों का राम नाम स्मरण से पतिव्रत है। वह स्मरण को छोड़कर, किस के आसरे जीवित रहैं। अर्थात् जीवित नहीं रह सकते।

दोहा :- ऊंची जात पपैया, नंवै न नीचा नीर।
कै जांचै सुरपति ही, कै दुख सहै सरीर ॥१०१॥

दोहा :- उड़ते लाया बाण, पारधि अंग में ।
पड़ते करी संभाल, पपैया गंग में ।
लीनी चोंच उठाय, न छाड़ी टेक रै ।
हरिदास हरी जन, ऐसा कोइ एक रै ॥१०१॥

हम जीवें इहि आसरै, सुमिरण के आधार ।
दादू छिटके हाथ थैं, तो हम को वार न पार ॥१०२॥

टीका :- सतगुरू देव उपदेश करते हैं कि परमेश्वर के सम्पूर्ण भक्तों के जीवन का आधार केवल राम नाम का स्मरण ही है । और हरि भक्तों की सुरति हृदय में स्मरण से अलग हो जावे, तो इस लोक के और परलोक के तथा जन्म जन्मान्तरों के जो सुकृत कहिए, पुण्य कर्म हैं वह सभी शीतल हो जाएंगे । और वार न पार कहिए, इस दुःख रूप संसार समुद्र से परमात्मा से विमुख प्राणी पार नहीं जा सकते । अतः इस संसार दुःख से छूटकारा पाने के लिए, जिज्ञासुओं को परमेश्वर में निष्ठा रखनी चाहिए ।

(पतिव्रत निष्काम स्मरण)

दादू नाम निमित रामहि भजै, भक्ति निमित भजि सोइ ।
सेवा निमित सांई भजै, सदा सजीवन होइ ॥१०३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तुम नाम स्मरण रस को पान करना चाहते हो तो, राम का ही स्मरण करो और भक्ति चाहते हो तो, नवधा भक्ति के द्वारा भक्ति करो । और सेवा चाहते हो तो आपा, गर्व गुमान, मद मत्सरता और अहंकार इन सबको छोड़ो । हरि, गुरू, सन्त विद्वान इनके सामने गरीबी कहिए नम्रता को धारण करो, यही परमेश्वर की सेवा है । इस प्रकार कायिक, बाचिक और मानसिक तीनों प्रकार से परमेश्वर की शरण ग्रहण करो । यही जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त करने का साधन है ।

(नाम सम्पूर्णता)

दादू राम रसाइण नित चवै, हरि है हीरा साथ ।
सो धन मेरे साइयां, अलख खजाना हाथ ॥१०४॥

टीका :- सतगुरू देव से किसी बादी ने प्रश्न किया । इस साखी से उसको उत्तर दिया है । हे भाई ! राम का भजन रूपी रसायन हमारे यहां नित्य ही बनती है और हरि राम रूपी हीरा, सदा हमारे अःतकरण में

रहता है । सबका पालन करने वाला स्वामी परमेश्वर वही हमारे धन का भंडार है । और मन वाणी का अविषय जो अलख, वह हमारे बुद्धि में स्थित है । इसलिए हम सुखी रहते हैं ।

हिरदै राम रहै जा जनकै, ताकौं ऊरा कौण कहै ।
अठ सिधि, नौ निधि ताकै, आगै सनमुख सदा रहै ॥१०५॥

टीका :- हे जन ! जिस हरि भक्त के हृदय में राम का स्मरण रहता है, उसके किस चीज की कमी रहै ? कोई भी कमी नहीं रहती क्योंकि आठों सिद्धि और नौ निद्धि सदैव उस भक्त के सामने, राम नाम स्मरण के प्रताप से हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं ।

दोहा :- **बालद अड़ी कबीर के, दादू गेटो लाव ।**
भारद्वाज मुनि प्रयाग में, भरथ जिमायो साव ॥१०५॥

दृष्टान्त :- राम नाम स्मरण के प्रताप से कबीर के यहां तीन दफा भगवान सब सामान की बालद भर-भर के लाए और दादू दयाल महाराज जब बादशाह अकबर को उपदेश करके घूमते घूमते दौसा नगर में गेटोलाव बांध पर आकर बिराजे, तब संत बोले :-महाराज ! भूख लगी है । तो ब्रह्मऋषि ने प्रकृति कहिए माया को आज्ञा दी

प्रकृति को आज्ञा फरमायी, जलेबी ताजा मंगवाई ।

तालाब में से एक माता गर्म गर्म जलेबियों की टोकरी कमल के पत्तों से ढककर महाराज के सामने जा रखी, और प्रणाम किया । महाराज ने पूछा :- माता जी क्या लाई हो ? आपकी आज्ञानुसार जलेबी लाई हूं । जलेबी संतों को जिमा दो । जीमने से जब फालतू बची तब ब्रह्मऋषि ने आज्ञा दी कि माता जी ये जहां से लाई हो वहीं ले जाओ । वैसे ही राम भक्त भरत जी सपरिवार और अयोध्या की जनता को साथ लेकर, जब राम जी के पास चित्रकूट जा रहे थे, मार्ग में प्रयागराज पड़ा । तीर्थ में सभी ने स्नान किया और भारद्वाज मुनि का दर्शन किया । भारद्वाज मुनि बोले :- आज की रात भरत जी यहीं विश्राम करो । उनकी सेवा के लिए मुनि के संकल्प मात्र से माया ने सम्पूर्ण पदार्थ रच दिये । जिसके हृदय में राम भक्ति होती है, उनके सम्पूर्ण काम स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं ।

बंदित तीनों लोक बापुरे, कैसैं दरस लहैं ।
नाम निसान सकल जग उपरि, दादू देखत है ॥१०६॥

टीका :- हे जनों ! राम का स्मरण करने वाले जो राम के सच्चे भक्त हैं, उन्हें त्रिलोकी के प्राणी मात्र 'बन्दित' कहिए नमस्कार करते हैं और उनके दर्शन हमको कैसे होंगे ? क्योंकि वह भक्त परमात्मा का नाम रूपी 'निसान कहिए' झंडे को लिए हुए अर्थात् नाम को धारण किए हुए, उसी नाम को रात दिन ज्ञान विचार रूपी नेत्रों से, देखते रहते हैं अर्थात् स्मरण करते हैं । सतगुरू महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासुओं ! हम तो इसी राम नाम को रात दिन स्मरण करते हैं, आप लोग भी इसी का स्मरण करो। वही समस्त त्रिलोकी में माननीय हैं ।

दादू सब जग नीधना, धनवंता नहीं कोइ ।
सो धनवतां जाणिये, जाके राम पदारथ होइ ॥१०७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! सम्पूर्ण जगत् के प्राणी निर्धन हैं, और कहां तक कहें ? इन्द्र कुबेर आदि देवता को भी निर्धन ही कहना चाहिए, क्योंकि राम नाम रूपी धन से जिसका हृदय शून्य है, वह कोई भी धनवान नहीं है । वही त्रिलोकी में धनवान है जिन्होंने अपने अन्तःकरण में नाम स्मरण रूपी धन का संचय किया है । इसलिए यह मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि राम नामधन को एकत्रित करे । इसी से कल्याण होगा । क्योंकि जन्म जन्मान्तरों की दरिद्रता कहिए राम की अप्राप्ति रूपी, वह सब नष्ट हो जाती है । और जीव राम रूप बन जाता है ।

संगहि लागा सब फिरै, राम नाम के साथ ।
चिंतामणि हिरदै बसै, तो सकल पदारथ हाथ ॥१०८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समस्त संसारिक वैभव राम नाम की ही महिमा से संसार में व्याप्त है । इसलिए राम नाम ही तो मानो चिंतामणी हीरा है और यह चिंतामणी रूप हीरा जिसके हृदय में है, उसके पास में संसार के समस्त पदार्थ निवास करते हैं । अर्थात् उसके संकल्प मात्र से ही सब कुछ होता है ।

दादू आनन्द आतमा, अविनासी कै साथ ।
प्राण नाथ हिरदै बसै, तो सकल पदारथ हाथ ॥१०९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो जीवात्मा परमेश्वर से एकाग्र बुद्धि हो रहा है, वह आनन्द स्वरूप ही है ।

क्योंकि जिज्ञासु के हृदय में परमेश्वर निवास करते हैं, उसकी आज्ञा में समस्त पदार्थ हैं । अर्थात् जिज्ञासु की भगवत् बुद्धि होने पर, समस्त जगत् प्रपंच, उसको भगवत् स्वरूप ही प्रतीत होता है ।

(पुरूष प्रकासिक)

दादू भावै ताहां छिपाइऐ, सांच न छाना होइ ।
से सरसा तल गगन धू, प्रगट कहिये सोइ ॥११०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शेष जी पाताल में भजन करते हैं और ध्रुव जी आकाश में परमेश्वर की भक्ति करते हैं । किन्तु यह वार्ता समस्त लोकों में प्रसिद्ध है । इससे स्पष्ट है कि सत्य को चाहे जहां छिपाओ, परन्तु वह प्रगट होकर रहेगा । शेष जी और ध्रुव जी के आख्यान से यह अभिप्राय है कि दोनों भक्तों में स्थान से तो अन्तर है, एक आकाश में है और एक पाताल में है । परन्तु भक्ति में अन्तर नहीं है । दोनों भक्त समान प्रसिद्ध हैं । क्योंकि भगवत् तो अविनाशी और एक रस हैं ।

दादू कहाँ था नारद मुनि जना, कहां भक्त प्रहलाद ।
परगट तीनों लोक मैं, सकल पुकारैं साध ॥१११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! नारद मुनि किस कुल में हुए थे ? अर्थात् दासी पुत्र थे । और अब कहां हैं ? त्रिलोकी में गवन करने की उनकी सदैव शक्ति है । इसी प्रकार प्रहलाद राक्षस कुल में हुआ । उसकी ईश्वर भक्ति अद्वितीय थी, ऐसी कथा है । किन्तु ये तीनों लोकों में सदा विख्यात हैं और समस्त साधु महात्मा, उनके गुणों का वर्णन करते हैं ।

दादू कहां शिव बैठा ध्यान धरि, कहाँ कबीरा नाम ।
सो क्यों छाना होइगा, जेरू कहैगा राम ॥११२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! विचार करो शिवजी, परमात्मा का कहां ध्यान कर रहे हैं ? कहिए कैलास में और उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त है । और कबीर जी राम नाम का कहां जाप करते थे ? हे जिज्ञासु ! कबीर जी जुलाहे के कुल में उत्पन्न होकर, हृदय में राम नाम का स्मरण करके, प्रसिद्ध हो रहे हैं । इसीलिए यह सत्य है कि जो कोई अब भी भगवत् भजन करेंगे, उनकी कीर्ति कहिए यश, सर्वत्र प्रकाशमान रहेगा ।

दादू कहां लीन सुखदेव था, कहां पीपा रैदास ।
दादू सांचा क्यौं छिपै, सकल लोक परकास ॥११३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! देखो, सुखदेव जी तोता के शरीर में प्रभु स्मरण में लीन हुए । और भक्त पीपा जी भगवत् भक्ति से महान भक्त कहलाए । ये गढ़ गागरोन के राजा थे । आम लोग इनके बारे में नहीं जानते । परन्तु भगवत् भक्ति के प्रभाव से इनका प्रकाश समस्त संसार में व्याप्त हो रहा है, क्योंकि जो सच्चे ईश्वर के भक्त हैं, उनकी अलौकिक महिमा छिपी कैसे रह सकती है ?

दादू कहां था गोरख भरथरी, अनंत सिधों का मंत ।
परगट गोपीचन्द है, दत्त कहैं सब संत ॥११४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! देखिए गोरखनाथ जी कहां हुए ? सुना जाता है कि गऊ के पेट से गोरखनाथ जी उत्पन्न हुए । परन्तु वे योग बल से त्रिकाल में और तीनों लोकों में भगवत् भक्तों की परीक्षा करने वाले पारखी कहे जाते हैं । इसी प्रकार भरथरी जी, गोपीचन्द जी और दत्तात्रिय जी, यह सब संत प्रगट कहिए अमर हैं । इसलिए सत्य स्वरूप परमात्मा का दर्शन ही 'मत' कहिए, अनन्त सिद्धों का सिद्धान्त है । अथवा इस सत्य मार्ग का अनुकरण करके ही, अनन्त सिद्ध हुए हैं, और होवेगें ।

अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन ।
दादू छाना क्यों रहै, जिस घटि राम रतन ॥११५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस भक्त के हृदय में राम नाम रूपी महा रत्न है उसको, भले ही करोड़ों प्रयत्न करके 'अगम से भी अगम' कहिए, आगे से भी आगे, जो 'अगोचर' कहिए गुप्त स्थान है वहां रखो । किन्तु वह छुपा हुआ नहीं रह सकता, अर्थात् प्रगट ही रहेगा । क्योंकि राम नामरूपी रतन, उसे छुपा नहीं रहने देता, प्रगट कर देता है ।

दोहा :- कोलू के संघात में, रहै सन्यासी सिद्ध ।
ताहि मूढ़ मारण लगे, पेली शिर में खिद्ध ॥११५॥

दृष्टान्त :- एक सच्चे संत ईश्वर के भक्त ने विचार किया कि अपरिचित स्थान में बैठकर, ईश्वर भक्ति करें । वह घूमते हुए पहुंचे, जहां बहुत से कास्तकार लोग गन्ना पेल रहे थे । वहीं पर एक किनारे किसी वृक्ष विशेष के नीचे बैठ गए और ईश्वर भक्ति करने लगे । कास्तकारों ने एक दो रोज उनकी दिनचर्या देखी और निश्चय किया कि ये कोई सन्त हैं । उनकी भोजन, वस्त्र आदि से सेवा करने लगे । एक रोज एक साधुओं की जमात मार्ग में जा रही थी । महन्त ने चार साधुओं को कहा :- जहां गन्ने पेल रहे हैं, उन गृहथियों से गुड़, गन्ना और रस लाओ । वे गए और बोले :- गुड़, गन्ना और रस साधुओं के लिए दीजिए । अपनी

श्रद्धा अनुसार सबने दिया । साधु बोले :- और दो । थोड़ा और दिया । फिर बोले :- और दो । महाराज, हम लोग गृहस्थी हैं बाल बच्चेदार हैं, बच्चों का भी पालन पोषण करना है क्या सभी आप को दे देंगें ? तब जो वहां महात्मा रहता था, उस पर कोई भेष बाना नहीं था, क्योंकि वह तत्ववेत्ता था । बोले :-महात्माओं! साधुओं का यह धर्म नहीं होता है कि किसी को तंग करना । उन चारों हुड़दगों ने उसकी तरफ देखा और कहने लगे कि यह सब इसी के चेले हैं । इसी को पकड़ो । इसके हाथ बाँधकर इसे पेड़ पर खेंचो और दो इसके डण्डे लगाओ, जिससे की यह इन अपने सेवकों से हमको रसोई दिलावै (धोली दाल और काली रोटी की) और साथ भेट दिलावै । वैसा ही महात्मा के साथ बर्ताव किया । परमेश्वर ने इस बात को न सहन किया । परमेश्वर की सत्ता उन साधुओं के पास जो गन्ने थे, उनमें व्याप्त हो गई और वह अपने आप गन्ने उठ उठकर, साधुओं को मारने लगे । तब उस साधु ने और सभी गृहस्थियों ने देखा कि यह क्या हो रहा है ? साधु जान गया कि यह परमेश्वर का कोप हो गया है, इनके कारनामों पर । वह गन्नों की मार से जमीन पर लोट-पोट हो गये । सन्त ने परमेश्वर से प्रार्थना की कि हे नाथ ! इन साधुओं की रक्षा करो । मेरी खातिर इन्हें कष्ट न दीजिए । तब उनकी रक्षा हो गई । देखिए, सच्चे सन्त के हृदय में सच्चा राम नाम रूपी रतन था और वह वहां भी प्रगट कर दिया, छुपकर न रहने दिया ।

दादू स्वर्ग पयाल में, सांचा लेवै नाम ।
सकल लोक सिर देखिये, परगट सब ही ठाम ॥११६॥

टीको :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चा भक्त चाहे स्वर्ग में रहे, चाहे पाताल में रहे, वह सच्ची भक्ति के प्रभाव से सर्व लोकों में प्रसिद्ध है । और त्रिलोकी के प्राणियों में सबसे अति उत्तम है । इसलिए मनुष्य जन्म पाकर, भगवान की सच्ची भक्ति करनी चाहिए ।

(स्मरण लाम्बी रस)

सुमिरण का शंसा रह्या, पछितावा मन मांहि ।
दादू मीठा राम रस, सगला पीया नांहि ॥११७॥

दादू जैसा नाम था, तैसा लीया नांहि ।
हौंस रही यहु जीव मैं, पछितावा मन मांहि ॥११८॥

टीका :- सतगुरू देव कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! सच्चे भक्त के अन्तःकरण में राम का स्मरण करने का पश्चाताप बना रहता है कि मैंने जैसा प्रभु का नाम था, वैसा मैंने अखंड स्मरण नहीं किया ? क्योंकि राम नाम के स्मरण का रस अत्यन्त मीठा है, जिससे भक्तों की,यही इच्छा बनी रहती है कि इस रस को बारम्बार पीते ही रहें । परन्तु मैंने जैसा उत्तम नाम था, वैसी उत्कण्ठा से, मैंने इस नाम का आस्वादन नहीं प्राप्त किया । सच्चे भक्तों के हृदय में यही 'साल' कहिए, दुःख बना रहता है ।

(स्मरण नाम चितावणी)

दादू सिर करवत बहै, बिसरै आत्म राम ।
माहि कलेजा काटिये, जीव नहीं बिसराम ॥११९॥

दादू सिर करवत बहै, राम हिरदय थैं जाइ ।
माँहि कलेजा काटिये, काल दसौं दिसि खाइ ॥१२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस प्रकार सिर पर करवत चलने से अनन्त पीड़ा होती है और कलेजा कटने से तो अत्यन्त बेचैनी होती है । उसी प्रकार रास नाम को बिसार कर, संसारीजन अशान्त और दुखी हैं । अत्यन्त एवं अशान्त क्यों हैं ? इसका हेतु कहते हैं कि 'काल दसों दिस खाइ'—अर्थात् दशों इन्द्रियां, जो शब्द स्पर्श इत्यादिक, काल रूप विषय हैं, उनमें इन्द्रियों की आसक्ति हो रही है ।

अथवा जब संसारीजन राम नाम से विमुख होते हैं, तब उनको वह चौरासी की योनी मिलती है । वृक्ष आदि, जिनके मस्तिक पर करवत चलाई जाती है, तब वह अति दुखी होते हैं ।

दादू सिरि करवत बहै, अंग परस नहीं होइ ।
मांहि कलेजा काटिये, यहु बिथा न जाणै कोइ ॥१२१॥

दादू सिर करवत बहै, नैनहुं निरखै नांहि ।
मांहि कलेजा काटिये, साल रहा मन मांहि ॥१२२॥

टीका :- सतगुरू देव कहते हैं कि हे जिज्ञासुजनों ! जब तक तुम्हारा 'अंग' कहिए मन, नाम स्मरण के द्वारा परमात्मा में लीन नहीं होता है, तब तक तुम्हें नाना प्रकार के संसार के कष्ट व्याप्त होगें । किन्तु यह

'बिथा' कहिए, परमेश्वर का वियोगरूपी दूःख, भक्तों के अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं जानता है । क्योंकि संसारीजन जब तक विवेक विचार रूपी नेत्रों से 'निरखे' कहिए, आत्मा और अनात्मा का ज्ञान प्राप्त नहीं करते हैं, तब तक उनको यथार्थ 'कष्ट' कहिए, दुःख प्रतीत नहीं होता है । क्योंकि संसारिक दुःखों को ही वह सुख मान बैठे हैं और उन्होंने अमूल्य मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी, आत्मा का साक्षात्कार नहीं किया है । इसलिए उत्तम जिज्ञासुओं के हृदय में, यह भारी दुःख रहता है ।

(नाम चिंतन के फलाफल का विवेचन)

जेता पाप सब जग करै, तेता नाम बिसारैं होइ ।
दादू राम संभालिये, तो येता डारैं धोइ ॥१२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! परमेश्वर की भक्ति और राम नाम का स्मरण, परमात्मा की सर्वज्ञता आदि भाव को भूल जाने से ही, समस्त जगत् पाप कर्मो में लिप्त हो जाता है और राम नाम का स्मरण करने से ही, सम्पूर्ण संसारी जन, पाप कर्मों से मुक्त हो जाते हैं ।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही मोटी मार ।
खंड खंड करि नाखिये, बीज पड़ै तिहि बार ॥१२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम के भूलने से अत्यन्त दुःख है, क्योंकि राम नाम बिसारने से 'बीज' कहिए, दुर्वासना आदि संस्कार संसारीजनों में व्याप्त हो जाते हैं । जिससे फिर यह जीवात्मा 'खंड खंड' कहिए, जन्म मृत्यु के चक्र में भटकता रहता है । हे जिज्ञासुओ ! राम नाम को भूलने से ही अत्यन्त दुःख होता है, जैसे :- विद्युत' कहिए वज्रपात होने से मनुष्य के शरीर का टुकड़ा टुकड़ा होकर भस्म हो जाता है वैसे ही राम नाम का स्मरण भूल जाने से भी जीव की एक रस जो सुरति है वह 'खंड खंड' कहिए नाना शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विकारों के मोह में पड़कर, छिन्न भिन्न हो जाती है । इसलिए अपनी सुरति को राम नाम में लगाकर रखना चाहिए ।

दादू जबहि राम बिसारीये, तब ही झंपै काल ।
सिर ऊपरि करवत बहै, आई पड़ै जम जाल ॥१२५॥

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही कंध बिनास ।
पग पग परलै पिंड पड़ै, प्राणी जाइ निरास ॥१२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस समय यह मानव राम के स्मरण को भूल जाता है तब ही यह काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि काल का ग्रास बन जाता है । और इसके शरीर रूपी कंधे पर काल का फरसा पड़ता है, जिससे इस मानव का विनाश कहिए राम विमुख मृत्यु होती है । और मनुष्य देह को यह नष्ट करके, विषय विकार आदिकों में बह जाता है ।

दादू जब ही राम बिसारिये, तब ही हानां होइ ।
प्राण पिंड सरवस गया, सुखी न देख्या कोइ ॥१२७॥

टीका :- सतगुरू देव कहते हैं कि हे जिज्ञासुजनों ! जो संसारीजन राम नाम को भूलकर, विषयों में प्रवृत रहते हैं उनका शरीर, प्राण, इन्द्रियें और जितना सुकृत कर्म पुण्य आदि, उन सब का नाश हो जाता है । इसलिए हे जिज्ञासुओं ! मनुष्य जन्म को प्राप्त करके, परमेश्वर के भजन को कभी भी मत भूलो । क्योंकि ईश्वर विमुख प्राणी को जन्म जन्मान्तरों में भी सुख प्राप्त होना असम्भव है ।

(नाम सम्पूर्णता)

साहिब जी के नांव मैं, बिरहा पीड़ पुकार ।
ताला बेली रोवणा, दादू है दीदार ॥१२८॥

टीका :- सतगुरू उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! जिस प्रकार बिरहिणी बिरह की पीड़ा से, अपने प्रीतम का चिन्तन करती है । और जैसे पतिव्रता स्त्री विरह की पीड़ा से, अपने प्रीतम कहिए पति की आराधना करती है, वैसे ही अति प्रीति से प्रभु का नाम स्मरण करने से, परमेश्वर का साक्षात्कार दर्शन होगा ।

(विरह जागृति स्मरण विधि)

साहिब जी के नावं मैं, भाव भगत्ति बिसवास ।
लै समाधि लागा रहै, दादू सांई पास ॥१२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'साहिब जी' कहिए परमेश्वर के नाम में भाव, भक्ति, 'विश्वास' कहिए श्रद्धा और 'लय' कहिए अभ्यास तदाकार वृत्ति और इन्द्रियों की विविध वृत्ति रूप प्रवृत्ति तथा सहजावस्था रूप समाधि में, जो परमेश्वर का भक्त एकाग्र होकर रहता है, उसके समीप ही कहिए अन्तःकरण में ही, परमेश्वर निवास करते हैं ।

साहिब जी के नावं मै, मति बुद्धि ज्ञान विचार।
प्रेम प्रीति सनेह सुख, दादू जोति अपार ॥१३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के नाम के स्मरण से निश्चय रूप मति कहिए निश्चय आत्मक बुद्धि और नित्य अनित्य के विचार स्वरूप ज्ञान का उदय होता है। जिससे अपार ज्योतिरूप जो परमेश्वर है, उससे प्रभु प्रेम, प्रीति, स्नेह कहिए सलग्नता, सुख कहिए परमानन्द, का अनुभव होता है।

साहिब जी के नावं मैं, सब कुछ भरे भंडार।
नूर तेज अनन्त है, दादू सिरजनहार ॥१३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! साहिब जी कहिए जगत के रचने वाले दयालु परमेश्वर का अनन्त कहिए, देशकाल प्रच्छेद रहित तेजोमय दिव्य स्वरूप है। इसलिए ऐसे पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर के, नाम के अन्तर्गत ही, सम्पूर्ण देवी सम्पत्ति और ज्ञान, ध्यान, ऋद्धि सिद्धि आदि के अनन्त भंडार भरे हैं। उस नाम को हृदय में धारण करो।

जिसमें सब कुछ सो लिया, निरंजन का नाउं।
दादू हिरदै राखिए, मैं बलिहारी जाउं॥१३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस निरंजन, निराकार प्रभु के नाम में समस्त माया और माया का कार्य प्रपंच और त्रिलोकी के सम्पूर्ण सुख विद्यमान हैं। इसलिए उस परमेश्वर के ऐसे नाम को हृदय में धारण करके, जो स्मरण करते हैं, वह भक्त और संत, सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं। उनके लिए कोइ भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती। क्योंकि यह नाम कल्प वृक्षवत् है। सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करता है। ऐसे प्रभु का नाम स्मरण करने वाले भक्त एवं संतों की हम, बार बार बलिहारी जाते हैं।

(इति स्मरण का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ बिरह का अंग–३ ॥

"साहिब जी के नावं मैं, बिरहा पीड़ पुकार०—" इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप,
अब बिरह के अंग का निरूपण करते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरन्जनम्, नमस्कार गुरू देवतः ।
बन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हरि, गुरू, संतों को नमो, नमस्कार वंदना स्वीकार होवै, कि जिनकी कृपा से जिज्ञासुजन, स्मरणरूप साधन द्वारा, अन्तःकरण के विषय वासनाओं से 'पारं' कहिए निर्मल होकर, परमेश्वर के बिरह में व्याकुलता सहित, 'गतः' कहिए अखंड लय द्वारा, लीन हो रहे हैं।

अब बिरहीजनों की बिरह अवस्था कहकर, बिरहीजनों का प्रयोजन कहते हैं।

रत्तिवंती आरति करै, राम सनेही आव ।
दादू औसर अब मिलै, यहु बिरहनी का भाव ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरहीजनों की 'रत्तिवंती' कहिए बुद्धि, परमेश्वर से 'आरति' कहिए आतुरता (व्याकुलता) सहित, विलाप करती है कि हे मेरे राम ! हे मेरे स्नेही ! हे मेरे हितकारी ! 'आव' कहिए प्रगट होकर, दर्शन देओ। ब्रह्मऋषि दादू दयाल कहते हैं कि बिरहनी का यह प्रयोजन है। इस मनुष्य शरीर रूपी अवसर में और बिरह के दुःख के समय, परम स्नेही प्रभु का साक्षात्कार करके, हम बिरहीजन, स्वस्वरूप आनन्द का अनुभव करें।

(बिरहनी की बिरह दशा और उसका बिलाप)

पीव पुकारै बिरहनि, निस दिन रहै उदास ।
राम राम दादू कहै, ताला बेली प्यास ॥३॥

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि बिरहनी इस प्रकार विलाप करती है कि हे मेरे पीव ! पालन करने वाले परमेश्बर ! मुझे आपका दर्शन दो । कदाचित् बिरहनी को प्रभु के दर्शन नहीं होवें, तो बिरहीजन रात और दिन संसार विषयों से उदासीन होकर तड़फते हैं और अति व्याकुलता सहित हे राम ! हे राम ! इस प्रकार आतुर स्वर में, प्रभु को पुकारते हें । 'ताला बेलि प्यास'—इन तीनों, पदों से बिरहीजनों को मन वाणी और शरीर द्वारा, प्रभु में अनन्यता दर्शाई है ।

दोहा :- **प्राणपिंड रग रोम सब, हरि दिशी रहे निहारि ।**
ज्यों बसुधा बनराय सों, बिरही चाहै बारि ॥३॥

बसुधा कहिए पृथ्वी । बारि कहिए जल ।

(बिरहीजनों की अनन्यता)

मन चित चात्रग ज्यों रटै, पिव पिव लागी प्यास ।
दादू दर्शन कारनै, पुरवहु मेरी आस ॥४॥

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि बिरहीजनों का चित्त, चेतनायुक्त अर्थात् ईश्वर परायण मन, आतुरता सहित प्रभु दर्शनों के लिए चातक पक्षी की तरह हे पीव ! हे पीव ! आपके दर्शनों की मेरी, इस उत्कण्ठा को पूर्ण करो । इस प्रकार पुकार करते हैं ।

दादू बिरहनि दुख कासनि कहै, कासनी देह संदेश ।
पंथ निहारत पीव का, ब्रिरहनि पलटे केस ॥५॥

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि हम बिरहीजन अपना संदेश (समाचार) किस से कहैं, और किस के द्वारा अपने समाचार प्रीतम के पास पहुंचावें । पीव के आगमन की प्रतीक्षा करते-करते चिंतातुर बिरहीजनों के

सिर के केश भी बदल (सफेद हो) गए हैं और मन निष्पाप हो गया है। अभी तक प्रभु के दर्शन नहीं हुए हैं। इसी से बिरहीजनों का मन अति ही व्याकुल है।

दादू बिरहनि दुख कासनि कहै, जानत है जगदीस।
दादू निसदिन बिरही है, बिरहा करवत सीस॥६॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि हे प्रभु ! हम बिरहीजन अपना दुःख किससे कहैं, क्योंकि कोई इस दुःख को दूर कर सके तो, उससे अपना दुःख कहें भी। किन्तु संसारीजनों में तो ऐसा कोई समर्थ है नहीं, और हे जगदीश ! आप समर्थ हो, सर्वज्ञ हो। आप स्वयं बिरहीजनों के दुःख को जानते हो, तब भी आप प्रगट होकर दर्शन नहीं देते हो। इसलिए आपके प्रेम में हम परम आतुर हो रहे हैं।

दोहा :- बालम बिछुरत हे सखी, कालम लागी येह।
जालम जम के बस भई, सालम रही न देह॥६॥

सबद तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यौं कारी।
तूंही तूंही निसदिन करौं, बिरहा की जारी॥७॥

टीका :- हे प्रभु ! हम बिरहीजन आपके वियोग जन्य दुःख से अति निर्बल होकर, प्रति क्षण पुकार करते हैं कि हे स्वामिन् ! तूं ही है, तूंही है। हमारे बिरह के दुःख को दूर करने वाला, एक तूं ही है। पुनः बिरही जन विनय करते हैं कि हे नाथ ! आपके दीनों उद्धारन् भक्त वच्छल अशरण शरण, यह विशेषण तो आपके अति उत्तम हैं, किन्तु हमारी बारम्बार विनय सुनकर के भी आप दर्शन नहीं देते हैं ? आपके यह चिरिया चरित्र, कारी नाम कठोरता क्यों है ? अथवा चिरिया कहिए, हे कोयल ! तेरा शब्द तो उज्जवल है, किन्तु तेरा शरीर काला क्यों है ?

दोहा :- कोयल तूं सुभ लक्षणी, उजल तेरे बैन।
किसि बिधि तूं कारी भइ, किसि बिधि रात्ते नैन॥७॥

(रात्ते नाम लाल)

दोहा :- जबर बिधाता मोही रची, कबहु नै पायो चैन ।
कूक कूक कारी भई, रो रो राते नैन ॥७॥

चिरिया से मतलब चोले का है। हे बिरही जनों ! तुम्हारी बाणी तो अत्यन्त मधुर है, किन्तु शरीर अति कृश (कमजोर), काला क्यों है ?

बिरही कहते हैं कि हे प्रभु ! प्रतिक्षण तेरी टेर लगाते हुए, हम बिरहीजन, बिरह अग्नि में जलकर कोयला हो गये हैं, अर्थात् देहाध्यास से मुक्त हुए हैं।

(ब्रिरह बिलाप)

बिरहनि रोवै रात दिन, झूरै मन ही मांहि ।
दादू औसर चलि गया, प्रीतम पाये नांहि ॥८॥

टीका :- बिरहीजन रात दिन रोते हैं, और मन ही मन क्षीण होते जा रहे हैं। क्योंकि मनुष्य जीवनरूप या यौवन रूपी यह अवसर खत्म होता जा रहा है। किन्तु अभी तक प्रीतम प्यारे का संयोग प्राप्त नहीं हुआ है।

दोहा :- बिरह पावक उर बसै, नख सिख जारै देह ।
रज्जब ऊपरि रहम करि, बरसहु मोहन मेंहै ॥८॥

पावक—अग्नि । मेंहै—दर्शनरूपी बारिष ।

दादू बिरहनि कुरलै कुन्ज ज्यूं, निसदिन तल पत जाइ ।
राम सनेही कारणै, रोवत रैनि बिहाइ ॥९॥

टीका :- जैसे कुंज पक्षी कतार बांध कर आकाश में उड़ते हुए, अपने बच्चों के पालन करने के लिए, अत्यन्त करुणा से विलाप करते हैं। सतगुरू देव इसी भाव को स्पष्ट करते हैं कि जिस प्रकार कुन्ज पक्षी,

अपने बच्चों के निमित्त आठों पहर कुरलाते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर के दर्शनों के लिए, बिरहीजनों के भी रात दिन तड़फते हुए ही बीतते हैं ।

दोहा :- प्रेम समुद्र उलटीया, ताका वार न पार ।
बिरह बियोगी डूबते, हायन होत अधार ॥६॥

पासैं बैठा सब सुणै, हमकौं जवाब न देइ ।
दादू तेरे सिरि चढै, जीव हमारा लेइ ॥१०॥

टीका :- हमारे प्रीतम प्यारे परमेश्वर पास में ही बैठे हैं और हमारी दुःख भरी आवाज भी सुनते हैं । परन्तु हमको कुछ भी उत्तर नहीं देते । इसीलिए हम बिरहीजनों को भारी दुःख है । बिरहीजन कहते हैं कि हे स्वामिन ! यदि आप हमें दर्शन नहीं देवेंगे तो हमारे प्राण पिण्ड के वियोग का जो दोष, (पाप) है, वह आपके सिर पर चढ़ेगा ।

दोहा :- सज्जन तुमसे क्या कहूं, तूं ही कपट के भेष ।
बसने को मेरा हृदय, मिलने को परदेस ॥१०॥

सबकौं सुखिया देखिये, दुखिया नांही कोइ ।
दूखिया दादू दास है, अैन परस नहीं होइ ॥११॥

टीका :- हे स्वामिन् ! आपके बिरहीजन भक्तों के अतिरिक्त, समस्त संसारीजन पुत्र धन आदि संसारी वैभवों से, अपने को सुखी जानते हैं । परन्तु हे प्रभु ! आपके वियोग का दुःख वे कोई भी नहीं मानते हैं । केवल सच्चे भक्तजन ही, आपके प्रत्यक्ष दर्शनों के लिए अति आतुर हैं । हे भक्त वत्सल ! आप अपने भक्तों के, आपकी अप्राप्ति रूप जो दुःख है, उसको दर्शन देकर दूर करिए ।

दोहा :- नरसिंह कही प्रहलाद सै, वर देहुं मैं तोहि ।
जगत सुखी करि ल्याउ अब, दुखी मिल्यो नही कोइ ॥११॥

दृष्टान्त :- भक्त प्रहलाद की भक्ति को देखकर, भगवान नरसिंह प्रगट हुए और बोले, 'वर मांग' । प्रहलाद बोला :—हे नाथ ! सारे संसार को सुखी बना दो और उन सबका दुःख मुझे दे दो । भगवान बोले :—आपके नगर में जो दुःखी हैं, उन सबको ले आओ ! उनको सुखी बनाकर उनका दुःख आपको दे देगें । इसी प्रकार सारे संसार में दुःख दूर करेंगे । प्रहलाद नगर में गए और एक बूढा और बुढिया को बोले :—आओ, मैं आपको भगवान के पास ले चलूं, ताकि तुम सुखी हो जाओगे । वे प्रहलाद को डांट कर बोले :-चल चल, तूं ही जा भगवान के पास सुखी होने । इसी प्रकार प्रहलाद ने नगर में कई दुःखियों को कहा, परन्तु एक भी नहीं आया । भगवान को आकर प्रहलाद बोला :- महाराज ! कोई भी नहीं आता है । भगवान बोले :- कोई इस संसार में दुखी नहीं है । केवल मेरे दास ही दुखी हैं, जिनको मेरा दर्शन नहीं होता । कबीर ने कहा है :

दोहा :- सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै ॥११॥

(विहरीजनों के दुख का कारण)

साहिब सुखि बोलै नहीं, सेवक फिरै उदास ।
यहु बेदन जियमें रहै, दुखिया दादू दास ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर अपने भक्तों से प्रगट होकर जब तक नहीं बोलते हैं, तब तक परमेश्वर के भक्त अति दुखी रहते हैं, और उदास हुए घूमते हैं । क्योंकि परमेश्वर के भक्तों के हृदय में, यह भारी दुख बना ही रहता है कि हमारे स्वामी परमेश्वर, हमसे प्रेम नहीं करते हैं । इस प्रकार परमेश्वर के भक्त बिरहरूपी दर्द से सदा ही व्याकुल रहते हैं ।

दोहा :- उर ग्रीष्म पावस नैन, अरू जिये में हिम काल ।
पिव बिन तन को तीन ऋतु, कबहु न मिटै जमाल ॥१२॥

बिरहीजनों के हृदय में ग्रीष्म कहिए गर्मी ऋतु और नेत्रों में वर्षा ऋतु और अन्तःकरण में हिम ऋतु शरीर में तीन ऋतु व्याप्त रहती हैं ।

पिव बिन पल पल जुग भया, कठिन दिवस क्यों जाइ ।
दादू दुखिया रात बिन, काल रूप सब खाइ ॥१३॥

टीका :- सतगुरुदेव कहते हैं कि अपने प्रीतम, प्यारे, परमेश्वर के दर्शनों के बिना, बिरहीजनों को एक एक पल, युगों के समान बीतता है । इसलिए बिरहीजनों को यह बड़ा दुख है कि यह कठिन दिवस प्रभु के वियोग में किस तरह काटेंगे ? क्योंकि संसार के विषय भोग कालरूप होकर बिरहीजनों को संतप्त कर रहे हैं ।

दोहा :- मित्र तिहारे दरस को, अधर रह जीय आय ।
कहो क्या आज्ञा होत है, यह तन रहे कि जाय ॥१३॥

दादू इस संसार में, मुझसा दुखी न कोइ ।
पीव मिलन के कारणै, मैं जल भरिया रोइ ॥१४॥

टीका :- बिरहीजन कहते हैं कि इस संसार में हमारे समान और कोई भी दुखी नहीं है । क्योंकि अपने प्रीतम प्यारे के दर्शनों के बिना अति दुखी होकर, हम रात दिन रो रहे हैं ।

दोहा :- पानों ज्यू पीली भई, लोग कहै पिण्ड रोग ।
छाने लंघण नित करूं, राम तिहारे जोग ॥१४॥

ना वहु मिलै न हम सुखी, कहो क्यों जीवन होइ ।
जिन मुझको घायल किया, मेरी दारू सोइ ॥१५॥

टीका :- बिरहीजन कहते हैं कि जब तक हमें प्यारे प्रीतम नहीं मिलते, तब तक हम सुखी कैसे रहें ? क्योंकि बिना परमेश्वर दर्शन पाए तो, हमारा जीवन ही वृथा है । अर्थात् बिरहीजनों को परमेश्वर के वियोग का ही दुख है । और परमेश्वर के दर्शनों का संयोग ही परम आनन्द है ।

दोहा :- जो मोहि बेदन वैद्य सुनी, लिखो न कागद माँहि ।
क्या ढंढोरे पोथियां, पचे तो पावे नाँहि ॥१५॥

दरसन कारन बिरहनि, वैरागनि होवै ।
दादू बिरह बियोगनी, हरि मारग जोवै ॥१६॥

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि बिरहीजन, भगवत् दर्शनों के लिये संसार से वैराग्य लेते हैं और भगवत् के दर्शनों के बिना, बिरह से अति व्याकुल होकर, ईश्वर से मिलने की प्रतीक्षा करते हैं ।

दोहा :- क्या करूं बैकुन्ठ का, कल्प वृक्ष की छांह ।
हे तम ढाक सुहावणां, जहां सज्जन गहि बांह ॥१६॥

(बिरह उपदेश)

अति गति आतुर मिलन कौं, जैसे जल बिन मीन ।
सो देखै दीदार कौं, दादू आत्म लीन ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे जल के बिना मछली व्याकुल हो जाती है, उसी प्रकार भक्तजन, भगवत् के वियोग में व्याकुल रहते हैं । जो बिरहीजन माया की तृष्णा को बिसार कर, अपनी आतमा को परमेश्वर में लींन करते हैं, वही भक्तजन प्रभु का साक्षात्कार करेंगें ।

छन्द :- नीर बिन मीन दुखी, छीर बिनु शिशु जैसे ।
पीर की औसदि बिन, कैसे रह्यो जात है ।
चातृग जू स्वाति बूंद, चन्द्र को चकोर जैसे ।
चन्दन की चाह करी, सर्प अकुलात है ।
निर्धन ज्यूं धन चाहे, कामनि को कन्ध जैसे ।
ऐसी जाके चाहे ताही, कछु न सुहात है ।
प्रेम को प्रवाह ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो ।
सुन्दर कहत यह, प्रेम ही कि बात है ॥१७॥

राम बिछोही बिरहनि, फिरि मिलन न पावै ।
दादू तलपै मीन ज्यूं, तुझ दया न आवै ॥१८॥

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि बिरहीजन परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि हे राम ! जो आपने बिरहजन भक्तों को भुला दिया तो, फिर बिरहीजन अपने बल के द्वारा, आपसे मिल नहीं सकेगें । इसलिए बिरहीजन तो आपके दर्शनों के वियोग में, मछली की भांति तड़फते रहते हैं (जल के बिना मछली) । हे भक्त वत्सल ! हे दीनों पर दया करने वाले ! क्या आपको अपने बिरहीजनों पर इतनी, भी दया नहीं कि उन्हें अपना दर्शन देकर, उनके बिरह का दुःख दूर करें ?

अरिल छन्द :-

कहियो जाइ सलाम हमारी राम को, नैना रहे झर लाइ तुम्हारे नाम को ।
कमल गया कुमलाय कलियां भी जायसी, अरे हां बाजींद इस बाड़ि में भवरां
फेर न आइसी ॥१८॥

(छिन बिछोह)

दादू जब लग सुरति सिमटै नहीं, मन निश्चल नहीं होइ ।
तब लग पिव परसै नहीं, बड़ी बिपति यहु मोहि ॥१९॥

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि जब तक बिरहीजनों की अन्तःकरण की वृत्ति, सब और से एकाग्र होकर, बिरही मन केवल भगवत् से तद्रूप नहीं हो जावै, तब तक भगवत् दर्शनों के बिना, दुःख दूर नहीं होवेगा । तात्पर्य यह है कि बिरहीजनों को जब तक देहादि की, और रूदन की कहिए रोने की अवस्था का किंचित भी ज्ञान है तब तक, द्वैतभाव विद्यमान है । अतः जब प्रीतम और बिरहणि का भिन्न भिन्न भाव विलुप्त हो जावै तब जानो कि बिरहणि भक्त अपने प्रीतम में अभेद भाव से स्थित हो रही है ।

ज्यूं अमलि के चित अमल है, सूरै कै संग्राम ।
निर्धन कै चित्त धन बसै, यौं दादू कै राम ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अफीमची के चित्त में अफीम का नशा करने की इच्छा रहती है और शूरवीर के मन में वीरता दिखाने की इच्छा रहती हैं । और निर्धन कहिए, तृष्णायुक्त पुरुष के मन में धन की वासना रहती है । ऐसे ही सतगुरू महाराज कहते हैं कि बिरहीजनों के मन में राम के मिलने की इच्छा बनी रहती है ।

दोहा :- कोउ अमलि मग जात है, अमल बखत भई आय ।
कोउ जनि से ये पूछिया, मूंज नीर पी जाय ॥२०॥

दृष्टांत :- एक अफीम खाने वाला मार्ग मार्ग जा रहा था । अफीम खाने की समय हो गई । अफीम की डिब्बी घर भूल आया । तो उसके सारे अंग शिथिल पड़ गए । चाल कम हो गई । मुश्किल से एक गांव में पहुंचा । विचार किया कि वहां कहीं से अफीम लेकर नशा करूंगा । गांव में जब पहुंचा तब देखा कि एक पत्थर के ऊपर पीला पीला पानी भरा है । वह देखकर बड़ा राजी हुआ और वहां चौपाल पर बैठे पुरुषों से पूछा भाई ! यह तिजोरा है, (तिजोरा का अर्थ है पोस्त के डोडे) वे लोग जान गए कि यह अफीम खाने वाला है । इसके पास अफीम नहीं है । हम यह कहेंगे कि यह मूंज का पानी है तो यह उदास हो जाएगा । ऐसा विचार कर, वे लोग बोले :-हां तिजोरा बना है । आप लोग पी लिया ? हां हम सब ने पी लिया । यह बचा हुआ है । वह बोला मैं पी लूं क्या ? पी लो । उसने सब पानी पी लिया, पत्थर के गड्ढों में से । और तीन खखारे किए । इतने में नशा चढ़ गया । ऐसे ही दाराष्टान्त में राम के भक्त, राम के स्मरण से ही तृप्त होते हैं ।

ज्यूं चातृग कै चित्त जल बसै, ज्यूं पानी बिन मीन।
जैसे चंद चकोर है, अैसे दादू हरि सौं कीन ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे चातृक कहिए पपैया के मन में स्वांति बून्द का प्रेम है और जैसे मछली जल के बिना नहीं जी सकती है। मुख्य प्रीति मछली की जल से होती है और जैसे चकोर पक्षी के मन में चन्द्रमा की प्रीति बसती है, वैसे ही सतगुरू महाराज कहते हैं कि बिरहीजन भक्त की राम से प्रीति रहती है।

ज्यूँ कुंजर कै मन बन बसै, अनल पंखि आकास।
यूं दादू का मन राम सौं, ज्यूं बैरागी बनखंडि बास॥२२॥

टीका :- जैसे हाथी के तन में बन की प्रीति बसती है और शार्दूल पक्षी के मन में आकाश की प्रीति बसती है। इसी प्रकार सतगुरू महाराज कहते हैं कि हम बिरहीजनों का मन तो एक राम में बसता है। जैसे वैराग्यवान पुरुष के मन में बन बसता है।

भंवरा लुवधी बास का, मोह्या नाद कुरंग।
यौं दादू का मन राम सौं, ज्यौं दीपक जोति पतंग॥२३॥

टीका :- जैसे भंवरा पक्षी पुष्प की सुगन्धी का लोभी होता है और मृग जैसे सारंग राग का प्रेमी होता है, ऐसे ही हम बिरहीजनों का मन तो केवल राम से ही स्नेह करता है, जैसे पतंग दीपक ज्योति का प्रेमी होता है।

श्रवणा रात्ते नाद सौं, नैनां रात्ते रूप।
जिभ्या राती स्वाद सौं, त्यों दादू एक अनूप॥२४॥

टीका :- जैसे संसारीजन भिन्न भिन्न इन्द्रियों की रुचि के अनुसार भिन्न भिन्न विषयों में प्रवृत्त होते हैं, वैसे ही बिरहीजनों को भी समस्त माया पदार्थों से सुरति समेट कर, केवल भगवत् भजन में ही एकाग्र रहना चाहिए।

(बिरह उपदेश)

देह पियारी जीव कौं, निसदिन सेवा मांहि ।
दादू जीवन मरण लौं, कबहूं छाडै नांहि ॥२५॥
देह पियारी जीव कौं, जीव पियारा देह ।
दादू हरि रस पाइये, जे ऐसा होइ सनेह ॥२६॥

टीका :- संसारी प्राणियों को भौतिक देह अत्यन्त ही प्यारी है। इसलिए यह देहाध्यासी जीवात्मा, प्रति क्षण देह के साजने संवारने (श्रृंगार) में ही व्यस्त रहता है। और जब से सुरति संभाली है तब से मरण पर्यन्त, देह प्रपंच में ही लगा हुआ है। श्री सतगुरू महाप्रभु उपदेश करते हैं कि जैसे जीवात्मा को देह प्यारी है, और देह को जीवात्मा प्यारा है। अर्थात् शरीर पर कोई कष्ट आवे तो जीवात्मा भाग छूटता है और प्राणों पर कोई प्रहार करै तो हाथ पैर आदिक शरीर प्राणों की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार बिरहीजन भी, भगवत् से अनन्यभाव होकर रहें, तो हरि रस भगवद् दर्शन व मोक्षरूप परम तत्व सहज सुलभ है।

दोहा :- जिकर फिकर फोकट सबै, ना कछु ज्ञान अरू ध्यान ।
टोडर जप तप आदि सब, प्रेम प्रीति कछु आन ॥२६॥

(प्रेमा भक्ति के बिना सब फीका है)

दादू हरदम मांहि दिवान, सेज हमारी पीव है।
देखौं सो सुबहान, ये इसक हमारा जीव है॥२७॥

टीका :- पीव कहिए प्रीतम पालन करने वाला, दीवान कहिए परमेश्वर न्यायकारी, हरदम नाम हर समय प्रति श्वांस में, हम बिरहीजनों के अन्तःकरण रूपी सेज में ही विद्यमान कहिए प्रगट है। और समस्त सुन्दरताओं का सुन्दर रूप सुहावन कहिए अनुपम सुन्दर है। जिससे पीव के प्रेम में ही, बिरहीजन जीवित हैं।

दादू हरदम मांहि दिवान, कहूं दरूनै दरद सौं ।
दरद दरूनैं जाइ, जब देखों दीदार कौं ॥२८॥

टीका :- सतगुरूदेव प्रार्थना करते हैं कि प्रतिक्षण अपने पीव के प्रेम में ही बिरहीजन, अपने शरीर आदि की सुध बुध भूल कर, मस्त हो रहे हैं। और मानसिक व्यथा सहित, परमेश्वर का विलाप करते हैं। इसी से

हम बिरहीजन, अपने प्राणनाथ के दर्शन देखें, तो हमारी अन्तर वेदना दूर होवै। हे प्रभु ! बिरहीजनों को अपना दर्शन दीजिए।

अरिल छंद :-

पिव जी तुम बिन जीव, तपै दिन रात है।
कहैं कौन पतियाय, दुखी बिललात है।
भर भादव की रैंन, दमकै दामनी।
अरे हां बाजींद जाको पीव परदेश, भरै क्यों भावनी ॥२८॥

(बिरह बिनती)

दादू दरूनै दरदबंद, यह दिल दरद न जाइ।
हम दुखिया दीदार के, मिहरबान दिखलाइ ॥२६॥

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि उत्तम भक्तों के हृदय में ऐसी बिरह वेदना है, जो दिल से दूर नहीं हो सकती है। हम तो भगवत् दर्शनों के ही बिरही हैं। इसलिए हे दयामय ! हमको अपना दर्शन देओ।

दोहा :- देहु मौज दीदार की, लेहुन याको अंत।
चातक बोलहि चहूं दिसा, निशा अंधेरी कंत ॥२६॥

(चहुं दिसा = चारों अवस्थाओं में)

मूये पीड़ पुकारतां, बैद न मिलिया आइ।
दादू थोड़ी बात थी, जे टुक दरस दिखाइ ॥३०॥

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि हे नाथ ! हम बिरहीजन तो बिरह बिलाप करते करते, आपके बिरह के वियोग में मर रहे हैं। किन्तु हम बिरहीजनों के भगवत् बिरह रूप या जन्म मरण दुःख को दूर करने वाला, कोई वैद्य नहीं मिला है (कोई वैद्य रूप गुरू नहीं मिला)। हे प्राणधार ! आपके लिये तो यह साधारण

सी बात है कि आप प्रगट होकर, हम बिरहीजनों को दर्शन देते । किन्तु हे स्वामिन ! हम बिरहीजनों को तो अति ही कठिन है ।

दोहा :- जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल श्रृगांर ।
त्युं रज्जब भूला सकल, सुनि स्नेही दिलदार ॥३०॥

(नाह = पति । भूला सकल = भूला संसार)

दादू मैं भिखारी मंगता, दरसन देहु दयाल ।
तुम दाता दुख भंजिता, मेरी करहु संभाल ॥३१॥

टीका :—सतगुरू भगवान कहते हैं कि हम तो आपके भिखारी अर्थात मंगते हैं, (मंगते चार प्रकार के होते हैं —रिगांरी, टिगांरी, भिखारी और श्रृगारी), दर्शनों की भीख मांगने वाले । हे दयालु ! दर्शन देओ आप तो सब दुखों का नाश करके, आनन्द के दाता हो । अब हम बिरहीजनों की संभाल करो ।

दोहा :- दर्शन चार प्रकार के, हमहि होत हैं तीन ।
श्रवण, स्वप्न अरु चित्र में, प्रगट न होत प्रवीन ॥३१॥

(छिन विछोह)

क्या जीये मैं जीवणां, बिन दरसन बेहाल ।
दादू सोई जीवणां, परगट परसन लाल ॥३२॥

टीका :- सतगुरू भगवान कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह जीवन भी क्या जीवन है ? जिसमें परमात्मा के दर्शन नहीं हुए हैं । ऐसा जीवन वृथा है । इसलिए वही जीवन सार्थक है, जिसमें प्यारे प्रीतम प्रसन्न होकर, प्रगट होते हैं और दर्शन देते हैं ।

इहि जग जीवन सो भला, जब लग हिरदय राम ।
राम बिना जे जीवना, सो दादू बेकाम ॥३३॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि संसार में वही जीवन श्रेष्ठ है जो कि परमेश्वर प्रगट होकर, दर्शन देवैं। वही जीवन धन्य है। इसलिए हे जिज्ञासुओ ! जब लग हृदय राम नाम में सलग्न है, तभी तक जीवन सफल है और भगवत् विमुख होकर, जीना तो निरर्थक है।

दोहा :- जैसे जिये बिना काया सुनी, बारी मथे क्यूं निकसे लुनी।
लूण बिना भोजन नहीं नींका, मोहन हरि बिन सब धर्म फीका॥३३॥

(बिरह विनती)

दादू कहु दीदार की, सांई सेती बात।
कब हरि दरशन देहुगे, यहु औसर चलि जात॥३४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि कहते हैं कि पापों के हरने वाले हरि ! बिरहीजनों का मनुष्य जन्म रूप यह अवसर, आपके विरह दुःख में ही व्यतीत हो रहा है। अब आप कब दर्शन देओगे ? बिरहीजनों को सत्य सत्य कहिए।

अरिल छंद :-

उमड़ चले दोऊ नैन, चैन नहीं चित्त जी।
हरि जी तुमरो पंथ, निहारूं नित्त जी।
अब जिन करहु अधीन, आप मिल मोहि सौं।
हरि हां बाजींद तन मन जोबन प्राण, समरपौं तोही कूँ॥३४॥

बिथा तुम्हारे दरस की, मोहि व्यापै दिन रात।
दुखि न कीजे दीन कौं, दरसन दीजै तात॥३५॥

टीका :- महाराज ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हे प्यारे प्रीतम ! आपके दर्शनों का बिरह दुख, मुझे रात दिन व्यापता है, अर्थात् पीड़ित करता है। अब हम दीनों को अपना दर्शन देकर दुख से उबारिए।

दादू इस हियड़े ये साल, पिव बिन क्योंहि न जाइसी ।
जब देखों मेरा लाल, तब रोम रोम सुख आइसी ॥३६॥

टीका :- श्री दयालु महाप्रभु कहते हैं कि हमारे हृदय में तो एक भगवत् बिरह का ही 'साल' कहिए, भारी दुख है । सो भगवत् दर्शनों के बिना और किसी भी तरह दूर नहीं हो सकता है । हे हमारे प्रीतम प्यारे ! जब हम तेरा दर्शन कर लेंगे, तब ही हमारा रोम रोम प्रफुल्लित होएगा ।

अरिल छंद :-

निस नही आवै नींद, अन्न नहि खात है ।
पल पल परै न चैन, जीव यह जात है ।
तुम तरवर हम छांह, फेर क्यूं कीजिए ।
हरि हां बाजींद घट घट अन्दर, खेल क दर्शन दीजिए ॥३६॥

तूँ है तैसा प्रकास कर, अपनां आप दिखाइ ।
दादू कौं दीदार दे, बलिजाऊ बिलंबन लाइ ॥३७॥

टीका :-सतगुरूदेव कहते हैं कि हे दयानिधि ! जैसे आप शान्त एक रस प्रकाश स्वरूप हैं, वैसा ही प्रकाश हमारे हृदय में भी कीजिये । जिससे आपके सत्‌चित् आनन्द ब्रह्म स्वरूप का, हम बिरहीजन साक्षात्कार करैं । हे प्रभु ! आपकी मैं बारम्वार बंदना करता हूं, अब आप देरी नहीं करो ।

अरिलछन्द :-

कहिये सुणीये राम और नहीं चित्त रे ।
हरि चरणन को ध्यान, सुधरिये नित्य रे ।

जीव विलंब्या पीव दूहाई राम की ।
हरि हां सुख सम्पत्ति बाजींद, कहो किस काम की ॥३७॥

दादू पिव जी देखै मुझ को, हूं भी देखौं पीव ।
हूं देखौं देखत मिलै, तो सुख पावै जीव ॥३८॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज कहते हैं कि हे सर्वव्यापक प्रभु ! हम बिरहीजनों को साकार रूप में देखैं और हम बिरहीजन भी ध्यान धारण द्वारा, भगवत् की मोहिनी मूर्ति का अनुभव करैं, किन्तु जैसे हम बिरहीजनों को भगवत् साकार रूप में देखते हैं, उसी प्रकार हम बिरहीजन भी स्थूल चक्षुओं से भगवत् का दर्शन करैं, तो हमारा बिरह दुख दूर होवै । और हम परमानन्द का अनुभव करैं और परमेश्वर हम सब को देखता है । हम बिरहीजन भी, व्याष्टिभाव से ईश्वर के दर्शनों के लिए व्याकुल हैं । किन्तु जब हम समष्टि भाव से सर्व प्राणियों में ईश्वर बुद्धि करैं तो तत्काल ही सुख दुःख आदि द्वन्द्वों से निर्मुक्त होवैं और द्वैतभाव को बिसार कर, जीवनमुक्ति रूप परमानन्द का अनुभव करैं ।

(बिरह कसौटी)

दादू कहै तन मन तुम परि वारणैं, करि दीजै कै बार ।
जे ऐसी बिधि पाइये, तो लीजै सिरजनहार ॥३९॥

टीका :- गुरूदेव कहते हैं कि हे प्रभु ! यदि आप तन मन आदि को भेट करने से ही दर्शन देओ, तो यह तन मन आदि भी आप को बारम्बार भेट करते हैं । हे सिरजनहार ! हम बिरहीजनों का सर्वस्व, आपके चरणों में है । अब इस माया बन्धन को दूर करके, अपना दर्शन दीजिए और चितावणी पक्ष में जानों कि हे जिक्षासुजनों ! यदि तन मन देने से ही हरि मिलते हैं, तो यह तन मन आदि तो प्रभु के ही दिए हुए हैं । इसलिए अब इनको भेट करके, सिरजनहार को लीजिए ।

(बिरह पतिव्रत)

दीन दूनी सदकै करौं, टुक देखण दे दीदार ।
तन मन भी छिन छिन करौं, भिस्त दोजग भी वार ॥४०॥

टीका :- सतगुरू देव कहते हैं कि हे प्रभु ! समस्त मत और समस्त धर्म संसार के और हम बिरहीजनों का पतिव्रत धर्म, समस्त संसार के इष्ट अनिष्ट पदार्थ, आपके भेट हैं । और स्वर्ग नरक आदि भी आपके

भेट हैं। और स्वंग नरक आदि भी आपके वारणैं (न्यौछावर) करते हैं। हे स्वामिन्। हमें तो केवल आपके दर्शनों की ही प्रबल इच्छा है। आप दर्शन दीजिए। और तन मन का यह अभिप्राय है कि सम्पूर्ण इन्द्रियां अपने अपने विषयों के व्यापार को त्यागकर, केवल आपके ही ध्यान में, एक रस हो जावें। इस साखी से परम गुरूदेव ने निष्काम कर्म योग का उपदेश किया है। 'दीन दुनी' के न्योछावर, यह कहने से यहां सकाम कर्मों का उल्लेख है। इसलिए जब तक जिज्ञासु सकाम कर्मों में व्यस्त रहता है तब तक स्वर्ग, और नरक आदि का भी उसके लिए बन्धन है। किन्तु निष्काम कर्म का आश्रय लेता है, तो वह जिज्ञासुजन, फिर जीवन मुक्त होकर, परम पद को प्राप्त कर लेते हैं।

दादू हम दुखिया दीदार के, तूं दिल थैं दुरि न होइ।
भावै हमको जालि दे, हूणां है सो होइ ॥४१॥

टीका :- हे प्रभु! आपके दर्शनों के लिये, हम अति दुखी हैं। आप हमारे हृदय से दूर नहीं होइये। हमारा मन आपकी भक्ति में लीन रहै। हे दयानिधे! भले ही आप हमें बिरह अग्नि में जलाइये एवं शरीर आदि का जो होना है सो होवै, किन्तु हम बिरहीजनों का मन, आपके नाम में ही निश्चल रहै, ऐसी अनुकम्पा करिये।

अरिल छंद :-

बालम बस्यो विदेश, भया वह मौन है।
सोवै पांव पसार, सु ऐसा कौन है।
अति ही कठिन यह रैन, बीतती जीव सौं।
हरि हां बाजींद है कोई चतुर सुजान, कह जाय पीव सौं ॥४१॥

(बिरह पतिव्रत)

दादू कहै जे कुछ दीया हमको, सो सब तुम ही लेहु।
तुम बिन मन मानै नहीं, दरस आपणां देहु ॥४२॥
दूजा कुछ मांगै नहीं, हमको दे दीदार।
तूं है तब लग एक टग, दादू के दिलदार ॥४३॥

टीका :- हे कृपामये प्रभु ! आपने जो कुछ लौकिक विभूति कहिए ऐश्वर्य हमें दे रखा है, उसको वापिस ही ले लीजिए, क्योंकि आपके वियोग में संसारिक पदार्थ हमको दुःखरूप प्रतीत होते हैं। इसलिए हम बिरहीजनों को तो केवल आपका दर्शन ही चाहिए । हे प्रभु ! हम आपसे और किसी पदार्थ की भी इच्छा नहीं करते हैं । हमें तो केवल आपका दर्शन ही चाहिए है । हे प्यारे ! दिल की जानने वाले दिलदार ! जब तक इस पंच भौतिक शरीर पर आपकी कृपा है, तब तक यह जीवात्मा आपकी भक्ति में ही लयलीन रहै ।

दादू कहै तूं है तैसी भक्ति दे, तूं है तैसा प्रेम ।
तूं है तैसी सुरति दे, तूं है तैसा खेम ॥४४॥

टीका :- हे भगवन् ! जैसे आप स्वयं निर्मल और एक रस हैं, ऐसी ही निर्मल और अखण्ड भक्ति हमें दीजिए । और आपका जैसा शान्त अनन्त प्रकाश स्वरूप है, वैसा ही हम बिरहीजनों को आपके प्रति निश्चल, निर्मल दिव्य प्रकाश दीजिए । हे प्रभो ! आपका जैसा सूक्ष्म व्यापक स्वरूप है, ऐसी आपके भक्तों की भी, आपमें सुरति हो । हे नाथ ! आपके भक्त, सम्पूर्ण बाह्य बिषयों से अन्तर्मुख होकर, सर्वत्र आप परमेश्वर का ही स्वरूप हम अनुभव करें । इस रीति से भगवत् भक्तों का मनुष्य जीवन, आपके समान ही सत्य स्वरूप और कल्याणमय हौवै । ऐसी आप कृपा करिये ।

दादू कहै, सदिकै करौं शरीर कौं, बेर बेर बहुभंत ।
भाव भक्ति हित प्रेम ल्यौं, खरा पियारा कंत ॥४५॥

टीका :- हे प्यारे प्रीतम ! हम बिरहीजन, अपने इस पंच भौतिक शरीर को बारम्बार कहिए तप, जप, व्रत आदि बहुत कष्ट साधनों के द्वारा, आपके अर्पण करते हैं । हे परमेश्वर ! आप हमारे को भाव भक्ति हित प्रेम और लय रूप साधनों के द्वारा, निश्चय ही प्रिय लगते हो । हमारी प्रार्थना है कि हमारी सुरति, आप में ही सलग्न रहै ।

दादू दर्शन कीरली, हम कौं बहुत अपार ।
क्या जाणों कबही मिलै, मेरा प्राण आधार ॥४६॥

टीका :- सतगुरू देव कहते हैं कि हमें आपके दर्शनों की 'कीरली' नाम, भारी इच्छा लगी हुई है । हे मेरे प्राणाधार ! न मालूम हमें आपका कब दर्शन होगा ? आपके वियोग में अत्यन्त व्याकुल हैं। आपको हम कब मिलेंगे ?

दादू कारण कंत के, खरा दुखी बेहाल ।
मीरां मेरा महर कर, दे दरशन दरहाल ॥४७॥

टीका :- श्री दयालु महाप्रभु भगवत् के प्रति बिलाप करते हैं कि मैं बिरहरनी, अपने पति परमेश्वर के दर्शनों के लिये, अत्यन्त व्याकुल हो रही हूं । 'मीरां' नाम, हे हमारे प्यारे परमेश्वर ! हम पर दया करो और 'दरहाल' कहिए, इस मनुष्य देह में ही अपना दर्शन देकर कृतार्थ करो ।

ताला बेली प्यास बिन, क्यों रस पीया जाइ ।
बिरहा दरशन दरद सौं, हमकों देहु खुदाइ ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'ताला' तलप और 'बेली' बिलाप के सहित, अत्यन्त मिलने की इच्छा, इन साधनों के बिना, प्रभु का प्रेम भक्ति रूप रस कैसे पीया जावै ? हे स्वामिन् ! आप अपने बिरहीजन भक्तों को, आप स्वयं कृपा करके, पूर्वोक्त साधन सम्पन्न बनाइये । हे खुद खाविंद कहिए, हमारे मालिक, आप स्वयं प्रगट होइये ।

ताला बेली पीड़ सौं, बिरहा प्रेम पियास ।
दरसन सेती दीजिये, बिलसै दादू दास ॥४९॥

टीका :- हे स्वामिन् ! मैं बिरहीजन आपके बिरहजन्य पीड़ा और प्रेम पिपासा से अत्यन्त व्याकुल हूं । इसलिये आप दर्शन दीजिये । जिससे यह दास, सदैव ब्रह्म विचार में ही मग्न रहै । पूर्व प्रसंग में यह स्पष्ट कर चुके हैं कि व्यावहारिक जनों को उपदेश देने के निमित्त, प्रभु के अनन्य भक्त स्वयं, अपने आप को पत्नी का उपलक्षण करके, पति स्वरूप भगवत् के प्रति विनय करते हैं । क्योंकि सर्वत्र व्यवहार में दूसरा कोई ऐसा उदाहरण मिलना दुर्लभ है, इसलिए सतगुरु ने पूर्व प्रसंग में सर्वत्र प्रकरण में बिरहणी का उल्लेख करके भी, पुनः प्रस्तुत साखी में दास को पुलिङ्ग लिखा है । इससे विरहणी भक्त का स्वरूप स्पष्ट ही है ।

दादू कहैं, हमकौं अपणां आप दे, इश्क मुहब्बति दर्द ।
सेज सुहाग सुख प्रेम रस, मिल खेलैं ला परद ॥५०॥

टीका :- हे प्रभु ! हम बिरहीजनों को अपना स्वरूप ज्ञान कराके, आपमें प्रेम, बिरह, व्याकुलता, स्नेह और भगवत् दर्शनों की उत्कन्ठा की प्रवृति, उत्पन्न कराइये और बुद्धि रूप स्त्री को, जो आत्म ज्ञान है सो सुहाग है । श्री दयाल जी महाराज भगवत् से विनय करते हैं कि हे प्रभु ! हमारी अन्तःकरण रूपी सेज पर, आत्मनिष्ठ बुद्धि, आपका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करै ।

प्रेम भगति मात्ता रहै, ताला बेली अंग।
सदा सपीड़ा मन रहै, राम रमै उन संग ॥५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो बिरहीजन प्रेमाभक्ति में मस्त होकर, देह बाणी द्वारा, भगवत् का बिरह बिलाप करते हैं, और जिनका मन परमेश्वर के वियोग में अत्यन्त व्याकुल है। ऐसे बिरहीजनों के साथ, सदैव राम रमता है। अथवा पूर्व लक्षणयुक्त बिरहीजन भी, राम में रमते हैं। अर्थात् एकाकार होते हैं।

प्रेम मगन रस पाइये, भगति हेत रूचि भाव।
बिरह बेसास निज नांम सौं, देव दया करि आव ॥५२॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं हे प्यारे प्रीतम ! हम बिरहीजन, आपके प्रेम में मगन होकर, राम रस पान करें, क्योंकि भक्ति के कारण रूचि कहिए, प्रीति सहित, आप में हमारी अन्तःकरण की वृत्ति सलग्न हुई है। इस बिरह की दशा कहिए, अवस्था में केवल आपके ही नाम का, हे प्रभु ! भरोसा है। हे देव ! दया करके तुरन्त दर्शन दीजिए।

गई दसा सब बाहुड़ै, जे तुम प्रगटहु आइ।
दादू ऊजड़ सब बसै, दरसन देहु दिखाइ ॥५३॥

टीका :- श्री दयाल जी महाराज कहते हैं कि जैसे व्यवहार में पतिव्रता, पति के बिरह में बिरहणी की सौन्दर्य आदिक अवस्था जाती रहती है और समस्त वैभव होते हुए भी, संसार उजड़ा हुआ प्रतीत होता है। और पति प्राप्ति से पतिव्रता दशा कहिए अवस्था, सुन्दरता सार्थक हो जाती है। ऐसे दृष्टान्त में, भगवत् विमुखी प्राणी ब्रह्मभाव को बिसार कर, जीव भाव को प्राप्त हो रहे हैं। और भक्ति ज्ञान विवेक वैराग्य आदि दैवी सम्पत्ति से उजड़े हुए हैं। जब ईश्वर सन्मुख होते हैं तो पुनः, ज्ञान, भक्ति विवेक, वैराग्य आदिक साधन सम्पन्न होकर, स्वरूप का बोध करके, ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाते हैं।

हम कसिये क्या होइगा, बिड़द तुम्हारा जाइ।
पीछैं ही पछिताहुगे, ताथैं प्रगटहु आइ ॥५४॥

टींका :- हे प्रभु ! हम बिरहीजनों को कसौटी देने से क्या होगा ? आपके वियोग के दुःख से, यदि हमारे प्राण पिंड का वियोग हो जावै' तो कम है। किन्तु हे नाथ ! भक्त वत्सल या दीनोद्धारणा, पतितपावन आदि,

आपकी इन प्रतिज्ञाओं का ही भंग होगा। जिससे हमारे जीवन का विर्सजन हो जाने पर, अपने भक्तों के वियोग में फिर आपको ही पश्चाताप होगा। इसलिए प्रगट होइये।

दोहा :- तन मन खायो प्रेम रस, हाड़ खून और मांस।
रजना अब क्यों छूटिये, पड़ी प्रेम की फांस ।।५४।।

(छिन बिछोह)

मीयां मैंडा आव घरि, वांडीवतां लोइ ।
दूख खंडे मुहिंडे गये, मरां बिच्छोहै रोइ ।।५५।।

टीका :- दयालु महाराज कहते हैं कि हमारे मीयां कहिए मालिक (स्वामी), मैं दुहागणी स्त्री जिसका पति तिरस्कार करे, 'वंता', भरमती फिरू। 'लोइ'—कहिए लोक लोकान्तरों में, मेरे दुखड़े बढ़ गए हैं। आप मेरे हृदयरूपी घर में अपना प्रकाश करो, क्योंकि आपके बिरह में, मैं दुहागनी भ्रमती फिरती हूं। अब मेरे दुःख अत्यन्त बढ़ गए हैं। हे परमेश्वर ! तेरे बिरहीजन आपके दर्शनों के बिना, रो रो कर मरते हैं। अब अपना दर्शन दीजिए।

(बिरह पतिव्रत)

है सो निधि न पाइये, नहीं सो है भरपूर ।
दादू मन मानै नहीं, ताथैं मरिये झूरि ।।५६।।

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि जो भगवत् वस्तुतः सत्चित् आनन्द स्वरूप है, उसकी तो प्राप्ति होती नहीं है और जो माया प्रपंच वस्तुतः नहीं है उसकी मृगतृष्णा के जलवत, सर्वत्र भ्रान्ति हो रही है। किन्तु दुःख रूप इस माया प्रपंच से तो हम बिरहीजनों का मन, संतुष्ट होता नहीं और नित्य सुख स्वरूप जिस भगवत् की चाहना है, वह प्राप्त है नहीं। इसी से भगवत् भक्त बिरह में, अति तनमय होकर, रो रो कर मर रहे हैं।

अरिल छंद :-

लम्बे लेतउ स्वांस, हियो भरि आइ है।
लगी बिरह की आगि, सु कौन बुझाइ है।

आह करत है जीव, निकस ही जाइ है ।
हरि हां बाजींद बालम बिछुरे, बीर मुवा ही आइ है ॥५६॥

(बिरही बिरह लक्षण)

जिस घटि इसक अलाह का, तिस घटि लोही न मांस ।
दादू जियरे जक नहीं, ससकै सांसैं सांस ॥५७॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि हम बिहरीजन भक्तों को परमेश्वर का अप्राप्ति रूपी दुःख है । उस दुःख से हमारे बिरहीजनों के शरीरों में ईश्वर का प्रेम व्याप्त हो रहा है । उस बिरह के दुःख ने हमारे शरीर का खून जला दिया है और मांस को सुखा दिया है । केवल हड्डियों का पिंजर मात्र रह गया है और श्वांस श्वांस के अन्दर, हम सिसक रहे हैं अर्थात् बिलाप कर रहे हैं:- प्रभु दर्शनों के लिए । हमारे शरीर आदि की हमें कुछ सुध बुध नहीं है ।

अरिल छंद :-

पक्षी एक संदेश, कहो उस पींव सूं ।
बिरहनी है बेहाल, जायगी जीव सूं ।
सींचन हार सूं दूर, सूक भइ लाकरी ।
हरि हां बांजीद घरहि में बन कियो, बियोगनि बापरी ॥५७॥

रत्ती रब्ब न बीसरै, मरै संभालि संभालि ।
दादू सुहदा थीर है, आसीक अलह नालि ॥५८॥

टीका :- हम बिरहीजन एक क्षण भर भी परमात्मा को नहीं भूलते हैं और उसी का स्मरण कर करके, झूर-झूर कर कहिए तड़फ-तड़फ कर मरे जाते हैं । इस रीति से बिरहीजनों का संसारिक पदार्थों से उदासीन मन, केवल भगवान में ही स्थिर होता है ।

दोहा :- चित्तै चित्त उरझात हूं, सोच सोच पछतात ।
भावन्ता के रूप महि, डूब डूब मन जात ॥५८॥

दादू आसिक रब्ब दा, सिर भी डेवै लाहि ।
अल्लह कारणि आपकौं, साड़े अंदरि भाहि ॥५९॥

टीका :- परमेश्वर के बिरहीजन, अपना सिर भी उतार कर दे देवैं और भगवत् दर्शनों के लिए, अपने आप के स्थूल शरीर को, बिरह अग्नि में भी जला देवैं, तो भी उनको ईश्वर साक्षात्कार किए बिना, शान्ति नहीं मिलती है और साखियों में 'सिर' कहिए, आपा अहंकार अविद्याकृत का भी ग्रहण है ।

दोहा :- समन शंकर बावरो, जिन दियो अर्द्धंगं ।
भावन्ता के कारने, बलि कीजे सर्वंगं ॥५९॥

(शिव जी ने अर्ध अंग गिरजा को दे दिया । राजा बलि ने अपना सारा अंग भगवान बावन को अर्पण कर दिया)

भौरे भोरे तन करै, वंडे करि कुरवाण ।
मिट्ठा कौड़ा न लगै, दादू तौ औसाण ॥६०॥

टीका :- हे परमेश्वर ! हम बिरहीजन अपने तन के टुकड़े टुकड़े कर और 'वंडे' कहिए बांटकर, पीस कर, हे ईश्वर ! आपके ऊपर उड़ा दें तो भी, बिरहीजन को आप 'मिट्ठा' कहिए, आपका भक्ति रस, हमें सुखरूप ही लगेगा । ऐसे बिरहीजन, अपने आपको कसौटी पर कसने पर भी, अगर आप प्राप्त हो जाओ, फिर भी वह सुगमता से ही प्राप्त हुआ जानेगें । और आपके फिर सदैव साथ रहेंगे । आपके भक्ति रस से कभी अरूचि नहीं होवेगी । तब ही हम बिरहीजन, अपनी कसौटी पर पूर्ण उतरेंगे ।

(बिरही बिरह लक्षण)

जब लग सीस न सौंपिये, तब लग इसक न होइ ।
आसीक मरणैं नां डरैं, पिया पियाला सोइ ॥६१॥

टीका :- सतगुरू कहते हैं कि जब तक बिरहीजन अपना 'अहम्ता' ममतारूपी सिर, परमेश्वर को अर्पित नहीं कर देवें, तब तक परमेश्वर में पूर्ण प्रेम नहीं होता है। क्योंकि परमेश्वर के प्रेम का प्याला वही बिरहीजन पी सकते हैं, जिनको मरने का कुछ भय नहीं है।

दोहा :- सांई सीतन पाईये, बातौं मिलै न कोइ।
रज्जब सौदा राम सूं, शिर बिन कदे न होइ॥६१॥
(सीतन पाईये = मुफ्त में नहीं मिलता)

(बिरह पतिव्रत)

तैं डी नोंई सभु, जे डीये दीदार के।
उजु लहंदी अभु, पसाई दो पाण के॥६२॥

टीका :- हे परमेश्वर ! आपने हम बिरहीजनों को सब कुछ ही दिया है। आपने अपना दीदार दे दिया, तब फिर कुछ बाकी देने को नहीं रहता है। हे प्रभु ! जैसे प्यास 'अभु' नाम जल के, प्राप्त होने से ही शान्त होती है। ऐसे ही आप अपने आपका दर्शन दो, तो हम बिरही लोगों की प्यास नाम दर्शन की इच्छा पूरी होवै। (शब्दार्थ :-डिनोई = दिया। सभु = सबकुछ। दीदार = दर्शन। उजल = प्यास। लहंदी = मिटना। अभु = जल। पसाइ = देखैं। पाणके = आपके दर्शन। उज = प्यास)

दोहा :- देहु मोज दीदार की, लेहुन याको अंत।
चातक बोलहि चहु दिसा, निशा अंधेरी कंत॥६२॥

बिचौं सभौ दूरी करि, अंदर बिया न पाइ।
दादू रत्ता हिकदा, मन मोहब्बत लाइ॥६३॥

टीका :- सतगुरु महाराज कहते हैं कि हे परमेश्वर ! आपके और हम बिरहीजनों के बीच में, जो बिषय विकार आदि अन्तराय हैं, उन्हें दूर करिये और हमारे से दूर न होइये। हे प्रभु ! हम बिरहीजनों के हृदय में, ऐसी भक्ति पैदा करिये कि एक आप में ही हम रत्त रहें।

(शब्दार्थ :- सभौ = समस्त विषय विकार आदि रूप । बेहा = बिछोह । हिकहा = एक सूं)

(बिरह उपदेश)

दादू इसक मोहब्बत मस्त मन, तालिब दर दीदार ।
दोस्त दिल हरदम हजूरी, यादगार हुसीयार ।६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ । तुम्हारा मन ईश्वर के प्रेम में ही मस्त रहे और हृदय में 'तालिब' नाम ईश्वर के दर्शनों के लिये ही व्याकुलता रहे । 'दोस्त' कहिए प्यारे परमेश्वर में हरदम, श्वांसे श्वांस दिल को 'हजूर' नाम, हाजिर करके, भगवत् स्मरण में ही सलग्न रहना चाहिये ।

दोहा :- गुरू दादू से बादशाह, पूछी साहिब राहै ।
तब या साखी से कही, याही मार्ग जाहै ॥६४॥

दृष्टांत :- अकबर बादशाह ने ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज से परमेश्वर की प्राप्ति का 'मार्ग', नाम रास्ता पूछा । तब उपरोक्त साखी से उत्तर दिया ।

(बिरह लक्षण)

आसिक एक अलाह के, फारिक दुनियां दीन ।
तारिक इस औजूद थैं, दादू पाक यकीन ॥६५॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि जिन भक्तों का एक भगवत् में ही प्रेम है, वे व्यवहार और मत मतान्तरों से मुक्त होकर, विवेक वैराग्य द्वारा, अपने देहादिक अध्यास को भी त्याग देते हैं । और पूर्ण पवित्र होकर, एक भगवत् में अटल विश्वास रखते हैं ।

दोहा :- पूछी एक फकीर से, ताज सीस नहीं तोहि ।
कहि शीश मेरे सदा, च्यार तरक किये जोहि॥६५॥

दृष्टान्त :- एक रोज एक संत दिल्ली में मार्ग पर चले जा रहे थे । सामने से हाथी पर सवार होकर बादशाह भी आ रहा था । बादशाह ने पूछा आप शहनशाह हो और मैं बादशाह हूं । मेरे सिर पर ताज है । आपके सिर पर ताज नहीं है । क्या कारण है ? सन्त बोले :- मेरे सिर पर चार ताज हैं । बादशाह बोला:- कौनसे हैं ? दिखाई तो देते नहीं हैं ? संत बोले, अंधों को नहीं दिखते । आंख वाले देखते हैं । तर्क इस दुनियां का मैंने त्याग किया है । यही ताज मेरे सिर पर है । बादशाह बोला :- उकबे की जरूरत होगी (पद की) । तर्क उकबा दूसरा ताज यह है मैंने उकबे का भी त्याग किया । बादशाह बोला :- 'मौला' की जरूरत होगी । (मौला = खुदा) । फकीर बोला :- तर्क मौला, मैंने मौले का भी त्याग किया । तीसरा ताज यह मेरे सिर पर है । बादशाह बोला :- इस 'त्याग की तो जरूरत है कि मैं ऐसा त्यागी हूं । तर्क तर्क मैंने त्याग का भी त्याग किया । यह चौथा ताज है मेरे सिर पर । बादशाह यह सुनकर शर्मिन्दा हो गया और संत के चरणस्पर्श किया और बोला, आपके ताज सच्चे हैं, मेरा ताज झूठा है ।

(बिरह जिज्ञासु उपदेश)

आसिकां रह कवज कर्दा, दिल वजां रफ तंद ।
अलह आले नूर दीदम, दिल ही दादू बंद ॥६६॥

टीका :- श्री दयाल महाराज उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुजनों ! पूर्वोक्त लक्षण संपन्न परमेश्वर के बिरहीजनों के मार्ग का अनुसरण करके, 'रफतंद' कहिए, निरन्तर अभ्यास द्वारा, दिल की संसारिक वासनाओं को 'वजां' नाम त्यागो । एक परमेश्वर में दिल को रखो, अर्थात् परमेश्वर में ही अन्तःकरण और सुरति की एकाग्रता करो । हे जिज्ञासुओ ! इस प्रकार की साधना से भगवत् के आले, सर्वो उत्तम 'नूर' नाम स्वरूप का 'दीदम' कहिए, दर्शन करोगे । इसलिए समस्त विषयों से उदासीन होकर, भगवत् में ही अन्तःकरण की वृत्ति स्थिर करके, तनमय हो जाओ ।

दोहा :- सुन्दर को दीदार कर, प्रश्न कौन नबाब ।
साहिब देहु दिखाय मोहि, मुख दिखलायो आब ॥६६॥

दृष्टान्त :- महाराज सुन्दर दास जी फतेहपुर में एक तालाब पर बिराजे थे । इनकी नगर में भारी महिमा होने लगी । रायमल जी पौदार एक गलीचा लाए । उसको बिछाकर महाराज से बोले :- इस पर बिराजो । एक रोज इनके ज्ञान की प्रशंसा सुनकर, फतेहपुर का नबाब दर्शन करने आया और बोला :-मैंने सुना है, आप खुदा से मिले हुए हो ? मुझे भी खुदा का दर्शन कराओ । महाराज बोले :- इस तालाब में देखो । नबाब देखने लगा । महाराज बोले :- क्या दिखता है ? नबाब बोला :- मेरा ही मुख दिखता है ।

महाराज बोले :- तूं ही खुदा है, निश्चय कर कि मैं खुदा हूं। यह सुनकर नबाब बोला :- तुम भी खुदा बने बैठे होगे ? महाराज बोले :- बनना क्या है ? मैं तो हूं ही खुदा। नबाब बोला :- मुझको जानते हो, मैं इस फतेहपुर शहर का नबाब हूं। मैं चाहूं तो इस तालाब में तुम्हें डुबा दूं और इस गहरे बन में तुम्हें हाथियों से कुचलवा दूं। मेरे पास चतुरंगी सेना है, तुमको 'कतल' करवा दूं। तब महाराज ने गलीचे का एक पल्ला थोड़ा उठाया। बोले देखो। नीचे जहां तक नबाब की निगाह गई, पानी का दरयाव दिखाई दिया। दूसरा गलीचे का पल्ला उठाया, कहा देखो ! भयंकर बन दिखाई देने लगा और देखा बड़े बड़े शेर घूम रहे हैं। तीसरा पल्ला उठाया और कहा देखो तो फतेहपुर प्रगट दिखायो है। चौथा पल्ला गलीचे का उठाया तो बोले :- देखो। चार प्रकार की सेना खड़ी है। नबाब के रोम खड़े हो गए और कांपने लगा। बोला :- गुरूदेव ! क्षमा करो। आप बोले :- यह कहो मैं खुदा हूं, जब क्षमा करेंगे। उस दिन से नबाब, महाराज सुन्दर दास जी में गुरू भावना के द्वारा, उनका सच्चा शिष्य बन गया और महाराज का ज्ञान उपदेश सुनकर ब्रह्मरूप हो गया।

(शब्द)

दादू इसक आवाज सौं, ऐसैं कहै न कोइ।
दर्द मोहब्बत पाइये, साहिब हांसिल होइ ॥६७॥

टीका :- सतगुरू भगवान उपदेश करते हैं कि आवाज अर्थात् पूजा या प्रार्थना, बांग आदिक शब्दों से ही, किसी को ईश्वर नहीं मिलता है। किन्तु भगवत् भक्तों के हृदय में यदि प्रेम और दुख का बिरह हो, तो भगवत् साक्षात्कार होता है।

(बिरह बिलाप)

दादू कहं आसिक एक अल्लाहः के, मारे अपने हाथ।
कहं आलम औजूद सौं, कहै जवां की बात ॥६८॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि 'आलम' संसार, 'औजूद' शरीर, हे जिज्ञासुजनों ! कहां तो भगवान के प्यारे भक्त हैं ? जो विवेक वैराग्य आदि हाथों से (अपने आपे अहंकार को मार दिया है जिन्होंने) तन मन आदिक के गुण विकारों को त्याग कर, भगवत् में ही रत्त रहते हैं। और कहाँ देहाध्यासी संसारी-जन हैं ? जो जिह्वा से तो ज्ञान वैराग्य की बातें करते हैं, किन्तु मन इन्द्रिये आदि तो संसार में रत्त हैं। अतः वाचक भक्तों को ईश्वर प्राप्ति संभव नहीं है।

दादू इसक अल्लाह का, जे कबहूं प्रगटै आइ ।
तो तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाइ ॥६९॥

टीका :- सतगुरु भगवान कहते हैं कि सौभाग्य से यदि भगवत् के प्रेम का उदय हो जावै तो तन कहिए, अन्नमयकोष स्थूल शरीर, मन पंचकर्म इन्द्रिय मनोमयकोष, बुद्धि सहित पंच ज्ञानेन्द्रिय, विज्ञानमयकोष, प्राणमयकोष, पंच प्राण, आनन्दमयकोष, तुला अविद्या का पड़दा, कारण शरीर सहित आनन्दमयकोष, यह पंच कोषरूपी पड़दा, सब जल जाता है और बिरही जीवात्मा, केवल भगवत् में ही लयलीन रहता है ।

(बिरह जिज्ञासु उपदेश)

अरवाहे सिजदा कुनंद, औजूद राह चिकार ।
दादू नूर दादनी, आसिकां दीदार ॥७०॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज कहते हैं कि हे बादशाह अकबर ! अन्तःकरण में बन्दगी करो । स्थूल शरीर का क्या काम है ? ऐसे बिरहीजनों को भगवत् का नूर प्रकाश, स्वरूप दर्शन बखशीस प्राप्त होता है । भावार्थ यह है कि बाह्य दृष्टि कहिए, स्थूल शरीर के मार्ग को त्याग करके, अन्तर्मुख प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

(शब्दार्थ :- कुनन्द = करो । औजूद = स्थूल शरीर । चिकार = क्या काम । नूर = प्रकाश ।
दीदार = दर्शन । दादनी = बखशीश ।

दोहा :- इबराइम फकर सों, कहि सिरे के लोग ।
कर निवाज करने लग्यो, उठे न बहुरी चोग ॥७०॥

दृष्टान्त :- एक समय फकीर इब्राहीम घूमते हुए दिल्ली में जामा मस्जिद के बाहर आकर बैठ गए । बादशाह काजी मुल्लाओं के साथ निवाज गुजारने रोज जाया करते थे । फिर फकीर का ज्ञान उपदेश सुन कर, महलों में आते । एक रोज काजी मुल्ला बोले :- हजरत यह इब्राहीम साहब मस्जिद में निमाज गुजारने नहीं जाते हैं । बड़े अभिमानी मालूम पड़ते हैं । बादशाह सलामत :- आज आप इनसे बोलो कि मस्जिद में निमाज पढ़ने चलो । बादशाह इब्राहीम से वैसा ही बोला । इब्राहीम बोले :- बादशाह सलामत ! हम तो चौबीस घंटे निवाज में ही रहते हैं । आप कहते हो तो हमें कोई अतराज नहीं, चलेंगें । बादशाह के सहित सब मस्जिद में दाखिल हो गए । काजी मुल्ला बोले :- इब्राहीम साहब ! आप ही बांग दीजिए । वे बोले :-

मुझ से बांग न दिलाओ । आपके सामने फिर कौन देगा ? इब्राहीम बोले :- बादशाह सलामत मुझ से बांग दिलाओगे, तो आपको पछताना पड़ेगा । काजी मुल्ला बोले :- नहीं, हजरत ! आप ही को बांग देना पड़ेगा । जो उन्होंने बांग दिया और नीचे जमीन पर लेटे, तो लेटे हो रह गए । जब निमाज पढ़ चुके, सब लोग तब बोले :- देखिए बादशाह सलामत कितना अभिमानी है ? पहले तो मस्जिद में आया ही नहीं और अगर आया तो अब उठता हो नहीं है । बादशाह अकबर ने कहा :- इसको चेत कराओ । जब चेत कराने लगे तो देखा इब्राहीम तो खत्म हो गए । यह बादशाह देखकर बोला :- अरे मूर्खो ! वे तो बेहद्दी फकीर थे । उसको शरीर के मार्ग से क्या मतलब था ? वह तो भीतर निमाज पढ़ता था । उसने शरीर ही त्याग दिया । ऐसे महापुरुष का दर्शन होना ही कठिन है ।

(बिरह ज्ञान अग्नि)

बिरह अग्नि तन जालिये, ज्ञान अग्नि दौं लाइ ।
दादू नख सिख पर जलै, तब राम बुझावै आइ ॥७१॥

टीका :– श्री दयाल महाराज उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! बिरह अग्नि से शरीर के विषय विकारों को जलाइये और ज्ञान अग्नि को प्रज्वलित करके, मानसिक विकारों को जलाइये । इस प्रकार जब नख से शिखा पर्यन्त, बिरह अग्नि प्रदिप्त होकर, बिरहीजनों के देह अध्यास को जला देवे, तो दयालु परमेश्वर स्वयं आकर, बिरह अग्नि को बुझावेंगें । अर्थात् दर्शन देवेंगें ।

बिरह अग्नि मै जालिबा, दरसन के तांई ।
दादू आतुर रोइबा, दूजा कुछ नांही ॥७२॥

टीका :- हे बिरहीजनों ! भगवत् के दर्शनों के निमित्त अपने में नाम, अहम्ता ममता आदिक अभिमान को जलाइये और बिरह अग्नि से पूर्ण पवित्र होकर, आतुरता सहित भगवत् दर्शनों के लिए, पूर्वोक्त रीति से विलाप करिए । यही बिरहीजनों का कर्त्तव्य है और तीर्थ व्रतादिक कनिष्ट उपाय, बिरहीजनों के अनुरूप नहीं है ।

दोहा :- बिरह अग्नि सब तन तपे, बसत सदा हियें कंत ।
याते बिरहनी नैन जल, निशदिन हिये सिचंत ॥७२॥

(बिरह पतिव्रत)

साहिब सौं कुछ बल नहीं, जिन हठ साधै कोइ ।
दादू पीड़ पुकारिये, रोवतां होइ सो होइ ॥७३॥
ज्ञान ध्यान सब छाड़ दे, जप तप साधन जोग ।
दादू बिरहा ले रहै, छाड़ सकल रस भोग ॥७४॥

टीका :-हे बिरहीजनों ! सामान्य ज्ञान, ध्यान, जप तप अष्टाङ्गयोग, सब प्रेम के बिना और जो भी साधन हैं, उन सबको त्याग दो । और इस लोक के तथा परलोक के इन्द्रियेजन्य रसों के भोगों की आसक्ति को त्यागकर, केवल बिरहभाव को उत्पन्न करिये । अष्टांग योग आदि छोड़ने के हेतु कहते हैं कि 'साहिब सौं कुछ बल नहीं'—अर्थात् सर्वशक्तिवान परमेश्वर के समक्ष "अजाजील" आदि की तरह, हम कोई भी उपाय से पार नहीं पा सकते हैं, इसी से हठयोग आदि क्रियाओं से क्या लाभ है ? हे बिरहीजन ! तुम तो परमेश्वर को बिरह के सहित पुकारो । क्योंकि तुम्हारे रोवते रोवते परमेश्वर जो कुछ करेगें, वह सब उत्तम है । इस प्रसंग में उद्धव जी जौर गोपीयों का संवाद भी अति उत्तम उल्लेखनीय है ।

शेरः- है प्रेम जगत् में सार, और कुछ सार नाहीं है ॥टेक०॥
कहा घनश्याम उधव से, बृन्दाबन जरा तुम जाना ।
वहां की गोपीयों को ज्ञान का, कुछ तत्व समझाना ।
बिरह की बेदना में, वह सदा बेचैन रहती हैं ।
तड़फ करआह भर कर, और रो रो कर यह कहती हैं ।
है प्रेम जगत् में...........॥१॥

कहा उधव ने हंस कर, मैं बृन्दाबन अभी जाता हूं ।
जरा देखूँ कि कैसा है, कठिन अनुराग का बन्धन ।
हैं कैसी गोपीयां जो, ज्ञान बल को कम बताती हैं ।
निरर्थक लोक लीला का, यही गुण गान गाती हैं ।
है प्रेम जगत् में...........॥२॥

चले मथुरा से जब कुछ दूर, बृन्दाबन निकट आया ।
वहीं से प्रेम ने अपना अनोखा रंग दिखलाया ।
उलझ कर वस्त्र में कांटे, लगे उधव को समझाने ।
तुम्हारा ज्ञान पर्दा फाड़ देंगे प्रेम दीवाने ।
है प्रेम जगत् में............ ॥३॥

बिटप झुक कर ये कहते थे, इधर आओ इधर आओ ।
पपैया कह रहा था पीव कहां, यह भी तो बतलाओ ।
नदी जमुना की नाद, हरि हर का सुनाती थी ।
भंवर गुंजार से भी यह मधुर आवाज आती थी ।
है प्रेम जगत् में............ ॥४॥

वहां पहुंचे जहां था, गोपीयों का जिस जगह मण्डल ।
वहां थी शान्त पृथ्वी, वायु धीमी व्योम था निर्मल ।
सहस्त्रों गोपीयों के मध्य में, श्री राधिका रानी ।
सभी के मुख से रह रह कर, निकलती थी यही बानी ।
है प्रेम जगत् में............ ॥५॥

कहा उधव ने जाकर के, कि मैं मथुरा से आया हूं ।
सुनाता हूं सन्देशा कृष्ण का, जो साथ लाया हूं ।
कि आत्मशक्ति ही अलख निर्गुण कहाती है ।
तो फिर क्यों मोह बस होकर, वृथा गुण गान गाती है ।
है प्रेम जगत् में............ ॥६॥

गोपीयों के बोल :-

किन्तु निर्गुण हैं हम तुम, तो कौन कहता है।
खबर किस की अलख हम तुम हैं, तो किस किस को लखती है।
नजर किस की जो है अद्वैत के लायक, तो फिर क्यों द्वैत लेते हो।
अरे खुद ब्रह्म होकर, ब्रह्म को उपदेश देतो हो।
है प्रेम जगत् में………… ॥७॥

अभी तुम खुद नहीं समझे, कि किस को योग कहते हैं।
सुनो इस और योगी द्वैत में, अद्वैत रहते हैं।
उधर मोहन बने राधा, बियोगीनि की जुदाई में।
इधर राधा बनी है, श्याम मोहन की जुदाई में।
है प्रेम जगत् में………… ॥८॥

कहा राधा ने उधव से, कि तुम सन्देसा खूब लाये हो।
परन्तु ये याद रखो प्रेम की नगरी में आये हो।
संभालो योग की पूंजी, न हाथों से निकल जाये।
कहीं बिरह अग्नि में, ज्ञान की पोथी न जल जाये।
है प्रेम जगत् में………… ॥९॥

सुना जब प्रेम का उद्वेग, उधव की खुली आंखें।
पड़ि थी ज्ञान मद की धूल, जिससे ये धुलि आंखें।
हुआ रोमांच तन में, बिन्दु आंखों सें निकल आया है।
गिरे श्री राधीका पद पर, कहा गुरू मंत्र पाया है।
है प्रेम जगत् में………… ॥१०॥

जहं बिरहा तहं और क्या, सुधि बुधि नाठे ज्ञान।
लोक बेद मारग तजे, दादू एकै ध्यान ॥७५॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि जो जिज्ञासुजन परमेश्वर के वियोग में बिरही हो गए हैं और क्या बाकी रह सकता है ? क्योंकि बिरहीजनों के व्यवहारिक सुध बुध और ज्ञानादिक सब कुछ नष्ट हो जाते हैं और परमेश्वर के ही अखंड ध्यान में लीन होकर, बिरहीजन लौकिक रूढ़ी आदि और वेद के विधि निषेध, समस्त मार्गों का परित्याग कर देते हैं।

(बिरही बिरह लक्षण)

बिरहीजन जीवै नहीं, जे कोटि कहैं समझाइ ।
दादू गहीला व्है रहै, तलफि तलफि मरि जाइ ॥७६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के जो सच्चे बिरही भक्त हैं, उन्हें भले ही करोड़ों पुरुष अनेकों प्रकार से समझा करके कहैं, किन्तु वह परमेश्वर के वियोग में कदापि जीवित नहीं रह सकते । जब तक बिरहीजनों को परमेश्वर के दर्शनों की आशा रहती है, तब तक बावले हुए रहते हैं । और जब यह आशा भी नहीं रहती है, तो तलप तलप कर मर जाते हैं ।

दोहा :- बिरही जन के लक्षण त्रय, सुनहु न मेरे बीर ।
श्वांसा सीरी मुख पीरी, दृगन बहत दोउ नीर ॥७६॥

दादू तलफै पीड़ सौं, बिरही जन तेरा ।
ससकै सांई कारणै, मिलि साहिब मेरा ॥७७॥

टीका :- हे मेरे प्रभु ! आपके बिरहीजन भक्त आपकी बिरह पीड़ा से तड़फ रहे हैं । अत्यन्त व्याकुल हैं । हे प्यारे प्रीतम ! केवल आपके दर्शनों की ही आशा से हमारे ये श्वांस अटके हुए हैं । अब जल्दी प्रगट हो जाओ ।

दोहा :- कागा सब तन खाइये, चुनि चुनि खाइये मांस ।
दो नैना नहीं खाइये, मोहि पीया मिलन का आस ॥७७॥

पङ्या पुकारै पीड़ सौं, दादू बिरही जन ।
राम सनेही चित बसै, और न भावै मन ॥७८॥

टीका :- हे प्रभु ! आपके बिरहीजन भक्तों के अन्तःकरण में जो बिरह बाण की चोट लगी है, उससे व्याकुल होकर आपके लिये अखण्ड पुकार करते हैं । एवं शरीर का जैसा प्रारब्ध है, वहां ही पड़े हुए कहिए, गुणातीत हुए, बिरहीजन हे नाथ ! हे नाथ ! इस प्रकार पुकार रहे हैं । क्योंकि बिरहीजनों की चित्त की वृत्ति तो केवल राम आप में ही लीन है । इसलिए किसी भी अन्य पदार्थ से उनको संतोष नहीं होता है ।

अरिल छंद :-

जब तैं कीनों गवन, भवन नहीं भावइ ।
भइ है बैरन रैन, नींद नहीं आव ही ।
मित्र तुम्हारी चिन्त, रहत है जीव को ।
हरि हां बाजींद वो दिन कबहु होइ, मिलूं हरि पीव को ॥७८॥

जिस घटि बिरहा राम का, उस नींद न आवै ।
दादू तलफै बिरहनी, उस पीड़ जगावै ॥७९॥

टीका :- जिस बिरहीजन भक्त के हृदय में राम का बिरहभाव है, उसको नींद नहीं आती है, क्योंकि बिरहणि के हृदय में जो बिरह की पीड़ा है, . उसी से बिरहणि प्रति क्षण व्याकुल रहती है और जागरण करती है, एवं राम नाम में ही एक सुरति लगाये रहती है ।

दोहा :- आठौं पहर साठौं घड़ि, जो सोवैं ते और ।
नैनों में प्रीतम बसै, नहीं नीद को ठौर ॥७९॥

सारा सूरा नींद भर, सब कोई सोवै ।
दादू घायल दरद बंद, जागै अरू रोवै ॥८०॥

टीका :- समस्त शरीर और इन्द्रियों से तो नीरोग होवै और सारे पदार्थ प्रत्यक्ष प्राप्त होवैं, तो सूरा कहिए संसारीजन उनको भोगने में आसक्त हुए, सुख की नींद से सोते हैं। किन्तु घायल कहिए, परमेश्वर वियोगी भक्तजन, बिरह की पीड़ा से अत्यन्त व्याकुल होकर, रात्रि भर कहिए आयु भर, परमेश्वर की प्रतीक्षा में जागते रहते हैं। अर्थात् दर्शनों के लिए विचार करते रहते हैं और ईश्वर दर्शनों में अपनी असफलता देखकर, फूट फूट कर रोते रहते हैं।

दोहा :- व्याधि बिरही बैर विधि, सेवक साहिब संत।
ऋणि रिसक जा चाकरी, ये क्यों सोवै निश्चंत॥८०॥

पीड़ पुराणी ना पड़ै, जे अन्तर बेध्या होइ।
दादूजीवण मरण लों, पड्या पूकारै सोइ॥८१॥

टीका :- बिरहीजन भक्तों के परमेश्वर के बियोग की मानसिक बिरह की पीड़ा उत्पन्न होने पर, वह पुरानी नहीं पड़ती है। उसकी भक्ति में कभी शिथिलता नहीं आती है। अर्थात् श्वांस श्वांस पर, उनकी बिरह वेदना बढ़ती जाती है। तात्पर्य यह है कि व्यवहार में तो शरीर का दुःख ज्यूं ज्यूं पुराना होता जाता है, त्यूं त्यूं नाना सुख दुख संघात कहिए शरीर के भूल जाते हैं। किन्तु बिरहीजनों को तो केवल परमेश्वर का दर्शन ही तो सुख है और दर्शनों का वियोग ही दुःख है। परमेश्वर के भक्तों को ज्यूं ज्यूं दर्शनों की इच्छा बढ़ती जाती है, त्यूं त्यूं बिरह दुःख भी प्रतिदिन असह्य हो जाता है। जिस से 'पीड़' पुरानी नहीं पड़ती है। बिरहीजन जीवन से मरण पर्यन्त, एक परमेश्वर को ही पुकारते रहते हैं।

दादू बिरही पीड़ सौं, पड्या पूकारैं मीत।
राम बिना जीवै नहीं, पीव मिलन की चीत॥८२॥

टीका :- बिरहीजन अत्यन्त बिरह की व्याकुलता से अपने प्यारे परमेश्वर को पुकारते हैं, क्योंकि बिरहीजनों को केवल अपने प्रीतम से ही मिलने की चाह है। इसलिये बिरहीजन राम से विमुख होकर, क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकते।

जे कबहुं बिरहनी मरै, तो सुरति बिरहनी होइ।
दादू पिव पिव जीवतां, मुवा भी टेरे सोइ॥८३॥

टीका :- कदाचित् ईश्वर के दर्शन किए बिना ही, बिरहीजनों के प्राण पिण्ड का वियोग भी हो जावै, तो भी बिरहीजनों की सुरति बिरहनिरूप होकर, देहावस्था में जैसे पीव पीव बिलाप करती है, वैसे ही देह त्यागने पर भी, अपने प्यारे परमेश्वर को सुरति रूप शरीर से पुकारती रहती है। वह बिरहीजन संसार बन्धन से अभय और विरक्त हो जाते हैं।

दोहा :- गुरु दादू आमेर में, बिरही देखे दोई।
तन छूटे गति सुरति सूं, पीव पीव नभ होइ ॥८३॥

दृष्टान्त ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज आमेर में निवास करते थे। वहां आमेर में ही दो बिरहीजन भक्त भी रहते थे। दयाल जी महाराज उनको जानते थे। एक रोज परमेश्वर के दर्शन किये बिना ही उनके शरीर छूट गए। आकाश में सुरति रूप शरीर से वे पीव पीव पुकारने लगे। संतों ने आकाश में यह शब्द सुना। दयालु महाराज से बोले :- यह आकश में पीव पीव की टेर कौन लगाते हैं ? दयालु महाप्रभु बोले :- हे संतो ! वे दो जो बिरहीजन भक्त थे, उनको प्रभु के दर्शन नहीं हुए और शरीर छूट गए। वह सुरतिरूपी शरीर से परमेश्वर को पुकार रहे हैं। जब परमेश्वर दर्शन देकर इनको अपने स्वरूप में लय कर लेंगे, तब उनकी पुकार लय हो जाएगी।

(कथनी विना करणी)

दादू अपनी पीड़ पूकारिये, पीड़ पराई नांहि।
पीड़ पुकारै सो भला, जाके करक कलेजे मांहि ॥८४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अमुख महापुरुष ऐसे ऐसे बिरही हुए हैं। इस प्रकार की पराई पीड़ की चर्चा से कोई लाभ नहीं है। इसलिए यदि बिरह का वस्तुतः सुख का अनुभव करना चाहते हो तो, अपने हृदय में बिरह अग्नि को जागृत करो, क्योंकि वही बिरही भक्त धन्य हैं, जिसके हृदय में परमेश्वर के वियोग का दुःख बना रहता है।

(विरह बिलाप)

ज्यूं जीवत मृतक कारणै, गत करनाखै आप।
यौं दादू कारण राम के, बिरही करै बिलाप ॥८५॥

टीका :- जैसे पतिव्रता स्त्री मृतक पति के बिरह में, अपने पंच भौतिक देह आदि को जीवत ही नष्ट कर देती है। अर्थात् पति की चिता में ही जल जाती है। इसी प्रकार जो भक्तजन परमेश्वर के बिरह में जीवित

ही मृतक तुल्य कहिए, विदेह मोक्ष होकर मुक्त हो जाते हैं। वही बिरही राम के लिए व्याकुल होकर, पूर्वोक्त रीति से विलाप करते हैं।

दोहा :- कृष्ण गमन अर्जुन कह्यो, हस्तिनापुर में जाइ।
तन त्याग्यो कोन्ती तबै, मच्छी ज्यों बिललाइ ॥८५॥

दृष्टांत :- भगवान् श्रीकृष्ण जब गऊ लोक को प्राप्त हो गए और अर्जुन को यह बोल गए कि भुआ जी इत्यादिक को मेरा नमस्कार कहना। अर्जुन जब हस्तिनापुर में आया और अपनी माता कुन्ती के पास गया रोता हुआ, तब माता ने पूछा :- हे पुत्र ! कृष्ण तो ठीक हैं। तब रोता हुआ अर्जुन बोला:-माता! कृष्ण तो हमें छोड़कर परम धाम को पधार गए। इतना सुनकर कुंती भगवान कृष्ण की बिरही भक्त, मच्छी की तरह तड़फने लगी और तीन दफा आवाज लगाई :- हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! कहकर शरीर त्याग दिया और भगवान के पास पहुंच गई। भगवान कृष्ण बोले :- भुआ जी बहुत जल्दी आ गए। हे नाथ ! प्राणों के बिना शरीर किसके आसरे रहता ?

दादू तलफि तलफि बिरहनी मरै, करि करि बहुत बिलाप।
बिरह अग्नि में जल गई, पीव न पूछै बात ॥८६॥

टीका :- हे प्यारे प्रीतम ! हम बिरहीजन आपकी बिरहरूप अग्नि में जले हुए हैं, तथापि आपने अपने बिरहीजनों की सुध भी नहीं ली है। इसी से हे नाथ ! आपके बिरही भक्त नाना प्रकार से करूणा द्वारा रुदन करते हुए, तड़फ तड़फ कर मरते हैं।

दादू कहां जाउं कौण पै पुकारौं, पीव न पूछै बात।
पीव बिना चैन न आवै, क्यों भरौं दिन रात ॥८७॥

टीका :- श्री दयालु महाप्रभु स्वयं को बिरहनि का उपलक्षण करके उपदेश करते हैं कि हे पीव ! आप तो हमारी संभाल लेते नहीं हो ? और हे प्रीतम ! आपके बिना हमको चैन ही कहाँ है ? हे प्रीतम ! आपके बिना हमारा रात दिन किस प्रकार बीतै ? हे नाथ ! आपको छोड़कर मैं यह बिरह का दुःख किस को सुनाऊं ? हमारे तो आपका ही एक आधार है।

दोहा :- बिरहणि बिहरै रात दिन, बिन देखे दीदार।
जन रज्जब जलती रहै, जाग्या बिरह अपार॥८७॥

दादू बिरह बियोग न सहि सकौं, मोपैं सह्या न जाइ।
कोई कहो मेरे पीव कौं, दरस दिखावै आइ॥८८॥

टीका :- हे प्यारे प्रीतम ! आपके बिरह दर्द से हम व्याकुल हैं और इस पर भी फिर हमसे आपका वियोग हो रहा है। यह दुःख हे प्यारे ! अब हमसे सहन नहीं होता है। हे बिरहीजनों ! कोई उस प्रीतम को हमारे समाचार जाकर कहो कि आपके बिरही भक्त अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। इसलिए आप उनको अपना दर्शन देओ, प्रभु।

दोहा :- बिरह पावक उर बसै, नख सिख जारै देह।
रज्जब उपर रहम कर, बरषहु मोहन मेह॥८८॥

दादू बिरह बियोग न सहि सकौं, निस दिन सालै मोहि।
कोई कहौ मेरे पीव कौं, कब मुख देखौं तोहि॥८९॥

टीका :- सतगुरू महाराज अपने को उपलक्षण करके कहते हैं कि हे बिरहीजनों ! अथवा हे प्रभु ! यह बिरह का दर्द, इसके सहित आपका वियोग हमसे अब नहीं सहा जाता है। यह बिरह का दर्द और आपका वियोग, हमारे हृदय में रात दिन सालता है, अर्थात् सताता है। हे बिरहीजनों ! आप लोग कोई हमारे उस प्यारे प्रीतम से कहो, जो हमको अपना मुख दिखलावै, अर्थात् दर्शन देवै।

दोहा :- रज्जब कहिये कौन सौं, इस बिरह की बात।
मानहु रावण की चिता, अहि निश नहीं बुझात॥८९॥

दादू बिरह बियोग न सहि सकौं, तन मन धरै न धीर।
कोई कहौ मेरे पीव कौं, मेटै मेरी पीर॥९०॥

टीका :- अर्थात् परमेश्वर के बिरह का असह्य दुःख है। जिससे हम रात दिन अत्यन्त व्याकुल रहते हैं। हे प्रभु ! आपका यह असह्य बिरह दुःख, हम बिरहीजन नहीं सहन कर सकते हैं। क्योंकि आपके बियोग में हमारे तन मन आदि धैर्य नहीं धरैं हैं। न मालूम इस प्राण पिंड का कब वियोग हो जाये ? हे संतो ! कोई तो हमारा यह संदेश प्रीतम से कहो कि हे दयामय ! अपना दर्शन देकर, अपने बिरहीजनों के दुःख को दूर करिए।

दोहा :- अन्तर है अंतर घणा, बिचहि बिच अपार।
माहैं मांहि न मिलि सकूं, दीरघ दुख करतार ॥९०॥

दादू कहै साध दुखी संसार में, तुम बिन रह्या न जाइ।
औरों के आनन्द है, सुख सौं रैन बिहाइ ॥९१॥

टीका :- हे प्रभो ! इस संसार में आपकी साधना करने वाले बिरहीजन ही अत्यन्त दुखी हैं, क्योंकि आपके दर्शन किये बिना, बिरहीजनों को चैन नहीं मिलता है, और संसारीजन तो मायिक पदार्थों से प्रीति करके, अज्ञान अवस्था में ही अपने आपको सुखी मानते हैं। इसलिए हे प्रभु ! कृपा करके आप अपने बिरहीजनों को दर्शन दीजिए।

दोहा :- दशवें कुल का नाग है, दरद सु देही मांहि।
जन रज्जब ताके डसे, मंत्र मूल कछु नांहि ॥९१॥

दादू लाइक हम नहिं, हरि के दर्शन जोग।
बिन देखे मर जांहिगें, पीव के बिरह बियोग ॥९२॥

टीका :- जैसे किसी भागवान पुरुष के पास पारस होवै, और कोई संसारीजन उसको मूल्य से नहीं खरीद सकते। कदाचित् स्वामी ही स्वयं कृपा करें तो भले ही प्राप्त होवै। इसी प्रकार श्री सतगुरू भगवान ईश्वर के प्रति अपना विनय भाव दर्शाते हैं कि हे प्रभु ! हम बिरहीजन, आपके दर्शनों के योग्य नहीं हैं। हमारे में भक्ति बिरह आदि साधनों में अपूर्णता है और मनुष्य जन्मरूपी यह अमूल्य अवसर प्राप्त करके भी, आपके दर्शनों बिना बिरह व्याकुलता में ही, हम प्राणों का विसर्जन करेगें। हे प्रभु ! आप ही कृपा करें तो, हम

बिरहीजनों का उद्धार हो सकता है। अर्थात् आत्म साक्षात्कार या ईश्वर दर्शन रूप पूर्ण प्राप्ति बिना, जिज्ञासुओं को अपनी साधना में ही अपूर्णता मानती चाहिये। परमेश्वर की भक्त वत्सलता आदि में संशय करना युक्त नहीं है।

दोहा :- दरद नहीं दीदार का, तालिब नांहि जीव।
रज्जब बिरह बियोग बिन, कहां मीले सो पीव ॥९२॥

(बिरह पतिव्रत)

दादू सुख सांई सौं, और सबै ही दुख।
देखौं दरसन पीव का, तिस ही लागै सुख ॥९३॥

टीका :- बिरहीजनों को भगवत् दर्शन में ही सुख है और बियोग में समस्त मायाकृत पदार्थ दुःख रूप ही हैं। इसलिए हे पीव ! ऐसी कृपा करिये कि हम बिरहीजन प्रतिक्षण आपका ही साक्षात्कार करें। हमारे मन में आपके ही साथ सुख है और आपसे ही यह सर्व पदार्थ सुख रूप प्रतीत होवेंगे, अन्यथा केवल दुःख के ही कारण हैं ?

अरिल छंद :-

काजल तिलकत्त मोल तुम्हारा नाम है।
चौबा चन्दन अगर इसी का काम है।
हार हमेल सिंगार, न सोवै राखड़ी।
हरि हां बाजींद जब जीव लागै पीव, और क्यूं आंखड़ि ॥९३॥

चन्दन सीतल चन्द्रमा, जल सीतल सब कोइ।
दादू बिरही राम का, इनसौं कदे न होइ ॥९४॥

टीका :- इस संसार में अनेक ऐसे पदार्थ हैं, जो दुखी हृदय को सुख शान्ति देते हैं जैसे सर्पादि चन्दन की सुगन्धी से सुखी होते हैं। चकोर आदि चन्द्रमा से शान्ति पाते हैं और जल से तो सभी सुखी होते हैं। किन्तु

बिरहीजनों का यह पतिव्रत है कि बिरहीजन केवल परमात्मा के अतिरिक्त और किसी संसारी पदार्थों से सुखी नहीं होते हैं।

(बिरही बिरह लक्षण)

दादू घायल दरदबंद, अंतरि करै पुकार।
सांई सुणै सब लोक में, दादू यह अधिकार ॥९५॥

टीका :– श्री सतगुरू के उपदेशरूपी बाणों के घाव से घायल हैं और भगवत् के बिरह से अत्यन्त दुखी हैं। और दर्शनों के लिए जो अपने हृदय में ही आर्त्त स्वर से (दुखी स्वर से) परमेश्वर को पुकारते हैं, ऐसे भक्तों की पुकार को परमेश्वर सब लोकों में सुनता है और भक्तों को हृदय में पुकार करने का ही अधिकार है।

दोहा :- बिरही बालक गूँग पसु, काहिक है दुख सुख।
रज्जब मन की मन रहै, लह न मार्ग मुख ॥९५॥

दादू जागै जगत गुरू, जग सगला सोवै।
बिरही जागै पीड़ सौं, जे घाइल होवै ॥९६॥

टीका :- समस्त संसार अज्ञान निद्रा में सो रहा है। केवल परमेश्वर ही समस्त माया प्रपंच से मुक्त है, या सौभाग्यवश जिन संसारी पुरुषों को सतगुरू का सत्य उपदेश मिला है, वही परमेश्वर के बिरह दुःख से दुखी होकर, और माया प्रपंच से मुक्त होकर, ब्रह्मलीन होते हैं।

दोहा :- कबिर सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै।
दुखिया दास कबिर है, जागै और रोवै ॥९६॥

(बिरह ज्ञान अग्नि)

बिरह अग्नि का दाग दे, जीवत मृतक गोर।
दादू पहिलि घर किया, आदि हमारी ठौर ॥९७॥

टीका :- व्यवहार में मृतक शरीर के मुख्य दो ही संस्कार होते है, एक तो अग्निदाह, दूसरा भूमि में शरीर को गाड़ देना (दफनाना)। परन्तु श्री सतगुरू उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुजनों! यदि तुम अग्निदाग को उत्तम समझते हो तो, अग्निरूप बिरह का दाग दीजिए, जिससे मनुष्य शरीर निष्पाप होगा और यदि कब्र आदि का संस्कार उत्तम मानते हो तो, जीवत ही मृतक तुल्य संसार वासना से शून्य होकर, आत्मलीन हो जाओ और सर्व माया प्रपंच का कारणरूप परमात्मा का स्वरूप व्यापक है, उसी में घर बनाइये। अन्तःकरण की वृत्ति स्वस्वरूप में स्थिर करिये।

(बिरह पतिव्रत)

दादू देखे का अचरज नहिं, अण देखे का होइ।
देखे ऊपरि दिल नही, अण देखे को रोइ॥९८॥

टीका :- सतगुरूदेव कहते हैं कि हे जिज्ञासुओं! जिन मायावी पदार्थों को जन्म जन्मान्तर से देखते और भोगते आए हो, उनको अब देखकर क्या प्रशंसा करते हो? यह तो परिवर्तनशील हैं। अण देखा तो माया का अधिष्ठान रूप परमात्मा है। उसको देखने की इच्छा करो। जब वे देखोगे तो आपको आश्चर्य होगा। उसी को देखने में इस मानव जन्म की सफलता है। इसलिए माया प्रपंच से उदासीन होकर, तत्ववेत्ता पुरुष तो उस परमेश्वर को देखने के लिये ही पश्चाताप करते हैं। इस साखी से दो सिद्धों को परमगुरूदेव ने उपदेश दिया था।

दोहा :- दोइ सिध स्वामी पै आये, घोड़ा देखरू मन मुस्काये।
स्वामी कह कहां दिल दीया, नीले कान सूं आगे कीया॥९८॥

दृष्टान्त :- गुरूदेव के अंग में देखो।

(बिरह उपजन)

पहलि आगम बिरह का, पीछै प्रीति परकास।
प्रेम मगन लै लीन मन, तहां मिलन की आस॥९९॥

टीका :- परमेश्वर भक्तों के हृदय में प्रथम तो बिरह भाव की उत्पत्ति करता है, फिर परमेश्वर में प्रीति का प्रकाश होता है। तदन्तर परमेश्वर के प्रेम में ही मग्न होकर, बिरहीजनों का मन परमेश्वर की सहजावस्था

रूप समाधि में ही लय रहता है। फिर परमेश्वर के दर्शनों का अधिकारी व मन चारों अवस्थाओं से (बाल्य, किशोर, युवा, वृद्ध) पवित्र होकर, परमेश्वर के दर्शनों की आशा पूरी कर लेता है।

बिरह बियोगी मन भला, सांई का बैराग।
सहज संतोषी पाइये, दादू मोटे भाग ॥१००॥

टीका :- जो मन बिरही होकर, संसार की ओर से तो बियोगी हो गया है और 'सांई' कहिए, परमात्मा में वैराग्य के द्वारा, निश्चय प्रीति करता है और व्यवहार में प्राप्त अप्राप्ति में संतोष रखता है अर्थात् हानि और लाभ में, एक रस रहता है, ऐसे बिरहीजनों का 'मोटा भाग' कहिए, भाग्यशाली हैं, जो सहज में ही परमात्मा का दर्शन प्राप्त करते हैं।

दादू तृषा बिना तनि प्रीति न उपजै, सीतल निकटि जल धरिया।
जन्म लगै जीव पुणगन पीवै, निरमल दह दिस भरिया ॥१०१॥

टीका :- ऐसे ही संसारीजनों के हृदय में तृषा रूप बिरह वैराग्य के बिना परमेश्वर में प्रीति नहीं होती है। वह परमेश्वर कैसा है? वह शीतल, शान्त निर्मल, निराकार रूप से सर्वत्र परिपूर्ण है। सर्व व्यापक परमेश्वर चेतन्य ईश्वर की जीव की सर्व अवस्था अर्थात् अवयवों में व्यापकता होने पर भी नादान संसारीजन, जन्म से मरण पर्यन्त, ईश्वर का एक भी नाम नहीं लेते हैं। वह जीव मन्दभागी हैं।

दोहा :- श्रवणौं सुरति न पीव की, न लेहि समाय।
रज्जब रुचि मांही नहीं, कहां मिले सो आय ॥१०१॥

दादू क्षुधा बिना तनि प्रीति न उपजै, बहु विधि भोजन नेरा।
जनम लगें जीव रती न चाखै, पाक पूरि बहुतेरा ॥१०२॥

टीका :- इसी प्रकार दृष्टान्त में बिरह वैराग्य के बिना, आतमा आनन्द रूपी और भक्ति स्वरूप भोजन को, संसारीजन अनुभव नहीं करते हैं। जन्म से मरण पर्यन्त, ईश्वर से विमुख ही बने रहते हैं।

दोहा :- रसना रसह न लाइये, हिरदय नांहि हेत।
रज्जब रामहिं क्या कहै, हम ही भये अचेत ॥१०२॥

दादू तपति बिना तनि प्रीति न उपजै, संग ही सीतल छाया।
जनम लगै जीव जाणैं नाही, तरवर त्रिभुवन राया ॥१०३॥

टीका :- इसी प्रकार जब तक सतगुरू उपदेश से संसारीजन, संसार कष्ट को नहीं जानते हैं तब तक वैराग्य और परमेश्वर में बिरहभाव उत्पन्न नहीं होता है। तब तक संसारी प्राणी परमेश्वर को जानते हुए भी परमेश्वर से बिमुखी हुए भी भ्रमते हैं।

दोहा :- दर्द बिना क्यूं देखिये, दरसन दीन दयाल।
रज्जब बिरह बियोग बिन, कहां मिलै सो लाल ॥१०३॥

दादू चोट बिना तनि प्रीति न उपजै, औषद अंग रहंत।
जनम लगै जीव पलक न परसै, बूटी अमर अनंत ॥१०४॥

टीका :- तात्पर्य यह है कि जैसे अंग और अंगी का अभेद है, उसी रीति से जीव और ईश्वर का भी अभेद ही है। इसके अतिरिक्त परमेश्वर का अमर अनन्त स्वरूप है। किन्तु मंदभागी जीव बिरह पीड़ा बिना, छण भर भी परमेश्वर का स्मरण नहीं करता है।

दोहा :- पीड़ प्राण रोगी नही, औषदि नाम न लेहि।
तो बैद विधाता क्या करै, दारू दरसन देहि ॥१०४॥

दादू चोट न लागी बिरह की, पीड़ न उपजी आइ।
जागिन रोवै धाय दे, सोवत गइ बिहाइ ॥१०५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसके हृदय में बिरह की चोट नहीं लगी है, उसे ईश्वर के दर्शनों की इच्छा उत्पन्न नहीं होती है । इसलिए संसारीजन अविद्या कहिए अज्ञान से जागकर, दुःख से नहीं रोते हैं । उन जीवों की आयु अविद्या में सोते सोते बीतती है ।

दोहा :- नैनौं नेह न नाह का, वहि दिसि दृष्टि न जांहि ।
रज्जब रामहिं क्यूँ मिलै, तालिब नाहीं मांहि ॥१०५॥

(नाह = पति । तालिब = चाह)

दादू पीड़ न उपजी, ना हम करी पुकार ।
ताथैं साहिब ना मिल्या, दादू बीती बार ॥१०६॥

टीका :- हमारे हृदय में न तो भगवान की बिरहरूप पीड़ा उत्पन्न हुई और न हमने आतुरता से अपने प्यारे प्रीतम को कभी पुकारा ही, इसीलिए हम अपने प्यारे प्रीतम का साक्षात्कार नहीं कर सके और यह मनुष्य जन्म वृथा ही जा रहा है ।

अंदरि पीड़ न ऊभरै, बाहरि करै पुकार ।
दादू सो क्यों करि लहै, साहिब का दीदार ॥१०७॥

टीका :- जिन जिज्ञासुजनों के हृदय में तो बिरह की पीड़ा उत्पन्न हुई नहीं और लोक दिखावे में ईश्वर को पुकारते हैं, तो ऐसे बिरही परमेश्वर का कैसे दर्शन कर सकते हैं ?

मन ही मांहै झूरणां, रोवै मन ही मांहि ।
मन हि मांहै धाह दे, दादू बाहरि नांहि ॥१०८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन में ही व्याकुल होकर बिलाप करिये । मन में ही परमेश्वर के लिए रूदन करिये और भीतर ही प्रबल पुकार करो । बाहर कहिए दुनियां के दिखाने के लिए, कुछ भी साधन नहीं करना । बिरहीजनों के यही लक्षण हैं ।

बिन ही नैनहुं रोवणाँ, बिन मुख पीड़ पुकार ।
बिन ही हाथौं पीटणां, दादू बारम्बार ॥१०९॥

टीका :- अर्थात् जैसे धुआं अग्नि का आदि रूप है तथापि जब अग्नि पूर्ण रूप से प्रज्वलित हो जाती है, तो फिर धुआं अग्नि में विलय हो जाता है। इसी रीति से जब परमेश्वर के बिरहीजन भक्त, जब बिरह की ऊंची दशा में होते हैं, तो बिरहणी की समस्त लौकिक क्रियाएं तथा व्यवहारिक आचार विचार की सुध बुध जाती रहती है।

छन्द :-

प्रीति की रीत नही कुछ जानत, जाती न पातो नही कुलगारो।
प्रेम के नेम नही कछु दीसत, लाज न कान लग्यो सब खारो।
लीन भयो हरि सों अभि अन्तर, आठों पहर रह मतवारो।
सुन्दर कोइ न जान सकै यह, गोकल गांव को पैंडो ही न्यारो ॥१०९॥

प्रीति न उपजै बिरह बिन, प्रेम भक्ति क्यों होइ।
सब झूठे दादू भाव बिन, कोटि करे जे कोइ ॥११०॥

टीका :- परमेश्वर की भक्ति के लिए प्रथम जिज्ञासुजनों में, परमेश्वर के दर्शनों का भाव होना चाहिए। तद्नन्तर दर्शनों के लिए व्याकुल हो। व्याकुलता से रीति से पुनः प्रीति का परिपक्व कहिए स्वरूप में प्रेम हो। तत्पश्चात् जिज्ञासुजनों में अनन्य भक्ति भाव उदय होता है। इसलिए हे जिज्ञासुजनों! परमेश्वर के दर्शनों के भाव बिना, भले ही करोड़ों प्रयत्न करो, किन्तु सब व्यर्थ हैं।

दोहा :- सुन्दर नफो न वस्तु में, नफो भाव में होइ।
भाव बिहुना प्राणियां, बैठा पूंजी खोइ ॥११०॥

दादू बातों बिरह न ऊपजै, बातौं प्रीति न होइ।
बातौं प्रेम न पाइये, जिनिरू पतीजै कोई ॥१११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरह की बात करने से बिरह उपजता नहीं है और प्रीति एवं प्रेम की बातों से (दिखावटी बातों से) प्रेम पैदा नहीं होता है । इसलिये हे जिज्ञासुजनों ! बिरह प्रीति मात्र की बातें करने वाले का विश्वास रहीं करना । पूर्वोक्त लक्षण सम्पन्न है, उसका ही विश्वास करना ।

(बिरह उपदेश)

दादू तौ पिव पाइये, कुसमल है सो जाइ ।
निर्मल मन करि आरसी, मूरत्ति मांहि लखाइ ॥११२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! जैसे दर्पण (शीशा) स्वच्छ हो तो, उसमें अपना वास्तविक स्वरूप दिखाई देता है । इस प्रकार जिज्ञासुजन, अपने अन्तःकरण के मल विक्षेप को धोकर, आरसीरूपी मन को निष्पाप करके, स्वस्वरूप का दर्शन करो ।

दादू तो पिव पाइये, करि मंझे बिलाप ।
सुनि है कबहूं चित्त धरि, परगट होवै आप ॥११३॥

दादू तो पिव पाइए, करि सांई की सेव ।
काया मांहि लखाइ सी, घट ही भीतर देव ॥११४॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! परमात्मा देव तुम्हारे हृदय में ही विद्यमान हैं । उसका अपने आप में ही स्व-आत्मरूप से अनुभव करो । किस रीति से ? सो बताते हैं कि अन्तरगत कहिए, अन्तःकरण में ही परमेश्वर का बिलाप करिये और भीतर ईश्वर चिंतन रूप परमेश्वर की सेवा करिये । क्योंकि परम दयालु परमेश्वर सर्वत्र व्यापक हैं । वे अपने बिरही भक्तों के बिलाप को सुनकर उनकी सेवा को स्वीकार करके, परमेश्वर कभी भी प्रगट हो सकते हैं । इसलिए सदैव परमेश्वर की भक्ति में ही लीन रहो ।

दादू तो पिव पाइये, भावै प्रीति लगाइ ।
हैजैं हरि बुलाइये, मोहन मंदिर आइ ॥११५॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! श्रद्धापूर्वक परमेश्वर में प्रीति लगाओ और मन, सुरति को एकाग्र करने से अपने प्रीतम प्यारे के दर्शन होंगे । जो सब पापों को हरने वाले परनेश्वर स्वरूप हरि हैं उनको 'हैजै' कहिए बिरह की व्याकुलता से पुकारिये । हे मोहन ! मेरे हृदय रूपी मंदिर में प्रगट हो ।

(बिरह उपजन)

दादू जाकै जैसी पीड़ है, सो तैसी करै पुकार ।
को सुखिम को सहज मैं, को मृतक तिहि बार ॥११६॥

टीका :- जिसके हृदय में जैसी बिरह की पीड़ा होती है, वह वैसी ही पुकार करता है। जो कनिष्ठ श्रेणी के बिरहीजन हैं, वे तो अल्प समय में भगवान को पुकारते हैं और मध्यम श्रेणी के बिरहीजन, सहजभाव से पुकारते हैं। और उत्तम श्रेणी के बिरहीजन तो क्षण भर भी ईश्वर का वियोग नहीं सह सकते, अपितु पुकारते ही रहते हैं। और उत्तम बिरहीजनों का परमेश्वर के वियोग में उसी क्षण, प्राण पिण्ड का वियोग हो जाता है।

(बिरह लक्षण)

दरद हि बूझै दरद वंद, जाके दिल होवै ।
क्या जाणै दादू दरद की, नींद भरि सोवै ॥११७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के बिरहीजन ही भक्तों के असह्य दुःख को समझते हैं। शेष जो संसारीजन मोह निद्रा में मग्न हैं, वे परमेश्वर के भक्तों के बिरह दुःख को क्या समझें ? तात्पर्य यह है कि अविद्या की निद्रा में संसारीजनों को ईश्वर का बिरहभाव प्राप्त नहीं होता हैं। जिससे संसारीजन ईश्वर विमुखि हुए ही भ्रमते हैं।

(करणी बिना कथनी)

दादू अक्षर प्रेम का, कोई पढैगा एक ।
दादू पुस्तक प्रेम बिन, केते पढैं अनेक ॥११८॥

दादू पाती प्रेम की, बिरला बांचै कोइ ।
बेद पुरान पुस्तक पढै, प्रेम बिना क्या होइ ॥११९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अनेक पण्डित लोग, प्रेम के बिना रोजगार समझकर वेद, पुराण, धर्म ग्रन्थों के पाठ करते हैं, परन्तु प्रेमपूर्वक निष्काम भाव से कोई बिरले ही पढ़ते हैं। परमेश्वर का बिरहरूपी दर्द, किसी बिरले पुरुष के ही होता है और बाकी तो सब जीवन निर्वाह के लिए ही, परमेश्वर के प्रेम की कथा वार्ता कहते और सुनते हैं। परन्तु निष्काम प्रेम बिना समस्त वेद पुराण आदिक पढने से क्या लाभ है ? केवल

उदरपूर्ति हो जाती है । परमेश्वर के दर्शन तो सम्भव है नहीं, इसलिए जो निष्काम परमेश्वर के भक्त, प्रेम की पत्रिका पढ़ते हैं, वे ही धन्य हैं ।

(बिरह बाण)

दादू कर बिन सर बिन कमान बिन, मारे खैंची क सीस ।
लागी चोट ससीर में, नख शीख सालै सीस ॥१२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! दयालु सतगुरू ने हाथ बिना, बाण बिना, धनुष बिना, कान पर्यन्त खैंचकर, बिरह के बाण मारे हैं, जिससे शरीर में सब चोटों से असह्य चोट लगी है, जो नख से शिखा पर्यन्त, बिरहीजनों को व्याकुल कर रही है ।

दादू भलका मारै भेद सौं, सालै मंझि पराण ।
मारणहारा जाणी है, कै जिहि लागै बाण ॥१२१॥

टीका :- शब्द बाण का भाला मर्मस्थान (हृदय) में आत्मज्ञानी सतगुरू ने जिज्ञासुओं की जिन विषयों में प्रवृत्ति देखते हैं, उनमें निःसारता का बोध कराके वैराग्य का उपदेश देते हैं और परमेश्वर के प्रति बिरहभाव उत्पन्न करते हैं । जिससे प्राणधारियों के हृदय में, असह्य बिरह दुःख है । किन्तु बिरहीजनों के उस बिरह दुःख की व्यथा को सतगुरू या बिरहीजन ही जानते हैं, और कोई नहीं जानते ।

दादू सो सर हमको मारी ले, जिहि सरि मिलिये जाइ ।
निस दिन मारग देखिये, कबहूं लागे आइ ॥१२२॥

टीका :- बिरहीजन कहते हैं कि हे सतगुरू ! जिस बिरह उपदेश से हमें स्वरूप बोध प्राप्त अर्थात् ईश्वर दर्शन हों, ऐसा आपका बिरह उपदेश सदा ही मिलता रहै । प्रतिक्षण हम यही प्रतीक्षा करते हैं कि कब तो आपका बिरह उपदेश मिलै और कब हम, अपने स्वरूप का निश्चय करें ?

दादू मारे प्रेम सौं, बेधे साध सुजाण ।
मारण हारे कौं मिले, दादू बिरही बाण ॥१२३॥

टीका :- तात्पर्य यह है कि व्यवहारिक मंत्र सिद्धि, अस्त्र-शस्त्र आदिकों की वे तो लक्ष्य भेदन करके ही अपने स्वामी के पास आ मिलते हैं, किन्तु परमेश्वर के बिरह बाणों का यह स्वभाव है कि बिरह बाण अपने लक्ष्य ही को संग लेकर, मारणहारे के पास आ मिलते हैं ।

जिहि लागी सो जागि है, बेध्या करै पुकार।
दादू पिंजर पीड़ है, सालै बारम्बार ॥१२४॥

बिरही ससकै पीड़ सौं, ज्यूं घायल रण मांहि।
प्रीतम मारे बाण भरि, दादू जीवै नांहि ॥१२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रीतम प्यारे परमेश्वर ने 'बाण भरी' नाम बिरह, भावरूप मंत्र तंत्र आदिक से सिद्ध करके, बिरहीजनों के बिरह के बाण मारे हैं। जिससे बिरहीजन जीवै नहीं, अर्थात् संसार विषयों में पुनः आसक्त नहीं होते हैं और 'जागी' कहिए, अविद्या निद्रा से मुक्त होकर, बेध्या बिरहदुख से व्याकुल हुए, केवल प्यारे प्रीतम को ही पुकारते हैं। जैसे युद्धक्षेत्र में कोई शूरवीर घायल हो जाये, तो सद्गति के लिए ससकता है, वैसे ही बिरहीजन अपने प्रीतम, स्वस्वरूप में अभेद होने के लिए अति व्याकुल हैं।

दादू बिरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति कौं, पंच पुकारैं पीव ॥१२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के दर्शनों के लिए जिन भक्तों को व्याकुलता हो रही है, उनको परमेश्वर का क्षणभर का वियोग भी असह्य प्रतीत होता हैं। जिससे जीवात्मा माया प्रपंच की यथार्थता का बोध प्राप्त करके, स्वरूप निश्चय में प्रवृत्त होता है और पुनः स्वरूप बोध होने पर, जीव की सूक्ष्म संस्काररूप, सुरति माया आवरण को छोड़ कर, स्वस्वरूप में स्थिर होती है। जिससे चतुर्थ अवस्था में बिरहीजनों का पंच तत्वों का बना हुआ समस्त शरीर, पीव पीव पुकारता है, अर्थात् रोम रोम से अन्तर्ध्वनि होने लगती है। पंच शब्द से पांच ज्ञानेन्द्रियों का भी तात्पर्य सम्भव है अर्थात् पांचों ज्ञानेन्द्रियां ब्रह्माकार होकर, पीव को पुकारती हैं।

सहजैं मनसा मन सधैं, सहजैं पवनां सोइ।
सहजैं पंचौं थिर भये, जे चोट बिरह की होइ ॥१२७॥

टीका :- यदि बिरह का सच्चा दुख होवे तो बिरहीजनों की सहजावस्था होने पर, मन, बुद्धि, प्राण आदिक पवन तथा पांचों ज्ञान इन्द्रियां स्वस्वरूप में पूर्ण निश्चल हो जाती हैं।

मारण हारा रहि गया, जिहि लागी सो नांहि।
कबहूं सो दिन होइगा, मेरे मन मांहि ॥१२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरहीजन कहते हैं कि जब प्यारे प्रीतम ने बिरह रूपी बाण मारे, तो लगने वाले के केवल परमेश्वर का ही फिर स्मरण रहता है और जिनको ये बिरह बाण लगते हैं उनका आपा अहंकार आदिक परिछिन्न भाव समाप्त हो जाता है । अर्थात् जीव और ब्रह्म का जो द्वैतभाव था, वह सब दूर हो जाता है । इसलिए हे प्रियतम ! वह दिन कब आवेगा ? जब यह पूर्वोक्त आनन्द भाव मुझ बिरहणी के हृदय में व्याप्त होगा ।

प्रीतम मारे प्रेम सौं, तिन कौं क्या मारै ।
दादू जारे बिरह के, तित कौं क्या जारै ॥१२९॥

टीका :- हे प्यारे प्रीतम ! बिरहीजनों को आपने अपने प्रेम रूपी बाण मारे हैं, अर्थात् जिनके अविद्या आदिक माया आवरण दूर किए हैं उनको आप अपने दर्शनों के वियोग में क्यों तड़फाते हो ? हे परमेश्वर ! जो आपकी बिरह अग्नि में जले हुए हैं, उन्हें अब अपने दर्शनों के बिना, क्यों जलाते हो ? अथवा जिन बिरहीजनों के गुण विकार, बिरह भाव से ही जल गए हैं, वे उन गुण विकारों को मारने के लिये और उपाय क्या करेंगे ? जो बिरहीजन परमेश्वर के बिरह दुःख से मरे हुए हैं, उन्हें और काल आदिक क्या मारैंगे ? इसी रीति से 'दादू बिरह के,'—इस तुक का भी विकल्पार्थ जानना चाहिए । फिर उनको कोई क्या जलायेगा ?

(छिन विछोह)

दादू पड़दा पलक का, एता अन्तर होइ ।
दादू बिरही राम बिन, क्यौं करि जीवै सोइ ॥१३०॥

टीका :- हे प्यारे प्रीतम ! आपके दर्शनों में यदि पलमात्र का भी अन्तर हो तो, वह सहा नहीं जाता है और जो पलमात्र से भी अधिक वियोग होवै, तब तो परमेश्वर के वियोग में बिरहीजनों का जीवन ही कहां संभव है ?

(बिरह लक्षण)

काया मांहै क्यौं रह्या, बिन देखे दीदार ।
दादू बिरही बावरा, मरै नहीं तिहिं बार ॥१३१॥

टीका :- हे बिरहीजनों ! परमेश्वर के दर्शनों बिना भी ये तुम्हारे प्राण इस शरीर में कैसे बस रहे हैं ? क्योंकि जो बिरहीजन प्यारे प्रीतम का वियोग होते ही, अपने प्राणों का विसर्जन नहीं करते हैं, वे बिरह की कसौटी को नहीं समझ पाए हैं ।

(बिरह कसौटी)

बिन देखे जीवै नहीं, बिरह का सहि नाण ।
दादू जीवै जब लगैं, तब लग बिरह न जाण ॥१३२॥

टीका :- उत्तम बिरही भक्त की यह कसौटी है कि वह परमेश्वर के वियोग में क्षण में, क्षण भर भी जीवित नहीं रह सकता । कदाचित् कोई जीवित रहै, तो वह पूर्ण बिरही नहीं है ।

(बिरह बिनती)

रोम रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार ।
राम घटा दल उमंगि करि, बरसहु सिरजन हार ॥१३३॥

टीका :- हे सिरजनहार! हम बिरहीजनों को रोम रोम से राम रस की प्यास है, जिससे प्रतिक्षण आपको ही पुकारते हैं । हे दयानिधि ! राम रस की घटा उत्पन्न करके, आप अपना दर्शन दीजिए ।

(बिरही बिरह लक्षण)

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहि ।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नांहि ॥१३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारे समस्त शरीर में एक प्रियतम की प्रीत ही व्याप्त हो रही है । जिससे प्रत्येक रोम रोम से पिव पिव की ध्वति हो रही है। ऐसे बिरहीजनों के हृदय में 'दूसर नांहि' नाम कहिए, ब्रह्म से अतिरिक्त और कोई द्वैतभाव नहीं है । अथवा बिरहीजन ही, पिव पिव करते हैं और दूसरे संसारीजन नहीं करते हैं ।

दोहा :- चित्त न आवत और, तब मूरति उर में बशी ।
नीर न पावत ठौर, उमंगि चल्यो मग नैन व्है ॥१३४॥

सब घट श्रवनां सुरति सौं, सब घट रसना बैंन ।
सब घट नैनां व्है रहै, दादू बिरहा अैंन ॥१३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कान, जिह्वा, समस्त शरीर देह के रोम रोम श्रोत्र-इन्द्रिय रूप होकर, ईश्वर सुरति में ही लीन रहै अर्थात् ईश्वर के गुणानबाद सुनने में ही मग्न रहै और शरीर के रोम रोम रसना-इन्द्रिय रूप होकर, शेष भगवान की भांति परमेश्वर के स्मरण में ही लग्न रहै । उच्चारण शक्ति सम्पन्न होवैं । इसी प्रकार शरीर के रोम रोम अनन्त नेत्ररूप बनकर, परमेश्वर को देखने के योग्य बनें । ऐसे उत्तम बिरहीजन परमेश्वर का स्वरूप ही होते हैं ।

दोहा :- पृथु नृप सुमरण विष्णु से, मांगे रोम शरीर ।
कहा विष्णु द्वै कान में, व्है है रूचि नृप धीर ॥१३५॥

दृष्टान्त :- राजा पृथु की भक्ति देखकर भगवान विष्णु प्रगट हुए और बोले :- वरदान मांगो । राजा बोला :- हे नाथ ! मेरे रोम रोम श्रोत्र बना दो, जिससे मैं आपका कथा अमृत श्रवण किया करूं । भगवान बोले राजन् ! शरीर की सुन्दरता खराब हो जाएगी । जो रोम रोम श्रोत द्वारा कथा का आनन्द प्राप्त होगा, वह आपके दो ही कानों से प्राप्त हुआ करेगा । यह कह कर भगवान विष्णु अन्तर्ध्यान हो गए ।

(बिरह बिलाप)

रात दिवस का रोवणां, पहर पलक का नांहि ।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिब माँहि ॥१३६॥

टीका :- व्यवहार में तो नाना सुख दुःख संघात से (शरीर से) रूदन आदिक में न्यून अधिक भाव भी सम्भव है । किन्तु बिरहीजनों को तो एक भगवान का ही पतिव्रत है । इसलिए ईश्वर वियोग में रात दिन का ही रोवणां बना रहता है । ऐसे परमेश्वर के अनन्य बिरहीजन, परमेश्वर के बियोग में रोते रोते, तदाकार वृत्ति होकर, परमेश्वर में ही लीन हो जाते हैं ।

दोहा :- अजैपाल के रूदन को, पूछ सकत नहीं कोइ ।
बृद्ध विप्र गयो पूछ के, तीन सिध तहं जोइ ॥१३६॥

दोहा :- तहां चार लख कोटड़ि, देखन कीयो बिचार ।
गज द्विज नांद्यो देखकर, खर चढ रोत अपार॥१३६॥

दृष्टान्त :- राजा अजयपाल को एक महात्मा ने, परमेश्वर की विरह भक्ति का उपदेश दिया था । वह एक पहर रोया करते थे । उनके रोने को देखकर, रणवास और जनता बहुत दुखी रहती थी । परन्तु राजा को पूछ नहीं सकते थे । रोने के समय एक रोज राजा का पुरोहित राजा के पास जाकर बैठा । जब राजा रोने से बन्द हुआ तो पुरोहित को नमस्कार किया । फिर पुरोहित ने पूछा :-महाराज ! आपको क्या दुख है ? तब राजा बोला :- अमुक स्थान पर जाओ, वहाँ आपको पता चलेगा ? ब्राह्मण वहीं पहुंचा । महात्मा का दर्शन किया और वहां देखा, तो वह महात्मा दो पहर रोते थे । फिर वहां से महात्मा का आदेश पाकर और आगे गए वहां आठों पहर ही एक संत का रोना देखा । जब आधी रात का समय हुआ, तब एक विमान आया । महात्मा जी ने रोना बन्द किया और ब्राह्मण ने महातमा जी को नमस्कार किया । पूछा :- कहां से आये हो ? पूर्वोक्त वृतान्त ब्राह्मण ने सब सुना दिया । गुरू महाराज ने वहां चाबियों का झूमका डाल दिया और बोले:- यह हमारी चार कोठरियां हैं, इनको खोलकर नहीं देखना । यह कहकर विमान में बैठकर, गुरूदेव परमधाम को चले गए । फिर ब्राह्मण ने पहली कोठरी को खोला । तो उसमें देखा, इन्द्र का हाथी खड़ा है । बोला:-स्वर्ग में चलेगा ? बोला हां चलूंगा । मुझ पर बैठ । तत्काल स्वर्ग में ले गया । इन्द्र के दर्शन कराये । फिर आकर उसी जगह खड़ा हो गया । और कहा कि मुझे बन्द कर दो ।

दूसरी कोठरी खोली, उसमें देखा गरूड़ खड़े हैं, कहा :- बैकुण्ठ चलेगा ? पूर्व की भांति घूमाकर ले आया । और कहा :- बन्द कर दे ।

तीसरी कोठरी खोली । उसमें नन्दीगण खड़ा था । तुरन्त कैलाश में ले गया और वैसे ही आकर कोठरी में खड़ा हो गया । कहा :- मुझे बन्द कर दो । चौथी कोठरी खोली तो शीतलावाहन अर्थात् गर्धव खड़ा था, बोला :- मृत्तलोक में चलेगा । हां । बैठ मुझ पर । तुरन्त अजमेर के बाहर गर्धव आकर खड़ा हो गया । बोला :- दो घन्टे में आ जाना, फिर नहीं मिलूगां । ब्राह्मण दो घन्टे में राजा के पास न पहुंच सका और बीच में समय खतम हो गया, गर्धव चल दिया । बीच मार्ग से ब्राह्मण दौड़ा, गर्धव के पास, कि थोड़ा और रूको, यह कहने को । गर्धव को नहीं देखा, तो ब्राह्मण मूर्छित होकर, वहीं गिर पड़ा । "हाय स्वर्ग ! हाय बैकुन्ठ ! हाय कैलाश ! हाय गुरू महाराज !-" पुकारने लगा । जनता एकत्रित हो गई । राजा भी आ पहुंचा । राजा बोला हे ब्राह्मण ! तुम मुझे मेरा रोना पूछते थे, तुम किस लिये रोते हो बतलाओ? ब्राह्मण राजा की तरफ देख कर बोला :—हाय स्वर्ग ! हाय बैकुण्ठ ! हाय कैलाश ! हाय गुरू महाराज ! राजा बोला :—तुमने आंखों से तो दर्शन कर लिये, धन्य है, मैं तो अभी रोता ही हूं ।

ऐसे ही ईश्वर के बिरही भक्त रात दिन रूदन करते करते, ईश्वर में ही लय हो जाते हैं ।

दादू नैन हमारे बावरे, रोवैं नहीं दिन रात,
सांई सगं न जागही, पीव क्यौं पूछै बात ॥१३७॥
नैनहुं नीर न आइया, क्या जाणैं ये रोइ।
तैसैं ही करि रोइये, साहिब नैनहु जोइ ॥१३८॥

टीका :- हमारे नेत्र कर्तव्य शून्य हैं। क्योंकि परमेश्वर के बिरह में ये रात दिन नहीं रोते हैं और 'सांई संग न जागही'--अर्थात् परमेश्वर का संग छोड़कर, बाह्य पदार्थों में आसक्त हो रहे हैं। इसलिए हमारे प्रीतम सुख दुःख की संभाल कैसे लेवैं ? हमारे इन नेत्रों में नीर तक नहीं आया है। यह क्या रो जानें ? हे बिरहीजनों ! इतनी बिप्रता से रोना चाहिए कि हमारा स्वामी प्रसन्न होकर, इन नेत्रों को देखै, अथवा इतना रोवै कि इन नेत्रों का संसार मैल धुल जावै और फिर पवित्र नेत्र, अपने साहिब का दर्शन करैं।

दोहा :- सकल बोल बिरक्त भये, गुरू बाइक मन लाग।
रज्जब रोवै दर्श को, यहु सांचो बैराग ॥१३८॥

दादू नैन हमारे ढीठ हैं, नाले नीर न जांहि।
सूके सरां सहेत वै, करक भये गलि मांहि ॥१३९॥

टीका :- हमारे ये नेत्र निर्लज्ज हैं, क्योंकि इन नेत्रों से आंसुओं के नाले नहीं बहते हैं, एवं नीर के नाले के साथ ये नेत्र गलकर भी नहीं बह जाते हैं। कैसे ? कि जिस तरह तालाब के सूक जाने पर, उसमें रहने वाले मीन मैंडक आदि भी उसी में गल कर सूक जाते हैं। ऐसी अवस्था हमारी होवे, तो हम बिरह भाव को प्राप्त होवें।

(बिरही बिरह लक्षण)

दादू बिरह प्रेम की लहर में, यहु मन पंगुल होइ।
राम नाम में गलि गया, बूझे बिरला कोइ ॥१४०॥

टीका :- जब मन बिरह के प्रेम की तनमयता में निर्वासनिक होकर, राम नाम में पूर्ण अभेद हो जाये, तब सफलता है। किन्तु कोइ बिरला भाग्यवान मुमुक्षुजन ही, इस कसौटी को समझते हैं या पार उतरते हैं।

(बिरह ज्ञान अगिन)

दादू बिरह अगनि मैं जलि गये, मन के मैल विकार।
दादू बिरही पीव का, देखैगा दीदार ॥१४१॥
बिरह अगनि में जल गये, मन के विषय विकार।
ताथैं पंगुल व्है रह्या, दादू दरि दीदार ॥१४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरह रूप अग्नि में मन के मैल, ईर्ष्या, विषय विकार कहिए काम क्रोध लोभ मोह आदि जल गए है, जिससे बिरही मन पंगुल, निर्विकार होकर, 'दरि'—अन्तःकरण में परमेश्वर का दर्शन करता है।

जब बिरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा राम।
काया लागी काल व्है, कड़वे लागे काम ॥१४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब दरद सहित बिरह भाव का उदय हुआ, तो फिर राम नाम में ही चित्त की वृत्ति सलग्न रहती है और शरीर सम्बन्धी जो विषय विकार हैं, वह सब काल रूप प्रतीत होते है। और शरीर फिर बन्धन रूप प्रतीत होने लगता है। और संसारिक कामनाओं से मन, अनासक्त हो जाता है।

दोहा :- गृह दारा सुत बित्त सूं, यहु मन भया उदास।
जन रज्जब राम ही रच्या, छूट्या जगत निवास ॥१४३॥
(राम ही रच्या = जब राम में लगता है।)

जब राम अकेला रहि गया, तन मन गया बिलाइ।
दादू बिरही तब सुखी, जब दरस परस मिलि जाइ ॥१४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब निरन्तर अभ्यास करते करते बिरहीजनों की सुरति एक परमेश्वर में ही स्थिर होती है, तो फिर तन मन की सुध बुध चली जाती है, क्योंकि परमेश्वर से साकार रूप में मिलने से बिरहीजन परमसुखी होते हैं, और बिरह में बेसुध रहते हैं।

जे हम छाड़ै राम कौं, तो राम न छाड़ैं ।
दादू अमली अमल थैं, मन क्यूं करि काढै ॥१४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के भक्तों के हृदय में अनन्य बिरह भाव उपजता है, जिससे बिरहीजनों की सुरति परमेश्वर से कभी अलग नहीं होती है । जैसे संसारी अमली अमल का, साधारण नशा नहीं छोड़ सकता, तो फिर परमेश्वर के बिरही भक्तों की बात ही क्या है ? वे भक्ति को कैसे छोड़ें ?

दोहा :- मन माहीं साजन बसे, मो मन साजन हाथ ।
नर कर दर्पन मांहि नर, अरस परस जगन्नाथ॥ १४५॥

(बिम्ब प्रतिबिम्ब)

बिरहा पारस जब मिलै, तब बिरहनी बिरहा होइ ।
दादू परसै बिरहनी, पिव पिव टेरै सोइ ॥१४६॥

टीका :- जैसे पारस से मिलते ही लोहा कञ्चन हो जाता है, उसी रीति से पारस रूप बिरह के मिलते ही बिरहीजन परमेश्वर रूप हो जाते हैं ।

दोहा :- दोस्त नहीं दरद सम, जो दिल अन्दर होय ।
जीव शिव एकै करै, जो थे सदा येह दोय ॥१४६॥

आसिक मासुक व्है गया, इसक कहावै सोइ ।
दादू उस मासूक का, अल्लहि आसिक होइ ॥१४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सेवक कहिए बिरहीजन भक्त, और मासूक नाम परमेश्वर अर्थात् बिरहीजन परमेश्वर रूप हो जाते हैं । भक्ति की शक्ति देखिए कि स्वयं भगवान ही सेवक बनकर, अपने बिरहीजन भक्तों की सेवा करते हैं । अर्थात् उनका ही रूप बन जाते हैं । इस दशा पर पहुंचने पर प्रेम की पूर्णता है ।

छन्द :-

ओलिया निजामुदीन बावड़ी चुणावै रात।
नीर दीप जोइके-दीखावै करामात को।
आइ के कलदंर बुली, छीन लई गए तेहू।
आवत मूरीद पूछी, कही उन रात को ।
गावत अनूप जारी, झायो उस बालक को।
देखत अखडं ताहि, पाव नित शन्ति को।
स्पर्श करत भू, बैठि के उछगं में, मासूक कहायो उन डाढी अैच।
औलिया नीजाम को, कहायो बड़ी भांति को ॥१४७॥

दृष्टान्त :- एक समय औलिया निजामुद्दीन ने बावड़ी चिनवाने का काम शुरू किया। इधर बादशाह अकबर ने भी एक महल बनवाना शुरू किया। दिल्ली के जितने मिस्त्री थे, उन सबको निजामुद्दीन ने बुलाया और कहा :- हमारी बावड़ी पहले बनाओ। बादशाह ने सुना कि तमाम मिस्त्री निजामुद्दीन के यहां जाते हैं। बादशाह ने मिस्त्रियों को बुलाया, बोला :- हमारा महल बनाओ मिस्त्रीयों ने कहा :- निजामुद्दीन के जाते हैं, हजूर ! उसके जाना बन्द कर दो, पहले हमारा महल बनेगा। निजामुद्दीन को पता चला, मिस्त्रियों को बोला:- रात को हमारी बावड़ी की चिनाई करो, चिनाई करने लगे । तेल में बिनौले डालकर, निजामुद्दीन ने कई दीपक जलवा दिए। जब सुबह बादशाह के महल का काम करने मिस्त्री गए, तो मिस्त्रियों को नींद आने लगी। बादशाह ने पूछा :- तुम लोग रात को नहीं सोये ? हुजूर, नहीं सोये, चुनाई करते हैं, रात को। बिना प्रकाश कैसे करते हो ? हुजूर, निजामुद्दीन औलिया तेल के कुण्डे भरकर बिनौले डाल कर, प्रकाश करवा देता है। बादशाह ने तेल बिक्रेताओं को बुलाकर, हुकम दिया कि निजामुद्दीन को कोई तेल नहीं देगा और मिस्त्रियों को बोला :- आज तुम उसके यहां काम करने नहीं जाना ।

दूसरे रोज बादशाह के महल की चिनाई करने सब मिस्त्री आ गए। जब निजामुद्दीन तेल लेने भेजे, तो तेल विक्रेता बोले कि निजामुद्दीन को तेल बेचने से, बादशाह ने इन्कार कर दिया है। अब निजामुद्दीन ने मिस्त्रियों को बुलाया और कहा :- रात को काम करने आना। जब मिस्त्री लोग रात को काम करने आए, तब बावड़ी में से पानी मंगवा कर, सब कुंडे पानी के भरवा कर रोशनी करवा दी। दूसरे रोज बादशाह के महल की चिनाई करने को मिस्त्री गए, तो फिर नींद आने लगी। बादशाह ने कहा :- आज कैसे सोते हो ?

हुजूर ! रात को निजामुद्दीन के काम करने गये थे । उसे तेल तो नहीं मिलता ? हुजूर ! पानी के कुण्डे भरवा कर रोशनी करवा देता है । तब बादशाह चकित हो गया और बोला :- कल से निजामुद्दीन की बावड़ी की चिनाई करो । देखेंगे समय आने पर ।

कुछ दिन बाद एक रोज कलदंरबुली फकीर बादशाह के दरबार में आया । बादशाह ने सेवा की । कलदंरबुली बोले:-मांगो क्या चहाते हो ? मैं यह चहाता हूं कि निजामुद्दीन की करामात को ले जाओ । फकीर ने कहा, ठीक है । कलदंरबुली चले । निजामुद्दीन के तकिया के पास से निकले और बोले :- निजामुद्दीन ! वह बोला हां । इतना कहले ही कलदंरबुली के साथ करामात चली गई । शाम को कुण्डों में मसाल जलाने लगे, तो नहीं जली । तब सभी मिस्त्री लोग अपने घर चले गए । निजामुद्दीन ढीले हो गए । मिस्त्री लोग बादशाह के महल की चिनाई करने लगे । इधर निजामुद्दीन का शिष्य आया । मुरसिद को उदास देखकर बोला :- उदासी का क्या कारण है ? उपरोक्त वृत्तान्त निजामुद्दीन ने सब कह सुनाया । मुरीद बहुत बढ़िया गायक था । वह बोला :-मुरसिद ! आपकी करामात कैसे वापिस आवै ? निजामुद्दीन बोला:-कलदंरबुली यह कहै कि 'औलिया निजामुद्दीन सिद्ध' मेरी करामात वापिस आ जायेगी । वह मुरीद चला और कलदंरबुली के शहर में जा पहुंचा और पता चलाया कि कलदंरबुली किसका कहना मानता है ? एक ने बताया :-अमुक लड़का है । उसका कहना अवश्य मानता है । वह गायक उस लड़के के घर पहुंचा । वह साहूकार का लड़का था । गायक जाकर लड़के को सलाम किया । लड़के ने देखा :- इसके पास सितार है, यह तो कोई गायक मालूम पड़ता है । क्या सांई ! कुछ गाते हो ? हां दाता । सुनाओ फिर । सितार मिलाकर एक दो राग सुनाई । लड़का मस्त हो गया । कहने लगा मांगो । गायक कहता है कि यही मांगता हूं कि कलदंरबुली यह बाले कि "औलिया निजामुद्दीन सिद्ध" यही मांगता हूं । लड़का बोला :- आप कलदंरबुली के तकिया पर पहुंचो । मैं आ रहा हूं । वह गायक जाकर कलदंरबुली को सलाम करके बैठ गया । इधर वह लड़का भी पहुंचा, जाकर बैठा । क्या सांई कुछ गाते हो ? हां ! तो सुनाओ । गायक ने एक दो चार राग सुनाई । लड़का कहने लगा मांगो क्या चाहिए ? गायक बोला :- कलदंदरबुली यह कहै कि "औलिया निजामुद्दीन सिद्ध !", यही मांगता हूं । तब लड़का बोला कलदंरबुली से, मुरसिद कह दो "औलिया निजामुद्दीन सिद्ध" । कलदंरबुली बोले :- यह नहीं कहेंगे। और कुछ मांग लो । गायक बोला :- हुजूर यही चहाता हूं और कुछ नहीं मांगता । लड़का जमीन से उठकर कलदंरबुली की गोदी में बैठ गया । और दोनों हाथों से दाढ़ो खींचने लगा । बोलो :- "औलिया निजामुद्दीन सिद्ध" । कलदंरबुली बोला :- तेरा बाप सिद्ध । फिर बोला :- कहो "औलिया निजामुद्दीन सिद्ध" तेरा दादा सिद्ध । इस प्रकार सात पीढ़ी को सिद्ध बना दिया । फिर आठवीं बार प्रसन्न होकर बोला "औलिया निजामुद्दीन सिद्ध", इतना कहते ही निजामुद्दीन के यहां दीपक जगमगा उठे ।

राम बिरहणी व्है रह्या, बिरहनी व्है गई राम ।
दादू बिरहा बापुरा, ऐसे कर गया काम ॥१४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम तो बिरहनी हो रहे हैं और बिरहीजन राम हो रहे हैं । जब अन्तःकरण में बिरह है, तो फिर बिरहीजन इसी परम पद को प्राप्त होते हैं, अर्थात् राम रूप हो जाते हैं । देखो विचारवान बिरह ने बपुधारी के शरीर में, कैसा अलौकिक काम कर दिया ?

दोहा :- मोहन बात स्नेह को, कहन सुनन की नांहि ।
सो मुख देखे हि बने, जो बीते दुहु मांहि ॥१४८॥

बिरह बिचारा ले गया, दादू हमकौं आइ ।
जहं अगम अगोचर राम था, तहं बिरह बिना को जाइ ॥१४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हम बिरहीजनों के अन्तकरण में विचार सहित, बिरहभाव का उदय हुआ । जिससे अगम और अगोचर जो परमेश्वर है, वहां पर बिरह से अतिरिक्त और कोई साधन की सहज गति नहीं है । उस परमेश्वर से हमें तदाकार (एक रूप) किए हैं । बिरह के बिना ऐसा कौन साधन है जो राम में ले कर पहुंचावै ?

बिरह बापुरा आइ कर, सोवत जगावै जीव ।
दादू अंगि लगाइ करि, ले पहुंचावै पीव ॥१५०॥

टीका :- दयाल जी महाराज उपदेश करते हैं कि हे बिरहीजनों ! बिरह क्या है ? यह तो मानो राम का ही शरीर है । यह विरहीजनों के हृदय में प्रगट होकर, अज्ञान निद्रा में सोते हुए जीवात्मा को जगाकर, आत्म परायण करता है और बिरहीजनों को अपना स्वरूप बिरह बनाकर, परमेश्वर में अभेद कर देता है । बिरह ऐसा है ।

बिरहा मेरा मीत है, बिरहा बैरी नांहि ।
बिरहा को बैरी कहै, सो दादू किस मांहि ॥१५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समस्त संसार में हमारा केवल बिरह ही एक मित्र है । यद्यपि व्यवहार में बिरह संताप आदिक नाना कष्ट देता दिखता है, तथापि वह हमारा बैरी नहीं है, अर्थात् शत्रु नहीं है । कदाचित् कोई बिरह को शत्रु कहै, तो वह बिरहीजनों की गणना में नहीं गिना जाता है, और वह बिरही भक्त ही क्या है ? जो बिरह को बैरी कहता हैं ।

दोहा :- बिरह सरिखा मित्र को, जो हरि पठावै आप।
जगन्नाथ जड़ जीव को, चेतन करै मीलाप ॥१५१॥

दादू इसक अल्लह की जाति है, इसक अलह का अंग।
इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग ॥१५२॥

टीका :- सतगुरू भगवान से अकबर बादशाह ने चार प्रश्न सिकरी में किए, कि हे गुरूदेव ! उस खुदा की जाति क्या है ? और खुदा का अंग कहिए अवयव कैसे हैं ? खुदा का शरीर किस प्रकार का है ? खुदा का रंग कैसा है ?

दयालु महाप्रभु इन प्रश्नों का उत्तर इसी साखी से दिया है। खुदा की जाति प्रेम ही है। खुदा के अवयव प्रेम स्वरूप ही हैं। खुदा का औजूद कहिए शरीर, प्रेममयी ही है और खुदा का रंग केवल प्रेम ही है। अकबर ने यह सुनकर, मन में निश्चय किया कि सतगुरुदेव ने वास्तविक यथार्थ उत्तर दिया है।

दोहा :- गुरू दादू से बादशाह, बूझी चारी जो बात।
जाति अंग औजूद रंग, साहिब के बिख्यात ॥१५२॥

(साध महिमा महात्म)

दादू प्रीतम के पग परसिये, मुझ देखण का चाव।
तहां ले सीस नवाइये, जहां धरे थे पांव ॥१५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रीतम प्यारे ! तेजोमय परमेश्वर के तेज पुन्ज के चरणों का स्पर्श करो, क्योंकि हम बिरहीजनों को परमेश्वर के दर्शनों का अति चाव लगा है। इसलिए हे बिरहीजनों ! जहां अन्तःकरण में परमेश्वर ने अपने चरण रखे हैं, तहां पर परमेश्वर की शरण लेकर, अपना मानसिक सिर नवाइये अथवा बिरह भाव ही मानो, भगवान के चरण हैं। उनको अखण्ड वृत्ति (बुद्धि) में धारण करिये। परमेश्वर की कृपा से जब बिरह भाव का उदय हो, उसी समय से परमेश्वर में अन्तःकरण की वृत्ति को कहिए, बुद्धि को स्थिर करिये। प्रीतम प्यारे जो बिरहीजन सतगुरू हैं, उनके चरणों का स्पर्श करिए, अर्थात् सतगुरू के चरण स्पर्श का परमेश्वर के दर्शनों का जो अपूर्व फल है, उसको देखने का हमें अत्यन्त चाव है। जहां जहां उन बिरहीजनों ने अपने चरण रखे हैं, तहां तहां ही जाकर, उनके चरण चिन्हों पर अपना मस्तक झुकाइये। इस प्रकार नमस्कार करने से जीव के जन्म जन्मान्तरों के पाप ताप नष्ट हो जाते हैं।

दोहा :- शिव मग जात निवात शिर, देखी उभै अस्थान।
त्यौं गुरू दादू कंकरिया, नवत सदा सनमान ॥१५३॥

दृष्टान्त :- भगवान शंकर एक समय पार्वतीजी के साथ मार्ग मार्ग जा रहे थे। एक ऐसी जगह आई, कि महाराज शंकरजी वहां बारम्बार साष्टांग प्रणाम करने लगे। वहां की धूलि को अपनी जटाओं एवं शरीर पर रमाने लगे और अनेक बार स्तुति करने लगे। भवानी ने देखा कोई दिखाई तो नहीं देता है ? भगवान शंकर किस को नमस्कार करते हैं ? कुछ देर में फिर पार्वती के साथ चल पड़े। दुबारा फिर एक वैसा ही स्थान आया। पूर्वोक्त प्रकार से वैसे ही करने लगे। तब तो गिरजा ने हाथ जोड़ कर शंकर भगवान से प्रश्न किया कि हे नाथ ! कोई दिखलाई नहीं पड़ रहा है। आप किसको नमस्कार'करते हो ? पीछे भी आपने इसी प्रकार नमस्कार किया था। आप कृपा करके बतलाइये। शंकर बोलेः- हे भवानी ! जहां हमने पहले नमस्कार किया था, वहां दस हजार वर्ष पहले एक बिरही भक्त हुए थे। उन्होंने परमेश्वर को प्रगट किया था। इससे वह पृथ्वी अत्यन्त पवित्र थी। इसलिए मैंने, उसको नमस्कार किया और अब यहां पर दस हजार वर्ष के बाद, एक बिरहीजन भक्त उत्पन्न होंगे उस महातमा का यह पृथ्वी ध्यान करती है कि कब वह महापुरुष आएगें और मुझ पर चरण रखेंगे। उस महापुरुष का यह पृथ्वी भजन करती है, सो यह भी प्रवित्र हो चुकी है। पहले वाली पृथ्वी और इस पृथ्वी का एक ही फल है। इसलिए मैं इसको नमस्कार करता हूं, कि हे माता ! तूं भक्त और भगवान का ध्यान करके, पवित्र हो गई है, तुझे बारम्बार मेरा नमस्कार है। यह सुनकर पार्वती के भी, भक्त और भगवान की भक्ति का, भारी रंग लग गया।

दूसरा ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज अहमदाबाद में कंकरिया तालाब पर अपने चरण रखे थे और बच्चों से ध्यान कराया था। यह पृथ्वी भी अत्यन्त पवित्र है। सनमानदास जी कहते हैं कि मैं उस पृथ्वी को बारंबार नमस्कार करता हूं, जहां ब्रह्मऋषि ने अपने चरण रखे थे।

(बिरह पतिव्रत)

बाट बिरह की सोधि करि, पंथ प्रेम को लेहु।
लैं के मारग जाइये, दूसर पावन देहु ॥१५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरह की कसौटी को निश्चय करके, केवल प्रेम का ही पंथ कहिए, मार्ग ग्रहण करो। अन्य जो बहिरंग साधन हैं, उन सबसे उदासीन होकर, अपनी सुरति को परमेश्वर के स्वरूप में ही लगाइये।

छंद :- होइ अनन्य भजै भगवंत ही, और कछु उर मैं नहि राखै।
देवी रँ देव जहां लग है, डर के तीन सू बहु दीन न भाखै।

योग रू यज्ञ ब्रतादि क्रिया, तिन कों तो नहीं स्वप्ने अभिलाखै।
सुन्दर अमृत पान कियो तब, तो कहु कौन हलाहल चाखै॥१५४॥

बिरही बेगा भगति सहज मैं, आगै पीछै जाइ।
थोड़ा माहैं बहुत है, दादू रहु ल्यौ लाइ॥१५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के दर्शन करने की व्याकुलता का जो भाव है, सो बिरहीजनों को प्राप्त है। उससे परमेश्वर के दर्शन बिरहीजनों को अवश्य होते हैं। और जो नवधा भक्ति है, वह तो सुख दुख आदि द्वन्दों से मुक्त करके, सहजावस्था द्वारा परमेश्वर का दर्शन कराती हैं। परन्तु बिरह भावना रूप भक्ति तो, तुरन्त ही परमेश्वर का साक्षात्कार कराती है। और बिरह तो अल्प समय में (थोड़े काल में) होवे तो भी बहुत होता है। अथवा बिरहीजन भक्तों का जीवन थोड़े ही काल रहता है, परन्तु उसमें ही उनको बहुत जीवन प्रतीत होता है। इसलिए परमेश्वर के नाम स्मरण रूप लय में बिरहभाव से स्थिर रहिये।

दोहा :- बिरही स पावत बिरह में, बिरह बिना मरि जाय।
ज्यूँ चूने का कांकरा, रज्जब जल मिल जाय॥१५५॥

(बिरह बाण)

बिरहा बेगा ले मिलै, ताला बेली पीर।
दादू मन घाइल भया, सालै सकल सरीर॥१५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह बिरह बाण का स्वरूप है। जिसके लगने से सारा शरीर कहिये, रोम रोम घायल हो जाता है अर्थात् रोम रोम में वह बिरह दर्द की चोट सालती (महसूस) रहती है। और ताला

तलब और बेलि बिलाप के सहित बिरहीजन पुकारते रहते हैं। जिससे बिरही मन परमेश्वर के दर्शनों के लिए व्याकुल रहता है। किन्तु वह बिरह, बिरहीजनों को कहिए भक्तों को साथ लेकर, शीघ्र ही परमेश्वर में अभेद कर देता है।

(बिरह बिनती)

आज्ञा अपरंपार की, बसि अंबर भरतार।
हरे पटंबर पहिरि करि, धरती करै सिंगार॥१५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज कहते हैं कि हे इन्द्र महाराज ! आपको अपरंपार परमात्मा की आज्ञा है कि इस प्रजा का पालन करो। क्योंकि आप इस पृथ्वी के भरतार हो (पति हो)। इस पृथ्वी के जो वस्त्र हैं, वे आपके आधीन है। वे जब आप पहनाओगे तब पहनेगी। वस्त्र क्या हैं ? सो बताते हैं।

बसुधा सब फूलै फलै, पृथ्वी अनन्त अपार।
गगन गरजि जल थल भरै, दादू जै जै कार॥१५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वसुधा कहिए पृथ्वी अनन्त अपार है वनस्पतियों के सहित। और यह पृथ्वी नाना प्रकार के फूल फल इत्यादि हरे वस्त्र धारण करके समस्त अंगों, पहाड़, झील आदि सहित अपना शृंगार करती है। इसी से प्रजा में आनन्द होता है। इसलिए हे इन्द्र महाराज ! आप आकाश से मेघों द्वारा वृष्टि करके, पृथ्वी को जल से पूर्ण कर दो।

काला मुंह करि काल का, सांई सदा सुकाल।
मेघ तुम्हारे घरि घणां, बरसहु दीनदयाल॥१५९॥

टीका :- हे इन्द्र महाराज ! आपके घर में अनेक मेघमाला हैं, इसीलिए आप सदा सुकाल रूप हो और इस दीन प्रजा के आप मालिक हो। अब आप इस काल का कहिए वर्षा बिना जो काल पड़ रहा हैं, इसका काला मुंह करो। और दयालु होकर वर्षा करो।

जब ब्रह्मऋषि ने यह प्रार्थना इन्द्र से की, तब इन्द्र महाराज ने आकाश में गर्जना करके, जल से सब थल भरे कहिए पृथ्वी को जल से पूर्ण कर दिया और जनता में जयजयकार हो गया।

दोहा :- आंधि गांवहि मांहि, रहे जो दादूदास जी।
वर्षा वर्षी नांही, कर बीनती बरसाइयो ॥१५६॥

दृष्टान्त :-आंधी गांव जयपुर रियासत में है। एक समय वहां के निवासी पूर्णदासजी और ताराचन्द जी वैश्य, ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी के शिष्य थे। गुरूदेव को चतुर्मास के लिए आंधी ग्राम में लाये। उस साल वर्षा की खींच हो गई। जनता घबराने लगी। दुखी होकर, मालवा जाने का विचार कर लिया। पूर्णदास जी और ताराचन्द जी से जनता बोली, भक्त जी जीवेगें तो फिर आपका दर्शन करेंगें। अब गांव छोड़कर जाते हैं। वर्षा के बिना भारी अकाल पड़ चुका है। भक्त जी बोले :- आप सब सतगुरूदेव जी महाराज के सामने होकर, एक साथ गांव से बाहर जाना। गांव वालों ने वैसा ही करने को कहा।

जब गांव वाले जाने लगे, अपने पशु वगैरा लेकर, महाराज जी के पास उस वक्त, दोनों भक्त भी बैठे थे। जब गांव की जनता महाराज को हाथ जोड़कर सत्यराम कर करके जाने लगी, तब गुरूदेव भक्त जी से पूछा :- यह कहां जाते हैं ? भक्त जी बोले :- वर्षा बिना गांव छोड़ करके, मालवा जाते हैं। गुरूदेव एक मिनट चुप होकर फिर बोले :- इनको बोल दो राम जी ! कि आज मत जाओ। राम जी वर्षा बरसा देंगे। अगर नहीं बरसाएं, तो कल चले जाना। भक्त जी ने गांव वालों को महाराज की आज्ञा सुना दी। गांव वाले अपने अपने घरों में ज्यों सामान रखने लगे, इधर परमगुरूदेव ने इन तीन साखियों से परमेश्वर की प्रार्थना की। उत्तर दिशा से भारी मेघमाला आकाश में चढी और मूसलाधार वर्षा होने लगी। पृथ्वी जल से पूर्ण हो गई। कुएं, तालाब, बावड़ी पानी से पूर्ण भर गए और राम जी महाराज की दया से जय जय कार हो गया। यह तीनों मंत्र अनुष्टान (साधना) रूप हैं, वर्षा के लिए।

हे जिज्ञासुओ ! दाराष्टान्त में यह भाव है कि बिरहीजन भक्त, भगवान से बिरह सहित बिनती करते हैं कि हे अपरम्पार ! अपनी आज्ञा अनुसार आप हमारे भरतार (मालिक) हैं। हमारे हृदय आकाश में निवास करो। धरती जो हमारी बुद्धि है सो गुरू आज्ञा हरि स्मरण आदिक वस्त्रों को पहन कर, शरीर रूपी वसुधा, अनन्त अपार भक्ति वैराग्य आदिक फूल और राम रस आदिक फल सहित संपन्न होवै। हे सांई ! आपके तो मेघरूपी दया भरपूर है, जिससे आप सदा सुकाल स्वरूप हो। अब हमारे परमेश्वर, आपके वियोग रूपी काल का काला मुंह करो और हम दीनों के हृदय रूपी आकास में प्रेम वृष्टि का उदय करके, दर्शनरूप वर्षा बरसाओ। हे प्रभु ! आपकी कृपा होगी, तो हमारा रोम रोम आनन्दित होगा। और हम सदैव आपका जय जयकार करेंगे, आप अनुग्रह करिए और हम बिरहीजनों को अपना दर्शन दीजिए।

(इति बिरह का श्रंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्त :)

॥ अथ परिचय का अंग–४ ॥

पूर्ब प्रकरण में प्रतिपादित **"गगन गरजि जल थल भरै, दादू जय जयकार"**० इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब परिचय के अंग का निरूपण करते हैं । प्रत्यक्ष प्राप्ति को परिचय कहते हैं । परिचय होने के जो जो उत्तम साधन हैं और परिचय प्राप्ति वाले जो संत पुरुष हुए हैं उनकी भिन्न भिन्न स्थिति का प्रस्तुत अंग में प्रतिपादन करेंगे । प्रथम हरि, गुरू संतों को उनकी प्राप्ति के लिए दास भाव से विनती के सहित, हरि गुरू सन्तों की बन्दना करते है ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः ।
बंदन सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- हरि गुरू संतों को हमारी बारंबार बन्दना है, क्योंकि हरि गुरू संतों की कृपा से, हम जिज्ञासुजन 'पारं' कहिए, वियोग जन्य दुख से परे' सुखरूप पीव को 'गतः' कहिए, प्राप्त होते हैं ।

अब प्रथम परमेश्वर प्राप्ति कह कर पुनः जिज्ञासुजनों के ब्रह्मभाव की अवस्था का प्रतिपादन करते हैं ।

दादू निरंतर पिव पाइया, तहं पंखी उनमनि जाइ ।
सप्तों मंडल भेदिया, अष्टैं रह्या समाइ ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पंखी कहिए, भक्ति ज्ञानादिक पंखों वाला, पक्षीरूप जीवात्मा, उनमनी नाम ऊंची दशा अर्थात् सर्वमायिक पदार्थों से उदास होकर, ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है । अन्तराय रहित होकर, पीव

का प्रत्यक्ष अनुभव करता है । अब ब्रह्मी अवस्था का वर्णन करते हैं 'सप्तों मंडल भेदिया' अर्थात् स्वर्ग आदि सातों मण्डल भवन, अथवा सप्त धातु रूप काया वा माया के सप्त आवरण (शरीर, इन्द्रि, मन, प्राण, बुद्धि, अज्ञान, जीव) एवं सप्त चेतन (शुद्ध, ईश्वर, जीव, प्रमाता, प्रमाण, प्रमे, फल) अथवा सप्त आवरण (माया, अहंकार, पंचभूत, अज्ञान, आवर्ण, परोक्ष भ्रान्ति, शोकनाश) सातचक्र, अथवा चतुष्टय अन्तःकरण और तीन गुण ये सात, सप्त ज्ञान की अवस्था, इन सब को 'भेदिया' कहिए पार करके जिज्ञासुजन, अष्टैं स्वस्वरूप में समा कर रहता है । अभेद होता है, अर्थात् अधिष्ठान ब्रह्म में स्थिर होता है ।

दोहा :- माया अद्भूतता लखत, अचरज सब को होय ।
बाजीगर का खेल लख, चकित भये सब कोय ॥२॥

(परमात्मा का स्वरूप)

दादू निरंतर पिव पाइया, तहं निगम न पहुंचै वेद ।
तेज सरूपी पिव बसै, कोई बिरला जानैं भेद ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पीव का सदा अखण्ड एकरस तेज स्वरूप है । जहां पर वेद भी शक्ति वृत्ति से नहीं पहुंचता है । अर्थात् स्मृति, धर्मशास्त्र उन्हीं वस्तुओं का निरूपण करते है, जिनमें गुण क्रिया जाति सम्बन्ध होता है । शुद्ध चेतन व गुण क्रिया जाति और सम्बन्ध इनसे रहित है । स्मृतिशास्त्र एवं कर्म उपदेशक वेद, उनके विषय में कुछ नहीं बता सकते । वहां उनकी गम नहीं है । वह उनका विषय नहीं है । किन्तु बिरले संत पुरुष ही परमेश्वर के मर्म स्वरूप को अनुभव द्वारा जानते हैं ।

दोहा :- कबिर ज्यों नैनों में पूतलि, त्यों खालिक घट मांहि ।
मूरख लोग न जानहीं, बाहिर ढूंढण जांहि ॥३॥

(परमेश्वर का निवास)

निरंतर पिव पाइया, तीन लोक भरपूरि ।
सब सेजौं साँई बसै, लोक बतावैं दूरि ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर तीनों लोकों में व्यापक है। और वह सब ही पुरुषों के अन्तःकरणरूपी सेज में निवास करता है। किन्तु अविवेकी पुरुष (भेदवादी उपासक) ईश्वर को लोक लोकान्तरों में, (बैकुन्ठ स्वर्ग में) दूर बताते हैं। इसलिए हे जिज्ञासुओ ! अपने अन्तःकरण में ही महावाक्यों द्वारा पीव का साक्षात्कार करो।

दोहा :- मैं जान्या हरि दूर है, हरि है हृदय माँहि।
अन्तर टाटि कपट की, ताथैं जानत नाँहि ॥४॥

दादू निरंतर पिव पाइया, जहं आनन्द बारह मास।
हंस सौं परम हंस खेलैं, तहं सेवक स्वामी पास ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब अन्तःकरण में पीव कहिए, सुखप्रीति का विषय, परमेश्वर का साक्षात्कार किया, तो वहां सदा एक ही रस आनन्द रहता है। परमेश्वर में अन्तरलीन होकर भक्तजन, जीव अवस्था से ब्रह्मी अवस्था को प्राप्त होकर, परमानन्द का अनुभव करते हैं। अर्थात् 'हंस' कहिए व्यापक शुद्ध चेतन और परमहंस साधक का व्यष्टि चेतन, तहां पराभक्ति की अवस्था लय दशा में अभेद होता है।

गीतक छंद :-

विक्षेप कबहु न होइ हरि सैं, निकट वृत्य निवृत्य ही।
तहाँ सदा सनमुख रहे आगे, हाथ जोरे भृत्य ही।
पल एक कबहु न होइ अन्तर, टकटकी लागी रहै।
यह पराभक्ति प्रकास परिचय, शिष्य सुन सतगुरू कहै ॥५॥

दादू रंग भरि खेलौं पीव सौं, तहं बाजै बैन रसाल।
अकल पाट परि बैठा स्वामी, प्रेम पिलावै लाल ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारा स्वामी परमेश्वर, हमें अति प्रिय है, क्योंकि वे हमारे पवित्र अन्तःकरण में बिराजकर, वह अपने भक्तों को प्रेमरूपी अमी रस पिलाता है । जिस को पीकर, हमारा रोम रोम मग्न हो रहा है और उससे रसाल, श्रेष्ठ, रसीली बैन रूप अनुभव बाणी बज रही है । अर्थात् रोम रोम से अनहद ध्वनि 'मैं ब्रह्म हूं' ये हो रही है । इस रीति से प्रभु के प्रेम में पूर्ण मतवाले होकर, स्वरूप आनन्द का अनुभव करते हैं ।

दादू रंग भर खेलौं पीव सौं, सेती दीन दयाल ।
निस वासुर नहिं तहं बसै, मानसरोवर पाल ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे देवगण, सिद्ध लोग, मानसरोवर पर विचरते हैं, उसी प्रकार हमारा अन्तःकरण तो मानसरोवर रूप है और निर्विकल्परूप समाधि अवस्था उसका तट है । वहां पर ज्ञान अज्ञान का भाव व्याप्त नहीं होता है (ज्ञान = लौकिक ज्ञान) । ऐसे उत्तम स्थान में हम अपने प्रीतम दीनदयाल परमेश्वर के साथ अभेद रहते हैं ।

दादू रंग भरि खेलौं पीव सौं, तहं कबहूं न होइ बियोग ।
आदि पुरुष अन्तर मिल्या, कुछ पूरबले संयोग ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! पूर्व जन्म संस्कार के प्रभाव से सम्पूर्ण संसार का आदिकारण और सबको पूरने वाला, वह हमारा प्यारा प्रीतम अन्तःकरण में ही हमें मिला है । उसका हमसे अब कभी वियोग नहीं होता है ।

दोहा :- कुछ करणी कुछ कर्म गती, कुछ पूरबले लेख ।
जागी सुरति कबीर की, दोस्त कीया अलेख ॥८॥

दादू रंग भर खेलौं पीव सौं, तहं बारह मास बसंत ।
सेवग सदा अनन्द है, जुग जुग देखौं कंत ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब प्रीतम का प्रत्यक्ष होता है, तो भक्तजन पूर्ण आनन्दित होकर, जुग जुग (सतजुग आदि) कहिए अविचल भाव से, अपना परम स्नेही परमेश्वर के स्वरूप आनन्द का दर्शन करते है ।

व्यवहार में जिस प्रकार बसंत ऋतु में संसारीजन, फाग कहिए, प्रेम उत्सव मनाते हैं, वैसे ही भक्तजन परमेश्वर के दर्शनों का अनुभव होने पर, बारह मास ही अपने पीव से पूर्ण प्रेम को प्राप्त होते हैं ।

(भगवत् प्राप्ति का स्थान)

दादू काया अन्तर पाइया, त्रिकुटी केरे तीर ।
सहजैं आप लखाइया, व्याप्या सकल सरीर ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन, पवन, सुरतिरूप त्रिकुटी को एकाग्र करके, इसमें खोजने से, काया में ही परमेश्वर का साक्षात्कार, होता है । और परमेश्वर बिरहीजन भक्तों के भाव के अनुसार, स्वयं ही प्रगट होकर दर्शन देते हैं । और भक्तों के सम्पूर्ण शरीर के रोम रोम में ईश्वर, व्यापक रूप से भासते (प्रतीत होते) हैं ।

दादू काया अतंरि पाइया, निरजंन निरधार ।
सहजैं आप लखाइया, ऐसा समरथ सार ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निरन्तर एक रस निराधार कहिए जिसका कोई भी माया कृत आधार नहीं हैं, ऐसा शुद्ध निरंजन निराकार परमेश्वर, काया में ही व्यापक है । हे प्रभु ! यह आपकी समर्थाई (शक्ति) अथवा सारग्राहिता है, कि आप अपने भक्तों को उनकी भक्ति भावना के अनुसार, स्वयं प्रगट होकर दर्शन देते हो ।

दादू काया अतंर पाइया, अनहद बैन बजाइ ।
सहजैं आप लखाइया, सुन्य मडंल मै जाइ ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन्तर्ध्वनि होकर, सुन्य मंडल नाम निर्विकल्प समाधि अवस्था में, भक्तजन सहज स्वभाव से आत्म अनुभव करते हैं । हे जिज्ञासुओ ! इस प्रकार से काया में ही परमेश्वर का साक्षात्कार करिये और अन्यत्र परमात्मा के निमित्त नहीं भरमना ।

दादू काया अतंरि पाइया, सब देवन का देव ।
सहजैं आप लखाइया, अैसा अलख अभेव ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवों का देव जो परमेश्वर है, सो काया (शरीर) में ही व्याप्त है । कैसा है सो देव ? मन बाणी की शक्ति वृत्ति का विषय नहीं है, और जिसका स्वभाव नहीं जाना जाय, ऐसा दुर्ग (अगह) परमेश्वर, स्वयं ही दयालु होकर, अपने भक्तों को प्रत्यक्ष होता है ।

(सुख महिमा और फल)

दादू भवंर कवंल रस बेधिया, सुख सरवर रस पीव।
तहं हसां मोती चुणैं, पीव देखैं सुख जीव ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे भंवर पक्षी कमल फूल के रस में मोहित होता है, उसी प्रकार भंवर रूप जिज्ञासु का शुद्ध मन, ब्रह्मानन्द में तदाकार वृत्ति होकर, आत्मा आनन्द जीवन मुक्तिरूप रस का अनुभव करता है, और जैसे हंसा मान सरोवर में मोती चुगकर जीवन निर्वाह करते हैं, वैसे ही जिज्ञासुजन, परमेश्वर के निस्काम नाम का स्मरण करते हैं। इस प्रकार बिरही भक्तजन पीव का स्वरूप साक्षात्कार करके सुखी होते हैं।

दोहा :- ब्रह्मानन्द पुनि सागर कहिये, संत मीन तहां अदभूत लहिये।
पुनि ब्रह्म मोती हंस जुसंत, चन्द्र चकोर अनन्त सु लहिए ॥१४॥

दादू भवंर कवंल रस बेधिया, गहे चरण कर हेत।
पिव जी परसत ही भया, रोम रोम सब सेत ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे भंवरा कमल फूल के रस में लुभायमान होता है, उसी प्रकार जिज्ञासुओं का शुद्ध मन रूप भंवरा, प्रीति से चरण चेतन्य स्वरूप में लीन होता है। इस प्रकार पीव का साक्षात्कार करते ही, बिरहीजनों का रोम रोम पवित्र हो जाता है।

दोहा :- कबीर अंतर कवंल प्रकाशिया, ब्रह्मबास तेहि होई।
मन भवंरा जैहि लुब्धिया, जानेगा जन कोई ॥१५॥

दादू भवंर कवंल रस बेधिया, अन तन भरमैं जाइ।
तहां बास बिलंबिया, मगन भया रस खाइ ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे कमल फूल की सुगन्धि में आसक्त हुआ भंवरा, फिर अन्यत्र नहीं जाता है, और कमल फूल की सुगन्ध में ही आसक्त रहता है, इसी प्रकार उत्तम जिज्ञासुओं का मन, आतम आनन्द

छोड़कर, बाह्य साधनों (सकामकर्म) में नहीं भ्रमता है। और परमेश्वर के ध्यान में तदाकार होकर, परमानन्द स्वरूप का अनुभव करता है

दादू भवंर कवंल रस बेधिया, गही जो पिव की ओट।
तहां दिल भवंरा रहै, कौण करै सर चोट ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे भवंरा कमल फूल रस का आस्वादन करता हुआ, कमल फूल की पखंड़ियों की ओट में शीत उष्णादिक से रहित होता है, उसी प्रकार जिज्ञासुजन, आतमस्वरूप परमेश्वर के विचार में मग्न रहते हैं ! ऐसे भक्तों पर काल का जोर नहीं चलता है। वे अजर अमर होते हैं।

(परिचय जिज्ञासु उपदेश)

दादू खोजि तहां पिव पाइये, सबद ऊपने पास।
तहां एक एकांत है, जहां जोति परकास ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुजनों ! हृदय में मुख प्रीति का विषय जो परमेश्वर है, उसकी खोज (तलाश) करो। जहां से अनहद ध्वनि होती है, । उसी के समीप अपने आतम स्वरूप को देखिए। हृदय में ही एक अद्वितीय सर्व उपाधियों (माया कृत उपाधि) से रहित, स्वयं ज्योति रूप ब्रह्म है, वही एक सबको अपने अधीन रखने वाला, सम्पूर्ण भूतों का अन्तरआतमा, अपने एक रूप को ही अनेक प्रकार का कर लेता है। अपनी बुद्धि में स्थित उस आत्म देव को, जो धीर विवेकीपुरुष देखते हैं, उन्हीं को नित्य सुख प्राप्त होता है। हे जिज्ञासुओ! ओरों को नहीं होता।

दादू खोजि तहां पिव पाइये, जहं चन्दन ऊगै सूर।
निरंतर निर्धार है, तेज रह्या भरपूर ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां बाह्य चन्द्रमा और सूर्य का उदय नहीं होता है, ऐसे अन्तःकरण रूप स्थान में पिव को खोजो (देखो)। वह प्रभु कैसा है ? जो सदा एक रस और मायिक आधार से रहित है, वही तेजोमय ब्रह्म सबमें व्यापक है।

वही जो अनित्य पदार्थों में भी नित्यस्वरूप और ब्रह्मा आदि चेतनों में चेतन्य है, और जो अकेला ही अनेकों की कामनाएं पूर्ण करता है। अपनी बुद्धि में स्थित उस आतमा को, जो विवेकी पुरुष देखते हैं, उन्हीं को नित्य शान्ति प्राप्त होती है, ओरों को नहीं।

दादू खोज तहां पिव पाइये, जहं बिन जिभ्या गुण गाइ।
तहं आदि पुरुष अलेख है, सहजै रह्या समाइ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने अन्तःपुर में ही परमेश्वर को खोजिए (देखो) और अन्तःकरण में जिह्वा बिना उसका गुणानवाद वृत्ति (बुद्धि) द्वारा होता है । और मन इन्द्रिय आदि से अज्ञेय है । वही सबका आदि कारण (उपादान कारण) है । ऐसे अविनाशी स्वरूप में जिज्ञासुजन, निर्द्वन्द्व (मायाकृत द्वन्द्व से रहित) भाव से सदा लैलीन रहते हैं । और जीवित जी, यदि इसी शरीर में इसके पतन से पूर्व ही ब्रह्मरूप को जान सका, तो बन्धन से मुक्त हो जाता है और यदि नहीं जान पाया तो, इन जन्म मरणशील लोकों में, वह शरीर भाव को प्राप्त होने में समर्थ होता है ।

दादू खोजि तहां पिव पाइये, जहं अजरा अमर उमंग ।
जुरा मरण भौ भाजसी, राखै अपणै सग ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर अजर अमर और आनन्द स्वरूप है, परन्तु वह अन्तर्मुख वृत्ति में प्रगट होता है । इसलिए अपनी वृत्ति को परमेश्वर परिचय में एकाग्र करो, जिससे स्वस्वरूप प्राप्त होगा । परमात्मा की प्राप्ति होने से फिर जरा कहिए बुढ़ापा मरण भय नष्ट हो जाता है, क्योंकि ऐसे अद्वितीय भक्तों को परमेश्वर, सदैव साथ रखता है । इसलिए वह भक्त परमेश्वर तुल्य अजर अमर भाव को प्राप्त होते हैं ।

(जिज्ञासु उपदेश)

दादू गाफिल छोवत्तैं, मंझे रब निहारि ।
मंझेई पिव पाण जौं, मंझेई बिचार ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ईश्वर विमुख होकर, तीर्थ व्रत वहिरंग साधनों में क्यों भ्रमते हो ? पाण (अपने आप में) जो अपना आतम स्वरूप परमेश्वर है, सो हृदय में विद्यमान है । इसलिए अपने अन्तःकरण में ही दृढ धारणा पूर्वक, परमात्मा को प्रत्यक्ष करो । हे जिज्ञासुओ ! वह आत्मतत्व चलता है और नहीं भी चलता है । वह दूर भी है और समीप भी है । वह सबके अन्तर्गत है और वही सबके बाहर भी है । उसका अनुभव करो ।

दादू गाफिल छोवतें, आहे मंझि अलाह ।
पिरि पांण जो पाण सैं, लहै सभोई साव ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन्दिर, मस्जिद, तीर्थ, व्रत, योग यज्ञ आदि में जो परमेश्वर को खोजते हैं, वह अचेत हैं । इस अज्ञान को त्यागकर, अल्लाह, परमेश्वर हृदय में ही 'आहे' कहिए, है । इसलिए प्यारा परमेश्वर पाण कहिए अपने आप में, आत्म स्वरूप चेतन्य नाम स्मरण के बोध से प्राप्त होता है । इस प्रकार जो आत्म दर्शन करता है, वही जिज्ञासु परमानन्द को अनुभव करता है ।

(शब्दार्थ :- छोवतें = छोड़ । आहे = आव । मंझि = अन्दर । पिरि = परमेश्वर । पाण = आप । सभोइ = स्वाद । साव = सब)

दादू गाफिल छोवतैं, आहे मंझि मुकाम ।
दरगह मैं दीवाण तत, पसेन बैठो पाँण ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ईश्वर विमुखी ! तेरे हृदय में ही परमेश्वर का निवास है । वह स्वयं प्रकाश ब्रह्म तेरे हृदयरूपी दरगाह में ही व्याप्त है । अति समीप में बैठे हुए परमेश्वर को तूं क्यों नहीं देखता है ? यत्नपूर्वक साधनों से देख ।

शब्दार्थ :- गाफित छोवतें = अचेतता छोड़ । आहे = है । मंझि = भीतर । मुकाम = हृदय । दरगह = तकिया । दीवाण = न्यायधीश । पसेन = देख ।)

दादू गाफिल छोवतैं, अंदरि पिरी पसु ।
तखत रवाणीं बिच मैं, पेरे तिन्हीं बसु ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपनी अज्ञानता को छोड़कर, प्यारे परमात्मा को भीतर में देखो । परमेश्वर का सिंहासन निवास स्थान हृदय में है । इसलिए अपने हृदय स्थान, परमेश्वर के चरणों में 'बसु' अर्थात् अपनी अन्तर सुरति नाम वृत्ति को, आत्मा में एकाग्र करो ।

(शब्दार्थ :- गाफिल छोवतैं = अचेतता को छोड़ । पिरी = परमेश्वर । पसु = देख । तखत = सिंहासन । रवाणी = रमने वाला परमेश्वर । बिच मैं = अन्दर में । पेरे = चरणों में । तिन्हीं = उनके । बसु = निवास करो ।)

(परिचय साक्षात्कार)

हरि चिन्ता मणि चिंतता, चिंता चित्त की जाइ ।
चिंतामणि चित्त मै मिल्या, तहं दादू रह्या लुभाइ ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चिन्तामणिरूप हरि के नाम का अभ्यास करने से चित्त की विषयाशक्तिरूप

चिन्ताएं नष्ट हो जाती हैं। और चिन्तामणिरूप चेतन्य हृदय में ही प्रत्यक्ष होता है, जिससे फिर जिज्ञासुजन, सर्वरूप हरि का अनुभव करके, उसी में मस्त रहते हैं।

दोहा :- आतम तत्व विचार निरंतर, कीयो सकल कर्म को नाश।
घी सो घोट रह्यो घट भीतर, सुख सैं सोवै सुन्दरदास॥२६॥

दोहा :- और कछु उर में नहीं आवै, भावै कोइ कहो पचास।
घी सो घोट रह्यो घट भीतर, सुख सैं सोवै सुन्दरदास॥२६॥

(घी सो घोट = आतम अभ्यास)

अपने नैनहुं आप कौं, जब आतम देखै।
तहं दादू पर आतमा, ताही कूं पेखै॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह जीवात्मा जब ज्ञानरूपी नेत्रों से अपने स्वरूप का अनुभव करता है, तो अपने अन्तःकरण में ही परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है। जो 'प्रत्येक बोध' कहिए प्रत्येक ज्ञान, प्रतीत में प्रत्यग आत्मरूप से जाना गया है, वही ब्रह्म है। यही उसका ज्ञान है। क्योंकि उस ब्रह्मज्ञान से अमृततत्व की प्राप्ति होती है। और वह अमृत अपने से ही प्राप्त होता है। विद्या से तो अज्ञान अन्धकार को निवृत्त करने का सामर्थ्य मिलता है।

दोहा :- ज्ञान विचार नैन उर जिनके, सत्य स्वरूप भासत है तिनके।
जिनके उर नहीं ज्ञान विचारा, ते नहीं देखत सीरजनहारा॥२७॥

दादू बिन रसना जहं बोलिये, तहं अंतरजामी आप।
बिन श्रवणहुं सांई सुनै, जे कुछ कीजै जाप॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'जहां' कहिए अन्तःकरण में, बिना जिह्वा के बोलना है, वहीं हृदय प्रदेश में अन्तरयामी ईश्वर है। 'बिना जिह्वा के बोलना' कहिए, वृत्ति द्वारा चिंतन, उत्तम जिज्ञासु अन्तर्भाव से स्मरण करते हैं। उसको परमेश्वर बिना श्रोत्र इन्द्रिय के सुनते हैं।

(परिचय जिज्ञासु उपदेश)

ज्ञान लहर जहां थैं उठै, बाणी का परकास ।
अनभै जहांथैं उपजै, सबदैं किया निवास ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'जहां थैं' कहिए अन्तःकरण से, यथार्थ ज्ञान का उदय होता है और जिसकी शक्ति से वक्तृत्व शक्ति, बोलने की शक्ति का प्रकास होता है और इसके अतिरिक्त आत्म अनुभव कहिए, ज्ञान होता है । ऐसा जो हृदय स्थान है, वहां अनहद ध्वनि रूप ब्रह्म का निवास है ।

सवैया :-

सूर के तेज ते सूरज दीसत, चन्द के तेज ते चन्द उजासैं ।
तारे के तेज ते तारे हु दीसत, बिजु के तेज से बिजु प्रकासैं ।
दीप के तेज ते दीपक दीसत, हीरे के तेज ते हीरो ही भासै ।
तैसे हि सुन्दर आत्म जानहु, आपके ज्ञान ते आप प्रकासै ॥२६॥

सो घर सदा बिचार का, तहां निरंजन बास ।
तहं तूं दादू खोजि ले, ब्रह्म जीव के पास ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां कहिए अन्तःकरण में निरंजन का बास है, ऐसा जो हृदय स्थान है, वहां ब्रह्म विचार की ही गति है । ब्रह्म विचार से ही ब्रह्म का अनुभव सम्भव है । हे जिज्ञासुओ ! वह ब्रह्मजीव के पास अर्थात् जीव का लक्ष्यरूप ही है । हृदय स्थान में वह सर्वत्र व्याप्त और अपने आप में ही परमेश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव करिये ।

जहं तन मन का मूल है, उपजै औंकार ।
अनहद सेझा सबद का, आत्म करै विचार ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां स्वतः ध्वनि जो बिना बजाने के ही बजती है स्रोत अथवा तन मन आदि का मूल रूप जो आधार चक्र नाभी कमल है, उससे पराबाणी के साथ ओंकार रूप अनहद ध्वनि का प्रादुर्भाव होता है । वहीं पर जिज्ञासुजन स्वरूप बोध, ब्रह्म विचार करते हैं ।

भाव भक्ति लै ऊपजै, सो ठाहर निज सार ।
तहं दादू निधि पाइये, निरंतर निर्धार ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां कहिए, हृदय स्थान से भाव अष्ट प्रकार का, भक्ति ग्यारह प्रकार की, और लय अन्तर अभ्यास, इन सबका उदय होता है, वही स्थान सर्वश्रेष्ठ है । क्योंकि उसी स्थान में निरन्तर अन्तराय रहित, निराधार, सर्वका आधार, परमात्मा रूपी निधि अटूट भंडार, प्राप्त होती है ।

एक ठौर सूझै सदा, निकट निरंजन ठांउ ।
तहां निरंजन पूरि ले, अजरावर तिहिं नांउ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस परमेश्वर का अजर अमर नाम है, सो अति समीप हृदय स्थान में ही है । वह परमेश्वर सबके कर्मों का अधिष्ठाता, सम्पूर्ण भूतों का निवास स्थान, सबका साक्षी चेतन्य स्वरूप, सर्वथा विशुद्ध और गुणातीत है । वहीं पर निरंजन परमेश्वर में, अपनी चित्तवृत्ति को एकाग्र करिये ।

साधु जन क्रिला करैं, सदा सुखी तिहिं गांव ।
चलु दादू उस ठौर की, मैं बलिहारी जांव ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवनमुक्त सन्त काया रूपी नगर में, अन्तःकरण रूपी महल में लीला करते हैं । लीला कहिए समष्टि चेतन और व्यष्टि चेतन की एकतारूप विचार, इसी से सदैव सुखी रहते हैं और आत्म विचार में सलग्न रहते हैं, हम ऐसे स्थान की वंदना करते हैं । हे जिज्ञासुओ ! आत्म कल्याण के लिए, इसी मार्ग का अनुसरण करो ।

शेर :- यह पर्व अब जिसको मिला, पाया है अपने आप को ।
आत्म तीर्थ शांत में, खोइ है तीनों ताप को ।
मेला मिलोनी हो गई, फिर जपैं किसके जाप को ।
दर्शन हुआ दीदार का, खोया है पुण्य और पाप को ।
इस विधि से तीर्थ कीया, तिन योग यज्ञ सब ही किया ।
स्वयं पित्र का उद्धार करके, जिस दान अवनि का किया ।

संसार मैं उस पुरुष का, सफल है दीया लीया।
रूप अपना नीर गंगा, छान कै जिसने पीया ॥३४॥

दादू पसु पिरंनि के, पेही मंझि कलूब।
बठौ आहे बिच मैं, पाण जौ महबूब ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! महबूब कहिए भक्तों को अतिप्रिय, पाण—अपने आप में, आप खुद हृदय में स्थित है। उस आत्म स्वरूप परमेश्वर का साक्षात्कार करो, क्योंकि प्यारे प्रीतम हृदय के मध्य में स्थिर हैं। (शब्दार्थ :- पसु = देख। पिरंनि = परमेश्वर को। पेही = स्थूल शरीर। मंझि = भीतर। कलूब = हृदय रूपी डिब्बा। बठौ = स्थिर। आहे = है। पाण = अपने आप)

नैनहुं वाला निरखि करि, दादू घालै हाथ।
तब ही पावै रामधन, निकट निरंजन नाथ ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विवेकी पुरुष नित्य अनित्य के विचार द्वारा निर्णय करके, आत्म तत्व में एकाग्र वृत्ति करता है। वही पुरुष रामरूपी धन को प्राप्त कर लेते हैं। फिर यह जीवात्मा निरंजन नाथ के निकट कहिए, समीप ही एक रूप हो जाता है।

नैनहु बिन सुझै नहीं, भूला कतहूं जाइ।
दादू धन पावै नहीं, आया मूल गवांइ ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ज्ञान विचाररूपी नेत्रों बिना, अज्ञानी जीवात्मा को, आत्मतत्व का बोध नहीं होता है। और स्वस्वरूप को भूल कर, वे संसारीजन जहां तहां बाह्य विषयों में ही भ्रमते हैं। ऐसे अज्ञानी प्राणियों को राम धन तो प्राप्त होता नहीं है, प्रत्युत मनुष्य जन्मरूपी मूलधन को खोकर, जन्म जन्मान्तरों में भटकते रहते हैं।

(परिचय लै लक्षण सहज)

जहां आत्म तहां राम है, सकल रह्या भरपूर।
अंतरिगति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां यह जीवात्मा है, उसी जगह परमात्मा है । क्योंकि परमात्मा सर्वत्र व्यापक है । अर्थात् घी और दूध की भांति, जीव ब्रह्म से अभिन्न है । ऐसे सूरवीर सेवक को धन्य है, जो जीव ब्रह्म की अभिन्नता को अनुभव करता है । उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तर आत्मा परमेश्वर एक होता हुआ भी, नाना रूपों में प्रत्येक के रूप वाला सा हो रहा है । तथा उनके बाहर भी है । अग्नि की ही भांति, वहां वायु और सूर्य के दृष्टान्त से भी परमेश्वर की वस्तुगत गुण दोष से निर्लेपता सिद्ध की गई है । इसलिए अपनी लय को ब्रह्म परायण करिए ।

(परिचय जिज्ञासु उपदेश)

पहली लोचन दीजिये, पीछे ब्रह्म दिखाइ ।
दादू सूझै सार सब, सुख मैं रहै समाइ ॥३९॥

टीका :- शिष्य विनती करता है कि हे सतगुरू ! आप मुझको विवेक, वैराग्यरूप दिव्य नेत्र देकर, ब्रह्म का अनुभव कराइये । इस प्रकार फिर जिज्ञासुजन, तत्व वस्तु को प्रत्यक्ष करके, ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं । अर्थात् ब्रह्म चेतन्य को ही अनुभव करते हैं ।

सवैया :-

हीथी कि देह में हाथी सो लागत, चींटी की देह में चींटी करि सै,
सिंह की देह मै सिंह सो मानत, कीस की देह में मानत कीसै ।
जैसी उपाधि भई जहाँ सुन्दर, तैसो ही होय रह्यो नख सीसै ॥३९॥

आंधी कै आनन्द हुआ, नैंनहुं सुझन लाग ।
दरसन देखै पीव का, दादू मोटे भाग ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे व्यवहार में अन्धी स्त्री के नेत्र दृष्टिवान हो जाये, तो अपने प्रीतम नाम पति का दर्शन करके, अत्यन्त प्रफुल्लित होती है । उसी प्रकार विवेक वैराग्य शून्य, अंधी जो जीवात्मा है, इसको श्री गुरू कृपा से, जब आत्मबोध हुआ तो, वह ब्रह्मानुभव करके, कृत्य कृत्य होती है । हे जिज्ञासुओ ! ऐसे पुरुषों के धन्य भाग्य हैं ।

(उभै असमाव)

दादू मिट्टी महल बारीक है, गांउं न ठाउं न नांउं।
तासौं मन लागा रहै, मैं बलिहारी जाउं ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारा आत्मस्थान अति सूक्ष्म है। इन्द्रियों से अगोचर है। इसमें गांव नाम आदि की कोई भी संज्ञा सम्भव नहीं है। इस आत्मा का रूप दृष्टि में नहीं ठहरता। इसको नेत्र से कोई भी नहीं देखता है। हृदय स्थित बुद्धि द्वारा, मनन रूप सम्यग्दर्शन से प्रकाशित हुआ ही जाना जा सकता है। जो इसको ब्रह्मरूप से जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं। ऐसे आत्म स्थान में अपनी अन्तःकरण की वृत्ति को एकाग्र करो।

शेर :- तैसे जगत है आत्मा में, कनक में भूषण यथा।
नीर मांही लहर जैसे, सीपी में रूपा यथा।
आकार दृष्टी छोड़ के, टुक समझले उस यार को।
यार है दिलदार दिल में, देख अजब बहार को ॥४१॥

दादू खेल्या चाहै प्रेम रस, आलम अंगि लगाइ।
दूजे कौ टाहर नहीं, पुहपन गंध समाइ ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरुष अपने अंगों को इन्द्रिय शब्द स्पर्शादिक विषयों में आसक्त करके, आत्मा से जीवन मुक्ति का आनन्द लेना चाहे, तो यह बात असम्भव है। क्योंकि समष्टि ओर व्यष्टि का जो अभेद निश्चय होता है, वह अन्तःकरण भी दोष रहित है। उसमें पुष्प की सुगन्धी भी नहीं पहुंचती है, तो फिर वहां पर द्वैतभाव को कहां जगह है ? जैसे फूल में दूसरे फूल की सुगन्धी नहीं समाती है ऐसे ही आत्मज्ञानी जिज्ञासुजनों के अन्तःकरण में, संसार वासना को जगह नहीं है।

नांहीं व्है करि नाँउं ले, कछु न कहाई रे।
साहिब जी की सेज पर, दादू जाई रे ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर सम्बन्धित सम्पूर्ण बहिरंग वासनाओं का अहंकार त्याग कर, परमेश्वर का स्मरण करिए। क्योंकि यह सब परमेश्वर में प्रतिबन्धक हैं। मैं ज्ञानी हूं, मैं ध्यानी हूं, मैं तपस्वी हूं, मैं त्यागी

हूं, मैं दानी हूं, इन विशेषणों से अपनी प्रशंसा नहीं कराना चाहिए। आप केवल अद्वैत ब्रह्मानन्द में ही मग्न रहो।

जहाँ राम तहं मैं नहीं, में तहं नाही राम।
दादू महल बारीक है, द्वै को नांही ठाम ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस हृदय में राम है, वहां अहम्ता, ममतारूप 'मैं' भाव नहीं है और जहां पर मैं, मेरा आदिक अभिमान है, वहां पर परमेश्वर प्रगट नहीं है, क्योंकि हृदय प्रदेशरूप महल अति बारीक कहिए, सूक्ष्म है, जिसमें द्वैतभाव को किंचित भी स्थान नहीं है।

मैं नांही तहं मैं गया, एकै दूसर नांहि।
नांही कौं ठाहर घणी, दादू निज घर मांहि॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां अहंता ममता से शून्य निर्विकल्प जो ब्रह्मस्वरूप है, वहां पर 'मैं गया' नाम आत्मज्ञानी महात्मा लीन रहते हैं। क्योंकि ब्रह्मवेता आत्मज्ञानियों में ब्रह्म से अतिरिक्त, द्वैतभाव नहीं व्यापता है। किन्तु नाना रूप माया के प्रपंच से मुक्त ब्रह्मवेत्ताओं को, स्वस्वरूप में परमानन्द रूप, 'अपार ठोर' कहिए स्थान है। उनको सर्वत्र ब्रह्मभाव ही प्रत्यक्ष होता है।

दादू मैं नांही तहं मैं गया, आगै एक अलाव।
दादू ऐसी बंदिगी, दूजा नांही आव ॥४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां 'मैं' रूप आपा नहीं समाता है, वहां माया शून्य होकर गए तो, केवल अलाव कहिए ईश्वर प्रत्यक्ष हुआ। परमेश्वर की ऐसी भक्ति, बन्दगी है कि वहां पर दूसरे मायावी आवरण को जगह नहीं है। अर्थात् वहां अनात्म अहंकार नहीं समाता है। वहां परमेश्वर से प्रेम करके हम गये, तो आगे एक आवाज हुई कि हे जिज्ञासुओ ! अपने द्वैतभाव को दूर कर। तब हम नाहीं कहिए माया आवरण शून्य हुए तो आवाज हुई कि आओ, ऐसी आश्चर्यरूप बन्दगी, मेरी सेवा है!

दादू आपा जब लगै, तब लग दूजा होइ।
जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नाहीं कोइ ॥४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक संसारी प्राणियों में आपा है, तब तक संसारीजन आत्मस्वरूप से दूर जा रहे हैं। जब संसार अभिमान मिट गया तो फिर जीव ब्रह्म का भेद नहीं रहता।

दोहा :- काम, क्रोध, मद, लोभ की, जब लग घट में खान।
कबिर मुर्ख पंडिता, दोनों एक समान ॥४७॥

दादू मैं नाहीं तब एक है, मैं आई तब दोइ।
मैं तैं पड़दा मिट गया, तब ज्यूं था त्यूं ही होइ ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस जीवात्मा में जब हम तुम भाव व्यापता है, तब जीव ब्रह्म में भेद प्रतीत होता है। और मेरा तेरा रूपी जो माया का आवरण है, उसके दूर होते ही, यह जीवात्मा स्वस्वरूप आनन्द को प्राप्त कर लेता है।

दोहा :- अभिमानी की दुर्दशा, होती निश्चय जान।
सहस्त्र बाहु दशकंद की, करत पुराण बखान ॥४९॥

राजा सहस्त्रबाहु की हजार भुजा परसराम जी ने काटी। और अभिमानी रावण का वध महाराज रामचन्द्र जी ने किया।

दादू है कौं भय घणां, नाहीं को कुछ नांहि।
दादू नांहि होइ रहु, अपणे साहिब मांहि ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक द्वैतभाव व्याप्त है, तभी तक जीवात्मा को भय है। अद्वैतवादी को कोई भी भय नहीं है। इसलिए निरद्वन्द होकर, अपने आत्मस्वरूप में अभेद हो जाओ और जब तक जीवात्मा में परिछिन्न करता भोगता का अहंकार है, तभी तक दूसरे मायाबी पदार्थ अनुकूल प्रतिकूल प्रतीत होते हैं। इसलिए भय व्याप्ता है। किन्तु जब यह तुच्छ अहंकार नहीं रहता है, तो कुछ भी भय नहीं है। क्योंकि भय तो दूसरे से होता है और ब्रह्मवेता की दृष्टि में दूसरा कोई है नहीं। भय तो जरा मरण आदिक से भी होता है, परन्तु यह तो धर्म स्थूल शरीर के हैं, आत्मा के नहीं। इसलिए आत्मनिष्ट सदा निर्भय और सुखी रहते हैं।

(परिचय)

दादू तीन शून्य आकार की, चौथी निर्गुण नांव।
सहज शून्य में रमि रह्या, जहाँ तहाँ सब ठाँव ॥५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तीन अवस्थाओं को पार करके, चौथी अवस्था में, शुद्ध निर्गुण ब्रह्मस्वरूप होते हैं अर्थात् 'तीन' शून्य आकार की मूल प्रकृति से विकृति भाव की प्राप्त, प्रकृति व चेतन्य का संयोग तजन्य त्रिविध शरीर, कारण सूक्ष्म स्थूल, ये आकृतिमान हैं। इनका अध्यास, इनमें भ्रान्तिजन्य आसक्ति का परित्याग करना, यह इन तीनों की शून्य लय दशा है। इसी तरह माया, अविद्या का आवरण, तथा चेतन्य में द्वैत वृति का परित्याग करना, त्रिविध आकार की शून्य अवस्था है। तीनों के परित्याग के पश्चात् भेद वृत्ति से रहित, स्वस्वरूप में अनवरत स्थिति यानि अभेद ज्ञान के परित्ताग की अवस्था वह चौथी अवस्था है। वह अवस्था निर्गुण सब प्रकार की माया, अविद्या, भेद वृति जन्य, उपाधियों से रहित है। इसी का नाम तुर्यावस्था है। सहज शून्य समष्टि चेतन्य में व्यष्टि का लय कर देना, तदाकार हो जाना, उस परिस्थिति में साधक और साध्य की भिन्नता नहीं रहती है। फिर साधक भी सर्वत्र व्यापक चेतन से कभी भिन्न नहीं रहता। इसी को जीवनमुक्त अवस्था कहते हैं। किन्तु तिनके और भी कई तरह के विकल्प अर्थ किये गये हैं। जैसे तीन अवस्था (जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति), तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), तीन ओम की मात्रा (आकार, ऊकार, मकार) बाणी का आकार, पश्यन्ति मध्यमा बैखरी एवं सत, रज, तम तीन गुणों के आकार, इन सब की चौथी अवस्था है, वही निराकार अवस्था है। जैसे अवस्था की चौथी तुर्यावस्था परावाणी, गुणों की चौथी अवस्था गुणातीत है।

काया शून्य पंच का बासा, आत्म शून्य प्राण प्रकासा।
परम शून्य ब्रह्म सौं मेला, आगै दादू आप अकेला ॥५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्थूल शरीर के अध्यास का विचार से परित्याग, यह काया की शून्य अवस्था है। मन की संकल्प शंसय विपर्य दशा का परित्याग कर, मन को पवित्र करना, यह आतमा कहिए मन की शून्य अवस्था है। जिसमें प्राण का प्रकाश प्रारम्भ होता है। मल विक्षेप अध्यास का निवारण होकर, वृत्ति का चेतन अधिष्ठान में स्थित होना, यह परमशून्य है। इसी में स्वस्वरूप का परिचय होता है। भेद निवृत्ति यह परावस्था है। इस अवस्था में केवल विशुद्ध चेतन ही शेष रहता है। दूसरा अर्थ काया शून्य स्थूल शरीर का लय होना, अर्थात् देहाध्यास से मुक्त होना, द्वितीय आतमशून्य सूक्ष्म शरीर पंच प्राण, चतुष्टय अन्तःकरण आदिक समाधीकाल में ब्रह्मलीन होते हैं। तृतीय परमशून्य तुरिया अवस्था, समाधि की परिपक्व अवस्था, जिसमें जीव ब्रह्म का अनुभव करता है। जब तक जिज्ञासु में स्वांस मात्र भी जीवभाव विद्यमान रहता है, तब तक ये तीन अवस्थाएं रहती हैं। चतुर्थ दिशा में यह तीनों अवस्थाएं भिन्न ही रहती हैं और सहज शून्य, ब्रह्म शून्य तुरींयातीत, जिसमें जिज्ञासु ब्रह्म में लै लीन होकर, ब्रह्माकार हो जाते हैं।

पाँच तत्व के पांच हैं, आठ तत्व के आठ।
आठ तत्व का एक है, तहाँ निरंजन हाठ ॥५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पांच तत्व (आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी) और उनके पांच (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), तन मात्रा ये ही पांच तत्व, सत रज तम के मिलने से आठ तत्व होते हैं । एवं महतत्व, अहंकार, और शब्द आदिक और प्रकृति इन आठ तत्वों के कार्यरूप व्यष्टि अहंकार, बुद्धि, मन और पंच स्थूल भूत हैं । पुनः इन आठ तत्वों का एक क्षेत्ररूप अनात्म स्थूल शरीर बना है । यह परमेश्वर से मिलने की हाट है । हे जिज्ञासु ! इस शरीर को प्राप्त करके, अपना अनातम आपा त्यागकर, ब्रह्मतत्व को पहचानिये और भी सुनिये :- पांच तत्व, पंच तन मात्रा उनके आकाश आदिक पांच भूत हैं, इनसे स्थूल शरीर बनता है । और सूक्ष्म अपंचीकृत पंचभूत, अविद्या, वासना, कर्म, यह आठ तत्व हैं । इनका सूक्ष्म शरीर है । इन दोनों शरीरों का संयोग तजन्य देह है । यही उस निरंजन निर्विकार चेतन आत्मा की प्राप्ति का स्थान है ।

जहं मन माया ब्रह्म था, गुण इन्द्रि आकार ।
तहं मन बिरचें सबनि थैं, रचि रहु सीरजनहार ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'जहां' कहिए इस स्थूल शरीर में, मन सूक्ष्म शरीर, माया कारण शरीर और इनका अधिष्ठान चेतन ब्रह्म, सत रज तम गुण, पंच ज्ञान इन्द्रिय, इनका स्थूल आकार, इन सबसे हमारा मन विरक्त कहिए अलग होकर, परमेश्वर में एकाग्र रहै, तो हम आत्म अनुभव करैं । दूसरा अर्थ जहां कहिए, अज्ञान की दशा में, मनभूतों के गुण इन्द्रियों के व्यापार और आकार वाली वस्तुओं को ही ब्रह्म चेतन समझ रहा था, किन्तु हे जिज्ञासु ! अज्ञान दशा को बदलनी हो तो, मन को उन अविद्या के. आवरण से, सत्य प्रतीत होने वाले त्रिगुण आत्मिक, पंच भूतात्मक पदार्थों से, मन को 'बिरचै, नाम अलग कर । सिरजनहार अशेष जड़ जगत का, आधार रूप, चेतन, जो सबके अभिव्यक्ति का कारण है, उसी में अपने मन को प्रेम सहित लगाओ ।

दादू जहां थैं सब ऊपजै, चदं सूर आकास ।
पानी पवन पावक किये, धरति का परकास ॥५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'जहां थैं' कहिए माया विशिष्ट चेतन्य से सब चन्द्रमा सूर्य और पंच महाभूत उत्पन्न होते हैं और जितनी भी दृश्य वस्तुएं उत्पन्न हुई दिखाई देती हैं, उन सबमें उनका आधार रूप चेतन्य व्याप्त है ।

काल करम जिव ऊपजै, माया मन घट सांस ।
तहं रहता रमता राम है, सहज सुंनि सब पास ॥५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! पूर्व संस्कार से जीव के साथ ही काल, कर्म उत्पन्न होते हैं और जीव के साथ रहते हैं और माया, मन, घट स्थूल शरीर, सांस कहिए प्राण, इन सब में राम ही रम रहा है और वह अधिष्टान चेतन्य राम इन सबसे अलग है। इसी प्रकार माया, मन, प्राण, शरीर आदि का संयोग होता है। इन सबमें परमात्मा सहज भाव से रम रहा है। वही सहज शून्य रूप है।

सहज शून्य सब ठौर है, सब घट सबही मांही ।
तहां निरजंन रमि रह्या, कोइ गुण व्यापै नांहि ॥५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह सहज शून्य कहिए निर्विकार स्वरूप ब्रह्म सब ठौर, स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताल लोक इससे आदि लेकर सम्पूर्ण लोकों में, और सभी देहधारियों के हृदय में व्यापक है। इसी से संतजन माया के आवरण से शून्य कहिए, अलग होकर, ब्रह्म में रम रहे हैं। इसी से तीन गुणों का अथवा उत्पत्ति प्रलय आदिक का उन पर कोई प्रभाव नहीं होता है और सदा अभेद रहते हैं।

दादू तिस सरवर के तीर, सों हंसा मोती चुणैं ।
पीवै नीझर नीर, सो है हंसा सो सुणैं ॥५७॥

टीका :- निर्मल दशा को प्राप्त हृदय, सरोवर के तीर, हंसा साधक, संतजन मोती चुगैं। स्वस्वरूप का परिचयरूप मोती चुणै, चिन्तन करैं, प्राप्त करैं। नीझर नीर, कभी न सूकने वाला स्वस्वरूप, परिचयरूप, विशुद्ध नीर का पान कर रहे हैं। अर्थात् स्मरण कर रहे हैं, लय प्रवृत्ति द्वारा और अनहद शब्द का श्रवण करते रहते हैं। वे ही जिज्ञासु शोभायुक्त हैं।

दादू तिस सरवर के तीर, जप तप संजम कीजिये ।
तहं सनमुख सिरजनहार, प्रेम पिलावै पीजिये ॥५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पवित्र अन्तःकरणरूपी सरोवर के तीर पर, आत्मा का जप, और इन्द्रिय संयमरूपी तप, चित्त की एकाग्रता आदिक को धारण करो। जब हृदय प्रदेश निर्मल होगा, तो परमेश्वर प्रत्यक्ष अनुभव होंगे और अपना स्वरूप समष्टि व्यष्टि की एकतारूप प्रेम का, सुख प्राप्त करावेगें। जिससे अजर अमर भाव को प्राप्त होंगे।

दादू तिस सरवर के तीर, संगी सबै सुहावणे ।
तहां बिन कर बाजै बैन, जिभ्या हीणे गावणे ॥५९॥

टीका :- निर्विकल्प शुद्ध चेतन ब्रह्म, वही सरोवर है और शुद्ध मन ही हंस है, जो कि निर्वासनिक है। शुद्ध चेतन को बताने वाले जो शब्द महावाक्य हैं वही मोती हैं। चुगो चुगी कहिए निरन्तर अभ्यास द्वारा, बुद्धि की स्थिर वृत्ति में स्वस्वरूप को निश्चय कहिए, धारण कर। "यों जन जीबैं संत" इस प्रकार उत्तम जिज्ञासु जरा, मृत्युरूप भय से मुक्त होते हैं और उसके मन, बुद्धि, इन्द्रिये सुहावणे कहिए दिव्य हो जाते हैं। अर्थात् विषय वासनाओं को छोड़ कर, आत्म परायण हो जाते हैं। और बिना हाथों के ही अनहद ध्वनिरूप बैन बजती रहती है और बिना जिह्वा के ही 'सोहं हंसो, हंसो सोहं,' रूप गायन होने लगता है।

दादू तिस सरवर के तीर, चरण कवल चित लाइया।
तहं आदि निरजंन पीव, भाग हमारे आइया ॥६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस सहज शून्य कहिए निर्विकार स्थिति को प्राप्त होकर, स्वयं प्रकाश स्वरूप परमेश्वर के चरणों में (तेज पुन्ज के चरण) चित्तवृत्ति को लै लीन करिये। हमारे हृदय प्रदेश में ही सर्वमायिक प्रपंच का आदि कारण वह ब्रह्म व्यापक है। परन्तु बड़े भाग से कहिए सतगुरू कृपा द्वारा, स्वरूप बोध होता है। इसलिए अब स्वस्वरूप में लीन रहो।

दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करै कलोल।
सुख सागर सूभर भर्या, मुक्ता हल मन मोल ॥६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निर्विकल्प समाधि द्वारा उत्तम जिज्ञासु, आत्मस्वरूप ब्रह्म में, परमानन्द का अनुभव करते हैं। सरोवर तो जल से पूर्ण होता है, किन्तु यहां भी परमसुख से ब्रह्म सरोबर परिपूर्ण है। इसी से जीवनमुक्त पुरुष मोतीरूपी स्वस्वरूप चेतन्य का अनुभव करते हैं।

दादू हरि सरवर पूरण सबै, जित तित प्राणी पीव।
जहां तहां जल अैंचतां, गइ तृषा सुख जीव ॥६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! सरोवर का स्नान, आतप आदि दुखों को दूर करता है। उसी प्रकार बह्मसरोवर भी अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत, तापत्रय को निवारण करता है और सर्वत्र परिपूर्ण है। हे जिज्ञासुओ ! 'जित तित' कहिए, ग्रहस्थ आश्रम और बन निवृत्ति मार्ग में रहने वाले, दोनों ही आत्म अनुभवरूप अमृततुल्य जल को पीओ। 'जहां तहां' कहिए, बह्म चिंतनरूप सत्संग और सहजावस्थारूप समाधि आदिक साधनों में बह्मानन्द रूप जल को 'अैंचतां' कहिए, पीने से तृषा कहिए, अनात्म वासना नष्ट होती हैं। इसलिए मुक्त पुरुष परम सुखी रहते हैं।

सुख सागर सूभर भर्या, उज्जल निर्मल नीर ।
प्यास बिना पीवै नहीं, दादू सागर तीर ॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमात्मारूपी सागर, माया अविद्या आदिक विकारों से रहित, उज्जवल और निर्मल जल की भांति, सुख से परिपूर्ण है और अपने आप में व्यापक है। फिर भी जिज्ञासा (इच्छा) के बिना अनअधिकारीजन राम रस को नहीं पीते हैं।

सुन्य सरोवर हंस मन, मोती आप अनंत ।
दादू चुगि चुगि चंचभर, यौं जन जीवैं संत ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्म ही तो सरोवर है और आप ही वह ब्रह्म नाम भेद से अनन्त मोतीरूप है। और शुद्ध मन ही हंसरूप है। विवेक वैराग्य सहित स्वस्वरूप का विचार कर करके, तदाकार वृति होते हैं। इस प्रकार संतजन, ब्रह्मस्वरूप होते हैं।

सुन्य सरोवर मीन मन, नीर निरजंन देव ।
दादू यहु रस बिलसिये, ऐसा अलख अभेव ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! लय रूपी सरोवर में मल, विक्षेप दोष से रहित, वह मन मछली रूप है और व्यापक चेतन रूप ब्रह्म वही जल रूप है। उस ब्रह्मी अवस्था में बिरहीजनों का मछली स्वरूप मन, जल स्वरूप उस ब्रह्म में लीन रहता है। ऐसे आतम आनन्द का अनुभव करो।

सुन्य सरोवर मन भवंर, तहां कवंल करतार ।
दादू परिमल पीजिए, सनमुख सिरजनहार ॥६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निर्विकल्प समाधी अवस्था सरोवर है, जिसमें परमेश्वर ही कमलरूप है और अनन्य भक्तों का मन ही भंवरारूप से उस कमल में लीन रहता है। इसलिए हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के सन्मुख होकर, ब्रह्म अनुभवरूप सुबास अर्थात् सुगन्धित को प्रत्यक्ष करो।

सुन्य सरोवर सहज का, तहं मर जीवा मन ।
दादू चुणि चुणि लेंइगा, भीतर राम रतन ॥६७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अखण्ड समाधि सहजावस्था रूप सरोवर है और चेतन्य ब्ह्मस्वरूप आत्मा ही जल भरा है। ऐसे अलोकिक सरोवर में मुक्त पुरुषों का जीवित मृतक हुआ मन, निर्विकल्प सरोवर से, रामरूपी रत्नों को भक्ति वैराग्य सहित अनुभव करता है।

दादू मंझि सरोवर बिमल जल, हंसा केलि करांहि।
मुक्ता हल मुक्ता चुगैं, तिहिं हंसा डर नांहि ॥६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शुद्ध हृदय रूपी सागर है और उसमें परमात्मा का दर्शन रूप जल भरा है, वह जल अति निर्मल है। तत्ववेत्ता, ज्ञानी पुरूष, वहां स्वस्वरूप का विचार रूपी क्रीडा करते है। और जीवन मुक्त रूप, स्वस्वरूप आनन्द का अनुभव करते हैं, ऐसे पुरूष काल कर्म के भय से मुक्त रहते हैं।

अखंड सरोवर अथग जल, हंसा सरवर न्हांहि।
निरभय पाया आप घर, अब उड़ि अनतन जांहि ॥६९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर ही एक रस सागर रूप है, जिसमें अपार आनन्द रूपी जल भरा हुआ है और परमेश्वर के भक्त रूपी हंसा, आतमतत्व का निर्णय करते हैं। तथा काल कर्म आदि से मुक्त उत्तम पुरुष, स्वस्वरूप में मग्न रहते हैं। उनके मन इन्द्रिये, अन्य बाह्य विषयों से निरासक्त हो गए हैं।

दादू दरिया प्रेम का, तामैं झूलै दोइ।
इक आतम पर आतमा, एक मेक रस होइ ॥७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के प्रेम रूप जलासय में यह जीव पीव से अर्श पर्श अभिन्न होकर, परमानन्द में मग्न हो रहे हैं।

दादू हिण दरियाव, माणिक मंझेई।
डुबी ~~हुबि~~ डेई पाण मैं, डिठो हंझेई ॥७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'हिण' कहिए इस हृदय रूपी दरयाव में, जिसमें परमेश्वर रूपी अनमोल माणिक है। उसको जीवन मुक्त संतों ने 'पाण में'—अपने आप में भीतर, 'डुबी डेई' नाम ध्यानरूपी नाम गोता लगा करके, अन्तर्मुखी वृत्ति से, 'डिठो'—अनुभव किया है। हे जिज्ञासुओ ! आप भी ऐसा करो, तब स्वरूप साक्षात्कार होगा।

पर आतम सौ आत्मा, ज्यूँ हंस सरोवर मांहि ।
हिलि मिलि खेलैं पीव सौं, दादू दूसर नांहि ॥७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस प्रकार मानसरोवर में, हंस मनोविनोद परस्पर करते हैं, वैसे ही शुद्ध अन्तःकरण रूपी मान सरोवर में, जीवात्मा साक्षी चेतन्य से, एक रस होकर, एकतारूपी आनन्द का अनुभव करते हैं। फिर साभास जीव की ब्रह्म से भिन्नता विलीन हो जाती है।

दादू सरवर सहज का, तामैं प्रेम तरंग ।
तहं मन झूलै आत्मा, अपणे सांई संग ॥७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो संतों की सहजावस्था है, वही तो मानसरोवर है और राम के स्वरूप का विचार ही मानो जल है। परमेश्वर का प्रेम ही मानो उसकी तरंग है। जीवनमुक्त संत अपने अधिष्ठान के साथ मिलकर, कहिए अभेद होकर, एकता की प्रेमरूपी तरंगों में झूल रहे हैं अर्थात् आत्मज्ञान रूप स्नान करते हैं। आप भी इस आनन्द का अनुभव करो।

दादू देखौं निज पीव कौं, दूसर देखौं नांहि ।
सबै दिसा सौं सोधि करि, पाया घट ही मांहि ॥७४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब तो हम मुक्तजन, पीव को कहिए, साक्षी चेतन्य को, अपना निज रूप करके ही, ज्ञान विचाररूपी नेत्रों से देखते हैं और अब "दूसर" कहिए माया प्रपंच को सत्यरूप करके, नहीं देखते हैं। जागृत स्वप्न सुसुप्ति तथा पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन सब दिशाओं में "सोधि" कहिए तलाश करके, उसको फिर महावाक्यों द्वारा, अपने अन्तःकरण में प्राप्त कर लिया है।

दादू देखौं निज पीव कौं, औरन देखौं कोइ ।
पूरा देखौं पीव कौं, बाहिर भीतर सोइ ॥७५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब तो मुख प्रीति का बिषय जो पीव है, उसको हृदय में ही देखते हैं। उसके सिवाय अब और मायावी कार्य देवी देवता उनको पीव करके, अर्थात् ईश्वर करके, नहीं जानते हैं। उस परमेश्वर को पूर्ण रूप से हृदय में देखते हैं। इस शरीर के बाहर और भीतर भी, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में वही परिपूर्ण हो रहे हैं।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय

शेर :- नगर में बन में, कुछ आलम निहारा है।
जिधर देखौं उधर प्यारे, यही जलवा तीहारा है ॥७५॥

दादू देखौं निज पीव कौं, देखत हि दुख जाइ।
हूं तो देखौं पीव कौं, सब मैं रह्या समाइ ॥७६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब तो परमातमा को निज रूप करके ही देखते हैं, उसको देखते ही सम्पूर्ण दुःख कहिए, आदि व्याधि से मुक्त हो गए हैं। अब हम तो रात दिन ब्रह्म का ही दर्शन करते हैं। जो सबमें समाया हुआ है, वही ब्रह्म अखंडित और निरंतर इस विश्व को प्रकाशित करता है। तब तो अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि द्वैत और अद्वैत की जो कलपना है, वह माया का बड़ा भारी मोह है।

दादू देखौं निज पीव को, सोई देखन जोग।
परगट देखौं पीव को, कहाँ बतावैं लोग ॥७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आत्मज्ञानी संतपुरूष, सर्वव्यापक ब्रह्मानन्द का ही अनुभव करते हैं। यही परम तत्व सर्वत्र व्यापक है। सर्वश्रेष्ठ और सर्वत्र देखने योग्य है, प्रत्यक्ष साक्षात निरावरण है। परन्तु सकाम कर्मों की प्रवृति वाले लोग, जप, तप, तीर्थ, यज्ञ, दान आदि में उसको बताते हैं। पर वस्तुतः उनमें है नहीं।

दोहा :- सुन्दर देख्या सोधि के, सब काहु का ज्ञान।
कोई मन मानै नहीं, बिना निरंजन ध्यान।

दोहा :- खट दर्शन हम खोजिया, योगी जंगम सेख।
सन्यासी अरू सेवड़े, पंडित भक्ता भेख ॥७७॥

त्रिबंगी छन्द :-

तो भक्ती न भावै दूर बतावै, तीरथ जावै फिर आवै।
जो कृतम गावै पूजा लावै, झूठ दृढावै बहिकावै।

अरू माला लावै तिलक बनावै, क्यूँ पावै गुरू बिन गैला ।
दादू का चेला भरम पछेला, सुन्दर न्यारा व्है खेला ॥७७॥

(परिचय जिज्ञासु उपदेश)

दादू देखु दयाल को, सकल रह्या भरपूर ।
रोम रोम मैं रमि रह्या, तूँ जिन जानै दूर ॥७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर को देखिए, वह सर्वत्र परिपूर्ण है । उस आत्मस्वरूप चेतन्य को दूर नहीं जानना । वह रोम रोम में व्यापक है ।

शेर :-
तैसे जगत है आत्मा में, कनक में भूषण तथा ।
नीर माँही लहर जैसे, सीपी में रूपो यथा ।
आकार दृष्टि छोड़ कर, टुक समझ ले उस यार को ।
यार है दिलदार दिल में, देख अजब बहार को ॥७८॥

दादू देखु दयाल को, बाहरि भीतरि सोइ ।
सब दिसि देखौं पीव को, दूसर नांहि कोइ ॥७९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस सुखप्रीति के विषय परमेश्वर को देखो । वह बड़े दयालु हैं । वह बाहर भीतर सर्वत्र स्थित हैं । सब दिशाओं में उसी परमात्मा को ही देखो, उसके सिवाय और कोई दूसरा देखने योग्य है, नहीं । वह परमात्मा चराचर, सब भूतों के बाहर भीतर परिपूर्ण है । और चर अचर रूप भी वही है । वह सूक्ष्म होने से अविज्ञ है, एवं अति समीप में, दूर में भी स्थित है । वही सबका अंतर आत्मा है ।

दादू देखु दयाल को, सनमुख सांइ सार ।
जीधरि देखौं नैंन भरि, तीधरि सिरजनहार ॥८०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्व कहिए आप स्वयं अपनी अन्तःकरण की वृति को आत्मा के सन्मुख रखना । यही मानव जीवन का सार कहिए, सार्थक वनाना है और ज्ञान विज्ञान रूप नेत्रों से जिस ओर देखो कहिए,

किसी भी साधन से उसका विचार करो। अर्थात् जिस प्रकार एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा सम्पूर्ण शरीर को प्रकाशित करता है। और नित्य बोध स्वरूप एक ही आत्मा की सत्ता से, सम्पूर्ण जड़ वर्ग प्रकाशित होता है।

दादू देखु दयाल को, रोकि रह्या सब ठौर।
घटि घटि मेरा सांइया, तूं जिनि जाणैं और ॥८१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! आप अपनी चित्त की वृत्ति को सब विषयों से अन्तर्मुख करके, उस दयालु परमेश्वर को देखिए। उसको दूर नहीं ससझना। वह तो घट घट में व्याप्त है। उसे ज्ञानरूपी नेत्रों से जहां भी देखोगे, वहां प्रत्यक्ष दिखलाई देगा। इसी प्रकार मुक्तजन सर्वत्र ब्रह्म का अनुभव करते हैं। और हे जिज्ञासुओ! उस परम पुरूष परमात्मा को कितने ही पुरूष तो, शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से, अहग्रंह ध्यान के द्वारा, हृदय में देखते हैं और कितने ही ज्ञान नेत्रों से देखते हैं। कई निष्काम कर्म योग के द्वारा, उसका अनुभव करते हैं।

(उभै असमाव)

तन मन नाहीं मैं नहीं, नहीं माया नहीं जीव।
दादू एकै देखिए, दह दिसि मेरा पीव ॥८२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! उस परमात्मा में दो नहीं समा सकते। और यह तन मन सत्य है नहीं, और न यह माया ही सत्य है। तो उसके कार्यभूत पदार्थ कैसे सत्य हो सकते हैं? इसलिए माया का आवरण होने से ही, जीवभाव प्रतीत होता है, जिससे "मैं हूं, यह मेरा है" आदिक जो जीव का अभिमान है, सो भी कल्पनिक है। इसलिए हे जिज्ञासुओ! दशों दिशाओं में, केवल हमारा प्रीतम ही व्यापक हो रहा है। इसलिए सर्वत्र केवल ब्रह्म स्वरूप आनन्द को ही बिचारिये।

दादू पाणी मांहै पैसि करि, देखै दृष्टि उघारि।
जलाबिंब सब भरि रह्या, ऐसा ब्रह्म बिचारि ॥८३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! जैसे पानी में 'पैसि करि' कहिए, बैठकर, गोता लगाकर, और दृष्टि खोल कर देखने से सर्वत्र जलाबिंब ही भान होता है, वैसे ही ब्रह्मसरोवर में, परमेश्वर का प्रेम रूपी जल भरा है, जिसमें लय चिन्तनरूप गोता लगाने से, आत्म ज्ञान रूपी दृष्टि उदय होती है। फिर सर्वत्र ब्रह्मानन्द का ही अनुभव करता है।

दोहा :- नारद पूछी विष्णु तैं, प्रभु मोहि ब्रह्म दिखाइ ।
जावो समुद्र पर गयो, सरि कहै मोहि जल पाइ ॥८३॥

दृष्टान्त :- एक समय नारद मुनि ने मन में बिचार किया कि ब्रह्म कैसा है ? यह सोचकर भगवान विष्णु के पास पहुंचे । भगवान को प्रणाम किया और बोले, हे स्वामिन् ! मुझे ब्रह्म का दर्शन कराओ । भगवान बोले :- नारद जी आप समुद्र के पास जाओ, वह आपको ब्रह्म का दर्शन करा देगा । समुद्र पर गए । समुद्र देवता प्रगट हुए । नारद जी बोले :- मुझे आप ब्रह्म का दर्शन करा दो । इस पर समुद्र बोला :- आप मुझे जल पिला दो, प्यास लगी है । नारद जी बोला :-आप तो जल रूप ही हो । समुद्र बोला :- आप भी ब्रह्मरूप हो । निश्चय करो। तभी नारद जी को निश्चय हो गया, कि मेरा आत्मस्वरूप ही ब्रह्म है ।

छन्द :-

ज्यूं मृतिका घट नीर तरंगहि, तेज मसाल किये जु बहूता ।
वायु बधूरनी गांठ परी बहु, बादल व्योम सु व्योम जु भूता ।
वृक्ष जु बिज ही, बिज सु वृक्षहि, पुत सु बापहि बाप सुपुता ।
वस्तु विचारत एकहि सुन्दर, तानरू बानसु देखीये सुता ॥८३॥

सदा लीन आनन्द में, सहज रूप सब ठौर ।
दादू देखै एक कौं, दूजा नांहि और ॥८४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्म निर्विकाररूप से सर्वत्र व्यापक है । इसलिए संतजन, हर समय उसी आनन्द स्वरूप में लीन रहते हैं और सहजभाव होकर, एक चेतन्य आत्मा का हो प्रत्यक्ष करते हैं । ऐसे जीवन मुक्त पुरुष का स्वरूप कहते हैं ।

छन्द :-

द्वन्द बिना बिच्चरै वसुधा पर, जा घट आत्तम ज्ञान अपारो ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न, राग न द्वैष न माहारो न थारो ।

योग न भोग न त्याग न संग्रह, देह दशा न ढक्यौ न उघारौ।
सुन्दर कोउक जान सकै यहै, गोकुल गांव को पैंडो हि न्यारो ॥८४॥

दादू जहं तहं साथी संग है, मेरे सदा अनंद ।
नैन बैन हिरदै रहै, पूरण परमानंद ॥८५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! घर और बन, जागृत और सुषुप्ति, सर्वकाल और सर्वदेश में, हमारा साथी परमेश्वर, हमारे समीप रहता है । इसी से हमारे सदैव आनन्द हो रहा है । हमारे नेत्र आदि इन्द्रियां, बाह्य विषयों को त्यागकर, अर्न्तवृत्ति हो रही हैं । इस प्रकार, ब्रह्मज्ञानी, परमानन्द को प्राप्त होते हैं ।

जागत जगपति देखीये, पूरण परमानंद ।
सोवत भी सांइ मिलै, दादू अति आनन्द ॥८६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर की जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं में, ज्ञानी पुरूषों की ब्रह्माकार वृत्ति रहती है । ऐसे जीवनमुक्त महापुरूष सदैव, सर्व अवस्थाओं में केवल समाधि में ही लीन रहते हैं । इस प्रकार वे परमानन्द को प्राप्त होते हैं ।

छन्द :-

जागृत तो नहीं मेरे विषय कछु, स्वप्न स्व तो नहि मेरे विषय है ।
नांहि सुसोप्ति मेरे विषै, मेरे विसै तुरीया नहीं दिषत, याही तैं मेरो
स्वरूप अखै है ० ॥८६॥

दादू दह दिसि दीपक तेज के, बिन बाती बिन तेल ।
चहुं दिसि सूरज देखिये, दादू अद्भूत खेल ॥८७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन महापुरूषों ने ब्रह्म का अनुभव किया है, उनके 'बाती' कहिए आत्मबुद्धि रूप वृत्ति और प्रेम रूपी तेल के बिना ही, समस्त शरीर में ब्रह्मतेज के दीपक प्रकाशमान हो रहे हैं । वह सर्वत्र

शरीर में, सूर्यरूप प्रतीत होते हैं। पूर्ण ब्रह्मभाव होने पर, लय चिन्तनरूप समाधि भाव भी विलीन हो जाता है, और ब्रह्मनिष्ट स्वयं प्रकास रूप ही प्रकाशित होते हैं। ब्रह्मज्ञानियों की यही सर्वोउच्च अवस्था है। ब्रह्मज्ञानी जीवनमुक्त, सम्पूर्ण सृष्टि का लय चिंतन द्वारा, ब्रह्म में अभेद कर दिया है।

छन्द :-

भूमि तो विलीन गंध, गंध तो विलिन आप, आप हूं विलीन रस,
रस तेज खात है।
तेज रूप, रूप वायु, वायु हु सपरस लीन, सपरस व्योम शब्द,
तम ही बिलात है।
इन्द्रि दस रज मन, देवता विलीन सत्व, तीन गुण अहंग महतत्व
गलि जात है।
महतत्व प्रकृति रू, प्रकृति पुरूष लीन, सुन्दर पुरूष जाइ, ब्रह्म में
समात है ॥८७॥

सूरज कोटि प्रकास है, रोम रोम की लार।
दादू जोति जगदीश की, अंतन आवै पार ॥८८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मज्ञानियों के हृदय में उस परमात्मा के एक एक रोम के साथ, करोड़ों सूर्यों का सा प्रकाश प्रकाशित हो रहा है। उस जगदीश की स्वरूप ज्योति का न तो आदि है, और न अन्त ही है। ऐसा जीवनमुक्त पुरूष अनुभव कर रहे हैं।

ज्यों रवि एक आकास है, ऐसे सकल भरपूर।
दादू तेज अनन्त है, अल्लहः आलीनूर ॥८९॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु ! जैसे आकाश में एक ही सूर्य है, वह समस्त आकाश को सूर्य मंडल करके, भरपूर करता है। वैसे ही परब्रह्म का स्वरूप, ब्रह्मनिष्ट महापुरूषों के सम्पूर्ण शरीर को ब्रह्मतेज रूप से प्रकाशित करता है। ऐसा वह अनन्त तेजोमय है।

सूरज नहीं तहं सूरज देख्या, चंद नहीं तहं चन्दा ।
तारे नहीं तह झिलमिल देख्या, दादू अति आनन्दा ॥९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वस्वरूप चेतन्य का अनुभव होने पर, हृदय देश में, भौतिक सूर्य चन्द्रमा तारे आदि का प्रकाश नहीं होने पर भो, असंख्य सूर्य चन्द्रमा आदि के प्रकाश पुन्ज, ब्रह्म ज्योति का प्रकाश व्याप रहा है । उस आत्म लोक में सूर्य प्रकाशित नहीं होता । चन्द्रमा एवं तारे भी नहीं चमकते और न वहां विद्युत ही चमचमाती है । फिर अग्नि की तो वहां बात ही क्या कहैं ? उसके प्रकाशमान होते हुए ही, सब कुछ प्रकाशित होता है और उसके प्रकाश से ही यह सब कुछ अन्तर बाहिर भासता है ।

बादल नहीं तहं बरषत देख्या, शब्द नहीं गरजंदा ।
बीज नहीं तहं चमकत देख्या, दादू परमानन्दा ॥९१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेताओं के हृदय आकाश में, यद्यपि व्यवहारिक बादल नहीं समाते हैं । तथापि प्रेम रूपी मेघ वृत्ति द्वारा, निरन्तर अमी रस बरसाते हैं । और बिना शब्द के ही अनहद ध्वनि प्रगट होती है । बिजली बिना ही स्वरूप का चमचमाहट हो रहा है । इस प्रकार से ब्रह्मवेत्ता सदा आनन्द में रहते हैं । 'बादल' कहिए देहाध्यास, 'शब्द' आपा, 'बिजली' वासना, इन सब से मुक्त होकर, अजर अमर होते हैं । अर्थात् जहां विकाररूपी बादल नहीं हैं, वहां पर आत्मदर्शन रूपी वर्षा बरसतो है । वाणी की बाहरी प्रवृति की निवृति होने पर, मौनावस्था ध्यान में, अनहद ध्वनिरूप गरजना सुनाइ पड़ती है और जहां पर वासना रूपी चंचलता, नहीं है, वहां पर ब्रह्म ज्योति का प्रकाश होता है, इस स्थिति में पहुंचने पर ही परमानन्द की प्राप्ति होती है ।

(आत्म वेलीतरू)

दादू जोति चमकै झिलमिलै, तेज पुंज परकास ।
अमृत झरै रस पीजिए, अमर बेली आकास ॥९२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वस्वरूप की ज्योति, प्रकाश प्रतिबिम्बत होकर, जब प्रकाश होता है, तब ही सहज निर्विकार अनन्त प्रकाश की ज्योति प्राप्त होती है और नाम चिन्तनरूप अमृत झरता है । उसका पान करिए । इस प्रकार ब्रह्मरूपी वृक्ष पर स्थित प्रज्ञ साधक की वृत्ति, अमर बेल की तरह छा जाती है, अर्थात् वर्णन करती है ।

(परिचय संग)

दादू अविनाशी अंग तेज का, अैसा तत अनूप ।
सो हम देखा नैन भरि, सुन्दर सहज सरूप ॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! शुद्ध व्यापक चेतन्य का 'अंग' कहिए स्वरूप अविनाशी है और 'अनूप' कहिए उपमा रहित, माया अविद्या उपाधी के विकारों से रहित है । उसको 'हम' मुक्त पुरुषों ने ज्ञान विचार रूपी नेत्रों में धारण किया है । वही तत्व स्वरूप है ।

परम तेज परगट भया, तहां मन रह्या समाइ ।
दादू खेलै पीव सौं, नहीं आवै नही जाइ ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया अविद्या विकार से रहित, चेतन्य साक्षी रूप ज्योति में अब हमारा मन समा रहा है । इस प्रकार मुखप्रीति का विषय जो पीव है उससे 'खेल' कहिए अभेद निश्चय रूप खेल खेलते हैं । इस प्रकार हम आवागमन के चक्र से मुक्त हो गए हैं ।

निराधार निज देखीये, नैनहुं लागा बन्द ।
तहं मन खेलै पीव सौं, दादू सदा अनन्द ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सबका आधार, परन्तु स्वयं निराधार रूप, ब्रह्म को देखिये । उन ज्ञानरूपी नेत्रों से जो सर्व विषयों से रहित अन्तर्मुख होकर, ब्रह्म में लीन रहते हैं और यह मन अब पीव से कहिए जो मुखप्रीति का विषय है परमेश्वर, उससे विचार द्वारा चिन्तरूप खेल खेलता है । अर्थात् सदैव परमेश्वर का अनुभव करता है, फिर वह जन्म मरण के चक्र से मुक्त रहता है ।

(आत्म वेलितरू)

अैसा एक अनूप फल, बीज बाकुला नांहि ।
मीठा निर्मल एक रस, दादू नैनहुं मांहि ॥६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आत्मारूपी बेली के ब्रह्मज्ञानरूपी, अपूर्व फल लगा है । वह फल बासनारूप बीज से रहित है और 'बाकुला' कहिए वातादि दोषजन्य, सत रज तम आदिक गुण, जन्यस्थूल भौतिक आवरणमय, छाल से रहित और अविद्या दोष रहित, परम मधुर है, वही फल हमारे हृदय में, ज्ञान विज्ञान के नेत्रों द्वारा स्थित है ।

(परिचय)

हीरे हीरे तेज के, सो निरखै त्रिच लोइ ।
कोइ इक देखैं संतजन, और न देखै कोइ ॥९७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जैसे एक हीरे को दूसरे हीरे से मिला देवें, तो दोनों हीरे मिल कर एक ज्योति होते हैं । इसी प्रकार जीवात्मा निरावर्ण होकर, परमात्मा से मिला तो, अभिन्न भाव होकर, अखंड ज्योतिस्वरूप हुआ । तीसरे ज्ञानरूपी नेत्र से यह आतम परिचय होता है । परन्तु कोई बिरले ही सन्तजन, इस प्रकार स्वस्वरूप को अनुभव करते हैं । क्योंकि यह अनुभव बहुत लोगों के सुनने के लिए, प्राप्त होने योग्य नहीं है, जिसको बहुत से लोग सुनकर भी नहीं समझते । इस आत्मतत्व का निरूपण करने वाला उपदेष्टा भी आश्चर्य रूप है । उसे प्राप्त करने वाला भी कोई निपुण पुरुष ही होता है । दक्ष आचार्य द्वारा उपदेश किया हुआ ज्ञाता भी, आश्चर्य रूप है, और बहुतों को सुनने के लिए भी, नहीं मिलता है, और दूसरे बहुत से असुचि अभागे पुरुष सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जान पाते हैं । इसका वक्ता भी अद्भुत सा ही है, वह भी अनेकों में कोई ही होता है ।

नैन हमारे नूरमां, तहां रहै ल्यौ लाइ ।
दादू उस दीदार को, निसदिन निरखत जाइ ॥९८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अर्न्तवृत्ति रूपी नेत्र स्वरूपमय हो रहे हैं । इस प्रकार आत्मवेत्ता पुरुष, स्वस्वरूप में ही लै लगाते हैं और ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्म अनुभव में, रात दिन मग्न रहते हैं ।

दादू नैनहुं आगे देखिये, आतम अंतरि सोइ ।
तेज पुंज सब भरि रह्या, झिलमिल झिलमिल होइ ॥९९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने ज्ञानरूपी नेत्र खोलकर देखो, तो आत्मतत्व हृदय में ही व्याप्त है । वह ब्रह्म, तेज पुंज कहिये, समूह रूप मे रोम रोम में भरपूर हो रहा है । उस तेजोमय ब्रह्मज्योति का झिलमिलाहट, जागृत, स्वप्न, सुषोप्ति सर्व अवस्थाओं में भान हो रहा है ।

अनहद बाजे बाजिये, अमरापुरी निवास ।
जोति सरूपी जगमगै, कोइ निरखै निजदास ॥१००॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! दशमें द्वार में, ब्रह्म अनुभव होने पर, अनहद बाजे बज रहे हैं और ज्योति स्वरूप ब्रह्म, सर्वत्र प्रकासमान है । किन्तु बिरले संतजन ही स्वस्वरूप का अनुभव करते हैं । (दशमें द्वार = निर्विकल्प समाधि में)

परम तेज तहं मन रहै, परम नूर निज देखै ।
परम जोति तहं आतम खेलै, दादू जीवन लेखै ॥१०१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां हृदय में तेज स्वरूपी ब्रह्म है, वहीं पर ब्रह्मवेत्ताओं का मन निवास करता है, और स्वस्वरूप का अनुभव करता है । हृदय प्रदेश में यह जीवात्मा, परमात्मा में एक रूप होकर खेलता है । इस प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार करने में ही, जिज्ञासुजनों के जीवन की सफलता है और ब्रह्मज्ञानी ही अपने जीवन में परमेश्वर को प्रत्यक्ष करते हैं ।

दादू जरैं सु जोति सरूप है, जरै सु तेज अनंत ।
जरै सु झिलमिल नूर हैं, जरै सु पुंज रहंत ॥१०२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमात्मा का जो ज्योति स्वरूप है । सो सर्वत्र 'जरै' नाम प्रकासै है और सर्वत्र परमात्मा का ही तेज व्याप रहा है । यह जो सर्वत्र झिलमिलाहट रूप शोभनीय शक्ति प्रतीत हो रही है, सो भी परमात्मा का ही नूर शोभा है । इस प्रकार सर्वत्र परमेश्वर का ही 'पुन्ज रहंत' कहिए, अक्षय तेजपुंज व्याप रहा है ।

(परिचय पति पहचान)

दादू अलख अलाह का, कहु कैसा है नूर ।
दादू बेहद हद नहीं, सकल रहा भरपूर ॥१०३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रस्तुत साखी में बीरबल, अबलफजल का प्रश्न है कि हे स्वामिन् ! अलख (मन वाणी का अविषय) नाम शक्तिवृत्ति द्वारा, संसारीजनों को, उस अल्लाहरूप ईश्वर का प्रत्यक्ष कैसे होवै ? इसलिए आप सतगुरू कृपा करके, उपदेश करो कि परमेश्वर का नूर कहिए, स्वरूप कैसा है ? हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का बेहद अपार स्वरूप है क्योंकि परमेश्वर में जाति, वर्ण, आश्रम, जन्म, मरण, देश काल, आद्रि कोई हद यानि सीमा, मर्यादा नहीं होती । हद क्यों नहीं है ? सो कहते हैं कि हद उसमें होती है जो परिछिन्न वस्तु है । परमेश्वर परिछिन्न है नहीं । इसलिए परमेश्वर "सकल रहा भरपूर"—अर्थात् परमेश्वर सम्पूर्ण नाम रूप जगत में, आकाश की भांति, परिपूर्ण व्याप्त हो रहा है ।

वार पार नहिं नूर का, दादू तेज अनंत ।
कीमत नहीं करतार की, ऐसा है भगवंत ॥१०४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के स्वरूप का कोई पार नहीं है क्योंकि उसकी निर्पेक्षिक व्यापकता है और वह अनन्त तेजोमय है । फिर उसकी कोई कीमत भी नहीं है, क्योंकि वह अद्वितीय है । यह सब सापेक्षिक व्यापकता वाली वस्तु में होती है । वह परमेश्वर स्वयं जिन भक्तों पर कृपा करते हैं, उनको ही उसका साक्षात्कार होता है ।

दोहा :- तिन कर अजंन आण दृघ, तरूण भये तत्काल ।
और अनन्त गुण जास के, को बरणैं बुद्धि बाल १०४॥

छंद :-

सेवक झाझ गई सर माझ, जहां मर जीवन भीतर डारे।
तीन हि बेर न हाथ लग्यों, जब सेठ उदास दुखि मन भारे।
पुन्य निमित धस्यो चवथें, इक कंकर लेकर बाहर धारे ।
लेकर कीमत काज फिर्यो जग, काबल कोड़ अठार पै धारे॥१०४॥

दृष्टान्त :- एक जौहरी का लड़का, समुद्री जहाज में बैठकर समुद्र में गया, जहां हीरे आदि की खान है । वहां एक गोताखोर को नीचे समुद्र में उतारा । उसने समुद्र में नीचे जाकर दो मुट्ठी भरी । ईशारा करने पर ऊपर खींचा । हाथ खोल कर दिखाया, तो दोनों हाथों में कंकर निकले । तीन बार ऐसा ही हुआ । सेठ उदास हो गया, क्योंकि रुपया जो कुछ था, वह गोताखोर को दे दिया था । जब सेठ को गोताखोर ने उदास देखा :- कि इसने मुझे सब पैसा दे दिया तो गोताखोर बोला :- मैं अबके पुण्य के निमित्त चौथा गोता फिर लगाता हूं । जो कुछ मिल जाएगा वह आपका है । यह कह कर, समुद्र में गोता लगाया और दोनों मुट्ठी भरके लाया । मुट्ठी खोली तो उसमें एक हीरा दिखलाई पड़ा । सेठ के चेहरे की उदासी खत्म हो गई और ओज आ गया । गोताखोर समझ गया कि इसको अमोलिक रत्न मिल गया है । सेठ वहां से चले और उस हीरे की भारत में जौहरियों से कीमत करवाई । लाख रुपये पर्यन्त उसकी कीमत पहुंच गई, परन्तु सेठ को तसल्ली नहीं हुई । तब उस हीरे को लेकर काबुल में पहुंचा । वहां के जौहरियों ने उसकी एक करोड़ कीमत की । परन्तु फिर भी सेठ को तसल्ली नहीं हुई । तब मालूम किया कि यहां पर कोई और भी इसके गुण को जानने वाले जौहरी हैं । तब जौहरियों ने कहा :- यहां एक वृद्ध जौहरी हैं, वह अपने घर रहते हैं, उनको और दिखला लो । साहूकार उस हीरे को लेकर उनके घर पहुंचा और उनसे यथा योग्य मिला और बोला :- कि यह हीरा है, इसकी परीक्षा कर दीजिए । इसकी कीमत क्या है ? जौहरी अपनी स्त्री को बोला :- एक पानी का गिलास

और हीरे की कसौटी ले आओ । वह तुरन्त लाई । दो बून्द पानी की कसौटी पर डाली और हीरे को जरा सा कसौटी पर घिसा । दोनों ऊंगली अपनी भर ली । दोनों ऊंगली अपनी स्त्री को भरवा दी । उन दोनों ने अपनी अपनी आंखों में उसका अंजन लगा लिया । लगाते के साथ ही वृद्ध रूप से तत्काल तरुण हो गए । जौहरी बोला :- सेठ जी मेरे पास अट्ठारह करोड़ रुपया है, वह आप ले जाओ और हीरा मुझको दे जाओ । सेठ यह सुन कर और उन के शरीरों को देख कर, चकित हो गया और कहने लगे :- यह बेचना नहीं है । जौहरी बोला :- ठीक है, ऐसी अमोलिक वस्तु को कौन बेच सकता है ? प्रकृति के उत्पन्न किए पदार्थ ऐसे ऐसे हैं, तब प्रकृति का स्वामी परमात्मा है, उसके नाम की तो कीमत हो ही कहां सकती है ? वह नाम तो भक्त को नामी का स्वरूप बना देता है ।

निरसंध नूर अपार है, तेज पूंज सब मांहि ।
दादू जोति अनंत है, आगौ पीछो नांहि ॥१०५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का स्वरूप संधि रहित है । उसमें किसी प्रकार के जोड़ आदि की सन्धि नहीं है, उसका नूर कहिए स्वरूप अपार है और फिर वह ब्रह्म, पुन्ज कहिए, समूह, तेज रूप है । सबमें परिपूर्ण है । उसकी ज्योति अनंत कहिए देश काल वस्तु परिच्छेद रहित है । हे जिज्ञासु ! उसके स्वरूप का न आदि है और न अन्त है ।

दोहा :- **रामचन्द्र अरू कृष्ण जी, बांधर गोपिन जोइ ।**
सब सनमुख बोलत बचन, जानत भये सब कोइ ॥१०५॥

दृष्टान्त :- भगवान श्रीकृष्ण जी को, एक समय माता यशोदा, उनकी चंचलता पर कुपित होकर, ऊखल के साथ रस्सी से बांधने लगी । बांधते समय भगवान जरा सा अपना बदन फुला दें, रस्सी चार ऊंगल छोटी पड़ जाये । कई दफा ऐसे ही करते रहे । जब यशोधा जी बहुत हैरान हो गई, बड़ी रस्सी छोटी पड़ जाने पर, गांठ नहीं लगती । भगवान जान गए कि माता बहुत दुखी हो गई । अब मुझे इसके बन्धन में आ जाना ाहिए । ऐसा संकल्प करते ही, माता यशोधा एक छोटी रस्सी लेकर आई, उसी में बंध गए । इस लीला को सभी गोपी ग्वालों ने देखा और यशोधा जी ने भी जाना कि यह कन्हैया तो न मालूम "का जादू टोना ानत भये कभी तनिक पतरे हो जाते हैं कभी मोटे हो जात हैं ।" गोप, ग्वाल सभी यह देख कर चकित हो ए और बोले ,- मैया यह त्रिलोकीनाथ हैं "याकी लीला का कौन पार पावत है, याको हमारा बारंबार मस्कार है ।" उस परमेश्वर की लीला अपार है । वह निरसंध है ।

द्वितीय दृष्टान्त :- जब त्रेता युग में राम का अवतार हुआ, तो ऋषि मुनि और काग भुसुन्डजी विचार करने लगे कि राम का अवतार हुआ है उनके दर्शन करने चलें । फिर विचार किया कि परीक्षा कर लें, राम ही का अवतार है या कोई जीव है । तब कागभुसण्डजी को कहा :- आप जाइये, परीक्षा करिये । कागभुसण्डजी चले । अयोध्या में, रामजी के महल के ऊपर जा पहुंचे । भगवान राम हाथ में एक पूरी का टुकड़ा और लगभग एक साल की अवस्था के बने हुए, छत के ऊपर घूटनों के बल से घूम रहे थे । कागभुसण्ड जी की तरफ राम जी ने देखा और जान गए यह मेरी परीक्षा लेने आया है, ऋषि मुनियों ने भेजा है । राम जी ने अपना पूरी वाला हाथ कव्वे की तरफ किया, ने ! ने ! ने ! । काग भुसण्डी विचार किया कि इसकी पूरी खोस लूं । जहां बैठे थे, वहा से उड़कर, एक झप्पटा लगाया, राम ने पूरी हाथ में दबाकर, सीढ़ियों की तरफ रोते हुए दौड़े । काग भुसण्डी डोली के ऊपर जा बैठे । विचार करने लगे, यह तो राम का अवतार नहीं है, यह तो जीव है । अगर राम होता, तो यह पहचान लेता कि यह मेरा भक्त है । तीन दफा ऐसे ही करते रहे । रामजी जान गए, इसकै, तीन गोते तो माया के समुद्र में लगा दिए । चौथे फिर राम जी, उस पूरी को हाथ में लिए फिर करने लगे, ने ! ने ! ने ! काग भुसण्डी ने सोचा यह लड़का बड़ा शहतान है, अबकी बार इसकी पूरी छिन लूंगा । ज्यों झपट्टा मारा जोर से, त्यों ही भगवान राम ने अपना हाथ पांचों ऊंगली खोल कर उसको पकड़ने के लिए फैलाया । काग भुसण्डी ने पीछे देखा, तो दीख पड़ा कि, "अब पकड़ा, अब पकड़ा," राम जी के हाथ और काग भुसण्डी के बीच, केवल चार उंगलियों का फासला है । जैसे जैसे काग भुसण्डी उड़ता जा रहा है, हाथ भी पीछे पीछे फैलता जा रहा है । तीन लोक में काग भुसण्डी उड़ते रहें और हाथ पीछे चलता रहा । जब प्रभु की शरण में आकर पड़े और नमस्कार किया कि हे नाथ ! आप पतीत पावन, अधम उद्धारण, भक्त वच्छल, अनन्तरूप हैं, आपका किसी ने अंत नहीं पाया है । आप अपार स्वरूप हैं । आपको मेरा कोटि कोटि नमस्कार हो । तब भगवान राम, काग भुसण्डी को दिव्य रूप का दर्शन दिया । प्रभु का दर्शन करके, भक्त तृप्त हो गया और फिर बालक रूप बन कर पूरी हाथ में लेकर ने ! ने ! ने! करने लगे । काग भुसण्डी नमस्कार करके, ऋषि मुनियों के समीप जा पहुंचे और पूर्वोक्त वृत्तान्त, ऋषि मुनियों को कह सुनाया । ऋषि मुनियों ने धन्य धन्य कह कर नमस्कार किया । राम जी संधि रहित हैं, उनका रूप अपार है ।

खंड खंड निज नां, भया इकलस ऐकै नूर ।
ज्यूं था त्यूं ही तेज है, जोति रही भरपूर ॥१०६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह प्रभु "खंड खंड निज ना भया" अर्थात् अवतार आदि भेदों से रहित है, और सदा एक रस है, कभी घटता बढ़ता नहीं है, और वह नूर कहिए, शुद्ध रूप है । वह जैसे तेजोमय हैं, सदैव वैसे ही तेजोमय रहते हैं, और सर्वत्र परिपूर्ण हैं ।

दोहा :- चार लाल की पारखा, करवाइ पतसाह ।
मुर की किमत कर दइ, एक रही बिन थाह ॥१०६॥

दृष्टान्त :- एक बादशाह के यहां साहूकार लोग दरबार में गए । बादशाह के सामने एक एक लाल जाति का हीरा नजर किया । बादशाह उनकी कीमत करवाने लगे । तो तीन लाल की परीक्षा तो सभी जौहरीयों ने एकसी कर दी । चौथे लाल की परीक्षा, कोई कुछ, कोई कुछ कहकर करने लगा । बादशाह को अफसोस हुआ और उसे अपना जौहरी याद आ गया । आज हमारा जौहरी होता, तो इसकी कीमत कर देता । जब बादशाह गुरूजी के दर्शन करने गया तो उपरोक्त सब वृत्तान्त कह सुनाया । गुरू जी बोले :- बादशाह सलामत ! आपके जौहरी का लड़का तो जीवित है, उसे बुला लो । बादशाह ने कहा गुरूदेव ! वह बच्चा है । गुरूजी बोले :- बच्चा है तो क्या है ? है तो जौहरी का बच्चा । उसका पिता उसमें जरूर गुण रख गया है । गुरूदेव की आज्ञा पाकर बादशाह लड़के को बुलाने के लिए, राजपुरुष भेजे । जौहरी के घर पर जब पहुंचे, तब वह जौहरी का लड़का अपनी मां से खिचड़ी में घी मांग रहा था । मां ने थोड़ा घी दिया तो लड़का रोने लगा, मां और दे घी । मां बोली पुत्र ! तेरे पिता जीवित थे तब अपने कोई कमी नहीं थी, क्योंकि वह बादशाह के जौहरी थे । उनकी बादशाह के दरबार में कुर्सी लगती थी, अब तो अपन को जैसे बने गुजारा करना है । तब देखा :- तो राजपुरुष अपने दरवाजे पर खड़े दीखे । लड़का बोला :- आप कौन हो ? वह बोले :- बादशाह के प्रतिहार हैं, तुम्हें लेने आये हैं । एक लाल की परीक्षा कराने के लिए बादशाह ने तुम्हें बुलाया है । परन्तु तुम तो घी के लिये रोते हो, तुम क्या परीक्षा करोगे ? लड़का बोला :- तुम बड़े बेसमझ हो ? अपने माता पिता के सामने बच्चा कैसे भी कुछ ले सकता है ? तुम्हारे सामने तो मैं नहीं रोया । जाओ बादशाह को बोल दो, यदि लाल की परीक्षा करानी है, तो जिस प्रकार मेरे पिता को बुलाते थे, उसी रूतबे से मुझे बुलावें और मेरे पिता की बैठक मुझे दिलावै । राजपुरुषों ने ज्यों बादशाह को बोला, त्यों ही बादशाह ने उसके पिता का रूतबा, सब उसको देने का आदेश दे दिया । लड़का जिस प्रकार उसका पिता जाता था, उसी प्रकार जौहरियों की पौशाक धारण करके, दरबार में पहुंचा । बादशाह के समक्ष कुछ नजर किया और अपने बाप की जो कुर्सी दरबार में लगी थी, उस पर बादशाह का आदेश पाकर बैठ गया । बादशाह की मेज पर चारों लाल रखे हुए थे । जौहरियों की मंडली भी दरबार में उपस्थित थी । बादशाह ने हुक्म दिया यह लाल हैं, इनकी परीक्षा करो । तीन लाल की कीमत जो पूर्व जौहरियों ने की थी, वही उसने कह सुनाई । चौथे लाल की कीमत के विषय में वह बोला :- कि हुजूर ! इस लाल की कीमत, किसी ने कुछ की होगी, किसी ने कुछ की होगी । इसका किसी ने पार नहीं पाया होगा । हुजूर ! इस लाल की कीमत तो एक करोड़ थी, परन्तु इसमें जरा सी कसर रहने से यह एक लाख का रह गया । यह सुनते ही समस्त जौहरी लोग भड़क उठे और बोले :- छोटा मुंह और बड़ी बात करता है, जौहरियों के सामने ? बताओ यह एक लाख का किस प्रकार रह गया ? दरबार में भारी शोर मचा । बादशाह बोला :- शान्ति करो, शान्ति करो भाई ! तब सब शान्त हो गए । लड़के को पूछा :- एक करोड़ से एक लाख का कैसे रह गया ? यह सिद्ध करो । लड़के के कहने के

मुताबिक, नीचे तहखाने को साफ किया गया और वहां बिछायत करके, रोशनी करवा दी गई। हवा शुद्धि के लिए, सुगन्धि के पदार्थ छिड़के गये। बादशाह सारे दरबार को लेकर तहखानों में पहुंच गए और बादशाह सहित सब लोग अपनी अपनी जगह बैठ गए। वह लाल जौहरी के लड़के के हाथ में था। रोशनी बन्द करवा दी गई, अंधेरा हो गया। लोग बाग हंसने लगे। जौहरी का लड़का अपनी जेब से लाल निकाला और ज्यों बादशाह की मेज पर रखा, रखते के साथ एक दम प्रकाश फैल गया और उस.हीरे की किरणों का फोकस अन्दर तहखाने की छत पर पड़ा। लड़का बोला :- हुजूर ! ऊपर देखिये। ज्यों ऊपर देखा तो सब किरण बराबर थी, परन्तु एक किरण उन सब किरणों के बराबर नहीं थी, आधी थी। लड़का बोला हुजूर ! यदि यह किरण पूरी होती, तो यह एक करोड़ का था। यह किरण अधूरी रहने का कारण इसकी कीमत एक लाख की रह गई। बादशाह के सहित, सारा दरबार धन्यवाद ! धन्यवाद ! की आवाज करने लगे। बादशाह ने विचार किया इसको क्या इनाम दें ? मंत्री बोले, गुरू महाराज ने इसको बताया था। जो गुरु महाराज बतावें वही इसको इनाम देनी चाहिए। बादशाह के सहित सभी दरबारी लोगों ने गुरू महाराज को जाकर नमस्कार किया और पूर्वोक्त सब वृतान्त सुना दिया। बादशाह बोला :- इसे गुरूदेव क्या इनाम दी जावे ? गुरूदेव बोले :- इसको फांसी की सजा दे दो। सब चकित हो गए। लड़का बोला गुरूदेव ! मैं फांसी के लायक अपना कोई कसूर तो नहीं देख रहा हूं। एक कसूर तो जरूर हुआ है कि मेरे लाल की कीमत करने से, सभी जौहरियों का अपमान हुआ है। अगर इस कसूर की सजा फांसी है, तो मैं कबूल करता हूं। गुरूदेव बोले :- यह नहीं, हे सोम्य ! तैंने अपनी सुरति जैसी इस हीरे की परख में लगाई, वैसी सुरति परमेश्वर के नाम में लगाता, तो तूं आज परमात्मा को साक्षात्कार कर लेता। यह सुनते ही लड़का गुरूदेव के चरणों में गिर पड़ा। गुरूदेव ने लड़के को उठा कर, अपनी छाती से लगा लिया। उस दिन से लड़का अपने बाप की तरह, ईश्वर भक्त हो गया और राजा का अति प्रिय बन गया। तथा सभी दरबारियों को गुरूदेव के उपदेश से, ईश्वर का ज्ञात हो गया और सब लोग "धन्य हो ! धन्य हो ! करने लगे। परमात्मा का रूप एक रस और अखण्डित है।

परम तेज प्रकास है, परम नूर निवास।
परम जोति आनन्द मैं, हंसा दादू दास ॥१०७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का परम श्रेष्ट ज्योति और आनन्द स्वरूप प्रकाश है। जीवनमुक्त महापुरुष, हंस स्वरूप होकर, ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं।

(परिचय साक्षात्कार)

नूर सरीखा नूर है, तेज सरीखा तेज।
जोति सरीखी जोति है, दादू खेलै सेज ॥१०८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आत्मज्ञानी संतजन, परब्रह्म के नूर स्वरूप को भज करके, नूर स्वरूप ही हो रहे हैं। एवं तेज व ज्योति स्वरूप को भज करके, तत्स्वरूप हो रहे हैं। इस रीति से संतजन, अन्त,करण रूपी सेज पर स्वरूपानन्द रूप खेल खेलते हैं।

अथवा वह ब्रह्म 'नूर सरीखा' उसके जैसा उसी का नूर है, उसके तेज जैसा उसी का तेज और उसकी ज्योति जैसी उसी की ज्योति है। इस प्रकार मुक्त पुरुष, अन्तःकरण रूपी सेज पर, उसका चिंतनरूप खेल खेलते हैं।

तेज पुंज की सुन्दरी, तेज पुंज का कंत।
तेज पुँज की सेज परि, दादू बन्या बसंत ॥१०९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्म में लेलीन हुई जो जीवात्मा है, वही तो तेजोमय सुन्दरी है और शुद्ध अन्तःकरण ही तेजोमय सेज है। पुंज कहिए समूह तेजरूप ब्रह्म ही स्वामी है। वहां पर आत्मा परमात्मा की एकताकार रूप बसन्त उत्सव बना है।

पुहप प्रेम बरसै सदा, हरि जन खेलैं फाग।
अैसा कोतीग देखिये, दादू मोटे भाग ॥११०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे बसन्त ऋतु में पुष्प आदि की वर्षा करके, संसारिकजन, बसन्त उत्सव मनाते हैं। उसी प्रकार मुक्तजन, प्रेम पुष्पों की वर्षा करके, प्रेम का उत्सव मनाते हैं। वे जिज्ञासु, अहो भाग्य हैं जो परमानन्द में ओत प्रोत हो रहे हैं।

(परिचय रस)

अमृतधारा देखिए, पार ब्रह्म बरि खतं।
तेज पुँज झिलमिल झरै, को साधुजन पीवंत ॥१११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परब्रह्म परमात्मा में अभेद होने का नाम ही वर्षा है, सो उस बरसात के होते ही अमृतधारा नाम परमात्मा के दर्शन होते हैं और ,झिलमिल' कहिए परमानन्द सहित, परमेश्वर का तेज पुंज रूप दर्शन 'झरै' नाम प्रत्यक्ष होता है। किन्तु कोई महापुरुष ही, इस महारस को पान करता है।

रस ही में रस बरषि है, धारा कोटि अनंत।
तहं मन निहचल राखीये, दादू सदा बसंत ॥११२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अनन्त करोड़ धारारूप होकर, मुक्तजनों के प्रेमरूपी रस में, ब्रह्म रस की बरसा हो रही है । इसलिए अपने मन को ब्रह्म में निश्चल रखिए, जिससे अखंड ब्रह्मानन्द भाव बना रहे ।

घन बादल बिन बरषि है, नीझर निरमल धार ।
दादू भीजै आत्मा, को साधू पीवनहार ॥११३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वासनारूपी बादलों के बिना, शुद्ध हृदय में, मन, प्राण, सुरति की एकता से ज्ञानामृत की बरसा बरस रही है । कोई आत्म अभ्यासी मुक्तजन इस अमृत को पान करते हैं ।

अैसा अचिरज देखिया, बिन बादल बरषै मेहै ।
तहं चित चात्तृग व्है रह्या, दादू अधिक सनेहै ॥११४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह अति आश्चर्य है कि शुद्ध अन्तःकरण में स्वस्वरूप प्राप्ति रूपी मेह बरसता है । इसलिए हे जिज्ञासुओ ! चातृग पक्षी की भांति, अपने चित्त को, आत्मा के विचार में स्थिर रखना चाहिए ।

महारस मीठा पीजिये, अबिगती अलख अनन्त ।
दादू निर्मल देखीये, सहैजैं सदा झरंत ॥११५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अविगत, अलख और अनन्तरूप अति मीठा जो महारस है, सो सहजरूप से ही, तुरीयावस्था में, सदा बरसता है । इसलिए हे जिज्ञासुओ ! मन, इन्द्रिये बाणी से परे, [देशकाल शून्य, स्वयं प्रकाश, अपने निर्मल आत्मस्वरूप का वृति द्वारा, प्रत्यक्ष करिये । अर्थात् जो जिज्ञासु सम्पूर्ण भूत प्राणियों को, आत्मा में देखता है और सम्पूर्ण भूतों में आत्मा को देखता हैं, जैसे जल में बर्फ और बर्फ में जलवत, वह इस सर्व आत्म दर्शन के कारण, किसी से भी घृणा नहीं करता है । क्योंकि अपने स्वरूप का ही सर्वत्र दर्शन करता है ।

(परिचय कामधेनु)

कामधेनु दुहि पीजिये, अकल अनुपम एक ।
दादू पीवै प्रेम सौं, निर्मल धार अनेक ॥११६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कला अवयव रहित और उपमा रहित परमात्मा का, विवेक वैराग्य द्वारा स्मरण करो, और अपने स्वस्वरूप में ही, उस परमेश्वर का प्रत्यक्ष करो, क्योंकि अनेक निर्मल धारारूप अर्थात् ज्ञान

भक्ति वैराग्य द्वारा, अखंड परमेश्वर के दर्शनों का प्रत्यक्ष करके, मुक्त पुरूष, स्वस्वरूप में कृत्य कृत्य होते हैं ।

काम धेनु दुहि पीजिये, तांकू लखै न कोइ ।
दादू पीवै प्यास सौं, महारस मीठा सोइ ॥११७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कामना की पूर्ति करने वाला परमेश्वर, तीव्र भावना, जिज्ञासा से उसका भजन करिये । उस परमात्मा को बहिर्मुख पुरूष, कोई नहीं जान पाते । न उसका स्मरण करते हैं क्योंकि परमेश्वर का स्मरण तो जिज्ञासा काल में ही किया जाता है । वह 'महारस' कहिए "रसौर वैर ब्रह्मः", निश्चय ही वह ब्रह्म महारस रूप है, अर्थात् सुख स्वरूप है ।

काम धेनु दुहि पीजिये, अलख रूप आनंद ।
दादू पीवै हेत सौं, सुख मन लागा बदं ॥११८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कामधेनु रूप जो परमात्मा है उसका स्मरण कीजिए । वह कैसा है ? वह अलख कहिए, मन वाणी का अविषय, और आनन्द कहिए सुखरूप है । 'अन्तःकरण के हित से' कहिए प्रीति सहित स्मरण रस का पान करो । सुखमना नाड़ी के द्वारा मन को 'सोहं' में स्थिर करिए ।

कामधेनु दुहि पीजिये, अगम अगोचर जाइ ।
दादू पीवै प्रीति सूं, तेज पुजं की गाइ ॥११९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कामधेनु रूप, शुद्ध चेतन परमात्मा, उसका भजन कीजिए । क्योंकि वह अगम है और अगोचर कहिए, इन्द्रियों का अविषय है । उसी में वृत्ति द्वारा जाओ और अपनी अन्तर प्रीति से नाम स्मरण रस का पान करो । वह परमात्मा 'पुंज' कहिए, समूह तेजरूप है । सम्पूर्ण कामना पूर्ण करने वाला है । उसी का 'गाइ' कहिए गायन करो ।

कामधेनु करतार है, अमृत सरवै सोइ ।
दादू बछरा दूध को, पीवै तो सुख होइ ॥१२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सृष्टि का रचिता परमेश्वर, वह कामधेनु है, सम्पूर्ण कामना पूर्ण करने वाला । दर्शनामृत की वर्षा शुद्ध अन्तःकरण में कर रहा है । बछरा रूप उत्तम जिज्ञासु, उसका निश्चय करे तो, जीवन मुक्ति का सुख प्राप्त होवै ।

ऐसी एकै गाइ है, दूझै बारह मास ।
सो सदा हमारे सगं है, दादू आतम पास ॥१२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपना आत्म चेतन्य को प्रत्यक्ष कीजिये, क्योंकि वही एक ऐसी गांय है, जो सदैव सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली है उसी का स्मरण रूप दूध पान करो । “सो सदा हमारे संग है” कहिए मुक्त पुरुषों के हृदय में निवास करती है, (आत्म पास कहिए, साभास बुद्धि के पास ही है ।)

(परिचय आत्मवेली तरु)

तरूवर साखा मूल बिन, धरती पर नांही ।
अबिचल अमर अनंत फल, सो दादू खाही ॥१२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आतम स्वरूप परमात्मा रूपी वृक्ष, शाखा और जड़, रहित है । साधारण वृक्षों की भांति, वह धरती पर नहीं है और उसका फल अविचल, अमर अनन्त है । सो सतगुरूदेव कहते हैं कि हम मुक्तजन, उसका उपभोग कर रहे हैं ।

हे जिज्ञासुओ ! उस परमात्मा को वृक्ष की उपमा देने का अभिप्राय यह है कि साधारण वृक्षों का मूल भूमि में होता है । परन्तु इसका मूल ऊपर की ओर है और शाखा नीचे की ओर है । ऐसा यह वृक्ष सनातन और अनादि है । वही विशुद्ध ज्योति स्वरूप है । उसी को अमृत कहते हैं । उसी में सम्पूर्ण लोक आश्रित हैं । उसका अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता है । हे जिज्ञासुओ ! यही ब्रह्म है, इसका मुक्तजन अपने हृदय में साक्षात्कार करते हैं ।

तरूवर साखा मूल बिन, धर अबंर न्यारा ।
अबिनासी आनन्द फल, दादू का प्यारा ॥१२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो ब्रह्म है वह मूला माया और उसका कार्य, इन कारणों से रहित है । तथा इन्द्रिये शाखा रूप अवयव से रहित है, और इस वृक्ष का पृथ्वी आदि कोई आधार नहीं है । इसलिए यह पंच भूतों से शून्य है और अविचल, अमर, अनन्त अविनाशी, आनन्दरूप परमेश्वर, अपना दर्शन रूप फल को देने वाला है । अब इसी अपूर्व तरूवर की क्या अपूर्वता है ? यह तो साक्षात कल्पवृक्ष है मुमुक्षुओं की कल्पना पूरी करता है ।

तरवर साखा मूल बिन, रज बीरज रहिता ।
अजरा अमर अतीत फल, सो दादू गहिता ॥१२४॥

टीका :-हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मरूप तरूवर कारण व आकार से शून्य है और 'रज' कहिए जन्म स्थान, 'वीरज' कहिए वीर्य बीज आदि से भी शून्य है । उसमें उत्पत्ति, प्रलय आदि भाव भी असम्भव है, और इस तरूवर का फल भी अमर, सनातन, अलिप्तरूप राम फल है । सो ग्रहण करो ।

तरवर साखा मूल बिन, उतपति परलै नांही ।
रहीता रमता राम फल, दादू नैनहुं मांहि ॥१२५॥

टीका :- हे जिसुज्ञाओ ! परमेश्वर रूपी वृक्ष, तुला मूला (माया) रूप शाखाओं से रहित है और जन्म नाशभाव भी, उसमें सम्भव नहीं है । वह राग द्वेष से भी मुक्त है एवं व्यापक होने से मुक्तजनों को प्रत्यक्ष है । मुक्तजन ऐसे अपूर्व तरवर की शरण में रहते हैं ।

प्राण तरवर सुरति जड़, ब्रह्म भोमिता मांहि ।
रस पीवै फूलै फलै, दादू सूकै नांहि ॥१२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवन मुक्त संतजन तरूरूप हैं, आत्मवृत्ति जड़ है, सो ब्रह्मरूप भूमि में उत्पन्न होता है और एकत्व भाव का प्रेम रूपी जल पीकर, विवेक वैराग्य आदिक फूल अथवा दर्शन आदिक फलों सहित, अजर अमर भाव को प्राप्त होते हैं ।

(परिचय जिज्ञासु उपदेश)

ब्रह्म सुंनि तहं क्यार है, आतम के असथान ।
काया असथलि क्या बसै, सतगुरू कहो सुजान ॥१२७॥

टीका :- प्रस्तुत साखी में बीरबल का श्री सतगुरू से प्रश्न है कि हे गुरूदेव ! आप अनुग्रह करके मुझको यह उपदेश कीजिए कि ब्रह्मरूप मुक्तजनों के क्या लक्षण हैं ?और सर्व विषयों से उदास, आत्मस्थित जिज्ञासुजनों के क्या लक्षण हैं ? और संसारी देहाध्यासी संसारीजनों के क्या लक्षण हैं ? अब महाप्रभु उपरोक्त प्रश्नों का प्रत्युत्तर करते हैं ।

(देह अध्यासियों के लक्षण)

काया के अस्थलि रहैं, मन राजा पचं प्रधान ।
पच्चीस प्रकृति तीन गुण, आपा गर्व गुमान ॥१२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो शरीर को ही परम पद मानते हैं, उनमें मन ही तो राजा है और पंचज्ञान इन्द्रिये ही प्रधान हैं। एवं पंचभूतों की काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादिक पच्चीस प्रकृति सेना है और सत्व रज तम आदिक, तीनों गुण, आपा गर्व गुमान आदिक अनेक दोष देहाध्यासियों के हृदय में व्याप रहे हैं।

(आतम जिज्ञासु के लक्षण)

आत्म के अस्थान है, ज्ञान ध्यान बिसवास।
सहज सील संतोष सत, भाव भगति निधि पास ॥१२९॥

टीका :- आत्मस्थानीय जिज्ञासुजनों में ज्ञान, ध्यान, विश्वास, सुख दुःख में समभाव, शील स्वभाव, तथा लाभ में संतोष, सत्यभाव, भगवान की सत्ता अनुभव करना और उसकी भक्ति में तल्लीनता रूप निधि होती है। ये नौ निधि, उनके अन्तःकरण में रहती हैं।

(ब्रह्मनिष्ठ के लक्षण)

ब्रह्म शून्य तहं ब्रह्म है, निरंजन निराकार।
नूर तेज तहं जोति है, दादू देखण हार ॥१३०॥

टीका :- जो मुक्तजन ब्रह्म में, शून्य कहिए निर्विकार रूप से अभेद हो रहे हैं, तहां केवल ब्रह्म ही है। सो ब्रह्म कैसा है ? माया से शून्य और निराकार है। अपार नूर, तेज और ज्योति स्वरूप है। इसी प्रकार मुक्तजन ब्रह्म को सदा प्रत्यक्ष करते हैं, अथवा इस अवस्था वाला केवल दृष्टामात्र है। क्रिया कर्म का अनुबन्ध (सम्बन्ध) दृष्टा में नहीं रहता है।

विद्यापति बीरबल ने ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज से उपरोक्त प्रश्न उस समय किए थे, जब बादशाह अकबर ने ब्रह्मऋषि को सीकरी बुलाया था। ब्रह्मऋषि ने बीरबल के प्रश्नों का उत्तर देकर, उसे सन्तुष्ट किया। बीरबल ने नतमस्तक होकर, चरण स्पर्श किए।

फिर अवल्ल फजिल्ल बोला :- मुरसिद ! मैं हिन्दी संस्कृत नहीं जानता हूं, अगर आप फारसी जानते हो तो मैं भी कुछ प्रश्न करूं। तब परम गुरु बोले :- आप जिस भाषा में प्रश्न करोगे, उसी में रामजी उत्तर देंगें। तब मुसलमानी मजहब के अनुसार चार मंजिल, चार अवस्थाएं हैं उन्हों के बाबत अवल्ल फजिल्ल ने प्रश्न किए।

(अवल्ल फजिल्ल के प्रश्न)

मौजूद खबर माबूद खबर, अर वाह खबर औजूद।
मुकामें चि चीज हस्त, दादनी सजूद ॥१३१॥

टीका :- मौजूद = वर्तमान की अवस्था (१), माबूद खबर = ब्रह्मबादि के लक्षण (२), अरवाहे खबर = आत्मवादि के लक्षण (३), औजूद खबर = देह अध्यासी के लक्षण (४), आपको सब ज्ञात हैं। मुकाम = मंजिल या अवस्था। चि = क्या चीज है। सजूद दादनी = मैं सेवा भाव से आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूं। इन सबको जानने के लिए मुझको आप बकसीस (आज्ञा) करें, इनके लक्षण समझावैं ?

(देह अध्यासी के लक्षण)

औजूद मकांमें हस्त, नफस गालिब किब्र काबिज, गुस्सः मनी पेस्त।
दुई दरोग, हिरस हुज्जत, नाम नेकी नेस्त ॥१३२॥

टीका :- औजूद मुकामें = देह अध्यासी मनुष्य की स्थिति क्या है ? नफस = शैतान मन में। गालिब = नाना तरह की वासना के विचार। किब्र = चुगली या दूसरे की निन्दा। काबिज = ये उसके कब्जे में रहते हैं। गुस्सः = क्रोध। मनी पेस्त = अहंकार उपस्थित है। दुई = द्वैत भाव। दरोग = झूठ या द्वेष। हिरस = चाह। हुज्जत = सैतानी, झगड़ने की प्रवृति चालू रहतो है। नाम = मालिक़ को याद। नेको = भलाई। नेस्त = यह उसकी नष्ट हो गई है।

(आत्मवादी के लक्षण)

अरवाह मकांमें हस्त, इशक इबादति बंदीगी, इगाना इखलास।
मिहर मुहब्बत, खैर खूबी, नाम नेकी पास ॥१३३॥

टीका :- अरवाह मकामें हस्त = आत्म निष्ट की स्थिति, आत्म निष्ट पुरुषों में। इशक = प्रेम या सात्विक वृत्ति। इबादति = आत्म चर्चा। बंदीगी = भक्ति भाव, जनसमाज की सेवा। इगाना = एकता। इखलास = सब के साथ प्रेम व्यवहार। मिहर = दया, मेहरबानी। मुहब्बत = रागमय स्नेह। खैर = बांटकर खाना। खूबी = शोभा। ख्याति = यश। नाम = आत्मचिंतन। नेकी = उपकारमय वृत्ति। पास = निवास करती है। आत्मनिष्ठ पुरुष, इन गुणों से युक्त होता है।

(ब्रह्मबादी के लक्षण)

माबूद मकांमें हस्त, एक नूर खूबे खूबां, दीदनी हैरान।
अजब चीज खुरदनी, पियालए मस्तान ॥१३४॥

टीका :- ब्रह्मनिष्ट अवस्था का इसमें वर्णन किया गया है। ब्रह्मनिष्ट साधक, एकै नूर = एक ही। नूर = शुद्ध स्वरूप जो। खूबे खूबां = शोभनिक से भी अति शोभनिक। जिसके हरां = हैरान करने वाले,

आश्चर्यकारक । दादनी = दर्शन करते हैं । अजब = बचनातीत श्रेष्ठ । चीज = वस्तु । खुरदनी = भज रहे हैं, खा रहे हैं । वे इस तरह पियालए = आत्मनन्दरूपी प्रेम के प्याले पी । मस्तानं = मस्त हैं, मग्न हैं । उन्हें किसी सुख दुख की भावना नहीं सताती है ।

अब साखी १३५ से १३६ तक सूफीमत से चार मंजिल का विवरण है, सो महाराज फरमाते हैं।

हैवांन आलम गुमराह गाफित, अबल शरीयत पंद ।
हलाल हराम नेकी बदी, दुरस दानिस मंद ॥१३५॥

टीका :- मोजूद खबर = संसार की सामान्य अवस्था । हैवांन आलम = गुमराह गाफिल । आलम = दुनियां सामान्यत, गुमराह = ईश्वर के मार्ग से दूर हैं । गाफिल = अचेत हैं । हैवांन = पशु वृत्ति वाले हैं । उन्हें पहली शरीयत की = मानव अवस्था में लाने के लिये यह चार बातें अच्छी तरह समझनी चाहिये । जो मानव हलाल = हक का । हराम = बेहक का । नेकी = भलाईं, बदी = बुराई के भेद को ठीक ठीक जान ले, वे ही दानिसमंद = बुद्धिमान हैं । यह शरीयत, पहली अवस्था है ।

कुल फारिग तरक दुनियां, हररोज हरदम याद ।
अल्लः आली इश्क आशिक, दरूने फरियाद ॥१३६॥

टीका :- तरीकत मंजिल = आत्म निष्ट अवस्था । 'कुल फारिग तरक दुनियां' = दुनियावी सब भोग वासनायें त्याग करदे । 'हर रोज हरदम याद' = सर्वदा सब काल, श्वांस पर श्वांस में आत्म चिन्तन करें । "अल्लः आली इश्क आशीक" = शुद्ध श्रेष्ट ब्रह्म के प्रेम का आसीक बनें । दरूने फरियाद = विशुद्ध अन्तः-करण से वासना रहित वृत्ति द्वारा पुकार करैं, अर्थात् ध्यान करैं, वही सच्चा आत्मनिष्ट है ।

आव आतश अरश कुरसी, सूरते सुबहांन ।
सिरर सिफत करदबूद, मारफत मकाम् ॥१३७॥

टीका :- मारफत मंजिल = ज्ञान की चतुर्थ भूमिका । आव = पानी । आतश = अग्नि । अरश = आकाश । कुरसी = भूमि । यह सब सूरते सुबहांन = खुदा की ही आकृतियां हैं । सब जड़ चेतन सृष्टि में आत्मभाव रखते हुए जो साधक अपने साध्य की । सिफत = स्तुति, प्रार्थना । सिरर = अनवरत करता है, वही साधक मारफत = मंजिल का है ।

हक हासिल नूर दीदम, करारे मकसूद ।
दीदार दरिया अरवाहे, आमद मौजूदे मौजूद ॥१३८॥

टीका :- हकीकत मंजिल = ब्रह्मनिष्ट की उत्तर दशा जिस साधक ने, नूर दीदम = अपने शुद्ध स्वरूप का दर्शन करके, हक = मानव जीवन का फर्ज हासिल, कर लिया = अदा किया । जिसने करारें मकसूद = गर्भावस्था की प्रतिज्ञा पूरी कर दी । जिस साधक के अरवाहे आमिद = शुद्ध अन्तःकरण में । दीदार दरिपा = समष्टि चेतन का उदय हुआ है, अर्थात् व्यष्टि समष्टि का सजातिये भेद समाप्त हो गया है । वही साधक मौजूदे मौजूद = हकीकत मंजिल को पहुंचा हुआ, ब्रह्मी अवस्था वाला समझना चाहिए ।

चहार मंजिल बयां गुफतम, दस्त करदबूद ।
पीरां मुरीदां खबर करदः, जा राहे माबूद ॥१३९॥

टीका :- चहार मंजिल = चारों अवस्था । वयां गुफतम = वर्णन की । दस्त करदबूद = साधक मानव इस पर ध्यान देवै । पीरां = गुरू । मुरिदां = शिष्य । खबर करदः = बतावै । जा = यह । राहे = रास्ता । माबूद = ब्रह्म का है ।

दोहा :- शरीकत सेव शरीर की, तरिकत बे परवाहै ।
मारफत मांहि रह, हकिकत मिल जाहै ॥१३९॥

दोहा :- चार घाट के चारि बन्दे, तिनसूं आई करी सैतानी ।
मूंकि लाई गंधे, अजाजील की चोट से, लै तुड़ाई बंदे ॥१३९॥

दृष्टान्त :- खुदा ने जब सृष्टि की रचना करने का विचार किया, तब चार बन्दे उत्पन्न किये । उनको आदेश दिया कि जाओ मेरी अराधना करो । साथ ही एक अजाजील नाम का फरीशता उत्पन्न किया । उसे खुदा ने कहा :- इनको नमस्कार कर । वह बोला :-मैं इन्हें नमस्कार नहीं करता, क्योंकि यह तो मेरे जैसे बन्दे हैं, इन्हें क्या नमस्कार करूं ? तब खुदा बोले :- यदि तुम मेरा हुकम नहीं मानता है, तो जा यहां से निकल जा । अजाजील बोला :- मैं आपके पास किसी को आने नहीं दूंगा । खुदा बोले :- जिसको मैं बुलाऊंगा, वह तेरे सिर पर पांव रखकर आ जाएगा । अजाजील मृतलोक में आया और आगे देखा तो एक सरीकत वाला महात्मा बैठा ध्यान करता है । तब हाथ उठा कर एक घूंसा पीठ में मार कर चल दिया । तो महात्मा ने आंख खोल कर देखा तो, अजाजील दिखलाई पड़ा । तब वह भी उठ कर चला और अजाजील के एक घूंसा मार कर, फिर आकर आसन पर बैठकर ध्यान करने लगा । अजाजील बोला :- तुझे तो मैंने रख लिया, दुनियां में ही ।

दोहा :- मुकी कि मुकी दई, जवाब न दिया कोइ ।
जवाब दिया भी अंतराइ, धणी न हांसिल होइ ॥

अजाजील आगे चला । दूसरे महात्मा तरिकत मंजिल वाले को देखा और एक मुक्का उसकी पीठ में मारा और वैसे ही चल पड़ा । उस महात्मा ने आंख खोल कर देखा तो, अजाजील जा रहा है । वह बोला :- अरे काफिर ! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा, जो तैंने मुझे मुक्का मारा । अजाजील बोला :-मैंने तुझे भी, रख लिया ।

आगे फिर अजाजील चला तो 'मारफत मंजिल' वाला महात्मा बैठा ध्यान करता था । उसके एक मुक्का मारा और फिर आगे चल पड़ा । महात्मा की आंखें खुली और देखा, अजाजील है । आंखों में जोश आ गया, परन्तु जवाब कुछ नहीं दिया । फिर ध्यान में लग गया ।

दोहा :- मारफत माहीं रहै, टुक नैनों पेखै ।
अजाजील की चोट सों, लै तुड़ाय देखै ॥

अजाजील बोला :- तुझे भी मेरी चोट ने दुनियां में रख लिया ।

फिर अजाजील चला तो हकीकत मंजिल वाला महात्मा बैठा ध्यान करता था । एक मुक्का उसको भी, अजाजील ने तान कर मारा और फिर आगे चल पड़ा । लेकिन उस महात्मा ने अजाजील को कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि ऊंडी गति वाला था ।

दोहा :- पैये पानी और लूंण ज्यूं, मिसरी जल जैसे ।
अंडि गती हकिकत वाला, बोलै चोंगैं कैसे ॥

तब खुदाताला बोले :- अ काफिर अजाजील ! तेरे सिर पर पांव रखकर, यह मुझे आकर प्राप्त हो गया है । तब अजाजील खुदा के कदमों में जा गिरे और बोला :- हे खुदा ! मुझे माफ करो । जिसको आप बुलाते हो, उसे दुनियां में कौन रोक सकता है ?

बीरबल ने कहा :- सतगुरू मैं फारसी में कुछ भी नहीं समझ पाया । तब सतगुरू इन चारों अवस्थाओं का व्याख्यान सहित, बीरबल को उपदेश करते हैं ।

पहली प्राण पसु नर कीजै, सांच झूठ संसार ।
नीति अनीति भला बुरा, सुभ असुभ निरधार ॥१४०॥

टीका :- अविवेकी संसारीजन, पशु के समान कर्त्तव्या कर्त्तव्य के ज्ञान से शून्य हैं, इसलिए सतसंग आदिक साधनों से संसार में, सांच झूठ, नीति अनीति, भला बुरा, शुभ अशुभ का निर्णय करके, मनुष्य उचित सद्-

गुणों से युक्त होना चाहिए। यह पहली अवस्था है। साधन रहित अविवेकी पुरूष के अन्तःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं होती है और उस अयुक्त के अन्तःकरण में, आस्तिक भाव भी नहीं होता है और बिना सद्गुणों के पुरुष को शान्ति भी नहीं मिलती, तो फिर ऐसे पुरूष को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?

सब तज देखि विचार करि, मेरा नाहीं कोइ।
अन दिन रात्ता राम सौं, भाव भक्ति रत्त होइ ॥१४१॥

टीका :- जब जिज्ञासु ने आत्म अनात्म का विचार किया तो सब संसारी पदार्थों को निसार देखकर, निश्चय किया कि यह देह इन्द्रियें, वासनायें और पुत्र स्त्री, धनादिक जो स्थूल संघात है इनका मेरे सत्यस्वरूप से कोई सम्वन्ध नहीं है। अतः समस्तमाया मोह को त्याग। रात दिन, भाव भक्ति में रत्त होकर, राम से तदाकार होता है। ऐसा पुरूष अपने अन्तःकरण पर स्वतः ही काबू पाने लगता है। ऐसे ज्ञान योग में चलने वाला पुरुष तो, न कराता हुआ, और न करता हुआ, इस नौ द्वार वाले शरीर रूपी घर में, सब कर्म एवं कर्मो के साधन, स्त्री पुत्र धन आदिक को त्यागकर अर्थात् अनासक्त होकर, आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्द घन परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है।

दादू अंबर धरती सूर ससि, सांई, सब लै लावै अंग।
जस कीरति करूणा करैं, तन मन लागा रंग ॥१४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! आकाश, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमादिक को सांई कहिए, परमेश्वर का ही रूप जानकर, अपनी मन इन्द्रियादिक द्वारा, परमेश्वर में ही लै लगाओ और उसी का यश वर्णन करो। बिरहभाव सहित करुणा से विनती करो। तो ऐसे पुरूषों का तन मन परमेश्वर की भक्ति में ही, निश्चल रहता है।

दादू परम तेज तहं मैं गया, नैनहु देख्या आइ।
सुख संतोष पाया घणा, जोति हिं जोति समाइ ॥१४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! जब चतुर्थ अवस्था में, यह जीवात्मा परमतेज ब्रह्म में लीन हुआ, तो प्रत्यक्ष ब्रह्म अनुभव किया और आत्मानन्द में स्थिर होकर जीवात्मा, परमानन्द में अभेद हो गया है। अभेद रहने वाला, वह सर्वव्यापी अनन्त चेतन्य में एकीभाव से स्थिति, रूप, योग से युक्त हुए आत्मा वाला, एवं सबमें समभाव से देखने वाला योगी, आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में बर्फ में जल के सदृश व्यापक देखता है। और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है। जैसे स्वप्न से जागा हुआ पुरूष, स्वप्न के संसार को अपने अन्तर्गत संकल्प के आधार देखता है, वैसे ही मुक्तपुरुष सम्पूर्ण भूतों को अपने सर्वव्यापी अनन्त चेतन्य, आत्मा के अन्तर्गत, संकल्प के आधार देखता है।

अरथ चारि अस्थान का, गुरू सिष कह्या समझाइ ।
मारग सिरजनहार का, भाग बड़े सो जाइ ॥१४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चार स्थान कहिए चार श्रेणी के मनुष्यों के लक्षण, गुरूदेव ने उपरोक्त साखियों में समझाकर, मुमुक्षुओं को बतलाया है । जिनके बड़े भाग्य हैं, वह सतगुरू के बताए हुए मार्ग पर चलकर परमात्मा में समा जाते हैं ।

(नवाज सिजदा)

अरवाहे ~~अरवाहे~~ सिजदा कुनदं, औजूदरा चिकार ।
दादू नूर दादनी, आसिकाँ दीदार ॥१४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवात्मा अपने व्यापकरूप परमात्मा को "सिजदा कुनन्द" = नमस्कार करता है । "औजूदरा चिकार" = फिर शरीर से करने की क्या जरूरत है, शरीर का ध्यान या अध्यास छोड़ दिया है । प्रेमीजन साधक को नूर तेज जो शुद्ध स्वरूप उसका "दादनी" = नाम बकसोस या ध्यान, उसी में प्राप्त हो रहा है । जिससे प्रेमी अपने प्रेम का "दीदार" कहिए, दर्शन प्राप्त कर रहे हैं ।

आसिकां रहः कबज करदा, दिल वजां रफतंद ।
अलह आले नूर दीदम, दिल है दादू बंद ॥१४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आसीकां = परमेश्वर के प्रेमीजनों ने । रहः = आतम प्राप्ति का या खुदा से मिलने का रास्ता । कबज करदां = अपने हस्तगत कर लिया है । दिल = अन्तःकरण की सुरति वृत्ति से । वजां = चल कर, अभ्यास कर । रफतंद = साफ किया जो अन्तःकरण का दोष । अलह आले = श्रेष्ट परमात्मा का । नूर = शुद्ध स्वरूप । दीदम = देखकर, वह दिल ही अन्तःकरण में । बन्द = ध्यान लगा रहे हैं ।

आशिकां मस्तान आलम, खुरदनी दीदार ।
चंद दह चिःकार दादू, यारमां दिलदार ॥१४७॥

टीका :- 'आसीकां मस्तान आलम' अर्थात् आत्म प्रेमी साधक संसार में रहते हुए भी उसी में मस्त रहते हैं । खुरद्रनी दीदार = उनकी साधना ही उन्ही का भोजन है, अर्थात् अपने स्वरूप का जो परिचय है । चंद = चार, दह = दस । ऐसे चौदह लोक की सम्पत्ति से उन्हें क्या काम है ? यारमां दिलदार = जिसको अपने स्वस्वरूप का दर्शन हो गया ।

दोहा :- एक छिवारो हाथ ले, चिल्लो कीयो इक शेख ।
गर्व दूर कीयो तास को, बंदे देखि अनेक ॥१४७॥

दृष्टान्त :- एक शेख जाति का मुसलमान था । उसने चालीस दिन का चिल्ला किया । सायंकाल अपने मकान से बाहर बैठकर, एक छिवारा खाकर, पानी का गिलास पी लेता । इसी प्रकार ३९ दिन तक करता रहा । उसे बड़ा भारी अहंकार हो गया, कि मेरे जैसा कौन ऐसा चिल्ला करेगा ? परमेश्वर ने देखा कि इसे गर्व हो गया है । इसका गर्व दूर करना चाहिए । ४०वें दिन एक ऊंटों की कतार, एक एक ऊंट पर दो दो आदमी बैठे । इस प्रकार वे सब शेख के मकान के सामने आकर, ऊंटों से उतरे और एक दरी बिछाकर सब लोग बैठ गए । जब चिल्ला खोलने का समय हुआ, एक ने एक छिवारा जेब से निकाला और देखा । दूसरे को वही छिवारा दे दिया । वह दूसरा देखकर तीसरे को दे दिया । इस प्रकार सभी लोग ऐसे देख देख करके, छिवारे को आगे देते रहे । जिसने पहले देखा, तो उसके पास आया, तब उसने जेब में रख लिया । शेख ने देखा कि यह भी मुसलमान हैं । उनके पास आया और बोला :- क्या आप लोग भी रोजा करते हो ? उन्होंने कहा :- हां जी करते हैं । शेख बोला :-मैं भी करता हूं । मैं एक छिवारा खाकर, रोजा किया है । वह सुनकर बोले:- क्या खाकर रोजा किया है ? कि हां । हम लोग ऐसा नहीं करते । फिर कैसा करते हो ? हम तो छिवारा निकाल कर देख लेते हैं, फिर रख लेते हैं । फिर दूसरे रोज निकाल कर देख लेते हैं । खाने को बात बहुत दूर है । खाकर तो कोई भी रोजा कर सकता है ? हम तो देखकर ही रोजा करते हैं । यह सुनकर शेख का गर्व चूर हो गया । सोचने लगा :- मैं तो खाकर रोजा करता था और यह तो देखकर ही रोजा कर रहे हैं। ये तो बड़ा कठिन तप कर रहे हैं । यह सोचकर, शेख अपने मकान में गया, फिर जब मकान से बाहर आया तो कोई दिखलाई नहीं पड़ा । शेख ने निश्चय किया कि खुदा ने मेरा अहंकार दूर करने के लिए ही, यह दृश्य दिखलाया है । बारंबार खुदाताला को शेख नमस्कार करने लगा ।

परमात्मा के सच्चे आशिक, परमात्मा का नामरूपी खुराक खाकर मस्त रहते हैं ।

(ब्रह्म साक्षात्कार धारणा)

दादू दया दयाल कि, सो क्यों छानी होइ ।
प्रेम पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागन सोइ॥१४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन भाग्यवान मुमुक्षुजनों पर परमेश्वर की कृपा होती है, और परमेश्वर को जो अति प्रिय होते हैं, सो छिपे हुए नहीं रहते, क्योंकि परमेश्वर के अलौकिक प्रेम में गद गद होकर, प्रफुल्लित होते हुए, मुलकते रहते हैं । उन्हीं को परमेश्वर का सदा सुहाग प्राप्त होता है ।

दादू बिगसि बिगसि दरसन करै, पुलकि पुलकि रस पान।
मगन गलित माता रहै, अरस परस मिलि प्रान ॥१४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आत्मा प्रेमी भक्त 'बिगसि बिगसि' कहिए, प्रफुल्लित हो होकर, परमेश्वर के स्वरूप का दर्शन करते हैं और गद गद होकर, राम रस का पान करते हैं। इस रीति से 'प्राण' नाम मुक्तजन, परमेश्वर से 'अरस परस' कहिए ओत प्रोत होकर, शरीर की सुध बुध को भूल जाते हैं, और 'गलित' नाम ब्रह्माकार वृत्ति होकर, 'माता' कहिए आत्मानन्द में मस्त रहते हैं।

दादू देखि देखि सुमिरण करै, देखि देखि लै लीन।
देखि देखि तन मन बिलै, देखि देखि चित्त दीन ॥१५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्तजन स्वरूप का विचार विचार कर स्मरण करते हैं, और विचार विचार करके लय मार्ग के द्वारा लीन रहते हैं। फिर विचार विचार कर तन मन को लै मार्ग से परमेश्वर में अभेद कर देते हैं। विचार विचार करके, चित्त की वृत्ति को स्वस्वरूप में ही लगाते हैं।

दादू निरखि निरखि निज नाम ले, निरखि निरखि रस पीव।
निरखि निरखि पिव कौं मिलै, निरखि निरखि सुख जीव ॥१५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्तजन नाम के अर्थ का निर्णय करके, स्मरण करते हैं। और नित्य अनित्य का विचार करके, राम रस को पान करते हैं। आतम विचार कर करके, अधिष्टान में अभेद होते हैं। इस प्रकार गुरू उपदेश और महावाक्यों का विचार कर करके, जीव ब्रह्म सुख को प्राप्त करता है।

(परिचय स्मरण नाम पारख लक्षण)

तन सौं सुमिरण सब करै, आत्म सुमिरण एक।
आत्म आगै एक रस, दादू बड़ा विवेक ॥१५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्थूल शरीर, रसना आदि से तो सभी संसारी प्राणी स्मरण करते हैं, परन्तु 'आतम' कहिए मन बुद्धि को एकाग्र करके, कोई बिरला ही स्मरण करता है। 'आत्म आगै' कहिए परमात्मा में एक रस होना तो, विवेकियों से ही सम्भव है।

दादू माटी के मुकाम का, सब कोइ जाणैं जाप।
एकआधा अरवाह का, बिरला आपै आप ॥१५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्थूल शरीर की जाप विधि तो हरेक जानता है, किन्तु अन्तःकरण में सुक्ष्म रीति से जाप करने वाला, तो कोई कोई ही है, और जो अन्तःकरण की बाह्य वृत्तियों को विसार कर, ब्रह्म में ही सुरति लगाये रहै, वह तो 'आपै आप' कहिए शुद्ध स्वरूप ही हो जाते हैं, परन्तु ऐसा मुक्त पुरुष कोई बिरला ही होता है।

दादू जब लग असथल देह का, तब लग सब व्यापै।
निरभै असथल आत्मा, आगैं रस आपै ॥१५४॥

टीका :- हे जिसुज्ञाओ ! जब तक शरीर अध्यास का भाव रहता है, तब तक हर्ष, शोक, राग द्वेष, शीत उष्ण, आदिक द्वन्दभाव भासता है। और जब समाधि अवस्था में चित्त वृत्ति आतम परायण होती है, उस समय सब द्वन्दों से निर्भय होते हैं, और जब सुरति में इतनी एकग्रता हुई कि अनातम द्वैतभाव को भूलकर, केवल ब्रह्म में ही अभेद हो गई तो, मुक्तजन, जीवत्व के भ्रम को बिसार कर, केवल ब्रह्म रूप ही हो जाते हैं।

जब नांही सुरति शरीर की, बिसरे सब संसार।
आत्तम न जाणैं आप को, तब एक रहा निरधार ॥१५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब मुक्तपुरुषों को अपने शरीर की सुध नहीं रहती है, तब वे समस्त संसार की वासनाओं से मुक्त हो जाते हैं। और तो क्या कहैं ? जब आत्मा अपने जीवत्वभाव को भी बिसर जाता है, तो उस समय अधिष्ठान ब्रह्म स्वरूप ही होता है।

तन सौं सुमिरण कीजिये, जब लग तन नीका।
आत्म सुमिरण उपजै, तब लागै फीका ॥
आगैं आपैं आप है, तहां क्या जीव का।
दादू दूजा कहन को, नाहीं लघु टीका ॥१५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक स्मरण में मन की एकाग्रता नहीं होती है, तब तक शरीर से ही स्मरण करना उत्तम है। परन्तु निरन्तर अभ्यास के द्वारा, मन की एकाग्रता होने से, समस्त वृत्तियों की आत्मा में

स्थिरता होगी । इसके बाद जब ब्रह्म में वृत्ति लैलीन होवेगी तो, आपै आप एक चेतन्य ही शेष रहता है ।वहां पर फिर जीव का परिछिन्न जीवभाव भी विलीन ही जाता है । कहने को भी छोटा बड़ा भाव नहीं फुरता है । अद्वितीय ब्रह्मभाव ही व्याप्त है ।

(परिचय अंग)

चर्म दृष्टि देखै बहुत कर, आत्म दृष्टि एक ।
ब्रह्म दृष्टि परचै भया, तब दादू बैठा देख ॥१५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! देहध्यासी संसारीजनों को माया आवर्ण द्वारा, एक ब्रह्म ही, संसारभाव करके, नानात्व रूप प्रतीत होता है और आत्म ज्ञानी पुरुष, एक आत्मस्वरूप का अनुभव करते हैं । ब्रह्मदृष्टि, जिससे स्वस्वरूप आत्मा, ब्रह्म रूप प्रतीत होती हैं । जो ऐसे मुक्तजन हैं, वे अधिष्ठान ब्रह्म में स्थित होकर, केवल आत्मा का अनुभव करते हैं ।

दोहा :- चर्म दृष्टि सब जगत है, आत्म दृष्टि दास ।
ब्रह्म दृष्टि जीवन मुक्त, भई बासना नास ॥१५७॥

येई नैनां देह के, येई आत्म होइ ।
येई नैनां ब्रह्म के, दादू पलटे दोइ ॥१५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजनों के जो दो नेत्र हैं, ये ही तो स्थूल शरीर के देखने वाले दृष्टि रूप नेत्र हैं और इन ही दोनों नेत्रों को जब सतगुरु ने 'पलटे' कहिए आत्मपरायण किये तो, आत्मस्वरूप का अनुभव करके, अधिष्ठान चेतन में लीन हो रहे हैं ।

घट परचै सब घट लखै, प्राण परचै प्राण ।
ब्रह्म परचै पाईये, दादू है हैरान ॥१५९॥

टीका :-हे जिज्ञासुओ ! जिस साधक को घट परिचय धारणा द्वारा, पंचभूत परिचय सम्यक हो जाता है, वह अपने शरीर के सुख दुखादिकों की तरह अन्य शरीरों के सुख दुख जानने लगता है और जिसको प्राण सिद्धि हो जाती है वह अपनी भूख प्यास आदिक की तरह, अन्य शरीरों की भूख प्यास भी जानने लगता है और

जिसको "ब्रह्म परचै" कहिए, आत्मा साक्षात्कार हो जाता है, वह औरों को भी आत्मा परिचय कराने में समर्थ हो जाता है। वह पुरुष तीनों स्थितियों में आश्चर्य कारक है।

दोहा :- बणयों भयो दीवान, जोधा नाके नृपति को।
सुख दुख कियो प्रवाण, शीश पोटली डोइ के ॥१५६॥

दृष्टान्त :- जोधपुर के राजा का दीवान, मृत्यु को प्राप्त हो गया था दूसरा दीवान बनाने के लिए विचार किया कि अमुक दरवाजे के ऊपर प्रातःकाल जो भी आ जाएगा, उसी को दीवान बना देंगे। उस रोज एक बनिये का लड़का किसी गांव में बोझा डालकर आया। रात को दरवाजे के बाहर पड़ा रहा। सवेरे दरवाजा खोला तो वह मिला, उसी को राजा के पास ले गए। राजा के हुकम से, दीवान का पद उसे दे दिया। वह अपनी पहले की पौशाक, फटी हुई जूती, फटा हुआ कमीज, फटी हुई धोती, फटी हुई पगड़ी, एक बक्से में डालकर, अपने कमरे में रख लिया। जब कचहरी में जाता तो खोलकर, पहले उस पौशाक का दर्शन कर लेता। अपना जीवन भी पहले वाला याद करता। फिर दीवान की कुर्सी पर बैठ कर, धर्मराज जैसे फैसले करता, क्योंकि सुख दुख अपने ऊपर पहले अनुभव कर चुका था। "घट परचै सब घट लखै सुख दुख"।

दोहा :- साधु जी के देखतां, दई भैंस के चोट।
सबन दिखाई देउ मत, दियो बारनो ओट ॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज के शिष्य, साधुराम जी मांडोठी गांव के तालाब पर निवास करते थे। एक जाटराम उनकी सेवा करता। एक रोज आपस में भैंस लड़ने लगी। जाट राम के छोटा भाई ने एक भैंस के दो चार पीठ पर डंडे मारे। महात्मा साधु राम जी देखकर, जमीन पर लोट पोट हो गए। कुछ देर में जाट राम रोटी लेकर आया। देखा किसी ने गुरूजी की पीठ पर डंडे मारे हैं। पूछा :- गुरू जी किसने आपके डंडे मारे ? आपकी पीठ पर निसान हो रहे हैं। साधु राम जी बोले :- तुम्हीं सेवा करो तुम्हीं डंडे मार लो। जाट घबरा गया। महाराज ने पूर्वोक्त भैंस का सब वृत्तान्त सुनाया। "वह मेरी ही तो आत्मा है।" जाट ने गांव में पंचायत करके, उस रास्ते को ही बन्द कर दिया, जिस रास्ते से पशु तालाब पर आते थे। दूसरी तरफ रास्ता बना दिया। न महात्मा देखेंगे और न इनको दुख होगा। आत्म परिचय महापुरूष थे।

दोहा :- संत चले मग जात हो, परचय ब्रह्मस्वरूप।
राकस काढ्यो पीठ में, ब्रह्म कियो तद रूप ॥

दृष्टान्त :- एक ब्रह्मनिष्ट महात्मा, जंगल के मार्ग से जा रहे थे। राक्षस ने देखा कि वह मेरा भोजन है, जो जा रहा है। वह पीछे से दौड़ा और महात्मा के पीठ में आकर, ज्यों ही बटका भरा, त्यों ही महात्मा ने पीछे देखा कि राक्षस है। महात्मा बोले :-त्वम् ब्रह्म। यह सुनते ही राक्षस को ज्ञान हो गया। राक्षस बोला:- अहं ब्रह्म। इस ज्ञान को पाकर राक्षस शरीर से मुक्त हो गया। ब्रह्म परिचय महापुरूष की शक्ति।

(सूक्ष्म सौंज अरचा बंदगी)

दादू जल पाषाण ज्यूं, सेवै सब संसार।
दादू पाणी लूण ज्यूं, कोइ बिरला पूजणहार ॥१६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन, जल और पत्थर की भांति, परमेश्वर की पूजा करते हैं। अर्थात् क्षण भगुंर भक्ति वैराग्य भाव रखते हैं। किन्तु जैसे नमक जल में घुलकर, अभेद हो जाता है, उसी प्रकार कोई बिरले भक्तजन ही, परमेश्वर में अभेद होते हैं।

(नाम पारिख लक्षण)

अलख नाम अंतर कहै, सब घट हरि हरि होइ।
दादू पाणी लूण ज्यूं, नाम कहीजै सोइ ॥१६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के नामों को अप्रगट भाव से कहिये, जिससे शरीर के रोम रोम से हरि हरि ध्वनि होती है। जैसे नमक गलकर, जल में अभेद हो जाता है, उसी प्रकार अपने अनात्म अध्यास को भक्ति रस में गलाकर, परमेश्वर से एक रस होइये।

दोहा :- बैरागी लख नाम ले, कहै मैं प्रगट न देस।
तुम्ह प्रगट सब लोक में, यह गुरू दीयो उपदेश ॥१६१॥

दृष्टान्त :- एक बैरागी गले में झोली डालकर, एक हजारी माला गले में डाल कर, राम राम करता रहता। ब्रह्मऋषि दादू दयाल जो की महिमा सर्वत्र फैली हुई थी। यह देखकर वैरागी, ब्रह्मऋषि के पास पहुंचा और नमस्कार किया। बोला :- महाराज मैं लाख नाम लेता हूं, मुझे कोई जानता भी नहीं, दुनियां में। और आपको सारी दुनियां जानती है। इसका क्या कारण है ? परमगुरू ने उपरोक्त साखी से उपदेश दिया और बोले :- जानने की इच्छा को छोड़ दो और परमेश्वर का नाम भीतर लेओ। बैरागी को ज्ञान हो गया। चरणों में नमस्कार करके, सच्चा साधु बन गया।

(लै लक्षण सहज)

छाड़ै सुरति सरीर को, तेज पुंज में आइ ।
दादू अैसैं मिलि रहै, ज्यूं जल जलहि समाइ ॥१६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे जल का स्रोत सागर में मिलकर अभेद हो जाता है, उसी प्रकार जीव सुरति देहाध्यास को त्यागकर, परमेश्वर से अभेद हो जाये, तो नाम स्मरण की सफलता हैं । अर्थात् जीव चैतन्य तो स्रोतरूप है और ईश्वर चेतन्य सागर रूप है ।

सुरति रूप शरीर का, पीव के परसे होइ ।
दादू तन मन एक रस, सुमिरण कहिये सोइ ॥१६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भगवान का साक्षात्कार होने पर शरीर का परिणाम, केवल सुरति रूप ही रह जाता है । उस समय केवल ब्रह्माकार सुरति ही शेष रहती है । अन्य शरीर आदिक कुछ नहीं प्रतीत होते, इस रीति से जब तन मन आदिक की परमेश्वर में एकता हो जाए, तब समझिए कि परमेश्वर का स्मरण करना सार्थक है ।

दोहा :- दादू दास कबीर जी, पीपो जी पुनी सोइ ।
जहाज तिरी पंडो जीयो, चन्दवो प्रत्यक्ष जोइ ॥१६२॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जिस समय आमेर में निवास करते थे, सात सौ साहूकारों की एक जहाज, एक समुद्र में रुक गई । उन्होंने अपने अपने देवी देवताओं को याद किया । जहाज नहीं उबरी । तब एक साहूकार हिंगोल गिरी कपिल मुनि, इन दोनों महात्माओं की अराधना की । ये दोनों जहाज में प्रगट हो गए । साहूकारों ने नमस्कार किया और कहा महाराज ! बचाओ । उन्होंने जहाज के एक डंडा मारा और बोले :- चल । तो और ज्यादा वह जहाज पानी में डूबने लगी । तब उन्होंने ध्यान धर कर देखा और बोले :- आप लोग जहाज के ऊपर चढ कर, दादू दादू करो, तभी जहाज तिरेगा । वैसा ही सभी ने किया । यह आर्थ पुकार आमेर में, गुरूदेव ने सुनी । और सुरति रूपी शरीर से वहीं पहुंच गए और समुद्र में अपना हाथ डालकर, जहाज को उबारा और बोले राम जी महाराज ! जहाज को पार लगाओ । जहाज स्ट्राट होकर चल पड़ा ।

छंद :- सात सौ साहूकार, सात करोड़ माल भर्यो ।
सिन्धु बिच आय कर, जहाज अड़ गई है ।

हिंगोल कपिल मुनी, दादू जी को ध्यान धरो।
सब मिल टेर करी, सागर पार भई है।

इस प्रकार फिर नन्द आदि साहूकार दोनों संतों के साथ आमेर में आकर, गुरुदेव के दर्शन किए और पूर्वोक्त सारा वृतान्त राजा मानसिंह के दरबार में साहूकारों ने सुनाया।

द्वितीय दृष्टान्त :- इसी प्रकार कबीर जी महाराज एक समय कासी में अपनी निन्दा कराने के लिए वैश्या को साथ लेकर, राजा डूंगर सिंह के दरबार में पहुंचे। राजा के सहित दरबार में सभी लोगों ने उनको देखा और बोले :- कबीर ये क्या रूप बनाया ? उनके हाथ में एक बोतल थी, एक प्याला था। बोतल में तो गंगाजल था, परन्तु लोगों को हटाने के लिए, मतवाले का रूप बना रखा था। उसी समय बोतल को डाल दिया, प्याले को गिरा दिया और बोलेः-एक हाथ दूसरे हाथ पर मार कर, बुझाओ ! बुझाओ! जल गया। लोगों ने पूछाः-कबीर ये क्या अफंडबाजी कर रहा है ? कबीर जी बोलेः-अफंडबाजी क्या है ? जगन्नाथपुरी में एक पंडा रसोई घर में चुल्हे पर से, एक अटका उतारता था, उसकी बांह में आग लग गई, वह तो मैंने बुझा दिया, नहीं तो वह जल जाता। यह कहकर अपने आश्रम पर चले आए और वैश्या को उस के घर भेज दिया। दुनियां से कबीर जी ने अपना पीछा छुड़ा लिया। राजा ने यह बात सुनकर, रानी को महलों में जाकर बतलाई। रानी बोली :- आपने उनमें से कुछ श्रद्धा तो नहीं हटा ली है। राजा बोले :- मैंने उन को नमस्कार वगैरा नहीं किया। रानी ने कहा :- अपने तो गुरू हैं, अपने तो ईश्वर हैं, आपने यह अच्छा नहीं किया। संतों की गति कौन जान पाता है ? रानी के कहने के अनुसार, राजा ने जगन्नाथपुरी से खबर मंगवाई। पता चला उस रोज, कबीर जी, अमुख समय, जगन्नाथपुरी में मौजूद थे और पंडे के हाथ को जलते हुए को बचाया। स्थूल शरीर से कासी में थे और सुरतिरूपी शरीर से जगन्नाथपुरी में थे।

तृतीय दृष्टान्तः- भक्त पीपा जी महाराज, रायसिंह टोडा में, राजा शूरसैन के दरबार में, एकादसी के जागरण में बैठे थे। आधी रात्रि का समय हुआ। एक दम ध्यान से उठे और बोले :- बुलाओ ! बुलाओ! राजा के सहित सब लोगों ने प्रार्थना की कि महाराज ! क्या हो गया ? महाराज पीपा जी बोले :- भाई द्वारका में भगवान कृष्ण रास कर रहे थे। एक सखी के हाथ में जलती हुई मसाल थी। जब भगवान नृत्य करने लगे, सखी का हाथ जरा ऊंचा हो गया। ऊपर जरी का शामियाना लगा हुआ था। उसमें मसाल की झल से आग लग उई। वह तो मैंने अचानक बुझा दिया, नहीं तो कई हजार का नुकसान हो जाता। यह सुनकर, राजा के सहित सभी लोगों ने आश्चर्य किया, परन्तु जब राजा ने द्वारका से पता मंगवाया तो बात सही हुई कि महाराज पीपा जी उस रात रास देख रहे थे। उन्होंने जरी के शामियाने को जलने से बचाया। राजा यह समाचार सुनकर, महाराज के चरणों में जाकर नमस्कार किया और मन में समझ गया कि पीपा जी स्थूल शरीर से जागरण में थे और सुरति रूपी शरीर से रास देखते थे। परमेश्वर के नाम स्मरण में यह शक्ति है कि भक्त लोग दो दो रूप भी बना लेते हैं।

राम कहत राम हि रह्या, आप बिसर जन होइ।
मन पवना पंचौ बिलै, दादू सुमिरण सोइ ॥१६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यही सार्थक स्मरण है, जो कि अन्तःकरण में होता है। उसी चिन्तन से मन, प्राण, पंच इन्द्रिये आदिक का, चेतन्य में विलय होता है और मलीन, अहंत्व आदिक भाव विसर कर, मुमुक्षु केवल ब्रह्मरूप ही हो जाता है।

जहं आतम राम संभालिये, तहं दूजा नांही और।
देही आगै अगम है, दादू सूक्ष्म ठौर ॥१६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हृदय प्रदेश में आत्मारूप, राम का स्मरण, करने से, द्वैतभाव वहां पर नहीं रहता और 'देही' कहिए जीव के आगे, अन्तःकरण में ही साक्षीरूप राम है। परन्तु जानने का मार्ग बारीक है। अथवा साधारण जीवों से ब्रह्म जो सूक्ष्म है, उसका स्मरण करना कठिन है, क्योंकि जीव बहिरंग वृत्ति है।

पर आतम सौं आत्तमा, ज्यौं पाणी में लूंण।
दादू तन मन एक रस, तब दूजा कहिये कूँण ॥१६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमातमा समष्टि चेतन्य से जब पराभक्ति द्वारा, जल में नमक मिले, इस प्रकार तन मन के अध्यास को त्यागकर, जीवातमा एकत्वभाव से चिंतन करे, तब व्यष्टि जीवभाव नहीं रहता।

तन मन बिलै यों कीजिये, ज्यौं पाणी में लूंण।
जीव ब्रह्म एकै भया, तब दूजा कहिये कूंण ॥१६७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे नमक जल में विलय हो जाता है, वैसे ही 'पर आतम' कहिए ब्रह्म से जीवात्मा की एकता होने पर, तन मन आदिक भी परमेश्वर में लय हो जाते हैं। फिर द्वैतभाव नहीं व्यापता है।

तन मन बिलै यों कीजिये, ज्यौं घृत लागै घाम।
आतम कवंल तहं बंदगी, जहं दादू परगट राम ॥१६८॥

टीका :- जैसे घृत को तप्त करने से वह एक रूप हो जाता है, वैसे ही अपने तन मन आदिक को परमेश्वर में विलिन करके, हृदय प्रदेश में, अपना स्वस्वरूप चेतन आत्मा को, प्रत्यक्ष करो ।

(नख सिख स्मरण)

कोमल कवंल तहं पैस करि, जहां न देखै कोइ ।
मन थिर सुमिरण कीजिये, तब दादू दरसन होइ ॥१६९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सूक्ष्म हृदय स्थान में अन्तरलीन होकर, मन को स्थिर करके, स्मरण करने से परमात्मा के व्यापक रूप का प्रत्यक्ष होता है । वह हृदय स्थान कैसा है ? "जहां न देखै कोइ" अर्थात् विषयोपासर मनुष्यों की गम नहीं है, अथवा कोई संसार वासना वहां नहीं व्याप्ति है ।

नख सिख सब सुमिरण करैं, अैसा कहिये जाप ।
अन्तर बिगसै आत्मा, तब दादू प्रगटै आप ॥१७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! नख से शिखा पर्यन्त कहिए सम्पूर्ण शरीर में रोम रोम से निरन्तर स्मरण होता रहे, तब समझो कि परमेश्वर के स्ममण में एकाग्र सुरति हुई है । इस प्रकार परमेश्वर में एकाग्र होने से, परमेश्वर प्रगट होते हैं । और हृदय में ही परमेश्वर का दर्शन करके, जीवात्मा प्रफुल्लित होता है अथवा अन्तर्निष्ठ वृत्ति द्वारा, आत्म चिंतन का अभ्यास पूर्ण हो जावें तब, सम्पूर्ण शरीर स्मरण करने की अवस्था में आ जाता है । वृत्ति द्वारा आत्म चिंतन होता रहता है । यही नख से शिखा पर्यन्त कहिए, शरीर का सम्पूर्ण स्मरण कहा जाता है ।

अंतर गति हरि हरि करे, तब मुख की हाजति नांहि ।
सहजैं धुनि लागी रहै, दादू मन ही मांहि ॥१७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जव निरन्तर भगवान का स्मरण करते हुए, 'सोहं सोहं' एवं 'ररंकार' आदिक अन्तर ध्वनि होने लगती है तो फिर जिह्वा के स्मरण की आवश्यकता नहीं रहती । मन ही मन में अखंड ध्वनि होती रहती है ।

दादू सहजैं सुमिरण होत है, रोम रोम रमि राम ।
चित्त चहूंट्या चित्त सों, यों लीजे हरि नाम ॥१७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अखण्ड स्मरण भाव होने पर रोम रोम में राम रम रहा है । इस प्रकार से स्मरण करने से ही जीव, चेतन्य ब्रह्म में लीन हो जाता है । अथवा 'चित्त' कहिए व्यष्टि अन्तःकरण, प्रवृति से निवृत होकर, समष्टि अन्तःकरण में अभेद हो जाता है ।

दादू सुमिरण सहज का, दीन्हा आप अनंत ।
अरस परस उस एक सौं, खेलैं सदा बसंत ॥१७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो सहज स्मरण भाव है, उससे प्रसन्न होकर, आप भगवान ने अपना अनन्त स्वरूप को प्रगट किया है । जिससे एक रस होकर मुक्तजन अमर सुख को प्राप्त होते हैं ।

दादू शब्द अनाहद हम सुन्या, नख सिख सकल शरीर ।
सब घट हरि हरि होत है, सहजैं ही मन थीर ॥१७४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्तजन, नख से शिखा पर्यन्त, अनहद ररंकार शब्द का अनुभव करते हैं और समस्त शरीर में हरि हरि ध्वनि हो रही है । और मन सहजावस्था को प्राप्त होकर, आतमस्वरूप में निश्चल हो रहा है ।

हुण दिल लग्गा हिक्कसो, मेकू येहा ताति ।
दादू कंमि खुदाय दें, बैठाडी है राति ॥१७५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'हुण' कहिए अब इस समय, हमारा दिल एक सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित, परमेश्वर से लगा है । हमको एक, हे प्यारे ! आपकी ही चाहना लगी है । हे हमारे खुद खाविंद परमेश्वर ! आप अपना स्मरणरूपी कार्य हमको देओ, रात दिन उसी को करते रहैं ।

दादू माला सब आकार की, कोई साधु सुमरै राम ।
करणीगर तैं क्या किया, अैसा तेरा नाम ॥१७६॥

टीका :- हे जिसुज्ञाओ ! समस्त शरीर के रोम रोम को मणियांरूप करके, कोई बिरला साधु ही परमेश्वर का स्मरण करता है । पूर्ण भक्तों के रोम रोम से अन्तर्ध्वनि होने लगती है । 'करणीगर' कहिए हे करतार ! तैंने ऐसा क्या किया ? जो संतजन इस प्रकार निरंतर तेरे नाम रस का पान करते हुए भी, तृप्त नहीं होते हैं ? अथवा हे करतार ! तैंने ऐसा क्या माया वैचित्र्य रचा है, जिससे साधुजन ही आपकी नाम महिमा

को जानते है और संसारीजन नहीं जानते हैं ? अर्थात् सब ब्रह्मांड को एक माला मानो, घट पट आदिक आकार को मनियां समझो और परमेश्वर रूपी धागा है । हे सृष्टि रचिता ! यह अद्भूत माया प्रपंच क्या रचा है आपने ? इस प्रकार का चिंतन रूप स्मरण कोई संत करता ।

दोहा :- माया घट मणीयें सबै, सुमिरे सांई साध ।
रज्जब तुछ तसवि रही, माला मीलि अगाध ॥१७६॥

दोहा :- पंच पचीसों त्रीगुण मन, यह मनीये जीव हेरि ।
रज्जब हित के हाथ सौं, आठों पहर सुफेर ॥१७६॥

अथवा 'माला सब प्रकार की' । हे करतार, परइमेवर चिन्तामणि रूप आपके नाम का निस्काम स्मरण छोड़कर, संसारीजन, 'आकार की कहिए स्थूल शरीर के लिए' आकार की कहिए स्त्री पुत्र आदि के लिए, आकार की कहिए देवी देवताओं की सिद्धि के लिए, आकार की कहिए भूत प्रेत सिद्धि के लिए, आकार की कहिए स्वर्ग बैकुण्ठ आदि के लिए, इत्यादि वासना लेकर माला फेरते हैं । परन्तु कोई आपके अनन्य भक्त ही, आपका निस्काम स्मरण करते हैं ।

दोहा :- एक नृप माला फेरतां, हांसिल लेतो नांहि ।
नृप दुख औषध काल जो, मांगत सबै नसांइ ॥१७६॥

दृष्टान्त :- एक राजा के राज्य में जब तहसीलदार, जमीन के मावजे की उग्राही करने लगा, तो एक गांव में एक वृद्ध गरीब ब्राह्मण था । वह बोला :- मेरे पास मावजा देने को है नहीं । मैं राजा साहब के नाम की माला फेर दिया करूंगा । तहसीलदार ने राजा से कहा :- हुजूर ! एक ब्राह्मण आपके नाम की माला फेरता है, उसके पास जमीन का मुवावजा देने को कुछ है नहीं । राजा बोले :- ठीक है, और अब हमने यह नेम ले लिया कि जो हमारे नाम की माला फेरेगा, उससे जमीन का मुवावजा नहीं लेवेंगे । तब कास्तगार लोगों ने यह सुना, तो गांव गांव में यही सबने कहना शुरू किया कि हम राजा जी के नाम की माला फेरते हैं । सब लोग माला लिए नजर आते । मंत्री ने विचार किया कि सारा देश ही माला फेरने लग गया । राज का काम कैसे चलेगा ? तब राजा से मंत्री बोले :- अन्नाता ! यह जो आपका नियम है, इसका तो दुनियां नाजायज फायदा उठाने लग गई । आप कहैं तो हम लोग परीक्षा कर लें, माला फेरने वालों को, कि आपके लिए कितने लोग माला फेरते हैं । राजा ने कहा हां ठीक है, परीक्षा कर लो । जो हमारे लिए माला फेरता है, उससे मुआवजा मत लेना । तब मंत्री ने हुक्म दिया और गांव गांव में कटोरा और चाकू लेकर, राजपुरूष जाने लगे और कास्तकारों को बोलने लगे कि भाई, राजा जी के भारी दुःख है । डाक्टर ने बतलाया

है कि जो, राजा जी के लिए माला फेरता है, उसका कलेजा लाओ। उसके कलेजे की राजा जी को पट्टी बांधेंगे तब राजा जी का रोग निवृत्त होगा। सो आप अपना कलेजा देओ। यह सुनते ही सब कांपने लगे और बोले कि महाराज ! हम तो राजा जी की माला नहीं फेरते, अपने घरकों के लिए माला फेरते हैं। किसी ने कहा, मैं अपने शरीर के लिए माला फेरता हूं। किसी ने कहा, मैं स्वर्ग के लिए फेरता हूं। किसी ने कहा :- मैं जमीन जायदाद के लिए फेरता हूं। मैं अपने लड़के के लिये फेरता हूं, मैं धन के लिए फेरता हूं। प्रायः सभी कास्तगारों ने इसी प्रकार कहा, पुलिस साथ थी। पकड़ पकड़ कर, काराग्रह में बन्द करना शुरू किया। जब उसी ब्राह्मण के पास आए और कलेजा मांगा, तो वह बोला कि मैं आप ही राजा जी के पास चलता हूं। और वे पालन करने वाले हमारे स्वामी हैं। यह मन मन सब उनके अर्पण है। पहले मैं इस शरीर में से कई जगह का मांस काट काट कर दूं और अन्नाता को उसकी पट्टी बाधें, जब नहीं ठीक होंगे, तब यह कलेजा उसी जगह निकाल कर दे दूंगा। उस ब्राह्मण को राजा के सामने लाए और बोले :- कि अन्नाता ! यह एक ही सारे देश में आपके नाम की माला फेरता है। बाकी तो सब लोभ से अपने कुटुम्ब की माला फेरते हैं, आपके नाम की माला कोई नहीं फेरता है। राजा ने हुकम दिया कि सब कास्तगारों से बकाया मावजा जुर्माने सहित लिया जावे। उसी प्रकार सबसे वसूल कर लिया गया। ब्राह्मण को माफ कर दिया। सभी आकार की माला फेरते थे। कोई बिरले भक्त ही राम की माला फेरते हैं।

दादू मन चित अस्थिर कीजिये, तौ नख सिख सुमिरण होइ।
श्रवण नेत्र मुख नासिका, पंचों पूरै सोइ॥१७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन और चित्त को स्थिर करिये, तो नख से शिखा पर्यन्त, स्मरण होवेगा और श्रवण नेत्र आदिक पंच इन्द्रिये, परमेश्वर में ही पूर्ण सलग्न रहैं और मनन चिन्तन द्वारा, फिर परमेश्वर में ही सलग्न रहो।

(साध महिमा)

आतम आसण राम का, तहां बसै भगवान।
दादू दोन्यूं परसपर, हरि आत्तम का थान॥१७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संतों का हृदय राम का आश्रम कहिए स्थान है, वहां परमेश्वर निवास करता हैं। और जीवात्मा का आश्रय कहिए स्थान परमेश्वर है, क्योंकि दोनों ओत प्रोत रहते हैं और नाम स्मरण से ही भक्त, शान्ति को प्राप्त होते हैं तथा स्थिरता रहती है। अन्यत्र कहीं भी शान्ति नहीं हैं। इस प्रकार मुक्त आत्मा, परमात्मा में अभेद होकर, एक रूप होते हैं।

छंद :- काम ही न क्रोध जाके, लोभ ही न मोह ताके।
मद ही न मछर, न कोउन विकारो है।
दुख ही न सुख मानै, पाप ही न पुण्य जानै।
हरष ही न सोक आनै, देही तै न्यारो है।
निन्दा न प्रसंसा करै, राग ही न द्वैष धरै।
लेन ही न देन जाके, कछु न पसारो है।
सुन्दर कहत ताकी, अगम अगाध गती।
ऐसो कोई साधु सो तो, राम जी को प्यारो है ॥१७८॥

दोहा :- साधु दिल सांई रहै, हरि हिरदा में साध।
रज्जब महिमा क्या कहूं, ठाहर उभै अगाध ॥१७८॥

राम जपै रूचि साध कौं, साध जपै रूचि राम।
दादू दोन्यूँ एक टग, यहु आरम्भ यहु काम ॥१७९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भगवान तो अपने भक्तों का स्मरण करते हैं और साधु भक्तजन प्रेम पूर्वक, स्मरण में लै लीन रहते हैं। इस प्रकार भगवान और भक्त, परस्पर एक रूप हो रहे हैं। इसलिये संतो का तो यह कार्य है कि वे निरन्तर निस्काम कर्म करैं और भगवान का यह काम है कि अपने भक्तों का योग क्षेम करैं।

छन्द :- आठों याम यम नेम, आठों याम रह प्रेम।
आठों याम योग यज्ञ, कीयो बहु दान जो।
आठों याम जप तप, आटों याम लीयो व्रत।
आठों याम तीर्थ में, कर असनान जो।

आठों याम पूजा बीधि, आठौं याम आरती हु।
आठों याम दंडवत, सुमरन ध्यान जो।
सुन्दर कहत जिन, कियो सब आठों याम।
सोइ साधु जाके उर, एक भगवान जो ॥१७६॥

दोहा :- नारद पूछी विष्णु से, आप भजत हो काहि।
जती सती मम भक्त बली, मोह मरद अति आहि ॥१७६॥

दृष्टांत :- एक समय नारद जी बैकुन्ठ धाम पहुंचे और देखा कि भगवान आंख बंद करके ध्यान कर रहे हैं। प्रणाम करके बैठ गए। ध्यान से जब उत्थान हुए, तब हाथ जोड़कर पूछा :- प्रभु ! आप किसका ध्यान करते थे ? भगवान बोल :- जो जती सती मुझे भजते हैं, मैं उनको भजता हूं। नारद जी बोले :-इस समय किसको भज रहे थे ? एक मोह मरद नाम का राजा, रानी, उसके लड़के की स्त्री, उन्हीं को मैं भज रहा था। नारद जी मृतलोक में आए और योग माया से मोह मरद के राजकुमार को जंगल में आर्कषण करके, एक मायावी शेर से उसकी मृत्यु करवा दी। फिर जाकर शहर के दरवाजे पर बैठ गए। रानी ने सुना कि एक संत अलोकिक अमुख जगह बैठे हैं। रानी आई, नमस्कार किया। प्रभु महलों में पधारिये। यह राज और घर आपका ही है। नारद संतरूप में यह सुनकर बोले :-आपके पुत्र को शेर ने मार दिया, हमें मन में बहुत दुख है। मेरा पुत्र नहीं होगा ? नारद :-मैं आपका पुत्र जानता हूं। मैं नहीं जानती। संत :- क्यों ? रानी कहती है दृष्टान्त सुनो :-

एक ब्राह्मण के पुत्र हुआ। जंगल में ले जाकर ब्राह्मण ने रख दिया। बोला :- तूं कौन है ? पुत्र बोला :- मैं तुम्हारा बोरा हूं, कर्जा लेने आया हूं। इस प्रकार छह पुत्रों ने ब्राह्मण से कर्जा लिया। किसी ने कुछ, किसी ने कुछ दिया हुआ, कर्जा मांगा, ब्राह्मण कर्जा चुकाकर, बहुत खुश हुआ। वैसे ही कोई कर्जदार होगा। मेरा पुत्र नहीं था। संत बोले :- पुत्रवधु के पास जा रहे हैं। रानी ने आज्ञा दी। पुत्रवधु के महल में पहुंचे। सामने आकर चरण स्पर्श किये, और ले जाकर सुन्दर आसन पर बिठाया। संत बोले :- तुम्हारा पति मर गया, मैंने देखा है, मुझे बड़ा दुःख है। पुत्रवधु बोली :- मेरा पति नहीं होगा। सुनिये दृष्टान्त :-

एक नदी बह रही थी। बहुत से लकड़ और लकड़ी बहते जा रहे थे। एक लकड़ के साथ लकड़ी लग गई। बहुत दूर तक साथ मिलकर बहने लगे। एक दिन लकड़ आगे निकल गया, लकड़ी पीछे रह गई। आपसे, मैं पूछती हूं, उस लकड़ और लकड़ी को किसने मिलाया ? और उसका वियोग किसने कराया ? संत :- पानी ने संयोग कराया, और बियोग कराया। पुत्रवधु :- महाराज ! वैसे ही यह संसार एक दरियाव है। लकड़ और लकड़ी के स्थान में जीव हैं। कर्मरूपी पानी है। कर्म के संयोग से, मैं उसके साथ रही।

वह मेरे साथ रहा। आज कर्म ने बियोग करा दिया। इसमें पति और पत्नी क्या रह जाता है ? इसलिए मुझको कोई दुःख नहीं है। आप संत हो, कोई सेवा बताओ ? क्योंकि आपके आगमन से अचेत जीव भी जाग जाते हैं। संत :- राजा के दरबार में जाते हैं। पुत्रवधु :- चरण स्पर्श किया। राज दरबार में पहुंचे। राजा दरबारियों के सहित खड़ा होकर, संत को प्रणाम किया। सुन्दर आसन देकर बैठाया। राजा बोले :- सेवा। संत :- क्या सेवा ! आपके पुत्र को शेर ने मार दिया। राजा :- मेरा पुत्र नहीं मारा। संत :- क्यों ? राजा दृष्टान्त सुनो :-

हरिद्वार के कुम्भ पर्व के ऊपर, एक नगरवासी लोग पर्व स्नान करने को चल पड़े। नगर के दो कुत्ते भी उनके साथ हो लिये। आगे चलकर यात्रियों का पड़ाव पड़ा और रोटी पानी बनाने लगे। कुत्तों ने विचार किया, अपन भी चलें। पास में नगर था। दोनों कुत्ते गए। एक उत्तर को तरफ नगर में गया, एक दक्षिण की तरफ। जो कुत्ता उत्तर की तरफ नगर में गया, वह एक सात्विक ईश्वर भक्त ब्राह्मण के घर पहुंचा। थाली में रोटी परसी हुई थी। अचानक वह कुत्ता आकर खाने लगा। ब्राह्मण ने देखा कि आज का यह भोजन इसी के लिखा था। थाली में पानी भर दिया। कुत्ता भोजन करके मन से आशीर्वाद दिया कि आपकी जय हो। दूसरा दक्षिण की तरफ जो गया था, वह एक दुकानदार के यहां पहुंचा। उसके यहां कोई बदमास कुत्ता, रोज दुकान में नुकसान करता। परन्तु दुकान वाले ने उसे कभी देखा नहीं था। इस कुत्ते को दुकानदार ने दूर से आता देखा। सोचा कि यही कुत्ता है जो मेरे रोज दुकान में नुकसान करता है। जब कुत्ता दुकान की तरफ आगे बढ़ा, दुकानदार ने चुपके से पीछे से दरवाजा बन्द कर दिया और डंडा लेकर उसको पीटता है और बोलता है कि :- ले खा घी ! ले खा गुड़ ! ले खा आटा ! इस प्रकार कई डंडे मारकर, बाहर निकाल दिया। वह कुत्ता मन से शराप देता हुआ चला और अगले कुत्ते से जाकर मिला। उपरोक्त वर्त्तान्ति सब कह सुनाया। वह कुत्ता बोला :- मैं अपना दुकानदार से बदला लूंगा और उसे दुःख दूंगा। दूसरा बोला :- मुझे ब्राह्मण ने सुख दिया है, मैं उसे सुख दूंगा। दोनों कुत्ते कासी जा पहुंचे। दशासुमेद घाट पर गंगा स्नान किया। फिर काशी करवत पर आकर, अपनी अपनी कामना लेकर शरीर छोड़ दिया। वह ब्राह्मण का पुत्र बना, सुख दिया। दूसरा दुकानदार का पुत्र बना। जब जन्म हुआ, दुकानदार के चोरी हो गई। कुछ दिन के बाद आग लग गई। लड़का कुछ बड़ा हुआ तो यदि गोदी में नहीं लें, तो रोने लगे। गोदी में लेवैं तो कुचेष्टा करने लगा। कभी खोपरी में बटका भर ले, कभी दुकानदार की चुटिया पकड़ कर हिलाने लगै। एक रोज दुकानदार का दांतों से कान काट दिया। नीचे उतारा तो रोने लगा। फिर जब गोदी में लिया और कंधे पर बिठा लिया। एक आंख में उंगुली डाल दी। दुकानदार की आंख फूट गई। इस प्रकार उसका बुरा हाल बना दिया। मौन रहता है, बोलता कुछ नहीं। एक रोज दुकानदार के कंधे पर बठा था। पीछे से संत आए। संत बोले, अब तो तूं राजी है, बदला चुक लिया। लड़के ने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया और इशारे में कहा, आप तो जाइये। संत बोले :- अच्छा ! दुकानदार ने देखा संत को। यह लड़का हम से तो बोलता ही नहीं, पांच साल हो गए। संत को इसने नमस्कार किया। चलूं संत को पूछूं। लड़के को नीचे उतारा और दौड़ कर संत के चरण स्पर्श किए। बोला :- महाराज यह कौन है ?

संत बोले :- तेरा लड़का है । महाराज ! इससे मैं बड़ा दुखी हूं । संत :- तैंने पांच साल पहले किसी कुत्ते को पीटा था । बनिया :- हां । तो बस इसको किसी संत का चेला बना दे । संत :- यह कहकर चल दिए । दुकानदार किसी गांव में एक संत के पास जाकर, यह लड़का चढ़ा दिया और अपना पिंड छुड़ाकर राजी हुआ । राजा संत से बोला :- मेरा लड़का नहीं होगा, जिसको मारा है । वह कोई कुत्ता होगा । अपना बदला चुक लिया, तो अच्छा हुआ । नारद जी यह सुनकर रोमांच हो गए और धन्य धन्य कहने लगे । ये सच्चे भक्त हैं । भगवान से प्रार्थना की । भगवान विष्णु प्रगट हो गए । नारद ने भगवान से नमस्कार किया और कहा :- हे नाथ ! यह भक्त ध्यान करने के योग्य ही हैं, ऐसा मैंने निश्चय किया । नारद ने संकल्प किया :- कि राजकुमार चला आवे । उसी समय घोड़े पर सवार होकर, राजकुमार आ गया । भगवान विष्णु और नारद के चरण स्पर्श किए । माता पिता को नमस्कार किया । राजकुमार को भगवान ने राजतिलक किया । राजा मोह मरद को और उनकी रानी को भगवान अपने साथ, विमान में लेकर परम-धाम को चले गए । नारद बीणा बजाते हुए, त्रिलोकी में भ्रमण करने लगे । ऐसे ही राजा वली का आख्यान समझना । बोलिये :- भक्त भगवान की जय ।

ऐसे भक्तों को भगवान जपते हैं और भक्त भगवान को जपते हैं ।

जहां राम तहां संतजन, जहां साधु तहां राम ।
दादू दोन्यूं एकठे, अरस परस विश्राम ॥१८०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां राम है, वहीं तो संतजन हैं और जहां संतजन है, वहीं राम है । भक्तों की अन्तर्सुरति परमात्मा में ही लीन रहती है । इसलिये भगवान और भक्त एक रस होकर, एक स्थान ब्रह्म सुरति में ही परमानन्द का अनुभव करते हैं ।

(श्रीमद भगवत्)

श्लोक :- साधवो हृदयं मह्यं, साधुनां हृदयन्त्वहम ।
मदन्यते न जानन्ति, नाहं तेभ्योमनागपि ।१८०॥

साधु लोग मेरा हृदय और मैं साधु लोगों का हृदय स्वरूप हूं, वे मुझ से दूसरे को नहीं जानते, और मैं भी अन्य को नहीं जानता हूं ।

दादू हरि साधु यौं पाइये, अविगती के आराध ।
साधु संगती हरि मिलै, हरि संगति सै साध ॥१८१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! "हरि" कहिए भगवान, और "संत" कहिए साधु; इस प्रकार प्राप्त होते हैं कि भगवान की भक्ति करने से, भगवान संतों को मिलाते हैं। और संतों की भक्ति करने से, संत भगवान को मिलाते हैं।

दोहा :- परीक्षीत सुक आराध के, मुक्त भय ततकाल ।
भक्त राम जी टूक दे, भयो उदयपुर निहाल ॥१८१॥

दृष्टान्त :- राजा परिक्षित ऋषियों का आदेश प्राप्त करके और अवधूत जतीबर सुखदेव जी की अराधना की। तत्काल महाराज आ गए। राजा ने महाराज के चरण स्पर्श किए। सिंहासन पर पधराये और पूर्वोक्त सम्यक्ऋषि और सिंगी ऋषि के शराप का वृतान्त कह दिया। सुखदेव मुनी सुनकर बोले :- राजन् कोई चिन्ता मत करो। हम आपको सात दिन में मुक्त कर देंगे फिर महाराज सुखदेव मुनि ने, श्रीमद् भागवत पुराण की राजा को, सप्ताह श्रवण कराई। राजा सुनकर भक्ति ज्ञान द्वारा मुक्त हो गए।

दूसरा दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज के पोता शिष्य भक्त राम जी, उदयपुर में निवास करते थे। एक रोज एक ब्राह्मण सालग राम जी मूर्ति लेकर, महाराज के पास पहुंचा और बोला :-महाराज! मैं यह भगवान की मूर्ति आपके यहां रख दूं, क्योंकि मैं द्वारका यात्रा करने जा रहा हूं। जब आऊंगा तब ले जाऊंगा। भक्त राम जी बोले :- भाई ? इनके भोग तुम लगाते हो, हम तो रोटी बनाते नहीं हैं, झोली लाते हैं बनी बनाई। उसका भोग तो हम लगा देंगे। ब्राह्मण बोला :- हां महाराज ! उसका ही लगा देना। फिर ब्राह्मण चला गया। भक्त राम जी ने विचार किया, ठाकुर जी से तो पूछा ही नहीं, कि वे झोली की रोटी खाएंगे की नहीं। महाराज भक्त राम जी, कुटिया की तरफ मुंह करके बोले :- ठाकुर जी महाराज ! अन्दर से आवाज आई—हां भक्त राम जो। संत बोले :- झोली को रोटी का भोग लगा लोगे ? ठाकुर जी:- हां जो आप दोगे, वही पा लूंगा। दूसरे रोज झोली लाए और तूम्बी के एक पात्र में ठाकुर जी के लिए झोली के टुकड़े टुकड़े रख दिए, दूसरे पात्र में अपने लिए रख लिए। ठाकुर जी प्रगट हो गये। टुकड़े उठा उठा कर खाने लगे। दोनों ने जल पी लिया। भगवान अन्तर्ध्यान हो गए। भक्त राम जी भजन करने लगे। यह क्रम रोजाना चलता रहा। एक रोज महाराज भक्त राम ने सोचा :- ठाकुर जी तुलसी के पौधे से राजी रहते हैं। एक पौधा लाकर बाहर कुटिया के लगा दिया। वह पौधा बहुत भारी बन गया। एक गूजर भेड़ बकरियों का टोला लेकर आ रहा था। दो बकरी आकर तुलसी का पौधा खाने लगी। भक्त राम

जी बोले :- अरे राम का ! इन बकरियों को हटा ले । यह भगवान का वृक्ष है । गूजर बोला :- नहीं हटाता हूं, तूं बड़ा ल्याल्यी बुलाकर मेरी बकरियों को उठवा देगा । तब भक्त राम जी ने भगवान को बिनती करी ।

दोहा :- भक्तराम की बिनती, सुनियो बन माली ।
तुलसी की रक्षा करो, भेजो दो ल्याल्यीं ॥

दो ल्याल्यी तुरन्त एक एक बकरी को उठाकर ले गए । तब गूजर महाराज को गालियां देने लगा और बोला :- ऊत ! अभी तो मेरे पास सौ बकरी हैं, कल सौ की सौ लाकर पेड़ चराऊंगा । दूसरे दिन सौ बकरी ल्याकर पेड़ को चराने लगा । । महाराज ने कहा :- अरे मान भाई । गूजर बोला :- अब बुला सौ ल्योल्यी । महाराज ने फिर बिनती की ।

दोहा :- भक्त राम की बिनती, सुनियो बन माली ।
तुलसी की रक्षा करो, भेजो सौ ल्याल्यी ।

सौ ल्याल्यी तुरन्त एक एक बकरी को उठा कर ले गए । गुजर घबरा कर चरणों में गिर पड़ा और बोला :- मेरा अपराध क्षमा करो । कभी ऐसे अब नहीं करूंगा । फिर बोले :-

भक्त राम की बिनती, सुनियो बन माली ।
तुलसी की रक्षा भई, छोड़ो सब छयाली ।

राम जी महाराज ने सब बकरियां, गूजर की छोड़ दी । यह परचा महाराज का उदयपुर नरेश ने सुना और आकर दर्शन किये । उपदेश सुनकर, कृत्य कृत्य हो गया । महाराज मान प्रतिष्ठा ज्यादा होने से फिर वहां से भ्रमण करने चल दिए ।

ऐसे भगवान और भक्तों की अलौकिक लीला होती है । भगवान की आराधना से संत मिलते हैं ।

दादू राम नाम सौं मिलि रहै, मन के छाड़ि बिकार ।
तौ दिल ही मांहै देखिये, दोन्यूं का दीदार ॥१८२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन के विषय विकार को त्यागकर, राम नाम में ही अभेद होइये । तो फिर अपने हृदय स्थान में ही भगवान और भक्त का दर्शन करिये एवं आत्मा परमात्मा की एकता का अनुभव

करिये । अर्थात् भगवान और भक्त की एकता में क्या परमानन्दभाव उपजता है ? यह वर्णन नहीं हो सकता है । आप स्वयं अनन्य भक्त होकर ही अनुभव करो ।

साध समाना राम मैं, राम रह्या भरपूर ।
दादू दोन्यूं एक रस, क्यों कर कीजै दूर ॥१८३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भक्त तो परमेश्वर में समा रहे हैं और परमेश्वर भक्तों में व्यापक है । इस प्रकार सेवक सेव्यभाव विलिन होकर, भक्तजन भगवत्रूप होते हैं फिर द्वैतभाव नहीं प्रतीत होता है ।

दोहा :- कीने कोटीक जतन सब, अब गही काढै कौन ।
मौ मन मोहन रूप मिलि, ज्यों मिश्री जल लौंन ॥१८३॥

(सतसंग महातम)

दादू सेवग सांई का भया, तब सेवग का सब कोइ ।
सेवग सांई कौं मिल्या, तब सांई सरीखा होइ ॥१८४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब सेवक सांई में अभेद हो गया तब स्वामी का सम्पूर्ण मायावी ऐश्वर्य, सेवक की सेवा करता है, क्योंकि जब सेवक सांई में मिल गया, तो फिर सांई का स्वरूप ही हो गया । जो कुछ सांई का था, वह सब सेवक का हो जाता है ।

मिश्री मांहै मेल करि, मोल बिकाना बंस ।
यौं दादू महिंगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस ॥१८५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे मिश्री में मिलकर, बांस भी मिश्री के भाव में बिक जाता है । इसी प्रकार मुक्तजन भी परब्रह्म में मिलकर, परब्रह्म रूप हो जाते हैं ।

मीठे मांहै राखिये, सो काहे न मीठा होइ ।
दादू मीठा हाथ ले, रस पीवैं सब कोइ ॥१८६॥

टीका :-हे जिज्ञासुओ ! जैसे चीनी को जल में मिला देवें, तो जल भी मीठा हो जाता है और सब कोई पान करते हैं, इसी प्रकार सतसंग में चित्तवृत्ति एकाग्र करके, जिज्ञासुजन ब्रह्मज्ञानी हो जाते हैं । आनन्द स्वरूप में अन्तःकरण की वृत्ति की लय लगा कर, सब ही संत आतम साक्षात्कार रूपी रस पीते हैं ।

(सत्संगति कुसंगति)

मीठे सौं मीठा भया, खारे सौं खारा ।
दादू ऐसा जीव है, यहु रंग हमारा ।।१८७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मिश्री मिलाने से तो जल मीठा होता है और नमक मिलाने से खारा हो जाता है । यही हमारा 'रंग कहिए हाल है । ऐसे ही जलरूप जीव, मिश्री रूपी सत्संगती मिलने से, ब्रह्मरूप हो जाता है । और नमक रूप कुसंग से पामर हो जाता है । इसलिए सभी को मिश्रीरूप सत्संग करना चाहिए ।

सूत्र:- ॐ दुसङ्ग सर्व थैव त्यज्य: ।

मनुष्य को कुसंग का सब प्रकार परित्याग करना चाहिए ।

(साध महिमा महातम)

मीठै मीठे करि लिये, मीठा माहै बाहि ।
दादू मीठा व्है रह्या, मीठे मांहि समाहि ।।१८८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सत् उपदेश करने वाले सतगुरूओं ने सत्संग में सलग्न करके, उत्तम जिज्ञासुओं को ब्रह्मस्वरूप बना दिये हैं । और मुक्तजन "मीठे मांहि समाहि" कहिए, ब्रह्म में अभेद होकर, ब्रह्मरूप हो रहे हैं ।

राम बिना किस काम का, नहीं कौडी का जीव ।
सांई सरीखा व्है गया, दादू परसै पीव ।।१८९।।

टीका :-हे जिज्ञासुओ ! परमात्मा के विचार बिना, इस अज्ञानी जीवात्मा का मनुष्य जीवन व्यर्थ ही जाता है । किन्तु सतगुरू कृपा से यदि जीवात्मा पीव को "परसै" कहिए, स्वस्वरूप को पहिचानै, तो सांई सरीखा निरावर्ण होकर, ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ।

दोहा :- राम विमुख नर हों हिगें, सर्प गोहिरा न्योल।
और जन्तु की को गिने, सो हरि बोलो हरि बोल॥१८९॥

(पारिख अपारिख)

हीरा कौडि नाल है, मूरख हाथ गवांर।
पाया पारिख जौहरी, दादू मौल अपार॥१९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मूर्ख के हाथ में हीरा एक कौडी भी मुल्य नहीं पाता और वही हीरा परीक्षा करने वाले, जौहरी के हाथ आ जावे तो, अपार मोल का होता है। इसी रीति से हीरारूप मनुष्य जन्म, और राम नाम की महिमा को संसारीजन नहीं समझ पाते, किन्तु सतगुरू रूप जौहरी मिल जावे तो, जिज्ञासु, अपार परब्रह्म के स्वरूप में अभेद होकर, स्वयं भी परब्रह्मरूप हो जाता है।

अंधे हीरा परखिया, कीया कौडि मोल।
दादू साधु जौहरी, हीरे मोल न तोल॥१९१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अंधे पुरूष के हाथ में हीरा दें और उसे पूछें कि इसकी कीमत क्या है ? वह बोलता है, चिकना सा पत्थर है, एक कौडी का होगा। और वही हीरा जौहरी के हाथ में जाने से, जौहरी बोलता है :- यह हीरा अमूल्य है। ऐसे ही मनुष्य देहरूपी हीरे की संसारिकजनों से कीमत पूछैं, तो वे 'कोडीवत' कहिए संसार के विषय वासना रूप भोगों को, भोगने की ही कीमत बतलाते हैं, और ऐसा ही जानते हैं। परन्तु जौहरी रूप सतगुरू के पास जावैं, तो वह मनुष्य देह की अपार कीमत बतलाते हैं, अर्थात् मनुष्य देह के द्वारा अपार परमात्मा की प्राप्ति होती है।

(साध महिमा)

मीरां कीया मेहर सों, परदे थैं लापर्द।
राखि लिया दीदार में, दादू भूला दर्द॥१९२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'मीरां' कहिए हमारा स्वामी परमातमा तथा सतगुरू अपने अनुग्रह से जिज्ञासुओं को माया आवरण, अविद्यारूप पड़दे से मुक्त करके, स्वस्वरूप आतमा का अनुभव कराते हैं। फिर वह परमेश्वर दर्शनों में एक रूप होकर, मुक्तजन जन्म मरण आदिक संसारिक दुखों को भूल जाते हैं।

दादू नैन बिन देखबा, अंग बिन पेखिबा,
रसन बिन बोलिबा ब्रह्म सेती ।
श्रवण बिन सुणिबा, चरण बिन चालिबा,
चित्त बिन चित्यबा, सहज एती ॥१९३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निराकार ब्रह्म व्यवहारिक अंगों से तो शून्य है, इसलिए उसका इन बाह्य नेत्रों बिना, ज्ञान नेत्रों से ही प्रत्यक्ष होता है और बिना त्वचा इन्द्रिये के ही, लय वृत्ति द्वारा 'पेखिबा' कहिए स्पर्श, ओत प्रोत भाव होता है । बिना जिह्वा के ही मनन द्वारा, सम्पूर्ण माया प्रपंच, ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है । इस प्रकार मानो ब्रह्म से ही वार्तालाप हो रहा है । बाहरी श्रोत्र बिना अन्तर्सुरति द्वारा, ब्रह्म की अनहद ध्वनि को सुनते हैं और व्यवहारिक पैरों के बिना ही, परमेश्वर की चर्चा रूप चलन क्रिया हो रही है । इसी रीति से बिना चित्त के ही, ब्रह्म में अभेद होना मानो, ब्रह्मचिंतन हो रहा है । ये सब लक्षण ब्रह्मनिष्ठ, भुवतजनों में सहज ही होते हैं ।

(पतिव्रत)

दादू देख्या एक मन, सो मन सब ही मांहि ।
तिहि मन सौं मन मानिया, दूजा भावै नांहि ॥१९४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कह रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हम मुक्तजनों ने एक ऐसे मन का अनुभव किया है, जो समष्टि चेतन रूप मन सब ही में व्यापक है । उसी मन में हमारा व्यष्टि मन लयलीन हो रहा है । अब हमको द्वैतभाव नहीं भासता है ।

(पुरूष प्रकासिक)

दादू जिहीं घट दीपक राम का, तिहीं घट तिमिर न होइ ।
उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ ॥१९५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस संत के हृदय में दीपक की भांति ब्रह्म प्रकाश हो रहा है, उसके हृदय में तिमिर रूप, अज्ञान नहीं रहता है । उस ज्ञान रूपी ज्योति के प्रकाश में, मुक्तजन सब जगत को, ब्रह्मस्वरूप ही देखते हैं। एवं ब्रह्म ज्योति के प्रकाश से सम्पूर्ण जगत, उसी महापुरूष को देखता है ।

(पतिव्रत)

दादू दिल अरवाह का, सो अपणा ईमान ।
सोई साबत राखिये, जहं देखैं रहिमान ।।१९६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवात्मा का पवित्र मन ही 'ईमान' कहिए कल्याण करने वाला हैं । अपने मन को एक परमेश्वर में ही सावधान सलग्न रखिये तो, अपने हृदय में ही प्रभु का प्रत्यक्ष होगा ।

अल्लह आप ईमान है, दादू के दिल मांहि ।
सोई साबत राखिये, दूजा कोइ नांहि ।।१९७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने पवित्र मन में, ईमान कहिए ईश्वर का जो निश्चय है, वही मानो साक्षात परमेश्वर है । ऐसे अपने विश्वास को ही एक रस रखिये, क्योंकि प्रभु प्राप्ति का यही एक सच्चा मार्ग है ।

प्राण पवन ज्यों पत्तला, काया करै कमाइ ।
दादू सब संसार मैं, क्यों हि गह्या न जाइ ।।१९८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'कमाइ' कहिए ब्रह्मयोग के द्वारा, प्राण जीवात्मा अपने स्थूल शरीर को, पवन की भांति 'निरूप', कहिए सूक्ष्म बनाकर, ब्रह्म में अद्वैत रूप हो जावे, तो फिर संसार वासना में उसकी आसक्ति नहीं रहती है - और व्यवहार काल में भी किसी के द्वारा पकड़ा नहीं जाता है ।

दोहा :- गुरू दादू को शाहपुरै, ले गये साकत लोग ।
परचा की मन में रही, चलत दिखायो दोष ।।१९८।।

दृष्टान्त :- शाहपुरा में त्रिलोकशाह नाम का वैश्य रहता था । ब्रह्मऋषि दादूदयाल जी की जब महिमा सुनी, तब उसने विचार किया कि हमारे गांव में भी महाराज को ल्यावैं । तब आप कई भक्तों को साथ लेकर, महाराज के पास पहुंचे, नमस्कार किया और शाहपुरा पधारने का निमन्त्रण दिया । महाराज ने स्वीकार कर लिया । जब शाहपुरे गांव के बाहर महाराज पहुंचे, तब त्रिलोकशाह बहुत से गांव वासियों को साथ लेकर, महाराज की अगवानी को गए । बड़े धूम धाम से महाराज को अपने घर लाकर ठहराया । सभी नगर वासियों ने उनके अमृत मय उपदेशों का श्रवण किया । महाराज का ज्ञान सुनकर, त्रिलोकशाह मन में बहुत हर्ष को प्राप्त हुआ । परन्तु मन में यह विचार किया कि दादू दयाल जी के बारे में मैंने सुना

था, यह परचै सिद्ध हैं । परचा तो मैंने इनका कोई देखा नहीं । जब ब्रह्मऋषि वहां से प्रस्थान करने लगे । तो त्रिलोकशाह की पुत्री ने महाराज को एक थान मलमल का भेट करके नमस्कार किया । जब महाराज गांव वासियों के साथ नगर के बाहर आये, तो त्रिलोकशाह की तरफ महाराज ने देखा, उसके मन की बात जान गए और बोले :- रामजी हमारे जो बाई ने कपड़ा भेट किया था, वह वहीं रह गया । आप वहां जाकर ले आओ । त्रिलोकशाह घर आए तो देखा कि महाराज, गद्दी पर बैठे हैं और उपदेश कर रहे हैं । तब खड़ा होकर बिचार किया कि महाराज किसी ओर तरफ से तो आकर नहीं बैठ गए हैं । तब दौड़ कर वहाँ गया, जहां महाराज खड़े थे । महाराज बोले :- रामजी ले आओ, खाली कैसे आ गए ? तो फिर वापिस दौड़ा घर आया । महाराज के रूप में भगवान बैठे थे । कहने लगे, बह्मऋषि का कपड़ा और छड़ी ले आओ । त्रिलोकशाह ने नमस्कार किया और कपड़ा छड़ी लेकर चल पड़े । पीछे फिर कर देखा तो कोई दिखाई नहीं पड़ा । वहाँ आया, जहां महाराज खड़े थे । महाराज बोले :- कपड़े को खोल कर, मेरो कमर के लपेट कर, गांठ लगा दो । लपेट कर गांठ लगाई, तो महाराज बाहर खड़े हैं, गांठ कपड़े में आ गई । महाराज बोले घबराओ मत, होंस में आकर गांठ लगाओ । इस प्रकार तीन दफा किया । फिर त्रिलोकशाह घबरा गया और बोला :-

कटि पट में आवै नहीं, पच हार्‌यो एक दास ।
दादू पूर्ण ब्रह्म है, देखरू भयो हुलास ॥

यह कह कर चरणों में नमस्कार किया और बोला :-मेरा अपराध क्षमा करो । महाराज बोलेः-अब कभी साधुओं की परचा की भावना से परीक्षा तो नहीं करोगे ? त्रिलोकशाह :- अब कभी ऐसा नहीं करूंगा। महाराजः-निस्काम भाव से सेवा करो, जिससे यह जोव स्वस्वरूप को प्राप्त हो । यह कहकर वहां से प्रस्थान कर गए ।

ऐसे ब्रह्मवेत्ता महापुरूष दादू दयाल जी का तेजपुंज का शरीर, किस प्रकार बांधा जा सकता था ?

नूर तेज ज्यौं जोति है, प्राण पिंड यौं होइ ।
दृष्टि मुष्टि आवै नहीं, साहिब के बसि सोइ ॥१६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब जिस प्रकार परमेश्वर का नूर तेज स्वरूप है, उसी भांति ब्रह्मज्ञानी अपने प्राण और स्थूल शरीर को, ब्रह्मयोग के द्वारा, ज्योतिमय बना लेते हैं। वे महापुरूष संसारीजनों के देखने और बन्धन में नहीं आते हैं। ऐसे महापुरूष साहिब कहिए, ब्रह्म के स्वरूप में अभेद रहते हैं।

दोहा :- अहं परम आनन्दमय, अहं जोति निज सोइ ।
ब्रह्मयोग ब्रह्महि भया, दुविधा रही न कोइ ॥१९९॥

महाप्रभु अपना शरीर विसर्जन भी इसी प्रकार से किया था ।

दोहा :- गुरू दादू रू कबीर की, काया भई कपूर ।
रज्जब रीझा देख करि, सर्गुण निर्गुण नूर ॥१९९॥

सर्गुण से निर्गुण हो गए ।

काया सूक्ष्म करि मिलै, ऐसा कोई एक ।
दादू आत्म ले मिलै, ऐसे बहुत अनेक ॥२००॥

टीका :- हे जिसुज्ञाओ ! पूर्वोक्त प्रकार से स्थूल शरीर, पवनवत, रूप रहित और सुरति रूप बनाकर, परमात्मा में तदाकार होने वाले बिरले पुरूष होते हैं, कबीर जी, दादू जी जैसे । किन्तु शरीर का विसर्जन करके, सूक्ष्म देह से मिलने वाले अनेक हुए हैं और होंगे । प्रस्तुत साखी में प्रथम दो साखियों के भाव, उच्चतम प्रतिपादिक किया है । तथापि इससे कोई ब्रह्मज्ञानियों की ब्रह्मरूपता में कोई बिरूपता की, आशंका करना योग्य नहीं है, क्योंकि ब्रह्मरूपता में न्यून अधिक भाव असम्भव है -

(सुन्दरी सुहाग)

आडा आत्म तन धरै, आप रहै ता मांहि ।
आपण खेलै आप सौं, जीवन सेती नांहि ॥२०१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर के सामने, आत्मा को करै । परिछिन्न देहाध्यास को बिसार कर, 'आप रहै ता मांहि' अर्थात् आप स्वयं परमेश्वर रहता है । अपने अन्तःकरण की वृत्ति को स्वस्वरूप में ही लीन करै, और अपने हृदय स्थान में आत्म स्वरूप में ही विचरण करै, जेसे सुहागन स्त्री व्यवहार में पड़दा रखै, किन्तु अपने पति से प्रेमभाव होवै, तो व्यवहारिक पड़दा नहीं रहै । वैसे ही आत्मारूपी सुन्दरी को परमेश्वर की प्राप्तिरूप सुहाग होवै, तब आत्मारूपी सुन्दरी देहाध्यास या आपारूप पड़दा किये हुए हैं । जब तक यह जीवात्मा देहाध्यास या आपा के पड़दे को नहीं हटावै, तब तक प्रीतम से अभेदता सम्भव नहीं है । एकरूपता नहीं होवै है ।

(अध्यात्म)

दादू अनभैथैं आनन्द भया, पाया निर्गुण नावं ।
निश्चल निरमल निरवाण पद, अगम अगोचर ठावं ॥२०२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वस्वरूप में अभेद होने से परमानन्द प्राप्त होता है। कैसे ? "पाया निरगुण नाम" अर्थात् सतगुरू ने जो नाम का उपदेश किया, उस नाम ने हमारे सम्पूर्ण भय को नष्ट कर दिया है। और अब हमने निर्भय पद पाया है, अर्थात् परमेश्वर का निर्भय स्वरूप पा लिया है। सो निश्चल, एक रस निर्मल, वासनाशून्य, निर्वाण, माया आवरण से मुक्त, मन बुद्धि से अज्ञेय और इन्द्रिये आदि से अगोचर है, अनुभव से जाना जाता है। ऐसा परमतत्व स्थान पा लिया है।

दादू अनभै बाणी अगम कौं, ले गई संग लगाइ ।
अगह गहै अकह कहै, अभेद भेद लहाइ ॥२०३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संतो की सुरति का ब्रह्माकार हो जाना ही अनभै बाणी है। संतजन ब्रह्माकार सुरति होकर, अगह ब्रह्म को, अगह ही रूप करके, साक्षात्कार करते हैं और 'अकह' कहिए अकथनीय स्वरूप को, अकथ ही कहकर कथन करते हैं। इस रीति से सब में अभेद, ब्रह्म का, उसमें अभेद होकर ही, मरम को प्राप्त करते हैं।

जे कुछ बेद कुरान थैं, अगम अगोचर बात ।
सो अनभै सांचा कहै, यहु दादू अकह कहात ॥२०४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो गुप्त से भी गुप्त तत्व है, वह बेद और पुराण आदि से भी शक्ति वृत्ति द्वारा, 'अगम अगोचर' कहिए अविषय है। वेद पुराण भी शक्ति वृत्ति से उसका वर्णन नहीं कर सकते ? क्योंकि उसका यथार्थ अनुभव से ही बोध होता है। वेद, पुराणों ने भी उसको अकहरूप अर्थात् बक्तृत्व का अविषय, और नैति नैति कहकर वताया है।

दोहा :- जाकै निश्चय उपजै, अनुभव आतम ज्ञान ।
सुन्दर सो बोलै नहीं, सहज भया गलतान ॥२०४॥

दादू जब घटि अनुभव उपजै, तब किया करम का नास।
भै भ्रम भागै सबै, पूरन ब्रह्म प्रकास ॥२०५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, तब सूक्ष्म संसार की वासना अन्तःकरण से नष्ट हो जाती है। फिर भय भ्रम आदि से निर्भय और निर्मल स्वरूप होकर, मुक्तजन अखंड पूर्ण ब्रह्म स्वरूप से प्रकाशते हैं।

दादू अनभै काटै रोग कौं, अनहद उपजै आइ।
सेझे का जल निर्मला, पीवै रूचि ल्यो लाइ ॥२०६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आत्म ज्ञान से जिज्ञासुजनों के जन्म मरण आदि रोग नष्ट हो जाते हैं और सोहँ सोहं ररंकार आदि शब्दों की, अखंड ध्वनि उत्पन्न होती है। और ब्रह्मरूप भूमि से अनहद शब्द रूपी स्रोत द्वारा, ब्रह्मभाव अद्वैत निर्मल जल प्रगटता है। फिर अखंड ध्वनि रूप लै लगाकर, प्रीति से ब्रह्मानन्द रूप अमृत रस का पान करके, मुक्तजन कृत्य कृत्य भाव को प्राप्त होते हैं।

दादू बाणी ब्रह्म की, अनभै घटि परकास।
राम अकेला रहि गया, सबद निरंजन पास ॥२०७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अनुभव बाणी की महिमा कहते है कि जब ब्रह्म की प्राप्ति रूप अनुभव बाणी का हृदय में प्रकास हुआ, तो फिर केवल ब्रह्मभाव ही व्याप्ता है और मुक्तजन शब्दातीत कहिए, शब्द से परे, जो ब्रह्मस्वरूप है, उसी में मग्न हो रहे है।

जे कबहू समझै आतमा, तौ दिढ गहि राखै मूल।
दादू सेझा राम रस, अमृत काया कूल ॥२०८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो कदाचित् पूर्ण पुण्य अपना उदय हो या हरि गुरू संतो की कृपा हो जावे, तो यह जीवात्मा अपने आत्म स्वरूप को पहचान कर, अपने मन को दृढता से, सब का मूल कारण जो ब्रह्म है, उसमें अभेद करता है। इसके बाद ब्रह्मभूमि से जो रामरस रूपी स्रोत प्रगटता है, फिर साधक काया रूपी तट पर स्थित होकर, आत्मानन्द रूप अमृतरस को पीता है। ऐसे पुरूष को धन्य है।

(परिचय जिज्ञासु उपदेश)

दादू मुझहि मांहै मैं रहूं, मैं मेरा घर बार।
मुझ ही माहैं मैं बसूँ, आप कहैं करतार ॥२०९॥

दादू मैं ही मेरा अरस में, मैंही मेरा थान।
मैं ही मेरी ठौर में, आप कहै रहिमान ॥२१०॥

टीका :– परमेश्वर कहते हैं कि "मुझहि मांहैं मैं रहूं" अर्थात् मेरी महीमा में, मैं अपने आप स्थित हूं अथवा जो मुझ में स्थित हैं मेरे भक्त, मैं उनमें स्थित हूं। और जिन भक्तों का घरबार मैं हूं, वह मेरे भक्त मेरा घरबार हैं। जो मुझ में स्थित हैं, उन मेरे भक्तों में, मैं रहता हूं। ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज कहते हैं कि परमेश्वर इस प्रकार अपने भक्तों को उपदेश करते हैं।

परमेश्वर कहते हैं कि मेरे भक्तों के हृदयरूपी आकाश में, मैं ही हूं और वह मेरे भक्त, मेरे हृदयरूपी आकाश में स्थित हैं और जिन भक्तों ने मुझ में अपना स्थान जाना है, वह भक्त मेरा स्थान हैं। जिन्होने मुझे अपनी ठौर जाना है, वह भक्त मेरी ठौर हैं। हे जिज्ञासुओ ! इस प्रकार रहमान, परमेश्वर अपने परिचय सिद्ध भक्तों को आप कहते हैं।

दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहैं सिरजनहार ॥२११॥

टीका :– परमेश्वर कहते हैं, जो मेरे भक्त मेरे आसरे हैं, मैं उनके आसरे हूं। जिन भक्तों का मैं आधार हूं, वह भक्त मेरा आधार हैं। जिन भक्तों ने मुझे अपना तकिया कहिए बगीचा, स्थान समझा है, उन भक्तों के हृदयरूपी तकिया में, में स्थित हूं। ब्रह्मऋषि कहते हैं कि इस प्रकार अपने भक्तों को भगवान उपदेश करते हैं।

दादू मैं ही मेरी जाति में, मैंही मेरा अंग।
मैं ही मेरा जीव में, आप कहै परसंग ॥२१२॥

टीका :- परमेश्वर कहते हैं जिन भक्तो ने मुझे अपनी जाति जाना है, वह भक्त मेरी जाति हैं। जिन मेरे भक्तों ने मुझे अपना अंग समझा है, वह भक्त मेरा अंग है। जिन भक्तों ने मुझे अपना जीव जाना है, उनके जीव में मैं स्थित हूं। ब्रह्मऋषि कहते हैं कि यह प्रसंग भगवान आप, अपने भक्तों को उपदेश करते हैं।

दादू सबै दिसा सो सारिखा, सबै दिसा मुख बैन ।
सबै दिसा श्रवणहु सुणै, सबै दिसा कर नैन ॥२१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मैं दशों दिशओं में समानभाव से व्यापक हूं । सब दिशाओं में बकतृत्व शक्तिमय वही मेरा मुख है और सर्वत्र, मैं ही कानों से सुनता हूं । इसी प्रकार हाथ, पाद, नेत्र आदि सब मेरे व्याप्त हैं और सर्व जगत का साक्षी दृष्टा, श्रोत्ता अर्थात् सर्वकुछ सर्वरूप मैं ही हूं ।

दोहा :- बाल खिल डूबत गहै, कर भुज साठ हजार ।
बेर लिये सीवरी दीये, अंग की नगधार ॥११३॥

दृष्टान्त :- कुत्यु मुनि के साठ हजार पुत्र थे, उन का नाम बाल खिल ऋषि था । उनका शरीर अगुंष्ठ प्रमाण वर्णन किया गया है । वह समुद्र की तीर पर सन्ध्या कर रहे थे । जब समुद्र की तरंग आई, उसमें सब डूब गए । परमेश्वर को आर्तसुर से पुकारा । परमेश्वर साठ हजार भुजा बना कर, समुद्र से निकाल कर तीर पर खड़े कर दिए ।

जब राम भगवान आरण्य बन में सीवरी आश्रम के नजदीक पहुंचे तब सीवरी को बेर वृक्ष पर बेर तोड़ती हुई देखा । भगवान उसकी परीक्षा के लिए, एक भील का रूप बनाकर, बेर के वृक्ष के नीचे आकर खड़े हो गए और सीवरी की तरफ ऊपर देखा । सीवरी ने भी भील की तरफ देखा । भील रूप से बोले :- नीचे उतर । उतरी । तब बोले :- एक आजंला बेर का मुझे दे दो । मैं भूखा हूं । सीवरी बोली :- ऊपर चढ़ के खाले । भील रूप से बोले :- नहीं, तूं ही दे मुझे । भगवान के बिना भोग लगाए, तुझे कैसे दे दूं ? भील बोला :- एक डंडा मारूंगा रांड के, जब सब भूल जाएगी और बेर मैं ले जाऊंगा । सीवरी :- मन में विचार किया कि यह दुष्ट है । एक डंडा इसका मुझे लगेगा, तो मेरी जान निकल जाएगी और मैं भगवान के दर्शन किए बिना ही मर जाऊंगी । तब सीवरी विचार किया कि मेरे गुरूदेव का उपदेश तो मुझे यह है कि भगवान तो सर्वत्र व्यापक हैं, अपना प्रेम और भाव होना चाहिए । अब मैं यहीं भगवान को भोग लगा देती हूं, फिर यह बेर चाहे मसटंडा ले जाए, तो मुझे कोई चिन्ता नहीं । यह सोच कर सीवरी दोनों हाथों से अपनी साड़ी को झोली आकाश में उछाली, और बोली :- प्रभु ! ये बेर आपके हैं, भोग लगाना । यह कहकर परमेश्वर के प्रेम में बेसुध हो गई । जितने सीवरी के बेर थे, उतने ही हाथ बनाकर प्रभु ने, अपने भक्त के दिए हुए बेरों को अधर झेलकर, भक्षण कर लिया । जब सीवरी को होश हुआ, न बेर मिले और न मसटंडे का ही पता चला । फिर भगवान के भोग के लिए बेर तोड़ने लग गई । लक्ष्मण के सहित राम भगवान सीवरी की परीक्षा करके, फिर सीवरी को आते दिखलाई दिए ।

एक राजा थे। उनका छोटा भाई अंगद था। यह सूरवीर भी था। इसको सेना देकर, युद्ध के लिए भेजा। इसकी युद्ध में विजय हुई। उसके बाद उस नगर में सैनिक लूटने लगे। अंगद के भी लूट में वहां के राजा का, एक टोप हाथ लग गया। उस टोप में एक सौ एक हीरे जड़े हुए थे। जब वह विजय करके राज में आए, तब राजा नें सुना कि इनके पास हीरों का एक बड़ा भारी टोप है। लूट में ये लाए हैं। राजा ने इनको बुलाया और कहने लगे :- अंगद वह सौ हीरे तूं रख ले और एक जो इनमें बड़ा हीरा है, वह हमको दे दे। अंगद बोले :- लूट का माल तो जो लूटता है, उसी का हुआ करता है। राजा बोला :- मेरा हुकम मान कर मुझे देओ, नहीं तो मैं तुमसे जबरदस्ती छीन लूंगा। अंगद ने कुछ जवाब नहीं दिया। परन्तु राजा हीरा के लिए, कुछ न कुछ चेष्टा करता ही रहता था। और यह अंगद पहले बहुत परमाधी और बिषयी था, परन्तु इसकी स्त्री बड़ी पतिव्रता देवी थी। एक रोज इस स्त्री के उपदेष्ठा घर आ गए और यह उनसे बैठी सतसंग कर रही थी, अंगद अचानक घर आ पहुंचा और स्त्री और उपदेष्टा को एक जगह बैठा देखकर क्रोधित हो गया और बोला :- आप मेरे घर से चले जाओ। आप मेरे घरमें मेरी बिना इजाजत के कैसे आ गए ? वह उठकर चले गए। किसी अन्य भक्त के घर पर जाकर ठहर गए, अंगद की स्त्री को विचार हुआ, है तो मेरा पति, लेकिन इसका कल्याण किस प्रकार होगा ? यह सोचकर, उसने अन्न जल त्याग दिया। दो रोज के बाद अंगद को पता चला कि ये कुछ भी नहीं खाती पीती है। तब बोला :- आपको क्या तकलीफ है बतलाओ ? मैं वही करूगां ? जिससे की तुम्हें सुख प्राप्त होवे स्त्री बोली कि मैं तो यह चाहती हूं कि मेरे जो उपदेष्ठा गुरू थे, उनका आपने तिरस्कार किया है, उनको आप मना कर लाओ और उनके सतसंग द्वारा आप अपना कल्याण करो, तब मैं सुखी हो सकती हूं। अंगद, जहां गुरू ठहरे थे वहां गए। उनको नमस्कार किया और अपने घर ले आये। और क्षमा याचना की। संत ने ईश्वर भक्ति का उपदेश दिया। फिर वह ईश्वर का सच्चा भक्त बन गया। दोनों स्त्री, पुरूष परमेश्वर की भक्ति में विभल रहते थे। एक रोज राजा की कुचेष्टा देखकर, अंगद ने विचार किया कि जब तक हीरा मेरे पास रहेगा, झगड़ा ही चलेगा। मैं इसे जगन्नाथ भगवान के चढा दूं। तब घर से चल पड़े। राजा को पता चला कि अंगद हीरा जगन्नाथ के चढ़ाने जा रहा है। राजा ने सेना को आज्ञा दी कि अंगद को रास्ते में पकड़ लो और उससे हीरा छीन लो, नहीं दे तो उसे गोली से उड़ा दो और हीरा ले आओ। सेना पहुंची। अंगद को एक तालाब के किनारे रोक लिया और बोले :- हीरा दे दो, नहीं तो तुम्हें, अपनी जान का खतरा है। अंगद बोला :- भाई। मैंने आज स्नान नहीं किया है। मैं पहले तालाब में स्नान कर लूं, फिर हीरा दे दूंगा। यह कहकर तालाब में घुस गया और कमर कमर जल में जा खड़ा हुआ। हीरा निकाला और सबको दिखाया कि यही हीरा है, जिसके लिए तुम मुझे मारने को खड़े हो ! सबने कहा, यही है। अंगद आंख बन्द करके परमेश्वर का ध्यान किया और मन में बोला :- कि हे नाथ ! यह हीरा आपका है मैं आपके चढा चुका हूं। आप इसको ग्रहण करना। यह कहकर जल में डाल दिया। भगवान उस हीरे को ले गए और अपने मस्तक में धारण कर लिया। कहते हैं :-

दोहा :- नील चक्र पर ध्वजा बिराजै, मस्तक सोवै हीरा।
ठाकुर आगे दासी नाचै, गावै दास कबीरा॥

अंगद बाहर आ गए, और अपने घर चले आए। सेना ने राजा को पूर्वोक्त समाचार सुना दिए। राजा मन में पश्चाताप करने लगा। भाई से बैर हो गया और हीरा भी मुझे नहीं मिला। इसप्रकार भक्तों की पुकार भगवान सर्वत्र सुनते हैं और उनकी इच्छानुसार करते हैं।

सबै दिसा पगसीस हैं, सबै दिसा मन चैन।
सबैं दिसा सनमुख रहै, सबै दिसा अंग अैन ॥२१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब दिशाओं में मेरे पैर और शीश व्यापक हैं। सब दिशाओं में मेरा ही चैन कहिए, चेतन्य स्वरूप व सुखरूप मन, सन्मुख रहता है। इस प्रकार से सब दिशाओं में, मैं साक्षात्कार पमेश्वर ही व्यापक हूं। अथवा हे जिज्ञासुओं ! सतगुरूदेव कहते हैं कि भगवान सर्वत्र व्यापक है।

बिन श्रवणहु सब कुछ सुणै, बिन नैनहु सब देखै।
बिन रसना मुख सब कुछ बोलै, यहु दादू अचरज पेखै ॥२१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! परमेश्वर बिना कानों के ही सब कुछ सुनता है और बिना नेत्रों के ही सब कुछ देखता है। बिना जिह्वा के ही, सब कुछ स्वाद लेता है और बोलता है। इस प्रकार संतजन, यह अद्भुत आश्चर्य देखते हैं।

सब अंग सबही ठौर सब, सर्वगीं सब सार।
कहै गहै देखै सुनै, दादू सब दीदार ॥२१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'सर्वङ्गी' कहिए सब अंगों वाले, भगवान के अंग कहिए हाथ, पैर, मुख, नेत्र आदि, दिव्य रूप हैं। इसलिए हे जिज्ञासुओ ! तुम भी 'दिव्यरूप' कहिए मल विक्षेप आवरण से रहित होकर, सर्वत्र परमेश्वर का ही दर्शन करो और उसी की चर्चा श्रवण करो।

कहै सब ठौर, गहै सब टौर, रहै सब ठौर, जोति प्रवानैं।
नैन सब ठौर, बैन सब ठौर, अैन सब ठौर, सोई भल जानै।

सीस सब ठौर, श्रवण सब ठौर, चरण सब ठौर, कोई यहु मानै ।
अंग सब ठौर, संग सब ठौर, सबै सब ठौर, दादू ध्यानै ॥२१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब जगह परमेश्वर ही कहता है और परमेश्वर ही ग्रहण करता है । सब जगह परमेश्वर ही रहता है । उसी की ज्योति को "प्रवानै" कहिए मानो, वह भरपूर है । उसके नेत्र सर्वत्र हैं । सब जगह उसके बैन है, वही बोल रहा है । सब ठौर वही साक्षात्कार हो रहा है । वही 'भल' कहिए जानने के योग्य है । परमेश्वर का मस्तिक सब जगह है । सभी स्थान पर उसके श्रवण हैं और सभी जगह उसके चरण हैं । सब जगह उसके अंग व्याप्त हैं । सबके साथ वही है । सब कुछ वही है और सब ठौर वही है, उस प्रभु का कोई भक्त ऐसे ध्यान करते हैं ।

दोहा :- **सब जगह चेतन बसै, रज्जब रमता राम ।**
इस समझे का फल इह, बुरा न करना काम ॥२१७॥

इनमें समष्टि चेतन्य के स्वरूप का दिग्दर्शन है । सब दिशाओं में, सब लोकों हैं, सब भूतों में, जड़ चेतन्य में, सब स्थितियों में, उसी व्यापक शक्ति की सत्ता है । वह ज्ञानियों को प्रत्यक्ष है ।

तेज ही कहणा, तेज ही गहणा, तेज ही रहणा सारे ।
तेज ही बैना, तेज हीं नैना, तेज ही अैंन हमारे ।
तेज ही मेला, तेज ही खेला, तेज अकेला, तेज ही तेज सवांरे ।
तेज ही लेवै, तेज ही देवै, तेज ही खेवै, तेज ही दादू तारे ॥२१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्वत्र परमात्मा के तेज स्वरूप का ही बिचार करिये और तद् अनुसार ही परमात्मा को तेजोमय एवं सर्वव्यापक जानकर ही व्यवहार करिये, क्योंकि परमेश्वर का यह तेज स्वरूप ही, नामरूप होकर इन संसार दुखों से पार उतारेगा । अथवा जो संत ब्रह्म परिचय हैं वह ब्रह्म के तेज स्वरूप को ही कहते हैं और तेज स्वरूप का ही भजन करते हैं ।

नूर हि का धर, नूर हि का घर, नूर हि का बरू मेरा ।
नूर हि मेला, नूर हि खेला, नूर अकेला, नूर हि मंझि बसेरा ।

नूर हि का अंग, नूर हि का संग, नूर हि का रंग मेरा।
नूर हि राता, नूर हि माता, नूर हि खाता, दादू तेंरा ॥२१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो जीवनमुक्त संत हैं उनको 'धर' कहिए पृथ्वी आदिक, सम्पूर्ण नामरूप संसार प्रपंच, ब्रह्म का ही स्वरूप प्रतीत होता है। और उन जीवनमुक्त संतों का निवास, नूर स्वरूप ब्रह्म में ही है तथा चितावणी पक्ष में, यह जो धर और घर और मनुष्य शरीर आदिक जो प्रत्यक्ष हैं, वह भगवान के ही स्वरूप हैं। इसलिए ब्रह्म स्वरूप नूर हो हमारा स्वामी है। अब हे जिज्ञासुओ ! आप ब्रह्म स्वरूप नूर में ही रात्ता रत्त और माता मत्त होकर, मतवाले रहो। दादू पद से यहां अधिकारी को उपदेश है।

(सूक्ष्म सौंज अरचा बन्दगी)

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहां बसै माबूदं।
तहं बंदे की बंदगी, जहां रहै मौजूदं ॥२२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'अरवाहे' कहिए जीवात्मा के नूरी पवित्र दिल में, 'माबूदं'—परमात्मा बसता है। अगर ऐसे पवित्र हृदय में भक्तजन परमात्मा का स्मरण करें, तो परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है।

दोहा :- बालमिक बन में हथे, मानुष्य कई हजार।
उलट नाम दीयो सप्त रीसि, जपत नूर भये पार ॥२२०॥

दृष्टान्त :- बालमिकी जाति से भील थे ! हिंसा आदि कर्म किया करते थे, लूटना खसोटना। एक रोज उस रास्ते से कोई मुसाफिर नहीं आया। यह उदास होकर बैठे थे। विचार किया कि आज खाने पीने का काम कैसे चलेगा ? शाम का समय होने को आया कि उस रास्ते से इसको सात पुरूष आते दिखलाई पड़े। यह धनुष पर बाण चढाकर, उनकी तरफ निशाना लगाया। वे बोले :- क्या करता है ? बालमीकि :- मारूंगा। क्यों ? हमने क्या अपराध किया ? बालमीकि :- बिना अपराध ही मारता हूं, और उनका सब कुछ छीन लेता हूं। उससे अपने कुटुम्ब का पालन करता हूं। सप्तऋषि बोले :- ऐसे ही ले लो, मारो मत। बालमिकी :- ऐसे किसी ब्राह्मण को दान करो। मैं तो खून निकाल कर लेता हूं। ऋषि बोले :- कुछ दया कर, हम लोग तपस्वी हैं। संतों का दर्शन और उनके बचन सुनकर, अन्तःकरण में इसके कुछ अच्छी भावना जागृत हुई। इसका सम्पूर्ण पाप जिदंगी भर का, इसको याद आने लगा और बोला :- मुझ पापी पर दया करो, जिससे मेरा उद्धार होवे। मुझे उपदेश देओ। सप्तऋषि, अधिकारी जानकर, राम नाम का उपदेश कर

दिया और बोले :- इसका जाप करना, इससे तेरा उद्धार हो जायेगा। वह राम नाम में स्थित होकर, राम नाम जपने लगा।

चौपाई :- उलटा नाम जपा जग जानां।
बालमिकी भये ब्रह्म समाना ॥२२०॥

दादू नूरि दिल अरवाह का, तहं खालिक भरपूरं।
आले नूरि अल्लाह का, खिजमतगार हजूरं ॥२२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवात्मा के पवित्र हृदय में ही, परमेश्वर स्थित है। इसलिए परमेश्वर के दर्शनों के लिए 'खिजमतगार', कहिए भक्ति करने वाले भक्तजन, प्रति क्षण हजूरी रहकर स्मरण करते हैं।

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहं देख्या करतारं।
तहं सेवक सेवा करै, अनन्त कला रवि सारं ॥२२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवात्मा के शुद्ध हृदय में 'करतार' कहिए सृष्टि रचिता परमेश्वर स्थित है, वहीं उसका दर्शन करके, उसी शुद्ध हृदय में जीवात्मा, परमात्मा की स्मरणरूप बंदगी करता है।

दादू नूरी दिल अरवाह का, तहां निरंजन बासं।
तहं जन तेरा एक पग, तेज पुंज परकासं ॥२२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पवित्र अन्तःकरण में ही निरंजन देव का बास है। इसलिए अपने अपने अन्तःकरण में ही मनोवृत्ति को एक पग, एक रस करके, परमात्मा के तेज पुंज प्रकाश का दर्शन करिये।

दादू तेज कवंल दिल नूर का, तहां राम रहिमानं।
तहं कर सेवा बंदगी, जे तुं चतुर सयानं ॥२२४॥

टीका :- हे जिसुज्ञाओ ! हिन्दू तो तेजोमय, कमल रूप हृदय में परमेश्वर का बास मानते हैं और मुसलमान उसी तेजोमय हृदय को नूरी दिल कहकर, अल्लह का स्थान मानते हैं। इसलिए अपने हृदय में ही परमात्मा की सेवा और बंदगी करिये। इसी से बुद्धि में विवेक की सफलता है।

तहां हजूरी बंदगी, नूरी दिल में होइ।
तहं दादू सिजदा करै, जहां न देखै कोइ ॥२२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'हजूरी' जो बंदा कहिए सेवक शुद्ध हृदय में, उस परमेश्वर की भक्ति रूप सेवा करै, वहीं पर परमेश्वर की "सिजदा" कहिए नमाज गुजारै । वहां बहिर्मुख कोई भी नहीं पहुंचता ।

दादू देही मांही दोइ दिल, इक खाकी इक नूर ।
खाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर ॥२२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर में दो दिल, एक खाकी और एक नूरी है । 'खाकी दिल' मलिन अन्तःकरण और "नूरी" शुद्ध अन्तःकरण । जीवात्मा के अन्तःकरण में ही परमेश्वर का बास है । किन्तु मलीन अन्तःकरण होने से, संसारीजनों को परमात्मा के स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता और जो शुद्ध अन्तःकरण है, उसमें परमेश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है ।

(निवाज सिजदा)

दादू हौद हजूरी दिल ही भीतरि, गुसल हमारा सारं ।
उज्जू साजि अलह के आगे, तहां निवाज गुजारं ॥२२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शुद्ध हृदय ही जल का होद है, हजूरी के लिए । उस होद में राम नाम रूपी जल भरा है । इसी में भक्तजनों का सार स्नान होता है । फिर पंच ज्ञानेन्द्रियों को बहिर्मुख से अर्न्तमुख करना ही उज्जू है । इस प्रकार परमेश्वर के सामने नमाज गुजारो, कहिए प्रार्थना करो ।

दादू काया मसीति करि पंच जमाती, मन ही मुल्ला इमामं ।
आप अलेख इलाही आगै, तहं सिजदा करै सलामं ॥२२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह स्थूल शरीर ही मस्जिद है । जिसमें पांच ज्ञान इन्द्रियां ही जमाति हैं औ शुद्ध मन ही अगुआ (बांग देने वाला) मुल्ला है । इन सब साधनों सहित, आप जीवात्मा को अले स्वरूपी परमेश्वर के समक्ष में प्रार्थना और नमस्कार करनी चाहिये । यही सच्ची नमाज है ।

दादू सब तन तसवी कहैं करीमं, ऐसा करले जापं ।
रोजा एक दूरि करि दूजा, कलमां आपै आपं ॥२२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस नर तन को ही माला रूप करके, 'करीमं' कहिए कृपालु परमेश्वर राम नाम का स्मरण करो । ऐसा स्मरण रोम रोम से करो और इस प्रकार भजन करके, अपने द्वैतभाव को दूर करना ही रोजा है, और स्वस्वरूप में अनलहक रूप से अभेद हो जाना ही मानो, यही कलमा पढना है । अर्थात् व्यवहारिक कलमा तो मस्जिद में जाकर सभी पढ़ते हैं परन्तु इसी कलमा को अन्तर्मुख आत्म परायण होकर पढ़िये, तभी जीव आत्मा का उद्धार होगा ।

दादू अठ्ठे पहर अलह के आगै, इकटग रहिबा ध्यानं ।
आपै आस अरस के ऊपरि, जहां रहै रहिमानं ॥२३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आठ पहर और चौसठ घड़ी हृदय रूपी आकाश में, एक परमेश्वर का ही ध्यान करो । वहीं पर तुम्हारा ध्येय स्वरूप परमात्मा निवास करता है । उसी में अपनी लय लगाकर अभेद रहो ।

अठे पहर इबादती, जीवण मरण नेवाहि ।
साहिब दर सेवै खड़ा, दादू छाड़ि न जाहि ॥२३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आठों पहर जन्म से मरण पर्यन्त, परमेश्वर की अराधना में ही सलग्न रहो और सर्व अन्तर्यामी भाव से, परमात्मा को सर्वत्र प्रत्यक्ष करो, एवं कभी भी आत्म विमुख नहीं होना ।

(साधु महिमा महातम)

अठे पहर अरस मैं, ऊभोई आहे ।
दादू पसे तिनके, अला गल्हांये ॥२३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो संत पुरुष, आठों पहर प्रति श्वांस 'अरस' कहिए हृदय रूप आकाश में, 'ऊभोई' कहिए स्थिर चित्त होकर, अल्लाह नाम परमेश्वर से, ('गल्हांये'—परस्पर वार्तालाप) अभेद भावना रूप परस्पर वार्तालाप करते हैं, उन्हें ही परमेश्वर के स्वरूप का परिचय होता है और चितावनी पक्ष में, हे संतो ! अविचल भाव से आत्म परायण होकर, ऐसे सतगुरूओं की शरण में जाइये कि जो परमेश्वर से तुम्हारा वार्तालाप करवा दें ।

दोहा :- भयो प्रसन्न इक जाट पर, पातसाह सब सीस ।
एक बार तुम कान लग, औरन बिसवा बीस ॥२३२॥

दृष्टान्त :- एक रोज बादशाह अकबर रेगिस्तान में गया। गर्मी की मौसम थी। प्यास से घबरा गया। अकेला ही घोड़े पर सवार था। दूर से देखा तो एक टीले पर झौंपड़ी दिखलाई पड़ी। वहीं पर पहुंचा। वहां जाट अपने खेत में बैठा था। जाट ने देखा, कोई बड़ा आदमी है। बादशाह ने जाट की तरफ पानी पीने को इशारा किया। जाट समझ गया और छाया में बैठाया। मिट्टी में से एक तरबूज निकाला और उसके दो टूकड़े किये। बादशाह को दिया। बादशाह की भूख और प्यास दोनों ही निवृत हो गई। बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और बोला आज से तूं मेरा मित्र हो गया। तुझे कभी तकलीफ होवे, तो मेरे पास आ जाना, तेरा दुख दूर कर दूगां। जाट बोला :- तेरा नाम क्या है? मेरा नाम अकबर है। दिल्ली में आकर पूछ लेना, मुझे सब जानते हैं। जाट बोला :- तेरा नाम लिख दे, मैं भूल जाऊगां। जाट एक ठिकरा और कोयला लाया, अकबर ने अपना नाम कोयले से उस ठिकरे में लिख दिया। जाट ने ठिकरा लेकर, छांद में उलटा करके रख दिया। अकबर चला गया। साल दो साल के बाद काल पड़ गया। जाटनी बोली :- उस दिन जो घोड़े पर आया था, उसके पास जाओ और कुछ लाओ। जिससे अपना गुजारा चले। जाट ठिकरा लेकर चला और दिल्ली में आ पहुंचा। बोला :- यहाँ अकबरिया कहां रहता है? पुलिस वाले ने यह सुन कर, एक डंडा जाट के मारा। जाट ने पुलिस वाले का डंडा छीन कर, उसके दो चार जमा दिए। थानेदार वगैरा आ पहुंचे। जाट बोला :- अकबरिया तो मेरा मित्र है, यह देख, मेरे पास उसका नाम लिखा है। बादशाह को खबर हुई कि एक जाट आया है जिसके हाथ में ठिकरा है। हुजूर से मिलना चाहता है और अपने आप को हुजूर का दोस्त बतलाता है। बादशाह को याद आ गया। बादशाह बोला :- दरबार में ले आओ। जब जाट को दरबार में लाये, तो दरबार का रंग रूप देखकर, जाट चकित हो गया। मन में विचार किया, मैं अब जाट ही बना रहूं तो ठीक होगा। जाट बोला :- अरे मित्र! तेरे को इन सबने यहां बन्द कर रखा है? तेरे को यहां से निकलने नहीं देते हैं? जाट के हाथ में एक लाठी भी थी। तूं कहे तो, इन एक एक को ठीक कर दूं। सभी दरबारी चकित हो गए? अकबर मुस्कराने लगा और बोला :- आओ मित्र बैठो। एक कुर्सी पर उसको बैठाया और बादशाह ने दरबार बर्खास्त कर दिया। जाट से पूछा :- कैसे आया है? जाट बोला :- मित्र खाने पीने को कुछ नहीं है, काल पड़ गया है। बादशाह बोला :- कुछ धन लेजा। बोला :- नहीं मैं जाट हूं, कमा कर खाने वाला, दान का नहीं लूंगा, मुझे तो कुछ काम बता, बादशाह ने सोचा :- इसको क्या काम बताऊँ? तूं ही बता, तूं क्या काम कर सकता है? जाट :- दरबार में तेरी बराबर, एक चांदी की कुर्सी मेरे लिए भी लगवा। तूं सोने की पर बैठेगा और मैं चांदी की पर बैठूं। जब मैं तेरी तरफ मुहं करूं, तो तूं मेरी तरफ कान कर देना। बस यही मेरी नौकरी है। बादशाह ने कहा :- अच्छी बात है। दूसरे दिन बादशाह ने यह प्रस्ताव रखा कि हमने एक जाट को मंत्री रखना है और उसकी हमारी बराबर एक कुर्सी लगेगी। सर्व सम्मति से प्रस्ताव पास हो गया। जाट आकर कुर्सी पर बैठा, बादशाह के बराबर और दरबार में जितने राजा, महाराजा, नवाब बैंठे थे, उनको घूर घूर कर देखने लगा। एक राजा की तरफ क्रूर दृष्टि से घूर कर देखा और बादशाह की तरफ मुहं किया। बादशाह ने उसकी तरफ कान कर दिया। राजा के रोमांच खड़े हो गए। न मालूम इसने बादशाह को क्या शिकायत की है? दरबार बर्खास्त हो गया।

जाट अपने महलों में पहुंचा । राजा जाट के पास आ पहुंचे और बोले :- हम पर तो दया ही रखना । जाट बोला :- दया तो गया में छोड़ लाया मैं । कुछ भेट पूजा दिया करो । नहीं तो तुम जानते हो बादशाह मेरे कहे में है । राजा ने दो थैलियां असरफियों की पहुंचा दी । जाट ने अपने बाल बच्चों को भी महलों में बुला लिया । सभी खूब मोज करने लगे । दूसरे दिन ऐसे ही किसी नवाब को पकड़ लिया । ऐसे प्रतिदिन एक आध आसामी पकड़ लेता । करते करते साल भर खतम हो गया । एक दिन बादशाह बोला :- कुछ प्राप्त भी किया या ऐसे ही कान की तरफ मुंह करता है । हुजूर ! मेरा निमंत्रण स्वीकार करिये । मेरे साथ तो तमाम काफिला है । हां हुजूर ! काफिला के साथ आपको निमंत्रण है ।

जब क्रम क्रम से सब लोग जाट के यहां भोजन कर चुके और जब बादशाह सलामत जाट के यहां पहुंचे, तो एक लाख असरफी नजर किया । एक लाख असरफियों के ऊपर गद्दी लगाकर बैठाया । सोने के थाल बगैरा में, अनेकों प्रकार के पदार्थ परोसे गए । जब बादशाह वापिस आने लगा, तब एक लाख असरफी फिर नजर किया । बादशाह बोले :- कुछ तैंने भी रखा है या मुझे सब दे दिया । तब जाट बादशाह को अपने महल में ले गया और एक कमरा खोला । आंगन से छत तक असरफियों की थैलियां ठसी हुई भरी थी । दूसरा फिर कमरा खोला । ऐसे दो तीन कमरे बादशाह को दिखाए । बादशाह बोला :- अरे ! इतना धन तो मेरे पास भी नहीं है, तूं कहां से लाया ? जाट बोला :- हुजूर के कान की बदोलत, यह सब धन कमाया है ।

ऐसे ही दाराष्टान्त में जो अनन्य भक्त परमेश्वर के हैं, उनकी बात को परमेश्वर कान लगाकर सुनते हैं ।

अठ पहर अरस मैं, बैठा पिरी पसंनि ।
दादू पसे तिनके, जे दीदार लहंनि ॥२३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मुक्त संतजन, प्रति श्वांस अपने हृदय में बैठकर, 'पीरि' कहिए परमेश्वर का दर्शन करता है, उन्हें धन्य है । (पसंनि = दर्शन) ऐसे संतों का दर्शन और सत्संग प्राप्त होना अहो भाग्य है ।

अठे पहर अरस में, जिन्हीं रूह रहंनि ।
दादू पसे तिन के, गुझयूं गाल्ही कंनि ॥२३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनकी सुरति आठों पहर, हृदय रूपी आकाश में, आत्म विचार में ही लगी रहै, और परमेश्वर से ही अनहद ध्वनि द्वारा वार्ता करते हैं । उनको हृदय में ही परमेश्वर, प्रत्यक्ष होते हैं ।

(शब्दार्थ :- रूह = सुरति । गुझयूं = गुप्त । गाल्ही = वार्तालाप । कंनि = करना)

अठे पहर अरस मै, लुड़ींदा आहीन ।
दादू पसे तिन के, असां खबरि डीन ॥२३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्तजन अपने अन्तःकरण में स्थिर होकर, इष्ट पदार्थ को प्राप्त होवै है । ऐसे परिचय स्वरूप सतगुरूओं के दर्शन कीजिये, क्योंकि ऐसे सतगुरूओं ने ही हमारे को परमानन्द की खबर दी है ।

(शब्दार्थ :- लुड़ीदां = जाह । आहीन = आकर । असां = हमारे को ।

अठे पहर अरस मै, वंजी जेगा हींन ।
दादू पसे तिन के, कितेई आहीन ॥२३६॥

टीका :- सदैव अन्तःकरण में देहाध्यास जला करके, जिन्होंने भगवान का चिंतन किया है, उन्हीं के दर्शन करने चाहिये । किन्तु ऐसे संत कोई बिरले ही हैं ।

(वंजी = जाने का । गाहीन = गाकर । आहीन = आना)

(रस प्रेम प्याला)

प्रेम प्याला नूर का, आसिक भरि दीया ।
दादू दर दीदार में, मतवाला कीया ॥२३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर ने अपने नूर स्वरूप का प्रेम रूपी प्याला, अपने आत्मीय जनों को, आप ही भर कर दिया है और दर कहिए हृदय में ही दर्शन देकर, अपने भक्तों को मस्त किया है ।

दोहा :- सिवली ज्यौं रस पीजिये, जान सकत नहीं कोइ ।
परगट कीये मंसूर ज्यूं, सब जग बैरी होइ ॥२३७॥

दृष्टान्त :- यह सिवली मंसूर राबिया की बहन थी । रात्रि को जब सब घर वाले सो जाते, तब यह घर से चलती और नगर के बाहर, एक महात्मा की कुटिया थी । वहां जाती, और उनका सतसंग करती, ज्ञाना अमृत पीती । फिर घर आ जाती । इसी प्रकार इसका हमेशा यह क्रम चलता रहा । एक रोज जब यह जा रही थी, तब एक संसारिक ने इसको देखा और सवेरे मंसूर राबिया से बोला :- तुम्हारी बहन रात को अमुक साधु के पास जाती है । मंसूर उसको बोले :- जाती होगी, मेरा क्या लेती है ? परन्तु फिर विचार

किया कि क्यों जाती है ? पहले आंखों से देखें, उसके बाद उससे बात करें । यह सोचकर जब रात्रि को वह दरवाजा खोलकर चली, तब पीछे-पीछे मंसूर भी चले । जब वह महात्मा की कुटिया में पहुंची । यह कुटिया के पीछे जा बैठा । वह जाकर महात्मा को नमस्कार किया । महात्मा बोले :- बेटी आ गई । सिवली बोली :- हां पिता आ गई । महात्मा ब्रह्म विद्या का उपदेश करने लगे । आधी रात में महात्मा के लिए, अमृत का प्याला भगवान के दरबार से आता । महात्मा ने आधा पीया और बोले :- ले बेटी, आधा तुम पी लो । तब मंसूर ने मन में विचार किया कि यह कुछ पी रहे हैं, तूं भी मांग ले । पीछे से बोला :- "बहन ! मुझे भी पिलाना ।" सिवली बोली :- "मंसूर !" वह बोला :-'हां' । आ जा फिर, वहां क्यों बैठा है ? मंसूर आया, महात्मा को नमस्कार किया और बैठा । मुझे भी जो तुमने पीया, वह पिलाओ । सिवली बोली :- मैंने तो पी लिया, इसमें तो कुछ है नहीं । महात्मा जी ने अपने करमण्डलु में से उस प्याले में थोड़ा जल डाल दिया और बोले :- इसको धोकर पी लो । जैसे ही मंसूर ने पीया, पीते ही अज्ञान नष्ट हो गया और पुकार उठा :- "अनलहक । सिवली अनलहक ।" इसके मायने हैं "मैं खुदा है" । सिवली तो गुरू जी को नमस्कार करके घर चली गई और मंसूर ज्ञान मस्त होकर, 'अनलहक, अनलहक" बोलता हुआ घूमने लगा । काजी मुल्ला यह सुनकर बादशाह के दरबार में बोले:-मंसूर काफिर हो गया । कभी अपनी बहन को खुदा बताता है, कभी खुद खुदा बनता है । बादशाह ने बुलाया और कहा :- मंसूर, क्या बोलता है ? मंसूर बोला :- "अनलहक । सिवली अनलहक ।" बादशाह ने हुकम दिया कि इसको चौराहे में गड्ढा खोदकर, गर्दन तक जमीन में गाड दो और जिसके जो चीज हाथ में होवे, उसी से इसको मार मार कर जान निकाल दो । वैसा ही करने लगे । तब एक सिवली नाम के फकीर भी थे । उनको साथ लेकर, बादशाह आया और बादशाह सिवली साहब को बोले :- आप भी मारिये इसको । मंसूर अनलहक ! अनलहक ! की एक ध्वनि कर रहा था । सिवली साहब को बोले :- बादशाह सलामत ! आप सब लोग मार रहे हो । मैं एक न मारूं तो क्या हरजा है । बादशाह बोले :- नहीं साहब, यह तो सिरे की बात है, आपको मारना चाहिये । तब सिवली साहब एक फूल की पत्ति लेकर, मंसूर के सिर पर डाली । मंसूर बोला :- हाय ! हाय ! मर गया । बादशाह के सहित सब लोग सुनकर चकित रह गये । सिवली साहब बोले :- मंसूर एक पत्ति से तुम हाय मर गया बोला और यह सब मार रहे हैं, इनकी चोट तुझे नहीं लगी । मंसूर बोले :- यह अज्ञानी हैं, इनकी चोट मेरे नहीं लगती । परन्तु आप ज्ञानी होकर मारा, आपकी चोट मेरे लगी । फिर वैसे ही, अनलहक अनलहक, कहने लगा । और बोला :-

अगर है शोक मिलने का, तो हरदम लै लगाता जा ॥टेक॥
न रख रोजा न मर भूखा, न जा मस्जिद न कर सिजदा ।
वजू का तोड़ दे कूजा, शराबां शोक पीता जा ॥१॥

पकड़ कर इसक की झाड़ू, सफा कर दिल के हुजरे को ।
दूई की धूल को लेकर, मुस्सलं पर उड़ाता जा ॥२॥
फैंक तसवी तोड़ धागा, किताबैं डाल पानी में ।
मशायक बनके बैठा रह, मशोयत को सिखाता जा ॥३॥
कहैं मंसूर सुन काजी, निवाला कहर का मत खा ।
अनलहक को सभी जानै, यही कलमां पढाता जा ॥४॥

इशक सलूनां आसिकां, दरगह थैं दीया ।
दर्द मोहब्बती प्रेम रस, प्याला भरि पीया ॥२३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रभु ने कृपा करके, भक्तों को स्वस्वरूप से अति उत्तम प्रेम दिया है । भक्तजन दर्द कहिए बिरहभाव से परमेश्वर के दर्शनामृत रस को प्रेम प्याले में, भर भर कर पीते हैं ।
(शब्दार्थ :- आसिकां = भक्तों को । दरगह = स्वस्वरूप । सलूनां = अति सुन्दर ।)

दादू दिल दीदार दे, मतिवाला कीया ।
जहां अरस इलाही आप था, अपना करि लिया ॥२३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर ने अपने भक्तों को दर्शनमय प्रेम रस का प्याला पीला कर, मस्त करते हैं और जहां हृदय में इलाही परमेश्वर आप बिराजमान है, उस स्थान में भक्तजन, अपनी वृत्ति स्थिर करके, दत्तचित्त हो रहे हैं ।

दादू प्याला नूरदा, आसिक अरसि पिवन्नि ।
अठे पहर अल्लह दा, मुंह दिट्ठे जीवंनि ॥२४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आसिक कहिए परमेश्वर के प्रेमी भक्तजन, परमात्मा के स्वस्वरूप का दर्शनरूप प्रेम का प्याला, हृदयरूपी आकाश में पीते हैं और वे आठों पहर परमेश्वर के मूखारबिन्द का दर्शन करके जीते हैं ।

आसिक अमलि साध सब, अलख दरीबे जाइ।
साहेब दर दीदार में, सब मिलि बैठे आइ ॥२४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमात्मा के प्रेमी, नाम स्मरणरूपी अमल को करने वाले, बहिर्मुख से हृदयरूपी दरबार में स्थित होकर परमात्मा का साक्षात्कार करके, उसमें अभेद होकर स्थित रहते हैं।

दोहा :- गुरू दादू आमेर में, डहरे माधवदास।
भेजी भेट जुवार की, अलख दरीबे पास ॥२४१॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज आमेर में निवास करते थे। महाराज के शिष्य माधोदास जी काला डहरा ग्राम में निवास करते हैं। वहां कास्तगारों ने जुवार के सिट्टे, माधोदास जी महाराज के पास लाए। महाराज की आज्ञा से फिर उनको सेक कर, उनके दाने निकाले। एक थाल में भर कर चौकी पर रखा। महाराज माधोदास जी ने विचार किया कि पहले नये अन्न का गुरूदेव के भोग लगना चाहिए। यह विचार कर थाल पर एक कपड़ा डाला और अपनी योगशक्ति से चौकी के सहित थाल को, आमेर अलख दरीबे गुरूदेव के दरबार में भेज दिया। राजा मानसिंह के सहित, परमगुरूदेव बिराज रहे थे। राजा ने देखा, यह अचानक चौकी कहां से आकर रखी गई। कोई ले कर आने वाला दिखलाई नहीं पड़ा। मानसिंह ने गुरूदेव से प्रश्न किया कि यह थाल कहां से आया और इसमें क्या है? गुरूदेव बोले :- माधोदास जी ने ज्वार का भोग भेजा है। महाराज ने भोग लगाया और एक एक मुट्ठा राजा के सहित सब को दिया। फिर अपनी योगशक्ति से उस थाल को वैसे ही काले डहरे भेज दिया। महाराज माधोदास जी आप प्रसाद लिया और सभी भक्तों को एक एक मुट्ठी बाँट दिया।

अलख का दरबार कहिए सत्संग में सभी भक्तजन मिल कर, प्रेम रस पीते हैं और अलख का प्रसाद पाते हैं।

राते माते प्रेम रस, भरि भरि देहु खुदाइ।
मस्तान मालिक करि लिये, दादू रहे ल्यौ लाइ ॥२४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वयं भगवान ही अपने भक्तों को अपने प्रेम रस का प्याला भर भर कर देते हैं, जिससे भक्तजन प्रेम रस में रत्त होकर, मस्त हो रहे हैं। इस प्रकार प्रभु ने अपने स्वरूप में, संतों को निर्भय किया है। इसी से संतजन परमेश्वर में ही लीन रहते हैं।

(लांबी भक्ति अगाध)

दादू भगति निरंजन राम की, अविचल अविनासी ।
सदा सजीवन आतमा, सहजैं परकासी ॥२४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमात्मा की अविचल, अविनाशी जो भक्ति है, वह सतगुरू की कृपा से, जीवात्मा के अन्तःकरण में प्रगट होती है । जिससे यह जीवात्मा सहज ही में, सदा सजीवन, अजर, अमर भाव को प्राप्त होता है ।

दादू जैसा राम अपार है, तैसी भगति अगाध ।
इन दोन्यूं की मिति नहीं, सकल पुकारैं साध ॥२४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे भगवान का स्वरूप अपार है, वैसे ही उनकी भक्ति भी अगाध है, जिस भक्ति का कोई पार नहीं पाता है । परमेश्वर और उनकी भक्ति का कोई 'मिति' कहिए प्रमाण नहीं है । सर्व साधु संत, भूत, वर्तमान और भविष्य के, ऐसा ही उपदेश करते हैं ।

दादू जैसा अविगत राम है, तैसी भगति अलेख ।
इन दोन्यूं की मित नहीं, सहस मुखा कहै शेष ॥२४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे परमात्मा मन बुद्धि से, अविगत कहिए जानने में नहीं आते हैं । वैसे ही भक्ति की महिमा भी अपार है । जो कि मन इन्द्रिये से नहीं वर्णन होती है । भगवान और भक्ति, दोनों का कोई भी 'मिति' कहिए प्रमाण नहीं है । तो क्या शेष जी महाराज भी एक हजार मुख और दो हजार जिह्वाओं से परमात्मा की महिमा गाते हैं, तथापि भगवान और भक्ति का पार नहीं पाते हैं ।

दादू जैसा निर्गुण राम है, तैसी भगति निरंजन जाण ।
इन दोन्यूं की मित नहीं, संत कहैं प्रवाण ॥२४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे भगवान माया आर्वण से शून्य और निर्गुण स्वरूप है, वैसे ही भगवान की भक्ति भी 'निरंजन' नाम निर्मल है । प्रमाणिक संतजन, नारद सनकादिक आदि इस प्रकार उपदेश करते हैं कि इस संसार में भगवान और भक्ति, ये दोनों ही अमूल्य रतन हैं ।

दादू जैसा पूरा नाम हैं, तैसी पूरण भगति समान ।
इन दोन्यूँ की मित नहीं, दादू नांही आन ॥१४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे सर्वव्यापक ब्रह्म है, वैसे हो राम भी भक्ति भी पूर्ण अक्षय है । इसलिए इन दोनों का मुल्य नहीं है, क्योंकि इनके समान संसार में कोई भी अमुल्य पदार्थ नहीं है ।

(सेवा अखंडित)

दादू जब लग राम है, तब लग सेवग होइ ।
अखंडित सेवा एक रस, दादू सेवग सोइ ॥२४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे परमेश्वर अखंड और एक रस हैं, वैसे ही भक्त भी परमेश्वर में अखंड लय लगाकर और एक रस निर्द्वन्द भाव होकर, परमेश्वर की अखंडित, एक रस, निर्गुण उपासना रूप सेवा करे तो, धन्यवाद है ।

छंद :-

जो उपजै बिनसै गुन धारत, को यह जानहु अंजन माया ।
आवन जाय मरै नहिं जीवत, अच्यूत एक निरंजन राया ।
ज्यूं तरू तत्व रहै रस एकहि, आवत जाय फिरै यह छाया ।
सो परब्रह्म सदा सिर ऊपर, सुन्दर ता प्रभु सूं मन लाया ॥२४८॥

दादू जैसा राम है, तैसी सेवा जाणि ।
पावैगा तब करैगा, दादू सो परवांणि ॥२४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे परमेश्वर सर्वशक्तिवान है, वैसे ही भक्त की भक्ति भी, सर्वशक्तिमय है । भक्ति को ही भगवान का स्वरूप जानो और भगवान जब कृपा करके अपनी भक्ति देते हैं, तब ही भक्त को भक्ति प्राप्त होती है । फिर भक्त, भक्ति रस में लयलीन होकर, प्रभु का चिन्तन करता है और तो सभी विषय रस को ही भोगते हैं । इसलिए हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की भक्ति करके ही, स्वस्वरूप को साक्षात्कार करो ।

सांई सरीखा सुमिरण कीजै, सांई सरीखा गावै ।
सांई सरीखी सेवा कीजै, तब सेवक सुख पावै ॥२५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भक्तजन परमेश्वर की भक्ति में ऐसे तल्लीन रहते हैं कि परमेश्वर रूप होकर भी प्रभु के स्मरण में लगे रहते हैं। परमेश्वर को प्राप्त करके भी, भक्ति अमृत से कभी तृप्त नहीं होते हैं। अथवा परमेश्वर में अभेद होकर, परमेश्वर का स्मरण करो। जैसे परमेश्वर अखंड, अजन्मा, अगोचर, और असंग है वैसी ही विषयों से अर्न्तमुख होकर, परमेश्वर की भक्ति करो। फिर वह सेवक परमातमा के समान होकर, परमानन्द को प्राप्त होता है।

(परिचय करुणा बिनती)

दादू सेवग सेवा करि डरै, हमथैं कछु न होइ।
तूँ है तैसी बन्दगी, करि नहिं जाणै कोइ ॥२५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अपूर्व, अनन्त, एक रस आप परमेश्वर का स्वरूप है, वैसी सेवा हे प्रभु ! आपके भक्तों से नहीं होती है। इसी से आपके भक्ति रस का पान करते हुए भी, आपके भक्तों को संतोष नहीं होता है, और यह भय हमारे चित्त में हमेशा बना रहता है कि हम यह मनुष्य शरीर प्राप्त करके भी, हमने प्रभु की कुछ भी सेवा नहीं की।

दादू जे साहीब मानै नहीं, तोऊन छाडै सेव।
इहि अवलंबनि जीजिये, साहिब अलख अभेव ॥२५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यदि परमेश्वर हमारी सेवारूप भक्ति को न स्वीकार करे, तो भी परमेश्वर से विमुख नहीं होना चाहिए और अपने हृदय में यही दृढ़ विश्वास रखो कि परमेश्वर का स्वरूप अलख, मनबाणी का अविषय है और वे अन्तर्यामी हैं। सबके हृदय के भाव को जानते हैं। हे संतो ! ऐसा निश्चय करके, परमेश्वर के स्मरण में तनमय रहो।

(सूक्ष्म सौंज अरचा बन्दगी)

आदि अंति आगै रहै, एक अनुपम देव।
निराकार निज निर्मला, कोई न जाणै भेव ॥२५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस परमेश्वर का न तो आदि है और न अन्त है और वही उपमा आदि भाव से भी रहित है; वह परमेश्वर माया, मल से रहित निराकार, निर्लेप शुद्ध चेतन्य है। इसीलिए उसका यथार्थ ज्ञान द्वैतवादी कोई भी नहीं जानते हैं।

अविनासी अपरंपरा, वार पार नहीं छेव ।
सो तूं दादू देखि ले, उर अंतरि करि सेव ॥२५४॥

टीका :- हे जिसुज्ञाओ ! वह परमेश्वर अपरंपार कहिए कार्य कारण भाव से रहित है, इसीलिये वह अविनाशी है और जन्म मरण भाव से मुक्त है । हे संतो ! ऐसे अपरम्पार को भक्ति साधन से, अपने हृदय में अनुभव करो ।

दादू भीतर पैस कर, घट के जड़े कपाट ।
सांई की सेवा करै, दादू अविगत घाट ॥२५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन्तर्मुख होकर, शरीर के इन्द्रियेरूप कपाट बन्द कर लो । जब इन्द्रियां अपने अपने बिषयों को छोड़कर, अन्तःकरण में ही परमेश्वर की भक्ति में लीन हो जावें, तो अविगत कहिए, परमेश्वर की प्राप्ति के इस मार्ग को प्राप्त कर लेती हैं ।

घट परचै सेवा करै, प्रत्यक्ष देखै देव ।
अविनासी दरसन करै, दादू पूरी सेव ॥२५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने अन्तःकरण में ही, परमात्मा से जीवात्मा परिचय होकर, उसकी भक्ति रूप सेवा करे, तो फिर अपने भीतर ही उस अविनाशी परमेश्वर का साक्षात्कार करके, मनुष्य देह के कर्त्तव्य को पूरा करना ही, उसकी सच्ची सेवा है ।

(भ्रम बिध्वंस)

पूजणहारे पास है, देही मांहैं देव ।
दादू ताकौं छाड़ि करि, बाहरि मांडै सेव ॥२५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भक्ति करने वाले, भक्तों के हृदय में ही परमेश्वर है । भक्त लोग वहीं पर, परमेश्वर की अभेद निश्चयरूप पूजा करते रहते हैं । परन्तु बहिर्मुखी संसारीजन सकाम कर्मों के द्वारा परमेश्वर को हृदय में न जानकर, "बाहर" कहिए मन्दिर, मस्जिद, तीर्थ व्रत आदि में परमेश्वर को देखकर, उसकी अराधना रूप सेवा करते हैं । वह आत्मस्वरूप परमेश्वर से विमुख ही रहते हैं ।

(परिचय)

दादू रमिता राम सौं, खेलैं अन्तरि मांहि ।
उलट समाना आपमें, सो सुख कतहुं नांहि ॥२५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मुक्त पुरूष सर्वव्यापक राम से अपने अन्तःकरण में ही 'खेलैं' कहिए स्वस्वरूप का अनुभव करते हैं, वे ही धन्य हैं, क्यों कि अपनी मनोवृत्ति को इन्द्रियों के विषय व्यापार से अन्तर्मुख करके, स्वस्वरूप में स्थिर होने के समान, परम आनन्द त्रिलोकी में अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं ।

दादू जे जन बेधे प्रीति सौं, सो जन सदा सजीव ।
उलटि समाने आप मैं, अंतरि नांही पीव ॥२५९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू कृपा से, जो पुरूष परमेश्वर प्रेम में अभेद हो गये, सो अजर अमर भाव को प्राप्त होते हैं, क्योकि जब इन्द्रियां विषय विकार व्यापार से, अन्तर्मुख वृत्ति होकर, स्वस्वरूप में अभेद हुई तो फिर भगवान और मुक्त भक्तों में, किंचित भी अन्तर नहीं रहता है ।

परगट खेलैं पीव सौं, अगम अगोचर ठांव ।
एक पलक का देखणा, जीवण मरण का नांव ॥२६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरूष शुद्ध अन्तःकरण में अगम मन का अविषय, इन्द्रियों से अप्राप्त, ऐसे आत्मस्वरूप में अभेद होकर, परम आनन्द का अनुभव करते हैं । परमात्मा का एक पलमात्र का जो दर्शन है, सो जन्म से मरण पर्यन्त, अखण्ड परमेश्वर स्मरण का फल स्वयं प्रगटता है, अथवा पलमात्र परमेश्वर के दर्शन मिलते ही, फिर तो जन्म मरण का नाम मात्र ही रह जाता है, अर्थात् मुक्तजन अजर अमर भाव को प्राप्त होते हैं ।

(सूक्ष्म सौंज अरचा बंदगी)

आतम मांहैं राम है, पूजा ताकी होइ ।
सेवा बंदन आरती, साध करैं सब कोइ ॥२६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने अन्तःकरण में ही परमेश्वर व्यापक है । आप सब बिषय व्यापार को त्यागकर, अन्तर्मुख हो के, स्वस्वरूप परमेश्वर की आराधना रूप पूजा कीजिये, क्योंकि भूत, भविष्य, वर्तमान के सभी संत अपने आत्मस्वरूप में स्थिर होकर ही, परमेश्वर की सेवारूप बंदना, और विचार रूप आरती करते हैं ।

परचै सेवा आरती, परचै भोग लगाइ ।
दादू उस परसाद की, महिमा कही न जाइ ॥२६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मऋषि अब सेवा की अपूर्वता कहते हैं कि परमात्मा का साक्षात्कार होना ही, परमेश्वर की सच्ची सेवा और आरती है और साक्षात करना ही मानो भोग लगाना है। इस प्रकार परमेश्बर की प्रसन्नता रूप प्रसाद की अपूर्व महिमा है। जो कि कहने में नहीं आती है। अथवा ऐसे आत्म परचै संतो के प्रसाद की भी महिमा नहीं कही जा सकती है।

दोहा :- लड़की से लड़का भया, लेत प्रसादी सीत ।
राघौ भिन्न न कीजिये, पार सरूप अतीत ॥२७२॥

दृष्टान्त :- एक लड़की खेत में पक्षी उड़ाती थी। संत घूमते हुए आ गए। लड़की बोली :- महाराज सिट्टे फली खाओ। महात्मा बैठ गए। लड़की बाजरे के सिट्टों में से बाजरा निकाल कर, संत को देने लगी। संत परचै सिद्ध थे। भोग लगाकर पाने लगे। पाते पाते बोले :- ले बच्चा तूं भी खा। लड़की बोली :- मैं तो बच्चा नहीं हूं, बच्ची हूं। संत बोले :- नहीं तूं बच्चा है, ले प्रसाद। प्रसाद खाते ही लड़की से लड़का बन गया। यह संत प्रसाद की महिमा है।

मांही निरन्जन देव है, मांहि सेवा होइ ।
मांहि उतारै आरती, दादू सेवग सोइ ॥२६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर के भीतर ही निरंजनदेव विद्यमान है। इसलिए यह शरीर ही मन्दिर है। इसके भीतर ही विचार रूप निरंजनदेव की सेवा करो और स्वस्वरूप का निश्चय करना ही मानो, आरती उतारना है, सो सेवक धन्य हैं।

दादू मांहै कीजै आरती, मांहै पूजा होइ ।
मांहै सतगुरू सेविये, बूझै बिरला कोइ ॥२६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू का दिया हुआ आतमज्ञान है, उससे आत्म अनात्म का विवेक करके, समस्त वृत्तियों को आत्म परायण बनाइये। यही सच्ची ब्रह्मनिष्ट सतगुरू की सेवा है। किन्तु मानसिक पूजा की यह बिधि कोई संतजन ही जानते हैं।

संत उतारैं आरती, तन मन मंगल चार।
दादू बलि बलि बारणैं, तुम परि सिरजनहार ॥२६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूर्वोक्त प्रकार से जो संतजन परमात्मा की आरती करते हैं, उनके शरीर, मन और इन्द्रियों में परम आनन्द वर्तता है। अब विनय करते हैं कि हे सिरजनहार परमेश्वर ! हम आपके दर्शनों के लिए अपने तन मन आदि को बारंबार आपके भेट करते हैं । इसलिये अब ऐसी कृपा करिये कि इस तन मन को आपके सर्मापत करके, आपका दर्शन करें।

दादू अविचल आरती, जुग-जुग देव अनन्त।
सदा अखंडित एक रस, सकल उतारैं संत ॥२६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रभु से ऐसी विनती करो कि हे परमेश्वर ! आपकी अविचल आरती रूप भक्ति को अनन्तरूप बनाकर, हमें युग युगान्तर समय तक दीजिये। सदैव आपके संतजन आपकी भक्ति में अखण्ड एक रस हो जायें, अथवा सर्व संतो की सुरति आपके स्वरूप में ही एक रस तदाकार हो जावे, ऐसी कृपा करैं।

॥ सौंज मंत्र ॥

सत्यराम आतमा वैष्णों, सुबुद्धि भूमि, संतोष स्थान,
मूल मंत्र, मन माला, गुरू तिलक, सत्य सयंम, शील शुच्चा,
ध्यान धोवती, काया कलस, प्रेम जल, मनसा मंदिर,
निरंजन देव, आत्मा पाती, पुहुप प्रीत, चेतना चंदन,
नवधा नाम, भाव पूजा, मति पात्र, सहज समर्पण,
सबद घंटा, आनंद आरती, दया प्रसाद, अनन्य एक
दशा, तीर्थ सत्संग, दान उपदेश, ब्रत सुमिरण, षट गुण
ज्ञान, अजपा जाप, अनभै आचार, मरयादा राम, फल
दर्शन, सत्य सौंज, दादू वर्तते आत्मा उपदेश,
अंतरि गति पूजा ॥२६७॥

सत्य

टीका :- निर्गुण ब्रह्म है, वही सत्य है। और जो बात जैसी देखी, सुनी एवं मन में हो, उसको वैसे ही बाणी द्वारा प्रगट करना।

दोहा :- सत्य सु दोइ परकार, एक सत्य सु बोलिये ।
मिथ्या सब संसार, दूजो सत्य सु ब्रह्म है ॥

दोहा :- सत्य बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप ।
जाके हृदय साँच है, ताके हृदय आप ॥

श्लोक :- नहि सत्यात्परो धर्मो, नानृतत्पातकम्परम ।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं, तत्मात्सत्य समाचरेत ॥

सत्य से श्रेष्ठ अन्य कोई धर्म नहीं है और झूठ के बराबर अन्य कोई पाप नहीं है। ऐसे ही सत्य से श्रेष्ठ ओर कोइ ज्ञान नहीं है। इसलिए सत्य का ही आचरण करना चाहिए।

श्लोक :- सत्यं धर्मस्तपोयोगः, सत्यं ब्रह्म सनातनम् ।
सत्यं यज्ञ परः प्रोक्तः, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

धर्म, तप, योग परब्रह्म, जितना कुछ कल्याणस्वरूप है, वह सब सत्य ही है। सत्य में सब आ जाता है। इसलिए सदैव आत्मा के अनुकूल आचरण करो।

श्लोक :- यत दग्रे विषमिव, परिणामेऽमृतोयम ।
तत्सुखः सात्विकम् प्रोक्तं आत्मबुद्धिप्रसादजम ॥

जो प्रथम तो विष की तरह कटु और दुखदायक मालूम होता है, परन्तु पीछे अमृत के तुल्य मधुर और हितकारक बनाता है, वही सच्चा सात्विक सुख है, ऐसा सुख आत्मा और बुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न होता है।

शंका :- आत्मा और बुद्धि की प्रसन्नता का क्या उपाय है ?

उत्तर :- मिथ्या आचरण छोड़कर, मनुष्य को सदैव सत्य का ही बर्ताव करना चाहिये । इसी से मन और बुद्धि को सच्ची प्रसन्नता प्राप्त होती है और ऐसा सच्चा सुख प्राप्त होता है, जिसका कभी नाश नहीं होता। सत्य से ही सारा संसार चल रहा है । यदि सत्य एक क्षण के लिये भी अपना कार्य बन्द कर दे, तो प्रलय हो जाय । संसार की भौतिक शक्तियां भी सब सत्य से ही चल रही हैं ।

श्लोक :- सत्येन् धार्यते पृथ्वी, सत्येन् तपते रविः ।
सत्येन् वाति वायुश्च, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

सत्य में ही पृथ्वी, रवि इत्यादि सब स्थित है ।

सत्यमेव जयते नानृतं, सत्येन् पन्था विततो देवयानः ।

सत्य की ही विजय सदैव होगी, मिथ्या की नहीं । सत्य के ही मार्ग से परमात्मा मिलेगा । सब प्रकार के कल्याण का ज्ञान सत्य से ही होगा ।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं, सत्यस्ययोनि निहिन्तं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यं ऋतसत्य नेत्रम् सत्यात्मकं त्वाम् शरणंप्रपद्ये ॥

हे सत्यव्रत ! हे सत्य से भी श्रेष्ठ ! हे तीनों लोक और तीनों काल में सत्यस्वरूप ! हे सत्य के उत्पत्ति स्थान ! हे सत्य में रहने वाले ! हे सत्य के भी सत्य ! हे कल्याणकारो ! सत्य के मार्ग से ले चलने वाले, सत्य की आत्मा, हम आपकी शरण आये हैं ।

दादू सांई मेरा सत्य है, निरंजन निराकार ।
नाम निरंजन निरमला, दूजा घोर अन्धार ॥

राम

रमन्ति योगीनो यसमिन्रामः ।

जो सब में रमा हुआ है वह राम । और जिसमें योगीजन विचरण करते हैं वही राम है ।

सतकोट महामंत्रः चित् विभ्रम कारकः ।
तस्य मध्ये एवं रतनं, रामेति अक्षर द्वैयम् ॥

यह सौ करोड़ महामंत्र मैंने रचे हैं। ये चित्त के भ्रम को नष्ट करने वाले हैं। इन सौ करोड़ के बीच में दो अक्षर 'राम', ये रत्नरूप हैं। यही हमारा देव है। (बाल्मिक)

ससै शील तन उपजै, ततै ताप तन जाइ ।
ररै रोग व्यापै नही, ममै मात गर्भन आइ ।

शंका :- ऐसा जो सत्यस्वरूपी राम है, उसका पुजारी कौन है ?

उत्तर :- आत्मा वैष्णों ।

आत्मा वैष्णों

दोहा :- दंडवत डर छाडै नहिं, निडर न कबहु होइ ।
करै बन्दगी बन्दना, परम बैष्नो सोइ ॥

दोहा :- हरि डर, गुरू डर, गावं डर, चोथा धर्म अरूधाम ।
ऐते डर जी उर बसै, क्यौंन सरै सब काम ॥

छन्द :-

इन्द्रिय दवन कृपालु, क्रोध क्षमा सत्य भाखै,
पाप रहित सम दृष्टि, निसकामी सुच राखै ।
कोमल चीत्त उदार, धर्मदत्त धीरज वंता,
निस प्रीये हरि शरण, मान रहित दे माना ।
जीत्यो अन्तःकरण, सावधान गुण गावै,
भोजन अल्प अनीह, निर बिकार पद पावै ।
षट ऊरती बस करन, वंछित बुद्धि न कोइ,
चतुर दास उणतीस गुण, कहिये वैष्नौ सोइ ॥

सुबुद्धि भूमि

स्थित प्रज्ञा ही शुद्ध भूमि है ।

दोहा :- बुद्धि भूमि का शुद्ध कर, चोको चोखी चाल ।
कलस कवंल उपदेश जल, जुगती जगन्नाथ रसाल ॥

संतोष स्थान

दोहा :- देह को प्रारब्ध आगै रहै, कल्पना छोड़ निष्कल्प होई ।
यथा लाभ वेद मुनि कहत है, परम संतोष शिष्य जान सोइ ॥

दोहा :- सत्य संतोष धीरज दया, हित रूचि शर्म स्नेह ।
जगन्नाथ जगदीस की, सेवा शिरोमणि येह ॥

श्लोक :- सर्पाः पिवन्ति पवनं नच दुर्वलास्ते,
शुष्कंस्तृणै बनगजा बलिनो भवन्ति ।
कन्दै फलैर्मुरिबराः चापयन्ति कालं,
संतोष एव पुरूषस्य परम्निधानम् ।

सर्प हवा पीकर रहते हैं, तथापि वे दुर्बल नहीं हैं । जंगल के हाथी सूखे तृण खाकर रहते हैं, फिर भी वे बली होते हैं । मुनिवर लोग कन्द मूल फल खाकर ही काल पेक्ष करते हैं । संतोष ही मनुष्य का शांति स्थान और परमधन है । उसका वासनारहित, वृत्ति की दशा ही घर है ।

मूल मंत्र

दादू सिचें मूल के, सब सिच्या विस्तार ।
दादू सिचे मूल बिन, बाद गई बेगार ॥

मन माला

सतगुरू माला मन दीया, पवन सुरति सौं पोइ ।
बिन हाथों निसदिन जपै, परम जाप यौं होइ ॥

रज्जब माला मन की, जाको सतगुरू देइ ।
सो सूत कांधै काठ का, कबहु भार न लेइ ॥

पांच पचीसों त्रिगुण मन, यह माला जीये हेर ।
रज्जब हित के हाथ से, आठों पहर सुफेर ॥

गुरू तिलक

और सबैही फीका, हरि नाम सबन का टीका ।

दोहा :- तत्त तिलक तिहु लोक में, राम नाम निज सार ।
राम नाम बिन संतदास, कोइ न उतरै पार ॥

गुरू का सत्य उपदेश ही तिलक है ।

सत्य संजम

दोहा :- शील सांच सन्तोष सूची, संजम यह बपू होइ ।
यह नित प्रति संजम ब्रत, पावन पातक खोइ ॥

शील सुच्चा

ब्रह्मचर्येणतपसा देवा मृत्युमुपाब्रत: ।

ब्रह्मचर्य और तप के बल पर ही, देवता लोग मृत्यु को जीत लेते हैं। अखंड ब्रह्मचर्य की रक्षा, यही पवित्रता है।

मरणं बिन्दुपातेन, जीवनम् बिन्दुधारणात।

वीर्य का एक बूंद भी शरीर से गिरा देना मृत्यु है। और एक बूंद की भी अपने अन्दर रक्षा करना ही जीवन है।

मृतका जलकर बपु मल हरिये, रागादिक त्यागै हृदय शुद्धम्।
शौच उभै विधि कह प्रबुद्धम्॥

ध्यान धोवति

धर्म धारणा धोवति, भूत दया आचार।
बरते लये विवेक सौं, बरतन सौंज विचार॥

काया कलस

दोहा :- अनुभव सेझा कूप का, निगम कलस है च्यार।
जन रज्जब ता नीर की, सब पंडित पनीहार॥

मानव शरीर है, यही पूजा के जल का कलस है।

प्रेम जल

छंद :- प्रेम लग्यो परमेश्वर से तब, भूल गयो सबही घरबारा।
ज्यूं उनमत फिरै जित ही तित, नेक रही नै शरीर संभारा।
श्वांसैहूं श्वांस उठे सब रोम, चले दृघ नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि, छाक पर्‍यो रस पी मतवाला॥

मनसा मंदिर

मनसा मैलि पापनी, पुण्य पानी से धोइ ।
समिरण साबुन देइ कर, रज्जब उज्जल होइ ॥

वृत्ति में सत्वगुण स्थिर करना, यही मंदिर बनाना है ।

निरंजन देव

देव निरंजन पूजीये, पाती पंच चढ़ाइ ।
तन मन चन्दन चरचिये, सेवा सुरति लगाइ ॥

छंद :- जा प्रभु तैं उतपति भई यह, सो प्रभु है उर इष्ट हमारै ।
जो प्रभु है सबके शिर ऊपर, ता प्रभु कूं शिर ही हम धारै ।
रूप नरेख अलेख अखंडित, भिन्न रहै सब कारज सारै ।
नाम निरंजन है तिन को पुनि, सुन्दर ता प्रभु की बलि हारै ॥

इस मंदिर में माया अविद्या की उपाधि रहित, शुद्ध चेतन्य निरंजन की प्रतिष्ठा करना है ।

आत्मा पाति

दादू कछिब अपने कर लीये, मन इन्द्रि निज ठौर ।
नाम निरंजन लागि रहु, प्राणी पर हर और ॥

इन्द्रियों को अन्तर्मुख करना ही, यह तुलसी पत्र चढ़ाना है ।

पहुप प्रीत

पहुप प्रेम बरसै सदा, हरिजन खेलैं फाग ।
ऐसा अचरज देखिया, दादू मोटे भाग ॥

पुहुप सुपंच चढ़ाइये, पातिता ही पचीस ।
कबीर प्रेम अरू प्रीति सौं, सेव करै जगदीस ॥

चेतना चंदन

चित बैन चन्दन रचित, सुक्ष्म सौंज सजंत ।
कबीर अन्तर आरती, अनहद नाद बजंत ॥

नवधा नाम

दोहा :- नवधा दशधा नाव में, सब संतों की साख ।
जन रज्जब सो सुमरिये, कहा करे बितराग ॥

श्लोक :- श्रवणं कीर्तनं विष्णुं, सुमिरणं पाद सेवनं ।
अर्चनम् वंदनं दास्यं, साक्यं आत्मनिवेदनं ॥

भाव पूजा

छन्द :-

आपने भावते सेवक साहिब, आपने भाव सबै कोऊ ध्यावै ।
आपने भावते अन्य उपासत, आपने भावते भक्त हु गावै ।
आपने भावते दुष्ट संहारन, आपने भावते बाहिर आवै ।
जैसे हि आपनो भाव है सुन्दर, ताहि कु तैसो हि होइ दिखावै ॥

मति पात्र

मति बुद्धि विवेक विचार बिन, माणस पशु समान ।
समझायां समझै नहीं, दादू परम ग्यान ॥

संकल्प रहित जो बुद्धि है, वही पूजा के पात्र हैं ।

सहज समर्पण

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिंड पराण ।
सब कुछ तेरा तूं है मेरा, यह दादू का ग्यान ॥

वृत्तियों को निद्वन्द करना यही समर्पण है ।

शब्द घंटा

घंटाघर में घोर धुनी, अनहद नाद बजन्त ।
कबीर तहां बिलम्बीया, जहां आपै आप अनन्त ॥

प्रणवै ध्वनिरूप घंटा है ।

आनन्द आरती

बाहर भीतर दर्पण भई, हिरदै तपति गई मोहि ।
जहं तहं राखौं दृष्टि भरि, तहं तहं देखौं तोहि ॥

दया प्रसाद

दया सो तीन प्रकार की, मन बच कहिए काइ ।
हतैन काहु जीव को, शब्दन कह दुखाइ ॥

स्वस्वरूप का परिचय प्राप्त होने की दया ही प्रसाद है ।

अनन्य एक दशा

दादू एकै दशा अनन्य की, दूजी दशा न जाइ।
दूजा देखत जाइगा, एकै रहै समाइ ॥

लयवृत्ति की स्थिरता, समाधि दशा वही एक दशा है।

तीर्थ संतसग

सतसंग नित्य प्रति कीजिये, मति होइ निरमल सार रै।
रूचि प्राण पति सों उपजै, अति लहै सुख अपार रै।
मुख नाम हरि हरि उच्चरै, सुरति सुणत गुण गोविन्द रै।
रट ररंकार अखंड धुनि, तहं प्रगट पूर्ण चन्दरै।
सतगुरू बिना नहीं पाइये, यह अगम उलटा खेलरै।
कहै दास सुन्दर देखतां, होइ जीव ब्रह्म ही मेलरै ॥

दान उपदेश

दान कहत है उभै विधि, सुनि शिष्य करहि प्रवेश।
एक दान कर दीजिये, एक दान उपदेश।
एक दान उपदेश, सूतो परमार्थ होई।
दूसर अन्नरू वस्त्र, देही कर पोखै कोई।
पात्र कुपात्र देख, भलि भूमि उपजै धानम्।
सुन्दर देख विचार, उभै विधि कहिये दानम् ॥

ब्रत सुमिरण

दोहा :- दया निबैरता सब से, यह दो बरत बिचार ।
जगन्नाथ सबसे श्रेष्ट, बरतह पर उपकार ॥

आत्म चिंतन यह व्रत है ।

षट गुण ज्ञान

दोहा :- खट करम उज्जल करै, पांचौं इन्द्रिय चित्त ।
नाम नेम नवधा धरै, अरचा आरंभ नित्त ॥

अजपा जाप

मन पवन अरू सुरति सौं, आत्म पकड़ै आप ।
रज्जब लावे तत्व सौं, यह अजपा जाप ॥

अनभै आचार

दादू सनभै काटै रोग को, अनहद उपजै आइ ।
सेझे का जल निर्मला, पीवै रूचि ल्यौ लाइ ॥

स्वरूप निश्चय साक्षात परिचय रूप, अनुभव ही साधक का आचार है ।

मरयादा राम

मर्यादा परब्रह्म की, ममता छुवै न मूल ।
भै गत भावरू भ्रम तज, रहो निसंक न भूल ॥

सर्व भोम आत्म की उपादेयता से भिन्न, किसी कर्म का व्यापार न करना, यही मर्यादा है ।

फल दर्शन

ऐसा एक अनुप फल, बिज बाकुला नांहि।
मिठा निरमल एक रस, दादू नैनो मांहि॥

अभिअंतर सदा निरंतर

दादू निरंतर पीव पाईया, तीन लोक भरपूर।
सब सेजों सांई बसै, लोक बतावैं दूर॥

सत्य सौंज दादूवर्तते, आत्म उपदेश अंतरगत पूजा

'सत्य सौंज वर्तते' :—

ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज कहते हैं। कि जो सच्चे साधक हैं,। उनके लिए यही सामग्री पूजा की है, जिसको संतजन उतपन्न करते हैं। अब अन्त:करण में पूजा करने की विधि का उपदेश जिज्ञासुजनों को यहि धारण करना चाहिये।

मातृवत्त पर दारेशु, पर द्रव्यश्लोष्टवत।
आत्मवत्सर्व भुतेषु यः पश्यति स बैष्णवेः॥

दोहा :- व्यापक ब्रह्म उपासना, सुन्दर अजपा जाप।
यहि जाप से जात है, सुन्दर सबहि ताप॥

छन्द :-

स्वामी संगा देव अभंगा, निरमल अंगा सेवै जु।
कर भाव अनुपं पाति पुष्पं, गंधं धूपं खेवै जु।

नहि कोउ आसा काटे पासा, इहि विधी दासं निस्कामं।
शिष्य अैसा जाने निश्चय आने, पूजा ठाने दिनयामं ॥

(इति श्री सौंज मंत्र की टीका समाप्त)

पिव सौं खेलौं प्रेम रस, तौ जियरे जक होइ।
दादू पावै सेज सुख, पड़दा नांही कोइ ॥२६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूर्वोक्त कही हुई, जो सौंज सामग्री है, उसको धारण करके, प्रेम रस से परिपूर्ण भक्तजन, जब अपने प्रीतम से खेलैं, कहिए स्वस्वरूप साक्षात्कार करैं, तो संतों को पूर्ण संतोष होता है। अर्थात् हृदयरूपी सेज पर संतात्मा ब्रह्मभाव अनुभव करके, निरावर्ण होते हैं। फिर मुक्तजनों में कोई भी इच्छा, वासना नहीं होती है।

(सूक्ष्म सौंज)

सेवग बिसरै आप कौं, सेवा बिसरि न जाइ।
दादू पूछै राम कौं, सो तत्त कहि समझाइ ॥२६९॥

टीका :- हे प्रभु ! आपकी भक्ति में ऐसी क्या अपूर्वता है, जो आपके भक्तजन, अपने आपको भी भूल जाते हैं, परन्तु आपकी भक्ति को नहीं भूलते हैं। अर्थात् आपके भक्ति अमृत का निरंतर पान करके भी तृप्त नहीं होते हैं। यद्यपि भक्ति परमेश्वर की प्राप्ति का साधन मात्र है, तथापि भक्ति की यही एक अगाध महिमा है कि भक्तजन परमेश्वर का दर्शन करके भी, भक्ति अमृत से तृप्त नहीं होते हैं और परमेश्वर से भी यही मांगते हैं कि 'भक्ति मांगू बाप भक्ति मांगू, मुनैं थारा नामनो प्रेम लागो०'—इस प्रकार भक्ति की ही याचना करते हैं, क्योंकि भगवान भक्ति प्रिय हैं।

भागवत् में भगवान ने उद्धव जी से कहा है—

न साध्यति माम योगो, न सांख्यम् धर्म उद्धवः।
न स्वाध्याय तपस्त्यागे, यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥

हे उद्धव ! योग, ज्ञान, स्वाध्याय, तप और वैराग्य मुझे उस प्रकार वश नहीं कर सकते, जिस प्रकार की प्रबला भक्ति मुझे वश करती है।

दोहा :- उमा योग जप दान तप, नाना व्रत मख नेम ।
राम कृपा नहिं करहिं, तस जसि निस केवल प्रेम ॥

ज्यों रसिया रस पीवतां, आपा भूलै और ।
यौं दादू रह गया एक रस, पीवत पीवत ठौर ॥२७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब स्वयं परमेश्वर अपने भक्तों को उपदेश करते हैं कि जैसे रस का रसिया। रस का आस्वादन, अपनी ही प्रसन्नता के लिये लेता है, किन्तु, रस पीवतां कहिए आपा और परायापन के भाव को भूल जाते हैं । इसी प्रकार भक्ति रस का आस्वादन लेते हुए, भक्तजन माया व ब्रह्मभाव को भूलकर, भक्ति रस में ही अभेद हो रहे है । अथवा हे मुमुक्षुओ ! रसिया की भांति, परमेश्वर में अभेद होइये, तो शरीर आदिक का अध्यास भूलोगे ।

जहं सेवग तहं साहिब बैठा, सेवग सेवा मांहि ।
दादू सांई सब करै, कोई जाणै नांहि ॥२७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जव भक्तजन परमेश्वर को भक्ति में एक रस होते हैं, तो भक्तों के हृदय में ही प्रकाशमान होकर, अपने भक्तों की योग, क्षेम आदिक सब सेवायें, परमेश्वर आप स्वयं करते हैं, किन्तु इस बात को भक्तों के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं जान पाता ।

दोहा :- सांभर नूंता सात को, भोगे दादू होइ ।
रोक दिवालै भाकसी, दादू देखे दोइ ॥२७१॥

दृष्टान्त :- सांभर झील छतरी में जब ब्रह्मऋषि बिराजते थे, एक रोज एक साहूकार ने महाराज को घर ले जाने का निमंत्रण दिया । इस प्रकार उसी दिन सात निमंत्रण आए । महाराज ने विचार किया कि प्रभु भेज रहे हैं, आप ही स्वयं भक्तों के यहां पधारेगे । प्रभु की प्रेरणा से पहले निमंत्रण आया, उसके साथ ब्रह्मऋषि पधार गए । फिर बाद में ब्रह्मऋषि का रूप बनाकर भगवान स्वयं छत्री में बैठ गए और दूसरा आया, तो उसके साथ चले गए । इस प्रकार सात नोते भगवान ने दादू जी के रूप में भोगे । जब भक्तों को जानकारी हुई कि आज महाराज ने अपने सात रूप बनाए और सातों भक्तों की इच्छा पूर्ति की, परन्तु भगवान ने ब्रह्मऋषि को प्रगट करने के लिए यह लीला रची थी ।

दूसरा परचा :- सांभर हाकम ने मजबी लोगों के कहने पर, दादू दयाल ब्रह्मऋषि को बुलवाकर, काराग्रह में बन्द कर दिया। परमेश्वर दादू दयाल का रूप बनाकर, उसी छत्री में बैठ गए और पद गाने लगे। जब हाकम को पता चला कि वह जेल में काराग्रह में भी है और छत्री में भी बैठे हैं, तब काराग्रह से मुक्त करके, चरणों में नत मस्तक होकर प्रणाम की और चरणों की धूल मस्तक में रमा कर, महाराज के ज्ञान को गृहण करके, कृत्य कृत्य हो गया।

दादू सेवग सांई बस किया, सौंप्या सब परिवार।
तब साहिब सेवा करै, सेवक के दरबार ॥२७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भक्तजन अपने मन इन्द्रियों के समस्त विषय व्यापार से हटाकर और व्यवहारिक धन, धान्य, पुत्र, स्त्री इन सबको परमेश्वर के अर्पण करके, भक्ति में अखंडलीन रहते हैं। इस प्रकार सेवक ने परमेश्वर को अपने वश में कर लिया है। और फिर परमेश्वर सेवक का सर्व व्यवहार आप ही पूरा करते हैं। भक्तजन प्रभु के पूर्ण सामर्थ्य भाव को अनुभव करके, सदा निष्चेष्ट रहते हैं।

तेज पुंज कौं बिलसणा, मिलि खेलैं इक ठांव।
भरि भरि पीवैं राम रस, सेवा इसका नांव ॥२७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संतजन परमेश्वर का स्वरूप अनुभव करके, उसी में अभेद होते हैं। और "भरि भरि पीवैं राम रस" भक्तिभाव में पूर्ण लीन होकर भी, संत भक्ति रस से तृप्त नहीं होते और अतृप्त भाव से निरंतर राम रस में ही रत्त रहते हैं।

अरस परस मिलि खेलिये, तब सुख आनंद होइ।
तन मन मंगल चहु दिसि भये, दादू देखैं सोइ २७४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वस्वरूप का साक्षात्कार करके, मुक्तजन परम सुखी होते हैं। ऐसे मुक्तजनों के तन, मन और चारों दिशायें, मंलगमय हो जाती हैं। और ये सर्वत्र परमात्मा को ही प्रत्यक्ष करते हैं।

(सुन्दरी सुहाग)

मसतक मेरे पांव धरि, मंदिर माहैं आव।
संईयां सोवै सेज पर, दादू चम्पै पाव ॥२७५॥

टीका :– हे प्यारे स्वामिन् ! आपके मिलने की मेरी जिज्ञासा को पूरी करें। और मेरे अहंकाररूपी मस्तक पर, आप अपने चरण रखकर, मेरे हृदयरूपी मंदिर में प्रगट होइये। हे स्वामिन् ! आप मेरी वृत्ति रूपी सेज पर विराजिये ताकि मैं आपके तेज पुंज रूपी चरणों को स्पर्श करके, कृत्य कृत्य भाव को प्राप्त हो जाऊं।

दोहा :- तेज पुंज के चरण हैं, हृदय कवंल के माँहि।
तुलसी बेदौं बरणीया, हाड़ चाम के नांहि ॥२७५॥

ये चार्‍यूं पद पलंग के, साँई की सुख सेज।
दादू इन पर बैसि कर, साँई सेती हेज ॥२७६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस साखी के चारों पद ही, परमात्मा की हृदयरूपी सेज के मानो पाये हैं। अथवा अहंकार की निवृत्ति, अन्तःकरण की शुद्धि, वृत्ति की लयदिशा, और स्वस्वरूप, ये उस निर्विकल्प समाधिरूप पलंग के चार पाये हैं। उस पर परमात्मा से अति अनुराग करो।

दोहा :- प्रथम विवेक वैराग्य पुनि, समाधि षट सम्पत्त।
कहि चतुर्थ मुमुक्षुता, ये चव साधन सत्त ॥२७६॥

निचार सागर प्रतिपादित ये चार साधन भी, चार पाये रूप ही जानिये।

प्रेम लहरि की पालकी, आत्म बैसे आइ।
दादू खेलैं पीव सौं, यहु सुख कह्या न जाइ ॥२७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के प्रेम की लहर, यही मानो पालकी है, जिसमें 'आत्मा बैसे आइ' अर्थात् आत्मज्ञानी पुरूष, तन मन की सर्व वृत्तियां, अन्तर्मुख करके, स्वस्वरूप प्रेम में ही लयलीन होते हैं। इस प्रकार मुक्तजन अपने प्रीतम स्वरूप में ही रम रहे हैं। और अब अकथनीय परमानन्द का अनुभव करते हैं।

(अरचना भक्ति)

दादू देव निरंजन पूजिये, पाती पंच चढाइ।
तन मन चंदन चरचिये, सेवा सुरति लगाइ ॥२७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पंच इन्द्रियों के शब्द आदिक को परमेश्वरार्थ विषयों को त्याग कर, एवं ईश्वर अर्पण करके निरंजन को पूजिये और चन्दनरूप तन मन को परमेश्वर में लीन करके, परमेश्वर में अखंड सुरति लगा कर सेवा कीजिये ।

भगति भगति सब कोइ कहै, भक्ति न जाने कोइ।
दादू भगति भगवतं की, देह निरन्तर होइ ॥२७९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्व ही संसारीजन, परमेश्वर की भक्ति का भाव दर्शाते हैं। किन्तु भक्ति का जो मरम है, उसको संतों के अतिरिक्त और कोई भी नहीं जानते हैं, क्योंकि परमेश्वर की भक्ति शरीर के भीतर ही होती है। और संसारीजन बाह्य साधनों में भटकते हैं ।

देही मांही देव है, सब गुण थैं न्यारा।
सकल निरंतर भरि रह्या, दादू का प्यारा ॥२८०॥

टीका :- सत्व, रज, तम एवं आकाश आदिक गुणों से शून्य, निरंजनदेव, इस शरीर में व्यापक है, और हे जिज्ञासुओ ! जो शरीर में व्यापक है, वही सारे ब्रह्माण्ड में भरपूर व्याप रहा हैं। और वही प्रीतम प्यारा कहिए हमारा स्वस्वरूप है ।

जीव पियारे राम कौं, पाती पंच चढाइ।
तन मन मनसा सौंपि सब, दादू बिलम्ब न लाइ ॥२८१॥

शंका :- हे प्यारे जीव ! अपनी ज्ञान इन्द्रियादिक, पंच पाति परमेश्वर परायण करके, तन मन और बुद्धि आदिक को परमात्मा के अर्पण करो । इसमें देरी नहीं करो ।

(अध्यात्म ध्यान)

सबद सुरति लै सान चित्त, तन मन मनसा मांहि।
मति बुद्धि पंचो आतमा, दादू अनत न जाँहि ॥२८२॥

टीका :- हे संतो ! शब्द, सुरति चित, बुद्धि, पांचों ज्ञान इन्द्रियां, तन, मन, मनसा कहिए इच्छा, आत्मा कहिए कारण शरीर, इन सबको एकाग्र वृत्ति करके, परमेश्वर में लगाइये । अन्यत्र व्यर्थ क्यों भ्रमते हो ।

तन मन पवना पंच गहि, ले राखै निज ठौर ।
जहं अकेला आप है, दूजा नाँही और ॥२८३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संतजन अपने तन मन प्राण और पंच इन्द्रियों को निग्रह करके, स्वस्वरूप में लय लगाते हैं । और वह निज ठोर कैसा है ? जहां केवल ब्रह्मस्वरूप ही भासता है और द्वैतभाव का वहां पर अत्यन्त अभाव है । अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाओ ।

यहु मन सुरति समेट करि, पंच अपूठे आणि ।
निकटि निरंजन लागी रहु, संगि सनेही जाणि ॥२८४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मन को, बाह्य सुरति समेट कर, एवं पंच इन्द्रियों के विषय व्यापार से हटाकर, आत्म स्वरूप में लगाइये । आत्मा स्वरूप परमेश्वर ही सदा परम स्नेही है । वह निरंजनदेव अपने हृदय में ही स्थित है । अपनी वृत्ति को, उसी में लगाइये ।

मन चित्त मनसा आत्मा, सहज सुरति ता माँहि ।
दादू पंचौ पूरि ले, जहं धरती अंबर नाँहि ॥२८५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन, चित्त, बुद्धि, साभास अखण्ड अन्तःकरण, विशिष्ट जीवात्मा, पंचो इन्द्रिये, इन सबको ब्रह्म विचार में वृत्तियों सहित सलग्न करिये । उस ब्रह्म के स्वरूप में पांच तत्व एवं शब्दादिक गुणों का अभाव है ।

दादू भीगे प्रेम रस, मन पंचौं का साथ ।
मगन भये रस मै रहे, तब सनमुख त्रिभुवन नाथ ॥२७६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब मन पंचों इन्द्रिये आदिक सहित प्रेम रस में ब्रह्म परायण हुआ, तो फिर "मगन भये रस में रहे" अर्थात्" भगवान के प्रेम में तल्लीन होकर एक रस होते हैं । फिर उसके त्रिलोकी नाथ वश में हो जाते हैं ।

दादू सबदैं सबद समाइ ले, पर आतम सौं प्राण ।
यहु मन मनसों बंधि ले, चितैं चित्त सुजाण ॥२८७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शब्द कहिए राम नाम उच्चारण को अनहद शब्द में अभेद करिये । अर्थात् व्यष्टि शब्द समिष्ट शब्द में लीन करिये । और प्राण कहिए जीवात्मा को विचार के द्वारा परमात्मा में लीन करिये । इसी प्रकार इस व्यष्टि मन को समष्टि मन में जोड़िए । व्यष्टि चेतन्य को समष्टि चेतन्य में अभेद करिए । इस प्रकार पूर्ण ब्रह्म चेतन्य में अभेद हो जाइये ।

दादू सहजैं सहज समाइलें, ज्ञानैं बंध्या ज्ञान ।
सुत्रैं सुत्र समाइ ले, ध्यानैं बंध्या ध्यान २८८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! स्मरण में सहज भाव होकर, सहजरूप परमेश्वर में समाइये और आत्मा के ज्ञान में सलग्न होकर, अपरोक्ष ज्ञान रूप हो जाओ । इसी प्रकार 'सूत्रैं' हिरण्य गर्भ में सूत्र, व्यष्टि सूक्ष्म शरीर को, अभेद करिये और ब्रह्म ध्यान में सलग्न होकर, तद्रूप हो जाओ ।

दादू दृष्टैं दृष्टि समाइ ले, सुरतैं सुरति समाइ ।
समझैं समझ समाइ ले, लै सौं लै ले लाइ ॥२८९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपनी दृष्टि को समष्टि चेतन्य रूप दृष्टि में समाओ । अथवा व्यष्टि दृष्टा को समष्टि दृष्टा में विचार द्वारा अभेद करिये । समष्टि सुरतारूप चेतन्य में, अपनी व्यष्टि सुरति को समा लो । अपनी समष्टि समझ रूप चेतन्य में अपनी व्यष्टि समझ को, उसी का स्वरूप जानकर, उसी में समा लो । अपनी व्यष्टि लय को समष्टि लय में, लय द्वारा अभेद करो ।

दादू भावै भाव समाइ ले, भगतैं भगत्ति समान ।
प्रेमैं प्रेम समाइ ले, प्रीतैं प्रीति रस पान ॥२९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! व्यष्टि भाव को समष्टि भाव में लय करिये । समष्टि भक्तिरूप परमेश्वर में अपनी व्यष्टिरूप आराधना को लय करिये । सर्व बाह्य विषयों से वृत्ति समेट कर, ब्रह्म में सलग्न करके, रसपान नाम आत्मरूप परमेश्वर के दर्शनामृत का, अपनी आत्मा में पान करिए ।

दादू सुरतैं सुरति समाइ रहु, अरू बैनहुं सों बैन ।
मन हीं सों मन लाइ रहु, अरू नैनहु सो नैन ॥२६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपनी व्यष्टि सुरति को समष्टि सुरति रूप परमेश्वर में समा लेओ । अपने व्यष्टि बैन नाम बचन को, समष्टि बैन रूप परमेश्वर में समाओ । अपने व्यष्टि मन को समष्टि मन में लय करो, क्योंकि यह उसी का स्वरूप है । अपने व्यष्टि नेत्रों को समष्टि नेत्र रूप परमेश्वर में अभेद करो ।

जहां राम तहं मन गया, मन तहं नैना जाइ ।
जहं नैना तहं आतमा, दादू सहजि समाइ ॥२६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शुद्ध अन्तःकरण में जहां राम है, वहां ही मन राम रूप हो गया और वहीं नेत्रादि सम्पूर्ण इन्द्रियां, परमात्मा परायण बन गई हैं और वहीं आत्मा कहिए चिदाभास युक्त बुद्धि, अपने अधिष्टान चेतन्य में समा रही है ।

(जीवन मुक्ति, विषय वासना निवृति)

प्राण न खेलै प्राण सौं, मन न खेलै मन ।
सबद न खेलै शब्द सौं, दादू राम रत्तन ॥२६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! व्यष्टि प्राण, समष्टि प्राण रूप परमेश्वर से खेलैं तो मुक्त हैं और नहीं तो अमुक्त है । ऐसे हो समष्टि रूप मन में व्यष्टि रूप मन खेलैं तो मुक्त है, नहीं तो अमुक्त है । समष्टि रूप शब्द ब्रह्म से, व्यष्टि शब्द विचार द्वारा खेलैं, तो मुक्त है, नहीं तो अमुक्त है । इस प्रकार वह राम रूपी रतन ब्रह्म चेतन्य, हृदय प्रदेश में स्थित है । उससे अभेद होइये ।

चित्त न खेलैं चित्त सौं, बैन न खेलैं बैन ।
नैन न खेलै नैन सौं, दादू परगट अैन ॥२६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समष्टि चित्त से व्यष्टि चित्त खेलै तब मुक्त है, फिर इसका । बाहरी चिंतन खत्म हो जाता है । समष्टि बचन रूपी परमेश्वर से, व्यष्टि बचन खेलैं, तो बाहरी बक्तृत्व शक्ति, खत्म हो जाती है । और समष्टि नेत्ररूप परमेश्वर से जब व्यष्टि नेत्र, विचार द्वारा खेलै, तो फिर बहिरंग जगताकार खेल की दृष्टि समाप्त हो जाती है । अर्थात् अैन कहिए जब स्वस्वरूप का परिचय हो जाता है, तो सभी बाहर के व्यापार रूक जाते हैं ।

पाक न खेलै पाक सौं, सार न खेलै सार ।
खूब न खेलै खूब सौं, दादू अंग अपार ॥२६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! व्यष्टि पवित्र स्वरूप समष्टि पवित्र से खेलै, तो फिर दुनियावी पवित्रता से अन्तर्मुख हो जाता है । व्यष्टि सार स्वरूप, समष्टि सार से खेलै कहिए अभेद होवै, तो मुक्त है । व्यष्टि सुन्दरता, समष्टि सुन्दरता खूब से खेलै कहिऐ अभेद होवै अर्थात् दृश्य अंग से आगे, जो अपना अपार व्यापक चेतन्य है, जब उसको जान लिया, तब और सब वासनाएं नष्ट हो जाती हैं ।

नूर न खेलै नूर सौं, तेज न खेलै तेज ।
जोति न खेलै जोति सौं, दादू एकै सेज ॥२६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! व्यष्टि नूर रूप जीव, समष्टि चेतन्यरूप नूर से, विचार द्वारा खेलै, तो मुक्त है, नहीं तो अमुक्त है । व्यष्टि तेज, समष्टि तेज से अभेदरूपी खेल खेलैं, तो मुक्त है । व्यष्टि ज्योति, समष्टि ज्योति से एकतारूप खेल खेलै, इस प्रकार एक अन्तःकरणरूपी सेज पर, अभेदतारूप आनन्द को अनुभव करता है ।

पंच पदारथ मन रतन, पवना माणिक होइ ।
आतम हीरा सुरती सौं, मनसा मोति पोइ ॥२६७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब सूक्ष्म माला का स्वरूप बताते हैं कि यह पंच ज्ञान इन्द्रियें तो मानों पांच प्रकार के नग हैं, और पवित्र मन है, वह रतन है । पांच प्राण माणिकरूप हैं । आतम कहिए साभास बुद्धि हीरा है और शुद्ध मनसारूप मोती है । सुरतिरूपी सुई से, विचाररूपी धागे में, यह माला पिरोइये ।

अजब अनूपम हार है, सांई सरीखा सोइ ।
दादू आत्मराम गलि, जहां न देखै कोइ ॥२६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूर्वोक्त प्रकार से, आश्चर्यरूप, उपमा रहित, जो 'सांई' कहिए परमेश्वर है, उसके लायक यह हार है । उसको अपने हृदय स्थान में, जहां दूसरा पामर विषयी मानव कोई भी नहीं देख सकते हैं, वहां परमेश्वर के गले में, यह हार पहनाइये । तो इस जीवात्मा का जीवन धन्य है ।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय

दोहा :- एक पुष्प कोउ पुरूष ले, हरि समरप्यों आइ ।
ता पुण्य के प्रभाव से, इन्द्र हुओ पुनि जाइ ॥२६८॥

दृष्टान्त :- एक पुरूष एक रोज बगीचे में घूमने गया। वहां चम्पा का महकदार पुष्प खिल रहा था। उसने तोड़ा और विचार किया कि यह पुष्प मेरी जो मित्र, वेश्या है उसको दूंगा। तो वह मुझ पर बहुत प्रसन्न होगी। वह पुष्प लेकर, अपनी मित्र के यहां गया। वह नहीं मिली। फिर विचार करने लगा, अब यह पुष्प तो मुरझा जाएगा। रास्ते में एक पंडित कथा बांच रहा था। इसने सोचा यह पुष्प कथा पर चढ़ा दें। फिर विचार किया कि कथा में यह न सुनाई पड़ जाये कि वेश्या के यहां जाना पाप होता है। पुष्प हाथ में लेकर दौड़ता हुआ फेंका, तो पुष्प पुस्तक के ऊपर जाकर पड़ा। पंडित और लोग बाग हंसने लगे। उन्होंने विचार किया कि वह पुष्प चढ़ाने का ही प्रेमी था, कथा सुनने का प्रेमी नहीं था। जब उसका अन्त समय आया तो यमदूत प्रगट हो गए। उसके लिंग शरीर को पकड़ कर, यमराज के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। यमराज ने अपने कारिन्दा को हुक्म दिया कि इसके पाप पुण्य देखो। कारिन्दा बोला :- इसके पाप ही पाप हैं, एक पुष्प यह वेश्या के लिए लाया था, जब वह नहीं मिली, तो उस पुष्प को भगवान की कथा हो रही थी, उस जगह, दौड़ते हुए जब फेंका, तो पुस्तक के ऊपर जा पड़ा। बस इससे ऊपर इसका कोई अच्छा कर्म नहीं है। यमराज बोले :- भगवान की कथा पर पुष्प गिरा है इसलिए पुण्य तो जरूर हुआ है, उस पुण्य का फल, दो घड़ी का सुख है। बाकी तो सब पाप का फल दुख ही दुख है। पहले तूं कौन सा भोगेगा ? उसने विचार किया पहले सुख भोग लूं, और इस यमराज को भी समझ लूं। बोला :- मैं पहले सुख भोगूंगा। यमराज ने कामधेनु को बुलाया। और कहा :- दो घड़ी के लिए जो यह कहे, वह काम आप करो। कामधेनु बोली :- बोल भाई ! क्या चाहता है ? वह बोला :- इस यमराज की गुदा में सींग देकर, दो घड़ी तक इसे उठा ले ! कामधेनु ज्यों ही यमराज की तरफ चली, तो यमराज आसन छोड़कर, भगवान विष्णु की तरफ चल पड़े। पीछे पीछे कामधेनु चली जा रही है। उसके पीछे पीछे पापी चला जा रहा है, और बोला :- यह मैं आंख से देखूंगा। भगवान के दरबार में तीनों जा पहुंचे। यमराज बोला :- महाराज रक्षा करो। भगवान बोले :- जो दो घड़ी का यमराज को दुख होता, वह इस दौड़ धूप के कष्ट से बराबर हो गया। इस पापी को ले जाओ और यमलोक की त्रास देओ। पापी बोला :- महाराज यहां भी अन्याय होने लगा। भगवान बोले :- कैसे ? महाराज जो मांगा, वह भी नहीं दिया और अब यमराज को त्रास का हुक्म दे दिया। यह अन्याय ही है। पापी बोला :- एक मेरी विनती तो आप स्वीकार करो। भगवान :- क्या ? पापी :- एक कागज के टुकड़े में यह लिख दो, कि जो भगवान का दर्शन करेगा, वह आज से नरक में जाकर त्रास भोगेगा। भगवान यह तो हम नहीं लिखते। पापी क्यों महाराज ? भगवान :- हमारे दर्शन करने वाला, किस तरह नरक में जा सकता है ? पापी :- महाराज ! मुझे नरक में भेज रहे हो। मैं आपके दर्शन करके, अब नरक में जा रहा हूं। भगवान :- यमराज

से बोले, इसके तो सब पाप नष्ट हो गए, यह तो अब स्वर्ग में जाएगा और फिर दूसरे कल्प में इन्द्र बनेगा। भगवान के एक पुष्प अर्पण करके, इस पद को प्राप्त हो गया।

उपरोक्त हार जब राम को पहना दिया, तो वह जीवात्मा तो मुक्त ही हो जाते हैं।

दादू पंचौं संगी संगि, ले आये आकास।
आसण अमर अलेख का, निर्गुण नित बास ॥२९९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब यह जीवात्मा पंचज्ञान इन्द्रियों सहित, अमर अलेख का आसणरूप, आकाश जो हृदय स्थान है, उनमें एकाग्र हुआ, तो निर्गुण ब्रह्म में नित्य निवास करता है।

प्राण पवन मन मगन व्है, संगी सदा निवास।
परचा परम दयाल सौं, सहजैं ही सुखदास ॥३००॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस प्रकार से प्राण, सुरति और मन ब्रह्म में मग्न होकर, संगी ,कहिए परमेश्वर के साथ सदा निवास, कहिए ब्रह्म स्वरूप हो गए हैं। और परमदयाल परमेश्वर से प्रत्यक्ष होकर, भक्त भगवान के रूप बन गए हैं।

दादू प्राण पवन मन मणि बसै, त्रिकुटि केरे संधि।
पाँचौं इन्द्री पीव सौं, ले चरणों में बंधि ॥३०१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ध्यानावस्था में जो त्रिकुटी दरस है, उसके संधि कहिए तीर पर, प्राण पवन और मनरूपी मणी बसते हैं। इसलिये हे संतो ! वहां अपनी ज्ञान इन्द्रियों को परमेश्वर के चरणों में अर्पण करके, ब्रह्म में अभेद हो जाओ।

प्राण हमारे पीव सों, यों लागा सहिये।
पुहुप बास घृत दूध में, अब कासौं कहिये ॥३०२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! श्री दयाल महाराज अपने को ही उपलक्षण करके, जिज्ञासुजनों के प्रति उपदेश करते हैं कि जैसे पुष्प में गंध और दूध में घृत एक रूप है, वैसे ही हमारा जीवात्मा एकाग्र हो करके, अगर परमात्मा में निश्चल होवै तो पुनः यह बात किसको बतावें ? क्योंकि अवाच्य है।

पाहण लोह बिच बासदेव, ऐसे मिल रहिये ।
दादू दीन दयाल सौं, संगहि सुख लहिये ॥३०३॥

टीका :- हे संतो ! जैसे पत्थर और लोहे में अग्नि अभेद होती है, इसी प्रकार दीन दयाल परमेश्वर में अभेद होकर, साथ में ही सुख प्राप्त करो ।

दादू ऐसा बड़ा अगाध है, सुक्षम जैसा अंग ।
पुहप बास थैं पतला, सौ सदा हमारे संग ॥३०४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का व्यापक स्वरूप देखिये, सो वह अगाध है । अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उसमें समा रहे हैं, और सूक्ष्म स्वरूप से देखें तो, हे प्यारे ! जैसे पुष्प में सुगन्धि सूक्ष्म है, उससे भी अति बारीक होकर, प्रभु अपने भक्तों के संग और नानारूप में रम रहे हैं ।

श्लोक :- बेदान्ते सार सर्वस्वं, ज्ञान विज्ञानमेवच ।
अहमात्मा निराकार:, सर्व व्यापी स्वभावत: ॥३०४॥

वेदान्तों का सार सर्वस्व यही है और यही ज्ञान विज्ञान है कि स्वभाव से सब में वर्तनेवाला, वह अति सूक्ष्म और निराकार जो आत्मा है, वह मैं ही हूं ।

दादू जब दिल मिलि दयाल सौं, तब अंतर कुछ नांहि ।
ज्यों पाला पाणी कौं मिल्या, त्यौं हरिजन हरि मांहि ॥३०५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे पाला पिघंल कर अपने कारणारूप पानी में मिलता है, तो फिर परस्पर में कुछ भी भिन्न भाव नहीं रहता है । इसी प्रकार हरि के जन संतपुरुष, जब प्रभु में अभेद हुए, तो अविद्या आदिक अन्तराय फिर नहीं रहते हैं ।

दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब सब पड़दा दूर ।
ऐसैं मिलि एकै भया, बहु दीपक पावक पूर ॥३०६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे बहुत से दीपकों को प्रज्वलित करके, अग्नि में मिला देवें, तो वे तदरूप हो जाते हैं । इसी तरह आतम अभ्यास द्वारा, अविद्यादिक पड़दा दूर करके, संतजन ब्रह्मरूप होते हैं ।

दादू जब दिल मिली दयाल सौं, तब अंतर नाही रेख ।
नाना विधि बहु भूषणां, कनक कसौटी एक ॥३०७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे स्वर्ण के नाना आभूषणों को, अग्नि कसौटी देवै, तो केवल स्वर्ण शेष रहता है, उसी प्रकार संसार में जीवों के जो नानात्वरूप हैं, सो भी स्वर्ण के आभूषणों की भांति, संसार दृष्टि से भिन्न भिन्न प्रतीत होते हैं, किन्तु सत्य कसौटी, ब्रह्मज्ञान होने पर उनमें, किंचित भी द्वैतभाव नही रहता है ।

दादू जब दिल मिलि दयाल सौं, तब पलकन पड़दा कोइ।
डाल मूल फल बीज में, सब मिलि एकै होइ ॥३०८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! जैसे वृक्ष के डाल, मूल, फल, फूल सब मिल करके बीज में एक रूप होते हैं । वैसे ही यह जीवात्मा परमानन्द में अभेद हुआ, तो फिर एक पलक का भी पड़दा अन्तराय सम्भव नहीं है। अर्थात् पूर्ण अभेद एक रूप होता है ।

फल पाका बेलि तजी, छिटकाया मुख मांहि ।
सांई अपणा करि लिया, सो फिर ऊगै नांहि ॥३०९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे परिपक फल बेलि को तज देता है, और उस फल को खा लिया जाय या भून लिया जाय, तो फल के बीज को कहीं भी उपजाइये, वह नहीं उपजैगा । वैसे ही हरि के भजन और ज्ञान से जीवरूपी फल, पापों की निवृति रूपी परिपक अवस्था को प्राप्त होके, शरीर रूपी बेली में अहं भावना विपरीत भावना से रहित, अपने स्वरूप को निश्चय कर ले, तो फिर वह जीव जन्म मरण रूपी संसार को नहीं प्राप्त होता है ।

दादू काया कटोरा दूध मन, प्रेम प्रीती सों पाइ ।
हरि साहिब इहि बिधि अचंवै, वेगा वार न लाइ ॥३१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस काया रूपी कटोरे में, शुद्ध मन रूप दूध है और जिसमें निर्वासनिक प्रेम रूपी मिश्री मिलाओ । इस प्रकार अखण्ड प्रीति से फिर यह दूध परमेश्वर के अर्पण करो । तो परमेश्वर इस दूध

को अवश्य पान करेंगे। इसमें किंचित भी देर न लगाओ। इस मन को हरि रूप साहिब के समर्पित कर दो।

टगाटगी जीवन मरण, ब्रह्म बराबरि होइ।
परगट खेलैं पीव सौं, दादू बिरला कोइ ॥३११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवन से मरण पर्यन्त 'टगाटगी' अखण्ड ब्रह्म सुरति द्वारा, ब्रह्मस्वरूप होकर, आत्मा का साक्षात्कार करते हैं, उन्हें धन्य है। किन्तु ऐसे मुक्तपुरुष कोई बिरले ही होते हैं।

दादू निबरा ना रहै, ब्रह्म सरीखा होइ।
लै समाधि रस पीजिये, दादू जब लगि दोइ ॥३१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ? जब तक प्राण पिण्ड का सम्बन्ध बना हुआ है, तब तक नाम का स्मरण करता रहै। परमात्मा की भक्ति में कभी भी स्थिलता नहीं करना। और लै कहिए नाम में तदाकार वृत्ति करके, निदिध्यासन की परिपक अवस्था में स्थिर होकर, ब्रह्मानन्द का पान करके, ब्रह्मरूप होइये। जब तक सेवक के सेव्यभाव विद्यमान है, तब तक भजन की पूर्णता नहीं है। पूर्ण ब्रह्मरूप होने तक, क्षण भर भी चैन नहीं लीजिए।

दोहा :- **न्यारे न हिरा लयो, तो पर हेरत ठौर।**
बहुरी बुझी बादशाह, अब क्यों ढूँढत और ॥३१२॥

दृष्टान्त :- एक न्यारा बैठा बैठा मिट्टी छान रहा था। उसको एक हीरा मिल गया। बादशाह ने दूर से देखा और जान गया कि इसे अमोलिक रतन मिला है। बादशाह बोले :- अब क्यों मिट्टी छानता है ? रतन तो पा लिया तैंने। न्यारा बोला :- ढूंढता था तभी तो पाया' अब ढूंढना कैसे छोड़ दूं। दाराष्टान्त में न्यारे के स्थान में जिज्ञासु है। आत्मा अनात्मा का विचार करना ही छानना है, और परमात्मारूपी रतन ही प्राप्त कर लेना है।

बे खुद खबर होसीयार बासद, खुद खबर पैमाल।
बे कीमत मस्तान गलतान, नूर प्याले ख्याल ॥३१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरूष 'बासद' कहिए रात दिन, बेखुद अकह, ब्रह्म वस्तु की खबर, जानकारी में तो होसियार तत्पर हैं, और जिनकी खुद की खबर , नाम, जगत और शरीर आदि का अध्यास, पैमाल कहिए नष्ट हो गया है । वे मुक्तजन बे कीमत ब्रह्म में मस्त होकर, गलतान कहिए तदरूप हो रहे हैं । ऐसे मुक्तपुरूषों को एक नूर स्वरूपी प्याले का ही ख्याल है ।

दोहा :- या साखी सुन औलिया, चल आयो आमेर ।
कथा करत गुरूदेव को, मुंह चालत लियो फेरी ॥३१३॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज आमेर में बिराजते थे । राजा मान सिंह के सहित, सभी लोग गुरूदेव का प्रवचन सुना करते थे । एक रोज एक मुसलमान फकीर उपरोक्त साखी गुरूदेव की याद कर रखी थी, और बिचार किया कि जिनको अपने आप की खबर नहीं है कहिए अपने आपको भूले बैठे हैं, उनका दर्शन करना चाहिए । इस भावना को लेकर आया । जब गूरूदेव को प्रवचन करते देखा दूर से, तब विचार किया कि इनको तो सब खबर है । साखी में तो इन्होंने यह कहा है कि "खुद खबर पैमाल" कि हमने अपने आपको मिटा दिया है । परन्तु यहां तो मैंने विपरीत रूप देखा । चलूं, यह विचार करके वापिस लौट चला । गुरूदेव उसके मन की बात जान गए और बुलाया । सांई, यहां आओ ? आप कैसे आये थे ? और कैसे लौट चले ? पूर्वोक्त वृत्तान्त अपने मन का सतगुरू से कह सुनाया । सतगुरू महाराज इस साखी से ३१८वीं साखी तक सांई को उपदेश किया है । यह सुनकर सांई ने सतगुरूदेव को नतमस्तक प्रणाम किया और निश्चय किया कि सच्चे परमात्मा के आशिक, अपने आप को मिटा देते हैं । अपने अहंकार को मिटा दिया है, और जो उनसे, परमात्मा का मार्ग पूछने जिज्ञासुजन आते हैं उनको दक्षता से मार्ग का उपदेश करते हैं । ऐसे पुरूषों को धन्य है, धन्य है ।

दादू माता प्रेम का, रस मैं रह्या समाइ ।
अन्त न आवै जब लगै, तब लग पीवत जाइ ॥३१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो संतजन प्रेम का माता है, सो प्रेम रस में ही अभेद रहता है और अपने पांच भौतिक शरीर के अन्त तक, परमेश्वर के प्रेम रस को ही पीते हैं । अथवा जब तक ब्रह्मवेत्ता पूर्ण ब्रह्मरूप नही होते, तब तक ब्रह्म विचार में ही मग्न रहते हैं ।

पीया तेता सुख भया, बाकी बहु बैराग ।
अैसैं जन थाकै नहीं, दादू उनमन लाग ॥३१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जितना राम रस पीया, उतना पूर्ण सुख प्राप्त हुआ है और शेष वैराग्य कहिये अति अनुराग सहित राम रस पीते हैं और बाकी के मायाकृत पदार्थों से वैराग्य बहुत है । ऐसे मुक्तजन अतृप्त भाव से, ब्रह्म स्वरूप विचार में मग्न होकर, "उनमन" कहिए, शून्य ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं !

निकट निरंजन लागि रहु, जब लग अलख अभेव ।
दादू पीवै राम रस, निहकामी निज सेव ॥३१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निरंजन देव परमात्मा के समीप लगे रहो । अन्तःकरण की वृत्ति को स्वरूप चितन में लीन करिये । जब तक अलख अभेव स्वरूप में मिलकर, ब्रह्मरूप नहीं हो जाते, तब तक निष्काम भाव से, विचार रूप परमात्मा की सेवा करो और निरंतर राम रस पान करते रहो ।

राम रटणि छाड़ै नहीं, हरि लै लागा जाइ ।
बीचैं ही अटकै नहीं, कला कोटि दिखलाइ ॥३१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! साधन कोटी में, अपनी सुरति द्वारा अखण्ड राम की लय लगाओ और माया अपनी कोटि कला, अनन्त रिद्धि सिद्धि इस लोक परलोक की, अनन्त सम्पदा प्रगट करके, माया दिखलाती है । परन्तु उनमें परमेश्वर के भक्त आसक्त नहीं होते हैं । प्रभु के नाम स्मरण में ही सलग्न रहते हैं ।

दादू हरि रस पीवतां, कबहूं अरुचि न होइ ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ ॥३१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हरि रस, भाव भक्ति, ज्ञान ध्यान आदि को पान करते हुए कहिए, धारण करते हुए, कभी भी अरुचि नहीं होती है । और हरि रस को पीते हुए भी, जो नित नई प्यास और जागती है, सो ही सच्चे संत पीने वाले हैं ।

दोहा :- वरूण मित्र कीयो जाट को आना मेरे गेह
गयो तिसायो पीवत भो, अमृत कर अति नेह ॥३१८॥

दृष्टान्त :- वरूण देवता एक समय मारवाड़ में चले गए । प्यास से दुखी होकर, एक जाट की झौपड़ी में पहुंचे । जाट ने एक मतीरा निकाला और वरूण देवता को खिलाया, पिलाया । उसकी भूख प्यास दोनों मिट

गई । वरूण देवता बोले, तैंने हमें अमृत जैसा रस पिलाया है, तूं हमारा मित्र है । दुख पड़े तब मेरे पास आना । समुद्र पर आवाज देना कि मैं तेरा मित्र आ मया हूं, बरूण देवता । फिर मैं भी तुझे अमृत पिलाऊंगा और तेरा दुःख दूर करूंगा ।

एक समय काल पड़ने पर जाट समुद्र पर गया । पूर्वोक्त समाचार सब सुनाये । वरूण देवता हाथ में अमृत का घड़ा लेकर, प्रगट हो गए । जाट बोला :- प्यास लगी है । तब वरूण देवता अमृत पिलाने लगे । जाट पीता पीता तृप्त नहीं हुआ । वरूण देवता बोलाः-अरे धापा कि नहीं ? तब जाट बोलाः-आज तक कोई अमृत से भी धापा है क्या ? यह कहकर जाट बोला :- बस रहने दे । वरूण देवता ने जाट को बहुत से रतन दिए और विदा कर दिया । जाट अपने घर चला आया ।

इसी प्रकार भगवान के भक्त, भक्ति रूपी अमृत से कभी तृप्त नहीं होते है ।

दोहा -: दई सो देता ना थकै, लेता थकै न दास ।
जन रज्जब दोऊ अथक, जुग जुग बढै पियास ॥३१८॥

दादू जैसे श्रवणा दोइ हैं, ऐसे हूंहि अपार ।
राम कथा रस पीजिये, दादू बारंबार ॥३१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे यह दो श्रोत्र इन्द्रियां हैं, ऐसे रोम राम में अपार होवें, तो बारम्बार मनुष्य जन्म धारण करके, राम रस रूप कथा अमृत को पीते ही रहें ।

जैसे नैना दोइ हैं, ऐसे हूंहि अनंत ।
दादू चंद चकोर ज्यौं, रस पीवैं भगवंत ॥३२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे उस शरीर में दो नेत्र है, ऐसे अनेक नेत्र रोम रोम में हो जावें, तो भक्तजन परमात्मा का अतृप्तभाव से दर्शनरूपी अमृत पान करें, जैसे चन्द्रमा का दर्शन करके चकोर अतृप्त रहता हैं, दर्शन की इच्छा बनी रहती है । वैसे ही भक्तों को परमेश्वर के दर्शन की इच्छा बनी रहती है ।

ज्यों रसना मुख एक हैं, ऐसे हूंहि अनेक ।
तौ रस पीवै सेस ज्यों, यों मुख मीठा एक ॥३२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे शेष जी के एक सहस्त्र मुख हैं और उनमें दो सहस्त्र जिह्वा है, वैसे ही हमारा रोम रोम भी जिह्वा रूप होकर, भगवान के गुण कीर्तन में लयलीन हो तो, हम प्रभु की भक्ति पावें। और मुख मीठा होवै ।

ज्यों घटि आत्म एक है, ऐसे हूंहि असंख ।
भरि भरि राखै राम रस, दादू एकै अंक ॥३२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस प्रकार हमारा यह पंच भौतिक शरीर, असंख्य रूप होकर, और पूर्वोक्त प्रकार से असंख्य शरीर, अनन्त श्रोत, इन्द्रिये, सहित होकर, राम रस अमृतपान करें, तो राम से अभेद होवै ।

ज्यों ज्यों पीवै राम रस, त्यों त्यों बढै पियास ।
अैसा कोई एक है, बिरला दादू दास ॥॥३२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संतजन जैसे जैसे राम रस पीते हैं, वैसे वैसे ही उनकी प्यास बढती जाती है । परन्तु ऐसा कोई एक आध ही बिरहीजन भक्त है जो इस प्रकार राम रस पीते हैं ।

राता माता राम का, मतिवाला मैं मंत ।
दादू पीवत क्यों रहै, जे जुग जांहि अनन्त ॥३२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम के राते रत्त और माते मत्त कहिए मतवाले मुक्तजन, 'मैं मंत' कहिए प्रभु प्रेम में बेसुध हुए, ऐसे अनन्य प्रभु भक्त, अनन्त युग युगान्तर में भी, भक्ति रस का पार करके, तृप्त नहीं होते हैं ।

दादू निर्मल जोति जल, बरिषा बारह मास ।
तिहि रस राता प्राणीया, माता प्रेम पियास ॥३२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की निर्मल ज्योति है, भय अविद्या आदि दोष रहित, शुद्ध चेतन्य रूपी जल, जिसकी वर्षा सदैव अनवरत होती ही रहती है । संतजन रात्ता रत्त अनुरक्त हुये, माता मस्त रहते हैं । जिससे दिनों दिन प्रेम की प्यास बढती जाती है ।

रोम रोम रस पीजिए, एती रसना होइ ।
दादू प्यासा प्रेम का, यों बिन तृप्ति न होइ ॥३२६॥

टीका :- हे प्रभु ! हमारे शरीर का प्रत्येक रोम रोम रसना रूप, बकतृत्व शक्ति, सम्पन्न होकर राम रस पीवै, ऐसी कृपा कीजिये । क्योंकि अपने प्रेम का जो प्यासा है, उसकी असंख्यात रसनाओं से स्मरण करने पर भी तृप्ति नहीं हीती है । एक रसना से तो तृप्ति सम्भव, है ही कहां ?

तन गृह छाड़ै लाजपति, जब रसि माता होइ ।
जब लग दादू सावधान, कदे न छाड़ै कोइ ॥३२७॥

टीका :- हे प्रभु ! जैसे व्यवहार में पति प्रेम में, मतवाली पतिव्रता अपने तन, धन, कुटम्बी और पति की लाज को छोड़कर, पूर्ण प्रेम भाव को प्राप्त होवै है । इसी प्रकार भक्तजन भी, मीरां आदि की भांति अपने तन, धन लोक लाज को छोड़कर, पति परमेश्वर से पूर्ण अभेद होते हैं । किन्तु जब तक सब व्यवहारों में सावधान है, तब तक तन गृह आदि की क्रियाओं को नहीं त्याग सकते हैं । तो तब तक पूर्ण प्रेम परमेश्वर का नहीं प्राप्त होता है, अथवा जैसे ही साधक आत्मानन्द को प्राप्त करने के यिये दिवाना बन जाता है । उसी समय की लाज एवं शरीर के स्वामीत्व रूपी अध्यासों को परित्याग करता है । और जब तक इनमें आसक्त है, वृत्ति इधर ही फंसी रहती है और तब तक शरीर का अध्यास, लोक वासना आदिक व्यवहार का त्याग नहीं हो सकता है ।

आंगण एक कलाल के, मतिवाला रस मांहि ।
दादू देख्या नैंन भरि, ताके दुविधा नांहि ॥३२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे व्यवहार में 'कलाल' मद्य बेचने वाले के घर में, मद्य पीने वाले सभी जाति के एकत्रित होते हैं, उनमें उस समय भेदभाव नहीं होता है, इसी प्रकार सतगुरू के आगंण में और व्यापक ब्रह्म के विषय अर्थात् चेतन्य रूपी कलाल के कहिए अन्तःकरण में, स्वस्वरूप परचे रूपी रस पान करके, मन इन्द्रिय और चतुष्ट अन्तःकरण, ये सब तृप्त हो जाते हैं । इसी प्रकार जो पुरूष अपने स्वरूप को ज्ञान के द्वारा देख लेता है, उसके फिर द्वैतभाव नहीं रहता है ।

पीवै चेतन जब लगै, तब लग लेवै आइ ।
जब माता दादू प्रेम रस, तब काहे को जाइ ॥३२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक चेत कहिए सचेत है, तब तक दीक्षित और कलाल के यहां आकर उपदेश और रस (मदरा) लेते रहते हैं जब शिष्य ज्ञानामृत पीता पीता 'मतवाला हो जाता है, और मद्य पीने वाला मस्त हो जाता है, तब फिर मद्य बेचने वाले के यहां मद्य पीने वाला नहीं जाता है, और शिष्य मस्त होने पर देहाध्यास से मुक्त हो जाता है ।

दादू अंतर आत्मा, पीवै हरि जल नीर ।
सौंज सकल ले उधरे, निर्मल होइ सरीर ॥३३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बाहर (शरीर) और भीतर सम्पूर्ण इन्द्रिये और अन्तःकरण, इनको अन्तर्मुख करके, परमेश्वर का नाम स्मरण रूपी अमृत पान करें, तो वे अपने सम्पूर्ण मनुष्य देह की सौंज कहिए सामग्री को, सफल बनाकर, अपना उद्धार कर लेते हैं ।

(लावि रस)

दादू मीठा राम रस, एक घूंट करि जांउं ।
पुणगन पीछै कौं रहै, सब हिरदै मांहि समाउं ॥३३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अत्यन्त प्यासा पुरुष गंगा भागीरथी के तट पर निर्मल और ठंडा जल देखकर, पीकर पेट भरने पर भी, उस सम्पूर्ण जल को पीने की इच्छा रखता है, वैसे ही परमेश्वर के प्रेमातुर भक्तजनों को भी, यही उत्कण्ठा रहती है कि हम अखण्ड राम रस की एक हो घूंट कर लेवें, जिससे समस्त राम रस हमारे ही हृदय में समा जावे ।

चिड़ी चंच भरि ले गई, नीर निघटि नहिं जाइ ।
अैसा बासण नां किया, सब दरिया मांहि समाइ ॥३३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे समुद्र से एक चिड़िया, पानी की चोंच भरके ले जाए तो समुद्र का पानी कम नहीं हो जाता । इसी प्रकार चेतन्यरूप समुद्र दसों दिशाओं में पूर्णतया व्यापक हो रहा है । परन्तु कोई भी ऐसा भक्त नहीं हुआ, जो सम्पूर्ण परमात्मा को अपने हृदय में ही रख लेवे ।

दोहा :- गुरू दादू को दरश करी, अकबर कीयो सम्बाद ।
साखी सुनाइ कबीर की, ब्रह्म सो अगम अगाध ॥३३२॥

प्रस्तुत साखी का भाव यह है कि जब ब्रह्मऋषि दादू दयाल अकबर बादशाह के यहां गए, तब अकबर ने सतगुरू को प्रणाम करके प्रश्न किया कि आप संत क्यों हो गए ? गुरूदेव ने बताया कि परमेश्वर का भजन करने को। अकबर बोला :- कबीर ने यह कहा है :-

दोहा :- तन है मटकी मन मही, प्राण बिलोवणहार।
तत्त कबीरा ले गया, छाछ पीये संसार ॥३३२॥

उपरोक्त साखी से महाराज ने उत्तर दिया, समुद्र का उदाहरण देकर। कि कबीर भी एक चिड़िया की तरह व्यापक चेतन्य समुद्र से, जितना शक्ति भर भजन किया गया, करके अपना उद्धार कर लिया। उसके भजन करने से समग्र परमात्मारूपी समुद्र कम नहीं हुआ, और यह साखी भी इस तरह नहीं है।

दोहा :- तन है मटकी मन मही, प्राण बिलोवणहार।
तत्त कबींरा गह रह्या, ओरौं को आधार ॥३३२॥

हे बादशाह अकबर ! उस तत्व को कबीर ने भी ग्रहण किया है और अन्य महापुरुषों को भी उसी तत्व का आधार आ रहा है। अकबर बादशाह यह सुनकर नतमस्तक होकर, गुरूदेव के चरण स्पर्श किए और कहा गुरूदेव यही सत्य है।

दादू अमलि राम का, रस बिन रह्या न जाइ।
पलक एक पावै नहीं, तौ तबहिं तलफि मर जाइ ॥३३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम के प्रेमी भक्तजन, राम रस के पीये बिना, इस शरीर में वे जीवित नहीं रह सकते। यदि एक पलक भी उनको राम का स्मरणरूपी रस प्राप्त नहीं हो, तो तड़फ तड़फ कर शरीर त्याग देते हैं।

दादू राता राम का, पीवै प्रेम अघाइ।
मतिवाला दीदार का, मांगै मुक्ति बलाइ ॥३३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरुष राम रस में राते रत्त और मात्ते मत्त मतवाले होकर, एक अखण्ड वृत्ति से राम रस का पान करते हैं, वे भगवान के दर्शनों में मस्त रहते हैं। जिन संतों ने अभेद भक्ति से, परमानन्द अनुभव किया है, वे मुक्ति को तुच्छ समझते हैं। अर्थात् अभेद भक्ति द्वारा परमानन्द को प्राप्त हुए, बेपरवाही संतजन मुक्ति आदि की इच्छा नहीं करते हैं (मुक्तियां चार प्रकार की हैं :- सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायोज्य)।

उजल भंवरा हरि कंवल, रस रूचि बारह मास ।
पीवै निर्मल वासना, सो दादू निजदास ॥३३५॥

टीका :- जैसे उज्वल भवंरा, बारह मास कमल के निर्मल रस को प्रीति के सहित पान करता है, इसी प्रकार उत्तम पुरूष तो भंवरारूप है, और हरि कमल स्वरूप है, उनका दर्शन ही निर्मल रस है । इस प्रकार हरि के अनन्य दास, हरि दर्शनों में ही मग्न रहते हैं ।

नैनहुं सौं रस पीजिये, दादू सुरति सहेत ।
तन मन मंगल होत है, हरि सौं लागा हेत ॥३३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्म परचै संतजन, विवेक नेत्रों से समष्टि दर्शन रूप सुधा (अमृत) रस पीते हैं । और उनका तन मन मंगलमय हो रहा है । जिन मुक्त पुरूषों की ब्रह्म से प्रीति लगी है, वह ब्रह्ममय हो रहे हैं ।

पीवै पिलावै राम रस, माता है हुसियार ।
दादू रस पीवै घणां, औरू खूं उपगार ॥३३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भगवान के जो अनन्य भक्त हैं, सो आप स्वयं तो भक्ति रस पीकर मस्त रहते हैं और जिज्ञासुजनों को मस्त हुए भी, बड़ी दक्षता से पिलाते हैं। आप स्वयं भी अखण्ड वृत्ति से, राम रस पीवै हैं । और श्रद्धालु जिज्ञासुजनों का भी अति उपकार करते हैं ।

नाना विधि पिया राम रस, केती भांति अनेक ।
दादू बहुत विवेक सौं, आत्म अविगती एक ॥३३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! नाना प्रकार कहिए ज्ञान भक्ति द्वारा भक्तजन राम रस का पान करते हैं । परन्तु फिर भी यह इच्छा सदैव रहती है, कि जैसे एक शरीर है, ऐसे अनेक शरीर होते, तो भरपूर राम रस पान करते। अनेक प्रकार से कहिए वह संत, अपने को मछलीरूप और राम को जलरूप जानकर, आनन्दित रहते हैं । और फिर अपने को हंस और राम के स्मरण को मोतीरूप जानकर चुगते हैं । अपने तो चात्रग और राम के स्मरण को श्वाति नक्षत्र की बूंद जानकर, राम रस का पान करते हैं। फिर इस प्रकार वह जीवात्मा में एकरूप हो जाते हैं ।

(परिचय महातम)

परचै कापै प्रेम रस, जे कोई पीवै ।
मतवाला माता रहै, यौं दादू जीवै ॥३३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! "परचै कापै" अर्थात् परमात्मा का दर्शन रूपी 'प' कहिए दूध, जो कोई भक्तजन पीवै, वह मतवाला मस्त होकर, जीवन मुक्ति भाव को प्राप्त होते है ।

परचै कापै प्रेम रस, पीवै हित चित लाइ ।
मनसा बाचा कर्मना, दादू काल न खाइ ॥३४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन, वचन, कर्म से चित का हित लगाकर जो भक्तजन परमात्मा का दर्शनामृत रूपी दूध को पीते हैं, वे काल कर्म से मुक्त हो जाते हैं ।

परचै पीवै राम रस, जुग जुग अस्थिर होइ ।
दादू अविचल आतमा, काल न लागै कोइ ॥३४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! परमात्मा का दर्शनामृत रूप दूध को जो भक्तजन पान करते हैं, वे ही जुग-जुग में स्थिर भाव को प्राप्त होते हैं । उन जीवात्माओं को कोई भी काल (काम काल, क्रोध काल, लोभ काल भाई०) स्पर्श नहीं कर पाता ।

परचै पीवै राम रस, सो अविनासी अंग ।
काल मीच लागै नहीं, दादू सांई संग ॥३४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परिचय रूप अमृत पीने वाला संत, अविनाशी परमात्मा का स्वरूप है । वह मृत्यु रूप काल से रहित होकर, परमात्मा के साथ अभेद होता है ।

परचै पीवै राम रस, सुख में रहै समाइ ।
मनसा बाचा कर्मना, दादू काल न खाइ ॥३४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमात्मा का परिचय रस पीजिए । इसी प्रकार उस आनन्द स्वरूप में समाइये । मन, वचन, कर्म से पान करके, काल से रहित होगे ।

परचै पीवै राम रस, राता सिरजनहार ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, ते छूटे संसार ॥३४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का परिचयरूपी राम रस का पान कीजिए । तो फिर काम आदि दोष नहीं व्याप्त होंगे और संसार के जन्म मरण से मुक्त हो जाओगे ।

अमृत भोजन राम रस, काहे न बिलसै खाइ ।
काल बिचारा क्या करै, रमि रमि राम समाइ ॥३४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मानव जीवन में स्वस्वरूपी राम रस का अनुभव करना, यही अमृत भोजन है । बिलसैं, खाइ, उपभोग करै, अंगीकरण करै, पचावै, इस तरह जो साधक परिचय प्राप्त कर लेता है, उसको फिर कोई काल कृतान्त रूप, काम क्रोध आदि रूप नहीं खा सकते हैं ।

(सजीवन)

दादू जीव अजया बिघ काल है, छेली जाया सोइ ।
जब कुछ बस नहीं काल का, तब मीनी का मुख होइ ॥३४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अविद्या युक्त जीव, बकरी के समान हैं, और मृत्युरूप काल बघेरा है । वह व्याघ्र कहिए बघेरा रूपी काल, छेली (बकरी) रूप जीव के, पूर्व जन्मों के विविध संस्कारों से ही बना है । अर्थात् अविद्या में बंधे हुए जीव से ही काल उत्पन्न हुआ है । जब जीव मल, विक्षेप, आवरण के बन्धनों से मुक्त हो जाय और शुद्ध स्वरूप में आ जाय, तब उस काल का कोई काबू नहीं चलता है ।

मन लौरू के पंख हैं, उनमन चढै आकास ।
पग रहि पूरे सांच के, रोपि रह्या हरि पास ॥३४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पक्षीरूपी मन के ज्ञान वैराग्यमय पंख है और उनसे सर्व संसार के विषयों से उदासीन होकर, आकाशवत व्यापक ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होता है और सत्य की प्राप्ति के दृढ़ निश्चयरूप पैर, हरि के पास रोप कर स्थिर हो रहा है ।

तन मन बिरख बंबूल का, कांटे लागे सूल ।
दादू माखण व्है गया, काहू का अस्थूल ॥३४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्थूल सूक्ष्म शरीररूप संघात है । यह बंबूल के पेड़ के समान है । इसमें सकाम कर्म और संसय काम क्रोध आदि कांटे लगे हैं । परन्तु उत्तम जिज्ञासुओं ने ही, साघनों के द्वारा, इन शरीरों का अध्यास त्याग कर, मन की चंचलता का निवारण करके, इनको मक्खनवत कहिए, देवी सम्पदा के गुणों से युक्त बना लिये हैं । वही पुरुष सम्पूर्ण दुखों से मुक्त हुए हैं ।

दादू संखा शब्द है, सुनहां संसा मारि ।
मन मींडक सूं मारिये, संक्या सर्प निवारि ॥३४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मबेत्ता सतगुरूओं का उपदेश तो सुसा (खरगोश) रूप है । और शिष्य के हृदय में जो अनन्त प्रकार के संसय हैं, वही 'सुनहां' कुत्तारूप है । उसको गुरू के शब्दरूपी सुसे ने मार दिया है । शुद्ध मन ही मैंडक है, उसने अनेक संसयरूपी सर्प को खा लिया है । अर्थात् निष्काम हो गया है । आत्मज्ञानरूप शब्द, मिथ्या ज्ञान का निवारण करता है । यहां पर विपर्य अर्थ का कारण यह है कि सतगुरू के उपदेश में, संसारी मानव की सहज प्रवृत्ति सम्भव नहीं है ।

दादू गांझी ज्ञान है, भंजन है सब लोक ।
राम दूध सब भरि रह्या, ऐसा अमृतपोष ॥३५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू का ज्ञानरूप उषदेश तो भेड़ है और चौदह लोक ही बर्तन हैं । निष्काम भक्ति और आत्मज्ञान ही उस भेड़ का दूध है । उस भेड़ के अमृत तुल्य दूध से सम्पूर्ण शरीरों का पोषण होता है ।

दादू झूठा जीव है, गढिया गोबिंद बैंन ।
मनसा मूगीं पंख सौं, सुरज सरीखे नैंन ॥३५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह जीव गर्भवास में परमेश्वर से कोल करार किया था, कि मैं आपका भजन करूंगा, ऐसा परमेश्वर ने समझाया था लेकिन उसको बाहर आकर भूल गया । यह मनसारूपी चींटी है, जिसके सत्य निश्चय रूपी पंख हैं और सुरज सरीखे कहिए, जिसके आत्म ज्ञानरूप नेत्र हैं, उनसे ब्रह्म में प्रवेश करिये ।

सांई दीया दत्त घणां, तिसका वार न पार ।
दादू पाया राम धन, भाव भगति दीदार ॥३५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनको परमेश्वर और सतगुरू ने प्रसन्न होकर, परिचयरूपी कहिए परमेश्वर का स्वस्वरूप रूपी द्रव्य दिया, उस धन का न आदि है और न अन्त ही है। इस रीति से हरि और ब्रह्मनिष्ठ गुरू की कृपा से, आत्म निश्चय प्राप्त हुआ। तब शील, संतोष, सत्य, दया, धर्म, स्नेह आदि द्रव्य बहुत प्राप्त हुआ। और फिर राभधन को हृदय में संचित करके कृत्य कृत्य हो गए हैं।

(नामदेव जी महाराज का निम्न पद)

दक्षिण भारत पंडलपुर में नामदेव जी महाराज ने विद्वानों की सभा में अपने अनुभव का एक शब्द बोला। वह शब्द सुनकर विद्वान बोले :- महाराज ! आप भक्त होकर अच्छी झूठ बोली। नामदेव जी बोले:- अनुभव का अर्थ, अनुभव वाले महात्मा ही बता सकते हैं। इसलिए यह पद आप, ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज जो आमेर में निवास करते हैं, उनके पास ले जाओ। वे आपको इसका अर्थ बतावेंगे। तब पंडलपुर से चार ब्राह्मण आमेर आए और गुरूदेव जी को अनुभव का पद सुनाया। उसके उत्तर में ३४६ से ३५१ तक की साखियों से ब्रह्मऋषि ने उत्तर दिया है।

लटके न बोलौं बाप, ब्रतमान गाढौ,
कोल्हा येवड़ा मोतीड़ा मैं, मंझे डोलै पेखीला ॥टेक॥
छेली बेली बाघ जैइला, मांझरिया भय टूंडै।
उड़त पंख में लवरू देख्या, नरली जे व्है टांडै।
बावलिया चै षोटै, माखनीयां च पोटै।
संखा सुनहां मारीला, तहं मींडक अभिला लोटै।
अम्हे जुगैला ब्राट देश तहं, गांझी दूध केला।
अब आटै गांझीला तहं, चौदह रंजन भरिला।
लटक्यौं गइयौ गढिया जोलै, गढिया येवड़ै रोलै।
उड़त पंख मैं मूंगि पेखी, बाटी जे है डोलै।
विष्णुदास नामदेव इसैं प्रणवै, येछैं जीव ची उक्ती।
लटके आछै सांगीला, ताछै मोक्ष न मुक्ति ॥

॥ इति परिचय का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ॥

□□□□

॥ अथ जरणा का अंग–५ ॥

“दादू पाया रामधन भाव भगति दीदार०”, इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब जरणा के अंग का निरूपण करते हैं । गुजराती भाषा के ‘जरबु’ शब्द से जरणा बना है । इसका अर्थ पचाना, धारण करना, गुप्त रखना, हजम करना है । और जरणा के नाना स्वरूप हैं, जैसे विषयाशक्ति, कटुक बचन आदिक की जरना, निग्रह, क्षमा, शान्ति रखना, सतगुरू उपदेश की जरणा धारण करना, नाम स्मरण से उत्पन्न आत्मज्ञान या आत्मा का आनन्द, उसकी जरणा करना, सिद्धि आदिक, चमत्कारों की जरणा, परमेश्वर दर्शन या साक्षात्कार, धर्मदान, शुभ कर्म इत्यादिक प्रकार से व्यवहार और परमार्थ के लिए, नाना भेदों की ‘जरणा’ का प्रस्तुत अंग में दृष्टान्त सहित प्रतिपादन करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः ।
बंदनं सर्वं साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- सर्व जरणास्वरूप निरंजनदेव को नमस्कार है । स्वयं सतुगुरूओं ने, परमेश्वर परिचय कराकर, जरणा का उपदेश किया है, उनके कमलरूप चरणार्बिन्द में नमस्कार है । साधुजन, जिन्होंने अपने सतसंग में जिज्ञासुओं को रखकर, जरणा करने वाले बनाये है, उनको बारंबार बन्दना है । इस प्रकार जरणावान पुरूष, संसार से पार हो जाते हैं ।

(जरणा का स्वरूप)

को साधु राखै रामधन, गुरू बाइक बचन विचार ।
गहिला दादू क्यों रहै, मरकत हाथ गवांर ॥२॥

टीका :-हे जिज्ञासुओ ! हजारों में से कोई एक आध साधक पुरूष, गुरूबचन का विचार करके, राम नाम रूपी धन को हृदय में संचित करके, गुप्त रखता है । बाकी तो संसारीजन पामर विषयो, उनके हृदयरूपी हाथ में यह रामधन नहीं रूकता है । जिस तरह व्यवहार में गंवार के हाथ में मरकट मणी नहीं रहती है, ऐसे ही रामधनरूपी मणि, बहिर्मुखों के हृदय में नहीं ठहरती है ।

दोहा :- साधु वस्तु दई जाट को, हुक्का में करि प्यार ।
जरी नहीं बकने लग्यो, फोरण लई उतार ॥२॥

दृष्टान्त :- एक संत घूमते हुए, एक जाट के घर आकर ठहरे । जाट सेवा करने लगा । संत ने विचार किया कि इसकी दिव्य दृष्टि बना दें । उन्होंने एक जड़ी का टुकड़ा चिलम में रखकर, अग्नि रखवाकर, बोले :- हुक्का पर रख ले । संत बोले :- खैंच । खैंचते के साथ ही, दिव्य चक्षु खुल गए । जाट के जरी नहीं । आकाश में देखा, बोले :- गुरू जी ! वह देवता विमान में जा रहा है, उस पापी को यमदूत ले जा रहे हैं, इस प्रकार बकने लगा । संत ने देखा, किस मूर्ख को जड़ी पिला दी । झट दूसरी मूर्ख जड़ी निकाली । संत ने कहा : चिलम उलट दे, और फिर कहा :- ये जड़ी रख । अग्नि चिलम में रख । अब खींच । ज्यों खैंची, खेंचते ही, आगे पीछे की जो कुछ दिखने लगी थी, वह सब बन्द हो गई और जाट पहले की तरह ही ठूठ रह गया ।

दादू मन ही मांहैं समझि करि, मन ही मांहि समाइ ।
मन ही मांहैं राखिये, बाहिर कहि न जणाइ ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने मन में ही राम धन को स्मरण करके, विचारपूवक परमेश्वर में लीन रहो । क्योंकि राम धन ऐसा गुप्त धन है, कि इसको मन में ही छिपा कर रखिये । किसी को कहकर नहीं बताना ।

दोहा -: एक नृप चाकर खा गयो, टांग सुसा की एक ।
त्रास दई ससक्यो नहीं, साधु लइ सु देख ॥३॥

दृष्टांत :-एक राजा को खरगोश के मांस खाने का शौक था । एक नौकर की ड्युटी राजा नेलगाई थी कि तुम रोज एक खरगोश जंगल से खोजकर लाया करो । एक रोज नौकर ने सोचा कि इसके मांस में क्या स्वाद

है ? मैं भी आज इसकी एक टांग तोड़कर, खाकर देखूं । फिर विचार किया कि राजा पूछेगा कि इसके तीन टांग ही कैसे हैं ? मैं बोल दूंगा:-अन्नाता यह तीन ही टांग का खरगोश है । तब वह एक टांग तोड़कर खा गया और फिर खरगोश को राजा के पास ले गया । राजा ने पूछा :-इसकी एक टांग कहां गई ? अन्नाता ! यह तीन टांग का ही है । राजा ने हाथ में हंटर लिया और उसके एक मारा । मूर्ख ! खून गिर रहा है और कहता है, तीन ही टांग का है ? बता, कहां गई एक टांग ? बोला :-अन्नाता ! चाहे जान से मार दो, टांग तो इसके तीन ही थी, यही बताऊंगा । एक संत भी उधर आ निकले । उन्होंने यह कौतक देखा और खड़े हो गए । फिर मन में विचार किया कि रामधन की, अपने धर्म पुण्य की, इसी प्रकार जरणा करनी चाहिए, जैसे इस नौकर ने सुसे की टांग की जरणा कर ली ।

दादू समझि समाइ रहु, बाहरि कहि न जणाइ ।
दादू अदभुत देखिया, तहं न को आवै जाइ ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू उपदेश को और आत्म तत्व को विचार करके समझो और उसी में लयलीन रहो । किन्तु बहिर्मुख होकर, इस अपने भेद को, किसी को नहीं कहना । इस प्रकार जो जरणावान पुरूष हैं, उसका आना जाना नहीं होता है और गुरू उपदेश से तथा आत्मा का जो साक्षात्कार हुआ है, उससे कभी विमुख नहीं होना । ऐसे जरणा करने वाले साधक का और ब्रह्म का स्वरूप आश्चर्ययुक्त है । फिर उस स्थिति को प्राप्त करने के बाद, उसमें व्यवहारिक प्रपंच कोई भी नहीं रहता है, अर्थात् सत्यरूप से नहीं भान होता है ।

कहि कहि क्या दिखलाइये, सांई सब जाणै ।
दादू प्रगट क्या कहै, कुछ समझि सयाणै ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह विश्वास रखिए कि घट घट अन्तर्यामी प्रभु तेरे सब शुभ अशुभ कार्यों को, हृदय में ही स्थित हुआ, सब देख रहे हैं । उस प्रभु के सामने, तुम अपने भक्तिभाव को क्या प्रगट कहते हो ? क्योंकि इससे तुम्हारा द्वैतभाव प्रगट होगा । इसलिये अपनी उत्तम करणी, भजन भाव, आदि को संसारिक लोगों को भी कहकर नहीं सुनाना । क्योंकि कहने से एक तो पतिव्रत खंडित होगा और द्वितीय भजनभाव आदि का फल नष्ट हो जाएगा ।

दोहा :- देख संत को तबकली, मैं क्यूं हूं परसिद्ध ।
लुख्यो जाइ आये प्रभु, तब खंकार्‍यो किध ॥५॥

दृष्टान्तः- एक संत से किसी पुरूष ने प्रश्न किया कि आप दुनियां में प्रसिद्ध हो रहे हो और दुनियां आपको मानती है, इसका क्या कारण है ? संत बोले :- हम रामजी का भजन करते हैं और राम का विश्वास रखते हैं । तब वह पुरूष बोला :- कि मैं भी राम का विश्वास कर लूं । संत बोले :- हां जरूर करो । तुम्हारी तरह प्रगट हो जाऊंगा ? संत बोले :- जरूर हो जाओगे । कहां विश्वास करूं ? संत बोले :- जंगल में जा और हृदय में राम का विश्वास धारकर, मुख से राम नाम का उच्चारण कर । तबकली बोला :- रोटी कहां से खाऊंगा ? संत :- जिसका भजन करेगा, वे आप ही लाकर देंगे । संत के वचन में विश्वास कर के, जंगल में जा बैठा । दो दिन तक कोई भी कुछ नहीं लाया । तीसरे दिन राम जी ने देखा :- कि यह तो संत वचन में विश्वास किये बैठा है, अब तो मैं ही रोटी ले कर चलूं । दो रोटी और सब्जी लेकर, जमींदार का रूप बनाकर, उसके पास आए । बोले :-ले रोटी खा ले । रोटी खाई, पानी पिया, और फिर ध्यान में बैठ गया । रोटी खिलाने वाला अन्तर्ध्यान हो गया । इस प्रकार तीन रोज तक रोटियां ला ला कर खिलाते रहे । चौथे दिन राम जी ने विचार किया :- इसकी परीक्षा तो कर लें ? इसको मेरा विश्वास है की नहीं ? तब बहुत देर लगा दी । यह बैठा बैठा इधर उधर झांकने लगा और विचार किया आज रोटी लेकर नहीं आया ? क्या बात हुई ? कहीं भूल तो नहीं गया है ? राम जी ने देखा :- इसके मन में घूड़ दौड़ मच गई है । तब अचानक बहुंत दूर इसको आते दिखलाई पड़े । फिर राम जी जरा टेढ़े टेढ़े, दूसरे रास्ते पर जाने लगे । तब यह जरा ऊंचा ऊंचा होकर, देखने लगा । घूटनों के बल खड़ा हो गया । फिर और भी टेढ़े चले राम जी । तो यह बिल्कुल खड़ा हो गया और सोचने लगा, मुझे आज उसने देखा नहीं । तब तो दोनों हाथ ऊंचे उठा लिए, फिर भी राम जी उधर नहीं झांके, तब तीन खंकारे किये । राम जी फिर भी नहीं झांके । तब बोला :- मैं यहाँ हूं । इधर आ इधर । राम जी अन्तर्ध्यान हो गए । यह सोचने लगा, वह तो अब दिखलाई नहीं देता है । तब आवाज हुई, हे बंदे ! तैंने विश्वास त्याग दिया मेरा । क्या खंकारे करता है ? मैं तो घट घट की जानता हूं । अब जा, हल चला, कमा के खा । वह मन में पश्चाताप करता हुआ, अपने घर चला आया । "कह कर क्या दिखलाइये सांई सब जानै०" ।

दादू मन ही मांहैं ऊपजै, मन ही मांहि समाइ ।
मन ही मांहैं राखीये, बाहरि कहिन जणाई ॥६॥

टीका :– हे जिज्ञासुओ ! मन में ही आत्मज्ञान उपजता है और उसको मन में ही रखना चाहिए । मन में ही ब्रह्म में लीन होना । अपने मन में ही ब्रह्मानन्द का अनुभव करना । किसी अनाधिकारी को कहकर नहीं सुनाना, अथवा जो कुछ अच्छी बुरी मन में उत्पन्न होवै, अपनी पराइ, उसको मन में ही रखना, जरणा करना ।

दोहा :- मोहोमद जी और आइसा, रहे बणीक गृह हेठ ।
असुचि रूई दई कातने, नेम निम्हायो ठेठ ॥६॥

दृष्टान्त :- एक रोज मोहम्मद साहब उनकी स्त्री आइसा, एक बनिये की हवेली के नीचे आकर, ठहर गए । बनिये ने दर्शन किया, ज्ञान सुना । सुबह शाम इनके पास बैठने लगा । बनिये की स्त्री ईश्वर विमुख थी । उसे यह बात अच्छी न लगी । वह उनको उठाने की चेष्टा करती रहती । परन्तु संत को सताना अच्छा नहीं होता है । उसके एक छोटा बच्चा था । बच्चे के टट्टियां लग गई । बनीया के रूई का कमरा भरा था । वह रूई का चूंखा लेवै और बच्चे की गुदा पूंछकर, उनकी तरफ फैंक दे । आइसा ने दो चार फुए आते देखे, उनमें भिष्टा लगा हुआ था । मोहम्मद जी से बोली:-महाराज ! यह गन्दे फुए ऊपर से फैंकती है । मोहम्मद जी बोले , इनको धो धो कर सुखाओ । कितने ही रोज हो गए, ऐसा काम होते । रूई बहुत इकट्ठी हो गई । आइसा बोली :- महाराज इसका क्या करोगे ? मोहम्मद जी बोले :- इसको कातो और कुकड़ी उतार उतार कर, इकट्ठी कर लो । सेठ जी का है, सेठ जी को दे देंगे । जब सेठ जी आए सतसंग सुना, जाने लगे, तब आइसा बोली :- यह सूत ले जाओ, आपका है । सेठ गट्ठड़ उठाकर, अन्दर ले गया । अपनी स्त्री को बोला :- यह सूत संतों को कातने को तुमने क्यों दिया ? वह बोली :- मैंने कब दिया ? ऊपर से बोली :- मेंने आपको सूत कातने को कब दिया था ? मोहम्मद जी बोले :-माता जी आप ऊपर से रोज कितने दफा फैंकते थे रूई ? हमने सोचा कि यह, माता जी देती है, कातने को । यह गंदी नहीं है, इसको धुलवा कर सुका कर, फिर कतवाया है, माता जी यह सुनते ही नीचे आई और मोहम्मद साहब और आइसा के कदमों में नमस्कार किया । अपना अपराध क्षमा करवाया । मोहम्मद ओर आइसा ने इतनो जरणा की । उस स्त्री को परमेश्वर की प्राप्ति का उपदेश देकर, शुद्ध बना दिया ।

(जरणा करने की विधि)

लै बिचार लागा रहै, दादू जरता जाइ ।
कबहु पेट न आफरै, भावै तेता खाई ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे रूचि पूर्वक भोजन किया जाता है वह अच्छा पच करके रस बनाता है, उसी प्रकार विचार पूर्वक, परमेश्वर के नाम स्मरण में लै लगाइये और जो आनन्द प्राप्त होवे, उसको अपने हृदय में ही जरणा करो । इस प्रकार अनन्य बिरहभाव सहित, राम का अनुभव करोगे, तो प्रभु के स्मरण से कभी भी तृप्ति नहीं होगी और पेट नहीं आफरेगा ।

दोहा :- सिंग नृप के शिश में, औरन जाणै कोइ।
नाई खाने में कहि, खाने में धुनि होइ ॥७॥

दृष्टान्त :- एक राजा के सिर में सिंग हो गया। राजा हजामत नहीं करावै। बाल बड़े बड़े बढ़ गए। मंत्री ने कहा :- अन्नाता हजामत बनवाइये। नाई को बुलवाया। राजा अलग एक कमरे में बैठकर, नाई से बोले:-मेरे सिर में सिंग है, किसी को कहना नहीं। अगर कह देगा, तो फांसी पर लटका दूंगा। नाई ने हजामत तो बना दी; परन्तु पेट अफरने लगा और घर पहुंचते पहुंचते, तो पेट ढोल की तरह ऊंचा आ गया। वापिस राजा के पास आया। बोला :- महाराज ! मैं मरा, देखो पेट अफर रहा है। राजा बोला :- क्या हो गया ? नाई:- महाराज ! वही बात आप वाली, अब मैं आप वाली बात कहूं, तब तो मेरा अफारा उतर जावै, नहीं तो पेट फटकर, मर जाऊंगा। राजा बोला :- जंगल में जहां कोई न हो, ऐसी जगह जा, वहां कह, ताकि तेरा अफरा उतर जावै। नाई दौड़ कर जंगल में पहुंचा और जहां से कुम्हार खोदकर मिट्टी लाते थे, उस गढ़े में जाकर तीन आवाज लगाई, "राजा के सिर सिंग।" नाई का अफारा उतर गया और घर आ गया। पीछे से कुम्हार मिट्टी लेने उस खान में गया। वहां प्रतिध्वनि हो रही रही थी, "राजा के सिर सिंग।" वह अपनी फावड़ी टोकरी छोड़कर दौड़ा। लोगों ने पूछा :- क्या हो गया ? मेरी खान में भूत है, आवाज हो रही है कि राजा के सिर सिंग। यह बात सारी जनता में फैल गई और राजा के पास पहुंच गई। राजा नाराज हुआ। मैंने नाई को कहा था, एकान्त में जाकर कहना। उसने सारी दुनियाँ को सुना दिया। नाई को बुलाया। क्यों रे मूर्ख ! तैंने सारी दुनियां को सुना दिया ? नाई ने पूर्वोक्त सब वृत्तान्त राजा को कह दिया। राजा विचार किया कि जड़ पदार्थ कै भी शब्द की जरणा नहीं हुई। तब मनुष्य कैसे जरणा कर सकता है ? परन्तु यहां पर जरणा, परमेश्वर के निष्कामी सच्चे भक्त ही कर सकते हैं, संसारीजन नहीं कर सकते।

जिन खोवै दादू राम धन, हिरदै राखि जिन जाइ।
रतन जतन करि राखिये, चिंतामणि चित लाइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! रामधन की जरणा करो और हृदय में गुप्त रखो। बाहर प्रगट नहीं करना। और इस चिंतामणि रूप परमात्मा के नाम को, अपनी वृति में अन्तर्मुख धारण करो। यह अमोलिक रतन है।

दोहा :- रतन मूस्यो बहु मोल को, छिप्यो जा मुरदा मांहि।
चोट सहारी सेल की, तो भी कसक्यो नांहि ॥८॥

दृष्टान्त :- एक चोर ने सुना कि राजा के यहां चितामणि रूप हीरा है। तब चोर ने जौहरी का रूप बनाया, एक नकली हीरा लिया। राजा के दरबार में जाकर, राजा के नजर किया। तब राजा ने भी अपना चितामणि हीरा निकाल कर, जौहरी के पास रख दिया। चोर जौहरी के पास एक और नकली हीरा था। वह राजा की आंख बचाकर, दूसरा नकली हीरा रख दिया और चितामणी रूप हीरा उठाकर, अपनी जेब में डाल लिया। वहां से चल पड़ा। पीछे से राजा का जौहरी आया। बोला :-अन्नाता ! यह कांच के टुकड़े, आज कैसे रखे हैं ? राजा ने पूर्वोक्त वृतान्त कह सुनाया। जौहरी बोला :- वह तो कोई ठग था। राजा खुद सेना लेकर चल पड़ा, खोज निकालता निकलता। आगे एक जगह एक मुर्दा पड़ा था। चोर ने सोचा, राजा मेरे खोज निकालता आ रहा है, मैं इस मुरदे के पास मुरदा बन जाऊं। खोजी के सहित, राजा वहां आ पहुंचे और खोजी बोला :- आगे खोज नहीं चलते हैं, यहीं है चोर इन मुरदों में। राजा ने कहा :- एक एक बेंत इनके जोर से मारो। चोर होगा तो वह आप बोलेगा। नहीं बोला। खोजी ने कहा :- इन्हीं में है। राजा के हुक्म से एक एक सेल जांघ में मारा। नहीं कसका। राजा ने कहा अब क्या करें ? खोजी :- वह हीरा उसी को दे दो, वह तब प्रगट होगा। राजा बोला :- वह हीरा तुझे ही दे दिया, सब कसूर माफ कर दिया, प्रगट हो जा। इतना कहते ही बैठा हो गया। राजा बोला :- तेरे को हमने इतनी त्रास दी, तूं क्यों नहीं बोला ? तब चोर बोला :-

दोहा :- लज्जा आती मुरदा नू, हथों जातो हीर।
ताथै मैं कसक्यो नहीं, सुन यहु साह सुधीर ॥

सोई सेवग सब जरै, जेति उपजै आइ।
कहि न जणावै और कौं, दादू मांहि समाइ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही सच्चा सेवक है, जो अपने अन्तःकरण में उत्पन्न हुआ आत्मज्ञान को गुप्त रखता है। और परमात्मा की प्रेमाभक्ति जो हृदय में उत्पन्न हुई है, उसको किसी को कहकर न बतलावे, क्योंकि विषयी पामर सकामी, भक्ति को नहीं पचा सकते ।

सोइ सेवग सब जरै, जेता रस पीया।
दादू गूझ गंभीर का, परकासन कीया ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही राम का सच्चा सेवक है, जो राम का स्मरणरूपी रस पिया है, उसको गुप्त रखता है। अर्थात् 'गूझ' कहिए गुप्त, गम्भीर सर्वोउत्तम, रामधन को कहकर, प्रकाश नहीं करता है।

सोई सेवक सब जरै, जे अलख लखावा।
दादू राखै रामधन, जेता कुछ पावा ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो अलख परमेश्वर को प्रत्यक्ष करके, गुप्त रखता है, और अपूर्व राम के स्मरण को अपने हृदय में ही सुरक्षित रखता है ऐसे जरणा करने वाले पुरूष को धन्य है, वही सच्चा सेवक है ।

सोई सेवग सब जरै, प्रेम रस खेला।
दादू सो सुख कैसे कहै, जहां आप अकेला ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम का सच्चा सेवक वही है, जिसको जितना प्रेमाभक्ति का आनन्द प्राप्त हुआ है, और एकता की अनुभुति की है, उस सबको गुप्त रखता है, क्यों कि वह कैसे कहे ? 'जहां' कहिए हृदय आकाश में, आप स्वयं अधिष्ठान चेतन्य से, ओत प्रोत हो गया है । वह सुख अवाच्य है ।

सोई सेवग सब जरै, जेता घटि परकास।
दादू सेवग सब लखै, कहि न जणावै दास ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसके हृदय में पूर्ण ब्रह्म का प्रकाश है, वही सचचा जरणा करने वाला सेवक है। ऐसा सेवक स्वरूप साक्षात्कार करके भी, किसी को कहकर, अपनी कीर्ति नहीं करवाते । ऐसे पुरूष, सर्व शुभ अशुभ को जानते हुए भी मौन रहते हैं और किसी को बचन आदि देकर, सिद्धि चमत्कार नहीं दिखाते। केवल प्रभु का ही पतिव्रत रखते हैं और परमेश्वर से अतिरिक्त किसी का यश कीर्ति क्यों कहैं ? वह परमात्मा अन्तर्यामी हैं, घट घट की स्वयं सब जानते हैं, अब उनसे क्या कहना है ?

अजर जरै रसना झरै, घटि मांहि समावै।
दादू सेवग सो भला, जे कहि न जणावै ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अजर कहिए ब्रह्मानन्द को जरावै । स्वरूप साक्षात्कार करै और ब्रह्मानन्द रूप रस को कह करके नहीं जनावै, बहिर्मुखियों को । और काम क्रोध आदि को नष्ट करके, राम रस को पीवै और ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा, स्वस्वरूप में ही स्थिर रहै । अपनी साधना को प्रगट नहीं कहै, ऐसे पुरूष उत्तम हैं ।

अजर जरै रसना झरै, घट अपना भरि लेइ।
दादू सेवग सो भला, जारै जाण न देइ ॥१५॥

टीका :-हे जिज्ञासुग्रो ! अपने स्वरूपानन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करके, अजर ब्रह्मानन्द स्वरूप रस को पचावै और झरने कहिए कह कर न जनावै और अपने आपा अहंकार को बिरह रूप अग्नि में जलाकर क्षार कर दे । वहां स्वयं परमात्मा प्रगट होता है। ऐसे सेवकों को धन्य है ।

अजर जरै रसना झरै, जेता सब पीवै ।
दादू सेवग सो भला, राखै रस जीवै ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूर्ण ब्रह्मभाव को प्राप्त होकर, अजर जो ब्रह्मरस है, उसको पचावै, प्रगट नहीं करै । इस प्रकार बह्मानन्द में अखण्ड वृत्ति लगाकर, जो सेवक जीवन मुक्त हैं, उनको धन्य हैं ।

अजर जरै रसना झरै, पीवत थाकै नांहि ।
दादू सेवक सो भला, भरि राखै घट मांहि ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही सेवक धन्य है, जो अजर अमर ब्रह्मरस को पीता हुआ, कभी भी तृप्त नहीं होता है । अतृप्तभाव से अखण्ड वृति द्वारा, ब्रह्मानन्द रूपरस को पान करै और किसी को कहिए बहिरंग पुरूषों को कहकर न बतावै, ऐसे संत ब्रह्मरस को पचाकर, स्वस्वरूप में मग्न रहते हैं ।

(साधु महिमा)

जरणा जोगी जुगि जुगि जीवै, झरणा मरि मरि जाइ ।
दादू जोगी गुरू मुखी, सहजैं रहै समाइ ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू की शिक्षा को मानकर, उसको जो पचाता है, अर्थात् गुप्त रखता है, वह शिष्य सम्पूर्ण इन्द्रियों के गुण विकार आदि की वृत्तियों को रोक कर, फिर अपने सहज निर्द्वन्द स्वरूप ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है और अमर भाव को प्राप्त होता है । इससे विपरीत, जो पुरूष सतगुरूओं की आज्ञा को उलंघन करके, पंच विषयों में प्रवृत्त होता है, तथा ब्रह्माकार वृत्ति को दुनियावी चमत्कार आदिक में जो लगाता है, वह पुरूष जन्म जन्मान्तरों में जन्म मृत्यु को प्राप्त होता रहता है ।

जरणा जोगी जगि रहै, झरणा परलै होइ ।
दादू जोगी गुरूमुखी, सहजि समाना सोइ ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जरणा करने वाला पुरूष, अज्ञान और जगत के जन्म मरण आदिक से रहित होता है । और 'झरणा', बहा देने वाला पुरूष उत्पत्ति नाश को प्राप्त होता है । तथा गुरूमुखी जरणा करने वाला योगी, तो नाना प्रकार के गुण विकारों से मुक्त होकर, स्वभाव से ही आतम स्वरूप में वृत्ति को समाकर मुक्त हो जाता है ।

जरणा जोगी थिर रहै, झरणा घट फूटै ।
दादू जोगी गुरूमुखि, काल थैं छूटै ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'जरणा' कहिए पचाने वाला गुरूमुखी योगी तो अमर होता है और जो गुरू के उपदेश को नहीं पचा पाता, वह पुरूष 'प्रलय' कहिए नाश को प्राप्त होता है, ऐसे पुरूष भगवान से विमुख रहकर, जन्म जन्मान्तरों में भटकते रहते हैं । परन्तु जो गुरूमुखी हैं, वे अशुभ वासना रूप काल से मुक्त रहते हैं ।

जरणा जोगी जगपती, अविनासी अवधूत ।
दादू जोगी गुरूमुखी, निरंजन का पूत ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जरणा करने वाला भक्त, सम्पूर्ण जगत में उत्तम है और वही पाप कर्मों से छुटकारा पाकर, निर्मल कहिए निष्पाप होकर, जरामरण भाव से रहित होता है । ऐसा गुरूमुखी योगी "निरंजन का पूत" कहिए, निरंजन को अत्यन्त प्रिय है ।

जरै सुनाथ निरंजन बाबा, जरै सु अलख अभेव ।
जरै सु जोगि सब की जीवनि, जरै सु जग में देव ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जगत में जो अलख, अभेव, निरंजन, निराकार, ब्रह्मतत्व है, उसको अपना आत्मस्वरूप करके जानो । ऐसे स्मरण करते हुए, उसको पचाओ । इस प्रकार की जरणा समस्त भक्तों की, जीवन का आधार है । ऐसी जरणा करने वाला भगवत् भक्त, जगत में ब्रह्मरूप होते हैं, तथा वह परमेश्वर सम्पूर्ण सृष्टि के जीवों के गुण विकारों को जानते हैं । फिर भी उनको पचा लेते हैं ।

जरै सु आप उपावन हारा, जरै सु जगपति सांई ।
जरै सु अलख अनूप है, जरै सु मरणा नाई ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो भक्त सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, संघार करने वाले, परमेश्वर का स्मरण द्वारा, साक्षातकार कर लिया है । फिर उस आनन्द को पचाता है, वह भक्त स्वयं अपने आपको भी, जगतपति में अभेद करके, उस आनन्द को जराता है अर्थात् पचाता है वह धन्य है ।

जरै सु अविचल राम है, जरै सु अमर अलेख ।
जरै सु अविगत आप है, जरै सु जग मैं एक ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरूष, परमेश्वर को अपनी आतमा में ही प्रत्यक्ष करता है और अपने को परमेश्वर में अभेद करके, निश्चय किया है, वह मुक्तपुरूष, परमातमा के अविचल, अमर, अखय, अभय अलख, और अविगत पद को प्राप्त होता है ।

जरै सु अविगत आप है, जरै सु अपरम्पार ।
जरै सु अगम अगाध है, जरै सु सिरजनहार ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण संसार के जीवों के अवगुणों को 'जरै' कहिए पचाता है और स्वस्वरूप ब्रह्म का आनन्द अनुभव करके, उसे पचाता है, वही पुरूष ब्रह्मरूप है । उसकी महिमा अपार कहिए बेहद है, तथा उसकी "गति" कहिए धारणा भी अगम अगाध है ।

दोहा :- सारग्राही एक नृप हो, औगण लेतो नांहि ।
मरे श्वान को देखकर, दांत सराये तांहि ॥२५॥

दृष्टान्त:- एक राजा थे । उनको एक संत ने उपदेश किया कि जीवों के अवगुण नहीं देखना, उनमें गुण देखना । फिर राजा किसी को बुरा नहीं कहता और उनमें जो गुण होता, वह ले लेता । एक दिन मंत्री राजा की परीक्षा करने के लिए राजा को उस मार्ग से ले गया, जिधर एक मरा कुत्ता पड़ा था । मंत्री बोला :- महाराज ! यह दुष्ट कुत्ता, पहले कुकर्मों से तो कुत्ते का शरीर पाया और अब इसमें कीड़े पड़ गए । फिर भी यह सबको दुर्गन्धि द्वारा दुख पहुंचाता है । राजा बोला :- मंत्री जी देखो :- इसके दांत कितने छोटे छोटे सुन्दर हैं । मंत्री ने राजा के चरण स्पर्श किए और बोला :- अन्नाता, आप किसी को भी खराब नहीं बतलाते हैं, उसमें कुछ न कुछ गुण ढूंढ लेते हो, इसका क्या कारण है ? राजा बोले :- मंत्री, अवगुण तो सभी लेते हैं, परन्तु मनुष्य जन्म पाकर गुण ग्रहण करै, उसी की बलिहारी है ।

जरै सु निज निराकार है, जरै सु निज निरधार।
जरै सु निज निरगुण मई, जरै सु निज ततसार ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निरंजन निराकार ब्रह्म के स्मरण करने वाले पुरूष, निराकार स्वरूप होते हैं। और अनात्म वासनाओं से मुक्त हैं और गुणातीत होते हैं। उन्होंने तत, त्वम्, शब्द के लक्ष्य अर्थ को प्रत्यक्ष कर लिया है।

दोहा :- पाडुग्राम में पक्षपात की बात से, अन्तन विजय दिखात।
अल्लहण ने पाडी दुही, लज्जित साध जमात ॥२६॥

दृष्टान्त :- पाडु गांव में ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज का शिष्य अल्लहण भक्त निवास करते थे। वह तत्ववेता ज्ञानी पुरूष थे। ग्रहस्थी के नाते, सभी संतों की सेवा भी किया करते थे। एक रोज एक साधुओं की जमात आ गई। उनकी सेवा की, और सतसंग होने लगा। तब अल्लहण भक्त बोले :- ब्रह्मऋषि गुरूदेव हमारे ब्रह्मरूप हैं, क्योंकि ब्रह्म का स्वरूप जिन्होंने जान लिया, वे ब्रह्मरूप ही होते हैं। जमात के साधुओं ने कुछ खींचा तानी का, अर्थात् पक्षपात का उपदेश करने लगे। अल्लहण भक्त बोले कि यह पडिया है, या तो आप इसका दूध निकाल कर बताओ, या मैं आपको गुरूकृपा से दूध निकाल कर बताऊंगा। साधु बोले :- आप ऐसे गुरूमुखी भक्त हैं तो आप ही, इसका दूध निकाल कर बताओ। तब अल्लहण भक्त ने सत्यराम कहकर, पडिया पर हाथ रखा और पडिया को दूहने बैठ गए। लौटा दूध से भर गया। यह देखकर, सम्पूर्ण साधु लज्जित हो गए और बोले :- आप तो परमेश्वर का रूप ही हो, भक्त जी।

जरै सू पूरण ब्रह्म है, जरै सू पूरणहार।
जरै सू पूरण परमगुरू, जरै सू प्राण हमार ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के स्वरूप की जरणा करने वाले, ब्रह्मवेताओं की अपार महिमा है, क्योंकि वह अपने लक्ष्य स्वरूप को प्राप्त करके, अपूर्व राम रस को पचाते हैं। इसलिए वह स्वयं भी परमात्मा रूप पूर्ण भाव को प्राप्त हो गए हैं। वह सबके प्राणाधार स्वरूप ही हैं।

दादू जरै सु जोति स्वरूप है, जरै सु तेज अनन्त।
जरै सु झिलमिल नूर है, जरैं सु पुंज रहंत ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जरणा करने वाला योगी, ज्योति स्वरूप अनन्त तेजोमय होकर प्रकासता है। और जड़ चेतन, सम्पूर्ण सृष्टि में, ब्रह्म चेतन्य का झिलमिलाहट को ही देखता है। इस प्रकार जरणावान भक्त, भगवान की ज्योति, तेज, नूर रूप होकर, अनन्त अपार रूप से प्रकासता है।

दादू जरै सु परम प्रकास है, जरै सु परम उजास।
जरै सु परम उदीत है, जरै सु परम बिलास ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जरणा करने वाला पुरूष, सर्व श्रेष्ठ और स्वयं प्रकासरूप है तथा सर्वत्र उजागर और स्वयं सिद्ध है। जरणा करने वाला श्रेष्ठ उत्साह स्वरूप है, उससे उत्तम और कोई नहीं है।

दादू जरै सु परम पगार है, जरै सु परम बिगास।
जरै सु परम प्रभास है, जरै सु परम निवास ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जरणा करने वाला 'पगार' कहिए प्रकासमय और 'बिगास' नाम प्रफुल्लित है। जरणावान योगी ब्रह्म स्वरूप होकर, अधिष्टान ब्रह्म में अभेद होता है। और उपरोक्त सम्पूर्ण अंग का जरणा से' गुण बिकार आदि के पचाने का निर्देश है।

(परमेश्वर की दयालुता)

दादू एक बोल भूले हरि, सो कोई न जाणै प्राण।
औगण मन आणै नहिं, और सब जाणै हरि जाण ॥३१॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हे प्रभु ! आप एक वार्ता को तो मानो भूल ही गए हो, यद्यपि इस आपकी वार्ता को कोई भी प्राणधारी नहीं जानता है। वह वार्ता क्या है ? "औगुण मन आणै नहीं और सब जाणै हरि जाण"—अर्थात् सर्व अन्तर्यामी रूप भाव से, आप जीवों के सब गुण और अवगुणों को जानते हो। परन्तु दया और जरणारूप भाव से आप प्राणियों के अवगुणों को नहीं धारते हो।

दोहा :- मूसे साहिब से कही, अन्न पूरण ब्रत देऊ।
मुई तीये संग देखकर, याको अन्न नही देऊ ॥३१॥

दृष्टांत :- एक दफा मूसा पैगम्बर खुदाताला के पास गए और बोले :- आप सबको रोजी देते हो, खाने पीने को। वह काम मैं करूंगा। खुदाताला बोले :- मूसा यह काम तो मेरा ही है। मूसा बोले :- एक रोज

तो आप मुझे देकर, मेरी परीक्षा करो । खुदाताला बोले :- अच्छा कल सम्पूर्ण सृष्टि को खाने को तुम दे आना । जब मूसा अन्न पूरने चले, तो सबको पूरते पूरते समुद्र के तट पर पहुंचे । बहां पर एक मरी हुई स्त्री के साथ, राक्षसी प्रकृति वाला पामर पुरूष स्पर्श करता था । मूसा बोले :- इस काफिर को खाना नहीं दूंगा । खुदा के पास पहुंचे । खुदा ने पूछा :- सबको पूर आए । बोला :- हाँ, सबको पूर आया । खुदा बोले :- एक समुद्र के किनारे रह गया । मूसा बोले :- तोवा ! तोबा ! ऐसे काफिर को खाना नहीं देना चाहिए । उसका मर जाना ही ठीक है । खुदाताला बोले :- मूसा ! तुम फेल हो गए । एक जीव का अवगुण देखकर तुमने खाना नहीं दिया । मैं तो सम्पूर्ण सृष्टि में जीवों के कदम कदम पर अवगुणों को देखता हूं । तुम्हारी तरह देखूं तो, यह सम्पूर्ण सृष्टि एक पल में नष्ट हो जाय । मूसा लज्जित हो गए ।

(सतगुरू अगम बात जानने के लिए विनय करते हैं)

दादू तुम्ह जीवों के औगुण तजे, सुकारण कौन अगाध ।
मेरी जरणा देखि कर, मति को सीखै साध ॥३२॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज परमेश्वर से प्रश्न करते हैं कि हे अगाध ! आप जीवों के अवगुणों को भूले रहते हो, इसका क्या कारण है ? परमेश्वर कहते हैं कि हे मेरे रूप ! इस मेरी 'जरणा' कहिए शान्ति, क्षमा आदिक को देखकर, मेरे भक्त साधुजन भी, इस वृत्ति को धारण करें ।

(धारणा)

पवना पानी सब पिया, धरती अरू आकास ।
चंद सूर पावक मिले, पंचौं एक गरास ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पवन का गुण विषयों में अनासक्ति, जल का गुण शीतलता, धरती का गुण क्षमा, आकाश का गुण असंगता, अग्नि का गुण तेजस्वीपना, चन्द्र का गुण सौम्यता, सूर्य का गुण भक्ति में सूरवीरता । सतगुरू कहते हैं सो हमने धारण कर लिए हैं, ग्रासवत ।

चौदह तीनों लोक सब, ठूंगे सासैं सांस ।
दादू साधू सब जरै, सतगुरू के विश्वास ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चौदह भवन और तीनों लोकों के सम्पूर्ण गुण, हमने पूर्ण रूप से धारण किये हैं । गुण औगुण, शीत उष्ण, सुख दुःख सब सहन किये हैं और पांचों इन्द्रियों के विषयों का भी एक

प्रासवत कर लिया है और श्वांस प्रति श्वांस में अखंड ब्रह्मानन्द के रस में तदाकार हो रहे हैं। परन्तु यह सब सतगुरू के उपदेश में विश्वास धारण करने से होता है।

दोहा :- छः प्रकार जरणा सही, श्री दयाल जी भाखी।
घन आनन्द प्रकास रस गुण, परचा इन्द्रिये दृढ राखी ॥३४॥

॥ इति जरणा का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ॥

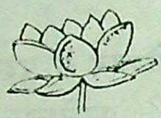

॥ अथ हैरान का अंग–६ ॥

जरणा के अंग संख्या साखी ४ में "दादू अदभुत देखिया........." इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब हैरान के अंग का निरूपण करेंगें । प्रथम आश्चर्य स्वरूप, परमेश्वर की प्राप्ति के लिए, मंगलाचरण करते हैं ।

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवतः ।
बंदन सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- हैरान स्वरूप निरंजनदेव को बारम्बार नमस्कार है और जो दिव्य मूर्ति सतगुरू हैरान स्वरूपी ब्रह्म का प्रत्यक्ष कराते हैं, उनको हमारी बारम्बार नमस्कार है । सर्व साधुओं को, जिनके सतसंग में हैरान स्वरूपी ब्रह्म का अनुभव करते हैं, उनको भी हम बारम्बार बंदना करते हैं । इस रीति से हरि गुरू संतो को प्रणाम करके, आश्चर्यस्वरूप भगवान के 'पारंगत' कहिए, मर्म को प्राप्त करते हैं, अर्थात् साक्षात्कार करते हैं ।

रतन एक बहु पारखू, सब मिलि करैं विचार ।
गुंगे गहिले बावरे, दादू वार न पार ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे व्यवहार में कोई अमोलिक रतन हो, तो अनेक जौहरी मिलकर, विचार करके थक जाते हैं, किन्तु उसका कोई वार पार नहीं पाकर, गुंगे गहिले हो जाते हैं । वैसे ही पूर्ण ब्रह्म अमोलिक रत्न है, जिसको परखने वाले देव, पंडित, भक्त, सिद्ध आदिक हैं, परन्तु ब्रह्म स्वरूप का कोई परमार्थ परिणाम नहीं पाकर, ब्रह्म के अपार अद्वैत स्वरूप को विचार करके, मुक्तजन उसमें गुंगे, (अबोध) और गहिले कहिए गलतान तनमय होकर, बावरे संसार से विरक्त (उदासीन) हो जाते हैं ।

दोहा :- बालमिकि बावर भये, गैले भये जड़ भरत ।
बामदेव गुंगे भये, ... ॥

दोहा :- इकसांई अरु शुन्य कै, आदि अंत मध्य नांहि ।
सोधण हारे सब थके, जन रज्जब ता मांहि ॥

(अनेक मतवादी)

केते पारिख जौहरी, पंडित ज्ञाता ध्यान ।
जाण्या जाइ न जाणिए, क्या कहि कथिये ज्ञान ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम रत्न को परखने वाले, जौहरीरूप अनेक पंडित, सहदेव, ज्ञाता, याज्ञवल्क आदिक, ध्यान करने वाले शेष जी, और संतजन, ब्रह्मतत्व का विचार कर करके, थक रहे हैं । किन्तु ब्रह्म का अमुक स्वरूप है । इस रीति से ब्रह्म का किसी ने भी पूर्ण स्वरूप नही जाना है । तात्पर्य यह है कि अनुभव द्वारा, यद्यपि ब्रह्मतत्व जाना जाता है । किन्तु इन्द्रियों आदिक का विषय नहीं है, जिससे ब्रह्मतत्व के कथन या श्रवण के परीमाण में, कथन और श्रवणभाव सम्भव नहीं है । अर्थात् ब्रह्मतत्व किसी इन्द्रियादि से गम्य हो तो, उसका स्वरूप प्रतिपादन करिये । किन्तु ब्रह्म तो अविषय निर्विकारी है, इस वास्ते ब्रह्म का कोई भेद नहीं पा सकता है ।

केते पारिख पचि मुयें, कीमत कहि न जाइ ।
दादू सब हैरान हैं, गूंगे का गुड़ खाइ ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बेद और बेद के छह अंग व परमेश्वर के सनकादि भक्त, नाना प्रकार से ब्रह्म का वर्णन करते हैं, परन्तु उसका पार नहीं पाया है । जैसे गूंगा पुरूष गुड़ खाकर, नाना संकेत व प्रसन्नता आदि भाव दर्शाता है, परन्तु बाणी से कह नहीं सकता, वैसे ही बेद, बेद के अंगों ने भी, नेति नेति कहकर, लक्षणावृति से प्रतिपादन करते हैं । किन्तु "यह है" इस रीति से कोई भी ब्रह्म स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं करा सकते हैं ।

सब ही ज्ञानी पंडिता, सुर नर रहे उरझाइ ।
दादू गति गोबिन्द की, क्यौं ही लखी न जाइ ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अनेक पंडित, ज्ञानी, ध्यानी मनुष्य, देव आदिक ब्रह्मतत्व का निर्णय करने में, सलग्न हो रहे हैं । किन्तु गोबिन्द की 'गति' कहिए समर्थाई को, कोई भी प्रत्यक्ष नहीं करा सकते हैं । ब्रह्म-तत्व प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से अगम्य है ।

जैसा है तैसा नाम तुम्हारा, ज्यों है त्यों कहि सांई ।
तूं आपै जाणैं आपको, तहं मेरी गमि नांई ॥६॥

टीका :- हे अपरम्पार ! आपके जैसे अपार अनन्त नाम हैं, वैसे ही आपका स्वरूप भी अपार अनन्त है । इस वास्ते आप अपने यथार्थ स्वरूप का, अपने भक्तों को प्रत्यक्ष कराइये । क्योंकि आपकी जैसी अपार महिमा है, उसको आप ही जानते हो । तहां मेरी कुछ भी शक्ति नहीं पहुंचती है । अपको अपना आत्म स्वरूप जानने पर, मैं कहिए मेरे इस अहम्त्व रूप को वहां कोई भी स्थान नहीं है । ऐसा अपना अनुपम स्वरूप को प्रत्यक्ष दिखाइये ।

केते पारिख अंत न पावैं, अगम अगोचर मांही ।
दादू कीमत कोइ ना जाणैं, खीर नीर की नांई ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपना आत्मस्वरूप ब्रह्म, मन बाणी से अगोचर है, और जल दूध की भांति, माया ब्रह्म की भिन्नता और नाम नामी की महिमा का कोई भी पार नहीं पाता है । इसलिए जब परमेश्वर की कीमत किसी प्रकार से भी वर्णन करने में नहीं आती है, तो अब दूध और पानी की तरह, परमेश्वर में अभेद हो जाओ ।

जीव ब्रह्म सेवा करैं, ब्रह्म बराबरि होइ ।
दादू जाणै ब्रह्म कौं, ब्रह्म सरीखा सोइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब यह जीवात्मा निरावर्ण होकर, अखंड ब्रह्म विचार में लगै और अहंग्रह उपासना द्वारा ब्रह्म का विचार करैं । तथा मल विक्षेप आवरण को दूर करके, फिर यह ब्रह्म स्वरूप ही होता हैं ।

वारपार को ना लहै, कीमत लेखा नांहि ।
दादू एकै नूर है, तेज पुंज सब मांहि ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्म के स्वरूप का कोई भी वार पार आदि अंत नहीं पाता है और न कोई उसकी परीक्षा हो कर सकता है । ऐसे अद्वैत स्वरूप ब्रह्म का तेज पुंज, सम्पूर्ण प्राणियों में व्याप्त हो रहा है ।

(पीव पिछान)

हस्त पावं नहिं सीस मुख, श्रवण नेत्र कहुं केसा ।
दादू सब देखै सुणै, कहै गहै ऐसा ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप अति आश्चर्यमय है, क्योंकि प्रभु के प्राकृतिक नेत्र तो हैं नहीं, परन्तु फिर भी वह सम्पूर्ण शुभ कर्म करने वाले को देखते हैं । ऐसे ही परमेश्वर के श्रोत तो हैं नहीं, किन्तु अपने भक्तों की प्रार्थन. को श्रवण करते हैं, तथा बिना मुखार्बिन्द के ही, अपने भक्तों से वार्तालाप करते हैं और ऐसे ही हस्त पाद आदि बिना ही, अपने भक्तों को रक्षा करते हैं और उनका प्रतिपालन करते हैं । ऐसा ब्रह्म का हैरान स्वरूप है ।

पाया पाया सब कहैं, केतेक देहु दिखाइ ।
कीमत किनहूं ना कही, दादू रहु ल्यो लाइ ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अनेक संत, सिद्ध आदिक ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार करके, लक्षणावृति द्वारा, मुमुक्षुजनों को भी बोध कराते हैं । किन्तु शक्ति वृत्ति द्वारा, किसी ने भी पार नहीं पाया है । इसलिये हे संतो ! उसी अपार ब्रह्मतत्व में अपनी चित्तवृति को लयलीन करिये ।

अपना भंजन भरि लिया, उहां उत्ताही जाणि ।
अपणी अपणी सब कहैं, दादू बिड़द बखाण ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे समुद्र से कोई एक या दो घड़े पानी के भर लावे, तो समुद्र की अनन्तता में कोई कमी नहीं आती है, इसी प्रकार ब्रह्म के ज्ञान विचार द्वारा, संतजन अपना आत्म कल्याण करते हैं । परन्तु इस से ब्रह्म की अखण्डता और एकता में कोई कमी नहीं आती है ! संतजन अपने अपने अनुभव द्वारा, उस परमेश्वर का 'बिड़द' कहिए यश का वर्णन करते हैं किन्तु ब्रह्म के अपार, अनन्त, हैरान स्वरूप का किसी ने अन्त नहीं पाया है ।

पार न देवै आपणा, गोप गूझ मन मांहि ।
दादू कोई नाल हैं, केते आवैं जांहि ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपार ब्रह्मतत्व का कोई भी पार नहीं पाया है क्योंकि वह समष्टि चेतन्य, अपने अखंड स्वरूप में कहिए अपनी स्वमहिमा में स्थित है और मन इन्द्रियों से अगम अगोचर है । अनेक योगीजन सहज समाधि द्वारा, नाना प्रकार से ब्रह्म विचार कर करके हैरान हो रहे हैं । कितने ही साधक पुरुष उसके स्वरूप में आकर अभेद हो रहे हैं - और कितने ही सतसंग के द्वारा जा रहे हैं । परन्तु उसका किसी ने भी अन्त नहीं पाया है ।

गुंगे का गुड़ का कहूं, मन जानत है खाइ ।
त्यौं राम रसाइण पीवतां, सो सुख कह्या न जाइ ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे गूंगा पुरूष गुड़ खाकर, उसका रसा स्वाद मन में जानते हुए भी वर्णन नहीं कर सकता है, उसी प्रकार व्यापक राम का दर्शनामृत पान करने में, जो अलोकिक सुख उत्पन्न होता है, उसका लोकिक उपमाओं द्वारा, मन इन्द्रियों से वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

दादू एक जीभ केता कहूं, पूरण ब्रह्म अगाध ।
बेद कतेबां मित नहीं, थकित भये सब साध ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस पूर्ण ब्रह्म की अनन्त अपार महिमा है । जिसका प्रतिपादन कर करके, समस्त वेद पुराण और सम्पूर्ण संतजन, थकित हो रहे हैं । मैं उसका क्या वर्णन कर सकता हूं ?

दादू मेरा एक मुख, कीरति अनन्त अपार ।
गुण केते परिमित नहीं, रहे विचार विचार ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस परमेश्वर के अनन्त अपार स्वरूप का विचार कर करके, सभी भक्त लोग हैरान हैं । मैं अपने एक मुंह से उसका क्या वर्णन कर सकता हूं ? उसके गुण और महिमा अपार हैं ।

सकल सिरोमणि नाम है, तूं है तैसा नांहि ।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जांहि ॥१७॥

टीका :- हे प्रभु ! सर्व साधनों में श्रेष्ठ, आपकी प्राप्ति कराने वाला आपका नाम स्मरण है। हे स्वामी ! आप अनन्त स्वरूप हो, वैसे ही आपके नाम भी अनन्त हैं। परन्तु आपके भक्तजन आपका नाम स्मरण करते हुए, आप में अभेद हो जाते हैं। किन्तु आपका अन्त नहीं पाते हैं। कितने ही मुक्तजन, आपके स्वरूप में अभेद हो रहे हैं और कितने ही साधक पुरुष, नित्य अनित्य का विचार करते हुए, आपके स्वरूप की ओर आ रहे हैं।

दादू केते कहि गये, अंत न आवै और।
हम हूं कहते जात हैं, केते कहसी और ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस परमेश्वर के अपार स्वरूप का और उसके अनन्त नामों का, कोई भी पुरुष अन्त नहीं पाते हैं, क्योंकि अनन्त ही युग युगान्तरों में उसके भक्तजन ब्रह्म विचार और नाम स्मरण से ब्रह्मरूप हो गए हैं और हमारा भी तुमको, उस ब्रह्म के विषय में यही उपदेश है। तथा भविष्य में भी अगणित संतजन उस ब्रह्मतत्व का ऐसा ही प्रतिपादन करेंगे। किन्तु इसमें ब्रह्म की अखंडता में किंचित भी न्यूनता संभव नहीं है, अर्थात् वह ब्रह्मतत्व अखंड अविनाशी है, और अणु अणु में व्यापक है।

दोहा :- किन हू पार न पाइयो, अब पावै कहि कौन।
सुन्दर आगै हों हिंगे, थाकि रहे करि गौन ॥१८॥

दादू मैं क्या जानू क्या कहूं, उस बलिये की बात।
क्या जानू क्यों ही रहै, मोपै लख्या न जात ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस परब्रह्म परमेश्वर के विषय में, मैं क्या जान सकता हूं और क्या वर्णन कर सकता हूं। क्योंकि वह सर्व शक्तिमान है। न मालूम वह कैसे रहते हैं ? उनकी गति, महिमा, शक्ति, भक्त वच्छलता, पतित पावनता आदिक गुणों को, मैं क्या समझूं ? उनकी अगम अगाध लीला है।

दोहा :- जब लग जीव जान्या कहै, तब लग कछु न जान।
जन रज्जब जान्या तबै, जो जानर भये अजान ॥१९॥

दोहा :- देख गर्व प्रह्लाद को, हरि मेट्यो द्विज होइ ।
डारी डांग पृथ्वी पर, बल हर लिनो सोइ ॥१८॥

दृष्टान्त :- प्रह्लाद का गर्व देखकर, भगवान विष्णु ब्राह्मण का रूप बनाकर आये और प्रह्लाद से बोले :- मैंने सुना है आप विष्णु से युद्ध करने जा रहे हो ? मेरा भी वह विष्णु शत्रु है, क्योंकि मेरे सारे परिवार को उसने खत्म कर दिया । मैं भी उससे बदला लूंगा । प्रह्लाद बोला :- ठीक है । ब्राह्मण बोले :- आपकी कितनी ताकत है ? प्रह्लाद बोले :- तेरे में कितनी ताकत है ? तब ब्राह्मण ने अपने हाथ की लकड़ी जमीन पर डाल दी और बोले :- मेरी ताकत तो मेरी लाठी है । तूं इसको उठा ले । मैं जान लूंगा कि विष्णु से तुम युद्ध मेरे साथ चल कर, कर सकता है । प्रह्लाद उठे और लकड़ी को उठाने लगे । लकड़ी नहीं उठी । प्रह्लाद को विचार हुआ कि हो न हो यह तो भगवान विष्णु हैं । तब भगवान की स्तुति करने लगे । भगवान प्रगट हो गए । प्रह्लाद बोला :- मेरा अपराध क्षमा करो । मैं शुक्राचार्य के कहने से, आपसे लड़ने और पिता का बदला लेना चाहा । भगवान बोले :- भाई तूं क्षमा कर । तूं हमारे ऊपर ही गोला बारूद चलाना चाहता है ? प्रह्लाद का गर्व दूर हो गया और बोला :- हे नाथ ! आप सर्व शक्तिमान हो । आपकी शक्ति का किसी ने पार नहीं पाया । आपकी जय हो ।

दोहा :- इन्द्रादिक गरबे अमर, तब हरि धर यक्ष रूप ।
वायु अग्नी गये देखने, लज्जित भये सब भूप ॥१९॥ अमर = देवता

दृष्टान्त:- एक समय स्वर्ग में इन्द्र और सभी देवताओं ने मीटिंग की, कि हम सभी अपने अपने लोक के राजा हैं । विष्णु को हम अपना स्वामी क्यों माने ? तब भगवान ने देखा । देवता मेरा अस्तित्व मिटा रहे हैं । तब भगवान यक्ष का रूप धारकर स्वर्ग के दरवाजे पर आ बैठे । इन्द्र के हुकम से वायु देवता गया । बोला :- उठ जा, यहां से । नहीं तो उड़ा कर टुकड़े टुकड़े कर दूंगा । यक्षरूप भगवान ने एक तिनका रख दिया और बोले :- इसको उड़ा दे । वायु देवता से वह तिनका नहीं उड़ा । इसी प्रकार अग्निदेव गया, वरुणदेव गया । सभी ने अपना अपना जोर लगाया, तिनका ज्यूं का त्यूं रखा रहा । तब इन्द्र के सहित सारे देवता आकर यक्ष भगवान की स्तुति करने लगे और बोले :- हे नाथ ! हमारा अपराध क्षमा करो । तब भगवान बोले :- हे इन्द्र ! आप लोग क्षमा करो, जो मेरा अस्तित्व और मेरी पूजा ही मिटा रहे हो । यह सुन कर सभी देवगण लज्जित होकर, नतमस्तक हो गए ।

दादू केते चलि गये, थाके बहुत सुजान ।
बातौं नाम न नीकलै, दादू सब हैरान ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अनन्त संतजन ब्रह्म विचार कर करके, ब्रह्मस्वरूप हो गये और अगणित पंडित ब्रह्म का निर्णय कर करके, थक गए। किन्तु वाणी द्वारा, उस अकह ब्रह्मतत्व का कोई भी प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। वहां नाम रूप की कोई गम नहीं है। ब्रह्म के अगम अगोचर स्वरूप को विचार विचार करके, सभी हैरान हैं।

ना कोई दिट्ठा ना सुण्या, ना कोई आखणहार।
ना कोई उथौंथी फिर्या, ना उर वार न पार ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! न तो कहीं परमेश्वर को देखा है, न किसी से उसका स्वरूप ही सुना है और न कोई उस अकह तत्व को कहने वाला ही है, क्योंकि 'उथौंथी' कहिए वहां से ब्रह्मतत्व में स्थिर होकर, कोई भी व्यवहार काल में नहीं आया है, जिससे हम उस परमपद का वृतान्त पूछ सकें। इस रीति से उसका कोई भी आदि अंत और पार नहीं पाया है।

(परमार्थ स्वरूप)

नही मृतक नहिं जीवता, नहिं आवै नहिं जाइ।
नही सूता नहिं जागता, नहि भूखा नहि खाइ ॥२२॥

न तहां चुप ना बोलणां, मैं तैं नांही कोइ।
दादू आपा पर नहिं, न तहां एक न दोइ ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह परमेश्वर अखण्ड है। अविनाशी है। उसको प्राप्त होने वाले संत भी न मरते हैं, न जन्मते हैं, न वह आते हैं, न वह जाते हैं। न अनात्म पदार्थों की उनको इच्छा होती है, न उनको भोगते ही हैं, न वह अज्ञान में सूते ही हैं और न वह संसार की चतुरता में जागते ही हैं।

हे जिज्ञासुओ ! उस ब्रह्म चेतन्य के परमार्थ रूप में, न तो चुप ही रहना है, न बोलना ही है, न मैं है, न तूं है, न और है। न अपना है, न पराया, न वहां एक ही है, न वहां दो ही कहना बनता है। तात्पर्य यह है कि निरूपाधिक, अद्वैत सर्वसाक्षी, समष्टि चेतन्य निश्चल है। इसलिए भाव अथवा अभाव रूप से, ब्रह्म का कोई भी निरूपण नहीं कर सकता है, अर्थात् अवाच्य है।

एक कहूं तो दोई हैं, दोइ कहूं तो एक।
यौं दादू हैरान है, ज्यौं है त्यौं ही देख ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कदाचित हम मुक्तजन, ब्रह्म को एक कहैं तो, माया और ब्रह्म दो प्रतीत होते हैं इसलिए बकतृत्व और बकताभाव से द्वैतभाव होता है और जो दो कहैं तो अनर वचनिये ब्रह्म, एक अद्वैत है । माया और बकता मिथ्या रूप हैं । तथा वह विचार करने से, ब्रह्म की सत्ता से ही प्रतीत होवै है । इस प्रकार ब्रह्म के अद्भुत स्वरूप को विचार विचार कर, हम अति हैरान हैं । इसलिए अपने सहज स्वरूप को पहचानिये ।

देखि दिवाने व्है गऐ, दादू खरे सयान ।
बार पार कोई ना लहै, दादू है हैरान ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मुक्तजन ब्रह्म अनुभव करके, स्वस्वरूप में 'दीवाने' कहिए मस्त रहते हैं, वे माया प्रपंच से निर्लिप्त होकर, 'सयान' कहिए वह चतुर आत्मस्वरूप को प्रत्यक्ष कर लेते हैं, परन्तु अपने अनन्त अपार ब्रह्मस्वरूप का अन्त नहीं पाते हैं ।

(पतिव्रत निष्काम)

दादू करणहार जे कुछ किया, सोई हुं करि जाणि ।
जे तूं चतुर सयान जानराये, तो याही परवाणि ॥२६॥

टीका :- हे बादी ! जो कुछ करणहार परमेश्वर ने बनाया है, सोई मैं हूं । हे भाई ! यदि तूं चतुर, सयाना और जानराय कहलाता है, तो यहां यही प्रमाण है । अथवा अब उसी में वृत्ति लगाइये । अर्थात् नाम रूप अनन्त माया प्रपंच का विस्तार करके, करणहार छिप रहा है । अब माया प्रपंच की यथार्थता का निर्णय करके, तब निश्चय करने में ही जीवन की सफलता है ।

दोहा :- बादि पुछि कौन हो, गुरू दादू को आइ ।
या साखी उत्तर दियो, समझी गयो सुख पाइ ॥२६॥

दृष्टांत :- एक पुरुष ब्रह्मऋषि के पास आकर पूछने लगा कि आप कौन हो ? पूर्वोक्त साखी से गुरुदेव ने उत्तर दिया । फिर बोला :- इस सृष्टि की परमेश्वर ने अनेक रूपों में उत्पत्ति क्यों की है ? निम्न साखी से उत्तर देते हैं ।

दादू जिन मोहनि बाजी रची, सो तुम्ह पूछौ जाइ ।
अनेक एक थैं क्यौं किये, साहिब कहि समझाइ ॥२७॥

टीका :- हे भाई ! जिस परमात्मा ने यह मायारूप मोहनी बाजी सृष्टि रची है, उसी से तुम पूछो :-कि हे साहब ! तुम तो एक हो, परन्तु यह अनेक रूप आपने क्यों बनाए हैं। हे ईश्वर ! आप इस भेद को समझा कर कहो। तो वही बताएंगे। अथवा ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हे साहब ! पूर्वोक्त भेद को आप ही समझा कर कहो।

जिस प्रभु ने यह अविद्या कृत रचना रची है उसी परमेश्वर को सर्व में व्यापक करके जान और अपने अद्वैत स्वरूप को बिसार कर, नानात्व जगत प्रपंच में क्यों आसक्त हो रहे हो ? इसलिए परमेश्वर के नित्य अद्वैत स्वरूप को मन में बिचार कर धारणा करो। अर्थात् हैरान स्वरूपी ब्रह्म में निश्चय वृति होकर, तदारूप हो जाओ।

दोहा :- इक बादी संसार की, उत्पत्ति पुछी आइ।
जासे उत्तर वाको दियो, या साखी समझाइ २७॥

(इति हैरान का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

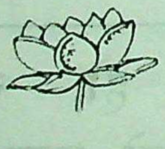

॥ अथ लै का अंग ७ ॥

“दादू रहू ल्यो लाइ०” इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, ब्रह्मतत्व के जानने के लिए, अब ल के अंग का निरूपण करते हैं ।

दादू नमो नमो निरंजन, नमसकार गुरूदेवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- उस निरंजन देव को हम बारम्बार नमो नमो करते हैं, जो आप अनुग्रह करके, भक्तों को अपनी लै भक्ति में एकाग्र करते हैं और लय भक्ति के उपदेष्टा सतगुरूओं को भी हमारी नमस्कार है । और सर्व साधु, जो लय भक्ति में दृढ़ता कराते हैं, उन सबको हमारी बन्दना है । इस रीति से हरी, गुरू, संतों को नमस्कार करके, जिज्ञासुजन परमेश्वर के अपार स्वरूप में लय होते हैं ।

(लय का स्वरूप लक्षण)

दादू लै लागी तब जाणिये, जे कबहूं छूटि न जाइ ।
जीवत यौं लागी रहै, मूवां मंझि समाइ ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो सुरति निरन्तर ब्रह्म में अखण्ड एक रस बनी रहै, और कभी भी अलग नहीं होवे, तो समझिये कि मेरी अब परमात्मा में लय लगी है । जब तक देह प्राणों का संयोग है, तब तक पूर्वोक्त प्रकार से अखंड ब्रह्मवृति में ही स्थिर रहो और देह प्राणों के विसर्जन होने पर, उसमें अभेद होइये ।

दादू जे नर प्राणी लै गता, सोइ गत व्है जाइ ।
जे नर प्राणी लै रत्ता, सो सहजैं रहै समाइ ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो प्राणी नर तन पाकर भी, परमेश्वर की भक्ति से शून्य हैं, उनका मनुष्य जीवन व्यर्थ ही व्यतीत होता है और जो प्राणी नर तन पाकर, परमेश्वर में लय भक्ति द्वारा तदाकार होते हैं, वे मुक्तजन सहजभाव से ही स्वस्वरूप में, लय रहते हैं।

सब तजि गुण आकार के, निहचल मन ल्यौ लाइ।
आत्म चेतन प्रेम रस, दादू रहै समाइ ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर आदिक माया प्रपंच के सब गुण, व्यावहारिक को त्यागकर, मन को निश्चल करके, लै में लगाइये। इस प्रकार से यह जीवात्मा, अपने चेतन्य स्वरूप के, प्रेम रस में रत्त होकर, सहज स्वरूप में अभेद होता है।

तन मन पवना पंच गही, निरंजन ल्यौ लाइ।
जहं आत्म तहैं परमात्मा, दादू सहजि समाइ ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तन मन श्वांस और इन्द्रियों को निग्रह करके, निरंजन में लय लगाइये। और अपने व्यष्टि चेतन्य को समष्टि चेतन्य में अभेद करके, सहज स्वरूप में मग्न हो जाइये।

अर्थ अनुपम आप है, और अनरथ भाई।
दादू ऐसी जानि कर, तासौ ल्यौ लाई ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक परमेश्वर ही अनुपम कल्याण स्वरूप है। शेष माया प्रपंच तो अनर्थ का स्वरूप है। इस प्रकार यह दृढ़ निश्चय करके, एक परमेश्वर के स्वरूप में ही लय लगाओ।

(लै लगाने की विधि)

ज्ञान भक्ति मन मूल गहि, सहज प्रेम ल्यौ लाइ।
दादू सब आरंभ तजि, जिन काहू संगि जाइ ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब इन्द्रियों के मूल कारण मन को ज्ञान भक्ति द्वारा एकाग्र करिये और फिर निर्द्वन्द, निष्काम प्रेम के द्वारा लै लगाओ। बाकी सब वहिरंग साधनों को छोड़ दो। किसी भी सकाम कर्म के साथ मत जाओ।

दोहा :- फकीर सूं औरत कही, मो चुड़ीं पहनाइ ।
रात कीया सकंल्प बहू, प्रात दई कुतकाइ ॥७॥

दृष्टान्त :- एक फकीर दरगाह में रहते थे। एक औरत झाड़ू सफाई दरगाह में किया करती थी और वहीं रहती थी। फकीर के द्वारा उसका पालन पोषण होता था। एक रोज वह कुएं पर पानी लेने गई। औरतें कहने लगी, तूं कहां रहती है ? मैं दरगाह में। अब तो तूं फकीर की चुड़ी पहन ले। वह भोली थी, इसमें कुछ समझ नहीं पाई। वह फकीर से बोली :- सांई मुझे भी चुड़ी पहना दो। सांई बोले :- पहना देंगे। फिर सांई रात को विचार करने लगे कि चुड़ी पहनाने का क्या अर्थ होगा ? फिर यह सोचा कि यह तो कुसंग है। सवेरे ही उसको दरगाह से मुक्त कर दिया और बोले :- और ही कहीं जाकर तुम चुड़ी पहनो। इसलिए भक्त को परमेश्वर के नाम के अतिरिक्त सभी आरम्भ त्याग देने चाहिएं।

(अगम संस्कार)

पहली था सो अब भया, अब सो आगै होइ ।
दादू तीनौं ठौर की, बूझै बिरला कोइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूर्व जन्म के कर्मानुसार तो यह जीव अब संसार चक्र में पड़ा हुआ है और फल भोगता है। अब जो कर्त्तव्य कर्म कर रहा है तदानुसार भविष्य में संसार चक्र में घूमेगा और फल भोगेगा। किन्तु भूत, भविष्य, वर्तमान का विचार करके, कोई बिरला ही साधक लै मार्ग में प्रवृत होता है।

दोहा :- कहि बादशाह बीरबल, च्यार चीज दिखलाइ ।
इत उत दोउ गां, नहीं, जन वेश्या कट साह ॥८॥

दृष्टान्त :- एक रोज बादशाह बीरबल से बोला :- बीरबल चार चीज दिखलाओ, यहाँ है और वहाँ नहीं, वहां है और यहां नहीं, यहां भी है और वहां भी है, यहां भी नहीं और वहां भी नहीं। बीरबल ने एक तो साहूकार को बुलाया जो खूब धर्म पुण्य किया करता था। एक बादशाह की रंडी को। एक संत को। एव लकड़ी काट कर बेचने वाले को। चारों को साथ लेकर, बादशाह के दरबार में बीरबल पहुंच गए। बादशाह बोला :- बीरबल वह चीज ले आए। कि हां हजूर, ले आया। कहां हैं ? चारों को बीरबल ने लाईन में खड़ा कर दिया। बादशाह बोला :- कहां है ? ये खड़े। येह तो मनुष्य हैं ? मनुष्यों में ही होती हैं वह चीजें। बतलाओ। कहा कि आप प्रशन करो।

बादशाह बोला :- वहां है और यहां नहीं । यह महात्मा, यहां दुनियां में नहीं के बराबर हैं, परमात्मा के दरबार में इनकी गणना है । बादशाह :- यहां है और वहां नहीं । यह आपके दरबार की रंडी । आपको बोल दे कि आप खड़े हो जाओ । तो आप भी खड़े हो जाओगे । इस का अस्तित्व यहां है, खुदा क दरबार में नहीं है । वहां इसके इतने जूते लगेंगे कि वहां गिनने वाला नहीं मिलेगा ।

बादशाह :- वहां भी है और यहां भी है । यह साहूकार, इसकी कीर्ति यहां भी है और खुदा के वहां भी है । बादशाह :- यहां भी नहीं, वहां भी नहीं । यह कठियारा यह दोनों जगह नहीं है । न कुछ पहले धर्म पुण्य किया और न अब करता है । संसार में मनुष्य जैसा करता है, वैसा ही उसे फल, लोक परलोक में मिलता है ।

(अध्यातम)

जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भक्ति का भाव ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! लय योग के द्वारा सुरति को लगाओ और सहजावस्था को प्राप्त होओ । इस प्रकार धीरे धीरे अभ्यास द्वारा, परमेश्वर की तरफ में आओ । यह मनुष्य देह मुक्तिरूपी महल का दरवाजा है । इस प्रकार परमेश्वर में, भाव सहित, प्रेमा भक्ति द्वारा लय लगाओ ।

सहज सून्य मन राखिये, इन दोन्यूं के मांहि ।
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भय नांहि ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! योग में तो मन को निर्द्वन्द कहिए निर्विकल्प स्वरूप बना कर, स्वस्वरूप में स्थिर करिये । किन्तु परमेश्वर में लय रूप समाधि द्वारा स्थिरता करके, भक्ति द्वारा भगवत् दर्शन रूप अमृत का पान करिए । वहां फिर किसी भी प्रकार के काल का भय नहीं रहता । तात्पर्य यह है कि तत्वबोध लक्ष्य तो, योग का भी एक ही है । किन्तु भक्ति रूप लै का मार्ग सुगम है ।

दादू बिन पायन का पंथ है, क्यौं कर पहुंचै प्राण ।
बिकट घाट औखट खरे, मांहि सिखर असमान ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आतम प्राप्ति का मार्ग बिना पैरों का है । इन पैरों से नहीं चला जाता है । यह प्राणधारी किस प्रकार पहुंचे और फिर रास्ता बड़ा टेढ़ा, बांका है । रास्ते में काम, क्रोध, लोभ मोह के बड़े

बड़े पहाड़ खड़े हैं । जैसे बाहर हिमालय की चोटी आकाश को चूम रही है इसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में भी, यह बड़े बड़े, अर्थात् अहंकार आदि पहाड़ खड़े हैं ।

मनता जी चेतन चढ़ै, ल्यौ कौं करै लगाम ।
सबद गुरू का ताजणा, कोई पहुचै साध सुजाण ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे बाहर बद्री केदार आदि तीर्थों में जाने के लिए, पहाड़ी घोड़े पर सवारी करते हैं, इसी प्रकार आत्म स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिए भी उपरोक्त साखी में जो बतलाए पहाड़, उनसे पार होने के लिए, मन रूपी ताजी घोड़ा है और उसके लय रूपी लगाम लगाओ । और गुरू का शब्द रूपी ज्ञान ही अंटर लेओ । फिर इस घोड़े पर सवारी करो । वही सच्चे सुजाण जिज्ञासु, इस प्रकार परमेश्वर को प्राप्त कर लेते हैं ।

(सूक्ष्म मार्ग)

किहिं मारग व्है, आइया, किहिं मारग व्है जाइ ।
दादू कोई ना लहै, केते करैं उपाइ ॥१३॥

टीका :- हे गुरूदेव ! आप कृपा करके बतलाओ कि किस मार्ग से तो यह जीव संसार में आता है और किस मार्ग से परलोक में जाता है ? हे सतगुरू ! इस बात को कोई भी नहीं जान पाते हैं और यह अज्ञानी मानव सकाम कर्मरूपी उपाय कहिए साधन, कितने ही प्रकार के करता रहता है ।

सून्य हि मारग आइया, सून्य ही मार्ग जाइ ।
चेतन पैंडा सुरती का, दादू रहू ल्यो लाइ ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'सून्य' कहिए कर्मरूपी मार्ग से ही तो यह जीव इस संसार में आता है और कर्म रूपी मार्ग से ही जाता है । और परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग तो सुरति का है । इसलिए हे मुमुक्षुओ ! अपनी सुरति कहिए वृत्ति लै मार्ग के द्वारा, परमात्मा में स्थित करो ।

दोहा :- **एक फकीर और बादशाह, सुरतही मक्कै जाइ ।**
हेठ पड़े अरू अधर के, बेर दिखाये खाइ ॥१४॥

दृष्टान्त :- एक बादशाह फकीर के दर्शन करने रोज जाया करता था । वह फकीर रोजाना सुरति के द्वारा, मक्का शरीफ जाकर दर्शन किया करते थे और बादशाह भी सुरति के द्वारा, रोज मक्का शरीफ

जाकर निमाज गुजारता। एक रोज बादशाह पहले मक्का शरीफ जाकर वापिस लौट कर आ रहे थे। रास्ते में एक बेर की झाड़ी पकी हुई थी और पके हुए बेर नीचे पड़े थे। चार बेर बादशाह ने उठा लिये। विचार किया कि यह फकीर के चल कर नजर करूंगा। उस रोज फकीर देर से मक्का शरीफ गए। जब वापिस लौटे, तो रास्ते में उसी झाड़ी के पास आकर खड़े हुए और देखा यहां से बादशाह चार बेर नीचे के उठा कर ले गया है। फकीर ने चार बेर ऊपर के तोड़ लिए और अपने तकिया में आ गए। जब बादशाह फकीर का दीदार करने गया, चार बेर रखे और नमस्कार किया। बादशाह बोला :- हजरत ! यह मक्का शरीफ के बेर हैं। मैं रोजाना मक्का शरीफ सुरति द्वारा जाकर नमाज गुजारता हूं। बादशाह यह समझता था कि फकीर मक्का शरीफ नहीं जाते हैं। तब फकीर ने चार बेर अपने आसन के नीचे से निकाले और बादशाह से बोले :- यह खाओ। यह मक्का शरीफ के बेर हैं। येह बेर उसी झाड़ी से तोड़े हुए हैं, आपके बेर नापाक हैं, क्योंकि नीचे से लाए हो। यह सुनते ही बादशाह का अहंकार दूर हो गया और कदमों में नमस्कार किया, फकीर के।

सतगुरूदेव कहते हैं कि परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग तो लै रूप सुरति का है।

दादू पार ब्रह्म पैंडा दिया, सहज सुरति लै सार।
मन का मारग मांहि घर, संगी सिरजनहार ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर ने मनुष्य देह रूपी "पैंडा" कहिए रास्ता, अपनी प्राप्ति का, जींवों को बताया है। इसलिए अब तुम अपनी सुरति को निर्द्वन्द कहिए राग द्वेष आदि द्वन्दों से मुक्त करके, परमेश्वर के नाम स्मरण में लै लगाइये। और बाकी बहिरंग सभी साधनों में कलेस है। इसलिए लै रूप प्रेमाभक्ति ही कलेसों से रहित सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसी से परमात्मा के स्वरूप में स्थिर होइये। क्योंकि वह परमेश्वर ही तुम्हारा संगी है, जो जीवात्मा के पास ही निवास करता है।

(लय)

राम कहै जिस ज्ञान सौं, अमृत रस पीवै।
दादू दूजा छाड़ि सब, लै लागी जीवै ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्व ज्ञानों में वही शिरोमणी ज्ञान है, जिसके द्वारा संतजन, राम नाम का स्मरण करके, भक्ति अमृतरूपी रस पान करते हैं। इसलिए अन्य सब साधनों को त्याग कर, स्वस्वरूप ब्रह्म में अखंड लय लगा कर जीविये। अर्थात् जीवन भर यह लय, वृत्ति स्वरूप से, कभी न हटाइये।

राम रसायन पीवतां, जीव ब्रह्म व्है जाइ।
दादू आतम राम सौं, सदा रहै ल्यौं लाइ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम का भक्ति अमृतरूपी रस पीते पीते यह जीव ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है । इसलिए अब सदैव आत्मारूपी राम में, लय भक्ति के द्वारा स्थिर रहो ।

(रस अंग)

सुरति समाइ सनमुख रहै, जुग जुग जन पूरा ।
दादू प्यासा प्रेम का, रस पीवैं सूरा ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उसी पुरुष का मनुष्य जन्म सफल है, जो जुग जुगान्तर पर्यन्त एकाग्र वृति द्वारा, ब्रह्म स्वरूप में लीन होकर, उसी के सम्मुख रहकर, उसी में अभेद होता है । इस प्रकार परमेश्वर के प्रेम का प्यासा, जो बिरहीजन भक्ति अमृत का पान करता है वही शूरवीर है ।

(अध्यात्म)

दादू जहां जगत गुरू रहत हैं, तहां जे सुरति समाइ ।
तो इनही नैनहुं उलटि करि, कौतिग देखैं आइ ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने हृदय कमल में ही परमेश्वर व्यापक है, वहां यत्नपूर्वक अपनी वृत्ति को स्थिर करो । और इन बाह्य नेत्रों को पलट कर, आत्मा के सनमुख होकर, परमात्मा के आश्चर्य स्वरूप को अनुभव करिये ।

दोहा : रज्जब लै में लाभ है, लीन हुया रहु मांहि ।
लै मै लत लागै नहीं, आन कथा मिट जांहि ॥१९॥

अष्यु पसण के पिरी, भिरे उलथौं मंझ ।
जिते बैठो माह पिरी, निहारी दौ हंझ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने नेत्रों को प्यारे परमेश्वर के दर्शनों के लिए, बाह्य विषयों से अन्तर्मुख करिये । हृदय में जहां हमारा प्यारा परमेश्वर बैठा है, वहां लै लगाकर, अपने आत्मा का साक्षात्कार करो । (शब्दार्थ :- भिरे = बाह्य विषयों से । मंझ = हृदय में, उलथो = बदल कर, उलट कर । माह = हमारा । हंझ = हे हंस मूरति ।

दोहा :- लै लाग्यो लहिये अलह, लै में लूट अपार ।
रज्जब लै मै लुष्यो, उर आनन्द अपार ॥२०॥

दादू उलटि अपूठा आप में, अंतरि सोधि सुजाण ।
सौ ढिग तेरे बावरे, तजि बाहिर की बाण ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपनी मानसिक वृत्तियों को बाहर के विषयों से बदल कर, अपने आतमस्वरूप में स्थिर करो । हे बावले ! वह ब्रह्मतत्व, जिसके लिए तूं बाहर भटकता है, वह तो तेरे समीप ही है । किन्तु बाहर विषयों की बाण (आदत) को तज करके अन्तर में ढूंढेगा, तो स्वस्वरूप आतमा का तूं साक्षात्कार करेगा ।

सुरति अपुठी फेर करि, आतम मांहै आनँ ।
लागी रहै गुरूदेव सौं, दादू सोई सयान ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही पुरूष सुबुद्धिवान है, जो अपनी सुरति को बहिर्मुख से अन्तर्मुख लाकर आतम सन्मुख होते हैं और सर्व जगत के गुरू, गर्भवास में उपदेश करने वाले परमात्मा के स्वरूप में, अखंड लयलीन रहते हैं ।

(सूक्ष्म सौंज भरचा बंदगी)

जहं आतम तहं राम है, सकल रह्या भरपूर ।
अन्तर गति ल्यौ लाइ रहु, दादू सेवग सूर ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवात्मा के हृदय स्थान में ही वह समष्टि चेतन राम है और वही ब्रह्मतत्व सर्वत्र व्यापक है । इसलिये बहिरंग सम्पूर्ण साधनों को त्याग कर, स्वस्वरूप में ही लै लगाइये ।

दोहा :- रज्जब लै मधि लाधिये, पावे लोक अनन्त ।
आतम के अन्तर उठै, कामनी पावै कंत ॥२३॥

दादू अंतर गति ल्यौ लाइ रहु, सदा सुरति सौं गाइ ।
यहु मन नाचै मगन व्है, भावै ताल बजाइ ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मन को स्वस्वरूप में लगाकर, ब्रह्म अनुसारनी वृत्ति द्वारा, परमेश्वर का गुणानवाद गाइये । तब फिर यह मन श्रद्धा विश्वासरूपी ताल बजा कर, आत्मा का चिंतन कर करके नृत्य करै, अर्थात् परम प्रफुल्लित होकर सहज स्वरूप में ही मस्त हो जाय ।

दोहा :- रज्जब लै में लाभ है, टूटै टोटा हानि ।
सावधान साधे रहै, रे मन जीवन जानि ॥२४॥

दादू गावै सुरती सौं, बाणी बाजै ताल ।
यहु मन नाचै प्रेम सौं, आगे दीन दयाल ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उपरोक्त कथन का ही स्पष्टीकरण करते हैं कि जिज्ञासुओं का मन ब्रह्म सुरति द्वारा, स्वरूप बोधरूपी गायन करके, नाम स्मरण रूप ताल बजावै । फिर इस प्रकार प्रेमाभक्ति में अभेद होना ही मानो मनोहर नृत्य है । अब इस अपूर्व नृत्य की देखने वाले, स्वयं परमेश्वर ही हैं ।

(विरक्तता)

दादू सब बातन की एक है, दुनियां तैं दिल दूर ।
सांई सेति संगी करि, सहज सुरती लै पूरि ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब साधनों का एक ही साधन, यह है कि अपने मन को मायावी प्रपंच से हटाकर, ब्रह्म सुरति में पूर कर, अधिष्टान चेतन्य परमात्मा से अभेद हो जाओ ।

दोहा :- संत रहै नृप बाग में, बतकां चुग गई हार ।
खर चढ कर हेलो दियो, इन से लग व्है ख्वार ॥२६॥

दृष्टान्त:- एक संत घूमते हुए राजा के बाग में आकर ठहर गए । राजा से आदि लेकर, सब लोग दर्शन और सतसंग करने आया करते थे । एक रोज राजा का कंवर कई साथियों को साथ लेकर,

बगीचे में स्नान करने आया । सब कपड़े उतार कर, सब लोग स्नान करने को कुंड में उतर गए । एक बतख घूमती हुई आई । कपड़ों पर राजा के कंवर का हार रखा था, वह निगल गई । जब कपड़े सब लोग पहनने लगे तो राजकुमार को हार नहीं मिला । तब विचार किया कि यहाँ और तो कोई आया नहीं, हो सकता है, हार संत जी ने उठा लिया, वह जाकर बोला :-महाराज, हमारा हार दे दो । महात्मा बोले :-हमें तो पता नहीं हार का ! तब राजकुमार राज दरबार में आकर पूर्वोक्त सारा वृतान्त सुना दिया । राजा विचार किया कि यदि कोई नहीं आया तो हो सकता है संत ने ही उठा लिया । राजा ने हुक्म दिया, उनका काला मुंह करो, हाथ पाँव नीला करो और एक गधे पर बिठा कर गांव के चारों तरफ घूमाकर निकाल दो । महात्मा जी का कोई शिष्य भी वहाँ था । वह आकर महाराज जी से बोल दिया कि राजा ने ऐसा हुक्म दिया है । संत खुद ही कोयले पीसे और काला मुंह कर लिया और नीले रंग में अपने हाथ पाँव रंग लिये । बगीचे के बाहर एक गधा चरता था, उसको पकड़ कर, उसके ऊपर बैठ गए । नगर की तरफ चलने लगे और बोले :- इस दुनियाँ से जो प्रीति करेगा, उसका मेरी तरह काला मुंह होगा । राजा का आदेश पाकर जो लोग आ रहे थे, उन्होंने देखा कि यह तो खुद ही वह रूप बना लिया है, जो हम लोग इनका बनाते । राजा को जाकर बोले । राजा तुरन्त दौड़ कर आया । गधे पर से उतार लिये । बगीचे में ले जाकर महात्मा को बैठाया और चरणों में नमस्कार किया । वहीं पर वह बतख घूमती हुई आई और हार को अपने मुंह से उगल दिया । यह लीला राजा देखकर, अति शर्मिन्दा हो गया । महात्मा कहने लगे :- भाई तुम्हारा दोष नहीं है । तुम तो मायावी जीव हो । हमारा ही यह अपराध है जो हम परमेश्वर को छोड़कर, आप लोगों से प्रीति करी । उसका दण्ड हमने अपने आप पा लिया । इसलिए ब्रह्मऋषि कहते है कि सब साधनों का एक ही साधन है-कि अनात्म पदार्थों से अपने मनको हटा लो ।

(अध्यात्म)

दादू एक सुरति सौं सब रहैं, पंचों उन मन लाग ।
यहु अनुभव उपदेश यहु, परम जोग वैराग्य ॥२७॥

टीका :-हे जिज्ञासुओ ! जब अन्तःकरण की वृत्ति, सम्पूर्ण बाहर के बिषयों से अन्तर्मुख होकर, ब्रह्म विचार में सलग्न होती है, तब पाचों ज्ञान इन्द्रिये अपने विषयों को छोड़कर, उनमन कहिए ब्रह्म दिशा में लीन रहती हैं । फिर यही तो अनुभव ज्ञान का फल है और यही सतगुरू का उपदेश है । और वैराग्य, योग इन सबकी, इसी में सफलता है ।

चौ० :- जैसे बालक सरप कूरगां, थकित सु होइ नाद के संगा।
ऐसी लै जो कोई लावै, योनि संकट बहुरी न आवै ॥२७॥

दादू सहजैं सुरति समाइ लै, पारब्रह्म के अंग।
अरस परस मिलि एक व्है, सनमुख रहिबा संग ॥२८॥

टीका :– हे जिज्ञासुओ ! अपनी सुरति को "सहजै कहिए" निर्द्वन्दता पूर्वक, आत्म स्वरूप परब्रह्म में लगाओ। तो उस परमात्मा से हृदय रूपी आकाश में ही ओत प्रोत भाव को प्राप्त होगे। वहीं पर परमात्मा के सन्मुख रहो।

सुरति सदा सनमुख रहै, जहां तहां लै लीन।
सहजरूप सुमीरण करै, निष्कामी दादू दीन ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! ब्रह्मवेत्ता पुरूषों की वृत्ति, सदैव स्वस्वरूप में ही स्थिर रहती है। और फिर घर प्रवृति मार्ग और बन निवृति मार्ग, तथा जागृत स्वप्न, कहीं भी किसी भी अवस्था में रहैं, वे उसी जगह ब्रह्म के अखण्ड स्वरूप में लै लगाये रहते हैं। इस प्रकार निर्द्वन्द, कहिए सम्पूर्ण विकारों से रहित होकर, निष्काम भाव से, वह भी भक्तजन, प्रभु का स्मरण करते हैं।

सुरति सदा साबत रहै, तिनके मोटे भाग।
दादू पीवै राम रस, रहै निरजंन लाग ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन ब्रह्मवेताओं की सुरति कहिए वृति, स्वस्वरूप में सदैव पूर्णतया लगी रहती है, उन पुरूषों का अक्षय पुण्य है। वही राम का साक्षात्कार रुप अमत रस को पान करते हैं और निरंजन देव में ही समाये रहते हैं।

(सूक्ष्म सौंज)

दादू सेवा सुरति सौं, प्रेम प्रीति सौं लाइ।
जहं अविनासी देव है, तहं सुरती बिना को जाइ ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रेमरूपी पुष्प और प्रीतिरूपी पाति सहित, उस अखंड ज्योति में अपनी सुरतो लगाकर, परब्रह्म की, यही सेवा पूजा कीजिए । क्योंकि वह अविनाशी निरंजनदेव, ब्रह्माकार सुरति के बिना, और कोई बहिरंग साधनों से नहीं जाने जा सकते हैं ।

(बिनती)

दादू ज्यों वै बरत गगन थैं टूटै, कहां धरणी कहां ठाम।
लागी सुरति अंग थैं छूटै, सौकत जीवै राम ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे लै लगाकर रस्सी पर, आकाश में नाचती हुई नटणी की यदि लय टूट जावै तो फिर उसका जीवन कैसे हो सकता है, उसी प्रकार भगवान के स्वरूप में एकाग्र हुई भक्तों की लय वृति टूट जाये तो, फिर वह परमेश्वर के भक्त कैसे जीवित रह सकते हैं ?

चौ० :- जैसे बरत बांस चढि नटनी, बारम्बार करै तहां अटनी।
इत उत कहुं नेक हुनि हेरै, ऐसी लय जन हरि तन फेरैं ॥३२॥

(अध्यात्म)

सहज जोग सुख में रहै, दादू निर्गुण जाणि ।
गंगा उलटि फेर करी, जमुना मांहै आणि ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण योगों में एक लय योग ही निरकलेस योग है और निर्गुणब्रह्म को जानने रूप इसमें, अपूर्व सुख है । इस लय योग में तन्मयता होने पर जिज्ञासुजन, सर्वगुण विकारों से निर्गुण होकर, परम सुख प्राप्त करते हैं । और "गंगा उलटि फेरकर" इसका भावार्थ यह है कि ब्रह्मवेताओं की ब्रह्मज्ञानाकार और ब्रह्मध्यानाकार वृति का संकेत है । जब ब्रह्म ध्यान में अखंड लय लग जाय तो, जिज्ञासुजन उसका गंगा जमुना की भांति धारा प्रवाह रूप से वेग वर्णन करते हैं । उठते, बैठते, चलते, फिरते, खाते, पीते, सोते, जागते, श्वांस वृत्ति द्वारा प्रवाह बना रहता है तहां उठते श्वांस ब्रह्माकार वृति को गंगा और बैठते श्वांस वृति को यमुना रूप प्रतिपादन किया है । गंगा को फेर कर, जमुना में लाने का भाव यह है कि हर समय श्वांसों श्वांस, ब्रह्मवृत्ति अखंड ही बनी रहै ।

(लय)

परआत्म सो आतमा, ज्यों जल उदिक समान।
तन मन पाणी लौंण ज्यों, पावै पद निरवाण ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शब्द का भेद होने पर भी जैसे जल और उदक एक ही अर्थ के बाचक हैं, तैसे ही जीवात्मा और परमात्मा भी एकार्थी हैं अर्थात् अभिन्न हैं। जैसे नमक जल में मिलकर तदरूप होता है, वैसे ही तन मन को आतमस्वरूप में लयलीन करके, निर्वाण परम पद को प्राप्त करो।

मन ही सौं मन सेविये, ज्यौं जल जल हि समाइ।
आतम चेतन प्रेम रस, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे जल में जल मिलकर अभेद हो जाता है, वैसे ही व्यष्टि मन को समिष्ट मन में अभेद करो। यही मानसिक पूजा का परम फल है कि जैसे जल, जल में मिलता है, वैसे ही भक्तजन भी परमेश्वर का स्वरूप हो जाते हैं। इसलिए जीवात्मा को चेतन्य स्वरूप में अभेद कीजिए और परम प्रेम पूर्वक परमेश्वर के स्वरूप में अखण्ड लै लगाइये।

छाड़ै सुरति सरीर कौं, तेज पुँज में आइ।
दादू अैसे मिलि रहै, ज्यौं जल जल हि समाइ ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब सुरति शरीर के अध्यास को छोड़कर और "तेज पुंज" कहिए ब्रह्माकार सुरति होवै, तब फिर ऐसे जीवात्मा ब्रह्म में अभेद हो जाता है, जैसे की जल में जल समा जाता है।

यौं मन तजै शरीर कौं, ज्यौं जागत सो जाइ।
दादू बिसरै देखतां, सहज सदा ल्यौं लाइ ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस प्रकार जागते जागते निद्रा आ जाती है, तब शरीर को भूल जाते है। ऐसे ही मुक्तजनों का यह मन, इस स्थूल शरीर के अध्यास को भूलकर, जागृत अवस्था में ही सम्पूर्ण प्रपंच को को बिसार कर, सहज स्वरूप में लय लगाकर ब्रह्मरूप हो जाता है।

जिहि आसणि पहलि प्राण था, तिहि आसण ल्यौ लाइ।
जे कुछ था सोई भया, कछु न व्यापै आइ ॥ ३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह प्राणधारी जीव, आत्मा ब्रह्म स्वरूप को भूलकर, मायावी प्रपंच में आसक्त हो रहा है। इसलिए इस प्रपंच का त्याग करके, अपना स्वरूप ब्रह्म में लय लगाओ, तब निरावर्ण होकर, उस निर्वाण पद को प्राप्त होगे। फिर ऐसे पुरूषों पर माया प्रपंच का किंचित भी प्रभाव नहीं पड़ता। 'जिहि आसणि' कहिए गर्भ आसण अर्थात् गर्भ में जो परमात्मा से कोल किया था, उसको पूरा कर। और 'सतसंग आसण' :- अर्थात् सतसंग में जाकर, नित्य अनित्य का विचार कर। उपजण आसण :- आत्माकार उपजण से ब्रह्म आसण :- स्वस्वरूप ब्रह्म स्थिति को प्राप्त करो।

दोहा :- इक बणीयो दीवान व्है, धर राखी पोसाक।
ताही देख गरब्यो नहीं, रीझ कियो नृप नाक ॥३८॥

दृष्टान्त :- एक बनिया राजा का दीवान था। परन्तु वह अपनी पूर्व स्थित को कभी नहीं भूलता था। अपने फटे टूटे वस्त्रों के दर्शन करके कचहरी में जाया करता था, ताकि मन अहंकार को प्राप्त नहीं होता था। बहुत अच्छा प्रजा के साथ न्याय का व्यवहार करता रहा। राजा उसके न्याय को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसको अपना निज मन्त्री बना लिया। देखिये सत्यता के व्यवहार से मनुष्य की उन्नति होती है और वह ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर पहुंच जाता है।

"जिहि आसण०" कहिए मानवता के आसण के लक्ष्य को पूरा करने से, कल्याण को प्राप्त होता है।

तन मन अपणा हाथि करि, ताहीं सौं ल्यौ लाइ।
दादू निर्गुण राम सौं, ज्यौं जल जल हि समाइ ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे जल, जल में मिलकर एक स्वरूप हो जाता है, उसी प्रकार तन मन का निग्रह करके, निर्गुण ब्रह्म में अखंड लय लगाकर, तदरूप हो जाइये। आत्मा को परमात्मा में विचार द्वारा अभेद करिये।

एक मना लागा रहै, अंति मिलैगा सोइ ।
दादू जाके मन बसै, ताको दरसन होइ ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निश्चल मन करके, आत्मस्वरूप में लय लगाकर, उसी में अभेद हो जाओ। जिसका मन अनन्य भाव से परमेश्वर में ही लयलीन रहता है, उन पुरूषों को ही परमेश्वर का साक्षात्कार दर्शन होता है ।

दादू निबहै त्यौं चलै, धीरै धीरज मांहि ।
परसैगा पिव एक दिन, दादू थाके नांहि ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस साधन द्वारा तुम्हारा मन स्वरूप में एकाग्र होवै, उसी प्रकार लय लगाइये और भीतर हृदय में धीरज धरके, यह विश्वास रखो कि कृपालु परमेश्वर का कभी न कभी अवश्य एक दिन दर्शन होगा । परन्तु प्रभु की भक्ति से कभी भी उदास नहीं होना ।

(लय)

जब मन मृतक व्है रहै, इन्द्रि बल भागा ।
काया के सब गुण तजै, निरंजन लागा ॥४२॥

आदि अंत मधि एकरस, टूटै नहीं धागा ।
दादू एकै रह गया, तब जाणी जागा ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब मन मृतक, निश्चल गुणातीत हुआ, तो इन्द्रियादि का भी विषय प्रवृतिरूप बल नही रहता है और शरीर के अध्यास से मुक्त होकर, जीवनमुक्त पुरूष, निर्गुण ब्रह्म में लयलीन रहते हैं । इस रीति से सर्व अवस्थाओं में एक रस होकर, ब्रह्म में अखंड तदाकार रूप वृत्ति रहने पर, मुक्तजन अद्वैत ब्रह्मस्वरूप होते हैं । इतनी कसौटी पूरी होवै, तो समझिए कि यह जीवात्मा अज्ञान निद्रा से जागा है और स्वस्वरूप बोध हुआ है ।

जब लग सेवग तन धरै, तब लग दूसर आइ ।
एकमेक व्है मिलि रहै, तो रस पीवन थैं जाइ ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक जिज्ञासुजनों को थोड़ा भी देह अध्यास है, तब तक परमेश्वर से द्वैतभाव है और जब मुक्तजन देहअध्यास बिसर कर परमेश्वर से अभेद होवैं, तो अद्वैत अमृत वा अपूर्व आत्मानन्द का अनुभव करते हैं अथवा ब्रह्मऋषि सतगुरू से संत कहते हैं कि हे दयानिधि "जब तक सेवक तन धरै०" अर्थात् सेवक सेव्यभाव है, तब तक तो भक्ति रस निमित द्वैतभाव व्याप्ता है और जब सेवक सेव्यभाव भूलकर स्व-स्वरूप में अभेद होवे तो "रस पीवन थै जाइ" भेद भक्ति का अपूर्व रस प्राप्त नहीं होता है । आप कृपा करके इसका यथार्थ निर्णय करिये ।

ये दोन्यू ऐसी कहै, कीजे कौण उपाय ।
ना मैं एकन दूसरा, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रस्तुत साखी उपरोक्त साखी के उत्तर में कही गई है । श्री ब्रह्मऋषि सतगुरू, परमेश्वर से विनय करते हैं कि हे प्रभु ! "ये दोन्यू" कहिए भेद भक्ति रस को पीने वाले भक्तजन और अद्वैत-वादी ब्रह्मज्ञानियों में पूर्वोक्त प्रकार से, परस्पर विवाद है । आप ही यह निर्णय करिये । प्रत्युत्तर में भगवान का उपलक्षण करके, महाप्रभु उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुजनों ! "मैं, मेरा आत्मस्वरूप ब्रह्म" न तो एक है और न दूसरा है । अर्थात् पूर्ण समर्थ प्रभु भेदवादी भक्तों को, तो भेद भक्ति द्वारा, अपूर्व भक्ति रस पिलाते हैं और भिन्न स्वरूप प्रतीत होते हैं, एवं अद्वैतवादी मुक्तजनों से अभिन्न एक रूप होकर, अद्वैतामृत्त का परमानन्द अनुभव कराते हैं ! फिर उनमें द्वैतभाव नहीं है । अर्थात् अनिर्वचनीये ब्रह्मतत्व में एकत्व और अनेकत्व का संख्याभाव ही असम्भव है । परमेश्वर तो सर्व समर्थ और पूर्ण दयालु हैं । इसलिये हे भाइयो ! परमेश्वर में अखंड लय लगाओ । जो जिस जगह, जिस स्थिति में अद्वैत या द्वैत की जैसी निष्टा है, वहां ही प्रभु उनके लिए वैसे ही प्रगट हो जाएंगे ।

(इति लै का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ निष्कर्मी पतिव्रता का अंग ८ ॥

अब लै के बाद में निष्कर्मी 'दादू दीन०'' इस सूत्र के व्याख्याण स्वरूप, निष्कर्मी पतिव्रता के अंग का निरूपण करते हैं। निष्कर्मी कहिए सकल सुख दुखआदि और गुण विकार से रहित, पति परमेश्वर का पतिव्रत रखना, अथवा जो पुरूष निष्कर्मी निर्द्वन्द, निस्काम भाव होकर, प्रभु का पतिव्रत रखते हैं, उनका नाम ही पतिव्रता जानिये। प्रस्तुत प्रकरण में परमेश्वर का निष्कर्मी स्वरूप और निष्कर्मी पतिव्रता के प्रभुपातिव्रत के अगं स्वरूप लक्षण कहेंगे।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरू देवतः।
बन्दनं सर्व साधवा, प्रणामं पारगंतः ॥१॥

टीका :- हे हमारे निष्कर्मी पति स्वामी निरन्जन देव ! आपको हम बारम्बार नमो नमो करते हैं और निष्कर्मी पतिव्रत धर्म का उपदेश करने वाले गुरूदेव को भी, हम नमस्कार करते हैं और जिन साधुओं ने परमेश्वर का निस्काम पतिव्रत धर्म धारण किया है उन सब संतो को भी हम बंदना करते हैं। इस प्रकार हरि गुरू संतो को नमस्कार बन्दना, प्रणाम करके, निष्कर्मी निरंजनदेव का पतिव्रत धर्म धारण कर "पारंगत :" इस संसार से पार होकर, निरंजन को प्राप्त होते हैं।

एक तुम्हारे आसरै, दादू यहि बिश्वास।
राम भरोसा तोर है, नहिं करणी की आस ॥२॥

टीका :- हे हमारे प्रभु ! हे नाथ ! हे हमारे स्वामी ! हमको तो एक आपकी ही भक्त बच्छलता का और दयालुता का आधार है। आपके विश्वास पर ही तो हमारे इस शरीर में श्वांस अटक रहे हैं। अर्थात् इस

नर तन की सफलता का, हमें तो आप एक परमेश्वर के दर्शनों का ही विश्वास है। हे नाथ ! दान, तीर्थ, व्रत आदि करणी का, हमें कोई भी विश्वास नहीं है। बल्कि आपकी दया, सिन्धुता का ही एक मात्र भरोसा है। अभिप्राय यह है कि परमेश्वर के अपार अनन्त स्वरूप को जानने की साधनाएं, इस जीवात्मा से, जन्म जन्मान्तरों में भी सम्भव नहीं हैं। इसी से हम अपनी करणी का क्या विश्वास करें, क्योंकि जब तक अपनी करणी का विश्वास है, तब तक जीवात्मा में अहंत्व भाव बना रहता है। और जब तक जिज्ञासु में अहंत्व भाव है, तब तक जीवन को सफलता नहीं है। इसलिए अब साखी के अन्तिम चरण से, श्री सतगुरू भगवान ने जिज्ञासुजनों को, निष्कर्मी भाव का उपदेश किया है।

रहणि राजस ऊपजै, करणी आपा होइ।
सबथैं दादू निर्मला, सुमिरण लागा सोइ ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'रहणी' कहिए शील (ब्रह्मचर्य) व्रतादिक की धारणा से तो रजोगुण उत्पन्न होता है, और 'करणी' कहिए यज्ञ तप आदि के करने से अहंकार उत्पन्न होता है। इसलिये अब जो पुरुष निष्काम भाव से, राम नाम के स्मरण में लीन रहते हैं, वही सबसे श्रेष्ठ हैं।

दादू मन अपना लै लीन करि, करणी सब जंजाल।
साधू सहजैं निर्मला, आपा मेटि संभाल ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बाह्य कर्मों की जो साधना है, वह तो केवल जंजाल रूप है। इसलिए अहंकार को मेट कर, अपने शुद्ध स्वरूप का स्मरण करिये।

दादू सिधि हमारे सांइयां, करामात करतार।
रिधि हमारे राम है, आगम अलख अपार ॥५॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज अपने को ही उपलक्षण करके, जिज्ञासुओं के प्रति उपदेश करते हैं कि हमारे तो केवल एक सांई का ही पतिव्रत है और वह कृपालु परमेश्वर ही, हमारे रिद्धि हैं, और वही सिद्धि हैं, वही करामात हैं, और हमारे आगम (भविष्य की जानने वाले) वेद और ज्योतिष आदि भी अलख अपार एक परमेश्वर ही हैं।

गोबिन्द गोसांई तुम्हें अम्हंचा, गुरू तुम्हे अम्हंचा ज्ञान।
तुम्हे अम्हंचा देव, तुम्हे अम्हंचा ध्यान ॥६॥

टीका :- हे गोबिन्द ! हे गुसांई ! हमारे तो आप ही गुरू हो । आप ही गुरू का ज्ञान हो । आप ही देव हो और आप ही ध्यान स्वरूप हो ।

तुम्ही आमुचे पूजा, तुम्हीं आमुची पाती ।
तुम्ही आमुचे तीर्थ, तुम्हीं आमुचे जाती ॥७॥

टीका :- हे गोबिन्द ! तुम्हीं हमारे पूजारूप हो और तुम्ही पूजा करने वाले हो । आप ही तुलसी जल रूप हो । हमारे तुलसी पत्र रूप आप ही हो । आप ही हमारे तीर्थरूप हो और आप ही हमारे तीर्थ में यात्री रूप हो ।

तुम्हीं आमुचे नाद, तुम्हीं आमुचे भेद ।
तुम्हीं आमुँचे पुराण, तुम्हीं आमुचे वेद ॥८॥

टीका :- हे गोबिन्द ! हे गुसांई ! आप ही हमारे शब्दरूप हो और आप ही हमारे सब कुछ जानने वाले, भेदस्बरूप हो । आप ही हमारे पुराण रूप हो, और आप ही हमारे वेद और वेद का ज्ञानरूप हो ।

तुम्हीं आमुंची जुगती, तुम्हीं आमुंचा जोग ।
तुम्हीं आमुंचे वैराग्य, तुम्हीं आमुंचा भोग ॥९॥

टीका :- आप ही हमारे शास्त्रों की युक्तिरूप हो और आप ही हमारे हठयोग रूप हो । आप ही हमारे वैराग्यरूप हो, आप ही के लिए हमने वैराग्य लिया है । आप ही हमारे अनेक भोगरूप हो और आप ही भोगतारूप हो ।

तुम्हीं आमुँची जीवनी, तुम्हीं आमुंचा जप ।
तुम्हीं आमुंचा साधन, तुम्हीं आमुंचा तप ॥१०॥

टीका :- हे गोबिन्द ! आप ही हमारे जीवनरूप हो । आप ही हमारे जय रूप हो । आप ही हमारे सम्पूर्ण साधन रूप हो । आप ही हमारे तपरूप हो ।

तुम्ही आमुंचा शील, तुम्ही आमुंचा संतोष ।
तुम्ही आमुंची मुक्ति, तुम्हीं आमुंचा मोक्ष ॥११॥

टीका :- हे गोबिन्द ! आप ही हमारे ब्रह्मचर्यरूप हो और आप ही हमारे संतोषरूप हो । आप ही हमारे मुक्ति (चार मुक्ति) रूप हो और आप ही हमारे मोक्षरूप हो ।

तुम्हीं आमुंचा शिव, तुम्हीं आमुंची सकति ।
तुम्हीं आमुंचा आगम, तुम्ही आमुंची उकति ॥१२॥

टीका :- हे गोबिन्द ! आप ही हमारे शिव कल्याणस्वरूप हो । आप ही हमारे शक्ति महामायारूप हो । आप ही हमारे आगे की जाननेरूप हो । आप ही हमारे वेदों की युक्तिरूप हो ।

तूं सत तूं अविगत तूं अपरंपार, तूं निराकार तुमंचे नाम ।
दादू चा विश्राम, देहु देहु अवलंबन राम ॥१३॥

टीका :- हे गोबिन्द ! आप सत्य हो । आप अविगत्य हो । आप अपरंपार हो । आप निराकार स्वरूप हो । हमारे तो आपका ही नाम है । हे गोबिन्द ! हम तो आप में ही विश्राम चाहते हैं ! हे गोबिन्द ! आप के नाम का और स्वरूप का, हमको अवलंबन देओ ।

दादू राम कहूं ते जोड़िबा, राम कहूं त साखि ।
राम कहूं त गाइबा, राम कहूं ते राखि ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने मन को स्वस्वरूप राम में लगाना ही हमारे अक्षरों का जोड़ना है और राम का कहना ही, अर्थात् स्मरण करना ही साखी कहना है अर्थात् साखी बनाना है और हे राम ! आपका नाम स्मरण ही हमारे कंठ से गायन करना है । राम का कहना ही हमारे, अपने आप की रक्षा करना है । अथवा दैवी सम्पदा के गुणों का रखना है ।

दादू कुल हमारे केसवा, सगात सिरजनहार ।
जाति हमारी जगत गुरू, परमेसुर परिवार ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे व्यवहार में संसारीजनों को, कुल का, सगा सम्बन्धियों का, जाति परिवार आदि का, अवलंबन रहता है, वैसे ही भक्तजनों को सम्पूर्ण आधार, एक परमेश्वर का ही है । अर्थात् ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हमारा कुल कुटम्ब भगवान केशव ही है और सिरजनहार ही हमारा सगा सम्बन्धी है । जगत्गुरू (गर्भावस्था में सबको उपदेश करने वाला) परमात्मा ही हमारी जाति है और परम ऐश्वर्ययुक्त ईश्वर ही हमारा सम्पूर्ण परिवार है ।

दादू एक सगा संसार में, जिन हम सिरजे सोइ ।
मनसा बाचा कर्मना, और न दूजा कोइ ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस परमेश्वर ने हमको पैदा किया है, वही दयालु परमेश्वर, हमारा इस संसार में परम हितैषी है । इसलिए मन बचन और कर्म (काया) से हम उसी एक परमेश्वर में लय लगावें । हमें मायिक पदार्थों का कोई भरोसा नहीं है । इसलिए स्वयं निष्कर्मी होकर, निष्कर्मी परमेश्वर का ही नाम स्मरण करिये ।

(स्मरण नाम निरसंशय)

सांई सनमुख जीवतां, मरतां सनमुख होइ ।
दादू जीवण मरण का, सोच करै जिनि कोइ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन निष्कर्मी भक्तों के एक राम का ही पतिव्रत है, उनका जीवन और मरण केवल राम के ही आसरे है और राम का स्मरण करते हुए, भक्तजनों को स्थूल संघात के संयोग वियोग से, कोई हर्ष शोक नहीं होता है ।

दोहा :- बहुत जीने का हर्ष न होइ, बेग मरण का भय नहीं कोइ ।
जगन्नाथ संशय विन स्मरण, करता करै सु होइ ॥१७॥

(पतिव्रत)

साहिब मिल्या त सब मिलै, भेटैं भेटा होइ ।
साहिब रह्या तो सब रहै, नहीं त नाहीं कोइ ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपना स्वामी परमेश्वर मिले तो, सम्पूर्ण सम्पत्ति प्राप्त होती है और परमेश्वर के मिलने से ही, सबसे मिलाप हो जाता है । ऐसा होने से ही मनुष्य जन्म की सफलता है । एक परमेश्वर का ही पतिव्रत रहै, तो सर्व साधन स्वतः सिद्ध हो जाते हैं । अन्यथा परमेश्वर के पतिव्रत बिना कोटी प्रयत्न पूर्वक साधन करना भी व्यर्थ है ।

दादू रीझै राम पर, अन्तन रीझैं मन ।
मीठा भावै एक रस, दादू सोई जन ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारा मन, राम के अद्भूत स्वरूप दर्शनों में ही, मग्न रहता है और निसार मायिक पदार्थों में, अब प्रवृत्त नहीं होता है । हे संतो ! जिनको परमेश्वर ही मीठा (सुखरूप) लगता है और जो भक्त एक रस होकर, भगवान में ही मग्न रहते हैं, वही परमेश्वर के भक्त, धन्य हैं ।

दोहा :- गुरू दादू आमेर में, तहां गये बाजीन्द ।
फूल सरायो देखि करि, ये सब माया निंद ॥१९॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज आमेर में निवास करते थे । किसी भक्त ने एक गुलाब का फूल लाकर महाराज को भेट किया । इतने में ही बाजींद जी आए और महाराज को प्रणाम किया । फूल को देखकर बोले :- गुरूदेव ! यह बड़ा सुन्दर फूल है । गुरूदेव बोले :- बाजींद जी, संतों का मन तो, राम के स्वरूप पर रीझता है, मायिक पदार्थों पर नहीं रीझता । इसकी क्या सहारना करते हो ? बाजींद जी गुरूदेव के चरणों में नतमस्तक हो गए ।

दादू मेरे हिरदै हरि बसै, दूजा नांही और ।
कहौ कहां धो राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारे अन्तःकरण में तो एक प्रभु का ही निवास है । ऐसी अवस्था में अब द्वैत-भाव नहीं प्रतीत होता है । माया और माया के प्रपंच की एक श्वांस मात्र भी स्फुरणा नहीं फुरती है । हे संतो ! 'इस धौं' कहिए इस लय को और कहां लगाइये ? क्योंकि भगवान का पतिव्रत धर्म धारण करके, इस माया प्रपंच और अहं भाव को कहीं भी स्थान नहीं है ।

दोहा :- जगन्नाथ मन एक हो, सो लै दियो मुरारि ।
और ठौर कहां लाइये, मनन भये द्वै च्यारि ॥२०॥

छन्द : होइ अनन्य भजै भगवंत ही, और कछु उर में नही राखै ।
देविर देव जहां लग हैं, डरके तिनसूं कहि दीन न भाखै ।

योग हु यज्ञ व्रतादिक क्रिया, तिनकूं तु नहीं स्वपने अभिलाखै ।
सुन्दर अमृत पान कियो तब, तो कहु कौन हलाहल चाखै ॥ २०॥

दादू नाराइण नैना बसै, मन ही मोहन राइ ।
हिरदा मांही हरि बसै, आतम एक समाइ ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारे नेत्रों में केवल नारायण ही बसता है, अर्थात् हमारे नेत्र, समस्त जगत प्रपंच को नारायण स्वरूप करके ही देखते हैं और हमारा मन, परमेश्वर चिंतन में लयलीन रहता है । एवं अन्तःकरण में एक हरि का ही निवास है और आतमरूप से सारे शरीर में परमेश्वर ही समाये हुए हैं । पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर का पतिव्रत धर्म धारण करके, मुक्तजन एक रस भगवान में ही समाये हुए हैं ।

दोहा :- पतिव्रता को पीव बिन, अन्य कछु नहीं भाइ ।
माता सीता का चरित, सम्यक यह दर्शाइ ॥२१॥

दादू तन मन मेरा पीव सौं, एक सेज सुख सोइ ।
गहिला लोग न जाणही, पचि पचि आपा खोइ ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेता मुक्तजन, तन मन को परमेश्वर में एकाग्र करके, हृदयरूपी सेज पर सुख पूर्वक, आतम स्वरूप में निश्चल भाव से सहज समाधि में स्थित होकर, ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं । परन्तु संसारीजन, इस तत्व को नहीं समझकर, बाह्य विषयों में ही पच पचकर, आत्मतत्व को खो बैठते हैं और महापुरूषों की निन्दा करते हैं ।

दोहा :- चोखो एक चमार, पंडलपुर बीठल हरी ।
दोनों जीमत लार, मुढन जाने तास गति ॥२२॥

दृष्टान्त :- पंडलपुर में चोखा राम चमार परमेश्वर का भक्त था । एक रोज रसोई बनाकर भीतर घी का बर्तन लेने गये । एक कुत्ता आया । सब फुलके मुंह में पकड़कर चलने लगा । पीछे से इन्होंने देखा । ये बोले :- महाराज, ठहरो! कोरी मत खाओ, चुपड़ने दो । आगे आगे कुत्ता और पीछे घी का बर्तन लिए चोखा

राम चले जा रहे हैं । नगर के बाहर जंगल में दोनों पहुंच गए । कुत्ते में भगवान प्रगट होकर बोले :- चोखा राम ! कुत्ते में भी तूं मुझे ही देखता है । चोखाराम बोला :- कुत्ते में क्या देखता हूं । आप तो मुझे, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में दीख रहे हो । भगवान बोले :- तैंने मुझे कुत्ते रूप में प्रगट किया है मैं रोज तेरे साथ कुत्ते रूप से प्रगट होकर भोग लगाया करूंगा । रसोई बनती, चोखाराम कहते :- भगवान प्रसाद पाओ । यह कहते ही कुत्ते रूप से प्रगट हो जाते । दोनों साथ ही जीमते । बहिर्मुख दुनियावी जीव हंसते और कहते, चोखाराम पागल हो गया । कुते के साथ भोजन करता है । मूढ लोग इस विषय को क्या जानें ? संतों की निन्दा करते रहते हैं ।

दादू एक हमारे उरि बसै, दूजा मेल्या दूरि ।
दूजा देखत जाइगा, एक रह्या भरपूरि ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारे एक भगवान का ही पविव्रत है और "दूजा मेल्या दूरि०"— तीर्थ व्रत, अन्य देवी देवता, सकाम कर्म, इन सब साधनों को त्यागकर, हमने एक परमेश्वर में ही लय लगाई है । अन्य सब साधन विनाशी हैं । माया और माया का कार्य प्रपंच यह सब परिवर्तन शील है, देखते देखते ही विनिष्ट हो जाएंगे । सर्वव्यापक परमेश्वर ही अविनाशी स्वरूप है । हम तो उसी में लय लगाकर, स्थित रहते हैं । आप भी उसमें लय लगाइये ।

निश्चल का निश्चल रहै, चचंल का चलि जाइ ।
दादू चचंल छाड़ि सब, निश्चल सौं ल्यौ लाइ ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निश्चल परमेश्वर है, उसके सेवक कहिए भक्त भी निश्चल स्वरूप में लय लगाकर निश्चल होते हैं । चंचल माया और माया के रचित देवी देवता, इनका उपासक, जन्म जन्मातरों में भ्रमते रहते हैं । इसलिये हमने तो इनको छोड़कर, निश्चल अविनाशी परब्रह्म का पतिव्रत धर्म धारण करके, उसी में स्थित रहते हैं । आप भी उसी में लय लगाकर स्थिर रहो ।

साहिब रहतां सब रह्या, साहिब जातां जाइ ।
दादू साहिब राखिये, दूजा सहज सुभाइ ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम के पतिव्रत धर्म के रहते हुए सभी कुछ जप, तप, तीर्थ, व्रत, दान पुण्य, सार्थक हो जाता है । और कदाचित मानव, परमेश्वर से विमुख रहै तो, उसके सम्पूर्ण शुभकर्म और मनुष्य जन्म की सौंज व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है । इसलिये साधनों द्वारा, एक राम का ही पतिव्रत धर्म, धारण

करिये। शेष भक्ति आदि तो स्वभाव से ही प्राप्त हो जाती है। इसलिए निष्कामभाव से ही राम का पतिव्रत धर्म धारण करिये।

मनचित मनसा पलक में, सांई दूरनि होइ।
निहकामी निरखै सदा, दादू जीवनी सोइ ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुजन! अपने मन, चित्त, वृत्ति, मनसा द्वारा, एक क्षण भी परमेश्वर के स्मरण से अलग नहीं रहते हैं ऐसे साधक निष्काम भाव से, प्रभु में लय लगाकर, परमेश्वर का साक्षात्कार करते हैं। उन्हीं भक्तों का जन्म सार्थक होता है।

(कथनी बिना करणी)

जहां नाम तहं नीति चाहिये, सदा राम का राज।
निर्विकार तन मन भया, दादू सीझै काज ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! राम के भक्तों को सदैव, राम की आज्ञानुसार ही व्यवहार बर्तना चाहिए, उनके हृदय में राम ही का राज्य रहता है। इस प्रकार उन जिज्ञासुओं के तन मन इन्द्रिये, निर्विकार, निश्चल होकर, परमेश्वर में स्थिर रहते हैं। उनके सम्पूर्ण मानव जन्म के कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

(सुन्दरी विलाप)

जिसकी खुबि खूब सब, सोई खूब संभारि।
दादू सुन्दरी खूब सौं, नख सिख साज संवार ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! जिस परमेश्वर की सत्ता से, यह सम्पूर्ण जगत सत्तावान होकर, प्रतीत हो रहा है, उसी परमेश्वर का आप स्मरण करिये। हे सुन्दरी रूप जीवात्मा! पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर से मिलकर, नख से शिखा पर्यन्त, आप अपने मनुष्य जन्म को सफल बनाओ।

पञ्चं अभूषण पीव करि, सोलह सक ही ठांम।
सुन्दरि यहु सिंगार करि, लै लै पीव का नांम ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासु जीवात्मारूप सुन्दरी! आप अपनी पंच ज्ञानेन्द्रियों को पवित्र बना कर, और मन की सोलह कलाओं का मार्जन करके, अर्थात् इस प्रकार पतिव्रता स्त्रियों के पांच आभूषण होते हैं और सोलह सृंगार (वस्त्र, अंजन, महंदी, जाबक, मांग इत्यादिक), (शिश फूल, नथनी, कान की बाली, हाथ का कंगन

पांव की पजेब) सुहागन स्त्री करती है, वैसे ही आप पूर्वोक्त प्रकार से, इन सबको परमेश्वर रूप पति के स्वरूप में सुसज्जित करिये और फिर परमेश्वर का नाम स्मरण करो । इसी में आपका कल्याण है ।

यहु ब्रत सुन्दरी ले रहै, तो सदा सुहागनि होइ ।
दादू भावै पीव कौं, ता समि औरन कोइ ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो जीव आत्मा रूप सुन्दरी, परमेश्वर रूप पति का, पतिव्रत धर्म धारण करके, और पति की आराधना करती है अर्थात् स्मरणरूप सेवा करती रहती है, वह सचची सुहागनी है और पीव को अत्यन्त वही प्रिय है । उसी का जन्म धन्य धन्य है ।

(पतिव्रता निष्काम)

साहिब जी का भावता, कोई करै कलि मांहि ।
मनसा बाचा कर्मनां, दादू घटि घटि नांहि ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस भयंकर कलि काल में, पति को भाने वाले काम, और पतिव्रत धर्म में स्थित, कोई बिरली ही सुन्दरी स्थिर रहती है । उसी प्रकार परमात्मा रूप पति को भाने वाले काम मन वचन कर्म से कोई बिरले ही जीवात्मा करते हैं । यह पतिव्रत धर्म घट घट सम्पूर्ण मनुष्यों में, और सर्व स्त्रियों में नहीं होता है । निष्कामी भक्त और सुहागनी स्त्रियों में ही यह धर्म स्थिर रहता है ।

आज्ञा माहैं बैसै ऊठै, आज्ञा आवै जाइ ।
आज्ञा मांहैं लेवै देवै, आज्ञा पहरै खाइ ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निष्काम पतिव्रत धर्म धारण करने वाली सुहागन स्त्री, पतिरूप परमेश्वर की आज्ञा से बैठती है, उठती है, पहरती है, खाती है, लेना देना आदि सम्पूर्ण काम करती है वही सचची पतिव्रता है । पति की आज्ञा में ही अपने तन और मन को सदैव रखती है । वैसे ही जीवात्मारूप पतिव्रता परमेश्वर रूप पति की आज्ञा से अपने तन मन आदि को पवित्र बनाकर, परमेश्वर की सेवारूप, आराधना में लगाये रहती है । परमेश्वर की आज्ञा में ही, उनका सम्पूर्ण व्यवहारिक और परमार्थिक काम होता है । वही धन्य' हैं ।

दोहा :- पतिब्रता खाति त्रीये, कोऊ जन देखत जाइ ।
घृत्त छाणत हेलो दियो, त्यों ठाढ़ि भई आइ॥३२॥

दृष्टान्त :- एक नगर में खाती भक्त था । एक रोज एक संत आये । उसने संत को नमस्कार किया । परस्पर प्रश्न उत्तर होने लगे । खाती बोला :- मेरी स्त्री पतिव्रता है । उस समय वह स्त्री कपड़े में घी डाल कर छान रही थी । संत बोले :- उसको बुलाओ । खाती ने आवाज दी—"यहां आना" । जिस स्थित में थी, वैसे ही दोनों हाथों से, घी भरा हुआ कपड़ा पकड़े ही चली आई । घी नीचे गिरता रहा । पति बोले :- वापिस ही चले जाओ । वैसे ही जाकर काम करने लगी । संत यह लीला देखकर, मन में निश्चय किया और बोले :- यह देवी सच्ची पतिव्रता है है, इसका कल्याण होगा । अर्थात् यह अखण्ड सुहाग प्राप्त करेगी । दाराष्टान्त में हे जिज्ञासुओ ! जीवात्मारूप पतिव्रता स्त्री, परमेश्वर रूप पति की आज्ञा से व्यवहार और परमार्थ के सम्पूर्ण काम करके, परमात्मा रूप पति का अखण्ड सुहाग प्राप्त कर लेती है । उनका फिर परमेश्वर से कभी वियोग नहीं होता ।

दोहा :- नारी धर्म पतिव्रत ही, इक माना जाय महान ।
पतिव्रत बिन नारी का, भव में नहिं है मान ॥३२॥

आज्ञा माहैं बाहरि भीतरी, आज्ञा रहै समाइ ।
आज्ञा माहैं तन मन राखै, दादू रह ल्यौ लाइ ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निष्काम पतिव्रत धर्म में स्थिर रहने वाली पतिव्रता स्त्री, पति की आज्ञा में बाहर और भीतर के सम्पूर्ण व्यवहारिक और परमार्थिक काम करती है । अपने तन मन को पति की सेवा रूप आज्ञा में सदैव बनाए रखती है । दाराष्टान्त में वैसे ही, जीवात्मारूप सुन्दरी निष्काम भक्तजन, परमेश्वर रूप पति की आज्ञा में समाये हुए रहते हैं और अपने तन मन का उपयोग, परमात्मारूप पति की आज्ञा में करते हैं, वही सच्चे भक्त हैं । उनको परमात्मारूप पति का साक्षात्कार रूप, सच्चा स्वाद प्राप्त होता है । अथवा वह विवेकी पुरूष, शरीर के सर्व प्रारब्ध भोगों में, प्रभु की आज्ञा मानकर, हर्ष शोक आदि में समान रहते हैं और अपदा सर्व व्यवहार, ईश्वर पर छोड़ देते हैं, उन्हें धन्य है ।

छन्द :-

बैठे हैं निराणै स्वामी, उठे हैं आमेर तेजू, आये सीकरी से अरू,
गये उत जानीये ।
आलन की कामरी, लई है गुरू आज्ञा मान, झारी जल दियो पाइ,
सांची मन आनीये ।

चोलो गुजरात त आयो, पहर्‌यों है गुरू आज्ञा मान, पायो प्रसाद जो,
सरूंज को जू मानीये।
बाहीर गुफा से आये, भीतर उत्त ही गये, गुरू स्वामी ऐसे रहे,
और सब जानीये ॥३३॥

दृष्टान्त :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाप्रभु अपने आप को, परमात्मा की आज्ञा में, सदैव रखते थे। परमेश्वर की आज्ञा से निराणे में आकर बैठे और परमेश्वर की आज्ञा से आमेर से उठे। परमेश्वर की आज्ञा से सीकरी अकबर बादशाह के यहां गये। परमेश्वर की आज्ञा से वापिस आमेर आये। परमेश्वर की आज्ञा से आलन भक्त की कामरी भेट करी हुईं, रख ली। परमेश्वर की आज्ञा से, अपनी झारी का जल उसको पिलाया। गुजरात से चोला आया, परमेश्वर की आज्ञा से उसको धारण कर लिया। परमेश्वर की आज्ञा से सरूंज ग्राम में भक्त का प्रसाद ग्रहण किया। परमेश्वर की आज्ञा से नरैना गुफा के बाहर आये और गुप्त प्रगट सिद्धों के साथ ज्ञान गोष्ठी हुई। परमेश्वर की आज्ञा से फिर गुफा में चले गए। ऐसे ब्रह्मऋषि गुरूदेव परमेश्वर रूप पति की आज्ञा में व्यवहारिक और परमार्थिक सम्पूर्ण कार्य किया। इसी प्रकार और भी संत भक्त परमेश्वर के हुए। वह सब ब्रह्मऋषि की भांति, परमेश्वर रूप पति का, पतिव्रत रूप धर्म धारण किया है। अर्थात् अपने को परमेश्वर की आज्ञा में सदैव बनाये रखे हैं।

पतिब्रता गृह आपणै, करै खसम की सेव।
ज्यौं राखै त्यौं ही रहै, आज्ञाकारी टेव ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पतिव्रता स्त्री अपने घर में, अपने पति को परमेश्वर रूप जानकर, उसकी चेतन्य रूप से उपासना करती है और स्थूल शरीर से, स्थूल शरीर की सेवा करती है। जैसे पति अपनी आज्ञा में रखता है, वैसे ही आज्ञा में बनो रहती है। इस प्रकार अपने पति की सेवा करती है। वैसे ही दाराष्टान्त में, प्रभु के अनन्य भक्तों के, एक परमेश्वर का ही पतिव्रत है। वह परमेश्वर के भक्त, अनन्य भाव से प्रभु का ही सर्व व्यवहार बर्तते हैं। एक प्रभु आज्ञा की ही, उन्हें धारणा है। उनको धन्य है।

(सुन्दरी विलाप)

दादू नीच ऊंच कुल सुन्दरि, सेवा सारी होइ।
सोई सुहागनी कीजिये, रूपन पीजै धोइ ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! व्यवहार में जैसे कुल गोत्र आदि से ऊंच नीच भाव होता है, वैसे ही परमार्थ में, आभास बुद्धि की भक्तिरूप सेवा परायण ही, ऊंच नीच, कुल जाति आदिक हैं। जैसे व्यवहार में पतिव्रत धर्म ही सुहाग है, अैसे ही परमार्थ में निष्काम भक्ति करना ही सुहाग है । हे सज्जनों ! निष्काम भक्ति के बिना "रूपन पीजे धोइ"—व्यवहार में सेवा के विना, अति सुन्दर रूप का क्या करें ? परमार्थ में सकाम सेवा एवं देवी देवताओं की सेवा रूप सुन्दरता, निष्फल है । अथवा परमेश्वर और परमेश्वर के अनन्य भक्तों के लिये, नीच ऊंच आदिक भेद नहीं हैं। भक्ति ही, भक्तों का सुहाग और रूप है ।

दोहा :- रूप बिना नारी भली, सेवा में इकतार ।
अति सुन्दरि सेवा बिना, जगन्नाथ सिर छार ॥३५॥

दोहा :- सजना अरू रैदास का, कुल कारण नहिं कोइ ।
प्रभु आये सब छोड़कर, बिप्र बैस्नो रोइ ॥३५॥

दृष्टान्त :— भक्त सजन कसाई और भक्त रैंदास जी, इनके विषय में सभी लोग जानते हैं । यह भगवान के निष्कामी भक्त थे । इनकी भक्ति से भगवान बस होकर, वैरागी साधु की सेवा पूजा से अप्रसन्न होकर, भक्त सजन कसाई की भक्ति ने, भगवान को आर्कषित किया । अर्थात् भगवान सजन कसाई के पास आ गये । वैसे ही रैदास जी की भक्ति के वशीभूत होकर, कासी में ब्राह्मणों का त्याग करके, रैंदास जी की गोद में भगवान आ बैठे । भगवान तो जाति पाति को नहीं मानते, केवल एक भक्ति का ही नाता मानते हैं ।

दोहा :- जाति पाति पूछौ मत कोई, हरि को भजै सु हरि का होइ ॥३५॥

दादू जब तन मन सौंप्या राम को, ता सन क्या बिभचार ।
सहज सील संतोष सत्त, प्रेम भक्ति लै सार ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संत पुरूषों ने अपना तन मन धन, सर्वस्व प्रभु के अर्पण किया है, उनको व्याभिचार, माया आसक्ति से क्या काम है ? क्योंकि परमेश्वर के भक्तों को मन, वाणी, शरीर द्वारा स्वप्न में भी, विषय विकार, मायावी पदार्थों में आसक्ति नहीं होती है, अथवा हे जिज्ञासुओ ! जब तन मन आदि, सर्वस्व प्रभु के अर्पण कर दिये, तो अब प्रभु से सकामता रूप व्यभिचार क्या करिये ? क्योंकि स्वयं प्रभु ही, तुम्हारी

योग क्षेम आदि सर्व कामना पूर्ण करेंगे । तुम तो निर्द्वन्द ब्रह्मचर्य, संतोष, सत, प्रेमा भक्ति द्वारा, श्रेष्ठ निष्काम स्वभाव से, प्रभु में लय लगाइये ।

पर पुरिषा सब पर हरै, सुन्दरि देखै जागि ।
अपणा पीव पिछाण करि, दादू रहिये लागि ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निष्कामी भक्तजन स्वस्वरूप का बोध करके, माया के प्रपंच अर्थात् मायिक पदार्थों का तन मन से त्याग कर देते हैं, और पति परब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार करके, उसी में अभेद होते हैं ।

दोहा :- सर जाति नृपकि सुता, दई चमन को ब्याहि ।
ते तीनों जल में बड़े, पिछे पति गई पाइ ॥३७॥

दृष्टान्त :- सरजाति राजा की कन्या, सरोवर पर घूमने गई । तीर पर बैठकर दोनों हाथों से पानी ले लेकर, एक मिट्टी के टीले पर फैंकने लगी । वह मिट्टी धूलकर सफेद सफेद आंखें निकल आई । उसने एक तुनका लेकर आंखों में मारा, खून निकल पड़ा और समाधि से उत्थान हो गए । लड़की डरने लगी । राजा सरजाति भी वहां आ गए और ऋषि को पूछा :- आपका क्या नाम है ? उन्होंने कहा :- मेरा चमन ऋषि नाम है । राजा ने विचार किया कि अब इनकी सेवा के लिए, मैं अपनी लड़की को ही, इनके पास दासी रूप से छोड़ दूं । फिर राजा बोला :- ऋषिराज ! यह लड़की आपको, मैंने सर्मपित कर दी है, यही आपकी सेवा करेगी । लड़की ने चमनऋषि को अपना पति स्वीकार कर लिया । चमन ऋषि ने अश्वनी कुमारों का आव्हान् किया और बोले :- मेरे शरीर का कल्प करवाओ । अश्वनी कुमारों ने एक पानी के कुण्ठ में बहुत सी औषधियां डालकर, चमन ऋषि के सहित कुण्ड में उतर गए । वह तीनों महान् दिव्यरूप बन गए । कन्या ने अपने पतिव्रत धर्म के वल पर कहा :- कि मेरा पति अलग हो जाए तत्काल अश्वनी कुमार अलग हो गए । और चमन ऋषि के साथ अपनी प्रीति करके, वह कन्या आनन्द को प्राप्त हुई । ऐसे ही संतपुरूष, परमात्मा रूपी पति को पहचान कर और उसके साथ अभेदतारूप आनन्द की अनुमति करते हैं ।

आन पुरूष हूं भैनड़ी, परम पुरूष भरतार ।
हूं अबला समझूं नहीं, तूं जाणै करतार ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक समय सतगुरू भगवान के पास, माया ने अपने सात रूप बनाये । आपने तब इस साखी से माया को उपदेश किया है कि हे बहनड़ी ! हे माया ! हम तो ओर पुरूष हैं, तेरा भरतार

स्वामी तो परमेश्वर है। इसलिए अपने चरित्रों से केवल प्रभु को ही रिझाइये। प्रत्युत्तर में, माया सतगुरू भगवान से प्रार्थना करती है कि हे दयालु। प्रभु से विमुख होने से, मैं तो अबला हूं, आप ही करतार के भेद को जानते हो, सो आप मेरे लिए भी उपदेश करिये। यह कहकर माया नतमस्तक हो गई।

दोहा :- सात चरित माया किये, गुरू दादू ढिग आइ।
या साखी उत्तर दियो, गई चरण सीर लाइ ॥३८॥

जिसका तिस कौं दीजिये, सांई सनमुख आइ।
दादू नखसिख सौंपि सब, जिनि यहु बंट्या जाइ ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह नख से शिखा पर्यन्त, सम्पूर्ण शरीर, जिस प्रभु का दिया हुआ है, निष्काम पतिव्रत धर्म के द्वारा, उस समर्थ के ही अर्पण करिये। क्योंकि यह उत्तम मानव शरीर, कहीं माया प्रपंच में नहीं उलझ जावे।

दोहा :- आपा सौंपै राम कौं, हरि अपनावै ताहि।
जगन्नाथ जगदीश बिन, आपो दीजै काहि ॥३९॥

सारा दिल सांई सौं राखे, दादू सोई सयान।
जे दिल बंटै आपना, सो सब मूढ़ अयान ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरूष अपने अन्तःकरण की वृत्तियों को एक परमेश्वर में ही एकाग्र किये रहै, वही पुरूष बुद्धिमान है। किन्तु जो पुरूष परमेश्वर से अपनी वृत्ति हटाकर, माया प्रपंच में उलझावें, ऐसे पुरूष मूर्खों में अधम हैं।

दोहा :- सुलतानी गयो बलख तज, रह्यो एकान्त ही जाइ।
सुतत्रीय गये दीदार को, नैंन बूंद बन जाइ ॥४०॥

दृष्टांत :- बलख बुखारे का बादशाह सुलतानशाह फूलों की सेज पर शयन किया करते थे। फूलों की शैया तैयार करने वाली बांदी एक रोज, उस शैया पर लेट गई। तुरन्त गहरी निंद्रा आ गई। बादशाह

आकर देखा हाथ में बेंत लेकर, एक जोर से मारा। बांदी तुरन्त खड़ी हो गई और हंसने लगी। बादशाह बोला :- तूं हंसती क्यों है ? बांदी :- मैंने इस सेज पर आधा घंटा शयन की होगी, उस पर मेरे एक बेंत पड़ी और जो इस सेज पर रोजाना सोते हैं, और भोग भोगते हैं, उनके न मालूम, कितनी बेंत पड़ेंगी ? इसलिए मुझे हंसी आ रही है। सुलतानशाह को तत्काल तरतीव्र वैराग्य हो गया और उसी समय राज का त्याग करके, मालिक की याद करते हुए, एक हंडी और गुदड़ी हाथ में लेकर, घूमते हुए दिल्ली में आ गए। और एक भाड़ भूनने वाले के सामने खड़े हो गये। भाड़ भूनने वाला बोला :- कौन है ? कहां का है ? कहां रहता है ? सुलतानशाह बोले :- जो हूं तेरे सामने खड़ा हूं, कहीं का नहीं हूं, जहां ठहरा वहीं का हूं। भाड़ झोकेगा। आपने कहा :- हां झोकूंगा। भाड़ झोकै, और उसकी दुकान पर पड़ा रहै। भीतर ज्ञान और वैराग्य में मस्त बने रहैं। एक ब्राह्मण को दुखी देखकर बोले :- बलख बुखारा चला जा, तुझे एक हजार रूपया मिल जाएगा। लिख दिया कि इसको एक हजार रूपया दे देना। परन्तु मेरा पता नहीं बताना। ब्राह्मण वहां गया। सहजादा से मिला। पत्र दिया। सहजादा ने और सुलतानशाह की बेगम ने ब्राह्मण को एक हजार की जगह दो हजार रूपया देकर, सुलतानशाह का पता ले लिया। सहजादा अपनी मदर के सहित, दिल्ली घूमने आए। दिल्ली के बादशाह ने उनकी अगवानी की और पूर्वोक्त सब वृतान्त सुना। जिधर भाड़ झौंक रहे थे, उधर ही हाथी की सवारी से आए। सुलतानशाह को देख कर, बेगम बोली :-

दोहा :- जिन सिर ऐता भार, सो क्यूं झोकै भाड़ नै। (भार = बलख बुखारे की बादशाहत)

तब सुलतानशाह उधर देखा अपनी गुदड़ी कंधे पर डाली, हंडी हाथ में उठाई और बोले :-

यातैं मरू मैं भार, तातैं झोकूं भाड़ मैं। (भार :- अहंकार से दबा)

यह कह कर चल पड़े।

ऐसे परमेश्वर के भक्त, अपना दिल परमात्मा से लगाकर, साबत रहते हैं।

दादू सारौं से दिल तोरि कर, सांई से जोड़ै।
सांई सेति जोड़ी करि, काहे को तोड़ै॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! देवी देव, भैरू भूत, कुल कुटुम्ब माया प्रपंचों से मन को हटा कर, परमात्मा में ही मन को लयलीन करिये। और जब परमात्मा में लीन हो जावै, तो फिर मन को विषय वासनाओं की ओर आसक्त न होने दे। अर्थात् मन को परमात्मा में ही एक रस बनाकर रखै।

साहिब देवै राखणा, सेवग दिल चोरै।
दादू सबधन साह का, भूला मन थोरै॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर ने जीवात्मा पर दया करके, मनुष्य शरीर रूपी, धरोर कहिए धन दिया है, नाम का स्मरण करने के लिए। और यह कहा है कि मेरी दी हुई धरोर का दुरूपयोग नहीं करना। इसको सफल बनाकर, मेरे स्वरूप में आकर मिल जाना। परन्तु यह अज्ञानी मानव, परमेश्वर से दिल को चुराकर, माया प्रपंच रिद्धि सिद्धि, कुल कुटुम्ब, स्त्री पुत्र आदिक में आसक्त रहता है। हे अज्ञानी जीव ! जो परमात्मा का सच्चिदानन्द स्वरूप है, वही रूप तेरा है। परन्तु तैंने प्रमाद बस होकर, माया के प्रलोभन में फंसकर् अपने अपार स्वरूप को भूल गया है। अब अपने स्वस्वरूप को संभाल कर, आनन्दमय हो जा।

दोहा :- गोद लियो सुत जेठ, सर्वस सौंप्यों तास को।
करि मूढ़मति नेह, थैली ले न्यारी धरी ॥४२॥

दृष्टांत :- एक वैश्य कुल की बाई ने अपने जेठ का लड़का गोद ले लिया और उसे अपनी सारी सम्पत्ति, तिजोरी वैगरा सौंप दी। उसने अलग थोड़ा काम किया, एक हजार रूपया नफा मिला। उस एक हजार रूपये की थैली को दूसरी अलमारी में रख दिया। एक रोज उस बाई ने अलमारी देखी, तो उसमें रूपया रखा है। पूछा :- यह रूपया कैसा है ? बोला :- मां, मैंने अलग काम किया है, उसके नफे का यह मेरा रूपया है। बाई ने सोचा, इसके भाग्य में तो एक हजार रूपया ही है तैंने इसको लाखों की सम्पत्ति संभलवा दी। यह तो कुछ दिन में सब सम्पत्ति नष्ट कर देगा। बाई ने धीरे धीरे तिजोरी वगैरा, सम्पूर्ण सम्पत्ति अपने काबू में कर ली और एक हजार रूपया अपनी तरफ से और दिया। बोली :- इस दो हजार से अपना अलग काम करो। फिर वह मूढ़ पछताने लगा।

वैसे ही दाराष्टान्त में परमेश्वर ने इस जीव को, मनुष्य देह रूपी बड़ी पूंजी सम्भलाई है। अज्ञानी जीव, इससे विषय वासना रूपी तुच्छ सुख प्राप्त करके, राजी होने लगा। तब फिर परमेश्वर ने मनुष्य देह रूपी धरोहर को छीन लिया।

(पतिव्रत)

दादू मनसा वाचा कर्मना, अंतरि आवै एक।
ताकौं प्रत्यक्ष राम जी, बातैं और अनेक ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन भक्तों की मन बचन कर्म से, प्रभु में लय लगी है, उन भक्तों को परमेश्वर के स्वरूप का साक्षात्कार होता है, बाकी तो सब, बातें करने वाले निरर्थक ही जन्म को गंवाते हैं।

दादू मनसा बाचा कर्मना, हिरदै हरि का भाव ।
अलख पुरूष आगै खड़ा, ताकै त्रिभुवन राव ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन भक्तों के हृदय में, मन बचन कर्म से, प्रभु का स्मरण रहता है, उनके सन्मुख ही स्वयं परमेश्वर, उनका कार्य करने को खड़े रहते हैं । ऐसे भक्तजनों को धन्य है ।

दोहा :- ग्राम मीर खुशरा रहै, बाहिर और फकीर ।
ताको परचो ना भयो, मेह बरसायो मीर ॥४४॥

दृष्टान्त :- एक गांव में मीर खुशरा रहते थे । वे ईश्वर के भक्त थे । अपना हार सृंगार करके परमेश्वर को अपना पति मानते थे । एक रोज गांव के लोग, वर्षा ने होने से दुखी होकर, गांव के बाहर एक संत आये हुए थे, उनके पास गए । और बोले महाराज ! वर्षा नहीं होती है । क्या करें ? महात्मा बोले :- मेरी तूंबी का जल है क्या ? जो बरसा दूं ? सब लोग महात्मा को नमस्कार करके, गांव की ओर आने लगे । रास्ते में येह मीर खुशरा मिले । इनको नमस्कार किया और बोले :- आपने यह सृंगार किसके लिये किया । मीर बोले :- मेरे पति परमेश्वर के लिए । गांव वाले बोले :- आपके पति से पानी तो बरसवा दो । यह सुनकर मीर खुशरा, अपने चुड़े पर हाथ रखकर बोले :- इस चुड़े की लाज रखना प्रभु । यह बोलकर राग मेघ मल्लार गाई । तुरन्त पानी को भारी बरसा होने लगो । जय जयकार हो गया दुनियां में ।

जिसके हृदय में प्रभु का भाव होता है, उसके सामने ही प्रभु खड़े रहते हैं ।

दादू मनसा बाचा कर्मना, हरि जी सौं हित होइ ।
साहिब सन्मुख संगि है, आदि निरंजन सोइ ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो भक्तजन, मन कर्म बचन से, हृदय में प्रभु का भाव धारण करके, परमेश्वर से प्रीति करें, तो उनके सन्मुख ही माया प्रपंच का आदि कारण, आप स्वयं निरंजनदेव, उसके साथ लगे हुए रहते हैं । एक क्षण भर भी, प्रभु उस भक्त का त्याग नहीं करते हैं ।

दादू मनसा बाचा कर्मना, आतुर कारणी राम ।
समरथ सांई सब करै, परगट पूरे काम ॥४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन वचन कर्म से, जो भक्त, प्रभु दर्शनों के लिए बिरह से व्याकुल रहते हैं, उन भक्तों के सन्मुख, समर्थ प्रभु प्रगट होकर, सब काम पूर्ण करते हैं ।

नारी पुरूषा देख करि, पुरिषा नारी होइ ।
दादू सेवग राम का, सीलवन्त है सोइ ॥४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अभिप्राय यह है कि पतिव्रता स्त्री, अपने पति से अतिरिक्त, दूसरे पुरूषों को अपने समान, स्त्री रूप ही देखती है और अपने पति को ही पुरुष जानती है । ऐसे ही सच्चे परमेश्वर के पतिव्रत धर्म को धारण करने वाले भक्त भी, सम्पूर्ण देवी देवताओं को अपने समान, प्रभु के दास जानते हैं और निष्काम भाव से पति परमेश्वर का पतिव्रत धर्म धारण करने वाले, भक्त भी, एक निरंजन देव को ही अपना स्वामी जानते हैं ।

दोहा :- सुनकै बन्दी राबीया, जन चलि आये च्यार ।
शील एकता सबर सम, बिबि कही विचार ॥४७॥

दृष्टान्त :- मुसलमानों में एक बन्दी राबीया नाम के भक्त हुए हैं । वह एक खुदा के पतिव्रत धर्म में ही मस्त रहते थे और परमेश्वर को अपने हृदया में साक्षात्कार कर लिया था । चार देवता (शील, एकता, सबर, सम) इनकी परीक्षा करने आये और बोले :- हमको अपने हृदय में रखो । आप बोले :- मेरे हृदय में तो एक परमेश्वर है और को जगह नहीं है । बीबी के पास चले जाओ । बीबी बोली :- मेरा हृदय तो मियां आपसे पूर्ण हो रहा है, खालो नहीं है । चारों देवता राबीया के सामने नत मस्तक होकर बोले :- आपको धन्य है, धन्य है ।

(आन लग्न व्यभिचार)

पर पुरिषा रत्त बांझणी, जाणैं जे फल होइ ।
जन्म बिगोवै आपणा, दादू निरफल सोइ ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो स्त्री आप तो बांझ है और अपने पति को नपुंसक समझकर, पुत्र उत्पत्ति के लिये, पर पुरूषों से रत्ति सुख लेती है, तो भी पुत्र प्राप्त नहीं होता । पतिव्रतधर्म से विमुख होकर, मानव जीवन को व्यर्थ गंवाती है । इसी प्रकार परमार्थ पक्ष में, ध्यान धारणा, भक्ति वैराग्य आदि के बिना, नाना कामना रूप बांझपन को, अपने में न जानकर, और निरंजनदेव में असमर्थता का दोष अध्यास करके, सकामी

जिज्ञासुजन, ब्रह्मा विष्णु महेश आदिक देवी देवताओं की ओर दौड़ते हैं, तथापि ज्ञान एवं मोक्षरूप फल की प्राप्ति के बिना ही, मनुष्य के शरीर को वृथा ही गमा देते हैं।

दादू तजि भर्तार कौं, पर पुरिषा रत्त होइ।
ऐसी सेवा सब करैं, रामन जाणैं सोइ ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो स्त्री, पतिव्रत धर्म के महत्व को नहीं समझती है, वही अपने पति को त्यागकर, पराये पुरूषों से रत्त होती है, ओर पतिव्रत बिना, उसकी सेवा और नरतन निष्फल है, ऐसे ही यह जीवात्मा, अपने आत्म स्वरूप परमेश्वर की भूलकर, नाना देवी देवताओं की पूजा करता है, किन्तु ऐसे सेवक, राम शुद्ध निरंजनदेव को, यथार्थ नहीं जानेगे, अर्थात् उनकी सेवा पूजा, राम स्वीकार नहीं करेंगे। उनका जीवन तो व्यर्थ ही जाता है।

(पतिव्रत)

नारी सेवग तब लगै, जब लग सांइ पास।
दादू परसै आन कौं, ताकी कैसी आस ॥५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पतिव्रता नारी है, वह सदैव पति की सेवा परायण रहती है। इसी प्रकार राम का सेवक वही है, जो जब तक प्राण पिंड का संयोग है तब तक, प्रभु के स्मरण में ही लीन रहता है और जो अनेक भोग वासना में फंसे हुए हैं, उनके जीवन सफल होने की क्या आशा है ?

दोहा :- नारी को कर्त्तव्य यह, अपने भरता हेत।
जो हित होवै सो करै, निशदिन होइ सचेत ॥५०॥

(आन लगन व्यभिचार)

दादू नारी पुरूष कौं, जाणै जे बसि होइ।
पीव की सेवा ना करै, कामणिगारी सोइ ॥५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे व्यवहार काल में कोई स्त्री पति की सेवा तो नहीं करती है, और यह चाहती है कि पति मेरे काबू में हो जाए, तो वह नारी कामना के बस में होकर, अनेक प्रकार के मंत्र जंत्र, जादू टोना, पति के ऊपर करती रही है। वैसे ही सकामी जीव, प्रभु की अनन्य भक्ति के बिना ही, परमेश्वर के

अनन्त ऐश्वर्य का अनुभव करना चहाता है, तो वह पुरूष भक्त नहीं हैं। नाना कामनाओं के वशीभूत होकर, जंत्र मंत्र अनुष्ठान आदिक, करता कराता है, परन्तु वह सब निष्फल हो जाते हैं।

दोहा :- हुरम जुगइ फकीर पै, मुझ को जत्रं देऊ।
होइ बादशाह मोर बस, साखि लिख दइ लेऊ ॥५१॥

दृष्टान्त :— एक बादशाह की हुरम, बादशाह को बस में करने के लिए, एक फकीर के पास गई और बोली :- कि ऐसा कोई ताबिज बना दो, जिससे बादशाह, मेरे काबू में आ जाय। सांई ने जंत्र बनाकर, भुजा के बांध दिया और वोले :- कि बादशाह जब तुम्हारे यहां आवै, तो तन मन से उनको प्रणाम करना, और प्रेम से सब प्रकार की सेवा करना। इस जंत्र की यह साधना है। यह करती रहोगी, तो बादशाह तुम्हारे बस में हो जाएगा। एक रोज बादशाह उसकी परीक्षा लेने को आ गया। वह बादशाहजादी उपरोक्त प्रकार से सेवा करने लगी। बादशाह उसकी सेवा के बस होकर, उसी के महल में रहने लगे। फिर एक रोज बादशाह बोला :- तुमने तो मुझे अब बस में ही कर लिया ? वह बोली :- ऐसे बस में कहां होने वाले थे ? इस जंत्र ने आपको बस में किया है। बादशाह जंत्र की छाप उखाड़ कर, कागज निकाला, उसमें लिखा था :-

दोहा :- टामण टूमण हे सखी, भूलि करो मति कोइ।
पीव कहै त्यौं कीजिये, आपै ही बस होइ ॥५१॥

बादशाह बोले :- यह किसने जंत्र बनाकर दिया है ? अमुख फकीर ने। बादशाह और बादशाहजादी, दोनों ने जाकर फकीर के दर्शन किये और बादशाह बोला :- यह शक्ति संतों में ही होती है, जो बहिर्मुख जीव को अन्तर्मुख करके, आपस में प्रेम बढ़ा देते हैं। दाराष्टान्त में ब्रह्मनिष्ठ गुरू इसी प्रकार उत्तम शिष्यों को, परमात्मा के सन्मुख कर देते हैं।

(करुणा)

कीया मन का भावता, मेटी आज्ञाकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के हुकम और कसौटी को मेटकर, यह बहिर्मुख जीव, अपने को प्रिय लगने वाले ही नाना कर्म किये है। भाव भक्ति से विमुख होकर, यह जीव, अब प्रभु को कैसे मुख दिखलावेंगे ? क्योंकि ईश्वर विमुख प्राणियों का मनुष्य जन्म व्यर्थ ही जाता है।

(आन लग्न व्यभिचार)

करामाति कलंक है, जाकै हिरदै एक ।
अति आनन्द बिभचारणी, जाके खसम अनेक ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ईश्वर के भक्तों के केवल एक ईश्वर का ही पतिव्रत है । उनके मायावी भोग पदार्थ और नाना चमत्कार आदि ईश्वर भक्ति में अन्तराय रूप से प्रतीत होते हैं । परन्तु जो विषयों में आसक्ति वाले पुरूष हैं, उनको अनेक धन आदि की इच्छा से, नाना देवी, देव, भैरू भूत का इष्ट है । उनको मायावी करामातों से अति आनन्द होता है ।

दोहा :- **साधु एकतीय सैं कही, तो पति परसौं आइ ।**
आयो उत्सव देख करि, घोड़ी पेट चीराइ ॥५३॥

दृष्टांत :- एक राजपूतों की बाई थी, उसका पति विदेश में गया था । उसकी कोई चिट्ठी वगैरा नहीं आई । बाई को मन में चिंता रहती थी । एक संत रोज भिक्षा लेने नगर में आते । इस बाई ने उनसे पूछा :-कि महाराज मेरे पतिदेव कब आवेंगे ? संत ने कहा :- परसों । बाई को संत बचन में दृढ विश्वास था । उसको निश्चय हो गया, कि पति तो परसों जरूर आयेंगे । उसने पति के आगमन में घर की सफाई और सजावट करी । फिर आप स्नान कर अनेक प्रकार के भूषण वस्त्र धारण कर लिये । अंजन मंजन वगैरा सब सृगांर किया और उस रोज मीठे व्यंजन वगैरा बनाए और पति की बैठी बैठी इन्तजार कर रही थी । पतिदेव आ ही पहुंचे । परन्तु उसका हार श्रृंगार वगैरा देख कर, मन में क्रोधित हो गए । इतने में संत भीक्षा लेने आया । पति ने पूछा :- यह हार श्रृंगार, किसके ऊपर किया ? वह कहने लगी :- आपके ऊपर ही किया है । मेरा तुम्हें क्या पता ? वह बोली :- मैंने इन संतों से पूछा था, यह बोले परसों आवेगा । संत की तरफ उस ने देखा और बोला :- तुम ऐसे बचन सिद्ध हो, तो बताओ, यह मेरी घोड़ी है, इसके बछेरा होगा या बछेरी । और नहीं तो पहले इस स्त्री का सिर काटूंगा । फिर तेरा काटूंगा और फिर अपना भी काट लूंगा । महात्मा घबरा गए । मन में सोचा कि, नहीं कहते तो अच्छा था । हे ईश्वर ! आप कृपा करो । तब परमेश्वर की प्रेरणा से संत बोले :- इसके बछेरा होगा । उसने नंगी तलवार दोनों हाथों से घोड़ी की पीठ में मारी, कि घोड़ी के दो टुकड़े हो गए । घोड़ी के गर्भ में बछेरा देखा, तो एक दम तलवार डालकर, महातमा को नमस्कार करने लगा । बोला :- कि मेरा अपराध क्षमा करें । संत ने परमेश्वर से प्रार्थना की, कि हे नाथ ! यह करामात का कलंक मेरे पल्ले बंधा । दो जीवों की हिंसा हुई । आप ही मेरे, इस अपराध को क्षमा करना ।

इसी से ब्रह्मऋषि परमगुरू देव कहते हैं कि परमेश्वर के पतिव्रत धारण करने वाले संतों के लिए, करामात कलंक है । परन्तु व्याभिचारणी के करामात से, अति आनन्द होता है ।

दोहा :- भोज मंगायो वृक्ष हित, पतिव्रता को क्षीर ।
गयो राव घर पूछियो, एक घटै धरि धीर ॥१॥

दिगविजय राजा गयो, छाया बैठो आइ ।
राघौ कर्म संजोग से, पीपल सूक्यो जाइ ॥२॥

सभा सभाही सूं कही, राघौ नृप नै चाव ।
धरती पर धर्मात्मा, हर्‌यो करै कोइ आव ॥३॥

पंडित प्रधानन कियो, राघौ यह बिचार ।
पतिव्रता के क्षीर से, हर्‌यो होत नहीं बार ॥४॥

राघौ नृप तोलि सभा, बरत्त राणों राणि ।
जाके पतिव्रता व्है बधू, सोई सो ल्यों जाणि ॥५॥

राघौ रावत नै लियो, बीरो खुसी खखारी ।
सभा माहीं बदकर चल्यो, मो पतिव्रता नारि ॥६॥

राघौ देखी बाट में, बच्छा चरावत नारि ।
राज सभा से क्यों चले, रावत कहो बिचार ॥७॥

जन राघौ रावत कही, मो घरनी की रीत ।
पीपल छुवत व्है हर्‌यो, सब को व्है परत्तीत ॥८॥

जन राघौ बाई कह्यो, नारी न्यावन देख ।
तूं रावत भोलो भयो, नही जो घर को भेद ॥९॥

बाई रावत सूं कही, राघौ मन मैं हीस ।
पीपल छुवत व्है हर्‌यो, जाके पति व्है बीस ॥१०॥

राघौ रावत घर कही, सारी बात जो हीस ।
कौन चित तुम मत करो, मो पति हैं ऊनीस ॥११॥

इतनी सुनी रावत भग्यो, पगन पर्यो यु आखी ।
तुतो बहन धर्म की, जो पत्त रह तो राखी ॥१२॥

बीर बहन व्है कर चल्यौ, साक्षी तहां करतार ।
राघौ पीपल पाघंरयो, सुकी रही इक डार ॥१३॥

पतिव्रता परब्रह्म से, करी बीनती येह ।
राघौ पति बिन और की, मैं नहीं परसी देहै ॥१४॥

गोद लियो जेठूत सुत, कीजे नाथ नीहार ।
राघौ हरि करूणा सुनी, ज्यों की त्यों भइ डार ॥१५॥

सांच कहत सबके बिदी, अरू रीजे करतार ।
राघौ नृप पांवा पर्यो, सकल सभा जयकार ॥१६॥

दृष्टान्त :- एक रोज राजा भोज दिगविजय दौरा करने को चला । जंगल में पीपल के वृक्ष के नीचे जा कर, सब लोग ठहरे । राजा के देखते देखते ही, वह पीपल एक दम सुख गया । राजा वहीं पर विद्वानों से पूछा :- कि यह पीपल किस प्रकार हरा हो ? विद्वानों ने कहा पतिव्रता स्त्री के दूध की धार से यह हरा हो जाएगा । राजा ने सभा में पान का बीड़ा रखा । जिसके पतिव्रता स्त्री हो, वह बीड़ा चबा ले । एक राव राजा ने उसको उठाकर तीन खकारे करे, और बीड़ा चबा लिया । अपनी रानी को लेने चला, रास्ते में एक कास्तगार की लड़की बछड़े चरा रही थी । राजा से पूछा सभा से कैसे आ गए ? राजा ने पूर्वोक्त वृत्तान्त लड़की से कहा । लड़की बोली :- आपको अपने घर का पता नहीं है । आप जाकर अपनी स्त्री को बोलना कि जिस स्त्री के बीस पति हों, वह दूध की धार मारे, तो पीपल हरा हो जाय । मैं अब वह स्त्री कहां से लाऊं ? बाई ने बतलाया, वैसे ही राव राजाघर जाकर बोला । राव की स्त्री बोली कि मेरे उन्नीस पति हैं, अब एक और कर आती हूं । आपका काम में सिद्ध कर दूंगी । । राव यह सुनकर वापिस भागा और उस बाई के चरणों में आ पड़ा । और राव बोले :- तूं मेरी धर्म की बहन है, सभा में मेरी बात रख । बहन भाई

दोनों बनकर चले । परमेश्वर इसके साक्षी हैं । सभा में पहुंचे । महाराजा भोज बोले :- यह कौन है ? कि यह मेरी बहन है । यही पीपल को हरा कर देगी । उसने जो अपनी चोली में से, ममा निकाल कर धार सारी पीपल के, तो पीपल एक दम हरा हो गया । ऊपर एक डाली सुखी रह गई । राजा भोज ने पूछा :- क्या बाई आपका कभी पतिव्रत धर्म खंडित हो गया था?बाई :- नहीं । परब्रह्म से बाई ने बिनती की, कि जेठ के पुत्र को गोदी में लिया था, तब उस बच्चे ने मेरे ऊपर पेशाब किया, वह मेरे बदन के ऊपर से बह गया । हे परमेश्वर ! आप इस बात के साक्षी हो । मैंने अपने पति के सिवाय, दूसरे पुरूष के शरीर का स्पर्श नहीं किया है । मैं मेरे सत पर हूं, तो यह पीपल की डाली हरी हो जाये । वह भी हरी हो गई । राजा भोज खड़े होकर, पतिव्रता के चरणों में नमस्कार किया और पूजा करी । सभी सभा ने बाई की पूजा की और पतिव्रत धर्म की जय जयकार सभा में होने लगी ।

दादू पतिव्रता कै एक है, बिभचारिणी के दोइ ।
पतिब्रता बिभचारणी, मेला क्यों कर होइ ॥५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पतिव्रता स्त्री के उसका पति ही, उसको एक पुरूष दिखलाई पड़ता है, और व्यभिचारणी के दो । जैसे पति पुरूष है , ऐसे अन्य को भी पुरूष जानती है । तो पतिव्रता के धर्म और व्यभिचारिणी के धर्म, की एकता नही होती । दाराष्टान्त में परमेश्वर के अनन्य भक्तों को, एक प्रभु का ही पतिव्रत है । और ब्रह्मज्ञानी मुक्तजनों की समस्त संसार में, एकत्व ब्रह्म बुद्धि ही बनी रहती है । किसी भी पदार्थों को वह सत्य नहीं मानता है । इसके विपरींत जो व्यभिचारणी है, वह अनेक देवी देवता और उनके अनुष्ठान आदि के करने वाले उपासक को, द्वैतभाव प्रतीत होता है ।

दोहा :- **सुया अनसुया बहन दो, इक काशी अन गांव ।**
घर राख्यौ रवि रथ थक्यौ, पतिव्रता बलराम ॥५४॥

दृष्टान्त:- अत्री मुनि की धर्म पत्नी, महान पतिव्रता माता अनसुया जी थे । उनके पतिव्रत की परीक्षा, ब्रह्मा विष्णु महेश करने आये । परन्तु वह, उनके पतिव्रत के सामने, नत मस्तक हो गये और उन तीनों को उनके पुत्र बनना पड़ा ००००० । अनसुया जी की बहन कासी में निवास करती थी । उनके घर एक तपस्वी आये और बोले :- माता जल पिलाओ । वह बोली :- महाराज ठहरो ! भोजन भी लाती हूं और जल भी लाती हूं, परन्तु मैं पहले अपने पतिदेव को जल का गिलास दे आऊं । साधु के मन में अहंता आ गई कि मैं तपस्वी और मुझे यह बोलती हैं, ठहरो ! तब अन्दर से पतिव्रता बाई ने आवाज दी कि महाराज यहां चिड़िया नहीं हैं, जो भष्म हो जाएगीं । यह सुनकर साधु चकित हो गया । वह सोचने लगा कि इसे चिड़ियाओं का कैसे पता लगा ? जब तपस्वी पहले तपस्या कर रहा था, तो दो चिड़या पेड़ पर आकर बोलने

लगी थी । यह क्रोध की दृष्टि से झाकां तो वह चिड़िया भस्म होकर, नीचे आकर गिर गई थी । वही बात पतिव्रता देवी ने उसको याद दिलाई । रोटी और जल लेकर आई । बोली :- लो महाराज, यह रोटी लो और यह जल लो । तपस्वी बोले :- बाई ! उन चिड़ियाओं का तुझे कैसे पता लगा ? बाईं बोली :- जल्दी पकड़ो रोटी । रोटी देकर बाई ने मकान के चारों तरफ पानी की कार खेंच दी । तपस्वी बोले :- बाई । यह और क्या किया ? पतिव्रता बोली :- आपने रोटी लेने में देर लगा दी । अमुख गावं में आग लग गई । वहां मेरी बहन भी रहती है । आप जल्दी रोटी लेते, तो मैं सारे गावं को बचा लेती, पर फिर भी मैंने अपनी बहन का घर तो बचा ही लिया । यह सुनकर तपस्वी और भी विश्मय हो गए और बोले :- यह मैं कैसे जानूं ? कि आपने घर बचा लिया । बाई बोली :- जाकर देखो । तपस्वी चले । उस गावं में पहुंचे, तो देखा, सब गावं जला पड़ा है । एक घर नहीं जला । उस घर वालो बाई से पूछा :- आपका घर कैसे बच गया ? बाई बोली :- कासी में मेरी बहन रहती है, उसके घर कोई साधु आया, वह रोटी लेने में देर कर दी । नहीं तो मेरी बहन सारे गावं को बचा लेती । फिर भी मेरा घर तो बचा ही लिया । तपस्वी मन में सोचने लगे :- यह क्या लीला है ईश्वर की ? तपस्वी बोले :- बाई । यह आप लोगों में शक्ति किस प्रकार आ जाती है, जो दूर देश की बात आप जान लेती हो ? पतिव्रता :- मेरी बहन से ही जाकर पूछो ? कासी आया और तपस्वी कहने लगे :- बाई ! वह सब बात सत्य है । परन्तु आप यह बतलाओ, आपमें यह शक्ति किस प्रकार आ जाती है ? बाई बोली :- हे तपो धन ! हमारा पति परमेश्वर है । निष्कपट, निरअहंकार होकर, हम लोग उसके चेतन्य स्वरूप की उपासना । करती हैं और स्थूल शरीर की सेवा करती हैं । इसी से हमारे में यह शक्ति आ जाती है । आपका पति परमेश्वर है, आप भी उस चेतन्य स्वरूप परमात्मा की उपासना करिये और निष्कपट निरअहंकार होकर, अपनी मन इन्द्रियों को एकाग्र करें, पति के स्वरूप में ।तो फिर आपकी भी ऐसी शक्ति हो जाएगी । तपस्वी, पतिव्रता देवी के सामने नतमस्तक हो गए ।

दृष्टांत :-एक सांडली नाम पतिव्रता देवी ब्राह्मण कुल में थी । उसके पति बहुत निठुर स्वभाव के थे, और रोगी भी हो गए थे । पांव से अपंग भी थे । वह उनको अपनी पीठ पर लेकर, प्रातःकाल गंगा स्नान को रोज जाया करती थी । एक रोज एक ऋषि गंगा स्नान करके आ रहे थे और यह पति को लिए जा रही थी । अंधेरा होने के कारण, उसके पति का पांव, ऋषि के बदन से छुया गया । तपस्वी बोले :- कौन है ? पतिव्रता बोली :- मैं हूं, जिसका पति रोगी है । तपस्वी बोला :- सूर्य निकलते ही तेरा पति मर जाएगा । यह एक मिनट मौन होकर सोचा कि पति मर जाएगा तो मैं क्या करूंगी ? तत्काल बोल उठी, कि सूर्य उदय नहीं होगा । अब सूर्य उदय नहीं हो रहा है, तीन रोज बीत गए । दुनियां में हाहाकार होने लगा । ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रगट हो गए बोले हे बाई ! आप सूर्य को आज्ञा दो, जिससे सूर्य उदय होवै । ऋषि अपने शब्द को लेवें, तो मैं भी सूर्य को आज्ञा दूंगी । ऋषि से कहा । तपस्वी बोलाः-जो कुछ हमने कह दिया, सो ठीक है । तब अनसुया महारानी आई और बोली :- बहन तूं सूर्य को आज्ञा दे दे, उदय होने की ।

तब सांडली ने कहा :- बहन, मेरा पति मर जाएगा, तो मैं क्या करूंगी ? अनसुया देवी बोली :- तुम्हारे पति को मैं जिन्दा कर दूंगी । तब पतिव्रता ने आज्ञा दी कि सूर्य नारायण उदय हो जावो । सूर्य भगवान के उदय होते ही, उसके पति की मृत्यु हो गई । अनसुया माता ने अपने पतिव्रत के बल से उसको जीवित कर दिया और शरीर का कलप भी करवा कर, महान दिव्यरूप बना दिया ।

सोई परमगुरूदेव उपदेश करते हैं कि पतिव्रताओं के एक उनका पति ही, उनके जीवन का आधार है । उसी की सेवा से, अपने धर्म के प्रभाव से, उनमें अनेक प्रकार की शक्तियां देखने में आई हैं ।

पतिव्रता कै एक है, दूजा नांहि आन ।
बिभिचारणि कै दोइ हैं, पर घर एक समान ॥५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे पतिव्रता स्त्री के एक पति ही है, वैसे ही ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी की भावना में एकत्व है और मायिक कार्य अध्यस्त (कल्पित) है । जैसे व्यभिचारणी को अपना और पराया घर बर एक समान होता है, इसी तरह संसारीजन काम्य कर्म और संसार को भी आत्मा की भांति सत्यरूप मानकर, तद्नुरूप ही व्यवहार करते हैं । इस प्रकार द्वैतवादी संसारीजन, मानव जीवन को वृथा गमाते हैं ।

(सुन्दरी सुहाग)

दादू पुरूष हमारा एक है, हम नारी बहु अंग ।
जे जे जैसी ताहि सौं, खेलैं तिस हि रंग ॥५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भक्तजनों का एक हरि ही स्वामी है । सब इसी के स्वरूप में, नाना शरीरधारी भक्त, अपनी सुरति को व्यापक चेतन्य में ही लगा कर रखते हैं । योग द्वारा, भक्ति द्वारा, ज्ञान द्वारा, सगुण रूप में, निर्गुण रूप में, जिन की जिस रूप में जैसी स्थिति है, उसके अनुसार ही वह प्रभु के स्वरूप में, अपनी लय लगाये रहते हैं और प्रेमरूपी रस को पान करते हैं, प्रभु के साथ खेलते हैं ।

(पतिव्रत)

दादू रहता राखिये, बहता देइ बहाइ ।
बहते संगि न जाइये, रहते सौं ल्यौ लाइ ॥५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण गुण और विकार से रहित, जो परमेश्वर का स्वरूप है, उसमें अपनी चित्त की वृत्ति को स्थिर करो । माया और माया का कार्य प्रपंच, उसको विचार से त्यागिये तथा बहते संग

आने जाने वाली माया इसके साथ प्रीति नहीं करना। गुण विकारों में प्रवृत्त नहीं होना। इन सब से रहित जो तीन काल में, जिसका बाध्य नहीं होता है, उसी परमेश्वर में लय लगाकर स्थिर रहना।

छन्द :-

होइ अनन्य भजै भगवंत हि, और कछु उर में नंहि राखै।
देवी रू देव जहां लग है, डर के तिन सूं बहु दीन न भाखै।
योगऊ यज्ञ ब्रतादि क्रिया, तिनकूं तो नही स्वप्ने अभिलाखै।
सुन्दर अमृत पान कियो तब, तो कहु कौन हलाहल चाखै ॥५७॥

जिन बाझै काहू कर्म सौं, दूजै आरंभ जाइ।
दादू एकै मूल गहि, दूजा देइ बहाइ ॥५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! किसी भी सकाम कर्म में अपनी वृत्ति को नहीं लगाना, क्योंकि सकाम कर्म, बन्धन कारक होता है। जो चेतन्य ब्रह्म से अलग है, वह सब कार्य विनाश होने वाला है। सर्व का मूल एक परमेश्वर है, उसमें लय लगा कर रहो और दूजा संसार का वासना, द्वैतभाव, इन सबका त्याग करो।

छदं :-

जो हरि को तजि आन उपासत, सो मति मन्द फजितहि होई।
ज्यूं अपने भरतार ही छाड़ि, भई व्यभिचारणी कामनी कोई।
बूड़ि मरै किन कुपि मंझार, कहा जग जीवत है सठ सोई।
सुन्दर ताही न आदर मान, फिरै बिमुखी अपनी पत खोई ॥५९॥

बावैं देखि न दाहिणै, तन मन सनमुख राखि।
दादू निर्मल तत्त गहि, सत्य शब्द यहु साखि ॥५९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'बावैं'—मृत्यु लोक के भोग, स्त्री, धन, पुत्र और 'दाहिणे'—स्वर्ग के ऐश्वर्य सुख इन सबसे उदास होकर, परमेश्वर में ही अपने तन मन की अखंड लय लगाओ और कनक, कामनी में कभी भी आसक्त नहीं होना । अपने तन मन को चेतन्य परमेश्वर में स्थिर रखना ।

दोहा :- कबीर एक कनक अरू कामनी बिष फल की ये उपाइ ।
देखे हि तै तन जलै, खावे सो मर जाइ ॥५९॥

दादू दूजा नैन न देखिये, श्रवणहु सुनै न जाइ
जिभ्या आन न बोलिये, अंगिन और सुहाइ ॥६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया और माया के कार्य को, नेत्रों से सत्य करके नहीं देखना । परमेश्वर को ही सत्य करके देखो । श्रवण इन्द्रिय से संसारिक वार्ताएं नहीं सुनना । परमेश्वर के गुणानवाद श्रवण करना । अपनी जिह्वा से परमेश्वर के नाम का ही स्मरण करना, दूसरे का यश नहीं गाना । अपने शरीर में परमेश्वर से और सतगुरू से अलग, ओर किसी का स्पर्श नहीं करना । परमेश्वर के अनन्य भक्तों को, परमेश्वर के सिवाय ओर दूसरा कोई प्रिय नहीं लगता है ।

जैसे चकोर की मुखप्रीति चन्द्रमा से ही है, ऐसे ही मृग की मुखप्रीति बरवा राग से है । चातक पपैया की मुखप्रीति स्वांति नक्षत्र की बूंद से है और मछली की मुखप्रीति जल से है । इन सबका उपरोक्त पदार्थों के साथ ही पतिव्रत है, ऐसे ही अनन्य भक्तों का, परमात्मा के साथ पतिव्रत है ।

छंद :-

पूरन काम सदा सुखधाम, निरंजन राम सिरज्जन हारो ।
सेवक होइ रह्यो सब को नित, कीट हि कुंजर देत अहारो ।
भंजन दुख दरिद्र निवारन, चिन्त करै पुनि साँझ सवांरो ।
ऐसो प्रभु तज आन उपासत, सुन्दर है तिनको मुख कारो ॥६०॥

चरण हु अनतन जाइये, सब उलटा मांहि समाइ ।
उलटि अपूठा आप मै, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने चरणों से परमेश्वर के मार्ग पर चलना, दूसरे मार्ग पर नहीं जाना। हारिल पक्षी जमीन पर उतरता है तब अपने पंजे लकड़ी पर रखता है, जमीन पर पंजे नहीं टेकता इसी प्रकार अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को र्बाहमुख साधनों से, पलट कर, अन्तर्मुख साधनों में लगाओ। सतगुरू महराज कहते हैं कि भक्तजनों के एक परमेश्वर का ही पतिव्रत होता है, वे अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को आत्म विचार में लगाकर, अभेद होते हैं।

दादू दूजे अतंर होत है, जिन आणै मन मांहि ।
तहां ले मन कौं राखिये, जहं कुछ दूजा नांहि ॥६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण जगत् में एक ब्रह्म भावना किये बिना, अन्तःकरण में द्वैतभाव व्याप्त होता है और परमेश्वर के पतिव्रत में भी अन्तर पड़ता है (फरक आता है)। इसलिये देह अध्यास और माया प्रपंच के बस में होकर, अपने मन में द्वैतभाव नहीं लाना। सर्व नामरूप पदार्थों में चेतन्य ब्रह्म ही व्यापक हो रहा हैं, ऐसा निश्चय करो। माया और माया के कार्यों को मिथ्या जानकर, निर्विशेष निर्विकल्प, निर उपाधिक ब्रह्म में ही लय लगाओ।

दोहा :- सतं जुड़े परब्रह्म से, नृप आयो दीदार ।
पूछी प्रभु क्यों एकले, अबलुं द्वै बटपार ॥६२॥

दृष्टान्त :- एक संत परमेश्वर के ध्यान में बैठे थे। राजा दर्शन करने आया। दर्शन करके बोला :- महाराज ! अकेले ही बैठे हो। सतं बोलेः-अब तक तो दो (सेवक, स्वामी) थे। अब तूं तीसरा स्मरण में फर्क डालने वाला बटपारा आ गया।

(भ्रम विध्वंस)

भ्रम तिमर भाजै नहीं, रे जीव आन उपाइ ।
दादू दीपक साज लै, सहजै ही मिट जाइ ॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने जीव में माया प्रपंच का ज्ञान, कहिए संसार में सत्य बुद्धि और भ्रान्ति ज्ञान और सत्य वस्तुरूप ब्रह्मतत्व का जो अज्ञान है, वह सकाम अनुष्ठान, तीर्थ व्रत, अन्य देवी देवताओं की उपासना करने से, तिमर अर्थात अज्ञान की निवृति नहीं होवेगी । किन्तु सूर्य उदय होने से रात्रि रूपी अंधेरा, स्वतः ही नाश हो जाता है, ऐसे ही हृदय में आत्मा का ज्ञान होने पर, माया प्रपंच को भ्रान्ति स्वतः नष्ट हो जाती है । इसलिए निरउपाधिक अद्वैत ब्रह्म का ही पतिव्रत धर्म धारण करिये ।

दादू सो बेदन नहीं बावरे, आन किये जे जाइ ।
सब दुख भंजन सांइया, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह संसार रूपी दुख ऐसा नहीं है, जो किसी बहिरंग साधनों से मुक्त हो जावे । हे बावले ! सम्पूर्ण जन्म से मरण पर्यन्त, दुखों का नाश, करने वाले तो, एक परमेश्वर ही हैं । इसलिए अब तुम अन्तर्मुख वृत्ति होकर, परमेश्वर का नाम स्मरण करो । वही सम्पूर्ण दुखों का नाश करने वाला है ।

दादू औषदि मूली कुछ नहीं, ये सब झूठी बात ।
जे औषदि ही जीविये, तौ काहे कौं मरि जात ॥६५॥

टीका हे जिज्ञासुओ ! "औषध मूली" कहिए ऊपर के पत्ते औषध और मूली कहिए मूल जड़, इनमें जन्म मरण दुख को काटने की शक्ति नहीं है यद्यपि अध्यात्तम, दुख तो काट भी देते हैं, परन्तु चौरासी के दुख काटने की इनमें ताकत नहीं है । अगर औषध मूली से ही जन्म मरण रूपो दुख कट जाय तो फिर कोई भी जन्म मरण को प्राप्त नहीं होवे । इसलिए जन्म मरण को काटने वाला तो केवल एक, स्वस्वरूप आत्मा का पतिव्रत रूप, स्मरण ही है ।

दो० :- बादसाह मरति समय, सब ठाढ़े कीये लाइ ।
बैद सूर धन लोग कुल, सबी देखतां जाइ ॥६५॥

दृष्टांत :- एक बादशाह के पास सन्त गए । बादशाह ने नमस्कार किया । संत बोले :- परमेश्वर का नाम स्मरण किया करो, अंत में वही मदद करेगा । बादशाह बोला :- मैं यह नहीं मानता, क्योंकि शरीर में रोग होगा, तो मेरे यहाँ डाक्टर वैद्य बहुत हैं । कोई लड़ाई करने आवेगा, तो

शूरवीर बहुत हैं । और कोई आपत्ति आएगी, तो धन के खजाने भरे हैं, धन देकर, निवारण कर दूंगा। मेरे बहुत परिवार है, वह मुझे सब प्रकार से सहयोग देने वाले हैं । नाम स्मरण की क्या आवश्कता है ? महात्मा बोले :- ठीक है, अन्त समय में बताऊंगा । जब बादशाह का अन्त समय आया, महात्मा दूर दृष्टि थे, जान गए और बादशाह के पास आ पहुंचे । उपरोक्त सभी साधन बादशाह के पास मौजूद थे । महात्मा को देखकर, बादशाह ने नमस्कार किया । संत बोले :- अब तुम जाने वाले हो, जिनका तुम्हें भरोसा था, वह कोई भी तुम्हें नहीं बचा सकेंगे, प्राण पिन्ड के दुख से । बादशाह, महात्मा के सामने नतमस्तक हो गया । महात्मा बोले :- सर्वशक्तिवान ईश्वर का नाम स्मरण कर । फिर बादशाह नाम स्मरण द्वारा ही सद्गति को प्राप्त हो गया ।

(पतिव्रत)

मूल गहै सौ निश्चल बैठा, सुख में रहै समाइ ।
डाल पान भ्रमत फीरै, बेदों दिया बहाइ ॥६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्व का कारण मूल एक परमेश्वर है, उसको निज आत्मास्वरूप से जानकर, उसमें स्थित हो जाओ । तब तुम परमानन्द स्वरूप में समाओगे और संसारीजन तो, डाल पान रूप, देवी देवताओं की उपासना में लगकर, जन्मान्तरों में भटकते रहते हैं, क्योंकि बेदों में जो सकाम कर्मरूप बचन हैं, उनको सुना सुनाकर बहिरंग पंडित लोग, अज्ञानियों को बहकाते रहते हैं ।

सो धक्का सुनाहां कौं देवैं, घर बाहरि काढै ।
दादू सेवक राम का, दरबार न छाड़ै ॥६७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! घर में पाले हुए कुत्ते को सौ दफा ताड़ना करने से भी, वह मालिक का दरवाजा नहीं छोड़ता है, इसी प्रकार राम अपने भक्तों को, चाहे कितनी ताड़ना कसौटी देवैं, तो भी सच्चे भक्त राम के पतिव्रत में स्थित हुए, राम का दरबार (सतसंग या हृदय) छोड़कर, अन्यत्र नहीं जाते, और वे जानते हैं कि हमारे स्वामी तो केवल, हे राम ! आप ही हो । आप को छोड़कर, हम किसके आसरे जी सकते है ?

साहिब का दर छाड़ी करि, सेवक कहीं न जाइ ।
दादू बैठा मूल गहि, डालौं फिरै बलाई ॥६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमात्मा का स्वस्वरूप दरबार, या सतसंग रूपी दरबार, गुरू का दरबार को छोड़ कर, उत्तम जिज्ञासु अन्य दूसरे साधनों में जाकर साधना नहीं करते । वे तो सबका उपादान कारण, आत्म स्वरूप ब्रह्म को जानकर, कृत्य कृत्य रहते हैं । अन्य साधनों में वह क्यों फिरने लगे ? "डालौं फिरै बलाइ"- उनसे विपरीत संसारीजन देवी देवताओं की उपासना रूप बलाय को अपने गले में डालकर जन्म जन्मोन्तरों में भ्रमते रहते हैं ।

दादू जब लग मूल न सीचिये, तब लग हर्या न होइ ।
सेवा निरफल सब गई, फिर पछताना सोइ ॥६९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक वृक्ष के मूल में जल नहीं सीचैं, तब तक वृक्ष हरा नहीं हो पाता, क्योंकि डाल पत्तों को सींचने से, वह सब गलकर नष्ट हो जाते हैं, और आगे वृक्ष ही सूख जाता है । तथा वह जो पुरुषार्थ किया था, सब व्यर्थ ही जाता है । दाराष्टान्त में हे जिज्ञासुओ ! सबका कारणमूल ईश्वर है, उसकी आराधना त्यागकर, अन्य देवी देवताओं की आराधना करै, तो मनुष्य देहरूपी वृक्ष सूख जाता है, यानि नष्ट हो जाता है ।

दादू सींचे मूल के, सब सींच्यां बिसतार ।
दादू सींचे मूल बिन, बाद गई बेगार ॥७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो अनन्य पतिव्रत धर्म को धारण करने वाले भक्त, सबका मूल कारण ईश्वर को जानकर, उसकी आराधना में लगे हैं, वह उनकी आराधना, विस्तार को प्राप्त होती है । अर्थात् परमात्मा रूप ही उनको बना देती है । और जो संसारीजन ईश्वर को छोड़कर, अन्य सकाम कर्मरूप साधनों के द्वारा दूसरी उपासना करते हैं, उनकी वह साधना व्यर्थ ही नष्ट हो जाती है और उनको यथार्थ लाभ प्राप्त नहीं होता ।

सब आया उस एक मैं, डाल पान फल फूल ।
दादू पीछे क्या रह्या, जब निज पकड़्या मूल ॥७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे वृक्ष के मूल को सींचने से, समस्त डाल, पान फल फूल आदि का स्वतः ही पोषण होता है, इसी प्रकार आत्मा रूप परमात्मा का अनुभव होने से, मनुष्य जीवन के समस्त कर्तव्य सफल हो जाते हैं ।

खेत न निपजै बीज बिन, जल सींचे क्या होइ ।
सब निरफल दादू राम बिन, जानत है सब कोइ ॥७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! खेत में बीज नहीं रहने से, फसल प्राप्त नहीं कर सकते । कितना ही पानी क्यों न सींचे । इसी प्रकार अन्तःकरण रूपी खेत में, जब तक गुरूदेव उपदेश रूपी बीज नहीं डालें, तब तक राम की भक्ति के बिना, संसारीजनों को मोक्ष रूपी फल प्राप्त नहीं होता । इस बात को सभी तत्ववेत्ता पुरूष समझते हैं । इसलिए गुरूदेव का उपदेश रूपी बीज, अन्तःकरण में डालिये, यानि धारण करिये ।

दादू जब मुख मांहि मेलिये, तब सब ही तृपत्त होइ ।
मुख बिन मेले आन दिस, तृपत्ति न माने कोइ ॥७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे भोजन का ग्रास मुख में चबाने से, समस्त शरीर तृप्त और पुष्ट होता है और वही ग्रास अन्य इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करें तो, किसी की भी तृप्ति नहीं होती, प्रत्युत अंग भंग और हो जाता है । इसी तरह अपनी अन्तःकरण की वृत्ति को एकाग्र करके, पूर्ण ब्रह्म में अखंड लय लगाइये । तो सभी देवी देवताओं की तृप्ति और नर तन सफल हो जाता है ।

जब देव निरंजन पूजीये, तब सब आया उस मांहि ।
डाल पान फल फूल सब, दादू न्यारे नांहि ॥७४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे वृक्ष के मूल में जल सींचने से, वृक्ष के अंग, उपांग सभी सींचे जाते हैं । इसी प्रकार एक निर्गुण राम को निज आत्म स्वरूप जानकर, उसकी उपासना करने से, देवी देव की उपासना तीर्थ व्रत, दान पुण्य, यज्ञ योग, सम्पूर्ण साधना उसकी मानो सिद्ध हो गई हैं ।

दादू टीका राम कूं, दूसर दीजे नांहि ।
ज्ञान ध्यान तप भेख पक्ष, सब आये उस मांहि ॥७५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक व्यापक राम की उपासना रूप टीका हृदय में, जिसने धारण कर लिया है । फिर वह राम से अलग ओर अनात्म पदार्थों को मान्यता नहीं देते हैं । ज्ञान ध्यान तप, भेख, बाना, पक्ष (मत मतान्तरों की हद), यह सब ही साधना, उस राम की उपासना के अन्तर्गत ही सब सार्थक हो जाती हैं, अर्थात् आ जाती है ।

साधु राखै राम कौ, संसारी माया।
संसारी पालव गहै, मूल साधू पाया ॥७६॥

का :- हे जिज्ञासुओ ! अनन्य प्रभु भक्त, एक परमेश्वर का ही पतिव्रत रखते हैं, ओर संसारीजन, सकाम कर्मरूप डाल पतों में ही भ्रमते हैं। संतजन एक पूर्ण ब्रह्म में अखण्ड लै लगाकर, एक रस होते हैं।

(आन लगन व्यभिचार)

दादू जे कुछ कीजिये, अविगति बिन आराध।
कहिबा सुणिबा देखिबा, करिबा सब अपराध ॥७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अव्यक्त, अविनाशी, निराकार उसकी आराधना छोड़कर, जो कुछ बाणी से कहना है, कानों से सुनना है, आंखों से देखना है, कर्म इन्द्रियों से कुछ कर्म करना है। यह सब 'अपराध' कहिए दुष्कर्म हैं (खोटे कर्म) हैं। इनके परिणाम का फल दुख ही होता है, अर्थात् शांति सुख प्राप्त नहीं होता।

दोहा :- क्या पंडित क्या मूर्ख, क्या राव क्या रंक।
जगन्नाथ हरि बिन करै, सौ व्यभचार कलंक ॥७७॥

छंद :-

जो हरि को तज, आन उपासक, सो मति मंद फजीत ही होइ।
ज्यूं अपने भरतार ही छोड़, भई बिभचारनी कामनी कोइ ॥
सुन्दर ताइ न आदर मान, फिरै बिमुखी अपनी पत खोइ।
बुड़ि मरै किन कूप मंझारै, कहा जग जीवत है सठ सोइ ॥

सब चतुराई देखिए, जे कुछ कीजै आन।
दादू आपा सौंपि सब, पीव कूं लेह पिछानि ॥७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की आराधना से अलग, ओर कोई भी कार्य किया जावे, वैदिक या लौकिक वह सब दुनियावी चतुराई कही जाती है । अनन्य पतिव्रत धर्म धारण करने वाले परमेश्वर के भक्त, उनमें न फंसकर अपना अनात्म अहंकार, देहअध्यास आदि सम्पूर्ण आपा, परमेश्वर के अर्पण करके, वह भक्त पीव को कहिए मुख प्रीति का विषय, परमात्मा की पहचान लेते हैं ।

(पतिव्रत)

दादू दूजा कुछ नहीं, एक सत करि जाणि ।
दादू दूजा क्या करै, जिन एक लिया पहिचान ।।७९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आभासवान जगत प्रपचं में, किंचित भी यथार्थता नहीं है, अर्थात् सत्यता नहीं हैं । देवी देव आदि के नाना साधना वह सब नश्वर हैं । एक अद्वैत ब्रह्म ही त्रिकाल में अविनाशी है, और जब मुक्तजन अखडं एक रस ब्रह्मतत्व का निर्णय कर लेते हैं, तब उनको देवी देव आदि का भरोसा या भय नहीं रहता है ।

दो० :- सुन्दर हरि आराधीये, सब देवन का देव ।
पीव बिन और न मनाइये, सबै भीत का लेव ।।७९।।

दादू कोई वांछै मुक्ति फल, कोइ अमरापूरी बास ।
कोइ वांछै परम गती, दादू राम मिलन की प्यास ।।८०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कोई तो सालौक आदि मुक्ति चाहते हैं, कोई चार पदार्थ मांगते है । कोई अमरापुरी में बास करना मांगते है । कोई परमगति की इच्छा लेकर परमेश्वर का स्मरण करते हैं । परन्तु ब्रह्मऋषि सतगुरू कहते हैं कि 'हमारे' कहिए निस्काम पतिव्रत धर्म का धारण करने वाले, बिरहीजन भक्तों के तो, केवल राम से मिलने की ही इच्छा है ।

छदं :-

हमकूं तो रैन दिन, शंक मन माही रहैं, उनकी तो बातन
में ढंगहू न पाइये ।

कबहु संदेशा सूनी, अधिक उच्छाव होइ, कबहुं क रोइ रोइ आसूं न बहाइये ।
औरन के रस बस, होइ रहे प्यारे लाल, आवन की कही कही हमको भुलाइये ।
सुन्दर कहत ताहि, काटीये सू कौन भाति, जोइ तरू आपने सु हाथ ते लगाइये ॥८०॥

तुम हरि हिरदै हेत सौं, प्रगट हु परमानन्द ।
दादू देखै नैन भरि, तब केता होइ आनन्द ॥८१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मऋषि अपने को उपलक्षण करके, अनन्य भक्तों की परम प्रेम प्रीति का प्रतिपादन करते हैं कि हे प्रभु ! हे हरि ! हे परमानन्द स्वरूप ! हमारे अन्तःकरण में आपकी अनन्य भक्ति भाव का उदय करके, आप अपने भक्तों को दर्शन दीजिए । तो हम अपने स्थूल नेत्रों से, आपके दर्शन करके, अथवा विवेक वैराग्यरूपी नेत्रों से, आपके व्यापक स्वरूप का दर्शन करके, कृत्य कृत्य भाव को प्राप्त होवैं ।

प्रेम पियाला राम रस, हमकौं भावै येह ।
रिधि सिधि मांगै मुक्ति फल, चाहै तिनकौं देह ॥८२॥

टीका :- हे प्रभु ! हमारे को तो कहिए, आपका निष्काम पतिव्रत धर्म धारण करने वाले, भक्तों के लिए तो, आपकी प्रेमा भक्ति रूप रस से, परिपूर्ण प्रेम का प्याला पिलाइये । येही एक हमारी प्रार्थना है । नौ निद्धि, आठ सिद्धि, चार प्रकार की मुक्ति, और चार फल, इनकी जिनको इच्छा लगी है, उनको देओ । हमारे तो इनकी कोई इच्छा नहीं है ।

छन्द :-

नीर बिन मीन दुखी, क्षीर बिन सिसू जैसे, पीड़ कीओ सदि बिनु, कैसे रह्यो जात है ।

चातक जु स्वांती बूंद, चंद को चकोर जैसे, चंदन कि चाह करि,
सर्प अकुलात है
निधन ज्युं धन चाहै, कामनि कुं कंत चाहै, ऐसी जाके चाहि ताहि,
कछु न सुहात है ।
प्रेम को प्रवाह ऐसो, प्रेम तहां नेम कैसो, सुन्दर कहत यह,
प्रेम हि की बात है ॥८२॥

कोटि बरस क्या जीवणां, अमर भये क्या होइ ।
प्रेम भक्ति रस राम बिन, का दादू जीवन सोइ ॥८३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ईश्वर से विमुख रहकर, कोटि वर्ष जीकर, अमर होकर भी हमको क्या लाभ है ? क्योंकि प्रेमाभक्ति रूप राम रस का पान किये बिना, यह मनुष्य जीवन वृथा ही जा रहा है । वह एक क्षण भी हमारा सफल है, जो प्रेमाभक्ति में बीतता है ।

दोहा :- करडाले स्वामी रहे, तहां एक आवत प्रेत ।
पूछी प्रभु मैं गवाल हो, बड़ी आयु बर लेत ॥८३॥

दृष्टान्त :— ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज जब करडाले पहाड़ में निवास करते थे । वहां एक प्रेत रात्रि को, महाराज के सामने आकर, नाना प्रकार की चेष्ठाएं दिखाने लगा । गुरूदेव बोले :- तूं पूर्व जन्म में कौन था ? वह बोला :- महाराज में ग्वाल था और संतों का सेवक था । गुरूदेव बोले :- संतों का सेवक तो प्रेत नहीं होता है ? महाराज मेरे यहां एक संत आये, मेंने उकी खूब सेवा की । वह प्रसन्न होकर बोले:- मांग क्या चहाता है ? मैंने कहा :- मेरी हजार वर्ष की उम्र कर दो । संत बोले :- इस जन्म में तो नहीं, अगला जन्म तुम्हें हजार वर्ष की आयु का मिल जाएगा । इसी से मुझे यह प्रेत योनी प्राप्त हो गई । ब्रह्मऋषि बोले :- देखो कामना से सेवा करने से, दुख हुआ । प्रेत बोला :- अब में आपकी शरण हूं, मेरा उद्धार करो । गुरूदेव ने अपनी झारी में से जल लेकर, सत्यराम बोल कर छींटे मारे, प्रेत का शरीर छूट गया और दिव्य रूप होकर, परम गति को प्राप्त हो गया ।

कछु न कीजै कामना, सर्गुण निरगुण होइ ।
पलटि जीव तैं ब्रह्म गति, सब मिलि मानैं मोइ ॥८४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! किसी प्रकार की भी कामना नहीं करना, क्योंकि कामना दुःख देने वाली होती है, सगुण की हो या निर्गुण की हो । जीव से पलट कर ब्रह्मगति को प्राप्त हो जावें और सब कोई हमारी मान प्रतिष्ठा करें, वह सभी कामना दुख देने वाली हैं । निष्काम पतिव्रत धर्म धारण करने वाले भक्त, इन सबसे अलग रहते हैं और प्रभु प्रेम में गद गद बने रहते हैं ।

घट अजरावर व्है रहै, बन्धन नांही कोइ ।
मुक्ता चौरासी मिटै, दादू संसै सोइ ॥८५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! घट, यह शरीर अजर अमर हो जाय, जैसे भरथरी और गोपीचन्द आदि का हो गया । यह सभी माया बन्धन हैं ओर चौरासी के दुख मिट जावैं, मुक्त हो जावें, यह सभी कामनारूप संसय है । परन्तु परमेश्वर के सच्चे पतिव्रत धर्म को धारण करने वाले भक्तों में तो, यह कोई भी वासना रूप बन्धन नहीं होता । वह तो केवल परमेश्वर का शुद्ध प्रेम का प्याला ही पान करते हैं ।

(लाँवि रस)

निकटि निरंजन लागी रहु, जब लग अलख अभेव ।
दादू पीवै राम रस, निष्कामी निज सेव ॥८६॥

टीका हे जिज्ञासुओ ! जब तक ब्रह्म में मिलकर, वृत्ति एकरूप न हो जावे, तब तक एकत्व का अभ्यास, निरंजन देव में करते रहो । इस प्रकार पूर्ण निष्काम भाव से निरंजन राम के परायण होकर, अखंड राम रस पीजिए ।

(परिचय पतिव्रत)

सालोक संगति रहै, सामीप सन्मुख सोइ ।
सारूप सारिखा भया, सायोज एकै होइ ॥८७॥

टीका :- (१) सालोक—ईश्वर के साध बास होवै । (२) सासीप्य—जिसमें प्रभु सन्मुख रहै । (३) सारूप्य—जिसमें ईश्वर के सदृष्य होवै । (४) सायुज्य—ईश्वर में ही लय हो जावै । परन्तु इसके विषय में

दार्शनिकों के भिन्न भिन्न विचार हैं, जैसे—सांख्य शास्त्र वाले आधिभौतिक, आदिदैवक, आध्यात्मिक भेद से, भिन्न भिन्न त्रिविध दुखों के अत्यन्त अभाव को मुक्ति मानते हैं और प्रकृति व पुरूष के विवेक ज्ञान को उसमें कारण बतलाते हैं । योग्य दर्शन वाले, भोग व अपवर्गरूप पुरूषार्थ से शून्य गुणों का अपने कारण भूत प्रकृति में लय होना अथवा चित्त शक्ति का अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही मुक्ति है, ऐसा कहते हैं । बैशेषिक बुद्धि, सुख दुख, इच्छा द्वेष, प्रयत्न, धर्म अधर्म एवं भावना संस्कार, इन नौ गुणों के अत्यन्त ध्वंस को मुक्ति बतलाते हैं और द्रव्यगुण कर्म आदि सातों पदार्थों के साधर्म्य तथा बैधर्म्य के ज्ञान से उत्पन्न तत्वज्ञान सहित, आत्म साक्षात्कार को उसका कारण बतलाते हैं । नैयायक भी अत्यन्त दुख निवृति को ही मुक्ति का स्वरूप मानते हैं । किन्तु उसमें कारण, प्रमाण, प्रमे आदि सोलह पदार्थों के सम्यग ज्ञान से जन्य, तत्व ज्ञान को स्वीकार करते हैं । आत्म ज्ञान पूर्वक वैदिक कर्मों को अनुष्ठान करने से धर्म एवं अधर्म का समूल नाश हो जाता है और उससे देह इन्द्रिये आदि सम्बन्ध का अत्यन्त उच्छेद हो जाता है । देह इन्द्रियादिक सम्बन्ध के इस अत्यन्त नाश का नाम ही मुक्ति है । ऐसा प्रभाकर मत, अनुयायी मानते हैं । ज्ञान और कर्म दोनों के अनुष्ठान से, जड़ बोध स्वरूप आत्मा में, नित्य ज्ञान एवं नित्य सुख का उदय होता है । यह नित्य सुख ही व्यक्ति की मुक्ति है, ऐसा भट्टमतानुयायी स्वीकार करते हैं । नारद कृत पन्चरांत्र आदि शास्त्रों में निरूपीत रीति के अनुसार, वैष्णव धर्मों का पालन करने से, विष्णु की कृपा प्राप्त हो जाने पर, विष्णु लोक में स्थित होना ही मुक्ति है । ऐसा वैष्णु मानते हैं । गोलोक में श्री कृष्ण के साथ रास लीला आदिक का, अनुभव करना मुक्ति है । यह बल्लभ सम्प्रदायिक मानते हैं । पशुपति की पूजा करने से, जीव स्वयं पशु के पास छूट जाने पर, नित्य पशुपति के पास रहना ही मुक्ति है । यह पशुपति मतानुयायों का मत है । वेदान्तों के ज्ञान द्वारा, अज्ञान का नाश होने पर, नित्य सुख स्वरूप आत्मा का ज्ञान हो जाने के बाद, यह नित्य सुखरूप आत्मा ही मुक्ति का स्वरूप है । ऐसा वेदान्तियों का अभीमत है । दुख के अज्ञानजन्य होने के कारण, ज्ञान हो जाने पर, दुख नष्ट भी अनुसंगिक ही हो जाती है । इस तरह मुक्ति सिद्धान्त के स्वरूप एवं कारण के विषय में, और भी मत हैं । किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर, दुख का अत्यन्त परीहार तथा सुख प्राप्ति ही, मुक्ति का स्वरूप सिद्ध होता है । सारे मतों का सारभूत सिद्धान्त यही है । छुटकारा अर्थ का बोधक मुक्ति शब्द भी इसी अर्थ को व्यक्त करता है, कि मनुष्य की अत्यन्त दुख निवृति ही मुक्ति है । परन्तु वेदान्तियों को छोड़कर, शेष सभी शरीर छोड़ने के बाद ही, इस दुख निवृति रूप मुक्ति को मानते हैं । देह त्याग से पूर्व जीवित अवस्था में नहीं, किन्तु वेदान्ति केवल ऐसा मानते हैं कि ज्ञान हो जाने के बाद, अज्ञान के नष्ट हो जाने से, अज्ञान मूलक, सब कलेशों एवं तन में राग आदि का नाश, जीवित अवस्था में ही हो जाता है । इसलिये ज्ञानी को वे जीवन मुक्त कहते हैं । जीवन शब्द का व्युत्पत्यर्थ भी, इसी बात को स्पष्ट कर रहा है कि जीवितावस्था में ही ज्ञानी को कलेशों से निवृति हो जाती है, जैसा कि श्रुति बतला रही है—

विद्यन्ते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मीन दृष्टे परावरे ।।इति।।

ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज, वेदान्त के अनुसार, जीवन मुक्ति को ही वास्तविक मुक्ति मानते हैं। उनका मत है कि मनुष्य ज्ञान के द्वारा, परमेश्वर उपासना द्वारा, नामोच्चारण द्वारा, मन इन्द्रिये व प्राण का निरोध करता हुआ, देह आदि के अध्यास को सर्वथा नष्ट कर दे, और शुद्ध निरंजन आत्मा में अपनी सुरति को अविच्छिन्न रूप में लगा दे। जिस से सर्वदा उस शाश्वत आनन्द की अनुभूति होती रहे और किसी भी प्रकार के दुख की प्रतीति न हो। जीते जी इस दशा को प्राप्त करना, उनके मत में वह सात्विक मुक्ति है। यदि जीते जी मनुष्य इस अवस्था तक न पहुंच सका, तो फिर देह त्याग के बाद, दुख निवृत्ति व आनन्द की प्राप्ति की आशा रखना, सर्वथा व्यर्थ है। इस तरह वे इस बात को भी मिथ्या मानते हैं कि मुक्ति किसी लोकान्तर की वस्तु है? जैसा कि दार्शनिक गो लोक वास एवं विष्णु लोक वास को मुक्ति स्थान स्वीकार करते हैं। मुक्ति इसी संसार में, और इसी शरीर में प्राप्त हो जाती है। उसके लिये लोकान्तर गवन की आवश्यकता नहीं है। यदि इस संसार में वा इस शरीर में दुख निवृतिरूप मुक्ति नहीं हुई तो वह लोकान्तर में जाने पर मुक्ति मिलेगी। इन बातों को वे सर्वथा मिथ्या एवं पाखण्ड मानते हैं। जैसे :—

दादू जीवत छुटै देह गुण, जीवत मुक्ता होइ ।
जीवत काटै कर्म सब, मुक्ति कहावै सोइ ॥

दादू जीवत ही दूतर तिरै, जीवत लंघे पार ।
जीवत पाया जगत गुरू, दादू ज्ञान बिचार ॥

जीवत मेला ना भया, जीवत परसन होइ ।
जीवत जगपति ना मिले, दादू बूड़े सोइ ॥

जीवत दुतर ना तिरे, जीवत न लंघै पार ।
जीवत नीर्भय ना भये, दादू ते संसार ॥

दादू मूवा पीछे मुक्ति बतावै, मुवा पीछे मेला ।
मूवा पीछे अमर अभय पद, दादू भूले गहिला ॥

मूवा पीछे बैकुंठ बासा, मूवा सरग पठावै।
मूवा पीछे मुक्ति बतावै, दादू जग बोरावै॥

इस तरह जीवन मुक्ति को ही वास्तविक मुक्ति माना है। देह त्यागान्तर मुक्ति को मुक्ति नहीं माना। इसीलिए उनमें मुक्ति एवं मुक्ति का स्वरूप बतलाते हुए कह दिया है कि "जीवत मिले सो जीवते, मुये मिलि मर जात०" अर्थात् जीते जी अविद्या आदि बन्धनों का परित्याग कर, परमात्मा से मेलकर लिया तो, वास्तविक जीना ही मुक्ति है, और ऐसा नहीं तो मरने के बाद, परमात्मा में मिलना तो मरना ही है। संसार में आवागमन करना है, वह मुक्त नहीं है। इस विषय में एक युक्ति का भी प्रदर्शन उनने किया है, कि यदि देह मुक्ति से ही मुक्ति होवे, तो फिर देह त्याग प्रत्येक व्यक्ति का होने से, प्रत्येक प्राणी व्यक्ति की ही मुक्ति होनी चाहिए। यह मुक्ति स्थूल शरीर के, नाश से कभी सम्भव नहीं है, किन्तु सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर अर्थात् अविद्या काम कर्म एवं पूर्व प्रज्ञा के नाश से ही हो सकती है। ब्रह्मऋषि दादू जी महाराज ने स्थूल शरीर के नाश को पिण्ड मुक्ति तथा सूक्ष्म वा कारण शरीर के परित्याग को प्राण मुक्ति पद से व्यव्ह्यक्त किया है और यह भी बताया है कि पिण्ड मुक्ति, सब व्यक्ति करते हैं। किन्तु प्राण मुक्ति कहिए जीवन मुक्ति, कोई बिरले ही व्यक्ति सम्पादन किया करते हैं, जैसे :--

पिण्ड मुक्त सब कोई करै, प्राण मुक्ति नहीं होइ।
प्राण मुक्ति सतगुरू करैं, ~~दादू~~ बखैं बिरला कोइ॥

कबीर जी दादू जी संतों ने जीवन मुक्तपुरूष के लिये, 'जीवत मृतक' शब्द का प्रयोग किया है। इनके मत में वेदान्तियों की तरह, आत्मा सदा नित्य मुक्त व नित्यानन्द स्वरूप है। केवल अविद्या के कारण ही, वह संसारी बन्धन युक्त हो रहे हैं। यदि हमने आपा को मार दिया, तो हम मुक्त हैं और परमेश्वर से मिल जाते हैं। जीवत अवस्था में ही मुक्ति के एवं परमेश्वर प्राप्ति के प्रतिबन्धक, इस आपे को मार देना चाहिये। जिस साधक ने ऐसा कर लिया, वह आपा को मारने के कारण, जीवत मृतक हो जाते हैं और इसका भी अध्यास नहीं होना। यही परमात्मा के साक्षात्कार का प्रधान कारण है। ब्रह्मऋषि दादू जी ने बतलाया है कि जीव पीव की प्राप्ति के प्रतिबन्धक, इस आपा को परित्याग कर, और उस तत्व को पहिचान, जिससे यह आपा पैदा होता है। क्योंकि अध्यासरूप आपा, परमात्मा से ही उत्पन्न होता है। वेदान्ती भी ऐसा स्वीकार करते हैं, जिसका प्रतिपादन ऊपर किया जा चुका है। वेदान्त, शास्त्रों में अध्यास को जो अनादि बतलाया है, वह केवल प्रवाह, ज्ञानादित्व के अभिप्राय से है, जैसे :- कि बीज, अंकूर की अनादिता है। जीवत मृतक पुरूष की क्या स्थिति होती है, एवं उसका मालुम कैसे किया जाता है? इसका भी सामुचित उत्तर, ब्रह्मऋषि दादू जी ने अपनी बाणी में दिया है, जैसे :-

दादू मृतक तब ही जानिये, जब गुण इन्द्रिय नांहि।
जब मन आपा मिट गया, ब्रह्म समाना मांहि॥
देह रहै संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास॥

उपरोक्त रीति से जीते जी, मनोवृति को पूर्णरूप से आत्मा में लगाकर, सुख दुख आदि द्वन्द्वों से रहित हो जाना। ब्रह्मऋषि दादू जी को अभिप्रेत है, न कि परलोक में जाकर दुख ध्वंस की आशा करना, यही जीवन मुक्ति तथा वास्तविक मोक्ष दुखत्रय से छुटकारा है।

दादू तो तूं पावै पीव को, मैं मेरा सब खोइ।
मैं मेरा सहजैं गया, तब निर्मल दरसन होइ॥
दादू तो तूं पावै पीव को, जीवत मृतक होइ।
आप गमावै पीव मिले, जानत है सब कोइ॥
दादू तो तूं पावै पीव को, आपा कछु न जान।
आपा जिसथैं उपजै, सोई सहज पिछान॥

राम रसिक वांछै नहीं, परम पदारथ चार।
अठ सिधि नव निधि का करैं, राता सिरजनहार॥८८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! अनन्य उत्तम भक्तजन, उपरोक्त चारों मुक्तियों को भी नहीं चाहते हैं और आठ सिद्धि एवं नौ निधि का तो कहना ही क्या है? इनकी तो इच्छा ही नहीं करते। इस प्रकार पूर्ण निष्काम भाव होकर, एक प्रभु के पतिव्रत में ही रत्त रहते है और सकाम कामना का भाव ही विलय हो जाता है।

छन्द :- जल को सनेही मीन, बिछुरत तजै प्रान, मनी बिनु अही,
जैसे जीवत न लहीये।
स्वांत बिंदु को सनेही, प्रगट जगत मांहि, एक सीप दुसरो सु,
चातक हु कहिये।

रवि को सनेही पुनि, कमल सरोवर में, शशी को सनेही हु,
चकोर जैसे रहिये ।
तैसे ही सुन्दर एक, प्रभु से सनेह जोर, और कछु देखि काहु,
और नहीं बहीये ॥८८॥

(आन लगन व्यभिचार)

स्वारथ सेवा कीजिये, ताथैं भला न होइ ।
दादू ऊसर बाहि कर, कोठा भरै न कोइ ॥८९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे ऊसर (कालर) भूमि के बोने से, कोई कार्य सिद्ध नहीं होता, अर्थात् धान पैदा नहीं होता है । वैसे ही सकाम परमेश्वर की भक्ति करने से, आत्म कल्याण सम्भव नहीं है और न कोई देवी देवताओं की आराधना से ही, मोक्ष प्राप्त कर सकता है । इसलिए उत्तम जिज्ञासु के लिए, यह सब त्याज्य है ।

सुत बित मांगैं बावरे, साहिब सी निधी मेलि ।
दादू वै निरफल गये, जैसे नागर बेलि ॥९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर जैसी अपूर्व निधि को त्यागकर, मूर्ख लोग, पुत्र, धन, स्वर्ग आदि की याचना करते हैं, परन्तु वे नागर बेल के जैसे फल नहीं लगते, वैसे ही वह मोक्ष रूपी फल से शून्य रहते हैं ।

फल कारणि सेवा करै, जाचैं त्रिभुवन राव ।
दादू सो सेवग नहीं, खेलै अपणा दाव ॥९१॥

सह कामी सेवा करैं, मागैं मुगध गंवार ।
दादू अैसे बहुत हैं, फल के भूचनहार ॥९२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन त्रिभुवन पति परमेश्वर से भोग्य पदार्थ एवं स्वर्ग आदि लोकों की याचना करते हैं, परन्तु ऐसे पुरूष प्रभु के पतिव्रत धर्म धारण करने वाले, सेवक नहीं हैं । वे अपनी चतुरता बतलाते हैं । ऐसे माया में आसक्ति रखने वाले, मूर्ख संसारी जन कहिए, निसिद्ध भोगों में फंसे हुए, नाना प्रकार के सकाम कर्म करते रहते हैं । तथापि वे सब मोक्ष रूपी फल से निष्फल ही रहते हैं ।

(स्मरण नाम महात्म)

तन मन लै लागा रहै, राता सिरजन हार ।
दादू कुछ मांगै नहीं, ते बिरला संसार ॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सिरजनहार परमेश्वर के नाम स्मरण में, अपने तन को निर्दोष (चोरी, जारी, हिंसा से रहित) बनाकर और मन को संकल्प विकल्प तृष्णा से हटाकर, लगे रहो । और फिर परमेश्वर से इस लोक और परलोक के तुच्छ पदार्थों की याचना न करै, ऐसे पतिव्रत धर्म धारण करने वाले, बिरले पुरूष होते हैं ।

दादू सांई कौं संभालतां, कोटि विघन टलि जांहि ।
राई मन बसंदरा, केते काट जलांहि ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का अखंड सुरति में, स्मरण करने से, जन्म जन्मान्तरों के कर्म बन्धन कट जाते हैं । जैसे अल्प अग्नि से असंख्यात वृक्ष जल जाते हैं, इसी तरह आत्म ज्ञान रूपी अग्नि के प्रज्वलित होते ही, कर्मरूप काष्ठ प्रदग्ध हो जाते हैं ।

(करतूति कर्म)

कर्मैं कर्म काटै नहीं, कर्मैं कर्मन जाइ ।
कर्मैं कर्म छूटै नहीं, कर्मैं कर्म बंधाइ ॥६५॥

टीका :- हे कर्म करने वाले ! सकाम कर्म करने से, कर्मों के बंधन नहीं कटते हैं । सकाम कर्मों के करने

से, जन्म जन्मान्तरों के संचित कर्म, नहीं छूटते हैं। बल्कि सकाम कर्मों से तो, जीव बंधा रहता है। अर्थात् यज्ञ आदि काम्य कर्मों से, कर्मबंधन नहीं कटते हैं। प्रत्युत नाना काम्य कर्मो के वशीभूत होकर, यह प्राणी कर्म बन्धन में ही, बंधा रहता है और जन्म जन्मान्तरों में भ्रमता है। इसलिए आत्म ज्ञान के द्वारा कर्मों से मुक्त होइये।

(इति निष्कर्मी पतिव्रता का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

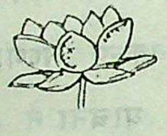

॥ अथ चितावणी का अंग ९ ॥

अब निष्कर्मी पतिव्रता के अनन्तर "साहीब जी का भावता, कोइ करै कलि मांहि०", इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, जिज्ञासुजनों को चितावने के निमित्त, चितावणी के अंग का निरूपण करते हैं।

(मंगला चरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः।
बंदनं सर्वं साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो निरंजन देव को नमस्कार करते हैं, वे अपने भक्तों को प्रतिश्वांस आत्मतत्व की चितावणी कराते रहते है और चेतावणी का उपदेश करने वाले गुरूदेव तथा सर्व साधुओं को कोटि कोटि हमारी वन्दना है। और सब गुण विकार से पार होकर मुमुक्षु, प्रभु चिन्तन में रत्त होते हैं।

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो हमथैं जिनि होइ।
सतगुरू लाजै आपणा, साध न मानैं कोइ ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मऋषि दादूदयाल महाराज अपने को उपलक्षण करके कहते है कि भक्तों की करूणारूप बिनती, आपसे है। आपकी सर्व व्यापक सत्ता को बिसार कर, हम किसी भी अकर्तव्य में प्रवृत्त, नहीं होवैं, क्योंकि इससे आपकी दया सिन्धुता और सतगुरू, सर्व साधुओं की महिमा लज्जित होती है।

रेखता :- पातसाह काजी राजा रंक चाहे कोई करो,
बंदगी कबूल सांई सबही की मानेगा।
ब्राह्मण चमार हिन्दु तुरक हलाल खोर,
देखे सब ऊंच नीच जाति की न जानेगा।

एक रोज काजी व्है के बैठेगा खुदाय जब,
जर्रे जर्रे का हिसाब, दूध पानी कर छानेगा ।
खेमदास आशिकों को, देइगा दीदार आप,
गाफिलों को बीन बीन, बेहाल सानेगा ॥२॥

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सौ सब पर हरि प्राण ।
मनसा बाचा कर्मना, जे तूं चतुर सुजाण ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तुम यदि समझदार हो तो, एक ईश्वर से अतिरिक्त, सर्व नामरूप माया प्रपंच से आसक्ति हटाकर, मन बचन, कर्म (काया) से एक परमेश्वर में ही अपनी लय लगाओ ।

रेखता :- हाथी माल मुलक बहेरा घोरा पेशखाना,
जेता कछु देखे बन्दे साथ भी न चलेगा ।
आवेगा हलकारा जब छोड़ेगा पसारा सब,
बन्दगी के बिना जिहान दोजक में जलेगा ।
बूझ देख दिल में सदा भी कोई जीया नाही,
मौत के तमाचे आगे, कौसि तै न टलेगा ।
ना कर गुमान मन खैंस अलभेष देख,
खेमदास खूब तन खाक बीच रलेगा ॥३॥

दोहा :- इक बन्दे किऐ तीन सौ, ग्रंथ राम गुणगाइ ।
पराशब्द ऐसै भयो, इनते मोहि न पाइ ॥३॥

दृष्टांत :- एक बंदे ने तीन सौ ग्रंथ रचे । उसको भारी अहंकार हो गया कि मेरे जैसा कवि कौन होगा ? कि मैंने तीन सौ ग्रंथ बनाए हैं । यद्यपि वह परमेश्वर का सेवक था, फिर भी परमेश्वर ने देखा कि इसको

यह अहंकार, मेरे तक आने में प्रतिबन्धक बनेगा। तब परमेश्वर ने आकाशवाणी की, कि हे बन्दे ! ऐसे अहंकार करने से मुझे प्राप्त नहीं होगा। तत्काल ही उसका अहंकार नष्ट हो गया और परमेश्वर के सामने नत् मस्तक हो गया।

परमेश्वर को अहंकार प्रिय नहीं है।

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो जीव न किजे रे।
परि हरि विषय विकार सब, अमृत रस पीजि रे ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आप आप अपने जीव को उपदेश करिये कि भगवान को अप्रिय जो काम हैं, उनको कदापि नहीं करना। परमेश्वर को प्रिय और अप्रिय क्या है ? विषय, शब्द, स्पर्श, रूप रस गन्ध काम क्रोध लोभ मोह मद, इन सबको त्यागकर, नाम स्मरण रूप अमृत का पान करिए।

छन्द :- पाइ अमूलक देह यह नर, क्यूं न बिचार करै दिल अंदर।
कामहु क्रोधहु लोभहु मोहहु लूटत हैं, दशहु दिशी द्वन्दर।
तुं अब वंछत है सुरलोकहि, कालहु पाइ परैं सु पुरंदर।
छाड़ि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदय धरि, आतम राम भजे क्युं न सुन्दर ॥४॥

छन्द :- इन्द्रियन के सुख मानत है सठ, याहि हित्त बहुते दुख पावै।
ज्यूं जल में झख मांसहि लालच, स्वाद बंध्यों जल बाहर आवै।
ज्यूं कपि मुठिन छाड़त है, रसना रस बंध पर्‌यो बिललावै।
सुन्दर क्यूं पहिलें न संभारत, जो गुड़ खाइ सु कान बिंधायो ॥४॥

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो बाट न बुझी रे।
सांई सौं सनमुख रही, इस मन सों झूझी रे ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस मार्ग का अनुसरण करने से, परमेश्वर रूप लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होवै, उस मार्ग में कभी भी प्रवृति नहीं करना। एवं प्रभु आराधना के परायण होकर, इस मन की संकल्प विकल्पात्मक वृत्तियों को, परमेश्वर में लय करिये।

दोहा :- मार्‍या जाय तो मारिये, मनवा बैरी मांहि।
जन रज्जब यह छोड़ करी, मारन को कुछ नांहि॥

छन्द :- हाथी को सो कान किधौं, पिपर को पान किधौं,
ध्वजा को उड़ान किधौं, थिर न रहतु है।
पानी को सो घेर किधौं, पवन उर झेर किधौं,
चक्र को सो फेर कोउ, कैसे को गहतु है।
रहट की माल किधौं, चरखा को ख्याल किधौं,
फेरि खातो बाल कछु सुधि न लहतु है।
धून को सो धाव ताकू, राखबे को चाव ऐसो,
मन को स्वभाव सो तौ, सुन्दर कहतु है॥

दोहा :- तत्व प्राप्ति सें चित यह, सहजैं ही रूक जात।
घट चींटा तज सिता को, अन्य और नहि जात॥५॥

(सिता = मिश्री)

दृष्टान्त :– एक घड़े में मिश्री का टूकड़ा डाल दें और उसमें एक काला मकोड़ा घूस जाये, तो वह मकोड़ा, उसमें, ऊपर नीचे, घट के भीतर घूमता रहता है। जब मिश्री के पास पहुंच जाता है, फिर मिश्री के चाटने से उसका घूमना (चचंलता) बन्द हो जाती है। वहीं स्थिर रहता है। ऐसे ही यह शरीर घट है, इसमें आत्मारूपी मिश्री है। यह मन मकोड़ा है। मकोड़े की भांति, यह चंचल मन, इधर उधर भ्रमता रहता है। जब मिश्रीरूप आत्म विचार में स्थिर होकर, उसका आनन्द अनुभव करने लगता है, तब फिर इसकी चचंलता निवृत हो जाती है।

दादू अचेत न होइये, चेतन सौं चित लाइ ।
मनवा सुता नींद भरी, सांई संग जगाइ ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ईश्वर से कभी विमुख नहीं रहना । आत्मस्वरूप चेतन्य में, अपने चित्त को लगाना । यह मन मोह रूप निद्रा में बेहोश हो रहा है । इसको गुरु उपदेश द्वारा जगाकर, परमात्मा के साथ लगाओ अर्थात नाम स्मरण में स्थिर करो ।

दादू अचेत न होइये, चेतन सौं करि च्रित्त ।
यह अनहद जहांथैं ऊपजै, खोजो तहां ही नित्त॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञान में अचेत नहीं रहना । व्यापक चेतन्य के सन्मुख होकर, अपने चित्त को उसी में लगाओ । अर्थात जहांथैं कहिए नाभी स्थान से, अनहद शब्द उठता है, और हृदय में आकर सुनाई पड़ता है, वहां हृदय स्थान में 'खोजो' कहिए सुनो, इसका विचार करो । वहीं परमेश्वर के ज्ञान का साक्षात्कार होगा ।

छंद :- बालु के मंदिर मांहि, बैठो है स्थिर होई,
राखत है जीवन की, आशा कई दिन की ।
पल पल छीजत, घटत जात घड़ी घड़ी,
बिनसत बेर नहीं, खबर न छिन की ।
करत उपाय झूठे, लेन देन खान पान,
मुसा इत उत फिरै, ताक रही मिनकी ।
सुन्दर कहत मेरी, मेरी कर भूल्यो सठ,
चंचल चपल माया, भई किन किन की ॥७॥

(मुसा (चूहा) = मन । मिनकी (बिल्ली) = काल ।)

हे मन ! अचेत पने को छोड़ दे । विचार कर चेतन्य में स्थिर हो जा ।

दादू जन कुछ चेत करि, सौदा लिजी सार ।
निखर कमाई न छूटणा, अपणे जीव बिचार ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! कुछ चेत कर । मनुष्य जीवन के आमोलिक श्वांसों को परमेश्वर के स्मरण में विचारपूर्वक लगाकर, सार्थक व्यवहार कीजिए । हे जीव ! तूं अपने आतमस्वरूप को प्रत्यक्ष करके, मनुष्य जीवन को सफल बना ।

सवैया :- पाइ अमोलिक देह यह नर, क्यूँ न विचार करै दिल अन्दर ।
कामहु क्रोधहु लोभहु मोहहु, लूटत हैं दशहु दिशि द्वंद्वर ।
तूं अब वंछित है सुरलोक हि, कालहु पाई परै सु पुरंदर ।
छाड़ि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदय धरी, आत्मराम भजै क्युं न सुन्दर ॥८॥

दोहा :- एक फकीर घर गार के, बेचत है परलोक ।
सेठ मुओ सक्का मिल्यो, देखे सब ही थोक ॥८॥

दृष्टान्त :- एक नगर में एक संत रहते थे । उनके यहां संतों की एक जमात आ गई । विचार किया कि इनको भोजन होना चाहिए । किसको बोलैं । तब मन में विचार हुआ, तो बैठे बैठे एक लकड़ी के पट्टे पर गीली मिट्टी लेकर, सात मंजिल का मकान बनाया । कई वृक्षों की डालियां लेकर बगीचा लगा दिया । प्रातःकाल सिर पर रखकर, गांव की ओर चले । आवाज लगाने लगे :-" परलोक के लिए, यह महल और बगीचा सस्ती ही कीमत पर खरीद लो" । कई लोग देखकर हंसने लगे । उस नगर में एक धर्मात्मा साहूकार रहता था । वह संत के पास जाया भी करता था । उसने जब आवाज सुनी तो मुनीम को बोला :- गद्दी में महाराज को बिठाओ । सेठ ने आकर नमस्कार किया । पूछा :- महाराज यह क्या है ? महात्मा :- परलोक के लिए बगीचा और मकान है । सेठ :- क्या कीमत है ? महात्मा :- पांच सौ रूपया । सेठ ने

पांच सौ रूपया दे दिया और मकान बगीचा ले लिया । महात्मा ने जाकर पांच सौ रूपया संतों के बीच में डाल दिया और बोले :- इन्ही रूपयों में आप सब कुछ, भंडारा भेट पूजा ममझ लेना । संत रसोई बनाकर परमेश्वर के भोग लगाया, प्रसाद पाया और रम गए । कुछ दिन में सेठ का अन्तिम समय आ गया । परन्तु सेठ के पड़ौसी का भी वही नाम था, जो कि सेठ का था । यमराज ने यमदूतों को हुक्म दिया कि उसके लिग शरीर को यम लोक में लें आओ । यमदूत नाम की समानता होने के कारण, धर्मात्मा के लिग शरीर को ले गए । यमराज देखकर बोले :- किसको ले आए ? यह नहीं, इसके पड़ोसी को लाओ और इसको वापिस इसके स्थूल शरीर में लेजा कर डालो । तब यमदूत इसको लेकर चले, तो रास्ते में एक छोटा सा बगीचा, सात मंजिल का मकान, कुआ बगैरा, सेठ ने बनते देखे । पानी ले जाने वाले, सक्का को पूछा :- " यह मकान बगीचा किसका है ?" वह बोला :- मृतलोक में अमुख नाम के शहर में अमुख नाम का साहूकार रहता है, वह सपरिवार इसमें आकर बसेगा । उसने एक संत से बगीचा, मकान, मोल लिया था । उसी के फलस्वरूप में यह बन रहा है । सेठ निश्चय किया कि वह तो मैं ही हूं । यमदूतों ने सेठ के लिग शरीर को स्थूल शरीर में लाकर डाला । चेतन्य हो गया । उपरोक्त वार्ता, सेंठ ने सब अपने कुटुम्ब को बताई । पुण्य और संत सेवा की महिमा सुनकर, उत्तम पुरूषों ने धन्य धन्य किया । यह खरी कमाई है ।

दोहा :- संत एक सुकृत करै, माथै ले ले दाम ।
एक अनाथ सुत बणिक को, हुंड़ बरसाइ राम ॥८॥

दृष्टान्त :- एक नगर में संत रहते थे । वे बड़े उपकारी थे । अन्न, वस्त्र, जल से अतिथियों की सेवा किया करते थे । वहां एक बनिये का लड़का था । उससे समान उधार ले आते थे । जब पैसा आता, तो उसको दे दिया करते थे । एक रोज संत आ गए । बनिये के पास गए और बोले :- समान देओ, भोजन के लिए । बनिये ने कहा :- महाराज पैसा आपकी तरफ काफी हो गया है । देने की कृपा करें । संत बोले:- आज तेरे धन की हुंडी बरसेगी । इस बात को पड़ौस के लखपति साहूकार ने सुना । वह आकर उस बनिये के लड़के को बोला :- सौदा कर ले । लड़का बोला :- काये का ? सेठ बोले :- अपने घर मकान जायदाद का । लड़का बोला :- लिखतम पढतम कर लो । सेठ ने पांच आदमियों में लिखतम पढ़तम कर दी । अपना घर, गद्दी, दुकान; सब जायदाद मैंने राजी खुशी अमुख लड़के को दे दिया, बदले में इसका घर, दुकान जायदाद, सब ले लिया । इसपर दोनों के हस्ताक्षर हो गए । सेठ घर पर गया । अपने सारे कुटुम्ब को जिस हालत में थे, उसी हालत में साथ लेकर, लड़के के घर और दुकान में आ गए । लड़का अपनी बुढिया मां, अपनी स्त्री आदि को साथ लेकर सेठ के घर गद्दी में चला गया । दुनियां हंसने लगी । सेठ के परिवार के सदस्य कहने लगे :- क्या आपकी बुद्धि खराब हो गई है ? इस झौपड़े में आकर बैठ गए और सारी

सम्पत्ति उसको दे दी । सेठ बोले :- अरे मूर्खो ! हुंड बरसेगी, न मालूम कितनी सम्पत्ति मिल जाएगी । सारा दिन पूरा हो गया । हुंड नहीं बरसी । सेठ आंखें फाड़ फाड़ कर आकाश में देखने लगा । फिर शाम को विचार किया कि यदि रात को धन बरसा, तो छप्पर पर से इधर उधर लुढक जाएगा और गांव वाले उठा ले जाएगें । तब पूर्वोक्त बात अपने घर वालों को बताई और सब लोगों ने हाथों में डंडे लिये और छप्पर के अन्दर मोटे मोटे छेद कर दिये । सारी रात सारा कुटुम्ब झांकता रहा । सवेरा होते ही, सारा कुटुम्ब ऊंचे ऊंचे हाथ कर करके, फूट फूट कर रोने लगे । सेठ संत के पास गया, और गालियां देने लगा । हुंड तो नहीं बरसी मोडे ! तूं कहता था हुंड बरसेगी ! हमको तैंने लुटा दिया । संत बोले :- आपको भाई हमने कब बोला था ? जिसको बोला था, उसको तो बरस गई । सेठ लज्जित होकर आ गये और दुकान में चने मुगंफली बेचने लगे ।

साधु बोलैं सहज सुभाव, साध का बोल्या वृथा न जाइ ॥

"दादू जन कुछ चेत कर सौदा लीजी सार०" ।

(स्मरण नाम चितावणी)

दादू कर सांइ की चाकरी, ये हरि नाम न छोड़ ।
जाणा है उस देस को, प्रीति पिया सौं जोड़ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ईश्वर की नाम स्मरण रूप सेवा करो । गुरूदेव, विद्वान, दीन दुखी आदिकों की निष्काम भाव से सेवा करो और हे हरि ! हे दयालु ! इस प्रकार नाम का स्मरण सदैव करते रहो, क्योंकि ब्रह्मी अवस्था में स्थित रहना है, तो उस परब्रह्म परमात्मा से जो मुख प्रीति का विषय है, उससे अपनी प्रीति के सहित अर्न्तवृति जोड़ो ।

आपा पर सब दूर कर, राम नाम रस लाग ।
दादू औसर जात है, जागि सकै तौ जाग ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अहम्ता, ममता का त्याग करके, अपना पराया इस भाव को भी छोड़कर, राम नाम के स्मरण में अपनी वृति स्थिर करिये, क्योंकि मनुष्य जीवन और नर तन रूपी अवसर व्यर्थ जा रहा है । इस प्रकार अज्ञान निद्रा से शीघ्र जागकर स्वस्वरूप का बोध करो ।

दोहा :- बणिक चल्यो सुत मिलन को, मिल्यो बीच एक गावं।
राति दरद सुत कै चल्यौ, रातिन लिनो नाम ॥१०॥

दृष्टान्त :- एक बणिये का लड़का विदेश गया। कारबार करने लगा। अच्छी कमाई कर ली। पिता को पत्र लिखा, आप यहां आ जाओ। पिता ने पत्र लिखा, तुम यहां आओ, सब कुटम्बी आपको याद करते हैं। फिर पिता ने यह सोचा कि मैं ही चलकर मिलूं। उसका काम बहुत बड़ा है। तब पुत्र से मिलने चल पड़े। उधर पुत्र सपरिवार अपने देश को रवाना हो गया। एक शहर की धर्मशाला में, नौकर चाकरों सहित आ कर ठहरा। सायंकाल अकेला उसका पिता भी उसी धर्मशाला की एक कोठड़ी में आकर ठहर गया। रात्रि को लड़के के पेट में भारी दर्द हो गया। शहर के वैद्य डाक्टर आने लगे। दवाईयां देते हैं, परन्तु आराम कुछ भी नहीं आता। लड़का पुकारता था, हाय मरा ! हाय मरा ! हाय मरा ! वह कोठड़ी में सोया सोया कहता रहा, कैसा दुष्ट है यह ? सारी रात हो गई, सोने भी नहीं देता। दुष्ट मरा मरा कहता है। और मरता भी नहीं है। इतने में वह मर गया और बड़ा भारी रोना शुरू हो गया। तब बनिया बैठा हो गया और बोला :- अब सुसरे का रोग कट्या सै। पूछूं तो सही, कौन है ? कहां का है ? बनिया आकर बोला :- क्यों भाई यह कहां का था ? और इसका नाम क्या है ? तब नौकरों ने बताया कि यह अमुख नाम का, अमुख गांव का सेठ था। यह अपने मां बाप से मिलने जा रहा था। यह सुनकर बनिया, ऊंचे हाथ कर, हाय बेटा ! हाय बेटा ! रोने लगा। मुझे क्या पता था कि तूं मेरा ही बेटा है।

सतगुरूदेव कहते हैं "आपा पर सब दूर कर०" अर्थात् अपना और पराया का भेद न होता तो, वह पुत्र से मिल लेता।

बार बार यह तन नहीं, नर नारायण देह।
दादू बहुरी न पाइये, जन्म अमोलिक येह ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मनुष्य का जन्म बार बार प्राप्त होना असम्भव है। इसको प्राप्त करके, परमेश्वर के भजन द्वारा परोपकार आदि साधनों से सफल बनाओ, क्योंकि यह नर तन अमोलिक है। इससे परमेश्वर की भक्तिरूप अमोलिक कार्य ही करो।

दोहा :- नर तन पहला द्वार, मुक्ति के धाम का।
नर तन में हो ज्ञान, यथार्थ राम का ॥११॥

दो० :- रज्जब रतनौं से जरी, मानौं मानुष्य देह ।
रे नर निर्धन होइगा, चौरासी के गेह ॥११॥

रेखता :- अजाजील रान्या न मान्या सिदक मोहम्मद का,
जैसा जो करेगा बन्दा तैसा कोई पावैगा ।
भावै नेकी भावै बदी की राहै चलै कोई, दिल का
दरद बाप पूत न बटावेगा ।
बोवेगा जैसा सावक धतूरा कोदौं, और जार झिनवा
कलोंजी कोई खाता न भरावेगा ।
खेमदास फना है जहान, जान देख, जानेगा फहम,
कोइ गाफिल ठगावेगा ॥११॥

एकाएकी राम सों, कै साधु का संग ।
दादू अंतन जाइये, और काल का अंग ॥१२।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मनुष्य शरीर में, अब, नाम स्मरण द्वारा राम से ओत प्रोत हो जाओ । और दूसरा साधु जो सज्जन पुरूष हैं, उनका संग करो, आदर्श अपनाओ । इसके अतिरिक्त जो कुछ माया प्रपंच है, वह काल का ही स्वरूप है, उसमें आसक्ति न करो ।

छंद :- देह सनेह न छाड़त है नर, जानत्त है थिर है यह देहा ।
छीजत जात घट दिन ही दिन, दीसत है घट को नित छेहा ।

काल अचानक आइ गहै कर, ढाहै गिराइ करै तन खेहा ।
सुन्दर जानि यह निश्चय धरि, एक निरंजन सूं कर नेहा ॥१२॥

दादू तन मन के गुण छाड़ी सब, जब होइ निआरा ।
तब अपने नैनहुं देखिये, प्रगट पीव प्यारा ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तन के गुण (चोरी जारी इत्यादि) मन के संकल्प विकल्प (तृष्णा आदि), इनसे अलग होकर कहिए छोड़कर, फिर अपने ज्ञान विचार रूपी नेत्रों में, हृदय प्रदेश में, मुख प्रीति का विषय, वह प्यारा परमेश्वर प्रगट हो रहा है। उसके दर्शन करो ।

छन्द :- जगमग पग तजि, सजि भजि राम नाम, काम क्रोध
तन मन, घेरि घेरि मारिये ।
झूठ मूठ हठ त्याग, जाग भाग सुनि पुनि, गुन ग्यान
आनि आनि, बारि बारि डारीये ।
गहि ताहि जाहि शेष, ईश ससि सुर नर, और बात
हेत तात फेरि फेरि जारियें ।
सुन्दर दरद खोई, धोई धोई बेर बेर, सार संग अंग
रंग, हेरि हेरि धारिये ॥१३॥

दादू झांती पाये पसु पिरी, अंदरि सो आहे ।
होणी पाणी बिच्च में, मिहर न लाहे ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'झांती' कहिए झरोखा रूपी मनुष्य शरीर को प्राप्त करके, इसमें प्यारे

परमेश्वर को देखिये । मनुष्य देह के हृदय रूपी मन्दिर में, स्वस्वरूप का प्रत्यक्ष दर्शन करो । वह तुम्हारे भीतर ही है, और तुम्हारे आत्म स्वरूप से ही वह विद्यमान है । इसमें विलम्ब नहीं करना ।

रेखता :- तूझे किया पैदा उन, जान के जहान बिच, मालिक
महरबान करने को बन्दगी ।
दुनियां सै लाग कर, अल्लह आज भूल गया, कुफर
कमाया कुछ, करी नहीं बन्दगी ।
इशक इबादतो में, एक सै यकीन राख, राज के हजूर
तेरी, कीजिए न रिन्दगी ।
खेमदास जानेगा, सो न मानेगा, परेगो खबर तहां,
होइगी शर्मिन्दगी ॥१४॥

दादू झांति पाये पसु पीरि, होणे लाइम बेर ।
साथ सभौंई हिल्लियों, पोइ पसंदा केर ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह अमुल्य मनुष्य देह प्राप्त करके, अब प्यारे परमेश्वर के दर्शन करने में अब देर नहीं करो । तुम्हारे साथी तो सब चल पड़े हैं और तुम पड़े पड़े वृथा मनुष्य देह के श्वांसों को गमाते हो हो । हे नादान ! तुस विषयों में पड़े पड़े क्या देख रहे हो ? यह सब तो परिवर्तनशील है । इसका क्या चिंतन करते हो ? यह अमुल्य नर तन प्राप्त हुआ है, अब इसमें आत्म स्वरूप परमेश्वर का चिंतन करो । इसी में इस नर तन की सफलता है ।

रेखता :- जाये भी न जाइगी, कमाई किसी दोसत की, नेकी
और बदि का, खेत बोवेगा जैसा लूणगा ।

देखिए नर ताइ, कछु जानिये जिहान ख्वाब, एक
रोज जमीं में, औजूद मिट्टी सनेंगा ।
रहेगा हमेस, एक रिजक रहीम सच्चा, और सब
फनाफनी, केत्ते कौन गीनेंगा ।
राखिये करार उस, पैदा के करैये सेती, खेमदास दिल
में, दीदार रोजी बनेगा ॥१५॥

(इति चितावणी का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ मन का अंग १० ॥

"दादू तन मन के गुग छाड़ि सब०" इत्यादिक सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब मन के अंग का प्रतिपादन करेगें । प्रथम मंगलाचरण करते हैं ।

दादू नमो नमो निरन्जनम्, नमस्कार गुरू देवत: ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥१॥

टीका :- निरंजनदेव दिव्य मूर्ति सतगुरू, और समस्त साधन सम्पन्न साधुओं को, तन मन वाणी द्वारा, हमारा बारम्बाम बंदना है, जिससे साधक, संकल्प विकल्प रूप दुख से निवृत होकर, पार निश्चल राम को 'गतः' केहिए प्राप्त होते हैं ।

दादू यहु मन बरजी बावरे, घट मै राखी घेरि ।
मन हस्तों मात्ता बहै, अंकुस दे दे फेरि ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अल्प बुद्धि रूप, इस हाथो रूप मन को, जो मदो उन्मत्त हो रहा है अर्थात बाह्य विषयों में आसक्ति वाले, इस चंचल मन को अन्तंमुख करके, सतगुरू के उपदेश और विवेक वैराग्य आदि द्वारा, इस शरोर में ही, आतमस्वरूप में लगाइये ।

दोहा :- मन को साधन एक है, निशदिन ब्रह्म बिचार ।
सुन्दर ब्रह्म बिचार से, ब्रह्म होत नहीं बार ॥२॥

हस्ती छूटा मन फिरे, क्यूं ही बंध्या न जाइ ।
बहुत महावत पचि गये, दादू कछु न बसाइ ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे बन्धन से छुटकारा पाया हुआ हाथी मदो उन्मत्त होकर विचरता है, और उसके बन्धन का अब कोई उपाय सम्भव नहीं है, वैसे ही हस्ती रूपी यह मन, विवेक वैराग्य के बन्धन से मुक्त होकर, संसारी विषयों में भ्रमता है । महावत रूप अनेक ऋषि मुनि एवं साधक, प्रयत्न कर करके थक गये, किन्तु किसी ने भी मन की चंचलता का पार नहीं पाया है ।

छन्द :-

घेरिये तो घेर्यो हू न, आवत है मेरो पूत, जोई
परमोधियें सो कान न धरतु है ।
नीति न अनीति देखै, शुभ न अशुभ पेखै, पल ही में
होती अन होति हु करतु है ।
गुरू की न साधु की न, लोक वेद हुकी शंक, काहु
की न मानै न तो, काहु से डरतु है ।
सुन्दर कहत ताहि, धीजिये सु कौन भांति, मन को
स्वभाव कछु, कह्यो न परतु है ॥३॥

जहाथैं मन उठि चलै, फेरि तहां ही राखि ।
तहं दादू लै लीन करि, साध कहैं गुरू साखि ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन "जहांथैं" कहिये आत्मस्वरूप चेतन्य से प्रतिबिम्बत होकर संकल्प द्वारा, बिषयों में प्रवृत्त होता है । इसको अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, आत्मस्वरूप चेतन्य में ही स्थिर करिये । येही सर्व साधुओं की आज्ञा है और सतगुरू का भी यही उपदेश है ।

थोरे थोरे हटकिये, रहैगा ल्यौ लाइ ।
जब लागा उनमन सौं, तब मन कहीं न जाइ ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शनै शनै इस मन को राम नाम स्मरण द्वारा रोकिये, तब यह मन आत्मस्वरूप मन में ही, लय लगाकर स्थिर रहेगा । जब यह मन बाह्य विषयों से उदासीन हुआ, तो फिर कहीं भी नहीं जाता है । अर्थात् उनमनी कहिये ब्रह्म दिशा को प्राप्त होता है ।

दोहा :- मनवा मेरे हाथ है, मैं नहीं मनवा हाथ ।
जित ही तित मनवा फिरै, तित ही तित मैं साथ ॥५॥

आड़ा दे दे राम को, दादू राखै मन ।
साखी दे स्थिर करै, सोई साधु जन ॥६॥

टीका हे जिज्ञासुओ ! जब तुम्हारा मन विषयाकार होवै, तब राम नाम के स्मरण से रोको । क्योंकि जो पुरूष इस प्रकार साधन करता है और उत्तम पुरूषों के शब्द की शिक्षा देकर, इस मन को स्थिर करता है, वही संत पुरूष है ।

दोहा :- मन रे जाइ जहां तोइ भावै अबन तोरे कोई अकुंस लावै ।
जहां जहां जाइ तहां तहां रामा, हरि पद चिहिन कीया बिसरामा ॥६॥

दोहा :- नाम के अक्षर चौगुणे करि पुनि, पचं मिलाइ कै द्वै गुण किजे ।
आठ को भाग दिये रघुनाथ, बचे पुनि अंक तहां मन दिजे ॥६॥

सोई सूर जे मन गहै, निमख न चालन देइ ।
जब ही दादू पग भरै, तबही पकड़ि लेइ ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही शूरवीर पुरूष है, जो इस मन को विषयों की तरफ से रोक लेता है। जब यह संसारिक भोगों की तरफ संकलपरूपी पावं उठावै, उसी समय इसको "पकड़ि ले", कहिए संकल्प को दमन कर दे।

दोहा :- एक कन्या यह नेम लियो, मो परणै व्है सूर।
सिंह हन्यौ गज अरि हन्यौ, तिय तज भाज्यो दूर॥७॥

दृष्टान्त :- एक राज कन्या ने नेम लिया कि मैं शादी उसके साथ करूगीं, जो शूरवीर होगा। अर्थात् सिंह को बिना हथियार के मार देगा और हाथी के बिना हथियार के दांत उखाड़ देगा। राजा ने विज्ञापन निकाले कि ऐसा बलि राजकुमार है वह आवै, उसके साथ मेरी राज कन्या विवाह करेगी। कई राजकुमार आये और एक चार दीवारी में मस्त हाथी छोड़ रखा था, वहीं शेर का पिंजरा भी रखा हुआ था। इस लीला को देख देखकर, लोग चकित हो रहे थे। एक महापुरूष भी आ निकले। उन्होने पूछा :- यहां क्या हो रहा है ? किसी ने कहा :— यहां शूरवीरता देखी जाती है। महात्मा उपरोक्त वृत्तान्त सुनकर, चार दीवारी में घुसे और ज्यों ही हाथी उनके ऊपर आया, त्यौं ही उछलकर महात्मा ने सूंड पकड़ी। एक मरोड़ी लगाई। हाथी धड़ाम से गिरा। उसके दांत पकड़ पकड़ कर, खेंच कर डाल दिये। बोले :- शेर को भी निकालो। शेर महात्मा के ऊपर झपटा। महात्मा ने बैठक लगाई। शेर के पीछे के पांव पकड़ कर और घूमाकर सिला पर मारा,। शेर की जान निकल गई। उसको भी उठा कर डाल दिया। राजा के सहित सब लोग, धन्य धन्य के नारे लगाने लगे। तब राज कन्या दोनों हाथों में माला लेकर, सामने पहराने आई। महात्मा बोले :- यह कौन है ? लोगों ने कहा :- यह लीला इसी ने रचाई है, कि मैं ऐसे शूरवीर के साथ शादी करूंगी। महातमा बोले :- भाई ! यह काम तो नहीं होगा। इतना कहकर चल दिये। तब राज कन्या बोली :-

दोहा :- सिंह बिडारण हो बली, और तोड़न गज दंत।
काम कटक तैं मुड़ि चले, अैसें कायर कंत॥७॥

संत बोले :- इधर से तो हम कायर ही हैं।

जेती लहरि समंद की, तेते मन ही मनोरथ मारि ।
बैसे सब संतोष करि, गहि आत्म एक बिचारि ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे समुद्र की तरंग अपार हैं, वैसे ही मन के मनोरथ रूप तरंग भी अनन्त हैं । उन सब को दबाकर जो पुरूष, संतोष को धारण करके, एक आत्म विचार में ही राते रत्त और माते मतवाले रहते हैं, वही उत्तम पुरूष हैं । आत्म विचार ही मन को रोकने का श्रेष्ठ साधन है ।

दादू जे मुख माहैं बोलता, श्रवणहु सुणता आइ ।
नैनहुं मांहैं देखता, सो अतंर उरझाइ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो कुछ मुख से बोला जाता है, कानों से जाकर सुना जाता है और नेत्रों से देखा जाता है, उसके सूक्ष्म संस्कार हृदय में पड़ते हैं । जिससे यह मनीराम चलायमान होता है । इसलिये इन्द्रियों का विषयों के साथ कभी सम्बन्ध न होने दो, और इनको आत्म परायण बनाओ । वही पुरूष सर्व श्रेष्ठ है ।

दादू चुम्बक देख करि, लोहा लागै आइ ।
यौं मन गुण इन्द्री एकसौं, दादू लीजै लाइ ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे चुम्बक पत्थर के समीप, लोहा को चुम्बक खैंच लेता है । इसी प्रकार अपने मन, और पांचों ज्ञानेन्द्रियों को चुम्बक रूप, आत्म विचार के सन्मुख करो, तब सतगुरू उपदेश द्वारा परमेश्वर रूप चुम्बक आत्मा, मन इन्द्रियों को अपने स्वरूप में लगा लेता है ।

मन का आसण जे जिव जाणै, तौ ठौर ठौर सब सूझै ।
पंचौं आण एक घर राखै, तब अगम निगम सब बूझै ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन का आसण गर्भ आसण, उपजन आसण, सत्संग आसण, ब्रह्म आसण, जब जीव, मन का देखै, तो मन की स्थिति प्रतीत होने लगती है, कि कौनसे आसण पर है ? जब ब्रह्म आसण पर स्थिति होती है, तो अगम शास्त्र और निगम बेद, जिसका वर्णन करते हैं, वह आत्मरूप ब्रह्म, मन को सर्वत्र भान होने लगता है ।

दोहा :- जसवंत नृप प्रश्न कीयो, आसण अच्छ्यो, कोण ।
दास नारायणजी कही, गुरू दादू कहै जोन ॥११॥

दृष्टान्त :- जोधपुर के राजा जसवंत सिंह जी ने महाराज नारायण दास जी से प्रश्न किया, कि मन को स्थिर करने के लिए, कौनसा आसण अच्छा है गुरूदेव ? नारायण दास जी बोले :- उपरोक्त साखी में जो ब्रह्मऋषि गुरूदेव ने बताया, वही आसण अच्छा है ।

बैठे सदा एक रस पीवै, निरबैरी कत झूझै ।
आतमराम मिलै जब दादू, तब अंगिन लागै दूजै ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समस्त जगत को, ब्रह्म रूप से जानने वाले उत्तम पुरुष, आतमस्वरूप आनन्द में स्थिर रहकर, एक रस होते हैं । फिर वह राग द्वेष आदि से रहित हो जाते हैं । ऐसे पुरुष संसार के भय, त्रास आदि बन्धनों से भी मुक्त होते हैं । ब्रह्मऋषि सतगुरू उपदेश करते हैं कि जब व्यष्टि चेतन्य को, समष्टि चेतन्य रूप राम का साक्षात्कार होता है, तो फिर जीव की मिथ्या मायिक पदार्थों में आसक्ति नहीं रहती है ।

जब लग यहु मन थिर नहीं, तब लग परसन होइ ।
दादू मनवा थिर भया, सहजि मिलैगा सोइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक यह मन राम के स्मरण में स्थिर नहीं होता है, तब तक यह परमेश्वर का साक्षात्कार नहीं कर पाता और जब यह मन साधनों के द्वारा, हृदय में स्थित होता है, तो परमेश्वर इसको सहज में ही प्राप्त हो जाएगा ।

दादू बिन अबलंबन क्यूं रहै, मन चंचल चलि जाइ ।
अस्थिर मनवा तौ रहै, सुमिरण सेती लाइ ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञसुओ ! यह मन बिना साधनों के साधे स्थिर नहीं रहता, क्योंकि मन रजोगुण प्रधान है होने से, चंचल स्वभाव वाला है। यह मन स्थिर तब तो रह सकता है, जब इसको अन्तर्मुख नाम स्मरण में लगावै।

दोहा :- साध भूत दियो सेठ को, टहल करन के काज।
बांस मंगाइ गड़ाइयो, बड़ो काज एक आज ॥१४॥

दृष्टान्त :- एक साहूकार के यहां महात्मा ठहरे। महात्मा की साहूकार ने खूब सेवा की। जाते समय महात्मा अपने पास जो भूत था, उसको सेवा के बिए सेठ को दे दिया और भूत को बोले :-मनुष्य रूप से तूं सेठ का सब काम करना। ठालो नहीं रहना। महात्मा रम गए। भूत मनुष्यरूप से सेठ को बोला :- काम बताओ। सेठ का काम बताया हुआ, दिनों का काम घंटों में, घंटों का काम मिनटों में, और मिनटों का काम सैकन्डों में करने लगा। सेठ का सम्पूर्ण काम कुछ दिनों में ही पूरा कर दिया। फिर सेठ को बोला :- काम बतलाओ। सेठ :- काम तो अब कुछ है नहीं। भूत बोला :- मैं तुम्हारी पिटाई करूंगा, मुझे गुरू महाराज का उपदेश है कि ठाली मत रहना। बनिया अगगम बुद्धि था। बोला :- एक बांस ला। बांस लाकर इसको गाड़ दे। फिर बनिया बोला :- भूत को, कि इस पर चढ़ और उतर। भूत ने एक दो ऊपर नीचे चक्र काटे, फिर सोचा इस काम का तो अन्त ही नहीं है सेठ के चरणों में नतमस्तक हो गया।

दाराष्टान्त में मन रूप भूत को, गुरूदेव ने जीव रूप सेठ को सौंपा। जीव रूप सेठ ने बहिर्मुख होते मन को, श्वांस रूपी बांस पर, राम नाम का स्मरण रूपी काम बतलाया कि उठते स्वांस और बैठते स्वांस राम नाम का स्मरण कर, अथवा 'सोहं' का जाप कर। तभी मनरूपी भूत एकाग्र होने लगा।

सतगुरू चरण शरण चली जाही, नित प्रति रहिये तिनकी छाही।
मन अस्थिर करि लीजै नाम, दादू कहै तहां ही राम ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू के तेजपुंज रूपी चरणों की शरण हृदय में ग्रहण करो। और प्रतिदिन उनके बताये हुए उपदेश से मन को स्थिर करके, व्यापक चेतन्य राम का भीतर ही साक्षात्कार करो। वहीं राम है।

हरि सुमिरण सौं हेत करि, तब मन निश्चल होइ ।
दादू बेध्या प्रेम रस, बीखन चालै सोइ ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम के स्मरण में, मन को एकाग्र करने से ही, मन स्थिर हो सकता है । जब मन प्रभु के स्मरण में लय के द्वारा लीन रहेगा, तो ',एक पग भर भी" कहिए एक पल भी स्मरण से अलग नहीं होवेगा ।

दोहा :- **मन चींटा भ्रमत फिरै, काया कुंभ मधि सोइ ।**
नाम पताशा सौं लगै, तो बालकराम थिर होइ ॥१६॥

दृष्टान्त :- बालक राम जी महाराज कहते हैं कि मन रूपी चींटा, कायारूपी कुम्भ (घड़े) में, बासना द्वारा घूमता रहता है । जब नाम रूपी पताशे से, इस मन रूपी चीटें से लगा दिया जावै, तो फिर इसकी चंचलता मिट जाती है ।

जब अंतरि उर्झया एक सौं, तब थाके सकल उपाइ ।
दादू निश्चल थिर भया, तब चलि कहीं न जाइ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब सजातीत, विजातीय, स्वागत भेद से रहित चेतन्य से, भीतर अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, मन लग जाय, तो फिर तीर्थ व्रत आदिक बहिरंग साधन अनावश्यक हैं । ब्रह्म वृत्ति होने पर मन की विषयाकार, समस्त वृत्तियां भी ब्रह्माकार हो जाती हैं । फिर बहिरंग साधनों में कदापि भी, प्रवृति नहीं होती है ।

दादू कउवा बोहिथ बैस करी, मंझी समंदा जाइ ।
उड़ि उड़ि थाका देखि तब, निश्चल बैठा आइ ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कउवा रूपी मन, सतसंग रूपी 'बोहिथ' कहिए जहाज में बैठ कर, एकाग्र होकर, समुद्र रूप ब्रह्म में सलग्न होता है । तब श्रवण, मनन, निदिध्यासन, विवेक, वैराग्य आदिक साधनों द्वारा,

माया से निर्मल होकर, परमेश्वर का प्रत्यक्ष परिचय करके, स्वस्वरूप में लीन होता है ।

दोहा :- मन कउवा निश्चल भया, सत संगति बोहित पाइ ।
जगन्नाथ जग सार नंहि, नाउं बिड़द परि आइ ॥१८॥

यहु मन कागद की गुडी, उड़ि चढी आकास ।
दादू भीगे प्रेम जल, तब आइ रहे हम पास ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन कागज के पतंग की भांति, काम क्रोध लोभ मोह से निर्मल होकर, मन की ब्रह्माकार वृति, ब्रह्म देश में सलग्न हुई ।जैसे कागज की पतंग उड़ती हुई, जल से भीग कर, उड़ाने वाले के पास आ गिरती है, तदवत् हि सूक्ष्म संस्कार रूप जो वृत्ति थी, वह प्रेम जल से भीगकर कहिए गलकर, "आय रहे हम पास" ब्रह्म स्वरूप में विलय हो जाती है ।

दादू खीला गारि का, निश्चल थिर न रहाइ ।
दादू पग नहीं सांच के, भर मैं दह दिशि जाइ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे गार के टीले में रोपा हुआ खूंटा, स्थिर नहीं रहता है, ऐसे ही मन रूपी खूंटा संसारिक विषयों में लगा हुआ स्थिर नहीं होता । संसार में ही वासना द्वारा भ्रमता रहता है । सतगुरू महाराज कहते हैं कि सच्चे परमात्मा के निश्चल चरणों की जब तक शरण नहीं लेता है, तब तक मन जन्म जन्मान्तरों में भ्रमता रहता है ।

तब सुख आनन्द आत्मा, जे मन थिर मेरा होइ ।
दादू निश्चल राम सौं, जे करि जाणैं कोइ ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरूष सतगुरू की दया से, अपने मन को राम नाम में स्थिर करता है उसकी आतमा सदा परम आनन्दित रहती है, फिर उसको कोई भी संसार कष्ट नहीं व्यापता है ।

मन निर्मल थिर होत है, राम नाम आनंद ।
दादू दरसन पाइये, पूरण परमानन्द ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनका मन मल विक्षेप से शुद्ध होकर, राम नाम स्मरण में स्थिर होता है, ऐसे पुरूष पवित्र होकर, परमेश्वर का भीतर और बाहिर साक्षात्कार करते हैं ।

(विषया विरक्ति)

दादू यों फूटेथैं सारा भया, संधे संधि मिलाइ ।
बाहुड़ि बिषय न भूँचिये, तौ कबहू फूटि न जाइ ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यों कहिये पूर्वोक्त प्रकार से 'फूटे थैं' नाम विषयासक्त जो मन है, वह विवेक वैराग्य से, सारा नाम ईश्वर परायण हुआ है । कैसे ? "संधे संधि मिलाइ" अर्थात् आतम परमात्मा की एकता हुई । "बाहुणि विषय न भूंचिये"— फिर विषयों को नहीं भोगता है । अब कभी भी मन ईश्वर विमुख नहीं होता है ।

दोहा :- येता फूटे ना जुड़े, दूधरू मोती मन ।
यह संतो की साख है, पहले राख जतन ॥२३॥

दादू यहु मन भूला सो गली, नरक जाण के घाट ।
अब मन अविगति नाथ सों, गुरू दिखाई बाट ॥२४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू यह उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! यह मन जिस 'गली' में कहिए विषय प्रवृत्ति में स्वस्वरूप को भूल रहा है, सो तो "नरक जाण के घाट" नाम संसार दुख का कारण है । इसलिए हे मन ! अविगत परमेश्वर प्राप्ति के लिये, गुरू के बताये हुए श्रेष्ठ मार्ग में प्रवृत्ति होइये ।

दादू मन सुध स्यावत आपणा, निश्चल होवे हाथ ।
तौ इहां ही आनन्द है, सदा निरंजन साथ ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन निर्विषय और निर्चेष्ट हो तो, स्वस्वरूप निरंजन की अभेदता का, परमानन्द, इस मनुष्य जन्म में ही, सहज में, प्राप्त हो सकता है ।

जब मन लागै राम सौं, तब अनत काहे को जाइ ।
दादू पाणि लूण ज्यूं, अैसैं रहै समाइ ॥२६॥

टीका :- हे जिजासुओ ! जब यह मन ब्रह्म विचार में लयलीन हुआ तो. अन्य साधनों में, बाह्य विषयों में, फिर आसक्त नहीं होगा । किन्तु हे सज्जनों ! लूण जिस प्रकार पानी में मिलकर एक होता है, और उसमें कोई भेद नहीं रहता है, इसी तरह अपने मन को, परमेश्वर में ही अभेद करिये ।

ज्यूं जल पैसे दूध में, ज्यूं पाणी में लूण ।
अैसैं आत्मराम सौं, मन हठ साधै कूंण ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे दूध में पानी, और पानी में नमक अभेद होता है, ऐसे ही उत्तम जिज्ञासु, एकत्व के अभ्यास द्वारा, मन को स्वस्वरूप में अभेद करता है ।

मन का मस्तक मूंडिये, काम क्रोध के केस
दादू विषय विकार सब, सतगुरू के उपदेश ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन के अहंकार रूपी मस्तक पर, काम क्रोध रूपी बाल हैं, उनको सतगुरू के उपदेश रूपी उसतरे से मूंड़िए ।

(करूणा)

सौ कुछ हमथैं ना भया, जा पर रीझै राम।
दादू इस संसार मै, हम आये बेकाम ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हरि स्मरण,. सतसंगति जो सुकृत हैं, जिनके करने से प्रभु प्रसन्न होते हैं, सो तो हमारे से हुआ नहीं, मन्द बुद्धि पुरूषों ने किया नहीं ? इस लोक में हमारा मनुष्य जन्म वृथा जा रहा है ।

क्या मुंह ले हंस बोलिये, दादू दीजै रोइ ।
जनम अमोलिक आपणा, चले अकरथा खोइ ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के सामने कौन सा मुंह लेकर दिखलाओगे ? वह परमेश्वर क्या तुमसे हंसकर बोलेगें ? ऐसे कौनसे तुम्हारे कर्तव्य हैं ? तुम्हें परमेश्वर के समक्ष में, अपने कर्तव्यों को याद करके, रोना ही तो पड़ेगा ! इस अमूल्य जन्म को शुभ कर्मों के बिना, निरर्थक ही खोकर गवांते हो ।

जा कारणि जगि जीजिये, सौ पद हिरदै नांहि ।
दादू हरि की भगति बिना, धिग जीवन कलि माहि ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस परमेश्वर की भक्ति के लिए, संसार मैं जन्म लिया था, वह भक्ति तो हृदय में है नहीं । तो ऐसे जीवन को कलयुग में धिक्कार है, जो हरि की भक्ति के बिना जीता है ।

कीया मन का भावता, मेटी आज्ञाकार ।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासु! मन को प्रिय लगने वाले ही काम करो । गुरू आज्ञा और परमेश्वर की मर्यादा को मेट कर, अब तुम कौन सा मुंह लेकर परमेश्वर के सामने जाओगे ? जैसे स्त्री पति आज्ञा और शास्त्र मर्यादा को मेट कर, अपने मन को भाने वाले काम करै तो वह भरतार को कौनसा मुंह लेकर दिखलाएगी ।

इन्द्री स्वारथ सब किया, मन मांगै सो दीन्ह ।
जा कारणि जगि सिरजिया, सो दादू कछु न कीन्ह ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस अज्ञानी पुरूष ने, इन्द्रियों की विषय प्रवृति के लिये तो, सर्व कर्तव्य भी किये हैं । किन्तु, परमेश्वर ने जिस कार्य के लिए इस प्राणी को पैदा किया था, उस भक्तिरूप कार्य को इस जीवात्मा ने किंचित भी नहीं किया है । इसी से यह मन्द भागी है ।

कीया था इस काम कौं, सेवा कारणि साज ।
दादू भूला बंदगी, सर्‍या न ऐकौ काज ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परम दयालु परमेश्वर ने, भक्ति ज्ञान वैराग्य रूप सेवा के लिए, इस जीवात्मा को चोरासी लाख योनियों से निकाल कर, अति उत्तम मनुष्य का शरीर दिया है । परन्तु यह अज्ञानी जीव, प्रभु आज्ञा को मेट कर, विषयों में आसक्त हो रहा है । इस प्रकार इसने इस लोक और परलोक का कोई भी कार्य, इन्द्रियों के स्वार्थ में लगकर, पूरा नहीं किया है ।

दादू विषै विकार सौं, जब लग मन राता ।
तब लग चीत न आवई, त्रिभवन पति दाता ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक यह मन शब्द आदि विषयों से, और कामादि विकारों से, राता रत्त और माता मतवाला रहता है, तब तक इसके चित्त में त्रिभुवन पति परमात्मा, हृदय में रहता हुआ भी इसको दिखलाई नहीं पड़ता है ।

दादू का जाणूं कब होइगा, हरि सुमिरण इकतार ।
का जाणूं कब छाड़ि है, यह मन विषय विकार ॥३६॥

टीका :- हे सतगुरू ! न मालूम हरि कहिए, पापों को हरने वाले उस प्रभु का, नाम स्मरण अखण्ड वृत्ति से, हमारे हृदय में कब होगा ? और यह मन विषय और काम आदि विकारों को, न मालूम कब त्यागेगा ? इस प्रकार हमारे मन में, यह पश्चाताप ही बना रहता है ।

(मन प्रमोध)

बाद हि जन्म गंवाइया, कीया बहुत विकार ।
यहु मन अस्थिर ना भया, जहं दादू निज सार ॥३७॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज उपदेश करते हैं कि हे मन ! यह मनुष्य शरीर जो अमूल्य है, इसको तैंने नाना विषय विकार रूप कुसंग में लगाकर, और हरि से विमुख होकर, सतगुरू के शब्दों में तरक कुतरक करता हुआ, यह अमोलिक नर तन प्रभु चिंतन के बिना, व्यर्थ ही खो दिया ।

(विषया अतृप्ति)

दादू जिन विष पीवै बावरे, दिन दिन बाढ़ै रोग ।
देखत ही मर जाइगा, तजि विषया रस भोग ॥३८॥

टीका हे नादान ! इस विषय भोग रूपी रस में आसक्त मत हो । क्योंकि इन विषय विकारों से, जन्म मरण रूपी रोग तुझे अधिक प्राप्त होगें । इस प्रकार विषयों का संकल्प विकल्प करते करते यह मानव जन्म वृथा ही जा रहा है । हे जिज्ञासु ! तुझे जो विषय भोगों में सुख प्रतीत हो रहा है, उसके मिथ्या मोह को त्याग कर, प्रभु के नाम का स्मरण कर ।

आपा पर सब दूरि करि, राम नाम रस लाग ।
दादू औसर जात है, जागि सकै तौ जाग ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मैं मेरा और तूं तेरा, इस भेद को छोड़कर, राम नाम के स्मरण में एकाग्र बुद्धि हो, क्योंकि मनुष्य जन्म के यह अमूल्य स्वांस, स्मरण के बिना वृथा ही जा रहे हैं । इसलिए विचार पूर्वक स्वस्वरूप को पहचान ।

(मन हरि भावरि)

दादू सब कुछ बिलसतां, खातां पीतां होइ ।
दादू मन का भावता, कहि समझावै कोइ ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह सम्पूर्ण मनुष्य जीवन, खाने पीने और संसारिक भोग भोगने में ही बीता जा रहा है, किन्तु फिर भी मन के विषय वासनाओं का दुराग्रह नहीं मिटा है । और यही चाहते हैं कि जो मन में भाने वाली बात ही कोई संतजन सुनावै, अर्थात मनो अनुकूल समस्त भोगों को भोगने पर भी, मानव को संतोष नहीं होता है, बल्कि उसका मन अधिक चंचल हो जाता है । इसलिए इस मन को अभ्यास के द्वारा, विषयों की तरफ से रोको ।

दादू मन का भावता, मेरी कहै बलाइ ।
सांचे राम को भावता, दादू कह सुणाइ ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विविध विषय भोगों में, जो मन की आसक्ति हो रही है, मन उन्हीं को चाहता रहता है । सतगुरूदेव यह उपदेश करते हैं कि संसारोजन यदि यह चाहें कि हमारे अनुकूल माया प्राप्तिरूप प्रपंच, संसार के भोगों का ही उपदेश करें, तो यह उपदेश हम कभी भी नहीं करेंगे, क्योंकि परमेश्वर को तो भक्ति ज्ञान वैराग्य, नाम स्मरण, यह प्रिय हैं । इसलिए ब्रह्मवेत्ता पुरूष सत् स्वरूप परमेश्वर को भाने वाला उपदेश ही करते हैं । और उत्तम जिज्ञासु ही उसको श्रद्धापूर्वक श्रवण करते हैं ।

दोहा :- सबसे बूझी बादशाह, भीस्तही उकै नाइ।
सबन कहि रुख राक कै, फक्कड़ कहि तब जाइ ॥४१॥

दृष्टान्त :-एक बादशाह दरबार में सबसे पूछने लगे कि भीस्त (बैकुन्ठ) किसके लिए है ? सब लोग बादशाह को राजी रखने के लिए बोले :-हुजूर भीस्त में तो आप जैसे पुरूष ही जायेंगे। एक फक्कड़ भी बैठे थे। वह बोले :- बादशाह, यह तो तुम्हारे गुलाम हैं, तुम्हारे को प्रिय लगे, वैसी बात कही है। परन्तु वह दोजक जो नरक बना है, वह तुम्हारे लिए ही बना है।

दादू ये सब मन का भावता, जे कुछ किजे आन।
मन गहि राखै एक सों, दादू साध सुजान ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ईश्वर से अतिरिक्त, जितने भी संसारिक विषय हैं, उनमें मन मुखी पुरूषों की ही आसक्ति होती है। किन्तु साधन सम्पन्न जो उत्तम जिज्ञासु हैं, उनका निश्चल मन तो सदैव एक परमेश्वर में ही सलग्न रहता है।

जे कुछ भावै राम कौं, सो तत कहि समझाइ।
दादू मन का भावता, सबको कह बणाइ ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो राम को प्रिय है ज्ञान भक्ति वैराग्य, संतजन उसी को समझाकर उपदेश करते हैं। और बाकी संसारीजन तो, जो मन को विषय भोग प्रिय लगते हैं, सकाम कर्मो के द्वारा, वह प्राप्त होते हैं। उसी मार्ग को समझाकर कहते हैं।

दोहा :- मिश्र कथा दिन कै करै, मांस दोस कह नांहि।
एक दिवस सुत कह दियो, नरक जाइ ते खांहि ॥४३॥

दृष्टांत :- एक राजा के यहां एक ब्राह्मण कथा करने रोज जाया करते थे। राजा मांस खाता, परन्तु जहां मांस खंडन का प्रसंग आता, उसको ब्राह्मण नहीं सुनाता, क्योंकि वह मन में समझता था कि राजा मांस खाता है। मैं मना करूगां, तो राजा मेरी कथा नहीं सुनेगा। मेरो रोजी खत्म हो जाएगी। एक दिन ब्राह्मण ने अपना लड़का, कथा करने को भेज दिया। कथा का प्रसंग वहीं से चलना था जहां मांस का

खंडन रहा । वह बोलने लगा :- हे राजन् ! मांस खाने वाले प्रेत होते हैं, मांस खाने वाले शेर होते है, भालू होते हैं, चीते होते हैं, कुत्ते होते हैं, बिल्ली होते हैं, श्याल होते हैं इत्यादिक चौरासी के शरीर पाकर, अनेक प्रकार के कष्ट भोगते हैं । इसलिए मांस नहीं खाना चाहिये । यह कहकर कथा समाप्त कर दी । राजा दो मोहर चढ़ाया करता था, वह नहीं चढ़ाई और उदास हो गया । ब्राह्मण का लड़का घर आ गया । ब्राह्मण ने पूछा :- भेंट लाया । लड़के ने कहा :- नहीं । ब्राह्मण बोला :- अरे मूर्ख ! तैंने हमारी रोजी आज बन्द कर दी । दूसरे दिन ब्राह्मण पहुंचे । राजा को आर्शीवाद किया और कथा सुनाने लगे । कथा समाप्त हो गई । राजा बोले :- कल तो महाराज, उस लड़के ने नई ही कथा सुनाई, मांस के बाबत । तुम जानते हो हम तो मांस रोज खाते हैं । ब्राह्मण बोले :- राजन ! वह शब्दों का अर्थ अभी ठीक नहीं कर जानता है, बच्चा है । जो कभी कभी मांस खाते हैं, वह नरक में जाते हैं और दुख भोगते हैं । जिनकी खुराक ही हमेशा की है, वह राजन् कभी नर्क में नहीं जाएगें । तो आप की तो राजन् खुराक है । आपका जिकर नहीं है । राजा के मन को भाने वाली कथा सुना दी । राजा ने दो मोहर कल की और दो आज की, चार मोहर चढ़ा दी । ब्राह्मण मस्त हो गया ।

(चाणक उपदेश)

पैंडें पग चालै नहीं, होइ रह्या गलियार ।
राम रथि निबहै नहीं, खैवे कौं हुसियार ॥४४॥

टीका :-हे जिज्ञासुओ ! यह मन हरि का जो मार्ग ज्ञान, भक्ति वैराग्य रूप है, उसमें तो चलता नहीं है और विषय वासना रूपी गलियों का प्रेमी बन रहा है । यह मनुष्य देह रूपी रथ, राम के पास ले जाने वाला, इसको निसिद्ध भोगों में टकराकर, नष्ट कर दिया है और भोग वासना को भोगने के लिए हुसियार रहता है, अथवा "कहिबे को हुसियार" - स्वार्थी गुरू, स्वार्थी पंडित परमात्मा की प्राप्ति रूपी मार्ग से गिरे हुये, उपदेश करने को तो बहुत ही दक्ष हैं, परन्तु सत्य के मार्ग को अपनाने में कायर हैं । दुनियां को मिथ्या उपदेश देकर, अपनी रोजी चलाते हैं ।

(पर परमोद)

दादू का परमोधै आन को, आपण बहिया जात ।
औरों कौं अमृत कहै, आपण ही विष खात ॥४५॥

टीका :-हे जिज्ञासुओ ! अैसे स्वार्थी गुरू और पंडित, स्वयं तो संसार के विषय भोगों में अपने जीवन को नष्ट कर दिया है । और दूसरों को ज्ञान का उपदेश करते हैं । खुद तो विष पीते हैं और दूसरों को अमृत

(भक्ति ज्ञान रूपी) पीने का उपदेश देते हैं, ऐसे पुरूषों को इस लोक और परलोक में कलेश ही प्राप्त होता है।

दोहा :- आप कछु करता नहिं, पर को दे उपदेश।
सो बिन करनी कथन है, कोउ न गहत आदेश ॥४५॥

दोहा :- बिन करनी के कथन का, आदर नहिं भव मांहि।
वेश्या यदि पतिव्रत कहै, तिय गण माने नांहि ॥४५॥

दादू पंचौं येह परमोधि ले, इन हि को उपदेश।
यहु मन अपणा हाथि करि, तौ चेला सब देस ॥४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इन पांच ज्ञानेन्द्रियों को अपने विषयों से हटाकर, इस मन को अपने बुद्धि रूप हाथ में ग्रहण करो, फिर सम्पूर्ण संसार के जीव ही शिष्य सेवक हैं।

दादू पंचौं का मुख मूल है, मुख का मनवां होइ।
यहु मन राखै जतन करि, साध कहावै सोइ ॥४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इन पांच ज्ञान इन्द्रियों का मूल कारण मुख कहिए जिह्वा है, क्योंकि योग्य, अयोग्य भोजन की स्थिति में, अन्य इन्द्रियां, सत रज आदिक भिन्न भिन्न धर्मों में प्रवृत्त होती हैं, और जिह्वा का प्रेरक मन है जो इस मन को प्रयत्न द्वारा, बस करते हैं वही आदर्शनीय साधक कहिए संत हैं।

दोहा :- रज्जब रसना तूत तरू, पंच झाड़ का मूल।
एकै सीचैं सब हरे, जुदे जुदे फल फूल ॥४७॥

दादू जब लग मन के दोइ गुण, तब लग निपनां नांहि ।
द्वै गुणमन के मिटि गये, तब निपनां मिलि मांहि ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक मन में राग, द्वेष, हर्ष, शोक, शीत, उष्ण आदिक द्वन्द विद्यमान हैं, तब तक यह मन पवित्र नहीं कहा जाता । जब श्रवण मनन निदिध्यासन से, द्वन्द भाव मिट गया, तो यह मन पवित्र होकर, आतम स्वरूप हो जाता है ।

दोहा :- मन को साधन एक है, निशदिन ब्रह्म विचार ।
सुन्दर ब्रह्म विचार से, ब्रह्म होत तिहि बार ॥४८॥

दोहा :- मन के हारे हार है, मन के जीते जीत ।
मन ही सेती होत है, पार ब्रह्म से प्रीत ॥४८॥

काचा पाका जब लगै, तब लग अतंर होइ ।
काचा पाका दूर करि, दादू एकै सोइ ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक मन में चंचलता रहती है और अस्थिरता है, तब तक जीव ब्रह्म का भेद है । जब यह मन सब गुणों से मुक्त होकर, सहज कहिए निर्द्वन्द स्वभाव, जब मन का हो गया, तब ही यह मन ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ।

(मध्य निरपक्ष)

सहजरूप मन का भया, तब द्वै द्वै मिटी तरंग ।
ताता सीला समि भया, तब दादू एकै अंग ॥५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूर्वोक्त दो दो गुण रूप जब मनकी तरंग मिट जाती है और बाहर के विषयों से जब मन अनासक्त हो जाता है, तब फिर इस मन के द्वैतभाव रूप गुण सब विलय हो जाते हैं । उस समय मुक्त जनों का यह मन ब्रह्मस्वरूप होता है ।

(मन)

दादू बहुरूपी मन जब लगै, तब लग माया रंग ।
जब मन लागा राम सौं, तब दादू एकै अंग ॥५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन नाना प्रकार के मायिक विषय पदार्थों से मिल करके, तद्रूप हो जाता है, मन का यही बहुरूप होना है । जब तक मन बहुरूपिया है, तब तक इस पर माया का ही रंग चढ़ा रहता है, और जब मन केवल ब्रह्म विचार में ही लीन रहता है, तब यह मन ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ।

हीरा मन पर राखिये, तब दूजा चढै न रंग ।
दादू यौं मन थिर भया, अविनासी के संग ॥५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निर्गुण राम का नाम स्मरण रूप हीरा इस मन पर राखिये, फिर माया का रंग (संसारिक विषय) इस पर नहीं व्याप्त होगा । इस प्रकार फिर अविनासी के रंग में रंगा हुआ मन, परब्रह्म के साथ स्थिर हो जाता है ।

सुख दुख सब झांई पड़ै, तब लग काचा मन ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, तब मन भया रत्तन ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब इस मन को सुख और दुःख व्याप्त होता है, यही इस पर झांई पड़ना है, अर्थात् जब तक परिस्थितियों की अनुकूलता और प्रतिकूलता से मन सुख दुःख का अनुभव करता है, तब तक यह मन साधन अवस्था में भी कच्चा है । जब मन में सुख दुःख राग द्वेष आदि का संकल्प मात्र भी नहीं रहै, तब यह मन ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ।

दादू पाका मन डोलै नहीं, निश्चल रहै समाइ ।
काचा मन दह दिसि फिरै, चंचल चहु दिसि जाइ ॥५४॥

टीका :- हे जिज्ञसुओ ! गुरू उपदेश के द्वारा ज्ञान ध्यान की धारणा करके परिपक्व हो गया है जो मन, वह तो संसारिक विषय भोगों में प्रवृत नहीं होता है और अखण्ड वृत्ति से, ब्रह्म चिंतन में ही लीन रहता है । किन्तु जिनका मन संसार की विषय वासनाओं में ही व्याप्त है, सो तो दशों दिशा कहिए दश इन्द्रियां और चतुष्टय अन्तःकरण, इन्हीं में भ्रमता है ।

(विरक्तता)

सीप सुधारस ले रहै, पीवै न खारा नीर ।
मांहै मोति नीपजै, दादू बंद शरीर ॥५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे खार समुद्र में मोती पैदा करने वाली सीपी रहती है । वह स्वांति नक्षत्र की बूंद की प्यासी है, जब स्वांति नक्षत्र बरसता है, तब वह ऊपर आकर अपनी चारों पांखड़ी खोल देती है जितनी स्वांति नक्षत्र की बूंद उसमें पड़ती हैं, फिर अपने मुंह को बन्द कर लेती है, खारा पानी नहीं पीती । और समुद्र में ही रहती है । जिसका फल उसमें मोती पैदा होते हैं । दाराष्टान्त में उत्तम साधक सीपि के स्थान में है । समुद्र के स्थान में संसार समुद्र है । खारा पानी के स्थान में संसार के विषय भोग हैं और मायावी वासना है । जब स्वांति नक्षत्र रूप ब्रह्मनिष्ठ गुरूदेव प्राप्त होवें और उनके मुखारबिन्द से जीव ब्रह्म की एकता का उपदेश रूपी अमृत बरसने लगै, तो उत्तम जिज्ञासु ही सीपि की तरह उस अमृत को कानों के द्वारा अन्तःकरण में ग्रहण करता रहता है । जब वह स्वांति नक्षत्र बरस चुकता है, वैसे ही उन गुरूदेव का जब सतसंग समाप्त हो जाता है, तब वह उत्तम जिज्ञासु चतुष्टय अन्तःकरण को अन्तर्मुख करके, ग्रहस्थ आश्रम रूपी खार समुद्र में ही निवास करता है । परन्तु उस जल से स्नेह नहीं करता । अनासक्त रहता है । उसका फल स्वरूप साक्षात्कार रूप मोती उत्पन्न होते हैं ।

दोहा :- देही अरु दरियाव का, पाणी पीवै नांहि ।
तो मन मोती निपजै, सुरति सीप कै मांहि ॥५५॥

दोहा :- अहि मुख पर्यो सो विष भयो, कदली भयो कपूर ।
सीप पर्यो मोती भयो, संगत के फल सूर ॥५५॥

(मन)

दादू मन पंगुल भया, सब गुण गये बिलाइ ।
है काया नौ जोवनी, मन बूढ़ा व्है जाइ ॥५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरूषों का मन, बहिरंग वासनाओं से और गुण क्रिया आदिकों से, रहित होना ही पंगुल बनना है । तब मन की सतोगुण रजोगुण तमोगुण आदिक सम्पूर्ण वासनाएं विलय हो जाती हैं । ऐसे मुक्त पुरूषों के शरीर की युवा अवस्था भी हो तो क्या ? जैसे :- दत्तात्रय, शुकदेव, अंबरीक, ध्रुव, प्रह्लाद, जनक सनकादिक, दादू दयाल, सुन्दर, रज्जब इत्यादिक महापुरूषों के आख्यान सभी जानते हैं । इन सबका मन माया वासना से रहित होना ही बूढ़ा हो जाना है ।

दादू कछिव अपणे करि लिये, मन इन्द्री निज ठौर ।
नाम निरंजन लागि रहु, प्राणी पर हरि और ॥५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे कछूवा बाहर के भय से, अपने मन इन्द्रियों को भीतर खेंच लेता है, इसी प्रकार साधक पुरूष, अपने पांचों ज्ञान इन्द्रियां और मन को अन्तर्मुख करके, निरन्जन शुद्ध ब्रह्म के चिंतन में लगा रहता है । बाकी सम्पूर्ण बहिरंग साधनों का त्याग कर देता है ।

(जाचक)

मन इन्द्री आंधा किया, घट में लहर उठाइ ।
साँई सतगुरू छाड़ि करि, देखि दिवाना जाइ ॥५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन और पांचो ज्ञानेन्द्रियों ने संसारिक प्राणियों को विचार हीन बना दिये हैं । सत्य, असत्य को नहीं जानते हैं । इस मन ने सांई परमेश्वर का और सतगुरू का उपदेश छोड़कर, अर्थात् भाव भक्ति को भूल कर, विषयों में आसक्त हुआ, दीवाने की भांति, बिना विचार के दौड़ रहा है ।

छन्द :-

काहु को न कह्यौ करै, अपनी ही टेक धरै,
मन सो न कोउ हम, देख्यो दगाबाज है ।
देखवे को दौरे तो, अटकि जाइ वाही ओर,
सुनवे को दौरै तो, रसिक शिरताज है ।
सुंघवे को दौरै तो, अघाइ न सुगंध लेत,
खायवे को दौरै तौ न, धापै महाराज है ।
भोग ही को दौरै तो, तृपत्त नहीं होइ क्यूँ हौ,
सुन्दर कहत याही, नेक ही न लाज है ॥५८॥

दादू कहै राम बिना मन रंक है, जांचै तीनों लोक ।
जब मन लागा राम सौं, तब भागे दालिद्र दोष ॥५९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम के स्मरण बिना, यह मन रंक की भांति है । यह त्रिलोकी में याचना करता रहता है । पाताल लोक में नाग आदि से याचना करता है । मृतलोक में धनी पुरूषों से याचना

करता है। स्वर्ग लोक में देवताओं से याचना करता है सबसे इन्द्रियों के भोग वासनाओं की ही याचना करता है। और जब गुरू उपदेश श्रवण करके, उसकी साधना से वासनाओं का दमन करके, फिर राम में रत्त होकर, राम रूप हो जाता है।

दोहा :- सुन्दर यह मन रंक है, कबहु होत है राव।
कबहु टेढा व्है चलै, कबहु सुधे पांव ॥५९॥

इन्द्री का आधीन मन, जीव जंत सब जांचै।
तिणें तिणें के आगे दादू, तिहूं लोक फिरि नाचै ॥६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! इन्द्रियों के विषयों में लगा हुआ मन, साधारण पुरूष से लेकर, त्रियक योनी के जीव सर्प, भूत, प्रेत, जड़ पीपल वृक्ष, वट वृक्ष इन सबसे इन्द्रियों के भोगों की अर्थात् स्त्री धन पुत्र आदिक की वासना लेकर, उनकी उपासना करता रहता है। इस प्रकार त्रिलोकी में इन्द्रियों की वासना, इसको पुनः पुनः नचाती रहती है।

इंद्री अपणै बसि करै, सौ काहे जाचण जाइ।
दादू स्थिर आतमा, आसण बैठा आइ ॥६१॥

टीका :- हे जज्ञासुओ ! गुरू उपदेश का विचार करके, यह मन इन्द्रियों को अपने काबू में कर लेता है। फिर यह क्यों विषय वासनाओं की याचना करने जाय ? अर्थात् नहीं जाता है। मर अन्तःकरण में स्थिर होकर, आतम स्वरूप हो जाता है।

दोहा :- वलि पास गयो बादशाह, लीनें हाथ समेट।
अरू जयसिंह द्विज सैन दे, जल पथरि सुचि पेट ॥६१॥

दृष्टान्त :- एक बादशाह के वलि नाम का वजीर था। वह बड़ा सच्चा और न्यायकारी था। बादशाह के सामने आकर उसने प्रश्न किया। बादशाह का उस समय मूढ ठीक नहीं था। बलि वहां से हटकर विचार किया कि इससे मैं ज्यादा पढ़ा लिखा और न्याय में निपुण हूं। अब मेरे अन्दर ऐसी कौन सी चीज है, जो मुझे इसका गुलाम बना रही है। तब उसको भान हुआ कि इस वासना ने मुझे इसका गुलाम

बना रखा है। इस वासना का त्याग करके, मैं अपना कल्याण करूंगा। तत्काल ही जंगल में जाकर, निर्जन स्थान में बैठ गया। बादशाह मंत्रियों को साथ लेकर, वलि को ढूढ़ते ढूढ़ते, वहां जा पहुंचे। वलि ने दूर से देखा कि बादशाह आ रहा है। पहले तो मैं इसके पास जाता था, आज निर्वासनिक होते ही यह मेरे पास आया है। उस समय वलि सिद्ध आसन से बैठे हुए थे। दोनों हाथ सीधे थे। अपने हाथों को उठाकर अपनी काखों में दबा लिया और दोनों पांव बादशाह की तरफ फैला दिए। बादशाह ने पूछा :-वलि हमें पांव कब से बतलाए ? वलि :- जब से हाथ समेट लिए, तब से तुम्हें पांव बतलाए। बादशाह वलि के सामने नत् मस्तक हो गया और कहने लगा, अब आप वलि नहीं रहे, बली बन गये हो। यह कहकर बादशाह वापिस चल दिया।

द्वितीय दृष्टांत :- आमेर के राजा जयसिंह थे। उनके पास एक रोज एक ब्राह्मण याचना करने आया। उस समय राजा संध्या कर रहा था। ब्राह्मण को नमस्कार नहीं किया। ब्राह्मण एक पत्थर की कंकरी लेकर, राजा के जल के पात्र में डाल दी। राजा को सैन में समझाया कि तूं बड़ा रामचन्द्र ही आ गया, जो समुद्र पर पुल बांध देगा। जयसिंह समझ गये। राजा ने जल से तीन आचमनी ले ले कर मुंह में डाल ली। ब्राह्मण को समझाया कि तूं बड़ा अगस्ती आ गया है, जो मेरे को समुद्र की तरह पी जाएगा। जब राजा संध्या से उठे, तब ब्राह्मण से यथा योग्य मिले और जिस इच्छा से ब्राह्मण आया था, उसकी इच्छा पूरी करी।

मन मनसा दोन्यौं मिले, तब जीव किया भांड।
पंचौं का फेर्या फिरै, माया नचावै रांड ॥६२॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! मन की विषय वासना ने जीव को, अति दीन बना दिया है। जिस प्रकार भांड, परपुरूषों की स्तुति से निर्वाह करता है, उसी प्रकार यह अज्ञानी जीव, पंच ज्ञान इन्द्रियों की पूर्ति के लिए, मायिक पदार्थों की कामना करता है और इस प्रकार माया रूपी रांड का नचाया नाचता है, अर्थात् विषय वासना में ही रत्त रहता है।

दोहा :- मन इच्छा सब किये सैं, लाज लगत है अन्त।
इबराहीम लज्जित हुए, कहा उन्हें जब संत ॥६२॥

दादू नकटी आगै नकटा नाचै, नकटी ताल बजावै।
नकटी आगै नकटा गावै, नकटी नकटा भावै ॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विषय वासनाओं में रत्त हुई मनसा और नकटा मायावी मन के जो विविध प्रकार के विषय वासनाओं के मनोरथ हैं, सोइ मन का नृत्य करना है और मन की नाना विषय तृष्णा आदि में आसक्ति ही, मानो मनसा रूपी नकटी का ताल बजाना है। विषियों की जो सराहना करनी है, वही मन का गायन करना है। इस प्रकार नकटी मनसा को ऐसा नकटा मन ही प्रिय लगता है।

दोहा :- सुन्दर मनसा भांडनी, मन मिल्यौ अति भांड।
जैसो हि रंडवो मिल्यौ, तैसी मिल गई रांड ॥६३॥

(आन लगन व्यभिचार)

पांचौं इंद्री भूत हैं, मनवां खेतर पाल।
मनसा देवी पूजिये, दादू तीनों काल ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रातःकाल मध्यानकाल, सायंकाल, एवं बाल्यवस्था, यौवनवस्था, वृद्धावस्था, ये सब तीन काल हैं। सारा संसार, इन्द्रिय आदि को भूत प्रेत, मन को भैरव क्षेत्रपाल, मनसा को देवी की तरह पूजते हैं। मनसा और इन्द्रियों के वशीभूत होकर, यह प्राणी परमेश्वर को भूलकर, तीनों कालों में क्षेत्रपाल, देवी भूत आदि की पूजा करते हैं।

जीवत लूटैं जगत सब, मृत्तक लूटैं देव।
दादू कहां पुकारिये, करि करि मूये सेव ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवित अवस्था में तो इस प्राणधारी को, इसके कुटुम्बी लोग मोह में अन्धा करके लूटते हैं। आवश्यक पदार्थ मांगते रहते है। और फिर वही कुटुम्बी मरने के बाद, पित्र बनके लूटते हैं, सेवा कराते हैं, मांगते हैं। सतगुरू महाराज कहते हैं कि इन राम बेमुख संसारिक जीवों की सेवा कर करके, उनके साथ मरे जाते हैं। अब इस मन को कहां तक समझावें ? देव शिव आदिक भी इसको समझा समझा के थक गए हैं, किन्तु यह स्वस्वरूप को नहीं पहचानता है।

छंद :-

बैरी घर मांही तेरे, जानत सनेही मेरे, दारा सुत
वित्त तेरो, खोसि खोसि खांहिगें ।
औरहु कुटम्बी लोग लूटै चहु और हीत्तैं, मीठी मीठी
बात कहि, तौसौं लपटाहिगें ।
संकट परैगो जब कोई नहिं तेरो तब, अंतहि कठिन
वाको बेर उठि जाएगें ।
सुन्दर कहत्त तातें झूठो ही प्रपंच सब, स्वपने की नाईं,
यह देखत बिलाएंगे ॥६५॥

(मन)

अगनि धोम ज्यौं नीकलै, देखत सबै बिलाइ ।
त्यौं मन बिछुट्या राम सौं, दह दिसि बिखरि जाइ ॥६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अग्नि से धूवां निकल कर, देखते देखते ही आकाश में फैल कर नष्ट हो जाता है, वैसे ही यह व्यष्टि मन, समष्टि चेतन्य से अलग होकर, दसों इन्द्रियों के विषयों में व्याप्त हो जाता है । फिर वह ब्रह्म से विमुख हुआ मन, धुवें की भांति, फिर अन्तर्मुख नहीं होता है । इसलिये उत्तम साधक, मन को प्रयत्न द्वारा, विषयों से विरक्त रखते हैं ।

छंद :-

देखै न कुठौर ठौर, कहत और की और, लीन जाइ
होत हाड़ मांस रू रकत में ।
करत्त बुराइ सब, औसर न जाने कछु, धक्का आई
देत राम नाम सूं लगत में ।

बहाये सुरा सुर, बहाये सब भोगीजन, सुन्दर कहत
दिन घालत भगत में ।
और हु अनेक अंतराई ही करत रहै, मन सो न
कोऊ है अधम या जगत में ॥६६॥

घर छाडें जब का गया, मन बहुरि न आया ।
दादू अगनि के धूम ज्यौं, खुर खोज न पाया ॥६७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी जीवों का मन, परमेश्वर की भक्ति एवं स्वस्वरूप से विमुख होकर, जब विषय विकारों में आसक्त होता है, तब फिर स्वस्वरूप में सलग्न नहीं होता है, अथवा घर स्वरूप जो देह अध्यास और माया प्रपंच है, तिनको त्यागकर, जब ब्रह्मवेत्ता पुरूषों का पवित्र मन, स्वस्वरूप में लीन होकर, देह अध्यास से मुक्त हो जाता है, तो फिर माया प्रपंच में आसक्त नहीं होता है :

सब काहु के होत हैं, तन मन पसरें जाइ ।
अैसा कोई एक है, उलटा मांहि समाइ ॥६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब ही ईश्वर विमुखी संसारी पुरूषों के, तन मन इन्द्रिय विषय विकारों में आसक्त रहते हैं । परन्तु ऐसे पुरूष तो कोई बिरले ही हैं, जो अपने तन मन इन्द्रियों को, अक्रिय बनाकर, ब्रह्म विचार में सलग्न रहते हैं ।

क्यों करि उलटा आणियें, पसरि गया मन फेरि ।
दादू डोरी सहज की, यौं आणै घर फेरि ॥६९॥

टीका :- हे सतगुरू ! यह मन पुनः पुनः विषय वासनाओं में ही सलग्न होता रहता है । आप कृपा करके, इस मन को अन्तर्मुख लाने का साधन बताइये ?

हे जिज्ञासुओ ! निर्द्वन्द्व विचाररूपी डोरी अथवा सतगुरूओं का ज्ञानोपदेश रूपी डोरी, उससे इस विषियासक्त मन को बांधो । इस प्रकार अपने अन्तःकरण रूपी घर में, बहिर्मुख से अन्तर्मुख घेर कर लाओ, और स्वस्वरूप में लगाओ ।

दादू साध सबद सौं मिलि रहै, मन राखै बिलमाइ ।
साध सबद बिन क्यों रहै, तब ही बीखर जाइ ॥७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मन को सतगुरू और सतपुरूषों के शब्दों में लगाओ । उनके विचार में तल्लीन करो । हे मुमुक्षओ ! गुरू उपदेश और संत उपदेश के बिचार बिना, कोटि उपाय करने से भी, मन स्थिर नहीं होगा और संसार की ओर ही दौड़ता रहेगा ।

दोहा :- रज्जब रह कपूर मन, मिरच सु शब्दों मांहि ।
नहीं तो डावां डोल है, ढूँढयौ लहिये नांहि ॥७०॥

जैसे कपूर काली मिर्चों में रुका रहता है, ऐसे ही गुरू और संतों के शब्द काली मिरच रूप हैं, कपूर रूप मन को रोकने के लिए ।

दोहा :- चंचल चपल मदन बस नारी, नग परखत अवस्था गुजारी ।
यूँ जो साध शब्द मन लावै, पति परमेश्वर सहजै पावै ॥७०॥

दृष्टान्त :- एक जौहरी का लड़का था । उसकी स्त्री पतिव्रता थी । स्त्री बोली :- आप विदेश जाते हो । आपके बिना मैं किस प्रकार रहूंगी ? आपके बिना मेरा मन कैसे लगेगा ? जौहरी के लड़के ने दो आंदले जवाहरात के भर कर, उसको दे दिये । इन नगों की परीक्षा में तुम अपने मन को लगाये रखना । कुछ समय के बाद मैं आ ही जाऊंगा । दाराष्टान्त में साधक को गुरूदेव ने उपदेश किया कि शास्त्रों के शब्दों में, संतों की बाणी रूप शब्दों में, अपने मन को लगाओ । इस प्रकार तुम सहज में ही पति परमेश्वर को प्राप्त कर लोगे ।

चंचल चहु दिसि जात है, गुरू बाइक सौं बन्ध ।
दादू संगति साध की, पारब्रह्म सौं संध ॥७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन बड़ा चंचल है । अन्तःकरण की चारों वृत्तियों द्वारा चारों अवस्थाओं (बाल किशोर युवा वृद्ध) में संसार की ओर दौड़ता है । ऐसे मन को, गुरू के महावाक्य रूपी उपदेश से बांधो और फिर सच्चे संत पुरुष हैं, उनके सतसंग द्वारा परब्रह्म के स्वरूप में अभेद करो ।

छन्द :-

रंक कूँ नचावै, अभिलासा धन पायबे की,
निसदिन सोच करि, ऐसे ही पचत है ।
राजाहि नचावै सब, भूमि ही को राज लेउ,
और हु नचावै कोई, देह सूं रचत है ।
देवता असुर नाग, पन्नग सकल लोक,
कीट पशु पक्षी कहु, कैसे के बचत है ।
सुन्दर कहत काहू संत की कही न जाय,
मन के नचाये सब, जगत नचत है ॥७१॥

एक निरंजन नाम सौं, कै साधु संगति मांहि,
दादू मन बिलमाइये, दूजा कोई नांहि ॥७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निराकार निरंजन प्रभु का स्मरण और साधु पुरूषों की सतसंगती, मन को सम करने के ये दो ही साधन हैं । इसलिए प्रभु भक्ति और सतसंगति में हो, मन को एकाग्र करिये ।

तन मै मन आवै नहीं, निसदिन बाहरी जाइ ।
दादू मेंरा जीव दुखीं, रहै नहीं ल्यौ लाइ ॥७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो यह मन है, सो अन्तर्मुखो नहीं होता है, और विबियों में ही रत्त हो रहा है । प्रभु स्मरण में लय नहीं लगाता है, इसी से हमारा चित्त अति दुखी है ।

तन मै मन आवै नहीं, चंचल चहुं दिसि जाइ ।
दादू मेरा जीव दुखी, रहै नहीं राम समाइ ॥७४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह मन स्वरूपाकार नहीं होता है, और विषयों में ही भ्रमता रहता है । तीन लोक

और चौदह भवन के सम्पूर्ण मायिक पदार्थों में आसक्त हो रहा है। इसी से परमेश्वर के भक्त इस मन से दुखी रहते हैं क्योंकि यह राम में समा कर नहीं रहता।

छंद :-

इंद्रीन के सुख चाहत है मन, लालच लागि भ्रमै सठ यूंही ।
देखि मरीच भर्‌यों जल पूरन, धावत है मृग मूरख ज्यूं ही ।
प्रेत पिशाच निशाचर डोलत, भूख मरै नहि धापत क्यूं ही ।
वायु बभूरहि कौन गहै कर, सुन्दर दोरत है मन त्यूं ही ॥७४॥

कोटि जतन करि करि मुये, यहु मन दह दिशि जाइ ।
राम नाम रोक्या रहै, नांही आन उपाइ ॥७५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का निष्काम स्मरण छोड़ कर, संसारीजन अनेक बहिरंग साधनों में लगे रहते हैं, परन्तु उनसे मन एकाग्र नहीं होता, क्योंकि सकाम कर्म करते हैं। अथवा साधक पुरूष कहते हैं कि हे गुरूदेव ! इस मन को रोकने के लिए, हमने बहिरंग प्रयत्न बहुत किये और प्रयत्न करते करते शरीर कृष हो गया। उत्तर :- हे साधक ! इस मन को निग्रह करने के लिये, एक राम नाम का स्मरण ही उत्तम साधन है। अन्य नहीं है।

यहु मन बहु बकबाद सौं, बाइ भूत व्है जाइ ।
दादू बहुत न बोलिये, सहजैं रहै समाइ ॥७६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन ज्यादा बाकचालता से, जैसे :- सुन्यपात का रोगी, वात प्रकोप दोष से संज्ञाविहीन हो जाता है अर्थात् कुछ का कुल बोलने लगता है, वैसे ही बहुत ज्यादा बहिरंग वार्ता नहीं बोलना। तो यह मन फिर स्वभाव से ही, राम नाम के स्मरण में समाय रहेगा।

(स्मरण नाम चितावणी)

भूला भौंदू फेरि मन, मूरख मुग्ध गंवार ।
सुमिर सनेही आपणा, आत्तम का आधार ॥७७॥

टीका :- आत्म बोध के लिये, सतगुरू जिज्ञासु को नाना उत्तेजक सम्बोधनों से सम्बोधित करते हैं, हे भूला ! हे भौंदू ! हे मूर्ख ! हे माया आसक्त ! हे गंवार ! हें विषियों के यार ! इस मन को बाह्य विषियों से उलट करके, अपने परम स्नेही परमेश्वर का, अन्तःकरण में स्मरण करिये । क्योंकि आत्म कल्याण का, यही एक मुख्य साधन है ।

छन्द :-

कहूं भूल्यो काम रत्त, कहूं भूल्यो साध जत्त,
कहूं भूल्यो ग्रह मध्ये, कहूं बनि वासी है ।
कहूं भूल्यो नीच मान, कहूं भूल्यो ऊंचमान,
कहूं भूल्यो मोह बान्द, कहुं तो उदासी है ।
कहूं भूल्यो मोन धरि, कहूं बकवाद करि,
कहूं भूल्यो मक्का जाय, कहूं भूल्यो कासी है ।
सुन्दर कहत, अहंकार हिते भूल्यो आप,
एक आवै रोन और दूजे आवै हांसी है ।

मन माणिक मुरिख राखि रे, जण जण हाथ न देहु ।
दादू पारिख जौहरी, राम साध दोइ लेहु ॥७८

टीका :- हे जिज्ञासु ! इस मायिक रूप मन की विषय वासनाओं से रक्षा कर । हे मूरख ! वासनारूप हाथों में इस मनरूपी माणिक को मत दे । राम और साधु दो ही, इस माणिक की परीक्षा करने वाले हैं । अथवा तत्ववेत्ता संत कहते हैं कि यह मनरूपी माणिक को, राम कै अपर्ण करके, राम को ले ले । ऐसी इस मन की कीमत है ।

दादू मार्यां बिन मानै नहीं, यहु मन हरि की आन ।
ज्ञान खड्ग गुरूदेव का, ता संगि सदा सुजान ॥७९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मन को विषय वासनाओं से रहित करो, क्योंकि यह गर्भवास में जो ईश्वर से कौल किया था, उसको भूल रहा है । हे सुजान ! गुरूदेव का जो तत्वज्ञान रूप खड्ग है, उससे इसको मार । इसकी वासनाओं का क्षय कर । आजीवन पर्यन्त, यह साधना करता रहै ।

दोहा :- आया नर संसार में, कर साहिब से कौल ।
पवन लगत ही बिसर्या, हरि बोलो हरि बोल ॥७९॥

(मन)

मन मृगा मारै सदा, ताका मीठा मांस ।
दादू खाइबे कौं हिल्या, ताथैं आन उदास ॥८०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मनरूपी मृग को मार कर, कहिए निर्वासनिक करके, इसकी एकाग्रता रूपी मांस को खाओ । एकाग्रता में जो आनन्द आता है, उस मांस को जब तुम खाने लगोगे, तो फिर दूसरे जीवों के शरीररूपी मांस से तुम उदास हो जाओगे । इस साखी से परमगुरू ने किसी मांसाहारी को उपदेश किया है । वह इस उपदेश को सुनकर, नतमस्तक हो गया और जीव हिंसा का त्याग कर दिया ।

कह्या हमारा मान मन, पापी पर हरि काम ।
बिसिया का संग छाड़ि दे, दादू कहि रे राम ॥८१॥

टीका :- हे हमारे मन ! अब तूं हमारे इस कहने को मान ले । हे पापी ! कामवृत्ति को त्याग दे । (काम कहने से काम के साथ क्रोध, लोभ और मोह का भी ग्रहण है ।) और "विसिया" नाम स्त्री में, स्त्री भावना से मुक्त होकर, राम का स्मरण कर । जिससे तेरा कल्याण हो ।

दोहा :- काम काल गरजै सदा, काया नगरी मांहि ।
रज्जब हारे देवता, सुर नर छूटे नांहि ॥८१॥

केत्ता कहि समझाइया, मानै नहीं निलज्ज ।
मूरख मन समझै नहीं, कीये काज अकज्ज ॥८२॥

टीका :- हे मन्द बुद्धि ! तुझे विविध प्रकार से सत्य और असत्य का स्वरूप, उपदेश द्वारा बताया है। परन्तु हे मूर्ख ! परमेश्वर की मर्यादा और सतगुरु के उपदेश को त्यागकर, तैंने अपने आप को प्रिय लगने वाले काम किये हैं। इस प्रकार यह तेरा नर तन वृथा ही जा रहा है।

छन्द :-

कौन स्वभाव पर्यो उठि दौरत, अमृत छाढ चचौरत हाढैं।
ज्यूं भ्रम की हथनी द्रग देखत, आतुर होइ परैं गज खाडैं।
बाद ब्रथा भटकै निशि बासुर, ऐकहु सीख लगी नहीं राडैं।
सुन्दर तोहि सदा समुझावत, रे मन तूं भ्रमवों किन छाडैं ॥८२॥

(सांच)

मन ही मंजन कीजिये, दादू दरपण देह।
मांहै मूरति देखिये, इहिं औसरि करि लेंह ॥८३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वच्छ कांच की भांति, विषय विकार आदि कुसंस्कारों को त्याग। और मन को निर्मल करिये। चोरी जारी, हिंसा आदि त्याकर, शरीर को पवित्र करिये। इससे और उत्तम फल क्या होगा ? जिस प्रकार कलईदार शीशें में, स्वस्वरूप का प्रतिबिम्ब साफ दिखाई देता है, उसी प्रकार अपने पवित्र अन्तःकरण में, परमात्मा के साक्षात्कार का अपूर्व लाभ होता है। इस प्रकार हे जिज्ञासुओ ! यह मनुष्य का शरीर और सतसंग का जो अपूर्व संयोग है, यही तो अमूल्य समय है। इसको प्राप्त करके, आत्म साक्षात्कार करके, इसको सफल बनाईये।

(आन लगन व्यभिचार)

तब ही कारा होत है, हरि बिन चितवत आन।
क्या कहिये समझै नहीं, दादू सिखवत ज्ञान ॥८४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस क्षण में यह मन, हरि की भक्ति बिना, अन्य विषय वासनाओं का, एवं देवी देवताओं की आराधना करते ही, अथवा अन्य साधन आदि क्रियाओं में प्रवृत होते ही 'कारा' नाम

मलिन, ईश्वर विमुख हो जाता है। क्या किया जाये, इस मन्द बुद्धि का ? जो ज्ञान कर्त्तव्या कर्त्तव्य को जानते हुए भी, समझता नहीं है। सतगुरू की आज्ञा का पालन नहीं करता है।

(सांच)

दादू पाणी धोवै बावरे, मन का मैल न जाइ।
मन निरमल तब होइगा, जब हरि के गुण गाइ ॥८५॥

टीका:- हे जिज्ञासु ! इस स्थूल शरीर को तीर्थ व्रत आदि में धोने से यह देह और मन, विषय विकारों से निर्मल नहीं होगें। किन्तु जब प्रभु का प्रेम से गुण गान करेगा, तब यह मन विषय वासनाओं से रहित होकर, अन्मर्मुख रहेगा।

दादू ध्यान धरे क्या होत है, जो मन नहीं निरमल होइ।
तो बग सब ही उधरै, जे इहि विधि सीझै कोइ ॥८६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सकाम भावना से परमेश्वर का ध्यान करने से क्या उद्धार होता है ? जब तक अपना मन पापों से शुद्ध नहीं होता, तब तक वह ध्यान तो ऐसा है जैसे कि बगुले, मछली का ध्यान करते हैं। ऐसे ध्य.न से उनका भी उद्धार होना चाहिए, सो होता नहीं ? ऐसे बगुल ध्यानियों का उद्धार नहीं होता है। वह तो दोजक में ही जाते हैं।

दोहा :- च्यार ठगारे भेख धरि, गांव खिनायो एक।
सेठ लेई केसो कह्यो, धनक बणक जा नेक ॥८६॥

दृष्टान्त :- चार ठगों ने विचार किया कि अमुख शहर ने चलें और धन प्राप्ति का साधन करें। एक को कहा तूं साधु बन जा और अमुख सेठ के बगीचे में बैठ जा। जब तक हम लोग नहीं आवें, तब तक आंखें नहीं खोलना। उन तीनों ने साहूकारों का रूप बनाया और बड़े बड़े सेठों की दुकान पर जा जाकर बोलने लगे :- कि एक त्रिकालदर्शी महात्मा आपके शहर में ठहरे हुए बताए हैं। हम लोग उन्हीं की खोज में घूम रहे हैं। आप लोगों ने उनका कहीं बाग बगीचों में दर्शन किया हो, तो बतलाओ ? वे बड़े भारी परचै सिद्ध महापुरूष हैं। उनके एक एक गुण का वर्णन हम नहीं कर सकते। अनेकों काम हमारे सिद्ध कर दिये। सेठ लोग बोलने लगे कि आप लोग उनको ढूंढो, अगर वे मिल जावें, तो हमें भी जरूर दर्शन कराना ? कहा :- सेठ जी हम ढूंढते हैं, यदि मिल गए तो आप लोगों को जरूर दर्शन करायेगें। ऐसे वैसे लंगोटिया तो बहुत फिरते हैं, उनसे क्या होता है ? इधर उधर बगीचों में घूम घाम कर, सेठों की दुकानों

पर वापिस आये । और दो, चार लखपतियों को साथ में लिया । उनको देखकर साधारण लोग भी साथ हो गये । वह सबको लेकर, ध्यानी के पास चले जा रहे थे । दूर से उस ध्यानी ने देखा और संकेत करके बोला:- केसो ! केसो ! (कैसे क लाया है ! कैसे क लाया है !) तब संकेत करके ठग बोले :- धनसधारी ! धनसधारी ! (लखपति हैं ! लखपति हैं!) जो ठगों के साथ में दर्शन दर्शन करने वाले, यात्री थे, उन्होंने सोचा, कि देखो, वह महात्मा सामने बैठे हैं, वे भी भगवान के 'केसो' नाम का स्मरण किया और ये तीनों सेठ इनके शिष्य भी, 'धनुषधारी' भगवान के नाम का स्मरण किया है ! हम लोग भी करें । तब वे सब लोग बोले :- जाणराय ! जाणराय ! जाणराय ! वह ठग जो साधु बना बैठा था, यह सुनकर घबरा गया और उठ कर भागा । यात्री लोग सभी उसके पीछे भागे और कहते गये :- जानराय ! जानराय ! कुछ दूर के बाद वह तीनों ठग, जो सेठ रूप में थे, बोले :- अब तो भाई, वह महात्मा तो रम गये । देखो ! आपका कभी भाग्य होगा तो दर्शन करावैगें ! अब तो हम भी उनके पीछे जा रहे हैं । सब लोग गांव में चले आये । आगे वे चारों ठग जब मिले, आपस में कहने लगे, मूर्ख ! हम तो लखपतियों को साथ लेकर आये थे, तेरे को पूजाने के लिये । बोला :- मैंने तो यह समझा कि वह लोग हमारी पोल जान गये, इसलिए मैं भाग आया । ऐसे बगुल ध्यानियों का कल्याण नहीं होता है ।

दोहा :- राम लक्ष्मण पंपा गये, बग मछली संवाद ।
मीनि गल गरगनों फस्यौ, मूसा खाये स्वाद ॥८६॥

श्लोक :- नरै मुच्यती पादानं, जीवानां अनुकंपया ।
यस्य लक्ष्मण पंपा याम, बको हि परम धार्मिकम् ॥

दृष्टान्त :- भगवान श्रीराम और लक्ष्मण जी जब पम्पा सरोवर के नजदीक पहुंचे, तो सरोवर के किनारे एक बगुले को, एक टांग से ध्यान करते देखा । भगवान राम, लक्ष्मण जी से बोले :- हे तात् ! यह बगुला बड़ा धार्मिक है, धीरे धीरे सरोवर के किनारे जाकर ध्यान में स्थित हो गया है । ऐसे पांव रखता है कि मेरे पांव के खुड़के से, सरोवर के जीवों को तकलीफ न पहुंचे । तब भगवान की यह बात, उस सरोवर में मछली ने सुना और मछली बोली :-

दोहा :- सैबासी जानै सबै, नहीं जानै अनुबास ।
कैसे हरि महिमा करूं, कीनों मम कुल नाश ॥

हे हरि ! जो जिसके पड़ोस में बसता है, वह उसके सब चरित्र जानता है । आप तो इस बगुले की महीमा करते हो, परन्तु में कैसे करूं ? यह ऐसे ध्यान धर धरके, मेरे सारे कुटम्ब को खा लिया, अब मुझे

भी खाना चाहता है। भगवान राम मछली के यह शब्द सुनकर, बगुल ध्यानियों को "धिक्कार! धिक्कार!" कहने लगे।

दादू ध्यान धरै क्या होत है, जे मन का मैल न जाइ।
बग मीनी का ध्यान धरि, पसू बिचारे खाइ ॥८७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! भीतर कपट रखकर, ध्यान धरने से क्या होता है? जो मन के पाप नष्ट नहीं हुए, तो ऐसे ध्यानी तो, बगुले जैसे मछलो का ध्यान करते हैं, और मीनी (बिल्ली) चूहों का ध्यान धरती है, बिचारे गरीब जन्तुओं को बगुला और बिल्ली खा लेते हैं। ऐसे ही कपटी ध्यानी, अपने इन्द्रियों के भोगों को भोगते हैं।

दोहा :- सुवा चकोर मिल मीनी पै, गये करावन न्याव।
ध्यान खोल नेड़े लीयें, खाये करि करि घाव ॥८७॥

दृष्टान्त :- एक तोता और दूसरा चकोर, इन दोनों में परस्पर बात हुई कि—"चकोर बोला तूं भारी है।" तोता बोला "तूं भारी है"। तब दोनों मिल कर वहां गए, जहां एक बिल्ली आंखें मीच कर बैठी हुई थी। जाकर नमस्कार किया और देखा ये महात्मा हैं। बोले :- महाराज! हमारा फैसला कर दो। उपरोक्त वृत्तान्त बिल्ली महातमा को सब सुना दिया। बिल्ली ने एक कपट की तराजू ले रखी थी। बोली :- एक इस पलड़े में बैठो और दूसरा दूसरे पलड़े में बैठो। जब तुलना की तो, जिधर पलड़े में भारीपन था, उसको पकड़कर, एक बुटकी खा लिया। फिर उधर दूसरा पलड़ा भारी हो गया। उसको फिर एक बुटकी तोड़कर खा लिया। कभी इधर वाले को खा ले, कभी उधर वाले को खा ले, ऐसे दोनों को खत्म कर दिया। वह दोनों अपनी जान से हाथ धो बैठे।

ऐसे बगुल ध्यानियों के पंजे में कोई नहीं फंसना।

दूसरा दृष्टांत :- मीनिगल गरगनों फस्यौ, मूसा खाये स्वाद०।

जंगल में एक जगह एक हजार चूहे रहा करते थे। एक बिल्ली हिल गई। एक दो चूहे रोज मार कर खा ले। एक रोज एक चूहे की पूंछ पकड़ ली। वह पूंछ टूट गई। चूहा दौड़कर बिल में घुस गया। सम्पूर्ण चूहों की पंचायत हुई। बांडा बोला :- हम लोग कितने यहां रहते हैं? दूसरा चूहा बोला :- हमारा परिवार एक हजार है। बांडा बोला :- गणना करो। नौ सो ही आ ठहरे। सब ने चिंता की, कि सौ कहां

गए ? बांडा बोला :- हमारे सबके पीछे काल लग रहा है। अपना पूर्वोक्त वृत्तान्त सुना दिया। सारे चूहे मिल कर कहने लगे :- आप हमारे प्रधान हो। हम आपकी आज्ञा में सब चलेंगे। तब बांडे राव बिल से जरा सी खोपरी बाहर निकाल कर, इधर उधर देख लें। बिल्ली न दिखाई दे, तब बोलें :- सब बाहर आ जाओ। चुग्गा पानी करने लगें। बांडेराव भी चुगते रहैं, और बिल्ली को देखते रहैं। जब दूर से बिल्ली दिखलाई पड़ै तो बोलैं :- "सब अन्दर चले जाओ।" बिल्ली घूम घाम कर लोट जावै। बिल्ली ने सोचा :- यह बांडा जो है, इसने सबको बरगला दिया है। एक रोज बिल्ली ने किसी छोटे मुंह वाली घी की हांडी में अपना मुंह जोर लगा कर डाल दिया। इधर उधर सिर घुमाने लगी। हांडी फूट गई। गरगना बिल्ली के गले में रह गया। बिल्ली ने विचार किया कि आज युक्ति लगाऊं। दौड कर चूहों वाले जंगल में आ बैठी और बोली :-

रै मूसे मूसन के राव, इस बिल सै तूं इस बिल आव।
कात पींद भरवा द्यू सोड़, बैठे करो हथाई जोड़॥

हे मूसे! हे मूसों के राजा! तूं इस बिल से इस बिल में आजा (तो बीच में पकड़ लूंगी, यह भाव है)। सर्दी का समय है, तुझे एक सोड़ बनवा दूं, जो ओढ़ कर मूसों में पंचायत किया कर। और अब मैं केदारनाथ तीर्थ करके आई हूं। मूसे खाना मैंने छोड़ दिया। यह देख, केदार कंगन पहन लिया है, और अब मैं तपस्या करती हूं। बांडेराव बोले :-

श्लोक :- कंठे केदार कंकणं, दूरी ध्यान तपेश्वरी।
सहस्त्र मध्ये सतं नासति, बांडा प्रधान दृष्यति॥

हे रांड! तेरे केदार कंगण को मैं जानता हूं, तेरी तपस्या और कपट भरे ध्यान को भी मैं जानता हूं। ऐसे ध्यान धर धरके, तैने हमारे हजार में से सौ खा लिये, अब बांडा न तो तेरे चक्कर में आएगा और न किसी को आने देगा। बांडा बोला :-

दोहा :- बांदी रांड बांदी की जाई, खुरचन चोर पराई खाई।
अपणे पून उघाड़ी डोलै, हमनै सोड़ कहां से द्यौलै॥

(अपणे पून उघाडी डोलै :- अपने आप को तो ढक ले)

ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि कपट के ध्यान से कल्याण नहीं होता है। वह तो बगुले और बिल्ली की श्रेणी के ध्यानी हैं।

दादू काले थैं धोला भया, दिल दरिया में धोइ ।
मालिक सेति मिलि रह्या, सहजैं निरमल होइ ॥८८॥

टीका :- हे जिज्ञसुओ ! पापों से काला हुआ मन, अन्तःकरण रूपी दरियाव में, परमेश्वर का निष्काम नाम स्मरणरूपी जल से, इस मन को धोवै, तो यह उज्जवल पाप रहित हो जाता है । और फिर सहज में ही मायिक विकारों से निर्मल होकर, 'मालिक' कहिए— अधिष्ठान चेतन्य ब्रह्मरूप में अभेद होता है ।

दादू जीसका दर्पण ऊजला, सो दरसन देखै मांहि ।
जिस की मैली आरसी, सो मुख देखै नांहि ॥८९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसका अन्तःकरण रूप दर्पण 'उज्जला कहिए—निर्वासनिक, निर्विकार निर्लेप हो गया है, वह पुरुष अपने अन्तःकरण में ही स्वस्वरूप आत्मा को साक्षात्कार, अपरोक्ष करता है । और जिसका अन्तःकरण रूपी दर्पण असम्भावना, विपरीत भावना, मायिक आवर्ण से आवृत है, वह परमेश्वर का साक्षात्कार नहीं कर पाता ।

दादू निर्मल शुद्ध मन, हरि रंग रात्ता होइ ।
दादू कंचन कर लिया, काच कहै नहीं कोइ ॥९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरुषों का मन, माया के गुण विकारों से रहित हुआ शुद्ध मन, परमेश्वर की भक्ति वैराग्य ज्ञान में रत्त रहता है । फिर उस मन पर मायिक विकारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है । वह फिर ब्रह्मस्वरूप होता है ।

यहु मन अपना थिर नहीं, करि नहीं जाणै कोइ ।
दादू निर्मल देव की, सेवा क्यों कर होइ ॥९१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक जन इस मन को स्थिर तो कर नहीं जानते । मन स्थिर तो निष्काम कर्म, निष्काम धर्म, निष्काम योग आदि साधनों से होता है । संसारीजन सकाम कर्मों में लगकर, अनेक प्रकार के देवी, देव, भैरू, भूत आदि की उपासना करते है, वह लोग उस शुद्ध, माया आदि मल रहित, दिव्यस्वरूप निरंजन देव की, आराधना नाम भक्ति, "क्यों कर होइ"—उनसे कैसे हो सकती है ?

दादू यहु मन तिनों लोक में, अरस परस सब होइ ।
देही की रक्षा करै, हम जिनि भीटै कोइ ॥९२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीरधारी संसारिक जन, शरीर की पवित्रता और आचार विचार का नाना प्रकार से विचार करके, लोक व्यवहार में छूआ छूत का भाव दर्शाते हैं । अर्थात् आडम्बर करते हैं । परन्तु यह मन त्रिलोकी में अच्छे बुरे नीचे ऊंचे, सभी पदार्थों के साथ ओत प्रोत होकर, बर्ताव करता है । इस मन की स्थिति पर कोई संसारीजन ध्यान नहीं देते, बलिक शास्त्रों का अध्ययन करने वाले पंडित भी, इस मन को निसिद्ध वासनाओं से निग्रह नहीं कर पाते ।

दोहा :- आसा तृष्णा चूहड़ि, काम क्रोध चांडाल ।
इन ऊपरि चोको फिरै, तो सांचो आचार ॥९२॥

दादू देह जतन करि राखिये, मन राख्या नहीं जाइ ।
उत्तम मधम बासना, भला बुरा सब खाइ ॥९३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक लोग शरीर को, अनेक साधनों की कसौटी दे देकर, कस लेते हैं, परन्तु मन को काबू में नहीं कर पाते । मन तो भला बुरा, उत्तम मध्यम सभी पदार्थों को, संकल्पों के द्वारा, भोगता रहता है । इसलिए शरीर की अपेक्षा, मन को ही बस में करके रखना चाहये । यह मन ही मनुष्य से अनर्थ करा देता है ।

दोहा :- सूरसैन पूजा करै, पीपै पूछी आइ ।
जीन करावत मूढ़ तहां, मोचिन के घर जाइ ॥९३॥

दृष्टान्त :- रायसिंह टोडा के राजा सूरसैन थे । उन्होंने पीपा जी महाराज से उपदेश ग्रहण किया था । बहिरंग लोगों के कहने से, गुरूदेव पीपा जी महाराज में, उसने श्रद्धा कम कर ली । पीपा जी महाराज ने विचार किया कि यह गुरू में अश्रद्धा करके, नरक में जाएगा । इसलिये, इसको उपदेश करना चाहिए । यह विचार कर महाराज राजभवन में आये । द्वारपाल महाराज से बोला :- कि राजा साहब की आज्ञा है कि कोई भी हमारी आज्ञा के बिना, अंदर न आने पावै । महाराज बोले :- जाओ, उससे कह दो कि गुरू महाराज आये हैं । सूरसैन बोले :- बोल दो, अभी भगवान की पूजा कर रहे हैं । ठहरो । द्वारपाल आकर बोला :- राजा जी भगवान की पूजा कर रहे हैं, आप ठहरो । उस समय पीपाजी महाराज अन्तर्वृत्ति होकर, सूरसैन के मन को देखा कि चमारों के यहां घोड़े की जीन सिलाने का विचार कर रहा है । उस

समय राजा हाथों से तो भगवान की पूजा कर रहा था और मन में यह संकल्प करता था कि मेरे घोड़े की जीन फट गई । अभी पूजा के बाद मोची को बुलाकर जीन ठीक कराऊंगा । तब पीपा जी महाराज ने बाहर से आवाज दी । मूर्ख ! क्या पूजा करता है, मन तो चमारों के यहां जीन तोबरे सीला रहा है ? यह सुनते ही राजा पूजा छोड़कर दौड़ा । पीपा जी महाराज के चरणों में नमस्कार किया और अपना अपराध क्षमा कराया । यही ब्रह्मऋषि सतगुरू कहते हैं कि "देह जतन करि राखिये, मन राख्या नहीं जाइ ०"- संसारिक पुरूषों से ।

दादू हाडौ मुख भर्‌या, चाम रह्या लपटाइ ।
मांहै जिभ्या मांस की, ताही सेती खाइ ॥९४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हाड़ चाम मांस आदि के बने हुए, इस शरीर की निर्मलता, नाना आचार से, और बहिरंग विचार से सम्भव नहीं हैं क्योंकि विचार कर देखें तो भान होता है कि यह बना हुआ ही ऐसी चीज का है और इसके अन्दर है भी, वही मलीन चीजें । स्त्री के मलीन रज का यह पिंड बना है, फिर नाक में बलगम भरी है, मुख में हाड भरे हैं । मांस की जिह्वा का टुकड़ा लगा है । पवित्र से भी पवित्र पदार्थों को मुंह ग्रहण करके, गन्दे बना देता है । ऐसे शरीर को पवित्रता, लौकिक उपाय से होना तो असम्भव ही है ।

दादू नऊं दुवारे नरक के, निसदिन बहै बलाइ ।
सुचि कहां लौं कीजिये, राम सुमरि गुण गाइ ॥९५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विचार कर देखैं तो, यह शरीर पवित्र है कहां ? इसमें नरक की नौ नदियां, हर समय बहती रहती हैं । (नौ नदियां = दो आंख, दो कान, दो नासिका, एक मुंह, एक गुदा और एक उपस्थ इन्द्रिय) इनमें नरक ही बह रहा है । यह तो शरीर क्या ?, एक नरक का द्वार है । इसको कहां तक पवित्र बनाओगे ? समय समय पर ही, इसको शुद्धि ठीक रहती है । इसी के आचार में लगे रहोगे, तो राम से विमुख ही बनोगे । इसलिए यह शरीर तभी पवित्र होगा, जब राम नाम का स्मरण, प्रेम पूर्वक किया जायेगा । इसलिए प्रभु के गुण गाओ ।

प्राणी तन मन मिलि रह्या, इंद्री सकल बिकार ।
दादू ब्रह्मा सुद्र धरि, कहां रहै आचार ॥९६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे ब्राह्मण शुद्र के घर में जाकर, व्यवहारिक निर्मलता चाहे, तो सम्भव नहीं है । क्योंकि शुद्र के घर में चाम आदि का ही व्यवसाय है, इसी प्रकार मानो यह शरीर ही शुद्र घर है,

जिसमें ब्रह्म स्वरूपो आतमा प्रगट होकर के, और बाहिर की पवित्रता चाहे तो, सर्वथा असम्भव है। तन मन की निर्मलता तब ही जानिये, जब कि यह मय अक्रिय और निर्विषय सहज स्वभाव होकर, स्वस्वरूप में स्थिर होवै।

(मन की चपलता)

दादू जीवै पलक में, मरतां कल्प बिहाइ।
दादू यहु मन मसकरा, जिनि कोइ पतियाइ ॥९७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन एक पलक में विषयों का संग करके, चंचल हो जाता है और इसको विषयों की तरफ से, मारने में— नाम हटाने में, कल्प के कल्प बीत जाते हैं। यह मन मखोल करने वाले मखोली की तरह है। इसका किसी को भी विश्वास नहीं करना चाहिए, कि यह मन हमारे काबू में हो गया है।

दोहा :- मन मृतक को देखि करि, मति आनै विश्वास।
साधु तब लग डर करै, जब लग पिंजर श्वांस ॥९८॥

दादू मूवा मन हम जीवत देख्या, जैसें मड़हट भूत।
मूवां पोछै उठि उठि लागै, ऐसा मेरा पूत ॥९८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनका मन मर गया है, अर्थात् विषियों से रहित हो गया, उस मन को फिर विषियों की चेष्टा करता और भोगता हुआ देखा है। जैसे मरने के बाद मसाण में, भूत होकर लोगों को परेशान करता है। मरने के बाद भी अर्थात् परेशान करता है। वैसे ही यह मन साधक लोगों को परेशान करता है। निर्वासनिक होने के बाद में भी, मायावी विषियों की हवा लगते ही, संकल्प विकल्पों के द्वारा, यह साधक के पीछे पड़ा रहता है।

निश्चल करतां जुग गये, चंचल तब ही होहि।
दादू पसरै पलक मैं, यहु मन मारै मोहि ॥९९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मन को संकल्प शून्य करने में तो जुग के जुग बीत जाते हैं और चंचल तो यह उसी समय हो जाता है, जबकि विषियों की हवा स्पर्श करते ही, अर्थात् बात सुनते ही। इस प्रकार

इस मन की हालत है कि यह एक पलक में त्रिलोकी में, वासना द्वारा फैल जाता है। यह विषयासक्त मन, साधकों को मारने के लिये, तत्पर बना रहता है।

दादू यहु मन मींडका, जल सौं जीवै सोइ।
दादू यहु मन रिंद है, जिनरू पतिजै कोइ ॥१००॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन मैंडक की तरह है। जैसे मैंडक ग्रीष्म ऋतु में सूख जाते हैं और पुन: जल वृष्टि होते ही बोलने लगते हैं, अर्थात् जीवित हो जाते हैं, ऐसे ही यह मन मृतक होने के बाद भी, मायारूपी मेघ द्वारा विषयरूपी जल की वर्षा से, बाह्य संस्कारों की फुरणा फुरते ही, विषयों में प्रवृत हो जाता है। अर्थात् यह मन महामलीन छल, कपटी और दरिद्री है। इस मन का कदापि विश्वास नहीं करना कि यह अब मर चुका है। मरकर भी जीवित हो जाता है।

दोहा :– यह मन मृतक देखि करि, धीजिये न कीजे नेह।
रज्जब जीवै पलक में, ज्यूं मींडक जल मेह ॥१००॥

मांहै सुक्ष्म व्है रहै, बाहरि पसारै अंग।
पवन लाग पौडा भया, काला नाग भुवंग ॥१०१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अति शीतकाल में विषधर काला नाग, वृक्ष के खोकरे में, मृतकवत सूक्ष्म शरीर हुआ रहता है, किन्तु पूर्व की वायु का स्पर्श होते ही, "पौडा" कहिए—स्वस्वभाव भयंकर रूप का प्राप्त होकर, अपने अंगों को बाहर पसारता है, वैसे ही यह सर्परूपी मन, गुरू उपदेश एवं सत् शास्त्रीय वाक्यों के श्रवण काल में तो देहरूपी वृक्ष में सूक्ष्म होकर रहता है, किन्तु विषय पवनरूप संस्कारों की स्फुरणा होते ही, अज्ञानी अति चंचल बाह्यवृत्ति होकर, अखिल ब्रह्माण्ड के विषयों में भ्रमता फिरता है। और यह मन बाह्य वृत्ति होकर, जीवात्मा को जन्म जन्मान्तरों में भ्रमाता है। इसलिए इससे सदैव सावधान रहो।

(ग्रासै विश्राम)

सुपिनां तब लग देखिये, जब लग चंचल होइ।
जब निश्चल लागा नाम सों, तब सुपिना नांही कोइ ॥१०२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन जब तक चंचल है, तब तक नाना प्रकार के स्वप्न आते हैं । ऐसे ही जब तक अन्तःकरण कि वृत्ति चंचल होकर, जगत प्रपंच में रत्त हो रही है, तभी तक यह माया प्रपंच का पसारा, स्वप्न की भांति सत्य भासता है । किन्तु दृष्टान्त पक्ष में तो, जब यह बेहोश निद्रा में मग्न हो जावे, तब स्वप्न की प्रतीति नहीं होती है । दाराष्टान्त पक्ष में, जब यह अन्तःकरण की वृत्ति सर्व विषय व्यापार से आत्मपरायण होकर, राम नाम स्मरण में स्थिर हो जाय, तो माया प्रपंच का बाद अर्थात् नाश हो जाता है ।

दोहा :- सुमिरण से स्वप्नो मिटै, लै लागै इक तार ।
जगन्नाथ जन्मैं नहीं, नहीं मारत जम मार ॥१०२॥

दोहा :- हरख्यो स्वप्नो देखकर, मक्कै गयो मैं पीर ।
मूढ रोइ आचछ्यो नहीं, ले जासी विष तीर ॥१०२॥

दृष्टान्त :- एक मुसलमान फकीर था । उसके मुरीद ने स्वप्ने में मक्काशरीफ के दर्शन किये । सवेरे हंसने लगा । मुरसिद ने पूछा :- कैसे हंसता है ? बोला :-मुरसिद! आज मैंने स्वप्ने में मक्काशरीफ के दर्शन किये । मुरसिद बोले :- मूर्ख ! हंसे मत, रो । आज तो यह मन मक्का शरीफ ले गया है, कल तुझे जहर में ले जाकर डालेगा । इसका विश्वास मत किया कर, इसको खुदा के नाम स्मरण में लगा ।

जागत जहं जहं मन रहै, सोवत तहं तहं जाइ ।
दादू जे जे मनि बसै, सोइ सोइ देखै आइ ॥१०३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जागृत अवस्था में जिन जिन कामों में मन वर्तता है, स्वप्न अवस्था में भी फिर वही वही काम करता है, और देखता है । जो जो संस्कार जागृत सृष्टि के इसके मन ने बसते हैं, वही वही स्वप्न अवस्था में सृष्टि बनाकर देखता है ।

दोहा :- जाग्रत में सोदा कियो, बनीयौं एक बजाज ।
फाड्यो चीर चटाक दे, बन्यों न स्वप्न समाज ॥१०३॥

दृष्टान्त :- एक बनिया बजाज था। सारे दिन कपड़े बेचता। एक रोज स्वप्न में ग्राहक आया। कहने लगा :- यह कपड़ा क्या भाव है ? बनिया बोला :- अमुख भाव है। दे दो पांच मीटर। बनिये ने स्वप्न में अपनी धोती पकड़ कर चटाक से फाड़ दी। आंख खुलने पर देखा तो, धोती फट गई

जागृत में जो करता है, वह स्वप्न में भी करता है।

दादू जे जे चित्त बसै, सोइ सोइ आवै चीत्त
बाहरि भीतर देखिये, जाहि सेती प्रीत १०४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी मनुष्य के चित्त में, जो जो मायावी संस्कार जागृत अवस्था में हैं, पुनः पुनः वही संस्कार अन्तःकरण में फुरते रहते हैं। वैसे ही जो ब्रह्मवेत्ता मुक्तजन हैं, वह एक आतम विचार में मग्न रहते हैं उनको बाहर भीतर सर्व माया प्रपंच में व्यापक अद्वैत ब्रह्मस्वरूप ही प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार निरन्तर साधन द्वारा, मुमुक्षजनों का भ्रान्ति ज्ञान निवृत हो जाता है।

सावण हरिया देखिये, मन चित ध्यान लगाइ।
दादू केते जुग गये, तो भी हर्या न जाइ ॥१०५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो कोई पुरूष सावन की हरियाली को देखता हुआ, श्रंधा हो जाये तो, उसके अन्तःकरण में हरियाली का ही ध्यान बना रहता है। इसी प्रकार जो संसारीजन, माया प्रपंच के प्रलोभन में ही मन और चित्त का अभ्यास करके अज्ञानी बन रहे हैं और मायिक व्यवहार ही उनको सत्य भासता है, जैसे सावन के श्रंधे को सर्वत्र हरियाली ही प्रतीत होती है, ऐसे ही अज्ञानी जीव, अपना स्वस्वरूप भी मायारूप शरीर आदिक को ही मान कर, देहाध्यास में ही रत्त रहते हैं।

दोहा :- गोपी चन्द बरस सहस्त्र में, गुरू संग आये गांव।
मोह उदय भयो देख के, बाग आदिक सब ठांव ॥१०५॥

दृष्टान्त :- राज. गोपीचन्द जब जलन्धर नाथ जी के शिष्य होकर योगी बन गए। एक हजार वर्ष के बाद गुरू जलन्धर नाथ जी के साथ घूमते घूमते धारा नगरी में आए, तब गुरू जी से बोले :-गुरूदेव !

यह मेरा बाग है, यह मेरे महल हैं, यह मेरे हाथी खाने हैं, यह मेरे घोड़ों की घुड़साल हैं, यह सम्पूर्ण मेरा राज है । तब जलन्धर नाथ जी बोले :- हे गोपीचन्द ! यह मायावी संस्कारों की शक्ति देखी ! यहां आते ही यह सब अन्तःकरण में उदय हो गए । तेरा तो कुछ है नहीं, फिर भी तुझे अध्यास हो गया ।

ब्रह्मऋषि कहते है कि श्रावण को हरियाली के समान, यह माया की हरियाली है । त्यागने पर भी, समय पाकर भान होने लगती है । इससे अलग रहना ही ठीक है ।

जिसकी सुरति जहां रहै, तिसका तहं बिसराम ।
भावै माया मोह मैं, भावै आतमराम ॥१०६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! साधन अवस्था से लेकर शरीर छूटने पर्यन्त, जिस पुरुष की वृत्ति आत्माकार होवै या अनात्माकार होवै । जहां जिसकी धारणा है, उसी स्थिति को अन्त समय में प्राप्त होता है । अर्थात् भावै तो माया और माया के कार्य मोह में रहै तो जन्म मरण को प्राप्त होगा और आत्माराम में वृत्ति रहेगी, तो ब्रह्मस्वरूप हो जायेगा ।

जहं मन राखै जीवतां, मरतां तिस घर जाइ ।
दादू बासा प्राण का, जहं पहलि रह्या समाइ ॥१०७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे जागृत अवस्था में, जिसके जो संस्कार प्रबल होते हैं एवं वासना होती है । देह विसर्जन होने पर भी वह प्राणी, उन्हीं वासनाओं के अनुसार, जन्म जन्मान्तरों में भ्रमता फिरता है ।

दोहा :- जहां आसा तहां जाय जीव, भंग भये स्थूल ।
जन रज्जब दृष्टान्त कूं, कली कटै ज्यों फूल ॥१०७॥

दोहा :- गये द्वारका दोय जन, वस्तु नरेना राखि ।
एक मूवो एक आइयो, सांप हुवो कहं भाखि ॥१०७॥

दृष्टान्त :- दो बैरागी साधु घूमते घूमते नैरना पहुंच गये । उस समय गद्दी पर महाराज गरीबदास जी विराजते थे । साधुओं ने महंत जी को दण्डवत करी, और बोले :- महाराज हम लोग द्वारका जा रहे हैं । ये हमारी पुस्तकें यहां रख जाते हैं, फिर आकर ले जावेंगे । महाराज बोले :- राम जी ! अपना सामान अपने साथ ही अच्छा रहता है । साधु बोले :- महाराज, वजन ज्यादा है । महाराज बोले :- किसी कपड़े में

बांधकर ऊंची जगह पर रख दो। साधु रखकर द्वारका चले गये। एक का शरीर वहीं वर्त गया। दूसरा घूमता घूमता नरेना आया। महन्त जी को प्रणाम किया। महन्त जी बोले :- वह दूसरे संत कहां रह गये ? संत बोला :- वह तो महाराज गुजर गये। वह हमारी पुस्तकें दिला दो। महाराज बोले :- जहां रखी थी वहीं से उतार लो, परन्तु हुसियारी से उतारना, वह संत तो आप से पहले ही यहां आ गये। ज्यों पुस्तकें खोल कर देखी, अन्दर काले नाग बनकर बैठे हैं। महाराज ने कहा :- राम जी जहां मन जीवित काल में रहता है, अन्त में वहीं जाता है।

जहां सुरति तहं जीव है, जहं नांही तहं नांहि।
गुण निर्गुण जहं राखिये, दादू घर बन मांहि ॥१०८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन्त समय मे जिस प्राणी की जहां वृत्ति रहती है, उसी समय, वह शरीर छोड़ने के बाद, जन्म कर, उसी स्थिति को प्राप्त होता है। त्रीगुणी माया में वृत्ति रखे तो, वह माया के बंधनों में ही भ्रमते हैं और मुक्त पुरुषों की वृत्ति ब्रह्म में रहती है, वे निष्काम ब्रह्मभाव, अजर अमर पद को प्राप्त होते हैं। "दादू घर बन मांहि" जो ब्रह्मवेत्ता घर में (प्रवृत्ति मार्ग में) रहते हुए भी, सर्व विषयों से उदासीन वृत्ति रखते हैं, उनको बनवासी ही जानो। और जो अज्ञानीजन बनवास में रहते हुए भी, गृहस्थ आश्रममें प्रवृत्ति होने की वासना रखै, तिनको गृहस्थी ही जानों, और वही संसार बंधनों से बंधे हुए हैं।

जहां सुरति तहं जीव है, आदि अन्त असथान।
माया ब्रह्म जहं राखिये, दादू तहं विश्राम ॥१०९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवित अवस्था में, जिन पदार्थो में वृत्ति रहती है, अन्त में वहां ही, उसका स्थान होता है। चाहे माया का कार्य, मोह ममता में सुरति रहै, तो वहां कुटुम्ब में ही कर्मानुसार, जन्मता है: और जीवित काल में ब्रह्म में सुरति रहै, तो शरीर छोड़ कर, ब्रह्मी अवस्था को प्राप्त होता है, अर्थात् ब्रह्म में स्थित होता है।

दोहा :- उरध बाहु के बीच में, बनीयों राखी मोहोर।
लातन से दोऊ लड़ै, आइ लइ वहि ठोर १०९॥

दृष्टांत :- एक जंगल में दो साधु आमने सामने दोनों हाथ ऊंचे करके, खड़े खड़े तपस्या कर रहे थे। एक

बनिया संतों का सेवक था। वह भी उधर आ निकला। उसने दोनों महात्माओं के दर्शन किये। और एक मोहर अपनी जेब से निकाल कर, दोनों की तरफ को झांका, झांककर, बीच में जमीन पर रख दी और चला गया। उनमें से एक तपस्वी मोहर के नजदीक आने लगा। दूसरा बोला :- कहां आता है ? मोहर मेरी तरफ झांक कर चढाई है। वह बोला :-मोहर तो मेरी तरफ झांककर, मुझको चढाई है। दोनों आपस में लातों से लड़ने लगे, और मोहर को भी ठोकर मारते मारते, बनिया के पास आ पहुंचे, और बोले :- भक्त तैंने यह मोहर मेरे को चढाई थी। वह बोला :- भक्त तैनें यह मोहर मेरे को चढाई थी। बनीये ने विचार किया कि मैंने तो सेवा के लिये चढाई थी। और साधुओं में झगड़ा हो गया। बनीया बोला :- महाराज ! मैंने तो किसी को भी नहीं चढाई। निमटने जाता था, सो आप लोगों के बीच में रख दी, कि आप लोग निगाह रखना, मैं आकर ले लूगां। फिर मैं भूल गया। मोहर बनीया ने उठाकर जेब में रख ली।

ब्रह्मऋषि कहते हैं कि जो सुरति माया में रहेगी, तो माया में ही विश्राम होगा, जैसे :- दृष्टान्त में— उरध बाहों का।

जहां सुरति तहं जीव है, जीवण मरण जिस ठौर।
विष अमृत तहं राखिये, दादू नाहीं और ॥११०॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! जीवित काल में जहां सुरति रहती है, मरने के बाद, उसी स्थिति को, जीव प्राप्त होता है। विष कहिए—शब्द आदि इन्द्रियों के विषयों में, अमृत कहिए—परमेश्वर के स्मरण में, जीवित काल में जहां स्थिति होगी, मरने के बाद उसी स्थिति को प्राप्त हो जाएगें। दयाल जी कहते हैं, इन दोनों अवस्थाओं से अलग और कोई ठिकाना नहीं है।

जहां सुरति तहं जीव है, जंह जाणै तहं जाइ।
गम अगम जंह राखिये, दादू तहां समाइ ॥१११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवित काल में जिस पदार्थ को जानकर, निश्चय कर लिया है, मरने के बाद उसी पद में जाकर स्थित होता है। गमरूप माया में, अगमरूप कहिए ब्रह्म में, मरने के बाद में जीव, वहीं जाकर समा जाता है

मन मनसा का भाव है, अन्त फलैगा सोइ।
जब दादू बाणक बण्या, तब आसै आसण होइ ॥११२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपना मन और मन की इच्छा में जैसा भाव है जीवित काल में अन्त समय कहिए मरने के बाद, उसी फल को प्राप्त करेगा। ब्रह्मऋषि कहते है कि जब जीवित काल में, जिस पदार्थ

के साथ जैसा संयोग होता है, मरने के बाद उसी संयोग को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् उसी पद को प्राप्त कर लेता है।

जप तप करणी कर गये, स्वर्ग पहुंचे जाइ।
दादू मन की बासना, नरक पड़ै फिर आइ ॥११३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! विविध प्रकार के जप तप आदि करणी के प्रभाव से, स्वर्ग में समाचार जो पहुंचे कि अमुख तपस्वी को, अमुख दिन देवता लोग स्वर्ग लावैंगे परन्तु फिर मन की वासना नरक में धकेल देती है। ऐसा यह मन भक्तों का प्रबल शत्रु है।

दोहा :- **बणक बाम गोणै लियां, आयो जल अस्थान।**
जल पीवत तपसी गही, अदल बदल दीया दाम ॥११३॥

दृष्टान्त :- एक बनिये के लड़के ने अपनी शादी, अपनी कमाई से, आप ही की। तीन साल के बाद जब गोना हुआ, तब स्त्री को लेकर आ रहा था। जंगल में एक वृक्ष के नीचे बैठे। लड़का बोला :- उस तालाब में जल पी आओ। तब वह तालाब पर जा, जल पीकर, बैठी बैठी दोनों हाथों से एक मिट्टी के टीले पर पानी फैंकने लगी। मिट्टी धुल गई और तपस्वी की समाधि खुल गई। वह तपस्वी उस लड़की से बात कर रहे थे। बनिये के लड़के ने देखा, अब तक क्या कर रही है? चलूं, देखूं। आगे आया, तो तपस्वी समाधि से उत्थान हुए बैठे हैं। लड़के ने नमस्कार किया। तपस्वी बोले :- तुम कौन हो? लड़के ने कहा :- मैं बनिया हूं। तपस्वी :- बनिया तो सौदा किया करता है? सौदा कर लो। लड़का क्या सौदा? तपस्वी :- हमने एक हजार वर्ष तक तप किया है, समाचार हमारे स्वर्ग में भी पहुंच गये हैं। एक हजार वर्ष की तपस्या ले ले और यह लड़की हमें दे दे। अगम बुद्धि बाणिया०। बनिये ने विचार किया कि इस स्त्री संग से, मैं मोह ममता में बधूंगा और आखिर नर्क में ही जाऊंगा। हजार वर्ष की तपस्या तो मेरे बाप दादा ने नही की। वह मुझे सहज में ही मिल रही है। यह सौदा मेरे लिए लाभदायक ही है। मेरे सारे पित्रों का भी ऊद्धार हो जायेगा। यह सोच कर बोला :- तपोधन! यह सौदा मुझे मंजूर है। तपस्वी ने हाथ में जल लेकर संकल्प छोड़ा कि एक हजार वर्ष की तपस्या का फल, अमुख बनिये के लड़के को देता हूं। इधर बनिये के लड़के ने भी संकल्प किया कि मैं अपनी स्त्री, तपस्वी को तप के बदले में देता हूं। बनिये का लड़का अपने घर चला आया, तत्काल उसके पित्र नर्क से स्वर्ग में पहुंच गये और वह ईश्वर की भक्ति करने लगा। तपस्वी जी का अन्त समय तो आ ही रहा था, वह उस स्त्री का संग करके, नर्क को प्राप्त हो गये।

ब्रह्मऋषि कहते हैं कि मन की वासना, स्वर्ग में पहुंच गये समाचार, उनको भी फिर नर्क में डाल देती है।

पाका काचा व्है गया, जीत्या हारै डाव ।
अंत काल गाफिल भया, दादू फिसले पाव ॥११४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन प्रभु के परायण, निर्विकार होकर भी, सूक्ष्म संसार वासनाओं के बस होकर, भोगों में फिर आसक्त हो जाता है । 'जीत्या' कहिए—गुण विकार आदि से छुटकारा पाकर, यह मन पुनः विषय विकारों में फंस जाता है । इस प्रकार अन्तकाल कहिए पूर्ण अवस्था में, अर्थात् अन्त समय में, सूक्ष्म संस्कार वासनाओं के अधीन होकर, इस प्राणी के सांचरूपी पांव फिसल जाते हैं । इसलिए हे साधक पुरूषो ! मन से सदैव सावधान रहना ।

दादू यहु मन पगुल पंच दिन, सब काहू का होइ ।
दादू उतरि आकास थैं, धरती आया सोइ ॥११५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन, गुण क्रिया विषय आदि से रहित, पांच रोज कहिए अल्प काल के लिए, सर्व ही पुरूषों का सतसंग द्वारा विषयों से उपराम हो जाता है । परन्तु फिर यही मन कुछ रोज के बाद, आकाश अर्थात् ब्रह्म दिशा से उतर कर, मायावी पदार्थों में पुनः आसक्त होता है ! इसलिए हे साधक इस मन से सावधान रहना ।

ऐसा कोई एक मन, मरै सो जीवै नाहिं ।
दादू ऐसे बहुत हैं, फिर आवै कलि माहिं ॥११६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ऐसा कोई एक आध ही जीवन मुक्त पुरूष है, जिसका मन गुण विकारों की तरफ से मर चुका है । फिर उनका मन विषय विकारों में आसक्त नहीं होता है । ब्रह्मऋषि सतगुरू कहते हैं कि हे साधक पुरूषो ! ऐसे तो बहुत हैं, जो सकाम कर्मों द्वारा, पुनः पुनः माया के भोगों में आसक्त होकर, संसार में जन्मते मरते रहते हैं ।

देखा देखी सब चले, पारि न पहुंच्या जाइ ।
दादू आसण पहल के, फिरि फिरि बैठे आइ ॥११७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! व्यवहार में, देखा देखी साधनों की साधना तो, बहुत से संसारीजन करते हैं, किन्तु इन देखा देखी लौकिक साधनों से, कोई भी संसार सागर से पार नहीं उतरते हैं । पूर्व जन्म में आसण

कहिए आशारूप संस्कारों के अधीन होकर, जन्म जन्मान्तरों में, फिर फिरके उसी स्थित पर आकर बैठते रहते हैं।

दोहा :- दो अँधि को देख के, पड़े बहुत उत आय।
करी परीक्षा बादशाह, बाड़ कूद गये धाय॥११७॥

दृष्टान्त :- एक बादशाह आ रहा था। मार्ग में दो पेड़ों के नीचे, दो अँधि पड़े थे। एक से बादशाह ने पूछा :- तुम कौन हो? वह कुछ न बोला। तब बादशाह ने उसे एक चाबुक मारा। दूसरा अँधि बोला :- एक और मार, मेरे मुंह पर कुत्ता मूतता था, इसने उसको भगाया नहीं। बादशाह चकित हो गया और सोचा, यह तो दोनों महात्मा हैं। उनको लेजा कर एक स्थान पर लेटा दिया और उनकी सेवा कराने लगा। फिर बादशाह ने नेम लिया कि जो अँधि होगें, उनकी हम सेवा किया करेंगे। फिर तो देखा देखी, राज में बहुत से काश्तगार वगैरा अँधि बन गए। बादशाह उनको उठवा उठवा कर, फूस के छप्परों में लिटाने लगे। ऐसे आमने सामने सैकड़ों अँधि पड़े हैं। दूसरे लोग उनके मुंह में दूध, हलवा, खीर, मेवा, मिष्ठान आदि खिला रहे हैं। मंत्री ने देखा कि यह राज इस तरह कैसे चलेगा? दुनियां अँधि बनना शुरू हो गई है। बादशाह ने अँधियों की सेवा का नेम ले लिया है। यह सोचकर बादशाह के पास आया और बोला :- हुजूर! आप इस नेम का त्याग कर दीजिए। बादशाह बोला :- नहीं। मंत्री बोला :- तो असली अँधियों की सेवा करोगे या खैदियों की भी करोगे? बादशाह :- अँधियों की। मंत्री :- तो हम परीक्षा कर लें। बादशाह :- जरूर। मंत्री :- दस पांच खाली छप्पर थे। उनमें से एक के आग लगवा दी। चारों तरफ अँधियों की छावनी के मिलट्री का इन्तजाम करा दिया कि कोई भाग न सकै। जब आग प्रज्वलित हुई, तब तो देखने वालो ने कहा :- अँधियों की छावनी में आग लग गई। तब जो नकली अँधि पड़े थे, उन्होंने सिर उठा कर आग की तरफ देखा। तब उठ उठकर भागने लगे। फौजियों ने कहा :- यहीं लेटे रहो। तब तो छावनी में नकली अँधियों की घुड़ दौड़ सी मच गई। आखिर काटों की बाड़ कूद कूद कर दौड़ने लगे। फौजियों ने गिरफ्तार करना शुरू कर दिया। सब नकली अँधि पकड़े गये। वह दो ही अँधि रह गए। उधर आग प्रज्वलित होती आ गई। अलग अलग छप्परों में दोनों पड़े थे। ये दोनों अँधि मामा भानजा थे। मामा ने आग को देखकर कहा :- भा! (कहना चाहिए का भानजा, क्योंकि वह सच्चा अँधि था, सो उसके तो बोलने का भी आलस्य था)। भानजा बोला :- मा! (कहना चाहिए था मामा)। भानजा :- आ! (कहना चाहिए था, "आग लग गई")। मामा बोला :- टा! (अर्थात् रामजी टालेगे, हम तो उसके नाम पर अँधि हैं)। इतने में मंत्रियों ने कहा :- उन दोनों अँधियों को उठाकर लाओ। बादशाह को बोले :- हुजूर! यह दो ही अँधि हैं, बाकी तो सब खैदी हैं। बादशाह उनकी सेवा करने लगा। बाकी सभी नकली अँधियों को कारागृह में बंद करा दिया और जितना राज का माल खाया था और जो जमीन आदि का लगान बाकी था, वह सब मंत्रियों ने उनसे वसूल कर लिया।

ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते है कि "देखा देखी सब चलै०" परन्तु पूरी मंजिल के अैंधि कहिए ब्रह्मनिष्ट, देह अध्यास से मुक्त, कोई बिरले ही होते हैं ।

(जग जन विपरीत)

बरतणि एकै भांति सब, दादू संत असंत ।
भिन्नभाव अन्तर घणां, मनसा तहां गच्छन्त ॥११८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संत और असंत, इनके पंचभोति शरीर तो एक से ही होते हैं, परन्तु हृदय में भावना कहिए धारणा का, बहुत अन्तर है । अर्थात् संत संसार बंधन से मुक्त होते है और ब्रह्म में प्रवेश करते हैं । संसारीजन संसार बन्धन में बंधे हुए रहते हैं । अतः अपनी भावना के अनुसार, संसार में आवागमन करते रहते हैं ।

दोहा :- जगन्नाथ बिधि एकसी, भजन साधु संसार ।
जैसें गनिका कुल बधू, करतहु वै सिंगार ॥११८॥

जगन्नाथ दास जी महाराज कहते हैं कि मुक्त पुरूषों की धारणा कहिए सृंगार तो कुल बधु के समान होता है । संसारीजनों की धारणा श्रंगार वैश्या के समान होता है ।

यहु मन मारै मोमिना, यहु मन मारै मीर ।
यहु मन मारै साधका, यहु मन मारै पीर ॥११९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन बड़ा बलवान है । इसने बड़े बड़े मोमियों को बहा दिया है । बड़े मीर उमरावों को बहा दिया है । इस मन ने साधक पुरूषों को बहा दिया है । इस मन ने पीर औलियाओं को विषयों के प्रभाव में बहा दिया है । अथवा वही मोमिन, मीर, पीर और साधक सफल हैं, जो इस मन को विषयों की तरफ से मार कर, स्वस्वरूप पें स्थिर करते हैं ।

दोहा :- बाजीन्द के शिष्यों नै, रहस्य लियो नहीं कोइ ।
मन को मान उतारी तूं, आपणि गति कहि सोइ ॥११९॥

दृष्टान्त :- बाजींद जी महाराज ने उपरोक्त साखी से अपने शिष्यों को उपदेश किया। वह इस रहस्य को न समझ कर, मन में विचार किया कि गुरू महाराज, अपने आप की स्थिति बता रहे हैं। शब्दों का रहस्य नहीं समझ पाये।

दादू मन मारे मुनियर मुये, सुर नर किये संघार।
ब्रह्मा विष्णों महेस सब, राखै सिरजनहार ॥१२०॥

टीका :- हे जिज्ञसुओ ! यह मन बड़ा बलवान है इसने बड़े बड़े मुनियों को साधना से गिरा दिये हैं। वह विचलित हो गए हैं। इस मन ने सुर इन्द्र आदि को बहा दिया। अहिल्या का आख्यान प्रसिद्ध है। इस मन ने नारद आदिकों को भी बहा दिया। इस मन ने ब्रह्मा, विष्णु, महेस आदिकों का संहार किया है। हे सिरजनहार परमेश्वर ! आप ही इस मन से हमारी रक्षा करें, अथवा जो पुरूष सिरजनहार को अपने मन में, अपना निजरूप करके देखते हैं, उन्हीं की सिरजनहार परमेश्वर, इस मन से रक्षा करते हैं।

मन बाहे मुनियर बड़े, ब्रह्मा विशन महेस।
सिद्ध साद्धिक जोगी जत्ति, दादू देश विदेश ॥१२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मन ने मित्रावर्ण परासर आदि मुनियों को विषयों की ओर बहा दिया है। इस मन ने ब्रह्मा को बहा दिया, विष्णु को बहा दिया, शंकर को बहा दिया। इसने सिद्धों को, साधकों को, जोगियों को, जतियों को, देश स्वस्वरूप से, विदेश बाह्य विषयों में प्रवृत कर दिये हैं, ऐसा यह मन बलवान है। इससे तो हे सिरजनहार ! आप ही रक्षा कर सकते हो। चिंतामणी, मछोदरी, सावत्री, बृन्दा, मोहनी रूप इन सबके आख्यान प्रगट हैं।

छन्द :-

जिन ठगे शंकर बिधाता इन्द्र देव मुनि,
आपनोहु अधिपति ठग्यो जिन चन्द्र है।
और योगी यंगम सन्यासी शेख कौन गौनै,
सबनि को ठगत ठगावै न सुछंद है।

तापेश्वर ऋसीश्वर सब पचि पचि गये,
काहु कै न आवै हाथ, ऐसो या पै बन्द है ।
सुन्दर कहत्त बस कौन बिधि कीजै ताहि,
मन सो न कोऊ या जगत मांहि रंद है ॥१२१॥

(मन मुखिमान बड़ाई)

पूजा मान बड़ाइयां, आदर मांगै मन ।
राम गहै सब पर हरै, सोई साधु जन ॥१२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन पूजा से, मान से, बड़ाई से, आदर से, इन वस्तुओं को चाहता है, और जहां जहां ये प्राप्त होते हैं, वहां वहां ही यह दौड़कर जाता है । परन्तु मुक्त पुरुष, निज स्वरूप राम का अन्तःकरण में, स्मरण ग्रहण करते हैं । और उपरोक्त जिन विषयों को मन चाहता है, उनका वे पुरुष त्याग करते हैं । वही संतजन हैं ।

जहां जहां आदर पाइये, तहां तहां जिव जाइ ।
बिन आदर दीजै राम रस, छाड़ि हलाहल खाइ ॥१२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस जिस स्थान में इसको आदर मिलता है अर्थात् मान प्रतिष्ठा होती है, वहां वहां ही यह मनरूप जीव, दौड़ दौड़ कर जाता है । परन्तु राम रस जहाँ बटता है, सतसंग में, वहां इस मनरूप जीव को इसकी इच्छा अनुसार आदर नहीं मिलता है । वहां सतसंग में इस मनरूप जीव को ले जाकर, राम रसरूप अमृत पिलाओ । फिर यह मनरूप जीव शब्द आदि हलाहल विषयों को छोड़कर, राम रस को पीने लगेगा ।

दोहा :- गुरूदादू की कथा में, आवत एक रजपूत ।
सो ले आयो पावणो, सो उठ गयो कपूत ॥१२३॥

दृष्टान्त :- आमेर में ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज प्रवचन करते थे। एक राजपूत भी महाराज के प्रवचन में रोज आता । एक रोज उसके घर उसका कोई सम्बन्धी राजपूत आ गया । उसकी सब प्रकार

सेवा करके बोला, आप यहां आराम करो, में गुरूदेव के प्रवचन सुनकर, अभी आऊंगा। वह बोला, हम भी चलेगें, कैसे प्रवचन करते है ? वह उसको साथ लेकर आया। वह तो नमस्कार करके जहां जगह मिली बैठ गया, परन्तु वह महमान खड़ा रहा, आदर सम्मान की इच्छा करके। कुछ देर में रूष्ट होकर, वापिस चला गया और कहने लगा :- जहां आदर नहीं, मान नहीं, हुक्का नहीं, बीड़ी नहीं, वहां जाकर क्या करें ?

(करणी बिना, कथनी)

करणी किरका को नहिं, कथनी अनंत अपार।
दादू यूँ क्यूं पाइयें, रे मन मूढ गवांर॥१२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की प्राप्ति कराने वाले साधन तो एक कण मात्र भी जिनमें नहीं हैं, और बचन चातुरी बहुत है, ऐसे ज्ञानी और पंडित अनेकों हैं, जो भगवान के तो गुणानवाद एवं ज्ञान उपदेश सुनाते हैं, परन्तु उनमें भक्ति और ज्ञान की भावना तो लेस मात्र भी नहीं है। मन के भ्रमाये हुए, मोह में अंधे, बिषयों में आसक्ति वाले, बाचक पंडित, आत्म तत्व को नहीं पहचान पाते।

(जाया माया मोहनी)

दादू मन मृत्तक भया, इंद्री अपणै हाथ।
तो भी कदे न कीजियें, कनक, कामनी साथ॥१२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू के उपदेशों का श्रवण और मनन निदिध्यासन से, यह मन मर जाय, अर्थात् बहिरंग विषयों से मुक्त हो जाय, पंच ज्ञानेन्द्रिये यह सब स्वस्वरूप में संलग्न रहें। तो भी कनक और कामनी का कदापि संग नहीं करना, क्योंकि यह मन बड़ा चंचल है। साधक पुरूषों का इस मन पर विश्वास नहीं है।

(मन)

अब मन निरभै घरि नहीं, भै मै बैठा आइ।
निरभै संग थैं बीछुट्या, तब कायर व्है जाइ॥१२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन निर्भय घर कहिए, परमात्मा चेतन्य स्वरूप में स्थित नहीं होता, तभी इसको काल कर्म, जन्म मृत्यु आदिक भय व्याप्ता है। क्योंकि यह निर्भय स्वरूप परमात्मा का नाम स्मरण, उससे बिछड़ गया है, तभी यह नाम स्मरणरूप साधनों से कायर होकर, जन्म मरण में भ्रमता है।

जब मन मृत्तक व्है रहै, इंद्री बल भागा ।
काया के सब गुण तजै, निरंजन लागा ॥१२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब यह मन गुणातीत होकर रहै, तो इंद्रियों की शक्ति भी नष्ट हो जाती है, अर्थात शब्द आदि विषयों में जाने की रूचि नहीं रहती, और काया के शोत, उष्ण आदिक में भो अध्यास नहीं रहता । तब जानो कि अब हमारा मन, निरंजन ब्रह्म में स्थित हुआ है ।

आदि अंत मधि एक रस, टूटै नहीं धागा ।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥१२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आयु का आदि, जिस दिन गुरू उपदेश शुरू हुआ, पाप पुण्य को जाना, मध्य अवस्था और प्राण पिण्ड का वियोग, इस अन्तिम अवस्था तक, अपनी सुरति रूपी धागा, नाम स्मरण से "टूटै नहीं" कहिए अलग नहीं होवै, तव आप जानो, कि हमारे अन्त:करण में एक परमेश्वर ही रह गया है । उस समय यह निश्चय करो कि हमारा मन अज्ञान निद्रा से जाग कर, कर्त्तव्य परायण हो रहा है । ऐसा सतगुरू महाराज उपदेश करते हैं ।

दादू मन के सीस मुख, हस्त पांव है जीव ।
श्रवण नेत्र रसना रटै, दादू पाया पीव ॥१२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो जीव का शीश है, हस्त हैं, पांव है, श्रवण हैं, नेत्र हैं, मुख है, रसना है, यही सब मन के अवयव हैं । जब मन अपनी इन सम्पूर्ण इन्द्रियों को परमेश्वर के व्यापार में लगा कर, आप स्वयं परमेश्वर का नाम रटता है, तभी यह पीव को प्राप्त कर लेता है ।

जहं के नवाये सब नवैं, सोई सिर करि जाणि ।
जहं के बुलाये बोलिये, सोई मुख परवाणि ॥१३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस स्थान में जिसको नमस्कार करने से, सबको नमस्कार हो जाता है, वह स्थान अपना हृदय और सतसंग है, वहां अपने मस्तक को नवाओ । वही मस्तक श्रेष्ट करके जानो, जहां परमेश्वर को हृदय में भक्त बुलावै, तो वहीं परमेश्वर प्रेरणा रूप से बोलते हैं । वही मुख प्रमाणिक है ।

जहं के सुणायें सब सुणैं, सोई श्रवण सयाण ।
जहं के दिखाये देखिये, सोई नैन सुजाण ॥१३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हृदय प्रदेश में परमेश्वर को अपनी पुकार सुनाओ, तो आपकी परमेश्वर तब सुनेगा । वही श्रवण कराने वाला सयाना है, चतुर है । हृदय में परमेश्वर को अपना निर्अभिमानता शील संतोष, दया धर्म, ज्ञान ध्यान, भक्ति वैराग्य यह दिखाओ, तो वहीं परमेश्वर आपका सब देखेंगे । वह दृष्टा हैं । सयाना कहिये चतुर नेत्रवान है, जो प्रभु को ही सर्वत्र देखता है ।

दादू मन हीं सौं मल ऊपजै, मन ही सौं मल धोइ ।
सीख चलि गुरू साध की, तौ तूँ निर्मल होइ ॥१३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ईश्वर विमुखी मन से पाप कर्म बनते हैं, और जब यह मन सतगुरू और संतों की शिक्षा में चलता है, तब अपने पापों को आप ही धो लेता है । इसलिए अब गुरू और संतों की शिक्षा में ही चलना चाहिये, जिससे तुम निर्मल हो जाओगे ।

दादू मन ही माया ऊपजै, मन ही माया जाइ ।
मन ही रात्ता राम सौं, मन ही रह्या समाइ ॥१३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बहिर्मुख मन की अज्ञान अवस्था में यह सब माया प्रपंच सत्य प्रतीत होता है । जब मन आत्मा के सन्मुख होता है, तब ज्ञान विचार द्वारा, नासरूप माया के पसारे को, मिथ्या जानकर, स्वस्वरूप में लीन होकर, समिष्ट चेतन्य से अभेद होता है ।

दादू मन ही मरणा ऊपजै, मन ही मरणा खाइ ।
मन अविनासी व्है रह्या, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥१३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विषयाकार बहिरंग मन से ही संसार का बन्धन रूप मरणा उत्पन्न होता है । जब मन परमेश्वर के सन्मुख होकर, नाम स्मरण में दत्त चित होता है, तब यह मन, प्राण पिण्ड के वियोग रूप मरणे को खा लेता हैं । फिर यह मन अविनासी परमात्मा से लय लगा कर, अविनासी हो जाता है ।

मन ही सन्मुख नूर है, मन ही सन्मुख तेज ।
मन ही सन्मुख जोति है, मन हीं सन्मुख सेज ॥१३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन्तर्मुख मन के सन्मुख ही परमेश्वर, नूररूप तेजरूप, ज्योतिरूप से प्रत्यक्ष हैं । फिर यह मन, शुद्ध हृदयरूपी सेज पर, परमेश्वर के सन्मुख ओत प्रोत भाव से अभेद हो जाता है ।

मन ही सौं मन थिर भया, मन ही सौं मन लाइ ।
मन ही सौं मन मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ॥१३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विवेक वैराग्य आदि साधनों से, व्यष्टि मनरूप चेवन्य, समष्टि मनरूप चेतन्य में लगाने से स्थिर होता है। इसलिए हे साधक पुरूषो ! अपने व्यष्टि मन को विचार द्वारा, समष्टि चेतन्य में अभेद करो। जब व्यष्टि मन, समष्टि चेतन्य रूप मन से, विचार द्वारा मिल कर अभेद होगा, सतगुरू महाराज कहते हैं, फिर यह मन, जन्म मरण आदि कलेश को प्राप्त नहीं होगा। परमेश्वर स्वरूप ही हो जाएगा।

(इति मन का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ सूक्ष्म जन्म का अंग ११ ॥

"दादू मन की बासना नरकि पड़ै फिर आइ०" इत्यादिक सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, मन का स्वरूप स्थित करने के निमित्त, अब सूक्ष्म जन्म के अंग का निरूपण करेंगे ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवतः ।
बंदनं सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- निरंजनदेव और सतगुरू, एवं सर्व साधुओं को, हमारी बारम्बार बन्दना है । इसी प्रकार हरि गुरू संतों की बन्दना करके, मुमुक्षुजन, विषय मनोरथों को त्याग कर, "पारं" नाम सूक्ष्म जन्म आदि के पार, अमरभाव को प्राप्त होते हैं ।

दादू चौरासी लख जीव की, प्रकृति घट मांहि ।
अनेक जन्म दिन के करै, कोई जाणै नांहि ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजनों के शरीर में मन के भीतर, चोरी, जारी हिंसा, और भी लाखों जीवों के स्वभाव उनके गुण विकार आदिक व्याप्त होते रहते हैं । अर्थात् यह मन एक क्षण में, नाना विषयों के संकल्पों द्वारा, अनेक सूक्ष्म शरीर से जन्मता मरता है । इस जन्म मरण को कोई भी संसारिक पुरूष नहीं देखता है ।

दोहा :- कबीर प्राण पिंड को तजि चले, मुवा कहै सब कोइ ।
जीव सदा जामै मरै, सूक्ष्म लखै न कोइ ॥२॥

(अनेक जन्म, दिन में करै)

दादू जेते गुण व्यापैं जीव कौं, तेते ही अवतार ।
आवागमन यहु दूरि करि, समर्थ सिरजनहार ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मन रूप जीव को, जितने गुणरूप स्वभाव व्याप्ते हैं, चीटीं से लेकर हाथी पर्यन्त के, वह सब ही इस मनरूप जीव के, सूक्ष्म शरीररूप अवतार कहिए, सूक्ष्म जन्म मरण हैं । हे समर्थ सिरजनहार परमेश्वर ! इस सूक्ष्म आवागमन को आप दूर करो, अथवा हे जिज्ञासु ! यह सूक्ष्म आवागमन, तूं परमेश्वर का नाम स्मरण करके, दूर कर ।

सब गुण सबही जीव के, दादू व्यापैं आइ ।
घट मांहि जामैं मरै, कोइ न जाणै ताहि ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब गुण, स्वभाव सब जीवों के इस मनरूप जीव में, व्याप्त होते रहते हैं । इस प्रकार यह मनरूप जीव, हृदय प्रदेश में ही, सूक्ष्म शरीरों से वासना द्वारा, जन्मता मरता रहता है । परन्तु इस सूक्ष्म जन्म मरण को, कोई भी संसारीजन नहीं जान पाते ।

जीव जन्म जाणै नही, पलक पलक में होइ ।
चौरासी लख भोगवै, दादू लखै न कोइ ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बहिर्मुख जीव, अपने सूक्ष्म स्वभावरूप जन्मों को, नहीं जानता है । यह सूक्ष्म आवागमन, इसका पल पल में होता रहता है । चौरासी लाख योनियों के स्वभावरूप, जन्म मरण, इस चेतन्य मनरूप जीव के, वासना द्वारा होते रहते हैं । और यह सुख दुखों को भोगता रहता है । परन्तु यह स्थूल दृष्टि होने से, अपने सूक्ष्म जन्म मरण को नहीं जान पाता है ।

अनेक रूप दिन के करै, यहु मन आवै जाइ ।
आवागवन मन का मिटै, तब दादू रहै समाइ ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह जीवरूपी मन, दिन में अनेकों सूक्ष्म जन्म लेता है । इस प्रकार इस मन का यह जन्म मरण लगातार चलता ही रहता है । जब यह सूक्ष्म आवागमन, ज्ञान द्वारा नष्ट हो जावे, तब फिर यह मन अपने अधिष्टान चेतन्य ब्रह्म में समाता है ।

दोहा :- जन्म मरण जीवत मिटै, नित्य प्रति सूक्ष्म सोइ।
जगन्नाथ तब देह का, आवागमन न होइ ॥६॥

निस वासुर यहु मन चलै, सूक्ष्म जीव संघार।
दादू मन थिर कीजिये, आतम लेहु उबारि ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! रात दिन यह मन, अनन्त विषय मनोरथों में भ्रमता रहता है। यही इस चेतन्य रूप मन का सूक्ष्म जीवों का संघार करना ही, संसार बन्धन का कारण है। इसलिए हे साधक पुरूषों ! इस जीवरूप चेतन्य मन को, स्वस्वरूप में स्थिर करके, आतमबोध प्राप्त करो।

यह साखी चरचा समय, ढूढ्या के प्रति भाखि।
गुरू दादू के बचन सुनि, मस्तक चरणों राखि ॥७॥

दृष्टान्त :- एक मुख पट्टी वाले संत ब्रह्मऋषि गुरूदेव के पास आकर नमस्कार किया और बोले :- महाराज ! मुंह की भाप मे सूक्ष्म जीव मरते हैं, इसलिए आप भी मुख पर पट्टी बांधो, तो इन जीवों का संघार नहीं होवै। इस हिंसा से आप बच जाओगे। तब उपरोक्त साखी से गुरूदेव ने उत्तर दिया। सन्त समझ गए और गुरूदेव के चरणों में मस्तक रख दिया। आज सच्चा मार्ग सूक्ष्म जन्मों का मुझे ज्ञात हुआ।

कबहू पावक कबहू पाणी, धर अम्बर गुण बाइ।
कबहू कूंजर कबहूं कीड़ी, नर पसुवा व्है जाइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मनरूप जीवात्मा में कभी तो पावक, अग्निरूप गुण व्याप्त होता है, कभी जल की शीतलतारूप गुण व्याप्त होता है। कभी धरती का जड़ता रूप गुण व्याप्त होता है। कभी आकाश का निर्लेपतारूप गुण व्याप्त होता है। कभी हाथी का कामवासना रूप गुण व्याप्त होता है। कभी चींटी का, दूसरे के दुर्गुणों को खोजनेरूप गुण व्याप्त होता है, कभी सम्पूर्ण पशुओं के क्रम क्रम से स्वभाव, इसमें व्याप्त होते रहते हैं, कभी मनुष्य स्वभाव भी व्याप्त होता है। इस प्रकार संसारीजन इन्द्रिये परायण होकर, पशु की भांति नाना विषयों में भ्रमते हैं। अनन्त मानसिक सूक्ष्म शरीरों द्वारा जन्मते मरते रहते हैं।

(करणी बिना कथनी)

सुकर स्वान सियाल सिंघ, सर्प रहै घट मांहि ।
कुंजर कीड़ी जीव सब, पांडे जाणै नांहि ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन सूअर, कुत्ता, गीदड़, शेर, सांप, चींटी, हाथी की भांति, अनन्त विषय वासनाओं में भ्रमते हैं, तथापि पिण्डधारी देहधारी एवं बाचक पंडित आदि, इस रहस्य को नहीं जानते हैं, इसलिये अब मन की सूक्ष्म वासनाओं का निग्रह करके आतम परायण रहो ।

(इति सूक्ष्म जन्म का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ माया का अंग १२ ॥

"निस बासुर यहु मन चलै, सूक्ष्म जीव संघार०" इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, वासनामय जगत को मायामय प्रतिबोधन कराने के लिए, सूक्ष्म जन्म के अंग के बाद माया के अंग का निरूपण करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनं, नमस्कार गुरूदेवतः ।
बंदनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- हरिगुरू संतों को हमारी बारम्बार नमस्कार है, जिनके आशीर्वाद एवं अमृत उपदेशों से मन के मायामय जगत प्रपंच से पार होकर, निर्वासनिक और मल विक्षेप आवरण से शुद्ध होकर, 'गतः' ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ।

अब स्वप्न सुख की उपमा से माया सुख की अनित्यता दिखाते हैं ।

साहिब है पर हम नहीं, सब जग आवै जाइ ।
दादू सुपिना देखिये, जागत गया बिलाइ ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर सत्य स्वरूप एक रस तो है, पर हम नहीं । हम कहिए स्थूल शरीर और अहंत्व आदि भाव करके, हमारा व्यवहारिक यह स्वरूप सत्य नहीं है । क्योंकि प्रत्यक्ष दिखता है कि सब जगत् आवागमन, अर्थात् जन्मता मरता है । सत्यभाव असम्भव है । दृष्टान्त से कहते हैं, जैसे स्वप्न काल में राज धन आदि पदार्थ सत्य दिखते हैं, परन्तु जाग्रत अवस्था में सब विलय हो जाते हैं । इसी प्रकार स्वस्वरूप का बोध होने पर, माया प्रपंच मिथ्या दिखने लगता है ।

दादू माया का सुख पंच दिन, गर्व्यों कहां गंवार ।
सुपनैं पायो राजधन, जात न लागै बार ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया का सुख "पंच दिन" कहिए अल्प काल, क्षणिक है । हे अज्ञानी ! ऐसे नश्वर पदार्थों का क्या गर्व करते हो ? जैसे स्वप्न में राज, और अपार धन प्राप्त होवै, तथापि जागृत अवस्था में, उसके नाश होने में, क्षण भर भी नहीं लगता है, ऐसे ही अज्ञान अवस्था में स्त्री, पुत्र, धन, जमीन जायदाद, आदिक जो माया के सुख प्रतीत होते हैं, इनके भी नाश होने में, किंचित समय नहीं लगता है । दृष्टान्त में जैसे :-स्वप्न के पदार्थों से, व्यवहारिक सिद्धि नहीं होती है, वैसे ही व्यवहारिक साधनों का भी, परमार्थ में किंचित भी उपयोग नहीं है ।

दादू सुपिनैं सूता प्राणियां, कीये भोग विलास ।
जागत झूठा व्है गया, ताकी कैसी आस ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे स्वप्न अवस्था में मनुष्य अनेक सुखों का उपभोग करता है, किन्तु जागृत अवस्था में, वे सब मिथ्या प्रतीत होने लगते हैं । ऐसे स्वप्ने के सुखों की, क्या आशा करिये कि स्थिर रहेंगे ।

दोहा :- सुपना केरी सुन्दरी, नाख्यो कुवा मांहि ।
जयमल प्रत्यक्ष भोगते, क्यों न नरकां जांहि ॥४॥

दृष्टान्त :- एक पुरुष कुए के किनारे सो रहा था । उसे स्वप्ना आया कि मेरी शादी हो गई और दोनों धणी बीर पलंग पर सो रहे हैं । बीर बोली :- जरा उधर सरको, ज्यों पलटी खाई, त्यों ही कुए में धड़ाम से गिरा । आंख खुली, तब रोने लगा । स्वप्ने वाली सुन्दरी ने ही कुए में धकेल दिया, तो प्रत्यक्ष में उपयोग में लाते हैं,उनकी क्या हालत होती होगी ?

यौं माया का सुख मन करै, सेजां सुंदरि पास ।
अंतकाल आया गया, दादू होहु उदास ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन चाहता रहता है कि रहने के लिए खूब सुन्दर बंगला होवै, घूमने को कार होवै । खान पान के लिए नाना प्रकार के व्यंजन मिलें, अति सुन्दरी स्त्री होवै । सेज पर उसके साथ

अनेक प्रकार का रमण व्यवहार करूं। ऐसे ही सोचते सोचते और भोगते भोगते, अन्त समय आ जाता है और उनसे तृप्ति नहीं होती है। यमदूत गले में फांसी डालकर ले जाते हैं। हे मानव ! इसलिए इनसे पहले ही उदासीन होकर, परमेश्वर का भजन करो। इसी में जीवन की सफलता हैं।

जे नाहिं सो देखिये, सूता सुपनें मांहि।
दादू झूठा व्है गया, जागै तौ कुछ नांहि ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो वास्तविक मायिक सुख सत्य नहीं है, वह स्वप्न अवस्था में सत्य प्रतीत होता है, किन्तु सचेत होकर, देखने से कुछ भी नहीं मिलता है। इसी भांति संसारिक जनों को, अज्ञान अवस्था में वह माया सुख भी, स्वप्नवत्त सत्य भासता है। परन्तु जब विचार द्वारा देखें तो, सब माया प्रपंच स्वप्न सुखवत्त मिथ्या ही, अनुभव होने लगता है।

दोहा :- कोउ जन पकवान कें, स्वप्ने भरे भंडार।
नौत बुलाये नगर सब, सोइ देखुहुं बार ॥६॥

दृष्टान्त :- एक पुरूष ने स्वप्न में, अनेक प्रकार के व्यंजन बनवाये। मधुर, अलोने, सलोने, चटपटे बनवा बनवा कर, दो तीन कमरे भर दिये। सवेरे उठा तो बहुत प्रसन्न मुद्रा से दो चार आदमियों को बुलाया, जो गांव के प्रधान थे, और बोला :- सारे गांव में ढिंढोरा पिटवा दो, कि अमुख जन के यहां, आज सारा गांव चुची बच्चे सहित आकर, भोजन करें। वैसा ही पंचों ने किया। अब भोजन के समय पर लोग बाग आ गये। भोजन करने को, सभी लोग बैठे। कहा कि लाओ, समान कहां है? मिठाई वगैरा। कहा :- उस कमरे में है। खोल कर देखा तो उसमें कुछ नहीं था। बोले :- भाई ! इसमें तो मिठाई वगैरा कुछ भी सामान नहीं है। वह बोला :- दूसरे कमरे में देखो। इस प्रकार मकान के सारे कमरे खाली पड़े थे। लोगों ने कहा कि खाने का सामान कब लाया था ? वह बोला :- रात को बनवाया था। "सोई देखुहुं बार", अभी मैं सो करके देखता हूं, कि वह सामान कहां है ? फिर बताऊंगा। लोगों ने कहा :- सुसरा बेवकूफ है। इसको सुपना आया होगा। लोग बोले :- अरे ! सुपना आया था क्या ? वह बोला :- हां। सब गांव के लोग अपने अपने लोटों का पानी गिरा गिरा कर चले गये।

ब्रह्मऋषि सतगुरू देव कहते हैं कि स्वप्न के पदार्थ, जागृत काल में सत्य नहीं होते हैं।

यहु सब माया मृग जल, झूठा झिलमिल होइ।
दादू चिलका देखि करि, सत करि जाना सोइ ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया और माया का कार्य, यह सम्पूर्ण जगत रंग बिरंगा, मृगतृष्णा के जलवत झूठा ही चमचमा रहा है। जैसे मृग पशु, मरूभूमि में जल की भ्रान्ति करके, दौड़ दौड़ कर प्यासा ही मर जाता है, इसी प्रकार विषय आसक्त अज्ञानी मानव, इस मायिक सुख को भोगने के लिए, अनेक प्रकार के प्रयत्न कर करके, मर जाता है।

झूठा झिलमिल मृग जल, पाणी करि लीया ।
दादू जग प्यासा मरै, पसु प्राणी पीया ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे मध्यान् के सूर्य की किरण, पड़ने पर, मरूभूमि में झिलमिलाट रूप जल की प्रतीति होती है, और तृषा आतुर होने से, मृग उस जल की भ्रान्ति को, सत्य मानकर, मरूभूमि की तरफ दौड़कर जाता है। किन्तु वहां जाकर देखने से, वही मिथ्या जल की भ्रान्ति, फिर से सत्यवत्त प्रतीत होती है। पुनः पुनः दौड़ता है। परन्तु जल की प्राप्ति नहीं होने से, मृग प्यासे ही मर जाते हैं। इसी प्रकार माया का चमत्कार यह ऐसा है, कि इसमें नामरूप जगत प्रपंच, सत्यवत प्रतीत होता है और विषयों में आसक्त मनुष्य, अनेकों कामनाओं के बस होकर, कलेशों को ही प्राप्त होते हैं।

(पति पहचान)

छलावा छलि जायगा, सुपना बाजी सोइ ।
दादू देखि न भूलिये, यहू निज रूप न होइ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! छलावा भूत, मार्ग में जाने वाले पुरूषों को अनेक प्रकार की चेष्टा द्वारा, कभी घोड़ा बन जाता है, कभी अंगार बरसाने लगता है, कभी रोता प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार अनेकों मनुष्यों को छलता रहता है, (उनके प्राण ले लेता है)। इसी प्रकार यह माया की रचना स्वप्नवत है। इसको देखकर अर्थात् इसमें आसक्त होकर, परमेश्वर को नहीं भूल जाना। यह निज रूप परमेश्वर को प्राप्त करने का, मनुष्य देह है।

दोहा :- गांम बाहिर ऐक ठोर लखि, साधु संध्या कीन ।
भूत कपट भोजन धर्‌यो,ताली पिटत चीन ॥९॥

दृष्टान्त :- संध्या के समय एक संत, गांव के बाहर एक जगह आकर ठहरे और संध्या (भजन) करने लगे। वहां एक छलावा भूत रहता था। वह कपट के भोजन लेकर आया। महात्मा के सामने रख कर

नमस्कार किया। महात्मा जब संध्या कर चुके, तब वह भूत ताली बजाकर, हंसने लगा। महात्मा जान गये कि यह तो छलावा है। उसकी लीला से चलायमान नहीं हुए। ऐसे ही यह माया भी छलावा रूप है। स्वप्ने जैसी बाजी है। इसको देखकर तत्ववेत्ता चलायमान नहीं होते हैं।

(चितावणी)

सुपिनैं सब कुछ देखिये, जागे तो कुछ नांहि।
अैसा यहु संसार है, समझि देखि मन मांहि ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! स्वप्न अवस्था के पदार्थ सब प्रतिभासक सत्ता वाले हैं। जागृत अवस्था कहिए, व्यवहारिक सत्ता में, उनका अभाव होता है, और परमार्थ सत्ता में, यह माया का कार्य संसार भी नहीं रहता है। इस प्रकार मन में विचार करके देखो, दोनों का ही अभाव हो जाता है।

दादू ज्यौ कुछ सुपिनै देखिये, तैसा यहु संसार।
अैसा आपा जाण कर, फूल्यो कहां गवांर ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! निद्राकाल में जो प्रतीत होवै है स्वप्न सृष्टि, वैसे ही अज्ञान काल में, यह जागृत सृष्टि सत्य भासती है। परन्तु हे गंवार! विषयों के प्रेमी! माया के इस वैभव को देखकर, स्वस्वरूप आत्मा को नहीं बिसर जाना।

दादू जत्तन जत्तन करि राखिये, दिढ गहि आत्म मूल।
दूजा दृष्टि न देखिये, सब ही सैंबल फूल ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! सबका कारण मूल ब्रह्म में, अपने अन्तःकरण की वृत्ति को, ब्रह्म अभ्यास द्वारा स्थिर करिये। जैसे सैंबल के फल में केवल कपास ही होती है, और कोई खाने योग्य वस्तु नहीं होती, परन्तु उसको देखकर बहुत से जीव छले जाते हैं, इसी प्रकार नामरूप माया, यह व्यवहार काल में सत्य भासती है, तथापि परमार्थ में उसकी कोई सत्ता नहीं है। हे साधक! "दूजा दृष्टि न देखिये"— अर्थात् 'दूजा कहिए, नामरूप माया को, इसका अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप करके ही जानिये।

दादू नैनहु भरि नहिं देखिये, सब माया का रूप।
तंह ले नैना राखिये, जंह है तत्त अनूप ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण संसार के सुख, यह माया का ही स्वरूप है, इसको अपने नेत्रों से सत्यरूप करके नहीं जानना, क्योंकि यह सब मिथ्या है । अपने नेत्रों को अन्तर्मुख करके, हृदय में रखिये, जहाँ अनूप तत्व ब्रह्मस्वरूप आत्मा है ।

हस्ती हय वर धन देखि करि, फूल्यो अंगन माइ ।
भेरि दमामा एक दिन, सब ही छाड़े जाइ ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! श्रेष्ठ हाथी घोड़े और धन, इन सबको देखकर, भोगकर, संसारीजन अपने शरीर में फूले नहीं समाते हैं । परन्तु हे अज्ञानियों ! यह 'भेरि-शैनाही, 'दमामा'—नगारे, बजते हुए ही, तुम इन सबको छोड़कर, अर्थात मायिक सुखों को त्याग कर, ईश्वर से विमुख हुए, सभी लोग काल के मुंह (जन्म मरण) में चले जाएगें ।

दादू माया बिहड़ै देखतां, काया संगि न जाइ ।
कृत्तम बिहड़ै बाबरे, अजरावर ल्यो लाइ ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह माया का वैभव, देखते देखते ही, विनाश को प्राप्त होता है, और यह शरीर भी प्राण और आभासयुक्त जीव के साथ नहीं चलता है ।यद्यपि कायारूप माया तो नहीं चलती, तथापि समष्टि भाव से, माया का पसारा तो, प्रभावरूप से बना ही रहेगा । हे बेसमझ अज्ञानी ! जो भी कुछ माया का कार्य स्थूल प्रपंच है, वह तो सब कार्य कारण रूप ही है । इसलिए तूं अजर अमर ब्रह्म में लय लगा ।

दादू माया का बल देखि करि, आया अति अहंकार ।
अन्ध भया सूझै नहीं, का करि है सिरजनहार ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया का वैभव देखकर, अज्ञानी संसारीजन अति अभिमान को प्राप्त होते हैं । वही माया में अंधे अज्ञानी प्राणी विचार से शून्य होकर, यह बोलते हैं :- "परमेश्वर क्या करता है ? हम मनुष्य ही सब कुछ करते हैं । देखो, मनुष्य ने कैसे कैसे आविष्कार निकाल दिये और निकाल रहा है । ईश्वर कहां है ? सब कुछ मनुष्य ही है, और ईश्वर है भी तो, उसका क्या करें ? उसके स्मरण से क्या होगा ?

दोहा :- गूजर से गूजरी कहै पुत्री मम अब ब्याहि ।
काढ लई माया जबै, बहुरि न भाख्यो ताहि ॥१६॥

दृष्टान्त :- एक गूजरी दही दूध बेच बेच करके पांच सौ रूपया जमा कर लिये, और चूल्हे की बेवनी में गाड़ दिये। उसको अति अभिमान हो गया। अपने पति गूजर को भी अंट संट बोलने लग गई। एक रोज रात्रि को बोली :- मेरी बेटी जवान हो गई, तैंने आंखें मीच रखी हैं क्या ? इसका ब्याह करने को कोई गूजर का लड़का ढूंढ़। ब्याह करूंगी। गूजर बोला :- ब्याह करने को रूपये कहां हैं ? गूजरी बोली :- माकड़ ! तेरे भरोसे हूं के। कमाई करू सूं। रूपया पांच सौ कमा लिये। गूजर बोला :- रूपये कहां हैं ? बोली :- राख उड़्वा। चुल्हे की बेवनी में गाड़ रख्या सै। एक चोर यह बात सुन रहा था। चोर ने विचार किया "पूरा ही ठिकाना बता दिया।" वह तो कहीं इधर उधर गई, पीछे से चोर आकर, बेवनी खोदकर, पांच सौ रूपये निकाल कर ले गया। गूजरी आकर देख्या, तो बेवनी में खाडा खुद्या पड़्या सै। गूजरी के शरीर में सन्नाटा मच गया, कि रूपया तो कोई काढ़ कर ले गया। गूजर को कुछ भी नहीं बोली। कुछ दिन में गूजर ने विचार किया कि आजकल तो रांड छोरी के ब्याह का नाम ही नहीं लेती है। गूजर ने पूछा :- आजकल ब्याह करने की बात ठंडी कैसे कर दी ? गूजरी बोली :- कोई रूपये काढ ले गया। गूजर मन में समझ गया कि अब रांड में माया का मद उतर गया है। मीठी मीठी बोलती है।

ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि माया का बल देखकर, अज्ञानी सुध बुध भूल जाता है।

(विरक्तता)

मन मनसा माया रति, पंच तत परकास।
चौदह तीन्यूं लोक सब, दादू होइ उदास ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चौदह भवन और तीनों लोक, यह सब पांच भूतों का कार्य है। मन और मनसा, माया में रत्त हैं। इनको मायारूप जगत प्रपंच से उदास करके, परमेश्वर में लगाइये।

माया देखे मन खुसी, हिरदै होइ बिगास।
दादू यहु गति जीव की, अंति न पुगै आस ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया कहिए नोटों को देखकर, सोने चांदी को देखकर, संसारीजनों का मन बहुत प्रसन्न होता है। और हृदया प्रफुल्लित होकर हुलसने लगता है। सब मायावी जीवों की यही गति होती है, और माया सुखों में ही मग्न रहते हैं। परन्तु अन्त समय में किसी की भी, इससे आशा पूर्ण नहीं होती है।

मन की मूठि न मांडिये, माया के नीसाण।
पीछै ही पछिताहुगे, दादू खुटे बाण ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने मन की मुट्ठी, माया से न भरिये । माया के नामरूप चिन्हों पर, स्वांस रूपी बाणों को न चलाइये । नहीं तो अन्त सयय में फिर काल का मुकाबला करने के लिए, राम नाम सहित स्वांसरूपी बाण न रहने से, फिर पश्चाताप ही करना पड़ेगा ।

दोहा :- रज्जब तन तरकस तैं जात हैं, श्वांस स्वरूपी तीर ।
मांगे मिलै न मोल सौं, अरू यह निघटै बीर ॥१६॥

(शिसन स्वाद)

कुछ खातां कुछ खेलतां, कुछ सोवत दिन जाइ ।
कुछ विषिया रस बिलसतां, दादू गये बिलाइ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारी जीवों के इस मनुष्य देह के स्वांस, कुछ खाने पीने में, कुछ खेलने में, कुछ सोने में, कुछ विषय रस भोगने में । मानव जीवन के दिन और स्वांस नष्ट करके, इनके साथ ही नष्ट हो जाते हैं ।

(संगति कुसंगति)

मांखन मन पाहण भया, माया रस पीया ।
पाहण मन मांखन भया, राम रस लिया ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मक्खन के सदृष्य परम पवित्र मन, वह माया के प्रभाव से कहिए-माया के रंग में आसक्त होकर, निर्दयी, कपटी छली इत्यादिक दूर्गुणों सहित, पत्थर की भांति कठोर हो जाता है । और पत्थर के समान निर्दयी, निठुर, कपटी, कुटिल, ऐसे जीवों का मन, सत्संग करके, सतगुरूओं का उपदेश लेकर, उसका विचार करता हुआ, मक्खन के समान कोमल हो जाता है, राम रस को पी पी कर ।

दादू माया सौं मन बिगड्या, ज्यौं कांजी करि दूध ।
है कोई संसार में, मन करि देवै सूध ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया के रंग से अर्थात् काम क्रोध, विषय बासना से, यह मन रूपी दूध, फट गया है, जैसे कि खटाई डालने से दूध फट जाता है । अब ऐसा कोई महापुरूष है, जो इस अपवित्र मन को पवित्र बनाकर, परमेश्वर में लगा देवे ।

गंदी सौं गंदा भया, यौं गंदा सब कोइ ।
दादू लागै खूब सौं, तो खूब सरीखा होइ ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गंदी माया से लगकर, प्रीति करके, शुद्ध मन भी, गन्दा हो जाता है। इस प्रकार सभी संसारी प्राणी, गंदे हो रहे हैं। सतगुरूओं के ज्ञान उपदेश द्वारा, जब खूब सुन्दर पवित्र परमेश्वर के नाम स्मरण में लगता है, तो परमेश्वर रूप ही बन जाता है।

दोहा :- लाहौर मीयां मीर के, बादसाह गयो पास ।
राम दास जी देख धन भिष्टा कहि उदास ॥२३॥

दृष्टान्त :- लाहौर का बादशाह, मीयां मीर के डेरे पर गया। बहुत सी सम्पत्ति चढाई। फिर बादशाह ने सुना कि गुरू राम दास जी भी बड़े अच्छे संत हैं। तब उनके दर्शन करने गया और धन चढ़ाया। आप बोले :- अरे ! उठा, ये भिष्टा कहां से ले आया ? बदबू आ रही है। बादशाह बोला :- महाराज ! हमें तो नहीं आती है। गुरू रामदासजी बोले ;— तुम तो भिष्टे में लिपे बैठे हो। इसकी बास में बास, मिल रहे हो। बादशाह नत मस्तक हो गया- और बोला :— आप जैसे परमेश्वर के बन्दों को, धन्य है, धन्य है !

दादू माया सौं मन रत्त भया, विषै रसि माता ।
दादू साचा छोड़ि करि, झूठे रंगि रात्ता ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन माया के रंग में रात्ता रत्त और मात्ता मतवाला होकर, विषयों के रंग में रम रहा है। सत्य स्वरूप परमात्मा के नाम स्मरण का, इसने त्याग कर दिया है, और माया के झूठे रंग में रत्त हो रहा है।

माया के संग जे गये, ते बहुरि न आये ।
दादू माया डाकणी, इन केते खाये ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस माया का जिन्होंने संग किया, वह सभी जीव चौरासी में बह गये। फिर वापिस मनुष्य देह में आना, उनका असम्भव है। यह माया भारी डाकिनी है। इसने देवताओं को, मुनियों को, मनुष्यों को, पशु पक्षी त्रियक योनी के जन्तुओं को, इन सब हो को खा लिया है।

दोहा :- फकीर माया देखकर, हेला दिये हजार।
या डाकन खा जाइगी, दोड़्या नाखै मार ॥२५॥

दृष्टान्त :- एक फकीर मार्ग में चले आ रहे थे। माया रूप स्त्री भी प्रगट होकर, फकीर के साथ चलने लगी। फकीर कुसंग जानकर, उससे अलग हो गए। आगे एक जाट खेत बो रहा था। खेत की डोली के नीचे बैठकर रोने लगी। जाट रोने की आवाज पर आया, और देखा, एक स्त्री रो रही है। जाट पूछने लगा :- भाई ! क्यों रोती है ? उधर जाट के हल से, एक बैल खोलकर, चोर भगा ले गया। कुछ देर में में वह बोली कि मैं इस लिए रो रही हूं कि एक गऊ के जाये बैल से, हल चला रहे हैं। जो जाट हल की तरफ देखा, तो एक ही बैल दिखाई दिया। उस बैल की खोज में जाट चला, तो दूसरे बैल को दूसरा चोर ले गया। जाट को चौपट कर दिया। फिर वहां से चली। फकीर को बोली :- देखा मेरा रंग। कुछ दूर चलकर, चार असरफियों की थैली बनकर पड़ गई। सामने से चार मनुष्य आ रहे थे। फकीर दूर से आवाज दी, रास्ते में डाकन पड़ी है, खा जायेगी।" फकीर की आवाज न मानकर भी, वह पुरूष आगे ही बढे। देखा कि चार असरफियों को थैली पड़ी हैं। देखकर राजी हो गए। बोले :- फकीर बदमाश है, वह अपने ले जाने को, हमें मना करता था। दो जने बाजार में गए। उन्होंने तो अच्छे अच्छे भोजन कर लिये, और उन दो के लिये, जहर के लड्डू बनवा लिये। सोचा, वह चारों थैली हमारे पास रह जाएगीं, वह दोनों मर जाएगें। वह दो विचार किया कि आते ही उनको, दूर से गोली से उड़ा दो, अपन दो दो थैली ले लेंगे। वह दिखते ही, दोनों को गोली से उड़ा दिया और लड्डू लाये थे, उनको खाकर लम्बे ही सो गए। माया स्त्रीरूप से प्रगट होकर चलने लगी। फकीर को कहा :- देखा मेरा रंग। फकीर ने कहा :- बस दया कर। ऐसे माया सम्पूर्ण संसार को खाती रहती है। सोई परमगुरू कहते हैं कि "दादू माया डाकनी इन केते खाये०"।

दादू माया मोट विकार की, कोइ न सकै डारि।
बहि बहि मूयें बापुरे, गये बहुत पचि हारि ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह माया तो मानो विषय और विकारों की पोटली है। संसारी प्राणी विषय वासनाओं के वशीभूत होकर, इस माया को, कोई भी नहीं छोड़ता है। बिचारे देह अध्यासी प्राणी, इस माया के अनन्त विषय प्रभाव में, बह बह कर मर जाते हें। कितने ही प्राणी, माया का संग्रह करके, मनुष्य तन को नष्ट कर दिया है। इस माया के चक्र से तो, कोई बिरले ही पुरूष मुक्त होते हैं।

दादू रूप राग गुण अण सरै, जहं माया तहं जाइ।
विद्या अक्षर पंडिता, तहां रहै घर छाइ ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! रूपवान, गायन करने वाले रागी और गुणीजन, गुणों को प्रगट करने के लिए, माया में ही आसक्ति रखकर, एवं विद्यायुक्त विद्यवान, कविजन' बाचक पंडित, यह सब जहां माया होवै, उसी घर में जाकर बास करते हैं, और फिर माया की उपासना में रत्त रहते हैं ।

दोहा :- सूरदास गुण चार ले, गये बादशाह पास ।
अस्व सैया भोजन नर, करि परीक्षा जास ॥२७॥

दृष्टांत :- चार सूरदार थे। एक एक गुण चारों जानते थे । उन्होंने विचार किया कि बादशाह के पास चलकर, अपने गुणों का प्रकाश करें । चारों बादशाह के यहां गये । बादशाह को यथा योग्य नमस्कार किया । बादशाह बोला :- कैसे आये हो ? हुजूर हम चारों, चार गुण जानते हैं । एक तो घोड़े की परीक्षा जानता है । दूसरा सैया (सेज) की परीक्षा कर जानता है । तीसरा भोजन की और चौथा नर को । बादशाह ने हुक्म दिया, इनको अमुख जगह ठहरा दो । आधा आधा किलो जौ का आटा और नमक, दाल, इनकी खुराक के लिए दे दिया जावै । एक व्यापारी बादशाह के यहां, घोड़ा लेकर आया । सूरदास को बुलाया । घोड़े पर हाथ फेरा । बोला :- हुजूर ! यह घोड़ा भैंस का दूध पीया हुआ है । भैंस की चाल चलेगा । घोड़े के मालिक को पूछा :- "क्यों भई ! ठीक है ?" बोला :-हां । इसकी मां मर गई थी, तो भैंस का दूध पीला कर इसको पाला है। दूसरे दिन बादशाह के यहां सेज लेकर आया । सूरदास को बुलाया । सूरदास पलंग पर हाथ घुमाकर, थपथपा कर बजाया । बोला :- अशुभ है । इसके चारों कोनों पर चार बिनोले हैं और एक बिनोला बीच में है । खुलवा कर देखा, तो वैसा ही निकला । बासमती चावल आये । सूरदास को बुलाया । सूरदास हाथ में लेकर सूंघा और बोला :- इनमें मुरदे की बास आती है । बादशाह ने पूछा :- यह खेत कहां है ? चावल वाला बोला :- शमशान के नजदीक । चौथे सूरदास से बादशाह बोले :- अब तुम मेरी परीक्षा करो । सूरदास बोला हुजूर ! आप अपनी परीक्षा न कराओ । किसी और की करा लो । बादशाह ने कहा :- नहीं, मेरी ही करो । सूरदास बोला :- आपकी परीक्षा तो हम जिस रोज आये, उसी दिन कर ली थी । आप किसी कंजूस बनिया की औलाद हैं । बादशाह चुप हो गया । समझ गया कि इनके तीनों प्रमाण तो सिद्ध हो गये थे, और अब यह चौथा प्रमाण भी सही है । बादशाह बोला :- सूरदास मैं निश्चय कैसे करूं ? सूरदास :- अपनी मदर से पूछो । बादशाह पूछकर वापिस आया और सूरदास के सामने नत मस्तक हो गया । बोला :- यह बात किसी को नहीं कहना । सूरदास :- ऐसी बात कहने की होती है क्या ? बादशाह ने चारों सूरदासों को धन देकर बिदा कर दिया ।

ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं—"रूप राग गुण अण सरै, जहं माया तहं जाइ०"

साध न कोई पग भरै, कबहुं राज दुवारि ।
दादू उलटा आप में, बैठा ब्रह्म विचारि ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के प्यारे संतजन, अपनी वृत्ति को कभी भी मायावी सम्पत्ति में नहीं लगाते हैं, और राजा महाराजा, धन्नाड पुरूषों के यहां नहीं जाते, क्योंकि वे निर्वासनिक हैं । उनको किसी से क्या लेना है अपने मन इन्द्रियों को अन्तर्मुख करके, ब्रह्मस्वरूप आत्मा में लय लगाकर रहते हैं ।

(आसै विश्राम)

दादू अपणे अपणे घरि गये, आपा अंगि बिचारि ।
सहकामी माया मिले, निहकामी ब्रह्म संभारि ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने अन्तःकरण में जैसी जिसकी धारणा है, उसके अनुसार ही वह, उस पद को प्राप्त कर लेता है । सकामी पुरूष, अपनी कामनारूप वासना के वशीभूत होकर, माया में अर्थात् माया का कार्य संसार में जन्म लेते हैं और निष्कामी परमेश्वर के भक्त संतजन, आतमस्वरूप ब्रह्म का विचार करके, ब्रह्मरूप हो जाते हैं ।

दोहा :- सुत आदिक स्वप्न समान हैं, यह निश्चय कर जान।
कहा मंत्री से भूपने, दोनों एक समान ॥२९॥

दृष्टान्त :- एक राजा तत्ववेता थे । सैया पर सो रहे थे । उन्हें स्वप्ना आया कि मानो मेरे चार राजकुमार बेटे हुए हैं । फिर स्वप्न में ही विद्या आदि अध्ययन करके, योग्य हो गये । अचानक चारों की मृत्यु हो गई । राजा की निद्रा से आंख खुल गई । इधर मंत्री आकर बोला :- हुजूर ! आपके एक ही राजकुमार थे, उनका भी आज निधन हो गया । राजा कुछ न बोला । मंत्री :- राजकुमार का आपको शोक नहीं हुआ, क्या कारण है ? राजा :- चार राजकुमार मर चुके, उनका सोच करूं या इस एक का । मंत्री :- वह तो स्वप्न के थे । राजा :- यह भी तो स्वप्न का ही है । निद्रा से आंख खुलते ही, वह सृष्टि कहां है ? ऐसे ही बोध काल में, यह सृष्टि कहां रह जाती है ? दोनों समान हैं शोक तो यह करो, कि मनुष्य जन्म पाकर, हमने, आत्मा को प्राप्त नहीं किया । राजा के वचन सुनकर, मंत्री नत मस्तक हो गया ।

ब्रह्मऋषि कहते हैं, कि जैसी जिसकी धारणा है, वह उसी पद को प्राप्त करता है ।

(माया)

दादू माया मगन जु व्है रहे, हमसे जीव अपार ।
माया मांहै ले रही, डूबै काली धार ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजन, माया में मग्न रहते हैं, और वह माया उनको, अपनी वासनारूप धार (पाप की भावना) में लेकर, संसार के जन्म मरण में डुबोती है । ऐसे संसारी जीव, पुनः पुनः माया की धार में बहते रहते हैं, और पाप कर्म करते रहते हैं ।

(शिसन स्वाद)

दादू विषय के कारणै रूप रात्ते रहै, नैन नापाक यौं कीन्ह भाई ।
बदी की बात सुणत सारा दिन, श्रवण नापाक यौं कीन्ह जाई ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन इन्द्रियों के स्वादों में फंसकर, अपने नेत्र इन्द्रिय को रूप भोगने की इच्छा से, अति सुन्दर स्त्री आदि के रूप में लगाकर, नापाक (अपवित्र) बनाते हैं । और सब दिन दूसरों की निन्दा चुगली आदि में श्रोत्र इन्द्रिये को लगातार, अपवित्र करते हैं ।

स्वाद के कारणै लुब्ध लागी रहै, जिभ्या नापाक यों कीन्ह खाई ।
भोग के कारणै भूख लागी रहै, अंग नापाक यौं कीन्ह लाई ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वादों के कारण इच्छा लगी रहती है, साधारण मनुष्य की । मधुर, कटुक, क्षार, कसाय, अम्ल, तिक्त, इन छः प्रकार के रसों में जिह्वा को लगाकर, नापाक वना ली है । और स्त्री संभोग के लिये, इच्छा बढ़ती ही रहती है । इस प्रकार अज्ञानी संसारी मनुष्य, स्त्री आदि पदार्थों में, इस शरीर को लगाकर नापाक कर दिया है । इन विषयों को त्यागकर, जो अपनी पांचों ज्ञान इन्द्रियों को ईश्वर की तरफ लगाता है, वह पुरूष अपना कल्याण कर लेता है ।

दोहा :- गंधारि सुत बजर करि, अमी नैन की डार ।
जल्लण जट कंचन कीये, बाट बणक के सार ॥३२॥

दृष्टान्त :- राजा धृतराष्ट्र की रानी गंधारि पतिव्रता थी । अपनी आंखों के पट्टी बाँधकर रहा करती थी । महाराज भोजन करने आते, तब पट्टी खोलती । भोजन कराके फिर पट्टी चढ़ा लेती । महाभारत के समय भगवान कृष्ण से दुर्योधन ने पूछा :- कि ऐसी कोई युक्ति बतलाओ जो मेरा

शरीर बज्र का बन जाय । भगवान बोले :- राजा युधिष्ठर जानते हैं । दुर्योधन गया । युधिष्ठर से पूछा । युधिष्ठर बोले, आपकी माता जी आंखों की पट्टी खोलकर आपके नंगे शरीर को देख लें, तो आप बज्र के बन जाओगे । तत्काल माता के पास आया और बोला :- माता जी आप मेरे शरीर को देख लेना, मैं कपड़े उतार कर आता हूं । माता ने कहा :- अच्छा पुत्र । भगवान कृष्ण जान गये और तत्काल दुर्योधन के महल में प्रगट हो गये । बोले :- दुर्योधन ! क्या करते हो ? दुर्योधन बोला :- बज्र का बनने माता के पास जाता हूं । भगवान :— जवान लड़के का माता के सामने नंगा जाना, शास्त्र में भारी पाप बतलाया है । दुर्योधन :- बज्र का बनना है । भगवान :- फूलों का कच्छा पहन कर जाओ वह वस्त्र नहीं है । (भारत में फूलों के वस्त्र भी तैयार होते थे) । दुर्योधन : अच्छा । कृष्ण चले गये । दुर्योधन माता के सामने से निकले । गंधारी ने नेत्रों से पुत्र के बदन पर अमी डालकर, बज्र का बना दिया । गंधारी :- पुत्र ! वस्त्र धारण करके आना। फिर पट्टी चढ़ा ली । दुर्योधन आया । पुत्र ! जितनी दूर में फूलों का कच्छा पहना था, वह अंग आपका कच्चा है । वहां कोई हथियार लगेगा, तो तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी, क्योंकि वह अंग मुझे दिखलाई नहीं पड़ा है । रूकी हुई इन्द्रिये में ऐसी ताकत होती है ।

दूसरा दृष्टान्त :- महात्मा जल्लण करके जाट थे । अनायास ही एक भक्त बनिये की दुकान पर आकर बैठे, और उस बनिये की सरलता निश्छल्ता देखकर, तोलने के बट्टों पर आप दृष्टि डालकर, संकल्प किया कि ये स्वर्ण के हो जावैं । तत्काल स्वर्ण के बन गए । बनिया चरणों में नमस्कार करके कहने लगा, धन्य हो ! धन्य हो !

ब्रह्मऋषि सतगुरू कहते हैं कि नेत्र आदि इन्द्रिये, निग्रह की हुई हों, तो उनकी ताकत उनमें रहती है । संकल्प मात्र से सब होता है ।

दादू नगरी चैन तब, जब इक राजी होइ ।
द्वै राजी दुख द्वन्द में, सुखी न बैसै कोइ ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! व्यवहार में जैसे एक राजा की अधीनता' में सुख सम्पत्ति रहती है, वैसे ही कायारूपी नगरी में शुद्ध मनरूप राजा होने से, 'राजा' मन, और 'प्रजा' पच्चीस प्रकृतियां; पंच ज्ञानेन्द्रिय सहित सब बास करते हैं । और जहां दो का शासन होवे वहां राजा और प्रजा, दोनों में ही अशान्ति रहती है, सुख से नहीं बसते हैं ।

इक राजी आनन्द है, नगरी निश्चल बास ।
राजा परजा सुखि बसै, दादू जोति प्रकास ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक के राज में सुख होता है । प्रजागण और राजा सुख से बसते हैं । तथा सुख सम्पत्ति की वृद्धि होती है । दाराष्टान्त में कायारूप नगरी में राम का राज होने से, ज्योतिमय प्रकाश रूप परमेश्वर में, जिज्ञासुओं की वृत्ति स्थिर रहने से, परम आनन्द उत्पन्न होता है ।

(शिसन स्वाद)

जैसैं कुंजर काम बस, आप बंधाणा आइ ।
ऐसैं दादू हम भये, क्यौं कर निकस्या जाइ ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक काम इन्द्री के स्वाद में फंसकर, बन में हाथी, कागज की हथनी देखकर, स्पर्श अर्थ आता है और गढे में गिर जाता है । काम अन्ध हाथी अपने शरीर में अंकुस खाता रहता है । दाराष्टान्त में अज्ञानी काम बस मनुष्य, स्त्री आदि से काम वासना अर्थ प्रीति करके, संसार रूपी अंध कूप में गिरता है । पुनः पुनः जम की मार खाता है । अब उस स्त्री आदि फन्दों से कैसे मुक्त होवै ।

शेर :- माया के मद को पीकर, फिरता अविद्या रात मैं ।
चश्म अन्दर के मीचे, फंस गया जाति जमात मैं ।
देख करणी आपनी, हस्ती पड़ा है खात मैं ।
अंकूस खाता शीश पर, बंध कर विषयों की गात मैं ॥३५॥

(खात = गढ़ा)

जैसैं मर्कट जीभ रस, आप बंधाणा अंध ।
ऐसैं दादू हम भये, क्यों करि छूटै फंध ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस प्रकार बन्दर, रसना के स्वाद में फंसकर बन्धन में आ जाता है । बन्दर पकड़ने वाले, छोटे मुंह के घड़े में चने डालकर, जमीन में गाड़ देते हैं । मुंह बाहर रखते हैं । थोड़े चने आस पास बखेर देते हैं । बन्दर दौड़कर आता है, घड़े में हाथ डाला । चने बहुत होने से दूसरा हाथ भी डाल देता है । दोनों मुट्ठी भर कर, हाथ साथ निकालता है । मुंह छोटा होने से हाथ नहीं निकल पाते । बाजीगर गले में जंजीर डालकर कब्जे कर लेता है । इसी प्रकार अज्ञानी जीव, विषयरूपी चनों के स्वाद में, मायारूप बाजीगर के फंदे में फंस जाता है । और फिर नाचता रहता है ।

ज्यूं सूवा सुख कारणै, बंध्या मुरख मांहि ।
ऐसैं दादू हम भये, क्यौं ही निकसै नांहि ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे तोता पक्का फल खाने के स्वाद में आकर, आप ही पिंजरे में बंध जाता है। तोता पकड़ने वाले, दो चार पक्के फल जमीन पर डाल देते हैं। एक पानी का कुंडा रख देते हैं। कुंडे के ऊपर, घूमने वाली एक चक्री लगा देते हैं। तोता आकर फल खाता है, ऊपर फिरनी पर जा बैठता है। फिरनी घूम जाती है, तोता पानी के कुंडे में अपना प्रतिबिम्ब देखता है और डर कर बोलने लगता हैं। पंजो से फिरनी को नहीं छोड़ता है। जानता है कि डूब कर मर जाऊंगा। तोता पकड़ने वाला तत्काल आता है। तोते को पकड़कर, पिंजरा रूपी कैद में बन्द कर लेता है। दाराष्टान्त में संसारीजन, नाना प्रकार के माया के सुखों को भोगते हुए, आप ही बन्धन में बंध जाते हैं।

दोहा :- ज्यूँ सूवा सठ ज्ञान बिन, नलनी लटकै आप ।
त्यों रज्जब हम होइ करि, देहीं कौंन शिर पाप ॥३७॥

जैसैं अंध अज्ञान गृह, बंध्या मुरिख स्वाद ।
अैसैं दादू हम भये, जन्म गंवाया बादि ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अन्धा किसी के घर में भोजन करने घुस जावे, तो फिर वह अपने आप बाहर नहीं आ सकता। इथर उधर धक्के खाता है। ऐसे संसारी अज्ञानी मनुष्य, ज्ञान विचाररूपी नेत्रों से हीन, माया के स्वादों में फंस कर, संसार बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते। वह अपने मनुष्य जन्म को वृथा ही गंबा देते हैं।

दादू बूड रह्या रे बापुरें, माया गृह के कूप ।
मोह्या कनक अरू कामिनी, नानां विधि के रूप ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस माया ने, स्त्री सोना और अनेकों रूप बनाकर, जीवों को आर्काषित कर लिया है। कुंजर, मर्कट, मछली, भंवरा, मृग आदि की भांति ही, 'बापुरे' कहिये विचारे अज्ञानीजन, भोगों के बस होकर, संसार के दुखों में डूब रहे हैं।

(शिसन स्वाद)

दादू स्वाद लागि संसार सब, देखत परलै जाइ ।
इन्द्रि स्वारथ सांच तजि, सबै बंधाणै आइ ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विषयी मनुष्य, इन्द्रियों के स्वादों में लगकर, तत्ववेत्ताओं के देखते देखते, नास को प्राप्त हो रहे हैं । परन्तु फिर भी विषय सुख के लिए, अज्ञानीजन, सत्यस्वरूप परमेश्वर की प्राप्तिरूप सुख को छोड़कर, आप ही माया और माया के कार्य, मोह बन्धन में बंध गये हैं ।

दोहा :- बुधि कर च्यारू बस किये, धर्म ध्वजा बल तास ।
साह रीझ सरबस दीयो, सु कहै जग जीवन दास ॥४०॥

दृष्टान्त :- एक बादशाह के नगर में, एक पतिव्रता देवी थी । वह बड़ी रूपवान और चरित्रवान थी । उसके पतिदेव विदेश में गये हुए थे । उसके रूप की महिमा सर्वत्र फैल रही थी । शहर के कोतवाल ने विचार किया कि मैं उससे प्यार करूं । उसके एक नौकरानी थी । उसको बोला :- तुम अपनी मालकानी से बोलना कि कोतवाल साहब आपसे मिलना चाहते हैं । ऐसे ही वहां के दीवान ने भी खबर भेजी । वजीर और शहजादा ने भी, ऐसी ही खबर भेजी । वह समझ गई, और चार बड़े सन्दूक मंगवाये । नौकरानी को समझा दिया कि तुम पन्द्रह पन्द्रह मिनट पर आकर ऐसे बोलना । कोतवाल को खबर करा दी कि आज आज १० बजे रात को, आप को अमुख देवी ने याद किया है । कोतवाल बहुत खुश हुआ, सही टाईम पर पहुंचा । नौकरानी ने दरवाजा बन्द कर दिया । पतिव्रता देवी और कोतवाल की बात हो रही थी, पन्द्रह मिनट के बाद किवाड़ खटखटाये । नौकरानी बोली :- कौन हैं ? दीवान । मालकानी से जाकर बोली, दीवान साहब आये हैं । कोतवाल घबराये । मुझे कहीं छिपा दो । देवी बोली :- इस सन्दूक में बैठ जाइये । उनसे बात करके उनको भेज दूगीं, आपको निकाल लूंगी । दासी ने दरवाजा खोला । दीवान साहब आये । उस रोज एक घंटे में ही चारों को आमंत्रित करके, बुलाये थे । इस प्रकार दीवान साहब को भी बन्द किया, वजीर के आने पर । १५ मिनट के बाद शाहजादा आ गया । वजीर को बन्द कर दिया । दासी को पहले बतला दिया कि शहजादा आने के बाद, तुम खुद ही दरवाजा खटखटा देना और बोलना आप के पति आ गये हैं । जब दासी आकर बोली कि आप के पतिदेव आ गये । शाहजादा घबरा गया, मुझे छिपाओ । चौथे सन्दूक में, शाहजादा को बन्द कर दिया । चारों के ताले लगाकर, नौकरानी और मालकानी निर्भय होकर रात को सो गए । प्रातःकाल अपनी दिन चर्या से निमट कर, किसी वाहन में चारों सन्दूक रखवाए, आप मरदाने कपड़े पहनकर, बाजार के बीच वाहन लाकर खड़ा कर दिया । और आवाज लगवाई, इन चारों सन्दूकों में अजीब माल है, जिसको खरीदना हो आ जाओ । दुनियां एकत्रित हो गई ।

पहले सन्दूक पर कीमत पच्चीस हजार, दूसरे पर पचास हजार, तीसरे पर पचहत्तर हजार, चौथे पर एक लाख लिखे थे । खरीदने वाले तैयार हो गए । सौदागर बोले :- राजा के दरबार में खोले जाएंगे । राजा के आम खास दरबार में, सौदागर ने लाईन से सन्दूक रखवा दिये । राजा को नमस्कार किया । राजा बोले :- इनमें क्या चीज है ? हुजूर के सामने अभी दिखलाई जाती हैं । पच्चीस हजार का ताला खोला, ढक्कन हटाया, कोतवाल साहब अन्दर शरमा गये । बादशाह ने देखा और बोले :- इधर बैठो । बादशाह समझ गया कि सौदागर बहुत ही बुद्धिवान है । तरीके से गिरफ्तार किया है । दूसरा पचास हजार का सन्दूक खोला, ढक्कन हटाया । बादशाह देखा, तो दीवान बैठा है । इधर आओ । इधर बैठो । तीसरा पचहत्तर हजार का संदूक खोला, उसमें वजीर को देखा । उसे भी बादशाह ने कहा इधर बैठो । चौथा एक लाख का संदूक खोला । बादशाह ने अपना शहजादा देखा । तत्काल बादशाह की लाल आंखें हो गई । बोला :- तुम भी इधर आकर बैठो । बादशाह सौदागर से बोले :- "आप कौन हैं ? मुझे भारी आश्चर्य हो रहा है, आप प्रगट हो जाओ ।" 'पतिव्रता देवी बोली :- मैं आपकी धर्म की पुत्री हूं, आप मेरे पिता हैं । यह चारों कई दिनों से मेरा, धर्म नष्ट करने के लिये, पीछे पड़े हुए थे । मैंने सोचा कि बादशाह के दरबार में, इनको पेश कर दूं । मेरा अपराध क्षमा हो । मैं इनको आपके सामने अपनी चतुरता से लाकर, पेश किये हैं । फैसला पिता के हाथ में है, जैसा करें । बादशाह यह सुन कर गद्गद् हो गया और बोला, इन चारों को देश निकाला दे दिया जावे और प्रसन्न होकर, उस पतिव्रता देवी को अपनी राजगद्दी देकर, बादशाह मालिक की याद में लयलीन हो गये ।

ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज कहते हैं कि भोग वासना में फंस कर, इस प्रकार बन्धन में बंध जाते हैं ।

विष सुख मांहै रम रहे, माया हित चित्त लाय ।
सोई संतजन ऊबरे, स्वाद छाड़ गुण गाय ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजन, मायिक सुखों में चित्त के हित से, रम रहे हैं, अर्थात् विषय सुख में लग रहे हैं । परन्तु कोई विवेकी संतजन ही, विषय सुखों को त्यागकर, गोविन्द के गुणानवाद गाते हैं, वही माया के प्रभाव से मुक्त होते हैं ।

(आसक्तता मोह)

दादू झूठी काया झूठा घर, झूठा यहु परिवार ।
झूठी माया देखकर, फूल्यो कहां गंवार ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह काया शरीर मिथ्या है। घर द्वार भी मिथ्या है। अज्ञानता से जो अपना परिवार माना है, विचार करने से वह भी मिथ्या है। हे गंवार ! विषय सुख का प्रेमी ! इस मिथ्या मायावी विषय सुखों को देखकर, क्या फूल रहा है ? अर्थात् क्या राजी हो रहा है ?

दादू झूठा संसार, झूठा परिवार, झूठा घर बार,
झूठा नर नारि, तहां मन मानैं।
झूठा कुल जात, झूठा पित मात, झूठा बंध भ्रात,
झूठा तन गात, सत करि जानै।
झूठा सब धन्ध, झूठा सब फंध, झूठा सब अंध,
झूठा जाचंद, कहा मघ छानै।
दादू भागि झूठ सब त्यागी,
जाग रे जाग देखि दिवाने ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह संसार मिथ्या है। कुटम्ब, स्थान मकान, स्त्री पुरुष का नाता, इनमें क्या मन आसक्त करता है ? बंस, गोत्र, मातृ पितृ का स्नेह प्रेम, भ्राता का सम्बन्ध, यह सभी मिथ्या है। इनको भ्रम से, हे अंधे ! हे विषय सुख की याचना करने वाले ! अविवेकी जनों ? परमेश्वर की भक्ति का मार्ग, तैने जन्म जन्मान्तरों से त्यागकर, माया का मार्ग अब क्यों छानते हो ? हे बहिर्मुख प्राणी ! हरि की प्राप्ति का मार्ग, कौन नहीं जानता है ? हे मूर्ख ! हे दीवाने ! इस संसार के, इन मिथ्या सम्बन्धों को छोड़कर, इस माया के जाल से अलग होकर, अन्तःकरण को शुद्ध करके, अज्ञान निद्रा से जाग कर, परमेश्वर के स्वरूप का साक्षातकार कर। इसी में तेरा कल्याण है।

दादू झूठे तन के कारणै, कीये बहुत विकार।
गृह दारा धन संपदा, पूत कुटुम्ब परिवार ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मिथ्या शरीर के लिए, तुमने बहुत विकार किये हैं। स्त्री, पुत्र, धन, पौत्र, इन परिजनों के लिये भी तुमने बड़े बड़े पाप कर्म किये हैं।

ता कारणि हति आतमा, झूठ कपट अहंकार।
सो माटी मिल जाइगा, बिसर्‌या सिरजनहार ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तुमने अपने मिथ्या परिवार के लिए मिथ्या भाषण, कपट अहंकार आदि द्वारा बहुत से जीवों की हत्या करी है और अपनी जीवात्मा की भी हत्या करते हो, अर्थात् स्वस्वरूप को भी तुम भूल गये हो । परन्तु यह स्थूल शरीर तो, एक दिन मिट्टी में मिलेगा, इसके लिए तुम, क्यों परमेश्वर को भूलते हो ?

दादू जन्म गया सब देखतां, झूटी के संगी लागि ।
सांचे प्रीतम को मिलै, भाग सकै तौ भागि ॥४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मनुष्य जन्म मायिक पदार्थों को देखने और भोगने में ही जा रहा है । अब तुम सत्यस्वरूप प्यारे प्रीतम परमेश्वर से मिल कर, मनुष्य जन्म को सार्थक बनाना है तब तो, इस मिथ्या माया प्रपंच को त्याग कर, भाग सकते हो तो भागो । इसी में तुम्हारा कल्याण है ।

दादू गतं गृहं गतं धनं, गतं दारा सुत जोबनं ।
गतं माता गतं पिता, गतं बंधु सज्जनं ।
गतं आपा गतं परा, गतं संसार कत रंजनं ।
भजसि भजसि रे मन, परब्रह्म निरंजनम् ॥४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब उपरोक्त सिद्धान्त को ही इस साखी से फिर स्पष्ट करते हैं। हे प्राणधारी ! जिन गृह-घर, दारा-स्त्री, पुत्र, परिवार, धन, सम्पदा आदि के निमित, तुमने सत्यस्वरूप ईश्वर को बिसार दिया है, ये सब तो नाशवान हैं, और क्या कहैं ? यह माया की रचना, सम्पूर्ण संसार ही विनाशी है । हे प्रिय ! इस संसार में 'रंजन' कहिए सुख कहां है ? यह तो स्वप्नवत संसार है । इस मिथ्या संसार में क्या आसक्त हो रहा हैं ? हे साधक ! इस सम्पूर्ण संसार से अनासक्त रहकर, निरंजन स्वरूप परब्रह्म का नाम स्मरण कर ।

(आसक्ति मोह)

जीवौं मांहै जीव रहै, ऐसा माया मोह ।
सांई सूधा सब गया, दादू नहीं अंदोह ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस माया का ऐसा चमत्कार है कि संसारीजनों का जीवरूप मन, जीवों मांहै,—स्त्री पुत्र पौत्र, इन परीजनों में ही, रात दिन मस्त रहता है । यह ऐसा माया का कार्य, मोह ममता

है। इसीलिए परमेश्वर की प्राप्तिरूप, यह मनुष्य जन्मरूपी अवसर, अज्ञानियों का वृथा जा रहा है। इसमें किंचित भी संदेह नहीं है। इस प्रकार, अपना सर्वस्व खोकर भी, अज्ञानी जीवों को कुछ भी अंदोह कहिए चिंता शोक एवं विवेक नहीं हुआ है, क्योंकि 'सांई सूधा'—कहिए प्रभु के सन्मुख होकर, अनन्य भक्ति द्वारा, सम्पूर्ण माया के जाल का नाश हो जाता है।

(विरक्तता)

माया मगहर खेत खर, सद्गति कदे न होइ।
जे बंचै ते देवता, राम सरीखे सोइ ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह माया और माया का कार्य, मगहर भूमि के समान है। जो इससे प्रीति करता है, स्नेह करता है, रत्त होता है, वह अज्ञानी पुरूष, खर आदि, अनेकों चौरासी की योनियों में जन्मता मरता रहता है, और दुख पाता है जैसे कासी के परे मगहर भूमि सुनी जाती है, जिसमें मरै तो गधे की योनि पाता है। सुनते हैं वही व्यास जी ने शराय दिया था। उसकी सद्गति नहीं होती है। इसी प्रकार, इस मायारूप मगहर भूमि से, जो बचते हैं, अर्थात् अलग रहते हैं। वह मनुष्यों में देवरूप कहे जाते हैं और वह राम का भजन करके, रामरूप हो जाते हैं।

कालर खेत न नीपजै, जो बाहै सौ बार।
दादू हानी बीज की, क्या पचि मरै गंवार ॥५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ऊसर भूमि के खेत में, चाहे सौ दफा बीज बोया जावै, तो भी उसमें फसल नहीं होती है। उस भूमि से फसल प्राप्त करने के लिये, हे गंवार ! क्यों पचि पचि के मरा जाता है ? वहां तो बीज ही नष्ट हो जाएगा। दाराष्टान्त में पामर मनुष्यों का हृदय ही मानो ऊसर भूमि हैं। उपदेश ही बीज है। गंवार कहिए, विषयों के प्रेमी अज्ञानियों को, उपदेश करना ही मानो, कालर भूमि में बीज डालना है। उस उपदेश रूप बीज की हानी ही होती है। उनको मोक्ष रूपी फसल प्राप्त नहीं होती।

दादू इस संसार सौं, निमख न कीजे नेह।
जामण मरण आवटणा, छिन छिन दाझै देह ॥५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस माया के कार्यरूप संसार से, विषय वासनारूपी भोगों की इच्छा रखकर, प्रेम नहीं करना। नहीं तो फिर जन्मना, मरना और आवटणा कहिए अनेक प्रकार के संकल्पों को प्राप्त होना रूप, दुख ही प्राप्त होगा और क्षण क्षण में शरीर जलता रहेगा।

दोहा :- सेवग द्वारे साधु रह, तारत मै भयो भूत ।
दुजे सेति आइ कहि, छोड़ गयो अवधूत ॥५१॥

दृष्टांत :- एक सेठ ने हवेली खरीदी और अपने गुरू जी से बोला :- महाराज ! आप इस हवेली में कुछ दिन निवास करो । संत रहने लगे । हवेली के तारत में एक भूत रहता था । महात्मा जी के रहने से, भूत को विक्षेप होने लगा । महात्मा जी से तो कुछ कह नहीं पाया । दूसरे पड़ौसी को भूत बोला :- कि तुम महात्मा जी को बोल दो कि इस हवेली में से चले जायें, क्योंकि मेरी स्वतन्त्रता में, महात्मा जी के रहने से अड़चन आती है । वह बनिया, महात्मा जी को इस लिये रखे हैं कि यहा से भूत भाग जाय । परन्तु मैं नहीं जाऊंगा । जब पड़ोसी ने महात्मा जी को भूत का सब आख्यान सुनाया, तो महात्मा तुरन्त वहां से चले गये ।

ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि संसार के प्राणियों से किंचित भी स्नेह नहीं करना । इनके साथ स्नेह करने से दुख ही होता है ।

दादू मोह संसार को, बिहरै तन मन प्राण ।
दादू छूटै ज्ञान करी, को साधु संत सुजाण ॥५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह संसार का मोह, तन तन और प्राणों को हर लेता है । इस संसार के मोह से नित्य अनित्य के विचार द्वारा, कोई बिरले महापुरूष, संत सुजान, प्रवीण, ज्ञान भक्ति में निपुण, वही इससे मुक्त होते हैं ।

मन हस्ती माया हस्तीनी, सघन बन संसार ।
तामैं निर्भै व्है रह्या, दादू मुग्ध गंवार ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे हाथी सघन बन में विचरता है और हस्थनियों के साथ क्रीड़ा करता है, इसी प्रकार यह माया का कार्य संसार ही, सघन बन है और नाना प्रकार की चहल पहल, यह इस बन की हरियाली है । सकामी, अज्ञानी, संसारीजनों का मन ही हाथी रूप है । इस संसार की चहल पहल देखकर मस्त रहता है । और मायारूपी स्त्री ही मानो, हथनी है । इस तरह यह मनरूप हाथी, काल कर्म के भय से निर्भय हो रहा है । ऐसे मोह में 'गंवार' कहिए विषयों का यार, अन्धा हो रहा है ।

दादू काम कठिन घटि चोर है, घर फोड़ै दिन रात ।
सोवत साह न जागई, तत्त वस्तु ले जात ॥५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! व्यवहार काल में घर का मालिक सजग नहीं रहै तो, चोर घर को फोड़कर, सम्पूर्ण सम्पत्ति चुरा ले जाता है । दाराष्टान्त में जीवरूप साहुकार है अज्ञान अवस्था में ही काम वासना रूपी चोर है । स्थूल शरीर रूपी घर को कमजोर जीर्ण बनाकर, वीर्य विन्दु को विषयों में, अर्थात् स्त्री आदि पदार्थों में ले जाकर खत्म कर देता है । अगर जीवरूप साहूकार, विवेक विचार रूप जागृत अवस्था अवस्था में रहे, तो चोर जीवरूप साहूकार की कुछ भी क्षति नहीं कर सकते ।

दोहा :- अरहा सरहा अस्व को, अगम ले गयो चोर ।
कह जगजीवन राम जी, पड़्यौ शहर में शोर ॥५४॥

दृष्टान्त :- एक राजा के यहां अरहा और सरहा, जल पर चलने वाले दो घोड़े थे । एक चोर ने विचार किया कि वह दोनों घोड़े, मैं चुरा कर ले आऊं । तब उसने अपना अफसर का रूप बनाया और घोड़े पर सवार होकर, किले में आया । पहरेदारों ने कहा :- कौन है ? वह बोला :- चोर । पहरेदार सोचने लगा, जो चोर होता है, वह अपने को चोर थोड़ा ही बताता है, यह तो कोई अफसर है । पहरेदार :- अच्छा साहब ! जाइये । चोर :- जा रहा हूं । जहां घोड़े थे, वहां पहुंच गया । अपमे घोड़े से उतरा और उन दोनों अरहा, सरहा घोड़ों पर जीन की । पहरेदार देख रहे थे । वह विचार करने लगे, देखो ! राजा जी के खास घोड़ों पर जीन कर रहा है, यह घोड़े राजा जी ने मगवाये हैं, अपने को चोर कहकर, 'हमसे मखोल करता है । अपना घोड़ा वहीं छोड़ दिया । एक घोड़े पर बैठा, दूसरे घोड़े को पीछे बांध लिया । वहां से चल पड़ा । चोर सोचने लगा :- "पहरेदारों ने मुझे चोर नहीं समझा है । यह धोखे में हैं ।" वह बोला कि भाई ! मैं सचमुच चोर हूं, तुम धोखे में मत रहना । यह कहकर घोड़े के एड़ मारी और दरियाव के बीच में होकर, दोनों घोड़ों को ले गया । राजा के सहित सारे शहर में शोर पड़ गया कि अरहा सरहा अस्व को चोर ले गया ।

ब्रह्मऋषि सतगुरू देव कहते हैं कि पहरेदारों की अचेत अवस्था में ही कामरूपी चोर, विवेक और वैराग्य रूपी 'अरहा सरहा', को ले जाता है ।

काम कठिन घट चोर है, मूसै भरे भंडार ।
सोवत ही लें जाइगा, चेतन पहरे चार ॥५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर धारियों में, यह काम बड़ा भारी छिपा हुआ चोर है । जो क्षणभर अज्ञान निद्रा में स्त्री संग होते ही, भरे हुए वीर्य बिन्दू के भंडार को, मूसै कहिए चुरावै, अर्थात् नष्ट कर

देता है। हे साधको ! आयु की बाल्य अवस्था, किशोर अवस्था, युवा अवस्था, वृद्ध अवस्था, इन चारों अवस्थाओं में सावधान रहिये। अर्थात् विषयों के संग का त्याग करिये। अथवा जीवरूप सेठ के मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, यह चारों ही मानो चौकीदार हैं। इन पहरेदारों को सदा, कामरूप चोर से बचने के लिए सावधान रखिये। तब जीव को स्वस्वरूप प्राप्तिरूप, मोक्ष सुख प्राप्त होता है।

ज्यौं घुण लागै काठ को, लोहा लागै काट।
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट ॥५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस प्रकार काठ में कीड़ा लग जावै, तो उसको भीतर ही भीतर चूरा बना देता है। और लोहा के जंग लग जाये, तो लोहे को सहज सहज नष्ट कर देता है। इसी प्रकार यह कामरूप शत्रु, अविवेकी पुरुषों के शरीर को, इन्द्रियों को जरजर (खोखला) बना देता है। और दस इन्द्रियां, मन, बुद्धि को बहिर्मुख बनाकर, मोक्ष मार्ग से नष्ट कर देता है।

(करतुति कर्म)

राह गिलै ज्यों चंद को, गहण गिलै ज्यों सूर।
कर्म गिलै यौं जीव कौं, नख सिख लागै पूर ॥५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! व्यवहारकाल में जैसे राहु चन्द्रमा को और केतु सूर्य को ग्रस्ता है, वैसे ही 'राह' कहिए निसिद्ध सकाम कर्मो के मार्ग पर चलने से तो, जीव का चन्द्रमा स्वरूप मन मलीन हो जाता है। और 'गहण' कहिए अज्ञान रूपी केतु, जीवात्मा के शुभ संस्कार रूपी सूर्य को ग्रसता है। इस प्रकार से यह कर्म बन्धन जीवात्मा को माया में आसक्त करते हैं। दृष्टान्त में जैसे सूर्य चन्द्र के गहने से सर्वत्र अन्धकार छा जाता है, ऐसे ही माया में मोहित हुए जीवात्मा की नख से शिखा पर्यन्त, अविद्या में ही प्रवृति होती है।

दादू चन्द्र गिलै जब राह को, गहण गिलै जब सूर।
जीव गिलै जब कर्म को, राम रह्या भरपूर ॥५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब व्यवहारकाल में चन्द्रमा और सूर्य अपनी गति पर चलते हैं, रुकैं नहीं, और राहु केतु की राशियों को उलंघन कर जावैं, वही राहु और केतु का ग्रसना है। दाराष्टान्त में चन्द्रमारूप मन निष्पाप होवै और सूर्य रूपी शुभ संस्कार, उनके बल से अविद्यारूप अज्ञान का नाश होवै, तथा आत्मज्ञान का प्रकाश अन्तःकरण में प्रगटै, तब ही मुमुक्षु कर्मो के बन्धन से मुक्त होकर, वह तत्वदर्शी बन जाते हैं। और फिर जड़ चेतन में उनको एक राम का ही दर्शन होने लगता है।

कर्म कुहाड़ा अंग बन, काटत बारंबार ।
अपने हाथों आप कौं, काटत है संसार ॥५९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन, निसिद्ध कर्मरूपी कुल्हाड़ा लेकर, अपने शरीर रूपी बन को आप ही काट रहे हैं । अर्थात् पुनः पुनः निसिद्ध कर्मों में प्रवृत्त हो रहे हैं । इस प्रकार बहिर्मुख, मनरूपी हाथ से, पापों द्वारा, अपने आप को नष्ट करते हैं ।

(मित्रता शत्रुता)

आपै मारै आप कौं, यहु जीव बिचारा ।
साहिब राखणहार है, सो हितु हमारा ॥६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह अज्ञानी जीव सकाम कर्मों द्वारा, अपने आपको आप ही, आत्मा से विमुख रूप, मरणे को प्राप्त होता है । और परमेश्वर हमारा, कहिए जीवों का अत्यन्त हितैषी है, जो चौरासी से निकाल कर, इस जीव को मनुष्य जन्म देता है, और जीव को अपनी दया द्वारा, अपना अंश जानकर, फिर भी रक्षा करता है ।

आपै मारै आपकौं, आप आपकौं खाइ ।
आपै अपणा काल है, दादू कहि समझाइ ॥६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह बहिर्मुख प्राणी, आप ही अपने को, विषय आसक्ति रूप विष से मारता है, और आप ही विवेक वैराग्य द्वारा, अपने अनात्म अहंकार को, खा लेता है, अर्थात् नष्ट करता है । ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि बुरी पापमय वासना से, आप ही अपने आपको कालरूप होकर खा लेता है ।

(करतुती कर्म)

मरीवे की सब ऊपजै, जीवे की कुछ नांहि ।
जीवे की जाणैं नहीं, मरवे की मन मांहि ॥६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी जीवों के अन्तःकरण में मलीन वासना उत्पन्न होती है, और वह मलीन कर्मों में प्रवृत्त करती है, परन्तु वह अज्ञानी जीव, जीने के लिये निष्काम कर्म आदि कुछ नहीं करते हैं । सदैव जीवित रहने के, अर्थात् आत्मनिष्ट होने के, मार्ग को तो, भूल ही गये हैं । पुनः पुनः जन्म मृत्यु को प्राप्त होने की, निसिद्ध वासना ही अन्तःकरण में उत्पन्न होती है ।

बंध्या बहुत विकार सौं, सर्व पाप का मूल ।
ढाहै सब आकार कौं, दादू यह अस्थूल ॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मायावी स्त्री का शरीर सम्पूर्ण पाप का मूल कारण है । सर्व विकारों से अर्थात् सम्पूर्ण विषय वासनाओं से पूर्ण है । यह सम्पूर्ण 'आकार' कहिए आकृति वाले, शरीरों को नष्ट करने में बलवान है । सतगुरू महराज कहते हैं, हे साधकों ! ऐसा स्त्री का यह स्थूल रूप है । इससे विरक्त होने वाले पुरूष ही, परमेश्वर को प्राप्त होते हैं ।

दोहा :- नारी बुरी वैश्या और परकी, तिजि नरक निसाणी घर की ॥६३॥

यहां पर स्त्री का निषेध, शिशन स्वाद में है । अर्थात् इन्द्रियों के भोग भोगने में है । संतान उत्पन्न करने में नहीं है । स्त्री को काम वासना पूर्ति का, एक यंत्र नहीं समझना नहीं चाहिए । जो ऐसा समझते हैं, उनके स्थूल शरीर ही जीर्ण होकर, नाश को प्राप्त होते हैं ।

दादू यह तो दो जग देखिये, काम क्रोध अहंकार ।
राति दिवस जरवौ करै, आपा अगनि विकार ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मनुष्य के शरीर में यह काम, क्रोध, अहंकार ही नरक का रूप है । अज्ञानी मनुष्य मिथ्या शरीर का, आपा कहिए सत्यता का अध्यास करके, विषय विकारों में रात दिन जलते रहते हैं ।

विषय हलाहल खाइ करि, सब जग मरि मरि जाइ ।
दादू मुहरा नाम ले, हृदय राखि ल्यौ लाइ ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विषय आसक्त मनुष्य हलाहल, विषयों को खाकर (भोगकर), सम्पूर्ण संसार के पामर विषयी मनुष्य, बारम्बार जन्मते मरते रहते हैं । मोहरा, जहर निर्वाण करने वाली एक दवा होती है । वैसे ही जहर मोहरा रूप परमेश्वर का नाम है, उसको हृदय में धारण करके, स्मरण करने वाले पुरूषों का, विषय वासना रूपी जहर नष्ट हो जाता है, और फिर वे परम गति को प्राप्त हो जाते हैं ।

जेती बिषिया बिलसिये, तेती हत्या होइ ।
प्रप्यक्ष माणस मारिये, सकल सिरोमणि सोइ ॥६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह अज्ञानी जीव विषय आसक्त स्त्री के साथ, इन्द्रीय स्वाद के लिए, जितनी बार संभोग करता है, उतने ही मनुष्यों की हत्या होती है, क्योंकि सर्व योनियों में, सर्व से शिरोमणी, यह मनुष्य का शरीर है। किन्तु संसारी पुरूष विषय स्वादों में फंसकर, प्रत्यक्ष ही मनुष्य की हत्या करते हैं। हत्या पांच प्रकार की होती हैं। ब्रह्म हत्या, राज हत्या, स्त्री हत्या, बाल हत्या, गुरू हत्या, इन सब हत्याओं में बाल हत्या ही मुख्य है। विषय प्रवृति द्वारा, संसारीजन बालहत्या के सदा ही दोषी बनते हैं।

विषया का रस मद भया, नर नारी का मांस ।
माया माते मद पिया, किया जन्म का नास ॥६७॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! जो अज्ञानी आत्म विमुखी, विषय रस के मद में आसक्त होकर, स्त्री या पुरुष आपस में प्रेमरूपी मांस पर रीझते हैं, सो माया में मतवाले होकर, विषय भोग रूपी मद को पीकर, मनुष्य जन्म को वृथा गमाते हैं। यह मनुष्य जन्म राष्ट्र सेवा, और आत्म प्राप्ति के लिए, ईश्वर ने दिया है।

दादू भावै साकत भगत व्है, विषय हलाहल खाइ ।
तहं जन तेरा राम जी, सुपनै कदे न जाइ ॥६८॥

टीका :- हे राम जी ! हे परमेश्वर ! चाहे तो अनीश्वरवादी हो या व्यक्ति का उपहास हो, या सकाम भक्ति करने वाला, जो हलाहल विष रूपी विषय को भोगते हैं, वहां अर्थात् उनके यहां, परमेश्वर के सच्चे भक्त संतजन, स्वप्ने में भी नहीं जाते, जागृत में तो जावें ही क्या ?

दादू खाडा बुजी भगत है, लोहरवाडा मांहि ।
परगट पैंडा इत बसै, तहं संत काहे कौं जांहि ॥६९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'लोहरवाड़ा' कहिए, लहू और मांस का वाड़ा रूप जो कामी स्त्री का शरीर है, वह माया मोह, काम, क्रोध लोभ आदिक कालरूप ठगों का, स्त्री के शरीर में, मानो प्रत्यक्ष निवास है। इसलिए हे साधना में चलने वाले साधक पुरूषो ! इस काम वासना वाली स्त्री से बच कर रहो, तब ही माया के फंदों से छुटकारा है, अन्यथा नहीं।

अथवा लोहरवाड़ा गांव, टौंक जिला में है। वहां वैरागी साधु भेषधारी रहते थे। जब राजस्थान में ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज की, उनके ज्ञान ध्यान को सुनकर, हिन्दू मुसलमानों में भारी प्रतिष्ठा हुई। और टौंक में माधोपाणी महात्मा ने ब्रह्मऋषि गुरूदेव को टौंक पधारने का आमंत्रण दिया और ब्रह्मऋषि टौंक पधारे, वहां की जनता को, अपने अमृतमय उपदेशों से तृप्त किया। ब्रह्मऋषि की मान प्रतिष्ठा को

बंचक लोग सहन न कर सके। तब लोहरवाड़े के निवासी, साधु भेष में महाराज को आकर, लोहरवाड़े पधारने का आमंत्रण दिया।

टौंक से जब महाराज लोहरवाड़े पधारे, तो वह ठग जमीन में एक चौड़ा गढ़्ढा खोदा, उस पर फूस वगैरा बिछाया। ऊपर चद्दर लगा दी। सामने किनारे मसंड और पतली सी गद्दी बिछा दी। फिर गाजे बाजे से गांव वालों को साथ लेकर, ब्रह्मऋषि गुरूदेव की अगवानी करी। जब दरवाजे में अन्दर प्रवेश किया, तो गांव की जनता को, ठगों ने बाहर ही रोक दिया। जिस जगह गढ़्ढा था, गुरूदेव ने अपनी काली छड़ी से उस चद्दर का एक कोना पलटा और गढ़्ढे में संतों को दिखलाया कि बड़े बड़े हथियार अन्दर गडे हुए हैं उन ठगों का विचार था कि इस गढ़्ढे में ब्रह्मऋषि अपने शिष्यों के साथ गिर जाऐंगे और इनको जमीन में यहीं दबा देगें तथा लटा पटा सब छीन लेंगे। जब ब्रह्मऋषि उनकी करतूति कर्म शिष्यों को बताकर तत्काल तलाक दी। और यह साखी बोलकर, ब्रह्मऋषि वहां से चल दिए। संतों को खाडे में दबाने वाले भक्त, लोहरवाड़े गांव में हैं। उस गाँव में राम के प्यारे, क्यों जाऐंगें ?

सांपणि एक सब जीव कौं, आगै पिछै खाइ।
दादू कहि उपगार करि, कोइ जन उबरि जाइ ॥७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह माया रूप सांपणी, सम्पूर्ण जीवों को, किसी को आगे और किसी को पीछे भक्षण करती है। अर्थात् इस लोक और परलोक में, धर्म अर्थ काम मोक्ष को भी खा लेती है (गिरा देती है)। कोई बिरले तत्ववेत्ता पुरूष ही, इस माया रूप सांपणी से उबरते हैं अर्थात् बचते हैं। इस माया को सांपणी की उपमा देने का भाव यह है कि जैसे सांपणी अपने बच्चे आप खा लेती है, ऐसे ही माया के द्वारा ही जीव जन्मते हैं, और माया से ही जीवों की मृत्यु होती है।

दादू खाये सांपणी, क्यों कर जीवैं लोग।
राम मंत्र जन गारडी, जीवैं इहि संजोग ॥७१॥

टीका :- हे गुरूदेव ! यह सब ही जीवों को, माया रूपी सांपणि ही खाती है, तो फिर जीने का, अर्थात् बचने का क्या उपाय है ? ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! माया एवं कामनी रूप सांपणि के, विषय वासना रूप विष को निवारण करने का, राम नाम मंत्र ही एक सार है, और सतगुरू ही उस मंत्र का झाड़ा देने वाले गारड़ी है। यह संयोग, भारी पुण्य से ही प्राप्त होता हैं। फिर साधक सजीवन भाव को प्राप्त हो जाता है।

दादू माया कारण जग मरै, पीव के कारण कोइ।
देखो ज्यों जग पर जलै, निमख न न्यारा होइ ॥७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया प्राप्ति के लिये, प्रायः सम्पूर्ण जगत् के प्राणी मरे जाते हैं, अर्थात् कष्टप्रद साधन माया के लिये साधते हैं, परन्तु पीव मुख प्रीति का विषय परमेश्वर ! उसकी प्राप्ति के लिए, तो निष्काम अर्थात् निर्वासनिक होकर, नाम स्मरण करने वाले कोई बिरले ही होते हैं। हे साधक पुरूषों ! विचार कर देखो तो, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, यह सभी मायावी मोहरूप अग्नि में जल रहे हैं। एक क्षण भी मोहरूप अग्नि से अलग नहीं होते हैं।

काल कनक अरू कामनी, पर हरि इन का संग ।
दादू सब जग जलि मुवा, ज्यों दीपक जोति पतंग ॥७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो माया के द्वारा उत्पन्न होते हैं, वह सभी साधारण जीव, माया में ही मोहित रहते हैं। वह माया के कौन से रूप से मोहित हो जाते हैं ? उस पर कहते हैं कि यह कालरूप माया, कनक और कामनी रूप होकर, सबको मोहित करती है, जैसे दीपक सब पतंगों को जलाता है, इसी प्रकार प्राणी मात्र को माया जलाती है। इसीलिए तत्व वेत्ताओं ने इसका त्याग किया है।

दोहा :- सुम असुम असुर दो, मरै न काहू भांति ।
ब्रह्मा तिल तिल रूप ले, तिलोतमा कियो अंति ॥७३॥

दृष्टांत :- सुम और असुम, दोनों राक्षसों ने ब्रह्मा जी की भारी तपस्या की। ब्रह्मा जी प्रसन्न होकर बोले :- वर मांगों। उन्होंने वर मांगा, कि हम किसी के मारे न मरैं। ब्रह्माजी ने कहा :- तथास्तु ! परन्तु दोनों आपस में नहीं लड़ना, दोनों लड़ोगे तो मर जाओगे। वह दोनों राक्षस वर प्राप्त करके, मनमानी करने लगे। उनकी मनमानी से, देवता मनुष्य, सभी दुखी रहने लगे। फिर ब्रह्मा जी ने संसार की सुन्दरता से सबसे तिल तिल जितनी सुन्दरता लेकर, तिलोतमा नाम की स्त्री बनाई, और जहां वे दोनों रहते थे, वहां ही उसको छोड़ दी। उन्होंने देखा, एक महान सुन्दरी घूम रही है। वह आये और बोले, तुम कौन हो ? कहां से आई हो ? वह बोली :- मैं स्त्री हूं, कहीं से नहीं आई, यहीं घूमती हूं। वह बोले :- हमारे पास रहा करो। उसने कहा :- अच्छा। वह बोली एक को, तुम मेरे लिए पानी लाओ। वह पानी लेने गया, पीछे वाले से बोली, मैं तेरे से खुश हूं, उससे नहीं हूं। वह पानी लेकर आया। दूसरे नम्बर को बोली :- तुम मेरे लिए कन्द मूल ले आओ। वह लेने गया, फिर पहले वाले को बोली, मैं तुझसे खुश हू, उससे नहीं हूं। जब दोनों एकत्रित हुए, तो आपस में कहने लगे, एक बोला तूं चला जा, दूसरा बोला तूं चला जा। वह उसके मारी, वह उसके मारी, दोनों खत्म ही गए।

ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि मायावी तिलोतमा ने दोनों का अन्त कर दिया । वैसे ही कनक और कामनी सम्पूर्ण प्राणी मात्र का अंत कर रहे हैं ।

दादू जहां कनक अरू कामनी, तहां, जीव पतंगे जांहि ।
आगि अनंत सुझै नहीं, जल जल मूये मांहि ॥७४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां कनक (सोना) और कामनी (स्त्री) होते हैं, वहीं पर लोभी और कामी, पतंगरूप जीव जाते हैं, और उनसे प्रीति करके, उनके प्रेमरूपी शीतल अग्नि में, जल कर नष्ट होते रहते है । जैसे दीपक को देखकर, पतंगे आकर उसकी ज्योति में जल जाते हैं, वैसे ही अज्ञानी मनुष्यों की हालत होती है ।

दोहा :- त्रिया पावक नर पतंग, देखत ही मर जाइ ।
कोइक हरिजन उबरैं, राम सुमिर गुण गाइ ॥७४॥

घट मांहि माया घणी, बाहरि त्यागी होइ ।
फाटी कंथा पहर करि, चिहन करै सबै कोइ ॥७५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनके अन्तःकरण में तो माया की पूर्ण वासना भरी हुई है और ऊपर से फकीरी बाना बनाकर त्यागी अपने को कहलाते हैं । फटी हुई कंथा धारण करते हैं अथवा गैरुवां कपड़े, माला तिलक आदि चिन्ह बनाया है जिन्होंने, ऐसे बहुत से नकली भेषधारी होते हैं ।

काया राखै बन्ध दे, मन दह दिसि खेलै ।
दादू कनक अरू कामनी, माया नहीं मेलै ॥७६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! काया को तो बड़ी कसौटी से कसते हैं । भूखे, प्यासे, नंगे, लंगोटा बहुत कस कर बांधते हैं, परन्तु जिनका मन, दसों दिशाओं में वासना द्वारा, घूमता रहता है, मायावी पदार्थों का मनोरथ रूपी खेल खेलता रहता है । ऊपर से भेष बाना बना रखा है । उनके लिए सतगुरू महाराज कहते हैं कि वे अन्तःकरण से कनक और कामनी का त्याग नहीं करते हैं और अपने को परमेश्वर के भक्त बतलाते हैं । ऐसे पुरूष तो सदा, स्त्री पैसे के दास ही बने रहते हैं ।

दरसन पहरै मुंड मुंडावै, दुनियां दीन झूठ दिखलावै ।
मन सौं मीठी मुख सौं खारी, माया त्यागी कहैं बजारी ॥७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कानों में तो मुद्रा पहन लिया, सिर के बाल मुंडवा कर घोट मोट कर लिया, दुनियां के दोनों दीन, हिन्दु मुसलमानों को झूठा आडम्बर बना कर, मुख से झूठ बोलकर, अपने को सच्चे फकीर, सच्चे साधु कह कर बतलाते हैं । और माया, माया के भोग, खान पान, मन से तो मीठे लगते हैं और मुख से खारे बतलाते हैं । ऐसे बजारी त्यागियों को, बाजार के लोग, गांव के लोग, बिना परीक्षा किये ही त्यागी कहते हैं ।

दोहा :- ज्यों मिढा हठ दूर लग, पुनः फेट ले आइ ।
ऐसे त्याग दिखाइ के, मूढ सर्वस्व ले जाइ ॥७७॥

मनहर छन्द :—

जैसे नर आवते, चड़स को धकाइ करि,
अैंच के चरण में, सर्वस्व ले नीवारिये ।
जैसे योगी मंत्र तैं, अखाड़ि के कढाय हार,
बाडि लेत आप मूढ, कैसी भांति जारिये ।
जैसे द्रूम पातझर, लेत है बसंत काल,
दूने फूल फल लेन, काज निज डारिये ।
ऐसी विधी जग को, दिखाइ त्याग पहली मूढ,
लेत आप वाडि ऐसे, स्वांग लाज मारीये ॥७७॥

माया मंदिर मीच का, तामैं पैठा धाइ ।
अंध भया सूझै नहीं, साध कहै समझाइ ॥७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह माया का मंदिर मनुष्य शरीर, मानो काल का ही घर है । इसको प्राप्त करके अज्ञानी प्राणी, इसके साथ भारी प्रीति करता है, परन्तु साधु महात्मा, इस मनुष्य शरीर में जो जो

परिवर्तन होता है, उसको अच्छी प्रकार समझकर बताते हैं। परन्तु माया के मोह में अंधे हुये प्राणी, अपने कर्त्तव्य अकर्त्तव्य को नहीं जानते हैं।

दोहा :- रचि कोटड़ि सति की, शिष्य परीक्षा काज।
मर मर गये सु मूढ नर, ऐकन लख्यो इलाज॥७८॥

दृष्टान्त :- एक संत थे। उनके पास अपना उद्धार कराने की इच्छा से, चेले बनने को कई आने लगे। महात्मा बोले :- भई ! हमारी यह एक कुटिया है, इसमें एक रात जो रह जाएगा, वही उपदेश लेने का अधिकारी होगा। कुटिया, महात्मा जी ने तपोबल से ठंडी बना रखी थी। जो रात को कपड़े उतार कर, उसमें घुसे और महात्मा जी बाहर से कुंडा लगा दें। अन्दर मारे सर्दी के कांपने लगें। त्राहि त्राहि करता हुआ बोले, गुरू जी दरवाजा खोलो। अपने कपड़े उठाकर दौड़ जाय और फिर चेला बनने का नाम नहीं ले। ऐसे कई परीक्षा में फेल हो गए। एक सच्चा जिज्ञासु आया। वह उसी प्रकार, रात में कोठरी में रहा, ठंडी लगने लगी, तब व्यायाम करना शुरू कर दिया। शरीर में जब गर्मी आई, तब इधर उधर दीवारों से टकराने लगा। एक जगह जो गुरू जी ने युक्ति बनाई थी, वहां टक्कर लगते ही, दीवार फट गई और उसने उसमें हाथ देकर देखा तो लकड़ियां, फूस और माचिस मिली। निकाल कर कोठरी में धूणी सिलगा दी। सर्दी कुछ देर में समाप्त हो गई। फिर देखा कि खाने को भी कुछ रखा होगा। तब देखने लगा तो एक डिब्बा, मोदक (लड्डू) का और गंगा जल का शीशा मिला। मोदक निकाल निकाल कर खाने लगा। खूब कसकर खींचे, ऊपर से जल पिया। ठाठ से आराम किया। प्रातःकाल गुरू जी ने देखा, तो कोठरी से धुआं निकल रही है। विचार किया यह जरूर उपदेश लेगा। दरवाजा खुलवाया। गुरूजी के चरणों में नत मस्तक हुआ। गुरू जी अधिकारी जानकर, उसको उपदेश प्रदान किया।

ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं, कोई विवेकी पुरूष ही, माया की शीतल अग्नि से, मुक्त होते हैं।

दादू केते जलि मुऐ, इस जोगी की आगि।
दादू दूरै बंचिये, जोगी के संग लागि ॥७९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे कोई योगी, मत्रं द्वारा अग्नि लगा देवे, तो उस अग्नि से या तो स्वयं योगी ही बचता है, या जिस पर योगी की कृपा हो वह बचता है, बाकी सम्पूर्ण प्राणी भस्म हो जाते हैं। इसी प्रकार परम योगेश्वर परमेश्वर ने, माया रूप अग्नि और अविद्या का ऐसा पसारा फैलाया है, कि इससे कोई विवेकी भक्त अथवा तत्ववेता ज्ञानी ही मुक्त होता है। बाकी तो सभी जन्म मरण के चक्र में घूमते हैं।

ज्यौं जल मैंणी मछली, तैसा यहु संसार ।
माया माते जीव सब, दादू मरतन बार ॥८०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे जल में मछली एक मांस के टुकड़े लिए, दौड़कर प्राण गंवा देती है, वैसे ही यह संसार के विषय आसक्त प्राणी, विषय रूपी विष को पीकर, मतवाले हो रहे हैं, और सम्पूर्ण विकारों में बंधे हैं । ! उनके प्राण पिण्ड का वियोग होने में कोई देर नही लगती है ।

दादू माया फोड़े नैन दोइ, रामन सूझै काल ।
साधु पुकारे मेंर चढ़ि, देखि अगनी की झाल ॥८१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारी प्राणियों के, इस माया ने विवेक वैराग्य रूपी दोनों नेत्र फोड़ दिये हैं । फिर उनको न तो राम, और राम की भक्ति दिखती है, और न काल ही दिखता है, ऐसे माया में मतवाले हो रहे है । विवेकी मुक्तजन, सत् शास्त्र रूपी पहाड़ पर चढकर, सत् उपदेश सुनाते हैं कि हे माया में आसक्तिवान जीवों ! इस अग्नि में जल जाओगे, जल जाओगे । परन्तु वहिर्मुख जीव, संत उपदेश को नहीं अपनाते हैं, और उसी मायारूपी अग्नि में जल जाते हैं ।

बिना भुवंगम हम डसे, बिन जल डूबे जाइ ।
बिन ही पावक ज्यौं जलै, दादू कछु न बसाइ ॥८२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिना सर्प के ही, इस मायारूपी सर्पणी से हम अज्ञानीजन, डसे गये हैं, और बिना जल के ही, इस माया की तृष्णारूप जल में डूब रहे हैं । बिना ही पावक (अग्नि) के, कामरूप अग्नि से, अग्नि में जले जा रहे हैं । सतगुरू महाराज कहते हैं कि ऐसे राम बेमुख मायावी जीवों के जलने में कुछ भी देर नहीं लगती है । स्वयं को बचाने का, उनके पास कोई साधन नहीं है ।

दादू अमृत रूपी आप है, और सबै विष झाल ।
राखणहारा राम है, दादू दूजा काल ॥८३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अमृत स्वरूप तो केवल राम और राम की निष्काम भक्ति ही है । उसके बिना बाकी सब, माया और माया का कार्य, विषय आदि, शंखिया (विष) और अग्नि की झल रूप है । इनसे बचाने वाला तो, केवल एक राम है । राम के बिना जो भी कुछ है, वह सब काल ही काल है ।

बाजी चिहर रचाय कर, रह्या अपरछन होइ ।
माया पट पड़दा दिया, ताथैं लखै न कोइ ॥८४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह सर्वशक्तिवान, सर्वज्ञ परमेश्वर ने, यह मायारूपी बाजी रचाकर,(चिहर = चाहनारूप) आप स्वयं, इसमें छिप रहा है । अपने और संसारिक प्राणियों के बीच, माया का पड़दा डाल लिया है । इसीलिए संसारिक प्राणी, सत्य स्वरूप परमेश्वर को, अपने हृदय में नहीं देख पाते ।

दादू बाहे देखतां, ढिग ही डोरी लाइ ।
पिव पिव करते सब गये, आपा देन दिखाइ ॥८५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर सर्व शक्तिवान, जीव के पास ही है । परन्तु बहिर्मुख जीवों की तृष्णारूपी डोरी से बांधकर, माय में बहा दिये हैं । इसी से अज्ञानीजन, माया से अति प्रीति करके, तनमय हो रहे हैं और किसी को भी अपना आत्मस्वरूप परमेश्वर, दिखाई नहीं देता है । केवल अपने भक्तों को विचार रूपी डोरी देकर, माया से मुक्त किये हैं । वही संतजन अभेद स्मरण द्वारा, ब्रह्मरूप को प्राप्त होते हैं ।

मैं चाहूं सौ ना मीलै, साहीब का दीदार ।
दादू बाजी बहुत है, नाना रंग अपार ॥८६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया, अनन्तरूप होकर, ऐसी रचना रची है कि सर्वत्र इस लोक से ब्रह्म लोक पर्यन्त, माया ही प्रत्यक्ष होती है । परन्तु हम अनन्य भक्त, परमेश्वर का साक्षात्कार दर्शन करना चाहते हैं, वह नहीं होता है ।

हम चाहैं सौं ना मिलै, और बहुतेरा आइ ।
दादू मन मानै नहीं, केता आवै जाइ ॥८७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हम अनन्य परमेश्वर के भक्त, परमेश्वर का दर्शन चाहते हैं, वह तो प्राप्त होता नहीं, और रिद्धि सिद्धि बहुत सी आती हैं । परन्तु हमारा मन उनसे राजी नहीं होता है । मायिक पदार्थ कितने ही आते हैं, वैसे ही चले जाते हैं । परमेश्वर के भक्त, उनको नहीं अपनाते हैं ।

बाजी मोहे जीव सब, हमकौं भुरकी बाहि ।
दादू कैसी करि गया, आपण रह्या छिपाइ ॥८८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस सर्व शक्तिवान ईश्वर ने ऐसी भुरकी (मंत्र) डाली है, कि माया के द्वारा, देवताओं से लेकर, त्रियक योनी तक, सम्पूर्ण प्राणियों को मोहित कर रखे हैं, और आप स्वयं विचित्र माया को रचकर, इसमें छुपे बैठे हैं ।

दादू सांई सत्य है, दूजा भर्म विकार ।
नाम निरंजन निर्मला, दूजा घोर अंधार ॥८९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह निरंजन निराकार हमारा स्वामी, परमेश्वर ही सत्य है और 'दूजा' कहिए माया और माया का कार्य, भ्रम से सत्य प्रतीत होता है । परन्तु वह तो सब विकारी और विनासी है । इसीलिए निष्काम भाव से, शुद्ध हृदय में, निरंजनदेव का ही स्मरण करना चाहिए ।

दादू सो धन लीजिये, जे तुम्ह सेती होइ ।
माया बांधे कई मुए, पूरा पड्या न कोइ ॥९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो तुम से लिया जाय तो, केवल राम नाम का स्मरण रूपी धन इकट्ठा कीजिए, क्योंकि वही धन तुम्हारे साथ चलेगा । रामधन को बिसार कर, मायावी पदार्थो के संग्रह करने में, अनेक प्राणी पच पच कर मरते हैं, परन्तु किसी को भी, मनुष्य जन्म की सफलता नहीं प्राप्त होती है ।

दादू कहै जे हम छाड़ै हाथ थैं, सो तुम लिया पसारि ।
जे हम लेवैं प्रीति सौं, सो तुम दीया डारि ॥९१॥

टीका हे जिज्ञासुओ ! जिसको हम मुक्तजनों ने बुद्धिरूपी हाथ से, संसार के भोग वासनाओं को, त्याग दिया है उन भोग वासनाओं को अज्ञानी मानव, प्रीतिरूपी हाथ फैलाकर लेता है । इस प्रकार संतजनों ने, स्वस्वरूप राम को प्राप्त कर लिया है और अज्ञानी संसारिक जनों ने, स्वस्वरूप को बिसार दिया है ।

दादू हीरा पग सौं ठेलि करि, कंकर को कर लीन्ह ।
पारब्रह्म कौं छाड़ि करि, जीवन सौं हित कीन्ह ॥९२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बहिर्मुख जीवों ने, परमात्मा के नामों को त्यागकर, विषय वासनाओं में आसक्त प्राणियों से प्रीति की है । सो मानो, प्रभु के नामरूपी हीरे को, तुमने दुर्वासना रूप पगों से ठुकरा कर, संसार के स्नेह रूप कंकर को, तृष्णा रूप हाथों से लिया है । इस तरह तो यह मनुष्य जीवन ही उनका निष्फल ही जाता है ।

दादू सबको बणजै खार खल, हीरा कोई न ले ।
हीरा लेगा जौहरी, जो मांगै सो दे ॥९३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसार में प्रायः देखा जाता है कि सभी प्राणी विषय वासना का ही व्यापार करते हैं, और ईश्वर से भी यही, भोग पदार्थ मांगते हैं । परन्तु हीरा रूप नाम, निष्काम भाव से कोई नहीं लेता है । भक्तजन जौहरीरूप हैं, नाम के लिये । वे तो तन मन धन सब देने को तैयार हैं ।

दड़ी दोट ज्यों मारिये, तिहूं लोक मैं फेरि ।
धुरि पहुंचे संतोष है, दादू चढिबा मेरि ॥९४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शुभ अशुभ कर्मरूपी डंडे हैं और यह चेतन्यरूप जीव, दड़ी (गेंद) रूप है । कभी शुभ कर्मरूपी डंडे के लगने से स्वर्ग में जाता है, फिर वहां पुण्य क्षीण होते ही, पापरूपी डंडे के लगते ही, गुड़ता गुड़ता, मृत लोक में आता है । इस प्रकार पाप और पुण्य इसको त्रिलोकी में घुमाते रहते हैं । जब यह जीवरूप मन, निष्काम नाम स्मरणरूपी सीमा पर आता है, तब स्वरूप साक्षात्कार होते ही, पाप पुण्य के डंडों की मार से मुक्त हो जाता है । जब तक 'धुरी' कहिए, ब्रह्मी अवस्था को प्राप्त नहीं होवै, तब तक संतोष नहीं आता है ।

अनल पंखी आकाश कौं, माया मेरि उलंघि ।
दादू उलटे पंथ चढि, जाइ बिलंबे अंगि ॥९५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अनल पक्षी आकाश से उतर कर, इधर उधर फिरता है । फिर पीछे उलट कर, आकाश में, अपने माता पिता से मिलकर प्रसन्न होता है । इसी प्रकार जिज्ञासुजन, "माया मरे उलंघि" कहिए, गुणातीत होकर, उलटे पंथ स्वस्वरूप में लीन होकर, ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं ।

दादू माया आगै जीव सब, ठाढे रहें कर जोड़ि ।
जिन सिरजै जल बूंद सौं, तासौं बैठे तोड़ि ॥९६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया के रचे हुए कल्पित देवी देवताओं के सामने हाथ जोड़कर, बहिर्मुख प्राणी भोग पदार्थ मांगते रहते हैं और जिस परमेश्वर ने, वीर्य बूंद से यह मनुष्य देह की रचना रची है, उस प्रभु से जीव, प्रीति तोड़ बैठे हैं ,

सुर नर मुनियर बस किये, ब्रह्मा विष्णौं महेस ।
सकल लोक के सिर खड़ी, साधु के पग हेठ ॥९७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! देवता, नर, मुनि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन सबको माया ने, अपने काबू में कर लिया है । तीन लोक, चौदह भवन में बसने वाले सभी के मस्तक पर माया बिराजती है । परन्तु कोई परमेश्वर का अनन्य भक्त है, उनके चरणों में, दासी बनकर रहती है ।

दादू माया चेरी संत की, दासी उस दरबारि ।
ठकुराणी सब जगत की, तीनों लोक मंझारि ॥९८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह माया ब्रह्मनिष्ठ पुरूषों की सेवक बनकर रहती है और परमेश्वर के दरबार की अनुचर है, और बाकी सभी के ऊपर त्रिलोकी में माया अनुशासन करती है ।

दादू माया दासी संत की, साकत की सिरताज ।
साकत सेति भांडणी, संतौं सेती लाज ॥९९॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया, संतों की सेविका बन कर रहती है और साकत (बिषयी पामर) पुरूषों के सिर, विकार रूप से रहती है । उनको, विकारों में लेपती रहती है, अर्थात् अपने पीछे भ्रमाती है, और गुणातीत संतों से लज्जित होती है ।

चार पदारथ मुक्ति बापुरी, अठ सिधि नव निधि चेरी ।
माया दासी ताकै आगै, जहं भक्ति निरंजन तेरी ॥१००॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे हमारे स्वामी निरंजनदेव ! जहां आपकी भक्ति कहिए, आराधना करते हैं, वहां पर धर्म अर्थ काम मोक्ष, अष्ठ सिद्धि; नव निद्धि और माया की जितनी भी सिद्धियां है, सो सब दासी होकर, ब्रह्मनिष्ठ संतों की सेवा करती हैं । इसलिए हे प्रभु दया करके, आपकी निर्वासनिक भक्ति दीजिये ।

दादू कहै ज्यों आवै, त्यौं जाइ बिचारो ।
बिलसी बितड़ी, न माथै मारी ॥१०१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के अनन्य भक्तों के पास में, यह माया आती है, वैसे ही विचार पूर्वक परउपकार में जाती है, अथवा उनको मोहित करने आतो है तो, वैसे ही बिचारी, अनादर भाव को प्राप्त होकर, निराश ही चली जाती है, क्योंकि वैराग्यवान पुरूषों ने इस माया को न तो भोगी और न शिष्य सेवकों को ही बांटी है । मारी कहिए, इसको त्यागी है ।

दादू माया सब गहले किये, चौरासी लख जीव ।
ताका चेरी क्या करै, जे रंग रात्ते पीव ॥१०२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस राम की माया ने, सब दहिर्मुख संसारीजनों को, मोहित करके विषय वासना में, पागल बना रखे हैं, और वे मायावी जीव, चौरासी लाख योनियों में भ्रमते रहते हैं । परन्तु जो विवेकी, विचारवान, ब्रह्मनिष्ठ, सच्चे संत हैं, प्रभु भक्ति में रत्त, उनका यह माया कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकती । उनकी तो सेविका ही बनी रहती है ।

(विरक्तता)

दादू माया बैरण जीव की, जिन कोइ लावै प्रीति ।
माया देखै नरक कर, यह संतन की रीति ॥१०३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया, राम विमुख जीवों की शत्रु है (बैरण है) । इस माया से कोई भी प्रीति अर्थात् स्नेह नहीं करना और इसको नरक कहिए, दुख रूप करके जानना । इस प्रकार विचारवान संत, ऐसा ही व्यवहार वर्तते हैं ।

(माया)

माया मति चक चाल करि, चंचल कीये जीव ।
माया मात्ते मद पिया, दादू बिसर्‌या पीव ॥१०४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस राम की माया ने, उत्तम पुरूषों की सुमति को भी, चंचल करने का प्रयत्न किया है, तथा बहिमुख विषयी जीवों को तो प्रभु विमुख करके, विषय रूपी मद पिलाकर, उन्हें मतवाला करके, परमेश्वर से अलग रखकर, जन्म जन्मान्तरों में भ्रमाती है ।

दोहा :- मियां मीर के बादशाह, दरशन आयों डेरै ।
चार सिद्ध धन देख करि, उठें तुरत मुख फेरै ॥१०४॥

दृष्टान्त :- लाहौर में मियां मीर अच्छे फकीर हुए हैं। उनका सतसंग करने चार सिद्ध फकीर आये हुए थे। इतने में लाहौर का बादशाह आया और मीयां मीर के सामने बहुत सा धन चढाकर, नमस्कार किया। मायारूप धन को देखकर, चारों सिद्ध तुरन्त खड़े होकर, मुंह फेर लिया, माया को बिकारी और चंचला जानकर।

ब्रह्मऋषि सतगुरू कहते हैं कि यह माया मति को चंचल कर देती है। इसलिए महापुरूष लोग इससे मुख फेर कर रहते हैं।

दोहा :- बन्दे सरबत पीवतां, सुमिरे मोहम्द वाक्य ।
तु निकस्यों मम फंद से, पिछले मारौं ताक ॥१०४॥

दृष्टान्त :- माया स्त्री रूप बनाकर मार्ग में एक जगह शरबत पिला रही थी। इतने में एक खुदा का बन्दा शरबत पीने लगा, तो मोहम्मद साहब की कुरान शरीफ की एक आयत का स्मरण किया और स्मरण करके शरबत पीने लगा। माया बोली :- हे बन्दे ! तूँ तो मेरे फंदे से निकल गया, परन्तु तेरे पीछे वालों को, ताक ताक कर मारूंगी।

"माया मति चक चाल करि०" अर्थात् सबकी मति को चंचल बना देती है।

(भ्रान लग्न व्यभिचार)

जणे जणे की राम की, घर घर की नारी ।
पतिव्रता नहीं पीव की, सो माथै मारी ॥१०५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की एक माया, जणे जणे की कहिए प्रत्येक की स्त्रीरूप बन रही है। घर घर में नारी रूप से स्थित होकर, सृष्टि को बढ़ा रही है। यह परमेश्वर की माया, पतिव्रता नहीं है, व्यभिचारणी है। अनेक रूप बना रखे हैं, व्यापक नहीं है। इसीलिए मुक्त पुरूषों ने इसका त्याग किया है, अर्थात् इसमें आसक्त नहीं होते हैं।

जण जण के उठि पिछै लागै, घरि घरि भरमत डोलै ।
ताथै दादू खाइ तमाचे, मांदल दुहु मुखि बोलै ॥१०६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की मायारूप नारी पतिव्रता नहीं है, क्योंकि यह जण जण के पीछे लगकर, घर घर में कनक कामनी रूप से और काम आदि रूपों में भ्रमती फिरती है । विषयी पामर संसारी जन, इससे तमाचे खाते रहते हैं और फिर भी इससे चिपटते हैं । यह दंभी हैं एवं ढोलक की तरह दोनों तरफ से बोलती है, अर्थात् खाती है ।

दोहा :- नामरदों मुक्ति नहीं, मरद गये कर त्यागि ।
रज्जब रिद्धि कारी रही, पुरूष याति नहीं लागि ॥१०६॥

दोहा :- बणीया को माया दई, फकीर कृपा नीधान ।
कलम करत्त सुप्नु दियो, मारौं तो ही बंधान ॥

दृष्टान्त :- एक संत मार्ग में जा रहे थे । बनिया ने नमस्कार किया । संत को अपनी दुकान पर बैठाये । बनिया बोला :- महाराज ! कृपा करो । तब संत ने माया को कहा, तूं बनिया के यहां रहै । संत तो वहां से रम गये । बनिया न तो खावै और न खाने दे किसी को । माया ने देखा, मुझे किस दुष्ट को दे गये, बन्द रखता है । बनिया बैठा बैठा नेजे की कलम चक्कू से बना रहा था । बैठे बैठे को स्वप्ना आया । माया ने आवाज दी कि तैंने मुझे बन्द कर रखी है, मैं तुझे बांध कर मारूंगी । मन में सोचने लगा, यह क्या हुआ ? परन्तु पहचान नहीं पाया । ऐसे पुरूष इसके तमाचे खाते हैं ।

दोहा :- माया जाती देखकर, संता पुछ्या घाव ।
पामर नोची पीट मम, छाती त्यागी पांव ॥१०६॥

दृष्टान्त :- माया स्त्री रूप में जा रही थी । दुखो देखकर एक संत ने पूछा :- बाई तुम क्यों दुखो हो ? तुम्हारी पीठ में घाव कैसे हो गये ? दयालु संत कपड़े से उसकी पीठ का घाव पौंछने लगे । माया बोली :- संसार में पामर विषयी मनुष्यों ने, तो मेरी पीठ नोच ली और त्यागी मेरी छाती पर पांव रखते हैं. इससे मैं दुखी हूं ।

(विषय विरक्तता)

जे नर कामिनी पर हरैं, ते छूटैं गर्भवास ।
दादू ऊंधे मुख नहिं, रहै निरंजन पास ॥१०७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो उत्तम विवेकी पुरुष कामिनी का संग कहिए स्पर्श, त्याग करते हैं, अपने

मन को काबू में रखते हैं, वे जन्म मरण को प्राप्त नहीं होते हैं । वह अपने स्वस्वरूप निरंजन में स्थिर हो जाते हैं ।

रोक न राखै झूठ न भाखै, दादू खरचै खाइ ।
नदी पूर प्रवाह ज्यौं, माया आवै जाइ ॥१०८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उत्तम पुरूष सच्चे संत, राम की माया को "रोक न राखै" यनि जमा करके नहीं रखते, और झूठ नहीं बोलते । परोपकार में खर्च करते हैं । दीन दुखी, राष्ट्र सेवा आदि में खर्च करते हैं, आप भी उपभोग करते हैं । उनके सामने नदी के जल की भांति, माया बहती रहती है । वह माया से निर्लिप्त ही हैं । माया का सदुपयोग करते हैं ।

सदिका सिरजनहार का, केता आवै जाइ ।
दादू धन संचै नहीं, बैठा खुलावै खाइ ॥१०९॥

हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का प्रेरा हुआ, अर्थात् भेजा हुआ धन सोना, चांदी, नोट इससे आदि लेकर, जो भी प्राप्त होवै, उस धन को, जैसे आया है, उसी प्रकार उसको शुभ कर्मों में, जन समुदाय की सेवा में, खर्च करते रहना चाहिये, और अपने उपयोग में भी लावै । वह इस मायावी धन का, सदुपयोग कहलाता है । वही सिरजनहार परमेश्वर की आज्ञा में, रहने वाला संत है ।

(माया)

जोगणि व्है जोगी गहै, सो फणि व्है कर सेख ।
भक्तिणि व्है भगता गहै, करि करि नाना भेख ॥११०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया की ऐसी प्रबलता है कि यह राम की माया जोगीयों के घर में तो जोगिणि होकर बैठी है, और सेखों के घर में सोफणि हो रही है । भक्तों के घर में भक्तिणि होकर रहती है । ऐसे नाना प्रकार के अपने रूप बनाकर, सभी को, अर्थात् अपने ताबे में रख रखे हैं, और सभी इसमें आर्कषित हो रहे हैं, यह ऐसी प्रबला है ।

बुद्धि विवेक बल हरणी, त्रयतन ताप उपावनी ।
अंगि अगनि प्रजालिनी, जीव घर बारि नचावनी ॥१११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया स्त्री रूप बनाकर, विषयी पामर मनुष्यों की बुद्धि के विवेक को, हर लेती है और शारीरिक शक्ति को नष्ट करती है। यह माया रूप त्रिया अथवा तीन तापों को, शरीर में उत्पन्न करती है और अपने अंग, अपने शरीर में कामाग्नि से मनुष्य, पशु, पक्षी सभी को जलाती है। यह मन रूप जीव को, चौरासी में नचाती रहती है। इसलिये इस राम की मायारूपी स्त्री को इन्द्रिये स्वाद के लिए, उपयोग में नहीं लाना चाहिए। स्त्री पुरुष, दोनों ही ने मनुष्य जन्म प्राप्त किया है। एक ही आत्मारूप हैं, अपने स्वरूप को ही सम्पादन करना चाहिये।

नाना विधि के रूप धरि, सब बांधे भामिनी।
जग बिटंब परलै किया, हरि नाम भुलावनी ॥११२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह एक ही राम की माया, भामिनी कहिए, अनेकों स्त्री रूप बनाकर, सभी को अपने कब्जे में किये हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, इससे कोई बच नहीं पाते। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत के प्राणियों को बिटपना में, अर्थात् वासना से भटका रखे हैं। सारे संसार को प्रलय कर रही है, अर्थात् नाश कर रही है, और परमेश्वर के नाम को भुला रही है। जो कोई परमेश्वर का नाम भी लेते हैं, वह भी सकाम कहिए, वासना के वस होकर ही लेते हैं। इसलिए व्यष्टि भावना को त्यागकर, समष्टि भावना से परमेश्वर की आराधना कीजिए।

बाजीगर की पूतली, ज्यौं मर्कट मोह्या।
दादू माया राम की, सब जगत बिगोया ॥११३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बाजीगर की पुतली से यह मतलब है कि, पुतली स्वयं तो कोई सत्ता रखती नहीं है, किन्तु बाजीगर की सत्ता से ही सत्तावान प्रतीत होती है। परन्तु मूर्ख बन्दर, पुतली का रूप और खेलों को देख कर मोहित हो जाता है, इसी प्रकार माया भी परमेश्वर की सत्ता से सत्तावान प्रतीत होती है। परन्तु साधारण प्राणी, परमेश्वर की सत्ता को समझते नहीं हैं, और माया में ही आसक्त होकर, प्रभु से विमुख हुए, विषय वासना में ही भ्रमते हैं। इस तरह माया ने सब जगत के प्राणियों का नाश किया है।

मोरा मोरी देखकर, नाचै पंख पसारि।
यौं दादू घर आंगणै, हम नाचे कै बारि ॥११४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वयं को उपलक्षण करके, ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि काम वासना से, जिस तरह मोर मोरनी को देख कर नृत्य करता है, इसी तरह संसार में अज्ञानीजन, मायावी स्त्री आदि के

शरीर को देखकर, वासनारूप पंख पसार कर, इस मनुष्य शरीर में एवं संसार में नाचते हैं, अर्थात् माया का पसारा फैलाते हैं और जन्म जन्मान्तरों में भ्रमते रहते हैं । इससे मुक्त होना है तो पुरूष स्त्री दोनों, शारीरिक शक्तियों का जन समुदाय में और देश सेवा में, उपयोग करके, अपने जन्म को सार्थक करें ।

(पुरूष प्रकाशिक)

दादू जिस घटि दीपक राम का, तिस घटि तिमिर न होइ ।
उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ ॥११५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन उत्तम पुरूषों को, आत्मा का साक्षात्कार हुआ है, उन मुक्त पुरूषों के अन्तःकरण में, मायाकृत अविद्या का अन्धकार नहीं रहता है, और वे मुक्तजन ब्रह्मज्ञान ज्योति के उजियारे कहिये, अनुभव द्वारा, सम्पूर्ण संसार को ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब रूप अनुभव करते हैं अथवा सम्पूर्ण जगत् उन आत्मानुभवी संतों का दर्शन करके, अपने को पवित्र बनाते हैं ।

(माया)

दादू जिहि घटि ब्रह्म न प्रगटै, तहं माया मंगल गाइ ।
दादू जागै जोति जब, तब माया भरम बिलाइ ॥११६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस अन्तःकरण में माया का ही मंगलाचार होवै, उस जगह ब्रह्म का ज्ञान प्रगट नहीं होता है । इसलिए माया प्रपंच को भ्रमरूप मिथ्या जानकर, आत्मा का बोध करने से ही, ब्रह्म अनुभव रूपी ज्योति का प्रकाश होता है ।

दादू जोति चमकै तिरवरे, दीपक देखै लोइ ।
चन्द सूर का चान्दणा, पगर छलावा होइ ॥११७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह माया ज्योतिरूप से चमकै और तिरवरे रूप, दीपक जैसी लौ, चन्द्रमा जैसा प्रकाश, सूर्य जैसा प्रकाश, 'पगार' कहिए पीले बादलों जैसा रूप, छलावा जैसा स्वरूप बनाकर, परमेश्वर के भक्तों को छलने आती है, परन्तु परमेश्वर के अनन्य भक्त, इसको माया जान कर, इसके छल कपट से मुक्त रहते हैं और परमेश्वर को ही भजते हैं ।

दोहा :- सात चरित्र माया किया, गुरू दादू ढिग आइ ।
तासन या साखी कही, गई चरण सिर लाइ ॥११७॥

दृष्टान्त :- उपरोक्त माया ने सात रूप बनाकर, ब्रह्मऋषि के पास छलने को आई। ब्रह्मऋषि माया के छलावे में नहीं आये, तब माया नत मस्तक होकर, अर्थात् नमस्कार करके चली गई।

दादू दीपक देह का, माया प्रगट होइ।
चौरासी लख पंखिया, तहां परै सब कोइ ॥११८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्त्री आदि का शरीर ही मानो माया का दीपक जग रहा है। इस दीपक को देखकर, मनुष्य से लेकर चौरासी लाख जीव पर्यन्त इस मायायी शरीर में आसक्त होते हैं। इससे कोई बिरले परमेश्वर के अनन्य भक्त ही बच पाते हैं।

(पुरूष प्रकाशक)

दादू यहु घट दीपक साध का, ब्रह्म जोति प्रकास।
दादू पंखी संतजन, तहां परै निज दास ॥११६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मनिष्ट मुक्त पुरूषों का शरीर ही मानो दीपक है, और उसमें ब्रह्म साक्षात्कार रूपी ज्योति जगमगाती है। उत्तम जिज्ञासु ही पतंगरूप हैं। वे संसार की तरफ से उड़कर, अर्थात् वैराग्य द्वारा, उन ब्रह्मनिष्टों के पास आकर, ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं।

(विषय विरक्तता)

दादू मन मृतक भया, इंद्री अपणै हाथि।
तौ भी कदे न कीजिये, कनक कामनी साथि ॥१२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह अपना मन सब प्रकार निर्वासनिक हो जावै, और पांचों ज्ञानेन्द्रिये अन्तःकरण रूपी हाथ में एकाग्र हों तो भी कनक और कामनी में, अर्थात् स्त्री में, विषयों को वासना द्वारा, आसक्त नहीं होना। तभी कल्याण होगा।

जाणैं बूझे जीव सब, त्रिया पुरूष का अंग।
आपा पर भूला नहीं, दादू कैसा संग ॥१२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण जीव, अपने शरीर को पुरूषरूप जानते हैं और स्त्री कै शरीर को नारी

रूप समझते हैं । जब तक अपना और पराया, इस अध्यास का त्याग नहीं किया तब तक परमेश्वर का साथ कैसे हो ? अर्थात् नहीं होता ।

माया के घट साजि द्वै, त्रिया पुरूष धरि नांम ।
दोन्यूं सुन्दर खेलैं दादू, राखी लेहु बलिजांम ॥१२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे एक ही कुम्हार मिट्टी के दो बर्तन बनाता है, एक का नाम घड़ा और दूसरी का नाम सुराही रख दे, परन्तु दोनों का उपादान कारण तो मिट्टी ही है, और निमित्त कारण कुम्हार है । इसी प्रकार एक ही मायारूप मिट्टी के दो शरीर, एक का नाम पुरूष तथा दूसरे का नाम स्त्री । वही नर और मादा नाम से कहे जाते हैं । परन्तु वास्तविकता में देखें तो दोनों का उपादान कारण माया ही है और निमित्त कारण ईश्वर है । दोनों बहुत सुन्दर सजाकर बनाये हैं । जहां तहां शरीर में अंग प्रति अंग दिखाये हैं । सतगुरू महराज कहते हैं कि हे साधक पुरूषों ! फिर दोनों में एक चेतन्य सत्ता ही व्यापक है । इसका विचार करके, दोनों शरीर, विषय आसक्ति से मुक्त होकर, स्वस्रूप में स्थित होते हैं, उनकी हम बलिहारी जाते हैं

बहण बीर सब देखिये, नारी अरू भरतार ।
परमेश्वर के पेट का, दादू सब परीवार ॥१२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक ही माया रूप माता से दोनों शरीर उत्पन्न हुए हैं और पिता भी सबका एक ईश्वर ही है, क्या हिन्दू और क्या मुस्लिम, क्या स्त्री और क्या पुरूष, इनमें ऊंच नीचता कहां है ? चेतन्य सत्ता भी सबमें, समान भाव से व्याप्त हो रही है, तो फिर व्यवहार दृष्टि में भी, विचार कर देखें तो ईश्वर के घर में सभी समान हैं । तब स्त्री और पुरूष आपस में अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करें तथा बल, बुद्धि आयु की वृद्धि को प्राप्त हो । केवल एक या दो सन्तान उत्पन्न होने के बाद, अपने आपको परमार्थ मार्ग पर ले जाने के लिए अर्थात् आत्म ज्ञान सम्पादन करने को, बहन और भाई का बर्ताव करें, उपरोक्त सिद्धान्त का विचार करके । यही ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज का, मानव मात्र को उपदेश है ।

दोहा :- पिता सबनि को एक है, जननि एकै जोइ ।
एक उदर उत्पन्न भये, नीच ऊंच सब कोइ ॥१२३॥

दोहा :- नानक के शिष गरब करी, कही मो सम शिष नहीं आन ।
और दिखायो जाट एक, आन गांव में जान ॥१२३॥

दृष्टान्त :- गुरू नानक जी का कोई शिष्य था। उसने मन में भारी अहंकार किया कि मेरी जैसी गुरू की सेवा कोई नहीं करता है, और बोला :- गुरू जी, जैसा मैं आपका सेवक हूं, ऐसा और कोई नहीं है। गुरू नानक देव समझ गये कि इसे अहंकार हो गया है। इस अहंकार से इसका पतन होगा। उसको अपने साथ लेकर, दूसरे गांव में गये वहां एक मायावी जाट उस जैसा, (डुप्लिकेट) दिखाया। उसने बहुत सेवा की। गुरू नानक बोले :- यह हमारा सच्चा शिष्य है। उपरोक्त सेवक बोला :- मैं हूं आप का शिष्य तो ! बोले नहीं, तुम नहीं हो, यह है हमारा शिष्य। शिष्य ने सोचा कि मेरी हुबहू शकल का यह कहां से प्रगट हो गया ? क्या इस डुपलिकेट को देखकर, मुझ असली को भूल रहे हैं ? उसका अहंकार चूर हो गया और चरणों में नत् मस्तक होकर, क्षमा याचना की।

गुरू नानक बोले, अब कभी ऐसा अहंकार नहीं करना। ब्रह्मऋषि सतगुरू महाराज कहते हैं कि परमेश्वर ने दोनों एक जैसे ही बनाये हैं।

परघर परहर आपणी, सब एकै उणहार।
पसु प्राणी समझै नहीं, दादू मुग्ध गवांर ॥१२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पराये घर की और अपने घर की दोनों, दोनों एक सा ही नरक रूपी फल देने वाली हैं, ऐसा जानकर दोनों से ही विषय आसक्ति रूपी भोगों से मुक्त रहना। सब एक ही उणहार की है। परन्तु पशु बुद्धि वाले, पामर विषयी मनुष्य, कहते हैं कि अपनी स्त्री से संभोग करने में पाप नहीं होता है। ऐसे मोह में अंधे गंवार, बिषयों के प्रेमी, आत्म वस्तु से दूर ही रहते हैं।

दोहा :- पुरूष गयो त्रीये त्यागकर, भोलि परनी और।
चील होइ दोनों गई, बाज होइ त्तिठोर ॥१२४॥

दृष्टान्त :- एक पुरूष अपनी स्त्री को छोड़कर, किसी अन्य शहर में गया। कुछ रोज के बाद उसकी सुशीलता देखकर, उस नगर के एक परिवार वाले ने, अपनी लड़की की शादी उससे कर दी। वह लड़की बोली :- आपकी पहले शादी हुई है या नहीं ? वह बोला :- नहीं हुई। उसने कहा :- नहीं, शादी तो आप की जरूर हुई है। एक रोज उसके घर में, एक सर्प निकल आया। पुरूष डरने लगा। स्त्री बोली :- डरो मत ! उसने तत्काल न्यौल रूप धारण कर, सर्प के टुकड़े टुकड़े कर दिये। फिर स्त्री बन गई। यह देखकर पुरूष का दिल दहल गया। और चुपके से घर छोड़कर चला गया। आगे एक राजा के यहां नौकर हो गया। राजा ने उसको बाध्य करके, शादी करवा दी। कुछ दिन में उसकी पहली दोनों स्त्रियां, चील

का रूप बनाकर, आ गई और उसके महल के ऊपर घूमने लगी । तीसरे नम्बर वाली स्त्रो बोली :- आपकी पहले वाली दोनों स्त्रियां चील रूप से ऊपर घूम रही हैं, आपकी खोज में । वह घबराया । उसने कहा :- डरो मत ! उसने तत्काल बाज का रूप बनाया और दोनों को, एक ही झपट्टे में खत्म कर दी । इस पुरूष ने देखा कि यह तो तीनों हो एक समान हैं । पिस्तोल उठाकर एक गोली मारी । वह बाज रूप भी खत्म हो गई और बोला :-

दोहा :- काली भली न कोड्याली, रात्ती भली न श्वेत ।
राघौ चेतन यौं कहै, भाई तीनों राखो खेत ॥

तीनों ही प्राण घातक हैं, ऐसा जानकर तीनों का ही त्याग किया । ब्रह्मऋषि गुरू देव कहते हैं कि “सब एकै उणहार०”

पुरूष पलटि बेटा भयो, नारी माता होइ ।
दादू को समझै नहीं, बड़ा अचंभा मोइ ॥१२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस माया रूप स्त्री की ऐसी विचित्रता है कि इसके स्नेह में जो इसका पुरूष था, वह इसका बेठा बन जाता है । और जो पहले नारी थी, वह आगे चलकर इसकी मां बन जाती है । इस बात को विषयी पामर कोई भो नहीं समझते हैं कि इसके भोगने में ऐसा अनर्थ होता है । ब्रह्मऋषि सतगुरू कहते हैं कि इस मायावी लीला का हमें भारी आश्चर्य हो रहा है ।

दोहा :- गुरू दादू रामत्त करत्त, देख्यो अचरज एक ।
पुत्र खिलावत जाटणी, पति त्रीये ममत्त बिशेक ॥१२५॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज शिष्यों के सहित रामत्त करते हुए जा रहे थे । मार्ग में एक जाटणी गोदी में एक पुत्र खिला रही थी । गुरूदेव को यह देखकर हंसी आ गई । शिष्यों ने पूछा :- महाराज ! हंसने का कारण क्या है ? गुरूदेव बोले :- इस जाटणी में इसके पति की बहुत प्रीति थी । वह मर गया और स्नेह बस, वह इसी का पुत्र बन गया । उसको यह खिला रही है । इस माया की विचित्रता पर हमें हंसी आ गई । शिष्यों ने भी इस माया के रहस्य को समझा ।

माता नारी पुरुष की, पुरुष नारि का पूत ।
दादू ज्ञान विचार कर, छाड़ि गये अवधूत ॥१२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस राम की माया की, बड़ी विचित्रता है । जो पहले जन्म में पुरुष की माता होती है, वही दूसरे जन्म में उस पुरुष की स्त्री हो जाती है । और जो पहले जन्म में उसका पति था, वह दूसरे जन्म में उसका पुत्र हो जाता है । यह मायावी विषय वासनाओं का प्रेम कभी कभी, ऐसे ऐसे अनर्थ का कारण बनता है । यह विचार करके, अर्थात् मन का मायिक वासनाओं का दमन करने वाले महापुरुषों ने, इस मायिक सुख का त्याग कर दिया है ।

दोहा :- साध जिमावण कारणै, बणिक ले चल्यो भवन ।
तीन ठौर हंस कर कही, भैंसो अज तीये मोन ॥१२६॥

दृष्टांत :- एक वैश्य कुल का भक्त, ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव को शिष्यों के सहित, अपने घर भोजन अर्थ ले जा रहा था । एक भैंसा पर जल की पखाल जा रही थी । महाराज ने पूछा :- यह जल कहां जाएगा ? पखाल वाले ने कहा :- आज राजा का सराद है, वहां जाएगा । परम गुरुदेव हंसने लगे । आगे चलकर देखा कि एक बनिये की गोद में, बकरी का बच्चा खेलता हुआ आकर बैठता है । वह उठा कर उसे फैंक देता है । वहां भी हंस गये । जब वैश्य के घर पहुंचे, तो उसकी स्त्री को देख कर हंस गये । वैश्य भक्त को बहुत आश्चर्य हुआ और उसकी स्त्री ने इधर उधर अपना अंग देखा कि कहीं से बदन मेरा खुला तो नहीं है ? महाराज कैसे हंस गये । महाराज के चरण धोए, चरणामृत लिया और अपने घर को पवित्र किया । भक्त ने फिर महाराज की शिष्यों के सहित पूजा की और नत मस्तक होकर नमस्कार किया । हाथ जोड़ कर तीनों स्थानों पर, हंसने का कारण पूछा । ब्रह्मऋषि दादू दयाल बोले :- "वह राजा तो आप ही भैंसा बना हुआ था और आप ही अपने सराद में पानी भर रहा था । उसे कोई भी, एक माल पूड़ा नहीं देगें । इस माया की विचित्रता पर, हमें हंसी आ गई । दूसरी जगह बनिया की गोद में बकरी का बच्चा आकर बैठता था, वह बच्चा जानता था कि यह मेरा बाप है, उसका लड़का मर कर, उसी की बकरी का बच्चा बना था, परन्तु यह बनिये को कोई पता नहीं, वह उसको फैंकता था, फिर मुझे हंसी आ गई । यहां पर आकर देखा तो यह स्त्री पहले आपकी माता थी, स्नेह बस दूसरे जन्म में यह आप की स्त्री हो गई, क्योंकि तुम छोटे थे इसका शरीर बर्त गया । यह अमुख जगह जन्म लेकर तुम्हारी स्त्री बन गई । इस माया की विचित्रता पर फिर मुझे यहां हंसी आ गई । ब्रह्मऋषि के इस उपदेश को सुनकर, स्त्री पुरुष दोनों स्त्री पुरुष का विषय वासनामय नाता, मन से त्याग कर, ज्ञान सम्पादन द्वारा, मोक्ष को प्राप्त हो गये ।

(अध्यात्म)

दादू माया का जल पीवतां, ब्याधी होइ विकार ।
सेझे का जल निर्मला, प्राण सुखी सुध सार ॥१२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया का विषय वासनामय जल पीने से, शरीर में अनेक प्रकार के रोग, और काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार अधिक बढ़ते हैं , जिससे यह प्राणी जन्म जन्मान्तरों में दुखी रहता है । सेझा कहिए आत्मज्ञान रूपी अमृतरूप जल के पान करने से, प्राणधारी सुखी होकर, शुद्ध बुद्धि द्वारा, सारब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ।

जीव गहिला जीव बावला, जीव दिवाना होइ ।
दादू अमृत छाड़ि कर, विष पीवै सब कोइ ॥१२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन 'गहिले' कहिए विवेक शून्य, बावला-परमेश्वर से विमुख, 'दिवाना' माया में मस्त, हो रहे हैं । ऐसे माया में अन्धे, परमेश्वर की निष्काम भक्ति और ज्ञान को छोड़कर, मायावी विषय विकारों को ही भोगते हैं । उन्हें मनुष्य जन्म की कुछ भी सुध बुध नहीं है ।

ब्रह्मा विष्णु महेस लौं, सुर नर उरझाया ।
विष का अमृत नाम धरि, सब किनहूं खाया ॥१२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस राम को माया ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सुर-देवता, नर-मनुष्य, इन सभी को अविद्या में भरमाया है, और वे अविद्या बस होकर, विषयों को अमृत तुल्य जानकर भोगे हैं ।

(माया)

माया मैली गुणमई, धरि धरि उज्जल नांम ।
दादू मोहे सबन को, सुर नर सब ही ठांम ॥१३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया तमोगुण प्रधान होने से मैली है, परन्तु इसने अपने उज्जवल नाम रख लिये हैं । कहीं सोना, कहीं चांदी, कहीं हीरा, कहीं लाल, इस प्रकार अपने रंग में, सबको आकर्षित कर लिया है । सुर देवताओं को, देव अंगणा रूप बन कर, नर को स्त्री रूप बन कर, सभी ठांम कहिए तीनों लोकों में, प्राणी मात्र को अपने आधीन करके अपने स्नेहरूपी रंग में रंग लिये हैं ।

(बिषया अतृप्ति)

विष का अमृत नांम धरि, सब कोई खावै ।
दादू खारा ना कहै, यहु अचिरज आवै ॥१३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मायारूपी विषय भोगों का अमृत तुल्य नाम धर कर, भोगते हैं और उसको 'खारा' कहिए दुखरूप करके नहीं जानते हैं। परन्तु वास्तविकता से विचार कर देखैं, तो वह दुखरूप है। अज्ञानी मनुष्य उसको सुखरूप समझता है। यह देखकर हम मुक्त पुरुषों को, बड़ा आश्चर्य आता है।

दादू जे विष जारै खाई करी, जिन मुख में मेलै ।
आदि अन्त परलै गये, जे विष सौं खेलै ॥१३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह विषय भोग भोगने से, मनुष्य के धर्म अर्थ काम मोक्ष, सब नाश हो जाते हैं। इसी से हे जिज्ञासु ! इसको स्वप्न में भो नहीं भोगना, क्योंकि जो भोग भोगते हैं, उनके पूर्व जन्म के सुकृत, और जन्म जन्मान्तर के शुभ संस्कार, नष्ट हो जाते हैं।

जिन विष खाया ते मुये, क्या मेरा तेरा ।
आगि पराई आपणी, सब करै नवेरा ॥१३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसने जहर खाया है वह मरा है। चाहे अपने घर का जहर हो, या दूसरे के घर का जहर हो। जहर का तो धर्म है, मारना। और खाने वाले का धर्म है, मरना। चाहे अपने घर की आग हो या दूसरे के घर की आग हो, वह तो जलावे ही गी। उसका तो धर्म जलाने का है। वह तो जला कर, सबको नष्ट ही कर देगी।

अपना पराया खाइ विष, देखत ही मरि जाय ।
दादू को जीवै नहीं, इहि भोरैं जिन खाय ॥१३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चाहे तो अपने घर का विष खाओ या पराये घर का विष खाओ, विष का तो धर्म मारने का ही है अथवा चाहे अपने घर वाले विष खाओ या पराये घर वाले विष खावै, वह तो सभी देखते देखते मरैं हिंगें। इस भूल में नहीं रहना कि अपने घर का जहर खाने से नहीं मरता और दूसरे घर का जहर खाने से ही मरता है। इसी प्रकार अपने घर की हो या और के घर की, स्त्री रूप माया को जो

कोई भोगेगा, सो संसार बंधन में अवश्य बंधेगा। इसलिये हे मुमुक्षुओ ! कभी भूल कर भी, माया के मोह में नहीं भ्रमना।

दादू कहै जिन विष पीवै बावरे, दिन दिन बाढै रोग।
देखत ही मर जाइगा, तजि विषिया रस भोग ॥१३५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! हे बावले ! हे बेखबर ! कभी भी विषय विष को नहीं भोगना, क्योंकि इससे प्रतिदिन विषय प्रवृतिरूप और जन्म मरण रूप रोग बढेगा, और यह मनुष्य शरीर नाश हो जावेगा। इसलिये विषयों के रस को त्याग कर, आत्म ज्ञान का सम्पादन करिये।

(माया)

ब्रह्म सरीखा होइ करि, माया सौं खेलै।
दादू दिन दिन देखतां, अपनें गुण मेलै ॥१३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चाहे ब्रह्मी अवस्था को प्राप्त भी हो गया हो और फिर माया से खेलेगा अर्थात् माया में आसक्त रहेगा, तो धीरे धीरे माया अपने गुण धर्म विकार, सब उसमें रख देगी, और वह ब्रह्मी अवस्था से अवश्य ही गिर जाएगा।

दोहा :- माया फिरत लगाम ले, तपस्वी गर्व्यो पेखि।
बन सेवकनी ठग लियो, ऐड दई कहि देखि ॥१३६॥

दृष्टान्त :- माया ने एक चाबुक सवार का रूप बनाकर, एक हाथ में चार पांच लगाम और दूसरे हाथ में हंटर लिए, जंगल में घूमती हुई आई। वहां एक तपस्वी जी तप कर रहे थे। तपस्वी देखकर बोला :- यह लगाम तुम्हारे हाथ में है, घोड़े तो नहीं हैं। माया बोली :- यह उन घोड़ों के लिए लगाम है जो बड़े बड़े तपस्वी हैं। मैं माया हूं। तपस्वी :- हमारी भी लगाम होगी इसमें। माया :- नहीं, तुम्हारे जैसों पर तो मैं ऐसे ही फुदक कर बैठ जाती हूं। तपस्वी क्रोध में आकर बोले :- जा भाग जा यहां से। माया ने कहा :- ठीक है। सायंकाल को एक महान् दिव्य सुन्दरी का रूप बनाकर आ गई : तपस्वी को नमस्कार किया। तपस्वी बोले :- रात को हम यहां नही रहने देते हैं, जाओ चली जाओ। कुछ दूर जाकर एक

पेड़ के नीचे बैठ गई। राम की माया थी, वह बैठी बैठी तपस्वी के मन में फुरणा करने लगी। तपस्वी को अपनी तरस्या का बड़ा अहंकार था। उसी अहंकार को गिराने के लिए, ईश्वर ने यह लीला दिखाई। जब आधी रात का समय हुआ, तपस्वी कहने लगा, यहां आ जा। माया बोली मैं नहीं आती। तपस्वी उठ करके खुद गये, माया का हाथ पकड़ा। माया कुपित होकर बोली :- मेरा हाथ क्यों पकड़ा है ? तपस्वी बोला :- मेरा राम निकल गया। माया :- तो तुम विचार कर देखो, मैं जंगलों में क्यों फिरती हूं। मेरे में एक ऐसी आदत है, जो घोड़ा बनकर, मुझको अपने ऊपर चढ़ावै और फिर घुमावै, तब मैं उसका कहना करती हूं। तपस्वी घोड़े बन गए और बोले :- अब मुझ पर बैठो। फिर इधर उधर घूमने लगा, फिर माया ने वही चाबुक सवार का रूप बना लिया और तपस्वी के अंटर मारा। अंटर लगते ही, तपस्वी उधर झांका, तो वही चाबुक सवार है। माया बोली :- तुम हो मेरे बिना लगाम के घोड़े, और मुझे ऊपर बैठाकर जंगल में दौड़े। तपस्वी का अहंकार दूर हो गया और नत मस्तक होकर माया से क्षमा याचना की, कि हे माता ! तेरी दया से ही, हम तेरे पंजे से छूट सकते हैं।

माया मारै लात सौं, हरि को घालै हाथ।
संग तजै सब झूठ का, गहै सांच का साथ ॥१३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया ऐसी प्रबल है कि सब जीवों को लात से मारती है अथवा तमोगुण प्रगट करके, विषयों में प्रवृति कराती है। साधारण जीवों की तो गिनती ही क्या है ? ब्रह्मा विष्णु महेश को भी हाथ घाले कहिए, तमोगुण प्रगट करके, मोहित करती है। इस प्रकार अपना पूर्ण पसारा फैलाकर, फिर झूठ का संग तज कर, सांच का हाथ पकड़ती है, अर्थात् प्रलय अवस्था में, स्वयं माया भी कारण भाव ब्रह्म में ही लय हो जाती है, चितावणी पक्ष में वैराग्यवान संतों की महिमा दर्शाते हैं कि वे माया को लात मारकर, समष्टि चेतन्य हरि को, विवेक विचार द्वारा संपादन करते हैं और अनातम माया का संग त्यागकर ब्रह्मवेत्ता, संतों का संग करते हैं।

दोहा :- **विद्यारण मुनि ने कीये, माया लगी अनुष्टान।**
भये सन्यासी आ गई, सील धरो मम थान ॥१३७॥

दृष्टान्त :- विद्यारण मुनि माया की प्राप्ति के लिए, कई अनुष्ठान किये। वह चाहते थे कि माया मूर्ति रूप से मेरे सामने आवै, रूपया पैसा सोना चांदी रूप से तो माया खूब आई, परन्तु मूर्ति रूप से प्रगट नहीं हुई। तब मुनि को माया से वैराग्य हो गया और संन्यासी बन गये और माया प्रगट हो गई। माया बोली :- मुझे आप भोगो। आप के बुलाने से आई हूं। मुनि बोले :- तुम्हें बुलाई तब तो आई नहीं, अब

मुझे इच्छा नहीं है । माया बोली :- आप मुझे नहीं भोगोगे तो आप को जन्म दूंगी । मुनि ने विचार किया, जो हम कहेंगे, वह करोगी । माया :- जरूर करूंगी । मुनि :- सौ मन की सोने की एक सिला बना दे । माया के संकल्प से बन गई । मुनि बोले :- इसको सिर पर रख ले और मेरे पीछे पीछे आ जा । मुनि बीस मील पर जाकर रूके । माया को कहा :- सिला उतार कर रख दे । उस पर आसन लगा कर बैठ गए, भजन करने लगे । प्रातःकाल फिर वैसा ही किया । सायं काल फिर उसी प्रकार भजन करने लगे । माया घबरा गई । जब वृन्दावन जोव गुसाई जी के आश्रम पर आकर पहुंचे, माया जीव गुसाई जी के पास रोने लगी कि मुझे रोजाना बीस बीस, चालीस चालीस मील सिला लेकर, मुनि के साथ चलना पड़ता है । मेरी खोपरी के बाल उड़ गये । आप मुझे इस दुख से मुक्त कराओ । जब सवेरे विद्यारण मुनि चलने को तैयार हुए, तो जीव गुसांई जी बोले :- महाराज ! यह सिला तो यहीं रहने दो । विद्यारण मुनि बोले :- इसने आपको कुछ कहा होगा । जोव गुसांइ जी बोले :- अब क्षमा करो इसको । विद्यारण मुनि बोले :- आगे किसी सन्त को अब जन्म देने के लिए मत बोलना । माया नत मस्तक हो गई । मुनि के चरणों में नमस्कार करके, प्रस्थान कर गई ।

ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि ब्रह्मनिष्ठ महापुरूष, ऐसे माया को लात से मारते हैं ।

घर के मारे बन के मारे, मारे स्वर्ग पयाल ।
सुक्षम मोटा गूथिकर, मांड्या माया जाल ॥१३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया, घर बन एवं स्वर्ग पाताल, के सभी प्राणियों को अपने वासना रूप, संकल्प विकल्प और कनक कामनी रूप को रचकर, विषय प्रवृति उत्पन्न करके, अपने जाल में बांधती है । इस माया ने सूक्ष्म वासनारूप जाल और स्थूल कनक कामनी, जमीन जायदाद, मोह ममता रूपी इन दोनों जालों से प्रवृत्ति मार्ग वाले तथा निवृत्ति मार्ग वालों को, अपने कब्जे में रखती है । कोई बिरले सच्चे पुरूष ही गुरू ज्ञान द्वारा, इससे मुक्त होते हैं ।

दोहा :- **माया रोवत देखि द्विज, कासी नगर मंझार ।**
पुछि मेरे जाल को, गया कबिरा फाड़ ॥१३८॥

माया स्त्रीरूप से कासी में एक रोज रो रही थी । ब्राह्मण ने पूछा :—बाई ! क्यों रोती है ? माया ने कहा :-मेरे जाल को कबीर फाड़कर, शुद्ध ब्रह्म में अभेद हो गया ।

दादू उभासारं, बैठा बिचारं, संभारं जागत सूता ।
तीन लोक तत जाल बिडारण, तहां जाइगा पूता ॥१३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया की शक्ति दर्शाते हैं कि सब प्राणी उठते बैठते, सोते जागते, खाते पीते, चलते फिरते, माया का ही विचार करते हैं और माया की सार संभाल कहिए, देख भाल, मन बचन से रखते हैं । तीनों लोकों में, ब्रह्म तत्व के बिडारणहार, तिरस्कार करने वाले, माया के भगरूप जाल में ही, संसारी प्राणी निरंतर प्रवृत्त होते हैं, परन्तु जो वैराग्यवान संत हैं, वे उठते बैठते, जागते सोते, सार ब्रह्मतत्व को बिचारते हैं । ऐसे पवित्र संतजन ही, त्रिलोकी में ब्रह्म का अनुभव करके, माया जाल को नष्ट करते हैं और स्वयं अविचल भाव से, स्वस्रूप में ही स्थिर रहते हैं ।

दोहा :- गोरख सौं माया बदी, ठग्यो मछन्दरनाथ ।
बालक व्है माया ठगी, रांडि मींडत हाथ ॥१३९॥

माया बोली :-

दोहा :- उभा मारू बैठा मारू, मारू जागत सुता ।
तीन लोक भग जाल पसारू, कहां जाइगा पूता ॥

गोरख बोले :-

दोहा :- उभा खंडौं बैठा खंडौं, खंडौं जागत सूता ।
तीन लोक से रहुं निराला, तो गोरख अवधूता ॥१३९॥

दृष्टान्त :- एक समय माया और गोरखनाथ जी के बीच वाद विवाद हो गया, उपरोक्त दोहों के अनुसार । तब माया, मछन्दरनाथ जी महाराज के पास, एक महारानी का रूप बनाकर, बहुत सी भेंट पूजा आदि लेकर गई । नमस्कार किया और खूब सेवा की । मछन्दर नाथ जी बोले :- क्या चाहती है मांग ? आपका शिष्य गोरखनाथ मुझे मिल जाये । मछन्दरनाथ जी ने ध्यान धर कर देखा तो यह तो माया है । तब गोरखनाथ जी को बोले :- बेटा ! हम तो छले गए । गोरखनाथ :- कोई बात नहीं महाराज आज्ञा देओ । मछन्दर :- जाओ, इनके पास एक दो दिन रहकर आना । गोरखनाथ जी माया को बोले :- चल । माया बोली :- तूं चल आगे । गोरखनाथ :- मैं पीछे चलूंगा । आगे माया हो गई । एक निर्जन स्थान पर पहुंचे । गोरखनाथ जी साल भर के बच्चे का रूप बना लिया, रोने लगे । माया ने पीछे देखा, गोदी में उठा

लिया। गोरखनाथ ने माया के ऊपर, महान दुर्गन्धि युक्त झाड़ा फिर दिया। इस प्रकार माया को वहीं पर तीन रोज तक तंग करते रहे। माया शर्मिन्दी होकर बोली हे अवधूत ! तूं मेरे से नहीं छला गया, तो अब तुझे त्रिलोकी में कोई नहीं छल सकता है। यह कहकर माया प्रस्थान कर गई। गोरखनाथ जी ने गुरू महाराज के चरणों में आकर नमस्कार किया।

मुये सरीखे व्है रहे, जीवण की क्या आस।
दादू राम बिसारी करि, बांछै भोग बिलास॥१४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने मन इन्द्रियें मृतक तुल्य, निर्वासनिक हो जावें और फिर विषयों में प्रवृत होने की कोई उमेद न रहै, तो भी इनका विश्वास नहीं करना, क्योंकि यह राम को भूलकर, विषय संग से तत्काल भोग भोगने को इच्छा करते हैं। अर्थात् इस माया का ऐसा प्रभाव है कि जिनके जीवन की कोई आशा नहीं है, ऐसे अत्यन्त वृद्ध प्राणी मृतक के समान होकर भी, परमेश्वर से विमुख रहते हैं और अनेक प्रकार के खाने पीने आदि मायिक भोग विलासों की तृष्णा में लगे रहते हैं अथवा माया की ऐसी प्रबलता है कि मुये सरीखे कहिए, निर्विषय गुणातीत हुये कोई कोई उत्तम पुरूष भी, स्वस्वरूप को बिसर कर, मायिक भोग विलासों की कामना करने लगते हैं, इसलिये माया से सर्वदा सावधान रहना।

(कृत्तम कर्त्ता)

माया रूपी राम कौं, सब कोई ध्यावै।
अलख आदि अनादि है, सो दादू गावै॥१४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया विशिष्ट कहिए ब्रह्मा विष्णु महेश आदि को, सभी संसारिक प्राणी, भोगों की कामना करके उपासना करते हैं, और जो अलख है मन वाणी का अविषय और अनादि है, उसको अर्थात् सत् चित आनन्द स्वरूप राम को, कोई भी नहीं स्मरण करते। जो ब्रह्मा विष्णु महेश आदि के भी मायिक शरीरों का अधिष्ठान रूप है, उसका तो कोई बिरले संतजन ही स्मरण करते है।

ब्रह्मा का वेद विष्णु की मुरती, पूजै सब संसार।
महादेव की सेवा लागै, कहां है सिरजनहार॥१४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण संसारिक प्राणी ब्रह्मा का वेद कहिए वेद में, ब्राह्मण वाक्य जो, सकाम कर्मों का विवेचन करते हैं, उन्हीं की सब उपासना कर रहे हैं और सोना चांदी, तांबा, पीतल, पत्थर मृतका,

काष्ट आदिक मायिक पदार्थों की मूर्ति बनाकर, विष्णु की पूजा करते हैं। वैसे ही शिवलिंग बनाकर पूजते हैं। वह सिरजनहार परमात्मा जिसने, ब्रह्मा विष्णु महेश आदिको को भी पैदा किया है और जिसका ध्यान ब्रह्म: विष्णु आदिक भी धरते हैं। उपरोक्त उपासना करने वालों में, उस निर्गुण व्यापक राम की उपासना करने वाला, कोई भी नहीं है

माया का ठाकुर किया, माया की मा माइ।
ऐसे देव अंनत कर, सब जग पूजन जाइ ॥१४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन मायावी पदार्थों के देवता बनाकर और मायावो पदार्थों की महामाई बनाई है जिन्होंने, ऐसे ऐसे अनन्त देवताओं की कल्पना करके, बहिर्मुख संसारीजन, उन्हें पूजते हैं परन्तु ऐसे अज्ञानीजन सच्चे परमात्मा से विमुख ही रहते हैं।

माया बैठी राम व्है, कहै मैं ही मोहन राइ।
ब्रह्मा विष्णौ महेश लौं, जोनी आवै जाइ ॥१४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया, रामरूप बनकर, जगह जगह लोक परलोक में बैठी है और कहती है कि मैं ही मोहनराय हूं अर्थात् सबको मोहित करने वाली मोहनी रूप बनकर बैठी है। और कहां तक कहें, ब्रह्मा विष्णु महेश को भी, यह उत्पन्न करती है। उनके भी स्थूल शरीर, मायामय ही बने हुए हैं।

एक माई जगत ब्याही, एक भंडारी, एक कोठारी, एक लाई दीवान ०।

मायारूप माई ने जगत पैदा किया और इसका संचालन करने को, एक भंडारी रूप ब्रह्मा, बनाने वाला और कोठारी रूप शंकर, संहार कर्ता, दिवान रूप विष्णु न्यायकारी।

माया बैठी राम व्है, ताकौं लखै न कोइ।
सब जग मानै सत्य कर, बड़ा अचंभा मोइ ॥१४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ !' अनन्त देवी देव आदि का रूप बना कर, माया हो राम बनकर बैठी है, किन्तु माया के इस कपट को संतों के अतिरिक्त, और कोई नहीं जान पाते हैं। सारा संसार मायावी देवताओं को पूजते हैं। इसी वार्ता का हमको आश्चर्य होता है।

अंजन किया निरंजन, गुण निरगुण जानै ।
धरा दिखावै अधर करी, कैसें मनमानै ॥१४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिकजन, अंजन माया को ही निरंजन परमेश्वर मान कर पूजा करते हैं, किन्तु धरा कहिए पृथ्वी को, यदि कोई अधर कहिये आकाश कह कर दिखावै, तो विचारवान पुरूषों का मन कैसे सत्य मानै ?

दोहा :- नो रंग ढाये देवरा, जैन रच्यो परपंच ।
चुम्बक चहु दिस गाडकर, मूरति अधर धरन्त ॥१४६॥

दृष्टान्त :- बादशाह नोरंगशाह हिन्दुओं के मन्दिरों को गिराता हुआ, जैनियों के मन्दिर में पहुंचा । वहां देखा कि उनकी मूर्ति अधर है । जैनी लोग बोले :- हुजूर हमारी मूर्ति तो अधर देव है, यह हिन्दुओं की तरह से नहीं है । बादशाह ने बेंत लेकर, मूर्ति के चारों तरफ घुमाया, तब कुछ पता नहीं लगा । फिर सोचा, हो सकता है इन्होंने दीवारों में चुम्बक लगा रखे हों । एक दीवार तुड़वाई, मूर्ति हिल गई । तत्काल मूर्ति को तुड़वा कर देखा, तो जवाहरात निकल पड़े । सब जवाहरात, बादशाह ले आया ! दुनिया को भ्रम में डाल रखी थी । बह सब प्रकाश हो गया । जड़ पदार्थ को भी अधर करके दिखाते हैं भ्रम में डालते हैं ।

निरंजन की बात कहि, आवै अंजन मांहि ।
दादू मन मानै नहीं, सर्ग रसातल जांहि ॥१४७॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन, उपदेश तो निरंजन का करतें है और बाद में स्वर्ग आदि कामनाओं को लेकर, मायारूप अंजन में ही प्रवृत होते हैं अर्थात् मायामय काम करते हैं । परन्तु संतों का मन तो, एक निरंजन परमेश्वर को छोड़कर, और किसी को नहीं मानता है ।

कामधेनु कै पट तरै, करै काठ की गाइ ।
दादू दूध दूझै नहीं, मूरख देहु बहाइ ॥१४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कामधेनु के समान लकड़ी की गाय बना ले, उसका नाम कामधेनु रख दे, तो वह दूध नहीं दे सकती है । ऐसे ही बहिर्मुख लोग, मायावी देवी देव आदिकों को परमात्मा की उपमा देकर

पूजते हैं और परमात्मा से अलग ही समझते हैं। वे उनसे मुक्तिरूप अमृत चाहें तो वह दे नहीं सकते। मूर्ख लोग उनको पूज पूज कर, अपने आपको जन्म मृत्यु के प्रवाह में ही बहा देते हैं।

चिंतामणी कंकर किया, मांगै कुछ न देइ।
दादू कंकर डार दे, चिंतामणी कर लेइ ॥१४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चमकीले पत्थर को चिंतामणी की कल्पना करके पूजैं, तो वह क्या दे ? अर्थात् कुछ भी नहीं दे सकता। इसी प्रकार देव आदि को निरंजन परमेश्वर की उपमा देकर, उनसे कोई कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकता है, इसलिए वे सब कंकर रूप हैं, उनको हृदय रूपी हाथ से गिरा कर, निरंजन परमेश्वर का नाम स्मरण रूपी चिंतामणी को धारण करैं।

पारस किया पाखान का, कंचन कदे न होइ।
दादू आतमराम बिन, भुली पड्या सब कोइ ॥१५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! काले पत्थर को पारस समझ कर, जो उससे सोना बनाना चाहे, तो वह उससे सोना नहीं बना सकता। वैसे ही संसारी मानव परमात्मा रूपी पारस का नाम छोड़कर, कल्पित देवताओं का स्मरण करै, तो उससे जन्म जन्मान्तरों की परमात्मा की अप्राप्ति रूप, दरिद्रता दूर नहीं होती।

सूरज फटिक पाखाण का, तासौं तिमिर न जाइ।
सांचा सूरजि परगटै, दादू तिमर नसाइ ॥१५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिलोरी पत्थर का सूर्य बनाकर पहाड़ पर रख दें, तो उससे रात्रि रूपी अन्धेरा दूर नहीं होगा। जब सच्चा सूर्य प्रगट होता है, तभी अन्धकार दूर होता है। दाराष्टान्त में बहिरंग साधनों से अन्तःकरण का अज्ञान दूर नहीं होता है। आत्मबोध रूप सूर्य के उदय होते हो, अन्धकाररूपी अज्ञान नष्ट हो जाता है।

मूरति घड़ी पाखाण की, कीया सिरजनहार।
दादू सांच सूझै नहीं, यूं डूबा संसार ॥१५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पत्थर की मूर्ति, बहुत सुन्दर बनाकर, उसका नाम सिरजनहार रख दें, तो उससे क्या काम सिद्ध होता है ? सिरजनहार तो सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, संहार, कर्मानुसार करते हैं, इसलिए उस नकली मूर्ति को त्यागकर, असली सिरजनहार की उपासना करैं।

पुरूष बिदेसी कामनी, किया उसी के उणीहार ।
कारिज को सीझै नहीं, दादू माथै मारि ॥१५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पतिव्रता स्त्री पति की मूर्ति बना कर रख ले और पति विदेश में है । तो जो काम पति, स्त्री का करता है, वह काम मूर्ति नहीं कर सकती । ऐसे ही परमात्मा की मूर्ति बनाकर उससे मोक्ष सुख चाहे, तो वह नहीं दे सकती । ऐसे साधनों में क्या माथा मारते हो ?

कागद का माणस किया, छत्रपत्ती सिर मोर ।
राजपाट साधै नहीं, दादू पर हरि और ॥१५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कागज का राजा बना कर गद्दी पर बिठा दें और उसके ऊपर छत्र लगा दें और मुकुट बांध दें, तो भी वह राज की व्यवस्था नहीं कर सकता है, ऐसे ही परमेश्वर की मायावी फोटो बनाकर रख दें, तो वह सृष्टि का संचालन नहीं कर सकता । इसलिये उसको त्यागकर, अन्तःकरण में सत्य स्वरूप आत्मा का बोध प्राप्त करो ।

सकल भवन भानै घड़ै, चत्तर चलावणहार ।
दादू सो सुझै नहीं, जिसका वार न पार ॥१५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह परमेश्वर चौदह भवन, तीन लोक को नष्ट करके, पुनः वैसे ही बना देता है । और ऐसे चतुर परमेश्वर हैं, जो तीन लोक और चौदह भवन में, अनेक प्रकार की सृष्टि की रचना रची है और फिर इस सृष्टि का बड़ी चतुरता से संचालन करते हैं । सब में आप परिपूर्ण रूप से निवास कर रहे हैं । अज्ञानी पुरूषों को ऐसे प्रभु की उपासना नहीं दिखती है, इसी से वह जन्म जन्मान्तरों में भ्रमते रहते हैं ।

(कर्ता साक्षी भूत)

दादू पहली आप उपाइ करी, न्यारा पद निर्वाण ।
ब्रह्मा विष्णु महेश मिलि, बांध्या सकल बंधाण ॥१५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर अपने शुद्ध स्वरूप निरंजन की आराधना के लिए संसारी प्राणियों को उत्पन्न करके, वह प्रभु, आप स्वयं निर्लेप हो रहे हैं अर्थात् माया शून्य हो गए हैं । तीनों देवों ने भगवान

का भुलावा देकर, अर्थात् निरंजन को भुलाकर, सम्पूर्ण संसार के प्राणियों को, माया के सकाम कर्मों में बान्ध रखे हैं ।

(कृत्तम कर्ता)

नाम नीती अनीति सब, पहलि बान्धे बंध ।
पसुन जाणै पारधी, दादू रोपै फंध ॥१५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया ने नीति का नाम रखकर, सब संसारीजनों को अनीति के बन्धनों में बांधा है । परन्तु पशु के समान, यह सकामी अविवेकी, अज्ञानी प्राणी, इस माया रूप शिकारी के जाल को नहीं जान पाता है, उसे यह नहीं पता है कि यह जाल हमें फंसाने के लिये, इस शिकारी ने रचा है ।

दादू बांधे बेद विधि, भरम करम उरझाइ ।
मरयादा मांहै रहै, सुमिरण किया न जाइ ॥१५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण जीवों को वेदों के कर्मकाण्ड रूप सकाम कर्मों में, और अनेक देवी देव आदि की उपासना रूप भ्रम में उरझाकर, इस माया ने, बहिरंग साधनों में बांधे हैं । इसीलिए संसारी पुरूषों की निरंजन नाम के स्मरण में, चित्तवृत्ति स्थिर नहीं होती ।

(माया नारी दोष निरूपण)

दादू माया मीठी बोलणी, नइ नइ लागै पाइ ।
दादू पैसै पेट मैं, काढि कलेजा खाइ ॥१५९॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! यह माया रूप स्त्री, बड़ी मीठी मीठी बोलती है और झुक झुक कर, चरणों में लगती है । यह स्नेह द्वारा पुरूषों क हृदय में बैठती है और फिर उनके कलेजे को खा जाती है, अर्थात् शरीर को थोथा बना देती है ।

नारी नागणि जे डसे, ते नर मुये निदान ।
दादू को जीवै नहीं, पूछौ सबै सयान ॥१६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस नारी रूप नागनि से जो उसे डसे गये हैं, वह मनुष्य निश्चय ही करके,

मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं, अर्थात परमार्थ मार्ग से च्युते हो गए हैं। उनमें से कोई भी परमार्थ मार्ग की तरफ नहीं लगताहै। ऐसा सभी सयाने, विवेकी पुरूष कहते हैं।

नारी नागणि एकसी, बाघणि बड़ी बलाइ।
दादू जे नर रत्त भये, तिनका सर्वस खाइ ॥१६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओं ! नारी और काली नागनि, दोनों एक सी ही हैं। जिनको यह डसती हैं, निश्चय ही मृत्यु पाते हैं। और फिर नारी बड़ी बाघणि (शेरनी) है, अर्थात् जैसे बाघणि फाड़ कर खा जाती है, ऐसे ही यह मनुष्य के कलेजे को फाड़ देती है। यह भयंकर बला है। लगने के बाद छूटती नहीं। जो मनुष्य इससे रत्त हुए हैं, उनका सर्वस्व खा जाती है। अर्थात् परमार्थ मार्ग से गिरा देती है।

नारी नैन न देखिये, मुख सौं नाम न लेइ।
कानौं कामणि जिनि सुणै, यहु मन जाण न देइ ॥१६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मायारूप स्त्री को, काम वासना रखकर नेत्र से नहीं देखना और न मुख से बात ही करना। अपनी श्रोत्र इन्द्रिये से भी स्त्री प्रसंग की या श्रृगार रस की बातें नहीं सुनना। इस मन को किसी भी इन्द्रियें के द्वारा, मायारूप स्त्री की तरफ नहीं जाने देना, तभी कल्याण है।

सुन्दर खाये सांपणी, केते इहि कलि मांइ।
आद अन्त इन सब डसे, दादू चेते नाइ ॥१६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मायारूप सांपणि अति सुन्दर स्त्री रूप बनी है। इसने कितने ही प्राणियों को अपनी प्रीति में फंसाकर, इस कलयुग में खा लिये हैं, अर्थात् मार दिये हैं। सृष्टि में आदि से अन्त तक इसने प्राणीमात्र को डस लिये हैं। फिर इसका विष जन्म जन्मान्तरों में भी नहीं उतरता है। परन्तु अज्ञानी मनुष्य, कोई भी सचेत होकर नहीं देखते।

दादू पैसे पेट में, नारी नागणि होइ।
दादू प्राणी सब डसे, काढि सकै न कोइ ॥१६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया नागणि रूप नारी, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी सभी के हृदय में सूक्ष्म प्रीतिरूप होकर बैठी है। सम्पूर्ण प्राणी अर्थात् चींटी से हाथी तक को विषय वासना द्वारा डसती

है । अपने भीतर से इसकी प्रीति को, कोई भी नही त्याग सकता है ।

माया सांपणि सब डसे, कनक कामिनी होइ ।
ब्रह्मा विष्णु महेश लौं, दादू बचै न कोइ ॥१६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मायारूप सांपणि ने कनक और कामिनी रूप बनाकर, सम्पूर्ण संसारिक प्राणियों को डस लिया है । और कहां तक कहूं ? ब्रह्मा विष्णु महेस भी इस मायारूप सांपणि से नहीं बच पाए हैं । उनको भी इसने समय समय पर डस लिया है ।

माया मारै जीव सब, खंड खंड करि खाइ ।
दादू घट का नास करि, रोवै जग पतियाइ ॥१६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया, राम से विमुख जो जीव हैं, उनको मारती रहती है और एक एक इन्द्रिये का आगे शरीर देती है । विषियों के द्वारा खाती रहती है । इस प्रकार चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, सम्पूर्ण शरीरों का नाश करती है । संसारी मानव माया से दुखी होकर रोते रहते हैं और फिर इसी का विश्वास करते हैं ।

बाबा बाबा कहि गिलै, भाई ~~भाई~~ कहि कहि खाइ ।
पूत पूत कहि पी गई, पुरुषा जिन पतियाइ ॥१६७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया बड़ी विचित्र है । कहीं तो यह बाबा बाबा कह कर, स्नेह द्वारा गिल रहो है और कहीं भाई कहकर स्नेह द्वारा खा रही है । कहीं तो यह राम की माया पूत कह कहकर स्नेह द्वारा पी गई है अर्थात् श्रेय साधन से गिराती है । हे पुरुषो ! इस राम की माया का विश्वास मत करो, कि यह तुम्हारा कल्याण कर देगी । कल्याण तो केवल एक राम ही करेगा ।

ब्रह्मा विश्नु महेस की, नारी माता होइ ।
दादू खाये जीव सब, जिनरू पतीजै कोइ ॥१६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया, ब्रह्मा विष्णु महेस को भी उत्पन्न किया है, ऐसे ही सम्पूर्ण जीवों को उत्पन्न करती रहती है और विषय आसक्तिरूप वासना द्वारा सबको यही खा लेती है । इसलिये

इस माया का हे जीवो ! विश्वास न करो। इससे अलग रहकर, ज्ञान द्वारा, आत्म सम्पादन करो।

माया बहुरूपी नटणी नाचै, सुरनर मुनि कौं मोहै।
ब्रह्मा विष्णु महादेव बाहै, दादू बपुरा कोहै ॥१६९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की मायारूप नटणी अपने अनेकों रूप बनाकर, सुर नर मुनि को भी, जगह जगह मोहित कर रही है, रिद्धि सिद्धि मान बड़ाई आदि से। और ब्रह्मा विष्णु महेस को भी अपने विषय रूपी प्रवाह में बहा दिये हैं। बिचारे शरीरधारी संसारिक प्राणियों की, इसके सामने क्या गणना है ?

माया फांसी हाथ ले, बैठी गोप छिपाइ।
जे कोइ धीजै प्राणीयां, ताही के गल बाइ ॥१७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया स्त्री रूप, अपने अविद्यारूपी हाथ में, स्नेहरूपी अर्थात् प्रेमरूपी फांसीलेकर, जो प्राणधारी, इसके नजदीक आता है इसका विश्वास करता है, उसी के गले में डाल देती है। और सबके हृदय में छुपकर संस्कार रूप से बैठी हुई है।

पुरीषा फांसी हाथ करि, कामनि के गलि बाहि।
कामणि कटारी करग है, मारि पुरूष को खाय ॥१७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी विश्या आसक्त संसारी पुरूष, अपने हाथों में प्रेम रूपी, फांसी लेकर, स्त्री के गले में डालता है, और वह कामनी कहिए स्त्री, स्नेह रूपी कटारी अपने हाथ में लेकर, उसको परमात्मा की तरफ से गिराकर, भोग वासनाओं के द्वारा खा लेती है।

नारी बैरणि पुरष की, पुरिषा बैरी नारी।
अंति काल दोन्यूं मूये, दादू देखि विचार ॥१७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया रूप स्त्री, पुरूष को मीठी शत्रु है और संसारिक पुरूष विषयों में अंधे हुए, स्त्रीरूप नारी का मीठा शत्रु है। इसी प्रकार जीवन भर विषय भोग रूपी काम करते करते, अन्त में दोनों ही मर जाते हैं और आतमतत्व से विमुख ही चले जाते हैं।

नारी पुरीष को ले मुई, पुरिषा नारी साथ।
दादू दोन्यूँ पचि मुये, कछु न आया हाथ ॥१७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह राम की माया रूप नारी, मायारूपी पुरूष को, अपने प्रेम में लगाकर, सत्य मार्ग से गिरगई है । संसारिक विषय आसक्त पुरुष, के प्रेम में नारी बंधकर, नारी और पुरूष परमार्थ मार्ग से च्युत होगये है । जीवन भर दोनों खोटे कर्म कर करके अर्थात् व्यर्थ अपनी शक्ति का हनन करके मर गये हैं ।

भवंरा लुब्धी बास का, कमल बंधाना आइ ।
दिन दस मांहैं देखतां, दोन्यूं गये बिलाइ ॥१७४॥

नारी पीवै पुरिस कौं, पुरिस नारी को खाइ ।
दादू गुरू के ज्ञान बिन, दोन्यूं गये बिलाइ ॥१७५।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे भंवरा सुगन्धि का प्रेमी बन कर, कमल के फूल में आकर सुगन्धि लेता है और मस्त रहता है, ऐसे देखते ही देखते एक दिन हाथी आकर, कमल के सहित, भंवरे को खा जाता है । इसी प्रकार सतगुरू का ज्ञान प्राप्त किये बिना, जीवरूपी भंवरा, स्त्रीरूप कमल के मुखरूपी बास की आशा में, आसक्त रहता है, किन्तु हस्तीरूपी काल इन दोनों को ही नष्ट कर देता है । इस प्रकार नारी, पुरूष में काम वासना से, और पुरूष नारी में भोग वासना से, आसक्त होकर रज वीरज का नाश करते हैं क्योंकि गुरू के ब्रह्मचर्य उपदेश का पालन किये बिना, परमेश्वर से दोनों ही विमुख होकर, मृत्यु को प्राप्त हो जाते है । इसलिए हे साधक पुरुषों ! इस माया की रचना से अलग रहकर, सतगुरू के उपदेश से, सत्य स्वरूप परमेश्वर में स्थित हो जाओ ।

(इति माया का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

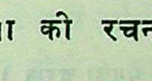

॥ अथ सांच का अंग १३ ॥

“दादू सांई सत्य है दूजा भ्रम विकार०”, इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप माया के अंग के अनन्तर, अब सांच के अंग का निरूपण करते हैं । सांच के अंग में प्रभु के सत्यस्वरूप और उसको अनुभव करने के साधनों को प्रतिपादन करेंगे । परन्तु संसारी जनों को सत्य स्वरूप का बोध होना कठिन है, फिर भी हरि गुरु संतों की कृपा होने से इस प्राणी को स्वस्वरूप का साक्षात्कार सम्भव है । इसलिए ही अब हरि गुरु संतों का मंगल करते हैं ।

(मंगला चरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- हरि गुरू संतों को हमारी बारम्बार बन्दना है, जिनकी कृपा से मुमुक्षु, माया से पार, सत्य स्वरूप परमेश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं । परन्तु जिज्ञासुओं में प्रथम दया भाव होना चाहिए ।

(अदया हिंसा)

दादू दया जिनों के दिल नहिं, बहुरी कहावे साध ।
जे मुख उनका देखिये, तो लागै बहु अपराध ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनके अन्तःकरण में दया तो है नहीं, और अपने को साधु कहलाते हैं । उनका

मुख देखने से, भारी पाप लगता है।

दोहा :- चोड़ै चुगत कबुतरी, कुतको दयो फकीर ।
जाइ पुकारी राजदर, भेख उतारो चीर ॥२॥

दृष्टान्त :- एक मांस खाने वाला साधु मार्ग में जा रहा था। आगे कबुतर और कबुतरी दाना चुगते थे। साधु ने मन में सोचा कि इन दोनों में से, एक को शिकार कर लें। कबुतरी ने दूर से उसको तरफ देखा, और कबुतर को बोली :- यह साधु हिंसक दिखाई पड़ता है, अपन यहां से उड़ चलें। कबुतर बोला :- नहीं, अगर हम साधु भेष को नहीं मानेंगे, तो हम नास्तिक होंगे। इतने में वह नजदीक आ गया। घूमा कर डंडा फैंका, जोकि कबुतर के पांवों में लगा और कबुतर मर गया। कबुतर को जेब में रख कर चल पड़ा। कबुतरी पति वियोग में दुखी होकर, उपरोक्त वृतान्त, राजा को जा सुनाया। राजा पक्षियों की बोली समझते थे। राजा ने तत्काल राज पुरुषों को आदेश दिया कि उस साधु को पकड़ कर लाओ। राज पुरुष, उसे गिरफ्तार करके, राजा के सामने ले आये। उसकी तलाशी ली, तो कबुतर उसके पास मिल गया। राजा न्यायकारी थे। विचार किया कि अगर इसको फांसी की सजा देंगे, तो मनुष्य हत्या करने वाले को क्या सजा देंगे ? यह सोचकर कबुतरी से पूछा, कि इसको क्या सजा दें ? कबुतरी ने विचार किया कि पति तो मर गया, इसको मरवा कर मुझे पाप ही मिलेगा। तब बोली :-राजन् ! इसका भेष उतरवा लिया जावे ताकि आगे कोई धोखे में, इसके जाल में नहीं फंसेंगे। और इसको यह आदेश दें कि यदि इस भेष को वापिस पहनेगा यो तुझे प्राण दंड की सजा होगी। राजा ने वैसा ही किया। "दादू दया जिनों के दिल नहीं०।

दादू महर मोहब्बत मन नहीं, दिल के बज्र कठोर ।
काले काफिर ते कहिये, मोमिन मालिक और ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनके मन में दया नहीं है, प्यार नहीं है और दिल जिनका वज्र के समान कठोर है, ऐसे मनुष्य पापों से काले और काफिर होते हैं। और परमेश्वर को प्राप्त होने वाले मोमिन कहिए, इनसे अलग देवी सम्पति को धारण करने वाले भक्त कहे जाते हैं।

दादू कोई काहु जीव की, करै आत्माघात ।
सांच कहुं संसय नहीं, सो प्राणी दो जगि जात ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कोई भी मनुष्य, किसी भी जीव की जो हिंसा करेगा, अर्थात् मारेगा, हम सत्य

कहते हैं हममें किसी प्रकार का संसय नहीं है, वह मनुष्य अवश्य नरक की त्रास भोगेगा ।

उपरोक्त ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज के, अहिंसा उपदेश को सुनकर, सांभर शहर में काजी मुल्लाओं ने अपने धर्म की महानता का वर्णन करते हुए कहा कि हमारे यहां तो कुरबानी करते हैं और मांस खाते हैं ।

दादू नाहर सिंह सियाल सब, केते मुसलमान ।
मांस खाये मोमिन भये, बड़े मियां का ज्ञान ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे पशुओं में नाहर सिंह, गीदड़, वे सब मांस खाने वाले जानवर हैं । ऐसे ही हे काजियो ! हे मुल्लाओ ! कितने ही मुसलमान मांस खाते हैं, जीव हिंसा करते हैं और फिर अपने को मोमिन कहलाते हैं, परन्तु यह ज्ञान तो बड़े मियां मोहम्मद साहब का नहीं है । वे तो प्राणी मात्र से प्यार करते थे ।

दादू मांस अहारी जे नरा, ते नर सिंह सियाल ।
बग मंझार सुनहां सही, ऐते प्रत्यक्ष काल ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह हम सत्य कहते हैं कि जो प्राणी मांस अहार करने करने वाले हैं, वे इस मनुष्य शरीर में ही सिंह, श्याल, मांजर, बिलाव, कुत्ता रूप हैं और ऐसा समझो कि मानो काल ही जीवों का नाश करने के लिये, शरीर धर कर प्रकट हो रहा है ।

दादू मुई मार माणस घणे, ते प्रत्यक्ष जम काल ।
मिहर दया नहीं सिंह दिल, कूकर काग सियाल ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मरे हुए तुल्य गरीब जीवों को, (बकरा मुर्गे आदि) मारने वाले मनुष्य बहुत हैं, परन्तु वे नररूप में ही सिंह, श्याल (गीदड़) रूप हैं क्योंकि उनके दिल में 'मिहर' कहिए रक्षा करना, दया, ये नहीं हैं । जैसे :-कुत्ते, काग, गीदड़, इनके दया नहीं है, वैसे ही वे जीव हिंसक हैं । दोनों में समानता ही है ।

मांस अहारी मद पीवै, विषय विकारी सोइ ।
दादू आतम राम बिन, दया कहां थि होइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मानव, मांस अहार करने वाले हैं और मदरा (शराब) पान करते हैं, वही विषय विकारों में लिप्त रहते हैं, उनके अन्दर दया तो लेस मात्र भी नहीं रहती है क्योंकि आत्मा रूप राम की अनुभुति किये बिना उनमें दया कैसे हो सकती है ? क्योंकि वे आत्म विमुखी हैं, इसलिए उनका संग त्यागिये ।

कुछ मुसलमानों ने, ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज को सांभर में कलमा पढ़ना, और मांस भक्षण करने का आग्रह किया, उसके उत्तर में ब्रह्मऋषि सतगुरू देव का उपदेश :—

लंगर लोग लोभ सौं लागैं, बोलैं सदा उन्हौं की भीर ।
जोर जुलम बीच बट पारे, आदि अंति उनहीं सौं सीर ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! लंगर कहिए खुशामदी करने वाले लोग, लोभ में पड़कर, सदा जो संसारी जन असुर प्रकृति वाले हैं, उनकी ही वह पक्ष लेते हैं और उनके जोर जुलम अत्याचार में ही शामिल होकर, प्रसन्न रहते हैं । ऐसे पुरूषों से अलग रहकर, जन समुदाय की सेवा करो ।

तन मन मारि रहे सांई सौं, तिन कौं देखि करैं ताजीर ।
यें बड़ी बूझ कहां थैं पाई, ऐसी कजा अवलिया पीर ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो संतजन, अपने तन मन को निर्विषय, गुणातीत करके, आत्मा में लयलीन रहते हैं, उनसे वे लोग, 'ताजोर, कहिए ईर्षा रखते हैं । हे मुसलमानों ! यह नासमझी तुमने कहां से प्राप्त की है ? क्या तुम्हारे औलिया पीरों का, 'कजा' कहिए यही न्याय है ?

बेमहर गुमराह गाफिल गोशत खुरदनी ।
बेदिल बदकार आलम हयात मुरदनी ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो दया भाव से शून्य हैं, परमेश्वर से विमुख हैं कर्त्तव्य शून्य है, मांस जिनका खाना है, ऐसे नीच कर्म करने वाले, मलीन अन्तःकरण प्राणी, इस संसार में पैदा हुए, जन समुदाय की तरफ से और ईश्वर की तरफ से, मृतक समान हैं । इस प्रकार जानकर ऐसे पुरूषों का त्याग करो ।

छलकर बलि कर धाइ करि, मारै जिंहि तिंहि फेरि ।
दादू ताहि न धीजिये, परणै सगी पतेर ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो कपट करके, जबरदस्ती से घात करें अर्थात् मारें, कोई न कोई कारण बनाकर जीव हिंसा करते हैं और अपनी बहन को ही परण लेते हैं, (अर्थात् ताऊ का लड़का और छोटे भाई की लड़की के साथ शादी कर देते हैं) उनका कभी भी विश्वास नहीं करना, कि ये जन समुदाय की सेवा करके, ईश्वर को प्राप्त कर सकेंगे । अर्थात् ईश्वर उनको नहीं माफ करेगा ।

दादू दुनियां सौ दिल बंध करि, बैठे दीन गवांइ ।
नेकी नाम बिसार करि, करद कमाया खाइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक विषय भोगों में अपने दिल को लगाकर, अज्ञानी जन ईमान और और सत्य को खोकर बैठे हैं । भलाई को भूलकर हिंसा की कमाई खा रहे हैं और परमेश्वर के नाम को भूल चुके हैं । ऐसे, मनुष्य की शकल में शहतान बन रहे हैं ।

दादू गल काटैं कलमा भरैं, आया बिचारा दीन ।
पंचौं बखत निवाज गुजारैं, स्यावत नहीं यकीन ॥१४॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! जो असुर परमादी लोग हैं, वे जीवों के गले काटते हैं, अपने स्वादों के लिये । और फिर कलमा पढ़ते हैं । बोलते हैं कि हे मालिक ! यह बिचारा दीन जीव, आपके पास मिस्त में आता है । परन्तु पांच टाईम पर वे, रात दिन नमाज गुजारते हैं, मालिक का तो उनको विश्वास रत्ती भर भी नहीं है और अनन्त विषय विकारों में फंसे हुए हैं । ऐसे पुरूषों को ईश्वर कभी माफ नहीं करेगा ।

दुनियां के पीछै पड़्या, दौड़्या दौड़्या जाइ ।
दादूजिन पैदा किया, ता साहिब को छिटकाइ ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजन, नाना प्रकार की कामनाओं को दिल में लेकर, दुनियां के पीछे पीछे दौड़ता रहता है । कभी धनी के पीछे दौड़ता है, कभी पीर फकीरों के पीछे दौड़ता है । और जिस परमेश्वर ने जन्म दिया है, उस परमेश्वर का विश्वात, तो छोड़ दिया है । ऐसे विषयी मनुष्यों को सुख श्रौर शांति, कहां प्राप्त हो सकती है ?

कुफर जे के मन मैं, मीयां मुसलमान ।
दादू पैया झंग मैं, बिसारे रहिमान ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनके मन में तो काफिरपना भरा है अर्थात् नीचता है और अपने को मुसलमानों में बड़ा कहलाता है। विषय वासना रूपी झगड़ों में फंसा हुआ है। अथवा नाना प्रकार के झगड़ों में फंसा है और रहमान परमेश्वर को भूला फिरता है, ऐसे नीच कर्म करने वालों का, क्या हाल होगा ? खुदा जानता है।

आपस को मारै नहीं, पर को मारन जाइ।
दादू आपा मारे बिना, कैसैं मिलै खुदाइ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! असुर प्रकृत्ति वाले मनुष्य अपने आपा रूप अहंकार को तो मारते नहीं। अथवा अपनी स्त्री, लड़के, बच्चे, उनको मार कर, भिस्त में क्यों नहीं भेज देते हो ? और ईश्वर सृष्टि के जीव, उनको मारने को जाते हैं, फिर कहते हैं कि इनको भिस्त में भेज दिया। अपना आपा, अहंकार, घमंड, शारीरिक बल, इसका त्याग किये बिना, खुद खामिन्द परमात्मा, इन कामों से कैसे प्राप्त होगा ? ऐसे पुरुष, दोजक को ही, अर्थात् नरक को ही, प्राप्त होंगे।

दादू भीतर दुंदर भरि रहे, तिनको मारैं नांहि।
साहिब की अरवाह को, ताको मारण जांहि ॥१८॥

टीका : हे काजी मुल्लाओं ! तुम्हारे अन्दर राग द्वेष, आदि विकार भरे हैं। हिन्दू मुसलमानों का भेद भाव भरा है, इनको तो तुम मारते नहीं हो ? और साहिब रचित, गरीब जीव आत्मा पशु, उनको मारने को जाते हो। ऐसे कामों से खुदा कब राजी होगा। तुम्हारी नमाज सिजदा क्यूं कबूल करेंगे।

दादू मूये कौं क्या मारिये, मीयां मूई मार।
आपस कौं मारै नहीं, औरौं को हुसियार ॥१९॥

टीका :- हे काजियों ! बिचारे प्रारब्धवश पशुओं ने शरीर प्राप्त किया है। घास खाकर, पानी पीते हैं। ऐसे गरीब जीवों को क्या मारते हो ? अगर तुम मुसलमानों में बड़े हो, तो अपनी ममता, अहंकार को मारो। अथवा अपने परिजनों को मारो, तब तुम्हें पता चलै। औरों को कहिए, ईश्वर रचित जीवों को, अपने स्वादों के लिए, तुम्हें मारने का क्या हक है ?

दोहा :- जगन्नाथ गुण देह के, तिनही को दण्ड देइ।
औंर धणी की आत्मा, सबसूं करो स्नेह ॥१९॥

(सांच)

जिसका था तिस का हुआ, तो काहे का दोस ।
दादू बंदा बंदगी, मीयां ना कर रोष ॥२०॥

टीका :- जब ब्रह्मऋषि सतगुरू महाराज उपरोक्त प्रकार से उपदेश किया, तो काजी बोला :- जिस खुदा का था, उसी खुदा के लिए कुरबानी चढ़ा दी, तो फिर क्या दोष है ? हे मीयां रोष नहीं करना ! बन्दे को तो, बन्दगी करनी चाहिए, खुदा की । अर्थात् खुदा के बनाए हुए जीवों को रक्षा करना ही, खुदा की बन्दगी है । जीवों के शरीर में ही, वह मालिक आप अच्छाई और बुराई को देख रहा है ।

सेवग सिरजनहार का, साहिब का बंदा ।
दादू सेवा बंदगी, दूजा क्या धंधा ॥२१॥

टीका :- परमेश्वर का सेवक कहलावै और साहिब का बन्दा, इन दोनों को परमेश्वर और खुदा की सेवा से अलग कुछ कर्त्तव्य नहीं है । वह परमेश्वर की सेवा क्या है ? जन समुदाय की सेवा, दीन दुखियों की सेवा, बन्दगी कहिए खुदा की याद, खुदा की आज्ञा का पालन करना, अपने आपा अभिमान को त्यागना । हिंसा का त्याग करना, प्राणी मात्र से प्यार करना, इसके अलावा सेवक और बन्दे को, दूसरे हिंसा आदि काम नहीं करने चहियें ।

सो काफिर जे बोले काफ, दिल अपणा नहीं राखै साफ ।
सांई कौं पहिचानै नांही, कूड़ कपट सब उनहीं मांही ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो परमादी प्राणी असत्य और निर्दयेतामय बचन बोलें, सो काफिर हें । और वह परमेश्वर से विमुखी हैं और उनका मन पवित्र नहीं होता । इसी से उनके मन में झूठ, धोखा देना, यह सब आसुरी गुण, संसार में उसमें व्याप्त होते हैं ।

सांई का फरमान न मानैं, कहां पीव ऐसै करि जानैं ।
मन अपणे मैं समझत नाहीं, निरखत चलै आपणी छाहीं ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह काफिर है, जो परमेश्वर की आज्ञा नहीं मानता और ईश्वर सत्ता में आशंका करता है कि परमेश्वर कहां है ? अगर है तो सबको दिखना चाहिए । ऐसे पुरूष अपने मन में स्वस्वरूप का बोध न प्राप्त करके, 'छायां' कहिए, माया अथवा अपने शरीर की शक्ति व शरीर की छाया

को इधर उधर देखते चलते हैं, और आशा, वासनामय छाया को देखते हुए, ऐसे काफिर अपनी आयु बिताते हैं।

जोर करै मसकीन सतावै, दिल उसकी में दरद न आवै।
सांई सेती नांही नेह, गर्व करै अति अपनि देह ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! वह ईश्वर विमुखी अज्ञानीजन, बलपूर्वक गरीबों को सताते हैं और गरीबों को कष्ट देते समय, उनको बिलकुल भी रहम नहीं आता। शरीर, अभिमान के सामने वे, निष्काम शुभ कर्म और ईश्वर को भी भूल बैठे हैं। ऐसे कुकर्मी ही काफिर होते हैं।

इन बातन क्यों पावै पीव, पर धन उपरि राखै जीव।
जोर जुलम करि कुटम्ब सूँ खाइ, सो काफिर दोजक में जाइ ॥२५॥

टीका :- हे काजी मुल्लाओ! इस प्रकार के कर्त्तव्य से, परमेश्वर नहीं मिल सकते। जबरन से, जो दूसरों के धन को छीनते हैं और अपने कुटम्ब का पालन करते हैं, अर्थात् अपने मन इद्रियों के विषय भोगों को भोगते हैं। ऐसे काफिर हैं वे नरक में जाते हैं।

(काफिर के लक्षण)

चौपाई :-

एक फकीर अल्ह का प्यारा, गलित रहै दुनियां से न्यारा॥
दर्द बंद पक्का दूर्वेसा, बूझे बहुरि न रहै अंदेसा॥
एक अतीत दरसन को आया, आदर करि नेड़ै बैठाया॥
सक्त बचन मुख से कहा काजी, क्या काफर का कीजे राजी॥
बहुरि अतीत फकर सूं बूझै, हजरत तुम्ह को सब कुछ सूझै॥
बड़ा अंदेसा एक हमारै, काफर किसको कहै तुम्हारै॥
समझि सोच कर बोला सेख, सो काफर बूझै नहीं एक॥
दर्द बिना दूर्वेस कहावै, सो काफर दोजक मैं जावै॥

सो काफर काफर का खाई, ब्याज मूल दोनों ले जाई ॥
हक्क हलाल हराम न जानै, माल बिराना घर मै आनै ॥
हुज्जत हिरस जुलम दुखदाई, काफर तिस को कहिए भाई ॥
झूठा न्याव करै ले कोड़ी, बहुरी करै झूठे की होडी ॥
झूठ कपट सीखै ठग बाजी, सोई काफर सोई काजी ॥
सो काफर जे पूजै गैर, होते दर्ब न बाटैं खैर ॥
सो काफर जो जूवा खेलै, सो काफर जो जादू मेलै ॥
सो काफर नीडर नही डर है, नेक पुरुष की निंदा कर है ॥
गुना दोष कछु कथा न पावै, घर बैठे को आन सतावै ॥
सो काफर जो मिथ्या बोलै, पर नारी से परदा खोलै ॥
बगनी बोझा मदरा पीवै, भांग तमाखू देखे जीवै ॥
पांच पहर धंधा मै खोवै, तीन पहर पसु ज्यों सोवै ॥
खैर बंदगी दोनों नाहीं, सो काफर दोजक मै जांहि ॥
सो काफर कृत्तम को पूजै, सिर पर सिरजनहार न सूझै ॥
झूठा आगै सांचा मारै, तिस को काफर कह हमारै ॥

दोहा :- यह काफर हजरत कहे, हरिदास हद खोइ ।
इनको मोमन मुसलमान, कहै सो काफर होइ ॥२५॥(इति)

दो साखियों से हिंसा को दोषमय बताकर, विरक्तता का उपदेश करेंगे ।

दादू जाको मारण जाइये, सोई फिरि मारै ।
जाको तारन जाइयें, सोई फिर तारै ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसको जो मारने जाता है, फिर उसको वही मारता है। जिसको तारने जाता है, वह उसको तारता है, अर्थात् जो जिसके साथ जैसा व्यवहार बरतेगा, उसके साथ वैसा ही व्यवहार होवेगा।

दोहा :- सांभर स्वामी पै गये, गुरू चेला धरि घात।
उलटि परीगुरू को हत्यो, रोवत मींडत हात ॥२६॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज, सांभर झील छतरी में निवास करते थे, जब ब्रह्मऋषि की ज्ञान भक्ति का, राजस्थान में डंका बजा, तब अन्य सम्प्रदा वाले लोग मुरझा गए। गलता से चार साधु, बैरागी, रामदास, वटाराम, गैबीदास, छीतरदास, ये कन्ठी तिलक लेकर सांभर, ब्रह्मऋषि के पास पहुंचे। एक सांभर का भूदरदास बैरागी भी इनके साथ था। और महाराज के सामने कन्ठी तिलक रखकर, नमस्कार किया। फिर बोले :-यह आप धारण कर लो। महाराज ने पूछा :-यह कन्ठी तिलक किसने चलाया है ? साधु बोले :-"कण्ठी तिलक चलायो बंदा, सो गुरू कहिए रामानन्दा।" ब्रह्मऋषि बोले :—

कण्ठी तिलक सो कुछ नहीं, काहु सेती काम।
अन्तर मेरे एक है, अह निस उसका नाम ॥

कवित्त :-

दीन दयाल कहै जन साधन, कण्ठी डिम्ब प्रपंच पसारा।
स्वांग ही धारकै साध कहावत, सो हम जानत आदि तुम्हारा ॥
रामानन्द हि स्वांग धर्यो जग, सो तो भयो कुल मांहि लखारा।
ज्ञान कहै मम पंथ छिपै नहीं, आदि स्वरूप सदा उजियारा ॥

यह सुनकर, वे पांचों साधु नाराज होकर, वहां से चल पड़े और फिर एक जाल गूथा कि दादू दयाल को खत्म कर दें। सायंकाल को भूधरदास और उसका चेला, दोनों आकर महाराज को दण्डवत् करी, और महाराज के चरण जसने लगे। जब योग निद्रा का समय हुआ तब बोले :-महाराज ! प्रातःकाल हम लोग आएंगे और रामबाग की तरफ आपको घूमाने ले चलेंगे। ब्रह्मऋषि बोले :-अच्छा ! रामजी आप आ जाना। जब प्रातःकाल तीन बजे ही गुरू चेला दोनों आये, और महाराज से सत्यराम बोले और कहने

लगे :-महाराज पधारिये । ब्रह्मऋषि बोले, किसी संत को जगा लो । भूधरदास :-महाराज ! हम आपके चेले ही तो हैं । महाराज का करमंडलु, भूधरदास ने हाथ में ले लिया और राम बाग की तरफ जंगल में पहुंचे और भूधरदास जोर जोर से बोलने लगा—दादूराम ! दादूराम ! सुनते ही चारों बैरागी लठ ले ले कर आये । राम जी महाराज की लीला कौन जान पाता है ? भूधरदास तो दिखने लग गया ब्रह्मऋत्रि दादू दयाल, और दादू दयाल जी दिखने लग गए भूधरदास । उन्होंने दो चार लठ मारे । वह कहने लगा, मैं तो भूधरदास हूं, भूधरदास हूं । पर उनको वह दादू दयाल दिख रहा था । मार पीठ कर दौड़ गये । ब्रह्मऋषि अपना करमण्डलु और छड़ी लेकर, छत्री में आ गये । दिन निकलने पर शिष्यों से बोले :-अमुख जगह भूधरदास पड़ा है, उसे उठा लाओ । संत गये, मुर्छित भूधरदास को लाकर, ब्रह्मऋषि के सामने लेटा दिया । गुरूदेव ने सत्यराम कह कर, उसके शरीर पर हाथ फेरा । तत्काल बैठा हो गया । चरणों में मस्तक रखकर, अपना अपराध क्षमा कराया । ब्रह्मऋषि बोले :-राम जी ! "जाको मारन जाइये, सोई फिर मारै० ।" साधुओं का यह कर्त्तव्य नहीं होता है ।

दोहा :- गाय कसाई ले चल्यो, दीनि चोर छुड़ाइ ।
गल दीयो तब गल आई, काढ्यो गल मुक लाइ ॥२६॥

दृष्टान्त :- एक कसाई, गाय को काटने के लिए, छुरा हाथ में लिए गाय को ले जा रहा था । सामने से चोर आया और उसने देखा, कसाई है गाय को कत्ल करेगा । चोर ने कसाई से गाय छुड़वा दी और उसका छुरा छीन लिया, गाय की रक्षा करी । उस चोर को किसी केस में गिरफ्तार कर लिया । जज ने उसको फांसी की सजा सुना दी । जब फांसी घर पर उसको फाँसी पर लटकाया, उसके पांव के नीचे गाय प्रगट होकर, अपनी पीठ लगा दी । जब फांसी ढिली हुई तो दुबारा फिर फांसी को कसने लगे, तब गाय ने अपना सिर उसके पांव के नीचे लगा दिया । वह और भी ऊंचा हो गया । तब तीसरे फिर फांसी कसी, तब गाय ने ऊंचा मुंह करके, उसके दोनों पांव, मुंह पर ले लिये । जब तीसरी बार भी फांसी नहीं लगी, तब फांसी से उतार लिया गया । जज ने पूछा, तुम्हारे क्यों नहीं फांसी लगी ? तब चोर ने उपरोक्त वृत्तान्त सब सुना दिया । जज को ज्ञान हो गया कि इसने गाय की रक्षा की थी, गऊ ने इसकी रक्षा की है ।

दोहा :- घोड़े चढ़ि रजपूत इक, मग में मार्यो सांप ॥
चींटि लइ उबार तब, रक्षा करि लइ आप ॥२६॥

दृष्टान्त :- एक राजा घोड़े पर सवार होकर जा रहा था । मार्ग में काला सांप मिल गया । उसने देखा, यह काल कहां से आ गया ? तब घोड़े से उतर कर, उसकी गर्दन पर एक तलवार मार दी, फिर

सवार होकर चलने लगा । वह सांप की ठोडी भी फुदकती फुदकती उसके पीछे जाने लगी । आगे रास्ते में चींटियों का एक नाल आया । राजा ने देखा, कि चींटी नाल के ऊपर से घोड़ा जाएगा, बहुत सी चींटी मर जाएगी । वह रास्ता छोड़कर दूसरे रास्ते से गया । पीछे से सांप की ठोडी आई । चींटियों से पूछा :-क्या इधर से घोड़े का सवार गया है ? चींटियों ने कहा, हां भाई ! गया है, क्या बात है ? उसने मुझे मारा है, मैं भी उसको डस कर, मारूगां । चींटियां बोली हमको तो उसने तारा है, तो हम भी उसको जहां तक होगा तारेंगे । ठोडी, रात को जाकर, राजा की जूती में बैठ गई । चींटियों ने भी उस जूती को चारों तरफ से घेर लिया । सवेरे राजा उठा, दूर से देखा तो चींटियां जूती में भरी दिखलाई पड़ी । बांस लेकर नौकर को बुलाया । राजा बोला :—जूतियों में बांस डाल कर, ऊँची करके हिलाओ, चींटियां सब निकल जाएगीं । हिलाते ही जुती में से सांप की ठोडी निकल कर पड़ी । चींटियों ने अपना रास्ता लिया । राजा ने ठोडी देखकर, विचार किया कि यह तो वही सांप है, जिसको मैंने मारा था । और यह वही चींटियां हैं, जिनको मैंने बचाया था । राजा मन में बहुत पश्चाताप किया और विचार करने लगा, जो जिसको तारता है वह उसको तारता है और जो किसी को मारता है, वह उसको मारता है । इसलिए मनुष्य जन्म पाकर, किसी को भी नहीं सताना चाहिए । सर्व जीवों की रक्षा ही करना चाहिए । इसी से कल्याण होता है ।

दादू नफसनाम सौं मारिये, गौस माल दे पंद ।
दूई है सो दूरि करि, तब घट में आनन्द ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस विषियाकार वहिर्मुख मन को, नाम स्मरण द्वारा एकाग्र करो और इन्द्रियों की भी गुरू उपदेश द्वारा अन्तर्मुख लाओ । अन्त:करण से द्वैतभाव को त्याग दो । तो फिर आत्मा आनन्द का साक्षात्कार करो ।

(सच्चे मुसलमान के लक्षण)

मुसलमान जु राखै मान, सांई का मानै फरमान ।
सारौं को सुखदाइ होइ, मुसलमान कर जानू सोइ ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुसले इमान अर्थात् वही सच्चा मुसलमान है, जो सबका आदर सन्मान करता है, धर्म निष्ट होता है, खुदा की आज्ञा को मानता है । चींटी से हाथी पर्यन्त, जीव मात्र को सुख देने वाला होवै, उसे सच्चा मुसलमान समझो । वह किसी भी प्राणी को नहीं सताता है ।

दादू मुसलसान मिहर गहि रहै, सबकौं सुख, किसे नहीं दहै ।
मुवा नहीं खाइ, जिवत नहीं मारै, करै बंदगी राह संवारै ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो प्राणीमात्र पर दया रखता है और सबको सुख पहुंचाता है। किसी को भी कभी दुख नहीं देता है। मरे हुए जीव के मांस को नहीं खाता है और जीते जीवों को कभी, मार कर नहीं खाता है। परमेश्वर को बन्दगी कहिये भक्ति करता है, वही सच्चा मुसलमान इस लोक और परलोक को सफल बनाता है।

दो० :- दया जिनों के दिल बसै, दरद बंद दुरवेस।
तुलसी उनको होइगो, भिस्त मांहि परवेस॥२९॥

सो मोमिन मन मैं करि जान, सत्त सबुरि बैठै आन।
चलै सांच सवारै बाट, तिनकौं खुले भिस्त के पाट॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सो मोमिन मुसलमान है, जो संतोष रखता है और सत्य स्वरूप ईश्वर को जानता है। किसी भी प्राणी से अन्याय का व्यवहार कभी नहीं करता, दूसरे के अधिकार को छीनता नहीं, मालिक में अपने मन को स्थिर करता है, ऐसे कोमल हृदय वाले पुरूष को मुसलमान कहते हैं। उनके लिए तो मानो, इस संसार में ही भिस्त (स्वर्ग) का दरवाजा खुला हुआ है।

सो मोमिन मोम दिल होइ, सांई को पहिचानै सोइ।
जोर न करै हराम न खाइ, सो सोमिन भिस्त मैं जाइ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही मोमिन मुसलमान है, जिसका दिल मोम के समान कोमल होता है। दुखी को देखकर दुखी हो जाता है, और सुखी को देखकर सुखी रहता है, ऐसा पुरूष परमेश्वर को जानता है। किसी पर जबरदस्ती नहीं करता, दूसरे के हक को नहीं खाता, ऐसे मुसलमान भिस्त में जाते हैं।

(मोमिन मुसलमान के लक्षण)

चौ० :- बहूरि अतीत फकर सूं कह्या, हजरत एक अंदेसा रह्या।
काफर के सब अंग बखाने मोमन के लछन नांहि जाने॥

दो० :- हजरत कहै अतीत सौं, संसै रहै न कोई।
मोमन के लक्षण कहो, भीस्त सरीकत होइ॥३१॥

चौ० :- सो मोमन मालिक सौं डरै, भंडारे में भेद न करै ।
दुविध्या दुर्मति डारै धोई, असली मोमिन कहिये सोई ॥
दर्द बंद साहिब का प्यारा, हुज्जत हीरस जुलम तैं न्यारा ।
नेकी नीति यकीन सबूरी, हरदम हाजीर होई हजूरी ।
दीन गरीबी बांटै खानां, नूर पीयाले भिस्त ठिकाना ।
चोरी जारी जूवा त्यागै, पर नारी सूं अलगा भागै ।
हक्क बिराना माल न चाखै, सूर सर्प मिष्टा करि नाखै ।
महर महब्बत सब सुखदाई, मौमिन तिसको कहिये भाई ।
ईस्क महब्बत दर्द उदासी, करै बंदगी खीजमत खासी ।
ज्यूं अपना सुत त्यूं पर बाला, हरष सोक तैं रहै निराला ।
अपना आप भस्म कर डाला, सोई औलिया उलटा चाला ।
सो मोमिन मुर्दा ज्यूं मर है, हराम मालका रोजा कर है ।
सो मोमिन जो मन को मारै, करै बन्दगी राह संवारै ।
औगन दोष जीव के जानै, बाहर जाता भीतर आनै ।
मतलब एक धनी सूँ राखै दूजे आगै आन न भाखै ।
आप देई औरों से दिलावै, सो मोमिन साहिब को भावै ।

दोहा :- यह मोमिन हज़रत कहे, हरिदास करी प्यार ।
यही तालब अलह के, येही अलह के यार ॥३१॥ (इति)

(जैसा करना वैसा भरना)

सतगुरू भगवान सांभर झील छत्री में तपस्या करते थे । एक रोज हिन्दू और मुसलमानों ने, यह विचार करके, महाराज से प्रश्न किया कि आप न तो तीर्थ, व्रत, मन्दिर, आदि को मानते हो, और न कलमा पढ़ते

हो, न निमाज गुजारते हो । आप किसी भी धर्म को नहीं मानते, और धर्म का उपदेश करते हो, इसी के प्रति उत्तर में सतगुरू भगवान ने ३२ से ३६ तक, पांच साखियों से उपदेश किया है ।

जो हम नहीं गुजारते, तुम्ह कौं क्या भाई ।
सीर नहीं कुछ बंदगी, कहो क्यों फरमाई ॥३२॥

टीका :- हे सज्जनों ? जो हम परमेश्वर की प्रार्थना भक्ति, तीर्थ, व्रत, नमाज, सिजदा नहीं करते हैं, तो आपको इसमें क्या हानि होती है ? हे भाईयो ! परमेश्वर की भक्ति में अर्थात् शुभ कर्मो में, कोई साझेदारी नहीं होती है । आप यह बात क्यों कहते हो ?

अपने अमलौ छूटिये, काहू के नाहीं ।
सोई पीड़ पुकार सी, जा दूखै मांहीं ॥३३॥

टीका :- हे सज्जनों ! अपने समान कर्मो से ही जीव बन्धन को प्राप्त होता है और अपने निष्काम कर्मों से मोक्ष को पाता है । दूसरे के करने से, वह मुक्त नहीं होता । जिसके हृदय में परमेश्वर का विरह है, वही उसे पुकारेगा ।

कोई खाइ अघाइ करि, भूखे क्यों भरिये ।
फूटी पूँगी आन की, आपण क्यों मरिये ॥३४॥

टीका हे जिज्ञासुओ ! अगर एक भर पेट खाता है तो दूसरे का पेट नहीं भरता । इसी तरह दूसरे ने "फूटी पूंगी कहिये"—खोटी कमाई करी है तो, अपने क्यों भरेंगे ? इस रीति से जो आत्मा का विचार करते हैं, उनको ही मोक्ष प्राप्त होती है, और जो अविद्या आवरण में आसक्त हैं, वे संसार बन्धन में बंधे हैं, दूसरे नहीं ।

फूटी नाव समंद में, सब डूबण लागे ।
अपणा अपणा जीव ले, सब कोई भागे ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे समुद्र में नाव टूट जावे, तो फिर कोई किसी के भरोसे नहीं रहता है । सब लोग अपना अपना पुरूषार्थ करके, पार उतरना चाहते हैं । दाराष्टान्त में संसारी जनों की वृत्ति में, बहिर्मुख भाव का होना ही नाव का टूटना है, इसलिए सब जीवों को, आत्म विचार के द्वारा, संसार बन्धन से मुक्त होने का पुरूषार्थ करना चाहिये ।

दादू सीरि सीरि लागी आपणे, कहु कौण बुझावै ।
अपणा अपणा सांच दे, सांई कौं भावै ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने सिर पर लगी आग को आप ही बुझावै, तब बुझै । ऐसे ही संसार वासना रूप अग्नि से जल रहा है । अब यहां स्वयं जिज्ञासु ही, परमात्मा के स्वरूप का विचार करके, मुक्त हो सकता है ।

दोहा :- पीपा पापन कीजिये, अलगो रहिये आप ।
करणी जासी आपनी, क्या बेटा क्या बाप ॥३६॥

दोहा :- तीन पुरुष गुहा रूके, मात पिता पये पाइ ।
म्हैनति दई बढाइ करि, इकत्रीये काल कढाइ ॥३६॥

दृष्टांत :- एक ब्राह्मण, दूसरा क्षत्रीय, तीसरा बनिया, तीनों विदेश कमाने जाते थे । पहाड़ी रास्ता था । तूफान आ गया । यह लोग एक गुफा में खड़े हो गये । एक पहाड़ की चट्टान टूटी और हवा से उड़कर गुफा के दरवाजे पर आ लगी । जब यह गुफा के अन्दर गये, वहां एक संत के दर्शन किये । उपरोक्त वृतांत सब, सन्त को कह सुनाया । संत बोले :- ब्राह्मण तैंने कभी सच्चा धर्म किया है, तो वह सुना दे, जिससे कि यह सिला धीरे धीरे अलग होगी । ब्राह्मण बोला :- मेरे माता पिता बूढ़े थे, मैं अपने हाथों से, उनकी सब सेवा करता था । दो कटोरों में दूध लेकर, मैं आया, माता पिता को पिलाने के लिए । तो माता पिता को निद्रा आ गई । मैं दूध लिए ही खड़ा रहा । उस रोज ऐती नींद आई कि प्रातःकाल उनकी आंख खुली, सामने मैं दूध लिये खड़ा था । वह बोले :- पुत्र ! क्या तुम दूध लिए रात से ही खड़े हो ? मैंने कहां :- हां । माता पिता, वह दूध के कटोरे ले लिये और मेरा प्रेम जानकर, उसी समय उन्होंने पी लिया । मुझे आशीर्वाद दिया, कि तेरी जय होगी । यह मैंने सच्चा धर्म माता पिता के साथ निभाया है, तो यह सिला अलग होवै । इतना कहते ही, कुछ प्रकाश गुफा में हो गया । संत राजपूत से बोले, तुमने भी सच्चा धर्म किया हो तो सुना दो । राजपूत :- "एक समय काल पड़ गया । दुनियां बेघर हो गई । एक राजपूत की लड़की, माता पिता से वियोग होने पर, घूमती हुई मेरे घर आ गई । मैंने उसको आश्वासन दिया और धर्म की पुत्री बना कर रखी । साल भर के बाद, उसको मैं उसके गांव ले जाकर, माता पिता से मिलाई । मैंने यह उसके साथ, सच्चा धर्म निभाया है तो, यह सिला अलग हो जाये" । सिला काफी अलग हो गई । संत बनिया को बोले :- तैंने भी कोई सच्चा धर्म किया हो तो सुना दे । बनिया :- एक समय काल पड़ गया । एक जाट मेरे घर आ गया और नौकरी करने लगा । साल भर के बाद जब वर्षा हुई, जाट

बोला :- सेठ जी, मैं अपने गांव जाऊंगा, मेरा हिसाब कर दो। मैंने उसका हिसाब करके, रूपये दे दिये। वह चला गया। फिर एक रोज मैंने उसके नाम का, बही में खाता देखा, तो मेरे में उसकी एक चवन्नी रह गई। मैंने उस चवन्नी को ब्याज में डाल दिया। कई साल में जाट आया। चवन्नी का हिसाब किया तो, कई रूपये बन गए। उन रूपयों पर वह चवन्नी रखकर, मैंने जाट के सामने रख दिये, और कहा कि यह तेरे हैं, ले जा। जाट बोला :- मैं दान के नहीं लूंगा। बनिया :- यह तेरी मेहनत के हैं। उपरोक्त चवन्नी का सब वृत्तान्त कह सुनाया। जाट, अपनी मेहनत के जानकर, ले लिये। यदि यह धर्म मैंने जाट के साथ सच्चा निभाया है तो, सिला अलग हो जावे। इतना कहते ही सिला दूर जाकर गिरी। संत बोले :- देखो सच्चे धर्म की शक्ति ! तीनों, संत के चरणों में नत मस्तक हो गये और अपने मार्ग पर चले गए।

(सुमिरण नाम चितावणी)

सांचा नाम अल्लाह का, सोई सत्त करि जाणि।
निश्चल करले बंदगी, दादू सो परमाणि ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस संसार में एक परमेश्वर का नाम ही सत्य है। इसलिये इस नाम को दृढ़ निश्चय से अन्तःकरण में स्मरण कर। यही तेरे उद्धार का प्रमाण है।

आवट कूटा होत है, औसर बीता जाइ।
दादू करिले बंदगी, राखणहार खुदाइ ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! "आवट कूटा" कहिए— तीनों तापों से, सब जीवों की आयु बीतती जाती है और यह समय, मनुष्य शरीर का व्यर्थ ही जा रहा है। इसलिए उस परमेश्वर की आराधना करिये, क्योंकि इन दुखों से रक्षा करने वाले तो, एक परमेश्वर ही हैं। उनका स्मरण करो।

इस कलि केते व्है गये, हिंदू मूसलमान।
दादू सांची बंदगी, झूठा सब अभिमान ॥३९॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! इस संसार में कितने ही हिन्दू मुसलमान हो चुके हैं, परन्तु परमेश्वर की भक्ति के बिना, संसारीजन धर्म का वृथा ही अभिमान करके, निष्फल ही जीवन गमाते हैं। उनका ही जीवन सार्थक है, जो परमेश्वर का स्मरण करते हैं।

(कथनी बिना करणी)

पोथी अपणा पिंड करि, हरि जस माँहैं लेख ।
पंडित अपणा प्राण करि, दादू कथहु अलेख ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने शरीर को ही पुस्तक बनावैं और इसमें हरि का यश गुणानवाद लिखैं और अपने प्राणों को ही पंडित बनाकर, अलेख परमेश्वर के गुणों का ही कथन करैं, क्योंकि जिसने यह मनुष्य जन्म दिया है, उसी ईश्वर के इसको अर्पण कर ।

काया कतेब बोलिए, लिखि राखुं रहिमान ।
मनवां मुल्लां बोलिये, सुरता हैं सुबहान ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस शरीर को कुरान शरीफ बना और फिर इसमें रहमान के गुणानवाद लिख कर रख और अपने मन को ही मुल्ला बनाकर, खुदा के गुण गावै तो, सुबहान परमेश्वर, उस पाठ को सुनेगा । तभी तुम्हारा कल्याण संभव है ।

दादू काया महल मैं निवाज गुजारू, तहं और न आवन पावै ।
मन मण के करि तसवी फेरू, तब साहिब के मन भावै ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस शरीर रूप मस्जिद में ही, मालिक की प्रार्थना करो और वहां पर काम, क्रोध, लोभ मोह विकार कोई भी नहीं आने पाते हैं । उनसे विरक्त रहो । ऐसी अपूर्व सेवा के लिए मनरूप मणियों की तसवी (माला) फेरो । यह सेवा परमेश्वर को भाने वाली है । प्रभु में ही एक रस रहो, ऐसे भक्त प्रभु को प्रिय हैं ।

दिल दरिया मैं गुसल हमारा, ऊज्जू करि चित्त लाऊं ।
साहिब आगै करू बंदगी, बेर बेर बलि जाऊं ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस शरीर में स्थित हृदय ही दरियाव है और परमेश्वर का नाम ही मानो उसमें जल है । और नाम का स्मरण करना ही स्नान है । ब्रह्म स्वरूप का चिंतन करना ही ऊज्जू है । इस प्रकार इन पांचों ज्ञान इद्रियों की पवित्रता करके, मालिक में अपने चित्त को स्थिर करो । इस प्रकार परमेश्वर की सेवा (बन्दगी) करके, ब्रह्मवेता जिज्ञासु अपने आपको मालिक के अर्पण करते हैं । हम उनको बारम्बार बलिहारी जाते हैं ।

दादू पंचौं संगि संभालै सांई, तन मन तब सुख पांवै ।
प्रेम पियाला पिव जी देवै, कलमा ये लैलावै ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मुसलमान अपनी पंच ज्ञानेन्द्रियों को, अन्तर्मुख करके, ईश्वर के स्मरण में स्थिर रहते है, उनको ही परमानन्द प्राप्त होता है । ऐसे मुक्तजन, स्वस्वरूप चिन्तन रूप अमृत का प्याला पीकर, अखंड ब्रह्मानन्द में ही मग्न रहै, यही कलमा पढ़ना है ।

सोभा कारण सब करै, रोजा बांग निमाज ।
मुवा न एकौ आही सौं, जे तुज साहिब सेती काज ॥४५॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! संसार में सभी रोजा बांग, निमाज पढना, यह सब व्यवहारिक प्रसंशा के लिए, दिखावटी करते हैं । अगर मालिक से ही काम है तो, एक ही आह, विरह की आवाज रूप बांग में क्यों नहीं मरे, अर्थात् मन इन्द्रिये संसार भोग वासनाओं से विरक्त क्यों नहीं हुए ? हे मुसलमानों ! इस प्रकार प्रभु के विरह में संसार का भाव, फिर नहीं रहता है ।

हर रोज हजूरी होइ रहु, काहे करै कलाप ।
मुल्लां तहां पुकारिये, जहं अरस इलाही आप ॥४६॥

टीका :- हे मुल्ला ! इस प्रकार नित्य मालिक, परमेश्वर की सेवा में लगे रहो । व्यर्थ बाहर के साधनों में क्यों दुख पाते हो ? तुम्हारे हृदय स्थान में ही, इलाही बेपरवाह मालिक विराजमान हैं । वहां पर ही अनहद ध्वनि रूप बांग देओ ।

हरदम हाजीर होणा बाबा, जब लग जीवै बंदा ।
दाइम दिल सांई सौं साबत, पंच बखत क्या धंधा ॥४७॥

टीका :- हे बन्दे ! हे भाई ! हर समय, हर श्वांस में जब तक पिंड में प्राण स्थिर रहै, तब तक अपने दिल को मालिक में जोड़े रहो । अपने दिल को मालिक से कभी अलग मत करो । पांच ही समय निवाज गुजारने का क्या नियम है ?

(भ्रम विध्वंषण)

दादू हिंदू मारग कहैं हमारा, तुरक कहैं रह मेरी ।
कहां पंथ है कहो अलह का, तुम तौ ऐसी हेरी ॥४८॥

टी :- हे जिज्ञासुओ ! हिन्दू तो कहते हैं कि हमारा मार्ग कहिये मत श्रेष्ठ है, और मुसलमान लोग कहते हैं कि हमारी रहनी करणी अच्छी है, परन्तु हे मत मतान्तरों वाले, सम्प्रदायी लोगों ! इनके अर्थात् तुम्हारे कथन में, परमेश्वर प्राप्ति का सत्य मार्ग कौनसा है ? उसका विचार करो ।

दोहा :- द्वै पख थाके दोइ दिस, करैं हटैं दिस निंद ।
रज्जब सांई सकल में, देख दशों दिस बंद ॥४८॥

हिन्दू मुसलमान अपनी अपनी खैंचा तानी में थक रहे हैं । आपस में आलोचना करते हैं । रज्जब जी महाराज कहते हैं कि वह परमेश्वर तो अणु अणु में व्यापक है । अपने मन इन्द्रियों को अन्तर्मुख करके, उसके स्मरण में लगे रहो ।

दादू दुई दरोग लोग कौं भावै, सांई कौं सांच पियारा ।
कौण पंथि हम चलैं कहोधू, साधौ करो बिचारा ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! द्वैत भाव और झूठ कपट का असत्य व्यवहार ही, संसारी जनों को प्रिय लगता है, किन्तु परमेश्वर को तो, एक सत्य ही प्रिय लगता है । हे तत्ववेत्ता सन्तजनों ! विचार करके, 'धू' कहिए- निश्चय पूर्वक कहो, कि हम ब्रह्मवेता मुक्तजन, 'कौण पंथ' अर्थात्- कौनसे मार्ग पर चलें ? किन्तु ब्रह्मवेत्ताओं को निर्पक्ष निर्विषय होकर, अखंड ब्रह्मभाव में ही मग्न रहना ही सच्चा मार्ग है ।

खंड खंड करि ब्रह्म कौं, पंखि पंखि लीया बांटि ।
दादू पूरण ब्रह्म तजि, बंधैं भरम की गांठि ॥५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्प्रदायिक लोग, अपने अपने मतों के अनुसार, ब्रह्म को परिछिन्न करके, बांट लिया है । इस प्रकार से परिपूर्ण व्यापक ब्रह्मस्वरूप को भूलकर, अविद्या में अर्थात् अज्ञान में बंध रहे हैं । इनके साथ न जाइये ।

दोहा :- ब्रह्म एक बहु भांति करि, जुदो जुदो अपनाइ ।
बिन बिचार जगन्नाथ जन, भ्रम लागे भरमाइ ॥५०॥

छंद :-

आन्धरे न हाथी देखि, झगरो मचायो है ।
पांव जिन गह्यो तिन ऊखल बखान कह्यो,
दांत जिन गह्यो तिन मूसल दिखायो है ।
सूंड जिन गहि तिन दगला की बांह कहि,
कान जिन गह्यो तिन सूप सो बतायो हैं ।
पूंछ जिन गहि तिन लाव सो बखान कह्यो,
पीठ जिन गहि तिन बिटोरो बतायो हैं ।
सुन्दर कहत ब्रह्म जैसो है तैसो लख्यो नांहि,
आन्धरें न हाथी देख झगरो मचायो है ॥५०॥

दृष्टान्त :- एक गांव में हाथी गया । अन्धों ने हाथी के एक एक अंग को टटोल टटोल करके, हाथी निश्चय करके आपस में झगड़नें लगे । ऐसे ही पांच शास्त्र आपस में झगड़ते हैं और सम्प्रदायिक लोग भी आपस में झगड़ रहे हैं, उपरोक्त साखी के सिद्धान्त को न समझ कर ।

ऐसे ही व्यापक ब्रह्म अनरवचनीय है, जिस किसी ने इस तत्व का जैसा अनुभव किया है, उसने उसी प्रकार प्रतिपादन किया है । कोई तो अवतारों का, कोई शुन्य का, कोई देवताओं का, कोई अल्लाह का, कोई ईसा का, और कोई आत्मा को ही ब्रह्म बताते हैं । किन्तु ब्रह्मऋषि उपदेश करते हैं कि सर्वत्र एक रूप, निरूपादिक कहिए मत मतान्तरों के भेद रहित, ज्ञेय और अज्ञेय आदिक सर्व सत्वों में एक परमात्मा की ही सत्ता विद्यमान है । "अस्तुः इदम्ता भाव" कहिये- यही ब्रह्म हैं, ऐसा वर्णन करना असम्भव है। किन्तु इदम्ता भाव तो द्वैत में, या परिछिन्न वस्तु में सम्भव है और ब्रह्मतत्व तो अद्वैत और निरूपाधिक है । इस प्रकार भेद वादियों का आपस में तर्क वितर्क करना सर्वथा निर्मूल ही है ।

(मन विकार औषधि)

जिवत दीसै रोगीया, कहैं मूवां पिछै जाइ ।
दादू दुंह के पाट मै, ऐसी दारू लाइ ॥५१॥

टीका हेजिज्ञासुओ ! शरीरधारी मानव, जीवित अवस्था में तो रोगी दिखाई पड़ते है अर्थात् विषय वासना से जल रहे हैं, अथवा कलेश दायिक बहिरंग साधनों से अत्यन्त दुखी बने रहते है, और फिर मुक्त

होने की इच्छा रखते हैं। इस विषय में ब्रह्मऋषि उपदेश करते हैं कि हे भाईयों ! ऐसी ब्रह्म विचाररूपी दवाई करो कि जिससे संसार पहाड़ की 'दौंह' अर्थात्-जलन शान्त होवै ।

सो दारू किस काम की, जाथैं दरद न जाइ ।
दादू काटै रोग कौं, सो दारू लय लाय ॥५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह मत मतान्तरों के झगड़े, खैंचा तानी और सकाम कर्म रूपी साधनों से क्या प्रयोजन है । जिनसे जन्म और मरण रूप दुख नहीं कटते, उल्टे बढ़ते हैं । ऐसे साधनों की साधना करिये, जो संसार रोग से मुक्त कर देवें । ऐसी वह कौनसी दवा है, जिससे संसार रोग समूल नष्ट हो जावें ? हे मुमुक्षुओं ! वह ब्रह्मस्वरूप में अपने मन की लय लगाइये ।

दादू अनभै काटै रोग कौं, अनहद उपजै आइ ।
सेझे का जल निरमला, पीवै रूची ल्यौ लाइ ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यथार्थ ज्ञान से जन्म मरण रूपी रोग कटता है और सोहंरूप अनहद ध्वनि उत्पन्न होती है । उसमें अद्वैता अमृत को अन्तर्मुख वृत्ति से पान करै । वह मायावी जल से रहित अमृत है । उसको पीकर, मुमुक्षु तृप्त रहते हैं ।

सोई अनभै सोई उपजी, सोई शब्द तत सार ।
सुणतां ही साहिब मिलै, मन के जांहि बिकार ॥५४॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! वही ज्ञान सहित, गुरू का आदेश श्रेष्ठ है, जिसके बोलते ही मन के सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जायें, और श्रवण करते ही, अपने स्वस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार हो जावें । हे पुरुषों ! यही सत्य अनुभव है ।

(चानक उपदेश)

औषद खाइ न पछि रहै, विषम व्याधि क्यौं जाइ ।
दादू रोगी बावरा, दोष बैद कौं लाइ ॥५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! रोगी दवा तो खाता है, परन्तु परहेज नहीं रखै, तो फिर भयंकर रोग से कैसे मुक्त होगा ? वह रोगी बावला है, बेसमझ है, जो वैद्य की दवाई गलत बताता है । दाराष्टान्त में गुरू उपदेश तो सुन लिया, परन्तु शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का परहेज नहीं रखता, वह मुमुक्षु बावला है । वह जन्म मरण आदि भयंकर रोग से कैसे मुक्त होगा ?

एक सेर का ठांवरा, क्यौं ही भर्या न जाइ ।
भूख न भागी जीव की, दादू केता खाइ ॥५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह एक सेर अन्न का 'ठांव' है परन्तु यह रीता ही बना रहता है । अर्थात् सुबह भरा, शाम को खाली । शाम को भरा, सुबह खाली । इस जीवन की जन्म जन्मान्तरों से भी भूख निवृत्त नहीं हुई । कितना ही उपभोग करता आ रहा है ? अर्थात् अधिक से अधिक तृष्णा, भोग पदार्थों की बढ़ती जाती है । परमेश्वर का नाम स्मरण किये बिना, इसको सन्तोष नहीं आता ।

पसुवा की नांई भरि भरि खाइ, व्याधि घणेरी बधती जाइ ।
पसुवा की नांई करै अहार, दादू बाढै रोग अपार ॥५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी, पशुवृत्ति वाला मनुष्य, भक्षा भक्ष का कोई विचार नहीं करता है । खाने से ही मतलब रखता है, ऐसे मनुष्यों के शारीरिक और मानसिक आशा तृष्णा रूपी रोग, भारी बढ़ जाते हैं । पशु के सामने, सब दिन खाने को डालते रहो, वह खाता रहेगा । ऐसे ही पशु वृत्ति वाला मनुष्य, संयम का त्याग करके, अनेक रोगों को प्राप्त होता है ।

राम रसायण भरि भरि पीवै, दादू जोगी जुग जुग जीवै ।
संयम सदा न व्यापै व्याधि, रहै निरोगी लगै समाधि ॥५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो योगी राम रस को अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा पुनः पुनः पीता है, वह योगी जुग जुगान्तरों में अमर भाव को प्राप्त होता है । जो मुमुक्षु सदैव अपने मन को विषयों की तरफ से संयम कर लेता है, वह जन्म मरण की व्याधि से निरोग होकर, सहजावस्था रूप समाधि में स्थिर रहता है ।

(सिसन स्वाद)

दादू चारै चित्त दिया, चिंतामणि कौं भूलि ।
जन्म अमोलिक जात है, बैठे मांझी फूलि ॥५९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीक प्राणियों ने आत्मा को भूलकर, खान पान, विषय विकार आदि में ही, पशु की भांति अपनी वृत्ति लगाई है । अथवा चार अवस्थाओं में ही, आपा अभिमान में फूलकर, अज्ञानी जन अपने मानव जीवन को वृथा गमाते हैं ।

भरी अधौड़ि भावठी, बैठा पेट फुलाइ ।
दादू सूकर स्वान ज्यौं, ज्यौं आवै त्यों खाइ ॥६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे हलवाई की भट्टी, कितनी ही बार भरने पर भी आधी ही बनी रहती है, ऐसे ही संसारिक विषय आसक्त देह अध्यासी मनुष्य भी, पेट फुलाकर बैठे हैं और सूअर कुत्तों की तरह, निसिद्ध भोग वासनाओं में ही प्रवृत्त रहते हैं। येह मिथ्यावादी मनुष्य, शरीर के लालन पालन में ही, अमूल्य मनुष्य जीवन को खो रहे हैं।

दादू खाटा मीठा खाइ करि, स्वाद चित्त दीया ।
इन मैं जीव विलंबिया, हरि नाम न लिया ॥६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी मनुष्यों ने खाटा, मीठा, चरचरा अलुना सलुना आदिक स्वादों में ही, अपने चित्त को दिया है। इन्द्रियों के भोगों में ही जीव रच रहा है। मनुष्य जन्म पाकर, जो परमेश्वर के स्मरण को भूल बैठे हैं ऐसे राम विमुख जीवों का कल्याण, किस प्रकार होगा ?

भक्ति न जाणै राम की, इन्द्री के आधीन ।
दादू बंध्या स्वाद सौं, ताथैं नाम न लीन ॥६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर ने पर उपकार और भक्ति करने को मनुष्य का शरीर दिया था, परन्तु अज्ञानी संसासीजन परमेश्वर की आज्ञा को भूलकर, इन्द्रियों के भोग वासनाओं में ही आसक्त रहकर परमेश्वर का नाम स्मरण भी नहीं कर सकते हैं, दीन दुखियों की सेवा और उपकार तो दूर रहा ? ऐसे मन्दभागी हैं।

(सांच)

दादू अपणा नीका राखिये, मैं मेरा दिया बहाइ ।
तुझ अपणे सेती काज है, मैं मेरा भावै त्तीधर जाइ ॥६३॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज उपदेश करते है कि हे बादी ! तूं अपने कर्म धर्म को अच्छी तरह रखना। मैंने, मेरा त्याग दिया तो, तुम्हें क्या दुख है। तुम्हें तो अपने कर्त्तव्य, कर्मों के फल से मतलब है। मैं, जैसा मेरा बहाव है, उधर जाऊंगा।

हे साधक ! तुमको अपने "अहं ब्रह्मास्मि", 'सोहं' आदिक, के स्वरूप विचार से ही प्रयोजन है। अहम्ता; ममता त्यागकर, स्वस्वरूप विचार में ही मग्न रहिये।

जे हम जाण्या एक करि, तो काहे लोक रिसाइ ।
मेरा था सो मैं लिया, लोगों का क्या जाइ ॥६४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज उपदेश करते हैं कि जो हमने ब्रह्म को एक अद्वैत निश्चय किया तो, इससे कर्म काण्डी लोग, हमसे क्यों कलेस करते हैं। हमने तो अपने स्वस्वरूप का विचार किया है। इसमें भेदवादी लोगों का क्या जाता है ?

(करणी बिना कथनी)

दादू द्वै द्वै पद किये, साखी भी द्वै चारि ।
हमकौं अनभै ऊपजी, हम ज्ञानी संसारि ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! दो चार पद बना दिये, दो चार साखी कह दी, और फिर कहते हैं कि हमको अनुभव ज्ञान हुआ है। संसार के प्राणियों को बहकाते हैं कि हम ज्ञानी हैं, हमारा ज्ञान सुनो। ऐसे आडम्बरी लोग, परमात्मा से विमुख ही रहते हैं। वे कथनी वाले ही हैं, करने वाले नहीं हैं।

सुनि सुनि पर्चे ज्ञान के, साखी सबदी होइ ।
तबही आपा ऊपजै, हमसा औरन कोइ ॥६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतसंग में ज्ञान के प्रकरण सुन सुन कर, साखी एक आध, एक आध शब्द उल्टा पुलटा जोड़कर, या दो चार श्लोक, दोहा, चौपाई बनाकर, तब ही अहंकार उत्पन्न होता है, कि हमारे समान कभी साखी, श्लोक, चौपाई कहने वाला कौन है ? ऐसे संसार में बंचक पुरूष हैं। वे करनी में फिके हैं।

दो० :- साखी कहीं की शब्द कहीं का, छंद कहीं से लाया ।
बखनो कहै वह साध नहीं है, सात मूत का जाया ॥६६॥

सो उपजन किस काम की, जे जण जण करै कलेस ।
साखी सुनि समझै साध की, ज्यौं रसना रस सेस ॥६७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ऐसी अन्तःकरण में ऊपजी हुई बात किस काम की है, जिसको सुनकर प्रत्येक मनुष्यों में कलेस पैदा हो । अथांत् संतों की अनुभव बाणी रूप साखी को सुनकर, अपने कर्त्तव्य को समझ कर, राम रस को ऐसे पीवै, जैसे एक हजार मुख में दो हजार जिह्वाओं द्वारा, शेष जी राम रस पीते हैं । तभी कल्याण है ।

दादू पद जोड़ै साखी कहै, विषै न छाड़ै जीव ।
पानी घालि बिलोइये, तौ क्यों करि निकसै घीव ॥६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक निषिद्ध भोगों में आसक्त हुए मनुष्य, साखी और पद तो जोड़ते हैं और सुनाते हैं, परन्तु उनका मन विषय वासनाओं का त्याग नहीं करता, तो उनका कथन ऐसा है, जैसा पानी के बिलोने से घी प्राप्त नहीं होता है । ऐसे उनके कथन से, सत्य स्वरूप परमात्मा उनको प्राप्त नहीं होगा ।

दादू पद जोड़े का पाइये, साखी कहे का होइ ।
सत्य सिरोमणि सांईयां, तत्त न चिन्हा सोइ ॥६९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पद जोड़ने से और साखी बनाकर कहने से, परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती । ऐसे तो स्त्रियां भी गीत जोड़ लेती हैं, और बहुत से विषयी पामर मनुष्य भी कविता बनाते हैं, परन्तु उनमें से किसी ने भी सत्य शिरोमणिरूप, परमेश्वर को प्राप्त नहीं किया है ।

कहिबा सुनिबा मन खुशी, करिबा औरै खेल ।
बातौं तिमर न भाजई, दीवा बाती तेल ॥७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! करनी बिना, केवल कथनीमात्र से तो मन राजी होता है, और दूसरा सुनकर राजी हो जाता है । परन्तु कहना और सुनना जब सफल है, जब उसके अनुसार क्रियात्मक रूप में लावे, जैसे दीपक की बाते करने से, घर का अंधेरा दूर नहीं होता है । दीपक, बत्ती, तेल और माचिस, इन सभी का संयोग होने से, अन्धकार नष्ट होता है, ऐसे ही मन इन्द्रियों को एकाग्र करके, श्रवण मनन निदिध्यासन द्वारा अन्तःकरण के अज्ञान का नाश होता है ।

दादू करिबे वाले हम नहीं, कहिबे को हम सूर ।
कहिबा हमथैं निकट है, करिबा हमथैं दूर ॥७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कायर बाचक ज्ञानी करने वाले नहीं हैं, वह अभिमानी दूसरों को उपदेश सुनाने को शूरवीर हैं। ऐसे अभिमानियों से नाना प्रकार का कथन तो नजदीक है, परन्तु उस उपदेश के अनुसार चलना, उनसे बहुत दूर है। यह करनी बिना कथनी कथने वानों का स्वरूप है।

कहे कहे का होत है, कहे न सीझै काम।
कहे कहे का पाईये, जब लग हिरदै न आवै राम ॥७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! केवल कथनी कथने से क्या होता है ? अर्थात् इस लोक और परलोक के कोई भी काम, उसके सिद्ध नहीं होते हैं। रोटी रोटी करने से पेट नहीं भरता। क्षुधा तो तब ही मिटेगी, जब रोटी खाएगा। ऐसे ही ज्ञान ध्यान की बातें करने से, मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। जब तक हृदय में राम का स्मरण नहीं करेगें। तब तक राम का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता।

(चौंप चरचा)

दादू सुरता घरि नहीं, बकता बकै सु बादि।
बकता सुरता एक रस, कथा कहावै आदि ॥७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! श्रोता की बुद्धि अन्तःकरण में स्थिर नहीं होवे तो, वक्ता जो आत्म उपदेश करता है, वह सब निष्फल ही जाता है। वही श्रोता और वक्ता की वार्ता सफल है, जिसमें वक्ता और श्रोता दोनों, तनमय रहें, अर्थात् स्वस्वरूपाकार हो जावें। वही कथा सत्य है।

दोहा :- बक्ता श्रोता मिलचले, कथा करी बन आइ।
मोक्ष भई त्रिये दोउन की, अस्थी परख जल जाइ ॥७३॥

दृष्टान्त :- एक सत्य वक्ता अपनी पतिव्रता स्त्री से बोले :- कि मैं कथा सुनाने जाता हूं। कितने गांवों में उनको लोगों ने पूछा :- आप कौन हैं ? वह बोला :- मैं वक्ता हूं, कथा सुनाने वाला। कई लोगों ने कहा :- सुनाओ। वह बोला :- मैं सुनाऊं वैसा श्रोता मिलेगा, तब सुनाऊंगा। वैसे ही एक श्रोता भी अपनी पतिव्रता स्त्री से बोला कि मैं कथा सुनने जाता हूं। मार्ग में कितने ही कथा बाचक मिले, उन्होंने पूछा, तुम कौन हो ? वह बोला मैं श्रोता हूं, परन्तु मैं सुनूं वैसे कथा सुनावे, उसकी सुनता हूं। देवगति से वह सच्चा वक्ता और सच्चा श्रोता, दोनों मिल गये। यथायोग्य रामा श्यामा हुई, और दोनों गंगा के किनारे निर्जन स्थान में जाकर बैठे। वह सिद्ध आसन से बैठकर, मन इन्द्रियों को एकाग्र करके, ईश्वर की कथा सुनाने लगा। श्रोता भी सामने सिद्ध आसन से बैठा, और मन इन्द्रियों को कान के पास लाकर, एक दिल होकर सुनने लगा। जब दोनों की वृत्ति, परमेश्वर के स्वरूपाकार हो गई, तब उनके शरीर छूट गये और

परमेश्वर में अभेद हो गये। उधर बक्ता की स्त्री पति को ढूंढने चली, इधर श्रोता की स्त्री भी पति को ढूंढने चली। वैसे ही देवगति से दोनों का मिलाप हो गया फिर वह दोनों मिलकर, पतियों की खोज करने लगी। इस प्रकार जब गंगा के किनारे पहुंची, तब किसी ने कहा :- अमुख जंगल में, गंगा के किनारे एक कुछ कहता था और दूसरा कुछ सुनता था, फिर वहाँ दोनों के ही शरीर छूट गए। यह सुनकर वह दोनों स्त्रियां वहीं पहुंची और आमने सामने दो हड्डियों की ढेरी को देखा। निश्चय किया कि यह हमारे पतियों की ही हड्डियां हैं। श्रोता की स्त्री बोली :- बहन ! तेरे पति शब्द रूपी बाण मारते थे और मेरे पति बाणों को झेलते थे। तेरे पति ने, मेरे पति का और अपना उद्धार किया है, तूं मेरा कल्याण कर। तब वक्ता की स्त्री बोली :- बहन ! जो हड्डियां बिधि बिधि हैं वह सब तेरे पति की है, और जो ठोस ठोस हड्डियां हैं, वह सब मेरे पति की हैं। छांट लो। अपनी अपनी झोली में हड्डियां ले लो और अपने पतिदेव का मन में ध्यान करके, शरीरों को छोड़ दो। इसी में हमारा कल्याण है। इस प्रकार वह दोनों पतिव्रताएं परम गति को प्राप्त हो गई।

ब्रह्मऋषि सतगुरु महाराज कहते हैं कि "बक्ता सुरता एक रस हो जावै", तभी परमेश्वर की प्राप्ति होती है।

बकता सुरता धरि नहीं, कहैं सुनैं को राम।
दादू यहु मन थिर नहीं, बाद बकै बेकाम ॥७४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वक्ता और श्रोता दोनों केवल लोक व्यवहार में दिखावटी परमेश्वर की चर्चा करते हैं, परन्तु दोनों का ही मनीराम, राम भक्ति और ज्ञान में एकाग्र नहीं होने से, कथन और श्रवण दोनों ही व्यर्थ हैं।

दोहा :- कथनी कथै अगाध की, चलै भेड़ की चाल।
बोली बोलै श्याल की, कुत्ते फाड़ैं खाल ॥७४॥

अगाध परमात्मा का कथन करैं, परन्तु चाल मायामय चलते है और जम्बुक जैसी आवाज लगाते हैं। ऐसे सकामी वक्ता और सकामी श्रोताओं की, कालरूपी कुत्ते खाल फाड़ते हैं।

(विचार दृढ ज्ञान)

अन्तरि सुरझे समझि करि, फिर र अरूझै जाइ।
बाहरि सुरझै देखतां, बहुरी अरूझै आइ ॥७५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन्तर अन्तःकरण में ज्ञान विचार के द्वारा, आत्मा अनात्मा के स्वरूप को समझकर, निसिद्ध वासना और सकाम कर्मों के बन्धन से मुक्त हुए हैं । ऐसे पुरूष फिर संसार में आसक्त नहीं होते हैं । देखा देखि का वैराग्य धारने वाले तो, फिर फिर कर संसार चक्र में घूमते रहते हैं, अर्थात् माया के जाल से मुक्त नहीं हो सकते ।

दोहा :- जर गई मन की वासना, ब्रह्म अग्नि के मांहि ।
तुलसी भूने बीज ज्यूं, सो फिरि ऊगै नांहि ॥७५॥

(लतगुरू पारख लक्षण)

आत्म लावै आप सौं, साहिब सेंती नांहि ।
दादू को निपजै नहीं, दोन्यूं निरफल जांहि ॥७६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो गुरू, शिष्य को अपनी सेवा आदि कार्यों में ही लगाया रखै और साहिब, परमात्मा की भक्ति ज्ञान का उपदेश कभी न करै । वह झूठे गुरू और झूठे शिष्य, दोनों ही परमार्थ मार्ग में नहीं पनय पाते ।

दोहा :- कबीर कान फुका गुरू हद का, बेहद का गुरू और ।
जब बेहद का गुरू मिलै, तब लगै ठिकानै ठौर ॥७६॥

तु मुझ को मोटा कहै, हौं तुझे बड़ाई मान ।
सांई कौं समझै नहीं, दादू झूठा ज्ञान ॥७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! ऐसे झूठे गुरू, "कहैं कुछ और करैं कुछ", ऐसे ही झूठे शिष्य गर्भवास के कौल को बिसरे हुए, परस्पर दोनों ही, अपने आप की प्रशंसा करते हैं । शिष्य कहता है कि मेरे गुरू तो महान हैं और गुरू कहता है कि मेरा शिष्य तो ऐसा आज्ञाकारी है कि जैसे रामचन्द्र जी के हनुमान थे । और परमेश्वर से दोनों ही विमुख हैं , उनका ज्ञान केवल मायावी है, ऐसे गुरू का संग त्यागने योग्य है ।

दोहा :- कबीर झूठे गुरू को नमस्कार, और सांचे गुरू की सेव ।
झूठ नखावै सांच दे, सो कहिए गुरूदेव ॥७७॥

उपरोक्त गुरू को दूर से ही नमस्कार है । और सच्चे गुरू, सत्य स्वरूप का ज्ञान देने वाले, देव रूप हैं । उनकी सेवा कहिए आज्ञा में शिष्य बरतै, तो कल्याण है ।

(कस्तूरिया मृग)

सदा समीप रहै संगि सनमुख, दादू लखै न गूझ ।
सुपनै हि समझै नहीं, क्यौं करि लहै अबूझ ॥७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे कस्तुरी मृग की नाभि में ही है, किन्तु मूर्ख मृग बाहर पहाड़ पर्वत घास फूस में कस्तुरी ढूंढता है, इसी प्रकार मनुष्य के हृदय में ही परमेश्वर का बास है । परन्तु परमेश्वर से विमुखी पशु तुल्य, खान पान विषय भोगों में रत्त, अज्ञानी मनुष्य, इस वार्ता को नहीं जानता है कि मेरे हृदय में ही परमेश्वर निवास करते हैं । इसलिए हे मुमुक्षुओ ! अपने आतम स्वरूप में ही ब्रह्म का अनुभव करिये ।

(वेखरच विषनि)

दादू सेवग नाम बुलाईये, सेवा सुपनै नांहि ।
नाम धराये का भया, जे एक नहीं मन मांहि ॥७९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के हम सेवक हैं, इस नाम से अपने को बुलवाते हैं, और परमेश्वर की सेवा स्वप्न में भी नहीं करते । केवल भक्त नाम ही रखवा लें और भक्ति को जानते नहीं । भक्ति का तो एक भी लक्षण मन में नहीं बसता है, ऐसे पुरुष अपनी इन्द्रियों के विषयों की पूर्ति के लिये हो, अपना नाम रखवाते हैं ।

नाम धरावै दास का, दासा तनथैं दूरि ।
दादू कारिज क्यौं सरै, हरि सौं नहीं हजूरि ॥८०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपना नाम तो दास रखवा लें, कि हम राम के दास हैं, परन्तु दासातन भक्ति से बहुत अलग हैं । दासातन भक्ति तो करने वाले, हनुमान जी थे । केवल नाम रखवाने वाले पुरुषों के, अर्थात् इस लोक और परलोक के काम कैसे सिद्ध हो सकते हैं ? पापों को हरने वाले हरि, हृदय में ही

निवास करते हैं, उनके तो कभी हजूरी बने ही नहीं। माया और विषय भोगों के ही सदा हजूरी बने हैं, उनका कल्याण होना असम्भव है।

भक्त न होवै भगति बिन, दासातन बिन दास।
बिन सेवा सेवग नहीं, दादू झूठी आस ॥८१॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की अनन्य भक्ति धारण किये बिना, भक्त नहीं होता और दासातन भाव को जब तक नहीं अपनावे, तब तक दास नहीं कहलाता। और निष्काम सेवा को धारण करे बिना, सेवक नहीं हो सकता है। उपरोक्त जो धारणा नहीं है, तो उनकी यह आशा रखना कि यह भक्त है, दास है, सेवक है, यह सब झूठी बात है। यह सब दुनियावी प्रपंच है।

राम भक्ति भावै नहीं, अपनी भक्ति का भाव।
राम भक्ति मुख सौं कहै, खेलै अपना दाव ॥८२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विषया आसक्त मनुष्यों के मन में, अपनी मान प्रतिष्ठा आदि को इच्छा रहती है, और राम भक्ति मुंह से दिखाते हैं। मन विषय वासनाओं में रचा है। कुल कुटम्ब स्त्री, पुत्र, धन आदि में आसक्त हो रहा है। दिखावा रूप में राम की भक्ति करता है। मन में माया की भावना लगी रहती है। हमको राम भक्त जान कर कोई हमारी सेवा पूजा प्रतिष्ठा करे। हे संतो ! ऐसा पुरूष अपना दाव खेलता है, अर्थात् विषयों के व्यापार में ही लगा रहता है। वह सकामी कोई भी, राम के सच्चे भक्त नहीं कहे जाते।

भक्ति निरालि रहि गई, हम भूलि पड़े बन माँहि।
भक्ति निरंजन राम की, दादू पावै नांहि ॥८३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भक्ति तो हम से अलग ही रह गई है। हम कहिये त्यागी तपस्वी नाम मात्र के, बन में जाकर बैठ गये और इसी अहंकार में दबे जा रहे हैं कि हम दुनियां को छोड़ कर बन में बैठे हैं। परन्तु बन में तो शेर आदि पशु भी रहते हैं। राम की भक्ति भूल करके, अनेक प्रकार के कष्टप्रद साधन साध रहे हैं और राज पाट, स्वर्ग बैकुण्ठ आदि की वासना को लिये हुए हैं। ऐसे पुरूषों को निरंजन निराकार रूप जो राम है, उनकी भक्ति कदापि प्राप्त नहीं होती।

सो दसा कतहू रही, जिंहि दिसी पहुंचै साध।
मैं तैं मूरिख गहि रहै, लोभ बड़ाई बाद ॥८४॥

पुस्तकालय
गुरुकुल

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन विवेक, वैराग्य, भक्ति आदि साधनों से, सच्चे निष्कामी संतजन, पार पहुंचे हैं, उस मार्ग को तो अज्ञानी विषया आसक्त संसारीजन भूल रहे हैं । और मैं मेरा, तूं तेरा, इस माया के मोह में फंसकर, लोभ बस, और अपनी बड़ाई मान प्रतिष्ठा के लिए ही बाद-बिवाद करते हैं । इस अमूल्य मनुष्य जीवन को, व्यर्थ खो देते हैं ।

दादू राम बिसार करि, कीये बहु अपराध ।
लाजौं मारे संत सब, नाम हमारा साध ॥८५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम को अन्तःकरण से भूलना, प्रथम तो यह भारी अपराध है, ऐसे मनुष्य से सम्पूर्ण पाप बनते हैं । ईश्वर से विमुखि साधु, नाम मात्र के भेषधारी, पंडित ब्राह्मण नाम मात्र के, प्रभु को भूले हुए, इस लोक परलोक की विषय वासनाओं में आसक्त, बहुत से दोष युक्त कर्म करते हैं और अपना साधु नाम रखवा कर, भूत, वर्तमान, भविष्य, तीनों कालों में होने वाले सच्चे संत भक्तों को, लज्जित करते हैं ।

(करणि बिना कथनी)

मनसा के पकवान सौं, क्यौं पेट भरावै ।
ज्यौं कहिये त्यौं कीजिये, तब ही बनि आवै ॥८६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन की वासना रूप पकवान बनाने से, पेट नहीं भरता है । पेट तो जब ही भरेगा, जब व्यवहारिक पकवान बनेंगे । इसी प्रकार जैसे मन वाणी से कहता है, उसी प्रकार, कायक वाचक मानसिक क्रिया से करै, तब ही सफलता को प्राप्त होगा । कहता कुछ है और करता कुछ है, ऐसे पुरूषों को मनुष्य जीवन का लाभ, प्राप्त नहीं होता ।

दादू मिश्री मिश्री कीजिये, मुख मीठा नाहीं ।
मिठा तब ही होइगा, छिटकावै मांही ॥८७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मिश्री मिश्री करने से मुख मीठा नहीं होता है । मुख तो मीठा तभी होगा, जब मुख में मिश्री डालोगे । ऐसे ही केवल कथनी मात्र से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती है । निर्वासनिक होकर, श्रवण मनन निदिध्यासन करने से, या महावाक्यों के अर्थ के विचार से, स्वस्वरूप ब्रह्म का निश्चय होता है ।

दादू बातौं ही पहुंचै नहीं, घर दूरि पयाना ।
मारग पन्थी उठि चलै, दादू सोई सयाना ॥८८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! घर तो दूर है और बातें करने. से मार्ग नहीं कटता है । चलने से ही ठिकाने पहुंचोगे । दाराष्टान्त में सकाम कर्म काण्ड की बातों से, छुटकारा नहीं होगा । जब सच्चे सतगुरू की शरण में जाएगा और सत्य उपदेश को श्रवण करके धारण करेगा, तभी मोक्ष होगा । ऐसा जिज्ञासु ही चतुर है ।

बातौं सब कुछ कीजियें, अंति कछु नंहि देखै ।
मनसा बाचा कर्मना, तब लागै लेखै ॥८९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आत्म साक्षात्कार रूप घर का मार्ग, कर्म काण्ड से दूर है । उस घर में केवल बातें करने से नहीं पहुंच सकते हैं । जो पक्षी रूप उत्तम जिज्ञासु है, सतगुरू उपदेश श्रवण करते ही मन, निदिध्यासन में स्थित होता है, वही समझदार है । जो अपने को मन बचन कर्म से, आत्म अभ्यास में लगाता है, उनका ही मनुष्य जीवन सफल है ।

(समझ सुजानता)

दादू कासौं कहि समझाइये, सब कोइ चतुर सुजान ।
कीड़ि कुंजर आदि दे, नांहिन कोई अजान ॥९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! किस को कहकर क्या समझाइये ? सब ही प्राणी चीटीं से लेकर हाथी तक माया मोह के बस में हुए, अपने को अपने अपने व्यवहार में, कुशल मानते हैं, और अन्य से अपने को अधिक ज्ञानी समझते हैं। रंक से राजा पर्यन्त अपने आप को अज्ञानी, कोई भी नहीं समझता है ।

(करणी बिना कथनी)

सूकर स्वान सियाल सिंह, सर्प रहैं घट मांहि ।
कुंजर कीड़ी जीव सब, पांडे जाणैं नांहि ॥९१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजन पशु वृत्ति वाले, जिनके अन्तःकरण में नाना प्रकार की विषय भोगों की फुरणायें होती रहती है, परन्तु शरीर धारी यह नहीं समझता कि यह लीन करने योग्य है, यह त्यागने योग्य है और स्वजाति पर कुत्ते की भांति भौंकना । कायर वृत्ति गीदड़ की, कीड़ी की वृत्ति दूसरे के छिद्रों को ढूंढते रहना, शेर की वृत्ति क्रोध करना, संसय वृत्ति सर्प की, हाथी की काम वृत्ति । ब्रह्मऋषि जगत्गुरू कहते है कि हे पांडे ! यह सब स्वभाव, जीवों के, अपने अन्दर वर्तते हैं । परन्तु इस बात को गाल बजाने वाले, बाचक पंडित, और साधारण प्राणी नहीं जान पाते हैं ।

दादू सूना घट सोधी नहीं, पंडित ब्रह्मा पूत ।
आगम निगम सब कथै, घर मै नाचैं भूत ॥९२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन्तःकरण तो ज्ञान, भक्ति, वैराग्य के बिना शून्य है जिनका, और बाचक पंडित अपने को, ब्रह्मा का पुत्र वशिष्ट के समान मानते हैं और आगम शास्त्र, निगम वेदों के ज्ञाता बताते हैं । उनके अन्तःकरण रूपी घर में तो मानो, पंच ज्ञानेन्दिये और काम क्रोध आदि भूत नाच रहे हैं । उनको वे नहीं देख पाते ।

पढे न पावै परमगति, पढे न लंघै पार ।
पढे न पहुंचै प्राणीयां, दादू पीड़ पुकार ॥९३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! केवल बाचक ज्ञान से संसारिकजनों को, स्वस्वरूप का साक्षात्कार अनुभव नहीं होता है। ज्ञान के साधनों से ही सफलता प्राप्त होती है । इसलिये जिज्ञासा वृत्ति से ही संसार से पार उतरिये ।

दादू निवरे नांव बिन, झूठा कथै गियान ।
बैठे सिर खाली करैं, पंडित वेद पुरान ॥९४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनका अन्तःकरण तो नाम के बिना खाली है और मिथ्या ज्ञान कथन करते हैं । माया की आशा रखकर, जगत में बैठे हुए, देह अध्यासी पंडित, वेद और पुरानों से निरर्थक ही, माथा मारते हैं ।

दादू केते पुस्तक पढि मुये, पंडित वेद पुरान ।
केते ब्रह्मा कथि गये, नांहि न राम समान ॥९५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम के स्मरण के बिना कितने ही पंडित, पंडिताई करते करते मर गये और कितने ही ब्रह्मा, ऋषि, मुनि, वेद पुरानों की रचना करते करते थक गये । परन्तु राम नाम की भक्ति के बिना, मुक्ति प्राप्ति करने का और कोई भी साधन नहीं है ।

सब हम देखा सोधि करि, वेद पुरानौं मांहि ।
जहां निरंजन पाइये, सो देस दूरि इत नांहि ॥९६॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव उपदेश करते हैं कि हमने विचारपूर्वक वेद पुरानों का निश्चय किया है, कि निरंजन की उपासना रूपी देश, दूर है। अर्थात् वेद पुरानों की कथनी से करनी का देश कठिन है। 'इत नांहि' कहिए वेद आदिकों के कथन से, आत्मा की प्राप्ति सम्भव नहीं है। क्योंकि ब्रह्मतत्व अनिर्वचनीय होने से, वेद आदि का अविषय है, अर्थात् गुण, क्रिया, जाति, और सम्बन्ध वाली वस्तु का वेद वर्णन करता है। ब्रह्म इनसे रहित है। शक्ति वृति से वेद ब्रह्म का, वर्णन नहीं कर सकता है। इसलिये वेद का अविषय है।

पढि पढि थाके पंडिता, किनहूं न पाया पार।
कथि कथि थाके मुनि जना, दादू नाम अधार ॥९७॥

टीका :- हे जिज्ञासु! आत्म साक्षात्कार करने का, एक गुरू उपदेश ही श्रेष्ठ साधन है और बाचक पंडित पढ़ पढ़ करके, धर्म ग्रन्थों को, पुराणों को, शास्त्रों को, थकित हो रहे हैं। परन्तु उस परब्रह्म स्वरूप का किसी ने पार कहिए अन्त नहीं पाया। मुनि वशिष्ट, बालिमक, व्यास, आदि कथन करते करते, यानि पुराणों की रचना करते करते, थकित हो गये। परन्तु उस परमेश्वर का अन्त किसी ने भी नहीं पाया। सभी ने एक नाम का ही आधार, अन्त में बतलाया है।

काजी कजा न जानही, कागद हाथ कतेब।
पढतां पढतां दिन गये, भीतर नांहि भेद ॥९८॥

टीका :- हे काजी! तुम अपनी मृत्यु को नहीं जानते हो, और पुस्तक पढ़ते पढ़ते, आयु के दिन बीत रहे हैं, किन्तु तुमने भीतर का भेद कहिए, मरम, अर्थात् स्वस्वरूप को नहीं पहचाना है।

दोहा :- काग हंस का न्याव को, अरू तेली को बैल।
तीजो धेलि कूंस को, मिल्यो बादशाह सैल ॥९८॥

दृष्टांत :- एक कव्वा उड़ता उड़ता मानसरोवर पहुंच गया। वहां हंस हंसनी रहते थे। उन्होंने विचार किया कि यह काले हंस हैं। उसका अतिथि सत्कार के लिए, मानसरोवर से मोती लाकर, सामने भोजन के लिये रखे। कव्वे ने चौंच मार कर छोड़ दिये। हंस हंसनी ने देखा कि यह कोमल भोजन करते हैं, तो क्षीर समुद्र से दूध की डलियां उठा कर लाये। कव्वे के सामने रखा। कव्वा उठाकर खाने लगा और बोला, यह तो कोई भोजन भी है, पहले तो कंकर थे वे। हंस बोला :- आप लोग क्या काले रंग के हंस

हो ! कव्वा :- हां । तब कव्वा, वहां 'त्रिशंक त्रिशंक' बोलने लगा । हंस हंसनी बोले :- आप त्रिशंक को बहुत याद करते हो, वह क्या है ? कव्वा बोला :- हमारा आश्रम है । दो चार रोज कव्वे की खूब सेवा की । कव्वे ने विचार किया कि इस हंस की हंसनी को उड़ा लें । तब बोला :- आप लोग भी हमारे समुद्र पर चलो । हंस, हंसनी साथ हो गये । तीनों उड़ते उड़ते कई रोज में, एक गांव के बाहर गन्दी तलाई के किनारे एक तीन शाखाओं का एक ठूंठ खड़ा था । कव्वा आकर एक शाखा पर बैठ गया, एक एक पर हंस हंसनी बैठ गये । अब त्रिशंक नहीं बोलता है । हंस ने पूछा :- अब आपका समुद्र कितनी दूर है ? कव्वा :- यही तो है । भोजन लाऊं ? तलाई के अन्दर गया और एक मेंडक की टांग पकड़ कर लाया । हंस :- अरे ! दूर, दूर, इसको अलग रखो । कव्वा :- लो दूसरा लाऊं ? तब मछली की टांग पकड़कर लाया । हंस :- अलग रखो । हंस हंसनी को बोला :- प्रिय ! हम तो ठग्गी में आ गए । हंस बोला :- अच्छा । हम लोग अब चलें । कव्वा :- तूं जा, यह तो मेरी कव्त्री है, इसे कहां ले जाता है ? हंसनी बोली :- मैं तेरी नहीं हूं । कव्वा :- तुझे इसने बहका लिया । अभी मैं थाने में जाता हूं । कव्वा थानेदार के पास पहुंचा और बोला :- उस हंक की हंसनी मुझे दिला दो, तुम्हें तुम्हारी सात पीढ़ी के दर्शन करा दूंगा । थानेदार आया । बोला क्या है ? हंस बोला :- मेरी हंसनी को यह अपनी स्त्री बताता है । थानेदार :- हां ठीक है, इसको तो हम, कव्वे के पास कई दिनों से देख रहे हैं, यह तो कव्वे की ही स्त्री है । हंस चुप हो गया । थानेदार कव्वे को बोला, हमारी सात पीढी के दर्शन कराओ । पास में मैला पड़ा था, कव्वे ने जाकर उसमें से एक कीड़ा उठाया । कहा :- यह तुम्हारा बाप है । दूसरा कीड़ा फिर उठाया, बोला "यह तुम्हारा दादा है ।" इस प्रकार सात कीड़े उठा उठाकर, थानेदार को बोलता रहा । थानेदार बोला :- अबे ! हमारे दादा, पड़दादा क्या नरक के ही कीड़े बने है ? तब हंस बोला :- ऐसे फैसले करने वालों के तो, पूर्वज कीड़े ही बनते हैं । हंस अपनी हंसनी को लेकर, मान सरोवर उड़ गया । कव्वे को थानेदार ने गोली से उड़ा दिया ।

दूसरा दृष्टान्त :- एक रोज बादशाह के हाथी को, महावत पानी पिलाने ले जा रहा था । तेली का लड़का भी, घाणी से बैल को खोलकर, पानी पिलाने जा रहा था । बैल हाथ से छूट गया । हाथी को देखकर चमका और हाथी के पेट में टक्कर मारी, तो सिंग अन्दर घुस गया । हाथी की मृत्यु हो गई । बादशाह ने जब यह वृत्तान्त सुना, तो तेली बुलाया और काजी जी को बोला :- इसका फैसला करो । काजी :-

दोहा :- लाल कतेब कहत है यौं, तेली बैल लड़ावै क्यौं ।
खली खुवाय किया मुसटंड, बैल का बैल और बीस रूपया दंड ॥

तीसरा दृष्टान्त :- दो मनुष्य आपस में लड़ पड़े । एक ने न्यायालय में जाकर दावा कर दिया । दोनों जब न्यायधीश के सामने पेश हुए, बयान लिये । जिसने उसके एक जूता मारा था, न्यायधीश ने फैसला

सुनाया कि इसने एक जूता मारा है, इससे एक धेली जुर्माना लिया जाय। उसने एक जूता खोलकर, न्यायधीश के सामने ही उसके और मार दिया और एक रूपया फेंक दिया बोला -: साहब ! मैं अब तुड़वाने कहां जाऊंगा ? रूपया ही जमा कर लो। बादशाह इस केस का फैसला सुनकर, हंस पड़े।

ब्रह्मऋषि कहते हैं कि काजी लाल किताब पढ़ते पढते आयु के दिन बीत रहे हैं।

कागद काले करि मुऐ, केते बेद पुराण।
एकै अक्षर पीव का, दादू पढै सुजान ॥९९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कितने ही पंडित बेद और पुरानों को लिख लिख कर अर्थात् काले कागज कर करके मर गये हैं। कुछ भी हाथ पल्ले नहीं पड़ा। वही चतुर सुजान है, जो मनुष्य जन्म प्राप्त करके, पीव कहिए सुख प्रीति का विषय आत्मारूप परमेश्वर हैं, उनका एक अक्षर रूप ओ३म् या ररंकार, सोहं इत्यादि, शब्दों को, श्रद्धा से पढ़ता है, अर्थात् विचार करता है, वही परम पद को प्राप्त होता है।

एकै अक्षर प्रेम का, कोई पढेगा एक।
दादू पुस्तक प्रेम बिन, केते पढैं अनेक ॥१००॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सुखप्रीति का विषय जो परमेश्वर है, उसका एक अक्षर स्वरूप ओ३म, इसको कोई उत्तम पुरूष, श्रद्धा भक्ति से स्मरण करेगा। और तो प्रेम के बिना, लोग दिखावे के लिये अथवा सकाम भावना से, अनेकों मनुष्य पुस्तक पढ़ते हैं, परन्तु वह वास्तविक फल से वंचित ही रहते हैं।

दादू पाति प्रेम की, बिरला बांचै कोइ।
बेद पुरान पुस्तक पढै, प्रेम बिना क्या होइ ॥१०१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विरह सहित प्रेम की पत्रिका तो, कोई बिरले भक्त ही, गोपियों की तरह बांचते हैं। प्रेम के बिना रोजी चलाने के लिये, सकाम भावना से, अनेकों पंडित वेद पुरान धार्मिक पुस्तकों को, पढ़ते हैं, परन्तु इससे मोक्ष फल प्राप्त नहीं होता।

दादू कहतां कहतां दिन गये, सुणतां सुणतां जाइ।
दादू ऐसा को नहीं, कहि सुणि राम समाइ ॥१०२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उपदेश करते करते तो, वक्ता की आयु समाप्त हो गई है और उपदेश सुनते सुनते श्रोताओं की आयु पूरी होती जा रही है। परन्तु ऐसा कोई भी नहीं है, उन वक्ता और श्रोताओं में,

जो परमेश्वर की महिमा कहते कहते और सुनते सुनते, परमेश्वर में समा जाय। क्योंकि धारणशक्ति बिना, केवल कथन और श्रवण से, स्वस्वरूप लाभ प्राप्त नहीं होता।

दोहा :- बिन करनी के कथन को, आदर नहीं भव माहि।
वेश्यां यदि पतिव्रत कहै, त्रियेगण मानैं नांहि ॥१०२॥

दोहा :- पढ़ै सुनावैं और को, पंडित भये अनेक।
मन समझावै आपणां, सो रज्जब कोई एक ॥१०२॥

(मध्य निरपक्ष)

मौन गहैं ते बावरे, बोलैं खरे अयान।
सहजै राते राम सौं, दादू सोई सयान ॥१०३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! साधक पुरूषों को हित कारक और सीमित बचन बोलना ही, युक्ति युक्त है। तथा प्रभु भजन से मौन रहना भी अयुक्त ही है। जो पुरूष संसार के वातावरण से अपनी बाणी का संयम नहीं रखता, वह दुनियावी मौनियों से भी मन्द बुद्धि वाला कहा जाता है। अर्थात् ऐसे पुरूष ही चतुर और ज्ञानी हैं, जो सहज स्वभाव से ही परमेश्वर में लीन रहते हैं, तथा परमेश्वर सम्बन्धी वार्ता तो बोलते हैं, परन्तु संसारिक वातावरण से मौन रहते हैं।

(करूणा)

कहतां सुणतां दिन गये, व्है कछू न आवा।
दादू हरि की भगति बिन, प्राणी पछितावा ॥१०४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे परमेश्वर ! हे नाथ ! सम्पूर्ण आयु आपकी भक्ति बिना, निष्फल ही जा रही है। आप दया करके, आपकी भक्ति का दान देना, जिससे हमारा पश्चाताप मिटै। अथवा हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की भक्ति के अतिरिक्त, व्यवहारिक कथन श्रवण में, जो दिन जाते हैं, सो सब विफल हैं, क्योंकि भक्ति बिना प्राणी को प्राणान्त समय में, केवल पश्चाताप ही रहता है।

(अनाधिकारी)

दादू कथणी और कुछ, करणी करै कछु और ।
तिन थैं मेरा जिव डरै, जिनकै ठीक न ठौर ॥१०५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कहते तो कुछ और हैं, और करते कुछ और हैं, ऐसे पुरूषों से हमारा जीव डरता है। क्यों कि उनका कोई ठीक ठिकाना नहीं है। वह बाचाल लोग हैं।

दोहा :- वाक्य मांहि जो देखिये, गात मांहि सो नांहि ।
जन रज्जब ता सबद सौं, सुरता ठहरै नांहि ॥१०५॥

अन्तर गति औरै कछु, मुख रसना कुछ और ।
दादू करणी और कुछ, तिनको नांही ठौर ॥१०६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन्तःकरण में तो कपट भरी ओर ही बातें हैं, और मुख से रसना द्वारा कुछ ओर ही बात बोलते हैं शरीर द्वारा कुछ ओर ही करते हैं, ऐसे पुरूषों को, परमेश्वर के दरबार में, कोई जगह नहीं है। वे जन्म मरण के चक्र में ही घूमते रहते हैं।

(मन परमोद)

राम मिलन की कहत हैं, करते हैं कुछ और ।
ऐसे पीव क्यौं पाइये, समझी मनवा बौर ॥१०७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कनिष्ट श्रेणी वाले जो मनुष्य हैं, वे आतमा की तो चरचा करते हैं, और उनका व्यवहार संसारिकजनों की तरह देखने में आता है, उनको आतम साक्षात्कार किस प्रकार होगा ? हे बोरे ! हे अज्ञानी मन ! अर्थात्, हे प्राणधारी ! यह सत्य समझ, कि करणि बिना, केवल कथनी से आतम प्राप्ति नहीं होगी।

(बेखरच बिसनि)

दादू बगनी भंगा खाइ करि, मतिवाले मांझी ।
पैका नांही गांठड़ी, पातिसाही खांजी ॥१०८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भांग आदि का नशा करके मतवाले हो रहे हैं। अर्थात् अनेक प्रकार के विषयों में फंस कर, विषय रस को पान करके, मतवाले मांझी बन रहे हैं। एक पैसा तो पास में है नहीं और मन

में बादशाह और खांसाहब बन रहे हैं, ऐसे पुरुष ईश्वर वेमुखी ही, सदा बने रहते हैं।

दादू टोटा दाल दी, लाखौं का व्यौपार ।
पैका नाँही गांठड़ी, सिर है साहूकार ॥१०९॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! टोटा तो इतना है, जो एक पैसा भी पास में नहीं है। ऐसे दरिद्री बातों में लाखों का व्यापार करते हैं और साहूकारों में अपने आपको सबसे सिरै बतलाते हैं। इसी प्रकार वाचक ज्ञानी वेदों का शब्द ज्ञान करके, अति अभिमानी हो रहे हैं एवं भक्ति ज्ञान वैराग्य का, उनमें अंश मात्र भी नहीं है। जो करणी रूप धारणा से तो, अति दरिद्री विषयी हैं, परन्तु वाचक उपदेश से अपने को ज्ञानी मानते हैं, ऐसे वाचक ज्ञानियों का कल्याण होना असम्भव है।

निम्नलिखित चार साखियां प्रश्नोत्तर रूप हैं।

(मध्य निरपक्ष)

दादू ये सब किसके पंथ मै, धरती अरू असमान ।
पानी पवन दिन राती का, चंद सूर रहिमान ॥११०॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव से किसी बादी ने प्रश्न किया कि, आप किसके पंथ में हैं ? तब सतगुरु देव बोले :- हे बादी ! यह धरती आकाश, चन्द्रमा सूर्य, पानी पवन, दिन रात, जिसके पंथ में हैं। उसी रहमान, परमेश्वर की आज्ञारूप पंथ में हम हैं।

ब्रह्म विश्न महेस का, कौन पंथ गुरुदेव ।
सांई सीरजनहार तुं, कहिये अलख अभेव ॥१११॥

टीका :- हे बादी ! ब्रह्मा, विष्णु, महेस, इनका कौनसा पंथ था ? और इनका गुरुदेव कौन था ? तूं विचार कर। वह सांई परमेश्वर, सबको उत्पन्न करने वाला, अलख, मन बाणी का अविषय कहिए, उसी के पंथ में यह सब हैं, और वही इन सबका अन्तरप्रेरक गुरुदेव है। वही हमारा गुरू है, उसी के पंथ में हम हैं।

कवित्त :-

ब्रह्मादिक गुरू कौन, कौन गुरू आदि महेश्वर ।

सनकादिक गुरू कौन, कौन गुरू नौ जोगेश्वर ।
ऋषभ देव गुरू कौन, कौन गुरू जनक विदेही ।
करदम का गुरू कौन, पिंगुला रूप सनेही ।
ऋषि जड़भरत पूरूरवा, कहै बालकराम विवेक उर ।
अष्टावक्र दत्त कपिल कै, कौन मंत्र उपदेश गुर ।

ब्रह्मऋषि से बादी ने उपरोक्त साखियों में प्रश्न किया । वैसे ही, बालकराम जी महाराज से किसी पंडित ने प्रश्न किया ? कि ब्रह्मऋषि दादू दयाल का गुरू कौन है ? उसके उत्तर में बालकराम जी ने कहा :- उपरोक्त कवित्त में जिन पुरूषों का नाम है, उनका गुरू कौन था ? और कौनसा उनके मंत्र था । पंडित लज्जित होकर बोला :- "आप ही कृपा करके बतलावें ।"

कवित्त :-

ब्रह्मादिक गुरू ब्रह्म, ब्रह्म गुरू आदि महेश्वर ।
सनकादिक गुरू ब्रह्म, ब्रह्म गुरू नौ जोगेश्वर ।
ऋषभ देव गुरू ब्रह्म, ब्रह्म गुरू जनक विदेही ।
करदम का गुरू ब्रह्म, पिंगुला ब्रह्म सनेही ।
ऋषि जड़भरत पूरूरवा, कहै बालकराम विवेक उर ।
अष्टावक्र दत्त कपिल कै, ब्रह्म अनुग्रह ज्ञान गुर ।

हे भाई ! इन सबके गुरू परमेश्वर ही थे, और उनकी दया की दृष्टि से ही, इनको ज्ञान हुआ और उन ने ही अर्न्तज्ञान मंत्र दिया ।

मुहम्मद किस के दीन में, जबराईल किस राह ।
इनके मुरसिद पीर की, कहिये एक अल्लाह ॥११३॥

टीका :- किसी काजी ने ब्रह्मऋषि से प्रश्न किया कि आप किसके दीन में हो ? परम गुरूदेव काजी से बोले :- हे काजी ! मौहम्मद साहब किसके दीन में थे ? जबराईल फरिसता किस के मार्ग में चले । इनका गुरू,

पीर कौन था ? काजी नम्र होकर बोले :- आप ही कृपा करें। तब परम गुरुदेव बोले :- हे काजी ! इनका गुरू, पीर, एक अल्लाह, कहिए तल स्पर्श रहित, एक परमातमा ही था, उसी के दीन में हम हैं।

दादू ये सब किसके व्है रहे, यहु मेरे मन मांहि।
अलख इलाही जगत गुरू, दूजा कोई नांहि ॥११४॥

टीका :- उपरोक्त सम्पूर्ण प्रकरण का भावार्थ :-

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव का कौन पंथ है ? और मोहम्मद का धर्म क्या है ? एवं जबराईल धर्मराज फरिस्ता की कौन राह है ? इनके मुरसिद कहिए गुरू, किस किस पंथ में हैं ? हे जिज्ञासु ! चराचर, लौकिक, अलौकिक, सभी पदार्थ, चेतन्य की सत्ता मात्र से, सब समान हैं। उत्तम पुरुषों को एक परमातमा का ही पतिव्रत है।

(प्रतिव्रता व्याभिचार)

दादू औरै ही औला तकै, थीया सदै बियनि।
सो तु मीयां ना घुरै, जो मीयां मीअनि ॥११५॥

टीका : हे मीयां ! तूं भगवान को तो स्मरण नहीं करता है, जो सब बड़ों से बड़ा है। परन्तु तैंने तो, और ही पीर पैगम्बरों का आश्रय ले रखा है, इसी से तूँ मन्दभागी है। 'थीर्या' कहिए राम की भक्ति तो अचल है, उसको धारण कर। उसी का कथन, श्रवण करने से, इसी जीव का कल्याण है।

(सत्य असत्य गुरू पारख लक्षण)

आई रोजी ज्यौं गई, साहिब का दीदार।
गहला लोगौं कारणैं, देखै नहीं गंवार ॥११६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रथम तो भक्तिरूप कमाई को, सेवक सेवकाओं को परचा दिखाने में, वृथा गमा दी, और इसी प्रकार अज्ञानी विषया आसक्त मनुष्य ने स्त्री, पुत्र, धन, आदि इन्द्री विषय भोगों के कारणै, इस मनुष्य शरीर को वृथा ही नष्ट कर दिया। यह मनुष्य देह परमातमा की प्राप्ति के लिये मिला था, जैसे :- कोई अपनी रोजी को गमा दे, वैसे ही अज्ञानी जीव, इस मनुष्य देह को गमा बैठा है।

दोहा :- मोहम्मद गयो न भिस्त को, ऊम्मत बिना लगार।
रान्यौं साहिब तास को, यौं जन लग व्है खवार ॥११६॥

दृष्टान्त :- मोहम्मद के लेने को फरिस्ता आए । मोहम्मद साहब बोले :- "मैं, मेरी सम्पूर्ण ऊम्मत को साथ ले चलूंगा ।" खुदा ने कहा :- तुम, तुम्हारी कमाई से आ सकते हो । खुदा की आज्ञा नहीं मानी । तब मोहम्मद साहब पर भारी कष्ट पड़ा । ऐसे ही जगत् से झूठी प्रीति करके, भक्त अपने आपको गिरा देता है ।

(पतिव्रत निष्काम)

दादू सोई सेवगराम का, जिसै नै दूजी चिंत ।
दूजा को भावै नहीं, एक पियारा मिंत ॥११७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सोई राम का सच्चा सेवक है, जिसके अन्तःकरण में राम के भजन से अलग और दुनियावी कोई प्रकार की चिन्ता नहीं रहती है । 'दूजा' कहिए नामरूप जगत की प्रीति नहीं प्रिय लगती है । एक सजातिय विजातिय स्वगत भेद रहित, परमेश्वर का ही पतिव्रत है ।

दोहा :- कबीर चिन्ता तो हरि नाम की, औरन चिन्ता दास ।
जे कुछ चितवै राम बिनु, सोई काल की पांस ॥११७॥

(भ्रम विध्वंसण)

अपनी अपनी जाति सौं, सब को बैसैं पांत्ति ।
दादू सेवग राम का, ताकै नहीं भरांत्ति ॥११८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपनी अपनी जाति में सब कोई मिलकर बैठते हैं, परन्तु राम के सेवक जो हैं, वे किसी से भेद भ्रान्ति नहीं करते । केवल एक राम की सत्ता को सर्वत्र अनुभव करते हैं ।

चोर अन्याई मसकरा, सब मिलि बैसैं पांत्ति ।
दादू सेवग राम का, तिन सौं करैं भरांत्ति ॥११९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजन जातीये पक्षपात करके, चोर, अन्याई, मखोली सबको अपनी पंगति में बैठाते हैं, किन्तु परम पवित्र भक्तों से भ्रान्ति करते हैं । तथापि मुक्तजन, ईश्वर की ही सर्वज्ञता का निश्चय करके, सब प्राणियों में समता का भाव रखते हैं ।

दोहा :- धाम सौंप शिष्य को गयो, तीरथ बद्रीदास ।
फिर आयो बहु काल मै, रोटी देत उदास ॥११९॥

दृष्टान्त :- एक बैरागी साधु बद्रीदास नाम का था । उसके मन्दिर, जमीन जायदाद बहुत थी । उसके एक चेला था । चेला जब बड़ा हो गया, तब बद्रीदास बोले :- "भाई ! यह मन्दिर जमीन जायदाद, यह नकद रूपया तूं संभाल, और मैं चार धाम तीर्थ करने जा रहा हूं ।" बद्रीदास यात्रा करने चल पड़े । जहां तहां भ्रमण करता हुआ चारों धाम करके, बहुत काल में वापिस लौटा । पीछे से चेले ने अपनी शादी कर ली । दो चार बाल गोपाल हो गये । परन्तु उसकी स्त्री बड़ी फुहड़ थी, कहीं मन्दिर में मक्खियां भिन भिना रही हैं, कहीं गन्दगी पड़ी है, कहीं झूठे बर्तन पड़े हैं, कहीं कुत्ते चाट रहे हैं । 'फूहद चालै नौ घर हालै'- ऐसा हाल हो रहा था । उधर से बद्रीदास जी सांयकाल को आये । जव मन्दिर में घुसने लगे, तब वह बोली :- कहां घुसता है अन्दर ? कुछ उठा कर ले जाएगा । बाहर बैठ ।" बद्रीदास इधर उधर देखने लगे । इतने में चेला आया । बद्रीदास को नमस्कार, प्रणाम नहीं किया और टेढा टेढा देखता हुआ मन्दिर में चला गया । तब बद्रीदास बोले :- "भाई ! देख ठाकुर जी का मन्दिर है, इसमें पवित्रता रहनी चाहिये । पहले हम कैसी पवित्रता रखते थे । अब यह तैनें क्या कर रखा है ।" चेला बोला :- अब ठाकुर जी इसी प्रकार राजी हैं, तुम्हारी पवित्रता से राजी नहीं हैं । अपनी पवित्रता अपने पास रखो । दो रोटी फेंक कर मारी । खाले खानी हैं तो ; नहीं तो अपनी झोंपड़ी अलग बांध ले । रोटी देने में भी उदासीनता दिखलाता है ।

संसारिक प्राणी राम के सेवकों से भ्रान्ति करते हैं । स्त्री के भाई बन्धु आये, उनसे प्यार करने लगा । बद्रीदास देखकर उदास हो गये ।

दादू सूप बजायां क्यों टलै, घर में बड़ी बलाइ ।
काल झाल इस जीव का, बातन ही क्यौं जाइ ॥१२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारी जीव मंत्र, तंत्र, सकाम कर्मों का अनुष्ठान, करने से हो, अन्तःकरण के काम, क्रोध लोभ, मोह विषय वासना रूप काल की झल से नहीं बचेंगे । केवल शब्दों के ज्ञान से ही इनको हटाना चाहे तो, यह तो सूप का बजाना है, जैसे किसी के घर में शेर आ घुसै, तो वह सूप बजाकर निकालना चाहे, तो वह नहीं निकलता, वह तो उनको भक्षण ही कर जाएगा । ऐसे ही आशा, तृष्णा रूप, काल की लपट, इस जीव को नहीं छोड़ेगी ।

दोहा :- जाणि दलिद्र घर तज्यो, फिर्यौ तेल के काज ।
जोड़ि चुपड़त देखतब, पूछी कीत जा भाज ॥१२०॥

दृष्टान्त :- एक दुखी मनुष्य अपने घर में दलिद्र का बासा जानकर, घर का त्याग करके चल दिया। एक पैसे का आगे जाकर तेल लिया और अपनी जूतियों को बैठा बैठा चुपड़ने लगा। इतने में एक पुरूष आया। सामने खड़ा हो गया। बोला :- तूं मुझे छोड़कर कहां भाग रहा है, मैं तो तेरे साथ ही रहूंगा, तूं जहां भी जायेगा। वह बोला :-तूं कौन है ? बोला :- मैं तेरा, दरिद्र हूं, तूं मुझे छोड़ता है, पर मैं तुझे नहीं छोड़ूंगा। जो पूर्व कर्मों का फल है, वह तो भोगना ही पड़ेगा। भागने से नहीं छूटेगा, भोगे छुटेगा।

सांप गया सहनाण को, सब मिलि मारैं लोक।
दादू ऐसा देखिए, कुल का डगरा फोक ॥१२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे सांप के निकल जाने पर, लीक पीटने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है, अर्थात् सांप नहीं मरता है, इसी प्रकार प्राणी के प्राणान्त होने पर, फिर मृत्तक के निमित्त श्राध और क्रिया कर्म कराने से मुक्ति प्राप्त नहीं होती। सतगुरू भगवान उपदेश करते हैं कि रूढ़ि मरियादा यह सब मिथ्या है। इनसे आत्म कल्याण नहीं होता है। किन्तु यह तो गधा खुजाल धर्म है।

दोहा :- गया पिंड धोती खुली, सुत पुनी तैसे धारि ।
पीर जड़ूलो तीर पै, बालक को जू उतारि ॥१२१॥

दृष्टांत :- एक वैश्य था। वह अपने लड़के को साथ लेकर, अपने बाप के पिंड भराने गया जी गया। फलगु नदी में जब पिंड भरा दिये, पंडा बोला :-सूर्य को अर्क दो। तो दोनों हाथों में जल लेकर, जब खड़ा होने लगा, तो पीछे से धोती का पल्ला ऐड़ी के नीचे दबकर खुल गया। तब लड़के ने पिता की तरफ देखा। अपने मन में उस बात को रख लिया। जब सूर्य को अर्क दे चुका, तो धोती की लांग अच्छी तरह टांग ली। पंडे को दक्षणा वगैरा देकर, घर आ गये। जब उसका शरीर बर्त गया, तब वह लड़का अपने बाप के पिंड भराने फिर गया। पिंड भराये। पंडा बोला :- सूर्य को अर्क दो :- लड़का अपनी धोती की लांग खोलने लगा। पंडा ने पूछा :- यह क्या करते हो ? लड़का बोला :- हमारे कुल का धर्म है कि सूर्य को लांग खोलकर जल देते हैं। मेरे पिता के साथ मैं आया था, तब उसने जब सूर्य को जल दिया, तो धोती लांग खोलकर जल दिया था। पंडा बोला :- ऐसा नियम नहीं है। लड़का :- हमारे तो यह कुल का नियम है। मैं तो वैसे ही अर्क दूंगा, जैसे मेरे बाप ने दिया है। इसको रूढ़िवाद कहते हैं।

दूसरा दृष्टांत :- ऐसे ही किसी कारण से, एक गृहस्थी ने अपने बच्चे का जड़ूला नदी के किनारे पीर के उतारा । पीछे वालों ने, अपना धर्म बना लिया कि हम उस पीर के ही, अपने बच्चों के जड़ूले उतरवावेंगे । इसे रूढ़िवाद कहते हैं ।

दादू दोन्यूँ भरम हैं, हिन्दू तुरक गंवार ।
जे दुहुवांथैं रहित हैं, सो गहि तत्त विचार ॥१२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, दोनों ही भ्रम में बंधे हैं, अर्थात् सकाम कर्मों में फंसे हैं । परन्तु आत्मा में न तो हिन्दूपना है और न ही मुसलमान पना है, इन दोनों से ही आत्मा रहित है । और न कोई गुण स्वभाव ही है, क्योंकि आत्मा निर्गुण है । इसलिए मुक्त पुरुष संसार के व्यवहारिक चाल चलन से छूटे हुए हैं, अर्थात् आत्मास्वरूप के चिंतन में मग्न रहते हैं ।

अपना अपना करि लिया, भंजन माँहैं बाहि ।
दादू एकै कूप जल, मन का भरम उठाइ ॥१२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक ही कूप के जल को, अपने अपने बर्तन में भरकर, संसारीजन अपने अपने पन का मिथ्या अभिमान करते हैं । इसी तरह जाति पांति, ऊंच नीच, भेद भाव, नाम रूप, अनेक नाम, अनेक रूप, आदि का मिथ्या भ्रम उठाकर झगड़ते हैं । इसको तत्वज्ञान से अर्थात् आत्म विचार से दूर करिये । क्योंकि चेतन्य सत्ता सबमें, समान रूप से ही विद्यमान है ।

दादू पानी के बहु नाम धरि, नाना विधि की जाति ।
बोलणहारा कौन है, कहौ धौं कहां समाति ॥१२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन एक ही पानी के बहुत से नाम रखकर, भ्रम में उलझ रहे हैं । इसी प्रकार 'धौं' कहिए, निश्चय ही अज्ञानीजन चेतन सत्ता के अनेकों नाम धरकर, जाति पांति, नाम रूप, ऊंच नीच आदि में बान्ध रखा है । परन्तु हे अज्ञानियो! वास्तविक विचारकर देखो कि यह बोलने वाला जीवात्मा कौन है ? और अन्त समय में यह किसमें समाता है अर्थात् जीवात्मा का शुद्ध रूप क्या है ? इसका कोई भी विचार नहीं करते हैं ।

जब पुरण ब्रह्म विचारिये, तब सकल आत्मा एक ।
काया के गुण देखिये, तौ नाना वरण अनेक ॥१२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उपरोक्त साखी के सिद्धान्त को ही स्पष्ट करते हैं अर्थात् जब ब्रह्म की पूर्ण सर्वव्यापकता का विचार करिये तो, सब जीवात्मा एक ही रूप हैं, क्योंकि सर्व में एक ही चेतन की सत्ता भासती है, और जो शरीर के गुणों और स्वभावों का विचार करैं तो, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य आदिक अनेक वर्ण हैं, तथा सर्व की आकृति भी अलग देखने में आती है । परन्तु यह सब मिथ्या है, एक चेतन सत्ता ही सत्य है ।

(अमिट पाप प्रचण्ड)

भाव भक्ति उपजै नहीं, साहिब का परसंग ।
विषय विकार छुटै नहीं, सो कैसा सतसंग ॥१२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां ईश्वर की चर्चा में श्रद्धा प्रेम उत्पन्न नहीं होवें और संसारिक विषय विकारों का छुटकारा नहीं होता, वहां क्या सतसंग है ? ऐसा संग तो निष्फल होता है, वह तो कुसंग ही है ।

बासण विषय विकार के, तिनकौं आदरमान ।
संगी सिरजनहार के, तिन सौं गरव गुमान ॥१२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजन, विषय विकारी मनुष्यों को तो आदर सम्मान देते हैं, परन्तु परमेश्वर के भक्तों से गर्व, गुमान और द्वेष रखते हैं । उनके संसार बन्धन और जन्म मरण के दुख कभी नहीं कटेंगे ।

दोहा :- कूबा कि त्रीये भ्रात हित, खीर करी मति हीन ।
संतन को करी राबरी, कूबा लइ सो चीन ॥१२६॥

दृष्टान्त:- केबलकूबा भक्त थे । उनकी स्त्री कम्बख्त थी । केवलकूबा जी के यहां संत खूब आते और
सतसंग होता रहता । भगवान के गुणनवाद आप गाते और संतों से सुनते । परन्तु उनकी स्त्री संतों के लिए
रसोई बनाती तो, मन में बहुत दुखी रहती और यह सोचती कि रोज रोज नये नये मोडे सन्यासी आवें सैं,
कोई जटा वाला सै, कोई घोट मोट आवै सै, कोई भगवां भेष वाला आवै सै, कोई टीके काढने वाला सैं ।
मन में बड़ी रूष्ट रहती । केवलकूबा जी संतों को देखकर हरे हो जाते । एक रोज संतों की मण्डली आ
गई, केवलकूबा जी संतों के दर्शन करके, प्रफुल्लित हो गए । उधर स्त्री के भाई भी आ गये, भाइयों को

देखकर स्त्री बहुत राजी हुई । केवलकूबा जी बोले :- आज संत भी आये हैं और तेरे भाई भी आये हैं, खीर का भोजन बना लै । वह बोली :- संत तो रोज ही यहां आते ही रहते हैं, मेरे भाई तो आज ही आए हैं । संतों के लिए खीर क्या बनाऊंगी ? इनके लिये जहर घोलूंगी । केवलकूबा जी ने खूब बढिया दूध मंगवा दिया । उसने खीर चढा दी । इधर अड़ोस-पड़ोस से खट्टी लस्सी लाई, उसमें जो का आटा घोल दिया, एक आंजला नमक का डाल दिया । इधर भाईयों के लिए खीर बनाई, संतो के लिए राबड़ी बनाई । केवलकूबा जी ने देखा कि खीर तैयार हो गई । संतों को बुलाया और चरण धोए । जितना परिंडे में पानी भरा था, उससे संतों के करमण्डलु वगैरा भर दिये, बाकी का गिरा दिया और बोले :- कि खीर तैयार हो गई ? पानी नहीं है, पानी भर ल्या, कुएं पर सै । वह सोचने लगी कि निकम्मा कहीं इन मोडे सन्यासीयों को खीर न खिला दे यों । पर पानी तो जरूर लाना है । यह विचार कर, कुएं पर पानी लेने गई । पीछे से केवलकूबा जी ने संतों को जिमाना शुरू कर दिया । वह तत्काल पानी लेकर लौटी । देखा तो संत खीर जीम रहे हैं । देखते ही जल भुन गई और गालियां देने लगी । संत लोग बोले :- भक्त जी, माता राम गालियां देती हैं । भक्त बोले :- महाराज ! यह यूं कहती है, भजन गा गा कर खाओ, चुपचाप क्यों खाते हो ? तो कोई संत ने श्लोक बोल दिया, कोई भजन गा दिया और फिर खीर खाने लगे । जब केवलकूबा जी ने देखा कि यह ऐसे नहीं मानती है, तब आप बोले :-

दोहा :- हरि के लेखै रूखा सूखा, बूरा भात चमारां नै ।
ऐसा काम करै मत भाई, ले डूबेगी सारां नै ॥

और बोले :- मूर्ख ! यह सन्तों के प्रताप से ही, सब कुछ आ रहा है, उनको तूं खाटी राबड़ी पाती है और तूँ संसारिक विषयी पामर जीवों को खीर खिलाती है । ऐसे काम करने से दोनों कुलों को डबोवैगी । तूँ घर से बाहर हो जा । उसके बाद फिर पति के चरणों में पड़ गई, अपना अपराध क्षमा चाहा और ईश्वर के सन्मुख होकर, संतों की सेवा द्वारा अपना कल्याण कर लिया । सब पाप ताप से मुक्त हो गई ।

अंधे को दीपक दिया, तौ भी तिमिर न जाय ।
सोधी नहीं शरीर की, तासन का समझाइ ॥१२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अन्धे मनुष्य को रोशनी दिखाने पर भी, उसका अंधकार नहीं मिटता है, वैसे ही जिन पुरूषों का मन पवित्र और निर्वासनिक नहीं बना है, उनको ज्ञान उपदेश देने से भी, उन अज्ञान रूप अन्धकार का नाश नहीं होता है ।

(सगुरा निगुरा)

दादू कहिए कुछ उपकार कौं, मानै अवगुण दोष ।
अंधे कूप बताइया, सत्य न मानै लोक ॥१२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अंधा मनुष्य, मार्ग के कूप आदि बताने वाले पुरूष पर, क्रोध करता है और उसकी आज्ञा नहीं मानता है, उसका फल तो अंधे का कूप में गिरना है । इसी प्रकार संसारिक विषयी पामर अज्ञानियों को, संतजन उपदेश करैं कि कुछ तन मन धन से उपकाय किया करो, अर्थात् दीन दुखी गरीबों की सेवा किया करो और ईश्वर का नाम स्सरण करो, तो वह अज्ञानी उस शिक्षा को अवगुण रूप समझते हैं, और उनसे द्वैष करते हैं । वे इस संसार रूपी कूप में ही गिरते हैं ।

कालरि खेत न ऊपजै, जे बाहै सौ बार ।
दादू हाना बीज का, क्या पचि मरै गंवार ॥१२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे ऊसर भूमि में बीज बोने से फसल प्राप्त नहीं होती है, वल्कि बीज का नाश ही होता है । इसी प्रकार संसारीक पामर विषयी जनों को उपदेश देने से भी, उनको चेत नहीं होता है । वह कर्त्तव्य परायण नहीं बनते हैं । उन कृतघनी गंवारों को उपदेश देना, उपदेश का दुरूपयोग ही करना हैं । वे संतों में दोष ही निकालते हैं । उनसे मौन ही अच्छा है ।

(कृत्तम कर्त्ता)

दादू जिन कंकर पत्थर सेवीया, सो अपना मूल गंवाइ ।
अलखदेव अंतरि बसै, क्या दूजी जगह जाइ ॥१३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारी मनुष्य, परमेश्वर को हृदय में न देखकर, परमेश्वर से विमुख रहते हैं और अपने मूल मनुष्य देह को वृथा ही, बहिरंग कल्पित देव आदि की उपासना में खोते हैं । अर्थात् कंकर पत्थर आदिक जड़ पदार्थों में, पच पच कर मरते हैं ।

पत्थर पीवैं धोइ करि, पत्थर पूजैं प्राण ।
अन्ति काल पत्थर भये, बहु डूबें इहि ज्ञान ।१३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब विशेष विवरण प्रस्तुत साखियों का, कारण ब्रह्म की उपासना में ही तात्पर्य है जो अब कारण ब्रह्म की उपासना में ही अधिकार रखते हैं, उनको बताते हैं कि ब्रह्म सम्पूर्ण

सृष्टि का कारण है । सत संकल्प सर्वज्ञ, स्वतंत्र है और वह ब्रह्म मेरा ही आत्म स्वरूप है, अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूं । सर्वत्र अनन्त रूपों में मेरा ही सत्चित आनन्द स्वरूप व्यापक है । इसी रीति से सर्व पदार्थों में, जड़ भाव त्याग करके, सर्वज्ञ और चेतन्य भाव से, ब्रह्म की उपासना युक्त है । इसी रीति से भगवान का उपलक्षण करके, मूर्ति पूजन का भी भगवत् की सर्वज्ञता में ही मतलब है । किन्तु अल्प बुद्धिजन, केवल मूर्ति और मन्दिर में ही परमेश्वर को, एक देशीय परिछिन्न मर्यादित मानकर, परमेश्वर की सर्वज्ञता का भाव जो, आत्म कल्याण के लिए इष्ट है, उसको बिसर जाते हैं, सो अयुक्त है । इसलिये प्रस्तुत साखियों में परमेश्वर का जड़ता, व परिछिन्नता के निषेध और चेतनता, व सर्वज्ञता के पूर्णभाव को, प्रगट करने मात्र में ही, गुरुबाणी का अभिप्राय है । और विचार सागर के मतानुसार, ब्रह्म का चिन्तन परब्रह्म और अपरब्रह्म रूप से दो प्रकार से माना है । निर्गुण ब्रह्म की उपासना को, परब्रह्म का चिन्तन माना है और इसका फल मोक्ष है । परन्तु अपरब्रह्म सगुण के, सकामी उपासकों के लिये, परम पद ब्रह्म लोक माना हैं । ब्रह्मलोक में पुनः पुर्वाभ्यास से ज्ञान होने पर, मोक्ष होता है । इस रीति से जिज्ञासुओ के लिये, निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन ही युक्त है । उत्तम श्रेणी के पुरुषों के लिये, सगुण उपासना के निषेध और निर्गुण ब्रह्म की उपासना की विधि, लय चिन्तन प्रक्रिया में भी प्रस्तुत साखियों का अर्थ ज्ञेय है । सर्व अस्थावर जंगम जगत में, एक चेतन ब्रह्म का भाव ही है । वही ब्रह्म की उपासना है ।

कंकर बंध्या गांठरी, हीरे के विश्वास ।
अंति काल हरि जौहरी, दादू सूत कपास ॥१३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मन्द बुद्धि पुरुष, यह कहता है कि हमारी भावना ही सिद्ध होगी, इसके प्रत्युत्तर में उपदेश करते हैं कि जो हीरों के विश्वास से कंकर भर लेवै, तो वे कंकर हीरे नहीं बन जाते हैं, और केवल मिथ्या विश्वास से ही, कपास का सूत स्वतः नहीं हो जाता है । इसी प्रकार से सर्वज्ञभाव का चिन्तन किये बिना कल्पित नाना देव आदि की उपासना से, आत्मा की प्राप्ति सम्भव नहीं है ।

दोहा :- **पतितिये सौंपि कपास, आप गयो परदेश में ।**
कात्यौ नही उदास, पति आवत परपंच रच्यौ ॥१३२॥

दृष्टांत :- एक कोई युवक था । उसकी स्त्री उसे यह कहती कि में पतिव्रता हूं । आपके बिना मुझे रोटी नहीं भाती, पानी नहीं पीती । आपकी याद में हर समय बेचैन रहती हूं । आप विदेश जाओगे, तो मैं किस प्रकार रहूंगी ? उसने एक कोठा रूई का भर दिया और एक चरखा ले दिया और बोला कि देख, जब तक मैं न आऊं, तब तक इस रूई को कात कात कर, सूत का ढेर लगा दे । तेरी वृत्ति इसमें स्थिर हो जाएगी और तुझे मेरी याद नहीं आएगी । इसको कातेगी, इतने समय तक मैं आ जाऊंगा । यह कहकर विदेश

रवाना हो गया। पीछे से उस स्त्री ने एक कुकड़ी भी नहीं काती और खूब संसारिक वासनाओं में व्यस्त रहती। पर पुरूषों का संग करती रहती। इसी प्रकार समय सब निकाल दिया। पतिदेव घर आये, आते के साथ ही त्रिया चरित्र बना लिया। कहने लगी :- जब से आप गये हो, तब से मेरे सिर का दर्द शान्त नहीं हुआ। ऐसे ही पड़ी गिरि रहती हूं। सूत कातने के लिये तबीयत ही नहीं की। पति ने कोठा वैसे ही रूई का भरा देखा और जान गया, शरीर को आकृति देखकर कि यह चरित्रवान नहीं है, चरित्रहीन है। उससे अपनी प्रीति हटा ली। ऐसे ही अनन्य भक्तों से सकामी लग ही रहते हैं।

दादू पहली पूजे ढूंढसी, अब भी ढूंढस बाणि।
आगै ढूंढस होइगा, दादू सति करि जाणि ॥१३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मंद बुद्धि प्राणी ने प्रथम भी, शरीर के अध्यास द्वारा नाना प्रकार के देवी देवताओं को पूजे हैं, और अब भी वही निश्चय है। अज्ञानीजन, जन्म भर से इस शरीर का ही अंजन मंजन पालन पोषण करता है। इसलिए यह देह का अध्यास भी, स्वरूप बोध में अन्तराय करता है, और आगे भी शरीर के संस्कारों से, जीवात्मा देह के बन्धन में ही बन्धेगा।

(भ्रम विध्वंषण)

दादू पैंडे पाप कै, कदे न दीजे पावं।
जिहि पैंडे मेरा पिव मिलै, तिहि पैंडे का चाव ॥१३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर से विमुख ले जाने वाले मार्ग, माया, मोह, तंत्र, मंत्र, अनुष्ठान और मूर्ति पूजा आदिक में कभी भी, निश्चय नहीं करना, और ब्रह्म विचार रूप जिस करनी से, आत्मा का साक्षात्कार होता है, उसी मार्ग का अभ्यास करो।

दादू सुकृत मारग चालतां, बुरा न कबहूं होइ।
अमृत खातां प्राणिया, मुवा न सुनिये कोइ ॥१३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उत्तम मार्ग पर चलने वाले का कभी बुरा नहीं होता है, जैसे अमृत पीने वाला प्राणी आज तक मरा नहीं सुना, क्योंकि अमृत पीने वाला तो अमर ही हो जाता है, जैसे :- राहू ने अमृत पीया, एक से दो हो गये, परन्तु मरा नहीं। देवताओं ने अमृत पान किया, तब से देवताओ का नाम अमरा पड़ गया। इसी प्रकार ज्ञाना अमृत को पान करने वाले भक्त भी अमर भाव को प्राप्त होते हैं।

कुछ नांही का नाम क्या, जे धरिये सो झूठ ।
सुर नर मुनिजन बंधिया, लोका आवट कूट ॥१३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस निर्गुण ब्रह्म में, नाम, रूप, गुण, क्रिया, इन सबका अभाव है । तब उसका नाम और रूप क्या धरैं । कदाचित धरैं तो मिथ्या ही होगा ? क्योंकि सत्व प्रधान मायाकृत उपाधि से ब्रह्म में, सगुणता प्रतीत होती है । परन्तु वास्तव में विचार करें तो माया ही सत्य नहीं है, तो माया से प्रभावित ब्रह्म में, सगुण भावना भी यथार्थ नहीं है । इसलिये अज्ञानी जीव, सुर, नर, मुनि, सब चेतन्य स्वरूप ब्रह्म को भूलकर, मिथ्या माया मोह में आसक्त होकर, तीन प्रकार की तापों को प्राप्त होते हैं । 'कूट' कहिये-वह निश्चय ही, जन्म मरण में जाते हैं ।

कुछ नांही का नाम धरि, भरम्या सब संसार ।
सांच झूठ समझै नहीं, ना कुछ किया विचार ॥१३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजन रूप आदि से रहित 'कुछ नांही कहिए—ब्रह्म का माया के प्रभाव से, सगुण स्वरूप मानकर, अथवा माया के कार्य देवताओं को, ब्रह्म जानकर, अनन्त नामों की पक्षा पक्षी में अर्थात् खींचा तानी में भ्रम रहे हैं । तथा माया तो मिथ्या है, परन्तु वह ब्रह्म की सत्ता से सत्यवत प्रतीत होती है । उसको सत्य मानकर, अज्ञानी संसारीजन, माया के कार्य विषय वासनाओं में भ्रमते हैं ।

(कस्तूरिया मृग)

दादू केई दौड़ै द्वारिका, केई कासी जांहि ।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही मांहि ॥१३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर सब प्राणियों के अन्तःकरण में ही है, परन्तु संसारीजन उसको अन्तःकरण में पहचानते नहीं हैं । जैसे कस्तुरिया मृग, कस्तुरि के लिये इधर उधर जंगल में, दौड़ता है । वैसे ही अज्ञानीजन बहिरंग तीर्थव्रत आदिकों में, परमेश्वर, को ढूंढते फिरते हैं ।

पूजनहारे पासि है, देही मांहैं देव ।
दादू ताकौं छाड़ि करि, बाहिर मांडि सेव ॥१३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरुदेव, उपदेश करते हैं कि हे सेवा पूजा करने वाले भक्त ! तेरे हृदय में ही परमेश्वर निवास करते हैं, उनको अपने हृदय में जानकर, नाम स्मरण रूप पूजा कर, अर्थात् अपने आत्म स्वरूप का ही निश्चय कर । बहिरंग साधनों का त्याग कर दे ।

(सांच)

उपरि आलम सब करै, साधू जन घट मांहि ।
दादू एता अन्तरा, ताथैं बनती नांहि ॥१४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन तो बाह्य लोक दिखावा के लिये आचरण करते हैं, अर्थात् शरीर पर चिन्ह आदि धारण करके मूर्ति पूजा आराधना में लगे रहते है । परन्तु संतजन अपने अन्तःकरण प्रदेश में ही, स्वस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं । संतों की और संसारिक जनों की व्यवहारिक कार्य में एकता नहीं बनती है ।

दोहा :- देखि सन्यासी देहुरै, बैठे बोलै मूढ ।
करि डंडवत मूरती फटी, तब तत्त समझ्यो गूढ ॥१४०॥

दृष्टान्त :- एक ब्रह्मनिष्ठ संत मन्दिर में, जाकर बैठे । पुजारी आया और बोला :- ऐसे ही बैठा है, नमस्कार नहीं किया ठाकुर जी को । संत की गर्दन पकड़ कर उनका मूर्ति की तरफ सिर झुकाया । मूर्ति के चटाक से दो टुकड़े हो गये । तब पुजारी ने गूढ तत्व समझा, कि यह तो कोई जबरदस्त महापुरूष हैं । क्षमा याचना की ।

दादू सब थे एक के, सो एक न जाना ।
जणे जणे का व्है गया, यहु जगत दिवाना ॥१४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब प्राणी, एक परमेश्वर के रचे हुए हैं और उसी के अंश हैं । परन्तु अपने उपादान कारण परमेश्वर को भूलकर, आज्ञानीजन नाना देवी देव आदि की पूजा में प्रवृत्त होते हैं, वासनाओं द्वारा । ऐसा यह जगत् विषयासक्त, दिवानावत हो रहा है ।

दोहा :- संख पंचायन ना बज्यो, पांडुन के यज्ञ मांहि ।
सब मिल पूछी कृष्ण से, ममजन जीम्यौं नांहि ॥१४१॥

दृष्टान्त :- पाण्डुवों ने राजसूय यज्ञ प्रारम्भ किया, भगवान कृष्ण की अध्यक्षता में । यज्ञ समाप्ति की पहचान में, भगवान ने अपना पंचायन शंख, पूजा में रख दिया और बोले :- "कि जिस दिन यह शंख बिना

बजाए आप बजे, तब जान लेना कि आज हमारा यज्ञ पूर्ण हो गया।" उस यज्ञ में बारह करोड़ ब्राह्मण प्रतिदिन भोजन करते थे। सम्पूर्ण हस्तिनापुर की प्रजा भी भोजन करती थी। एक सोने की सींख लगाकर, पान का बीड़ा, प्रत्येक को दिया जाता था। यज्ञ की सामग्री पूरी होने को आई, शंख नहीं बजा। पांडवों ने भगवान कृष्ण से प्रार्थना की। भगवान बोले :- जिस यज्ञ में भगवान और भक्त जीमते हैं, तब यज्ञ पूरा होता है। पांडवों ने कहा :- भगवान तो आप हैं, भक्त का हमें पता नहीं कौन रह गया ? भगवान बोले :- "बालिमक जीम ही, तब बजैहि तूरो।" द्रौपदा महारानी बालिमक के आश्रम पर गई। नमस्कार किया, और बोली कि महाराज ! यज्ञ को पूरा करने पधारिये। बालिमक :- सो राजसूय यज्ञ का पहले फल मुझे दे, तब मैं यज्ञ में चलूं। द्रौपदा :- दान हैसियत के अनुसार होता है, यह तो हर एक दे सकता है, मुझ से कुछ अधिक मांगो। बालिमक :- आपने कितने यज्ञ किए हैं। द्रौपदा :-

दोहा :- संत मिलन को जाइये, तज माया अभिमान।
ज्यौं ज्यौं पग आगै धरै, कोटिन यज्ञ समान॥

बालिमक साथ चल पड़े। भगवान श्रीकृष्ण को जब साष्टांग प्रणाम किया, भगवान ने उठाकर, हृदय से लगा लिये। पांडवों ने नमस्कार किया, चरण धोए, पूजा की। सुन्दर आसन देकर, बैठाये। छप्पन्न भोग, छत्तीस व्वंजन स्वर्ण के थाल में लगाकर, द्रौपदा महारानी ने बालिमक के सामने, थाल लगाकर रखा। बालिमक जी ने ध्यान में, भगवान के भोग लगाया। भगवान कृष्ण ने सब प्रसाद को पाया, फिर बालिमक को आज्ञा दी कि अब आप पाओ। ज्यों ही बालिमक ने मुख में ग्रास रखा, तब भी शंख जोर से बजा और पांडवों का यज्ञ पूरा हुआ।

बालिमक जी ने भगवान को एक जानकर, निश्चय किया था। पंडितों ने नाना देवी देवताओं की आराधना की, उनके जीमने से शंख नहीं बजा।

दोहा :- शंख बजायो सरगरै, मर्‌यो सब को मान।
तुलसी द्वादस कोटि को, घूरड़र काट्यो कान॥१४१॥

अर्थात् द्वादस करोड़ ब्राह्मणों के भोजन करने से शंख नहीं बजा, क्योंकि वह अहंकार युक्त थे। बालिमक, निरअभिमानी, एक परमेश्वर की भक्ति करने वाले थे, उनके भोजन करने से शंख बजा। भगवान ने ब्राह्मणों का अहंकार नष्ट कर दिया और यह बतला दिया कि मैं भक्ति से ही प्राप्त होता हूं। "सब थे एक के, सो एक न जाना"

**दादू झूठा सांचा करि लिया, विष अमृत जाना।
दुख को सुख सब को कहै, ऐसा जगत दिवाना॥१४२॥**

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की निष्काम भक्ति, वैराग्य रूपी मार्ग उत्तम है, जीव के कल्याण के लिये । परन्तु बहिर्मुख सकाम कर्मो से आसक्ति वाले मनुष्य, उस मार्ग को भूल गये हैं और संसार की वासनाएं दुखमय हैं, उन्हीं को संसारिक प्राणी सुख रूप जानकर, संसारिक भोग वासना में प्रवृत्त होते हैं । ऐसे विषय आसक्त, "दिवाने" कहिए—उन्मत्त हो रहे हैं ।

सूधा मारग सांच का, सांचा होइ सो जाइ ।
झूठा कोई ना चलै, दादू दिया दिखाइ ॥१४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निष्कामी भक्त ही, भगवान की प्राप्ति का, भक्ति वैराग्य रूपी मार्ग को धारण करते हैं, वह भक्त ही, गर्भवास के कौल करार में, भगवान से पूरे उतरते हैं । संसारिक बिषय आसक्त जीव, भगवान से झूठे, वह कोई भी इस निष्काम, निर्वासनिक भक्ति वैराग्य रूपी मार्ग पर, नहीं चल सकते । यह सतपुरूषों ने, विवेक द्वारा बता दिया है ।

साहिब सौं सांचा नहीं, यहु मन झूठा होइ ।
दादू झूठे बहुत हैं, सांचा बिरला कोइ ॥१४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की भक्ति के तत्त पर, कोई विरले ही उत्तम जिज्ञासु हैं, किन्तु परमेश्वर से विमुखी, सकाम कर्मों में आसक्ति वाले, सम्पूर्ण संसार के प्राणी हैं । वे कहते हैं कि भगवान से क्या लेना है ? संसार के भोग पदार्थों का आनन्द ही प्राप्त करने के लिए, मनुष्य का शरीर मिला है । ऐसे आसुरी प्रकृति वाले पुरूष होते हैं ।

दादू सांचा अंग न ठेलिये, साहिब मानै नांहि ।
सांचा सिर पर राखिये, मिलि रहिये ता मांहि ॥१४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वस्वरूप ब्रह्मभाव और सोहं, इसको नहीं बिसारिये, क्योंकि स्वस्वरूप के बोध बिना, परमेश्वर भक्ति स्वीकार नहीं करते हैं । जल जल की भांति, ब्रह्म में मन वृत्ति को लय करके, स्वस्वरूप में मग्न रहना एवं हरि गुरू संत, सत् शास्त्र से पल भर भी, अपने को न हटाओ, विमुख मर करो । क्योंकि विमुख पुरूष प्रभु की, प्रभुता को नहीं मानता है, इसलिये सत्संगति द्वारा, अनन्य भक्ति करो । अथवा सांचा कहिये—परमेश्वर की सर्वज्ञता को न बिसारिये, क्योंकि सर्वज्ञभाव से शून्य पुरूष की मूर्ति पूजा को भगवान स्वीकार नहीं करेंगे । इसलिये नाना देवी देव आदिक में, प्रभु की सर्वज्ञता को ध्यान में लेकर, उनकी सेवा पूजा करनी चाहिये, और सतगुरू के ज्ञानयुक्त शब्द का भी यही मतलब है ।

जे कोई ठेलै सांच कौं, तौ सांचा रहै समाइ।
कौडी बर क्यौं दीजिये, रत्न अमोलिक जाइ ॥१४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन रिद्धि, सिद्धि मायावी प्रलोभन में फंसावे तो भी, हे साधक ! स्वस्वरूप में ही समा कर रहना। क्योंकि सम्पूर्ण मायिक विभुति कौड़ी के तुल्य हैं। इसके बदले में मनुष्य का शरीर एवं ब्रह्मभाव रूप अमोलिक रतन गमाना योग्य नहीं है।

सांचे साहिब कौं मिलै, सांचे मारिग जाइ।
सांचे सौं सांचा भया, तब सांचे लिये बुलाइ ॥१४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चा साधक ज्ञान भक्ति वैराग्य साधन सम्पन्न होकर स्वस्वरूप का विचार करे तो, सत्य ब्रह्म में अभेद होकर, ब्रह्म रूप होता है। ज्ञानी भक्त और भगवान दोनों एकरूप होकर रहते हैं।

दादू सांचा साहिब सेविये, सांची सेवा होइ।
सांचा दरसन पाइये, सांचा सेवग सोइ ॥१४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निराकार ब्रह्म की निष्काम भाव से, अहंग्रह उपासना रूपी सेवा कीजिए। तब सच्ची भक्ति होगी। इस प्रकार आराधना करने वाला भक्त ही, परमात्मा का सच्चा स्वरूप है।

सांचे का साहिब धणी, समर्थ सिरजनहार।
पाखंड की यहु पृथवी, परपंच का संसार ॥१४९॥

झूठा परगट सांचा छानै, तिन की दादू राम न मानै ॥१५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बाचक संसारिक पंडित, शास्त्र के सत्य अर्थ को तो छिपाते हैं और आख्यान पूर्वक माया में प्रवृत्ति कराने वाले, विविध अर्थ बनाकर, लोक रंजन करते रहते हैं। परन्तु ऐसे साधनों से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता। संत तो भक्ति को भी छिपा कर रखते हैं, तथापि संसारीजन मुर्ति पूजा, तीर्थ व्रत, सकाम कर्मों को प्रगट कहिए, लोक दिखावे में करते हैं। इसलिये संसारीजनों की सेवा को, परमेश्वर स्वीकार नहीं करते हैं। परमेश्वर के यहां सच्चे पुरूषों की सेवा स्वीकार होती है।

कहां आसिक अल्लाह के, मारे अपने हाथ ।
कहां आल्म औजूद सौं, कहै जबां की बात ॥१५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कहां तो भगवान के प्यारे भक्त, जो अपने हेतरूपी हाथों से, मन के गुण विकारों को मारकर, परमेश्वर में रत्त रहते हैं, और कहां देह अध्यासी संसारीजन, हैं, जो बाणी से तो ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं, परन्तु मन इन्द्रिये जिनके, संसार के विषय वासनाओं में रत्त रहते हैं, ऐसे बाचक ज्ञानी भक्तों के लिये, परमेश्वर की प्राप्ति होना असम्भव है ।

दादू पाखंड पिव न पाइये, जे अंतर सांच न होइ ।
ऊपर थैं क्यूं ही रहै, भीतर के मल धोइ ॥१५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कायक बाचक मानसिक पाखंड से, मुखप्रीति का विषय जो परमेश्वर है, उसकी प्राप्ति नहीं होती है । परमेश्वर तो अन्तःकरण की सत्यता से ही प्राप्त होता है । ऊपर से चाहे किसी प्रकार का व्यवहार करै, परन्तु परमेश्वर की प्राप्ति चाहने वाला मुमुक्षु, भीतर के अर्थात् हृदया के मल विक्षेप आदि दोषों को धोवै ।

सांच अमर जुगि जुगि रहै, दादू बिरला कोइ ।
झूठ बहुत संसार मैं, उतपति परलै होइ ॥१५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस संसार में सच्चे पुरूष, जुग जुग में अमरभाव को प्राप्त होते हैं, परन्तु ऐसे कोई बिरले ही पुरूष हैं । परमेश्वर से झूठे संसार में बहुत हैं । वह पुनः पुनः जन्म मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं । उनका जन्म मरण आदि कलेस कभी नहीं छूटता ।

दादू झूठा बदलिये, साँच न बदल्या जाइ ।
सांचा सिर पर राखिये, साध कहै समझाइ ॥१५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! झूठा कहिए माया और माया का कार्य, यह संसार परिवर्तनशील है, इसका अधिष्टान चेतन्य परमेश्वर ,वह अपरिवर्तनशील है, अर्थात् सत्य है, एक रस है । ऐसे सत्य स्वरूप परमेश्वर को, अपने मस्तक पर धारण करिये । इस प्रकार मुक्त पुरूष साधकों को, परमेश्वर रूपी तत्व समझाकर कहते हैं ।

सांच न सूझै जब लगै, तब लग लोचन अंध ।
दादू मुक्ता छाड़ि करि, गल मै घाल्या फंद ॥१५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक सत्य स्वरूप परमात्मा अन्तर विवेक वैराग्य रूपी नेत्रों से, नहीं दिखाई पड़ता है, तब तक जानो कि यह जीवात्मा, ज्ञान विचाररूपी नेत्रों से हीन ही है । हे साधक ! तब तक 'मुक्ता' कहिए—माया विकारों से रहित, शुद्ध निरंजन निराकार रूप परमेश्वर, उसको त्याग कर, तब तक यह साधक, अपने गले में अज्ञान रूपी फांसी डाले हुए रहता है । इससे मुक्त नहीं हो पाता ।

सांच न सूझै जब लगै, तब लग लोचन नांहि ।
दादू निरबंध छाड़ि करि, बंध्या द्वै पख मांहि ॥१५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक सत्य मार्ग नहीं दिखाई पड़ता, तब तक ज्ञान विचार रूपी नेत्रों से हीन है । 'निरबंध' कहिए—माया आदि विकारों से रहित, सच्चिदानन्द परमेश्वर को त्याग कर, 'द्वैपक्ष' कहिए, हिन्दू मुसलमान की, कर्त्ता भोगता, ऊंच नीच, पाप पुण्य आदिक, इन पक्षों में यह जीवात्मा बंधा रहता है ।

एक सांच सौं गह गही, जीवन मरण निवाहि ।
दादू दुखिया राम बिन, भावै तिधरि जाहि ॥१५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'एक सांच' कहिए—अद्वितीय ब्रह्म का निश्चय करके, उसमें ही अभेद होइये । और मुक्तजन स्वयं भी सत्य को ग्रहण करें । मुमुक्षुओं को भी सत्य मार्ग में प्रवृत करते हैं । प्रथम तो चितावणी पक्ष में साधकों को, जन्म से मरण पर्यन्त, सत्य का व्रत ही पालना चाहिए, अर्थात् जो सत्य को ग्रहण करता है, उसको जन्म मरण प्राप्त नहीं होता है । और जो संसारीजन सत्य मार्ग से विमुख हैं, वह अन्य जो सकाम कर्म रूपी साधन, उनको साधते हुए, जन्म मरण आदि कलेस को ही प्राप्त होते हैं ।

(चितावणी)

दादू छानै छानै कीजिये, चौड़ै प्रगट होइ ।
दादू पैस पयाल मै, बुरा करै जिन कोइ ॥१५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पाप बासना मन में, स्फुरणा फुरते ही, प्रगट हो जाती है । क्योंकि निरंजनदेव परमेश्वर सर्वज्ञ है । जिससे 'छानै छानै' कहिए—सूक्ष्म कर्त्तव्य भी प्रभु से छिपे नहीं हैं । इसलिये प्रभु की सर्वज्ञता का अनुभव करके, जिज्ञासु को ब्रह्माकार वृत्ति में ही, स्थिर रहना चाहिये ।

अथवा "छानै छानै' कहिए—कायक, वाचक, मानसिक क्रिया से किसी का भी बुरा नहीं करना अर्थात् पाप नहीं करना । यदि छिपा छिपा कर भी बुरा करेंगे, एक रोज अवश्य जनसमुदाय के सामने आ जायेगा । इसलिये ब्रह्मऋषि सतगुरू देव कहते हैं कि हे साधक ! किसी का भी बुरा पाताल में कहिए गुप्त रूप से भी नहीं करना । यदि करेगा तो अवश्य प्रगट हो जाएगा ।

दोहा :- पवन कहै पानी कहै, धरती बोलै बैन ।
चन्द्र सूर दोऊ कहै, पाप छिपै क्यौं चैन ॥१५८॥

दोहा :- पुत्री पर संकल्प कीयो, नृप को बाज्यो ढोल ।
फिर समझ्यो सोभा भई, सब जग सुलटो बोल ॥१५८॥

दृष्टान्त :- एक राजा थे । उसकी लड़की बहुत सुन्दर थी । शादी के योग्य हो गई । राजा के मन में पाप वासना जागृत हुई और सोचा कि अपनी लड़की को पाल पोश कर, बड़ी करके दूसरे पुरुष के साथ शादी कर देते हैं । इसकी अपेक्षा अपने साथ ही शादी कर लें, तो क्या बुरा है ? तब राजा एक रोज दरबार में, मंत्रियों के सामने बोले कि अपनी उत्पन्न की हुई वस्तु को, आप ही उसका उपभोग कर लें, तो इसमें क्या आपत्ति है ? मंत्रियों ने जान लिया कि राजा की दृष्टि मलीन पापमय हो चुकी है । अपनी लड़की के साथ शादी करने को राजा तत्पर है । यह भयंकर अन्याय और पाप है । मन्त्रियों ने उसका समर्थन नहीं किया और बोले :- सभी वस्तु अपने उपयोग में लाने योग्य नहीं होती । इस राजा के मानसिक पाप का, सम्पूर्ण प्रजा में ढोल बज गया अर्थात् राजा बड़ा अन्यायी, अधर्मी और पापी है, जो अपनी कन्या के साथ आप शादी करना चाहता है । कुछ दिन में मन्त्रियों ने राजा को बोला कि राजन् ! आपकी प्रजा में यह शोर गुल हो रहा है, कि राजा अपनी कन्या के साथ शादी करना चाहता है । यह कहाँ तक ठीक है ? राजा लज्जित हो गया और मन में विचार किया कि मैंने शादी करने का विचार ही किया था । और किसी को कहा भी नहीं, फिर भी मेरे मन का पाप सर्वत्र बोल उठा । इसलिए अब इस विचार को आज ही मैंने त्याग दिया, और ईश्वर की सत्ता का राजा ने अनुभव किया, कि ईश्वर तो सर्वत्र देखता है । सबके घट की अच्छी बुरी जानता है । फिर राजा ने आम खास दरबार लगाया और बोला :- कोई भी धर्म मर्यादा का उलंघन करके अर्थात् अपनी लड़की के साथ शादी करेगा, तो उसको फांसी की सजा होगी ।

यह सुनते ही प्रजा में, राजा के प्रति भाव जागृत हो गया, कि राजा बड़े धर्म निष्ट हैं, बड़े नीतिज्ञ हैं। जो राजा का मानसिक पाप था, वह सम्पूर्ण धुल गया।

अन किया लागै नहीं, कीया लागै आइ।
साहिब कै दर न्याव है, जे कुछ राम रजाइ ॥१५९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन कीये कर्म का फल तो, लगता है नहीं, और कर्त्ता बुद्धि से निसिद्ध कर्म, शुभ सकाम कर्म, इनका फल, पाप पुण्य अवश्य लगता है। क्योंकि परमेश्वर के दरबार में न्याय है और परमेश्वर सर्व कर्त्तव्यों में अलिप्त है। तथा साक्षी भाव से स्वयं प्रत्यक्ष जानते हैं। इसलिए कीया अनकीया कर्म, परमेश्वर से छिपा नहीं है। जो भी कर्म करो, वह निष्काम भाव से राम की प्रसन्नता के लिए करो। इसी में मनुष्य जन्म की सफलता है।

(आत्मार्थी भेख)

सोइ जन साधु सिध सो, सोइ सतवादी सूर।
सोई मुनियर दादू बड़े, सनमुख रहणि हजूर ॥१६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही तो भक्तजन है, वही साधु है और वही सिद्ध है, तथा वही सत्यवादी है, जो सत् कामी, सत् नेमी, सत् प्रेमी है। और वही सूरवीर है, जो मन इन्द्रियों के विषयों का त्याग करता है। वही मुनि है, जिसके अन्तःकरण में, प्रणवे अर्थ का मनन होता है। वही मानव समाज में बड़े हैं, जो सतकर्मों के द्वारा परमात्मा के सन्मुख रहते हैं। अर्थात् परमेश्वर का नाम स्मरण करते हैं।

सोइ जन साँचे सो सती, सोइ साधक सुजान।
सोइ ज्ञानी सोइ पंडिता, जे राते भगवान ॥१६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही सच्चे हैं जो परमेश्वर के कौल को याद करते हैं, और वही सती है, जो अपने सत का त्याग नहीं करता। वही साधक है, जिसने परमेश्वर प्राप्ति के साधनों को अपना लिये हैं। वही चतुर है जो नित्य, अनित्य का विवेचन करता है। वही ज्ञानी है जिसको अपना आत्म स्वरूप अपरोक्ष हो गया है। वही पंडित है, जिसने अपने पिंड को अर्थात् शरीर को निर्दोष बना लिया है और फिर भगवान के नाम स्मरण में, राते रत्त और माते मतवाले बने रहते हैं।

दादू सोइ जोगी सोइ जंगमा, सोइ सोफी सोइ सेख ।
सोइ सन्यासी सेवड़े, दादू एक अलेख ॥१६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही योगी है, जिसके मन में एक अलेख परमेश्वर का नाम बसता है । वही जंगम है, जो परमेश्वर से रत्त रहता है । वही सूफी और वही शेख श्रेष्ठ हैं, जिनके मन में मालिक का स्मरण बना रहता है । वही सन्यासी भेखधारी श्रेष्ठ है, जिसने सम्पूर्ण कर्म फल का त्याग किया है । वही सेवड़े, जैनी हैं, जिन्होंने महावीर स्वामी के सिद्धान्त को अपनाया है, अर्थात् मन वाणी से, हिंसा का त्याग किया है, और एक परमेश्वर की ही शरण ग्रहण की है ।

सोइ काजी सोइ मुल्लां, सोइ मोमिन मुसलमान ।
सोइ सयाने सब भले, जे राते रहिमान ॥१६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही काजी और मुल्लां श्रेष्ठ है जिसने हिंसा का त्याग करके, रहमान का नाम स्मरण किया है । वही मोमिन है, जिसका दिल, दूसरों के दुखों को देखकर, मोम की तरह करूणायुक्त बन जाता है । वही मुसलमान है, जो ईमान का कभी त्याग नहीं करता । वही सब सयाने समझदार हैं, जो परमेश्वर के नाम स्मरण में रत्त रहते हैं ।

राम नाम कौं बणजन बैठे, ताथैं मांड्या हाट ।
सांई सौं सौदा करै, दादू खोलि कपाट ॥१६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आत्माअर्थी कहिए आत्मा की प्राप्ति के लिए, भेख धारण करने वाले, संतजन ही मानो राम नाम का बीणज करने वाले हैं । राम नाम का उपदेश करना और सतसंग ही, जिनकी हाट है । जो भी पुरूष इस सतसंग रूपी हाट पर, सांई का अर्थात् परमेश्वर का, ज्ञान ध्यान भक्ति वैराग्य आदि का व्यापार करै, अर्थात् जिज्ञासुओ को उपदेश देवै और अपना अहंत्व भाव, संसार भाव सतगुरू को समर्पण करै और ब्रह्म भाव में स्थिर होकर, सतगुरू की कृपा से, उत्तम जिज्ञासु पुरूषों के कर्म बन्धन रूप कपाट खुल जाते हैं और वे मुक्त हो जाते हैं ।

दोहा :- संतजनन के जो वस्तु है, सो काहू के नांहि ।
सुन्दर तिन्ह कि हाट सौं, ग्राहिक ले ले जांहि ॥१६४॥

(अधिकारी अनअधिकारी)

बिच के सिर खाली करै, पूरे सुख सन्तोष ।
दादू सुध बुध आतमा, ताहि न दीजे दोष ॥१६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! "बिच के" कहिये- वाचक पंडित, नकली ज्ञानी, भेदवादी संसय आत्मा, येह सब लक्ष्य में स्थित नहीं होते हैं और व्यर्थ में अपना और दूसरों का सिर खपाते रहते हैं । "पूरे" जो अर्थात अपरोक्ष आतमज्ञानी हैं, वे स्वस्वरूपा आनन्द ब्रह्म में ही सन्तुष्ट रहते हैं । ऐसे शुद्ध बुद्धि वाले पुरूषों को, व्यवहार काल में दोष नहीं लगता है । वे कर्म बन्धन में नहीं बधते हैं ।

सुध बुध सुं सुख पाइये, कै साध विवेकी होइ ।
दादू ये बिच के बुरे, दाधे रीगें सोइ ॥१६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू के उपदेश में स्थिर उत्तम पुरूष ही, ब्रह्मानन्द सुख का अनुभव करते हैं । परन्तु ऐसे मुक्त पुरूष बहुत कम होते हैं, उनके सत्संग में आनन्द स्वरूप प्राप्त होता है । और यह "विचके" कहिए- भेदवादी, कुतरकी, जिनको पूरा आतमबोध प्राप्त नहीं है । अज्ञन्यमार्गी, माया प्रपंच से जले हुए रोगी, रोते रहते हैं । मुमुक्षु को एसे पुरूषों का संग नहीं करना चाहिये ।

जिन कोई हरि नाम मैं, हमकौं हाना बाहि ।
ताथैं तुमथैं डरत हूं, क्यौंही टलै बलाइ ॥१६७॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज अपने को उपलक्षण करके, जीवों को उपदेश करते हैं और परमेश्वर का स्वरूप दर्शाते हैं, कि हे दयामय परमेश्वर ! हमारी सुरति कहिये वृत्ति, आपके हरि नाम में ही एक रस बनी रहै, और आप की अखंड भक्ति में कोई भी विघ्न नहीं आवै । हे नाथ ! हम जो माया मेंह में आपकी भक्ति से विमुख होकर, गर्भ के कौल करार से नहीं चूक जावें । इस भय से ही आपको विनय करते हैं कि यह 'बलाइ'—माया प्रपंच अथवा मिथ्यावादी अज्ञानीजन, हमसे दूर ही रहैं । ऐसी कृपा रखिये ।

(परमार्थी)

जैं हम छाडैं राम कौं, तौ कौन गहैगा ।
दादू हम नहीं उच्चरैं, तौं कौन कहैगा ॥१६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत महात्मा ही अगर सत्य स्वरूप राम का त्याग कर दें अर्थात् स्मरण न करें, तो फिर कौन गहैगा, अर्थात् कौन स्मरण करेगा ? और जो स्वयं तो सत्य स्वरूप राम को ग्रहण करके रहैं, परन्तु सत्य स्वस्वरूप का उपदेश नहीं करैं, तो जिज्ञासुओं के कल्याण के लिये, सत्य स्वरूप राम का कौन उपदेश करेगा ? व्यवहार में संत ही केवल परमार्थी हैं। सत्य उपदेश भी देना, संतों का ही कर्त्तव्य है ।

दोहा :- ज्ञानी ज्ञान न उच्चरैं, आपै रहै लुकाइ ।
तौ तुलसी दुखिया जीव ये, शरण कौन की जाइ ॥१६८॥

दोहा :- गुरू दादू आमेर तैं, चले सीकरी जाइ ।
मार्ग चलतां शिष्यन को, तब या साखी सुनाइ ॥१६८॥

दृष्टांत :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज आमेर से सीकरी, जब अकबर बादशाह को उपदेश करने जा रहे थे, मार्ग में शिष्यों ने महाराज से कहा :- कि हे गुरूदेव ! आप तो स्वयं ही राम के रूप हो ? अब आप को राम राम करने की क्या आवश्यकता है ? गुरूदेव ने उपरोक्त साखी से उपदेश दिया कि हे भाई ! हम राम राम नहीं करेंगे, तो फिर आप लोग क्या करोगे ? महापुरूष, अज्ञानी जीवों को सद्मार्ग पर लगाने के लिए, आप खुद सत् कर्मों का आचरण करते हैं ।

(विरक्तता)

एक राम छाड़ै नहीं, छाड़ै सकल बिकार ।
दूजा सहजैं होइ सब, दादू का मत सार ॥१६९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत पुरूष, एक ब्रह्मस्वरूप राम का स्मरण कभी नहीं छोड़ते । वह संतजन एक परमेश्वर के नाम का स्मरण करते हैं और सर्व मायावी विकारों को त्याग देते हैं । दूजा और खान पान, रहन ससन, यह सब, परमेश्वर की कृपा से ही स्वतः चलते रहते हैं ।

जे तूं चाहै राम कूँ, तो एक मना आराध ।
दादू दूजा दूरि करि, मन इन्द्री कर साध ॥१७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यदि परमात्मा का साक्षात्कार करना चाहते हो तो, एक मन होकर, परमेश्वर का ध्यान करो । दूजा तीर्थ व्रत, देव पूजा आदिक अन्य साधनों से, उदासीन होकर, मन इन्द्रियों को अन्तरमुख करके, चेतन्यमय बनाइये ।

(विरक्तता)

कबीर बिचारा कह गया, बहुत भांति समझाइ ।
दादू दुनियाँ बाबरी, ताके संगि न जाइ ॥१७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विचारशील ब्रह्मवेत्ता कबीर साहब आदिक संतों ने, जिज्ञासुजनों को अनेकों प्रकार समझा करके, यह आतम अनुभव प्रगट किया है, परन्तु बहिर्मुख दुनियां परमेश्वर से विमुखी है । इस लिये ही जिज्ञासुजनों को संसारीजनों का संग मना किया है, और कबीर जी आदि संतों ने संसारिक प्राणियों को अनेक प्रकार से समझा करके, विवेक कराया, परन्तु अज्ञान में पागल हुई दुनियां संत वचनों में विश्वास नहीं करती । इसीलिये दुख पाते हैं ।

दोहा :- कबीर एती कथनी मैं कथी, तेती बालु रेत ।
इस संसारी जीव कै, नेक न उपज्यो चेत ॥१७१॥

(सूक्ष्म मार्ग)

पावहिंगे उस ठौर को, लंघैंगे यहु घाट ।
दादू क्या कहि बोलिये, अजहुं बिच ही बाट ॥१७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस ब्रह्म ठौर को, यानि स्वस्वरूप को वही प्राप्त होंगे, जो इस संसार के विषय वासना रूपी घाट को पार कर जाएंगे । किन्तु "अजहुं बिच ही बाट" कहिए, अभी हम साधन अवस्था में ही क्या कहकर बतलावैं, कि हम अभी स्वस्वरूप को प्राप्त हो गये । अभी तो माया के प्रभाव से सावधान रहना चाहिये । गुरू कृपा से सब काम सिद्ध होंगे ।

दोहा :- कबीर मरेंगे तब कहैंगे, पहुचैंगे उस ठांइ ।
अजहूं भेरा समंद मै, बौलि बिगूचै कांइ ॥१७२॥

दोहा :- तपस्वी सें वेस्यां कहै, ज्वन्जन हो कि जवान ।
त्यागयो तन पूछत भई, मरद मरद परवान ॥१७२॥

दृष्टान्त :- एक तपस्वी जी थे । वह प्रवचन किया करते थे । बहुत से श्रोता आते, एक वैश्या भी उनके प्रवचन में आती थी । वैश्या एक रोज बोली :- आप स्त्री हो कि मरद ? तपस्वी जी बोले :- कभी बतायेंगे । एक रोज तपस्वी जी का अन्त समय आ गया, सभी भक्त लोग दर्शन करने आये । वेश्या भी आई और हाथ जोड़कर प्रार्थना की, कि महाराज मेरे प्रश्न का उत्तर तो नहीं दिया । आप परमधाम जाने को तैयार हो रहे हो । तपस्वी जी बोले :- मरद हैं, मरद हैं मरद हैं, वेश्या बोली :- यह बात तो आप पहले भी कह सकते थे । तपस्वी :- मार्ग में चल रहे थे, तब कैसे कहते । आज मार्ग तय कर लिया, तब मरद बन गये । वेश्या नत मस्तक हो गई । तपस्वी परमेश्वर के स्वरूप में अभेद हो गये ।

(सांच)

सांचा राता सांच सौं, झूठा राता झूठ ।
दादू न्याव निवेरिये, सब साधौं कौं पूछ ॥१७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संतजन, सत्य ब्रह्म में ही रत्त रहते हैं और झूठे संसारीजन, मिथ्या माया का कार्य प्रपंच में ही आसक्त रहते हैं । हे साधक ! संतों के उपदेशों के विचार से ही, सत्य, असत्य का निर्णय करिये और सत्य को अपनाइये ।

(अद्वैत निरूपण)

जे पहुंचे ते कहि गऐ, तिनकी एकै बात ।
सबै सयाने एक मत, उनकी एकै जात ॥१७४॥

टीका :- हे जिज्ञासुग्रो ! जिन मुक्त पुरूषों ने, स्वस्वरूप साक्षात्कार किया है, उन सब की ब्रह्म निर्णय रूप एक ही वार्ता है और ब्रह्म ही जिनका मत है, चेतन्य ही एक जाति है ।

दोहा :- दूध मंगायो बीरबल, कुण्ड भरायो रात ।
रैन सकल जन जल भर्‌यो, लख्यो पातसाह प्रात ॥१७४॥

दृष्टान्त :- एक रोज बादशाह बीरबल को बोले :- बीरबल मूर्ख कौन होते हैं ? बीरबल :- जो चतुर हैं, वही मूर्ख होते हैं। बादशाह :- कैसे ? हुजूर, दिल्ली में जितने चतुर हैं, सबको बुलाइये। सब चतुर आये। उन चतुरों में, सौ चतुर प्रधान निकले। बादशाह ने हुक्म दिया, हमारे बगीचे में जो कुण्ड है, उसमें एक एक घड़ा, सब कोई दूध का लाकर, रात को डालना। यह सुनकर सब चले गये। अपने अपने घर जाकर, प्रत्येक ने विचार किया कि "नीनानवे घड़े जब दूध के डलेंगे और मैं एक पानी का घड़ा डाल आऊं, तो क्या पता लगेगा ? प्रत्येक चतुर का यही विचार हो गया। पानी का घड़ा लिया और कुंड में डालकर चला आया। इसी प्रकार सौ के सौ ही, पानी भर गये। प्रातःकाल बादशाह बीरबल के साथ आकर कुंड में देखा तो पानी भरा है। बादशाह :- बीरबल, यह क्या ? बोला :- देखलो हुजूर, यह चतुरों की चतुरता। आपने तो हुकम दिया दूध का, और वे पानी भर गये। सौ के सौ चतुरों को कुंड पर बुलाया। बादशाह :- यह तुमने क्या किया ? तब सब एक दूसरे के मुंह की तरफ देखने लगे और बोले :- हुजूर ! हमारी चतुरता पर मूर्खता का पत्थर गिर गया। उपरोक्त जो एक ही विचार सबका बन गया था, सबने वही कह दिया। बादशाह :- बीरबल ठीक है। जो चतुर है, वही मूर्ख होता है।

सतगुरू महराज कहते हैं कि "सबै सयाने एक मत"।

जे पहुंचे ते पूछिये, तिनकी एकै बात।
सब साधौं का एक मत, ये बिच के बारह बाट ॥१७५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सभी मुक्त पुरूषों का एक ही सिद्धान्त है, एक ही लक्ष्य है, परन्तु "बिच के" कहिए- मत मतान्तरों के पक्षपाती, परमेश्वर से विमुखी अज्ञानी, बहिरंग साधनों में ही लगे रहते हैं। वे इन्द्रियों के विषयों की आसक्ति में ही, रचे रहते हैं।

सबै सयाने कहि गये, पहुंचे का घर एक।
दादू मार्ग माहीं ले, तिन की बात अनेक ॥१७६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सभी मुक्त पुरूषों का यही आत्म अनुभव है कि ब्रह्म पद अद्वैत ही है, परन्तु साधन अवस्था में चलने वाले उत्तम, मध्यम कनिष्ट भेद से नाना साधन हैं, एवं "मार्ग माहीं ले" कहिए- मायामय संस्कारों के कारण, जिसने स्वस्वरूप को नहीं पहचाना है, ऐसे जन योग यज्ञ, तीर्थ व्रत, देव पूजा, आदि मायावी साधनों में ही भ्रमते रहते हैं।

सूरिज साखी भूत है, सांचा करै, परकास ।
चोर डरै चौरी करै, रैनि तिमिर का नास ॥१७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सूर्य जैसे साक्षी भाव से, सारे संसार को प्रकाशमान करता है, परन्तु स्वयं आप किसी के शुभ अशुभ कर्म बन्धन में नहीं बंधता है । इसी प्रकार साक्षी चेतन्य, कुटस्थ ब्रह्म जीवात्मा को, कहिए आभास बुद्धि को, चेतनता प्रदान करता है और साक्षीभाव से जीव के, शुभ अशुभ संस्कारों का दृष्टा भी है । किन्तु शुभ अशुभ कर्म-बन्धन से आप स्वयं मुक्त है और सतचित् आनन्द स्वरूप है । दृष्टान्त में जैसे रात्रि रूप अंधकार के नाश होने पर, चोर चोरी कार्य करने से डरता है, वैसे ही जीवात्मा के सूक्ष्म संस्कार ही मानो चोर है,सो ब्रह्म प्रकाश होने पर, अविद्या अंधकार के मिट जाने से, फिर चोरी कहिए, विषय प्रवृत्ति से डरता है और मुक्त जनों के पावन संस्कार, ब्रह्ममय हो जाते हैं, फिर सच्चे सतगुरू के उपदेशों से, ब्रह्म प्रकाश होने पर, "रैन तिमर" कहिए - अविद्यारूप रात्रि के भर्म कर्म आदि का नास हो जाता है । फिर चोर तुल्य मायावी वासना वाले गुरू बाचक पंडित, माता पिता, स्त्री आदिक यह सब, निवृत्ति के सत्य उपदेशों से डरते हैं, कि कहीं वैराग्य न हो जाये ।

दोहा :- साधू सूर्यरूप है, मेटत तिमर अज्ञान ।
जगन्नाथ करि लिजीये, नित्य प्रति तिन का ध्यान ॥१७७॥

चोर न भावै चांदणां, जिनि उजीयारा होइ ।
सूते का सब धन हरौं, मुझे न देखै कोइ ॥१७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चोर मायामय सूक्ष्म संस्कार और इन्द्रियों के अर्थ में लगे हुए मन को, आत्मज्ञान रूप प्रकाश अच्छा नहीं लगता । वह चाहता है कि सूते हुए अज्ञानी जीवात्मा का, भक्ति वैराग्य और नरतन के स्वाँस आदि अमूल्य धन को, चुराने की इच्छा से, अविद्या रूप अन्धकार की ही चाहना करता है, अर्थात् अज्ञान ही बना रहै, जिससे अज्ञानीजन माया में ही मोहित रहैं, और मैं इनका सर्वस्व नास कर दूं ।

श्लोक :- लुब्धानाम् याचाका शत्रु, मुर्खाणां बोध को रिपुः ।
जार स्त्रीणां पति: शत्रु, चोराणां चन्द्रमा रिपुः ॥१७८॥

घटि घटि दादू कहि समझावै जैसा करै सो तैसा पावै ।
को काहु का सीरी नाहीं, साहिब देखै सब घटमांहीं ॥१७६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब उपरोक्त सम्पूर्ण कथन का उपसंहार करके, एक साखी से चितावणी का उपदेश करते हैं कि आप अन्तर्यामी प्रभु, सर्व प्राणियों के हृदय की जानते हो । इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता संतजन, पुनः पुनः उपदेश देकर समझाते हैं कि जो जैसा कर्म करेगा, सो वैसा ही फल पावेगा । उत्तम भक्त तो भक्ति द्वारा, प्रभु का दर्शन पावेंगे और संसारी अज्ञानीजन, परमेश्वर से विमुखी, संसार भाव को प्राप्त होंगे । कर्मों के फल में कोई किसी का साझेदार नहीं है । इसलिये सबको निष्काम शुभ कर्म करने चाहिये ।

दोहा :- जैसा करै सो तैसा पावै ।
पूत खसम के सामै आवै ॥

दोहा :- जोगि को गुड़ मंडा भावै ।
जो न पतीजे तो कर देखो, यामै रति मीन नहीं मेखो ॥१७६॥

दृष्टान्त :- एक महात्मा गांव के बाहर तालाब पर रहते थे । उदर पूर्ति को, गांव से भिक्षा लाया करते थे, और उपरोक्त साखी बोलते जाते । एक ईश्वर विमुखी स्त्री थी । उसने सोचा :- मेरा बेटा और पति तो विदेश में हैं । उनके सामने कैसे आवेगा, जो मैं देऊंगी, तो ये ही मरेगा । यह सोचकर उसने हलवा पूरी बनाया, जहर का । और जब महात्मा की आवाज सुनी, तब हलवा पूरी लेकर दरवाजे में आ गई । और महात्मा जी को कहा :- लो महाराज, भिक्षा । संत लेकर, अपने आश्रम पर आ गये । वहां पर पहले एक भक्त भोजन लेकर, बैठा था । वह बोला :- महाराज ! झोली का भोजन तो रहने दो, मेरा पाओ पहले प्रसाद । महात्मा ने भगवान के भोग लगाकर, उस भक्त का प्रसाद पा लिया । अनायास ही उस स्त्री का पति और पुत्र आये, और पहले महात्मा जी के ही दर्शन किये । महात्मा बोले :- भाई ! प्रसाद पाओ । आपके ही घर का है । आज ही माता राम ने झोली दी है । महात्मा जी की आज्ञा से वह पिता पुत्र, भोजन कर लिया और सो गये, और सूते ही रह गये । शाम को महात्मा ने जगाया, तो देखा, मर गये । वह स्त्री पता होने पर आई और फूट फूट कर रोने लगी । जब उसको पूछा, तो वह स्त्री पूर्वोक्त वृतान्त सब सुना दिया । लोगों ने कहा :- अब अपने कर्म का भोग, तूं ही भोग ।

दोहा :- दगा किसी का सगा नहीं है, किया नहीं तो कर देखो रे भाई ।
चिट्ठी तो भटजी की उतरी, नाक कटायो नाई ॥१७६॥

दृष्टान्त :- एक राजा के यहां पंडित रोज कथा सुनाने जाता । राजा का नाई पंडित को बोलता :- महाराज ! कभी मुझ पर भी दया करना । एक दिन ब्राह्मण बोला :- अरे ! क्या दया चाहता है ? नाई :- महाराज ! आप ही रोज दो मोहर ले जाते हो, कभी एक मोहर मुझे भी दे दिया करो, मैं भी राजा का नाई हूं, सेवा करता हूं । ब्राह्मण बोला :- इसमें तेरा क्या अधिकार है ? हम कथा करते हैं । नाई :- अच्छा महाराज ! नाराज नही होना । नाई :- राजा की मालिश करता करता, हंसने लगा । राजा :- क्यों हंसता है ? नाई :। अन्नाता ! जो ब्राह्मण कथा करने आता है, वह बोला :- 'क्या करै भाई ! नाई ! दो मोहर के लालच से राजा को कथा सुनाते हैं, नहीं हम तो उसका मुख भी न देखैं । राजा शराब का प्याला पीकर हमारे सामने बैठता है ।" राजा :- इसमें प्रमाण क्या है ? नाई :- हुजूर ! वह कल मुंह के पट्टी बांधकर आवेगा । राजा ने कहा :-ठीक है । राजा ने मन में सोचा कि ब्राह्मण को पता है, हमारे बीमारी लगी है और डाक्टर ने एक शराब का प्याला, दवाई रूप में बता रखा है । फिर ब्राह्मण यह बात कैसे बोला ? रात को नाई , ब्राह्मण के घर पहुंचा और चरणों में नमस्कार किया । ओर बोला :- महाराज ! राजा साहब का संदेश लेकर आया हूं । क्या ? राजा साहब बोले हैं कि हम थोड़ी शराब लेते हैं, फिर कथा सुनने बैठते हैं, ब्राह्मण को जरूर हमारे मुख के अणु स्पर्श करते होंगें । तूं जाकर बोलना कि आज राजा साहब को यह विचार हुआ है । सो आप अपने मुंह के पट्टी लगाकर, कथा बाचने आवैं । ब्राह्मण :- भाई ! वह तो अन्नाता हैं और वह शराबी नहीं है, उनके बीमारी है, वे दवारूप में लेते हैं । नाई :-नहीं महाराज ! राज की आज्ञा जरूर मानना, क्योंकि आपने सुना होगा :-

दोहा :- राजा जोगी अग्नि जल, इनकी उलटी रीत ।
डरते रहिये परस राम, थोड़ी पालैं प्रीत ॥

महाराज ! कभी दूसरे को कथा बांचने बुलवा लें तो, आपकी रोजी बन्द हो जाएगी । इसलिए राजा की आज्ञा मानना ही ठीक है । सुनो :-

दोहा :- राजा जोगी अग्नि जल, इनकी सुलटी रीत ।
जो इनकी आज्ञा मै रहै, अधिका पालैं प्रीत ॥

ब्राह्मण बोले :- अच्छा भाई ! फिर मैं ऐसा करके आऊंगा । नाई मन में बहुत खुश हुआ और सोचा कि ब्राह्मण की रांध काट दी । सवेरे ब्राह्मण मुंह के पट्टी बांधकर, कथा करने चला । नाई देखते ही खुश हो गया । राजा दूर से ब्राह्मण को देखकर, क्रोधित हो गया । ब्राह्मण ने कथा सुनाई और राजा ने एक

चिट्ठी लिखकर, लिफाफे में बन्द करके, कथा पर चढ़ा दी, और बोला :- खजाने से लेना । ब्राह्मण चिट्ठी लेकर चलने लगा, नाई ने सामने आकर हाथ जोड़े, महाराज ! कभी दया करो । ब्राह्मण ने देखा, यह रोज पीछे पड़ता है, आज की भेट इसी को दे दें । बोला :- येह लै, जा लिया । नाई चिट्ठी लेकर खजानची के पास पहुंचा और चिट्ठी दी । खजानची ने खोलकर पढ़ी और बोला :- इधर आ । नाई ने झट पल्ला पसारा । खजानची ने चक्कू से नाई की नाक काटकर, पल्ले में डाल दी । नाई बोला :- यह क्या ? बोला :- यही लिखा है इसमें, कि आते ही नाक काट लेना । नाई खून पूंछता हुआ, नाक कटाकर घर आ गया । राजा ने नाई का नाक कटा देखा । पूछा :- "यह क्या हुआ ? तेरा किसने नाक काटा ?" उपरोक्त सब वृतान्त नाई ने सुना दिया । राजा हंसने लगा । ब्राह्मण को दूसरे दिन राजा ने चार मोहर दे दी ।

(इति सांच का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

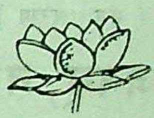

॥ अथ भेष का अंग १४ ॥

"एक राम छाडै नहीं, छाडै सकल विकार०"—इस सूत्र से व्याख्यान स्वरूप, अब सांच के अंग के अनन्तर, भेष के अंग का निरूपण करेंगे। भेष दो प्रकार के हैं, एक तो आत्माअर्थी और दूसरा इन्द्रिया अर्थी। उसमें इन्द्रियार्थी का निषेध और आत्माअर्थी भेष के प्रतिपादन में, प्रस्तुत अंग का तात्पर्य है।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- निरंजनदेव गुरू संतों को बारम्बार बन्दना है। जिनकी कृपा से जिज्ञासुजन स्वागं पंथ आदि के पक्षा पक्ष से पार होकर, सत्य साधु स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

(पतिव्रत निष्काम)

दादू बूड़ै ज्ञान सब, चतुराई जलि जाइ ।
अंजन मंजन फूकि दे, रहै राम ल्यौ लाइ ॥१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो ज्ञान का अभिमान करते हैं, वे सब संसार समुद्र में ही डूबैगें और माया की चतुरता, अंजन—श्रृंगार, मंजन—पवित्रता, स्वांग—भेष, आचार-विचार भी निष्फल है। इन सब को फूंक दे, जला दे, त्याग दे और राम स्मरण में ही स्थिर रहो। इसी से कल्याण है, अन्यथा यह सब संसार समुद्र में डुबोवेंगे।

राम बिना सब फिका लागै, करणि कथा गियान ।
सकल अबिरथा कोटि करि, दादू जोग धियान ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब उपरोक्त वार्ता को ही स्पष्ट करते हैं कि निष्काम राम की अनन्य भक्ति के बिना, लोक मर्यादा, कथा अन्य देवताओं की या सकाम कर्मों की, बाचक ज्ञान, नाना प्रकार के करोड़ो बहिरंग साधन व्यर्थ हैं । जोग अर्थात् हठयोग, सकाम ध्यान, यह सभी व्यर्थ हैं, राम के पतिव्रत रूप भेष के बिना । इसलिए हे साधक ! इन सबको त्याग कर, केवल एक राम नाम स्मरण में ही दत्तचित्त हो जा । लोग दिखावे के साधनों से कल्याण नहीं होता है ।

ज्ञानी पंडित बहुत हैं, दाता सूर अनेक ।
दादू भेख अनन्त हैं, लागि रह्या सो एक ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! दिखावे के ज्ञानी, नाम बराये पंडित, तमोगुणी या रजोगुणी दाता, सूर कहिये घर में शूर वीर, ऐसे अनेकों हैं । इसी प्रकार स्वांग धारियों का तो कोई पार ही नहीं है ? परन्तु निष्काम भाव से प्रभु का पतिव्रत धर्म धारण करने वाले भेषधारी मुक्तजन, तो कोई बिरले ही होते हैं । अपना अपनी भावना अनुसार भक्तों के चिन्ह तो अनेक बनाते हैं, किन्तु उपास्य देव तो अद्वैत ब्रह्म, एक रस, सजातिये विजातिये, स्वगत-भेद रहित, एक ही है ।

(आत्मार्थी इद्रियार्थी भेष)

कोरा कलस अवाह का, उपरि चित्र अनेक ।
क्या कीजै दादू वस्त बिन, ऐसे नाना भेख ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कुम्हार की भट्टी का कोरा घड़ा, अनेक चित्रदार भी हो, किन्तु वस्तु बिना व्यर्थ है । इसी प्रकार भक्ति रूप वस्तु के बिना, केवल भेष बाना धारण किये हुए, देखने मात्र के ही हैं । उनसे न तो स्वयं का कल्याण होता है और न जन समुदाय का ही कुछ कल्याण करते हैं । वह केवल भार रूप ही हैं ।

बाहरि दादू भेख बिन, भीतरि वस्त अगाध ।
सो ले हिरदै राखिये, दादू सनमुख साध ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर तो जिनका भेष बाना आदि चिन्ह से रहित है और भीतर अन्तःकरण ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, से परिपूर्ण है, अर्थात् प्रभु की लय में मन स्थिर हो रहा है । ऐसे मुक्त पुरूषों की आज्ञा में कहिए, उनके उपदेश में, साधक पुरूषों को स्थिर रहना चाहिए । तब ही उनका कल्याण है

दादू भांडा भरि धरि वस्तु सों, ज्यों महिगें मोलि बिकाइ ।
खाली भांडा वस्तु बिन, कोडी बदलै जाइ ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे बर्तन वस्तु से भर कर रखै, तो वह मिट्टी का भांडा भी महंगे मोल से, वस्तु के साथ बिक जाता है और खाली मिट्टी का घड़ा कौड़ियों में आ जाता है । दाराष्टान्त में शरीर रूपी बर्तन, राम नाम वस्तु से भरा हुआ या ज्ञान, ध्यान, भक्ति, वैराग्य, आदि वस्तु से पूर्ण होवे, वह शरीर संसार में अर्थात् जन समुदाय में महगें मोल कहिए, तन, मन, धन बाणो अर्पण करके भो, लोग उसको अपनाते हैं, और बिना वस्तु के जन समुदाय में, उसका कोई महत्व नहीं है ।

दादू कनक कलस बिष सूं भर्या, सो आवै किस काम ।
सो धन कूटा चाम का, जामैं अमृत राम ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सोने का कलस और उसमें संखिया अर्थात् जहर भरा है, वह जन समुदाय के उपयोग में तो नहीं आ सकता है और जो कुटा हुआ चमड़े का कुप्पा है, उसमें अमृत भरा हो, उसे धन्य है । उसमें से जो भी अमृत पान करेगा, वही अमर हो जायेगा । इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, आदि के घर में जन्म लेना ही सोने के कलस के समान है । परन्तु उसमें विषय वासनारूपी अथवा पापरूपी जहर भरा है, तो वह जन्म किस काम का ! जनसमुदाय का कल्याण तो नहीं कर सकता है । जो चमड़े के काम करने वाले चमार आदि हरिजनों के कुल में जन्म लेकर, भक्ति अमृत एव जन समुदाय की सेवा रूपी अमृत का भाव जिसमें भरा है । उसको धन्य है, वही ईश्वर का सच्चा भक्त है ।उसी से राष्ट्र का कल्याण होगा ।

दादू देखै वस्तु को, बासन देखै नांहि ।
दादू भीतरि भरि धर्या, सो मेरे मन मांहि ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तत्ववेत्ता पुरूष तो वस्तु को देखते हैं । 'बासन' कहिए- वर्ण आश्रम के शरीर को नहीं देखते । जिस शरीर में ब्रह्मानन्द रूपी वस्तु भरी है, उसी को, हम कहिये—विवेकी पुरूप, आदर और सन्मान देते हैं । वह भक्त और जनसमुदाय की सेवा करने वाला सेवक, हमारे मन में बसता है । वही परमेश्वर को प्रिय है ।

दादू जे तुं समझै तो कहूं, सांचा एक अलेख ।
डाल पान तजि मूल गहि, क्या दिखलावै भेख ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यदि यथार्थ में आतम स्वरूप का बोध चाहते हो तो, डाल पान रूप बहिरंग साधन और सकाम कर्म, इन सबको छोड़कर, केवल कारण ब्रह्म की ही उपासना करिये, क्योंकि वह सम्पूर्ण शरीरों में अन्तर्यामी रूप से स्थिर हो रहे हैं । उसी को अस्थावर जंगम सृष्टि में व्याप्त रूप से देखो । बाहरी आडम्बर क्या दिखलाते हो ? वह ब्रह्म, सत्य अद्वैत और अलेख है । श्रद्धा से उसी का स्मरण करो ।

दादू सब दिखलावैं आप कूं, नाना भेख बणाइ ।
जहं आपा मेटन हरि भजन, तिहिं दिसि कोइ न जाइ ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानीजन अपने अंग पर नाना प्रकार का भेष बाना धारण करके और जन समुदाय के सामने, अपनी मान प्रतिष्ठा कराने के लिये, तत्पर रहते हैं, । जहां यह अनात्मा शरीर का, जाति पाति का, भेख बाने का, लेशमात्र भी नहीं है, वह हरि की भक्तिरूपी सच्चा मार्ग है । उस रास्ते पर तो कोई भी नहीं जाते हैं ।

सो दसा कतहूं रही, जिहिं दिसि पहुंचे साध ।
मैं तैं मुरिख गहि रहे, लोभ बड़ाई बाद ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो सच्चे संत, जीवन मुक्त, पक्षपात रहित, ब्रह्मभाव को प्राप्त हो गये हैं, उस अवस्था को नकली भेखधारी, खैंचा तानी वाले साधु नहीं पहुंच पाते, क्योंकि वह तो सम्प्रदायिक आम्डबर दिखाने में लोभ, बड़ाई, मान प्रतिष्ठा आदि में ही आसक्त रहते हैं ।

दादू भेख बहूत संसार में, हरिजन बिरला कोइ ।
हरिजन रात्ता राम सूँ, दादू एकै होइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसार में भेखधारी, मत मतान्तरों वाले अधिक हैं, और सच्चे प्रभु के प्यारे संत भक्त बहुत कम हैं । राम के स्मरण में रत्त रहने वाले, पुरुष ही ब्रह्मरूप होते है । ऐसे संत भक्त, वह सब एक ही रूप हैं । उनमें भेख और जातित्व, ऊंच नीच का भेद भाव नहीं होता है । वह सबमें अन्तर्यामी का ही दर्शन करते हैं ।

हीरे रीझें जौहरी, खलि रीझै संसार।
स्वाँगों साधु बहु अन्तरा, दादू सत्य विचार ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हीरे को देखकर जौहरी प्रसन्न होता है और जान लेता है कि आज मेरी दरिद्रता दूर हो गई, और चिकने पत्थर को देखकर, संसारी पुरूष रीझते हैं। इसी प्रकार तत्ववेता पुरूष अद्वैत नाम स्मरण रूप हीरे पर रीझते हैं और बिषइ पामर संसारिक मनुष्य, नाम रूप संसार पर रीझते हैं। सतगुरू देव कहते हैं कि हे साधक ! भेखधारी सम्प्रदायिक लोग मतवादी, मत मतान्तरों में फंसे हुए और मुक्त ब्रह्मवेत्ता संत, इनमें बहुत अन्तर है। यह हमारा सत्य विचार है।

स्वांगी साधु बहु अन्तरा, जेता धरणी आकास।
साधु राता राम सुँ, स्वांगी जगत की आस ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भेखधारी सम्प्रदायिक लोगों में और निरपक्ष ब्रह्मवेत्ता पुरूषों में बहुत फर्क है। अर्थात् स्वांगी कहिये, सम्प्रदायिक लोग तो धरती रूप आपा अभिमान कठोरता आदि दुर्गुणों युक्त होते हैं और तत्ववेत्ता मुक्त पुरूष, आकास की भांति निर्मल और स्वच्छ रहते हैं और सबको अवकास देते हैं अर्थात् अपने आपमें सबको समाये रखते हैं। हे साधक ! मुक्त पुरूष तो सदैव निर्गुण राम में राते रत्त और माते मस्त रहते हैं और स्वांगी भेषधारी नाना प्रकार की वासना और विकारों में लिपे हुए, जगत की आश लगाकर दर दर भटकते रहते हैं।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधू बिरला कोइ।
जैसे चन्दन बावना, बनि बनि कहीं न होइ ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सारा संसार स्वांगी है अर्थात् स्वांग धारण करने वाला है। इन स्वांगियों में, साधु कोई बिरले पुरूष ही हैं। साधन सम्पन्न पुरूष का नाम साधु है। जैसे मलियागिरी चन्दन सारे ही बन में नहीं होता है, कहीं शीतल प्रदेशों में मिलता है। और तो नाना प्रकार के वृक्ष जंगल में होते हैं, परन्तु चन्दन का होना कठिन है। जिस जगह चन्दन होगा, उस सम्पूर्ण जंगल में चन्दन की महक अर्थात् सुगन्धी व्याप्त रहती है, इसी प्रकार जहां मुक्त पुरूष निवास करते हैं, उनके आस पास के वृक्ष रूप पुरूषों में भी उनके गुण शीतलता सुगन्धी युक्त, ज्ञान भक्ति आदि देखने में आते हैं, परन्तु बांस, आक अरन्ड जैसे, श्रद्धा रहित पामर, उनमें वह सुग्न्धि नहीं रूकती है। अर्थात् वह उन चन्दन रूप महापुरूषों के गुणों को नहीं ग्रहण करते।

दादू स्वागीं सब संसार है, साधु कोई एक ।
हीरा दूरि दिसन्तरा, कंकर और अनेक ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सारा संसार स्वांग बनाने वाला है, उन स्वांगियों में साधु कहिए सज्जन, देवी सम्पदा के गुणों युक्त, कोई एक आध देखने में आता है । हीरा जो है, वह दूर देशों में अर्थात् समुद्र की खाड़ी में भाग्य से प्राप्त होता है । चिकने पत्थर अनेकों मिल जाते हैं परन्तु उन पत्थरों से जो हीरे से काम होता है, वह उनसे सिद्ध नहीं होता ।

दादू स्वांगी सब संसार है, साधू सोधि सुजाण ।
पारस परदे सौं भया, दादू बहुत परवाण ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसार में स्वांगी, भेखधारी बहुत हैं, परन्तु उनसे इस लोक और परलोक का कोई काम सिद्ध नहीं होता, इसलिए हे सुजान ! इन स्वांगियों में साधू को विचार पूर्वक ढूंढ । क्योंकि पारस दूर देशों में कहीं भाग्य से प्राप्त होता है और काले पत्थर के टुकड़े बहुत मिल जाते हैं । परन्तु वह कंचन नहीं बना सकते । पारस कंचन बना देता है जिससे दरिद्रता नष्ट हो जाती है । और भी पारस के बहुत गुण होते हैं । ऐसे ही पारस रूप जो मुक्त पुरुष हैं, वह साधक को अपने स्वरूप ही बना लेता हैं । जैसे उत्तम पारस से, पारस ही बन जाता है, ऐसे ही ब्रह्मवेत्ताओं के संग से ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है ।

दादू स्वांगी सब संसार है, साध समन्दा पार ।
अनल पंखी कहं पाइये, पंखी कोटि हजार ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्वांगी लोग संसार में ही रत्त रहते हैं, किन्तु सच्चे संतजन संसार समुद्र से मुक्त हो गये है । अनल पक्षी का प्राप्त होना कठिन है, क्योंकि वह आकाश में विचरता है, ऐसे ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष भी ब्रह्मी अवस्था रूप ऊंची दिसा में गमन करते हैं । और पक्षियों की तरह भेखधारी तो बहुत मिलते हैं, परन्तु उनसे साधक पुरूषों का उद्धार नहीं होता है ।

दादू चन्दन बन नहीं, सूरन के दल नांहि ।
सकल समन्दि हीरा नहीं, त्यौं साधु जग मांहि ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चन्दन के बन नहीं मिलते हैं, ऐसे ही सम्पूर्ण सेना सूरवीर नहीं होती है । और सारे समुद्र में हीरे नहीं मिलते, ऐसे ही सम्पूर्ण संसार में सारे ही भेखधारी साधू नहीं होते हैं । परन्तु वन

में ही चंदन मिलता हैं, ऐसे सेना में ही सूरवीर होता है। जिस प्रकार समुद्र में हीरा होता है, इसी प्रकार भेख धारियों में कोई साधु भी मिलता है।

जे सांई का व्है रहै, सांई तिसका होइ।
दादू दूजी बात सब, भेख न पावै कोइ ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो संत भक्त अपने अनात्म अहंकार को परमेश्वर के अर्पण करके, अनन्य भाव से परमेश्वर की भक्ति करके, परमेश्वर के बन गये हैं, वे अन्तर्यामी परमेश्वर, फिर उन भक्तों का, निज स्वरूप होकर ही, उनको भान होने लगता है। और केवल भेख धारण करने से ही प्रभु की प्राप्ति नहीं होती।

दादू स्वांग सगाई कुछ नहीं, राम सगाई साँच।
दाद~~साधू~~ नाता नांव का, दूजै अंगि न राच ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो भेख से ही नाता जोड़ै, वह नाता कुछ नहीं, उनका जीवन निष्फल है। और जो सच्चे संतजन, राम से अनन्य होकर रहते हैं, वही अविनाशी स्वरूप होते हैं। इसलिये साधक पुरूषों को राम नाम के स्मरण से ही नाता जोड़ना चाहिये, माया और माया का कार्य संसार, इसके रंग में आसक्त नहीं होना चाहिये।

दादू एकै आत्मा, साहिब है सब मांहि।
साहिब कै नाते मिले, भेख पंथ कै नाँहि ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आत्म दृष्टि से सम्पूर्ण शरीरों में सब जीव एक ही रूप है, क्योंकि सबमें एक ही परमेश्वर, साक्षीरूप से निवास करता है। इसलिये सम्पूर्ण प्राणीमात्र से, एक प्रेम का व्यवहार बरतिये। स्वांग के सम्बन्ध से, किसी से भी व्यवहार नहीं करना।

दादू माला तिलक सुं कुछ नहीं, काहु सेती काम।
अन्तरि मेरे एक है, अहि निसि उसका नाम ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे ब्रह्मवेत्ता संतों को माला तिलक अन्य सम्प्रदायिक चिन्ह, देवी देवता इनसे कोई मतलब नहीं रहता है। वह तो केवल ब्रह्मी अवस्था में ही, मस्त रहते हैं। भेखधारी लोग संसार में ही आसक्त रहते हैं।

दोहा :- तुलसी माला तिलक बनाय कर, भक्ति न आई हाथ।
दाढी मूछ मुंडाय कर, चला दुनि के साथ ॥२४॥

दोहा :- दाढी मूछ मुंडायकर, हुआ जो घोटम घोट।
मन को क्यूं नहीं मुंडिये, जा मै भरिया खोट ॥२४॥

(अमिट पाप प्रचण्ड)

भक्त भेख धरि मिथ्या बोलै, निंदा पर अपबाद।
सांचे को झूठा कहै, लागै बहु अपराध ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो भक्त होकर, भेख धारण करके, झूठ बोलता है, निन्दा करता है, दूसरों का अपमान करता है, सच्चे पुरूषों को झूठा बतलाता है, उस पुरूष को, 'भारी अपराध कहिए-अमिट पाप लगता है। अर्थात् उसका फल, जन्म जन्मान्तरों में वह, दुख भोगता रहता है।

दादू कबहुं कोई जिन मिलै, भक्त भेख सूं जाइ।
जीव जन्म का नाश है, कहै अमृत विष खाइ ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ऐसे नकली भक्त और भेखधारी साधुओं से जाकर नहीं मिलना, क्योंकि वह कहते तो अमृत हैं परन्तु खाते हैं, हलाहल विष को। अर्थात् संसार के, नाना प्रकार के, भोग वासनाओं का उपभोग करते हैं। उनसे साधक का कल्याण होना असम्भव है।

दो दो बात न बनी है याना।
इन्द्री पोख और बैकुण्ठ को जाना ॥

(चित कपटी)

दादू पहुंचे पूत बटाऊं होइ करि, नट ज्यूं काछा भेख।
खबर न पाई खोज की, हमको मिल्या अलेख ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भेखधारी साधुजन, राम के पूत, साधु नाम धराकर, वह कपूत नट की भांति, भेख बाना बनाकर, बटाऊ विरक्त होकर, ग्राम ग्राम में भरमते हैं और परमेश्वर के खोज कहिए—ज्ञान, भक्ति, वैराग्य को तो कभी जानते ही नहीं हैं । लोगों को बहकाते हैं कि हमको तो 'अलेख' कहिए परमेश्वर सदा ही प्राप्त है ।

दोहा :- तन को योगी सब करै, मन को करै न कोइ ।
जो योगी मन को करै, तो सब सिद्ध कारज होइ ॥२७॥

दादू माया कारणि मूंड मूंडाया, यहु तौ जोगन होइ ।
पारब्रह्म सूं परचा नांहीं, कपटि न सीझै कोइ ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसने माया इकट्ठी करने के लिये ही भेष धारण किया है, उनका योग सफल नहीं है, क्योंकि स्वस्वरूप के बोध बिना, केवल भेख धारण करने से, अज्ञानीजनों की कदापि मोक्ष नहीं होगी ।

पीव न पावै बावरी, रचि रचि करै सिंगार ।
दादू फिरि फिरि जगत सूं, करैगी बिभचार ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह बावरी विषय आसक्त जीवात्मा, रच रच कर कहिए, इच्छा अनुसार, कोई तो लाल झक कपड़े धारण करें कोई जटा जूट, कोई कन्ठी माला, कोई त्रिपुंड, कोई खड़े तिलक इत्यादिक रूचि पूर्वक, बाह्य श्रृंगार कहिए भेख बनाकर संसार से प्रीति करके, इन्द्रियों के विषय वासना रूपी सुख का ही उपभोग करती है । उसको प्रीतम प्यारे परमात्मा का साक्षात्कार होना असम्भव है । वह तो बारबार जन्म मरण को ही प्राप्त होवेगी ।

प्रेम प्रीति सनेह बिन, सब झूठे सिंगार ।
दादू आतम रत नहीं, क्यूँ मानै भरतार ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसका पति में प्रेम नहीं, पति सेवा में प्रीति नहीं, पति के साथ स्नेह नहीं, और फिर वह स्त्री अनेक प्रकार से अपना हार श्रृंगार करती है, उसका श्रृंगार सब मिथ्या है । उसकी

"आत्मा" कहिए बुद्धि, पति से तन्मय नहीं है, तो उसके श्रृंगार को पति क्यों मानेगा ? इसी प्रकार नकली भेखधारी परमात्मा रूपी पति से, जिनका न तो प्रेम है, न प्रीति है, न स्नेह है, उसका भेख बाना धारण करना, सब मिथ्या है । उसकी आत्मा, परमात्मा रूपी पति से ओत प्रोत नहीं है । उसके भेख बाने का परमेश्वर आदर नहीं करते हैं ।

दादू जग दिखलावै बावरी, षोडस करै सिंगार।
तंह न संवारे आप कूं, जंह भीतर भरतार ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बहिर्मुख विषयों में आसक्ति रखने वाली स्त्री, संसार को दिखाने के लिये, अपना सोलह श्रृंगार करती है और पति से विमुख रहती है, वह पति का पतिव्रत धर्म रूप सुहाग नहीं प्राप्त कर सकती । इसी प्रकार भेखधारी, नाना प्रकार से नकली भेख बाना बनाकर, संसार में अपना आपा प्रगट करके दिखाते हैं, परन्तु अन्तःकरण में अपने आपको नहीं संवारते हैं, अर्थात् अपने स्वरूप को नही पहचानते हैं, ऐसे पुरूषों को परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता है ।

(इन्द्रीयार्थी भेख)

सुध बुध जीव धिजाइ करि, माला संकल बाहि ।
दादू माया ज्ञान सूं, स्वामी बैठा खाइ ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भेखधारी नकली इन्द्रिये आरामी, परमेश्वर से विमुखी, संसार में भोले भाले प्राणियों को, कन्ठी माला तिलक या अन्य कोई सम्प्रदायिक चिन्ह देकर, भूलावे में डालते हैं और स्वामी गुरू बनकर, उनसे मायिक पदार्थों को लेते रहते हैं । सत्य वस्तु का ज्ञान नहीं देते हैं । अर्थात् वह सत्य स्वरूप परमेश्वर से विमुखी, मिथ्या ज्ञान देकर ही, द्वैतवाद में जीवों को उलझाते हैं ।

जोगी जंगम सेवड़े, बोध सन्यासी सेख ।
खट दरसन दादू राम बिन, सबै कपट के भेख ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जोगी कनफटे, जंगम, सेवड़े, बोध सन्यासी, सेख यह छः दर्शन, राम की भक्ति के बिना, सभी कपट के भेष हैं और राम की भक्ति जिनमें है, वह सभी सयाने विवेकी पुरुष हैं ।

दादू सेख मसाइक ओलिया, पैगम्बर सब पीर ।
दरसन सूं परसन नहीं, अजहूं वैली तीर ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सेख है, मसाइक है, ओलिया है, पैगम्बर है, पीर है, इनके दर्शन से कहिए नकली भेख बाना से, परमात्मा प्रसन्न नहीं होता । संसार के प्राणी, इससे आर्कषित हो जाते हैं । परन्तु वह संसार समुद्र में ही डूबते हैं, संसार से पार नहीं होने पाते ।

दादू नाना भेख बनाइ करि, आपा देखि दिखाइ ।
दादू दूजा दूरि कर, साहिब सूं ल्यौं लाइ ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! नाना प्रकार के ऊपरी भेख की बनावट बनाकर, कपने आपे को आप देखते हैं, और संसारिक प्राणियों को दिखाते हैं । हे भेखधारियों ! इस द्वैतभाव को दिल से दूर कर । और साहिब, परमात्मा से, लय वृत्ति द्वारा, लीन हो जाओ ।

दादू देखा देखि लोक सब, केते आंवै जांहि ।
राम सनेही ना मिलै, जे निज देखैं मांहि ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ऐसे तो बहुत मिलते हैं, जो देखा देखी भेख बाना धारण करके, कितने ही संसार चक्र में आते हैं और कितने ही जाते हैं । परन्तु इनने राम के सच्चे प्रेमी मुक्त पुरुष, अपने हृदय में राम को साक्षात्कार देखने वाले, हमको नहीं मिले । इनमें उनका मिलना ही कठिन है ।

दादू सब देखैं अस्थूल को, यहु ऐसा आकार ।
सुक्षम सह जन सूझई, निराकार निरधार ॥३७॥

टींका :- हे जिज्ञासुओ ! सब संसारीजन स्थूल स्वांग और आकार को ही देखते हैं, किन्तु परमेश्वर का सूक्ष्म स्वरूप, किसी को भी नहीं सूझता है, क्योकि वह निराकार और निराधार है । अथवा व्यवहार में स्थूल आकार कहिए-पंच भौतिक शरीर तो, सच्चे संतों का और भेखधारियों का एकसा ही प्रतीत होता है । परन्तु जो 'सहज' कहिए- स्वभाव से ही निर्द्वन्द, सम्पूर्ण विकारों से, जिनका अन्तःकरण रहित हो गया, उनकी वृत्ति निराकार, निराधार परमेश्वर में, सूक्ष्म लै द्वारा, स्थिर हो गई है । वह किसी भी बहिरंग पुरूष को भान नहीं होती है ।

दादू बाहिर का सब देखिये, भीतर लख्या न जाइ ।
बाहिर दिखावा लोक का, भीतर राम दिखाइ ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बाहर के भेष भूषा को तो सब संसारीजन देखते हैं, परन्तु बाहर के देखने वालों से, भीतर की धारणा नहीं देखी जाती । भीतर की धारणा तो, भगवान ही देखते हैं, अर्थात् सच्चे संत भीतर की धारणा, शील संतोष दया धर्म, ज्ञान भक्ति, वैराग्य, आदि को, भीतर राम को ही दिखाते हैं ।

दादू यहु परिख सराफी ऊपली, भीतर की यहु नांहि ।
अन्तर की जानै नहीं, ताथैं खोटा खांहि ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसार के अज्ञानी प्राणी, ऊपर भेख बाना की 'सराफी' नाम-पहचान करते हैं, परन्तु उन प्राणियों की कसौटी, सत्य असत्य की परीक्षा, बाहरी लोक दिखावे की है । स्वांग देखकर ही संसारी प्राणी रीझते हैं ओर अन्तःकरण की वार्ता को नहीं जानते हैं । इसी से संसारीजन, सकाम कर्मों में भटकते हैं और दुख पाते हैं ।

छन्द :-

आसण मार संवार जटा नख, उज्जल अंग विभूति रमाई ।
यह हमकूँ कछु देई दया करि, घेर रहे बहु लोग लुगाइ ।
कोउक उत्तम भोजन ल्यावत, कौउक ल्यावत पान मिठाई ।
सुन्दर लेकर जात भयो सब, मूर्ख लोगन या सिद्धि पाई ॥३९॥

(इन्द्रीयार्थी भेख)

दादू झूठा राता झूठ सौं, सांचा राता सांच ।
एता अंध न जानहीं, कहं कंचन कहं काच ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गर्भवास के कौल करार परमेश्वर से भूठे, ऐसे पुरूष भूठे संसार के मिथ्या कार बार में ही रात दिन रत्त रहते हैं । और सच्चे भक्तजन, परमेश्वर के कौल करार को पूरा करने वाले, सत्य स्वरूप परमात्मा के निष्काम नाम स्मरण में ही, अन्तःकरण में रत्त रहते हैं । परन्तु अविवेकी लोग यह नहीं समझते है कि, कहां तो कंचन रूप सच्चे संत और और कहां भेखधारी काच के टूकड़े । इनकी समानता कैसे हो सकती है ?

दादू सच बिन सांई ना मिलै, भावै भेख बनाइ।
भावै करवत उरधमुखि, भावै तीरथ जाइ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तन से, मन से, वचन से, सत्य का आचरण किये बिना, सत्य स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति, नहीं होगी। चाहे कितने ही भेष भूषा धारण करले, अर्थात् काशी में जाकर काशी करवत ले ले, चाहे चार धाम और चौरासी तीर्थ कर ले, फिर भी निष्काम परमेश्वर के नाम स्मरण किये बिना, परमेश्वर की प्राप्ति असम्भव है।

दादू सांचा हरि का नाम है, सो लै हिरदै राखि।
पाखंड प्रपंच दूरि करि, सब साधौं की साखि॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मिथ्या संसार में हरि का नाम ही एक सत्य है। और माया का कार्य प्रपंच तो, सम्पूर्ण परिवर्तनशील है। उसी हरि के नाम को धारण कर। तन का पाखंड भेष भूषा आदि और बाणी का प्रपंच झूठ कपट, यह सब त्यागने योग्य है। इसमें सभी संतों का प्रमाण है।

(आपा निर्दोष)

हिरदै की हरि लेइगा, अंतरजामी राइ।
सांच पियारे राम को, कोटिक करि दिखलाइ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह हरि अन्तर्यामी परमेश्वर, सबके अन्तःकरण के भाव को जानते हैं। राम को तो, सच्चे भक्त ही प्रिय हैं, चाहे कोई करोड़ों ऊपरी आडम्बर बनाकर दिखावै, उसको राम नहीं देखते, अर्थात् ऊपर के व्यवहार को राम नहीं अपनाते, किन्तु वह तो सब निष्फल है।

दादू मुख को ना गहै, हिरदै की हरि लेइ।
अन्तर सूधा एक सौं, तौ बोल्यां दोष न देइ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह सत्य स्वरूप परमेश्वर, मुख के व्यवहार को नहीं ग्रहण करते। वह पापों के हरता हरि, अन्तःकरण के भाव को लेते हैं। जो अन्तःकरण एक हरि के निष्काम नाम स्मरण से शुद्ध है, तो मुंह से चाहे कुछ भी बोलो, उसको दोष नहीं लगता।

दोहा :- संत दोइ इकठौर थे, इक कपटि इक शुध ।
शुध राम को गालि दे, कपटी अस्तुति अबुध ॥४४॥

दृष्टान्त :- एक संत पीपल के वृक्ष के नीचे बैठे थे। दूसरे समीप में ही ईमली के वृक्ष के नीचे बैठे थे। ईमली के वृक्ष के नीचे बैठने वाले खुब सुन्दर मृगछाला बिछाये हुए, हाथ में माला लेकर, परमेश्वर का नाम स्मरण करते। परन्तु अन्तःकरण में स्वर्ग बैकुण्ठ आदि की बासना को लिए हुए थे। दूसरा पीपल के वृक्ष के नीचे, विरही भक्त राम को गाली देता था। नारद जी एक समय मृत लोक में घूमते हुए, उधर आ गये, जिधर दोनों संत तप कर रहे थे। ईमली के वृक्ष वाले संत को आकर नमस्कार किया और अपना परिचय दिया कुछ समाचार हों तो मुझे बताइये, मैं भगवान के पास जा रहा हूं। संत बोला :- "भगवान को बोल देना कि अब आप का कोई ऐसान मेरे पर नहीं है क्योंकि माला के मणियां घुमाते घुमाते तो ऊंगलियों के पोरवे घिस गये और बैठे बैठे खून सूक गया, बोलते बोलते बाणी शुष्क हो रही है। इस तप का फल मुझे जल्दी ही अब, बैकुण्ठ में बुलाकर, मेरे लिए सब प्रकार के वहां भोग तैयार रखें, यह कह देना। नारद बोले :- जरूर कहूंगा। पीपल के वृक्ष वाले के पास गये और नसस्कार किया। वह भगवान को गालियां दे रहा था। नारद सुनकर चकित हो गये। और बोले :- महात्मा जी ! कोई भगवान के पास समाचार भेजने हैं, तो मुझे मुझे कहिये। महातमा बोला :- तुम कौन हो ? मैं नारद। महात्मा बोले :- नारद जी, आप जानते हो कि गाली देना, बड़ा अपराध है। साधरण मनुष्य को भी अगर कोई गाली देवै, तो वह पीटने को तैयार हो जाता है। मैं भगवान को गालियां दे रहा हूं। इस मेरे पाप का क्या अन्त है ? परन्तु आप भगवान से यह बोल देना कि जब तक आप नहीं मिलोगे, तब तक गालियां, ऐसे ही देता रहूंगा। नारद जी नमस्कार करके, भगवान के पास जा, नमस्कार किया। उपरोक्त सारा वृतान्त सुना दिया। भगवान बोले :- मैं तो गाली देने वाले को मिलूंगा। नारद :- यह क्या ? भगवान :- मेरे वचन में जो विश्वास करेगा, उसी को मिलूंगा। नारद वापिस आये और बोले :- जितने इमली के पत्तें हैं, उतने आप के जन्म और होगें तब बैकुण्ठ में पहुंचोगे। माला तोड़ फैंकी और मृगछाला उठाकर फैंक दी। कहने लगे :- अब मैं कभी उस भगवान की आराधना नहीं करूगां। दूसरे को बोले :- जितने पीपल के पत्ते हैं, उतने तुम्हारे और जन्म होंगे, तब दर्शन होगा। नाचने लगा प्रफुल्लित हो गया, बारम्बार नारद को नमस्कार करने लगा, दर्शन होंगे। दर्शन होंगे। इस प्रकार धन्य ! धन्य ! ज्यों ही शब्द मुंह से निकलने लगे, भगवान प्रगट होकर, हृदय से लगा लिया। हे नारद ! इसके अन्तःकरण में मेरी भक्ति युक्त विरहभाव है, ऐसे भक्त मुझे प्रिय हैं।

ब्रह्मऋषि सतगुरू फरमाते हैं कि :—"हिरदै की हरि लेइगा ०।"

(आत्मा अर्थी भेष)

सब चतुराई देखिये, जे कुछ कीजै आन ।
मन गहि राखै एक सौं, दादू साध सुजान ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमात्मा की भक्ति से अलग जो भी कुछ करणी कर्त्तव्य है शारीरिक, मानसिक क्रियायें, यह सभी संसार की चतुरता है । परन्तु जो अपने मन को एकाग्र करके, परमेश्वर के नाम स्मरण में लगाता है, वही सबमें सत्य सुजान, प्रवीण साधक है ।

सबद सूई सुरति धागा, काया कंथा लाइ ।
दादू जोगी जुगी जुगी पहिरै, कबहुं फाटि न जाइ ॥४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! काया रूपी तो 'कंथा' कहिए- गुदड़ी है और गुरू का ज्ञान रूपी शब्द ही सूई, है, सुरति ही धागा है । इस सुरति रूप धागे से, इस गुदड़ी को, नाम स्मरण द्वारा सी लो । हे अधिकारी पुरूषो ! इस प्रकार इस काया गुदड़ी रूप भेष को, राम भक्ति के लिए धारण करो, तो फिर यह जुग जुग में, न कभी जीर्ण सीर्ण होगी ओर न कभी फाटेही गी, अर्थात् नष्ट नहीं होगी, और अजर अमर भाव को प्राप्त होगी ।

ज्ञान गुरू की गुदड़ी, सबद गुरू का भेख ।
अतीत हमारी आतमा, दादू पंथ अलेख ॥४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीव ब्रह्म की एकता का जो ज्ञान है, वही तो मानो गुदड़ी है और गुरू का "अहं ब्रह्मास्मि, सोहं" यह महावाक्य ही धारण करना ही मानो भेख है । आभास बुद्धि ही मानो साधू है । ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे साधक ! यही मार्ग परमेश्वर को प्राप्त करने का है ।

इशक अजब अबदाल है, दरदबंद दरवेस ।
दादू सिक्का सबर है, अकलि पीर उपदेस ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेत्ता मुक्त पुरूषों का, जिज्ञासुओ को यही उपदेश है कि परमात्मा का अद्भुत प्रेम ही, सिद्धि करामात है जिनके, और परमेश्वर के विरह के दर्द में बंधकर रहना ही उनका साधुपना है । उस साधू का 'सबर'—संतोष, ही 'सिक्का'—भेख बाना है । इस प्रकार से जो साधक ! इस भेष को धारण करता है, उनका जीवन ही इस संसार में सफल है ।

(इति भेष का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

卐 ॐ 卐

॥ अथ साध का अंग १५ ॥

"मन गहि राखै एक सौं, दादू साध सुजान० ।" इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप भेख के अंग के बाद, अब साधु के स्वरूप लक्षण कहैंगे ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- हरि गुरू संतों को हमारी बन्दना है, जिनकी कृपा से भेख आदि चतुराई से निरपक्ष होकर, मुमुक्षु निर्विकार, साधुता से जीवन मुक्ति को प्राप्त होता है ।

(साधु महिमा)

दादू निराकार मन सुरती सौं, प्रेम प्रीति सौं सेव ।
जे पूजै आकार कौं, तौ साधु प्रत्तखि देव ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यदि निराकार ब्रह्म की उपासना करनी है तो, अन्तर्मुख वृत्ति करके, प्रेम और प्रीति के सहित स्वस्वरूप आतमा में स्थिर रहो, अर्थात् आतम विचार में लय लगाओ । और आकार कहिए-साकार की, अर्थात् सगुंण ब्रह्म की उपासना करै तो, ब्रह्मवेत्ता मुक्त पुरुष, सगुण रूप हैं । उनकी सेवा करो ।

दादू भोजन दीजे देह कौं, लीया मन विश्राम ।
साधु के मुख मेलिये, पाया आत्माराम ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे शरीर को भोजन देने से, निराकार, निरअबेब मन के सहित, सब इन्द्रिये तृप्त हो जाती हैं, वैसे ही ब्रह्मनिष्ठ संतो की सेवा अर्थात, भोजन के द्वारा, परमेश्वर प्रसन्न होकर स्वीकार करते हैं। जैसे जीव के शरीरों में सबसे उतम मनुष्य का शरीर है, इसी प्रकार साक्षीभाव से परमेश्वर सर्व शरीर धारियों में है, परन्तु ब्रह्मनिष्ठ संत तो साक्षात्कार भगवान के स्वरूप ही हैं।

दोहा :- पैसो तंदुल दोवटी, खेत धना को जोइ ।
भखना पूज्या साध नै, लाभ घनेरो होइ ॥३॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज, अहमदाबाद कंकरिया तालाब पर बालक बालकाओं के साथ कीर्तन करते समय जब संतरूप में भगवान वृद्धरूप धरके प्रगट हुए, और ब्रह्मऋषि ने भगवान की आज्ञानुसार, दोनों हाथों में एक पैसा लेकर अर्पण किया, अर्थात् भगवान को पूजा की, उसी से ब्रह्मऋषि के सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो गये। ऐसे ही सुदामा जी ने भगवान तंदुल भेट करके भगवान की पूजा की, उसी से सुदामा के घर आठ सिद्धि नौ निद्धि आकर बस गई। इसी प्रकार कबीर साहब ने वृद्धरूप में, भगवान को रेजी भेट करके पूजे, और कबीर के तीन दफा बालद आये। धना भक्त ने संतों को पूजे अर्थात्—भोजन दिया। बोने का बीज संतों को बांट दिया। संत भगवान के भोग लगाकर तुम्बे के बीज दे गये। धना लेकर मस्तिष्क पर चढाये और खेत में बो दिये। तुम्बों के अन्दर गेहूं निपज आये।

सच्चे संतों की सेवा से अपूर्व लाभ प्राप्त होता है।

ज्यों यहु काया जीव की, त्यों सांई के साध ।
दादू सब संतोसिये, मांहै आप अगाध ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मनुष्य का शरीर जैसे जीव को अति उत्तम प्रिये लगता है, इसी प्रकार सच्चे संत, भगवान को अति प्रिय हैं अर्थात् मानो उन सच्चे संतों का शरीर भगवान ही का शरीर है। ऐसे सच्चे संत, भगवान के भक्तों को कायक वाचक मानसिक, तीनों प्रकार से सेवा कीजिये। वही मानो अगाध परमेश्वर की सेवा है।

दोहा :- द्वादस कोटि यज्ञ मै जीम्या, संख न बाज्यो रह्यो खिसाइ ।
बखना संत साध घर जीम्यौ, संख दरूङ्यो मंगल गाइ ॥४॥

दृष्टान्त :— पांडवों के यज्ञमें बारह करोड़ ब्राह्मणों के रोज भोजन ग्रहण करने पर भी पंचायन शंख नहीं बजा। बखना जी कहते हैं कि बालिमकी संत, जब पाँडवों के यहां आकर जीमे, तब शंख गर्जना करके, मंगल गाने लगा।

(सतसंग महात्म)

साधु जन संसार में, भव जल बोहित अंग ।
दादू केत्ते ऊधरें, जेते बैठे संग ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत, उनका सतसंग ही मानो एक नौका रूप है। जितने जिज्ञासु उनकी शरण में आते हैं, उन सभी को, अपने सतसंग रूपी नौका में बैठाकर, अर्थात् उपदेश में स्थिर करके, संसार समुद्र से पार कर देते हैं। अतः स्वरूप साक्षात्कार कराते हैं।

दोहा :- सुरत्ता जौहरी मिलन की, तो करिये सतसंग ।
बिना परिश्रम पाइये, अविगत देव अभंग ॥५॥

परमेश्वर रूप जौहरी से मिलने की जिज्ञासा है, तो सतसंग करिये। सतसंग द्वारा 'बिना परिश्रम' कहिए बहिरंग साधनों के कष्ट उठाये बिना ही, अविगती अव्यक्त, आकृति रहित, अभंग, ऐसे परमेश्वर के स्वरूप को प्राप्त करिये।

साधु जन संसार में, सीतल चंदन बास ।
दादू केते ऊधरें, जे आये उन पास ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत, इस संसार रूपी बन में शीतल और सुगन्धि रूप चन्दन के समान हैं। जैसे चन्दन के आस पास के सभी वृक्षों में, चन्दन की शीतलता ओर सुगन्धि प्रवेश करती है, इसी प्रकार जितने उत्तम जिज्ञासु उन संतों की शरण लेकर, उपदेश ग्रहण करते हैं, उनमें उनके शीतलता सुगन्धि कहिये शन्ति दान्ति आदिक सम्पूर्ण सत्गुण धीरे धीरे कर जाते हैं, और संतरूप ही बन जाते हैं।

साधुजन संसार में, हीरे जैसा होय ।
दादू केते ऊधरे, संगति आये सोइ ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के प्यारे सच्चे संत, इस संसार में हीरे के तद्वत् होते हैं । जैसे हीरे का अंजन आंखों में आंजने से कल्प हो जाता है, यानि वृद्ध अवस्था से युवा अवस्था बन जाती है । इसी प्रकार उन तत्ववेताओं की संगति में, जितने उत्तम जिज्ञासु आते हैं, उन सबका ही उद्धार हो जाता है, अर्थात् वह सभी संसार समुद्र से तर जाते हैं ।

साधु जन संसार में, पारस परगट गाइ ।
दादू केते ऊधरे, जेते परसे आइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे ब्रह्मनिष्ठ संत, इस संसार में प्रगट पारस रूप हैं । एक उत्तम पारस, जो कि पारस ही बनाता है । दूसरा मध्यम पारस, जो कि सोना बनाता है । तीसरा कनिष्ट पारस, जो सोना तो बनाता है परन्तु कुछ काल के बाद, वह वापिस ही जो धातु थी, वही रूप हो जाता है । यहां उत्तम पारस का प्रसंग है । ऐसे उत्तम पारसरूप ब्रह्मनिष्ठ संत, उनके सतसंग से, उत्तम जिज्ञासु ब्रह्मभाव को ही प्राप्त होते हैं ।

रूस बिरख बन राइ सब, चंदन पासै होइ ।
दादू बास लगाइ करि, किये सुगन्धि सोइ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे छोटे वृक्ष, मध्यम दर्जे के पेड़, जंगल के भारी वृक्ष, वे सब चन्दन के आस पास होवें, तो चन्दन उनमें अपनी शीतलता सुगन्धि, वायु के द्वारा प्रवेश कर देता है । इसी प्रकार जहां चन्दन रूप संतजन होते हैं, उनके सम्पर्गी, उत्तम मध्यम कनिष्ट, तीनों प्रकार के अधिकारियों का उद्धार हो जाता है ।

जहां अरण्ड अरू आक थे, तहं चन्दन ऊग्या मांहि ।
दादू चंदन करि लिया, आक कहै को नांहि ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां अरण्ड और आक का बन था, उस बन में चन्दन का बूटा उत्पन्न हो जावे, तो पथिक लोग उसकी सुगन्धि से, उसको ढूंढ कर, उसे चन्दन ही करके जानते हैं, आक अरण्ड नहीं कहते हैं । दाराष्टान्त में आक अरण्ड के समान पामर, निसिद्ध कर्म करने वाले, पाप आदि कर्म करने वाले कुल में, भक्त उत्पन्न हो जाये, तो उसको तत्ववेत्ता पुरूष, भक्त ही करके मानते हैं । जैसे :- भक्त रहदास जी, भक्त बालमीकि आदिक ।

दोहा :- आक अरंड लागै नहीं, गुरु चन्दन की बास ।
रीते रहै गठिले पोले, रज्जब परमल पास ॥१०॥

साध नदी जल राम रस, तहां परवालै अंग ।
दादू निर्मल मल गया, साधु जन के संग ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संतजन जो हैं, उनका सत्संग ही मानो नदी है और उस सतसंग में राम नाम भक्ति वैराग्य ज्ञान रूपी ही मानो, जल भरा है। वहां स्नान करने से, अन्तःकरण के पाप रूप मल निवृत्त होकर निर्मल होते हैं। ऐसे संतजनों के सत्संग में रहकर, अपना कल्याण कर।

दोहा :- तसकर सुत गयो तेल को, हरिजन हाट्यो मांहि ।
राघो चरचा यों सुनि, सुर कै छायां नांहि ॥११॥

दृष्टान्त :- एक राजा के यहां मीणों ने, चोरी करने का विचार किया। रात को राजा के महलों में पहुंच गये। जितना चला, उतना माल उठा लाये, और लाकर जमीन में दबा दिया, कि कुछ दिन के बाद निकालेंगे। पुलिस ने खोज पड़ताल की। कुछ पता नहीं चला। एक दूती, राजा के यहां आई और बोली, मैं चोरी का पता लगा दूगीं। एक शेर के दांत उखड़वाये, छह भुजा काठ की बनवाई। दुती ने अपना अष्ट भुजा, दुर्गा का रूप बना कर, शेर पर सवारी करके, मीणों के मोहल्ले में, आधी रात में आ गई। आवाज लगाई :- दुष्टों ! अब राजा को सुपना देकर, तुम सबको फांसी लगवाऊंगी। आस पास के सोने वाले सब लोग जाग उठे। देखा कि साक्षात्कार दुर्गा है। बोले :- हे माता ! क्षमा कर। दुर्गा :- दुष्टों ! तुमने जो राजा के चोरी की, वह चौथ अबतक मेरे नहीं चढ़ाई। मीणे :- हे माता ! सवेरे ही चौथा हिस्सा तेरे निमित्त लगा देगें। एक मीणे के लड़के ने आकर देखा कि इसके छाया है। अपने पिता से बोला :- "पिता जी ! यह दुर्गा नहीं है, यह कोई छल है। मैंने एक साधु से सुना था कि देवता के छाया नहीं होती है, इसके तो छाया है।" तत्काल मीणे ने दुर्गा के हाथ पकड़े तो काठ का हाथ पाया। तुरन्त तलवार लेकर, शेर और दुर्गा के टूकड़े टूकड़े करके जमीन में दबा दिया। राघोदास जी महाराज कहते हैं कि मीणों के लड़कों ने जरा सा संतों का वचन सुना था, उसी से सारे कुटुम्ब की रक्षा कर ली।

साधु बरसैं राम रस, अमृत बाणी आइ ।
दादू दरसन देखतां, त्रिविध ताप तन जाइ ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मनिष्ठ महापुरूष अपनी बाणी द्वारा, राम रस रूप अमृत की वर्षा करते हैं। वहां साधक पुरूष अमृत को पान करके, अमरभाव को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे मुक्त पुरूषों के दर्शन करने से, तन की तीनों ताप नष्ट हो जाती हैं।

(साधु संग महिमा महात्म)

संसार बिचारा जात है, वहिया लहरी तरंग।
भेरै बैठा ऊबरै, सत साधु के संग ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसार के प्राणी बिचारे बिषय वासनाओं के प्रवाह में बहते जा रहे हैं, जन्म मरण में। कोई उत्तम साधक ही, मुक्त पुरूषों के सतसंग रूप जहाज में बैठकर, संसार समुद्र से पार होते हैं, अर्थात् देह अध्यास से मुक्त हो जाते हैं।

दादू नेड़ा परम पद, साधु संगति मांहि।
दादू सहजैं पाइये, कबहूं निरफल नांहि ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परम पद कहिये मोक्ष पद, सच्चे संतों की संगति में प्राप्त होता है। सतगुरू महाराज कहतें हैं कि स्वभाव से ही, वह ब्रह्मनिष्ठ महापुरूष साधकों को, इस मनुष्य देह में ही, ब्रह्मी अवस्था को प्राप्त करा देते हैं।

दादू नेड़ा परम पद, करि साधु का सग।
दादू सहजैं पाइये, तन मन लागै रंग ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे ब्रह्मनिष्ठ संतों की संगति से, जब तन मन, ज्ञान भक्ति वैराग्य में रत्त होता है, तब मोक्ष पद 'नेड़ा' कहिये नजदीक, इस मनुष्य शरीर में ही प्राप्त हो जाता है।

दादू नेड़ा परम पद, साधू संगति होइ।
दादू सहजैं पाइये, स्यावत सन्मुख सोइ ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यदि सच्चे संतों की संगति प्राप्त होवे, और मुमुक्षु अपने तन मन को 'स्यावत' कहिये विषयों से मुक्त करके, उनके सन्मुख रहे तो मोक्ष पद, अत्यन्त समीप ही है। अर्थात् उनके उपदेश को सम्पादन करके साधक, स्वस्वरूप साक्षात्कार कर लेता है।

दादू नेड़ा परम पद, साधू जन के साथ ।
दादू सहजैं पाइये, परम पदारथ हाथ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संतों की संगति द्वारा, जब अन्तःकरण, भक्ति ज्ञान में रंगा जावै, तब तो ब्रह्मरूप परम पद 'नेड़ा' कहिए—समीप प्रत्यक्ष ही है । इस प्रकार आत्मा में निश्चय करिए ।

साध मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि का भाव ।
दादू संगति साध की, जब हरि करै पसाव ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब प्रभु दया करैं, तब सच्चे संत प्राप्त होते हैं, उनके सतसंग से अन्तःकरण में, तब परमेश्वर को प्राप्त करने का, भाव जागृत होता है ।

साध मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि का हेत ।
दादू संगती साध की, कृपा करै तब देत ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब सच्चे संत प्राप्त होवैं, तब हृदय में परमेश्वर के प्राप्त करने का, भाव जागृत होता है । परन्तु जिन जीवों को अपनी शरण में लेना है, उन जीवों को, संतों की संगति वह हरि हो कृपा करके देते हैं, तब्र प्राप्त होती है ।

साध मिलै तब ऊपजै, प्रेम भक्ति रूची होइ ।
दादू संगति साध की, दया करि देवै सोइ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब परमेश्वर के प्यारे, सच्चे संत मिलैं, तब प्रेमा भक्ति में रुचि कहिए,-इच्छा उत्पन्न होती है । परन्तु ऐसे संतों की संगति, स्वयं परमेश्वर दया करके देवें, तभी प्राप्त होती है, अन्यथा नहीं ।

साध मिलै तब ऊपजै, हिरदै हरि की प्यास ।
दादू संगति साध की, अविगत पुरवै आस ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब सच्चे संत मिलते हैं, तब हरि को मिलने ही अन्तःकरण में जिज्ञासा उत्पन्न होती है । ऐसे संतों की संगति के द्वारा ही, अविगती परमेश्वर, जिज्ञासु की आशा पूरी करते हैं, अर्थात् दर्शन देते हैं ।

साध मिलै तब हरि मिलै, सब सुख आनन्द मूर ।
दादू संगति साध की, राम रह्या भरपूर ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब ब्रह्मवेता संत मिलै तो मानो, परमेश्वर ही मिला है। क्योंकि संतजन ही लौकिक सुख और परमानन्द को देने वाले हैं। संतों की संगति क्या है ? मानो कथा कीर्तन के द्वारा, वहां राम जी ही, परिपूर्ण रूप से भरपूर रम रहे हैं। ऐसे संतों के हृदय में प्रचय साक्षात्कार होकर के, स्वयं परमेश्वर ही विराजते हैं।

(चौप चरचा)

परम कथा उस एक की, दूजा नांहि आन ।
दादू तन मन लाइ करि, सदा सुरति रस पान ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संतों के द्वारा ही, परमेश्वर की परम कथा कहिये, श्रेष्ठ उपदेश प्राप्त होता है। अर्थात् वही परम कथा है, सो संत ही सुनाते हैं। इसीलिये संतों की संगति में, तन मन को स्थिर करके, सत्चित आनन्द में ही वृत्ति लगाइये।

प्रेम कथा हरि की कहै, करै भक्ति ल्यौ लाइ ।
पिवै पिलावै राम रस, सो जन मिलवो आइ ॥२४॥

टीका :- हे परमेश्वर ! हे हरि ! आपकी प्रेम भरी कथा नित्य प्रति कहैं, आप राम रस को पीवैं और जिज्ञासुओं को पिलावैं। इस प्रकार आपकी भक्ति में लय होकर रत्त रहने वाले, ऐसे सतों को ही हमको आप मिलाओ। यही मांगते हैं, आपसे।

दादू पीवै पिलावै राम रस, प्रेम भक्ति गुण गाइ ।
नितप्रति कथा हरि की करै, हेत सहित ल्यौ लाइ ॥२५॥

टीका :- हे प्रभु ! आपके सच्चे संत, अनन्य भक्ति रूपी अमृत को आप तो पीते हैं और जिज्ञासुओं को पिलाते हैं। ऐसे आप के प्यारे संत ही हमको आकर मिलें और फिर आपकी प्रतिदिन कथा, अन्तःकरण के हित के सहित, कहने वाले, ऐसे संतों की संगति से ही, हम कल्याण को प्राप्त होंगे। वही आप हमें मिलावें।

आन कथा संसार की, हमहि सुणावै आइ ।
तिसका मुख दादू कहै, दई न दिखाई ताहि ॥२६॥

टीका :- हे देव ! हे हरि ! आपकी कथा अमृत को त्याग कर 'आन कथा' कहिए- देवी देवताओं की, सकाम कर्मों की, या दुनियावी वार्ता सुनाने वाले पुरुषों को, हमें दर्शन भी नहीं कराना, क्योंकि वह आपकी प्रेमाभक्ति में, अन्तर डालने वाले हैं ।

दादू मुख दिखलाई साध का, जे तुम ही मिलवै आइ ।
तुम मांही अन्तर करै, दई न दिखाई ताहि ॥२७॥

टीका :- हे देव ! हे परमेश्वर ! जो मानव संसारी वार्ता कह कर, आपकी भक्ति में अन्तराये करावे, उनका आपके भक्तों को मुख भी नहीं बताना और जो दयालु संत, आपके साक्षात्कार का उपदेश करते हैं, उनही ब्रह्मवेत्ता संतों का, हमको दर्शन और सतसंग दीजिये ।

जब दरवो तब दीजिये, तुम पै मांगौं येहु ।
दिनप्रति दरसन साधु का, प्रेम भक्ति दिढ देहु ॥२८॥

टीका :- हे परमेश्वर ! जो आप हम पर कृपा करो तो, ऐसी करो कि सदैव आपकी प्रेमा भक्ति और सच्चे संतों के दर्शन में, हमारी श्रद्धा और एक रस प्रीति बनी रहै । यही आपसे मांगते है ।

साध सपिड़ा मन करै, सतगुरू सबद सुणाइ ।
मीरां मेरा मिहरि करि, अन्तर विरह उपाइ ॥२९॥

टीका :- हे प्रभु ! आपके सच्चे सन्त महात्मा, सतगुरू का ज्ञान सहित शब्द सुनाकर और "तत्वंमसि, सोहं" इत्यादिक परम उपदेश श्रवण कराकर, जिज्ञासुजनों के अन्तः करण में, जिज्ञासा वृत्ति दरद के सहित, उत्पन्न करते हैं और मुमुक्षु को पक्का कर देते हैं । ऐसे संत अत्यंत दयालु हैं ।

(जिज्ञासु कसौटी)

ज्यों ज्यों होवै त्यौं कहै, घटि बधि कह न जाइ ।
दादू सो सुध आतमा, साधु परसै आइ ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासु अन्तःकरण की शुभ अशुभ वृत्तियों को, कहिए वासनाओं को, न्यून अधिक न बनाकर, सरल भाव में ही, यथार्थ रूप से, सतगुरू को निवेदन करै, अर्थात् बतलावै, ऐसे पवित्र पुरुष, संतों की संगति के अधिकारी हैं ।

दोहा :- नृप नाभाग सु पुत्र लघु, यज्ञ संपूरण कीन्ह ।
दीयो वसु अवशेष सब, पुनः सब शिवजी दीन्ह ॥३०॥

दृष्टान्त :- राजा नाभाग का छोटा पुत्र, किसी कारण बनवास में घूमता घूमता वहां पहुंच गया, जहां कि ब्राह्मण लोग यज्ञ कर रहे थे। पूर्ण आहुति का समय था। पूर्ण आहुति कराने वाले मंत्र को, सभी ब्राह्मण भूल गये। यह राजकुमार वहां उपस्थित थे। यह बोले, मुझे याद है। उन्होंने कहा :- तुम बोलकर, पूर्ण आहुति दिला दो। वह राजकुमार मंत्र बोला और पूर्ण आहुति करा दी। सभी ब्राह्मण लोगों ने पूजा की सामग्री और दक्षणा आदि ग्रहण कर लिया। जो शिव जी का शेष भाग था, वह राजकुमार को बता दिया। राजकुमार जब उसे उठाने लगे, शिवजी प्रगट हो गये। बोले :- कहाँ ले जाता है ? राजकुमार :- प्रभु मुझे तो उन्होंने बताया है। भगवान शंकर उसकी सरलता और सत्यता पर प्रसन्न होकर बोले :- वह्मद्रोही ! मांग ! राजकुमार :- प्रभु हमारा राज, हमें प्राप्त हो जावे। भगवान शंकर बोले :- तथास्तु, जाओ ऐसा ही हो।

ब्रह्मऋषि सतगुरू फर्माते हैं कि "ज्यों ज्यों होवै त्यौं कहे ०।"

(सतसंग महिमा)

साहिब सों सनमुख रहै, सत संगति मैं आइ ।
दादू साधू सब कहैं, सो निरफल क्यौं जाइ ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो साधक, साहब परमात्मा से सदैव सनमुख रहै, अर्थात् उनके नाम स्सरण में, निष्काम कर्मो द्वारा लगा रहता है, और ब्रह्मनिष्ठ महापुरूषों के सतसंग में आता है। सभी संत कहते हैं कि वह जिज्ञासु, स्वस्वरूप प्राप्ति, फल को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है।

ब्रह्म गाइ त्रियलोक में, साधु अस्थन पान ।
मुख मारग अमृत झरै, कत ढूंढै दादू आन ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह सारा ब्रह्माण्ड ही विराट का स्वरूप मानो, गाय का स्थूल शरीर है, और व्यापक चेतन ही, इसमें दूध है। इस गऊ के ब्रह्मवेत्ता संत ही स्तन हैं। अतः उन संतों के आतम उपदेश ही, अमृत भरे कहिए— प्रकाशता है। इस प्रकार जिज्ञासु, उन महापुरूषों की सतसंगति के द्वारा, जीवन मुक्ति का आनन्द रूप दूध पीते हैं।

दोहा :- अमि पताल न पाइये, नही ससि संग आकास ।
प्रत्यक्ष अमी जो पाइये, जैमल साधू पास ॥३२॥

भक्ति या ज्ञान अमृत संतों को संगति में प्राप्त होता है ।

दादू पाया प्रेम रस, साधू संगति मांहि ।
फिरि फिरि देखे लोक सब, यहु रस कतहूं नांहि ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे मुक्त संतों की संगति में, परमेश्वर का प्रेमा भक्ति रूपी अमृत, साधक पुरूषों ने प्राप्त किया है । लोक लोकान्तरों में घूम घूम कर, विचार कर देखा, तो मायिक सुख तो बहुत हैं, परन्तु अनन्य भक्तिरूपी यह सुख, कहीं भी नहीं प्राप्त होता ।

दादू जिस रस कूं मुनियर मरैं, सुर नर करैं कलाप ।
सो रस सहजैं पाइये, साधु संगती आप ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस ब्रह्मानन्द रूपी रस के लिये, देव, मनुष्य, मुनिश्वर, सब प्रयत्न करते हैं, सो ब्रह्मवेत्ता संतों की संगति में, बिना प्रयास ही प्राप्त होता है । क्योंकि उत्तम जिज्ञासुओं के कल्याण के लिये, परमेश्वर ही संतों के रूप में प्रगट होकर, ज्ञान उपदेश करते हैं । जेसे :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल, कबीर साहिब आदि ।

संगति बिन सीझैं नहीं, कोटि करैं जे कोइ ।
दादू सतगुरू साध बिन, कबहूं सुध न होइ ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चाहे करोड़ों प्रकार के बहिरंग साधन करो, परन्तु सच्चे ब्रह्मवेता संतों की संगति बिना, आतम ज्ञान नहीं होता । क्योंकि सतगुरू कृपा और ब्रह्मवेता संतों की संगति से ही, शुद्ध ब्रह्म की उपासना होती है ।

दादू नेंड़ा दूरथैं, अविगत का आराध ।
मनसा बाचा कर्मना, दादू संगति साध ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्व जीवों के भीतर ब्रह्म व्यापक है, परन्तु अज्ञानी को दूर, लोक लोकान्तरों में

भासता है । जब ब्रह्मवेत्ता संतों का उपदेश, श्रवण में आता है, तब "नेड़ा" कहिए—आतमरूप से ही अनुभव होता है ।

सरगन सीतल होइ मन, चन्दन चन्दन पास ।
शितल संगती साध की, कीजै दादू दास ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह विषय आसक्त मन, स्वर्ग आदि लोकों में जाकर भी "शितल" कहिए विषयों से मुक्त नहीं होता है, और चन्दन के पास जाकर, सर्प शीतल हो जाता है, अर्थात् जहर की तपन शान्त होती है । परन्तु यह मन चन्दन के पास शीतल नहीं होता है । इसलिये हे जिज्ञासुओ ! मन को अन्तर्मुख और शान्त करना है तो, सच्चे ब्रह्मनिष्ठ संतों की संगति करो ।

दादू सीतल जल नहीं, हे मन सीतल होइ ।
दादू सीतल संत जन, राम सनेही सोइ ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मन जल से शीतल नहीं होता और बर्फ से भी यह शीतलता नहीं पाता, इस लिये इस मन को शीतल करना है, शान्त करना है तो, राम के स्नेही जो प्रेमी संतजन हैं, उनकी संगति में लगाओ ।

(साध वेपरवाही)

दादू चन्दन कदि कह्या, अपना प्रेम प्रकास ।
दह दिस परगट व्है रह्या, सीतल गंध सुवास ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चन्दन किसी को कब कहता है कि मेरे में शीतलता और सुगन्धि है, परन्तु अपने गुण से, स्वतः ही प्रगट हो रहा है । इसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता संत, ब्रह्म प्रकास से, वे स्वयं ही प्रकाशित हो रहे हैं, संसार में ।

दादू पारस कद कह्या, मुझथैं कंचन होइ ।
पारस परगट व्है रह्या, सांच कहै सब कोइ ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पारस किसी को कब कहता है कि मैं सोना बनाता हूं । परन्तु संसार में अपने गुणों से, पारस स्वतः ही प्रगट हो रहा है । सब कोई संसार में कहते हैं कि पारस से सोना बनता है । यह बात सत्य है । इसी प्रकार ब्रह्मवेत्ताओं की संगति से उत्तम जिज्ञासु ब्रह्मरूप होता है ।

(नरबिड़ रूप हटीजन)

तन नहि भूला मन नहि भूला, पंच न भूला प्राण ।
साध सबद क्यूँ भूलिया, रे मन मूढ अजाण ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन का उदाहरण देकर, अज्ञानी संसारी बहिर्मुख जीवों को उपदेश करते हैं कि हे अजान ! शरीर अध्यास को और मन के विषय मनोरथों को, और ज्ञान इन्द्रियों के पंच विषय, इन सबको भूलना था, यह तो तुमने भूले नहीं और न भूलने योग्य जो संतों के ज्ञान संयुक्त शब्द, सो भूल रहा है, इस लिये तूँ अति मूढ़, माया में अन्धा है ।

(साधु महिमा)

रतन पदारथ माणिक मोती, हीरों का दरीया ।
चिंतामणि चितराम धन, घट अमृत भरिया ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे रत्नागर समुद्र में हीरे, पन्ने मोती होते हैं, वैसे ही ब्रह्मवेत्ता संतों की ब्रह्माकार वृत्ति से, उनकी शरीरिक सम्पूर्ण सौजं, रत्न, माणिक, मोती, हीरों के समान है । उनके घट में, ब्रह्मानन्द रूप अमृत भरा है ।

समर्थ सूरा साध सों, मन मस्तक धरिया ।
दादू दरसन देखतां, सब कारज सरिया ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे और समर्थ ज्ञान ध्यान में पूरे और मन इन्द्रियों के जीतने में सूरवीर और जिज्ञासुजनों को संसार से पार करने में समर्थ हैं । उनके चरणों में अपने अहंकार रूपी मस्तक को, मन के सहित नम्र करिये । तब इस लोक और परलोक के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं, और संतों के शब्दों के धारण करने से, आसुरी गुणों को जीतने में, सूरवीर होता है ।

(साध महिमा महात्म)

धरती अम्बर रात दिन, रवि ससि नावैं सीस ।
दादू बलि बलि वारणैं, जे सुमिरै जगदीस ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो सच्चे संत मुक्तजन, ब्रह्मभाव में ही लीन रहते हैं, उनके चरणों में धरती आसमान, पानी, पवन, चन्द्रमा सूर्य, रात दिन, सब नमस्कार के सहित सेवा करते हैं । ऐसे संतों को बारम्बार बन्दना है ।

दोहा :- बनवारी रामत चले, शिष्य परमानन्द साथ ।
रैन बसे तकियो दियो, पृथ्वी अपने हाथ ॥४४॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज के शिष्य बनवारी दास जी, रतिया निवासी, ये अपना शिष्य परमानन्द को साथ लेकर, सेवकों में रामत करने जा रहे थे । मार्ग में दिन अस्त हो गया । वहीं ठहर गये । परमानन्द जी ने गुरू महाराज का आसन जंगल में ही लगा दिया । जल लाकर रख दिया । जब श्यन (निद्रा) करने का समय हुआ, तब आसन पर लेट गये । वृद्ध शरीर होने के कारण, तकिया न होने से, शरीर को तकलीफ होने लगी । पृथ्वी माता ने देखा कि यह परमेश्वर के प्यारे संत हैं, तकिया लेकर अपने हाथ से, उनका सिर उठाकर, सिर के नीचे लगा दिया । महाराज बोले :- माता जी, आप कौन हो ? पृथ्वी माता बोली :- मैं पृथ्वी हूं । हम सबको भगवान की आज्ञा है कि मेरे भक्तों की सेवा करें । आपका कष्ट देखकर, मैं प्रगट हुई हूं । बनवारी दास जी ने माता को नमस्कार किया और प्रभु का स्मरण करने लगे ।

चन्द्र सूर सिजदा करैं, नाम अलह का लेइ ।
दादू जिमि असमान सबै, उन पावौं सिर देइ ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो सच्चे संत, परमेश्वर के प्यारे हैं, सदैव परमेश्वर का स्मरण करने वाले । उनके चरणों में चन्द्रमा, सूर्य, जमीन, आसमान, सब प्रणाम करते हैं, और परमेश्वर की आज्ञा से, उनकी सेवा में तत्पर रहते हैं ।

दोहा :- बड़ा अवलिया अलह समान, नाम स्मस्त ब्रेज ।
कही सूर सों सेक दे, गोस्त कर अती तेज ॥४५॥

दृष्टान्त :- मुलतान के बादशाह का लड़का गुजर गया । शहर में रोना पीटना मच रहा था । एक फकीर स्मस्त ब्रेज नाम के आ गये । बोले क्यों रोते हो ? लोगों ने कहा :- यहां के बादशाह का लड़का मर गया । क्यों मर गया ? कैसे मर गया ? बादशाह को पता चला । स्मस्त ब्रेज को बुलाया । बोला :- सांई मेरा लड़का जीवित कर दो । स्मस्त ब्रेज बोले :- अल्लाह के नाम से उठ जा । जब नहीं उठा, तो बोला :- स्मस्त ब्रेज के नाम से जी कर उठ जा । लड़का बैठा हो गया । बादशाह बोला :- "कि तूं खूदा से भी जबरदस्त है, तेरी चमड़ी भूसा भराने के लायक है । स्मस्त ब्रेज तत्काल, पांव के दोनों अंगूठे, दोनों हाथों से पकड़कर झटका मारा, चमड़ी थैले की तरह सब निकल आई । बादशाह की तरफ

फेंक दिया, बोले :- ले इसमें भूसा भर। वैसे ही चल पड़े। मक्खियां बदन पर भिनभिनाने लगी। किसी ने खाना उनको नहीं दिया। सभी दूर, दूर कहने लगे। एक कसाई ने कच्चे मांस का टूकड़ा दिया। वह लेकर नगर के बाहर आये। सूर्य की तरफ देखा और बोले:-तेरा भी नाम स्मस्त ब्रेज है और मेरा भी नाम स्मस्त ब्रेज है, जरा नीचे आ जा, तो मांस का टुकड़ा सिक जाये और मेरा बदन भी सिक जाये। तत्काल सूर्यं कुछ नीचे आये। मांस का टुकड़ा भी सिक गया और बदन की चमड़ी भी सिक गई। सूर्य वापिस अपनी स्थिति पर पहुंच गये। उस दिन से सूर्य, उस समय वहां, आज भी कुछ नीचे गमन करते हैं। इसी से मुलतान में अधिक गर्मी और मुलतानी लोग अधिक काले होते हैं।

जे जन राते राम सौं, तिनकी मैं बलि जांव।
दादू उन पर वारने, जे लागी रहे हरि नांव ॥४६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो सच्चे संतभक्त, राम नाम की भक्ति में राते रत्त और माते मस्त रहते हैं, हम बार बार बलिहारी जाते हैं। और अपना तन मन, उनके ऊपर न्यौछावर करते है।

(साधु पारिख लक्षण)

जे जन हरि के रंगि रंगे, सो रंग कदे न जाइ।
सदा सुरंगे संतजन, रंग मै रहे समाइ ॥४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो सच्चे भक्त और संत, हरि के ज्ञान, भक्ति वैराग्य रूपी रंग में, अपने मन रंग लिया, उनका वह रंग न तो कभी फीका होता है, और न कभी मिटता ही है। दिन प्रतिदिन गहरा होता जाता है। वे संतजन सदैव हरि रंग में सुरंगे बने रहते हैं और हरि के स्वरूप में ही समाये हुए रहते हैं।

दादू राता राम का, अविनासी रंग मांहि।
सब जग धोबी धोइ मरै, तौ भी खूटै नांहि ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे हरि के भक्त, संतजनों को, संसारीजन, ईर्ष्या और नाना प्रकार से कसौटी देकर, हरि से विमुख करना चाहते हैं, परन्तु सन्तों के अन्तःकरण से, हरि का रंग नहीं छूटता है। वह अज्ञानी संसारीजन अपने निसिद्ध कर्म बनाकर, अधोगति को जाते हैं।

साहिब किया सो क्यों मिटै, सुन्दर सोभा रंग ।
दादू धोवै बावरे, दिन दिन होइ सुरंग ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे भक्त और संतों को, जब परमेश्वर ने आप ही, स्वयं अपनी शरण में ले लिये, तो बावरे अज्ञानी संसारीजन ज्यों ज्यों निन्दा करते हैं, वैसे वैसे ही हरि की सर्मथाई का, संतों को अधिक अनुभव होता है, और ज्ञान भक्ति वैराग्य में मग्न रहते हैं ।

(साधु परमार्थी)

परमारथ को सब कीया, आप स्वार्थ नाँहि ।
परमेश्वर परमारथि, क साधू कलि मांहि ॥५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर ने इस सृष्टि की रचना परमार्थ के लिये की है । और यह आदेश दिया है कि मैं परमार्थी हूं । वैसे ही तुम अस्थावर जंगम प्राणी, परोपकार करना । परमेश्वर को किसी से कोई स्वार्थ नहीं है, वह निस्वार्थी हैं, और या उनके प्रेमी भक्त संतजन ही, कलि काल में परमार्थी हैं ।

परमेश्वर के आदेश को मानकर, मेघ वृष्टि करते हैं, चन्द्रमा, सूर्य, परोपकार करते हैं । जल, वायु, अग्नि पृथ्वी, परोपकार करतो हैं । नदियां परोपकार करती हैं, वृक्ष परोपकार करते हैं । कहां तक गिनावें ? प्रायः सभी रचना, परोपकार के लिये ही रची हैं ।

दोहा :- **फकीर दुख सब को हरै, बादसाह को प्रेर ।**
कहि बादसाह अब कहो, नाक कटाओ फेर ॥५०॥

दृष्टान्त :- एक परोपकारी फकीर थे । उनके पास एक दुखिया आया और बोला :-"आपके पास बादशाह आता है । अगर आप उसको बोल दें कि इसको माफ कर दे, तो मेरा कष्ट मिट जाएगा ।" जब बादशाह आया । सतसंग होने के बाद, सांई बोले :- बादशाह ! इसके गुनाह को माफ कर दो । बादशाह ने माफ कर दिया । इस प्रकार कई लोग फकीर के पास आने लग गये । बादशाह को कहकर, फकीर ने कईयों के केस खत्म करा दिये । तब बादशाह ने फकीर के पास आना, ही छोड़ दिया । फिर एक भारी दुखिया आया । फकीर बोला :- बादशाह तो आता नहीं । हम तेरे को वहीं ले चलते हैं । बादशाह के पास पहुंचे । बादशाह बोला :- कैसे आये हो ? फकीर :- इसका काम पूरा कर दो । बादशाह ने पूरा कर दिया और बोला, अब किसी और को ले आया, तो मैं तुम्हारा नाक काट लूंगा । फिर फकीर के पास, कोई दुखिया आ गया । रोने पीटने लगा । फकीर उसको लेकर, बादशाह के पास पहुंचे । बादशाह को बोले :- यह चक्कू लो, पहले हमारा

नाक काट लो, फिर बतलायेंगे। बादशाह हंस पड़े। बात क्या है? फकीर :- इसको बरी कर दे। बादशाह ने उसको बरी कर दिया। बादशाह बोला :- महाराज आप नाक कटा कर भी, उसको सुखी बनाते हो। बोले :- हां। किस लिये? कि आदत से लाचार हूं।

ब्रह्मऋषि सतगुरू देव कहते हैं कि साधु परमार्थी होते हैं।

पर उपगारी संत सब, आये इहि कलि मांहि।
पिवै पिलावै राम रस, आप सवारथ नांहि ॥५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! इस संसार में परम पिता परमात्मा परमार्थी हैं या उनके सच्चे संतभक्त, परमार्थं के लिये, इस कलयुग में आये हैं, जैसे :- कबीर साहब, ब्रह्मऋषि दादू दयाल, मीरां, नानक, इनसे आदि लेकर बहुत से संत, परोपकार के निमित्त संसार में प्रगटे और जन समुदाय की अध्यात्म विचारों के द्वारा सेवा की और सन्य मार्ग पर उत्तम अधिकारियों को ले गये। आपने राम रस को पिया और जो भी उनकी शरण में आयें, उन सबको जाति पाति, भेद भाव रहित करके, राम रस पिलाया और आपसी प्रेम को बढ़ाया। यह सतों के सिवाय, और कौन परमार्थ कर सकता है?

दोहा :- गोरख ग्यारा बेर बिक्यो, परमारथ के काज।
बिक्यो मुरत्तजां अलि, बार अठारे साज ॥५१॥

दृष्टान्त :- एक दफा देश में भारी अकाल पड़ा। दुनियां बे घर हो गयी। गोरख नाथ महाराज को भी बड़ा दुख हुआ। एक नगर में एक साहूकार, जो भी कोई भूखे आते, उनको एक मुट्ठी चना देता। बहुत से लोग वहां पड़े थे। गोरख नाथ जी साहूकार के पास आये और बोले :- कि इन सबको, एक एक किलो तरातर हलवा देसी घी का बनवा कर बटवा दे। इसका खर्चा हम देंगें। साहूकार धर्मनिष्ठ था। देखा कि संत हैं, चलो इनकी आज्ञा का पालन कर दें। उपरोक्त हलवा बनवाकर, तोल तोल कर सबको एक एक सेर दे दिया। गोरख नाथ जी बोले :- हिसाब कर, क्या खर्च हुआ? साहूकार :- महाराज! सब हिसाब राम के घर हो रहा है। महात्मा बोले :- नहीं, हिसाब करो। साहूकार ने हिसाब कर दिया। इतना रूपया लगा है। बोले हम तेरे नौकर हो गये, जब तक रूपया नहीं चुकेगा, नहीं जायेगें। नौकरी बता? साहूकार :- यह बच्चा है। इसको स्कूल छोड़ आया करो और फिर घर लाकर, संभलवा दिया करो। यही आप की नौकरी है। महात्मा वैसा ही करते रहे। साहूकार ने बच्चे से हिसाब कराया। हिसाब नहीं आया। बोला :- मास्टर को बोल देना, इसको अच्छा पढ़ावै। कुछ दिन में फिर हिसाब करवाया। फिर गड़बड़ा गया। साहूकार :- मास्टर को बोला नहीं तैनें? इसको हिसाब क्यों नहीं आता

है ? महात्मा :- मुझे क्या पता, क्यों नहीं आता है ? मुझे थोड़ा ही बोला है, कि तूं पढ़ाया कर। साहूकार आवेश में आकर बोला :- तूं पढ़ाया कर, तूं पढ़ाया कर। महात्मा ने बच्चे को बुलाया। उसका मुंह चुम लिया, त्यों ही बच्चा लीलावती के हिसाब करने लगा और आगे पीछे की सब बताने लग गया। साहूकार ने चरणों में नमस्कार किया और बोला :- आप कौन हो ? महात्मा :- साधू हैं। साहूकार :- नहीं आप ईश्वर हैं। आपके शरीर का क्या नाम है ? आप बोले :- गोरख। वह बता तेरे रूपये चुके कि नहीं। साहूकार गद्गद् हो गया। महात्मा बोले :- जब तक काल का समय रहे, तब तक सभी प्राणियों की अन्न वस्त्र से, सेवा कर। यह कहकर प्रस्थान कर गये। इसी प्रकार गोरख नाथ जी ने अपना शरीर ग्यारह बार बिक्री करके, जन समुदाय की सेवा की। ऐसे ही मूरत्तजां अलि फकीर, अठारह दफा अपने शरीर को बेचकर, समाज सेवा की।

ब्रह्मऋषि सतगुरू देव कहते हैं कि संत ही संसार में परोपकारी हैं।

पर उपगारी संत जन, साहिब जी तेरे।
जाति देखी आतमा, राम कहि टेरे ॥५२॥

टीका :- हे परमेश्वर ! परमपिता ! आपके सच्चे भक्त संत, इस संसार में परोपकार के लिये ही आये हैं। हे साहिब ! निसिद्ध कर्मों के द्वारा, संसारी जीव, नर्क मार्ग में जाते हुए देखकर, आपके संत ही उनको बचाते हैं और कहते हैं कि हे जीवो ! राम नाम का स्मरण करो। तब ही तुम इन दुखों से अर्थात यमराज की मार से मुक्त होंगे, अन्यथा नहीं। संत आज्ञा पालन करने से ही जीव, चौरासी के दुखों से छूटते हैं।

दोहा :- **तपड़ दियो बिछावनों, मान महाजन सीख।**
जन राघो ता पाप में, फिर गइ दफतर लीक ॥५२॥

दृष्टान्त :- एक संत घूमते हुए, एक शहर में करोड़पति बनिये की दुकान के सामने, वृक्ष के नीचे ठहर गये। साँयकाल हो गया। सेठ दुकान बन्द करके, सात ताले लगाये। पांव पूंछने की बोरी बाहर रह गई। देखा, सामने साधु बैठा है। बोरी उठाकर सोचा कि यहां से कोई उठा ले जायेगा, इस साधु के पास रख दें। रात को तो अब यह, यहां रहे ही गा। सवेरे मैं आकर ले लूंगा। महात्मा को बोला :- महाराज, यह बोरी रखता हूं, ठंडी लगे तो ओढ लेना रात को। सवेरे जाओ तो दुकान पर रख जाना। महात्मा समझ गये कि यह बोरी की चौकीदारी करवाता है। महात्मा बोले :- अच्छा भाई ! आस पास के पैसे में छोटे लोग, महात्मा के पास आये। महाराज ! सेठ क्या कहता था ? सेवा वगैरा कुछ की ? महात्मा ने उपरोक्त सब बात कह दी। लोगों ने महात्मा जी की अन्न, पानी, से सेवा की और सतसंग किया। सर्दी का मौसम

था । आधी रात में जब ठंडी लगने लगी, तो महात्मा ने उस बोरी को आधा घंटा अपनी पीठ पर डाल लिया, फिर विचार किया, कल भी हमने ऐसे ही रहना है, तो उतार कर रख दी । सवेरे सेठ आया । महाराज बैठे हो । हां भाई बैठे हैं, तूं कहे तो खड़े हो जावें, तेरी चौकीदारी करते हैं । सेठ बोरी ले गया । महात्मा वहां से रम गये । आगे किसी शहर में पहुंचे, वहां भक्तों के आग्रह से बहुत समय तक ठहरे । इधर सेठ बीमार हो गया । कई दिनों बीमार चला । अन्त समय आ पहुंचा । यमराज ने यमदूतों को आज्ञा दी कि उसको मारते पीटते लाओ । यमदूतों ने उसके सूक्ष्म शरीर को निकाला और यमराज के पास ले गयें । पाप पुण्य देखा । जिन्दगी में कभी भी न राम नाम स्मरण किया और न धर्म पुण्य किया । वह तपड़ निकला । यमराज बोला :- पुण्य तो इसका कुछ हुआ है, क्योंकि महात्मा ने ओढा है, उनके दर्शन कराके ले आओ इसको । फिर यमलोक की त्रास देना । यमदूतों ने उसके सूक्ष्म शरीर को स्थूल में डाला । यह उठकर यमदूतों के साथ चलने लगा । जिस शहर में महात्मा ठहरे थे, वहीं पहुंचे । यमदूत बोले :- हम यहां खड़े हैं । तुम गुरू महाराज के दर्शन कर आओ और जल्दी आना । संत के सामने गया । रोने लगा । महात्मा बोले :- रो मत । राम राम कह । तूं वही है ? जो हमको बोरी दी थी ? रोता क्यों है ? उधर यमदूतों ने आवाज दी । पीछे देखने लगा । महात्मा ने पूछा :- क्या बात है ? पूर्वोक्त वृत्तान्त सब सुना दिया । महात्मा :- सुने ही मत, राम राम करे जा । जब राम राम करने लगा तब महात्मा यमदूतों से बोले :- राम राम कहने वाले भी कभीं, नर्क में गये हैं क्या ? यमराज को बोल दोल दो, पहले महात्मा की यमलोक में बुलाओ, फिर बनिया आवेगा । यमदूत :-सब वृत्तान्त यमराज को जा सुनाया । यमराज बोलें :- अब उसके सब पापों पर लीक फेर दो । अब यमलोक में नहीं आवेगा, संतों की शरण में चला गया है ।

ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहतें हैं कि, संत राम नाम कहलाकर, जीवों को नर्क से बचाते हैं ।

चंद सूर पावक पवन, पाणी का मत सार ।
धरति अंबर राति दिन, तरवर फलैं अपार ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परम पिता परमेश्वर की आज्ञा मान कर, चन्द्रमा, सूर्य, पानी, पवन, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, रात, दिन, तरवर, ये सब ही परमेश्वर की आज्ञानुसार परोपकार करते हैं । इनको अपना कोई स्वार्थ नहीं है । और संत भी प्रभु की प्रेरणा को मान कर, परोपकार का ही व्रत धारण करते हैं । परोपकारियों को ही धन्य है ।

छाजन भोजन परमारथी, आतम देव अधार ।
साधु सेवग राम के, दादू पर उपगार ॥५४॥

टीका :- हे सज्जनो ! परमपिता परमेश्वर की आज्ञा मानकर, परमेश्वर के सच्चे भक्त और संत, जन समुदाय में गरीब जनों की वस्त्र से, अन्न से सेवा रूप परोपकार करते रहते रहते हैं, निष्काम भाव से सभो में आतमा रूप देव को अर्थात् परमेश्वर को जानकर कि यह परमेश्वर की सेवा है, उनकी आज्ञा का पालन करतें हैं । सतगुरू महाराज कहते हैं कि ऐसे परोपकारी पुरूष, परमेश्वर के ही स्वरूप हैं ।

(साधु साक्षीभूत)

जिसका तिसको दीजिये, सुकृत पर उपगार ।
दादू सेवग सो भला, सिर नहि लेवै भार ॥५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमपिता परमेश्वर की और सच्चे संत भक्तों की आज्ञानुसार, यह मनुष्य शरीर जिसने दिया है, इसको सुकृत कर्मों के द्वारा, उसी के अर्पण करना चाहिये । वही सेवक भक्त, अधिकारी श्रेष्ठ है, जो परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है । अपने सिर पर वह पाप का बोझा नहीं लेता ।

परमारथ कूं राखिये, कीजे पर उपगार ।
दादू सेवग सो भला, निरंजन निराकार ॥५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मनुष्य, मनुष्य शरीर को पाकर, धन आदि संग्रह करके, परोपकार में लगाता है, निर्वासनिक होकर, वही सेवक धन्य है । वह निरंजन निराकार, स्वरूप ब्रह्म को, प्राप्त करता है ।

सेवा सुकृत सब गया, मैं मेरा मन मांहि ।
दादू आपा जब लगै, साहिब मानै नांहि ॥५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक अन्तःकरण में अहंत्व ममत्व भाव है, तब तक सब सेवा और सुकृत निष्फल ही है, क्योंकि जब तक व्यष्टि आपा है, तब तक परमेश्वर सेवा स्वीकार नहीं करते, अथवा सेवा जनसमुदाय की और सुकृत कर्म, निष्काम करने से, मैं मेरा आदिक व्यष्टि अहंकार, सब निवृत हो जाता है, क्योंकि ईश्वर आपे को कहिए अहंकार को मान्यता नहीं देते हैं ।

दोहा :- रज्जन रीती बन्दगी, जब लग आपा मांहि ।
मनसा वाचा कर्मना, साहिब मानै नांहि ॥५७॥

(साधु पारिख लक्षण)

साधं सिरोमणी सोधि ले, नदी पूर परिवाइ ।
सजीवनी साम्हा चढै, दूजा बहिया जाइ ॥५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह संसार ही एक नदी है और नाना प्रकार का विषय वासना रूपी, इसमें जल बहता है । जैसे मछली नदी के जल में प्रवाह के सामने चढती है, बाकी सभी जीव बह जाते हैं और सजीवनी बूंटी जल के प्रवाह के सामने, नाग रूप धर के प्रवाह को तोड़ती हुई, सामने चढ़ती है, और सभी लकड़ियां बह जाती हैं, इसी प्रकार संसार नदी में विषय प्रवाह को तोड़ते हुए, यानि उससें उपराम होकर, बीतराग पुरूष, परमेश्वर को प्राप्त होते हैं । बाकी तो सभी असाधु पुरूष, विषय वासना, कनक कामनी, के प्रवाह में बह जाते हैं ।

जिनके मस्तकि मणी बसै, सो सकल सिरोमणी अंग ।
जिनके मस्तकि मणि नहीं, ते विष भरे भुवंग ॥५९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे सर्प मणिधारी वही पुज्यनीय और देव जाति का है, बाकी तो सभी सर्प केवल विष से ही भरे हुए हैं । दाराष्टान्त में जो संत ज्ञान ध्यान नाम स्मरण रूपी मणी को धारण किये हुए हैं, वही संसार में पुज्यनीय और श्रेष्ठ हैं । हे अंग ! हे प्रिय साधक ! बाकी तो सभी विषय वासना रूप जहर से भरे हुए त्याज्य ही हैं ।

दोहा :- ठठा भखर सों चली, माई दरसन काज ।
ताको याहि साखी कहि, गुरू दादू सिर ताज ॥५९॥

दृष्टान्त :- सिंध में ठठा भखर से एक माई ब्रह्मऋषि के शब्द सुनकर, दर्शन करने को आमेर आई । उसको उपरोक्त साखी से उत्तर दिया । माई बोली :- बिना मणिधारी सांप कहिए साधु, तो बहुत मिले, उनकी मुझे चाहना नहीं । जिनके मस्तक में मणि है, उनके दर्शनों की ही मुझे इच्छा है ।

दोहा :- चाहुं ते पाऊं नहिं, पाऊं ते न सुहाइ ।
लक्ख बसौ इहि धग्गड़े, उज्जड़ मेरे भाइ ॥

(साध महिमा)

दादू इस संसार में, ये द्वै रतन अमोल।
इक सांई अरू संतजन, इनका मोल न तोल॥६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस संसार में यह दो रत्तन अमूल्य हैं। एक परमेश्वर और परमेश्वर का नाम स्मरण, दूसरे सच्चे परमेश्वर के संत, इन दोनों रत्तनों का न तो मोल है और न इनकी तुलना में ही है कोई दूसरा। येह भाग्य से ही प्राप्त होते हैं या उनकी दया से प्राप्त होते हैं।

दादू इस संसार में, ये द्वै रहै लुकाइ।
राम सनेही संतजन, और बहुतेरा आइ॥६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे परमेश्वर के प्यारे, ब्रह्मनिष्ठ मुक्तजन संतों की महिमा, संसार के साधारण प्राणी नही जानते हैं और संत निष्काम होकर, लोक प्रतिष्ठा से छुपे हुए हैं। ऐसे राम के अनन्त भक्तों का दर्शन कठिन है, और तो बहुत से जैसे आते हैं, वैसे ही जाते हैं।

दोहा :- कह कबीर या कलि में, यह दो वस्तु अगाध।
मुक्ति करै अरू मुक्ति व्है, परमेश्वर अरू साध॥६१॥

संगे हमारे साध हैं, सिर पर सिरजनहार।
दादू सतगुरू सो सगा, दूजा धंध बिकार॥६२॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमारे नाते रिश्तेदार तो, परमेश्वर के सचचे भक्त संतजन ही हैं और मस्तक के ऊपर सारे संसार को उत्पत्ति, पालन संहार करने वाला सिरजनहार है, उसी को हमने मस्तक पर धारण किया है। और दूसरे सत्य उपदेश के देने वाले सतगुरू सगे हैं, इनसे अतिरिक्त द्वन्द कहिये अन्धकाररूप, और परिवर्तन शील, सब नाते रिश्ते हैं, उनसे हमारा क्या मतलब है ?

(साधु पारख लक्षण)

जिनके हिरदय हरि बसै, सदा निरंजन नांऊं।
दादू साचे साध की, मैं बलिहारी जाऊं॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन सच्चे संतों के हृदय में हरि, आवरण रहित होकर बसता है, उन संतों के अर्थात् मुक्त पुरूषों के ऊपर हम वारणे जाते हैं ।

सांचा साध दयाल घट, साहिब का प्यारा ।
राता माता राम रस, सो प्राण हमारा ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत राम की भक्ति में मग्न होने से, परमेश्वर ही का शरीर है और दया की मूर्ति हैं और वे ही परमेश्वर को अति प्रिय हैं । वह अधिकारी पुरूषों को तो, अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं ।

(सज्जन दुर्जन)

दादू फिरता चाक कुंभार का, यूं दीसै संसार ।
साधुजन निहचल भये, जिनके राम अधार ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे डंडे के सहारे से, कुम्हार चाक को घुमाता है, इसी प्रकार काल रूपी माया कुम्हार है और कर्म ही डंडा है । विषय वासनाओं की तृष्णा के द्वारा, सारे संसार को जन्म मरण के चक्र में घुमाता है । जिस तरह कुम्हार निश्चल है, इसी तरह परमेश्वर भी निश्चल है और परमेश्वर के भक्त संत भी स्थिर हैं ।

(सतसंग महिमा)

जलती बलति आतमा, साध सरोवर जाइ ।
दादू पीवै राम रस, सुख मै रहै समाइ ॥६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारी अज्ञानी प्राणी, तीन ताप और भोजन वस्त्र आदि से पीड़ित होकर, संतों की सत संगति में आते हैं । फिर वह नाम स्मरण द्वारा, उन सब दुखों से मुक्त होकर सुख स्वरूप परमेश्वर में समा जाते हैं ।

दोहा :- दतात्रीये मुनि पै गयो, अलरख जलता जान ।
ताको गुरू सीतल कियो, दे दे उत्तम ज्ञान ॥६६॥

दृष्टान्त :- राजा रतीध्वज की रानी मन्दालसा थी, उसके चार पुत्र हुए, तीन पुत्रों को उसने वैराग्व का उपदेश करके, परमेश्वर के स्वरूप में लगा दिये । वह तीनों क्रम क्रम से निर्जन स्थान में जाकर, समाधिस्थ हो गये । उसकी प्रतिज्ञा थी कि जो मेरे गर्भ में आवेगा, उसको मैं मुक्त कर दूंगी । जब चौथे पुत्र अलरख को भी वैराग्य का उपदेश करने का विचार किया, तब राजा बोले कि इस राज को, कौन संभालेगा ? अब तो अपन दोनों, शास्त्र आज्ञानुसार बानप्रस्थ आश्रम को धारण करें और यह राज इसको देवें । रानी विचारशील थी । राजा के विचारों से सहमत होकर, अलरख को, राज तिलक कर दिया और एक कागज में मंत्र लिखकर, जंत्र बनाकर, उसकी भुजा के बांध दिया और बोलो :- पुत्र ! मेरी प्रतिज्ञा है, उसको सत्य करना । अपने पुत्रों को राज देकर, अपने आत्म कल्याण के साधनों को अपनाना और कभी भारी दुख आवे तो, इस ताबिज को खोलकर पढ लेना, तेरा दुख दूर हो जायेगा । यह कहकर राजा और रानी जंगल में चल पड़े । आगे तीनों पुत्र जहां तप कर रहे थे, वहां पहुचे । माता पिता को देखकर, तीनों पुत्रों ने नमस्कार किया और बोले :- हमें क्या आज्ञा हैं ? मन्दालसा :- अलरख कहीं राज में फंसकर, मेरी प्रतीज्ञा को झूठी न कर दे, अगर राज में फंस जाये, तो आप उसे निकाल कर लाना, यही आज्ञा है । राजा रानी आगे चले गये । इधर अलरख राज के मोह में आसक्त हो गया । माता के उपदेश को भूल गया । तीनों भाई आये, खबर कराई कि आपके भ्राता आये हैं । अलरख ने नमस्कार किया और कहा:- आज्ञा ! भ्राताओं ने कहा :- माता की प्रतिज्ञा को सत्य करो, अपने पुत्रों को राज देकर, हमारे साथ चलो । हंसने लगा और बोला :- तुम तो फकीर हो ही, मुझे भी फकीर बनाना चाहते हो ? चलो, किले के बाहर हो जाओ । वह तीनों कासी राज मामा के पास गये । सेना लेकर आये और अलरख के राज को घेर लिया । अब अलरख ने किले के ऊपर चढ़ कर देखा, तो चारों तरफ सेना हैं । उदास हो गया । तब माता का उपदेश याद आया और यंत्र को खोलकर कागज निकाला । उसमें लिखा था, माता ने :-

श्लोक :-

शूद्धौ सिबूद्धौ निरन्जनोसी, संसार माया परवर जितोसी ।
संसार स्वप्नं तज मोह निद्रा, मंदालसा वाक्यं मुवा चंचै पुत्रा ॥

हे पुत्र ! तूं शुद्ध है, तूं बुद्ध है, तूं निरंजन है, संसार रूप माया से तूं रहित है । संसार स्वप्न के समान प्रतिभासिक सत्ता वाला है । यह मोह रूपी निद्रा से आंखें खोल । यह मेरे मंदालसा के वचन हैं, विचार कर । जब अलरख ने इस श्लोक का विचार किया, तो ज्ञान हो गया और खुले सिर नंगे पांव जैसे था, वैसे ही उठ कर चल पड़ा और "अहं शुद्धोसि, अहं बुद्धोसि, अहं निरन्जनोसि" इस प्रकार बोलते हुए को, भ्राताओं ने देखा । सेना ने रास्ता दे दिया । जंगल में दत्तात्रिय महाराज से जाकर मिला । गुरूदेव ने अलरख को, आत्म ज्ञान का उपदेश दे देकर, शीतल बना दिया । उधर उसके पुत्रों को राज देकर, तीनों भ्राताओं ने माता की प्रतिज्ञा को सत्य किया ।

(कृतम कर्त्ता)

कांजी मांहैं भेल कर, पीवैं सब संसार।
कर्त्ता केवल निरमला, को साधु पीवणहार ॥६७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण संसार के प्राणी, नाना कामना कहिये वासनारूप, कांजी मिलाकर, राम-नाम का, स्मरण करते हैं, अर्थात् सकाम कर्मों द्वारा। परन्तु उनका वह भजन, मोक्ष देने वाला नहीं है। संसार में जन्म मरण प्राप्त करावेगा। वह सबका रचिता परमेश्वर, निरंजन, निराकार, निर्गुण रूप है, उस का भजन रूप अमृत कोई बिरले तत्ववेता संत ही, निर्वासनिक भाव से पीते हैं।

दोहा :- **ऐक तुरक ऐक हिंदु, दोऊ जाने को पार।**
हिंदु डुबा बहुत लग, तुरक ऐक दमदार ॥६७॥

दृष्टान्त :- एक हिन्दू और एक मुसलमान दोनों मार्ग में जा रहे थे। रास्ते में एक नदी आ गई। हिन्दू बोला :- "पार कैसे होवें ?" अपने अपने मालिक को याद करके, नदी में कूद जाओ, पार हो जाएगें। मुसलमान नदी में उतरा और "दमदार बेड़ा पार, दमदार बेड़ा पार" करते हुए नदी पार कर ली। संशय आत्मन हिन्दू भी नदो में कूदा और बोला :- हे भगवान पार करना। फिर बोला, हनूमान जी पार करना, देवी जी पार करना, इस प्रकार संशय आत्मन डूब कर मर गया। नानात्व भावना सें और सकाम कर्मों से, कभी संसार से पार नहीं उतरता है। "कांजी मांहैं मेल कर, पीवैं सब संसार०।"

(संगति कुसंति फल)

दादू असाध मिलै अन्तर पड़ै, भाव भक्ति रस जाइ।
साध मिलै सुख ऊपजै, आनन्द अंगिन माइ ॥६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! असाध कहिये, अज्ञानी संसारीजन, उनके मिलने से अर्थात् उनके व्यवहार से परमेश्वर में अन्तराय हो जाता है और भाव भक्ति, नाम स्मरण रूपी रस चित्त से चला जाता है। जब परमेश्वर के सच्चे संत भक्त मिलें, तो उनके व्यवहार से इतना आनन्द होता है कि हृदय में शान्ति सम समाता नहीं है।

दोहा :– ऐक बन में दोइ सूईटा, इक तपस्वी ऐक व्याध ।
ज्यूं पालै त्यों ही पढै, दुतिऐ अजामिल साध ॥६८॥

दृष्टान्त :- जंगल में एक तपस्वी और दूसरा शिकारी रहते थे । उनके पास एक एक तोता था । तपस्वी तोते को राम नाम आदि पढ़ाते थे । शिकारी का तोता, "मारो काटो, लूटो", यही पढता था । वह तपस्वी वाला तोता, पक्षी शरीर में ही संगति द्वारा आतम कल्याण कर लिया । दूसरा शिकारी वाला तोता, कुसंगति पाकर, चौरासी में चला गया ।

इसी प्रकार अजामिल ब्राह्मण, वेश्या का कुसंग करके कुकर्मी और राक्षस बन गया, फिर संतों की सुसंगति पाकर अपना उद्धार कर लिया । यह सबको पता है ।

दादू साधु संगति पाइये, राम अमिफल होइ ।
संसारी संगती पाइये, विषफल देवै सोइ ॥६९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब सच्चे संत भक्तों का संग प्राप्त होता है, तो उनके सतसंग में अमृतफल रूप राम की प्राप्ति होती है । फिर राम का स्मरण करके, जीव मुक्त हो जाता है । जब अज्ञानी संसारी, विषयी पामरों की संगति प्राप्त होवैं, तो वह जहर का फल, विषय वासना में आसक्ति उत्पन्न करते हैं । जिसका उपभोग करके फिर जन्म मरण को प्राप्त होते हैं ।

दादू सभा संत की, सुमति उपजै आइ ।
साकत की सभा बैसतां, ज्ञान काया थैं जाइ ॥७०॥

टीका :– हे जिज्ञासुओ ! सच्चे भक्त, संतों की सभा में, सुन्दर वृति उत्पन्न होती है, जिसके द्वारा, राम नाम का स्मरण रूप अमृत प्राप्त होता है। 'साकत' कहिए- संसारी, विषयी, पामर, अज्ञानियों की सभा में, अर्थात् ऐसे माया मोह में आसक्ति वाले पुरूषों की संगति से, परमेश्वर की भाव भक्ति में अन्तर पड़ता है और जन्म मरण को प्राप्त होता हैं । तथा अन्तःकरण में, जो सुसंगति से ज्ञान हुआ था, वह सब लोप हो जाता है ।

(जग जन विपरीत)

दादू सब जग दीसै एकला, सेवग स्वामी दोइ ।
जगत दुहागि राम बिन, साध सुहागी सोइ ॥७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सारा जगत, राम से विमुखी, कृतघ्नी, अकेले ही जन्म मरण में, आते जाते दिखाई पड़ते हैं और परमात्मा के सच्चे सेवक और परमेश्वर वे दो हैं, ऐसे सेवक संत, परमात्मा का दर्शनरूपी सुहाग प्राप्त करते हैं और जगत के प्राणी राम से अलग रहकर, दुहाग का दुख भोगते हैं ।

दादू साधू जन सुखिया भये, दुनियां को बहु धंध ।
दूनी दुखी हम देखतां, साधन सदा अनन्द ॥७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के सच्चे संत, स्वस्वरूप में स्थिर होकर, पूर्ण आनन्दमय हैं । 'दुनियाँ' कहिये- परमेश्वर से विमुखी जीव, अज्ञानी जन अनन्त आशा रूप फांसी में बन्धकर, अति दुखी रहते हैं ।

दोहा :- देखि मातली हरख में, ताको पुछी साध ।
तूं सुखीयारी डोकरी, मोकौं दुख अगाध ॥७२॥

दृष्टान्त :- एक बुढ़िया, दूसरी स्त्री से हंस हंसकर बातें कर रही थी । एक संत भी आ गये । उन्होंने मन में विचार किया कि यह माई तो बहुत सुखी है । तब बोले :- माता आप तो बहुत सुखी हो, हंस हंस कर बातों का रस पी रही हो । यह सुनते ही बुढ़िया तत्काल रोने लगी और बोली :- "महाराज ! मुझे सुख कहां है ? मेरे पास तो दुख ही दुख है । अपने कुनबे का दुख कहने लगी । मैं इन सबसे बहुत दुखी हूं ।" महात्मा सुनकर ठंडे हो गये कि अभी तो हंस रही थी, अभी रोने लग गई । सारी दुनियाँ में ही रोना पड़ा है, इससे तो हम ही ठीक हैं । "—दादू साधू जन सुखिया भये ० ।"

दादू देखत हम सुखी, सांई के संग लाग ।
यों सो सुखीया होइगा, जाके पूरे भाग ॥७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'हम' कहिए, मुक्तजन, परमेश्वर का साक्षात्कार करके, परमेश्वर में लय लगा कर, ब्रह्मरूप होते हैं । परन्तु ऐसे सुखी वही संतजन होंगे, जिन पर परमेश्वर और सतगुरू की पूर्ण कृपा है ।

दादू मीठा पीवै राम रस, सो भी मीठा होइ ।
सहजैं कड़वा मिटि गया, दादू निर्विष सोइ ॥७४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस संसार में मीठा तो एक राम रस ही है । जो राम का नाम स्मरण, भक्ति

ज्ञान रूप अमृत को पीता है, वह राम रूप ही हो जाता है। उनके अन्तःकरण से 'सहज' कहिए स्बभाव से ही, कड़वापन, सम्पूर्ण गुण विकार निवृत हो गये। वही संसार भाव से मुक्त हुए हैं।

(साध पारख लक्षण)

दादू अन्तर एक अनंत सुं, सदा निरंतर प्रीत।
जींहि प्राणी प्रीतम बसै, सो बैठा त्रीभवन जीत ॥७५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'अन्तर' कहिए—भीतर अन्तःकरण में 'एक'—देशकाल वस्तु प्रच्छेद रहित, अद्वैत ब्रह्म से जो पुरूष, अन्तराय रहित होकर स्नेह करते हैं, वे जिज्ञासु तीनों लोकों के लाभ को जीतकर, तीनों गुणों से मुक्त होकर, स्वरूप में स्थित हो रहे हैं।

(साधु महिमा महातम)

दादू मैं दासी तिहि दास की, जिंहि संगि खेलै पीव।
बहुत भांति कर वारणै, ता परि दीजै जीव ॥७६॥

टीका :- अपने को उपलक्षण करके ब्रह्मऋषि गुरूदेव उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हम सभी जिज्ञासु, उन ब्रह्मनिष्ठ संतों के सेवक हैं जिन्होंने स्वस्वरूप को, साक्षात्कार कर लिया है, ऐसे ब्रह्म परचे संतों की हम किस प्रकार वन्दना करें ? क्योंकि अब हम तो, सर्वस्व, उनके चरणों में न्यौछावर करते हैं।

दोहा :- साधु ऐक चोपाड़ में, उतर्यो लोक समाज।
मारन उठे असुर दोइ, मैं नरसिंह तब काज ॥७६॥

दृष्टान्त :- एक संत एक गांव में, चौपाड़ में आकर ठहरे। बहुत से गांव के लोग बैठे थे। उनमें से कई लोग संत को बोले :- यहां से उठ जा। दूसरी जगह बैठे, तो फिर बोले :- यहां से भी उठ जा। ऐसे तंग करने लगे। उन्हीं में से फिर दो असुर, महातमा को मारने को खड़े हो गये। इतने में ही, तीसरे पुरूष में परमेश्वर प्रगट हो गये और वह बोला :- हे राक्षसों ! यह महातमा तो प्रहलाद है और तुम हिरणाकुश हो और मैं नरसिंह हूं। तुम्हारे को चीर कर डाल दूंगा। इस प्रकार परमेश्वर, अपने अत्मीयजनों की रक्षा करने को, तत्पर रहते हैं। जो परमेश्वर के साथ खेलते हैं, उन भक्तों की परमेश्वर रक्षा करते हैं।

दोहा :- सालेरी तन मन तज्यो, हरि संता के भाव।
ता पुण्य परताप से, लंकापति कै जाव ॥७६॥

दृष्टान्त :- एक संतों की मण्डली नगर में पहुंची। सतसंग होने लगा। एक भक्त ने खीर की रसोई का संतों को सामान दिया। भंडारी एक पेड़ के नीचे खीर बना रहा था। ऊपर से काला सांप, खीर के कढाव में गिर गया। भंडारी को यह पता नहीं चला। उसी पेड़ पर एक सालेरी (गिलहरी) यह देख रही थी। गिलहरी ने सोचा, संत खीर खाएगें, तो सब मर जायेगें, इन संतों की जान किस प्रकार में बचाऊं ? जब संत लोग, जीमने को पंगत लगाई, तब उनके देखते देखते ही सालेरी, खीर के कढाव में कूद गई। संत लोग कहने लगे, अब तो यह खीर, अपने काम की नहीं है। इसको जमीन में गिरा दो, कोई पशु खा लेंगे। ज्यों ही खीर को जमीन में गिराया, तो काला नाग कढाव के पींदे में निकला। संत लोग विचार किया कि इस सालेरी ने हमारी जान बचाई है। तब सभी संतों ने उसको वरदान दिया कि जा, तेरे को ऐसा पति मिलेगा, जो राम के बिना, उसे कोई नहीं मार सकेगा। उन संतों के वरदान से वह सालेरी एक राज कन्या बनी। फिर वह वैराग्य को प्राप्त होकर, तप करने चली गई। जिस जंगल में ऋषि मुनि रहते थे, वहीं वह रहने लगी और ऋषि मुनियों की सेवा करती। जहां ऋषि मुनि रहते थे, वह जंगल बाली के कब्जे में था। बाली ऋषियों की देख रेख किया करते थे, अर्थात् राक्षसों से रक्षा किया करते थे। एक रोज एक मुनि ने स्वप्न दोष के कारण, अपनी कोपीन उतार कर रख दी, और फिर दूसरी कोपीन धारण कर ली। वह कोपीन वैसे ही पड़ी रही। सवेरे स्नान करके पूजा में बैठ गये। कोपीन धोना भूल गये। जब पूजा से उठे, यह लड़की आकर नमस्कार किया। आपने कहा :- यह कोपीन धो ला। लड़की ने कोपीन धोई। दाग न छूटा तो, दातों से पकड़ कर दाग छुड़ाने लगी। फिर कोपीन ला कर सुखा दिया। लड़की को हमल रह गया। कुछ दिनों में ऋषियों को बड़ी भारी चिन्ता हो गई कि यह विधाता क्या हुआ ? अब तो यह लड़की हमारे पास रहने के लायक नहीं। किसी के साथ इसको कर दें। हमारी रक्षा बाली करता है, बाली को ही दे दें, तो यह राज रानी होगी। इतने में मैदानव आ गया। कहने लगा :- लाओ, कर दो, तुम रावण के राज में रहते हो। ऋषियों ने कहा :- हमारे पास, कर देने को कुछ भी नहीं है। इतने में वह राज कन्या आ गई। मैदानव बोला :- यह कौन है ? ऋषि :- यह राज कन्या है। बोला :- मैं इसे ले जाऊंगा। ऋषियों ने कहा, कि अच्छा तुम ले जाओ ! वह उस राज कन्या को लेकर, लंका की ओर चला। पीछे से बाली आ गया। ऋषि लोग बोले :- बाली तुम्हारे लिए, हमने बहुत अच्छी चीज रखी थी, परन्तु वह मैदानव अभी ले गया। बाली ने तुरन्त, मैदानव को रास्ते में घेर लिया और उस लड़की का हाथ पकड़ लिया। एक हाथ मैदानव ने पकड़ लिया। बाली ने कहा :- मेरी चीज है, मेरे लिये रखी थी ऋषियों ने। मैदानव:-मैं कर में लाया हूं, इसको। दोनों आपस में, उसको खींचने लगे। ब्रह्मा जी ने यह देखकर संकल्प किया कि एक की दो हो जाओ। दो बन गई। बीच में अंगद पैदा हो गया। बाली जबरदस्त था, इसलिए वह उस लड़की को और अंगद को, दोनों को ले आया। वही बाली की रानी तारा कहलाई और उस पुत्र का नाम अंगद पड़ा। दूसरी मैदानव ले गया, जो ब्रह्मा के मन से पैदा हुई, इसलिये उसका नाम मन्दोदरी पड़ा। मैदादव वृद्ध था। वह उसको पुत्री मानकर, रावण के साथ, उसकी शादी कर दी और पुष्पक विमान जो कुबेर को जीत कर, मैदानव लाया था, वह उसको दहेज में,

रावण को दे दिया। वही सालेरी संतों के वरदान से लंकापति को प्राप्त हुई, और उस लंकापति की मृत्यु राम के द्वारा हुई।

जो संत परमात्मा के साथ में भक्ति रूपी खेल खेलते हैं, उनपर सालेरी ने अपने आप को न्यौछावर कर दिया।

(भ्रम विध्वंसण)

दादू लीला राजा राम की, खेलै सबही संत।
आपा पर एकै भया, छूटी सबै भरंत ॥७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राजा तो राम जी हैं और उनके सच्चे भक्त संत, राम की लीला कहिए, भक्ति रूपी खेल, भेद भाव, ऊंच नीच, छोड़कर, भक्ति भाव द्वारा, ब्रह्म भावना होने पर, अपना पराया का भेद भाव और कर्त्तव्य आदिक की भावना त्यागकर, 'एक भये', अर्थात् ऐसे ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्म रूप ही होते हैं। इसलिये संतों को सर्वत्र एक आत्म भाव ही भासता है।

दोहा :- टौंक पधारे महोरच्छै, आप लगायो भोग।
तब सिख पूछी जब कही, या साखी इहि जोग ॥७७॥

दृष्टान्त :- टौंक में माधोकाणी नाम के एक बैरागी निरपक्ष संत रहते थे। वह अपने गुरू का भंडारा किया। ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज को आप जाकर, भंडारे में पधारने को आप आमंत्रित किये। उनका प्रेम देखकर महाराज ने स्वीकार कर लिया। जब महाराज टौंक पधारे, तो माधोकाणी ने ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज की गाजे बाजे से अगवानी करी। उस भंडारे में जितनी रसोई बनी थी, उससे कई गुना ज्यादा जीमने वाले संत भक्त आ गये। माधोकाणी को चिन्ता हुई कि अब इसमें कैसे पूरा होगा ? तब वे बैरागियों के बड़े बड़े महन्तों के पास गये, जो भंडारे में आये हुए थे और बोले :- इसी समान में पूर्ति हो जाये, ऐसी दया करो। बैरागी बोले :- तुम दादू दयाल जी को ईश्वर मानते हो, उनके ही पास जाओ। तब माधोकाणी ब्रह्मऋषि के पास आकर प्रणाम किया। उपरोक्त सब वृत्तान्त सुना दिया। ब्रह्मऋषि बोले :- राम जी चिन्ता नहीं करना। आप जैसे सच्चे निरपक्ष संतों के, सब काम रामजी पूरा करेंगे। परमगुरू देव भंडार में पधारे और आप भगवान के भोग लगाया, और पड़दा डाल दिया। राम जी ने अटूट रिद्धि कर दी। वह भंडारा सात दिन तक अखण्ड चला। इस लीला को देखकर सब चकित हो गये। सब लोगों ने फिर कहा कि दादू दयाल ऐसे महापुरूष हैं तो इस मेले में सबको अपने हाथ से प्रसाद दें। तब

ब्रह्मऋषि काली मीर्च और लौंग का एक मुट्ठा भरा और यह संकल्प किया कि हे राम जो ! सबकी इच्छा पूर्ति, आप ही करते हो, यह कहकर, लोंग काली मिर्छ का मुट्ठा, हाथ घूमाकर मेले में फेंका । सभी मनुष्यों को यह भान हुआ कि दादू दयाल मानो, मेरे पास ही खड़े, मुझे प्रसाद दे रहे हैं । इस प्रकार माधाकार्णी के सब काम राम जी ने पूरे किये । जब ब्रह्मऋषि के शिष्यों ने प्रश्न किया कि गुरुदेव ! ये आपने माधोकर्णी के सब काम पूरे किस लिये किए? वह तो बैरागी साधू थे । तब शिष्यों को उपरोक्त साखी से उपदेश किया कि जो आपा अभिमान से रहित, मत मतान्तरों के पक्ष से अलग निरपक्ष होकर, परमेश्वर की भक्ति करते हैं, वह सभी संत एक रूप हैं उनमें, मैं तूं का भेद भाव नहीं होता । वही सच्चे राम के भक्त हैं । इसलिये हमने राम जी की आज्ञा से, उनका काम पूरा किया ।

(जग जन विपरीत)

दादू आनंद सदा अडोल सूं, राम सनेही साध ।
प्रेमी प्रीतम कूं मिलै, यहु सुख अगम अगाध ॥७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे मुक्त ब्रह्मवेत्ता संतजन, काल कर्म गुण विकार से रहित, अचल उस एक परमेश्वर में लय लगाकर, ब्रह्मानन्द में निरन्तर मग्न रहते हैं, क्योंकि जिज्ञासुजनों को परमात्मा से मिलने का, एवं स्वस्वरूप प्राप्ति का सुख, सीमा रहित है ।

(पुरुष प्रकासिक)

यहु घट दीपक साध का, ब्रह्म जोती परकास ।
दादू पंखी संतजन, तहां परैं निज दास ॥७९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत भक्तों का, यह स्थूल शरीर ही दीपक है और भक्ति वैराग्य आदि इसमें तेल है । शुद्ध वृत्ति रूप बत्ती इसमें लगी है और ब्रह्मज्ञान रूप ही इस दीपक की ज्योति है । और उत्तम मुमुक्षु पुरुष ही पतंग रूप से वहां उनकी शरण में आकर, ज्ञान सम्पादन करके, ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं ।

घर बन मांहैं राखीये, दीपक जोती जगाइ ।
दादू प्राण पतंग सब, जहं दीपक तहं जाइ ॥८०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेत्ता पुरुष प्रारब्ध वश उनका शरीर, चाहे प्रवृत्ति मार्ग में रहे, अर्थात् ग्रहस्थ आश्रम में रहै, या निवृत्ति मार्ग में विरक्त रहै, परन्तु उनमें ब्रह्म ज्योति का प्रकाश, प्रकासित रहता

है। उस ज्योति के प्रेमी, उत्तम साधक पुरूष, मल विक्षेप रहित, उनकी शरण में जाकर, आतम भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

घर बन मांहि राखिये, दीपक जलता होइ।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलैं सब कोइ ॥८१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! उपरोक्त अर्थ को ही पुन: दिखलाते हैं कि ब्रह्मवेत्ता मुक्त पुरूष, चाहे घर में हों या बन में, उनकी ब्रह्मज्ञान रूप ज्योति में, पांचों ज्ञान इन्द्रिये, मन और प्राण, यह सभी ब्रह्म चिन्तन करते करते, ब्रह्मरूप हो जाते हैं।

घर बन मांहै राखिये, दीपक प्रगट प्रकास।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलै उस पास ॥८२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! वह सच्चे मुक्त पुरूष, उनको चाहे घर में रखो या बन में, परन्तु उनमें ब्रह्मज्ञान रूपी दीपक प्रकाशता है। उत्तम संत, साधक, जहाँ भी कहीं होतें हैं, वे वहां से उनकी शरण, में आकर, उनके ज्ञान को सम्पादन करके, उनके स्वरूप ही बन जाते हैं, अर्थात् ब्रह्मरूप ही हो जाते हैं।

घर बन मांहैं राखिये, दीपक जोति सहेत।
दादू प्राण पतंग सब, आइ मिलै उस हेत ॥८३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! वह सच्चे निरपक्ष ब्रह्मवेत्ता संत, उनका शरीर घर में रहे या बन में, परन्तु ब्रह्म ज्योति सहित होवे, तो उत्तम साधक जहां भी कहीं होगें, वे वहां से मुक्त होने की वासना लेकर, वहीं उनकी शरण में आकर, ज्ञान सम्पादन करके, ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जायेगें।

जिहिं घट प्रगट राम है, सो घट तज्या न जाइ।
नैनहु मांहैं राखिये, दादू आप नसाइ ॥८४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! जिन सच्चे संत भक्तों के हृदय में, निर्गुण ब्रह्म, आत्म स्वरूप से प्रगट हो रहे हैं उनको अपने नेत्रों में धारण करिये। उनकी शरण नहीं त्यागिये और अपने आपा कहिए, अनातम अहंकार का त्याग करके, उन संतों की दया से जो ब्रह्मस्वरूप साक्षात्कार होवै, उस आनन्द को अन्तःकरण में राखिये। जरना करिए। अहंकार भाव से प्रगट नहीं करना।

जिहिं घटि दीपक राम का, तिहिं घटि तिमिर न होइ।
उस उजियारे जोति के, सब जग देखै सोइ ॥८५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन सच्चे मुक्त पुरुषों के हृदय में, निर्गुण राम रूप दीपक, आतम स्वरूप से प्रगट है, उनके अन्तःकरण में तमोगुण का लेशमात्र भी विकार नहीं रहता है। ज्ञानरूप ज्योति के उजियारे में, वे सब जगत को ब्रह्ममय देखते हैं।

(साधु अबिहड़)

कबहुं न बिहड़ै सो भला, साधु दिड़ मति होइ।
दादू हीरा एक रस, बांधि गांठड़ी सोइ ॥८६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मुक्त पुरुष अपनी वृत्ति को, आतम स्वरूप से फिर अनात्माकार न होने दे, वह साधक दृढ़मति है। हीरा रूपी ब्रह्म अभ्यास को एक रस कहिए, धारण करके रहै, अर्थात् ऐसे साधक ही जीवन मुक्त कहे जाते हैं।

(साधु पारख लक्षण)

गरथन बांधै गांठरी, नहीं नारी सौं नेह।
मन इंद्री स्थिर करै, छाड़ि सकल गुण देह ॥८७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! धन को ऐसे संचित न करै, जो न खावे और न खाने दे, और जमा करता रहै। नारी से नारीभाव करके प्रीति नहीं करै, और अपने मन इन्द्रियों को अपनी आत्मा में स्थिर करके, शरीर के सम्पूर्ण गुण विकारों का त्याग करै, वही उत्तम पुरुष है।

निराकार सौं मिलि रहै, अखंड भक्ति कर लेइ।
दादू क्यौं कर पाइये, उन चरणों की खेइ ॥८८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मुक्त पुरुष निराकार की अखंड उपासना में मग्न रहते हैं, ऐसे संतों के चरणों की रज, भाग्य से ही प्राप्त होती है और उन्हों की बाणी तथा क्रिया की दृष्टि, रहन सहन आदि मुमुक्षुओं को, परम सौभाग्य से ही प्राप्त होवै है, तब वह जीव व्यवहार में दक्ष होता है।

समाचार सत पीव का, कोइ साध कहैगा आइ।
दादू सीतल आतमा, सुख में रहै समाइ ॥८९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर प्राप्ति के सत्य समाचार अर्थात् साधन, आत्म उपदेश, कोई बिरले संत ही कहते हैं । जिनके श्रवण से अन्तःकरण, निदिध्यास द्वारा, आत्मा आनन्द रूप सुख में ही लीन रहता है ।

साध सबद सुख बर्षहि, सीतल होइ शरीर ।
दादू अन्तर आत्मा, पीवै हरि जल नीर ॥९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त ब्रह्मवेत्ता संतों की बाणी द्वारा, आत्मा आनन्द की वृष्टि होती है तथा सच्चा और शुद्ध व्यवहार की भी वृष्टि होती है । और फिर जिज्ञासुओं की बुद्धि व्यवहार में दक्ष होकर, आत्मा परायण कहिए निष्काम स्मरण करके, ब्रह्मानन्द में मग्न रहती है ।

(साधु लक्षण)

साध सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ ।
दादू पंख परसै नहीं, कर्मन लागै कोइ ॥९१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम के सच्चे भक्त संत, सदैव निर्वासनिक होते हैं । उनको पापरूपी कीचड़ स्पर्श नहीं करता है और कर्मों के बन्धन से भी, वे मुक्त रहते हैं । क्योंकि निष्काम राम का स्मरण करके, वे फिर रामरूप हो गये हैं ।

साध सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ ।
सुंनि सरोवर हंसला, दादू बिरला कोइ ॥९२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह सच्चे संत मुक्तपुरुष, निर्विकल्प ब्रह्मानन्द रूप सरोवर के हंस, इस संसार में कोई बिरले ही होते हैं । उनका दर्शन और सतसंग, जीवों को भाग्य से ही प्राप्त होता है ।

साहिब का उणहार सब, सेवक मांहैं होइ ।
दादू सेवग साध ~~सौं~~ विच, दूजा नांही कोइ ॥९३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत राम के सेवक, मुक्त पुरुष, निर्गुण निर्विकल्प स्वरूप और शील कहिए ब्रह्मचर्य, जरणा, कोमलता, सरलता आदि स्वभाव, यह परमेश्वर के गुण, मुक्त पुरुषों में, स्वभाव से ही प्रगट रहतें हैं । ऐसे सेवक स्वामी, परमेश्वर रूप होकर, फिर वह परमेश्वर की ही महिमा गाते हैं । ऐसी स्थिति में सेवक स्वामी में, कोई भेदभाव नहीं रहता है ।

दोहा :- मारवाड़ में कोई नृप, बाट्यौं सब को धान ।
तासु इक चारण कहि, नर नारी सुत जान ॥९४॥

दृष्टान्त :- मारवाड़ में एक राजा ने नगर में सभी गरीबों को धान, खाने के लिये बटवाया । एक चारण कवि, धान लेने नहीं आये । तब राजा राजकुमार को बोले :- एक बैलगाड़ी धान की भरके, उनके घर तुम डाल आओ । राजकुमार धान की बैलगाड़ी भरकर, चारण के घर डाल दी और बोले :- धान पिता जी ने दिया है और बैलगाड़ी मैं अपनी तरफ से दान करता हूं तब बारठ जी बोले :-

दोहा :- पंगा जतेहि पाण, पुण्य पाणी पहलै पीवै ।
पंगु जतेहि पाण, पीयो चाहै मालवणी ॥

बेटो बाप तणा है, चीलां जे चालै नहीं ।
जननी ताही जणा, बुरी कहावै बैरीसल ॥

धन्य हो ! जो धर्मनिष्ठ बाप और मां, उनकी रहणी सहणी पुत्र में होवै, वही पुत्र धन्य है । और जो बाप के आचरण, पुत्र में नहीं आवै, बैरीसल जी कहते हैं कि उसकी जननी कहिये उसकी माता, जन्म देकर बुरी कहलाती है ।

दादू जब लग नैन न देखिये, साध कहैं ते अंग ।
तब लग क्यौं करि मानिये, साहिब का परसंग ॥९५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक अपने अन्तःकरण में मुक्त पुरूष, ब्रह्म प्राप्ति के साधन, जो विवेक वैराग्य आदि बतलाते हैं, वह तुम अपने विचार रूपी नेत्रों से नहीं देख लो, तब तक परमात्मा का, अपने आपको साक्षात्कार हुआ है, यह नहीं मानना ।

दादू सोइ जन साधु सिध सो, सोइ सकल सिर मौर ।
जिंहि के हिरदै हरि बसै, दूजा नाहीं और ॥९६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सोई तो भक्त है, सोई साधु है और वही सिद्ध और वही सत्यवादी है । वही सच्चा सूरवीर है जिसने मन इन्द्रियों को निग्रह करके, अन्तःकरण में परमेश्वर की लय लगाई है और उनमें फिर किंचित भी, द्वैत भाव नहीं आता । ऐसे संत, सर्व शिरोमणि हैं ।

दादू औगुण छाड़ै गुण गहै, सोई सीरोमणि साध ।
गुण औगुण थैं रहित है, सो निज ब्रह्म अगाध ॥९७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत, संसारीक अज्ञानी जीवों में, उनके औगुण दूर्गुणों का त्याग करते हैं और उनके कुछ सारग्राही दृष्टि से, गुण को लेते हैं, ऐसे संत ही मानव समाज में सबके शिरोमणि आदर्शनीय हैं । गुण और अवगुण दोनों से जो मुक्त हो गये, वह तो ब्रह्म की ही मूर्ति हैं ।

सारग्राही पक्ष में, जो पुरूष, काम क्रोध आदिक औगुणों का त्याग कर, निर्विषय होकर, सत्य, संतोष, श्रद्धा आदि सद्गुणों को धारें, वही शिरोमणि साधु है और जो भाग्यशाली गुणातीत स्वस्वरूप में मग्न रहते हैं, वे तो ब्रह्म ही हैं, उन्हों की तो अपार महिमा है ।

दोहा :- रोम रोम चक्षु गुनन को, ओगुन लोचन अंध ।
स्वांती बूंद से काम है, पर्यौ रहो जल सिंध ॥९७॥

दोहा :- गुण ग्राही ऐक नृप हो, औगुण लेतो नांही ।
मरे स्वान को देखकर, दांत सराये तांही ॥९७॥

दृष्टान्त :- एक राजा थे । वह संतों की सेवा और सतसंग किया करते थे । एक संत बोले :- राजन् ! तुम सब जीवों में से गुण ले लिया करो । उसके औगुण उसमें ही छोड़ दिया करो । फिर राजा सबमें से गुण ही लेता, कोई दोष होता तो वह उसी में छोड़ देता । एक रोज मंत्री राजा की परीक्षा करने को नगर के बाहर, जिधर एक कुत्ता मरा सड़ रहा था । राजा को उधर ले गया । मंत्री ने कुत्ते की दुर्गन्धि से, अपना नाक बन्द कर लिया और बोला :- कि राजन् ! इसने पहले जन्म में न मालूम, कौनसे कुकर्म किये थे, जिससे कुत्ता बना और फिर कुत्ता बनकर भी, इसने सबको तकलीफ ही पहुंचाई, और अब मरकर भी, सबको दुर्गन्धि से दुख ही देता है । राजा बोले :- मंत्री जी ? यद्यपि सत्य है, तथापि इसके दाँत देखो, मरे हुए के भी कैसे सुन्दर दिखते हैं । मंत्री, राजा के चरणों के चरणों में नत मस्तक हो गया । राजा बोले :- मंत्री ! संसार गुण औगुण से भरा हुआ है । सारग्राही पुरूष, इसमें गुण ही लेते हैं ।

(जग जन विपरीत)

दादू सिंध्व फटीक पाषाण का, ऊपरी ऐकै रंग ।
पानी मांहैं देखिये, न्यारा न्यारा अंग ॥९८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे भक्त संत, सैंधव नमक के समान आपा रहित होते हैं। जैसे सैंधव पानी में, एक रूप हो जाता है, वैसे ही निष्कामी भक्त भी, परमेश्वर का नाम स्मपण करते करते, परमेश्वर रूप हो जाते हैं। और बिलोरी पत्थर सैंधव के समान चमकीला है, परन्तु जल में पड़ा हुआ भी, कभी भी जलरूप नहीं होता है। ऐसे ही अज्ञानी संसारीजज, ऊपर से तो सज्जन दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु नाना प्रकार के आपा अहंकार से युक्त रहते हैं। वह सतसंग रूपी जल में चाहे कितने ही रहैं, परन्तु परमेश्वर के साथ वे, एक रूप नहीं, होते। जन्म मरण में हीं जाते हैं।

दादू सींधव कै आपा नहीं, नीर खार परसंग।
आपा फटक पाखाण कै, मिलै न जल कै संग ॥९९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सैंधव, आपा रहित है, और जल भी आपा रहित है। दूध में जल गिरते ही, दूध अपना रूप उसे दे देता है, ऐसे ही सैंधव जल रूप हो जाता है। परन्तु चमकीला पत्थर आपा सहित कठोर है। वह जल के साथ अभेद नहीं होता। इसी प्रकार सच्चे संत अनात्म आपा रहित, परमेश्वर में अभेद हो जाते हैं और अज्ञानी संसारीजन आपा सहित, राम राम करते हुए भी, जन्म मरण में जाते हैं।

दादू सब जग फटक पाखाण है, साधु सींधव होइ।
सींधव ऐकै व्है रह्या, पानी पत्थर दोइ ॥१००॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण जगत् के अज्ञानी, विषयी, पामर, सकामी पुरुष, बिलोरी पत्थर के समान आपा अहंकार सहित हैं, और तत्ववेत्ता मुक्त पुरुष, अनात्म आपा अहंकार से रहित हैं, सैंधव नमक के समान। वे परमात्मा का स्मरण करते करते परमात्मा रूप हो जाते हैं। ओर उपरोक्त अज्ञानी भेदवादी संसारीजन, पानी पत्थर की तरह, परमात्मा से अलग ही, जन्म जन्मान्तरों में भ्रमते रहते हैं।

(साधु परमार्थी)

को साधुजन उस देस का, आया इहि संसार।
दादू उसको पूछीये, प्रीतम के समाचार ॥१०१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कोई मुक्त पुरुष ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्म देश के, इस संसार में जीवों के कल्याण अर्थ आये हैं, उनको प्रीत्तम प्यारे परमेश्वर को, मिलने के साधन रूप समाचार उनसे पूछिये। वह मुक्तपुरुष, उत्तम साधकों को आत्म उपदेश देकर, परमात्मा के सन्मुख करेंगे।

दादू दत्त दरबार का, को साधु बांटै आइ ।
तहां राम रस पाइये, जहं साधू तहं जाइ ॥१०२॥

टीका :— हे जिज्ञासुओ ! परमात्मा के दरबार का, ज्ञान ध्यान आत्म उपदेश रूपी धन, कोई ब्रह्मवेत्ता पुरूष ही, जीवों का कल्याण करने को, इस संसार में आकर बांटते हैं। अर्थात् आत्म उपदेश करते हैं। उत्तम जिज्ञासु उनकी शरण में जाकर, आत्म उपदेश का सम्पादन करते हैं।

(चौंप चरचा)

दादू सुरता सनेही राम का, सो मुझ मिलवहु आणि ।
तिस आगै हरि गुण कथों, सुणतन करई काणि ॥१०३॥

टीका :- स्वयं को उपलक्षण करके, ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज, आप कहते हैं, परमेश्वर से, कि हे परमेश्वर ! हमें कोई जिज्ञासु मिलै तो, आपका ही अनन्य भक्त मिलै क्योंकि उसको आपके ज्ञान ध्यान की वार्ता कहैं तो, सुणने में आलस्य और संसार की लज्जा नहीं करै। सत्य उपदेश का मनन निदिध्यास रहै।

(साधु परमार्थी)

दादू सबही मृत्तक समान हैं, जीया तब ही जाण ।
दादू छांटा अमी का, को साधु बाहै आण ॥१०४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्व ही अज्ञानी संसारीजन, स्वस्वरूप के तरफ से मरे हुए हैं, अर्थात् विषयों में और सकाम कर्मों में आसक्त हो रहे हैं। सौभाग्य से यदि ब्रह्मवेत्ता संत आत्म उपदेश रूपी अमृत बरसावें तो, जीव स्वस्वपरूप में प्रवृत्त होकर, सजीवन भाव को प्राप्त होते हैं।

सबही मृत्तक व्है रहै, जीवैं कौन उपाइ ।
दादू अमृतराम रस, साधू सींचै आइ ॥१०५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्व ही संसारिक अज्ञानी प्राणी विषया आसक्त, मृत्तक तुल्य हैं। उनके जीने का, कोई भी उपाय नहीं है। केवल ब्रह्मवेता संतों के आत्म उपदेश ही, उनके एक जीने का उपाय है। यदि वह मुक्त पुरूषों की शरण में जावें, तब ही उनका, कल्याण हो सकता है।

सबही मृतक मांहि हैं, क्यों कर जीवै सोइ ।
दादू साधु प्रेम रस, आणि पिलावै कोइ ॥१०६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्व ही संसारीजन, जन्म मरण के मार्ग में हैं । यह बहिर्मुख अज्ञानी, इस प्रकार कैसे जीवेंगे ? कोई परोपकारी मुक्त पुरूष, निष्कामी संत, दया करके अपने उपदेशों द्वारा, राम का भक्ति वैराग्य रूपी अमृत पिलावैं, तो ही जी सकते हैं ।

सब ही मृत्तक देखिये, किहिं विधि जीवैं जीव ।
साध सुधारस आणि करि, दादू बरसै पीव ॥१०७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक प्राणी, विषय आसक्त अधिकतर, सभी मृत्तक तुल्य हैं । यह बहिर्मुख जीव किस प्रकार जीवन भाव को प्राप्त होवें ? यदि ईश्वर की कृपा हो और ब्रह्मवेत्ता, सच्चे संतों की कृपा होवै, तब तो यह जीव सजीवन भाव को प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं । परन्तु संत कृपा तभी होती है, जब यह जीव उनकी शरण में जाय, तब वह आतम उपदेश द्वारा, ब्रह्म ज्ञानमय पिलाते हैं ।

हरि जल बरसै बाहिरा, सूकै काया खेत ।
दादू हरिया होइगा, सींचणहार सुचेत ॥१०८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरुष बहिर्मुखी है, अर्थात् बहिरंग निसिद्ध कर्मों में आसक्त है, तो आतम उपदेश भी उसको निष्फल है । और सकाम तप, व्रत, बहिरंग साधनों से शरीर कृस होता है । परन्तु जो साधक निष्काम कर्म करने वाला, ईश्वर वाक्य और गुरू वाक्य में सावधान होकर, अन्तःकरण में शमदम और वेदान्त श्रवण मनन के द्वारा, ब्रह्म भाव को प्राप्त होते हैं । उनका काया रूपी खेत, देवी सम्पत्ति से, सदैव हरा भरा रहता है ।

(कुसंगती)

गंगा यमुना सुरसति, मिलै जो सागर मांहि ।
खारा पानी हो गया, दादू मीठा नांहि ॥१०९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे गंगा यमुना का जल मीठा है, परन्तु खार समुद्र का संगम होते ही उनका जल खारा हो जाता है । इसी प्रकार सच्चे साधु जनों का अति निर्मल अन्तःकरण भी, कुसंगति से मीठा कहिए, स्वस्वरूप ब्रह्म को बिसार कर, बिकारी हो जाता है । इसलिए उत्तम पुरुषों को सदैव, ब्रह्मवेत्ता

संतों की संगति में ही रहना चाहिये । अथवा इडा, पिंगुला, सुष्मना तीनों सुर, गंगा, यमुना सरस्वती के समान हैं । ये तीनों सुर संतों के सफल हैं, क्योंकि प्राणायाम और स्वांस पर स्वांस, 'सोहं' जाप के सार्थक हैं । परन्तु संसारी जनों के तीनों स्वर, कुसंग से 'खारा' कहिए, उनको संसार बंधन के ही कारण हैं ।

दादू राम न छाड़िये, गहिला तज संसार ।
साधु संगती सोधि लै, कुसंगति संग निवार ॥११०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! हे बावले ! हे भोले प्राणी ! इस संसार मोह को तज और राम का भजन कर । क्योंकि इस संसार प्रेम में, राम का स्मरण नहीं छोड़ना । इसको त्यागने का क्या साधन है ? सो कहते हैं कि साधु संगति प्राप्त कर ले, और कुसंगति को त्याग दे ।

दोहा :- निसकामी सेवक कही, सुख दुख सुनीयो नांइ ।
मोडे घोड़ी के कनैं, धोती दई सुखाइ ॥११०॥

दृष्टान्त :- एक संत घूमते घूमते एक गांव में, एक भक्त के यहां गये और बोले :- भक्त ! अबके चर्तुमास तेरे यहां ही ठहरेंगें । भक्त निष्कामी सच्चा परमेश्वर का सेवक था । वह बोला :- महाराज ! और किसी भक्त के यहां ठहर जाओ । संत बोले :- नहीं, तुम्हारे ही ठहरेंगें । भक्त बोले :- "कि हम गृहस्थी हैं । हमारे सुख दुख आते ही रहते हैं, आप हमारे सुख दुख में शामिल नहीं होवें, तो ठहरो" । संत :- भाई ! हम नहीं होगें । सतसंग होता रहा । संत, भजन पाठ करतें और सतसंग करते रहे । एक रोज भक्त की घोड़ी, चोर चुरा कर ले गये । घर में विचार करने लगे कि हजार रूपये कि घोड़ी, चोर ले गये आज । संत के भी कानों में यह आवाज आ गई । मन में संत ने यह विचार किया कि घोड़ी तो आ जानी चाहिये, जहां भी हो वहां से । संत जंगल में घूमने गये । घोड़ी जो चोर ले गये थे, उन चोरों का लड़का, घोड़ी की रस्सी पकड़ कर पानी पिलाने ले जाता था । घोड़ी उससे छुड़ाकर, दौड़ी हुई आ रही थी । संत को देखकर घोड़ी हिनहिनाने लग गई । संत ने घोड़ी को तालाब पर लाकर छोड़ दी और स्नान करके अपनी धोती, बड़ की डाली पर सुखा दी । घर आ गये । विचार किया मन में, कि धोती लेने भक्त को तालाब भेजूं, तब घोड़ी देख लेगा, तो पकड़ कर ले आवेगा । तब भक्त को बुलाकर बोले:-भाई ! हमारी धोती तालाब के किनारे, सुख रही है, आप ले आओ । तुरन्त गया । धोती उठाई और घोड़ी भी चर रही थी, उसको पकड़ कर ले आया । घोड़ी को ठिकाने बांधकर, संत से भक्त बोला :- महाराज ! अब आधा चोमासा, किसी ओर भक्त के यहां कर लेना । क्यों भाई ? भक्त :- आपकी मेरी क्या बात हुई थी ? संत :- सुख दुख में शामिल नहीं होना । भक्त :- तो फिर आप कैसे शामिल हो गये ? महात्मा :- हम कहां हुए ? भक्त :- घोड़ी कौन लाया ? आप ही तो लाये । महात्मा :- भाई ! हम धोती लेने, थोड़े ही

गये थे । भक्त :- आपके मन में संकल्प विकल्प हुए कि नहीं ? महात्मा :- जरूर हुए । भक्त :- इसी लिए तो घोड़ी आ गई । महाराज ! मैं कोई कामना रखकर, आपकी और परमेश्वर की सेवा नहीं करता हूं कि मेरे अन्दर किसी प्रकार की वासना उत्पन्न नहीं करना । संत :- धन्य ! धन्य ! तुम्हारी सेवा को । तुम ही सच्चे सेवक हो ।

ब्रह्मऋषि कहते हैं कि राम के भजन में कोई कामना नहीं करना ।

दादू कुसंगति सब पर हरी, मात पिता कुल कोइ ।
सजन सनेही बांधवा, भावै आपा होइ ॥१११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कुसंगति सब प्रकार से कहिए तन से, मन से, बचन से त्यागिये । चोहे माता हो कुसंग में, चाहे पिता हो, चाहे कुल बांधव हों, चाहे सज्जन हों, सनेही हों, चाहे भाई हों, भावे अपना शरीर भी कुसंग में पड़ गया हो, तो भी उसके कुसंग को, सब प्रकार से त्यागना चाहिये । अर्थात् अपने अन्तःकरण के गुण विकार, सम्पूर्ण दोषों का भी त्याग करना चाहिए । तब ही यह जीव, श्रेय को प्राप्त कर सकता है ।

दोहा :- भरत मात को तज दई, पिता तज्यो प्रहलाद ।
गोप्यां पति नुज लंकपति, अज आयो तजि साध॥१११॥

दृष्टान्त :- भरत जी ने अपनी माता कैकयी का त्याग किया । प्रहलाद ने अपने पिता, हिरणाकश्यप का त्याग किया । गोपियों ने अपने पतियों को कुमार्गी जानकर, भगवान कृष्ण की शरण में आ गई । विभिषण अपने भाई रावण का त्याग करके, राम की शरण में आया । ऐसे ही संत, अपने बहिरंग और अन्तरंग इन्द्रिये आदि परिवार को त्याग कर, आत्म परायण होते हैं ।

दोहा :- श्रवण नारी पर हरी, कुबजा तज कंसा ।
मन्दोदरी रावण तज्या, मेट्या हरि संसा ॥१११॥

दादू अज्ञान मुरख हित्तकारी, सज्जनोहि समोरिपुः ।
ज्ञात्वाहि त्यजंतिते, निरामयी मनोजितः ॥११२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी आत्मा से विमुख, और मूर्ख कहिए व्यवहार में शून्य है, और अपना शुभ चिन्तक है, तो भी वे सज्जन शत्रु के समान ही है । इसीलिए संतजन, अज्ञानी मित्र और सज्जन शत्रु को समान जानकर, शुद्ध बुद्धि वाले पुरुष, उन्हों का संग नहीं करते हैं ।

दोहा :- इक नृप बानर को कीयो, मन में अती बिसवास ।
चोर परीक्षा को करी, बानर कियो बिनास ॥११२॥

दोहा :- पंडितोहि बरं शत्रु, नच मुरखो हित कारकै ।
बानरे नै हत्थौं राजा, बीप्र चोरा न रक्षति ॥११२॥

दृष्टान्त :- एक बाजीगर ने बन्दर को पहरा देना सिखला रखा था । वह राजा के पास लाया और बोला :- यह बानर तलवार लेकर, रात भर चौकीदारी करता है । राजा ने जो कीमत मांगी वह उसे दिला दी और बन्दर को अपने महल में रात को, अपने पलंग के, पहरा देने को बांध दिया । एक रोज, एक पंडित ने विचार किया कि राजा के यहां चोरी करने चलैं । यद्यपि वह पंडित था, परन्तु उसके हाथ में चोर रेखा पड़ी थी । इसलिये उसका मन चोरी करने को किया करता था । जब राजा के चोरी करने गया, तो खजाने पर पहुंचा । फिर वहां विचार किया कि सोने के चुराने में तो बहुत पाप है, चांदी के चुराने में भी बहुत पाप है । ऐसे देखते हुआ, राज महल में पहुंच गया । वहां देखा कि बानर हाथ में नंगी तलवार लेकर, राजा के पलंग के चारों मेर घूम कर पहरा दे रहा है । ऊपर छत से एक काला सर्प, राजा की गर्दन के ऊपर पर लटक रहा है । उसकी छांया राजा की गर्दन पर पड़ती थी । बन्दर तलवार लेकर ज्यों ही राजा की गर्दन पर मारना चाहे, तो सांप अपना फन ऊपर कर ले और वह छाया हट जाय । यह खेल ब्राह्मण ने देखा । ब्राह्मण ने सोचा कि मूर्ख बन्दर, छायां को सांप समझकर राजा को मार बैठेगा, तो बड़ा अन्याय हो जाएगा । हो न हो, इस बन्दर को खत्म कर देना चाहिये । मौका पाकर, ब्राह्मण के पास भी तलवार थी । बन्दर की गर्दन पर मारी, कि दो टुकड़े हो गये । बन्दर की जरा सी पूंछ और कान का टुकड़ा काट कर जेब में रख लिया । ऊपर जो छत में सर्प था, उसको भी तलवार से मार कर, ढाल में झेल लिया और राजा के पलंग के नीजे, ढाल को उलटी करके ढक दिया । फिर वहां से चला । सोचा चोरी तो जरूर करनी चाहिए । सब चीजों में दोष देखता देखता, रसोई में पहुंचा । एक कोने में आटे का छानस पड़ा था । ब्राह्मण ने विचार किया कि पाप तो इसके चुराने में भी है । परन्तु चलो, यह तो ले ही चलैं, गाय ही इसे खा लेगी । एक गठरी बांध कर सिर पर रख ली और घर ले आया ।

सवेरे राजा ने देखा कि बन्दर मरा पड़ा है । बन्दर को मारने वाले का तलाश कराया, परन्तु कुछ पता नहीं चला । ढाल उठाई तो, नीचे मरा हुआ काला सर्प भी देखने में आया । राजा ने विचार किया, जिसने

इस सर्प को मारा है, उसी ने इस बन्दर को मारा है। डुंडी पिटवा दी कि जिसने बन्दर मारा है, वह आवें, उसको मुंह मांगा इनाम देंगे। बहुत से लोग इनाम के भूखे गये। राजा ने सबूत मांगी, तो कुछ नहीं। तब ब्राह्मण ने विचार किया, कि मैं भी चलूं। अपने सिर पर, वह छानस की पोट रखकर, दरबार में पहुंचा। राजा को नमस्कार किया और बोला मैंने बन्दर मारा है। राजा बोले :-सबूत क्या है ? तो बन्दर के कान और पूंछ, राजा के सामने डाल दिये। राजा देखकर चकित हो गये। राजा ने पूछा :- आपने बन्दर को क्यों मारा ? उपरोक्त वृत्तान्त ब्राह्मण ने सारा सुना दिया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। और उपरोक्त श्लोक बोला। ब्राह्मण को मुंह मांगी ईनाम दी और राजा जान गया कि मूर्ख का हित अनहित है और विद्वान का अनहित भी हितकारक है।

कुसंगती केते गये, तिनका नाव न ठांव।
दादू ते क्यों उधरैं, साथ नहीं जिस गांव ॥११३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कुसंग में पड़कर कितने ही अज्ञानी मूर्ख, संसारी जीव, अधोगति में चले गये हैं। उन कुसंगीयों का न तो कोई उनका नाम, न उनका ठावं, न कोई उनका गाम, सब ही उज्जड़ हो गये। जिस गांव में संत, परमेश्वर के प्यारे नहीं हैं। उस गांव का कैसे उद्धार हो सकता है ? सच्चे संतों के द्वारा ही जीव सतमार्ग को अपना कर, अपना कल्याण करते हैं। जिसके अन्तःकरण में संतों के शब्द नहीं हैं, उन जीवों का मनुष्य जन्म निष्फल ही जाता है।

दोहा :- नारद कोप्यौ संत बिन, कोप कह्यो ऐक बैन।
नगरी उबरी संत सरण, बजर सीला से चैन ॥११३॥

दृष्टांत :- नारद जी त्रिलोकी में गमन करते रहते हैं। जिस गांव में संत को नहीं देखें, तो उस गांव को वे, शराप दे देते हैं। एक नगर में वह आये, तो वहां इधर उधर कहीं संत की कुटिया दिखाई नहीं पड़ी। तब क्रोध कर नारद जी बोले :- इस गांव पर इन्द्र का बज्र पड़े। बज्र आकास से चला, गड़गड़ाहट होता हुआ। उस गांव की सीमा में एक संत की समाधि थी। वह संत तुरन्त बोले :- बज्र रूक जा। बज्र रूक गया। तब नारद जी ने देखा, बज्र कैसे नहीं पड़ा। कोई यहां संत है। ज्यों नारद जी ने ध्यान धर कर देखा तो संत जमींन में समाधि लगाये बैठे हैं। समाधि खोलकर बोले :- नारद जी महाराज, कुछ जरा ऊपर नीचे देखकर, फिर बोला करो। नारद बोला :- महाराज ! जिस गांव में संत दिखाई नहीं पड़ते, तभी मैं शराप देता हूं। आपके द्वारा इस गांव की रक्षा हो गई।

ब्रह्मऋषि कहते हैं, जिस गांव में सन्त नहीं हैं, उनका उद्धार होना, असम्भव है।

दोहा :- पर उपकारी संत हो, ग्राम तज्यों कर छोहै ।
तीन तापपुर को भई, पुनि लाये कर मोहै ॥११३॥

दृष्टान्त :- एक नगर में एक परोपकारी महात्मा रहते थे । नगरवासियों से याचना करके, आये गये भूखे प्यासे, दुखियों की सेवा सत्कार किया करते । कुछ गांव के लोग ईश्वर विमुखी कहने लगे कि तुम गांव से चले जाओ । गांव को लूट लूट कर, दुनियां को खिलाते हो । महातमा चले गये । गांव के ऊपर तीन ताप, अध्यात्म, अधिभौतिक, अदिदेव आकर पड़ी । गांव के सब लोग घबरा उठे । विचारशील लोगों ने कहा कि सुख चाहते हो तो, उन्हीं महातमा को वापिस लाकर बसाओ । वह परोपकारी जनसमुदाय की सेवा करने वाले, ईश्वर रूप हैं । जब गांव के लोग उनके पास जाकर, अपना अपराध क्षमा चाहा और लाकर गांव में बसाये, तो तीनों ताप शान्त हो गये ।

भाव भक्ति का भंग करि, बटपारे मारहिं बाट ।
दादू द्वारा मुक्ति का, खोले जड़े कपाट ॥११४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बंचक, छली, असतयमार्गी, परमेश्वर के भाव और भक्ति को त्यागकर, बटपारे (डकेती करने वाले) पथिकों को लूटने वाले, ऐसे असुरों को देखकर मुक्ति का द्वार खुला हुआ भी, बन्द हो जाता है ।

अर्थात् बंचक पुरुष भाव भक्ति को मिटाकर, विषय वासना में भटकाते हैं और ब्रह्मवेत्ता संतों के सतसंग में आने वालों के लिये, मोक्ष द्वार खुलता है और सम्पूर्ण कर्म बन्धन कट जाते हैं ।

दोहा :- साधु संगती होत ही, मुक्त मुक्ति के पाट ।
जगन्नाथ अति अगम सो, सुगम होत हरि बाट॥११४॥

दोहा :- जसवन्त नृप दिया कढाइ, मुरधर से सब भेख ।
दास नारायण जी कही, थैली नाना पेख ॥११४॥

दृष्टान्त :- जोधपुर के राजा जसवन्त सिंह ने, किसी पाखण्डी भेखधारी साधु के अपराध पर रूष्ट होकर, मारवाड़ से सभी भेखधारी साधुओं को निकाल दिये । जो अच्छे संत थे, वह महाराज नारायण दास जी दादू दयाल जी के पोता शिष्य थे । उनके पास जाकर बोले कि आपका शिष्य जसवंत सिंह राजा, सब

साधुओं को, एक पाखण्डी की गलती पर सबको निकाल दिये । महाराज बोले :- चिन्ता मत करो । राजा अब ठीक हो जाएगा । आप जोधपुर पधारे । राजा गुरु जी की अगवानी करने आया और महलों में ले जाकर ठहराये । नारायण दास जी महाराज बोले :- दो थैली रूपयों की चाहिए । राजा ने खजानची को हुक्म दिया कि दो थैली गुरू महाराज के पास ला दो । गुरू महाराज खजानची को बोले :- दोनों थैलियों में, एक एक खोटा रूपया डाल लाना । दो थैली आ गई । महाराज राजा के सामने बोले :- इन रूपयों को परख लो । परखे तो दो रूपये खोटे निकले । महाराज ने कहा :- उठाओ, ले जाओ सभी खोटे हैं । राजाः- महाराज ! सभी तो खोटे नहीं है, दो खोटे हैं । दो और मंगवा लो । संत :- नहीं, सब खोटे हैं । राजा :- महाराज ! मरजी आपकी, खोटे तो सब नहीं हैं । संत बोले :- बाकी रूपया सब अच्छा है ? राजा :- हां तुम्हारे नगर में अपराध तो एक पाखण्डी ने किया था, वह एक खोटा था । तुमने सारे साधुओं को मारवाड़ से कैसे निकाल दिया ? राजा नत मस्तक होकर क्षमा याचना चाही । महाराज बोले :- सब साधुओं की जमीन जायदाद वापिस देओ और सबको बुलाकर बसाओ । साधु तो जनसमुदाय की सेवा करते हैं । राजा ने सब साधुओं को वापिस बुलाकर, सबकी जायदाद दे दी ।

(सतसंग महिमा महात्म)

साधु संगति अंतर पड़ै, तौ भागैगा किस ठौर ।
प्रेम भक्ति भावै नहीं, यहु मन का मत और॥११५॥

टीका :- हे मन ! तूं सच्चे ब्रह्मनिष्ठ संतों की संगति से अलग रहकर, किस जगह भाग कर जाएगा । तुझे कहां शान्ति मिलेगी ? प्रभु की प्रेमा भक्ति तुझे अच्छी नहीं लगती है । हे मन! तैंने तो अपना ओर ही कुछ मत बना रखा है, उससे तो तेरा कल्याण नहीं होगा ।

जो संतों की संगति से, आत्मचिन्तन में अन्तराय पड़े, तो फिर और शान्ति का स्थान कहां है ? और शुभ संस्कारों की दुर्बलता से, प्रभु प्रेमाभक्ति की वार्ता भी तुझे अच्छी नहीं लगती है । हे मन ! तूं तो, तेरी स्व इच्छा से वर्त रहा है, अर्थात् व्यवहार कर रहा है। इसी में सन्तुष्ट रहता है । यह मत अज्ञानी संसारीजनों का भी है ।

दोहा :- **गुरू दादू की कथा में, आवत ऐक रजपूत ।**
हुक्का की मन में रही, संता कही सो सूत ॥११५॥

दृष्टान्त :— आमेर में ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज बिराजते थे । आपके प्रवचन में ईश्वर प्रेमी, भक्त संत कितने ही आकर सुना करते थे । एक रोज एक राजपूत ने भी सुना कि ब्रह्मऋषि गुरुदेव का यहां

प्रवचन होता है। वह रजपूत हुक्का पिया करता था। हाथ में हुक्का पकड़े, नय लगाये पीता हुआ, जहां पर गुरूदेव के प्रवचन हो रहे थे, सामने आकर खड़ा हो गया। और झांकने लगा। श्रोता लोग उसे देखकर, सभी चकित हो गये। खड़ा खड़ा घुड़ घुड़ हुक्का पीने लगा। संतों ने कहा :- ठाकुर साहब ! बिराजो। नमस्कार करके बैठो, मतसंग सुनो। बोला :- मोडे इकट्ठे होकर बैठे हैं, कोई आव नहीं अन्दर नहीं, बैठने को मांचा नहीं, कुर्सी नै, कोई मुढा नै, कहां बैठें ? भिनफिनाहट करके, राम का कपूत वापिस ही लौट गया।

ब्रह्मऋषि कहते हैं कि "यहु मन का मत और०।

दोहा :- जन रज्जब गुरू सान परि, झूठी मन तलवारि।
तो तिखी कित कीजिये, रे मन सोच विचार॥११५॥

दादू राम मिलन के कारणे, जे तूँ खरा उदास।
साधु संगति सोधि ले, राम उन्हौं के पास॥११६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम से मिलने की इच्छा है तो, तुम ब्रह्मवेत्ता संतों की संगति ढूंढ लो और फिर उनके सतसंग में एकाग्र रहो, वहां ही राम है। अर्थात् ऐसे संतों के पास राम प्रगट है।

दोहा :- उत्तम जन सौं मिलत ही, ओगुण सौं गुण होइ।
घन संगि खारो उदधि, को बरसै मीठो तोइ॥११६॥

(पुरुष प्रकासिक संत महिमा)

ब्रह्मा संकर सेस मुनि, नारद ध्रू सुखदेव।
सकल साध दादू सही, जे लागे हरि सेव॥११७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मा जी, शंकर जी, शेष जी, वशिष्ट मुनी, देव ऋषि नारद जी, ध्रू जी, सुखदेव जी, ये जो जो भगवान की भक्ति में लगे हैं। यह कहते हैं कि हम सब ही साधुओं के सतसंग से इस पद को प्राप्त हुए हैं, जिनकी महिमा सर्वत्र कहिए पुराणों में, धर्म शास्त्रों में, लोक लोकान्तरों में, आज भी विख्यात है। ऐसे पुरूषों के वचनों का विचार करके, सतसंगति करिये।

साध कंवल हरि वासना, संत भंवर संग आइ ।
दादू परिमल ले चले, मिलै राम को जाइ ॥११८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह संसार ही सरोवर है इसमें ब्रह्मवेत्ता संतों का शरीर ही मानो कमल है और उसमें जीव ब्रह्म की एकता रूप ज्ञान ही सुगन्धि है । जैसे कमल की सुगन्धि सर्वत्र फैलती है, इसी प्रकार संतों की ज्ञान रूप महिमा सर्वत्र प्रकाश रही है । उत्तम जिज्ञासु ही भंवरा रूप हैं, वह संसार दशा से उड़कर, उनकी शरण में जाकर, उस सुगन्धि को पान करते हैं, अर्थात् ज्ञान को सम्पादन करके, स्वस्वरूप में अभेद हो जाते हैं ।

(साधु सज्जन)

दादू सहजैं मेला होइगा, हम तुम हरि के दास ।
अंतरगति तो मिलि रहै, पुनि परगट परकास ॥११९॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू दादू दयाल जी महाराज कहते हैं कि हम और तुम परमेश्वर के भक्त हैं । परमेश्वर की कृपा से, सहज में कहिए स्वभाव से ही, मिलाप होगा । अन्तःकरण में तो साक्षी-भाव से सब प्राणियों से, मिले हुए ही हैं, किन्तु जब मुमुक्षु स्वस्वरूप में स्थित होते हैं, तब तो ब्रह्म प्रकाश, स्वयं ही प्रकासता है ।

दोहा :- जगजीवन जी टहलड़ी, आंधी थे गुरूदेव ।
ताहि समय साखी कही, जगजीवन प्रती भेव ॥११९॥

दृष्टांत आंधी ग्राम में वैश्य पूरणचन्द जी और ताराचन्द जी, ब्रह्मऋषि दादू दयाल के शिष्य निवास करते थे । उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके, आँधी में ब्रह्मऋषि चर्तमास पधारे । दौसा नगर टहलड़ी स्थान में ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज के शिष्य, जगजीवन राम जी निवास करते थे । गुरूदेव के दर्शनों के लिये, जगजीवन राम जी महाराज का मन बहुत इच्छा करने लगा । तब जगजीवन राम जी ने लिखा कि गुरुदेव, आप के दर्शनों की भारी प्यास लग रही है, आपके दर्शन कब होगें । इसके उत्तर में ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज जी ने उपरोक्त साखी से जगजीवन जी को उत्तर लिख भेजा । गुरूदेव के अमृतमय वचन विचार कर, जगजीवन जी के मन में धैर्य आ गया ।

दादू मम सिर मोटे भाग, साधू का दरसन किया ।
कहा करै जमकाल, राम रसाइण भरि पिया ॥१२०॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि आज हमारा भारी पुण्य उदय हुआ है कि सच्चिदानन्द ब्रह्म मूर्ति रूप में प्रगट होकर, हमें संत रूप से दर्शन दे रहे हैं। अब कालरूप यमराज हमारा क्या बिगाड़ सकता है ? हमने राम की भक्ति रूप अमृत रस को, पूणंतया हृदय में, भरकर, स्मरण द्वारा साक्षात्कार रूप से पान कर रहे हैं ।

दोहा :- आप नरैना गुहा में, संतन दियो दीदार ।
तब या साखी पद कह्यौ, राम कलि मध सार ॥१२०॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज, नरैना गुफा में, ईश्वर आरधना करते थे । एक रोज मध्य रात्रि में गुप्त, प्रगट ऋषि, मुनि, संत आदिक, महाराज से ज्ञान गोष्टी करने के लिए आये । उस समय परम गुरुदेव ब्रह्मऋषि ने यह उपरोक्त साखी और राग राम कली के शब्द "आज हमारे राम जी, साधु घर आये ॥टेक॥ मंगलाचार चहु दिसि भये, आनन्द बधाये ।" का गायन करके, संतों का अभिनन्दन किया और फिर रात भर ज्ञान गोष्ठी होती रही । प्रातःकाल शिष्यों ने पूछा कि गुरूदेव रात्रि को कोन पधारे थे ? ब्रह्मऋषि ने उपरोक्त साखी से, शिष्यों को उत्तर दिये ।

(साधु समर्थताई)

दादू एत्ता अविगत आपथैं, साधू का अधिकार ।
चौरासी लख जीव का, तन मन फेरि संवार ॥१२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे परोपकारी संतभक्त, जीव के तन मन को परमात्मा के सन्मुख करके, चौरासी के दुखों से बचाते हैं । संत ऐसे दयालु हैं कि भगवान की स्वयं प्रेरणा से ही, संत परोपकार रूप कार्य करते रहते हैं । अर्थात् संसारिक जीवों को मानव व्यवहार और परमार्थ का मार्ग दर्शाते हैं ।

बिख का अमृत करि लिया, पावक का पाणी ।
बांका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी ॥१२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे मुक्त पुरूष संत, जिन्होंने विषयों से रहित, अन्तःकरण को निर्मल आत्म स्वरूप बना लिया है और माया, मोह, क्रोध, अग्नि से उदास होकर, शान्ति सहित भक्ति में लीन रहते हैं और परमेश्वर से विमुख मन को भगवान के सन्मुख करने वाले साधु, परम विवेकी हैं और वे जिज्ञासुजनों को भी स्वस्वरूप प्राप्ति कराने में समर्थ हैं ।

दादू ऊरा पूरा करि लिया, खारा मीठा होइ ।
फूटा सारा करि लिया, साध विवेकी सोइ ॥१२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे मुक्तपुरूष संत, अपनी समर्थताई से उपदेशों द्वारा, जो नाम स्मरण के बिना ऊरे (खाली) थे, उनको नाम स्मरण कराके, पूरे बना दिये । जो संसार भावना में खारे थे, अर्थात् विषयासक्त थे उनको सतसंग द्वारा मीठा, सुखरूप बना लिये । संसार की ओर जिनके मन इन्द्रिय दौड़ते थे, उनको उपदेशों द्वारा, 'सारा' कहिए एकाग्र कर लिये । ऐसी विवेकी संतों की ही शक्ति है, अन्य की नहीं ।

बंध्या मुक्ता करि लिया, उरझा सुरझि समान ।
बैरी मिंता करि लिया, दादू उत्तम ज्ञान ॥१२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरूष संसार के अन्दर बंधे हुए प्राणियों को अपने उपदेशों द्वारा, संत मुक्त कर देते हैं । देहाध्यास में उलझे हुयों को, देह अध्यास रहित, संत की तरह बना देते हैं । जो अन्तःकरण में शत्रु भावना को बदलकर, आत्म उपदेश से, सबके मित्र बना देते हैं । यह मुक्त पुरूषों का उत्तम ज्ञान है ।

झूठा सांचा करि लिया, काचा कंचन सार ।
मैला निर्मल करि लिया, दादू ज्ञान विचार ॥१२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर से झूठे संसारिक प्राणियों को, राम नाम का स्मरण कराकर, परमेश्वर से सच्चे बना दिये । जो साधनों में कच्चे थे, उनको साधनों का उपदेश देकर, कंचन के समान शुद्ध कर दिये । पापों से मैले थे, उनको राम नाम स्मरण के उपदेश द्वारा, निर्मल बना दिये । फिर वह उन्हीं संतों के, विचार रूप ज्ञान को, सम्पादन करने लगते हैं ।

(अमिट पाप)

दादू काया कर्म लगाइ करि, तीर्थ धोवै आइ ।
तीर्थ मांहै कीजिऐ, सो कैसै करि जाइ ॥१२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक प्राणी पाप कर्म किये हुए, उनको धोने के लिये तीर्थों में आकर स्नान करते हैं, परन्तु वहाँ फिर अनेक प्रकार के, पाप कर्म करने लगते हैं, वह किस प्रकार मिटेगा ? वह तो बज्र-लेप पाप है । वह कहीं नहीं मिटेगा । अथवा यह मनुष्य शरीर ही तीर्थ कहिए, तरने का स्थान है और इसी में भक्ति ज्ञान के द्वारा जीव, अपने पापों को मेटने में समर्थ है । परन्तु जो अज्ञानी, मनुष्य शरीर पाकर भी, भगवान से विमुख कर्म करते हैं, उनके उद्धार का कोई भी साधन, फिर नहीं है । और जो सतसंग पाकर भी, मन के विषय विकारों को नहीं धोते हैं, उनका कल्याण होना असम्भव है ।

जह तिरिये तहं डूबिये, मन में मैला होइ ।
जहं छूटै तहं बंधिये, कपट न सीझै कोइ ॥१२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस मनुष्य शरीर में, तिरने का कहिए, संसार से पार होने का, परमेश्वर ने मौका दिया है, उसमें अब यह जीव, माया का मल कहिए, अपना पाप रूपी मल, दूर नहीं करता है, तो ऐसे अज्ञानी मन्दभागी जीव, संसार के जन्म मरण में ही, गोते खाते रहते हैं, क्योंकि माया मोह के बन्धन से छूटने का, सतसंग रूप साधन प्राप्त करके भी, जिनका विषय वासना और तृष्णा रूप कपट दूर नहीं हुआ, उनको अब संसार से मुक्त होने का, और कोई भी उपाय नहीं है ।

(सतसंग महिमा)

दादू जब लग जीविये, सुमिरण संगती साध ।
दादू साधु राम बिन, दूजा सब अपराध ॥१२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब प्रकरण का उपसंहार करके, सारे अंग का, तात्पर्य कहते हैं कि हे संतो ! जब तक प्रारब्ध भोग के अनुसार, प्राण और स्थूल शरीर का संयोग बना रहै, तब तक पूर्ण रूप से, वृत्ति को प्रभु के स्मरण और सतसंग में, लगा कर रहिये । क्योंकि शेष, बाकी, सब व्यवहार पापरूप है । इसलिए त्यागने योग्य है ।

(इति साधु का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ मध्य का अंग १६ ॥

अब साधु के अंग के अनन्तर, "दादू साधु जन सुखीया भये, दुनीयां को बहु धंध०।" इत्यादिक सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, मध्य का अंग निरूपण करते हैं। ब्रह्म और ब्रह्मवेत्ता पुरूष, माया रचित सर्व संसार प्रपंच में, साक्षीभाव से व्यापक रहते हुये भी, कमल की भांति, असंग गुणातीत रहते हैं, उनका साधन सहित वर्णन करते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- हरि, गुरू, संतों के चरणों में, हमारी पुनः पुनः बन्दना है। जिनकी कृपा से, साधु लक्षणों को धारण करके, गुणातीत होकर, संसार से पार होते हैं।

(मध्य निरपक्ष)

दादू द्वै पख रहिता सहज सो, सुख दुख एक समान।
मरै न जीवै सहज सो, पूरा पद निर्वाण ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रथम तो ब्रह्म ही, सर्गुण निर्गुण दोनों पक्षों से रहित है, और फिर ब्रह्मवेत्ता मुक्तपुरूष भी, द्वैतभाव से रहित हैं। वे सम्पूर्ण राग द्वेष आदि द्वन्द्वों से मुक्त होकर, स्वस्वरूप में लीन रहते हैं। उनकी विचार दृष्टि में, सुख दुख, जीवन मरन, सब समान हैं। जिससे सहजा अवस्था द्वारा, पूर्ण पद अजर, अमर निराकार, आत्म तत्व में ही मग्न रहते हैं।

सहज रूप मनका भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग ।
ताता सीला समि भया, तब दादू एकै अंग ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी पुरूषों का मन, बाह्य विषयों से अनासक्त हुआ तो, सुख दुख आदिक द्वन्द्व फिर मिट जाते हैं और तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण में, समभाव गुणातीत होकर, मुक्तजन ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं ।

सुख दुख मन मानै नहीं, राम रंगि रात्ता ।
दादू दोन्यूं छाड़ि सब, प्रेम रसि मात्ता ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन मुक्तपुरूषों का मन, सुख, दुख, हर्ष, शोक को नहीं अपनाता है और कर्मों के फल से उदासीन रहता है उनका मन सदा मायावी कार्य के द्वैतभाव को त्यागकर, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य के द्वारा, राम नाम के स्मरण में, राता रत्त और माता मस्त रहता है ।

मति मोटी उस साध की, द्वै पख रहित समान ।
दादू आपा मेट करि, सेवा करै सुजान ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो साधन सम्पन्न और परम विवेकी है, वह स्थिर प्रग्य, सर्वत्र समता के भाव और आतमभाव का निश्चय करके, अहम्‌ता ममता, इस भाव को छोड़ता है, और अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, नाम स्मरण रूप सेवा करता रहता है ।

दोहा :- तुलाधार द्वै पक्ष तजी, समता ज्ञान विचार ।
मध्यमार्ग दादू गह्यौ, जाजली जनक उसार ॥५॥

दृष्टान्त :- एक कासी में तुलाधार नाम करके पुरुष था । सुना जाता है कि उसके घी की दुकान थी । वह एक भाव घी दिया करता था । उसकी दुकान पर बच्चा बूढा, जवान, स्त्री, ऊंच, नीच, इत्यादि कोई भी जावे, उसकी सम दृष्टि थी । डंडी नहीं मारता । खरी वस्तु देता । ऐकसे पैसे सबसे लेता । यह उसका तप था । इसके प्रभाव से, वह भूत, भविष्य, वर्तमान, तक की बात जानता था । झूट नहीं बोलता था । एक समय जाजली मान ब्राह्मण तपस्या कर रहा था । एक रोज कपोत कपोतनी दोनों उड़ते हुए आये और जाजलीमान को ठूठ समझकर, उसके सिर की जटाओं में घोसला बनाने लगे । जब वह घोसला बनाकर

अंडे दे दिये, फिर बच्चे निकल आये और उनके पंख वगैरा आ गये । तब वह सबके सब एक रोज उड़ गये । जाजलीमान जानते थे कि मुझे इन्होंने पेड़ ठूंठ समझ कर, घोसला बनाया है, परन्तु आज वह सबके सब उड़ गये हैं । मैं यहां से चलूंगा, तो वह शाम को आकर देखेंगे, तो उन्हें बहुत दुख होगा कि हमारा घर कहां चला गया ? इसलिए आज मैं यहीं ठहरूं । सायंकाल को वह नहीं आयेंगे, तो जान लूंगा कि उन्होंने दूसरा घोसला कहीं ओर बना लिया । जब वे सायंकाल को नहीं आये, तो दूसरे दिन जाजलीमान को तप का भारी अहंकार हो गया कि मैंने ऐसे तप किया कि छह महीने तक, जहां मैं खड़ा था, वहां पक्षियों ने मेरी जटाओं में घोसला बना लिया । ऐसा तप और कौन करेगा ? तब आकाशवाणी हुई कि हे तपोधन ! हे जाजलीमान ! अभी तो आप कासी में तुलाधार के पास जाकर, उपदेश ग्रहण करो, तब आपको ज्ञान होगा । यह आकाशवाणी सुनकर, जाजलीमान का अहंकार चूर हो गया, और वहाँ से चला । कासी में आया तुलाधार को घी बेचते हुए देखा, मन में सोचने लगा, यह मुझे क्या ज्ञान उपदेश करेगा ? जब वापिस चलने लगा, तब तुलाधार बोले :- आइये, जाजलीमान जी, आप वापिस कैसे जा रहे हो ? यह सुनकर मन में भारी आश्चर्य हुआ कि इसे मेरे नाम का क्या पता ? तुलाधार बोला :- नाम का ही नहीं, मैं आप के तप को भी जानता हूं । आप तप करने जब चले, अमुख स्थान में आप खड़े हुए और आप को ठूठ समझकर, कपोत कपोतनी ने आप की जटाओं में घुसकर घोंसला बनाया । आप छह महीने तक फिर वहीं खड़े रहे, फिर कपोत कपोतनी बच्चों के सहित सब उड़ गये । आकाशवाणी ने जब आपको उपदेश किया तो आप यहां मेरे पास आये । मेरा काम देखकर, आप वापिस लौट रहे थे । आपको यह भ्रम हुआ कि यह क्या जानता है ? ऐसी बात नहीं है । जाजलीमान यह सुनकर, पानी पानी हो गया और बोला :- आपकी ऐसी शक्ति, इस प्रवृत्ति मार्ग में किस प्रकार हो गई ? तुलाधार :- हे तपोधन ! जो मानव शास्त्र अनुसार, अपने अपने कर्मों को सत्यता पूर्वक करता है, वह कोई भी क्यों न हो ? उनकी यही स्थिति हो जाती है । यही मेरा तप है । इसलिए आप भी अब शास्त्र में, जो ब्राह्मण के कर्म बतलाये हैं, उन कर्मों को सम्पादन करके, सत्यता पूर्वक जन समुदाय की, समता ज्ञान द्वारा, सेवा कीजिये । आपकी भी ऐसी दृष्टि बन जाएगी । हे जाजलीमान ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र, गुण और कर्म द्वारा ही बने हैं । और इसी प्रकार कर्मों द्वारा, सभी ने सिद्धि प्राप्त की है । जाजलीमान को इस समत्व योग का ज्ञान, तुलाधार द्वारा हुआ । जन समुदाय की इस प्रकार सेवा करे, वही चतुर है । इसी प्रकार महाराजा जनक, क्षत्रिय धर्म का, यानि प्रजा का, पालन करते हुए, समता ज्ञान के द्वारा, प्रवृत्ति मार्ग में ही विदेह मुक्ति को प्राप्त हो गये । और सुखदेव जैसे महान अवधूत को, जिन्होंने उपदेश किया ।

इसी प्रकार ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज ने भी निरपक्ष समता ज्ञान को ग्रहण करके, जन समुदाय को जागृत किया ।

कछु न कहावै आपको, काहू संगि न जाइ ।
दादू निरपख व्है रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥[illegible]॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शास्त्र अनुसार कर्म करते हुए, सब प्रकार कर्त्तव्य का अभिमान त्यागकर, सुख, दुख, मान, अपमान से उदासीन रहो और निरपक्ष, तटस्थ साक्षी रूप से व्यवहार में वर्तो । और आत्मा के अन्दर ल्यौ लगाये रहो, बस यही कल्याण का सार मार्ग है ।

सुख दुख मन मानै नहीं, आपा पर सभ भाइ ।
सो मन मन करि सेविये, सब पूरण ल्यौ लाइ ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरूष सुख, दुख, हर्ष, शोक, मान अपमान, ऊंच नीच, राग द्वैष नहीं अपना कर, और अपना पराया कहिये, मैं तूं का भाव छोड़ कर, व्यष्टि चेतन्य का समष्टि चेतन्य से विचार द्वारा कहिए, चिन्तन से एकता करके, सब प्रकार अन्तर्मुख वृत्ति से, व्यापक स्वरूप में लय लगावे, वही पुरूष मध्य मार्गी कहे जाते हैं ।

ना हम छाड़ैं ना गहैं, ऐसा ज्ञान बिचार ।
मध्य भाइ सेवैं सदा, दादू मुक्ति दुवार ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे मुक्त, ब्रह्मवेत्ता संग्रह और त्याग के अहंकार से मुक्त होकर, वह जरणा करने वाले निरपक्षता से, स्वस्वरूप में लय द्वारा लीन रहते हैं । ऐसे पुरूषों का शरीर या उनका सतसंग, मुक्ति का साक्षात द्वार है ।

सहज सून्य मन राखिये, इन दोन्यूँ के मांहि ।
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भय नांहि ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हठ योग से मन को निर्द्वन्द शून्य, निर्विकल्प बनाकर, स्वस्वरूप में स्थिर करिये । और लय रूप भक्ति द्वारा, परमेश्वर का दर्शन रूप, अमृत पान करिये । तात्पर्य यह है कि तत्वबोध रूपी लक्षय तो योग और भक्ति का एक ही है, परन्तु लयरूप भक्ति मार्ग सुगम है । फिर वहाँ काल कर्म का भय व्याप्त नहीं होता ।

आपा मेटै मृत्तिका, आपा धरै आकास ।
दादू जहां जहां द्वै नहिं, अधि निरंतर बास ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परिछिन्न अभिमान अर्थात् शरीर के अध्यास को मिटाकार, पृथ्वी की तरह, जीवत मृतक होकर, निराकार ब्रह्म में आपा को लय करें । ऐसे स्वस्वरूप को निश्चय करने वाले मुक्तजन, निरद्वन्द होकर, निरपक्ष ब्रह्मस्वरूप में मग्न रहते हैं । और स्थूलता, गोरता आदि के अहंकार को छोड़कर, "असं ब्रह्मास्मि" वृत्ति का अभ्यास करते हैं । जब त्याग तथा अभ्यास रूप, दोनों ही वृत्तियों का लय हो जावे, वही मध्य निरंतर बास कहिए, ब्रह्मभाव स्वरूप स्थिति की पूर्ण विदेह अवस्था है ।

(ध्येय परम स्थान निरूपण)

नहीं मृत्तक नहिं जीवत्ता, नहिं आवै नहि जाइ ।
नहिं सूत्ता नहि जागत्ता, नहि भूखा नहि खाइ ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह ब्रह्मतत्व ध्येय स्वरूप, निरूपाधिक, अद्वैत, एक रस निष्क्रिय है । उसमें मरना जन्मना, आना जाना, सोना जागना, भूखा, धाया, इत्यादिक सब क्रियाओं का अभाव होने से: भाव या अभाव रूपता से, ब्रह्म का निरूपण नहीं बनता है । इसलिये अवाच्य तत्व है ।

दादू इस आकार थैं, दूजा सूखिम लोक ।
ताथैं आगै और है, तहं वहां हरख न सोक ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन्नमय इस स्थूल शरीर से आगे सूक्ष्म शरीर, फिर कारण शरीर, उससे आगे साक्षी चेतन्य कूटस्थ ब्रह्म है । मुक्त पुरूष, इस ब्रह्मभाव को प्राप्त होकर, हर्ष शोक से रहित हो जाते हैं ।

दादू हद छाड़ि बेहद मै, निर्भै निरपक्ष होइ ।
लागि रहै उस एक सौं, जहां न दूजा कोइ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'हद' कहिए, हिन्दू मुसलमान, भेख पंथ, कर्त्ता भोगता, ऊंच नीच आदिक की पक्ष त्याग कर, निर्भय स्वरूप ब्रह्म में लय लगाकर, मुक्त पुरूष ब्रह्मरूप होते हैं ।

दादू दुजे अन्तर होत है, जिन आणें मन मांहि ।
तहां ले मन कौं राखिये, जहं कुछ दूजा नांहि ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कर्त्ता भोगता, वर्ण आश्रम, और तीर्थ व्रत के अध्यास को त्यागकर, अपने मन को उस ब्रह्मतत्व में रखिये, जिसमें यह कोई भी मायिक विकार नहीं व्याप्ते हैं ।

निराधार घर कीजिये, जहं नाहीं धरणी आकास ।
दादू निहचल मन रहै, निरगुण के बेसास ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! निराधार स्वरूप जो ब्रह्म है, उसमें अपनी वृत्ति को लगाइये । कैसे लगावें ! सो कहते हैं कि ब्रह्मी अवस्था में पंच भूतों के गुण नहीं रहते । वहां गुणातीत होकर, ब्रह्मस्वरूप में मग्न रहो ।

मन चित मनसा आतमा, सहज सुरति ता मांहि ।
दादू पंचू पूरि ले, जहं धरती अंबर नांहि ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपना मन, चित, मनसा, बुद्धि, और अन्तःकरण, विशिष्ट जीवात्मा और पंच ज्ञानेन्द्रियों सहित, इन सबको, अखण्ड ब्रह्म विचार में पूर्णरूप से लगाइये । फिर वह ब्रह्म कैसा है, जो पांच तत्व के विकारों से निर्विकारी है ।

अधर चाल कबीर की, आसंघी नहि जाइ ।
दादू डाकै मृग ज्यूं, उलटि परै भुइ आइ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेत्ता संतों की 'चाल' कहिए धारणा ब्रह्माकार वृत्ति, गुण क्रिया आदि से अधर है साधारण प्राणी से अपनी वृत्ति बनाइ नहीं जाती है क्योंकि विषयों में आसक्ति छूटती नहीं है । जैसे पक्षियों को आकाश से उड़ते देखकर, मृग भी आकाश में उड़ने के लिए, उछाल मारते हैं । परन्तु पंखों के बिना आकाश में नहीं उड़ा जाता है । फिर भूमि के ऊपर ही गिरते हैं । इसी प्रकार संसारी विषय आसक्त, अज्ञानीजन ब्रह्मवेत्ता संतों की महिमा देखकर, उनके व्यवहार का अनुकरण करते हैं, किन्तु विवेक वैराग्य रूप पंखों के बिना, फिर से शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध, गुणों में ही आकर आसक्त होते हैं ।

दोहा :- कोउ भेखधारी कही, चलैं कबीर जूं चाल ।
तब साखी स्वामी कही, मूढ बसै क्यूं ताल ॥१७॥

दृष्टान्त :- कोई भेखधारी साधु, ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज से बोला कि कबीर की भांति तो, हम भी चल रहे हैं, उसी मंजिल के हम हैं । तब परमगुरू बोले :-

दोहा :- ऊंधा कीया ठीकरा, सुधि कीनि आस ।
जग को त्याग दिखाइ करि, करै ताल पर बास ॥

मूढ ! ठूंठ ! कबीर तेरी तरह तालाब पर बसता था क्या ? तूं तो ठिकरे में खाकर, उल्टा करके सिराने रख रखा है। ऐसा त्याग कबीर का नहीं था। कबीर तो बीतराग था। तूँ तो मूर्ख ! ऐसा है कि ठीकरा तो तैंने उल्टा कर लिया, परन्तु आशा तृष्णा रूपी ठीकरा तो तेरा सीधा है, ऐसा त्याग जगत को दिखाकर, तालाब पर रहकर, दुनियां को बहकाता है।

दादू रहण कबीर की, कठिन विखम यहु चाल
अधर ऐक सों मिलि रह्या, जहां न झंपै काल ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कबीर जैसे ब्रह्मवेत्ता संतों की चाल कहिए, ब्रह्मी अवस्था बनाना अति कठिन है। वह ब्रह्मवेत्ता संत निर्गुण ब्रह्म से अभेद होकर, कर्म बन्धनरूप काल से, अजर अमर होते हैं।

निराधार निज भक्ति करि, निराधार निज सार ।
निराधार निज नावं ले, निराधार निरकार ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गुणातीत होकर, आत्म स्वरूप का विचार करिये, क्यों कि निराधार मन ही, आत्मा आनन्द में स्थिर रहता है। इस प्रकार निष्काम भाव से ज्ञाना अमृत पीने वाले संत कोई बिरले ही हैं।

निराधार निज राम रस, को साधु पीवणहार ।
निराधार निर्मल रहै, दादू ज्ञान बिचार ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निराधार कहिए निर्गुण ब्रह्म की ही उपासना करना, क्योंकि निर्गुण ब्रह्म के निष्काम भक्त ही, आत्मा कां निश्चय करके, निर्विकार रहते हैं।

जब निराधार मन रह गया, आत्म के आनन्द ।
दादू पीवै राम रस, भेटै परमानन्द ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब मन गुणातीत होकर, निराधार ब्रह्म में अभेद हो जाता है, तब स्वरूप आनन्द की प्राप्ति होती है । इस संसार से मुक्त पुरूष, परमानन्द की प्राप्ति करके, अतृप्त भाव से राम रस पीते हैं, और ब्रह्मस्वरूप में मग्न रहते हैं ।

(माया)

दुह बिचि राम अकेला आपै, आवण जाण न देइ ।
जंह के तंह सब राखै दादू, पारि पहुंचे तेइ ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया और सच्चे मुक्त पुरूषों के बीच में, राम आप प्रगट होकर रहते हैं, और संतों के मन को माया विकारों में नहीं जाने देते और मायावी धर्म संतों में नहीं आने देते । संतों की सुरति को, अपने में लगाये रहते हैं । जिन पर ऐसी प्रभु की दया होती है, वे ही ब्रह्मभाव को प्राप्त होकर, संसार बन्धन से मुक्त होते हैं ।

दोहा :- माया जन कै मधय हरि, भिन्न भिन्न गुन चीन ।
जग जीवन सोई उबरैं, जिन पर कृपा कीनि ॥२२॥

दोहा :- गुरू दादू गये सीकरी, परचा लीया न दीन ।
राम बीच दोऊ के रहे, चरचा इमें चीन ॥२२॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज को, बादशाह अकबर ने, आमेर के राजा भगवन्त दास के द्वारा जब सिकरी बुलाये और ब्रह्मऋषि से प्रश्न उत्तर किये । उनसे ही बादशाह अकबर और बीरबल आदि सब तृप्त हो गये । यद्यपि ब्रह्मऋषि को परचा की इच्छा से सीकरी बुलाये थे, तथापि उनका ज्ञान सुनने के बाद, परचा मांगने का साहस नहीं रहा । तो ब्रह्मऋषि ने भी परचे नहीं दिये । दोनों के बीच में राम प्रगट थे । चर्चा में ही बादशाह अकबर समझ गया ।

(मध्य निरपक्ष)

चलु दादू तहं जाइये, तंह मरै न जीवै कोइ ।
आवागवन भय को नहीं, सदा ऐक रस होइ ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विचार द्वारा सहजावस्था रूप समाधि में, स्वस्वरूप ब्रह्म में स्थिर होकर, लय लगाइये । फिर वहां न कोई जन्मता है और न कोई मरता ही है, क्योंकि उसमें जन्म और मरण के भय का अभाव है ।

चल दादू तहं जाइये, जहं चंद सूर नहि जाइ ।
राति दिवस की गमि नहिं, सहजै रह्या समाइ ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विचार द्वारा वहां जाओ, जहां, प्रकृति से उत्पन्न किये चन्द्रमा, सूर्य रात दिन, इनकी गत्ति कहिए, पहुंच नहीं है । वह चेतन्य ब्रह्मस्वरूप आत्मा, सहजभाव से ही, सम्पूर्ण संसार में समाया हुआ है, उसी में लय लगाओ ।

चल दादू तंह जाइये, माया मोहथैं दूरि ।
सुख दुख को व्यापै नही, अविनासी घर पूरि ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो ब्रह्म माया प्रपंच से रहित है और निर्मल है और सुख दुख से रहित है, उसी में निश्चय करना, नित्य अनित्य के विचार द्वारा ।

चलु दादू तहं जाइऐ, जहं जम जोरा को नांहि ।
काल मीच लागै नहीं, मिलि रहिये ता मांहि ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस ब्रह्म स्वरूप में किसी भी काल कर्म की गति नहीं है, उस ब्रह्म में विचार द्वारा लय लगाकर, अभेद होइये ।

एक देश हम देखिया, तंह ऋतु नहीं पलटै कोइ ।
हम दादू उस देस के, जंह सदा एक रस होइ ॥२७॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हम ब्रह्मवेता संतों ने, एक देश कहिए बाह्यदेश, अनुभव द्वारा देखा है, वहां प्रकृति की ऋतु नहीं वर्तती हैं । वहां एक रस है । समय, अवस्था, दिसा इन सबसे रहित होकर, सभी संत, उस अद्वैत अखंड ब्रह्म में लय लगाते हैं ।

एक देश हम देखिया, जंह बस्ती ऊजड़ नांहि ।
हम दादू उस देश के, सहज रूपता मांहि ॥२८॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! एक ब्रह्मदेश हमने अनुभव द्वारा देखा है, वहां वासना विकार रूप बस्ती नहीं है । हम कहिए, मुक्त जन, उस ब्रह्मदेश के हैं और सहजावस्था द्वारा उसी में समाय रहे हैं । अथवा वही चेतन्य ब्रह्म, सहज कहिए निर्द्वन्द्व रूप से, सब में समाया हुआ है । मुक्तजन अनुभव द्वारा, उसका साक्षात्कार करते हैं ।

एक देश हम देखिया, नहि नेड़े नहिं दूर ।
हम दादू उस देस के, रहै निरंतर पूरि ॥२९॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमने एक देश कहिए, ब्रह्म देश, अनुभव द्वारा, निजरूप करके देखा है । परन्तु वह न तो नजदीक है और न दूर है । कारण नजदीक और दूर वह वस्तु होती है, जो अपने से अलग हो । इसलिये ब्रह्म को नजदीक या दूर नहीं कह सकते । क्योंकि वह तो, सबका आत्म स्वरूप ही है , उसी में अन्तराय रहित होकर, अपने मन को, पूर्णतया लगाना चाहिये । अथवा ज्ञान से वह समीप है, और अज्ञान से दूर है ।

एक देश हम देखिया, जहं निसदिन नांहि घाम ।
हम दादू उस देस के, जहं निकटि निरंजन राम ॥३०॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमने अनुभव द्वारा, एक ऐसा देश देखा है जहां न तो लौकिक रात होती है और न दिन ही उगता है । और तमोगुण रूप घाम, सतोगुण रूप शीतलता भी, वहां नहीं है । अर्थात् ब्रह्मरूप होने पर, मुक्तजनों की अज्ञान और ज्ञान वृत्तियों का विलय हो जाता है । फिर तीन प्रकार के दुखों से मुक्त होकर, निर्द्वन्द भाव से संतजन, स्वस्वरूप निरंजन ब्रह्म में, मग्न रहते हैं ।

बारह मासी नीपजै, तहां किया परवेस ।
दादू सूका ना पड़ै, हम आये उस देस ॥३१॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासु ! ब्रह्मनिष्ठ संत अन्तर्मुख होकर, स्वस्वरूप में अखंड वृत्ति लगावे, तो फिर स्वस्वरूप ब्रह्म से 'सूका' कहिए, वियोग नहीं होता है । हम मुक्तजन

उसी देश से कहिये, ब्रह्म देश से जन समुदाय का कल्याण करने के लिए, बहिरंग वृत्ति द्वारा उपदेश करते हैं ।

जहं बेद कुरान की गमि नहीं, तहां किया परवेस ।
तहं कछु अचरज देखिया, यहु कुछ औरै देस ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू महाराज कहते हैं कि जिस ब्रह्म में वेद और कुरान की, शक्ति वृत्ति की, गति नहीं पहुंचती है, वहां मुक्त पुरूष, स्वस्वरूप में स्थिर होकर, जब ब्रह्मानन्द का अनुभव किया तो, फिर, मायावी कार्य की विचित्रता को विचार करके, अति चकित होते हैं ।

(भ्रम विध्वंस)

ना घर रह्या न बन गया, ना कुछ किया कलेस ।
दादू मनहीं मन मिल्या, सतगुरू के उपदेश ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वे मुक्त पुरूष, घर कहिए प्रवृति मार्ग, और बन निवृत्ति मार्ग, इन दोनों के अहंकार से रहित होकर और न किसी प्रकार का बहिरंग तप जप आदि का कलेस ही उठाया । किन्तु व्यष्टि चेतन्य रूपी मन, समष्टि चेतन्य रूप ब्रह्म से अभेद हो गया, केवल सतगुरू के ज्ञान उपदेश के द्वारा ही ।

काहे दादू घरि रहै, काहे बन खंड जाइ ।
घर बन रहिता राम है, ताही सौं ल्यौ लाइ ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेत्ता संत घर और बन, इन दोनों के अहंकार से रहित होकर, ब्रह्मस्वरूप राम में लय लगाते हैं । इसी प्रकार उत्तम जिज्ञासु पुरूष, घर और बन का, या प्रवृत्ति और निवृत्ति, इन दोनों के अहंकार से रहित होकर, आतमस्वरूप राम में, लय लगावै ।

दादू जिन प्राणी करी जाणीया, घर बन एक समान ।
घर मांहैं बन ज्यों रहै, सोइ साधु सुजान ॥३५॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहतें हैं कि जिन जिज्ञासुओं ने घर और बन इन दोनों को, विचार द्वारा, बराबर जानकर, अर्थात घर कहिए प्रवृत्ति मार्ग, और बन कहिए निवृत्ति मार्ग, इन दोनों के अहंकार को त्यागकर, घर में ही, कहिए प्रवृत्ति मार्ग में ही, ज्ञान द्वारा निर्वृत्ति कहिये अनासक्त होकर, राम से लय लगाते हैं, वही पुरूष सुजान नाम, चतुर हैं ।

सब जग मांहि एकला, देह निरंतर बास ।
दादू कारण राम के, घर बन मांहि उदास ॥३६॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण संसार की भोग वासनाओं से रहित होकर, शुद्ध अन्तःकरण में विरही जन, राम के कारणै, घर प्रवृति मार्ग और बन निवृति मार्ग, इन दोनों के अहंकार से रहित होकर, नाम स्मरण में लय लगाते हैं।

घर बन मांहि सुख नहि, सुख है सांई पास ।
दादू तासौं मन मिल्या, इनथैं भया उदास ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! घर कहिए प्रवृत्ति मार्ग और बन कहिए निवृत्ति मार्ग, इन दोनों में ही सुख नहीं हैं। सुख तो केवल परमेश्वर के नाम स्मरण में ही हैं। इसीलिए बिरहीजन भक्त, घर बन के अहंकार को छोड़कर परमेश्वर के नाम स्मरण में, अपने मन को लगाते हैं।

ना घर भला न बन भला, जहां नहीं निज नांव ।
दादू उनमन मन रहै, भलात्त सोई ठांव ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! न तो प्रवृत्ति मार्ग ही श्रेष्ठ है और न निवृत्ति मार्ग ही श्रेष्ठ है। प्रवृत्ति कहिए ग्रहस्थ आश्रम में रहकर जिनके हृदय में परमेश्वर का नाम स्मरण नहीं है, और निवृत्ति कहिए बन में रहकर जिसने, परमेश्वर का नाम स्मरण नहीं किया, तो वह दोनों ही जगह किस काम की हैं ? वही स्थान ठीक है, चाहे निवृत्ति हो, या प्रवृत्ति हो, उनमन कहिए जिनका मन नाम, स्मरण रूप ऊंची दसा में स्थिर है।

बैरागी बन मै बसै, घरबासी घर मांहि ।
राम निराला रहि गया, दादू इनमै नांहि ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बैराग्यवान तो, बन में बसकर, बन के अहंकार में बंधा है। हमें क्या लेना है दुनिया से ? हम तो कंदमूल, फूल पत्ति खाते हैं। और घरबारी ग्रहस्थी, घर के अध्यास को लिये बैठे हैं, और कहते हैं हम तो कबीर साहब की तरह हैं। ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज फरमाते हैं कि राम के सच्चे निरपक्ष भक्त तो, इन दोनों से ही अलग हैं। वह राम में ही रत्त रहते हैं।

(स्मरण नाम निरसंसय)

दीन दुनी सदिकै करूं, टुक देखण दे दीदार ।
तन मन भी छिन छिन करूं, भिसत दो जग भी वार ॥४०॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हे परमेश्वर ! दुनियां के, दोनों दीन कहिए, हिन्दू मुसलमान के, मत मतान्तरों की पक्ष विपक्ष, आपके अर्पण करते हैं । पलकमात्र आपका दर्शन देखने दो ! हमारा तन और मन भी हम, निष्काम स्मरण द्वारा, छन छन में आपके अर्पण करते हैं । भिस्त और दोजक के सुख दुख भी, आपके ऊपर न्योछावर करते हैं ।

दादू जीवन मरन का, मुझ पछितावा नांहि ।
मुझ पछितावा पीव का, रह्या न नैनहुं मांहि॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मध्यमार्गी बिरहीजन भक्त कहते हैं कि हे प्रभु ! हमें जीने मरने का कोई हर्ष शोक नहीं है । केवल हमारे तो एक ही पश्चाताप है कि आपके दर्शन, सर्वगुण या निर्गुण रूप से, हमें नेत्रों के सामने नहीं हो रहे हैं ।

सुरग नरक संसै नहीं, जीवन मरण भै नांहि ।
राम बिमुख जे दिन गये, सो सालैं मन मांहि॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मध्यमार्गी बिरही भक्तजन कहते हैं कि हे परमेश्वर ! हमारे मन में स्वर्ग नरक के दुख सुखों का कोई संसय नहीं है और जीने मरने से भी निर्भय हैं । परन्तु राम भजन के बिना, जो मनुष्य जन्म के दिन, प्रमाद में गये, उनका हमें भारी पश्चाताप हो रहा है ।

स्वर्ग नरक सुख दुख तजे, जीवन मरण नसाइ ।
दादू लोभी राम का, को आवै को जाइ ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरही भक्तजन कहते हैं कि हे परमेश्वर ! हमारे जीव पर प्रारब्ध वश स्वर्ग के सुख दुख आओ चाहे जाओ, परन्तु बिरही भक्तजन, उनसे उदास रहते हैं, और सुख दुख मानने वाले अज्ञानी, संसार बन्धन में जन्मते मरते हैं । और हे राम ! आपके सच्चे बिरही भक्तजन, आपके अद्वैत स्वरूप में मग्न रहते हैं ।

(मध्य निरपक्ष)

दादू हिन्दू तुरक न होइबा, साहिब सेती काम ।
खट दरसन के संगि न जाइबा, निरपख कहिबा राम ॥४४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज से सीकरी में, बादशाह अकबर ने प्रश्न किये कि हिन्दू मुसलमानों में, आप कौनसा मत उत्तम मानते हो ? और हिन्दू धर्म में भी, फिर खट दर्शनों में कौन सा दर्शन श्रेष्ठ है ?

उत्तर :—हे बादशाह ! निरपक्ष सच्चे परमेश्वर के भक्तों को, एक परमेश्वर से ही प्रयोजन है । हिन्दू मुसलमान और छह दर्शन से हम उदासीन भाव होकर, प्रभु स्मरण में सहजावृत्ति द्वारा, लीन रहते हैं । यही मत उत्तम है ।

खट दरसन दोन्यूं नहीं, निरालंब निज बाट ।
दादू एकै आसिरै, लंघै औघट घाट ॥४५॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेत्ता मुक्तपुरूष, छह दर्शनों और दोनों धर्मो से उदासीन होकर, सहज भाव से, जीवन मुक्ति रूप रास्ते को प्राप्त करके, एक अद्वैत की उपासना द्वारा, देह अध्यास और संसार बन्धनरूप, घाट से पार होते हैं ।

दादू ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मुसलमान ।
खट दरशन मैं हम नहीं, हम रात्ते रहिमान ॥४६॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू महाराज कहते हैं कि न तो हम हिन्दुओं के मन्दिर मार्गी पक्ष में बधेंगे और मुसलमान हम हैं नहीं । और छह दर्शनों के धर्म पक्ष में भी, हम नहीं हैं । हम तो केवल एक रहमान, परमात्मा में ही रत्त हैं ।

जोगी जंगम सेवड़े, बौध सन्यासी सेख ।
खट दरशन दादू राम बिन, सबै कपट के भेख ॥४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जोगी हैं, जंगम हैं, बौध है, सेवड़े हैं, सन्यासी हैं, शेख हैं, यह छह दर्शन, निष्काम राम की भक्ति के बिना, सभी कपट के चिन्ह हैं । अर्थात् आतम ज्ञानी सभी संतों का उपास्य देव, एक ब्रह्म तत्व ही हैं । वह उसी में मस्त रहते हैं ।

दादू अलह राम का, द्वै पख थैं न्यारा ।
रहता गुण आकार का, सो गुरू हमारा ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अल्लह और राम, इन दोनों पक्षों के मत से, जो अलग है और मायावी आकार के गुणों से, जो रहित है, अद्वैत ब्रह्म । उसकी ज्ञान रूप प्रेरणा ही हमारा गुरू है । और शरीर अध्यास से रहित, गुणातीत हुये जो संत हैं, वही हमारे परम पुज्य हैं ।

(उभय असमाव)

दादू मेरा तेरा बावरे, मैं तैं की तज बाणि ।
जिन यहु सब कुछ सिरजिया, करि ताही का जाणि ॥४९॥

टीका :- हे अज्ञानी जिज्ञासु ! जिस दयालु प्रभु ने सम्पूर्ण सृष्टि रची है, यह सब उसी की करके मान और सब नाम रूप में परमेश्वर की ही सत्ता जानकर, मेरे तेरे का द्वैतभाव छोड़ दे ।

दोहा :- जाके उर तैं उठि गई, मैं तैं बड़ि बलाइ ।
तुलसी ताके भाग की, मोपै कही न जाइ ॥४९॥

दादू करणी हिन्दू तुरक की, अपनी अपनी ठौर ॥
दुहुं बिच मारग साध का, यहु संतौं की रह और ॥५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हिन्दूओं की करणि, राम को मंदिर में मानते हैं और प्राणी मात्र पर दया करते हैं । मुसलमान मस्जिद में अल्लह को मानकर, कुर्बानी आदि में विश्वास करते हैं । परन्तु सच्चे निरपक्ष संतों का मार्ग, मध्य मार्ग है, अर्थात् वे ब्रह्म की सर्व व्यापकता को मानकर, सर्व रूपों में, परमेश्वर को देखते हैं । यही मुक्त पुरूषों का सत्य मार्ग है ।

दादू हिन्दू तुरक का, द्वै पख पंथ निवार ।
संगती सांचे साध की, सांई को संभार ॥५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हिन्दू और मुसलमान, इन दोनों के पक्षपातों के सिद्धान्त का त्यागकर। और सच्चे निरपक्ष संतों के सतसंग द्वारा, परमेश्वर का स्मरण कर।

दोहा :- रज्जब हिन्दू तुरक तजि, सुमिरहु सिरजनहार।
पखा पखी सों प्रीत कर, कौन पहुंच्या पार ॥५१॥

दादू हिन्दू लागै देहुरै, मुसलमान मसीति।
हम लागे एक अलेख सौं, सदा निरंतर प्रीति ॥५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हिन्दू तो, मन्दिर में मूर्ति स्थापन, सेवा, पूजा, प्रार्थना, आदि के कारबार में लगे है, और मुसलमान मस्जिद में कलमा, नमाज, रोजा, आदि के कारबार में स्थित हैं। परन्तु सच्चे ब्रह्मवेत्ता संत, निष्काम भाव से, निरन्जन राम में ही, अखंड लय लगाते हैं।

न तहां हिन्दू देवरा, न तहां तुरक मसीति।
दादू आपै आप है, नहीं तहां रह रीति ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस शुद्ध ब्रह्म में सतचित्त आनन्द, अखंड एक रस, चेतन तत्व है। वहां माया के गुण कर्मों का, अत्यन्त अभाव होने से, न तो वहां हिन्दुओं का मन्दिर है और न मुसलमानों की मस्जिद है। अखंड ब्रह्मतत्व में, मंदिर मस्जिद की परिछिन्नता, असम्भव है।

दोहा :- राम राम हिन्दू कहै, तुरक रहिम रहिम।
जगन्नाथ या नाम का, पावै मरम फइम ॥५३॥

(फइम = फना)

यहु मसीत यहु देहुरा, सतगुरू दिया दिखाइ।
भीतर सेवा बन्दगी, बाहिर काहे जाइ ॥५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मनुष्य का शरीर ही मानो मंदिर और मजिस्द है । अर्थात् दोनों हाथों को ऊपर करने से यह मस्जिद है और उन्हीं दोनों हाथों को, सिद्ध आसण लगाकर, दोनों घुटनों पर रखने से मन्दिर बन जाता है । इसके अन्दर ही इसको रचने वाला परमेश्वर, निवास करता है । उसका नाम स्मरण रूप सेवा और बन्दगी को त्यागकर, बहिरंग साधनों में क्यों भ्रमते हो ?

दोन्यू हाथी व्है रहे, मिल रस पिया न जाइ ।
दादू आपा मेट करि, दोन्यू रहैं समाइ ॥५५॥

टीका:-हे जिज्ञासुओ ! जैसे दो मदोन्मत हाथी, एक साथ सरोवर में जल नहीं पी सकते हैं, वैसे ही धर्तोन्मत अपनी अपनी पक्ष में बंधे हुए, हिन्दू मुसलमान, ब्रह्मानन्द रूप, एकता को भूलकर, धार्मिक वाद विवाद में उलझ रहे है । ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज उपदेश करते हैं कि यदि दोनों ही अपने आप, मिथ्या अभिमान त्यागकर, निरपक्ष भाव से, अपनी अपनी धारणा के अनुसार, परमेश्वर कारण ब्रह्म का स्मरण करें तो, दोनों ही व्यवहारिक विषमता को त्यागकर, जन समुदाय से प्यार करते हुए, परमेश्वर में समा जाते हैं ।

भैभीत भयानक व्है रहे, देख्या निरपख अंग ।
दादू एकै ले रह्या, दूजा चढै न रंग ॥५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निर्गुण ब्रह्म का स्वरूप सुनकर, अज्ञानीजन चकित हो रहे हैं और उनसे निष्काम निर्गुण ब्रह्म की भक्ति, नहीं करी जाती है । और फिर ब्रह्मवेत्ता संतों के निरपक्ष व्यवहार को देखकर, हिन्दू मुसलमान, भयानक भयभीत हो रहे हैं । किन्तु जिन संतों ने एक ब्रह्मतत्व का निश्चय किया है, उन्हीं को द्वैतभाव, अच्छा नहीं लगता है ।

जाणै बूझै सांच है, सबको देखण धाइ ।
चाल नहीं संसार की, दादू गह्या न जाइ ॥५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन सत्यस्वरूप ब्रह्म का, सभी कोई साक्षात्कार करना चाहते हैं । किन्तु लोकाचार के बन्धनों से, साधारण जन, सत्य स्वरूप का निश्चय नहीं कर सकते हैं । और फिर संसारीजन निरपक्ष ब्रह्मवेता संतों को धन्य मानते हैं । उनके दर्शनों के लिये देश देशान्तर में जाते हैं । परन्तु संसार की चाल, कहिए, मत मतान्तरों के बाह्य चिन्ह नहीं होने से, संतों का मध्य मार्ग, संसारीजनों से नहीं धारण किया जाता है

दादू पख काहू के ना मिलै, निर्पख निरमल नांव ।
सांई सौं सनमुख सदा, मुकता सब ही ठांव ॥५८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे ब्रह्मवेता संत, हिन्दू मुसलमानों के, किसी भी साम्प्रदायिक धर्म में नहीं मिलते हैं, वे सर्व मतों से निरपक्ष समताभाव को धारण करके, भगवान के निष्काम नामों का स्मरण, अखंड भाव से करते हुए, केवल प्रभु में ही वृत्ति लगाकर रहते हैं, और लोक कल्याण के लिये, सारी वसुधा पर, बिचरते और उपदेश करते रहते हैं ।

दादू जब थैं हम निरपख भये, सबै रिसाने लोक ।
सतगुरू के परसाद थैं, मेरे हरख न सोक ॥५९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब से ब्रह्मवेत्ता मुक्तजन संत, निरपक्ष होते हैं, अर्थात् मध्य मार्ग पर चलते हैं, तब से कर्म काण्डी संसारीजन, उनसे द्वैतभाव करते हैं । परन्तु वह व्यवहार में भी, परमेश्वर की कृपा मानकर, हर्ष शोक से रहित होकर, रहते हैं । किन्तु ऐसी अवस्था, सतगुरू की कृपा से ही प्राप्त होती है ।

निरपख हो करि पख गहै, नर्क पड़ैगा सोइ ।
हम निरपख लागे नांव सौं, करत्ता करै सो होइ ॥६०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो उत्तम पुरूष, अद्वैत ब्रह्म की उपासना धारण करके, फिर मत मतान्तरों के पक्ष में बंध जायेंगे, तो वह आवागमन के चक्र में अवश्य भ्रमते रहेंगे । इसीलिए संतजन निरपक्ष नाम के स्मरण में रत्त रहते हैं । और सर्व व्यवहार, प्रभु की कृपा पर छोड़ देतें हैं ।

(हरि भरोसा)

दादू पख काहू के ना मिलै, निहकामी निर्पख साध ।
एक भरोसे राम के, खेलै खेल अगाध ॥६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे निरपक्ष मध्यमार्गी संत, एक राम के भरोसे पर सर्व व्यवहार करते हैं । और प्रभु से ज्ञान भक्ति द्वारा, खेलते हैं तथा भगवान की महिमा प्रगट करते हैं, संसारी जनों में ।

(मध्य)

दादू पखा पखी संसार सब, निरपख बिरला कोइ ।
सोइ निरपख होइगा, जाकै नांव निरंजन होइ ॥६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सारे संसार के अज्ञानी प्राणी पक्षा पक्षी में बंध रहे हैं और ईश्वर की भक्ति भी पक्षपात से ही करते हैं । अल्लह का नाम लेने वाले राम नाम में भेद समझते हैं, और राम कृष्ण का स्मरण करने वाले, अल्लह आदि में भेद समझते हैं । संसार में निरपक्ष मध्यमार्गी कोई बिरला ही पुरूष है । वही निरपक्ष होगा, जिसके अन्तःकरण में निरंजन निराकार शुद्ध ब्रह्म का नाम स्मरण है ।

अपने अपने पंथ की, सब को कहै बढाइ ।
ताथैं दादू एक सौं, अन्तर गति ल्यौ लाइ ॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पक्षपाती संसार के प्राणी, अपने अपने सम्प्रदा मत आदि को, चढा बढा कर बताते हैं । इसलिये इन पक्षपातियों से मत मतान्तरों के झगड़ों में फंसे हुए लोगों से अलग रहकर, अन्तःकरण में वह जो सबका उपास्यदेव कारण ब्रह्म है, उसी के नाम स्मरण में लय लगाओ ।

दोहा :- खट दरशन खोजे सबै, बांदि जिमावन काज ।
सबहि कही आप आपनी, बांदा जिमाऊं आज ॥६३॥

दृष्टान्त :- एक समय हरिद्वार के कुम्भ पर, खट दर्शन साधु समाज, सभी तीर्थ स्नान को आये हुए थे । बहुत से ग्रहस्थी यात्री भी आ रहे थे । एक राजा की बांदी नाम दरोगन भी आई और गंगा स्नान करके, विचार किया कि साधुओं को भंडारा दे दूं । यह सोचकर सभी खट दर्शनी संतों के स्थानों में गई और भंडारे के लिये पूछने लगी । प्रत्येक ने अपनी अपनी पक्ष की बात कही और दूसरों को, अपने से छोटे और कुमार्गी बताने लगे । तब बांदी ने विचार किया कि ये राग द्वेष में भरे हुए हैं, इनको जिमाने का क्या फल होगा ? अब तो मैं, अपनी जाति वाले, बांदे बांदी दरोगा दरोगनियों को ही जिमाऊंगी । इनसे तो वही ठीक हैं, क्यों कि, वह मेरी जाति के तो हैं । यह राम के भक्त कहला कर भी, ऊंच नीच के भेद में पड़े हुए हैं । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि “अपने अपने पंथ की, सब को कहै बढाइ० ।”

दादू द्वै पख दूरि करि, निरपख निरमल नांव ।
आपा मेटै हरि भजै, ताकी मैं बलि जांव ॥६४॥

टीका :– हे जिज्ञासुओ ! पक्षपात को अपने अन्तःकरण से दूर करके, निरपक्ष होकर, मध्य मार्ग से, परमेश्वर का अन्तःकरण में, निष्काम नाम स्मरण करते हैं । और अपने अनात्म, आपा कहिए अहंकार को जिन्होंने नष्ट कर दिया है, ऐसे संत भक्तों की हम बलिहारी जाते हैं ।

(सजीवन)

दादू तज संसार सब, रहै निराला होइ ।
अविनासी के आसरै, काल न लागै कोइ ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसार में आसक्ति का त्याग करके, तटस्थ रहै और अविनाशी परमेश्वर के नाम स्मरण का, आसरै धारण करके, जो रहते हैं, उनको कोई भी काल स्पर्श नहीं करता है अर्थात् काल उनसे अलग रहता है । वह स्वेच्छाचारी हैं ।

(मत्सर ईर्षा)

कलियुग कूकर कलि मुहां, उठि उठि लागै धाइ ।
दादू क्यों करि छूटिये, कलियुग बड़ि बलाइ ॥६६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कलयुगी संसारिक प्राणी, पक्षपाती भेदवादी पामर, निरपक्ष मध्यमार्गी संतों के पीछे पड़के काले मुंह के कुत्ते की तरह, कठोर बचन और शरीरिक पीड़ा आदि द्वारा, उन संतों को, नाना प्रकार के संताप देते हैं । इसलिये संतों को, ऐसे पुरुषों से, परम सावधान रहना चाहिये । अर्थात् उनका संग त्यागकर, परमेश्वर का निष्काम नाम स्मरण करना चाहिये ।

दोहा:- कलियुग साधु रूप धर, किये उपद्रव तीन ।
जन राधौ ता नगर को, धर्म लें गयो छीन॥६६॥

दृष्टान्त :- एक सच्चे निरपक्ष संत थे । वह नगर में परमेश्वर की कथा करने लगे । राजा रानी के सहित सारा नगर कथा श्रवण करने, आया करता था । संत बड़े विवेकी थे । परन्तु वह कलयुग का बहुत खंडन किया करते थे । तब कलयुग ने एक रोज विचार किया कि यह मेरे राज्य में रहकर, मेरा खंडन करता है । फिर कलयुग ने अपने तीन रूप बनाये । एक वैश्यां का, दूसरा कसाई का, तीसरा कलाल (मदरा बचने वाले) का, और कथा के समय वैश्यां आयी और बोली :- महाराज ! संत जी, यह आपने

मेरे साथ जो कुकर्म किया, उसका फल मेरे गर्भ रह गया, अब मेरे बच्चा होने वाला है, मेरे जापे में खान पान आदि का इन्तजाम करो। महात्मा ने उसकी तरफ देखा और बोले :- ठीक है भाई ! यह जो कथा पर चढावा आयेगा, वह तेरे ही को देंगें। कुछ देर में कसाई आया और बोला, इसकी आप लोग क्या कथा सुनते हो ? यह तो मेरे यहां से इतना मांस लाया है और खाया है, जिसके इसने आज तक पैसे नहीं दिये। मैं पैसे लेने आया हूं। साथ ही मदरा बेचने वाला आया। वह भी बोला :- इतनी शराब की बोतलें तुमने पीई हैं, उनके आज मुझे रूपये देओ। संत उन दोनों को बोले :- हां भई ! तुम्हें भी देंगे। इस लीला को देखकर, सर्व श्रोता उठ चले। परन्तु राजा और रानी निश्चल बैठे रहे। संत कथा निश्चल मन से करते रहे। किंचित भी उदास नहीं हुए।

दोहा :— कथा समय राधो कहै, श्रोता सारो गांव।
इतनी सुनकर उठि चले, फैर न लीनों नांव॥

कलिजुग माया देख करि, भक्ति ही में लीन।
रानी राजा से कहै, भाव न झूठो कीन॥

दोहा :— साधु कथा निश्चल करै, मेलो कीयो न मन।
फिर कुलिजुग पांवां पड़्यो, राधो वे जन धन॥

राधोदास जी महाराज कहते हैं कि फिर कलयुग संत के चरणों में आकर नमस्कार किया और बोला :- मेरा अपराध क्षमा करें, जो मैंने, आपकी श्रोताओं के सामने, मिथ्या आलोचना की है, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं। आप राम के सच्चे भक्त हो।

(संसार का त्याग)

काला मुंह संसार का, नीले कीये पांव।
दादू तीनि तलाक दे, भावै तीधर जांव॥६७॥

टीका :— हे जिज्ञासुओ ! इस संसार का काला मुंह और नीले पांव वाले की तरह त्यागिये, क्योंकि ऐसा रूप तो मुरदे का होता है, जो अस्पर्श है। इसी प्रकार इस संसार से भी प्रीति नहीं करना, क्योंकि यह परमेश्वर की आराधना में अन्तराय डालने वाले संसारिक प्राणी हैं। इसलिए हरि गुरु संतों की शपथ पूर्वक, संसार के मोह को त्यागना चाहिये।

दोहा :- आंधि चोमासै रहे, गुरू बरसायो नीर ।
ताहि समय साखी कही, दुनियां पूज्यौ पीर ॥६७॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज आंधी ग्राम में चतुर्मास ठहरे हुए थे । उस साल वर्षा नहीं होने से जनता ने महाराज से प्रार्थना की । तब ब्रह्मऋषि ने पानी बरसाने के लिए, भगवान से तीन साखियों से प्रार्थना की । (विरह के अंग में १५७ से १५९ तक) । तब परमेश्वर ने भारी वर्षा बरसाई । दूसरे रोज गांववासी सभी लोग गुलगुले पुड़ी बनाकर, ढोल बजाते हुए, पीर को पूजने गये और पाखण्डियों ने गांव में शोर मचा दिया कि पीर जी ने वर्षा बरसाई है । उसी समय परम गुरुदेव ने उपरोक्त साखी बोली ।

दादू भाव हीन जे पृथवी, दया बिहूणा देस ।
भगती नहीं भगवंत की, तहं कैसा परवेस ॥६८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस जगह परमेश्वर की भक्ति का भाव नहीं, संतों की सेवा का प्रेम नहीं, और जिस देश में जीवों पर दया नहीं, उस देश में संतों को क्या जाना है ! दाराष्टान्त में जिस मनुष्य के शरीर में संत वचनों के प्रति श्रद्धाभाव नहीं, ओर अन्तःकरण में दया नहीं, ऐसे तामसीक पुरुषों के हृदय में आत्म उपदेश को कहां स्थान है ?

(मध्य)

जे बोलैं तो चुप कहैं, चुप तो कहैं पुकार ।
दादू क्यौं करि छूटिये, ऐसा है संसार ॥६९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत पक्षपात रहित, जब परमेश्वर की निष्काम भक्ति का उपदेश करते हैं, तो अज्ञानीजन उस उपदेश के सुनने में उदासीनता लाते हैं, और कहते हैं कि निष्काम भक्ति में क्या पड़ा है ? हमें तो स्त्री, धन, पुत्र आदि चाहिये । और जब संत समाधि में मग्न होकर, संसार की वार्ता से मौन रहते हैं, तो अज्ञानीजन संतों को कपटी कहकर पुकारते हैं । इसलिये संसार सागर से छुटकारा पाने का, सहज भाव के अतिरिक्त, और कोई भी साधन नहीं है ।

दोहा :- व्यास बड़ाई जगत की, कुकर की पहिचान ।
प्रेम कीयां मुख चाटसी, बैर कीयां बीहान ॥६९॥

न जाणौं हांजी चुप गहि, मेटि अग्नि की झाल ।
सदा सजीवन सुमिरिये, दादू बंचै काल ॥७०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पक्षपाती संसारी लोगों के पास में, वह कहें कि तुम इस बात को नहीं जानते, तो कहै :- हां, नहीं जानता हूं । अथवा योग्य, अयोग्य बात में, हां में हां मिलाकर, या व्यवहार में सर्वथा मौन धारण करके, पक्षापक्ष रूपी अग्नि की झाल को मेटकर, फिर एक रस परमेश्वर में अखंड लय लगावे । इस रीति से कोई उत्तम जिज्ञासु ही, आवागमन रूप काल के चक्र बचते हैं ।

दोहा :- चंचल बानी श्रवण सुनि, मुनि जन पकरी मौन ।
साधु छांह सुमेर की, रज्जब डिगै न पौन ॥७०॥

एक मुनि बैठे हुए थे । एक चंचल स्त्री आई और मुनि से नाना प्रकार की छेड़ छाड़ करने लगी । मुनि स्त्री की चंचल बातें सुनकर, मौन हो गये ।

(पंथा पंथी)

पंथि चलैं ते प्राणिया, तेता कुल व्यौहार ।
निरपख साधु सो सही, जिनके एक अधार ॥७१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो संसारिक पंथा पंथी वाले पक्षपाती लोग हैं । नाना प्रकार के ग्रन्थों में आसक्ति रखने वाले सामान्य प्राणी, वे सब अनेकों मजहबी फांसियों में बंधे हुए हैं । जितने मत मतान्तर हैं, उतने ही उनके व्यवहार भी भिन्न भिन्न हैं । निरपक्ष तो सच्चे मध्यमार्गी संत हैं, जिनके केवल एक परमेश्वर के नाम का ही आधार है ।

दादू पंथौं परि गये, बपुरे बारह बाट ।
इनके संगि न जाइये, उलटा अविगत घाट ॥७२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक अज्ञानीजन, बपु आरामी देह अध्यासी, वासनाओं के बस में होकर, नाना सम्प्रदा, मत मतान्तरों में उलझ रहे हैं । वे बहिरंग साधनों में ही पच पच कर, मर जाते हैं । हे साधक! उनका संग नहीं करना, क्योंकि उनके संग से अपने मन इन्द्रियों को लौटा कर, अव्यक्त परमेश्वर में लगाना ।

(प्रासै विश्राम)

दादू जागें को आया कहैं, सूतें कौं कहै जाई।
आवण जावण झूठ है, जहं का तहां समाइ ॥७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक अज्ञानीजन, चेतन्य आतमा के द्वारा, प्राणों में जागृति आवै तो, साधारण मनुष्य उसको आया कहते हैं अर्थात् जन्म मानते हैं। और सूते कहिए, प्राण और स्थूल शरीर का वियोग होने पर, जीव को गया कहिए, मृत्यु मानते हैं। परन्तु तत्ववेता पुरूषों की दृष्टि में, यह बात मिथ्या है। किन्तु यह जीव, गुरू आज्ञा बिना, अविद्या से अविद्या में ही, समा कर रहता है। अथवा जब यह प्राणधारी, सतगुरू के ज्ञान उपदेश से जागकर, आतमा में स्थिर होवै तो, इस मनुष्य शरीर में आना इसका सार्थक है। सूते कहिए, अज्ञानी लोग, माया में मोहित हुए, उनका मनुष्य शरीर वृथा ही जाता है। इस प्रकार से संसार का आवागमन मिथ्या है, क्योंकि ब्रह्मवेता संत तो मुक्त होते हैं और अज्ञानीजन संसार बन्धन में समाते हैं। जब ब्रह्मवेत्ता संतों का समाधि से उत्थान होता है तो, उस समय संतों का आगमन कहलाता है और जब ब्रह्माकार समाधि लगती है तो, जाना मानते हैं। परन्तु ब्रह्मवेता संतों का संसार की तरह आना जाना मिथ्या है। वे तो अखंड वृत्ति से ब्रह्म में ही समाये रहते हैं।

(इति मध्य का अंग, टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

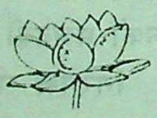

॥ अथ सारग्राही का अंग १७ ॥

“दादू तजि संसार सब, रहै निराला होइ ०।” —इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, मध्य के अंग के बाद, अब सारग्राही के अंग का निरूपण करेंगे । हंस की भांति असार संसार का त्याग करके, उसमें सार ब्रह्म तत्व का ग्रहण करने से ही, मुमुक्षुजनों की सफलता है । इह अंग में इसी भाव का विस्तार से वर्णन है ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ॥१॥

टीका :- हरि गुरू सन्तों के चरणों में, हमारी बारम्बार बन्दना है । जिनकी कृपा से जिज्ञासु, सर्व पक्षपात को त्यागकर, निरपक्ष भाव से सार ब्रह्मतत्व को प्राप्त होते हैं ।

दादू साधु गुण गहै, औगुण तजैं बिकार ।
मान सरोवर हंस ज्यूं, छाड़ नीर गहि सार ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे मान सरोवर के हंस, जल को त्यागकर, दूध और मोती चुगते हैं, वैसे ही ब्रह्मरूप मानसरोवर के संतजन, सर्व जीवों के औगुण विषय विकारों को त्यागकर, उत्तम गुण ग्रहण करते हैं और नाम रूपी मोती चुगते हैं ।

हंस गियानी सो भला, अन्तर राखै एक ।
विष मैं अमृत काढि ले, दादू बड़ा बमेक ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वे आत्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं, जो हृदय में एक निर्गुण राम में ही, अखंड वृत्ति लगाते हैं और संसार विष रूप में से, विवेक द्वारा व्यापक स्वरूप अमृत निकालते हैं, एवं विषरूप अनात्म शरीर में, आत्मारूप अमृत का, निश्चय करते हैं।

पहलि न्यारा मन करै, पीछै सहज शरीर ।
दादू हंस विचार सौं, न्यारा कीया नीर ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संत जब मन को, संसार और देहअध्यास से उदास करके, फिर शरीर से निष्काम भाव से, प्रारब्ध अनुसार स्वतः ही व्यवहार करते हैं और हर्ष, शोक, तृष्णा राग द्वेष, यह सब तमोगुण के कार्य विकार, उन संतों को नहीं व्याप्ते हैं। इस प्रकार वह संत सारग्राही दृष्टि से, आत्म स्वरूप को, संसारभाव से न्यारा, निर्विकार स्वरूप से निश्चय करते हैं।

आपै आप प्रकासीया, निरमल ज्ञान अनन्त ।
खीर नीर न्यारा किया, दादू भजी भगवंत ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरुषों पर कृपा करके, आप स्वयं परमेश्वर ने, उनके अन्तःकरण में मानो, आप अनन्तस्वरूप होकर प्रकासते हैं, अथवा संत, परमेश्वर का नाम स्मरण करके, शुद्ध रूप का ज्ञान हृदय में प्राप्त करते हैं, जिससे जल दूध की भांति, सार असार का निश्चय करके, ब्रह्म तत्व में ही मग्न रहते हैं।

खीर नीर का संत जन, न्याब नबेरैं आइ ।
दादू साधु हंस बिन, भेलस भेलै जाइ ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संतजन ही सार असार का निर्णय करके, केवल सार चेतन्य ब्रह्मतत्व को ही ग्रहण करते हैं अर्थात् धारण करते हैं और हंस के बिना दूसरे जीव, दूध और जल को मिला हुआ ही पान करते हैं। इसी तरह संसारीजन, जगत में आसक्ति द्वारा ही, सकाम भक्ति करते हैं। केवल निष्काम तो संतजन ही ब्रह्म चिन्तन करते हैं।

दादू मन हंसा मोती चुणै, कंकर दीया डारि ।
सतगुरू कहि समझाइया, पाया भेद विचारि ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हंस रूपी उत्तम संत, कंकर रूप संसारिक वैभव, माया की आसक्ति त्यागकर, मोती ब्रह्मतत्व अथवा निष्काम नामरूप का विचार करते हैं । जब से सतगुरु ने कृपा करके, आत्म उपदेश दिया है, तभी से साधक ने, ब्रह्म का भेद, प्राप्त किया है ।

दादू हंस मोती चुणैं, मान सरोवर जाइ ।
बगुला छीलर बापुड़ा, चुणि चुणि मछली खाइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे हंस तो मोती चुगता है और बगुला मछली खाता है और थोड़े जल में रहता है । इसी प्रकार हंस रूप संत, मान सरोवर रूपी सतसंग में, ब्रह्म तत्व का निश्चय रूप मोती चुगकर, आत्मा आनन्द में तृप्त रहते हैं । और देह अध्यासी अज्ञानी संसारीजन, कुसंग के प्रभात्र से विषय विकारो को भोगने में ही, अमुल्य मनुष्य शरीर को व्यर्थ ही गमाते हैं ।

दादू हंस मोती चुगैं, मान सरोवर न्हाइ ।
फिरि फिरि बैसैं बापुड़ा, काग करंका आइ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस प्रकार हंस मान सरोवर में, स्नान करके मोती चुगता है, वैसे ही उत्त संतजन, ब्रह्म सरोवर में ब्रह्म विचार द्वारा, मन को स्थिर करके, अभेद निश्चयरूप मोती चुगते हैं । औ कव्वा रूपी संसारी अज्ञानीजन, शरीर अध्यास और स्त्री आदि शरीर में ही आसक्त रहकर, पुनः पुनः संसा के जन्म मरण में भटकते हैं ।

दोहा :- हंस काग के संगी लगी, थलियां आयो भूलि ।
त्रसंक देख्यौं करंक जल, दुखित भयो गयो डूलि ॥९॥

दृष्टान्त :- यह दृष्टान्त पहले आ चुका है ।

दादू हंस परखिये, उत्तम करणी चाल ।
बगुला बैसै ध्यान धरी, परतखि कहिये काल ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हंस के तद्वत, उत्तम परम विवेकी संतजन हैं । उनकी रहणि करणि, अ उत्तम है, हंसों की भांति । और बगुलारूप अज्ञानी, विषय आसक्त संसारीजन, कपट पूर्वक ध्यान करते

अर्थात् सकाम कर्मों के द्वारा स्मरण करते हैं । उनके लिये प्रत्यक्ष ही काल है, और वे जन्म मरण के चक्र में भ्रमते हैं ।

उजल करणी हंस है, मैली करणी काग ।
मधम करणी छाड़ि सब, दादू उत्तम भाग ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परम विवेकी संतों की करणी, कहिये कर्त्तव्य, हंस की भांति आदर्शनीय होते हैं और संसारिक अज्ञानी जनों की करणी कर्त्तव्य, कव्वे की भांति, मैली है । अर्थात् सच्चे संतजन, संसार की मैली करणी को छोड़कर, अनन्य भक्ति रूपी, उत्तम करणी करते हैं । और परोपकार आदि में प्रवृत्त रहते हैं ।

दादू निरमल करणी साध की, मैली सब संसार ।
मैलि मधिम व्है गये, निरमल सिरजन हार ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संतों की करणी कर्त्तव्य, पाप रहित होते हैं और संसारीजनों के करणी कर्त्तव्य में, कुछ न कुछ पाप अवश्य रहते हैं । मैली करणी करने वाले संसारीजन अधोगति में जाते हैं और उज्जवल करणी करने वाले संतजन, परमेश्वर स्वरूप होते हैं ।

दादू करणी उपर जाती है, दूजा सोच निवारि ।
मैलि मधिम व्है गऐ, उज्जल ऊंच विचार ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जाति कर्मों के आधार पर है, जन्म पर नहीं है । इसलिये जन्म जाति के विचार को त्यागकर, मैली करणी करने वाले, जन्म जाति से ब्राह्मण भी, मध्यम नीचे पद को प्राप्त हो जाते हैं । और उज्जवल सात्विक कर्म करने वाले, शूद्र भी ब्राह्मण आदि पद को प्राप्त हो जाते हैं ।

दोहा :- एक नृप के कर में, ऊग्यो नाम चांडाल बाल ।
मिटिये खाये तासकन, ब्राह्मण हो चांडाल ॥१३॥

दृष्टांत :- एक राजा की हथेली पर चांडाल बाल उत्पन्न हुआ । बड़ी भारी पीड़ा होने लगी । एक संत बोले :- हे राजन् ! किसी चांडाल ब्राह्मण की भूठन आप खाओ, तो यह बाल पीड़ा के सहित नष्ट हो

जायेगा । तब राजा भेष बदलकर, देहात में गया और वहां एक खेत में जन्म जाति का ब्राह्मण, बड़ा तामसिक हल जोतता देखा । हाथ में रोटी ले रखी है और खाता जाता है । बैलों के डंडे मारता है । कभी कभी बैलों की पीठ में बुटकियाँ मारने लगता है । गालियां देता है । राजा को जो संत ने लक्षण बताये थे, वह सब उसमें राजा ने देख लिए और उसके पास जाकर बोला :- भाई ! एक टुकड़ा रोटी का मूझे भी दे दे, मैं भूखा हूं । यह सुनकर राजा के ऊपर डंडा उठाया और टुकड़ा नहीं दिया । खाते खाते के हाथ से जरा सा टुकड़ा जमीन पर गिर गया । राजा ने दौड़कर, उस टुकड़े को उठाया, और खा लिया । वह चांडाल रूप ब्राह्मण, राजा के तीन डंडे मारे, परन्तु राजा कुछ न बोला । राजा का चांडाल बाल, उसी समय नष्ट हो गया ।

उजल करनी राम है, दादू दूजा धंध ।
का कहिये समझै नहीं, चारों लोचन अंध ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भगवान सम्बन्धी जो कर्म करते हैं, वह संतभक्त राम रूप ही हैं और सब बात निरर्थक है । अर्थात् व्यवहारिक प्रपंच सब मिथ्या है । परन्तु संसारिक अज्ञानी जोवों को किस तरह समझावें ? वह तो चतुष्ठय अन्तःकरण रूपी वृत्ति नेत्रों से बिचारहीन हैं । उनको परमेश्वर पर भरोसा नहीं है ।

दादू गऊ बाचका ज्ञान गहि, दूध रहै ल्यौ लाइ ।
सींग पूंछ पग पर हरै, अस्थन लागै धाइ ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गऊ और बच्छे वाले ज्ञान को ग्रहण करं । जैसे गऊ का छोटा बच्चा दौड़कर, गऊ के पास आता है और इधर उधर गाय के अवयवों के मुंह लगाता है, जब तक स्थन नहीं मिलते । जब स्तन मिल जाते हैं, तो फिर बड़े प्रेम से दूध पीकर, पेट भर लेता है । इसी प्रकार यह संसार ही मानो गऊ का रूप है और व्यापक चेतन्य ही मानो दूध है और ब्रह्मनिष्ठ संत ही उसके स्तन हैं । उत्तम मुमुक्षु बहिरंग निष्काम साधनों में दौड़ता दौड़ता, ब्रह्मनिष्ठ संतों के, सत्संग में आकर, उनके मुखार्बिन्द से ज्ञाना अमृत पान करके, बच्चे की भांति तृप्त हो जाता है ।

दादू काम गाय के दूध सों, हाड़ चाम सौं नांहि ।
इहि बिधि अमृत पीजिये, साधू के मुख मांहि ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बच्छे को गाय के दूध से मतलब है, गाय के हाड़ चाम से कोई मतलब नहीं है । इसी प्रकार संसार में माया प्रपंच का पसारा है, परन्तु उत्तम जिज्ञासु को सारग्राही बुद्धि से, माया प्रपंच से उदास होकर, ब्रह्मवेत्ता संतों के मुखार्बिन्द से, ज्ञानामृत रूप दूध को ही पान करना चाहिये ।

दोहा :– सार गह जगन्नाथ जन, ले असार संसार ।
भाव भक्ति पै बचछ ज्यौं, चीचर रूधिर बिकार ॥१६॥

(स्मरण नाम)

दादू काम धणी के नांव सौं, लौगन सूं कुछ नांहि ।
लोगन सौं मन ऊपली, मन की मनहीं मांहि ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अनन्य भक्तों के अन्तःकरण में केवल, राम नाम की ही अखण्ड लय लगी रहती है। बहिर्मुख लोगों से कुछ मतलब नहीं रखते । और यदि बहिर्मुख लोग आ भी जावें, संतों के पास तो, उनसे, ऊपरी मन से वार्ता कर लेते हैं। परन्तु मन की प्रीति एक परमेश्वर के नाम में ही लगी रहती है।

जाके हिरदै जैसी होइगी, सो तैसी ले जाइ ।
दादू तू निर्दोष रहु, नाम निरंतर गाइ ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनके अन्तःकरण में जैसी भावना होती है, उन्हीं भावों का, वह जन, संतों के शरीर में अध्यारोप करते हैं, अर्थात् देखते हैं। परन्तु वह संत तो सब प्रकार निर्दोष रहते हैं और राम नाम का स्मरण करते हैं। इसलिये अन्तःकरण में शुभ संकल्प राखिये, क्योंकि जीवन काल में, जीव के जैसे संस्कार होते हैं, मृत्यु के बाद भी वही संरकार, जीव को भ्रमाते हैं।

दोहा :– इक कोलि इक बाणीयों, साधु सेइ दे गाल ।
बणक तिर्यो कोलि मर्यो, द्वै भुज सिर लख बाल ॥१८॥

दृष्टान्त :- एक गांव में एक बनिया और दूसरा कोली रहता था। बनिया एक सिद्ध योगी, महात्मा की सेवा करता था। और कोली उसी महात्मा को जाकर, गालियां दिया करता था। बनिया संत सेवा करके, परम पद को प्राप्त हो गया और कोली को एक रोज, महात्मा बोला :- मांग वर ! कोली ने मन में सोचा कि एक रेजी बुनता हूं, दिन भर में, सो दो रेजी बुन लूं, ऐसा वर मागूं। तब बोला :- कि मेरे दो सिर और चार हाथ बना दो। महात्मा ने कहा, तेरे दो सिर और चार हाथ हो जाओ। कोली राजी होकर गांव की तरफ आया। गांव के बालकों ने देखा कि यह भूत, गांव में जाकर, गांव को नष्ट करेगा, इसलिये इसको यहीं मार दो। पत्थर मार मार कर कोली को खत्म कर दिया।

दादू साध सबै करि देखणां, असाध न दीसै कोइ।
जिहिं के हिरदै हरि नहीं, तिहि तन टोटा होइ ॥१९॥

टीका :— हे जिज्ञासुओ ! अपने अन्तःकरण में विचाररूपी नेत्रों से हम तो सबको साधु ही करके देखते हैं। कोई भी असाधु नहीं दिखाई देता है। जिसके अन्तःकरण में परमेश्वर का नाम स्मरण नहीं है, उसके घाटा रहेगा। हमारे तो घाटा रहेगा नहीं, क्योंकि हम तो अपने भाव से साधु ही करके देखते हैं।

दोहा :- कबीर साकत कोइ नहि, सबै बैसनु जानी।
जा तन राम न उचरै, ताही तन को हानी ॥१९॥

दोहा :- कांगो पूज्यो साध कर, परचा तैं भइ मान।
नृप सुनी लारे लग्यो, करक सूंघ भयो ग्यान ॥१९॥

दृष्टान्त एक राजा के बाग में एक गूंगा आ गया। माली उसे साधु जानकर, पुत्र की इच्छा से सेवा करने लगा। माली के पुत्र हो गया। माली खुशी की डाली लगा कर, राजा के पास गया। राजा :- यह कैसी डाली है ? माली :- एक संत की सेवा से, लड़का हुआ है। राजा :- हमारे भी लड़का नहीं है, हम भी उनसे लड़का मांगने आते हैं। माली :- ठीक है हुजूर। माली आकर कांगा से बोला, "आपके पास राजा पुत्र लेने आता है।" कागां ने सोचा मेरे पास पुत्र कहां है ? राजा आया। कांगा उठ करके दौड़ चला, डर से। राजा समझा, यह ऐसे कहता है कि मेरे पीछे पीछे आ जा। कांगा ने पीछे देखा तो राजा दौड़ा आ रहा है। जंगल में एक जगह मरे ऊंट का पीजंर पड़ा था। कांगा ने उसको सूंघा और राजा की तरफ देख कर, दौड़ गया। राजा ने सोचा कि यह सैन में बता गये कि इसे सूंघ कर चला जा, तेरे लड़का हो जाएगा। राजा सूंघ कर, राज महलों में आ गया। कांगा ने तो मन में सोचा था कि मुझे गन्दा जान कर लौट जाएगा, परन्तु राजा के अपने भाव से लड़का हो गया। कांगा की मान प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई।

दोहा :- कबीर सब घट आत्मा, सिर जी सिरजनहार।
राम भजै सो राम सम, रहिता ब्रह्म विचार ॥१९॥

साधू संगती पाइये, तब दूंदर दूरि नसाइ।
दादू बोहिथ बैस करि, डूंडे निकटि न जाइ ॥२०॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! जब सच्चे निरपक्ष संतों का सतसंग जिसे प्राप्त होता है, वह अपने सम्पूर्ण राग द्वेष आदि विकारों को त्याग देता है और परमानन्द को प्राप्त करने रूप, मानो जहाज में बैठ गया है। जैसे समुद्र से पार जाने वाले यात्री जहाज में सवार होने के बाद, छोटी नौका की इच्छा त्याग देते हैं। इसी प्रकार परमानन्द को प्राप्त होने के बाद, तत्ववेत्ता संसारिक सुखों की परवाह नहीं करते हैं।

जब परम पदारथ पाइये, तब कंकर दीया डारि।
दादू सांचा सो मिलै, तब कूड़े काच निवारि ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब जौहरी पदार्थ नाम का हीरा प्राप्त कर लेता है, तो फिर नकली चमकीले पत्थर के टुकड़े को छोड़ देता है। इसी प्रकार सच्चे अधिकारी, जब परमानन्द रूप हीरे को प्राप्त कर लेते हैं, तब फिर खोटा काच रूप संसारिक मायावी पदार्थों से प्रीति त्याग देते हैं, अर्थात् सत्य ब्रह्मस्वरूप से मिली जो वृत्ति, तब झूठा काच की भांति, दुख रूप मायावी धर्म त्याग देते हैं।

जब जीवन मूरी पाइये, तब मरिबा कोण बिसाहि।
दादू अमृत्त छाड़ि करि, कौण हलाहल खाइ ॥२२॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! जब सतसंग द्वारा, सजीवनी जड़ी रूप, अनन्य भक्ति प्राप्त हो जावै, तो फिर मृत्यु देने वाले, जहर रूप, विषय वासनाओं से वह क्यों प्यार करेगा ? जैसे किसी को अमृत प्राप्त हो जावे तो, फिर वह हलाहल 'पाइजन' को क्यों पीवेगा ! अर्थात् नहीं पीता।

जब मानसरोवर पाइये, तब छीलर कूं छिटकाइ।
दादू हंसा हरि मिले, तब कागा गये बिलाइ ॥२३॥

टीक :- हे जिज्ञासुओ ! जब हंस मानसरोवर को प्राप्त कर लेता है, तब फिर छोटे ताल तलाइयों का त्याग कर देता है। इसी प्रकार जब मुक्त पुरूष ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लेते हैं, तब फिर विषय आनन्द रूप सुख को त्याग देते हैं अर्थात् उनकी विषय सुख को भोगने वाली, कागा रूप वृत्ति नष्ट हो जाती है।

जहं दिनकर तहं निस नही, निस तहं दिनकर नांहि।
दादू ऐकै द्वै नहि, साधन के मत मांहि ॥२४॥

दृष्टान्त:-हे जिज्ञासुओ ! जब सूर्य उदय हो जाता है, फिर वहां रात्रि रूप अन्धेरा नहीं रहता, और जहां रात्रि रूप अन्धेरा हैं, वहां सूर्य का प्रकास, नहीं है। इसी प्रकार अद्वैत बादी मुक्त संतों के अन्तःकरण में, ब्रह्म प्रकाश

प्रकासता है। वहां फिर मायिक आवरण का अभाव हो जाता है और जिन अज्ञानी संसारिक मनुष्यों के अन्तःकरण में मायिक आवरण है, उनको मायावी सुख ही अच्छे लगते हैं। ब्रह्म प्रकाश से वह उदास ही रहते हैं। जैसे घूघू को रात ही अच्छी लगती है, क्योंकि उसके लिये वही दिन है और दिन का प्रकाश उसके लिये रात है।

दोहा :- जहां राम और कामना, कैसे दोउ ठहराइ।
रवि और रजनी ऐकठे, हम कहुं देखे नाइ ॥२४॥

दादू एकै घोड़ै चढि चलै, दूजा कोतील होइ।
दुहू घोड़ों चढि बैसतां, पारि न पहुंचा कोइ ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! घुमसवार. एक साथ दो घोड़ों पर बैठकर नहीं चल सकता। घुड़सवार एक घोड़े पर खुद बैठता है और दूसरा सहायक कोतल घोड़ा, पीछे घोड़े के साथ ले लेता है। इसी प्रकार एक अद्वैत ब्रह्म में वृत्ति लगाकर, जीवन मुक्त रहता है। उसके वस्त्र भोजन और अन्य शारीरिक व्यवहार, "कोतील" कहिये, स्वतः ही पूर्ण होते रहते हैं, क्योंकि मुमुक्षु को अध्यात्म के साथ साथ, निष्काम भाव से परोपकार एवं शारीरिक व्यवहार भी करते रहना चाहिये। परन्तु उसमें आसक्त नहीं रहै। और अध्यात्म में ही अपनी वृत्ति को एकाग्र रखै। ऐसे उत्तम पुरुष ही, स्वस्वरूप को साक्षात्कार करते हैं।

(इति सारग्राही का अंग, टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

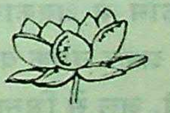

॥ अथ विचार का अंग १८ ॥

“सतगुरू कहि समझाइया, पाया भेद विचार०’, इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप सारग्राही के अंग के अनन्तर, अब विचार के अंग का निरूपण करते हैं । इस अंग में अद्वैत, असंग, निर्विकल्प, निर्गुण, सर्व व्यापक, ब्रह्म तत्व का विचार किया है ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारगंतः ॥१॥

टीका :- निरंजनदेव, गुरू, सन्तों के चरणों में, हमारी बारम्बार बन्दना है । जिनकी कृपा से जिज्ञासुजन सारग्राही बुद्धि द्वारा, सर्व प्राणियों में ब्रह्म सत्ता का निश्चय करके, स्वरूप के विचार में ही मग्न रहते हैं ।

(ज्ञान परिचय)

दादू जल मै गगन, गगन मै जल है, पुनिवै गगन निरालं ।
ब्रह्म जीव ईहिं विधि रहै, ऐसा भेद विचारं ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे जल तो आकास के अवकास में भरा रहता है और जल में आकाश व्याप्त रहता है । क्योंकि जल में आकाश होने से ही, शकर नमक वगैरा, यह सब जल में घुल जाते हैं । परन्तु वह निराकार आकाश, जल में व्याप्त होता हुआ भी, जल से भिन्न असंग रहता है । इसी प्रकार काम्य कर्म सहित बुद्धि जल रूप है और जीव शरीर में व्याप्त, पूर्ण ब्रह्म रूप आकाश के तद्वत है । वही जलरूप ब्रह्म बुद्धि के अन्दर, अविद्या के गुणों से अलग अर्थात् असंग रहकर भी, जीव के भीतर ही व्याप्त है । और जीवात्मा का निज आनन्द स्वरूप आत्मा, सब प्रकार निर्द्वन्द्व हुआ, सदा एक रस रहता है ।

ज्यूँ दरपन में मुख देखिये, पानी में प्रतिबिम्ब ।
ऐसे आत्म राम है, दादू सब ही संग ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे दर्पण में या जल में प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, वैसे ही जीवों के अन्तःकरण में ब्रह्म का चिदाभास पड़कर, अन्तःकरण को चेतनता प्रदान करता करता है । उसी ब्रह्म की सत्ता से सम्पूर्ण व्यवहार होता है । अतः ब्रह्म सर्वत्र ही व्यापक है ।

(सांच)

जब दरपन मांहैं देखिये, तब अपना सूझै आप ।
दरपन बिन सूझै नहीं, दादू पुरिरू पाप ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे काच में अपना स्वरूप मुख दिखाई देता है, इसी तरह अन्तःकरण रूप उपाधी द्वारा, पाप पुण्यमय संसार प्रतीत होता है ।

(ज्ञान परिचय)

जीयें तेल त्तिलनं में, जीयें गंध फुलन्न ।
जीयें माखण खीर में, ईयें रबु रूहंनि ॥५॥

टीका:-हे जिज्ञासु ! जिस प्रकार तिलों में तेल में तेल व्याप्त है, पुष्प में गन्ध व्याप्त है, वैसे ही दूध में घृत, एक रस रहता है। इसी प्रकार सर्व जीवों में और सम्पूर्ण संसार में, चेतन्य स्वरूप ब्रह्म व्याप्त है ।

ईयें रबु रूहंनि में, जीयें रूह रगंनि ।
जीयें जेंरौ सूरमा, ठंडो चन्द्र बसंनि ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जिस प्रकार परमेश्वर जीव में व्यापक है, वैसे ही जीव, शरीर के रोम रोम में व्यापक है । और जैसे सूर्य में प्रकास व्यापक है, चन्द्रमा में शीतलता व्यापक है, इसी प्रकार साक्षी भाव से सर्व जीवों में, एक रस ब्रह्म व्यापक है ।

दादू जिन यहु दिल मंदिर किया, दिल मंदिर मै सोइ ।
दिल माहै दिलदार है, औरन दूजा कोइ ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जिस माया विशिष्ट ईश्वर ने, मन्दिर रूप जीवों के अन्तःकरण को रचकर, आप स्वयं परमेश्वर ही, सर्व व्यापक भाव से, सब अन्तःकरण रूप मन्दिरों में बिराजते हैं। इसलिये अपने अन्तःकरण में ही, अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, अर्थात् ब्रह्माकार वृत्ति से साक्षात्कार करो। इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा साधन नहीं है।

मीत तुम्हारा तुम्ह कनै, तुम ही लेहु पिछाणि।
दादू दूरि न देखिये, प्रतिबिम्ब ज्यूं ही जाणि ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अनन्य भक्तों का प्रिय मित्र परमेश्वर, अन्तःकरण में ही है। इसलिये अपने अन्तःकरण में ही, उसका निश्चय कीजिये। सो कैसा है, परमेश्वर उसको दूर नहीं जानना। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब काच में और जल में दिखाई देता है और जल के मलिनता आदि दोषों से निर्मल है, इसी प्रकार अन्तःकरण के मल विक्षेप दोषों से रहित, उस चेतन्य स्वरूप परमेश्वर का प्रतिबिम्ब निर्मल है और वह परमेश्वर सत् चित आनन्द स्वरूप है।

(विरक्तता)

दादू नाल कवंल जल ऊपजै, क्यूं जूदा जल मांहि।
चंदहि हितचित प्रीतड़ी, यौं जल सेती नांहि ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जैसे कमल जल में पैदा होता है, किन्तु जल से फिर अलग निर्लिप्त रहता है और कमोदनी भी जल में उत्पन्न होती है, परन्तु उसकी जल से प्रीति नहीं होती, चन्द्रमा के साथ उसकी प्रीति होती है। इसी प्रकार मायिक संसार में ही अनन्य भक्त संत उत्पन्न होते हैं, परन्तु उनकी प्रीति परमेश्वर के साथ होती है, मायिक संसार में नहीं होती।

दोहा :- कमोदनी जल में बसै, चन्द बसै आकास।
जो जाके मन में बसै, सो ताहु के पास ॥९॥

दादू एक बिचार सौं, सबथैं न्यारा होइ।
मांहि है पर मन नहीं, सहज निरंजन सोइ ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे संतजन ब्रह्म अभ्यास में स्थित प्रग्य होकर, माया प्रपंच से अलग रहते हैं। और शरीर से संसार में रहते दीखते हैं। परन्तु उनका मन सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म के अभ्यास में ही लगा रहता है। इसीलिये मुक्तजन स्वस्वरूप में मग्न होकर, मुक्त रहते हैं।

दादू गुण निर्गुण मन मिलि रह्या, क्यूं बेगर व्है जाइ ।
जहं मन नांही सो नहीं, जहं मन चेतन सो आहि ॥११॥

टीका :- गुण निर्गुण कहिए, माया विशिष्ट ब्रह्म, विषय आसक्त मन से "बेगर" कहिये, अलग अलग, क्यों विचार किया जावै। जिस वस्तु में मन नहीं है, वह वस्तु उस मन के लिये, नहीं के समान है। और जिस वस्तु में मन है, वह वस्तु उस मन के लिये, स्वरूप से है। अतः वैराग्य पूर्वक विचार द्वारा, मन को परमात्मा में लगाने से, मन चेतन्य रूप हो जाता है।

(विचार)

दादू सबही व्याधि की, औसधि एक बिचार ।
समझेथैं सुख पाइये, कोइ कुछ कहौ गवांर ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अध्यातम आदिदैविक अधिभौतिक, जन्म और मरण, इन सब ही दुखों की निवृति का साधन, एक ब्रह्म विचार ही है। जब ब्रह्म तत्व को महावाक्यों, के विचार द्वारा, निश्चय करने से परमानन्द की प्राप्ति होती है। फिर 'गंवार' कहिए, विषय आसक्त बहिर्मुख अज्ञानी, जीवन मुक्त पुरूषों के लिये, चाहे कुछ भी कहते रहो।

दादू इक निर्गुण इक गुण मई, सब घट ये द्वै ज्ञान ।
काया का माया मिलै, आतम ब्रह्म समान ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सभी शरीरों में एक निर्गुणरूप और दूसरा सगुणरूप, ये दो ज्ञान रहते हैं। जिस अन्तःकरण में मायाकृत शरीर आदि का अध्यास रहता है, वह संसार के जन्म मरण को प्राप्त होता है। और जिस अन्तःकरण में निर्गुण ब्रह्म स्वरूप आतमा का ज्ञान प्रधान होता है, वह ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होता है।

दादू कोटि अचारिन एक बिचारिन, तऊन सरवर होइ ।
आचारि सब जग भर्‌या, बिचारी बिरला कोइ ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! करोड़ बहिरंग आचार करने वाले पुरूषों की, एक विचारपूर्वक आचार करने वाले पुरूष के साथ समान्यता, नाम तुलना नहीं होती है। सम्पूर्ण जगत के मनुष्य, बहिरंग आचार छुआ छूत ऊंच नीच आदि के विचारों से भरा हुआ है। परन्तु इस संसार में नित अनित्य का विचार करने वाले विवेकी पुरूष तो कोई बिरले ढूंढने से मिलते हैं।

दादू घट में सुख आनन्द है, तब सब ठाहर होइ।
घट में सुख आनन्द बिन, सुखी न देख्या कोइ ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनको अन्तःकरण में शान्ति सुख प्राप्त है, उनको सब जगह ही, सुख ही सुख भान होता है। और जिन तामसिक पुरूषों के हृदय में शांति सुख नहीं है, वे संसार में किसी को भी सुखी नहीं देखते हैं। उनको सब दुखो ही दुखो दिखते हैं। अथवा जो विचारशील ब्रह्मवेत्ता मुक्त पुरूष, अन्तःकरण में ही सुखरूप ब्रह्मानन्द का निश्चय कर लिया है, उनको सर्वत्र ब्रह्मानन्द रूप सुख ही भान होता है। और संसार दुख उनको नहीं व्यापता है। जिन संसारिक पुरूषों को अपने आत्म स्वरूप का निश्चय नहीं है, वे अज्ञानी सर्वत्र संसार में दुखी ही रहते हैं।

(विरक्तता)

काया लोक अनन्त सब, घट में भारी भीर।
जहां जाइ तंह संगि सब, दरिया पैली तीर ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस शरीर रूपी लोक में 'घट' कहिए, जीवात्मा के अन्तःकरण में नाना प्रकार के वासनामय, रजोगुणी सतोगुणी, गुण विकारों की भारी भीड़ है। इसीलिए संसारी अज्ञानी जीव, अनन्त शरीरों में भ्रमते हैं, क्योंकि सूक्ष्म वासना रूप से, गुण विकार सब साथ ही रहते हैं। "दरीया पैली तीर" कहिए,—इस संसार में चाहे स्वर्ग में, चाहे मृत्तलोक में, चाहे पताल में, घर में या बन में, कहीं भी रहो, किन्तु सूक्ष्म वासना जब तक नष्ट नहीं होती, तब तक संसार से मुक्त नहीं हो सकता।

२७

काया माया व्है रही, जोधा बहु बलिवंत।
दादू दुस्तर क्यूं तरै, काया लोक अनंत ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह काया मानो माया ही का स्वरूप है। इसके भरण पोषण के लिये, संसारीजन अनेकों साधन करते हैं और इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि बड़े योद्धा बसते हैं। प्राणी मात्र को शरीर अध्यास से मुक्त होना कठिन है। इसी से सूक्ष्म शरीर में अबद्ध जीव, अनेको योनियों में जन्म लेता रहता है। परन्तु कोई बिरले सच्चे संत, इस देह अध्यास से मुक्त होकर, ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं।

मोटि माया तजि गये, सुक्ष्म लिये जाइ।
दादू को छूटै नहीं, माया बड़ी बलाइ ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बहुत से अज्ञानी लोग, भौतिक दुख से दुखी होकर, स्त्री धन पुत्र आदि का त्याग करके, साधु भेख ले लेते हैं, अर्थात् इस मोटी माया को तजकर चले जाते हैं। परन्तु विषय वासना रूप मनोरथ सूक्ष्म उनके अन्दर ही रहते हैं। यह माया का सूक्ष्म रूप है। सतगुरू भगवान कहते हैं कि इस माया से कोई छूट नहीं पाता। क्योंकि इसका सूक्ष्म और मोटा, दो जाल हैं। इसके इन दोनों जालों से कोई बिरले तत्ववेत्ता पुरूष ही मुक्त होते हैं।

दादू सुखिम मांहि ले, तिनका कीजै त्याग।
सब तज राता राम सौं, दादू यहु बैराग ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अन्तःकरण में सूक्ष्म वासनाओं का त्याग करिये। इस प्रकार सम्पूर्ण वासनाओं को दबाकर, अधिष्टान रूप राम से अर्थात् उसके नाम स्मरण से विचार द्वारा रात्ते रत्त और माते मस्त रहो। यही सच्चा वैराग्य है।

गुणातीत सो दरसनी, आपा धरै उठाइ।
दादू निर्गुन राम गहि, डोरी लागा जाइ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तीन गुण रूप वासनाओं से, अपनी वृत्ति को अलग कर ली है। जिन्होंने ऐसे गुणातीत ब्रह्मनिष्ठ जीवन मुक्त पुरूष, वह दर्शन योग्य महापुरूष हैं। उन्होंने अपने अनात्म अहंकार को अन्तःकरण से उठाकर, चेतन्त में विलय कर दिया है और फिर निर्गुण राम से कहिए सच्चिदानन्द ब्रह्म से सोहं में वृत्ति द्वारा लगे रहते हैं।

दादू पिंड मुक्ती सब कोइ करै, प्राण मुक्ति नहीं होइ।
प्राण मुक्ति सतगुरू करै, बूझै बिरला कोइ ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्राण पिण्ड का वियोग होने के बाद इस स्थूल शरीर की मुक्ति अर्थात् अग्नि संस्कार या क्रिया कर्म द्वारा, बेटे पोते मुक्ति कर देते हैं ? परन्तु सूक्ष्म शरीर चिदाभास युक्त जीव, उसकी मुक्ति उनसे नहीं होती है। सूक्ष्म शरीररूप जीव की मुक्ति तो, सत्य उददेश के द्वारा सतगुरू ही करते हैं। इस बात को बिरले पुरूष जानते हैं। अर्थात् स्थूल शरीर के भोजन वस्त्र आदि से रक्षा तो, सभी संसारीजन करते हैं, किन्तु सूक्ष्म शरीर की तो रक्षा, आत्मोपदेश के द्वारा, कृपालु सतगुरू ही करते हैं, और शरीर

की दान पुण्य ब्रह्म भोजन आदि से मुक्ति, सभी कोई कर देते हैं, परन्तु जीवन को जीव मुक्ति तो, सतगुरू ही देते हैं और कोई भी निर्वासनिक नहीं कर सकता है ।

(शिष्य जिज्ञासा)

दादू क्षुधा त्रिखा क्यूं भुलिये, सीत तपत क्यूं जाइ ।
क्यूं सब छूटैं देह गुण, सतगुरू कहि समझाइ ॥२२॥

टीका :- जिज्ञासु सतगुरू से प्रश्न करता है कि हे सतगुरू ! भूख प्यास, सर्दी गर्मी, यह शरीर के सम्पूर्ण गुण किस प्रकार अलग होवैं ? हम तो इनसे बहुत दुखी हैं । रात दिन इसी के चक्र में घूम रहे हैं । आप समझा कर कहो, जिससे हम, इनसे अलग होवैं । उत्तर :-

मांही थैं मन काढि करि, ले राखै निज ठौर ।
दादू भूलै देह गुण, बिसरि जाइ सब और ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर से मन का मोह त्यागकर, आत्म स्वरूप में लय लगाइये । इस प्रकार मन शरीर के द्वन्द कहिए, विकारों से और माया के कार्य प्रपंच से गुणातीत होकर, अनात्म धर्म को भूल जाएगा ।

नाम भुलावै देह गुण, जीव दसा सब जाइ ।
दादू छाड़ै नाम कौं, तौ फिरि लागै आइ ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निर्वासनिक नाम का स्मरण, शरीर के सम्पूर्ण गुण विकारों को, मन से भुला देगा और जीवभाव, कर्त्तृत्व, भोगतृत्व मैं करता हूं, मैं भोगता हूं, जीव इस जीवत्म धर्म को भी भूल जायेगा । अपने को शुद्धरूप करके जानने लगेगा । और जो कदाचित् उपरोक्त साधना का मन त्याग कर देगा, तो फिर वह सब गुण व्याप्त हो जाएगें ।

दादू दिन दिन राता राम सों, दिन दिन अधिक सनेह ।
दिन दिन पीवै राम रस, दिन दिन दर्पण देह ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हर समय जागृत अवस्था में, निर्वासनिक नाम स्मरण से मन, राता अर्थात् प्रीति सहित लगा रहता है । इस प्रकार राम नाम रूपी अमृत पान करने से, यह शरीर उज्जवल निर्दोष

रहता है। जैसे कांच बिम्ब के विकारों से विकारी नहीं होता है, इसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता संतजन, व्यबहार के निमित्त परोपकार आदिक, कर्त्तव्य करते हुए भी, कर्तृत्व भोगत्तृत्व भाव से असंग, निष्काम निर्मल रहते हैं, और काच की तरह, शरीर के रोम रोम में ब्रह्म का प्रकाश प्रगटता है।

दादू दिन दिन भूलै देह गुण, दिन दिन इंद्रि नास।
दिन दिन मन मनसा मरै, दिन दिन होइ प्रकास ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निष्काम एकत्व भावना से नाम स्मरण करें तो, इसके प्रभाव से, शरीर के अध्यास को भूलकर, इन्द्रियों के सम्पूर्ण विषय और मन की संसार वासनारूप तृष्णा, इन सबका नास होता है। और अन्तःकरण में ब्रह्म प्रकाश प्रगटता है।

(सजीवन)

देह रहै संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मनिष्ठ मुक्त पुरूषों का शरीर तो दुनियां में दिखता है, परन्तु आभास अन्तःकरण, कूटस्थ ब्रह्म स्वरूप में लीन रहता है। उनको संसार के बन्धन रूप काम क्रोध की झल, और जन्म मरण का दुःख, और तीन ताप की त्रास, इन सबसे वे मुक्त रहते हैं।

काया की संगति तजै, बैठा हरि पद मांहि।
दादू निरभै व्है रहै, कोइ गुण व्यापै नांहि ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब विचार द्वारा, ब्रह्म अभ्यास करते करते शरीर का अध्यास मन छोड़ देता है, तब शरीर के किसी प्रकार के गुण विकार, मन में नहीं व्याप्त होते हैं। उस अवस्था में मन, काल कर्म के भय से मुक्त होकर, ब्रह्म स्वरूप में अभेद हो जाता है।

काया मांहै भै घणा, सब गुण व्यापै आइ।
दादू निरभै घर किया, रहै नूर मैं जाइ ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक मन, शरीर के आकार रूप में रहता है, तब तक इसको अनेक प्रकार के भय नाम डर, काल कर्म, जन्म मृत्यु, संसार बन्धन यह सब व्याप्त होते रहते हैं। और जब यह मन,

सतगुरू ज्ञान को प्राप्त करके, निर्भय घर कहिए, आत्म स्वरूप में स्थिर होता है, तब यह ब्रह्मरूप हो जाता है ।

खड़्गधार बिख ना मरै, कोइ गुण व्यापै नांहि ।
राम रहै त्यूं जन रहै, काल झाल जल मांहि ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे मुक्त ब्रह्मनिष्ठ पुरूष, न तो तलवार से, न हलाहल से ही मर सकते हैं, जैसे :- प्रहलाद, मंसूर आदि हुए । और न उनको कोई शारीरिक गुण विकार ही लगता है । इस प्रकार वे गुणातीत संतजन, राम की तरह, अविनासी अजर अमर भाव होकर रहते हैं । जैसे कालरूप अग्नि की झल, जल को नहीं जला सकती, वैसे ही काल और काल के जाल, काम क्रोध, जन्म मरण, उन ब्रह्मवेत्ताओं को नहीं व्याप्ते हैं ।

दोहा :- नाम लेत तुही तुही करै, फिर हुंही हुंही कहि पीर ।
गुरू त्रास दई शिष्य को, कट्या न रोम शरीर ॥३०॥

दृष्टान्त :- एक उत्तम जिज्ञासु, किसी सच्चे महापुरूष की शरण में आकर बोला कि मुझे परमेश्वर प्राप्ति का उपदेश देओ । संत बोले :- तूंही तूंही किया कर । जब वह इस अभ्यास को करते करते तनमय हुआ, तब हूंही हूंही करने लगा । गुरू बोले :- हूंही हूंही नहीं, तूंही तूंही । फिर बोलने लगा :- तूंही तूंही । फिर कुछ देर में होने लगी "हूंही, हूंही" । तब गुरू तलवार उठाकर, शरीर पर एक मारी । तलवार इधर उधर निकल गई, परन्तु एक रोम भी शरीर का नहीं कटा, क्योंकि वहां तो ब्रह्म का स्वरूप प्रगट हो गया था । गुरू ने निश्चय किया कि इसका उद्धार हो गया ।

(बिचार)

सहज बिचार सुख मै रहै, दादू बड़ा बिबेक ।
मन इंद्री पसरै नहीं, अंतर राखै एक ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही विवेकी मुक्तजन हैं, जो निर्द्वन्द्व भाव होकर, सुख स्वरूप ब्रह्म में लय लगाये रहते हैं । उनके फिर मन इन्द्रिय, बाहरी संसारिक विषयों में नहीं जाते । आत्म परायण होकर रहते हैं ।

मन इन्द्री पसरै नहीं, अहि निसि एकै ध्यान ।
पर उपगारी प्राणिया, दादू उत्तिम ज्ञान ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो मुक्त पुरूष, एक ब्रह्म ध्यान में सलग्न रहते हैं, उनके मन इन्द्रिय फिर बाहर विषियों में नहीं जाते । रात दिन एक ब्रह्माकार वृति में ही स्थिर रहते हैं । वह मुक्तजन, उत्तम जिज्ञासुओं का मोक्ष रूपी कार्य, निष्काम भाव से करते हैं, अर्थात् उनको आत्म उपदेश देते हैं । ऐसे संतों का ज्ञान ही हवित्र है ।

दादू आपा उरझे उरझीया, दीसै सब संसार ।
आपा सुरझे सुरझिया, यहु गुरू ज्ञान विचार ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो अज्ञानी संसारिक मनुष्य अपने अनात्म, आपा, अहंकार में उलझे हुये हैं, उनको सारा संसार ही, माया मोह में आसक्त हुआ ही, दिखाई पड़ता है । जो मुक्त पुरूष, अनात्म आपा से विचार पूर्वक सुलझ गये, उनको सम्पूर्ण संसार, ब्रह्म स्वरूप अर्थात् ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ही भान होता है ।

(उभय असभाव)

दादू मैं नाहीं तब नांव क्या, कहा कहावै आप ।
साधो कहौ बिचार कर, मेटहु तन की ताप ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मैं कहिए, व्यष्टि अहंकार, के कारण ही नाम रूप संज्ञा पड़ती है और ज्ञान काल में जब व्यष्टि अभिमान, मेरा तेरा द्वैतभाव मिट गया, तो फिर क्या नाम रखकर बोलें ? वह तो सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म की मूर्ति ही हैं । हे मुमुक्षुओं ! इस ब्रह्म विचार से ही, संसार के सम्पूर्ण दुखों से मुक्त हो जाओ ।

जब समझ्या तब सुरझिया, उलटि समाना सोइ ।
कछू कहावै जब लगै, तब लग समझि न होइ ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक मानव ब्रह्म विचार से अनविज्ञ रहता है, तब तक यह संसार दुखों से मुक्त नहीं होता, क्योंकि जब तक जीव अपने को अनेक संज्ञाओं में अर्थात् साधु, महात्मा, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, स्त्री पुरूष, कर्त्ता भोगता, इत्यादिक अनेक नामों से अपने को बोलता है, किन्तु जब सतगुरू की कृपा होती है, तब 'समझ्या' कहिए, अपने आत्म स्वरूप को निश्चय किया तो, देह अध्यास और संसार

से 'सुरझ्या' कहिए मुक्त होकर, अपने को ब्रह्म स्वरूप निश्चय करता है ।

जब समझ्या तब सुरझिया, गुरू मुख ज्ञान अलेख ।
उरध कवंल मै आरसी, फिर करि आपा देख ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब सतगुरू उपदेश द्वारा, आत्मस्वरूप ब्रह्म का ज्ञान हुआ तो, उत्तम पुरूष, आत्मा अनात्मा के भेद को कहिए, स्वरूप को समझ कर, संसार के बंधन से मुक्त होता है । इसी से हे मुमुक्षु ! 'उरध कंवल' अर्थात् अन्तःकरण को अन्तर्मुख करके, ब्रह्म स्वरूप का साक्षात्कार करिये ।

प्रेम भक्ती दिन दिन बधै, सोइ ज्ञान बिचार ।
दादू आतम सोधि करि, मथि करि काढ्या सार ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस समय से निरन्तर कहिए, अन्तराय रहित अन्तःकरण में प्रेमाभक्ति की वृद्धि होती है, वही बिचाररूप ज्ञान उत्तम है । इस रीति से फिर प्रेमाभक्ति द्वारा आत्मा कहिये, जोव बुद्धि को विवेक पूर्वक सोधकर, ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा, ब्रह्म तत्व का अपरोक्ष अनुभव करके, कृत्य कृत्य हो जाता है । उसे ही धन्य है ।

दादू जिंहि बरियां यहु सब भया, सो कुछ करौ बिचार ।
काजी पंडित बावरे, क्या लिखि बंधे भार ॥३८॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज ने जब सीकरी, अकबर बादशाह के दरबार में सभी पंडित और काजी मुल्लाओं से प्रश्न किया कि जिस समय इस सृष्टि की सर्व शक्तिवान, परमेश्वर ने रचना की थी, वह कौनसी समय थी ? किस प्रयोजन से रची थी ? इस बात का आप लोग विचार करो और किताबों को लिख लिख करके, कागजों का क्या बोझा बांधते हो ? अथवा विद्वता का क्या अहंकार करते हो ?

दोहा :- गुरू दादू गये सीकरी, तहं यहु साखी भाखि ।
उत्तर भयो न किसी तैं, बखनों उत्तर आखि ॥३८॥

ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज ने अपने शिष्य बखना जी से पूछा :-

(उत्तर)

दोहा :- जिहि बरिया यहु सब भया, सो हम किया बिचार ।
बखना बरिया खुसी की, करता सिरजन हार ॥३८॥

दादू जब यहु मनहि मन मिल्या, तब कुछ पाया भेद ।
दादू ले करि लाइये, क्या पढि मरिये वेद ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब यह व्यष्टि चेतन मन, लय, विचार योग द्वारा, समष्टि चेतन्य रूप मन से अभेद हुआ तो, माया प्रपंच का असारता और ब्रह्मतत्व की सत्यता का भेद प्राप्त हुआ है । वेद के भयानक रोचक वाक्यों को पढ पढ करके, क्यों पचता है ?

पाणी पावक पावक पाणी, जाणै नहीं अजाण ।
आदि अंति बिचार करि, दादू जाण सुजाण ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पानी से वृक्ष पैदा होते हैं, काष्ट से अग्नि पैदा होती है और अग्नि से जल की उत्पत्ति होती है । परन्तु यह कारण कार्य भाव विदित नहीं होने से, साधारणजन, जल अग्नि की एकता को नहीं समझते हैं । इसी रीति से कारण कार्य अभिन्न होने से, समस्त संसार ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है । हे परम विवेकी जिज्ञासु ! ब्रह्मवेत्ता संतजन, कारण कार्य भाव का विचार करके, सर्व जगत को ब्रह्मरूप ही करके देखते हैं ।

सुख मांहि दुख बहुत हैं, दुख मांहैं सुख होइ ।
दादू देखि बिचारि करी, आदि अंति फल दोइ ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! मायावी संसारिक सुखों के उपभोग में, और प्राप्ति करने में बहुत दुख होता है, अर्थात् जन्म जन्मान्तरों तक जीव दुखी ही रहता है । और परमेश्वर की प्राप्ति के साधन, योग, भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, आदि के साधने में, साधन कोटी में दुख अवश्य है, परन्तु फिर बाद में उसका फल, अखंड ब्रह्मानन्द रूप सुख प्राप्त होता है । इसलिये गुरू उपदेश, शास्त्र श्रवण द्वारा, ब्रह्मतत्व का मनन करके, निदिध्यान करिये ।

दोहा :- करहा कर कर क्यों करै, भार घणों घर दूर ।
मैं तोइ बरजत क्यों लियो, गहण गलंता सूर ॥४१॥

दृष्टान्त :- सूर्य ग्रहण के पर्व पर बहुत से यात्री कुरूक्षेत्र में एकत्रित हुए । यथा शक्ति स्नान दान करने लगे । एक राजा सोने का मछ बनवाकर, गहते ग्रहण में, दान करने लगा । उस समय विद्वान लोगों ने लेने से इन्कार कर दिया । तब एक प्रमादी ब्राह्मण ने, स्त्री के मना करने पर भी दान ले लिया । और उस सोने को इन्द्रियों के सुखों के उपभोग में व्यय करता रहा । परन्तु स्त्री ने उसमें से लेशमात्र भी, अपने उदर में नहीं जाने दिया । वह ब्राह्मण शरीर छोड़कर, चौरासी में गया और स्त्री शरीर छोड़कर, राजकन्या बनी । राजा किसी सुयोग्य राजकुमार के साथ, उस कन्या का विवाह कर दिया । वह ब्राह्मण राजा के यहां, ऊटनी का बच्चा बना । वह बड़ा हो गया । वह राजकन्या उसको जानती थी कि यह मेरा पूर्व जन्म का पति है । जब राजा ने बहुत सा उसे दहेज दिया, तब वह बोली :- पिताजी यह उंट भी मुझे दे दीजिये । ऊंट दे दिया । उस ऊंट पर नौकरों ने डेरे तम्बू आदि लाद दिये, परन्तु उसकी पीठ पर एक कीला चुभने लगा । जब वहां से रवाना हो गये, तब वह ऊंट दर्द से "श्रैं श्रैं, श्रैं......" करता चलै । राजकन्या अपनी डोली में से बोली :- हे करहा ऊंट ! अब क्यों "कर कर" करता है ? मैं जानती हूं, तेरे ऊपर बोझा बहुत है, और घर दूर है, परन्तु मैंने तेरे को मना किया था कि सूर्य ग्रहण में दान मत ले । उस इन्द्रिय सुख का अब तूं भारी दुख भोग रहा है ।

मीठा खारा खारा मीठा, जाणै नही गवांर ।
आदि अंत गुण देखि करि, दादू किया बिचार ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मायिक सुख प्रथम तो मीठा, सत्य प्रतीत होता है, परन्तु परिणाम में उसका फल क्षण भंगुर और बन्धन रूप है। और व्यवहार में तप, जप आदि साधन, दुख रूप प्रतीत होते हैं, किन्तु परिणाम में उनका फल सुख होता है । इसीलिये आदि और अन्त का विचार करके, ब्रह्मतत्व में ही सलग्न रहना चाहिये ।

कोमल कठिन कठिन है कोमल, मूरख मर्म न बूझै ।
आदि अंति बिचार करि, दादू सब कुछ सूझै ॥४३॥

टीका:- हे जिज्ञासु ! कोमल स्त्री आदि पदार्थ सुख रूप प्रतीत होते हुए भी परिणाम में अति कठिन हैं और संसार बन्धन का कारण है । सत शास्त्र का मार्ग तथा गुरू संत के बचनों की धारणा में कष्ट होते हुये भी,

उनका फल परम आनन्द मुक्ति रूप है। इसलिए आदि अंत का विचार करके, जो आत्मा का चिन्तन करता है, वह इस मर्म को जानता है।

दोहा :- कोमल बचन कामनि कहै, माया रूपी नार।
साधु बचन कड़वा कहै, रज्जब देखि बिचार ॥४३॥

दोहा :- खोती महलां तले खड़ि, देखि नानक नैन।
बादसाह कि हुरम थि, कह सिषन सौं बैन ॥४३॥

दृष्टान्त :- नानक जी लाहौर में भाई बाला और मरदाना के साथ जा रहे थे। बादशाह के महलों के पीछे, एक गर्धवी, खड़ी रो रही थी। पीठ में कव्वे घाव करके, मांस खा रहे थे। नानक जी यह देखकर हंसने लगे। मर्दाना बोला :- गुरू महाराज ! यह गर्धवी रो रही है और और आप हंसते हो, तब नानक जी बोले :-

दोहा :- झीना वस्त्र पहनती, फूलां डंक चुभैइ।
कोइ सुकरीत ना कीया, बोरा तपड़ दैइ ॥

हे मरदाना ! यह बादशाह की पहले जन्म में हुरम थी। इसने वहुत प्रमाद किया था। कुछ भी ईश्वर भक्ति, धर्म, पुण्य आदि सुकृत नहीं किया। कोमल कोमल मायावी सुखों का उपभोग करती रही। उसका फल यह हुआ कि यह मर कर गर्धवी बनी और कुम्हार ने इसको खूब लादी। जब यह कमजोर हो गई, तब इसके घाव के ऊपर, बोरी का तपड़ डालकर, छोड़ दी। यह जानती है कि इन महलों में मैंने पहले इन्द्रियों के सुख भोग भोगे थे। उसी को याद कर करके रोती है। और मन में सोचती है कि अब मेरी कोई बात नहीं बूझता है ? इसलिये हमको हंसी आ गई, कि इतने बड़े घर में आकर भी, इसने कोई ईश्वर प्राप्ति के लिये, कोई कर्म नहीं किया।

पहली प्राण बिचार करि, पीछै पग दीजै।
आदि अंति गुण देखि करि, दादू कुछ कीजै ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कोई भी व्यवहारिक या परमार्थिक कार्य हो, पहले श्वांस में उसके आदि अन्त फल का विचार करके, चलना।

दोहा :- बांदी घर से नीकसी, साधु सुतै मग जाइ ।
लखि कुसंग मग तजी गऐ, आन गही मग माइ ॥४४॥

दृष्टान्त :- एक राजा की बांदी कहिए दरोगन, बहुत सा धन लेकर, घर से चल पड़ी । रास्ते रास्ते जा रही थी । एक संत भी मार्ग में मिले । वह बोली :- महाराज ! मैं भी चल रही हूं, आपके साथ । संत ने विचार किया कि यह तो कुसंग है । स्त्री का रूप और फिर कुछ किसी का लेकर आई हो तो क्या पता ? यह सोचकर संत रास्ता छोड़कर, जंगल की ओर जाने लगे । वह बोली :- महाराज ! इधर कहां जाते हो ? संत बोले :- भाई ! हम तो ऐसे ही जंगलों में घूमते रहते हैं, तुम अपने रास्ते से जाओ । इतने में पीछे से घुड़सवार आये और उसको रास्ते में पकड़ ली । पिटाई की, सब धन ले लिया, और पकड़कर ले गये । महात्मा दूर से देख रहे थे । विचार किया कि अगर हम उसके साथ होते, तो यह जूते हमारे भी पड़ते और वह लोग जानते कि यही तो भगाकर लाया है ? संत बोले :- हे परमेश्वर ! ऐसे कुसंग से आप बचाते रहना ।

पहली प्राण बिचार करि, पीछै चलिये साथ ।
आदि अंति गुण देखि करि, दादू घाली हाथ ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! प्रथम अपने अन्तःकरण में आदि और अन्त के फल का विचार करके, फिर किसी कार्य में प्रवृत्त होना ।

दोहा :- चिरकालि गोत्तम सुमन, तात कहि हतमाइ ।
मात दोस गुण पितु बचन, संसे रह्यो समाइ ॥४५॥

दृष्टान्त :- गोत्तम ऋषि अपने पुत्र को परीक्षा हेतु बोले :- तुम अपनी माता को मार दो । पुत्र ने विचार किया कि माता के मारने में तो भारी पाप है । परन्तु फिर विचार किया कि पिता की आज्ञा की अवहेलना करने से ती, इससे भी बड़ा पाप होगा । यह सोचकर, माता की गर्दन पर एक हथियार मारा, कि उसी समय माता की मृत्यु हो गई । पिता पुत्र को आज्ञाकारी जानकर, अति प्रसन्न हुए और बोले :- पुत्र ! मांग बरदान । पुत्र बोला :- हे पिता ! मेरी माता जीवित हो जावे और उसके मन में यह भावना न रहे कि मेरे पुत्र ने मुझे मारी थी । पिता ने कहा :- जाओ, ऐसा ही हो । तत्काल माता जीवित हो गई ।

पहली प्राण बिचार करि, पीछै कुछ कहिये ।
आदि अंत गुण देख करि, दादू निज गहिये ॥४६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! पहले अन्तःकरण में शब्द के फलाफल का कुछ विचार करके, फिर किसी को कुछ कहना । शब्द के आदि अन्त का गुण देखकर, हृदय में निश्चय करना ।

दोहा :- सेठ गयो हरिद्वार को, लाख रूप्या धरी तीर ।
संकलप्यो नही ढील करी, मच्छ ले गयो नीर ॥४६॥

दृष्टान्त :- एक सेठ लाख रूपया धर्म करने को, हरिद्वार लेकर गया । गंगा जी की तीर पर रूपयों की थैली रख दी । और विचार किया कि पहले स्नान वगैरा करलूं, उसके बाद दान करूंगा । उसने यह विचार नहीं किया कि शुभ कर्म जितना जल्दी हो सके, कर लें । वह स्नान करने को गंगा जी में गया । लाख रूपयों की थैली मगरमछ घसीट कर जल में ले गया । सेठ के सहित सभी लोग देखकर चकित हो गये और पश्चाताप करने लगे ।

पहलि प्राण बिचार करि, पीछै आवै जाइ ।
आदि अंत गुण देख करि, दादू रहै समाइ ॥४७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रथम शरीरधारी विवेकी पुरूष को कारण कार्य का, अर्थात् कारण ब्रह्म और कार्य माया प्रपंच, इनके गुण, स्वभाव, चेतनता, जड़ता आदि नित्य अनित्य का विचार करके, मुमुक्षुजनों को माया प्रपंच से उदासीन होकर, चेतन्य नित्य स्वरूप ब्रह्मतत्व में ही, अभेद होना चाहिये । इस प्रकार ब्रह्म विचार के द्वारा ही, संतजन आवागमन से मुक्त होते हैं और व्यवहार में भी ४४ साखी से ४७ साखी तक विचारवानों को परम विवेक पूर्वक, हितकारक शुभ कर्त्तव्त करने का आदेश है ।

दादू सोच करै सो सूरमा, करि सोचै सो कूर ।
करि सोच्यां मुख स्याम है, सोचि कियां मुख नूर ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो उत्तम पुरूष कार्य करने से पहले, फलाफल का विचार करके, फिर प्रवृत्त होता है, उसके चेहरे पर औज रहता है। और जो अविवेकी कार्य के आदि अन्त का विचार न करके, कार्य करता है और उसका फल जब दुख होता है, फिर सोचता है कि पहले, इस प्रकार विचार करके करता तो यह दुख न होता। कार्य बिगाड़कर सोचने वाले ऐसे कायर पुरूष के चेहरे पर कलंक लगता है।

जे मति पीछै ऊपजै, सौ मति पहलि होइ ।
कबहुं न होवै जीव दुखी, दादू सुखिया सोइ ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो मति परम विवेक रूप बुद्धि, कार्य बिगड़ने के बाद उत्पन्न होती है। वह बुद्धि ईश्वर कृपा और गुरू कृपा से, यदि पहले उत्पन्न हो जावे, तो यह जीवात्मा दुखों को प्राप्त नहीं होता। वही जीवात्मा परम सुख को अनुभव करता है।

आदि अन्त गाहन किया, माया ब्रह्म बिचार ।
जंह का तंह ले दे धर्या, दादू देतन बार ॥५०॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! प्रथम तो विचार के अंग की, आदि की साखी से अन्त की साखी तक, हमने माया और ब्रह्म के गुण धर्मों का मनन किया है। और माया ब्रह्म अर्थात् प्रकृत पुरूष के जो विशेषण मिले हुए प्रतीत होते हैं, उनको भिन्न भिन्न करके यथा योग्य निरूपण कहिए, वर्णन किये हैं। जो पुरूष श्री महाप्रभु की वाणी का विचार करेंगे, उनको माया और ब्रह्म के स्वरूप को समझने में, कुछ भी विलम्ब नहीं होगा। अथवा जिन विचारवान संतों ने, इस संसार के आदि अन्त का निर्णय करके, माया ब्रह्म का विचार किया है। और जड़ता अज्ञानता आदिक माया के धर्म जान लिये हैं तथा ब्रह्म के चेतन्यता, सर्वज्ञता आदिक धर्म ब्रह्म में निश्चय करके, ब्रह्म स्वरूप में लीन हुए हैं, उनको संसार बन्धन से मुक्त होने में देर नहीं लगती।

(इति विचार का अंग, टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ विश्वास का अंग १९ ॥

"दादू जिन यहु दिल मंदिर किया, दिल मंदिर में सोइ०"—इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब विचार के अंग के वाद, विश्वास के अंग का निरूपण करते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारगंतः ॥१॥

टीका :- हे निरंजनदेव ! आपको हमारी बारम्बार नमस्कार है और जिन गुरुदेव ने निरंजन का विश्वास धारण किया है, उनको भी हमारी बारम्बार नमस्कार है। और जो सर्व ही संत तीन काल, चार आश्रम में हुए, उनको भी हम बन्दना करें हैं। क्योंकि हरि गुरू संतों की कृपा से ही जिज्ञासु, विचारपूर्वक, ब्रह्म स्वरूप निरंजन का विश्वास धारण करके कहिये, निश्चय करके, संसार बन्धन से मुक्त होते हैं।

दादू सहजैं सहजैं होइगा, जे कुछ रचि या राम।
काहे कौं कलपै मरै, दुःखी होत बेकाम ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रारब्ध कर्म अनुसार धीरे धीरे जो कुछ, राम ने इस स्थूल शरीर का भोग रचा है, प्राप्ति अप्राप्ति सुख दुख आदि में संत किसी प्रकार का हर्ष शोक नहीं करते है। और परमेश्वर की समर्थाई में विश्वास करके, कर्म फल के निमित्त, चिन्ता नहीं करते। अनुकूल और प्रतिकूल उनको एक समान है।

सांई किया सो व्है रह्या, जे कुछ करै सो होइ ।
करत्ता करै सो होत है, काहे कलपै कोइ ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर ने जो कुछ कर्म फल रचा है, वह प्राप्त हो रहा है और भविष्य में जो कुछ कर्मानुसार फल देंगे, वह होगा । कर्त्ता जीव ने जैसे कर्म किये हैं, उनका वैसा ही सुख दुख का फल होता है । कर्मफल भोगने में अब क्यों कल्पना करते हो ? और परमेश्वर तो परम दयालु हैं, वह निरंतर ही जीव का कल्याण करते हैं । अर्थात् कर्म फल भोगने में विश्वास दिलाकर, अपनी शरण में रखते हैं ।

दादू कहै जेतैं किया सौ व्है रह्या, जे तूं करै सो होइ ।
करण करावण एक तूं, दूजा नांहि कोइ ॥४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज कहते हैं कि हे परमेश्वर ! आपने जो कुछ कर्मानुसार जीवों का प्रारब्ध रचा है, वैसा ही जीवों को फल प्राप्त हो रहा है । और जीव शुभ अशुभ करते हैं, वैसा भविष्य में होगा । परन्तु जो विवेकी संत यह जानते हैं कि कर्त्ता और कराने वाला, हे परमेश्वर ! एक आप ही हैं, और दूसरा कोई है नहीं । वह इस प्रकार आपके विश्वास को धारण करके, आपमें सलग्न रहते हैं ।

दादू सोई हमारा सांईयां, जे सबका पूरणहार
दादू जीवण मरण का, जाकै हाथ विचार ॥५॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू महाराज कहते हैं कि हे बादी ! हमारा स्वामी नाम मालिक, वह है, जो चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त को, सत्ता स्फूर्ति देकर, सबका पालन पोषण करता है और जीव के जन्म और मरण का प्राब्ध अनुसार आज्ञा रूपी हाथ में विचार है ।

दादू स्वर्ग भवन पाताल मधि, आदि अंति सब सिष्ट
सिरजि सबन कौं देत है, सोई हमारा इष्ट ॥६॥

टीका :- किसी ने परम गुरूदेव से प्रश्न किया कि आपका इष्टदेव कौन है ? उसे उत्तर दिया कि जो तीन लोक और चौदह भवन को उत्पन्न करके, इसमें गुण कर्मानुसार, नाना प्रकार की सृष्टि की रचना रची है और फिर सबका प्रारब्ध अनुसार, उसके संकल्प मात्र से भरण पोषण होता है, वही सर्व शक्तिवान सर्वज्ञ परमेश्वर अन्तर्यामी, हमारा इष्ट है ।

दोहा :– मात पिता को गम नही, तहां पिलायो खीर ।
ये गुण थारा राम जी, बखना लिख्या शरीर ॥६॥

बखना जी कहते हैं हे राम ! सर्व शक्तिवान ! आपके गुणों का कहां तक वर्णन करें। गर्भवास में पिता पोष नहीं दे सकते । वहां आप पोख देकर, रक्षा करते हो और फिर खीर पिलाते हो ।

दादू करणहार कर्त्ता पुरूस, हमकौं कैसी चिंत ।
सब काहू की करत हैं, सो दादू का मिंत ॥७॥

टीका :- यहां भी किसी बांदी ने परम गुरूदेव से प्रश्न किया कि महाराज ! आप लोगों के शरीर निर्वाह का क्या साधन है ? उसके उत्तर में ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज बोले :- हे भाई ! माया विशिष्ट ईश्वर, इस सृष्टि का रचिता है वह इस जड़ चेतन सृष्टि को रचकर, सबका पालन करता है। अर्थात् उसी को सबकी चिंता है। हमको इस विषय में क्या चिंता करनी है। हम क्या अलग रह जाते हैं ? हम तो विश्वास धारण करके, उसके नाम स्मरण में ही रत्त रहते हैं ।

दादू मनसा बाचा कर्मणा, साहिब का बेसास ।
सेंवग सिरजनहार का, करै कौन की आस ॥८॥

टीका :– हे जिज्ञासुओ ! मन वचन कर्म से, परमेश्वर का विश्वास धारण करके, जो निष्काम भाव से नाम स्मरण करते हैं, वे अनन्य परमेश्वर के भक्त, परमेश्वर को छोड़कर, फिर किसी भी देवी देव, राजा महाराजा आदि की आशा नहीं करते ।

दोहा – बिन प्रचय प्रचा भया, जब आया बेसास ।
जन रज्जब अज्जब कही, सुनेंही दास ॥८॥

दोहा :- लइ मृग के सींग पर, रोटी जिन बिसवास ।
जब रोटी आई नहीं, त्याग दई तब आस ॥८॥

दृष्टांत :– एक संत के पास एक पुरूष आकर बोला :- महाराज ! आप कहां से खाते पीते हो ? आपको कौन देता है, खाने को ? संत :- हमें परमेश्वर देता है, उसका हमें विश्वास है। तो क्या

मुझे भी परमेश्वर दे देगा ? मैं नहीं कमाई करूगां तो। संत :- तुझे विश्वास होगा तो, जरूर देगा। कहां विश्वस करूं ? संत :- निर्जन स्थान में जाकर, उसका विश्वास धारण करके बैठ जा। नाम स्मरण करता रह। यदि मैं यह चाहूं कि मृग के सींग पर रोटी आवै, तो क्या उसी प्रकार आवेगी ? हां, वैसे ही आ जावेगी। तब जंगल में जाकर, बैठ गया और परमेश्वर के नाम का स्मरण करने लगा और निश्चय किया कि मृग के सींगों पर रोटी आएगी, तभी खाऊंगा। परमेश्वर तो श्रद्धा विश्वास में ही हैं। तीन रोज हो गये चौथे रोज मृग का रूप बनाया और दो दो रोटी और सूखी शब्जी दोनों सिगों पर धारण किये हुए, सामने लेकर खड़े हो गये। आवाज हुई कि हे बन्दे ! जैसा तेरा विश्वास था, उसी प्रकार तेरे लिए रोटी आयी है, आंख खोलकर देख। जब आंख खोलकर देखा, तो उठकर मृग के सींगों पर से रोटियां उतार ली और खाने लगा। बड़ा खुश हुआ। फिर राम राम करने बैठ गया। तीन रोज तक इसी प्रकार रोटी आती रही और खाता रहा। चौथे रोज भगवान ने सोचा कि जरा परीक्षा तो कर लें, विश्वास है कि नहीं। जब रोटियां लेकर मृग नहीं आया, इधर उधर देखने लगा। फिर तो खड़ा होकर जंगल में घूमने लगा। जिधर से मृग आता था, उधर देखने लगा। ऐसे ही सायंकाल हो गया। तब विश्वास छोड़ दिया और महात्मा के पास आ गया। पूर्वोक्त वृतान्त महात्मा को कह सुनाया। महात्मा बोले :- अब कमाओ खाओ, अब नहीं लावेगा।

सुरमन आवै जीव कूं, अन कीया सब होइ।
दादू मारग महर का, बिरला बूझै कोइ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! दयालु परमेश्वर, जीव के बिना प्रयत्न किये स्वतः ही, सबका भरण पोषण करता है। परन्तु इस जीव को बिलकुल भी शर्म नहीं आती है। तथापि प्रभु के इस अनुग्रह कहिये, इस दया के मार्ग को, कोई बिरले विवेकी संत ही समझते हैं। और वह संसारी अज्ञानी जीव, परमेश्वर के उपकार को नहीं मानते हैं, वह निर्लज कृतघ्नी हैं। परमेश्वर की समर्थताई को भूलकर, मिथ्या ही माया प्रपंच देखकर, अपने जीवन को वृथा गमाते हैं।

दादू उदिम औगुण को नहीं, जे कर जाणै कोइ।
उदिम मै आनन्द है, जे सांई सेती होइ ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भजन रूपी उद्योग, यदि अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा परमेश्वर से करै तो, उसमें ब्रह्म प्राप्ति रूप पूर्ण आनन्द है और फिर उस जिज्ञासु के अन्तःकरण में, किसी प्रकार के कोई भी विकार नहीं

उत्पन्न होते हैं। अथवा व्यवहार में भी निष्काम भाव से कर्मयोग रूप उद्योग करें तो, उनको कोई दोष नहीं लगता है, और फिर वह आतम आनन्द का अनुभव करता हुआ, जीवन मुक्त हो जाता है।

दोहा :- इक उदमि विसवास दोऊ, राखे एक अस्थान।
दौ मोदक लिये भरे, दिये उदमि आन ॥१०॥

दृष्टांत :- एक पुरुष उधम को बड़ा बताता था, दूसरा विश्वास को बड़ा बताता था। दोनों एक संत के पास गये। अपने अपने प्रश्न बताये। संत बोले :- इस हमारी कुटिया में रात को रह जाओ। दोनों को पता चल जायेगा कि उधम बड़ा है या विश्वास बड़ा है। महात्मा ने कुटिया को अपने तपोबल से ठंडी बना दी। दोनों पुरुषों के कपड़े उतार कर, उस कुटिया में बन्द कर दिये। विश्वासी ने सोचा कि मुझे तो जैसे बाहर बैठना था, वैसे ही विश्वास लेकर, अन्दर बैठना है। उधमी ने विचार किया कि मैं तो उधम करता हूं इसलिये उधम से ही मेरा काम होगा। यह विचार कर, वह डंड बैठक रूप उधम करने लगा। जब शरीर में गर्मी पैदा हुई, तब इधर उधर दीवारों के, शरीर की टक्कर देने लगा। महात्मा जी ने एक युक्ति बना रखी थी। जब उस दीवार के जाकर टक्कर लगी, तो वह दीवार फट गई और हाथ देकर, उसमें देखा तो एक डिब्बा मिला। उसको खोला तो, उसमें लड्डू भरे थे। फिर दुबारा हाथ दिया, तो गंगा-जल का एक सीसा मिला। तीसरे फिर हाथ बढाया, तो लकड़ी, माचिस, फूस, सब मिल गया। सब बाहर निकाल कर, कोठरी के बीच में अग्नि जलाकर, धुनी सिलगा दी। कोठरी गर्म हो गई और बैठा। डिब्बे से लड्डू निकाले। विश्वासी को भी दिये और आप भी खाये। दोनों ने जल पीया। सारी रात खूब आराम से सोये। सवेरे महात्मा जी उठे। कुटिया में धुआं निकलता देखा। जान गये कि, हैं तो दोनों पक्के। दरवाजा खोला, दोनों ने गुरू महाराज को नमस्कार किया। उधमी बोला :- गुरू जी उधम बड़ा। विश्वासी बोला :- नहीं गुरू जी, विश्वास बड़ा है। तब गुरू महाराज बोले:-दोनों बराबर है। क्योंकि तैंने उधम किया तो, तुझे तो उधम से ही मिला है, इसने तो उधम नहीं किया,। यह तो विश्वास ही धारण करके बैठा था, इसके विश्वास ने इसको दिया परमेश्वर का जो विश्वास धारण करते हैं, परमेश्वर विश्वास द्वारा ही, उनको देते हैं। उधम में निष्ठा रखते हैं, उनको परमेश्वर उधम द्वारा ही देते हैं। देने वाला एक ही परमेश्वर है। दोनों का संदेह निवृत्त हो गया। गुरूदेव का उपदेश लेकर, दोनों ही इस संसार को पार हो गये।

दादू पूरणहारा पूरसी, जो चित रहसी ठाम।
अन्तरथैं हरि उमगं सी, सकल निरंतर राम ॥११॥

हे जिज्ञासु ! वह परमेश्वर सर्व शक्तिवान हैं। सर्वत्र व्यापक है। सबके घट घट की जानते हैं। जो तेरा चित्त अन्तःकरण में, उनका विश्वास लेकर, नाम स्मरण में स्थिर रहेगा, तो वह प्रभु अन्न वस्त्र, स्वयं तुझे पूरेंगे। अपने आत्मीय जनों का योग क्षेम, वह स्वयं पूरा करते हैं। तेरे भीतर ही वह हरि, अपना प्रकाश करेंगे। सर्व में वही अन्तराय रहित राम, परिपूर्ण रूप से तुझे भान होने लगेंगे।

दोहा :- बन्दे जल तट बैठ कर, कीन गाढ बिसवास ।
ल्यो मतीरो गोद में, प्रभु भेज्यो लख दास ॥११॥

दृष्टान्तः- एक संत थे। उनके पास एक भोला शुद्ध बुद्धि आकर बोला :- महाराज ! मैं देखता हूं कि आपके पास कुछ भी संग्रह नहीं है। और फिर भी आपके पास सब कुछ आ जाता है। यह क्या बात है ? महात्मा :- हमें भगवान का विश्वास है, जो चाहें वही दे देते हैं। तो बोला :- मैं भी विश्वास करलूं। जो मागूंगा वही दे देगें भगवान ? संत बोले :- हां, वही दे देगें। तो मैं तरबूज मागूं तो क्या भगवान मुझे तरबूज देंगे ? हां, जरूर देगें। तब वह एक नदी के किनारे जाकर, बैठ गया और यह दृढ़ विश्वास कर लिया कि जब मेरी गोदी में तरबूज आवेगा तभी मैं खा कर उठूँगा। । दो रोज हो गये। अडिग आसन से बैठा है। तब भगवान ने देखा कि इसने तो संत बचन में विश्वास करके, तरबूज के लिए, मेरा भजन कर रहा है। तब नदी में भगवान ने पानी बढ़ाया और उसमें एक तरबूज बहता बहता आया। जब इसके सामने वह तरबूज पानी में घूमने लगा। इसने कहा, जब तक मेरी गोद में न आवेगा, तब तक उठाऊंगा नहीं। जब पानी इसके चारों तरफ कमर कमर गहरा घूम गया। वह तरबूज इसकी छाती के नीचे गोद में जब पानी के द्वारा आ गया, तब भगवान ने तत्काल नदी का पानी उतार दिया। और वह तरबूज उसकी गोद में रुक गया। तब हंसने लगा। और फिर साथ ही रोने लगा कि हाय ! आज मैं यदि यह विश्वास करके बैठता कि भगवान के दर्शन होंगे तब उठूंगा, तो आज मुझे भगवान के दर्शन हो जाते, जैसे तरबूज मिल गया। आवाज हुई कि हे बन्दे ! जा, अब तूं इसी प्रकार विश्वास से मेरा भजन कर, तुझे मेरे दर्शन हो जावेंगे।

पूरक पूरा पास है, नाही दूर गंवार ।
सब जानत है बावरें, देवे कौं हुसियार ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह परमेश्वर सबको पूरने वाला, सबके पास कहिए हृदय स्थान में है, और वह अन्तर्यामी रूप से सर्व की भावनाओं को जानते हैं और स्वयं ही सबका पालन करने वाले हैं। हे नादान साधक ! अब उसी में अपनी वृत्ति लगा।

दादू चिन्ता राम कौं, समरथ सब जाणै ।
दादू राम संभालि ले, चिंता जिन आणै ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम जी महाराज समर्थ और अन्तर्यामी कहिए, सबके अन्दर की जानने वाले हैं । वह जीवों के भोजन वस्त्र इत्यादिक चिन्ता को जानकर, आप स्वयं ही उनकी पूर्ति करते हैं । इसलिए सम्पूर्ण चिन्ताओं को त्याग करके, केवल एक राम नाम का ही हृदय में स्मरण करो ।

दोहा :- देखि घसियारो अस्व को, रातब अन रूचि खात ।
जाइ लुख्यो बिसवास गहि, हस्यो देत मुख हात ॥१३॥

दृष्टान्त :- एक घसियारा घास का भारा लेकर, राजा के यहां घोड़े के लिए घास डालने गया । वहां देखा कि एक राजा के खास घोड़े को, दो आदमियों ने तो दोनों तरफ से उसका मुख पकड़ रखा है और एक ने उसके सिर को पकड़ रखा है, जो हिलने न पावै । चौथा तीनों भाग बराबर का, हलवा बना हुआ हाथ में लेके, घोड़े के मुंह में हलवे का ग्रास देता है और घोड़ा हिण हिणा कर खोपरी हिलाता है । इधर उधर हलवा बिखेरता हैं । ऐसे ही उसको पुनः पुनः खिलाते हैं । घसियारा देख करके चकित हो गया और सोचा कि ऐसा हलवा तो हमें होली दिवाली भी, नहीं खाने को मिलता है । यह सोचता हुआ चला आ रहा था । रास्ते में एक संत मिल गये । उनसे उपरोक्त वृतान्त सब कहा । संत बोले :- उस घोड़े को विश्वास है, अपने मालिक का । घसियारा बोला, मैं भी विश्वास करलूं तो उस घोड़े की तरह ही, मुझे भी चार आदमी हलवा खिलावेंगे क्या ? महात्मा बोले :- राम नाम का स्मरण कर, और एकान्त में विश्वास धारण करके, बैठ जा, तूं चाहेगा वैसे ही खिलाएगें । राम जी समर्थ हैं । घसियारा जंगल में, जाके छुपकर बैठ गया । चौथे रोज राम जी गायों का ग्वाल का रूप बनाकर, दो चार साथियों को साथ लिए उससे भी बढ़िया हलवा लेकर आ पहुंचे और बोले :- भाई ! यह महात्मा न मालूम कब से यहां भूखा बैठा है । सामने हलवा रख दिया । जब नहीं खाया, तब एक ने सिर पकड़ा, दो ने इधर उधर मुख पकड़ा चौथा हाथ में हलवा लेकर उसके मुंह में ग्रास देने लगा, तब हंसा और बोला अब मैं खा लूंगा । जो मेरी भावना थी राम जी ने पूरी कर दी । अब मुझे निश्चय हो गया कि यह जीव राम का विश्वास करले तो, कभी दुख नहीं पावे ।

दादू चिन्ता कीयां कुछ नहीं, चिंता जीव कूं खाइ ।
हूंणा था सो व्है रह्या, जाणा है सौ जाइ ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रारब्ध कर्म अनुसार जो लाभ हानी होवै, सो स्वतः स्वभाव होता रहै । परन्तु मुमुक्षु प्रारब्ध कर्म फल का ऐसा विचार करके, हर्ष शोक नहीं करते और सहज स्वभाव से रहते हैं । परमेश्वर का चिन्तन करते हैं । व्यर्थ चिन्ताओं को छोड़ दे और परमेश्वर का विश्वास रख ।

(प्रतिपाल)

दादू जिन पहुंचाया प्राण कौं, उदर उर्ध मुखि खीर ।
जठर अगनि में राखीया, कोमल काया शरीर ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो समर्थ परमेश्वर, गर्भवास में प्राणों को पोख देता है, जहां यह प्राणी उल्टा भूलता है, उसी जगह इसके मुख में खीर पहुंचता है और कोमल शरीर की जठरा अग्नि से रक्षा करता है । ऐसे परमेश्वर का विश्वास धारण करो । वह अब क्या अन्न वस्त्र नहीं पूरेंगे ? इस चिंता को छोड़कर, उनके निष्काम नाम स्मरण में, स्थिर रहो ।

दादू समरथ संगी संगि रहै, बिकट घाट घट भीर ।
सो सांई सूं गहि गही जिन भूलै मन बीर ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गर्भवास में इस शरीर को अति से कष्ट होता है क्योंकि जगह बहुत संकोच की होने के कारण । उस समय परमेश्वर ही वहां साथ रहते हैं और सब प्रकार से रक्षा करते हैं । हे मन ! अब ऐसा जानकर, परम पिता का विश्वास धारण करके, राम नाम का स्मरण कर । और उस प्रभु की दयालुता को नहीं भूल जाना ।

गोबिन्द के गुण चींति करि, नैन बैन पग सीस ।
जिन मुख दीया कान कर, प्राण नाथ जगदीस ॥१७॥

टीका : हे जिज्ञासुओ ! उस गोविन्द भगवान के गुणों का चितवन करो । उसने जीव पर कैसी दया करी है ? देखो ! चौरासी से निकाल कर, मनुष्य का शरीर दिया है और सम्पूर्ण नख नख से शिखा पर्यन्त, इन्द्रियों को सजाया है । उस प्राणाधार जगदीश ने बड़ी दया की है, इसलिये अब उसी का विश्वास धारण करके, उसका नाम स्मरण करो ।

तन मन सौंज संवारि सब, राखै बिसवा बीस ।
सो साहिब सुमिरै नहीं, दादू भानि हदीस ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस परमेश्वर ने इस जीव को अति संकट काल में, बीसों बीसवा अर्थात् पूर्णतया इसकी रक्षा करी है । परन्तु यह अज्ञानी जीव गर्भवास में, राम नाम के स्मरण करने का, जो कोल वचन किया था, उसको यह अब भूल रहा है ।

दादू सो साहिब जिन बिसरै, जिन घट दीया जीव ।
गर्भवास मै राखिया, पालै पोखै पीव ॥१६॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! उस सर्वं शक्तिवान परमेश्वर को कभी भी नहीं भूलना । जिसने जीव को, मनुष्य देह रूपी शरीर अपनी प्राप्ति का यह स्थान दिया है और गर्भवास में पालन किया है तथा पोख दिया है, उसी परमेश्वर का विश्वास धारण करके, नाम स्मरण द्वारा, इस मनुष्य जीवन को सफल बनाओ ।

दादू राजीक रिजक लीये खड़ा, देवै हाथों हाथ ।
पूरिक पुरा पासि है, सदा हमारे साथ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह परमेश्वर परम पिता 'रिजक' अन्न वस्त्र आदि सभी के लिये, लिये खड़े हैं और सभी प्रकार की कामनाएं, प्राणियों की पूर्ण करते हैं जड़ चेतन, सम्पूर्ण सृष्टि के साथ ही रहते हैं । उसी सर्व शक्तिवान परमेश्वर का विश्वास धारण करके, उसका नाम स्मरण करने से ही, इस जीव का कल्याण होता है ।

हिरदै राम संभालि ले, मन राखै बेसास ।
दादू समरथ सांइयां, सब की पूरै आस ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने अन्तःकरण में राम के स्मरण को, हर समय करते रहो और मन में उस परमेश्वर का विश्वास धारण करके रहो । इस लोक परलोक के विषय वासनाओं से, इस मन का निरोध करके, नाम में लगाये रहो । वह समर्थ परमेश्वर, सब प्रकार सबकी आशा पूर्ण करते हैं ।

दादू सांई सबन को, सेवक व्है सुख देइ ।
अया मुड़ मति जीव की, तो भी नाम न लेइ ॥२२॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! वह परम पिता परमेश्वर, प्राणीमात्र को सेवक की भांति, सब प्रकार का सुख दे रहे हैं । । यह मूढ़मति जीव फिर भी उस अन्तर्यामी परमेश्वर का नाम स्मरण नहीं करता है और वह इसके हर समय, सोते में, जागते में, चलते में, फिरते में, आते में, जाते में, खाते में, पीते में, रक्षा करते हैं । अपना किये की, वह लाज को बहत है ।

दादू सिरजनहारा सबन का, ऐसा है सामरथ ।
सोई सेवग व्है रह्या, जहं सकल पसारै हाथ ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह परमेश्वर सभी की उत्पत्ति करने वाले है, और फिर ऐसे सर्व शक्तिवान हैं कि जो चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, अथवा देव दानव, कीन्नर मनुष्य, त्रीयक,सभी को जो जिसकी जैसी खुराक है, वैसी दे रहा है और उसके सामने सभी अपना हाथ फैलाते हैं, ऐसे उस समर्थ राम का विश्वास धारण करके, यह जीव उसका स्मरण करे, तभी इसका जन्म सार्थक है ।

(समर्थ साक्षीभूत)

धनि धनि साहिब तु बड़ा, कौन अनूपम रीति ।
सकल लोक सिर सांईयां, व्है करि रह्या अतीत ॥२४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हे साहिब, परमेश्वर ! आपको धन्य हो ! धन्य हो ! आप सर्व के शिरोमणि होकर भी, सबकी प्रतिपालना करते हो । और फिर उनके गुण विकारों से रहित, सबके अन्दर निवास करते हुए, गुणतीत होकर, रह रहे हो, इस आपकी समर्थताई को और उदारता को, आपके विश्वासी अनन्य भक्त ही जानते हैं ।

दादू हूं बलिहारी सुरति की, सबकी करै संभाल ।
कीड़ी कुंजर पलक मै, करता है प्रतिपाल ॥२५॥

टीका :- हे परमेश्वर ! हे परमपिता ! आपकी पूर्ण व्यापक सुरति की हम बलिहारी जाते हैं अर्थात् आप के वारणे जाते हैं । हे दयालु ! आप कीड़ी से हाथी पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणिमात्र का, एक क्षण भर में प्रति-

पालना करतें हो। इस आपकी समर्थाई को आपके नाम में विश्वास करके, आपका स्मरण करने वाले भक्त ही जानते हैं।

दोहा :- रुकमणी संपुट में धरे, चांवल चीटि लार।
असम त्रास लखी कीट मुख, पृथ्वी राज विचार ॥२५॥

दृष्टान्त :- एक समय रुकमणी जी को यह शंका हुई कि क्या भगवान कृष्ण यह बिसम्बर हैं ? इनको सारी दुनियां बिशम्बर नाम से पुकारती है। यह सोचकर भगवान से प्रश्न किया कि हे नाथ ! क्या आप बिशम्बर हो ? भगवान बोले :- हां बिशम्बर तो मैं हूं ही। क्या सबको आप खाने पीने को देते हो ? भगवान :- हां, सभी को देता हूं, तभी तो नाम बिशम्बर है। रुकमणी जी बोली :- मेरे पास एक जीव है, उसको तो आपने खाने को नहीं दिया।? भगवान :- मैंने तो, उसको सबसे पहले दिया है, क्योंकि उसको तो तुमने कैद कर रखा है, देखो उसको।" रुकमणी जी ने अपने जूड़े में से टीकी लगाने की डिब्बी निकाली, जिसमें उसने चींटि बन्द कर रखी थी। खोल कर देखा तो उसके मुंह में एक चावल की कणी है। यह देखकर चकित हो गई और नमस्कार किया कि हे नाथ ! आप अवश्य बिशम्बर ही हो।

दोहा :- एक तवो पाषाण को, अग्नि चढ्यो बहुकाल।
कीट तहां काची रहै, रोटी राम दयाल ॥२५॥

दृष्टान्त :- आमेर के राजा पृथ्वीराज किला बनवा रहे थे। मिस्त्रियों ने एक पत्थर का तवा रोटी बनाने का बना लिया। जब ऊसको चुल्हे पर रखकर, आंच जलाई और उस पर रोटी डाली, तो रोटी चारों तरफ से सिक गई परन्तु बीच में ठंडा आटा रह गया। सभी ने विचार किया, यह क्या कारण है ? रोटी तो बीच में से पहले सिकनी चाहिए। यह बात राजा के पास भी पहुंच गई। जब राजा ने अपने सामने उस तवे पर रोटी डलवाई और देखा, तो वैसे ही रोटी बीच में कच्ची दिखाई पड़ी। राजा ने मन में सोचा कि परम्परा से सुनते हैं कि परमेश्वर पत्थर में भी पत्थर के कीड़े को देता है, जैसी जिसकी खुराक होती है ? राजा ने उस तवे को मिस्त्री के द्वारा, चारों तरफ से छोनी से कटवाया। फिर उसको खुलवाया, तो ढक्कन की तरह खुल गया। उसमें एक कीड़ा देखा। सफेद सफेद उसके सामने कुछ पड़ा है और वह उसको चाट रहा है। राजा बोले :- जरा इस सफेद सफेद को लेकर, जीभ से चाखो। चाखने वाला बोला, हुजूर ! शक्कर है। मंत्री को राजा बोले, आप भी चाखो। मंत्री बोले :- शक्कर है। तब तो राजा पृथ्वी राज ने आप भी उंगली लगा कर, जबान से चाखा। निश्चय हुआ कि शक्कर है। सुनते हैं कि परमेश्वर पत्थर में भी शक्कर खोर को शक्कर देते हैं। वह यह कीड़ा है। उस परमेश्वर को बारम्बार नमस्कार है, जो सबकी संभाल करता है, और सबकी रक्षा करता है।

ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हम उस परमेश्वर की उस व्यापक सुरति की बार बार बलिहारी जाते हैं, जो सबकी रक्षा करते हैं, और प्रतिपालना करते हैं

(विश्वास)

दादू छाजन भोजन सहज में, संइयां देइ सो लेइ ।
ताथैं अधिका और कुछ, सो तुं काइ करेइ ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गुरूमुखी पुरुष अर्थात् गुरू के आज्ञाकारी, जो परमेश्वर 'छाजन' कहिए वस्त्र, और भोजन उनको पूरते हैं अर्थात् देते हैं, उसी में सन्तुष्ट रहते हैं । फिर उससे अधिक और परमेश्वर से याचना करके, क्या करोगे ? उस प्रभु का विश्वास धारण करके, नाम स्मरण करो, संतोष वृत्ति के द्वारा । इसी से परमेश्वर की प्राप्ति होगी ।

दोहा :- **निरधन घर धामो मिल्यो, संतोसी हो साध ।**
तातो पानी पी चल्यो, बरस्यो द्रव्य अगाध ॥२७॥

दृष्टान्त :- एक गांव में संत प्रवचन करते थे । संत बहुत संतोषी और ईश्वर के सच्चे भक्त थे । सभी लोग क्रम क्रम से अपने घर महाराज को भोजन कराने ले जाते । एक बुढिया माई भी उनके सतसंग में आती थी । उसको भी संतों को घर ले जाने का नम्बर मिला । उस माई के घर संत गये । उसने उस रोज गर्म पानी किया था और यह विचार कर रही थी कि आज गर्म पानी पीकर ही भगवान का भजन करूंगी । उसके घर में खाने पीने को और कुछ नहीं था । संत आये । उनको नमस्कार किया और बोली :- महाराज ! मेरे पास तो घर में खाने पीने को कुछ है नहीं, गर्म पानी बनाया है । संत बोले :- माता यही हम पी लेंगे । माई ने थाली में गर्म पानी परस दिया । भगवान के भोग लगाकर, संत पानी पीकर चले गये । परमेश्वर ने माई के यहां रात्रि को घर में द्रव्य की वर्षा कर दी । फिर तो माई भगवान के निमित्त खूब धर्म पुण्य करने लगी ।

दोहा :- **गयो रसायण लेन को, द्विज जोतिस परवान ।**
भाग बिना पाइये नहिं, प्रत्यक्ष लई पिछान ॥२७॥

दृष्टान्त :- एक ब्राह्मण ज्योतिष का पढ़ा हुआ था । एक संत आये । उनको नमस्कार किया और ब्राह्मण बोला :- महाराज ! रसायन बनाने वाली बूंटी आप जानते हो, तो मुझे उसकी पहचान बताओ ।

महात्मा बोले :- अमुख दिन, अमुख नक्षत्र में, अमुख बार को, अमुख समय, उस बूंटी को लाना और उस बूंटी के नीचे रात्रि को तारे का सा प्रकाश रहता है, उसी से रसायन बनती है। ब्राह्मण ने जैसे महात्मा ने बतलाया था, वैसे ही किया। जब पहाड़ के ऊपर पहुंचा, तो दूर से तारे जैसा प्रकाश दिखलाई दिया, परन्तु उसके पास जावे तो, प्रकाश लोप हो जावे। वापिस ही आ गया। सब वृत्तान्त महात्मा जी को सुनाया। महात्मा बोले :- तेरे भाग्य में नहीं है।

जब भोजन वस्त्र परमेश्वर देते हैं, फिर ज्यादा तृष्णा करके क्या करोगे ?

दादू टूका सहज का, संतोसी जन खाइ।
मृत्तक भोजन गुरूमुखी, काहे कलपै जाइ ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का नाम स्मरण करने वाले गुरूमुखी, सच्चे संतोषी संत, 'सहज का' कहिए, निर्द्वन्द का टुकड़ा कहिए भोजन, परमेश्वर के अर्पण किया हुआ, श्रद्धालु पुरुष का पाते हैं। और श्रद्धाहीन का, मरे हुए, के निमित्त का द्वादसा श्राध वगैरा का, उसको खाने कि क्यों जाकर कल्पना करेंगे, अर्थात् उसको वह नहीं खाते।

दोहा :- सिंह साधु का एक मत, तड़फत ही को खाइ।
जन बखना मृत्तक दशा, संत निकट नहीं जाइ ॥२७॥

दोहा :- मृत्तक भोजन गहण गति, तामें वाडे हाथ।
जन रज्जब ऐते स्वपच, चांडालों के तात ॥२७॥

दादू भाड़ा देह का, तेता सहजि बिचार।
जेता हरि बिच अंतरा, तेता सबै निवारि ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गुरूमुखी सच्चे संतों के लिये तामसिक राजसिक, कहिए तमोगुणी रजोगुणी आहार से, परमेश्वर के भजन में अन्तराय पड़ता है। भजन नहीं बनता, मन इधर उधर दौड़ता है, इसलिये त्याज्य है। और सहजभाव से नाम, स्वभाव से सात्विक भोजन, शरीर निर्वाह के लिये, प्राप्त होवै, उसी अहार को करना चाहिए। उससे मन सात्विक बनता है।

दोहा :- तृये लम्पटी जन सभा में, ल्याय धर्यो परसाद ।
पावत ही चंचल भयो, काम बिकल मन साद ॥२८॥

दृष्टान्त :- एक परमेश्वर के सच्चे संत, प्रवचन कर रहे थे । बहुत से श्रोतागण सुन रहे थे । एक परमादी कामी पुरूष, वेश्यागामी प्रसाद लाकर, महातमा के सामने रखा और महातमा जी से, बहुत आग्रह कर के, खिला दिया । उस रोज महात्मा जी का मन, परमेश्वर भजन में नहीं लगा । अनेक प्रकार की मलीन वासनायें मन में उठने लगी । जब परमेश्वर से प्रार्थना करी कि हे नाथ ! आज मेरा मन आपके चरणों में नहीं लगता है, क्या कारण है ? परमेश्वर का शब्द हुआ कि हे महातमा ! जिसका आपने प्रसाद पाया है, वह कामी पुरूष था । उसी के अन्न का तुम्हारे मन पर प्रभाव पड़ा है । संत ने मन में बड़ा पश्चाताप किया । आगे विचार करके, भोजन करने लग गये ।

दादू जल दल राम का, हम लेवैं परसाद ।
संसार का समझै नहीं, अविगत भाव अगाध ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के सच्चे विश्वासी संतजन, अन्न आदि को राम का भेजा हुआ प्रसाद मानकर स्वीकार करते हैं और संसार का दिया हुआ उसको नहीं मानते । संसार भाव को अनित्य नश्वर मानकर, उसमें आसक्त नहीं होते । अविगत परमेश्वर के भाव में, अर्थात् प्रेम में विश्वास द्वारा, राम के अनन्य भक्त, राम में लयलीन रहते हैं ।

परमेसुर के भाव का, एक कणूँ का खाइ ।
दादू जेत्ता पाप था, भरम करम सब जाइ ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो ब्रह्म परचै मुक्त पुरूष, परमेश्वर के विश्वास से, अपना योग क्षेम कहिए, शरीर निर्वाह करते हैं, वे पुरूष वस्त्र भोजन आदिक समस्त व्यवहारों से निष्क्रय होकर, केवल ब्रह्मभाव में ही मग्न रहते हैं । ऐसे परचै सिद्ध संतों का, परमेश्वर के अर्पण किया हुआ, उस प्रसाद का, एक कणका मात्र भी, उनकी दया से प्राप्त हो जावे, तो साधक पुरूष के सम्पूर्ण पाप, नष्ट हो जाते हैं ।

दोहा :- जन पात्तल लई उंटड़ि, कछु कण को लयो काग ।
ताथैं द्विज द्विजनी भये, ज्ञान सहित बड़ भाग ॥३०॥

दृष्टांत :— एक चुणकर भक्त थे, सिलोचना वृत्ति वाले । उन्होंने भोजन बनाया । एक परचै सिद्ध महात्मा, आ गये, उनको नमस्कार किया और आसन देठर बैठाये । भक्त ने उनके सामने एक पनवाड़ा भोजन का रख दिया । भगवान के भोग लगाकर, भोजन पाने लगे । भक्त ने पूछा :- और चाहिए । उन्होंने कहा हां, और चाहिये । अपना पनवाड़ा भी महात्मा जी को परस दिया । इसी प्रकार अपना, अपनी स्त्री का, लड़के का, लड़के की स्त्री का, सब भोजन महात्मा जी ने पा लिया । जरा सा टुकड़ा पत्तल पर छोड़ा । उन चारों ने एक एक कण जल के साथ, प्रसाद का ले लिया । वह पत्ता और रोटी उठाकर, सामने एक ऊंटडी थी, उसके मुंह के सामने डाल दिया । कव्वा ऊंटडी का मांस खाया करता था, वही कव्वा तत्काल उस टुकड़े को उठा कर ले गया । उस पत्ते को ऊंटड़ी ने चबा लिया । वह चुणकर चारों प्राणी, परमेश्वर के परमधाम को प्राप्त हो गये । वह कव्वा अगले जन्म में ब्राह्मण बना और तीन काल की उसको दिखने लग गई । ऊंटणी मरकर ब्राह्मणी हुई । पंडित तीन काल की बात बताने लगा । उस ब्राह्मणी की पंडित के साथ शादी हो गई । पंडित के यहां बहुत यात्री आने लगे, सुख दुख की पूछने के लिये । पंडित धर्म पुण्य खूब कराता था । परन्तु वह स्त्री, उससे रोटी बनवाती अपनी सेवा सब करवाती । कटुक कटुक शब्द कहकर उस के साथ व्यवहार करती । नौकर नहीं रखने देती । एक पंसेरी भोजन करती । खुरर्टि मारकर खूब सोती । पंडित को गालियों से खूब कोसती रहती । एक रोज एक ब्राह्मण बोला :- कि महाराज ! तीन काल की जानने वाले पंडित जी ! हम सबको आप आगे पीछे की बात बताते हो । परन्तु यह स्त्री जो आपके है, इसकी पहले जन्म की बात का आपको पता नहीं है क्या ? आपको यह तंग करती है । हमको यह जानकर, बड़ा आश्चर्य होता है । पंडित जी ने उपरोक्त जन्म की सारी वार्ता कह सुनाई । उन्होंने कहा :- प्रसाद तो आपने भी खाया था और इसने भी खाया था । आपको तीन काल की दिखती है । और इसको एक जन्म की भी नहीं दिखती, यह क्या कारण ? पंडित जी बोले :- मैंने केवल महात्मा जी का ही प्रसाद खाया था । और इसने मेरा और महात्मा जी दोनों का झूठन खाया था । महात्मा जी की झूठन का फल तो यह हुआ कि यह ब्राह्मणी बन गई और मेरी झूठन का फल यह हुआ कि इसके हृदय में अज्ञान रह गया । मैंने इसका मांस खाया चूंट चूंट कर, यह मुझे गाली ही देकर अपना बदला ले रही है । इसलिये मैं इसकी गालियां सुनता हूं ।

दादू कोण पकावै कोण पीसै, जहां तहां सीधा ही दीसै ॥३१॥

टीका :— हे जिज्ञासुओ ! उदर पूर्ति के लिये सच्चे संत, राम का विश्वास रखने वाले, राम भजन में स्थिर रहते हैं और मन्ढूकड़ी लाकर प्राण धारण करते हैं। अर्थात् नगर में से आवश्यकता अनुसार भिक्षा ले आते हैं। राम के अर्पण करके पा लेते हैं वह अन्न राम का प्रसाद निर्दोष होता है।

दादू जे कुछ खुसी खुदाइ की, होवेगा सोइ ।
पचि पचि कोइ जिन मरै, सुनि लीज्यो लोई ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो कुछ परमेश्वर की आज्ञा है, वैसा ही होवेगा। परन्तु तुम बाह्य साधनों का त्याग करके, अनन्य हरि की भक्ति में लय लगाकर, लयलीन होना।

दोहा :- एक बुढिया अति प्रीति सौं, जाइ धर्यो परसाद ।
बदल दीयो जन त्तरक करी, लुटी बंदगि बाद ॥३२॥

दृष्टान्त :- एक वृद्ध माई परमेश्वर की भक्त थी। श्रद्धा प्रीति से जो कुछ घर में प्रसाद बनाया था, भगवान के भोग लगाकर, एक महात्मा के पास ले जाकर रखा और बोली, महाराज ! आप इसको पाओ। यह भगवान का प्रसाद है। महात्मा ने उस प्रसाद का त्याग कर दिया। बोला :- हम ऐसा नहीं पाते हैं, उठा लेजा तेरा प्रसाद। जो कुछ भाव भक्ति परमेश्वर का स्मरण किया था, वह सब महात्मा की लुट गई। परमेश्वर में मन नहीं लगता है। मन इधर उधर दौड़ने लगा। परमेश्वर से जब महात्मा ने विनती की कि परमेश्वर मन आपमें नहीं लगता, क्या कारण हो गया ? परमेश्वर ने कहा :- तुमने वह मेरी भक्त के प्रसाद का निरादर किया है, इससे आप की बन्दगी लुट गई। वह मेरी प्रेरणा से लाई थी। उसका प्रसाद पाओ, तब तुम्हारा मन स्थिर होगा।

दादू छूटि खुदाइ कहीं को नांही, फिरि हौ पिरथी सारी ।
दूजी दहणि दूरि करि बौरे, साधू सबद बिचारी ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हे बावले ! परमेश्वर के नाम स्मरण को न छोड़कर, "दूजी दहणि" कहिए, सन्ताप, नाना प्रकार की चिन्ताएं, "कहां से खाऊंगा ? कहां से पीऊंगा ?" इत्यादिक, यह सब अन्तःकरण से हटा। और सत्य शब्दों का सदैव विचार कर। वह परमेश्वर ही सर्वत्र देने वाला है।

दोहा :- काबल मेवा खाण को, गयो फकीर चलाइ ।
अति आदर आगे धरें, कान्दा रोटी ल्याइ ॥३३॥

दृष्टान्त :- एक काबुल का फकीर भारत में घूमने आया। यहां के फकीर के तकिया में गया और परस्पर यथा योग्य मिले । अपनी झोली में से मेवा निकाल कर, भारत के फकीर को भी दिया और आप भी खाने लगा । भारत का फकीर बोला :- आपके यहां क्या मेवा का ही भोजन होता है ? हाँ, हमारे यहां मेवा का ही भोजन होता है, हम मेवा ही खाते हैं । कुछ दिन के बाद भारतीय फकीर ने विचार किया कि मैं भी काबुल चलूं और वहीं मेवा खाऊंगा । तब वह भारत से चलकर, काबुल एक पठान के बगीचे में जाकर बैठा । पठान ने फकीर को देखा और दो रोटी और प्याज लाकर, उसके सामने रख दिया । फकीर रोटी और प्याज देखकर, विचार किया कि यह तो पीछे मैं छोड़कर आया था, वही आगे फिर मिल गये । ठीक है कहीं भी जावे, देने वाला तो परमेश्वर एक ही है । प्रारब्ध अनुसार देता है ।

दादू बिना राम कहीं को नांही, फिरि हौ देस विदेसा ।
दूजी दहणि दूरि करि बौरे, सुनि यहु साध संदेसा ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! चाहे देश छोड़कर विदेश में, और सारी पृथ्वी पर घूमिये, परन्तु राम के सिवाय देने वाला तथा राम का ज्ञान भक्ति के बिना, कहीं भी मुक्ति प्राप्त नहीं होती है । और हे नादान ! अविश्वास की दुविधा को अन्तःकरण से दूर कर । और संतों के वचनों को श्रवण करके, विचार पूर्वक विश्वास द्वारा धारण कर । इसी में तेरा कल्याण है ।

दादू सिदक सबूरी सांच गहि, स्यावत्तीं राखि अकीन ।
साहिब सौं दिल लाइ रहु, मुरदा व्है मसकीन ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो कुछ परमात्मा देवे संतोष से, उसको बाँटकर खाना और विश्वास रखना । और सत्य परमेश्वर को जानना । सत्य बोलना । परमेश्वर का यकीन रखना । इस प्रकार जीवत मृत्तक होकर, मसकीन कहिए, दीन भाव से परमेश्वर में अखंड लय लगाइये ।

दादू अण वंछित टूका खात हैं, मर्महि लागा मन ।
नाम निरंजन लेत हैं, यौं निर्मल साधू जन ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के प्यारे सच्चे संत, परमेश्वर का विश्वास धारण करे हुए, अनायास परमेश्वर की प्रेरणा से प्राप्त हुए भोजन को पा लेते हैं उनका मन आत्म विचार में, सदैव लगा रहता है। वह निरंजन निराकार के स्मरण में लगे रहते हैं।

अण वंछया आगै पड़ै, खरा विचारी खाइ।
दादू फिरै न तोड़ता, तरवर ताकि न जाइ ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिना प्रेरणा किये, बिना मांगे जो आगे आवे भोजन, उसको भी विचार से देखै कि खरा है कि खोटा। अर्थात् पाने के योग्य है या नहीं है। जो पाने के योग्य होवै, तो पा लेवै। और जो पाने के योग्य नहीं होवै, तो उसे त्याग देवै। परन्तु फिर ग्रहस्थियों के दरवाजे के ऊपर मांगने भी न जावै। अथवा जो पक्का फल बिना इच्छा के सामने गिरे तो, योग्य अयोग्य का विचार सहित भक्षण करके, संतोष वृत्ति धारण करै और फिर वृक्षों को देखता हुआ, फल तोड़ता नहीं फिरै। परमेश्वर में अखंड लय लगावै।

अण वंछया आगै पड़ै, पीछै लेइ उठाइ।
दादू के सिरि दोस यहु, जे कुछ राम रजाइ ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! बिना मांगे, बिना इच्छा किये जो सामने भोजन आ जाये, तो उसको परमेश्वर का भेजा हुआ जानकर, परमेश्वर के अर्पण करके, पा ले। अगर फिर भी उसमें कुछ सदोषता प्रतीत होवै, तो फिर उसमें राम की रजा समझै। अर्थात् साधुजन परमेश्वर की प्रेरणा से सब व्यवहार करते हैं। इसी से उनको कर्म बन्धन का दोष नहीं लगता है। वे कर्म के फल से मुक्त रहते हैं।

अण वंछी अज गैब की, रोजी गगन गिरास।
दादू सत्त करि लीजिये, सो सांई के पास ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे विवेकी संत बिना इच्छा, कहिए, स्वतः स्वभाव प्राप्त हुई रोजी को, संतजन, गगन गिरास, अर्थात् प्रभु का प्रसाद मानकर, पा लेते हैं। और फिर विश्वास वृत्ति द्वारा, वे संतजन ब्रह्म विचार में ही लगे रहते हैं।

(करत्ता कसौटी)

मीठे का सब मीठा लागै, भावै बिख भरि देइ।
दादू कड़वा ना कहै, अमृत्त करि करि लेइ ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनके हृदय में परमेश्वर का अटल है, उनको भक्त मीरां, अंगद की भांति, चाहे हलाहल देओ । किन्तु तिन संतों को स्वतः स्वभाव मीठा कहिए, प्रभु प्रेरणा से दिया जो वस्त्र भोजन, भगवान के द्वारा भेजा हुआ मीठा प्रतीत होता है । ऐसे संतजन, विष आदि को भी दुखरूप नहीं मानते । प्रभु का प्रसाद रूप अमृत मानकर, स्वीकार करते हैं । फिर उनका रोम भी नहीं मुरझाता है ।

विपति भली हरि नाम सौं, काया कसौटी दुख ।
राम बिना किस काम का, दादू संपत्ति सुख ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यदि शरीर पर किसी प्रकार का दुख भी आवै और प्रभु का नाम स्मरण होता रहै, तो वह दुख भी श्रेष्ठ है और राम के स्मरण बिना, नाना प्रकार की संपत्ति और सुख भी प्राप्त हों, तो वे किस काम के हैं । उनका फल तो अन्त में भारी दुख ही होता है ।

दोहा :- कबीर सुख कै माथै सिल पड़ो, राम हृदय तैं जाइ ।
बलिहारी वा दुख की, पल पल राम रटाइ ॥४१॥

(विश्वास संतोष)

दादू ऐक बेसास बिन, जियरा डावांडोल ।
निकटि निधि दुख पाइये, चिंतामणी अमोल ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमात्मा रूप चिंतामणी अपने अन्तःकरण में ही है । किन्तु विश्वास के बिना यह बहिर्मुख संसारी प्राणी, बाह्य साधनों में ही डावांडोल रहता है । उसका निष्काम नाम स्मरण के बिना, शांति सुख प्राप्त नहीं होता ।

दादू बिन बेसासी जीयरा, चंचल नांही ठौर ।
निहचै निहचल ना रहै, कछू और की और ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमेश्वर के विश्वास बिना, इस चचल चित्त प्राणधारी को, संसार में कही भी शांति प्राप्ति नहीं होती है । गुरू उपदेश का और वेदान्त शास्त्र का निश्चय किये बिना, यह बहिर्मुख प्राणी, जीव भाव को प्राप्त होकर, अनेकों कलेसों को भोगता रहता है ।

दादू होणा था सो व्है, रह्या, सर्गन बांछी धाइ ।
नरक कनेथी ना डरो, हुआ सो होसी आइ ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासु जनों ! जो कुछ प्रारब्ध का भोग होनहार है, सो हो रहा है । इसलिए होनहार के विपरीत स्वर्ग और नरक कहिये, सुख और दुख की इच्छा अनइच्छा रहित होकर रहना और निष्काम भाव से प्रभु का स्मरण करते हुए, परमेश्वर की कृपा में ही सन्तुष्ट रहना ।

दोहा:- तैं नर सुख किये घणे, दुख भोगीये अनन्त ।
अब सुख दुख को पीठ दे, सुन्दर भजि भगवंत ॥४४॥

दादू होणा था सो व्है रह्या, जिन बांछै सुख दुख ।
सुख मांगै दुख आइसी, पै पीव न बिसारी सुख ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! सुख दुख की कभी भी इच्छा नहीं करना, क्योंकि सुख की आसक्ति से, कर्म बन्धन रूप दुख भी, अवश्य भावी है । इसलिये होनहार अनुकूल हो या प्रतिकूल, परन्तु मुमुक्षु अन्तःकरण से प्रभु स्मरण को न भूल जावे ।

दादू होणा था सो व्है रह्या, जे कुछ कीया पीव ।
पल ब[illegible]ै न छिन घटै, ऐसी जाणी जीव ॥४६॥
६५

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो कुछ प्रारब्ध का भोग होना था, सो हो रहा है । उसमें न तो पल भर कम होगा और न ज्यादा ही होगा, जो कुछ परमेश्वर ने रचा है, उतना ही होगा, उससे न्यून अधिक नहीं होगा । इसलिये इस चिन्ता को त्याग कर, परमेश्वर का विश्वास धारण करके, नाम स्मरण में लय लीन रहो ।

दादू होणा था सो व्है रह्या, और न होवै आइ ।
लेणा था सो ले रहै, और न लीया जाइ ॥४७॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! जो कुछ प्रारब्ध में हो, वही होवेगा । उससे विपरीत कुछ भी नहीं होने का ।

परन्तु मनुष्य शरीर पाकर, जो भगवान का नाम लेना था, सो अब उसी में अखंड लय लगाइये अर्थात् स्मरण करिये। तो फिर और इन्द्रियों के विकार मनीराम जी नहीं लेवेंगे।

ज्यूं रचिया त्यूं होइगा, काहे को सिरि लेइ।
साहिब ऊपरि राखियें, देखि तमासा येह ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तुम्हारे संचित कर्मों से, जैसा कुछ प्रारब्ध कर्म, बनाया है, परमेश्वर ने वैसा ही लाभ अलाभ प्राप्त होगा। अब तूं कर्त्तारूप बनकर, अपने मस्तिष्क पर क्यों अहंकार लेता है। परमात्मा के ऊपर छोड़ दे। तटस्थ होकर, अर्थात् दृष्टा बनकर देख।

(पतिव्रता निष्काम)

ज्यूं जाणौं त्यूं राखियौ, तुम सिरि डाली राइ।
दूजा को देखौं नहीं, दादू अन्त न जाइ ॥४९॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हे परमेश्वर ! हे अन्तर्यामी ! जैसा मुझे आप समझो, मैं तो आपके भरोसे पर सब कुछ छोड़ दिया है। हे राजन् ! पतिराजा परमेश्वर ! अब हम आप को छोड़कर, अन्यत्र दूसरों की शरण नहीं जाने के। आपका ही विश्वास है। आपके ही नाम से लय लगाकर रहेंगे।

दोहा :- सुलतानी सर वृष्टि लख, बरजी आज्ञा मेट।
सीप त्रीखित भूकी मरी, बेहु भुको नेट ॥४९॥

दृष्टान्त :- सुलतानशाह एक तालाब में बैठे थे, मालिक की याद में। उस सरोवर में एक सीपी, प्यासी थी। उसको जल पिलाने के लिए, परमेश्वर वर्षा करने लगे। तो सरोवर में जल बढने लगा, परन्तु सीपी के पास जल नहीं पहुंचा था और सुलतानशाह जहां बैठे थे, वहां जब आने लगा। सुलतानशाह बोले :- मत बरसै, रुक जा। पानी रुक गया। सीपि प्यास से प्यासी रह गई। इधर इनको तीन रोज से भोजन नहीं मिल रहा है। तब सुलतानशाह ने परमेश्वर से प्रार्थना की कि हे नाथ ! तीन रोज से भोजन नहीं मिल रहा है, क्या कारण है ? तब आकाशबाणी हुई, हे बन्दे ! मैं जल रूप से उस सीपि को जल पिलाने बरस रहा था, तैंने मुझे रोक दिया, वह सीपि प्यासी है, वैसे ही तुम भी भूखे हो। मेरे काम में तुमने

रूकावट डाली । सुलतानशाह परमेश्वर से प्रार्थना करने लगे कि भूल हो गयी । अब कभी आपकी रजा से बाहर नहीं जायेंगे ।

ज्यूं तुम भावै त्युं खुसी, हम राजी उस बात ।
दादू के दिल सिदक सूं, भावै दिन कूं रात ॥५०॥

टीका :- हे प्रभु ! इस शरीर के अनुकूल, जो भी कसौटी आपको अच्छी लगै देओ । हम उसी में प्रसन्न हैं । चाहे आप दिन को रात और रात को दिन कहो, तो हम वैसा ही कहेंगे । । और चाहे सूर्य चन्द्रमा अपने गुण धर्म रूप कार्य छोड़ दें और प्रारब्ध कर्म चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल ! परन्तु आपके भक्तों का विश्वास तो, आप पर अटल रहता है । वे मायावी विकारों से उदासीन होकर, आपकी भक्ति के विश्वास में ही, मग्न रहते हैं ।

दोहा :- संत च्यार अति तप करै, एक भीक्षा को जाइ ।
चून उड़त आंधी रखी, रजा मेट दुख पाइ ॥५०॥

दृष्टान्त :- एक स्थान पर चार संत तपस्या कर रहे थे । एक संत रोजाना नगर में आटे की भिक्षा लेने जाया करता था । एक रोज जब वे भिक्षा लेने गये, तो जोर से अन्धेरी आ गई । एक माई आटा पीसती थी, उसका आटा हवा से उड़ रहा था । यह साधु भिक्षा को जब गया, माई बोली :- महाराज ! आंधी को रोक दो, तो अभी आप को आटा पीसकर भिक्षा दे दूं । संत बोला :- रूक जा । तो आंधी रुक गई । जब भिक्षा लेकर आये और और भोजन बनाया, पाया । तो चारों का मन विचलित हो गया और प्रभु स्मरण में नहीं लगता है । संतों ने परमेश्वर से प्रार्थना की कि हे नाथ ! हमारा मन आपके नाम स्मरण में क्यों नहीं रुकता है ? परमेश्वर ने आकाशवाणी की कि हे महात्माओ ! मैं आंधी रूप से समुद्र में यात्रियों की जहाज तारने जा रहा था, उन्होंने मुझे पुकारा था । इस महात्मा ने मुझे कह दिया रूक जा, तो मैं रूक गया । वह जहाज डूब गई, उनका पाप तुम्हें लगा है । इसी से तुम्हारा मन मेरे में नहीं लगता है । यह सुनते ही चारों महात्माओं ने बड़ा पश्चाताप किया और प्रभु से अपराध क्षमा चाहा ।

दादू करणहार जे कुछ किया, सो बुरा न कहणा जाइ ।
सोई सेवग संतजन, रहिबा राम रजाइ ॥५१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस सृष्टि की उत्पत्ति, पालन करने वाला परमेश्वर, जो कुछ प्रारब्ध अनुसार करता है सुख या देख, वह सब अच्छा है । उसको कभी बुरा नहीं कहना कि परमेश्वर ने यह अच्छा नहीं किया । वही तो सच्चे संत हैं और वही सच्चा सेवक भक्त है, जो राम की रजा में रहते हैं, और राम का स्मरण करते हैं ।

दोहा :- पोल ढइ खाडो मुस्यो, बधु मरी भइ हांन ।
साहपुत्र सौं यौं कहै, कुछ आछा ही जान ॥५१॥

दृष्टान्त :- एक साहूकार था । एक रोज रात को उसका दरवाजा गिर गया और पुत्रवधु दब कर मर गई । उसी रात चोर घुस कर, गढ्ढा खोदकर धन निकाल ले गये । सवेरे पुत्र रोने लगा और पिता से बोला :- हे पिता ! एक ही रात में यह क्या हुआ ? जो यह दरवाजा ढह गया, मेरी स्त्री मर गई और चोर धन ले गये । साहूकार परमेश्वर का विश्वासीभक्त, राम जी की रजा में रहने वाला था । पुत्र से बोला :- हे पुत्र ! कुछ अच्छा ही हुआ है, बुरा नहीं कहना । पुत्र बोला :- पिता ! अच्छा कैसे हुआ ? पिता बोले :- पुत्र ! यदि मेरे और तेरे ऊपर दरवाजा पड़ जाता, तो अपन मर जाते, फिर क्या होता ? इसलिये परमेश्वर ने हमको बचाया । दरवाजा भी बना लेंगे, तेरी शादी भी कर देंगे और धन भी कमा लेंगे । इससे अच्छा ही तो हुआ, बुरा क्या हुआ । पुत्र को पिता की भांति निश्चय हो गया ।

(विश्वास संतोष)

दादू करणहार जे कुछ कीया, सोई हूं करि जाण ।
जे तूं चतुर सयाणा जाण राइ, तौ याही परवाणि ॥५२॥

टीका :- किसी ने ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज से पूछा कि महाराज ! आप कौन हो ? तिसके उत्तर में परम गुरूदेव बोले :- करणहार परमेश्वर ने जो कुछ मुझको बनाया है, वैसे ही मैं हूं । तूं ऐसा ही करके मुझको जान । जो तूं चतुर है और समझदार है और जानकारों में अधिक जानकार है तो, मेरे जानने में यही प्रमाण है ।

दादू कर्त्ता हम नहीं, कर्त्ता औरै कोइ ।
करत्ता है सो करैगा, तूं जिनि कर्त्ता होइ ॥५३॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे परमेश्वर के भक्त संतजन, कर्त्तव्य भाव का अहंकार नहीं करते और निष्काम निर्द्वन्द रहते हैं। उनके शरीर का जो प्रारब्ध है, सो स्वतः भगवान की प्रेरणा से पूर्ण होता रहता है। इसी से हे मुमुक्षुजनों ! संतों की धारणा का विचार करके, और मैं कर्त्ता भोगता हूं, इस मिथ्या अहंकार का त्याग कर । क्योंकि यह अहंकार कर्मफल और संसार बन्धन का कारण है। इसीलिए करणहार परमेश्वर की करणी में विश्वास करके, ब्रह्म स्वरूप आत्मा के विचार में ही मग्न रहो।

(हरि भरोसा)

कासी तजि मगहर गया, कबीर भरोसै राम ।
सैंदे हा सांई मिल्या, दादू पूरे काम ॥५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम के सच्चे भक्त कबीर साहब ने राम की भक्ति की महिमा दिखलाई । कासी का त्याग करके, अन्त समय में मगहर भूमि में गये । जहां मर कर गधे होते हैं, उस जगह आप राम का विश्वास धारण करके, राम की भक्ति द्वारा शरीर के सहित, परमेश्वर में अभेद हो गये । मनुष्य जीवन का पूरा काम कर गये । अथवा यह मनुष्य शरीर ही कासी है और नाना प्रकार की कामना ही मगहर भूमि है । जो अज्ञानीजन संसार की कामनाओं में आसक्त होकर, शरीर छोड़ते हैं, वह इस संसार चक्र में ही भ्रमते रहते हैं । और ब्रह्मवित संत कासी कहिए, इस देहअध्यास को छोड़कर, ब्रह्मी अवस्था में देह का त्याग करते हैं । ऐसे पुरुष सूक्ष्म शरीर सहित, प्रभु में अभेद होकर एक रूप होते हैं ।

दादू रोजी राम है, राजीक रीजक हमार ।
दादू उस प्रसाद सौं, पोख्या सब परिवार ॥५५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम के सच्चे भक्तों की रोजी तो राम ही है । और वह परमेश्वर ही भक्तों की आजीविका है । उनकी दया प्रसाद से ही अपने सम्पूर्ण परिवार को, हम पोख देतें हैं ।

अर्थात् ब्रह्मवेता संतों के तो राम ही दैनिक आहार है । और आजीविका भी वही है । इस प्रकार प्रभु के विश्वास रूप प्रसाद से, संतों के मन इन्द्रियादिक सम्पूर्ण परिवार आत्म विचार में ही तृप्त रहते हैं ।

पंच संतोखे एक सौं, मन मतिवाला मांहि ।
दादू भागी भूख सब, दूजा भावै नांहि ॥५६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब यह मायावी मन अन्तर्मुखी होकर, प्रभु भजन में एकाग्र रहे तो, पंच ज्ञानेन्द्रिये सूक्ष्म संघात ब्रह्म परायण होता है । और फिर संसार वासना रूप भूख नहीं रहती है । इसीलिये संतोंको दूसरे मायावी विकार प्रिय नहीं लगते हैं ।

दादू साहिब मेरे कप्पड़े, साहिब मेरा खाण ।
साहिब सिर का ताज है, साहिब पिंड पराण ॥५७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेत्ता संतों के परमेश्वर ही तो वस्त्र है, परमेश्वर ही का दर्शन भोजन है । और वह परमेश्वर ही हमारे मस्तिष्क के ऊपर हमारा इष्ट है । और परमेश्वर ही हमारे मुक्त पुरूषों के पिंड और प्राण में व्यापक है । अर्थात् संतों की ब्रह्म में ही अखण्ड वृत्ति लगी रहती है । आहार व्यवहार में भी संतजन, परमेश्वर का स्वरूप ही अनुभव करते हैं, अथवा परमेश्वर की प्रेरणा मानते हैं ।

दोहा :- तेज ही खाना पहरना, तेज ही भोग विलास ।
तेज ही वस्त्र साध का, कहै जगजीवन दास ॥५७॥

(बिनती)

सांई सत्त संतोस दे, भाव भक्ति बेसास ।
सिदक सबूरि सांच दे, मांगै दादू दास ॥५८॥

टीका :- हे परमेश्वर ! आपसे हम यह प्रार्थना करते हैं कि आप सत्य स्वरूप हो । ऐसा ही आपके सत्य स्वरूप का दर्शन देओ । आपके नाम में प्रेम और मायिक पदार्थों से हमें संतोष देओ । आपका अखंड भाव और अखंड भक्ति देओ । और हमको आपमें अटल विश्वास देओ । सिदक सबूरि और सांच देओ । हम आपके दास, आपसे यही मंगनी मांगते हैं । अर्थात् हे प्रभु ! सत संतोष आदि के द्वारा, जिज्ञासुजनों की वृत्ति को, आपकी भक्ति में एकाग्र करके, अपनी अनन्य शरण दीजिये । यही हमारी आपसे विनय है ।

(इति विश्वास का अंग टीका सहित, सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ पीव पहचान का अंग २० ॥

"धन धन साहिब तूं बड़ा, कौन अनुपम रीति०', —इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब पीव पहचान के अंग का निरूपण करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥१॥

टीका :- हे निरंजनदेव ! आपको हमारी बारम्बार नमस्कार है और जिन गुरूदेव ने पीव का स्वरूप पहचाना है तथा जिज्ञासुओं को पीव के स्वरूप की पहचान कराते हैं, ऐसे गुरूदेव को भी हमारी नमस्कार है । और सर्व संत तीन काल, चार आश्रम के, उन सबको ही हम बन्दना करते हैं । उनके सतसंग से जिज्ञासुओं को, पीव की प्राप्ति होती है । जिनकी कृपा से जिज्ञासु संसार भाव से पार होकर, ब्रह्म भाव को प्राप्त होते हैं ।

सारौं के सिरि देखिये, उस परि कोई नांहि ।
दादू ज्ञान बिचार करि, सो राख्या मन मांहि ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह पीव परमेश्वर, सम्पूर्ण सृष्टि के, अथवा सम्पूर्ण उपास्य देवों के सिर पर बिराजते हैं । उसके ऊपर दूसरा और कोई उपास्य देव नहीं हैं । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि परमेश्वर के विचार रूप ज्ञान को ही, हमने तो मन में धारण किया है । तुम भी उपरोक्त विचार को धारण करके, पीव का साक्षात्कार करो । अर्थात् ब्रह्म विचार पूर्वक मन को अन्तर्मुखी करके, आत्मा के स्वरूप में लगाओ ।

दोहा :- नेम लियो रजपूत ऐक, सब सिर होइ सो सेऊं ।
नृप तज त्याग्यो बादसाह, साहब सेवइ लेऊं ॥२॥

दृष्टान्त :- एक संत ने एक राजपूत को उपदेश दिया कि नौकर का नौकर नहीं होना । राजपूत अपने घर से नौकरी करने चला । एक नगर में पहुंचा । और नगर के साहूकार का नौकर हो गया । साहूकार को जागीरदार ने बुलाया । जब सेठ इसको अपने साथ चलने को बोला, तब यह पूछता है कि आप क्या उनके नौकर हो ? सेठ :- उनके गांव में रहते हैं, उनके नौकर ही तो हैं । मैं आपकी नौकरी नहीं करता । अपना हिसाब लेकर, जागीरदार के यहां पहुंच गया । और नौकरी करने लगा । पूर्व की भांति जागीरदार को भी, राजा ने बुलाया । यह साथ जाने को इनकार किया । बोला कि मैं नौकर का नौकर नहीं रहता । राजा का नौकर जा बना । राजा को बादशाह ने बुलाया । यह राजा के साथ जाने से इनकार किया । अपना हिसाब ले करके, बादशाह के यहाँ पहुंच गया । मिल्ट्री में नौकर हो गया । एक रोज बादशाह के साथ सैनिक टुकड़ी में यह भी था । जब बादशाह नमाज गुजारने जामा मस्जिद गये, तो वह सैनिक टुकड़ी बादशाह के साथ इन्तजाम पर गई । बादशाह मस्जिद में प्रवेश कर गया । सैनिक लोग बाहर खड़े रहे । जब बादशाह नमाज गुजारने लगा, तो यह झुक झुक कर देख रहा था । बादशाह जब बाहर आये तो, इसने सलाम किया और बोला :- हुजूर ! आप किसकी खुशामद कर रहे थे ? जिसको तुम राम कहते हो, उसकी । क्या हुजूर आप उसके नौकर हो ? उसका नौकर तो तमाम आलम है । तब बोला:-हुजूर ! मेरा इस्तिफा लीजिये । मैं तो जानता था कि आप किसी के नौकर नहीं हैं । जिसके आप नौकर हो, उसी की अब नौकरी करूंगा । अपना हिसाब लेकर, अपने घर लौटकर आ गया । स्त्री ने पूछा :- नौकरी लगी कहीं ? हां नौकरी लग गई है । तनखा ? तनखा छह महीने में काम देखकर, अपने आप ही दे देंगे । वर्दी पहन कर, रायफल लेकर, गांव के बाहर एक मिट्टी का टीला था, उस पर टहल कर पहरा देने लगा । उस परमेश्वर की सम्पूर्ण सृष्टि है । मैं पहरा दे जानता हूं । सो यहां ही तीन घंटे की ड्यूटी देऊं । इस प्रकार घूम घूम कर, कभी रात में, कभी दोपहर में, कभी दिन में, सेना की भाँति पहरा देता रहा । छह महीने हो गये, परमेश्वर ने देखा कि संत वचन में विश्वास करके, यह मेरा नौकर बन गया है । मैं किसी का नौकर हूं नहीं । इसे तनखा देनी है । दो थैली असर्रफियों की उस टीले के ऊपर, इसने देखी । गौर से पहरा देता रहा । जब ड्यूटी खत्म हुई, तब आवाज दी कि जिसका पहरा है, वह यह रकम संभाले, मैं जा रहा हूं । तब आकाशवाणी हुई कि हे बन्दे ! तेरी यह छह महीने की तनखा है, इसे ले जा । और अब घर पर ही मेरी स्मरण रूप नौकरी कर, वहीं तेरा योग क्षेम पूरा करूंगा ।

सब लालौं सिर लाल है, सब खूबौं सिरि खूब ।
सब पाकों सिरि पाक है, दादू का महबूब ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारे तो परम प्यारे हमारे स्वामी परमेश्वर, सब लालों में एक अति श्रेष्ठ लाल हैं । सब खूबों में अर्थात् सुन्दरों में अति श्रेष्ठ, सबके शिरोमणी सुन्दर रूप हैं । और सब पवित्र करने वालों में अति श्रेष्ठ पवित्र करने वाले हैं । ऐसे प्रभु ही हमें अति प्रिय हैं । उन्हीं के नाम में हमारा मन अब, लयलीन हो रहा है ।

छन्द :-

व्यापक ब्रह्म अखंड अनावृत्त, बाहिर भीतर अन्तरजामी ।
और न छोर अनंत कह गुण, याही तै सुन्दर घन नामी ।
ऐसो प्रभु जिनके सिर ऊपर, क्यूं परी है तिनकी कहूं खामी ॥३॥

परब्रह्म परापरं, सो मम देव निरंजनम् ।
निराकारं निर्मलं, तस्य दादू बंदनम् ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परब्रह्म कहिये, वह परमेश्वर निर्गुण ब्रह्म परा माया से परम श्रेष्ठ है । उस ब्रह्म तत्व में मायावी प्रपंच का अत्यन्ता अभाव है । ऐसा निरंजन, निराकार निर्मल, माया मल रहित, वह ब्रह्मतत्व, मुक्त पुरूषों का उपास्य देव है । ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हम उनको मन वचन कर्म से नमस्कार करते हैं ।

निम्नलिखित साखियां परमगुरुदेव ने किसी विपक्षी के प्रश्न के उत्तर में कही हैं । किसी ने ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज से पूछा कि आप किसके घर के बन्दे हो ? तब आप बोले :-

इतना
एक तत्तता ऊपरि ~~इतनी~~, तीनि लोक ब्रह्मंडा ।
धरति गगन पवन अरू पानी, सप्त दीप नौ खंडा ॥५॥

एक चेतन्य तत्व, जिसके आश्रय तीन लोक, सातों दीप, धरती, गगन, पवन पानी और नौ खंड, उत्कल खंड, हिरण्य खंड, भद्रश्यखंड, केत्तुमालखंड, इक्यावृत्तखंड, नाभीखंड, किमपुरूषखंड, भरतखंड, नरहरिखंड, यह सब रचना जिसके आश्रित है, हम उसी स्वामी के घर के बन्दे कहिए, सेवक हैं ।

चंद सूर चौरासी लाख दिन, अरू रैणीं रचीले सप्त संमदा ।
सवा लाख मेर गिरि परबत, अठारह भार तीर्थ ब्रत्तता ऊपर मंडा ।
चौदह लोक रहै सब रचनां, दादू दास तास घरि बंदा ॥६॥

टीका :- चन्द्रमा, सूर्य, चौरासी लाग योनियां, रात्रि दिन, सातों समुद्र, सवा लाख पर्वत, सुमेरु, द्रोणागिरी, अठारह भार वनस्पति, चार धाम, अड़सठ तीर्थ, चांद्रायन आदिक व्रत उसके ऊपर यह सब मंडान मंडा है । चौदह लोक और इन लोकों में बसने वाली सम्पूर्ण सृष्टि इन सबकी जिसने रचना रची है, ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज कहते हैं कि हम उसी प्रभु के घर के बन्दे कहिए, सेवक हैं । वही हमारा उपास्य देव है ।

दादू जिन यहु एत्ती करि धरी, थंभ बिन राखी ।
सो हम कौं क्यूँ बीसरै, संतजने साखी ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस परमेश्वर ने यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड रचकर, बिना किसी आसरे से ही स्वयं इसकी रक्षा की है वह पूर्ण व्यापक समर्थ परमेश्वर, अपने भक्तों को क्यों भूलेंगे ? अर्थात् कभी नहीं भूलेंगे । इसमें पूर्व पूर्व के सब संत साक्षी देते हैं ।

दादू जिन प्राण पिंड हमकौं दिया, अंतरि सेवैं ताहि ।
जे आवै औसाण सिरि, सोई नाम संबाहि ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस सर्वशक्तिवान परमेश्वर ने, हमको यह स्थूल शरीर रूप पिंड दिया है और इसका जीवन रूप इसमें प्राण रखें हैं, उसी अन्तर्यामी की हृदय में हम सेवा कहिए, स्मरण रूप उपासना भक्ति करते हैं । उस प्रभु के अनन्त नाम हैं । पक्षपात रहित होकर, जौनसा भी नाम जिस समय हमें याद आता हैं, उसी नाम से, उसमें अखंड लय लगाते हैं ।

दादू जिन मुझ कौं पैदा किया, मेरा साहिब सोइ ।
मैं बन्दा उस राम का, जिनि सिरज्या सब कोइ ॥९॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! जिसने हमको जन्म दिया है वह अनादी अजन्मा सिरजनहार परमात्मा ही, हमारा स्वामी है । जिसने सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न किया है, हम उसी सच्चिदानन्द के सेवक हैं ।

दादू एक सगा संसार में, जिन हम सिरजे सोइ ।
मनसा बाचा कर्मना, और न दूजा कोइ ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'एक' कहिए, सजातिय, विजातिय भेद रहित, जिसने हमसे लेकर सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न किया है । अब हम तो सत्य कहते हैं कि मन बचन कर्म से, उसी का स्मरण करते हैं और मायावी द्वैतभाव अब हमको, अच्छा नहीं लगता है ।

जेथा कंत कबीर का, सोई बर बरिहूं ।
मनसा बाचा कर्मना, मैं औरन करिहूं ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूर्व के कबीर आदिक संतों ने जिस प्रभु का प्रतिव्रत धर्म धारण किया है, उसी परमेश्वर को, हमने मन वचन कर्म से, अपना स्वामी माना है और मायावी प्रपंच को कभी भी हम, अपना स्वामी नहीं मानेंगे ।

दोहा :- मान कहि आंबेर के, बायां को द्यो ब्याहि ।
जो पती बर्यो कबीर जी, सो पती बरैं नहिं चाहि ॥११॥

दृष्टांत :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज, जब सांभर झील छत्री में विराजते थे, तब दामोदर जी बिट्ठल व्यास नाम के एक ब्राह्मण, स्त्री पुरूष दोनों, महाराज के प्रतिदिन दर्शन करने जाया करते थे । एक माला पुष्पों की ले जाते और महाराज को धारण कराके नमस्कार करते । एक रोज परम गुरूदेव ने उनकी मानसिक भावना पूर्ण की । दो पुष्प माला के तोड़कर दिये, और एक लौंग और काली मिर्च का जोड़ा दिया और बोले :- दो लड़के और दो लड़की होगीं आपके । परन्तु वे बाल्यावस्था में ही, हमको आकर मिल जायेगें । उन दोनों बाईयों का नाम, एक का नाम श्याम कुमारी और दूसरी का नाम राम कुमारी हुआ । और दोनों लड़कों का नाम महाराज की शरण में आने के बाद, गरीब दास जी, और मसकीन दास जी नाम से प्रसिद्ध

हुये । जब महाराज आमेर में आकर बिराजे, तब दोनों बाई भी, महाराज के साथ ही थी, उस वक्त उनकी युवा अवस्था थी । संसारिक साकत पुरूषों ने मानसिंह राजा को प्रेरणा दी कि हुजूर ! दादू दयाल महाराज के पास दो बाई हैं, शादी के लायक । इनकी शादी कर देनी चाहिए, महाराज को । राजा की मति भ्रमित हो गई और सतगुरू महाराज के पास आकर नमस्कार किया और बोला :- महाराज ! यह बाई हैं दोनों, इनकी शादी करवा दें । ब्रह्मऋषि बोले :- बाईयों को पूछ लो, इनकी जैसी इच्छा हो, वैसा ही कर दो, राजन् !" तब बाईयों ने कहा :- कि हे राजन् ! आप हमारी शादी करवाते हो, तो जो पति कबीर जी ने बरा है, उसी पति को हम बरैंगी । हमारी शादी उन्हीं के साथ करवा दो । यह सुनतें ही मानसिंह का मुंह सफेद हो गया और नत् मस्तक होकर, चरणों में नमस्कार किया तथा क्षमा याचना की ।

दादू सबका साहिब एक है, जाका परगट नांव ।
दादू सांई सोधि ले, ताको मैं बलि जांव ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सबका कहिए, हिन्दू मुसलमान धर्म पन्थ वाले, इन सबका उपास्य देव एक कारण ब्रह्म ही है । और उसके अनेकों नाम हैं । परन्तु उन सम्प्रदायिक लोगों में जो उस कारण ब्रह्म को विचार कर, प्राप्त करते हैं, उनकी हम बार बार बलिहारी जाते हैं ।

सांचा सांई सोध करि, सांचा राखी भाव ।
दादू सांचा नाम ले, सांचे मारग आव ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस सत्य स्वरूप परमेश्वर को, आतम स्वरूप से ही, अन्तःकरण में विचार करो और उसमें अपने अन्तःकरण का सच्चा भाव धारण करो । और निष्काम उसके सच्चे नाम का स्मरण करते हुए, मन वचन से सत्य का पालन करो ।

सांचा सतगुरू सोधि ले, सांचे लीजै साध ।
सांचा साहिब सोधि करि, दादू भगत्ति अगाध ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे सतगुरू की खोज कर लो । फिर उनके सत्य उपदेश की साधना करो । उस ज्ञान उपदेश के द्वारा, सत् स्वरूप ब्रह्म को आतम स्वरूप से निश्चय करो । यही उस अगाध की भक्ति है ।

जामै मरै सो जीव है, रमता राम न होइ ।
जामण मरण थैं रहित है, मेरा साहिब सोइ ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसमें जन्मना मरना भाव है, सो साभास अन्तःकरण विशिष्ट जीव है । यह जीव अन्तःकरण सहित, रमता राम नहीं होता । जो जन्म मरण भाव से रहित है, वही हमारा साहिब ब्रह्म है ।

उठै न बैसै एक रस, जागै सोवै नांहि ।
मरै न जीवै जगतगुरू, सब उपजि खपै उस मांहि॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस कारण ब्रह्म में उठना बैठना, जागना सोना, मरना जन्मना, यह कोई भी क्रियाएं, उसमें नहीं हैं । और वह सम्पूर्ण जगत् का गुरू है अर्थात् अन्तर्यामी रूप से प्राणी मात्र के भीतर प्रेरणा करता है और एक रस रहता है । सम्पूर्ण नाम रूप जगत, उसी में उत्पन्न होता है और उसी में लय हो जाता है, जैसे जल में लहर तरंग झाग, बुदबुदे उठते रहते हैं और विलय होते रहते हैं ।

नां बहु जामैं ना मरै, ना आवै गर्भवास ।
दादू ऊंधे मुख नहीं, नरक कुंड दस मास ॥१७॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! वह ब्रह्मतत्व एक रस है । उसमें जन्मना मरना, गर्भवास में आना जाना, उर्ध मुख होकर, दस महीने तक कुम्भी पाक नरक में झूलना, इन सम्पूर्ण क्रिया और विकारों से ब्रह्म रहित है । वही हमारा साहिब है ।

कृत्तम नहीं सो ब्रह्म है, घटै बधै नहिं जाइ ।
पूरण निहचल एक रस, जगत न नाचै आइ ॥१८॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्म किसी का किया हुआ नहीं है । अनादि अजन्मा है और एक रस ब्रह्म में घटना बढ़ना रूप कोई प्रमाण नहीं बनता है । और वह ब्रह्मतत्व पूर्ण व्यापक, निश्चल, एक रस होने से, "जगत न नाचै आइ" अर्थात् निर्गुण निष्क्रय है, उसमें किसी प्रकार की क्रिया रूप नृत्य नहीं है ।

उपजै बिनसै गुण धरै, यहु माया का रूप ।
दादू देखत थिर नहीं, खिण छांहीं खिण धूप ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मायावी संसार का स्वरूप अनित्य है, इसको बतलाते हैं कि जो उपजता है, नाश को प्राप्त होता है और सत रज तम गुणों को धारण करता है । यह सब माया का ही स्वरूप है । एक क्षण में जैसे बादल की छाया और दूसरे क्षण में धूप निकल आती है, इसी प्रकार यह मायिक सुख स्थिर नहीं है । आगमा पाई है ।

जे नांही सो ऊपजै, है सो उपजै नांही ।
अलख आदि अनादि है, उपजै माया मांही ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया और उसका कार्य संसार, वास्तव में है नहीं, सो मिथ्या प्रतीत होता है । और ब्रह्म जो परिपूर्ण व्यापक सत्य है, सो इन्द्रिये आदि द्वारा दिखाई नहीं पड़ता है । परन्तु आदि अनादि कहिए उत्पत्ति रहित होने से, अखंड और निर्गुण है । किन्तु जो उत्पन्न होता है, वह माया और माया का कार्य अनित्य है ।

(शिष्य जिज्ञासा)

जे यहु करता जीव था, संकट क्यूं आया ।
कर्मों के बसि क्यूँ भया, क्यूं आप बंधाया ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यदि यह जीव ही सृष्टि कर्त्ता है तो फिर यह कर्मों के संकट में क्यों आता है ? कर्म का फल क्यों भोगता है ? अपने आपको कर्त्ता रूप से, क्यों कर्म बन्धन में डाला है ?

(उत्तर जीव लक्षण)

दादू कृत्तम काल बसि, बंध्या गुण मांहि ।
उपजै बिनसै देखतां, यहु कर्त्ता नांहि ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो कुछ माया का रचा हुआ है, वह सब काल पाकर नष्ट होता है ।जो उपजता है वह नाश को प्राप्त होता है, अर्थात् जन्मता मरता है । जो गुणों के बस है, वह कर्त्ता नहीं हो सकता ।

जाती नूर अल्लाह का, सिपाती अरवाह ।
सिफाती सिजदा करै, जाती बेपरवाह ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अल्लाह माया अविद्या रहित, शुद्ध ब्रह्म का नूर रूप जाति पुज्य है, उपास्य है और ब्राह्य अविद्या आवृत्त जीव, 'सिपाती' कहिए पूजने वाला है, उपासना करने वाला है । प्रार्थना बंदगी करता है और जाति कहिये, ब्रह्म पुज्य है, बेपरवाह है, स्वतंत्र है । तथा अविद्या ग्रहित जीव परतंत्र है, कर्म कर्त्ता है और फल भोगता है ।

खंड खंड निज नां भया, इकलस एकै नूर ।
ज्यूं था त्यूं ही तेज है, जोति रही भरपूर ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस ब्रह्म का स्वरूप एक रस और शुद्ध नूर रूप है । वह ब्रह्म तेज ज्यूं तेजोमय था, वैसे ही सदा तेजोमय रहता है । उसको ज्योति सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक हो रही है । उसका स्वरूप खंड भाव से रहित अखंड है ।

परम तेज प्रकास है, परम नूर निवास ।
परम जोति आनन्द में, हंसा दादू दास ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह परमेश्वर परम श्रेष्ठ तेजोमय और प्रकाश रूप है । संतजन हंस ही भांति ब्रह्मानन्द स्वरूप में मग्न रहते हैं ।

परम तेज परापरं, परम जोति परमेसुरं ।
स्वयं ब्रह्म सदई सदा, दादू अविचल अस्थिरं ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परम श्रेष्ठ तेजोमय ब्रह्म, पर और अपर रूप से, परम ज्योतिमय परमेश्वर, वह आप स्वयं ब्रह्म चेतन्य, सदैव स्थिर रहने वाला है अर्थात् आप सदैव सत्य स्वरूप, अक्रिय और निश्चल है ।

अविनासी साहिब सत्त है, जें उपजै बिनसै नांहि ।
जेत्ता कहियें काल मुख, सो साहिब किस मांहि ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह हमारा साहिब नाम स्वामी परमेश्वर, सत्य स्वरूप अविनाशी है । वह उत्पत्ति और विनाश से रहित है और उसके बिना जो दूसरा, माया और माया का कार्य है, वह काल के मुंह में जाता आता है । वह कौनसे साहिब की गणना में है । अर्थात् वह तो सब नश्वर है, वह अविनाशी नहीं हो सकता ।

सांई मेरा सति है, निरंजन निराकार ।
दादू बिनसै देखतां, झूठा सब आकार ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भक्तों का स्वामी परमेश्वर, अविनाशी साहिब सत्य स्वरूप है । वह न तो उपजता है और न नास को ही प्राप्त होता है । और जो अवतार आदि देव हैं, वह सब उत्पत्ति और नाश को पाने वाले हैं । वह अविनासी ब्रह्म नहीं हो सकते । किन्तु हमारा तो साहिब सत्य स्वरूप निरंजन निराकार स्वरूप है । और संसार भाव सब झूठा है ।

राम रटणि छाड़ै नहीं, हरि लै लागा जाइ ।
बीचै ही अटकै नहीं, कला कोटी दिखलाइ ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया चाहे अपने करोड़ों प्रकार के चमत्कार दिखावै, किन्तु साधक साधन अवस्था में, मायिक सुखों से प्रभावित नहीं होवै और राम नाम के स्मरण का त्याग कभी नहीं करै, अर्थात् समष्टि चेतन्य में व्यष्टि चेतन्य की, विचार द्वारा लय लगाये रहै, वही उत्तम पुरुष, संसार से मुक्त होते हैं ।

उरै ही अटकै नहीं, जहां राम तहं जाइ ।
दादू पावै परम सुख, बिलसै बस्त अघाइ ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मायिक सुखों में न मोहित होवे । किन्तु जहां निर्वासनिक गुणातीत अवस्था में स्वस्वरूप का साक्षात्कार होता है तहां ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा जावे । वह पुरुष परम सुख का उपभोग करता है । अर्थात् अतृप्त भाव से ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है ।

दादू उरैं ही उरझै घणे, मूये गल दे पास ।
अंग अंग जंह आप था, तहां गये निज दास ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक अज्ञानीजन स्त्री, पुत्र, धन और मायावी स्वर्ग बैकुण्ठ के सुख तथा रिद्धि सिद्धि आदिकों में, बहुत से लोग उलझ रहे हैं । और आशा तृष्णारूप फांसी द्वारा बंधे हुए, संसार में ही भ्रमते रहते हैं । किन्तु जो प्रभु के निष्कामी भक्त हैं, वह गुरू उपदेश के द्वारा, स्वस्वरूप का अनुभव करके, ब्रह्मानन्द में मग्न रहते हैं ।

सेवा का सुख प्रेम रस, सेज सुहाग न देइ ।
दादू बाहै दास कौं, कह दूजा सब लेइ ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह अविनासी परमेश्वर, सेवा का सुख, प्रेमा भक्ति और अन्तःकरण रूप सेज का, एकाग्रता रूपी सुहाग, अर्थात् तदाकारत्ता, ब्रह्मभाव के अतिरिक्त 'दूजा' कहिए, मायावी स्वर्ग लोक आदि के सुखों के प्रलोभनों में लुभाकर, सकामी भक्तों को आवागमन के चक्र में ही भ्रमाते हैं ।

(सुन्दरी बिलाप)

पर पुरखा सब पर हरै, सुन्दरि देखै जागि ।
अपणा पीव पिछाण करि, दादू रहिये लागि ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सुन्दरी कहिए संत आत्मा, पराये देवी देवता, माया आदि की रचना, सब परित्याग करती है । विवेक विचार द्वारा अज्ञानता से जागकर, अपना अधिष्ठान चेतन का निश्चय करके, अन्तर्मुख वृत्ति से उसी में स्थिर रहती है ।

आन पुरूष हूं बहनड़ी, परम पुरूष भरतार ।
हूं अबला समझौं नहीं, तूं जाणै करतार ॥३४॥

टीका :- सतगुरू महाराज कहते हैं कि तेरा कोई आन पुरूष है, तो तूं मेरी बहन है । परन्तु मैं जानता हूं कि तूं माया है । तेरा भरतार परम पुरूष परमेश्वर है, मैं तुझे स्त्री नहीं जानता । तूं जाने कि परमेश्वर समझै, तो मैं तुझे परमेश्वर भी नहीं जानता हूं । तूं परमेश्वर की माया है । अपने चरित्रों से तूं संसारिक जनों को मोहित कर ।

लोहा माटी मिलि रह्या, दिन दिन काई खाइ ।
दादू पारस राम बिन, कतहूं गया बिलाइ ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! लोहा स्थानीय मल दोष युक्त मन, विषय वासना रूप कालर से क्षीण होता जा रहा है। पारस रूप आत्म विचार के बिना, संसार के जन्म मरण में ही जाता है।

परस
लोहा पारस ~~परसि~~ करि, पलटै अपणा अंग।
दादू कंचन ह्वै रहै, अपने सांई संग ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! लोहा रूप मन, पारस रूप ब्रह्मवेत्ताओं के सत्संग द्वारा, अन्तर्मुख वृत्ति से आत्म स्वरूप का विचार करके, गुणातीत होकर, विदेह मुक्ति को प्राप्त होता है।

दादू जिहि परसैं पलटैं प्राणियां, सोई निज करि लेह।
लोहा कंचन ह्वै गया, पारस का गुण येह ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेत्ताओं के सतसंग से, यह बहिर्मुख प्राणी का मन रूप लोहा, व्यष्टि भाव को त्यागकर, समष्टि भाव को प्राप्त होता है। फिर यह लोहा रूप मन गुणातीत होकर, ब्रह्म भाव में समा जाता है। ऐसो सतसंग की महिमा है।

(बिचार परचै जिज्ञासु उपदेश)

दह दिस फिरै सो मन है, आवै जाइ सो पवन।
राखणहारा प्राण है, देखनहारा ब्रह्म ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जागृत स्वप्न में, सर्वत्र दशों दिशाओं में घूमने वाला, मन है। स्वांस पर स्वांस लेने वाला, पवन है। और स्थूल संघात की रक्षा करने वाला, प्राण है। इन सबको सत्ता स्फूर्ति देने वाला, दृष्टा रूप साक्षी, ब्रह्म है।

(इति पीव पहचान का अंग टीका सहित, सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ समर्थाई का अंग २१ ॥

"एक तत्तता ऊपर इतनी, तिन लोक ब्रह्मडां०"—इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब पीव पहचान के अंग के अनन्तर, अब समर्थाई के अंग का निरूपण करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥१॥

टीका :- हे निरंजन देव ! आपको हमारी नमो नमो और जो गुरूदेव, जिन्होंने परमेश्वर की समर्थाई जानी है, उन्हें भी हमारी नमो नमो और जिन संतों ने परमेश्वर की समर्थाई जानकर, परमेश्वर का स्मरण करते हैं । उन्हे भी हमारी बन्दना होवै । इस प्रकार हरि, गुरू, सन्तों को नमस्कार करके, ईश्वर की समर्थाई का विचार करते हुए, संसार से 'पारगंत:'-पार होकर, समर्थ ईश्वर को प्राप्त करते हैं ।

दादू करत्ता करै तौ निमक में, कीड़ी कुंजर होइ ।
कुंजर से कीड़ी करै, मेटि सकै नहिं कोइ ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सृष्टि का कर्त्ता, समर्थ ईश्वर, सर्वशक्तिवान, वह एक क्षण में, चाहे तो कीड़ी को कुंजर और कुंजर को कीड़ी बना देता है । उसके हुकम को कोई भी नहीं मेट सकता है ।

दादू करता करै तौ निमख में, राई मेरू समान ।
मेरू कौं राई करै, तौको मेटै फुरमान ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कर्त्ता परमेश्वर, एक क्षण में राई को पहाड़ बना सकता है और पहाड़ को राई बना देता है । उसके फरमाये हुए को, कोई भी मेटने वाला नहीं है ।

दोहा:- मेरू साह को नाम हो, राई दासी भोन ।
बिखो पड्यो बान्दी बढी, साह गयो करि गोन ॥३॥

दृष्टान्त :- एक साहूकार का नाम मेरू था । राई नाम की दासी, घर में सेवा करने वाली नौकरानी थी । समय अनुसार साहूकार की हालत बहुत नीचे गिर गई । राई दासी छोड़कर, किसी दूसरे शहर में जाकर, अपना काम किया । कई नौकर चाकर रहने लगे । घर में बहुत पैसा हो गया । मेरू भी गरीबी हालत से, उसी शहर में जाकर, इसका नौकर हो गया । एक रोज मेरू ने राई को पहचान ली और राई ने मेरू को पहचान लिया । राई बोली :- यह ईश्वर की समर्थाई है । आज मैं पैसे में बढ़ गई, आप मेरी नौकरी करने लगे हो , या मैं आपकी नौकर बन रही थी ? यह सब ईश्वर की लीला है, उसको बारम्बार नमस्कार करते हैं कि हे प्रभु ! आपके फरमाये हुए को, कोई भी मेटने में समर्थ नहीं है ।

दादू कर्त्ता करै तो निमख में, जल मांहै थल थाप ॥
थल मांहै जल हरि करै, ऐसा समर्थ आप ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समर्थ ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता, एक निमख में चाहे तो समुद्र में, मिट्टी के टीले बना दे और वह चाहे तो जहां मिट्टी के थल थे वहाँ समुद्र भर दे । वह परमेश्वर ऐसा समर्थ है ।

दोहा :- बणजारा के संग में, संत हंसे दोइ ठौर ।
पूछी अचरज सब कह्यो, उत जल थल इत और ॥४॥

दृष्टान्त एक बनजारे के साथ संत चले जा रहे थे । एक जगह जल बालध ठहरी, तो संत हंसने लगे । बनजारे ने पूछा :- प्रभु ! प्रभु कैसे हंसते हो ? संत बोले :- कि भाई ! कुछ समय पहले यहां खाली थल था, मिट्टी के टीले थे, आज यहां जल भरा है । प्रभु की समर्थाई देखकर, हंसी आ गई । फिर कुछ दिन के बाद एक स्थान पर बालध रूकी फिर वहां संत हंसे । बनजारे ने पूछा : प्रभु आज फिर कैसे हंस रहे हो ? बोले :- भाई ! यहां समुद्र भरा था, आज रेता देखने में आ रहा है । यह ईश्वर की समर्थाई है, इसको विचार कर हंसते हैं कि धन्य हो प्रभु ! आप की लीला को ।

दादू कर्त्ता करै तौ निमख मैं, ठाली भरै भंडार ।
भरिया गहि ठाली करै, ऐसा सिरजन हार ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! कर्त्ता परमेश्वर एक निमख में जिनके भंडारे भरे थे, उनको तो खाली कर देता है और जिनके भंडार खाली थे, उनको भर देता है। ऐसा वह समर्थ है।

दोहा :- पारबती शिव सों कह्यो, या निर्धन धन देहु ।
सेठ सुनत्त साठो कर्‍यो, तब गृह दे मम लेहु ॥५॥

दृष्टान्त :- एक समय भगवान शंकर और पार्वती रमते रमते, एक नगर में जा रहे थे। एक गरीब भक्त, बनिये के लड़के ने आकर नमस्कार किया। दुकान पर ले जाकर बैठाये। चने और जल पाने के लिये रखे। शिव पार्वती ने पा लिये। जब भक्त के यहां से चले, तब पार्वती बोली :- महाराज ! इसको धन देओ। शिव बोले :- हे पार्वती ! आज इसके यहां हुण्ड बरसेगी। पीछे से एक करोड़ पति बनिये ने यह बात सुनी और विचार किया कि यह तो शिव पार्वती हैं, इनका बोल तो जरूर सत्य होगा। तब उस लड़के की दुकान पर गया और बोला, साटा कर लो। बनियां :- कैसा साटा ? बोला :- तुम्हारी घर दुकान हम को दे दो और हमारे घर दुकान सब, तुम ले लो। लिखतम पढतम हो गई। सेठ अपने सारे कुटुम्ब को, जिस हालत में थे, उसी प्रकार लेकर इसकी घर दुकान में आ गया। और यह बनिये का लड़का अपने परिवार को जिस स्थिति में था, उसी स्थिति में लेकर उसके घर दुकान में चला गया। सेठ सारे दिन देखता रहा कि हुण्ड बरसेगी, हुण्ड बरसेगी। ऐसे ही रात भी निकल गई। दूसरे दिन रोने लगा, और बोलाः- कलयुग आ गया, जो शिव पार्वती भी झूठ बोलने लग गये। मैंने सुना था कि हुण्ड बरसेगी ? कहां बरसी ?

दोहा :- फोज सीख दई पातसाह, द्रव्य फरिस्ता ढोइ ।
बूझ्यो को तुम ले चले, थैली गहि दो दोइ ॥५॥

द्वितीय दृष्टान्त :- एक बादशाह था। उसने बहुत सी सेना को बरखास्त कर दिया। रात्रि को बादशाह सो रहा था, तो परमेश्वर ने फरिस्ताओं को हुक्म दिया कि इसके खजाने से, जितना धन उस सेना के भाग का है, वह निकाल कर, जहाँ वह सेना गई है, वहीं ले जाकर, डाल दी। जब बादशाह के सामने खजाने से, एक एक आदमी चार चार थैलियां ले लेकर, जाने लगे, तब बादशाह बोले :- भाई ! आप कौन हो ? हम खुदा के फरिस्ता हैं। यह तुम्हारे हाथों में क्या है ? धन की थैलियां। कहां से लाये हो ? तुम्हारे खजाने से। कहां ले जाओगे ? जहां वह सेना गई है। तुम्हारे भाग का छोड़ देंगे, उसके भाग का

सब ले जायेंगे । बादशाह को चेत हो गया । सम्पूर्ण सेना को वापिस ही बुला ली और बोला :- भाई ! आप लोग यहां ही रहो, परमेश्वर ने आप के भाग्य का भी, इस खजाने में खाना डाल रखा है, खाओ ।

दोहा :- एक बादसाह कै चलै, ऊंट चतुर दश सहस्त्र ।
तऊ बबरचि ना चले, समय श्वान मुख अंस ॥

तृतीय दृष्टान्त :- एक बादशाह था । उसके चौदह हजार ऊंट धन के भरे, साल भर में आया करते थे । तब भी बादशाह की बबर्ची नहीं चलती, अर्थात् खान पान में पूर्ति नहीं होती ।

दादू धरती कौं अंबर करै, अंबर धरती होइ ।
निस अंधियारी दिन करै, दिन कौं रजनी सोइ ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह समर्थ परमेश्वर धरती को अम्बर के समान अवकाश देने वाली बना दे और अम्बर को धरती के समान कठोर बना दे । अंधेरी काली अमावश्या की रात में वह चाहे तो सूर्य उगा दे और चाहे तो दिन में अंधेरी काली रात बना दे । ऐसी ईश्वर की समर्थाई है । इस समर्थाई को परमेश्वर के भक्त ही जानते हैं ।

मृत्तक काढि मसाण थैं, कहु कौन चलावै ।
अविगत गति नहि जाणिये, जग आणि दिखावै ॥७॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की करणि कहिए समर्थाई, महिमा को कोई नहीं जानते, क्योंकि पूर्ण समर्थ है । मृत्तक माया आसक्त प्राणधारी को, अपनी भक्ति द्वारा, मसाण रूप संसार से निकालकर वह चाहे तो एक पल में संसार से मुक्त कर देता है । यह प्रभु की महिमा प्रगट है ।

दोहा :- मुई हुरम दैई गोर में, उदर बाल सरजीव ।
सो नृप गोरीसा भयो, राख्यो समरथ पीव ॥७॥

दृष्टान्त :- बादशाह की हुरम मृत्यु को प्राप्त हो गई । परन्तु उसके उदर में बच्चा जीवित रहा । लोगों ने उसको कब्रिस्थान में ले जाकर, कब्र में गाड़ दी । समर्थ, आंधी रूप धरकर, कब्र की मिट्टी को उड़ाने लगे कब्र के अन्दर लास निकल आई और बच्चा पैदा हो गया । उसकी छाती पर स्वयं आकर, चूंची मुंह में

चुसने लगा । आने जाने वालों ने देखा । बादशाह को जाकर खबर दी । बादशाह वजीर के सहित आये और समर्थ की समर्थाई को नमस्कार करते हुए, बच्चे को उठाकर ले गये । फिर वही गोरीसा बादशाह बना, क्योंकि गोर कहिए कब्रिस्थान से निकाला था, इसलिये उसका नाम गोरीसा पड़ा ।

दादू गुपत गुण परगट करैं, परगट गुपत समाइ ।
पलक मांहि भानै घड़ै, ताकी लखी न जाइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह समर्थ प्रभु, जिनके गुण गुप्त हैं, उनके तो संसार में प्रगट करके दिखा देते हैं, और जिनके गुण प्रगट हैं संसार में, उनके समर्थ गुप्त कर देते हैं। एक पलक में सारी सृष्टि को नष्ट कर दें और दूसरे क्षण में सारी सृष्टि की उत्पत्ति कर दें । ऐसी उस समर्थ की समर्थाई है ।

(पोखपाल रक्षक)

दादू सोई सही साबित हुवा, जा मस्तक कर देइ ।
गरीब निवाजै देखतां, हरि अपना करि लेइ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ !जिसके मस्तक पर, परमेश्वर ने अपना दया रूपी हाथ रखा, वे साधक परमेश्वर प्राप्ति के साधनों में पूर्ण होते हैं। और जो विश्वास के सहित भक्ति करते हैं, उन्हों को हरि अपना कर, शीघ्र संसार से मुक्त कर देते हैं।

(सूक्ष्म मार्ग)

दादू सबही मारग सांईयां, आगै एक मुकाम ।
सोई सनमुख कर लिया, जाही सेती काम ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यज्ञ तप योग भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, इन सभी साधनों का मुकाम, एक परमेश्वर की ही प्राप्ति है। इस प्रकार निष्कामी भक्त, परमेश्वर की ही एक अनन्य शरण होकर, उपरोक्त साधनों द्वारा, परमेश्वर का साक्षात्कार करते हैं। यही मानव का कर्त्तव्य था, सो जिसने कर दिखाया, वही श्रेष्ठ है ।

(पोख प्रतिपाल रक्षक)

मीरां मुझ सौं मिहर करि, सिर परि दीया हाथ ।
दादू कलियुग क्या करै, सांई मेरा साथ ॥११॥

टीका :– हे जिज्ञासुओ ! जिन अनन्य भक्तों पर हमारे स्वामी परमेश्वर ने अनुग्रह करके, अर्थात् दया करके, सिर कहिए, अन्तःकरण में भक्ति वैराग्य ज्ञान उत्पन्न किया है, उनका बिचारे कलियुगी राम बिमुख प्राणी क्या बिगाड़ कर सकते हैं ।

(ईश्वर समर्थाई)

दादू सम्रथ सब विधि सांइयां, ताकी मैं बलि जाऊं ।
अंतर एक जु सो बसै, औरां चित्तन लाऊं ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपमे को उपलक्षण करके ब्रह्मऋषि कहते हैं कि भक्तों का स्वामी सब प्रकार समर्थ है । हम संतजन उसी को मन वचन कर्म से नमस्कार करते हैं और सर्व के अन्तःकरण में हमको तो एक परमेश्वर ही भासता है । अब मायावी प्रपंच में हमारा चित्त आसक्त नहीं होता है ।

दोहा :- एक बादशाह को मिली, फरद चार उपदेश ।
भाग अकल माया बड़ि, समरथता क्या नेस ॥१२॥

तब समरथ धर मोर तन, तारत से ले जाइ ।
चोरंग्यो कर बाग में, बहुरि तहां लें आइ ॥१२॥

दृष्टांत :– एक बादशाह के दरबार में, एक संत आये । बादशाह ने सलाम किया सौर संत को बैठाया । बोला :- कुछ उपदेश सुनाओ । संत बोले :- बादशाह, एक तो मनुष्य का भाग्य, एक उसमें अकल, तीसरी माया, और चौथी समर्थ की समर्थाई, यह तीनों के ऊपर है । इसमें निश्चय रखना चाहिये । बादशाह बोला :- जब भाग्य अच्छा है, जिसमें अकल है, और जिसके पास माया है, फिर ईश्वर की समर्थाई, इसमें क्या कर सकती है ? और क्या ईश्वर की समर्थाई है ? में नहीं मानता । संत बोले :- अगर समर्थ को अपनी समर्थाई रखनी है तो तुझे अपनी शक्ति बता देगा । संत चले गये । एक रोज बादशाह जब टट्टी में गया, तो वहां एक सोने का मोर पक्षी खड़ा देखा । बादशाह को बोला :- मेरे ऊपर बैठ । ज्यौं ही बैठा, त्यौं ही लेकर उड़ा । किसी दूसरे बादशाह के बाग में ले जाकर सुला दिया । वहां के बादशाह के लड़के को बगीचे में मारकर, उसके खून सहित कपड़े और जेवर, उसके सिराने रख दिया, समर्थ की माया ने । जब लड़के की खोख पड़ताल करते करते बगीचे में आये, तो वहां इस सोये हुए को पुलिस ने गिरफ्तार कर कर लिया । इसके पास से जेवर और खून से भरे कपड़े बरामद किये । बादशाह के पास पकड़ कर ले गये कि यह डाकू है, इसने लड़के को मारा है । बादशाह ने हुक्म दिया कि इसके हाथ पांव कलम करके, शहर के दरवाजे के बाहर बैठा दो, ताकि आईन्दा और कोई ऐसा काम न करै । वैसा ही किया । यह मन

में समर्थ की समर्थाई को याद कर करके, फूट फूट करके रोता है कि मेरा अपराध क्षमा कर दो । मैंने तेरी समर्थाई को नहीं माना । एक तेली तेल का घड़ा लेकर, शहर में तेल बेचने आया करता था । चोरगां बोला :- भाई ! मेरे हाथ पांव की ठूठ हैं, इनके तेल लगा दे । दूसरे दिन तेलन आई, उसको भी वैसे ही बोला :- माई ! मेरी ठूठों के तेल लगा दे । उसने तेल लगा दिया और यह बोला :- तेरे समर्थ दूगना तेल करें । वह तेल बेचकर, खाली घड़ा घर में रखा, तो स्वतः ही तेल से भर गया । तेली ने आकर देखा, तो तेल भरा है । तेली तेलन जान गये कि वह कोई सती है उसको हम ले आवें । अपनी घाणी की लाट पर बैठा देगें, जो बैलों को टचकारता रहेगा । ले आये और लाट के ऊपर बैठा दिया । तेली की घाणा राज महलों के नीचे था । यह दीपक राग का जानकार था । आधी रात में दीपक राग का गायन किया । बादशाह के महलों में रोशनी हो गई । लड़की की आंख खुली । वह भी गायक थी । उसने जान लिया कि यह कोई दीपक राग गा रहा है । मालूम कराया तो चौरंगा गा रहा था । लड़की ने निश्चय किया कि मेरे भाई को इसने नहीं मारा । मैं इसी के साथ शादी कराऊंगी । बादशाह को लड़की ने उपरोक्त वृतान्त सुना दिया । उसकी शादी चौरंगा के साथ हो गई । महलों में रहने लगे । एक रोज लड़की ने सोते हुए की चद्दर को पांव की तरफ से पकड़ कर खींचा कि उठो । तब एक दम उठा और ठूठों को मसलने लगा, तत्काल दोनों हाथ और दोनों पांव बन गये । लड़की को बड़ा आश्चर्य हुआ और यह मन ही मन में समर्थ को नमस्कार करने लगा और कहने लगा, धन्य हो प्रभु ! फिर एक रोज बगीचे में गया । वहां वही मोर खड़ा देखा । मोर ने कहा :- मेरे ऊपर बैठ । उसी तारत में लाकर छोड़ दिया । तारत से बादशाह बाहर आया, तो नौकर पानी लिये खड़ा है । बादशाह बोला :- तुम कबसे खड़े हो ? आप जब अभी टट्टी गये, तभी से तो हाथ धुलाने खड़ा हूं, यह सुनकर बादशाह रोमांच हो गया और नेत्रों में आसू टपकाता हुआ मन ही मन मन में कहने लगा कि हे समर्थ ! आप की समर्थाई को बारम्बार नमस्कार है । थोड़ी देर में मुझे बहुत काल और बहुत कुछ अपनी माया के द्वारा आपने दिखलाया, और मैंने बहुत काल देखा । और यहां नौकर को थोड़ा ही समय प्रतीत हो रहा है, यह आप की समर्थाई की अद्भुत शक्ति है । बादशाह ने नगर में ढिंढोरा करवा दिया कि ईश्वर की समर्थाई का कोई भी कभी उलंघन नहीं करना ।

(सूक्ष्म मार्ग)

दादू मार्ग मेहर का, सुखि सहज सौं जाइ ।
भौ सागरथैं काढि करि, अपणे लिये बुलाइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो शुद्ध बुद्धि भोले भाले भक्त, परमेश्वर की दया रूप मार्ग का विश्वास करके, गुरू उपदेश द्वारा नाम स्मरण में लगे हैं, वे स्वस्वरूप को साक्षात्कार करके, संसार से मुक्त होते हैं ।

(ईश्वर समर्थाई)

दादू जे हम चिन्तवैं, सौ कछु न होवै आइ ।
सोई कर्त्ता सत है, कुछ औरै करि जाइ ।।१४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो हम तो मन में कुछ और ही संकल्प करें, कार्य करने का । और वह समर्थ उससे विपरीत करके दिखा दे, तो फिर हमारा किया तो कुछ भी नहीं होता । समर्थ का ही किया सब कुछ होता है । तो वह समर्थ ही सत्य है । हम और हमारा सब मिथ्या है ।

एकू लेइ बुलाइ करि, एकूं देइ पठाइ ।
दादू अद्भुत साहिबी, क्यों ही लखी न जाइ ।।१५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर अवतार लेकर जीवों का कल्याण करने को ही संतरूप में, प्रगट करके, संसार में आते हैं और कभी चले जाते हैं । अथवा भगवान अवतार लेने के रूपों में, जीवों के कल्याण के लिये, कभी अपने भक्तों को संसार में भेजते हैं और कभी वापिस बुला लेते हैं । जैसे अजामेल को आपके पास बुला लिया और सनकादिकों को बुला लिये । अपने पास से जय विजय को संसार में भेज दिये । इसी लिये प्रभु अद्भुत समर्थाई किसी से जानी नहीं जाती है । और तो क्या कहैं ? शेष महेश आदि भी उसकी समर्थाई को देखकर, थकित हो रहे हैं ।

दोहा :- लिये बुलाइ हरि भक्त जो, कृपा करी बैकुंट ।
दिये पठाय निज पोरीया, जय और विजय अकुंट ।।१५।।

दृष्टान्त :- एक समय सनकादिक बैकुण्ठधाम को जाने लगे । भगवान के द्वारपाल जय विजय बोले कि बिना हुकम के बैकुण्ठ में नहीं जा पावोगे । सनकादिक बोले :. हम रोज जाते हैं । राक्षसों की तरह हुज्जत करते हो ? जाओ राक्षस बनो । भगवान विष्णु प्रगट हो गये । बोले :- यह शराप मेरी इच्छा से हुआ है इनको । क्योंकि इनको द्वारपाल पद का बड़ा घमण्ड था । जय विजय ने भगवान के चरणों में नमस्कार किया और सनकादिकों को नमस्कार किया, और बोले :-हमारा उद्धार होने का उपाय बतावें । तब सनकादिक बोले :- द्वेषभाव से भक्ति करोगे, तो तीन जन्म लोगे और प्रेमभाव के भक्ति करोगे तो सात जन्म होंगे, फिर तुम अपने पद पर यहीं आ जाओगे । भगवान ने सनकादिकों को अन्दर बुला लिये और जय विजय को मृत्त-लोक भेज दिये । वह पहले हिरण और हिरण्याकश्यप, दूसरा रावण कुम्भकर्ण, और तीसरा कंस और वक्रदन्त फिर उसी पद को प्राप्त हो गये ।

ज्यूं राखै त्यूं रहैंगे, अपणे बल नाही ।
सबै तुमहारै हाथि है, भाज कत्त जांही ॥१६॥

टीका :- हे समर्थ परमेश्वर ! जैसे आप हमको रखोगे, उसी प्रकार हम प्रसन्न रहैंगे, सुख में या दुख में। हमारा आपके सामने कोई बल नहीं चलता । सब कुछ आपके हाथ में है, जीवों के प्रारब्ध कर्म । आपसे अलग हम भाग कर, कहाँ जायेंगे ? हे समर्थ ! आपकी समर्थाई सर्वत्र व्यापक है ।

दादू डोरी हरि के हाथ है, गल मांहै मेरै ।
बाजीगर का बांदरा, भावै तहां फेरै ॥१७॥

टीका :- हे हरि ! हमारी प्रारब्ध कर्म रूपी डोरी, आपके हाथों में हैं और हमारे गले में पड़ी है । जैसे बाजीगर बन्दर के गले में डोरी डालकर, जहां इच्छा हो वहीं बन्दर को ले जाता है । इसी प्रकार हम तो बाजीगर के बन्दर की तरह हैं । लाप प्रारब्ध कर्म डोरी को जिधर भी खैंचोगे, उधर ही हम आते जाते रहैंगे। आपकी समर्थाई सबसे ऊपर है ।

दोहा :- कर्म डोरी गल मै पड़ि, हाथ तुम्हारे मांहि ।
जग जीवन इनसे छूटि कै, भाजि कहां हम जांहि ॥१७॥

ज्यूं राखै त्यूं रहैंगे, मेरा क्या सारा ।
हुकमी सेवगराम का, बन्दा बेचारा ॥१८॥

टीका :- हे परमेश्वर ! हम तो आपकी आज्ञा में चलने वाले, आपके सेवक हैं । जैसे आप हमारे प्रारब्ध कर्मानुसार, हमको सुखी दुखी रखोगे, उसी प्रकार उसमें हम सुखी रहैंगे । क्योंकि इसमें मेरा क्या जोर है ? हम तो आपके हुकम में चलने वाले आपके गरीब सेवक हैं ।

साहिब राखै तौ रहै, काया मांही जीव ।
हुकमी बन्दा उठि चलै, जबहिं बुलावै पीव ॥१९॥

टीका :- हे साहिब ! हे समर्थ परमेश्वर ! आप इस स्थूल शरीर में जीव को, जब तक रखोगे, तब तक रहेगा । और जब आपका हुक्म होगा कि आ जाओ उसी समय बन्दे की तरह, हम चले आयेंगे । जैसे सेवक को स्वामी जब बुलाता है, तभी उठकर चल देता है, वैसे ही हम तो आपकी समर्थाई रूप हुकम में हैं ।

दोहा :- बाजींदा पूत पठाण का, किस सौं करै सनेह ।
राति बसै दिन उठि चलै, आंधी गिणै न मेह ॥१९॥

(पति पहचान)

खंड खंड परकास है, जहां तहां भरपूर ।
दादू करता करि रह्या, अनहद बाजै तूर ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्म का प्रकाश लोक लोकान्तरों में और घट घट में व्यापक है, और नो खंडों में वही सबका प्रकासक है । जब अपने अनन्य भक्तों को प्रसन्न होकर, अपने स्वरूप में अभेद करै, तो अनहद बाजा अर्थात् ब्रह्म प्रकाश का अपरोक्ष अनुभव करके, तब उनके आनन्द के बाजे बजते हैं ।

(ईश्वर समर्थाई)

दादू दादू कहत हैं, आपै सब घट मांहि ।
अपणि रूची आपै कहै, दादू थैं कुछ नांहि ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह समर्थ परमेश्वर सब शरीरों में प्रगट होकर, आप स्वयं भक्त वच्छल परमेश्वर ही, दादू दादू कहते हैं । क्योंकि अपनी इच्छा से अपने भक्तों को, आप स्वयं परमेश्वर भजते हैं ।

दोहा :- रमत्त करतां बालकां, दादू दादू भाखि ।
हरि परगट कियो भक्त को, सदना सिबरी साखि ॥२१॥

दृष्टान्त :- जब ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज रमते रमते करौली नगर में आये, तब परमेश्वर भक्त को प्रगट करने के लिये, नगर के बालकों में बालक रूप बनकर, बालकों के साथ महाराज को देखकर, दादू दादू बोलने लगे । जब दयालु महाप्रभु ने ध्यान धर कर देखा तो, बालकों में भगवान प्रगट हो रहे है । तब आप बोले :- बालकों से, इस बालक को आप जानते हो ? बालकों ने कहा :- नहीं, हम इसको नहीं जानते । यह

राम है, राम राम कहो । तब कभी तो बच्चे राम राम कहते हैं, कभी दादू दादू कहते हैं । तब भगवान ग्राप बोले बच्चों को कि "दादूराम दादूराम" कहो । बच्चों को यह उपदेश करके, भगवान ग्रन्तर्ध्यान हो गये । उस रोज से महाराज के शिष्य भी "दादूराम दादूराम" शब्द का उच्चारण करने लग गये, क्योंकि भगवान ने ग्राज्ञा दी थी कि इसी नाम से तुम्हारा उद्धार होगा । भगवान ग्रपने भक्तों का नाम ग्रागे रखते हैं, ग्रपना नाम पीछे रखते हैं, स्मरण करने में :- जैसे सीता राम, राधेश्याम । ऐसे ही दादूराम ।

छंद :- करोली के देस मांहि, रामत्त करन काज ।
स्वामी जी पधारे तहां, निकन्दन काल के ।
जहां जहां जाइ, तहां तहां दादू दादू कहै ।
यही बैन प्रिय लागै, मन में कृपाल के ।
यद्यपि ग्रदेह राम, देह धार ठाढे भये ।
ग्रोत प्रोत चाहे बैन, स्वामी जन लाल के ।
राम कहैं दादू कहो, दादू कहैं राम कहो ।
दादूराम दादूराम रटो, इमें बालके ।

दादू हमथैं हुवा न होइगा, ना हम करणे जोग ।
ज्यूं हरि भावै त्यूं करै, दादू कहैं सब लोग ।।२२।।

टीका :- हे जिज्ञासुग्रो ! न तो कुछ हमसे ऐसा काम हुग्रा है, जिससे कि हम ग्रपने ग्रापको प्रगट कर सकैं । ग्रौर न ग्रागे हम ऐसा कर ही सकैंगे । ग्रौर न हमारे में ऐसी कोई योग्यताई है, जिससे कि हम संसार में जन समुदाय का कुछ परोपकार करें । जैसे समर्थ हरि को प्रिय लगता है, वैसे ही वह करते हैं । दुनियां हमें निरर्थक ही कहती है कि यह दादू दयाल महाराज ने किया । ग्रथवा जैसा समर्थ को भाता है, प्रिय लगता है, वैसा ही घट घट में 'दादू दादू' कहलाते हैं, ग्रौर सब लोग कहते हैं ।

दोहा :- ना कुछ किया ना करि सक्या, ना करने योग शरीर ।
जो कुछ किया सो हरि किया, ताथैं भया कबीर ।।२२।।

दादू दूजा क्यूं कहै, सिर पर साहिब एक।
सो हमकौं क्यूं बीसरै, जे जुग जांहि अनेक ।।२३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारे मस्तक पर तो, एक समर्थ परमेश्वर का इष्ट है। हमने तो उसी को धारण किया है। उसके बिना दूसरे देवी देवाताओं का, अपने मुंह से न तो उनका नाम लेंगे और न सुनेंगे। उसी समर्थ का मुँह से गुणानवाद गावेंगे और कानों से उसी का यश सुनेंगे और नेत्रों से उसी का दर्शन करेंगे, चाहे अनेकों युग के युग क्यों न बीत जावें, हम इस प्रण से कभी नहीं टलेंगे। तो फिर वह समर्थ हमको कैसे भूल जायेंगे ? कैसे विसार देंगे ? हमको वह कभी नहीं बिसारेंगे।

अर्थात् हम आत्म चिंतन को छोड़कर, दूसरे साधनों में क्यों लगें। और वे प्रभु अपने भक्तों को कैसे भूलेंगे ? कभी भी नहीं भूलेंगे।

(सर्व साक्षीभूत)

आप अकेला सब करै, औरों के सिर देइ।
दादू सोभा दास कौं, अपना नावं न लेइ ।।२४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! केवल आप समर्थ परमेश्वर, इस संसार की उत्पत्ति, पालन, सब करते हैं अथवा प्रारब्ध कर्मानुसार, सब जीवों को सुख दुख होता है परन्तु वह समर्थ अपने भक्तों को और अभक्तों को यश अपयश प्राप्त करने में, निमित्त बना देते हैं और कर्त्ता हर्त्ता तो आप स्वयं समर्थ हैं। फिर आप साक्षीरूप से तटस्थ रहते हैं। अपना नाम भी नहीं लेते कि तेरे कर्मानुसार मैंने किया है। सब दुनियां कहती है कि यह काम भक्त ने किया है और यह काम अनिष्ट अपयश का, इस अभक्त ने किया है।

आप अकेला सब करै, घट में लहरि उठाइ।
दादू सिरि दे जीव कै, यों न्यारा व्है जाइ ।।२५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समर्थ आप परमेश्वर प्रारब्ध कर्म फल के अनुसार, सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में प्रेरणा करके, साक्षीभाव से सर्व कर्त्तव्य करते हैं, किन्तु निष्काम भावना द्वारा, स्वयं तो कर्म से अलग, मुक्त हो रहे हैं और सकामी जीवों को कर्त्तत्व भोगतृत्व के अभिमान द्वारा, कर्मफल को भुगाते हुए, संसार चक्र में ही घूमाते हैं।

(ईश्वर समर्थाई)

ज्यूं यहु समझै त्यूं कहौ, यहु जीव अज्ञानी।
जेति बाबा तैं कहि, इन एक न मानी ।।२६।।

टीका :- हे समर्थ परमेश्वर ! जैसे यह समझे अज्ञानी जीव, वैसे ही आप कहो प्रभु । हे बाबा ! हे समर्थ ! जितना उपदेश भक्ति ज्ञान वैराग्य का, इस शरीर के द्वारा आपने कहा, अर्थात् उपदेश किया, यह सकामी जीव परचा देखने की भावना वाला, निष्काम एक भी उपदेश को नहीं धारण किया है ।

दोहा :- साहपुरे दादू गये, ले गये साकल लोग ।
परचा की मन में रही, चलत दिखाये दोष ।।२६।।

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि जगतगुरू दादू दयाल महाराज को, साहपुरा तिलोकशाह आदिकों ने परचा की भावना से अपने घर लाये । जब सतगुरूदेव ज्ञान भक्ति के उपदेशों से अज्ञानी जीवों को जगाये, किन्तु फिर भी परचा देखने की इच्छा मन में रही । तब वहां से जब चलकर नगर के बाहर आये और त्रिलोकशाह को आज्ञा दी कि यह जो आप वस्त्र लाये हो, इसे मेरी कमर के लपेट कर गांठ दे दो । जब तिलोकशाह वैसा ही किया तो, गांठ कपड़े में आ गई । परम गुरुदेव अलग खड़े हैं । तब त्रिलोकशाह बोला :-

दोहा ;- कटि पट में आवै नहीं, पच हार्यो एक दास ।
दादू पूर्ण ब्रह्म् है, देखर भयो हुलास ।।

तब चरणों में तिलोकशाह ने नमस्कार किया और क्षमा मांगी । ब्रह्मऋषि बोले :- कामना में अनेक प्रकार के दोष होते हैं । इसलिये निष्काम भाव से परमेश्वर का स्मरण और संत सेवा करो ।

दादू तन मन लाइ कर, सेवा दिढ करि लेइ ।
ऐसा सम्रथराम है, जें मांगै सो देइ ।।२७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह हमारे इष्टदेव समर्थ राम जी के, अपने तन मन को बहिरंग चेष्टाओं से हटाकर, अन्तर्मुख उनके नाम स्मरण में लगाओ । दृढ़ निश्चय से उनकी भक्ति करो अथवा जनसमुदाय को उन्हीं सा रूप जानकर, सबकी सेवा करो । तो वह ऐसे राम समर्थ हैं कि तुम्हारी सम्पूर्ण कामनाओं को स्वतः ही पूरी कर देंगे ।

अर्थात् जो राम की समर्थाई देखनी है तो तन मन को ब्रह्म विचार में लगाकर, अपनी वृत्ति को अखंड ब्रह्माकार बनाइये । तो प्रभु आप स्वयं सर्व कामना पूर्ण करेंगे ।

दोहा :- कोई पठाण गयो पीर पै, पुत्र दियो नहि कोई ।
दीयो फकीर लिख्यो नहिं, अब लिख लै दे दोइ ।।२७।।

दृष्टान्त :- एक पठाण मुसलमान ने, पीर की जाकर पूजा आदि करी और बोला :- पीर साहिब ! मुझे एक पुत्र देना । जब पीर ने पुत्र नहीं दिया, तो एक परमात्मा का सच्चा बेहद फकीर, उनके पास गया और बोला :- सांई मुझे एक पुत्र देने की कृपा करो । सांई बोले :- तेरे पुत्र हो जायेगा । तब परमेश्वर ने आकाशवाणी की कि, इसके तो लिखा नहीं है पुत्र ! फकीर बोले :- अब लिख लो, क्या स्याही नहीं है ? कागज नहीं है ? क्या कलम टूट गई ? और लिखते ही हो तो लगे हाथ दो लिख लो । बोला :- बस, बस, आगे नहीं बढ़ना । दो लिख दिये । मैं काहे को बढ़ता हूं, आप ही बढ़ाया ?

दादू परचा मांगै लोग सब, कहैं हमकौं कुछ दिखलाइ ।
सम्रथ मेरा सांइयां, ज्यूं समझैं त्यूं समझाइ ।।२८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारी सकामी जन, संसार में संतों से परचे मांगते हैं । कहते हैं कि हमें कुछ करामात दिखाओ । परन्तु सच्चे निरपक्ष संत, निष्काम अनन्य भक्ति करने वाले, उस समर्थ परमेश्वर से विनय करते हैं कि हे नाथ ! यह अज्ञानी संसारीजन जैसे समझैं, वैसे आप ही इनको समझा सकते हो । हमारे में तो कुछ शक्ति है नहीं ।

दोहा :- परच्यो मांग्यो रांघड़ै, साध उदक लि लाठ ।
उडे छान अरु झोपड़े, गांव भयो चोपाट ।।२८।।

दृष्टान्त :- एक जागीरदार राजपूत के गांव में महात्मा आ गया । जागीरदार को पता चला कि एक महात्मा गांव में आया हुआ है । महात्मा के पास ठाकर आया और बोला :- कुछ परचा बताओ, कुछ चमत्कार बताओ । संत बोले :- हमारे तो कुछ चमत्कार, एक समर्थ परमेश्वर हैं । हमतो कुछ जानते नहीं हैं । वह परमेश्वर ही चमत्कार जानते हैं, और समझते हैं । राजपूत बोले :- अच्छा ! इस गांव से दूसरे गांव में चले जाओ भाई ! चले जायेंगे । उठकर चल दिये पीछे से समर्थ, आंधी रूप धरकर आये । राजपूत के झोपड़ों सहित, सारे गांव के झोंपड़े उड़ा दिये । गांव के लोग अस्त व्यस्त हो गये । फिर विचार किया कि उन महात्मा को हमने गांव से बाहर कर दिया, उसका यह दण्ड मिला है ।

(समर्थ साक्षीभूत)

समथ्र सोसेरी समझाइ नैं, करि अण करत्ता होइ ।
घटि घटि व्यापक पूरि सब, रहै निरंतर सोइ ।।२९।।

टीका :- हे समर्थ परमेश्वर ! आपका वह निष्काम योग हमको समझाओ कि आप तो घट घट में व्यापक परिपूर्ण रूप हैं और फिर साक्षीरूप होकर, कर्म करने की प्रेरणा, करते हुए भी, आप अकर्त्ता ही हैं, और कर्मों के फलों से आप मुक्त रहते हो ।

दोहा :- कबीर पूछै राम को, सकल भुवन पतिराइ ।
सकल करि अलगै रह्यो, सो विधि हमहि बताइ ।।२९।।

रहै नियारा सब करै, काहू लिप्त न होइ ।
आदि अंत भानै घड़ै, ऐसा समथ्र सोइ ।।३०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह समर्थ परमेश्वर, माया और माया के कार्य से अलग रहता हुआ भी, सब कुछ कर्त्ता धर्त्ता बन रहा है और फिर किसी के कार्य में लिपायमान नहीं होता है । वह समर्थ इस सृष्टि की आदि में उत्पति करता है और अन्त में वही प्रलय का निमित्त कारण बनता है । ऐसा वह समर्थ, हमारा उपास्य देव है ।

(कर्त्ता साक्षीभूत)

सुरम नहीं सब कुछ करै, यौं कलि धरी बणाइ ।
को तिग हारा व्है रह्या' सब कुछ होता जांइ ।।३१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह समर्थ परमेश्वर, बिना श्रम के ही अर्थात् थकावट के बिना ही, त्रिगुणात्मिक प्रकृति द्वारा, सब कुछ सृष्टि का उत्पत्ति कर्म, कर रहा है। और आप स्वयं साक्षीरूप से तटस्टथ रहता है। उत्पति, पालन, संहार, प्रकृत्ति रूप कला से, स्वतः ही होता जा रहा है ।

लिपै छिपै नहि सब करै, गुण नहि व्यापै कोइ ।
दादू निहचल एक रस, सहजैं सब कुछ होइ ।।३२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह हमारा स्वामी समर्थ परमेश्वर, न तो किसी मायिक कार्य में लिपायमान होता है और न वह छिपा हुआ ही है। सर्व सृष्टि की रचना करता हुआ भी, किसी गुणों के कार्य में लिपायमान नहीं होता है। और फिर वह गुणातीत रूप से निश्चल, एकरस रहता है। उसकी सत्ता मात्र से, स्वतः ही सब कुछ होता जा रहा है।

बिन गुण व्यापै सब किया, समरथ आपै आप।
निराकार न्यारा रहै, दादू पुन्य न पाप ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समर्थ परमेश्वर, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, इनके विकार से रहित होकर, सृष्टि की उत्पत्ति, पालन, संहार करता है। और फिर सबमें समाया हुआ वह निराकार निरंजन परमेश्वर, पुण्य पाप से रहित है।

(ईश्वर समर्थाई)

समिता के घर सहज मै, दादू दुबिध्या नांहि।
सांई सम्रथ सब किया, समझि देखि मन माँहि ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरूषों के अन्तःकरण में निर्द्वन्द परमेश्वर, प्रगट ही प्रकासता है, जिसमें द्वैतभाव का अभाव है। हे साधक ! प्रभु की समर्थाई को अपने मन में ही, आत्म ज्ञान के द्वारा, अनुभव करिये।

दोहा :- मुसे साहीब सूं कही, आलम सम कर देहु।
घर ढयो मिल्यो नहि, चुणले धन क्या लेहु ॥३४॥

दृष्टान्त :- एक समय मुसा पैगम्बर भिस्त में गये और खुदाताला से बोले कि सारे आलम के मनुष्यों को बराबर बना दो। खुदा बोले :- बराबर बनाने से दुनियां का काम ठीक नहीं चलेगा। मेरा क्रम बनाया हुआ, दुनिया के लिये ठीक है। मुसा बोला :- नहीं साहिब ! इनसान, इनसान में क्या फरक ? सबको बराबर कर दीजिये। खुदा बोले :- अच्छा ! जाओ सबको सम बना दिया। मुसा पैगबम्बर जब दुनियां में आये, तो सबको बराबर देखा। एक रोज वर्षा ज्यादा होने से मुसे साहब का घर गिर गया। मुसा कई इनसानों को बोले कि हमारे घर की चुनाई कर दो और जो कुछ मजदूरी हो, वह ले लो। लोग बोले :- तूं ही हमारे काम कर दे, और हमसे धन ले ले। हम क्या तेरे मजदूर हैं ? जैसा तूं है, वैसे हम हैं। तब मुसे

साहब दौड़कर खुदा के पास गए और बोले :- खुदाताला जैसे पहले दुनियां थी, वैसे ही छोटे बड़े बना दो, बराबर करने से तो काम नहीं चलता ।

पैदा कीया घाट छड़ि, आपै आप उपाइ ।
हिकमति हुनर कारीगरी, दादू लखी न जाइ ।।३५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उस समर्थ परमेश्वर ने अपनी त्रिगुणामित्क प्रकृति के द्वारा, सबको उत्पन्न किये और मनुष्य के शरीर में तथा योग इन्द्रियें बनाई । वैसे ही पशु पक्षी आदि के शरीरों में भी इन्द्रियां बनाई । अथवा नर मादा के संयोग से स्वतः ही, सृष्टि उत्पन्न होती रहती है । उस समर्थ का तरीका, चतुरता और रचना कहने में नही आ सकती ।

जंत्र बजाया सांज करि, कारीगर करत्तार ।
पंचौं का रस नाद है, दादू बोलणहार ।।३६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! फिर उस समर्थ ने, शरीर रूपी यंत्र पंजीकृत्त पंच महाभूतों से, बोलने वाला बनाया । पंचों का रस नाद है । पंचभूतों की उत्पत्ति में, प्रथम शब्द सहित आकाश की उत्पत्ति है । और इनमें आप स्वयं करतार ही बोलने वाला स्थित हो रहा है ।

पंच ऊपना सबद थैं, सबद पंच सौं होइ ।
सांई मेरे सब किया, बूझै बिरला कोई ।।३७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रकृति से शब्द सहित, आकाश की उत्पत्ति होती है । आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, इन पांचों से फिर, शब्द का उच्चारण होता हैं । यह सब सृष्टि का क्रम, उस समर्थ ने सब रचा है । इस बात को कोई बिरले तत्ववेत्ता पुरुष 'बुझै' कहिए, समझते हैं ।

है तो रती नहीं तौ नांहीं, सब कुछ उत्तपत्ति होई ।
हुक्मैं हाजिर सब किया, बूझै बिरला कोइ ।।३८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो यह संसार केवल सत्ता मात्र भासता है, वह अत्यन्त अलप कालिक और क्षण भगुंर है । और जो सिद्धान्त में विचारपूर्वकक, संसार का अपवाद करें, तो संसार आकाश पुष्पवत, ससे श्रीङ्गवत, बंझ पुत्रवत, यह त्रिकाल में भी सत्य नहीं है, अर्थात् मिथ्या है । इसको समर्थ की मायारूप प्रकृति ने उसकी सत्ता पाकर रचा है । इस बात को कोई बिरले तत्ववेत्ता पुरुष ही समझते हैं ।

दोहा :- देखि पातसाह दक्षीण दिस, फेर्यो मूछन हाथ ।
लखि भंगि डेरा तणै, सब ताणौ तिहि साथ ॥३८॥

दृष्टांत :- एक समय बादशाह दक्षिण दिशा की तरफ झांक कर अपनी मुंछों पर हाथ फेरने लगे । भंगी ने दूर से देखा और समझ गया कि बादशाह सलामत दक्षिण दिशा में दौरा करेंगे । आप जाकर दक्षिण दिशा में झाड़ू सफाई किया और सबको साथ लेकर डेरे तम्बू तान दिये । इसी प्रकार चेतन की सत्ता पाकर, प्रकृति ने सृष्टि की रचना रच दी ।

नहि तहांथैं सब किया, आपै आप उपाइ ।
निज तत्त न्यारा ना किया, दूजा आवै जाइ ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञान अवस्था में इस जीव ने, अपने अज्ञान द्वारा सब किया, अर्थात् संसार रचा है । किन्तु दृश्यमान जगत से अपने आपको अलग नहीं देखता है । परन्तु ब्रह्मवेत्ता पुरूष सत्य मिथ्या के विचार द्वारा, आत्मतत्व में ही अभेद रहते हैं । और दूसरे संसार भाव का अध्यास नहीं करते और शून्य अवस्था में जब स्थूलरूप से कुछ भी नहीं था, तब परमेश्वर ने अपनी समर्थाई से कहिए, अपनी प्रकृति से संसार का पसारा फैलाकर, सब उत्पन्न किया । और 'दूजा' कहिए, परमेश्वर से विमुख जनों को आवागमन में भ्रमाया है किन्तु निजतत्त अर्थात् अपने भक्तों को, अपने स्वरूप से न्यारे नहीं किये हैं ।

नहीं तहांथैं सब किया, फिर नांहि व्है जाइ ।
दादू नांही होइ रहु, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पहले एक चेतन तत्व के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था, किन्तु माया विशिष्ट, स्वयं प्रभु ने अपनी ही इच्छा से, जीवों के संस्कारों द्वारा, "एको अहं बहुश्यामः"--इस संकल्प द्वारा, ब्रह्माण्ड रचा और स्वयं संसार से 'नांहि' कहिये, निर्गुण निर्विकार है । इसी से हे जिज्ञासुजनों ! सँसार के अध्यास से मुक्त होकर, निर्विकार ब्रह्म में ही अखंड लय लगाइये ।

दादू खालिक खेलै खेल करि, बुझै बिरला कोइ ।
ले करि सुखिया ना भया, दे करि सुखिया होइ ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुश्रो ! यह सम्पूर्ण जगत प्रभु का खेल है। इस वार्त्ता को तत्ववेत्ता जानते हैं। परन्तु 'ले करि' कहिये, संसार में ग्रासक्ति करके, कोई जन सुखी नहीं हुए, बलिक प्रभु की हुई शरीर ग्रादिक, सोंज, प्रभु के ही श्रर्पण करके, श्रौर श्रनात्म श्रध्यास त्यागकर ही, मुक्तजन सुखी होते हैं। इस वार्त्ता को बिरले संत ही जानते हैं।

देवे की सब भूख है, लेवे की कुछ नांहि।
सांई मेरे सब किया, समझि देखि मन मांहि ।।४२।।

टीका :- हे जिज्ञासुश्रो ! परमेश्वर को श्रपने भक्तों को मनवांछित फल देने की इच्छा रहती है, लेकिन उनसे कुछ लेने की इच्छा नहीं रहती। किसी से कुछ लेने की तो, परमेश्वर कभी कुछ जानते ही नहीं, देने की ही इच्छा लगी रहती है। श्रर्थात् ब्रह्मवेत्ता संतों को भक्ति वैराग्य तन मन ग्रादि सर्वस्व भगवान के श्रर्पण करने की तो श्रति चाह है, किन्तु संसार के भोग श्रौर वरदान ग्रादिक लेने की कुछ भी कामना नहीं करते।

(करतूती कर्म)

दादू जे साहिब सिरजै नहीं, तौ ग्रापै क्यूं करि होइ।
जे ग्रापै ही ऊपजै, तौ मरि करि जीवै कोइ ।।४३।।

टीका :- हे जिज्ञासुश्रो ! जो समर्थ परमेश्वर प्राणों सहित शरीर को उत्पन्न न करे, तो श्रपने ग्राप ही प्राण सहित शरीर किस प्रकार जन्मेगा ? जो प्राणधारी ही श्रपने ग्राप उत्पन्न हो जाता है, तो फिर मरके, पुनः जीवित हो जाना चाहिये।

कर्म फिरावैं जीव कौं, कर्मों कौं करतार।
करतार कौं कोई नहीं, दादू फेरणहार ।।४४।।

टीका :- है जिज्ञासुश्रो ! प्रारब्ध कर्म प्राणधारी जीव को संसार के ग्रावागमन में फिराता है श्रौर कर्म को माया विशिष्ट ईश्वर, श्रपनी सत्ता देता है। उक्त सृष्टि रचिता परमेश्वर को श्रर्थात् माया विशिष्ट को कोई नहीं फिराता। वह ग्राप सबको सत्ता देने वाला है।

श्रथवा प्रस्तुत ४३ श्रौर ४४ इन दो साखियों में, प्राण पिण्ड के संयोग में, मीमाँसक मत का निराकरण करके वेदान्त, सिद्धान्त का प्रदिपादन करते हैं श्रौर मीमांसक मत में स्थूल सूक्ष्म संघात प्राण पिण्ड संयोग में, केवल

कर्म को कारण मानते हैं । परन्तु वैदान्त, सिद्धान्त के विपरीत होने से अयुक्त है । सिद्धान्त पक्ष में, प्राण पिण्ड की एकता में, कर्म और फल की प्रेरणा में भी माया विशिष्ट ईश्वर की सापेक्षता है, अन्यथा ईश्वर प्रेरणा बिना केवल कर्म में सामर्थ भाव सम्भव नहीं है । क्योंकि कर्म स्वयं जड़ होने से चेतन के सापेक्ष है । यदि कर्म फल में ही सामर्थ मानें, तो प्राण पिण्ड का वियोग ही असम्भव है ।

(इति समर्थाई का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ शब्द का अंग २२ ॥

"दादू दादू" कहत हैं, आपै सब घट मांहि० ।" इत्यादि शब्द रूप सामर्थ्य का विवरण रूप "शब्द का अंग प्रारम्भ करते हैं । इस अंग में शब्द रूप ब्रह्म का निरूपण करेंगे ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवां, प्रणामं पारंगत: ॥१॥

टीका :- हरिगुरू संतों के चरणों में हमारी बारम्बार बन्दना है । जिनकी कृपा से जिज्ञासुजन, हरि गुरू संतों के वाणीरूप शब्दों को धारण करके, जीवत मृतक होकर, जीवन मुक्तिरूप परमानन्द का अनुभव करके, कृत्य कृत्य होते हैं ।

(आत्म बोधक गुरू उपदेश शब्द की महिमा)

दादू सबदैं बंध्या सब रहै, सबदैं ही सब जाइ ।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाइ ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक ईश्वर के आज्ञारूप शब्द में, प्रकृति और प्रकृति का कार्य, सब रहता है । आज्ञारूप शब्द से ही सब चला जाता है, और शब्द से ही सर्व सृष्टि उत्पन्न होती है । शब्द में ही सब, प्रलयकाल में समा जाती है ।

अथवा ईश्वर की समर्थाई के प्रसंग में, सकल पंच तत्व आदिक परमेश्वर के आज्ञारूप शब्द से बंध रहे हैं । और परलै रूप शब्द से सब लीन हो जाते हैं । सतगुरूओं के उपदेश रूपी शब्द से, जिज्ञासुजनों के सब गुण विकार 'बन्ध्या' कहिए, अन्तरलीन रहते हैं । और कुसंगीजनों के शब्द से वृत्ति बहिर्मुख हो जाती है ।

दादू सबदैं ही सचु पाइये, सब्दैं ही संतोस ।
सब्दैं ही अस्थिर भयां, सबदै भागा सोक ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गुरू के सत्य शब्द से, सत्यस्वरूप का बोध होता है, और उसी शब्द से संतोष आता है । राम नाम रूपी गुरू उपदेश से ही, मन स्थिर होता है । महावाक्य शब्द के विचार से, शोक मोह भाग जाते हैं ।

दोहा :- सतसंगी त्रिय पुरूस द्वै, पुत्र मुवोपति नांहि ।
पति आयो कहि जुगति सौं, बस्तु पराई मांहि ॥३॥

दृष्टान्त :- एक नगर में स्त्री पुरुष दोनों सतसंगी और गुरूमुखी थे । उनके एक लड़का था, किशोर अवस्था का । एक समय वह पुरुष कहीं बाहर गया और पीछे से घर में अचानक लड़के की मृत्यु हो गई । स्त्री बड़ी विज्ञ थी । उसने लड़के का दाह संस्कार आदि सब करवा दिया । और गुरु के आत्म उपदेश का ही बार बार विचार करके, पुत्र के शोक मोह से मुक्त हो गई । जब पति आया तो भोजन बनाया और थाली लगाचर सामने रखी । पति भोजन करने बैठे, तब बच्चे को बुलाने को बोले । स्त्री कहती है, कि आप भोजन करिये । पुत्र कहीं गया है । पति बोले :- कहां गया है ? स्त्री :- जहां से आया, वहीं गया है । कोई वस्तु हमारे को दे और फिर वह अपनी वस्तु को आप ले ले, तो फिर उसका क्या विचार करें ? जिसकी थी उसके पास पहुंच जाय, तो अच्छा है । इसी में समझ लो । पति जान गया कि पुत्र की मृत्यु हो गई । भोजन कर लिया । स्त्री ने ज्ञान युक्त शब्दों के द्वारा, पति के अन्तःकरण में शोक मोह को उत्पन्न न होने दिया । परन्तु जब रात को पति पलंग पर सोये, तो स्वप्न में पुत्र के लिये रोये । सवेरे जब वे बिस्तर झाड़ने लगी, तब तकिया गीला मिला । पूछा पतिदेव से, कि क्या आपने रात को पुत्र के शोक में, रुदन किया ? पति बोला :- हां किया । आप जैसे तत्ववेताओं को ही इस शोक मोह ने दबा लिया तो अज्ञानी संसारिक जन तो इसके प्रभाव में बह ही रहे हैं ।

दादू सबदैं ही सुखिम भया, सबदैं सहज समान ।
सबदैं ही निर्गुण मिलै, सबदैं निर्मल ज्ञान ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गुरू के ज्ञानयुक्त शब्द की साधना द्वारा, वृत्ति को स्थिर कर । और फिर निर्द्वन्द होकर, सूक्ष्म में मिल । और महावाक्य ही आत्म ज्ञान के बोधक हैं । उन्हीं से निर्गुण ब्रह्म का ज्ञान होता है । वही निर्मल ज्ञान है ।

दादू सबदै ही मुक्ता भया, सबदै समझै प्राण।
सबदै ही सूझै सबै, सबदैं सुरझै जाण॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गुरू के ज्ञान रूप शब्द से ही संसार बन्धन से मुक्त होते हैं। और फिर उसी गुरू के ज्ञान रूप शब्द से, अपना स्वस्वरूप को जिज्ञासु प्राप्त करते हैं। गुरू उपदेश द्वारा ही, सत्य मिथ्या का रूप दिखने लगता है। तथा ऐसे पुरूष ही अनात्म अहंकार से सुलझते हैं।

(सृष्टि क्रम)

दादू ओंकार थैं ऊपजै, अरस परस संजोग।
अकुंर बीज द्वै पाप पुण्य, इहि विधि जोगरू भोग॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रथम ओंकार रूप शब्द से ही महतत्व की उत्पत्ति होती है और महतत्व से सूक्ष्म पंच तनमात्रा होते हैं और पंच तनमात्रा से, पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है और फिर इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, गुणों का, अरस परस संयोग अर्थात् मिलाप रूप पंचीकरण होता है और फिर पंचीकरण से स्थूल सृष्टि की उत्पत्ति होती है। अंकुर कहिए, संस्कार बासना रूप बीज से, अच्छे बुरे कर्म होते हैं और उनके सुख दुख आदि फल द्वारा, सभी पाप पुण्यों में बंधे हैं। इस प्रकार ओंकार शब्द ही, सृष्टि क्रम का आदि कारण है।

ओंकार थैं ऊपजै, बिनसै बहुत बिकार।
भाव भगति लै थिर रहै, दादू आत्तम सार॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रणव शब्द रूप जाप की साधना से सहज समाधी रूप दशा तक पहुंच कर, भाव भक्ति से लय वृत्ति द्वारा, आत्म स्वरूप में स्थिर रहो। इस प्रकार सम्पूर्ण विकारों से छुटकारा पाकर, फिर वह साधक आत्मा की प्राप्ति करते हैं।

पहली कीया आपथैं, उतपत्ति ओंकार।
ओंकार थैं ऊपजै, पंच तत्त आकार॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सृष्टि के आदि में परमात्मा ने पहले अपने आपसे ओंकार उत्पन्न किया। फिर ओंकार शब्द से पाँच तत्व आकार रूप में उत्पन्न होते हैं।

पंच तत्त थैं घट भया, बहु बिधि सब बिसतार।
दादू घट थैं ऊपजै, मैं तैं बरण बिचार ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! फिर पाँच तत्व से, अर्थात् पंचीकृत पंच महाभूतों से, स्थूल शरीर उत्पन्न होता है। फिर शरीर से बहुत प्रकार के व्यवहार का विस्तार होता है। और फिर घट से कहिए, शरीर से मैं अमुख, तूं अमुख, वर्ण काला गोरा आदि का विचार होता है, अथवा वर्ण आश्रम आदि का विचार करता है।

एक शब्द सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोइ।
आगै पोछै तौ करै, जे बल हीणा होइ ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक शब्द, शुन्य प्रकृति, प्रणवै अर्थात् ओंकार शब्द से, सब गृहित है। अर्थात् नाद और बिन्दु से दो प्रकार की सृष्टि मानी है। शब्द रूप सृष्टि का मूल कारण प्रणवै है और वह ही जगत का कारण रूप मूल है। ब्रह्म का भी ओंकार बाचक स्वरूप है।

दोहा :- अकबर बूझी बात बहु, गुरू दादू ढिग आइ।
सृष्टि हुई कैसे कहो, या साखी समझाइ ॥१०॥

दोहा :- अकबर बूझै फक्कड़ से, तीन बात अड़ी।
अैरण हथौड़ा संडासी, पहले कौन घड़ी ॥१०॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज को बादशाह अकबर, राजा भगवन्त दास के द्वारा आमेर से सीकरी बुलाये। तब प्रथम यह प्रश्न किया किया कि इन तीनों में से पहले कौनसी चीज बनी ? अर्थात् दाराष्टान्त में प्रथम भिस्त, मृत्तलोक पाताल लोक इन तीनों में से किसकी रचना हुई। अथवा प्रथम आकास, अग्नि, जमीन, इनसें से पहले कौन उत्पन्न हुआ ? ब्रह्मऋषि ने उपरोक्त १० नम्बर साखी से उत्तर दिया कि वह परमेश्वर सर्व शक्तिवान समर्थ है। उसके एक शब्द से 'एकोहम् भवस्यामि' ऐसा संकल्प करते ही, सम्पूर्ण रचना हो गई। अकबर बादशाह यह उत्तर सुनते ही, ब्रह्मऋषि के सामने नत मस्तक हो गया।

आदि सबद ओंकार है, बोलै सब घट माँहि।
दादू माया बिस्तरी, परम तत्त यहु नांहि ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सृष्टि का आदिकारण समष्टि ओंकार स्वरूप ब्रह्म है और व्यष्टिभाव से सब घट कहिए, प्राणीमात्र में बोलता है, और साक्षीभाव से सर्व जीवों को चेतनता प्रदान करता है। इस रीति से शब्द ब्रह्म से चेतन सत्ता पाकर, नामरूप से सर्व जगत प्रपंच में माया का विस्तार हो रहा है। इस प्रकार मायावी कार्य नाम रूप जगत, परम तत्व नहीं है। विशेष विवरण इस साखी में पूर्व पक्षी की शंका का समाधान किया है। पूर्व पक्षी की यह शंका है कि ओंकार शब्द ब्रह्म का बाचक है और ब्रह्म वाच्य है। और बाच्य बाचक में अभेद भाव है। इसलिये पूर्व प्रसंग में ब्रह्मतत्व को जो निर्गुण निष्क्रय अथवा कारण कार्य भाव से मुक्त माना है, सो असम्भव है। क्योंकि पूर्वोक्त साखियों में ओंकार सृष्टि का आदि करण स्पष्ट कह चुके हैं। जैसे ओंकार सृष्टि का कारण है, तैसे ही ओंकार वाच्य निर्गुण निष्क्रय ब्रह्म में भी कारणत्ता बनेगी। इस रीति से पूर्व पक्षी के मत में, ब्रह्म में कारण कार्य भाव की आशंका होती है। परन्तु सिद्धान्त पक्ष में यह अभिप्राय है कि ओंकार के भी दो स्वरूप हैं। और इसमें प्रथम तो अकार, उकार, मकार, यह तीन मात्रा रूप जो वर्ण है। सो तो अपरमार्थ रूप है। और चतुष्पाद अमात्रिक, में अस्ति भाति प्रिय रूप अनुगत है। सो परमार्थ रूप, अधिष्ठान चेतन है। इस रीति से नाम रूप जगत प्रपंच में, माया विशिष्ट मात्रारूप अपरमार्थ ओंकार शब्द, ब्रह्म को ही कारणता है। चदुस्पाद अमात्रिक, परमार्थरूप ओंकार अधिष्ठान ब्रह्म में कारण कार्य भाव नहीं है। इसी से सतगुरू १२वीं साखी में इसी भाव को स्पष्ट करके, परमार्थ रूप अमात्रिक ओंकार को तो निरंजन निराकार और अपरमार्थ रूप वर्ण वाच्य ओंकार को आकार साकार रूप प्रतिपादन करेंगे। इस रीति से परमतत्व अधिष्ठान ब्रह्म में कारण कार्य भाव असम्भव है। सिद्धान्त पक्ष में ही, जो कहा सो ही ठीक है। और ओंकार के अपरमार्थ पक्ष को लेकर तो पूर्व पक्षी की शंका है। और सिद्धान्त में परमार्थ पक्ष द्वारा, उसका खंडन है। वेदान्त प्रक्रिया के अनुसार ओंकार का वाच्य सगुण ब्रह्म है और अधिष्ठान रूप निर्गुण ब्रह्म लक्ष अर्थ है, वाच्य नहीं। जब निर्गुण ब्रह्म ओंकार वाच्य नहीं है तो वाच्य वाचक भाव के आधार पर, पूर्व पक्षी की तर्क निष्फल है।

निरंजन निराकार है, ओंकार आकार।
दादू सब रंग रूप सब, सब विधि सब विस्तार ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निरंजन ओंकार का अमात्रिक चतुर्थपद, अधिष्ठान ब्रह्म, अखंड, अद्वैत परमतत्व निराकार रूप है। और त्रिपाद अकार उंकार मकार, ओंकार शब्द ब्रह्म, माया अध्यस्त होने से साकार है। और नाम रूप आदि का जितना विस्तार है, सो केवल माया अध्यस्त त्रिपाद रूप सृष्टि का विस्तार है।

(ईश्वर समर्थाई)

पैदा कीया घाट घड़ी, आपै आप उपाइ।
हिकमत हुनर कारिगरी, दादू लखी न जाइ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! प्रभु ने शब्दसामर्थ द्वारा, निस्काम भाव से, सर्व जीवों को रच कर, कर्मानुसार, यथावत गुण स्वभाव का बिभाग किया है और प्रभु की प्रभुता कहिये शक्ति असीमित है ।

जंत्र बजाया साजि करि, कारीगर करतार ।
पंचों का रस नाद है, दादू बोलनहार ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! करतार रूप कारीगर ने मन बुद्धि आदिक सर्व सामग्री से जंत्ररूप, मनुष्य शरीर को संवार कर बजाया कहिये, चेतन किया है । किस रीति से ? सो कहते हैं कि पंचों कहिए, पंच महाभूतों का रस, सार, कारण, नाद, ओंकार रूप शब्द ब्रह्म है । सो कार्यरूप जीव होकर, सब शरीरों में बोलता है ।

पंच ऊपना शबद सौं, सबद पंच सौं होइ ।
सांई मेरे सब कीया, बूझै बिरला कोइ ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ओंकार शब्द द्वारा, आकाश आदिक पंच महाभूत उत्पन्न हुए हैं और पंचतत्व आदि का कार्यभूत शरीर आदिक द्वारा, पुनः ध्वन्यात्मक शब्द और वर्णात्मक शब्द उत्पन्न हुए हैं । इस प्रकार से सर्व का कारण भूत ओंकार शब्द ब्रह्म है । किन्तु कोई उत्तम पुरुष ही, परमेश्वर की शक्तिरूप समर्थाई का विचार करते हैं ।

दोहा :- देह तंबूरा ढाट जठर, जीव तार तैही लाग ।
सुन्दर चेतन चतुर बिन, कौन बजावनहार ॥१५॥

एक शबद सों ऊनवै, वर्षन लागै आइ ।
एक सबद सौं बीखरै, आप आप कौं जाइ ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की एक शब्दरूपी आज्ञा से परवाई वायु द्वारा, मेघों की उत्पत्ति और वृष्टि होने लगती है । दूसरी शब्दरूपी आज्ञा, पछवा वायु द्वारा, बादलों का बिखर जाना रूपी कृपा होती है । इस तरह ही ओंकार शब्द ब्रह्म द्वारा, सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होती है । एवं संत उपदेश रूप शब्द, जिज्ञासुजनों के अन्तःकरण में विवेक वैराग्य उत्पन्न करके, भक्ति और प्रेम की वर्षा करते हैं । इस प्रकार केवल शब्दों की ही शक्ति से गुण विकार नष्ट होते हैं । फिर जिज्ञासुजन स्वस्वरूप का अनुभव करते हैं ।

दादू साध सबद सौं मिलि रहै, मन राखै बिलमाइ ।
साध सबद बिन क्यूं रहै, तब ही बीखरि जाइ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने मन को आत्म परायण करके, सतगुरू के वाणीरूप शब्दों में ही स्थिर रहना, क्योंकि संत सब्द के बिना, यह मन, मायावी वातावरण में आसक्त होकर, बहिर्मुख हो जाता है ।

दादू सबद जरै सो मिलि रहै, एक रस पूरा ।
कायर भाजै जीव ले, पग मांडै सूरा ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरूष सतगुरू और संतों की बाणी रूप शब्दों से, आत्म उपदेश रूप, शब्द ब्रह्म को जराता है अर्थात् धारण करता है, वह पुरूष शब्द ब्रह्म में ही मिलकर रहता है। और एक रस निर्द्वन्द्व होकर, पूर्ण ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है । परन्तु कोई विवेकीजन ही सतगुरू बचनों में 'पग मांडै' अर्थात् एकाग्र वृत्ति धारण करता है ।

सबद बिचारै करणी करै, राम नाम निज हिरदै धरै ।
काया मांहै सौधै सार, दादू कहै लहै सो पार ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरूष संतों के बाणीरूपी शब्दों का विचार करते हैं वह शरीर में ही ब्रह्मतत्व का अनुभव करने लगते हैं। वही पुरूष संसार से मुक्त होकर, ब्रह्मतत्व का साक्षात्कार करते हैं ।

दादू काहे कौडी खरचीयें, जे पैकै सीझै काम ।
सबदौं कारिज सिध भया, तौ सुरमन दीजै राम ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जहां संत, गुरूओं के शब्दों से ही कार्य बन जावे, तो वहां धन का खर्च करना व्यर्थ है । इसी प्रकार जब गुरू के आत्म उपदेश से ही, मोक्ष रूप कार्य बन जावे, तो फिर कठोर तप करके क्यों परिश्रम उठाइये। अथवा राम को क्यों कष्ट देवें ।

दोहा :- साधां पुछी हे गुरू, अकबर अति बिकराल ।
उन परचे मांगे नहीं, तुम न दीये तत्तकाल ॥२०॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज से शिष्य लोगों ने पूछा कि हे गुरुदेव ! अकबर तो अति विकराल बादशाह है । बहुत से साधुओं को जेल किये थे जिनको आपने छुड़वाये । उसने आपसे परचै मांगे नहीं और आपने उसे तत्काल परचै दिये नहीं, यह क्या कारण बना ? ब्रह्मऋषि बोले :- हे संतों ! "राम बीच दोऊ के रहे, चरचा इमै चीन" —वार्तालाप में ही बादशाह समझ गया, तो परचै की क्या जरूरत थी ?

दादू राम हिरदै रस भेल करि, को साधू सबद सुणाइ ।
जाणौ कर दीपक दिया, भरम तिमर सब जाइ ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परोपकारी संतजन राम की भक्ति ज्ञान वैराग्य से पूर्ण शब्द, आत्मज्ञान से भरे हुए, जिज्ञासुजनों को सुनाते हैं । वह कैसे शब्द हैं ? वे मानो बुद्धिरूपी हाथ में, ज्ञानरूपी दीपक ही दे दिया है, जिससे सम्पूर्ण भ्रम संसयरूपी अन्धकार, अन्तःकरण का नष्ट हो गया है ।

दादू बाणी प्रेम की, कवल बिगासै होइ ।
साध सबद मात्ता कहैं, तिन सबदों मोह्या मोहि ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे खिले हुए मोगरे के फूल में ही सुगन्धी होती है, इसी प्रकार संतों के हृदय केवल ब्रह्म विचाररूप सुगन्धी में ही मग्न होवे, तो प्रेमा भक्ति सहित, मानो दीपक रूप बाणी उनके मुखारबिन्द से प्रगट होती है । और वे संतजन फिर प्रेमा भक्ति से युक्त, सत्य शब्द सुनाते हैं । इसी से भंवरों की भांति जिज्ञासुजन, उनके शब्दों पर मोहित होते हैं ।

दादू हरि भुरकी बाणी साध की, सो परियौ मेरे सीस ।
छूटै माया मोह थैं, प्रेम भजन जगदीस ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मऋषि कहते हैं कि संतों की अनुभव वाणी रूप शब्द ज्ञान भक्ति से भरे हुए, वही मानो हरि के पास ले जाने वाली, जिज्ञासुओं के लिये भुरकी है । हे परमेश्वर ! वह बाणी हमारे मन रूपी मस्तक के ऊपर पड़ै, जिससे हमारा मन, माया और माया का कार्य ममता मोह से मुक्त होकर, प्रेमाभक्ति द्वारा आपके भजन में स्थिर रहै ।

दादू भुरकी राम है, सबद कहै गुरू ज्ञान ।
तिन सबदों मन मोहिया, उनमन लागा ध्यान ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हरि, गुरू और संतों की बाणी में ही मानो, राम रस ही भुरकी कहिए, मंत्र शक्ति है जिससे जिज्ञासुजनों का मन, मायावी मोह ममता से मुक्त होकर, संतों की बाणी में ही आसक्त रहता है और वृत्ति सदैव ब्रह्माकार ही बन रही है।

दादू बाणी ब्रह्म की, अनभै घटि परकास ।
राम अकेला रहि गया, सबद निरंजन पास ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! महावाक्य "तत्वंमसि, सोहं, अहं ब्रह्मास्मि" आदि के श्रवण से अन्तःकरण में यथार्थ ज्ञान का प्रकाश होता है। केवल अन्तःकरण में साक्षीरूप राम ही, फिर रहता है, और प्रणवै शब्द शुद्ध ब्रह्म से अभेद होता है।

सबदौं मांहै रामधन, जे कोई लेई विचारि ।
दादू इस संसार में, कबहु न आवै हारि ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वेद के महावाक्यों में और गुरू के शब्दों में रामधन भरा है। जो विचारवान पुरुष इनका विचार करके, ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है, वह ऐसा विचारशील पुरुष, इस संसार के आवागमन से सदा मुक्त रहता है।

दादू राम रसाइन भरि धर्या, साधन सबद मंझार ।
कोई पारिख पीवै प्रीति सौं, समझै सबद विचार ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू ने अपने शब्दों में, राम रस रूपी रसायन भरके, शब्द बोले हैं। उत्तम मुमुक्षु, विचारवान, शब्द ब्रह्म के विचार द्वारा, स्वस्वरूप का अनुभव करते हैं और अन्तरप्रीति से, अभेद निश्चय रूप, राम रस पीते हैं।

सबद सरोवर सूभर भर्या, हरि जल निर्मल नीर ।
दादू पीवै प्रीति सों, तिनके अखिल शरीर ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मनिष्ठ गुरुदेव के शब्द रूप सरोवर में, ब्रह्मानन्द रूपी निर्मल नीर परिपूर्ण रूप से भरा हुआ है। उसको पीने वाले उत्तम साधकों के सम्पूर्ण शरीर, निर्विकार गुणातीत होकर, ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं।

सबदों मांहैं राम रस, साधौं भरि दीया ।
आदि अंति सब संत मिलि, यौं दादू पीया ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संतों ने अपनी ब्रह्मबाणी रूप शब्दों में, निर्गुण राम का भक्ति वैराग्य ज्ञानरूप रस भरा है । उन शब्दों से सृष्टि के आदि से अन्त पर्यन्त, सम्पूर्ण संत उन शब्दों द्वारा, ब्रह्मानन्द का अनुभव किया है । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हमने भी उसी प्रकार अब, उस राम रस को पान किया है ।

(गुरुमुख कसौटी)

पाणी मांहै राखिये, कनक कलंक न जाइ ।
दादू सांचा सबद दे, ताइ अगनि मै बाहि ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे सोने का मैल पानी से नहीं धुलता है, किन्तु अग्नि का ताप देने से सोना शुद्ध होता है । इसी प्रकार जिज्ञासु को गुरू की ज्ञान कसौटी रूप अग्नि में, तपाने से ही अन्तःकरण शुद्ध होता है ।

कारिज को सीझै नहीं, मीठा बोलै बीर ।
दादू साचे सबद बिन, कटै न तन की पीर ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यदि सतगुरू, जिज्ञासु से मीठे मीठे बोलते रहें, तो उससे साधक का जीवन मुक्ति रूप कार्य, सिद्ध नहीं होता है और न उसका जन्म मरण रूपी कष्ट ही कटता है । किन्तु सतगुरू के सच्चे उपदेशों से ही, संसार भाव की निवृत्ति होती है ।

(शब्द)

दादू गुण तजि निर्गुण बोलिये, तेता बोल अबोल ।
गुण गहि आपा बोलिये, तेता कहिये बोल ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अनात्म अहंकार और पक्षपात का त्याग करके, जो शब्द बोलै, वह निर्गुण आत्मा के समर्थक बोल हैं । वह शब्द तीन गुण रूप विकार से रहित, निर्गुण ब्रह्म के बोध कराने वाले हैं । वह जितने भी शब्द बोले जावैं, वह सब अबोल ही बोल कहलाते हैं । उनकी धारणा किये बिना, पौराणिक शब्दों की चर्चा निष्फल है और जो ब्रह्मतत्व की धारणा करके संतजन, आत्म तत्व का उपदेश करते हैं, उनकी बाणी मौन ही है और तीन गुण रूप अनात्म अहंकार लेकर, जो बाणी बोलते हैं, वही बोल, बोल कहलाते हैं ।

सांचा सबद कबीर का, मीठा लागै मोहीं ।
दादू सुनतां परम सुख, केता आनन्द होइ ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू, भगवान से किसी ने प्रश्न किया कि कबीर जी के शब्द भी, महाराज बहुत अच्छे हैं । परम गुरूदेव बोले :- कि भाई ! पूर्व के कबीर आदिक संतों के निरपक्ष सच्चे शब्द ब्रह्म को बताने वाले, उनको सुनकर आज भी, मुमुक्षुजनों को परम शांति रूप ब्रह्मानन्द सुख की प्राप्ति होती है । हमें भी संतों के शब्द प्रिय लगते हैं ।

(इति शब्द का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ जीवत मृत्तक का अंग २३ ।।

"दादू गुण तजि निर्गुण बोलियो०"—इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप शब्द के अंग के अनन्तर, अब जीवत मृत्तक अर्थात् जीवन मुक्ति का अंग निरुपण करते हैं। जैसे मृत्तक प्राणी निष्क्रय, निर्वासनिक होता है, इसी प्रकार संतजन, ब्रह्म विचार में मग्न होकर, जीवित ही मृत्तकवत, निष्काम गुणातीत्त होकर, संसार भाव से मुक्त रहते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।१।।

टीका :- हे निरन्जन देव ! गुरू और संतों को हमारी बारम्बार वन्दना है। जिनकी कृपा से मुमुक्षुजन जीवन मुक्तिरूप परमानन्द की प्राप्ति करके, कृत्य कृत्य होते हैं।

धरती मत आकास का, चंद सूर का लेइ ।
दादू पानी पवन का, राम नाम कहि देइ ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो साधक धरती की क्षमा रूप गुण को धारण करता है, आकाश की निर्लेपता, चन्द्रमा का शीतलता रूप गुण, सूर्य का तेजस्वीता या भक्ति में सूरवीरता, पानी की निर्मलता, और पवन का अनाशक्ति आदि भाव, इन सब गुणों को धारण करके, निष्कामभाव से राम नाम का अखंड, जो सुमिरन करता है, उसको धन्य है।

दादू धरती व्है रहै, तजि कूड़ कपट अहंकार ।
सांई कारण सिरि सहै, तांकौं परत्तखि सिरजनहार ।।३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! झूठ कपट अहंकार आदि को छोड़कर, धरती की भांति क्षमा जरणाशील होकर, समताभाव को धारण करिये । और परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, जो कोई कष्ट भी आवे, तो उसको सहन करिये । अर्थात् सर्वत्र ब्रह्म दृष्टि करके, सर्व प्राणियों के गुण अवगुणों को जरावै, फिर उन मुक्त पुरूषों को सर्वत्र, कारण ब्रह्म का ही प्रकाश भान होता है ।

दोहा :- हरीस चन्द्र पुनी मोरधज, पुनि इक भक्त बकाल ।
दई कसौटी अती घनी, प्रगट भये ततकाल ।।३।।

दृष्टान्त :- राजा हरीशचन्द्र, रानी मदनावती, पुत्र रुहितास आदि को विश्वामित्र ऋषि ने सत्य की परीक्षा करने के लिये कसौटी दी । परन्तु वह अपने सत्य पर अटल रहे । दूसी प्रकार राजा मोरधज के सत्य की परीक्षा की । वह भी अपने मस्तक पर आरा रखवा कर, अपने शरीर को पुत्र ताम्रध्वज और रानी के के द्वारा चिराने लगे । भगवान प्रगट होकर, सिर से आरा उतार लिया और इनको दर्शन दिये । कलिकाल में सती स्यालसेठ के सत्य की परीक्षा की । पुत्र को जीवित करके फिर भगवान ने दर्शन दिया । भक्तमाल में देखो ।

जीवत माटी मिलि रहै, सांई सनमुख होइ ।
दादू पहली मरि रहै, पीछै तौ सब कोइ ।।४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवित अवस्था में ही, मिट्टी की तरह निर्अभिमान होकर, परमेश्वर का स्मरण करता हुआ, सदैव अन्तर्मुख वृत्ति से परमात्मा के सन्मुख बना रहै । और निर्वासनिक होकर, संसार की तरफ से मर रहै, वही जीवन मुक्त होता है । प्राण पिण्ड का वियोग होने के बाद तो, सभी कोई मरते हैं ।

(दीनता गरीबी)

दादू आपा गरब गुमान तजि, मद मछर अहंकार ।
गहै गरीबी बन्दगी, सेवा सिरजनहार ।।५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जाति, विद्या, रूप, बल, धन, आश्रम, ईर्षा, इन सब अहंकार को छोड़कर, निरअभिमानता धारण करके और आत्म प्राप्ति की साधना में तत्पर रहै, यही परमेश्वर की सच्ची सेवा है ।

मद मछर आपा नहीं, कैसा गर्व गुमान ।
सुपिनै ही समझै नहीं, दादू क्या अभिमान ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम के सच्चे जीवनमुक्त भक्त, उनके अन्तःकरण में न तो मद है आठ प्रकार का, न ईर्षा रूप मत्सरता ही है, और गर्व कुटुम्ब का, गुमान अपने शरीर का, और माया का अभिमान, यह तो मिथ्या हैं, इनको वे स्वप्न में भी सत्य नहीं जानते हैं ।

झूठा गर्व गुमान तजि, तजि आपा अभिमान ।
दादू दीन गरीबि व्हैं, पाया पद निर्वाण ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मिथ्या स्थूल शरीर के गर्व का त्याग करैं, गुमान का त्याग करैं । अपने कुल का आपा, माया का अभिमान, यह सब त्यागने योग्य मिथ्या है । औम संतों के आगे दीनता, नम्रता, धारण करैं । परमेश्वर के सामने गरीबी अपनावैं । मन में गरूरता न लावैं । ऐसे उत्तम जिज्ञासु ही मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं ।

कवित्त ;- कह हैं गरीबि सो तो, बिबि है जहान की ।
ज्ञान हूं की रानीं, सर्व जानन में अधिकानो,
मति उत्तम प्रमाण की ।
जाके किये सिद्ध साध, जेंते भये अंत आद,
बादी बाद सर्व जीते, समझ सयानन की ।
सात्विक सम्बोधन है, प्रेम की प्रबोधन है,
बड़े बड़े बोधन है, प्यारी भगवांन की ।
आज कलि कारण, निवारण अनेक द्वन्द,
कहैं है गरीबि सो तो, बिबि है जहान की ।

(बिबि = बहन)

दादू भाव भक्ति दीनता अंग, प्रेम प्रीति सदा तिहि संग ।।८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनके हृदय में परमेश्वर का भाव है, और भक्ति है । हरि गुरू संतों के सामने, दीन होकर रहते हैं । परमेश्वर में प्रेम है । प्राणीमात्र के साथ प्रीति है । उनके साथ सदा ही परमेश्वर, निवास करते हैं ।

साहिब सौं दिल लाइ रहु, मुरदा व्है मसकीन ।
दादू सिदक सबुरी सांच गहि, स्याबति राखि अकीन ।।६।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! साहिब परमात्मा के नाम स्मरण में, अपने अन्तःकरण को लगाये रहो । मुरदे की भांति चेष्टा रहित होकर रहै, ऐसा मसकीनिया होवै, अर्थात् सिदक कहिये, निश्चय और संतोष और सत्य वाणी बोलना, इमान रखना, इन सबको धारण करै । और मालिक में अन्तःकरण लगावै । वह निर्वासनिक, ऐसा सच्चा फकीर है ।

दादू राव रंक सब मरैंगे, जीवै नाहीं कोइ ।
सोई कहिये जीवता, जे मरि जीवा होइ ।।१०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! रंक से लेकर राजा पर्यन्त, सभी शरीरधारी प्राण पिण्ड के वियोगरूप, मरणे को, प्राप्त करैंगे । संसार के परमेश्वर से विमुख प्राणी, कोई भी सजीवनभाव को नहीं प्राप्त होंगे । उसी को जीवता कहिये, जो संसारभाव से रहित होकर, परमेश्वर में स्थित हो गया है ।

दादू मेरा बैरी मैं मुवा, मुझै न मारै कोइ ।
मैं ही मुझकौं मारता, मैं मर जीवा होइ ।।११।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मानव का यह आपा रूपी 'मैं' ही बैरी कहिये शत्रु, संसार का मूल है । और जब यह 'मैं' भाव अन्तःकरण में नहीं रहता है, तो फिर वह साधक निष्काम होकर, जीवन मुक्त अजर अमर भाव को प्राप्त होता है ।

बैरी मारे मरि गये, चित्तथैं बिसरे नांहि ।
दादू अजहूं साल है, समझि देखि मन मांहि ।।१२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरुष गुरु उपदेश को धारण करके, मन इन्द्रियों को निर्विषय बना लिये हैं। परन्तु जब तक अन्तःकरण में, यह भाव रहता है कि मैंने काम आदिकों को जीत लिया है। यह सूक्ष्म संस्कारों का अहंकार जब तक चित्त से नहीं जावे, तब तक संसार दुख सर्वथा नष्ट नहीं होता है।

दोहा :- मन मृत्तक को देखि करि, मति आनै बिसवास।
साधु तब लग हठ करै, जब लग पिंजर सांस ॥१२॥

(उभै असमाव)

दादू तो तूं पावै पीव कौं, जे जीवत मृत्तक होइ।
आप गंवाये पीव मिलै, जानत है सब कोइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये, जीता ही मृत्तक तुल्य हो जावे अर्थात् आपा अभिमान का त्याग करके, गुणातीत होवै। इस प्रकार अपने अनात्म अहंकार को मिटाने से ही, परमेश्वर की प्राप्ति होती है। इस बात को सभी कोई विचारवान जानते हैं।

दादू तो तूं पावै पीव कौं, आपा कछू न जान।
आपा जिस से ऊपजै, सोई सहज पिछाण ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तो तो मुमुक्षु पीव कहिए मुख प्रीति का विषय, परमेश्वर को प्राप्त करै। मैं और मेरा, इस मिथ्या अहंकार को मिटा दे। अर्थात्, यह अनात्म अहंकार जिससे कहिये, आत्म चेतन से प्रतिबिम्बत होकर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारमय चतुष्टय अन्तःकरण, यह सत्तावान होकर भासता है, नाम प्रतीत होता है। इस प्रकार, यह आपा जिससे उत्पन्न होता है, वह आत्म तत्व है। इस रीति से जो साधक, निरद्वन्द भाव से आत्मा का ज्ञान करके, वह जन अपरोक्ष ब्रह्म स्वरूप का अनुभव करता है।

दोहा :- बधिक धनुस सर मेर धर, जल ढिग पीवन जात।
रीसि सुत कर ले साधियो, डरे पितु कही बात ॥१४॥

दृष्टान्त :- एक जंगल में सरोवर की पाल पर, बधिक अपना धनुषवाण रखकर, सरोवर में पानी पीने गया। पीछे से एक ऋषिपुत्र आकर, उस धनुष पर बाण रखकर खैंचा, तब उसके पिता ऋषि ने उसको

आकर देखा और कुपित होकर बोले :- मूर्ख ! तूँ ब्राह्मण होकर, बधिक का धनुष उठाकर, खेंच रहा है। जाओ तुम बधिक हो । यानि भील हो । तब पुत्र ने पिता के चरणों में नमस्कार किया कि मेरा उद्धार किस प्रकार होगा ? पिता बोले :- जा, तुझे इस जन्म की बात याद रहेगी । और तूँ मर्यादा पुरूषोत्तम, राम के गुणानवाद गावेगा ? आद कबि कहलायेगा । वही ऋषिपुत्र दूसरे जन्म में भील का पुत्र बनकर बालिमकी कहलाये ।

दादू तो तूं पावै पीव कौं, मैं मेरा सब खोइ ।
मैं मेरा सहजैं गया, तब निर्मल दरसन होइ ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! तब तो तुम, पीव को कहिए सुखप्रीति का विषय जो परमात्मा है, उसको प्राप्त करोगे, जब यह मिथ्या, मैं और मेरापन, इस मिथ्या अहंकार को अन्तःकरण से मिटा दोगे अर्थात् जिसके अन्तःकरण से मैं और मेरा, यह अध्यास दूर हो गया, तभी अन्तःकरण में शुद्ध स्वरूप का कहिये आतमा का, साक्षात्कार होगा ।

मैं ही मेरे मोट सिर, मरिये ताखै भार ।
दादू गुरू परसाद सौं, सिरथैं धरी उतार ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजनों के अन्तःकरण पर अहम्ता, ममता रूप अज्ञान व्याप्त है, और अहम्ता रूपी भ्रम से ही स्वरूप आनन्द से विमुख रहते हैं । परन्तु गुरू उपदेश से जो उत्तम पुरूष, इस आपे को छोड़ा है, उन्हीं को परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।

मेरे आगे मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाइ ॥१७॥

टीका :- परम गुरू कहते हैं कि जिज्ञासु का अहंभाव विलीन होने पर, फिर ब्रह्मभाव ही शेष रहता है । परन्तु इस मिथ्या अहंकार की निवृत्ति, गुरू ज्ञान द्वारा होने से ही, ऐसा साक्षात्कार होता है ।

(सूक्ष्म मार्ग)

दादू जीवत मृत्तक होइ करि, मारग मांहैं आव ।
पहली सीस उतारि करि, पीछे धरिये पांव ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवित काल में ही, आपा अभिमान से रहित होकर, आत्म मार्ग में कहिये साधनों में चलो । प्रथम मिथ्या अहंकार रूपी मन का शीश उतार कर, पीछे ज्ञान भक्ति द्वारा, आत्म स्वरूप का निश्चय करिये ।

दादू मारग साध का, खरा दुहेला जाण ।
जीवत मृत्तक व्है चलै, रामनाम नीसाण ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संतों का मार्ग कहिये, साधना सत्य है । परन्तु इस पर कोई उत्तम मुमुक्षु ही चलता है । जीता ही मृत्तक तुल्य कहिए चेष्टा रहित होगा, वही राम नाम को हृदय में धारण करके, राम का साक्षात्कार करेगा ।

दोहा :- कबीर खरी कसौटी राम की, खोटा टिकै न चोइ ।
राम कसौटी सोटी कै, जे जीवत मृत्तक होइ ॥१९॥

दादू मारग कठिन है, जीवत चलै न कोइ ।
सोई चलि है बापुरा, जे जीवत मृत्तक होइ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग अति कठिन है । कोई संसारिक वासनाओं को ले करके, चलना चाहे तो नहीं चल सकता । वही उत्तम साधक चलेगा, जिसने देह अध्यास का त्याग किया है ।

दोहा :- जब तक देहाध्यास है, तब लग भक्ति न होइ ।
राम भक्ति सो करैगा, जिन तन मन डारा धोइ ॥२०॥

मृत्तक होवै सो चलै, निरंजन की बाट ।
दादू पावै पीव कौं, लंघै औघट घाट ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो पुरूष देह अध्यास से रहित, निष्काम गुणातीत होकर, निरंजन की भक्ति मार्ग पर चलैगा, वही पुरूष संसारभाव से मुक्त होगा और ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार करके, मग्न रहेगा ।

(जीवत मृत्तक)

दादू मृत्तक तब ही जाणिये, जब गुण इंद्री नांहि ।
जब मन आपा मिटि गया, तब ब्रह्म समाना मांहि ।।२२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मृतक तुल्य, निर्वासनिक, जब निश्चय करना, कि अन्तःकरण के सुख दुख आदि धर्म, जो रजोगुण तमोगुण की चंचलता और जड़ता अर्थात् कठोरता, करूरता तथा इन्द्रियों के विषय नहीं व्यापै, तब मृताक तुल्य निर्वासनिक हो गया, यह निश्चय करना ।

दोहा :- करी परीक्षा कारणैं, तपसी चे ढिग जाइ ।
राख खुसेरी आगि लग, गारी दई यह पाइ ।।२२।।

दृष्टांत :- एक तपस्वी जी तप कर रहे थे । धूणा लगा रखा था । एक कोई विवेकी भक्त ने आकर नमस्कार किया और बोला :- महाराज ! आपके शरीर का क्या नाम है ? तपस्वी बोला शीतलदास । भक्त ने सोचा कि देखें, महाराज शीतल हैं या अग्नि के सम्पर्क से गर्म हैं । तब चिमटा उठाकर आग खसेरने लगा । तपस्वी बोला :- क्या करता है ? भक्त :- महाराज ! मैं भूल गया । फिर दुबारा चिमटा लेकर; फिर खसेरने लगा । फिर तो तपस्वी जोर से बोले :- यह क्या करता है ? कुछ देर में फिर चिमटा लेकर, फिर खसेरने लगा । तब तो तपस्वी जी को बड़ा कोप हो गया और डांटा । चिमटा रख कर भक्त बोला :- महाराज ! आपका क्या नाम है ? तपस्वी बोला :- तेरी ऐसी की तैसी ? यह नाम है हमारा । भक्त जात गया मन में, अभी तो महाराज ! जैसा नाम है, ऐसे शीतल तो नहीं बने ।

दादू जीवत हीं मर जाइऐ, मरि माँहैं मिल जाइ ।
सांई का संग छाड़ि करि, कौण सहै दुख आइ ।।२३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निर्वासनिक होकर, अर्थात् अनात्म अहंकार रूप वृत्ति को त्यागकर, अन्तःकरण की अन्तर्मुख वृत्ति को, उसी चेतन्दस्वरूप लक्ष में विलय कर दे । फिर उस अधिष्ठान चेतन्य में, अभेद होने के बाद, फिर द्वैतभाव में वह, आकर के क्यों संसार का दुःख सहैंगे ।

(उभय निर्दोष)

दादू आपा कहा दिखाइये, जे कुछ आपा होइ ।
यहु तो जाता देखिये, रहता चिन्हौं सोइ ।।२४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मिथ्या तन मन धन आदि के, आपा को क्या दिखाते हो ? यह तो क्षण भंगुर है। इसका अहंकार करना वृथा है। और इससे अनन्य अविनाशी परब्रह्म को, अपने अन्तःकरण में गुरु उपदेश के द्वारा पहचानो, कहिये जानो। अर्थात् उसको आतमस्वरूप करके ही साक्षात्कार करो।

दादू आप छिपाइये, जहां न देखै कोइ।
पिव कौं देख दिखाइये, त्यों त्यों आनन्द होइ ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मिथ्या अहंकार को वहां छिपाना, जहां अन्तःकरण में कोई भी गुण विकार नहीं व्यापते हैं। वहां पर अहंकार को ऐसा त्यागो, अन्तर्मुख वृत्ति से, कि फिर कोई देख न सके और "सोहं, हंसो" में अखंड वृत्ति लगाइये। इस प्रकार पिव कहिए, मुखप्रीति का विषय परमेश्वर का, प्रगट दर्शन करके, साधक पुरूषों को उपदेश करिये।

(आपा निर्दोष)

दादू अंतरगति आपा नहीं, मुख सौं मैं तैं होइ।
दादू दोस न दीजिये, यौं मिल खेलैं दोइ ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अंतरगति कहिये अन्तःकरण में, जिनके अनातम अहंकार नहीं है, वह शरीर के हुए भी 'मैं तूं के व्यवहार को देखकर उनमें आपा नहीं समझना, क्योंकि अन्तःकरण की वृत्ति में 'आपा' नहीं चाहिये। अर्थात् परमेश्वर की प्रेमाभक्ति के करने वाले भक्तों के हृदय में, विरहरूप अग्नि से, उनका अहंकार जल जाता है। परन्तु प्रेमाभक्ति का आनन्द पाने के लिये 'मैं तूं' कहिए सेवक सेव्य रूप भाव, केवल कहने मात्र को रहता है। वास्तव में वे, आपा से मुक्त हैं।

जे जन आपा मेटि करि, रहै रांम ल्यौ लाइ।
दादू सब ही देखतां, साहिब सौं मिलि जाइ ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो उत्तम पुरूष मायावी आपा को त्याग कर, निर्गुण राम के स्मरण में अन्तर्मुख वृत्ति से, लय लगाकर रहता है वह 'देखतां' कहिए, निर्गुण राम का स्मरण करता करता, निर्गुण ब्रह्मरूप ही जाता है।

(दीनता गरीबी)

गरीब गरीबी गहि रह्या, मसकीनी मसकीन।
दादू आपा मेटि करि, होइ रह्या लै लीन ॥२८॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज से संत और भक्तों ने, जब दोनों शिष्यों के अन्दर गुणों की विशेषता देखकर प्रार्थना की कि इनका नामकरण रखिये, तब परम गुरूदेव ने इस साखी से सबको संकेत किया, अर्थात् बतलाया कि मसकीनी नाम दीनता गरीबी का है। यह दोनों गरीबों की सेबा करने वाले होने से, अर्थात् जन समुदाय से प्यार करते हैं। इसलिये इनका नाम गरीबदास और ममकीयदास है। यह अपने अनात्म अहंकार को मेटकर, जन समुदाय की सेवा में लीन रहैंगे।

(उभय असमाव)

मैं हौं मेरी जब लगै, तब लग बिलसै खाइ।
मै नाहीं मेरी मिटै, तब दादू निकट न जाइ ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक मैं हूं और मेरी है, तब तक अनात्म वासनाओं द्वारा, संसार के भोगों को भोगता है और जब अहम्ता भाव ही नहीं रहता है, तब ममता और संसार भाव ही जाता रहता है। फिर वह आत्मस्वरूप में ही अन्तर्मुख वृत्ति से, स्थिर रहते हैं।

दादू मना मनी सब ले रहे, मनी न मेटी जाइ।
मना मनी जब मिटि गई, तब ही मिलै खुदाइ ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक मनुष्य नाना प्रकार की वासना रूप अहंकार मन में ले रखा है। संसारिक पुरूषों को, इस अनात्म अहंकार का त्याग करना कठिन है। यदि अनात्म अहंकार को त्याग देवैं, तो फिर परमात्मा के मिलने में कोई देर नहीं होती है।

दोहा :- बन्दों के दरसन गयो, मोहमद मनी फकीर।
प्रत्यक्ष लखै मार्ग नहीं, दिवाल करी क्यों पीर ॥३०॥

दृष्टान्त :- एक ब्रह्मनिष्ठ निरपक्ष बेहदी फक़ीर थे। उनके दर्शन करने, बहुत से लोग जाने लगे। मोहम्मद साहब भी कई मुसलमानों को साथ लेकर, उसका दीदार करने गये। परन्तु मोहम्मद के दिल में, पैगम्बरपने का अभिमान था। सब लोगों को फकीर के दर्शन होने लगे। मोहम्मद फकीर के चारों तरफ घूम लिया, परन्तु उसको दीवार की आड़ दिखाइ पड़ती थी। तब बोला :- कि पीर ! दर्शन देओ, यह दीवार क्यों कर रखी है ? फकीर बोले :- हम तो मैदान में बैठे हैं, तेरे दिल की दीवार को गिराकर दर्शन कर, तो दर्शन हो जायेगा। यह सुनकर मोहम्मद का अहंकार चूर हो गया और फकीर का दर्शन पा लिया।

दादू मैं मैं जालि दे, मेरे लागौ आंगि ।
मैं मैं मेरा दूरि करि, साहिब के संगि लागि ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस जीवत अवस्था में ही "मैं हूं, मेरी है", इसको परमेश्वर की विरहरूपी अग्नि में जला दो । यह अनात्म वासनारूप अहंकार, इसको अन्तःकरण से दूर कर । और साहिब परमेश्वर के नाम स्मरण में स्थिर रहो ।

दोहा :- जाके डर तैं उठि गई, मैं तूं बड़ी बलाइ ।
तुलसी ताके भाग की, महिमा कही न जाइ ॥३१॥

दादू मैं नांहीं तब एक है, मै आई तब दोइ ।
मैं तैं पड़दा मिटि गया, तब ज्यौं था त्यौं हीं होइ ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसके अन्तःकरण में, मैं कहिए अनात्म अहंकार नहीं है, तब एक आत्म स्वरूप परमेश्वर ही है वहां । और जब मैं उत्पन्न हो जावे, तब तूं का भाव भी उत्पन्न होता है, अर्थात् संसार अध्यास भी प्रगट हो जाता है । और जब मैं और तूं का भेद ज्ञान मिट गया, तब जो ब्रह्मरूप पहले था, सोई ब्रह्मरूप अपने को निश्चय करता है ।

दोहा :- मैं मांही माया भई, मैं नांहीं तब नांहि ।
रज्जब मुक्ता मैं बिना, बंधन मैं ही मांहि ॥३२॥

(मनमुखी मान)

दादू खोई आपणी, लज्या कुल की कार ।
मान बड़ाई पति गई, तब सनमुख सिरजनहार ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम के सच्चे भक्त, अपनी लाज, कुल की काण मर्यादा, जिन्होंने अन्तःकरण से त्याग कर दी है, फिर मान की इच्छा, बड़ाई की भावना भी उनकी पतन हो गई है, फिर उन उत्तम साधकों के सिरजनहार सन्मुख ही है ।

दोहा :- कबीर कुल खोयां कुल ऊबरै, कुल राखलां कुल जाइ ।
राम निकुल कुल भेटि लै, सब कुल रह्या समाइ ।।३३।।

(परचै करुणा विनती)

नूर सरीखा करि लिया, बंदौं का बंदा ।
दादू दूजा को नही, मुझ सरीखा गंदा ।।३४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर अपने अनन्य भक्तों को निर अभिमान करके, अपना स्वरूप बना लेते हैं और इस अनात्म अहंकार के समान और कोई भी गन्दा नहीं है । इसलिये वह त्याज्य है ।

(जीवत मृतक)

दादू सीख्यूं प्रेम न पाइये, सीख्यूं प्रीति न होइ ।
सीख्यूं दरद न ऊपजै, जब लग आप न खोइ ।।३५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मनुष्य जन्म में, अनात्म अहंकार को त्यागे बिना, केवल कहने से और सुनने से, परमेश्वर का सच्चा प्रेम और सच्ची प्रीति नहीं प्राप्त होती । वैसे ही बिरह की बातें करने से, सच्चा विरह का दर्द नहीं उत्पन्न होता है । हे मुमुक्षुओ ! जब तक अपने आपे को नहीं त्यागता, तब तक परमेश्वर नहीं मिलता है ।

कहिबा सुनीबा गत भया, आपा पर का नास ।
दादू मैं तैं मिटि गया, तब पूरण ब्रह्म परकास ।।३६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवित काल में ही कथन और श्रवण का अहंकार जब मिट गया, तब अपने पराये का भी अध्यास छूट गया, । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि फिर मैं और तूं का भाव भी अन्तःकरण से उठ जाता है । तब वह मुक्तजन, ब्रह्मस्वरूप से ही प्रकासते हैं ।

दादू सांई कारण मांस का, लोही पानी होइ ।
सूकै आटा अस्थि का, दादू पावै सोइ ।।३७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, बिरहीजनों के शरीर का, मांस का तो खून हो जाता है। बिरह अग्नि से तप कर खून का पानी हो जाता है और शरीर की हड्डियां, सूखे आटे की तरह भीतर ही भीतर बिध करके, चून हो जाती हैं, लकड़ी की भांति। ऐसे मुमुक्षु बिरहीजनों को परमेश्वर प्राप्त होता है। अथवा प्रथम माँसरूप अहम्त्व को भूलकर, सतगुरु के उपदेश में स्थित होकर, और फिर प्रेमा भक्ति में लीन रहे। वे पुरूष, अस्थिरूप शरीर के अध्यास को भूलकर, आटा कहिये, जीवत मृतक, सब गुणों को पीसकर, आत्मा का साक्षात्कार करते हैं और फिर बिरह की कसौटी द्वारा, बिरहीजन, शरीर को लोही, मांस, पानी रूप, जो पार्थिव शरीर है वह अपने स्वभाव को बदलकर, तेजोमय होकर, प्रकासता है, अर्थात् भान होता है।

दोहा :- तुम संगति मैं बहु करीं, रहस्य न लीयो जाइ।
मुंड मुंडा अरू खर चढो, मैं पुनि करि उपाइ ।।३७।।

दृष्टान्त :- एक संत थे। उनके पास एक जिज्ञासु आता। एक रोज वह बोला :- कि मैंने आपकी सत संगति बहुत करी। परन्तु आपके हृदय का रहस्य, मेरे समझ में नहीं आया। संत बोले :- मुंड मुंडा ले और गधे पर चढ, अर्थात् संसार की तरफ से मुंह फेर ले। तब तूं रहस्य को प्राप्त होगा।

दोहा :- मंकण रीसि के जल भयो नाच्यों शिव समझाइ।
त्यूं रज्जब जू ने कही, गुरू आज्ञा इक पाइ ।।३७।।

दृष्टान्त :- मंकण ऋषि शिवजी के दर्शनों की इच्छा से बिरह द्वारा, शरीर को तपा कर, खून जलवत हो गया। तब शिवजी प्रगट होकर, नाचने लगे और वरदान मांग, वरदान मांग, कहने लगे। मंकण ऋषि :- बस दर्शनों की इच्छा थी। वैसे ही रज्जब जी महाराज ने साधक पुरूषों को बिरह का उपदेश गुरू आज्ञा पाकर कहा।

तन मन मैदा पीसि करि, छांणि छांणि ल्यौ लाइ।
यौं बिन दादू जीव का, कबहूं साल न जाइ ।।३८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस जीवित अवस्था में ही, तन मन के गुणों को मैदा की भांति पीसकर, निर्जीव बनाकर, विवेक द्वारा 'छांणि छांणि' कहिये, ब्रह्म विचार कर करके, स्वस्वरूप में लय लगाकर, जीव आवागमन के दुख से मुक्त हो जाता है। ऐसी साधना किये बिना, जीव का जन्म मरण नहीं छूटता।

दोहा :- मैंदा यहुजु पीसिये, बिचारि बिचारि ल्यौ लाइ।
सुन्दर याही जुगती बिन, साल मरम नहि जाइ ॥३८॥

पीसे ऊपरि पीसीये, छांणे उपरि छांणि।
तो आत्म करण ऊबरै, दादू ऐसी जाणि ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवत काल में ही नाना प्रकार की वासना और देह अध्यास को विचार विचार कर त्यागना ही पीसना और छाणना है। और फिर ब्रह्माकार वृत्ति का अन्तर अखंड अभ्यास करने से ही आत्म प्रकाश होता है।

पहलि तन मन मारिये, इनका मर्दैमान।
दादू काढै जंत्र मै, पीछे सहज समान ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस जीवित अवस्था में ही, प्रथम तन मन को गुण विकारों से रहित करिये अर्थात् अन्तर्वासनाओं का मरदन करै, कहिये, त्यागै। और फिर अपने आपको निरअभिमानता रूप कसौटी से निकाल कर, 'सहज' कहिये, निर्द्वन्द स्वरूप बना ले।

काटे ऊपरि काटिये, दाधे कौं दौं लाइ।
दादू नीरन सींचिये, तौ तरवर बधता जाइ ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस मनुष्य शरीर में ही, नाना प्रकार की वासनारूप इस वृक्ष को, वैराग्य रूप कुल्हाड़े में पुनः पुनः काटिये। सतसंग और विरह रूपी अग्नि से अहंकार को जला कर, पुनः पुनः जलाते रहना। और अज्ञानरूपी वार्त्ताओं का श्रवण रूप पानी को नहीं सींचना। तभी आत्म परचे प्राप्तिरूप वृक्ष, तत्वज्ञान वृद्धि को प्राप्त होवेगा।

दादू सबकौं संकट एक दिन, काल गहैगा आइ।
जीवत मृत्तक व्है रहै, ताके निकट न जाइ ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सबको कहिये, प्राणी मात्र को, एक रोज क्रम क्रम से, काल खाएगा। परन्तु जो महापुरुष जीते ही मृत्तकतुल्य, निर्वासनिक ब्रह्म स्वरूप होंगे, उनके काल समीप भी नहीं जायेगा।

दादू जींवत मृत्तक व्है रहै, सबको बक्त होइ ।
काढौ काढौ सब कहैं, नाम न लेवै कोइ ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे मृतक शरीर को देखकर, सभी घर वाले कहते हैं कि इसको घर से बाहर निकालो । श्मशान में ले जाकर जलाओ । कोई भी कुटम्बी नहीं कहते कि आज आज तो इसको रहने दो । इसी प्रकार जो संसार से उदासीन रहकर, निष्काम हो गये हैं, उन भक्तों को देखकर, संसारीजन उनसे, अप्रसन्न और उदासीन रहते हैं ।

दोहा :- रूप सनातन भ्रात द्वै, बिभो भूप परवान ।
त्याग्यो कागद कर पटक, किहूं न पूछ्यो आन ॥४३॥

दृष्टान्त :- रूप जी और सनातन जी, यह दोनों भाई थे और बंगाल सूबा के बड़े अफसर थे । एक रोज राज का मामला जटिल था । कागजों में उसको सुलझाने लगे । ऐसी वृत्ति लगी कि सारी रात निकल गई, निद्रा भी नहीं आई और सूर्य निकल आया । सूर्य देख करके, दोनों भाइयों ने विचार किया कि परमेश्वर का स्मरण करें, तो दस दफा घड़ी देखें और हे भ्राता ! इन मिथ्या पदार्थों में हमारा मन ऐसा लगा कि रात का भी पता न चला और निद्रा भी नहीं आई । इनको धिक्कार है । मनुष्य जन्म पाकर हम लोग, परमेश्वर से विमुख हो रहे हैं । इनका त्याग ही ठीक है । दोनों को तर तीव्र वैराग्य हो गया । उसी समय सब कुछ त्याग करके, किसी को कुछ न कह कर; चुपचाप चल दिये और वृन्दावन में आ गये । जीव गुसांई जी का सत्संग द्वारा, भगवान कृष्ण के साक्षात दर्शन प्राप्त कर लिये ।

(जरणा)

सारा गहिला व्है रहै, अन्तरजामी जाणि ।
तो छूटै संसार थैं, रस पीवै सारंग पाणि ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सभी मुक्त पुरुष, अन्तर्यामी परमेश्वर का साक्षात्कार करके, उसके प्रेम में अर्थात् आत्म चिन्तन में पूर्ण सावधान होकर, तथा संसार के पदार्थों से और व्यवहार से उदासीन होकर, रहते हैं । इस प्रकार संसार भाव से मुक्त होते हैं और अभेद निश्चय रूपी रस पीते हैं ।

गुंगा गहिला बावरा, सांई कारण होइ ।
दादू दिवाना व्है रहै, ताको लखै न कोइ ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मनिष्ठ मुक्त पुरुष, स्वस्वरूप को प्राप्त करके, "नामदेव गुंगे भये, गहिले भये जड़भर्त बाल्मिक बाबल भये० ।" अर्थात् अपनी इष्ट सिद्धि के लिये गुंगे कहिये, बाणी चेष्ठा रहित होकर, एवं गहिला, संकल्प से भी संसार से व्यवहार नहीं करते । इस तरह आत्म दीवाने रहते हैं कि कोई उनको जान भी नहीं सकते ।

दोहा :- असमंजस नृप को तनय, योग भृष्ट सोइ आहि ।
बाल अयोध्या के कित्ते, सरयू दिया डुबाइ ।।४५।।

दृष्टान्त :- अयोध्या के राजा, असमंजस का छोटा लड़का योगभृष्ट था । उसने कितने ही आयोध्या के लड़के लेजा लेजा कर, सरयू नदी में डुबा दिये । जब राजा को पता चला, तो राजा ने उसको बनवास दे दिया । जब बनवास में जाने लगा, तब जितने लड़के आयोध्या के डुबोये थे, सब को वापिस जीवित कर गया और ब्रह्मध्यान में स्थिर होकर, निरद्वन्द होकर विचरने लगा ।

(जीवत मृत्तक)

जीवत मृत्तक साध की, बाणी का परकास ।
दादू मोहे राम जी, लीन भये सब दास ।।४६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गुणातीत ब्रह्मनिष्ठ जीवनमुक्त संतों की बाणी से, आत्मज्ञान का प्रकाश होता है और फिर जिसको श्रवण करके, राम जी महाराज भी मोहित हो जाते हैं तथा साधक पुरुष स्वस्वरूप में लीन होते हैं । एवं संसार में उस बाणी को सुनकर, पंडित लोग चकित होते हैं ।

दादू जे तुं मोटा मीर है, सब जीवों में जीव ।
आपा देखि न भूलिये, खरा दुहेला पीव ।।४७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो तूं 'मोटा मीर' कहिये सर्व प्राणियों में विवेकशील महापुरुष है तो, संसार में अपनी मान प्रतिष्ठा को देखकर, सत्यस्वरूप परमेश्वर को, दुहेला कहिए, अति कठिनाई से प्राप्त होने वाले, सुखप्रीति का विषय पीव, परमेश्वर को नहीं भूल जाना ।

आपा मेट समाइ रहु, दूजा धंधा बादि ।
दादू काहै पचि मरै, सहजैं सुमिरण साध ।।४८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपने स्थूल शरीर के आपा को, कहिये अहंकार को त्याग करके, आत्म परायण होकर, निर्द्वन्द निष्काम भाव से, हरि का नाम स्मरण रूपी साधन करिये । और सकाम साधन सब वृथा हैं ।

दादू आपा मेटे एक रस, मन अस्थिर लै लीन ।
अरस परस आनन्द करै, सदा सुखी सो दीन ।।४९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो निष्कामी सेवक है, वह अपने अनात्म अहंकार को त्यागकर, राम नाम का स्मरण करता हुआ, अपने मन को संकल्प शून्य बनाकर, लै वृत्ति द्वारा, परमेश्वर के स्वरूप में, अरस परस कहिये, ओत प्रोत भाव को प्राप्त होकर, सदैव आनन्द में मग्न रहते हैं ।

(ईश्वर समर्थाई)

नहीं तहांथैं सब किया, फिर नांहीं व्है जाइ ।
दादू नाहीं होइ रहु, साहिब सौं ल्यौ लाइ ।।५०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो माया वास्तविक विचार किये से है नहीं, उससे सब नामरूप संसार रचा है । और फिर वह रचकर, आप स्वयं अकर्त्ता हो रहे हैं । इसी प्रकार मुक्तपुरूष भी अनात्म अध्यास से 'नाहीं' होकर, अर्थात् त्यागकर अपने अधिष्ठान चेतन्य ब्रह्म में अखंड लय लगाकर, अभेद होते हैं ।

(स्मरण नाम निरसंसय)

हमों हमारा करि लिया, जीवत करणी सार ।
पीछै संसा को नहीं, दादू अगम अपार ।।५१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्व ब्रह्मवेत्ता मुक्त पुरूष, स्वस्वरूप अनुभव करके, जीवनमुक्त होते हैं । और निरसंसय भाव से ब्रह्मानन्द में ही मग्न रहते हैं । वे पीछे के लिये, कोई काम बाकी नहीं रखते हैं ।

(मध्य निरपक्ष)

मांटी मांहै ठौर करि, मांटी मांटी मांहि ।
दादू समि करि राखिये, द्वै पख दुविधा नांहि ।।५२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! दीन गरीबी भाव को धारण करके, अहंकार भाव को छोड़। और जीवत मृत्तक होकर, शरीर रूप मिट्टी और मृत्तका को सम कहिये, कारण कार्य को एकरूप करके जानै। फिर जिनके अन्तःकरण में, अनात्मा में, आत्म भाव की स्फुरणा मात्र भी कभी नहीं फुरती है। फिर उनके अन्तःकरण में, द्वैत बुद्धि और संसारभाव समाप्त हो जाता है अर्थात् सर्वत्र ब्रह्म प्रकाश ही भान होता है।

(इति जीवत मृत्तक का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

* * *

॥ अथ शूरातन का अंग २४ ॥

"दादू जीवत मृत्तक होइ कर, मार्ग माहि आव०" इत्यादिक इन सूत्रों के व्याख्यान स्वरूप शूरातन के अंग का निरूपण करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥१॥

टीका :- निरन्जन देव, गुरू, संतों के चरणों में हमारी बारम्बार बन्दना है, क्योंकि जिनकी कृपा से जिज्ञासु शूरातन भाव द्वारा, संसार बन्धन से मुक्त होते हैं ।

(शूर मति साध निर्णय)

सांचा सिर सौं खेल है, यह साधूजन का काम ।
दादू मरणा आसंघै, सोई कहैगा राम ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे शूरवीर संत, आपा रूप अनात्म अहंत्व भाव को त्यागकर, अन्तःकरण की वृत्ति को ब्रह्माकार बनाना ही, साधक का काम है । इस प्रकार जो पुरुष, जीवत मृत्तक अवस्था को अंगीकार करै, वही जन राम का स्मरण करता है ।

दोहा :- सांई सीत न पाईये, बातौं मिलै न कोइ ।
रज्जब सौदा राम से, सिर बिन कदे न होइ ॥२॥

राम कहैं ते मरि कहैं, जीवत कह्या न जाइ ।
दादू ऐसैं राम कहि, सत्ती सूर समझाइ ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही राम का स्मरण करते हैं, जो जीते ही, आपा अभिमान से रहित हो गये हैं । जो आपा अभिमान में जीवित हैं, उनसे राम का स्मरण नहीं किया जाता । इस प्रकार राम का स्मरण करें कि जैसे सत्ती मृतक पति के साथ अपने शरीर को हवन कर देती है । और जिस प्रकार शूरवीर अपने मालिक के लिये, या देश रक्षा के लिये, अपना सिर देने को भी उद्यत रहता है । ऐसा ही राम का सेवक, सर्वस्व राम के समर्पण करके, राम का स्मरण करता है ।

जब दादू मरिबा गहै, तब लोगौं की क्या लाज ।
सत्तीराम सांचा कहै, सब तज पति सौं काज ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब सति मृतक पति के साथ, अपने शरीर को हवन कर देती है । इसी प्रकार सच्चे शूरवीर भक्त भी, लोक लाज को त्याग कर, परमात्मा रूपी पति से ही प्रीति करके, मनुष्य जन्म के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं ।

(शूरवीर कायर)

दादू हम काइर कुड़वा करि रहे, सूर निराला होइ ।
निकसि खड़ा मैदान मै, त्ता सम और न कोइ ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! देह अध्यासी कायर संसारीजन कूड़ते रहते हैं अर्थात् मन इन्द्रियों के विषयों में और व्यवहारिक कुटुम्ब के अध्यास में, फंसे हुए हैं । और सच्चे शूरवीर संतजन, निष्काम असंग रहकर, अहंकार से मुक्त हुए, स्वस्वरूप प्राप्ति के लिये, महावाक्यों की साधना में, तत्पर रहते हैं ।

(शूर सत्ती साध निर्णय)

मड़ा न जीवै तो संगि जलै, जीवै तो घर आण ।
जीवन मरणा राम सौं, सोई सत्ती करि जाण ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सती स्त्री का मृतक पति, यदि न जीवै, तो वह उसके साथ ही जल जाती है । और पति जीवित हो जावै, तो घर ले आती है । इसी प्रकार परमेश्वर रूप पति के निमित्त ही, शूरवीर संतों का जीना और मरणा सार्थक है ।

दोहा :– तिय पति दोउ धर पिंजरे, जात कामरू देश ।
जे जीवे तो आइ घर, नहिं तो अग्नि प्रवेश ॥६॥

दृष्टान्त :– एक पुरुष ने अपनी स्त्री को तोती रूप बना कर पिंजरे में रखा और आप बोला कि मैं कामरू देश में मंत्रसिद्धि प्राप्त, करने जाता हूं । अगर जीकर घर आ जाऊं, तो तुम्हें स्त्री रूप बना लूंगा, नहीं तो तुम मेरे वियोग में, अग्नि में प्रवेश कर जाना ।

जनम लगैं बिभचारणी, नख सिख भरी कलंक ।
पलक एक सनमुख जलि, दादू धोवै अंक ॥७॥

टीका :– हे जिज्ञासुओ ! व्याभिचारिणी स्त्री, पति की आज्ञा न मानने वाली, जन्म से मृत्यु पर्यन्त, नाखून से सिर तक, कलंक पाप से पूर्ण भरी रहती है । और पतिव्रता स्त्री पति के साथ जलकर, सम्पूर्ण शरीर के दोषों से मुक्त हो जाती है । इसी प्रकार सच्चे ब्रह्मनिष्ठ शूरवीर संतजन, बिरह अग्नि में अपने अनात्म आपा को जलाकर, वह अन्तःकरण के मल विक्षेप दोषों से रहित होकर, मुक्त हो जाते हैं ।

स्वांग सत्ती का पहरि करि, करै कुटम्ब का सोच ।
बाहरि सूरा देखिये, दादू भीतर पोच ॥८॥

टीका :– हे जिज्ञासुओ ! जैसे सति का स्वांग धारण करके, अर्थात् शृंगार करके, फिर परिवार की चिन्ता करै कि मैं पति के साथ जल जाऊंगी, तो मेरे परिवार का पीछे क्या हाल होगा ? तो वह पतिव्रता नहीं है । इसी तरह परमेश्वर का व्रत धारण करके, और फिर इन्द्रिओं के भोग वासनाओं की कामना करै, वह सच्चा शूरवीर निष्काम अनन्य भक्त नहीं है ।

दादू सती तो सिरजनहार सौं, जलै बिरह की झाल ।
ना वहु मरै न जलि बुझै, ऐसैं संगि दयाल ॥९॥

टीका :– हे जिज्ञासुओ ! जैसे सती और शूरवीर भक्त, बिरह अग्नि से अपने आपा को जलावें, उसी का पतिव्रत श्रेष्ठ है । और फिर वह अखंड ब्रह्म में ही अभेद होते हैं । इसो प्रकार सती पतिलोक में, पति के साथ सुहाग प्राप्त करती है ।

जे मुझ होते लाख सिर, तौ लाखों देती वारि ।
सह मुझ दीया एक सिर, सोई सौंपै नारि ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पतिव्रत शूरवीर संत आत्मा कहते हैं कि हे परमेश्वर रूप पति ! यदि हमारे लाख सिर भी होते तो हम लाखों सिर ही आपके न्यौछावर कर देते । परन्तु हे स्वामी ! आपने मुझे एक ही सिर दिया है । यही मैं बिरहीजन आपकी प्राप्ति के लिये, आपके अर्पण करती हूं ।

सती जलि कोइला भई, मुये मड़े की लार ।
यौं जे जलती राम सौं, सांचे संगि भरतार ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सती पतिव्रता स्त्री, मरे हुए मुरदे के साथ जलकर, कोयला हो जाती है । यदि वह सच्चे राम के साथ बिरह रूप अग्नि में जलती तो, सच्चे रामरूपी भरतार को प्राप्त कर लेती ।

मुये मड़े सौं हेत क्या, जे जीव की जाणै नांहि ।
हेत हरि सौं कीजिये, जे अंतरजामी मांहि ॥१२॥

टीका :- अब मृत्तक मुरदे से क्या प्रीति करती है ? जो तुम्हारे अन्तःकरण की प्रीति को नहीं जानता । अब इस प्रकार का हेत कहिए प्रेम, हरि परमेश्वर से कर । जो तेरे अन्तर, अन्तर्यामी रूप से स्थित हो रहे हैं ।

दोहा :- सतीं सुरपुर भुगति कै, बहुरी औतरैं आइ ।
जगन्नाथ जन राम का, रामहिं मांहि समाइ ॥१२॥

(शूरवीर कायर)

सूरा चढ़ि संग्राम कौं, पाछा पग क्यूं देइ ।
साहिब लाजै भाजतां, धृग जीवन दादू तेइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चा शूरवीर युद्ध करने को चढ़ाई करके, फिर शत्रुओं की सेना को देखकर, वापिस नहीं लौटता । वह जानता है कि अब मैं युद्ध से भागूंगा, तो मेरे राजा और सेनापति को लाज आवेगी

और मेरे जीवन को भी लोग धिक्कार देंगे । इसी प्रकार सच्चा शूरवीर भक्त, संसार से प्रीति हटाकर, परमेश्वर की अनन्य भक्ति धारण करता है । फिर वह मायावी पदार्थों की ओर नहीं जाता है ।

दोहा :- कबीर भक्ति दुहेली राम की, नहीं काइर का काम ।
शीस उतारैं हाथ करि, सो लेसी हरिनाम ॥१३॥

सेवग सूरा राम का, सोई कहैगा राम ।
दादू सूर सनमुख रहै, नहीं काइर का काम ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम का सच्चा शूरवीर भक्त, वही राम का निष्काम स्मरण करेगा । मन इन्द्रियों को अन्तर्मुख करने वाला, शूरवीर साधक ही, राम के सनमुख रहेगा । और संसारिक सकामी पुरूष राम का निष्काम स्मरण, कोई भी नहीं कर पायेंगे ।

दोहा :- सुन्दर तन मन आपनो, आवै प्रभु कै काम ।
रण मैं तैं भाजै नहीं, करै न लोन हराम ॥१४॥

काइर कामि न आवई, यहु सूरे का खेत ।
तन मन सोंपै राम कौं, दादू सीस सहेत ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! रण भूमि का मैदान सच्चे शूरवीरों का युद्ध स्थल है । यहां कायर पुरूष नहीं रूकेंगे । अर्थात् इसी प्रकार विषयी अहंकारी मनुष्य, इस साधना क्षेत्र में काम नहीं आवेंगे । किन्तु जो साधक आपा सहित, तन मन प्रभु के अर्पण करता है, उसी को धन्य है ।

जब लग लालच जीव का, तब लग निभैं हुवा न जाइ ।
काया माया मन तजै, तब चौड़ै रहै बजाइ ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक शरीर में अध्यास है, तब तक निर्भय नहीं हो सकता । अनेक प्रकार के

भय बने ही रहते हैं और जब मन, काया रूप काया रूप माया की आसक्ति का त्याग करै, तब 'चौड़े' कहिये निर्द्वन्द निरपक्ष होकर, मुक्तजन ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं।

दादू चौड़े मै आनन्द है, नाम धर्‌या रणजीत।
साहिब अपना करि लिया, अन्तरगति की प्रीति ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! भेदभाव से रहित, निरद्वन्द निरपक्ष अवस्था में आनन्द है। उसी ने अपना 'रणजीत' कहिये, आसुरी सम्प्रदा के गुणों को जीतने वाला, शूरवीर नाम सार्थक किया है। उसने अन्तःकरण की प्रीति से, परमेश्वर को अपना बना लिया है।

दोहा :- कबीर सूरैं शीस उतारिया, छाड़ी तन की आस।
आगैं थैं हरि मुलकिया, आवत्त देख्या दास ॥१७॥

दादू जे तुझ काम करीम सौं, तौ चौहटै चढ़ि करि नाच।
झूठा है सो जाइगा, निहचै रहसी सांच ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासु! यदि तूं कृपालु परमेश्वर का दर्शन प्राप्त करना रूपी काम को पूरा करना चाहता है तो, चतुष्टय अन्तःकरण को एकाग्र करके, वृत्ति को समष्टि चेतन से मिला कर, स्वस्वरूप में स्थिर करना रूपी ध्यान, अर्थात् नृत्य कर।

दोहा :- पीपा के तिय होइ दश, चली बरज ते लार।
मध्य बजार अर्ध कामरी, सब गई सीतां धार ॥१८॥

दृष्टान्त :- गढ गागरून के राजा, पीपा जी महाराज भक्त थे। जब आपको राज्य से वैराग्य हो गया, तब रामानन्द स्वामी का उपदेश ग्रहण करके, संत बन गये। इनके द्वादश रानी थी। जब उन्होंने सुना तो वह सब की सब आई और बोली :- हमें भी संतरी बना लो। रामानन्द स्वामी बोले :- आप लोग राज में रह कर, राज भोग भोगो। आपका प्रारब्ध निवृत्ति का नहीं है। जब वह नहीं मानी, तब बारह कम्बल बहुत छनछने मंगाये और बीच से फाड़ फाड़ कर बोले कि यह गहने वस्त्र उतारो और एक एक गले में पहनती जाओ। तब आमने सामने देखने लगी, और ग्यारह तो महलों में वापिस चली गई और सीतां जी पतिव्रता

देवी ने तत्काल गहने वस्त्र उतार कर, कफनी को गले में पहन कर , गुरू महाराज को नमस्कार किया । फिर भक्त पीपा जी और माता सीतां जी भारतवर्ष में भगवान कृष्ण की भक्ति द्वारा, बड़े बड़े पापी और दुष्टों को पवित्र बनाकर, करोड़ों मनुष्यों का उद्धार किया । और माता सीता ने भक्ति रूपी नृत्य किया, भगवान के सामने ।

(जीवत मृत्तक)

राम कहैगा एक को, जे जीवत मृत्तक होइ ।
दादू ढूंढे पाइये, कोटे मध्ये कोइ ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवत मृत्तक कहिये देह अध्यास से मुक्त होकर, निष्काम भाव से करोड़ों मनुष्यों में, कोई एक आध अनन्य ईश्वर का भक्त, राम का स्मरण करेगा । परन्तु ढूंढने से ही प्राप्त होगा ।

दोहा :- साहीब सबका मीत है, साहिब का कोई एक ।
नानक लखों में नहिं, कोटे मध्ये देख ॥१९॥

(शूर सती साध निर्णय)

सूरा पूरा संत जन, सांई को सेवै ।
दादू साहिब कारणै, सिर अपना देवै ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूरे सच्चे शूरवीर अनन्य भक्त, परमेश्वर की भक्ति करते हैं । वह परमेश्वर प्राप्ति के लिये अपना मस्तक भी देने को तत्पर रहते हैं ।

दोहा :- हरिजन हेतम सारिखा, सत्ती सूर कोई एक ।
जगजीवन मांथा दीया, रही नाम कीं टेक ॥२०॥

दृष्टांत :- हेतम की माता नूरां बड़ी सखी थी । वह प्रतिदिन एक बेहद्दी महातमा गुरुदेव का सतसंग करने जाया करती थी । हेतम भी बच्चेपन से उनके साथ जाते और संतों को नमस्कार करते । यह बड़े होने पर बड़े दानी हुए । साधु संतों की बड़ी सेवा करते थे । माता का इनको उपदेश था कि हे हेतम । खुदा के लिये तेरा कोई सिर भी मांग ले, तो दे देना । संत इसको हेतम बादशाह कहने लगे । दुनियां ने भी इसी नाम से पुकारना शुरू कर दिया । बादशाह ने हेतम को बुलाया और कहा तुम अपने आपको बादशाह

मत कहलाओ । मैं कब कहलाता हूं ? अपने आप ही कहते हैं । बादशाह ने सुना कि वह खुदा के लिये सिर भी दे सकता है, ऐसा दानी है । तब तो बादशाह मंत्री को बोला :- तुम संत का रूप बनाकर जाओ और हेतम से कहो, हम तेरा सिर लेने आये हैं, खुदा के नाम पर । मंत्री हेतम के यहां गया और हेतम ने आकर नमस्कार किया, संत रूप को । हेतम :- सेवा करने की आज्ञा देओ । संत :- तुम्हारा सिर चाहिये, खुदा के नाम पर । हेतम मां से पूछा । मां बोली पुत्र दे दो । हेतम आकर बोले :- मैंने कच्चा दूध पिया है, अपने हाथ से अपना सिर काटने में, मुझे दहसत होती है, आप मेरा सिर काट लें । मंत्री चकित हो गया । बादशाह को जाकर बोला :- हेतम का सिर काटने को, कोई संसार में पैदा नहीं हुआ । उपरोक्त वृत्तान्त सब सुना दिया । बादशाह भी चकित हो गया ।

सूरा झूझै खेत मैं, सांई सनमुख आइ ।
सूरे कौं सांई मिलै, तब दादू कालन खाइ ।।२१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे शूरवीर संतजन, परमेश्वर के सम्मुख होकर, भक्ति मार्ग में या अन्तःकरण रूपी खेत में गुण विकारों से युद्ध करते है, अर्थात् उनको मारते हैं और फिर ब्रह्म में अभेद होकर, मायावी काल कर्म से मुक्त हो जाते हैं ।

मरिवे ऊपरि एक पग, करत्ता करै सौ होइ ।
दादू साहिब कारणै, ताला बेलि मोहि ।।२२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवत मृत्तक अवस्था को प्राप्त करने के लिये दृढ़ निश्चय और विरह सहित पुकार करै । कर्त्ता परमेश्वर जो कुछ करेगा सो होगा । विरहीजनों के तो परमात्मा की प्राप्ति के लिये, एक ताला तलप, और बेलि बिलाप ही अन्तःकरण में रहता है ।

(हरि भरोसा)

दादू अंगन खैंचिये, कहि समझाऊं तोइ ।
मोइ भरोसा राम का, बांका बाल न होइ ।।२३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे साधक परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, शूरवीरता धारण करके, फिर अपने तन मन को परमेश्वर की अनन्य भक्ति से अलग नहीं करते । अर्थात् प्रभुभक्त होकर, साधन मार्ग से नहीं हटना । क्योंकि तन मन सब परमेश्वर के अर्पण कर दिया तो, फिर उनको डर भी क्या है ?

बहुत गया थोड़ा रह्या, अब जीव सोच नीवार।
दादू मरणा मांडि रहु, साहिब के दरबार ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आयु का बहुत समय परमेश्वर की अराधना किये बिना चला गया। अब तो एक हिस्सा आयु बची है। अपने अन्तःकरण में, भौतिक सुख दुख आदि की चिन्ता को छोड़कर, परमेश्वर के दरबार में, अर्थात् अन्कःकरण में, निरद्वन्द होकर, शूरवीरता के सहित, नाम स्मरण करो।

दोहा :- तैं जीव सुख किये घने, दुख भोगे ये अनन्त ।
अब सुख दुख को पीठ दे, सुन्दर भज भगवन्त ॥२४॥

दोहा :- रैन अथग्गड़ सब गई, थके जू पिंजर पाउं ।
पातर कहै पखाव जी, मधुरो मधुरो बाव ॥२४॥

श्लोक :- गतं बहु चिरंकालं, अल्प तिष्टन्ति सरवरी ।
करो चित्त समाधानं, सज्जनों मन रंजनं ॥२४॥

दृष्टान्त :- एक राजा ने बहुत दिनों से महावत की तनखा रोक रखी थी। अपनी जवान लड़की की शादी नहीं करी थी। अपने जवान लड़के को युवराज पद नहीं दिया था। एक रोज दरबार में रात्रि को, एक गायका, गाना और नृत्य कर रही थी। उसी रात को महावत अंकुश लिये बैठा था, राजा को मारने के लिये, राजकन्या सोने के गिलास में जहर मिलाकर बैठी थी, कि राजा पानी मागेंगा, तो जहर दे दूंगी, क्योंकि मेरी शादी नहीं करता। राजकुमार सोने के मूठ की तलवार लिये बैठा था। और विचारा कि इस तलवार से राजा का सिर उतार दूंगा। मुझे युवराज नहीं बनाता। रात्रि के तीन पहर खत्म हो गये, गायन और नृत्य करते करते। चौथे पहर में गायका बोली :- कि मृदंग बजाने वाले, अब दूगन पर मत बजा, क्योंकि मेरे नृत्य करते करते पांव थक गये हैं। तब मृदंग वाला बोला :- "गतं बहु चिरंकालम्" - बहुत रात बीत गई। अपने चित्त में धैर्य रख और इस सभा में सज्जनों के मन को प्रसन्न कर ले। यह सुनते ही महावत्त को ज्ञान हो गया कि यह मुझे कहता है कि राजा को मत मार, राजा की बहुत उमर खत्म हो हो गई। तूं क्यों अपयश लेता है। राजपुत्र मुझें सब तनखा दे देगा, राजा बनने पर। लड़की ने सोचा, "मुझे उपदेश करता है, कि अपयश क्यों लेती है ? राजा के बाद राजकुमार मेरा भाई, मेरी शादी कर देगा। राजपुत्र ने सोचा, मुझे उपदेश करता है कि राजा को मारकर क्यों कलंक लेता है ? कुछ दिन बाद

राजा अपने आप ही मर जायेगा, फिर मैं ही राज करूंगा ? यह सोचकर महावत ने, सोने का अंकुश गायका को दे दिया। राज कन्या ने जहर फेंककर, गिलास गायका को दे दिया। राजपुत्र ने सोने की मूठ की तलवार दे दी और राजा ने सोचा की यह मुझे उपदेश करता है कि राजा तेरी बहुत आयु तो चली गई, अब थोड़ी आयु रह गई। इन सबके मन को राजी कर दे। राजा ने महावत की तनखा दे दी। कुछ दिन में कन्या की शादी कर दी। राज कंवर को राजगद्दी दे दी और आप राजा जंगल में जाकर, तप करके, अपना उद्धार कर लिया। ब्रह्मऋषि सतगुरू महाराज कहते हैं कि 'बहुत गया थोड़ा रहा, अब जीव सोच नीवार०।''

(शूरवीर कायर)

जीवूं का संसा पड्या, को काकौं तारै।
दादू सोई सूरिमां, जे आप ऊबारै ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! संसारिक मनुष्य विषय वासनाओं में फंसे हुए हैं। वे अपने आपको नहीं तार सकते, तो दूसरों को क्या तारेंगे ? वही सच्चे शूरवीर हैं जो मनुष्य जन्म पाकर, परमेश्वर की अनन्य भक्ति और सतसंग द्वारा, अपने आपको संसार से तार लेते हैं।

जे निकसै संसार थैं, सांई की दिसी धाइ।
जे कबहूं दादू बाहुड़ै, तौ पीछै मार्या जाइ ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पूर्व संस्कार या सतगुरू कृपा से संसार में आसक्ति का त्याग करके, परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग भक्ति वैराग्य में लगैं, अर्थात् आत्मचिन्तन में लग कर, यदि फिर वृत्ति को बहिमुख करैं, तो वे पुरुष आवागमन में ही भ्रमते रहते हैं।

दादू कोई पीछै हेला जिन करै, आगै हेला आव।
आगै एक अनुप है, नही पीछे का भाव ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'पीछै' कहिए, संसार के विषय वासनाओं का चिन्तन नहीं करै, सच्चा सेवक शूरवीर होकर, गुरू उपदेश आत्म चिन्तन के मार्ग पर दृढ़ रहै। एकत्व में आनन्द है। ऐसे गुणातीत पुरुषों के अन्तःकरण में विषय वासनाओं की फुरना नहीं होती है। वे अखंड ब्रह्माकार वृत्ति में लयलीन रहते हैं।

पीछे को पग ना भरै, आगै को पग देइ।
दादू यहु मत सूर का, अगम ठौर को लेइ ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पीछे को कहिये, मायिक अनात्म पदार्थों में दृढ़ता न करै। विवेक वैराग्य आदि साधनों को धारण करै। सच्चे शूरवीर साधक का यही मत है कि वह अगम परमेश्वर को अन्तःकरण रूप ठौर में प्राप्त करता है।

आगा चलि पीछा फिरै, ताका मुंह मदीठ।
दादू देखै दोइ दल, भागै देकर पीठ ॥२९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आत्म प्राप्ति के विवेक वैराग्य आदि साधनों में चलकर, और फिर वापिस प्रवृत्ति मार्ग में आवे तो, उसके दर्शनों से कोई लाभ प्राप्त नहीं होता। क्योंकि 'दोइ दल' कहिये द्वन्दात्मक वृत्ति में उलझ कर, आत्म विमुख होवै, तो उसको आत्म स्वरूप प्राप्ति संभव नहीं है।

दादू मरणाँ मांडि करि, रहै नहि ल्यौ लाइ।
कायर भाजै जीव ले, आरणि छाड़ै जाइ ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब साधन क्षेत्र का मैदान छोड़कर, कायरता से वापिस इस संसार के प्रवृति मार्ग में आवै, तो कायर है। जैसे शूरवीरों के बखतर पहन कर, रण भूमि में जावै और युद्ध को देख करके, कायरता से भाग छूटै, तो वह सेनापति, और राजा को, क्या मुंह दिखलावै ? इसी प्रकार कायर साधक, परमेश्वर को नहीं प्राप्त हो सकता।

सूरा होई सुमेर उलंघै, सब गुण बंध्या छूटै।
दादू निरभै व्है रहे, काइर तिणा न टूटै ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे शूरवीर पहाड़ों के ऊपर होकर भी युद्ध स्थल में पहुंचते है और निर्भय होकर युद्ध मांडते हैं। इसी प्रकार सच्चे शूरवीर साधक, वासना रूप पहाड़ों को उलांघ कर, गुणों के बन्धनों से मुक्त होते हैं। और काल कर्म से निडर रहते है और सांसारिक विषयी पामर मनुष्यों से सामान्य भोग वासनाओं का भी उनसे कभी त्याग नहीं होता।

दोहा :- शाल भद्रता बहिन पति, पुनी द्विज तुलसी दास ।
सोझो सुलतानी किते, गृह तज भये उदास ॥३१॥

दृष्टान्त :- साल भद्र की बहन का पति धनासेठ, उसको सतसंग द्वारा मन्द वैराग्य हुआ । उसने सोचा सबसे पहले स्त्रियों का त्याग करूं । एक स्त्री का रोज त्याग करने लगा, उस त्याग में सालभद्र की बहन भी आ गई । जब बहन सालभद्र के पास गई । सालभद्र :- बहन कैसे आई ? उपरोक्त वृत्तान्त सुना दिया । सालभद्र बोले, कायर है । वह बहनके बोल सुनते ही वैराग्य को प्राप्त हो गया और तत्काल बत्तीस स्त्रियों के सहित सब कुछ त्याग दिया । और जाकर धनासेठ को बोला :- उठ कायर, यह त्याग तो कायरों का होता है । सच्चे शूरवीरों का नहीं । इसी प्रकार तुलसीदास जी स्त्री के बोल सुनकर वैराग्य को प्राप्त हुए ।

एक सोझा भक्त और उनकी स्त्री दोनों को सतसंग द्वारा वैराग्य हो गया । एक छोटा बच्चा गोद में था । उसको लेकर बाकी सब बाल बच्चों को सोते हुए छोड़कर, निर्जन स्थान में चल पड़े । आगे चलकर स्त्री बोली :- पतिदेव ! अपन ने क्या त्यागा ? यह छोटा बच्चा, मोह जाल तो साथ ही ले आये । तत्काल पेड़ के पत्ते तोड़कर, जमीन पर पत्ते बिछा दिये और उस बच्चे को वहां लेटा कर, आगे चल दिये । इसको तर तीव्र वैराग्य कहते हैं । ऐसे ही सुलतान शाह बादशाह, बलख बुखारे का, बांदी के बोल सुनकर, तत्काल बादश्यात को त्याग कर, वैराग्य में मग्न होकर, जहां तहां घूमने लगे ।

(शूर सती साध निर्णय)

सरप केसरि काल कुंजर, बहू जोधा मारग मांहि ।
कोटि में कोई एक ऐसा, मरण आसंघि जाइ ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मोक्ष मार्ग में बड़े बड़े अन्तराय हैं । सशंय रूपी सर्प, क्रोध रूप केसरी शेर, काम रूप कुंजर , ऐसे ऐसे बहुत से योद्धा, प्रतिबन्धक हैं । करोड़ों साधकों में कोई एक आध सच्चा शूरवीर साधक है, जो मृत्तक होकर, निर्वासनिक मोक्ष मार्ग में जाता है अर्थात् मोक्ष मार्ग के साधनों का संपादन करता है ।

दादू जब जागै तब मारिये, बैरी जियके साल ।
मनसा डायन काम रिपु, क्रोध महाबलि काल ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब अन्तःकरण में अनात्म वासना उत्पन्न होवे, आसुरी गुणों की फुरना होने लगे, तभी इनको वैराग्य और विवेक द्वारा मारिये, क्योंकि यह जीव के शत्रु हैं । जीव को स्वस्वरूप में नहीं लगने

देते, मनसा तो मानो डाकनी ही है, कामदेव तो मानो महाशत्रु है, और क्रोध तो मानो प्रलय काल की अग्नि ही है। यह जीव को जलाते और खाते रहते हैं।

पंच चौर चितवत रहै, माया मोह बिख जाल।
चेतन पहरै आपणै, कर गहि खड़ग संभाल ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह पांच ज्ञानेन्द्रियां पांचों विषयों का चितवन करती रहती हैं। माया और माया का कार्य, मोह ममता आदि, और संसार के नाना प्रकार के विषय, यह सब माया का जाल है। हे साधक ! आयु की चारों अवस्थाओं में, बुद्धिरूपी हाथ में ज्ञान रूपी खड़ग लेकर, तत्पर बना रहै।

काया कबज कमान करि, सार सबद करि तीर।
दादू यहु सर सांधि करि, मारै मोटे मीर ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! स्थूल शरीर को कसौटी द्वारा, कमान की तरह बना ले। गुरुदेव का तत्वज्ञान रूपी शब्द ही मानो इसके ऊपर तीर है। इस बाण को लय वृत्ति द्वारा धारण करके, काम आदि महाशत्रुओं को मार। और आत्माकार वृत्ति बनाकर, स्वस्वरूप में स्थिर हो जा।

काया कठिन कमान है, खांचै बिरला कोइ।
मारै पंचों मृगला, दादू सूरा सोइ ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह स्थूल शरीर कठिन कमान है अर्थात् इसको विषय वासनाओं की तरफ से हटाने वाला कोई बिरला ही साधक पुरुष है। वही सच्चा शूरवीर साधक पांच ज्ञानेन्द्रिये रूपी अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद इन पांचों मृगों को गुरुदेव के तत्वज्ञान रूप शब्द बाण से मारता है अर्थात् निर्जीव कर देता है।

जे हरि कोप करै इन ऊपर, तौ काम कटक दल जांहि कहां।
लालच लोभ क्रोध कत भाजैं, प्रगट रहे हरि जहाँ तहां ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो संतो पर दया करके, स्वयं हरि ही काम आदि पर कोप करें, तो यह काम आदि भाग कर, फिर कहां जावेंगे। अर्थात् फिर वह मारे जावेंगे। क्योंकि परमेश्वर तो सर्वत्र ही व्यापक हैं। इसलिये काम आदि से बचने के लिये, निरन्तर हरि की शरण ग्रहण करके रहो, और नाम स्मरण करते रहो।

(जीवत मृत्तक)

तब साहिब कौं सिजदा किया, जब सिर धर्‌या उतारि ।
यौं दादू जीवत्त मरै, हिरस हवा कौं मार ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब साधक अपना अहंकार रूपी मस्तक उतार कर, परमेश्वर में लीन करै, तो फिर साहिब की सिजदा कहिये, निवाज बन्दगी पूरी होती है । ब्रह्मऋषि सतगुरू देव कहते हैं कि हे साधक पुरुषों ! इस प्रकार जीवत ही मृतक तुल्य होकर, देखा देखी की भावना को, दमन करो ।

(सूरातन)

दादू तन मन काम करीम के, आवैं तो नीका ।
जिसका तिसकौं सौंपिये, सोच क्या जीव का ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब यह तन मन, सर्वस्व प्रभु के अर्पण कर दिया, तो फिर अति उत्तम है । फिर तो केवल परमेश्वर की समर्थाई का अर्थात् सर्वज्ञता का ही विचार कर, कि जिस परमेश्वर का यह सब कुछ है, तो उसको देने में मेरा है ही क्या ? तब फिर जीव का उद्धार होने में संदेह नहीं है ।

जे सिर सौंप्या राम कौं, सो सिर भया सनाथ ।
दादू दे ऊरण भया, जिसका तिसकै हाथ ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मनुष्य जन्म पाकर, सच्चे शूरवीर साधक, तन मन का अहंकार रूपी सिर परमेश्वर के अर्पण कर दिया, तो फिर वह सिर परमेश्वर का ही हो चुका । ब्रह्मऋषि सतगुरू देव कहते हैं कि इस प्रकार साधक परमेश्वर के अर्पण करके, ऊरण हो गये । जिसका था उसी के हाथों में सौंप दिया ।

जिसका है तिसकौं चढे, दादू ऊरण होइ ।
पहली देवै सो भला, पीछै तौ सब कोइ ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मनुष्य शरीर जिस परमेश्वर का दिया हुआ है, निष्काम शुभ कर्मों के द्वारा, यह उसी को देकर ऊरण हो । इस प्रकार जो साधक पुरुष, जीवित काल में ही अर्पण करै, वही भला है । पीछे अन्त समय में तो, सभी का छीन लिया जाता है । फिर आगे क्या पता कौनसा शरीर दें ?

दोहा :- सर्व वस्तु जगदीस की, जगन समरपै ताहि।
तन त्यागै त्यागै सबै, भगवत बिमुख हि जाहि ॥४१॥

सांई तेरे नाम परि, सिर जीव करूं कुरबान।
तन मन तुम परि सिर वारणै, दादू पिंड पराण ॥४२॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरु महाराज कहते हैं कि हे परमेश्वर ! आपका नाम ही, हमारे भक्तों का आधार है। और आपकी प्रेमा भक्ति का, अमृत पान करने को, हम तन मन की सम्पूर्ण सौंज, सर्व आपके समर्पण करते हैं, और आपका नाम स्मरण मांगते हैं।

अपने सांई कारणै, क्या क्या नहीं कीजे।
दादू सब आरम्भ तजी, अपणा सिर दीजे ॥४३॥

टीक. :- हे जिज्ञासुओ ! अपना स्वामी परमेश्वर, उसकी प्राप्ति के लिये, हम सभी शास्त्रोक्त कर्म करें। और सम्पूर्ण सकाम कर्मों का त्याग करके, हम बिरही जन, अपना सिर भी देने को तत्पर हैं। अर्थात् सब कल्पना, अहंकार और वासनाओं का त्याग करके, प्रभु की अनन्य शरण ग्रहण करो।

सिर कै साटै लीजिये, साहिब जी का नांव।
खेलै सीस उतार करि, दादू मैं बलि जांव ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! आप आपना आपा अभिमान रूपी मस्तक देकर, परमेश्वर के नाम को लेओ। हे साधक ! जो बिरहीजन भक्त, अपना अहंकार रूपी सिर उतार कर परमेश्वर के अर्पण करते हैं वही परमेश्वर से अभेद निश्चय रूप खेल खेलते हैं, उनकी हम बलिहारी जाते हैं।

खेलै सीस उतार करि, अधर एक सौं आइ।
दादू पावै प्रेम रस, सुख मै रहै समाइ ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शूरवीर साधक, मलीन अहंकार रूपी अपना मस्तक उतार कर, अभेद निश्चय रूप खेल, ब्रह्म के साथ, एकत्व भाव को प्रेमा आनन्द को पान करके, सुख स्वरूप ब्रह्म में ही रमा कर रहता है। फिर वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

(मरण भय निवारण)

दादू मरणे थैं तूं मति डरै, सब जग मरता जोइ ।
मिलि करि मरणा राम सौं, तौ कलि अजरावर होइ ।।४६।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! प्राण पिण्ड के वियोग रूप मरणे से नहीं डरना, क्योंकि सारा जगत ही, मरता जन्मता दीख रहा है । परन्तु मरणा उसी का सार्थक है, जो जीवित काल में ही राम से मिल गये है और फिर शरीर को छोड़ा है । वह इस कलिकाल में अजर अमर भाव को प्राप्त हो गये हैं ।

दादू मरणे थैं तूं मति डरै, मरणा अंति निदान ।
रे मन मरणा सिरजीया, कहिले केवल राम ।।४७।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! मरने से नहीं डरना, क्योंकि जो उत्पन्न हुआ है, वह तो सब परिवर्तनशील है ही । हे मन ? मरणा तो स्थूल शरीर के साथ ही जन्म लिया है । निष्काम भाव से राम का स्मरण करके, जीवित काल में ही, इस मरणे से मुक्त हो जा ।

दादू मरणे थैं तूं मति डरै, मरणा पहूंचा आइ ।
रे मन मेरा राम कहि, बेगा बार न लाग ।।४८।।

टीका :- हे मन ! मरने से अब क्या डरता है ? मरणा तो अत्यन्त नजदीक आ गया है । अब तो हे हमारे मन ! मरने से मुक्त होना है तो, राम का स्मरण कर । और जल्दी कर, इसमें तनिक भी देर मत करैं ।

दादू मरणे थैं तूं मत डरै, मरणा आजि कि काल ।
मरणा मरणा क्या करै, बेगा राम संभाल ।।४९।।

टीका :- हे मन ! इस स्थूल शरीर का नाश तो, आज या कल अवश्य होना है । अब तूं मरणा है मरणा है, यह ऐसे क्या करता है ? राम का स्मरण करने में देर मत करैं ।

दोहा :- कबीर आज कांल की पंच दिन, जंगल होइगा बास ।
ऊपर ऊपर फिरहैंगे, ढोर चरैंगे घास ।।४९।।

दादू मरणा खूब है, निपट बुरा बिभचार ।
दादू पति को छाड़ कर, आन भजैं भरतार ॥५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवित काल में ही, मुर्दावत्त निर्बासनिक होना, बहुत अच्छा मरना है । परन्तु परमात्मा को छोड़ करके, दूसरों से कहिये, अन्य देवी देवताओं से प्रीति करना बुरा है । क्योंकि जो स्त्री अपने पति का त्याग करके, दूसरे को अपना भरतार अपनाती है, उसका जन्म पतिव्रत धर्म के बिना, निरर्थक ही जाता है ।

दादू तन तैं कहां डरांइये, जे बिनसि जाइ पल बार ।
काइर हुवा न छूटिये, रे मन हो हुसियार ॥५१॥

टीका :- हे मन ! इस शरीर के मरने से क्या डरता है ? यह तो एक एक पल में जा रहे हैं और जाने वाला है । अर्थात् कायर होकर, विषयों की चाहना में और संसार के मायावी पदार्थों की हाय हाय में लग कर, अपना लक्ष्य, जो अधिष्ठान चेतन्य परमेश्वर है, उसके स्मरण से अलग नहीं होना ।

दादू मरणा खूब है, मर माहै मिलि जाइ ।
साहिब का संग छाड़ करि, कौन सहै दुख आइ ॥५२॥

टीका :- हे मन ! जीवतकाल में ही निर्वासनिक रूप मरणा, जीवत मृत्तक मरणा कहा जाता है । यह मरणा बहुत अच्छा है । यह मरणा तो परमेश्वर रूप कर देता है । परमेश्वर का संग छोड़कर, फिर दुनियां में आकर, जन्म मरण का दुख कौन सहै ?

(शूरातन)

दादू मांहैं मन सौं झूझ करि, ऐसा सूरा बीर ।
इंद्रि अरि दल भान सब, यों कलि हुवा कबीर ॥५३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! भीतर ही अर्थात् अन्तःकरण में ही शूरवीरता धारण करके झूझै, ऐसा शूरवीर इन्द्रिये रूपी शत्रुओं के दल को भान कहिये मार कर, कलिकाल में, कबीर जैसे शूरवीर हुए हैं ।

सांई कारण सीस दे, तन मन सकल सरीर ।
दादू प्राणी पंच दे, यौं हरि मिल्या कबीर ॥५४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की प्राप्ति के लिये जीवनमुक्त पुरुष, अपना सम्पूर्ण शरीर, परमेश्वर के अर्पण कर देते हैं। और इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर भी, विचार द्वारा उसी में लय करके, कबीर की तरह, परमेश्वर में अभेद हो जाते हैं।

दोहा :- सुन्दर भजि भगवंत को, उधरे संत अनेक।
सहीं कसौटी शशि परि, तजीं न अपनी टेक ।।५४।।

सबै कसौटी सिर सहै, सेवग सांई काज।
दादू जीवन क्यौं तजै, भाजै हरि कौं लाज ।।५५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के सच्चे शूरवीर सेवक, परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, साधन कोटी के सम्पूर्ण दुखों को सहन करते हैं। परमेश्वर और परमेश्वर के नाम को अपना जीवन समझकर, फिर उसका त्याग नहीं करते हैं। क्योंकि वह जानते हैं कि त्यागने से हमारे स्वामी हरि को लाज आवैगी।

अर्थात् जैसे शूरवीर सब कसौटी सहता है, किन्तु रण से नहीं भागता है। और सती चित्ता में जल जाती है परन्तु अपने पतिव्रत धर्म और पति बीड़द को नहीं लजाती है। इसी तरह भक्ति ही संतो की जीवनी कहिये आधार है। ऐसे निष्काम पतिव्रत धर्म धारण करने वाले संतजन, अपने स्वामी परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये, साधन काल की कसौटी सब सहन करते रहते हैं। परन्तु प्रभु भजन से अलग नहीं होते।

सांई कारण सब तजै, जन का ऐसा भाव।
दादू राम न छाड़ियें, भावै तन मन जाव ।।५६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के भक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, स्थूल सूक्ष्म, सम्पूर्ण वासनाओं का त्याग करते हैं। परंतु राम के स्मरण का त्याग नहीं करते। चाहे उनका तन मन रहै या न रहै।

(पतिव्रत निष्काम)

दादू सेवग सो भला, सेवै तन मन लाइ।
दादू साहिब छाड़ि करि, काहू संग न जाइ ।।५७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वही शूरवीर पतिव्रत धर्म धारण करने वाला सेवक, भला अर्थात् श्रेष्ठ है, जो अपना तन और मन को बाहर के विषयों से रहित करके, परमेश्वर की आराधना में लगाता है । फिर वह परमेश्वर का त्याग करके, किसी भी वासनाओं के साथ रहीं जाता ।

पतिव्रता पति पीव कौं, सेवै दिन अरु रात ।
दादू पति कौं छाड़ि करि, काहू संगी न जात ।।५८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे सच्ची पतिव्रता स्त्री, पति की रात दिन आराधना में लगी रहती है । पतिव्रत धर्म को छोड़कर, किसी भी बहिरंग साधनों में नहीं जाती है । इसी प्रकार परमेश्वर के सच्चे शूरवीर, पतिव्रत धर्म धारण करने वाले सेवक, परमेश्वर को छोड़कर, किसी अन्य बहिरंग साधनों में नहीं जाते ।

दोहा :- सूर्यवंशी कमलनी, शशी सन्मुख कुमलाइ ।
ज्यूं रज्जब रत्त राम सौं, दूजा दिल न समाइ ।।

दोहा :- सिंह न सूंघै घास कौं, जे बहुते होहि पास ।
त्यूं रज्जब दीदार बिन, कछु न चाहै दास ।।

दोहा :- सुर नर देवी देवता, सब जग देखा जोइ ।
रज्जब नांहि राम सा, सगा सनेही कोइ ।।५८।।

(सूरातन)

दादू मरिबो एक जुबार, अमर जुकेड़ै मारिये ।
तौ तिरीये संसार, आत्म कारिज सारिये ।।५९।।

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! मरना ऐसा ही ठीक है, जिसमें निश्चय ही अमर होना अनिवार्य हो । शरीर की मृत्यु तो अवश्यंभावी है ही । फिर क्यों न आत्म अनुसंधान में लग कर, मृत्यु भय से मुक्त हो जावें ? अर्थात् जो जिज्ञासु, परमेश्वर के संग होकर, अपने अहम्भाव को मारता है, उनका मरना एक दफा ही होता है । ऐसे निष्कामी संतजन, आवागमन से मुक्त होते हैं ।

दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तौ जीवन की क्या आस ।
सिर कै साटै पाइये, तो भरि भरि पीवै दास ॥६०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो तूं राम के प्रेम का प्यासा है तो, शरीर अध्यास को छोड़कर, अतृप्त भाव से अखंड राम रस पीजिये ।

(कायर)

मन मनसा जीते नहीं, पंच न जीते प्राण ।
दादू रिप जीते नहीं, कहैं हम सूर सुजान ॥६१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बहिरंग मन और विषयाकार मन की वासना, इनको तो जीतता नहीं है, और प्राणधारी पांच ज्ञानेन्द्रियों को अपने अपने विषयों से रहित नहीं कर सकता, और न काम क्रोध आदि शत्रुओं को ही जीतता है । और फिर कहते हैं कि हम शूरवीरों में अति श्रेष्ठ शूरवीर हैं ।

मन मनसा मारै नहीं, काया मारण जाँहि ।
दादू बांबी मारिये, सर्प मरै क्यौं मांहि ॥६२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मन और मन की मनसा को तो मारता नहीं है, अर्थात् निर्वासनिक नहीं बनाता है । और काया को शीत उष्ण भूख प्यास, पंचधारा, पंचा अग्नि आदि से, कृस करता रहता है । परन्तु जैसे बम्बी के डंडे मारने से, भीतर सर्प नहीं मरता है, इसी प्रकार शरीर को कसौटी देने से, मन और मनसा नहीं मरती है ।

(शूरातन)

दादू पाखर पहरि करि, सब को झूझण जाइ ।
अंगि उघाड़ै सुरिवां, चोट मुंहैं मुंह खाइ ॥६३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बखतर पहनकर सब कोई सेना में युद्ध करने जाते हैं, परन्तु सच्चे शूरवीर उघाड़े अंग से ही, युद्ध स्थल में डटकर, शत्रुओं के सन्मुख चोट देते हैं । इसी प्रकार भेष बनाकर सम्प्रदाय चिन्ह बनाकर, सब कोई, संत कहलाते हैं, परन्तु सच्चे शूरवीर साधक, मन इन्द्रियों को दमन करने वाले, उनके अंग पर कोई सम्प्रदायिक चिन्ह, भेष बाना नहीं होता । गुरु उपदेश ही उनका भेष बाना है ।

दोहा :- बाना भखतर पहिन कर, लड़ै सकल संसार ।
जन रज्जब सो सूरिवां, जो झूझै निरधार ।।६३।।

जब झूझै तब जाणिये, काछि पड़े क्या होइ ।
चोट मुंहैं मुंह खाइगा, दादू सूरा सोइ ।।६४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब आसुरी सम्प्रदा के गुणों को और मन इन्द्रियों के विषय मनोरथों को मारे, अर्थात् केवल भेषबाना धारन करने से ही, कोई सच्चे शूरवीर नहीं होते । किन्तु मन के विषय मनोरथों से, जब वृत्ति अन्तर्मुख होवे, तब तो साधुता और भेषबाना सफल है, अन्यथा नहीं ।

सूरातन सहजैं सदा, सांच सेल हथियार ।
साहिब कै बल झूझतां, केते किये सुमार ।।६५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरु के सांचे शब्द, उस शूरवीर के चितावणि उपदेश ही तो जिनके हथियार हैं, और परमेश्वर का पतिव्रत धर्म ही जिनका बल है । ऐसे पुरुषों को काम क्रोध आदि विकार, शब्द स्पर्श आदि विषय, कोई सता नहीं सकते, क्योंकि उसने इन सबका दवन किया है ।

दादू जब लग जिय लागै नहीं, प्रेम प्रीति के सेल ।
तब लग पिव न पाइये, नहीं बाजीगर का खेल ।।६६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब तक अन्तःकरण में प्रेमाभक्ति और प्रभु प्रीति के शब्दरूप सेल नहीं लगते, तब तक परमेश्वर की प्राप्ति, साधक पुरुषों को होना असम्भव है । यह कोई बाजीगर का खेल नहीं है, जो हर एक कोई देख सकै ।

दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तो किसकौं सेतैं जीव ।
सिर कै साटै लीजिये, जे तुझ प्यारा पीव ।।६७।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! यदि तूं प्रभुभक्ति का प्यासा है तो परिछिन्न अभिमान, को त्यागकर, किसकौं सेतैं कहिये, परमेश्वर के सिवाय और किसकी सेवा करता है ? यदि तेरे प्यारे परमेश्वर का ही पतिव्रता है, तो यहां सिर भी प्रभु के सामने समर्पण करिये ।

दादू महा जोध मोटा बली, सो सदा हमारी भीर ।
सब जग रूठा क्या करै, जहां तहां रणधीर ।।६८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समर्थ परमेश्वर ही जब हमारे सहायक हैं, तो संसार की प्रसन्नता और अप्रसन्नता से हमें क्या प्रयोजन है ? वहां परमेश्वर ही सर्वव्यापी और सर्व शक्तिवान, सर्वज्ञ, 'जहां तहां' कहिये - जागृत स्वप्न और बाहर भीतर, हमने तो एक उसी की शरण ग्रहण कर ली है ।

दादू रहते पहते राम जन, तिन भी मांड्या झूझ ।
सांचा मुंह मोड़ै नहीं, अर्थ इत्ता ही बूझ ।।६९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसार भाव से मुक्त हुए और 'पहते' कहिए, परम पद को प्राप्त हुए, परमेश्वर के भक्तों ने भी, मन के गुण विकार आदिक से युद्ध मांड्या है । और सर्व शास्त्रों का भी यही सार है कि सच्चे शूरवीर साधक, कभी मायिक संसार की ओर फिर, मुख नहीं करते हैं अर्थात् प्रवृत्त नहीं होते हैं, और सब प्रकार सावधान रहते हैं ।

(हरि भरोसा)

दादू कांधै सबल के, निर्वाहैगा और ।
आसण अपने ले चल्या, दादू निहचल ठौर ।।७०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारे तो सहारा, केवल एक समर्थ परमेश्वर का ही है । उन्हीं के कन्धों पर हमारे जीवन का भार है । वही हमको तो अन्त तक, अपनी दया दृष्टि से निभावेंगे, अर्थात् अपने निश्चल स्वरूप में, हमको आप ही स्थिर करेंगे ।

दादू क्या बल कहा पतंग का, जल तन लागै बार ।
बल तौ हरि बलवंत का, जीवै जिहिं आधार ।।७१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे अपने आप स्वयं की रक्षा करने में, असमर्थ बिचारा पतगं, औरों की क्या रक्षा करेगा ? ऐसे ही काल के अधीन हुए विचारे पतंगरूपी देवी देवता, जब स्वयं की रक्षा नहीं कर सकते हैं तो दूसरे जीवों की तो कर ही क्या सकते हैं ? इसलिये भक्तों के तो केवल एक प्रभु का ही आधार है ।

राखण हारा राम है, सिर ऊपर मेरे ।
दादू केते पच गये, बैरी बहुतेरे ।।७२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हमारे तो केवल सिर पर रक्षा करने वाले, एक राम जी महाराज ही हैं, किन्तु राम से विमुख करने के लिये, कितने ही काम क्रोध आदि शत्रु, पच पच कर थक गये अर्थात् मर गये । परन्तु हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ कर सके ।

(सूरातन विनती)

दादू बलि तुम्हारे बाप जी, गीणतन राणा राव ।
मीर मलिक प्रधान पति, तुम बिन सब हीं बाव ।।७३।।

टीका :- हे स्वामी ! हे बाप जी ! हमतो आपके बल के अर्थात् शक्ति के आश्रय हैं । फिर संसार के राणा राव राजा आदि को कुछ भी नहीं समझ रहे हैं । मीर हैं, मलिक हैं, प्रधान हैं, आपके बिना उन सबको त्यागे हैं । अर्थात् उनसे हमारा क्या प्रयोजन है ? हम तो केवल आपका ही आसरा लेकर, निर्भय हो रहे हैं ।

दादू राखी राम पर, अपणी आप संवाहि ।
दूजा को देखूं नहीं, ज्यौं जाणों त्यौं, निर्वाहि ।।७४।।

टीका :- हे प्रभु ! हमने तो अपनी सम्पूर्ण जीवन लीला, आपके आसरे ही रखी है । हमारा सर्वस्व, हम आपके भेट करते हैं । आप हमको अपनी शरण में लेकर, भक्त वत्सलता की प्रतिज्ञा को, आप ही पूरी करें । हे प्रभु ! हमारे तो केवल आपका ही एक पतिव्रत हैं । इस हमारे जीव पर, आप दया करके, आप ही निबाहो, अर्थात् अपने प्रण को पूरा करो ।

दोहा :- गरीबदास जी पूछियो, गुरू दादू सौं अन्त ।
तब या साखी से कह्यो, खुसी रहो सब सन्त ।।७४।।

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज से आपके शिष्य गरीबदास जी महाराज ने पूछा कि महाराज ! हम लोग क्या करें ? उसके उत्तर में परम गुरुदेव बोले कि हमने तो परमेश्वर का पातिव्रत धर्म धारण किया है । आप लोग भी इसी हमारे आदर्श को अपनाओ । परमेश्वर का पतिव्रत धर्म धारण करके, प्रसन्न रहो ।

तुम बिन मेरे को नहीं, हमको रांखणहार ।
जे तूं राखै सांईयां, तौ कोइ न सकै मार ।।७५।।

टीका :- हे परमेश्वर ! आपके बिना हमारी रक्षा करने वाला, दूसरा और कोई भी नहीं है । हे नाथ ! जिसकी आप रक्षा करते हो, उसको कोई भी संसार में मारने वाला नहीं है ।

सब जग छाड़ै हाथ थैं, तौ तुम जिनि छाड़हु राम ।
नहीं कुछ कारज जगत्त सौं, तुम हीं सेती काम ।।७६।।

टीका :- हे राम ! चाहे सम्पूर्ण जगत हमारा त्याग कर दे, परन्तु हे स्वामी ! आप हमारा त्याग नहीं करना । जगत से हमारा, कोई सम्बन्ध नहीं है और न कोई हमारा जगत से काम हीं है । आप ही हमारे स्वामी हो । हम आपके हैं । आपसे ही हमारा काम है । आप ही हमारा कल्याण करोगे ।

दोहा :- इक नृप यज्ञ बलि देन कुं, द्विज सुत लीयो मोल ।
च्यार लीक लखि मुरहनि, एक निवावत मोल ।।७६।।

दृष्टान्त :- एक समय बारिश नहीं हुई । एक राजा ने ज्योतिष वालों से पूछा । वह बोले :- कि राजन् ! यह आपकी झील है, इसमें एक मनुष्य का बलिदान चढ़ाओ तो बारिश बरसेगी और झील भर जायेगी । राजा प्रतिहारों को भेजे कि कहीं से मोल मनुष्य मिले तो, उसे ले आओ । वह लोग एक गांव में गये । वहां मालूम किया तो एक ब्राह्मण बोला, मैं अपना लड़का दे दूंगा । उसका लड़का ईश्वर भक्त था, बाल्यावस्था से ही । परन्तु ब्राह्मण उसका पिता, उसके काम से सन्तुष्ट नहीं रहता था । बोलता :- तूं मर जाये तो अच्छा हो । वह राजपुरुषों से रुपया ले लिया और उसको बेच दिया । उसको लेकर राजा के पास आ गये । राजा उस लड़के को झील पर बलिदान के लिये ले गये । और उस लड़के से पूछा :- क्या खाएगा, क्या पीएगा ? अब तुझे देवताओं के बलिदान कर रहे हैं ? लड़का बोला :- आज मैंने परमेश्वर की प्रार्थना नहीं की है, वह कर लूं । लड़के ने पृथ्वी के ऊपर ऊंगली से चार लाइनें खेंची ।

दोहा :- माता पिता द्रव्य के लोभी, राजा लोभी सागरा ।
देवी देवता बलि के लोभी, राख राख तूं राघवा ।।

चयार लड़के लींक काढी, तीन डाली खोइ।
एक ऊपर करी करूणा, राख लीजै मोहि ॥

तीन को मिटा दी। एक लाईन को देखकर, परमेश्वर से प्रार्थना करने लगा, कि हे नाथ! इस संसार में इस जीव के चयार रक्षक होते हैं, प्रथम माता पिता, दूसरा राजा, तीसरा देवी देवता और चौथा परमेश्वर। परन्तु लोभ ने इन तीनों की मति मार दी है। हे नाथ! अब आपकी शरण हूं, चाहे आप मारो, चाहे तारो। जेसे ही बालक ने परमेश्वर से प्रार्थना की, इतने में उत्तराखंड की तरफ से एक भारी बादलों की घटा उठी और मूसलाधार वर्षा होने लगी। झील वगैरा सब भर कर, पृथ्वी पर जल ही जल हो गया। सब भाग छूटे। पानी के प्रकोप को देखकर, राजा के सहित सब घबरा गये। और उस बालक को राजा नमस्कार करके, अपना अपराध क्षमा कराया।

(शूरातन)

दादू जाते जिवथैं तौ डरूं, जे जिव मेरा होइ।
जिन यहु जींव उपाइया, सार करैगा सोइ ॥७७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! जब तो मैं इस जीव से डरूं, जो जीव मेरा होवै। जीव तो मेरा है नहीं, यह शरीर से जाओ चाहे रहो। जिस परमेश्वर ने जीव को उत्पन्न किया है, वही इसकी रक्षा करेगा। हमको क्या चिंता है, इस बात की।

दादू जिन कौं सांई पधरा, तिन बंका नांही कोइ।
सब जग रूठा क्या करै, राखणहारा सोइ ॥७८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! जिन उत्तम पुरुषों को परमेश्वर सोंला है, उनसे फिर इस संसार में कोई भी बांका कहिए, नाराज नहीं है। और यदि नाराज भी होवै, तो उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। चाहे सम्पूर्ण जगत उनसे रूठ जाये, परन्तु जब उन पुरूषों का क्या बिगाड़ कर सकते हैं? जब परमेश्वर रक्षा करने वाला तत्पर खड़ा है।

दादू सांचा साहिब सिर ऊपरै, तत्तीन लागै बाव।
चरण कवंल की छाया रहै, कीया बहुत पसाव ॥७९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन उत्तम पुरूषों के सिर ऊपर सत्य स्वरूप परमात्मा का इष्ट है, उनको संसार की गर्म हवा भी नहीं लगती है, अर्थात् संसार के कष्ट उनसे दूर ही रहते हैं । इसी प्रकार परमेश्वर के अनन्य भक्त संतजन, परमेश्वर का स्मरण करके सदैव सुखी रहते हैं ।

(विनती)

दादू कहै जे तूं राखै सांईयां, तौ मार सकै ना कोइ ।
बालन बंका करि सकै, जे जग बैरी होइ ॥८०॥

टीका :- हे परमेश्वर ! आप जिनकी रक्षा करो, तो फिर उनको कोई नहीं मार सकता । चाहे सम्पूर्ण जगत उनका शत्रु हो जावै, तो उनका एक रोम भी टेढ़ा नही कर सकते ।

दादू राखणहारा राखै, तिसै कौन मारै ।
उसे कौन डुबोवे, जिसे सांई तारै ।
कह दादू सो कबहूं न हारै, जे जन सांई संभारै ॥८१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर सर्वशक्तिवान, सबकी रक्षा करने वाला, जिसको अपनी शरण में रखै, उसको इस संसार में मारने वाला कौन है ? और वह परमेश्वर जिसको संसार समुद्र से तारै, उसे काम आदि दोष क्या डुबो सकते हैं ? ब्रह्मऋषि कहते हैं कि परमेश्वर के अनन्य भक्त, सदैव परमेश्वर का स्मरण करते हैं । उनकी संसार में कभी हार नहीं होती है । वही मनुष्य देह की बाजी जीत कर जाते हैं ।

निर्भै बैठा राम जपि, कबहूं काल न खाइ ।
जब दादू कुंजर चढै, तब सुनहां झखि जाइ ॥८२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के अनन्य भक्त, काल कर्म से निर्भय होकर, अन्तःकरण में राम का स्मरण करते हैं । उन पुरुषों को कभी काल दण्ड देने को समर्थ नहीं है । जैसे कोई हाथी पर बैठा है, तब कुत्ते उसको देखकर भौंकते हैं, पर उसका बिगाड़ कुछ नहीं कर पाते । अर्थात् नामरूपी हाथी पर, जो भक्त बैठे हैं, उनका कुत्तेरूप संसारिक विषयी पामर, क्या बिगाड़ कर सकते हैं ? जैसे मीरां आदि अनेक संत भक्त हो गये ।

काइर कूकर कोटि मिल, भौंकै अरु भागै ।
दादू गरवा गुरू मुखि, हस्ती नहीं लागै ।।८३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! भगवान से विमुखी निन्दक संसारीजन, भक्तों को निन्दा आदि के द्वारा, नाना शारीरिक कष्ट देते हैं । किन्तु हाथी की भांति, गरवा गंभीर और गुरूमुखी गुरू उपदेशों में सलग्न हुए संतजन, सर्व व्यवहारों से निष्काम होकर, स्वस्वरूप में ही मग्न रहते हैं । उनका संसारीजन कुछ नहीं बिगाड़ कर पाते ।

(इति सूरातन का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ काल का अंग २५ ।।

"निर्भै बैठा राम जपि, कबहुं काल न खाइ०"--इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब काल के अंग का निरूषण करते हैं। मन के अनन्त विषय मनोरथ और संसार वासनायें ही मानो कालरूप हैं। इसलिये काल के अंग में विषय मनोरथों का निषेध और प्रभु भक्ति निष्कामता का उपदेश करते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।१।।

टीका :- निरन्जन देव गुरूदेव और संतों को, हमारी बारम्बार बन्दना है, जिनकी कृपा से जिज्ञासु, आवागमन रूप काल से मुक्त होते हैं।

कालन सूझै कंध पर, मन चितवै बहु आस।
दादू जीव जाणै नहीं, कठिन काल की पास ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारिक प्राणियों को, काल प्राण पिंड का वियोग करने वाला नहीं दीखता है। और वह काल गर्दन पर फरसा मारने को समय देख रहा है। और संसारी प्राणी मन में लम्बी लम्बी वासनाओं का चिन्तन करते रहते हैं। यह अज्ञानी जीव दुख देने वाले, काल की जम फांसी को भूल रहा है।

दोहा :- दिन थोरा आसा घनी, उरझ्या जीव जंजाल ।
रज्जब खैंचा तानि मे, आइ पहुंचा काल ।।२।।

दादू काल हमारे कंध चढि, सदा बजावै तूर ।
काल हरण करत्ता पुरिष, क्यों न संभालैं सूर ।।३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक राम विमुखी जीवों के कंधे पर अर्थात् गर्दन के ऊपर श्वांसे श्वांस निरन्तर, हर समय, क्षय करने रूप बाजा बजाकर, काल, भगवान, संसारिकजनों को चितावणि देते हैं कि हे राम विमुख जीवो ! तुम मेरे ग्रास बनोगे । इसलिये हे संतो ! काल से बचने के लिये, परमेश्वर की भक्ति में शूरातन भाव धारण करके, काल हरण परमेश्वर का स्मरण करो ।

जहां जहां दादू पग धरै, तहां काल का फंध ।
सिर ऊपर सांधे खड़ा, अजहुं न चेते अंध ।।४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम से विमुखी संसारीजन, जो जो मनोरथ करते हैं वह सब नाम रूप पदार्थ, काल भगवान के फंदे बनाये हुए हैं । वह काल सिर के ऊपर, अपना बाण साधकर खड़ा हो रहा है, प्राण लेने के लिये । परन्तु अज्ञानी मनुष्य, अन्त समय तक भी, मोहरूप निद्रा से चेत नहीं करता है ।

दादू काल गिरासन का कहिये, काल रहित कहि सोइ ।
काल रहित सुमिरण सदा, बिना गिरासन होइ ।।५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम विमुख सम्पूर्ण संसार के प्राणी, काल के ग्रास हैं । उनकी क्या कथा कहैं ? अर्थात् जो काल से मुक्त हो गये हैं, अनन्य भक्त, उनकी तो चर्चा ही अलौकिक है । उसका वर्णन करने में तो आनन्द है । काल से तो वही पुरुष मुक्त हैं, जो काल रहित परमेश्वर के नाम स्मरण में ही मग्न रहते हैं ।

दादू मरिये राम बिन, जीजे राम संभाल ।
अमृत्त पीवै आत्मा, यों साधू बंचै काल ।।६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम विमुख संसारी प्राणी, पुनः पुनः जन्म मृत्यु का दुख भोगते रहते है और राम नाम का स्मरण ही जीने का मुख्य उपाय है । परमेश्वर के अनन्य भक्त इसी लिये, भक्ति अमृत, ज्ञाना अमृत को पान करके, काल के दण्ड से मुक्त होते हैं ।

दादू यहु घट काचा जल भर्‌या, बिन सत्त नाहीं बार ।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहि गंवार ।।७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह शरीर कुम्हार के कच्चे घड़े के समान है और श्वांस रूपी इसमें जल भरा है । परन्तु कच्चे घड़े में जल भरें, तो इसके टूटने में कुछ विलम्ब नहीं लगता । ऐसे ही इस शरीर के नष्ट हो जाने पर, श्वांस रूपी जल बिखर जाता है । इस बात को 'गंवार' कहिये, पामर विषयी नहीं समझते हैं ।

फूटी काया जाजरी, नव ठाहर काणी ।
तामें दादू क्यौं रहै, जीव सरीखा पाणी ।।८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह शरीर नो जगह से खंडित हैं, अर्थात् नो द्वार वाला है । और फिर विषयों में आसक्ति से जरजर हो रहा है । ऐसे शरीर में अन्तर्मुख वृत्ति का क्षय होता है, राम नाम के स्मरण के बिना ।

दोहा :- कबीर यहु तन काचा कुम्भ था, लिये फिरै था साथ ।
ठफका लाग्यां फूटसी, कछु न आया हाथ ।।८।।

बांव भरी इस खाल का, झूठा गर्व गुमान ।
दादू बिनसै देखतां, तिसका क्या अभिमान ।।९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! श्वांस भरी हुई, इस शरीर रूप खाल का क्या अभिमान करते हो ? जो इसका गर्व और गुमान करते हैं अर्थात् शारीरिक बल, काले गोरे का गुमान, यह तो सब मिथ्या है । यह तो देखते देखते ही नाश होते जा रहे हैं । इसका क्या अभिमान करना है ?

दोहा :- पेट बंध भयो बादशाह, बाव सरै देऊं राज ।
फक्कड़ छूड़ाया तीन बेर, सारा लेहु क्या काज ।।९।।

दृष्टान्त :- एक बादशाह का पेट बन्द हो गया अर्थात् अपान वायु बन्द हो गई। तब पेट फूल कर ढोल हो गया, अफारा नहीं उतरा। बादशाह घबराकर बोला : - कि जो कोई मेरा अफारा उतार दे, तो उसको सम्पूर्ण राज दे दूँ। इतने में एक फक्कड़ साधु आ पहुंचा। साधु बोला :-क्या बात है बादशाह ? बादशाह ने सब वृतान्त सुना दिया। फक्कड़ के हाथ में एक डंडा था। तानकर बादशाह के पेट पर एक डंडा मारा, तो बादशाह की अपान वायु निकली, "धौं धौं'। दूसरा डंडा मारा। फिर बोली :।"धौं।" तीसरा डंडा फिर मारा। फिर बोली :-"धौं।" बादशाह का पेट पतला हो गया और आराम आ गया। बादशाह बोला :- यह सारा राज आपके नजर है, आपने मेरी जान बचा दी।। फक्कड़ बोले :-चल, यह तेरे राज का क्या करें ? यह तो तीन पाद की कीमत का है।

दादू हम तो मूये माहीं हैं, जीवण कार भरम्म।
झूठे का क्या गरबवा, पाया मुझ मरम्म ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! हम तो कहिये अज्ञानी संसारिक प्राणी, राम विमुखी मरे हुओं की गणना में ही हैं। जीने का तो केवल उनको भ्रम ही हो रहा है। अरे ! इस मिथ्या शरीर को पाकर क्या गर्व करता है ? यह तो नश्वर है। किन्तु जो नित्य अनित्य का विचार करके आतमा का निश्चय करते हैं, उनके अन्तःकरण में अविद्या की भ्रान्ति नहीं रहती है। क्योंकि वे मिथ्या नाम रूप का अहंकार, नहीं करते हैं।

यहु बन हरिया देखि कर, फूल्यौ फिरै गंवार।
दादू यहु मन मृगला, काल अहेड़ी लार ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारिक मनुष्यों का मन रूपी मृग, संसार बन की हरियाली, स्त्री आदि विषय वासना रूप सुन्दरता को देख कर अर्थात् उसमें आसक्त होकर, वृथा ही जीवन गमाता है। किन्तु संग में लगे हुए, काल रूपी शिकारी को नहीं देखता है।

सब ही दीसै काल मुखि, आप गहि करि दीन्ह।
बिनसै घट आकार का, दादू जे कुछ कीन्ह ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम बेमुखी संसारजन, आपा अनातम अहंकार के वशीभूत होकर, अविवेक से ही काल के मुंह में पड़ रहे हैं। क्योंकि पाप पुण्य रूपी बन्धन पैदा करके, आप ही जन्म मृत्यु को प्राप्त होते हैं ?

काल कीट तन काठ को, जुरा जनम कूं खाइ।
दादू दिन दिन जीव की, आव घटंती जाइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे काठ का कीड़ा, काठ को भीतर ही भीतर खाकर जर जर बना देता है, इसी प्रकार इस शरीर रूप काठ को कामादि काल, भीतर ही भीतर खाकर, जरजर भूत बना देते हैं। और मनुष्य जन्म को निरर्थक खत्म कर देता है। दिनों दिन इस जीव की इसी प्रकार 'आव' कहिये उमर, घटती जाती है। परन्तु यह अज्ञानी जीव चेत नहीं करता है।

काल गिरासै जीव को, पल पल सांसै सांस।
पग पग मांहै दिन घड़ी, दादू लखै न तास ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विषया आसक्त जीव के शरीरों को, काल भगवान, दिन दिन, घड़ी घड़ी, छिन छिन, पल पल, में स्वांस स्वांस पर ग्रासवत खा रहा है। परन्तु अज्ञानी जीव, काल से बचने के लिये, प्रभु का स्मरण फिर भी नहीं करते।

पग पलक की सुधि नहीं, सांस सबद क्या होइ।
कर मुख मांहै मेलतां, दादू लखै न कोइ ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक पग उठाते ही, पलक खोलते ही, एक स्वांस लेते ही, एक शब्द बोलते ही, कौन जानै काल की गति को, शरीर रहै या न रहै ? ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हाथ में रोटी का ग्रास लेकर मुख में रखते ही अर्थात् न जानै, दूसरा ग्रास ले या नहीं ले, शरीर छूट जाय ? इस काल की गति को कोई भी नहीं जानते हैं।

दादू काया कारवी, देखत ही चलि जाइ।
जब लग सांस शरीर में, राम नाम ल्यौ लाइ ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह स्थूल शरीर रूपकाया, कुम्हार के कच्चे घड़े की तरह, देखते देखते ही विनिष्ठ होती जा रही है। इसलिये जब तक शरीर में प्राण हैं, तब तक सचेत होकर, राम नाम का स्मरण करना चाहिये।

दादू काया कारवी, मोहि भरोसा नांहि।
आसण कुंजर सिरि छत्र, बिनसी जांहि खिण मांहि ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह काया क्षण भंगुर और कच्चे घड़े की तरह है। हमें इसका कोई विश्वास नहीं है कि यह स्थिर रहेगी ? और क्या कहें ? हाथी के ऊपर बैठने वाले, मस्तक के ऊपर छत्र झूलै, ऐसे ऐसे चक्रवर्ती राजाओं के भी शरीर, एक क्षण में विनिष्ट हो गये हैं।

दादू काया कारवी, पड़तन लागै बार।
बोलणहारा महल मैं, सो भी चालणहार ॥१८॥

टीका :- यह पंच भौतिक शरीर, अविद्या रचित कच्चे घड़े की तरह है। इसके नास होने में कोई देर नहीं लगती है। ब्रह्मऋषि कहते हैं कि इस काया रूपी महल में बोलने वाला, आभास अन्तःकरण रूप प्राण, यह भी जाने वाला है। इसलिये राम नाम के स्मरण द्वारा, अपनी रक्षा करो।

दादू काया कारवी, कदे न चालै संग।
कोटि बरस जे जीवण, तऊ होवला भंग ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह काया रूप स्थूल शरीर कारवी कहिए, अविद्या की रची हुई, चेतन्य रूप प्राणों के साथ, कभी भी संग नहीं चलेगी। चाहे करोड़ वर्ष की आयु होवै, तब भी अन्त में यह नाश को ही प्राप्त होगी।

दोहा :- च्यार पुरस भाड़ै लइ, बनि कोटड़ी च्यार।
कही भाड़ो हमरो यह, कबहु देहूं निकार ॥१९॥

दृष्टान्त :- चार पुरुषों ने एक कोटड़ी किराये ली। मकान मालिक ने कहा :- मैं चाहूंगा, तभी खाली करवा लूंगा। एक ने उसमें तमाम घर का जखीरा ला कर भर दिया। दूसरे ने खाने पकाने का समान रखा। तीसरे ने केवल अपना बिस्तर ही लाकर रखा। चौथा उसमें खाली लेट लगाकर चला जावै। मकान मालिक ने एक रोज कहा :- तुम लोगों ने तो अब तक किराया नहीं दिया, इसलिये कोठड़ी खाली कर दो। पहले नम्बर के मनुष्य को बहुत भारी दुख हुआ। दूसरे को उससे कम दुख हुआ। तीसरे को दूसरे से कम दुख हुआ। चौथे को ना बराबर दुख हुआ, क्योंकि वह कुछ रखता ही नहीं था। इसी प्रकार काल भगवान से, यह शरीर नाम की कोठड़ी, पामर, विषयी, जिज्ञासु, मुक्त, इन चारों ने ली। पामर इसमें पूरा अध्यास कर बैठा, विषयी इसमें उससे कम, केवल विषय सुख का उपभोग करने लगा। जिज्ञासु ने इसमें साधन साधने का ही अध्यास किया। मुक्त को इसमें, किसी प्रकार का अध्यास नहीं था। काल भगवान ने सहसा आर्डर

दिया कि कोठरी खाली कर दो। जितना जितना जिसको शरीर में अध्यास रूप ममत्व था, उतना उतना उनको दुख हुआ। ज्ञानी को किंचित भी अध्यास नहीं था, सो उसको इसके त्यागने में, जरा सा भी दुख नहीं हुआ।

कहताँ सुनतां देखतां, लेतां देतां प्राण।
दादू सो कतहूं गया, माटी धरी मसाण ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! जिस शरीर के द्वारा, चेतन कहता था सुनता था, देखता था, लेता था, देता था, न मालूम वह चेतन रूप प्राण किधर से निकल गया। और व्यवहारिक सगे सम्बन्धी, शमशान में लेजा कर जलाते हैं या दफनाते हैं।

दोहा :- चला जात बाजींद मग, ऊंट पड्या इक देखि।
कहीं उठायो ना उठै, चेतन गया अलेख ॥२०॥

दृष्टान्त :- बाजींद जी नवाब थे। दौरा करते हुए आ रहे थे। रास्ते में इनके सामान का ऊंट जा रहा था। एक जगह वह ऊंट बैठ गया। नौकरों ने सामान उतार कर अलग रख दिया। ऊंट मृत्यु को प्राप्त हो गया। पीछे से बाजींद जी आये। देखकर बोले :- भई! कैसे बैठे हो! कहा :- हुजूर! ऊंट मर गया। उन्होंने पूछा :- "इसका क्या मर गया?" यह तो सोया हुआ है। चारों तरफ घूमकर देखा और बोले :- "नख सिख तो कुछ बिगड़ा नहीं?" अर्थात् इसके अवयय तो खराब नहीं हुए? नौकर बोले :- इसमें चेतन था, वह निकल गया। वहीं बाजींद जी को भय हो गया। और बोले :- "घर भी नहीं पहुंचाये? नौकर बोले :- "घर पहुंचाने का कोई नेम नहीं होता है। यह सुनकर विचार किया कि इस मेरे शरीर में से भी चेतन, ऐसे ही जा सकता है ; उसी वक्त राज का त्याग करके, ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज की शरण में आमेर पहुंच गया। परम गुरूदेव को नमस्कार किया और उनके उपदेश सुनकर हृदय में बिरह भक्ति जागृत हो गई। वह विरह के द्वारा, सत् स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करके, जीवन मुक्त हो गये।

सींगी नाद न बाजहीं, कत गये सो जोगी।
दादू रहते मंढी मै, करते रस भोगी ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजन, इस शरीर रूप मंढी में रहते हैं। और वह जीव प्रातःकाल प्रभु का स्मरण भूल कर, अपने परिवार से प्रेम करते थे। परन्तु अन्त समय वह कोई भी, जन्म मरण के दुख को नहीं बटा सकते। ऐसे संसारीजन अनेक भोग वासनाओं में फंसकर, नित्य अनित्य का विचार किये बिना, जन्म मरण में ही भ्रमते हैं।

दोहा :- गुरू दादू आमेर थे, ढिग जोगी को थान।
इक दिन सींगी ना बजी, मरिगो जोगी जान ॥२१॥

दृष्टान्त :- आगरे में ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज विराजते थे। उनके समीप ही, कनफटे योगियों का ही एक स्थान था। उसमें वह लोग अनेक प्रकार के भोग भोगते थे और खूब मस्ती से रहते। सुबह शाम सींगी नाद जोर जोर से बजाते। एक रोज प्रातःकाल, सींगी नाद की आवाज नहीं हुई। परम गुरूदेव बोले :-संतो ! वह आज, काल भगवान के भोजन बन गये, अर्थात् उनको आज काल ने खत्म कर दिया।

दादू जीयरा जाइगा, यहु तन माटी होइ।
जे उपज्या सो बिनसि है, अमर नहीं कलि कोइ ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस शरीर से चिदाभास अन्तःकरण जायेगा और यह शरीर मिट्टी में मिलेगा। इसी प्रकार जो कुछ उत्पन्न हुआ है नाम रूप जगत, उसमें कोई भी अमर रहने वाला नहीं है। अमर तो केवल, परमेश्वर और परमेश्वर का नाम ही हैं।

दादू देही देखतां, सब किस हीं की जाइ।
जब लग सांस सरीर में, गोबिन्द के गुण गाइ ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह स्थूल शरीर देखते देखते सभी के जा रहे हैं अर्थात् नष्ट हो रहे हैं। इसलिये साधक पुरुषों को चाहिये कि जग तक इस शरीर में श्वांस स्थित हैं, तब तक गोबिन्द का स्मरण करना चाहिये। इसी में भला है।

दादू देही पाहुणीं, हंस बटाऊ मांहि।
का जाणु कब चालसी, मोहि भरोसा नांहि ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मनुष्य देह तो अति प्रिय, महमान की भांति मिला है और हंस जीव रूप प्राण, इसमें यात्री की भांति है । जैसे यात्री कभी भी उठ करके चल पड़ता है, वैसे ही यह प्राणरूप जीव, कभी भी इसका त्याग करके जा सकता है ? तत्ववेत्ताओं को, इसका विश्वास नहीं है ।

दादू सबको पाहुणां, दिवस चारि संसार ।
अवसर अवसर सब चले, हम भी इहै विचार ।।२५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस संसार में सब कोई, राजा से लेकर रंक तक, चार दिन के लिये, महमान के समान आये हैं । समय समय पर जैसे महमान चले जाते हैं, वैसे ही यह प्राणधारी जीव जा रहे हैं ।

(भयमई पंथ विखमता)

सबको बैठे पंथ सिर, रहे बटाऊ होइ ।
जें आये ते जाहिंगे, इस मारग सब कोइ ।।२६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस संसार में मनुष्य से लेकर देव पर्यन्त, सभी लोग बटाऊ की तरह मार्ग पर बैठे हैं । समय समय के अनुसार सभी प्रस्थान करते जा रहे हैं । जो इस संसार में पैदा हुआ है, वह सभी इस मार्ग से निश्चय जायेंगे । कोई संसार में नहीं रहेगा । सबको काल भक्षण कर लेगा ।

बेग बटाऊ पंथ सिरि, अब बिलम्ब न कीजै ।
दादू बैठा क्या करै, राम जपि लीजै ।।२७।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! रास्ते जाने वाला बटाऊ, जल्दी उठ करके अपने रास्ते पर चल पड़ता है । इसी प्रकार अब देर नहीं करना । आवागमन के मार्ग पर बैठा है । अब बैठा बैठा क्या करता है ? राम नाम का स्मरण करके, जीवन को सार्थक बना ।

संझ्या चलै उतावला, बटाऊ बन खंड मांहि ।
बरियां नाही ढील की, दादू बेगि घर जांहि ।।२८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अब तो आयु का उत्तर काल कहिये, बुढ़ापा आ गया है । अब राम भजन में देर करने का समय नहीं है । जैसे रास्तागीर बटाऊ, संझया होते ही बन के मार्ग से शीघ्र चलकर घर आ

जाता है। इसी प्रकार उत्तम पुरुष विचार करके, परमेश्वर के नाम स्मरण द्वारा, इस मनुष्य शरीर में ही, परमेश्वर को प्राप्त करके काल कर्म से मुक्त होता है।

पंथ दुहेला दूरी घर, संग न साथी कोइ।
उस मारग हम जाहिंगे, दादू क्यों सुख सोइ ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का निष्काम मार्ग, भक्ति वैराग्य ज्ञान रूप कठिन है और स्वस्वरूप का बोध, बहिरंग साधनों से प्राप्त नहीं होता। इसलिये अज्ञान अवस्था से, अर्थात् मोह रूप निद्रा से चेत करके अन्तरंग साधन, विवेक वैराग्य आदिक की साधना में लग जाओ।

दादू करहै पलाणि करि, को चेतन चढि जाइ।
मिलि साहिब दिन देखतां, सांझ पड़े जिन आइ ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उत्तम साधक मन रूपी ऊंट पर, भक्ति वैराग्य का साज कहिये, जीन कस करके, गुरु उपदेशक गुरुमुखी, सच्चा शिष्य चढ़ कर, ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा, दिन दिन कहिये, जवानी अवस्था में ही, परमात्मा के स्वरूप में अभेद हो जाता है। अर्थात् वृद्धावस्था रूप सायंकाल नहीं आने देता है। वह पुरुष चौरासी में नहीं जाते, किन्तु जीवन मुक्त होते हैं।

दोहा :- बणिक पुत्र ठग बस पर्यो, दिया च्यार दृष्टान्त।
सूवो बाज कुत्तो मृग, करह चढै गयो कंत ॥३०॥

दृष्टान्त :- एक बनिये का पुत्र विदेश में कमाने गया। वहां कमाई करके, उसने चार लाल खरीद लिये और जांघ चीर कर, अन्दर रख लिये। मल्हम पट्टी करके जांघ ठीक करली। जब अपने गांव रवाना हुआ, तो जंगल में एक ठगों का घर था। उस ठग की लड़की, जो उधर से मुसाफिर निकलता, वह तान्त्रिक विद्या से उसके धन का पता लगा लेती। पिता भाई को बोल देती। इसी प्रकार इस बनिये के लड़के के लिये भी बोली कि इसके पास चार लाल हैं। उसको वह घर ले आये। रात्रि को उसकी पहली लड़की उसके पास गई। बोली :- तेरे पास चार लाल हैं। उनको दे दे, नहीं तो जान से मारेंगे। वह बोला :- सुन एक दृष्टान्त। एक राजा के तोता था, उसका नाम था हीरामणि। एक समय तोतों की सभा लगी। वह भी गया। एक एक अमृत फल बटा। यह लेकर आ गया, और राजा को दिया, खाने के लिये। मंत्री बोला :-अन्नाता ! पक्षी का लाया हुआ फल है, पता क्या कैसा है ? परीक्षा करके खाना। मंत्री ने जहर

का वैसा ही फल लाकर रख दिया और वह फल ले गया। जब राजा उसमें से टुकड़ा कुत्ते को डलवाया, तो कुत्ता मर गया। राजा ने क्रोध में आकर, तोते को खत्म कर दिया। वह अमृत फल मंत्री ने वेश्या को दिया। वेश्या ने राजा को लाकर दिया। राजा तोते को मार कर पछताया और फल को पहचान लिया कि यह अमृत फल है। ऐसे तूं मुझे मारकर पछतावेगी। इतने में दूसरी लड़की आई। पहले वाली चली गई। वह बोली लाल दे दे, मुझसे नहीं बचेगा। लड़का बोला :- सुन! एक राज कुमार जंगल में शिकार करने गया। उसके पास एक बाज था। प्यास लगी तो एक बट वृक्ष के नीचे राज कुमार बैठा। राजकुमार एक ठीकरा उठाकर, रख दिया। उसमें पानी की बुंदे पड़ने लगी। जब पीने को तैयार हुआ, तो बाज ने झप्पटा मार कर गिरा दिया। उसने गुस्से में आकर, बाज को मार दिया। राज कुमार ने सोचा, फिर ऊपर से पानी किस प्रकार आता है? ऊपर चढ़कर देखा तो एक अजगर सर्प, उसके मुंह से जहर की राल टपक रही थी। तब फिर बाज को याद करके राजकुमार पछताने लगा। तूं मुझे मार कर, ऐसे पछताएगी। दोपहर, रात चली गई। तीसरे पहर तीसरी लड़की आई। वह भी वैसे ही बोली। लड़का बोला :- एक बनजारा खर्चा कम पड़ जाने से, अपने कुत्ते को एक लाख रुपये में एक साहूकार के गहने रख दिया। कुत्ता चौकीदारी पूरी करता था। एक रोज साहूकार के यहां चोर घुस गये और सब धन निकाल कर तालाब में जाकर गाड़ दिया। सवेरे कुत्ता उनके कपड़े खैंच खैंच कर तालाब की तरफ दौड़े। कुत्ता तालाब में घुस कर, गर्दन से तालाब में उनको बुलाने लगा। साहूकार धन निकाल लाया। एक कागज में लिख दिया कि आपके एक लाख रुपये हमने वसूल पाये। आपका कुत्ता आ रहा है। इसको आप संभाल लेना। यह लिखकर, वह चिट्ठी कुत्ते के गले में बांध दी और कुत्ते को छोड़ दिया। कुत्ता जब बनजारे के सामने गया, तब बनजारे ने विचार किया कि मेरी बात इसने खो दी। बिना रुपये दिये, यह चला आया। बंदूक उठाकर, दूर से गोली मारी और कुत्ता मर गया। कुत्ते के गले से चिट्ठी पढ़ी तो, कुत्ते को याद करके रोने लगा। ऐसे ही तूं मुझे मार कर पछतावेगी। चौथी लड़की आई और वह भी उसी प्रकार बोली। लड़का बोला :- एक मृग और कव्वे की मित्रता थी। कव्वा घरों में से पदार्थ ला लाकर, मृग को खिलाया करता। एक गीदड़ बोला :- मुझे भी मित्र बना लो। एक दिन गीदड़ उनको काकड़ी खरबूजों की बाड़ी में रात को ले गया। खूब पेट भरके तीनों ने खाये। सवेरे खेत के मालिक ने देखा कि मृग आने लग गये। तो वहां उसने फंदे डाल दिये। दूसरी रात जब वह फिर आये तो मृग के पांव फंदों में फंस गये। कव्वा गीदड़ को बोला :- मित्र के पांव के फंदे, तेरे दांतों से काट दे। गीदड़ बोला :- कि मैं गंगा जी गया था। चमड़ा मुंह में लेना, वहां छोड़ आया। कव्वे ने गीदड़ की आंखें फोड़ दी और बोला :- कि तूं बदमाश है। गीदड़ खेत को डोली के नीचे जाकर बैठ गया। सवेरे ही खेत वाला आया। कव्वा मृग के ऊपर बैठा हुआ कांव कांव करने लगा। मृग को बोल दिया था कि जब मैं उड़ूं तो तूं भी, उड़ करके भाग जाना। खेत वाला कुल्हाड़ी लेकर आया और देखा मृग मर गया। उसके पावों के फन्दे काटे। कव्वा उड़ा, साथ ही मृग उठकर दौड़ गया। उसके पास कुत्ता था, कुत्ता छोड़ा। मृग हाथ नहीं आया और गीदड़ आ गया। उसको कुत्तों ने खा लिया। वह कहता है जैसे वह गीदड़ मित्र द्रोह करके पछताया, ऐसे ही तूं भी, मुझे मार कर पछतावेगी। वह लड़की बोली कि मैं तेरे साथ बहुत खुश

हूं। तूं मुझे ले चल। दो ऊंट हैं करहा और सरहा। करहा दिन में चलने वाला और सरहा रात को चलने वाला। करहा को खोल कर ले आ और उस पर जीन कस ले। लड़की घर से माल लेकर, उसके साथ ऊंट पर बैठ कर चल पड़ी। जब ऊंट की चाल लड़की ने देखी तो बोली तूं तो रात वाला ले आया। यह तो दिन निकलते ही बैठ जायेगा। वह सरहा पर बैठकर, अपने को आ पकड़ेंगे और मारेंगे। दिन निकलते ही वह बैठ गया। उधर ठगों ने देखा कि धन, लड़की और लड़का तीनों ही गायब हैं। तब ऊंट को देखा तो कहा - अभी चल कर पकड़ लेते हैं। दिन में चलने वाला, सरहा हमारे पास है। दोनों बाप और बेटा सरहा पर चढ़े। और वहां से ऊंट हवा से बातें करने लगा। लड़की बोली :- तूं पेड़ पर चढ़ जा। नीचे जब मैं सरहा ऊंट करूं, तो उस पर कूद कर बैठ जाना। उसका बाप और भाई आ पहुंचे। रोती हुई बोली :- मुझे डरा धमका कर, पकड़ लाया। और अब पेड़ पर चढ़ा बैठा है। तब वह दोनों उसको पकड़ने के लिये, पेड़ पर चढ़ गये, लड़की सराह ऊंट पर बैठ कर पेड़ के नीचे लगाया। लड़का उपर से सराह के ऊपर कूद कर बैठा। दोनों ऊंट पर ज्यों ही बैठे त्यों ही ऊंट हवा से बातें करने लगा। ठग देखते ही रह गये, और साहूकार का लड़का घर जा पहुंचा। इसी प्रकार मन रूपी कराह पर सवार होकर ब्रह्म अनुसारिणी, वृत्ति सहित, ब्रह्म में उत्तम पुरुष अभेद हो गये।

लंघण के लकु घणा, कपरि चाट डीह पन्९
अलह पांधी पंध मै, बिहंदा आहीन ॥३१॥

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

टीका :- हे परमेश्वर ! इस संसार रूप दरयाव का पाट चौड़ा है, और नौका चलाने के चप्पू रहित है। परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग में उलझ रहे हैं। अर्थात् प्रथम तो संसार से पार होना अति कठिन है। किन्तु कर्म बन्धन एवं अविद्या रूपी काल ने चपेट लगाकर, इस नौका रूप प्राणधारी को, आवागमन के भंवर रूप चक्र में डाल दिये हैं। अब हे परमेश्वर ! आपकी प्राप्ति में संसार बंधन रूपी जो विघ्न हैं, उनको हटाकर, हमको अपनी शरण में लीजिये। यही आपसे प्रार्थना है।

(काल चितावणी)

दादू हसतां रोवतां पाहुणा, काहु छाड़ि न जाइ।
काल खड़ा सीर ऊपरै, आवणहारा आइ ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! लड़की का पति, चाहे लड़की हंसो या रोवो, उसको लेकर ही जाता है। इसी प्रकार काल भगवान भी सिर पर सवार हो रहा है। वह किसी को भी नहीं छोड़ेगा। सभी को ले जायेगा।

दादू जोरा बैरी काल है, सो जीवन जानै ।
सब जग सूता नींदड़ी, इस तानै बानै ।।३३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! काल भगवान बड़े बलवान हैं । राम बेमुखी जीव उसको भूल रहा है । सम्पूर्ण जगत् मोह निद्रा में सो रहा है । परमेश्वर के स्मरण से अलग रहकर और काल से अपना सम्बन्ध बना लिया है ।

दादू करणी काल की, सब जग परलै होइ ।
राम बिमुख सब मरि गये, चेतन देखै कोइ ।।३४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसार के विषयों में आसक्त अज्ञानी जीव, राम से विमुख होकर, निसिद्ध कर्मों द्वारा, नास होते जा रहे हैं । इसी प्रकार राम से विमुख होकर, संसारीजन मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं । कोई भी चेत करके, काल को नहीं देखता है ।

साहीब को सुमिरै नहीं, बहुत उठावै भार ।
दादू करणी काल की, सब परलै संसार ।।३५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी जीव, परमेश्वर का निष्काम स्मरण भूलकर, सकाम कर्म और अहंकार रूपी बोझा सिर पर लेकर, काल को प्राप्त करने के ही काम करते हैं । इसीलिये संसार के प्राणी प्रलय होते जाते हैं ।

सूता काल जगाइ करि, सब पैसै मुख मांहि ।
दादू अचरज देखिया, कोई चेत्त नांहि ।।३६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी जीव, अपने ही सकाम कर्मो द्वारा, पाप पुण्य फल, भोग बन्धन में उलझ कर, काल को जगाकर, काल के मुख में पड़ते हैं ।

दोहा :- दोइ पुरूष मग जात थे, देख्यो सोवत नाग ।
एक बरजै एक लात दी, खात मर्‌यो वही जाग ।।३६।।

दृष्टान्त :- दो पुरुष रास्ते जा रहे थे । आगे रास्ते में काला सर्प सो रहा था । एक ने कहा :- सर्प सो रहा है । दूसरे ने कहा मरा हुआ है । उसने कहा :- लात मत मारना, जीवित है । उसने ज्यों ही लात मारी कि सर्प ने डस लिया और वह वहीं मर गया ।

सब जीव बिसाहैं काल को, करि करि कोटि उपाइ ।
साहिब को सुमरै नही, यौं परलै व्है जाइ ॥३७॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! संसार के सम्पूर्ण बहिरंग मनुष्य, करोड़ों उपाय करके, काल को प्राप्त होने के ही साधनों को खरीदते हैं और वह साहिब परमात्मा जो सत्य स्वरूप है, उसको सतसंग के द्वारा जानते ही नहीं । अर्थात् इसी प्रकार संसार के प्राणी प्रलय होते जाते हैं ।

दादू कारण काल के, सकल संवारै आप ।
मीच बिसाहै मरण को, दादू सोग संताप ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजन काल को प्राप्त होने के लिये, अपने आपको नाना प्रकार की विषय वासना और पाप कर्मों द्वारा संवारते हैं, अर्थात् सजाते हैं । और अपनी मृत्यु के लिये स्त्री रूप 'मीच' कहिए, काल को ग्रहण कर रहे हैं । यह तो मानो काल भगवान का उनको एक निमंत्रण ही दिया है । इसी लिये अज्ञानी जीव, शोक और सन्ताप से सदैव तप्त रहते हैं ।

पढ तो कोकिला बरजताँ, मुहम्मद को जामात ।
उंट बेच घोड़ो लियो, मींच लई पछतात ॥३८॥

दृष्टान्त :- मोहम्मद का जमाई कोकिला शास्त्र पढ़ा हुआ था । उसने ऊंट को बेचकर, घोड़ा खरीद लिया । जानता था कि घोड़े की लात से मेरी मृत्यु होगी । पर फिर भी काल ने उसकी मति मार दी । पीछे से घोड़े की लीद उठा रहा था, घोड़े ने एक लात मारी मुंह पर, और जान निकल गई । —'मीच बसाहै मरण को'

दादू अमृत छाड़ि करि, बिखै हलाहल खाइ ।
जीव बिसाहै काल को, मूढा मरि मरि जाइ ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक जीव, निष्काम अनन्य राम भक्ति रूप अमृत को त्यागकर, हलाहल रूपी विषयों का उपभोग करते हैं । यह अज्ञानी जीव मरने के लिये, काल को खरीद रहा है ।

निर्मल नाम बिसार करि, दादू जीव जंजाल ।
नहि तहांथैं करि लिया, मनसा मांहीं काल ।।४०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का निष्काम नाम स्मरण और जो आत्मा नित्य और ज्ञान स्वरूप है, तथा मुक्त है । परन्तु अज्ञान के द्वारा, मन में अध्यास करके, आभास अन्तःकरण रूप जीव, काल का जो बन्धन अविद्या जाल है, उसी में बंधा है ।

दोहा :- विद्या पढि सजीवनी, काल बंच नि नांहि ।
जग जीवन गुरू ज्ञान बिन, पड्या सिंह मुख मांहि ।।४०।।

दृष्टान्त :- चार पुरूष कासी में सजीवनी विद्या पढ़ने गये । जब विद्या पढ़ ली तो वापस घर लौट कर कर आ रहे थे । जंगल में विचार करने लगे कि अपन ने विद्या की परीक्षा तो की ही नहीं । एक पानी का लोटा लाये और उनमें से प्रथम पुरूष लोटे से एक पानी की चलु लेकर, हड्डियों के ऊपर जंगल में फैंका । सारी हड्डियां सिमट करके, एक ढेर हो गई । फिर दूसरे ने जल का छींटा मारा, तो हड्डियों का पशुओं के आकार का ढांचा बन गया । तीसरे ने ज्यों हो छींटा मारा तो उसमें खून मांस चमड़ी रोम, आंखें मुंह इत्यादि बनकर, बबर शेर बन गया । पांचवां एक गुरूमुखी पुरूष भी उसके साथ था । वह कहने लगा, बस बस अब रहने दो । आपकी विद्या की परीक्षा तो अब हो ही गई । चौथा बोला :- नहीं मेंने तो की ही नहीं परीक्षा । तब गुरूमुखी तो एक वृक्ष पर चढ़ गया । उसने ज्यों ही जल का छींटा, मंत्र पढ़कर मारा, तो उसमें एकदम चेतन सत्ता आ गई । और तत्काल गर्जना करके, एक एक पंजा चारों के मारा, वह सभी काल का ग्रास बन गये ।

सब जग छेली काल कसाई, करद लिये कंठ काटै ।
पंच तत्व की पंच पंखरी, खंड खंड करि बांटै ।।४१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण संसार के प्राणी, बकरी के स्थान में हैं और काल भगवान कसाई रूप हैं । अपनी त्रास रूपी करद द्वारा, सबके गले काट रहे हैं । और पंचीकृत पंच भूतों से बना जो स्थूल शरीर, अपंचीकृत भूतों से बनी जो पंच ज्ञान इन्द्रिये, उनको अपने अपने विषयों में लगाकर, सभी को काल भक्षण करता है ।

काल झाल मै जग जलै, भाजिन निकसै कोइ ।
दादू सरणैं सांच कै, अभै अमर पद होइ ।।४२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जगत के राम विमुख सम्पूर्ण प्राणी, काल की झल कहिए, आशा तृष्णा में जल रहे है । इसमें कोई भी अलग नहीं होता है । जब तक सत स्वरूप परमात्मा की शरण नहीं लेते, जब तक अभय पद और अमर पद की प्राप्ति नहीं होती । अर्थात् जिन उत्तम पुरुषों ने गुरु ज्ञान द्वारा, सत् स्वरूप परमेश्वर को पहचाना है, वही अमर और अभय को प्राप्त होते हैं ।

सब जग सूता नींद भरि, जागै नाही कोइ ।
आगै पीछै देखीये, प्रत्तखि परलै होइ ।।४३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसार के सम्पूर्ण प्राणी अज्ञान और घोर मोह रूप निद्रा में सो रहे हैं । ऐसे अविद्या आसक्त जीव, बहिमुख हो रहे हैं । इसीलिये उन अज्ञानियों की वृत्ति, अन्तर्मुख आत्म स्वरूप में नहीं लगती है । वे कोई आगे और कोई पीछे प्रत्यक्ष मृत्यु को प्राप्त, हो रहे हैं ।

ये सज्जन दुर्जन भये, अंति काल की बार ।
दादू इनमें को नही, बिपति बटावण हार ।।४४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह जो सज्जन दिखलाई पड़ते हैं, अपने परिजन अन्त समय में यही प्रीति लगा कर, दुर्जन जैसा बर्ताव करते हैं, अर्थात् दुख देते हैं । इनमें अन्त समय के दुख को बटाने वाला कोई भी नहीं है ।

दोहा :- सासू गहणों बहुन कौं, दिया बांट अंग च्यार ।
अन्त काल रसना थकि, मांगत सैनहि टार ।।४४।।

दृष्टान्त :- एक सेठानी के चार लडके थे । चारों बहुओं को उसने जीवित काल में ही अपना जेवर बांट दिया । जब उसका अन्त समय आया तो, बोली बन्द हो गई, प्राण नहीं निकलते । तब उसने मन में सोचा कि कुछ दान कर दूं, तो मेरे प्राण सुख से निकल जायें । बड़ी बहु को उसने शीश फूल, मोतियों का दिया था । उसको सैन में समझाया कि वह शीश फूल मुझे दे दे, तो मैं दान कर दूं । तब वह जान गई कि सासू शीश फूल किसी को देने को मांगती है । तब बोली कि अब अन्त समय आ गया, इस समय सब की खोपरी फटती है । ठीक है अब क्या करें ? दूसरी आई । नमस्कार किया और बोली :- मुझे भी कुछ सेवा

बतलाओ। गले के हाथ लगाकर हार मांगा। वह बोली कि सासू जी कहती हैं कि अब मेरा गला घुटने लग गया। तीसरी आई नमस्कार किया, कि मुझे भी सेवा बतलाओ। तब सासू जी ने हाथ के कंगनों की ओर इशारा किया। बहु बोली :- सासू जी कहती हैं कि मेरी नबज छूट गई। चौथी ने भी आकर नमस्कार करके सेवा की पूछी। तो सासू जी ने इशारे से पांव की कड़ी मांगी। बहु बोली कि सासू जी कहती है कि मेरे पैर अब ठण्डे हो गये हैं। नीचे उतार दो। इतने में सेठानी के प्राण निकल गये। किसी ने भी कुछ नहीं दिया।

संगी सज्जण आपणां, साथी सिरजनहार।
दादू दूजा को नहीं, इहि कलि इहि संसार ।।४५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अपना सभी जीवों का साथी और सज्जन, सबको उत्पन्न करने वाला परमेश्वर ही है, इस संसार में। वही अन्तकाल के दुख से बचाते हैं। उन्हीं का स्मरण करो।

एदिन बीते चलि गये, वै दिन आये धाइ।
राम नाम बिन जीव को, काल गीरासै जाइ ।।४६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ये जवानी के दिन समाप्त होते चले जा रहे हैं और वह बुढ़ापा के अथवा अन्तकाल का दिन दौड़कर नजदीक आ गये हैं। राम नाम का स्मरण करे बिना, इस प्रकार सभी जीवों को काल भक्षण करता जा रहा है।

दोहा :- एक एक कर सब चले, ज्यूं तरवर के पात।
जगजीवन जीव जगत के, सो किनहूं न जाने जात।।४६।।

जे उपज्या सो बिनसि है, जे दिसै सो जाइ।
दादू निर्गुण राम जपि, निहचल चित्त लगाइ ।।४७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो कुछ उत्पन्न होकर, प्रतीत होता है, वह सब काल पाकर नाश हो जायेगा। जो भी कुछ दिखाई पड़ता है स्थूलमय जगत, यह सब क्रम क्रम से जाने वाला है। इसीलिये निर्गुण ब्रह्मरूप राम का स्मरण करके, उसी में चित्त लगाओ।

जे उपज्या सो बिनसि है, कोई थिर न रहाइ ।
दादू बारि आपणी, जे दीसै सो जाइ ॥४८॥

टीका .- हे जिज्ञासुओ ! जो नाम रूप पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, वह काल पाकर नास भी होते हैं । इनमें कोई भी स्थिर नहीं रहता । क्रम क्रम से जो दीखता है, वह सब जाने वाला है ।

दादू सब जग मरि मरि जांत है, अमर उपावण हार ।
रहता रमता राम है, बहता सब संसार ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण जगत के प्राणी मर मरके, कर्मानुसार नींच ऊंच पद को प्राप्त होते हैं । परन्तु अमर तो केवल परमेश्वर ही है, जो सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न करता है । वही सबसे रहित और सबमें रमता राम कहा जाता है । और आनें जानें वाले को संसार कहतें हैं ।

दादू कोई थिर नहि, यहु सब आवै जाइ ।
अमर पुरिस आपै रहै, कै साधु ल्यौ लाइ ॥५०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मायिक कार्य कोई भी स्थिर नहीं हैं । यह सब आगमा पाई है । स्थिर तो केवल अमर पुरूष एक परमात्मा है या परमेश्वर में लय लगाने वाले ब्रह्मनिष्ठ संत हैं ।

(काल चितावनी)

यहु जग जाता देखि करि, दादू करी पुकार ।
घड़ि महुरत्त चालनां, राखै सिरजनहार ॥५१॥

टीका हे जिज्ञासुओ ! इस जगत को आता जाता देखकर, संत पुकार करते हैं कि हे परमेश्वर ! इस आवागमन के चक्र से तो, आप ही मुक्त करोगे । हम तो आपके ही आसरे हैं ।

दादू बिख सुख मांहै खेलताँ, काल पहुंच्या आइ ।
उपजै बिनसै देखतां, यहु जग यों ही जाइ ॥५२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विषय वासना रूपी सुखों से खेलते खेलते अर्थात् भोगते भोगते, काल आ

पहुंचता है और यह प्राणी नाश को प्राप्त होता है। ऐसे ही पुनः जन्म लेता है। यह जगत राम विमुख होकर, इसी प्रकार दुःखों में जाता रहता है।

राम नाम बिन जिव जे, केते मुये अकाल।
मीच बिना जे मरत हैं, ताथैं दादू साल ।।५३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम का स्मरण किये बिना, इस संसार में कितने ही जीव, अकाल मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं। अर्थात् यह जीव, एक रस मुक्त है। किन्तु स्वस्वरूप को बिसार कर, विषय सुखों में ही आसक्त होकर, आप स्वयं ही, अकाल मृत्यु के आवागमन में भ्रमता रहता है।

दोहा :- राम नाम निज जाय बिन, जिय दुख लहैं अपार।
अकाल मृत्यु याको कही, हरि बिन बारम्बार ।।५३।।

(कठोरता)

सर्प सिंह हस्ती घणा, राकस भूत परेत्त।
तिस बन मै दादू पड्या, चेतै नही अचेत ।।५४।।

टीका :- हे साधक ! इस शरीर रूपी बन में संसय रूपी सर्प, क्रोध रूपी सिंह, काम रूपी हाथी, विषया आसक्त मन, पंच ज्ञान इन्द्रियां, सतोगुण रजोगुण तमोगुण, इस संसार में अथवा शरीर अध्यास रूपी बन में, यह सब भूत प्रेतों की भांति व्याप्त हो रहे हैं। हे बर्हिमुख नादान ! परमेश्वर से विमुख होकर, इस शरीर आदि बन में क्या आसक्त हो रहा है? निर्विकार, निष्काम होकर, परमेश्वर का स्मरण कर।

पूत पिता थैं बीछुट्या, भूलि पड्या किस ठौर।
मरै नहिं उर फाटि करि, दादू बड़ा कठोर ।।५५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह जीव ब्रह्म का अंश, अपने पिता ब्रह्म से विमुख होकर देखो, संसार के विषय वासनाओं में तथा पाप पुण्य के बन्धनों में बंधकर भ्रमता है। किन्तु 'उर फाटि करि' कहिये, अज्ञान रूप भ्रम का नास करके, जीवत मृत्तक होकर अर्थात् गुणातीत तटस्थ रहकर, ब्रह्म से अभेद नहीं होता है, क्योंकि वृत्ति देह अध्यास में लगी है।

(काल चितावणी)

जे दिन जाइसो बहुरि न आवै, आव घटै तन छीजै ।
अंतिकाल दिन आइ पहुंचा, दादू ढील न कीजै ।।५६।।

टीक. :- हे जिज्ञासुओ ! जो उमर के दिन बीतते हैं, वह फिर दुबारा नहीं आने के । ऐसे ही मनुष्य देह के श्वांस भी नहीं आवेंगे । अन्त समय नजदीक आता है और गया समय वापिस नहीं आता । इसलिये राम का स्मरण करने में अब देर नहीं करना ।

दादू औसर चलि गया, बरियां गई बिहाइ ।
कर छिटके कहं पाइये, जनम अमोलिक जाइ ।।५७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह मनुष्य देह रूपी 'औसर' कहिये समय, राम भजन के बिना व्यर्थ जा रहा है । अर्थात् अन्तःकरण की वृत्ति बर्हिमुख साधनों में प्रवृत्त होवै, तो फिर आत्म तत्व कैसे प्राप्त हो सकता है ? इसीलिये अज्ञानी मनुष्यों का यह अमूल्य मनुष्य जीवन, वृथा ही जा रहा है ।

दादू गाफिल व्है रह्या, गाफिला हुवा गंवार ।
सो दिन चीत्त न आवई, सोवै पांव पसार ।।५८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के मार्ग से पिछड़े हुए विषय वासनाओं में पागल, विषयों के यार, भगवत् बिमुख होकर, सब जीव, मायावी प्रपंच में आसक्त होकर, पागल हो रहे हैं, और अन्त समय नजदीक आ रहा है । उसकी किसी को भी चिन्ता नहीं है । सभी जन पांव पसार कर सोते हैं, अर्थात् विषय वासनाओ के मनोरथ करते रहते हैं । अथवा यह जीव जिस रोज लम्बे पांव फैलावेगा अर्थात् प्राण पिण्ड का वियोग होगा, उस अन्त समय का विचार करके हे जीव ! इस मिथ्या माया के मोह को छोड़ कर, अब हरि का स्मरण कर ।

दादू काल हमारा करग है, दिन दिन खैंचत जाइ ।
अजहुं जीव जागै नहीं, सोवत गई बिहाइ ।।५९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! काल भगवान हमारा कहिये, सम्पूर्ण प्राणियों का, आयु रूपी हाथ पकड़ कर, अपनी तरफ खैंच रहा है । किन्तु फिर भी अज्ञानी बहिर्मुख जीव, मोह रूप निद्रा से नहीं जागता है और सारी आयु राम भजन के बिना निष्फल ही गमा रहा है ।

सूत्ता आवै सूत्ता जाइ, सूत्ता खेलै सूत्ता खाइ ।
सूत्ता लेवै सूत्ता देवै, दादू सूत्ता जाइ ।।६०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक अज्ञानीजन, अज्ञान अथवा मोह रूप निद्रा में ही तो आते हैं और इसी प्रकार जाते हैं । और अज्ञान में ही खेलते हैं । अज्ञान में ही अपने को भोगता जानकर, सब भोग भोगते हैं । और अचेत अवस्था में ही लेते हैं । अचेत अवस्था में ही चले जाते हैं ।

दादू देखत्त ही भया, स्याम वर्ण थैं सेत ।
तन मन जोबन सब गया, अजहुं न हरि सों हेत ।।६१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! माया प्रपंच को देखते देखते ही अज्ञानी प्राणी के सिर के काले बाल भी सफेद हो गये और तन मन यौवन जवानी, विषयों में ही वृथा गमा दी । किन्तु अब भी यह अन्त समय में मूर्ख प्राणी, प्रभु से प्रीति नहीं करता है ।

दादू झूठे के घर देखि करि, झूठे पूछे जाइ ।
झूठे झूठा बोलते, रहै मसाणौं आइ ।।६२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह परमेश्वर से झूठे जीव, अर्थात् गर्भवास के कोल करार को भूले हुए, ऐसे झूठों के घर, राम से विमुखो विषया आसक्त जीव, उनसे वार्ता करते हैं । वह झूठे, झूठों को, झूठी ही शिक्षा देते हैं । वह दोनों ही श्मशान में भूत प्रेतों की योनी को प्राप्त होते हैं ।

दादू प्राण पयाना करि गया, माटी धरी मसाण ।
जालण हारे देखि करि, चेतैं नही अजाण ।।६३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! झूठे व्यवहार करते करते शरीर से प्राण निकल गये । शरीर रूप मिट्टी श्मशान में रखी है । जलाने वाले देख रहे हैं । परन्तु फिर भी वह गंवार, विषयों के यार, यह नहीं विचार करते कि एक रोज हमारा शरीर भी श्मशान में लाकर, जलाया जायेगा ?

दोहा :- कबीर जिन हम जाये ते मुये, हम भी चालणहार ।
जे हमको आगै मिले, तिन भी बंध्या भार ।।६३।।

दादू कैई जाले कैई जालिये, कैई जालण जांहि ।
कैई जालन की करैं, दादू जीवन नांहि ॥६४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कितने ही तो जला दिये और कितने ही को जलाना है । और कितने ही को जलाने जा रहे हैं ? कितने ही को जलाने की तैयारी कर रहे हैं ? अब जीने की आशा नहीं है ।

दोहा :- कबीर रोवन हारे भी मुये, मुये जलावन हार ।
हा हा करते ही मुये, का सन करौं पुकार ॥६४॥

दोहा :- कहि पातसाह मोहि को, मीचन याद रहाइ ।
ल्याय बीरबल बोड़ वहु, खड़े दिखाये आइ ॥६४॥

दृष्टान्त :- बादशाह अकबर बीरबल से बोले :-बीरबल मुझे मौत याद नहीं रहती है । बीरबल बोले :- हुजूर ! मौत तो मैं आपको रोज याद करा दूंगा । दूसरे दिन कबर खोदने वालों को हाथों में फावड़े और गैंती लिए हुए बीरबल लाकर बादशाह के सामने खड़े कर दिये । बोला हुजूर ! इनको रोज देख लिया करो, यही कबर खोदने वाले हैं । इनके रोज दर्शन कर लिया करो, मौत याद रहेगी ।

केई गाडे केई गाडियो, केई गाडण जांई ।
केई गाडण की करैं, दादू जीवन नांई ॥६५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कितने ही तो दफना दिये और कितने ही को दफनाना है । कितने ही को दफनाने जा रहे हैं । कितने ही को दफनाने की तैयारी कर रहे हैं । परन्तु देखने वाले कोई भी उस मालिक का एक दिल होकर, नाम स्मरण नहीं करते ।

दादू कहैं उठरे प्राणी जाग जीव, अपना सजन संभाल ।
गाफिल नींद न कीजिये, आइ पहूंचा काल ॥६६॥

टीका :- ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हे प्राणी ! उठ कहिये मानसिक पुरूषार्थ कर । अज्ञान निद्रा से जाग कर, मायावी आसक्ति का त्याग करके, अपने सज्जन, परम प्यारे परमेश्वर का नाम स्मरण कर । हे साधक पुरुषों ! प्रभु के भजन से कभी भी विमुख नहीं होना, क्योंकि सबके सिर पर काल भगवान का चक्र घूम रहा है ।

सम्रथ की सरणा तजै, गहै आन की ओट ।
दादू बलिवंत काल की, क्यों करि बंचैं चोट ।।६७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सर्वशक्तिमान ईश्वर की शरण को छोड़कर, अन्य देवी देवता आदिकों की ओट ग्रहण करै तो काल की चोट से कैसे रहित हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं हो सकते ।

दोहा :- सुन्दर तोतूं उबरि है, सम्रथ सरनैं जाइ ।
और जहां तहां तूं फिरै, काल तहां तहाँ खाइ ।।६७।।

दोहा :- खोज पकड़ बिसवास गहीं, धणी मिलैगा आइ ।
अजा गज मस्तक चढि, निरभै कूं पल खाइ ।।६७।।

दृष्टान्त :- एक जंगल में, एक रोज रेवड़ से बिछुड़ कर, एक बकरी रात को रह गई । उसने सोचा, अब जान कैसे बचेगी ? जंगल में उसने सभी पशुओं के खोज देखे । जब शेर का खोज मिला, उसका सहारा लेकर बैठ गई । जंगल के जानवर निकलने लगे, खाना पीना करने को । बकरी को देखकर, गीदड़ मुंह बाह कर आने लगा । तब बकरी बोली :- पहले यहां आकर देख ले, यह किसका खोज है ? गीदड़ बोला :- शेर का । तो कहा :- उसकी बैठाई हुई हूं, वह मुझे बैठाकर गया है । गीदड़ डर गया । बोला :- बहन बैठी रहै, हम तेरे को कुछ नहीं कहते । इस प्रकार प्रायः सभी जंगल के जानवर देख देख कर चले गये । जब शेर गर्जना करता हुआ आया, बकरी बोली :- मेरी पहले प्रार्थना सुन लो । अब तक तो मैंने आपके खोज का सहारा लेकर, अपनी जान बचाई है । अब हे भाई ! आप मुनासिब समझो वैसा करो । शेर बोला :- ठीक है, अब तुझे किसी का भी खतरा नहीं है । शेर ने हाथी को बुलाया और बोला कि यह मेरी बहन है, इसको तुम अपने ऊपर चढ़ाओ और खूब कच्ची कच्ची वृक्षों की पत्तियां खिलाओ । उसी प्रकार हाथी करने लगा । बकरी हाथी के मस्तक पर चढ़ कर, सबसे निर्भय होकर, वृक्षों की पत्तियां खाती है, और मग्न रहती है । इसी प्रकार परमेश्वर के नाम रूपी खोज का सहारा लेकर, अनन्य भक्त नाम का स्मरण करते हैं । उन्हीं को परमेश्वर, काल कर्म के भय से मुक्त कर देते हैं ।

(सजीव)

अविनासी के आसरै, अजरावर की ओट ।
दादू सरणैं सांच कै, कदे न लागै चोट ।।६८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अविनाशी अजर अमर परमेश्वर का जिसने आसरा ले लिया है, उस सत्य स्वरूप के सत्य नाम का जो स्मरण करते हैं, उनके फिर कभी भी काल कर्म की चोट नहीं लगती है ।

(काल चितावनी)

मूसा भागा मरण थैं, जहां जाइ तहां गोर ।
दादू सरग पयाल मैं, कठिन काल का सोर ।।३९।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मूसा पैगम्बर, मुसलमानों के नेता ने एक समय कब्र खोदने वालों को देखा। पूछा :- यह कब्र किसके लिये खोद रहे हो ? वे बोले :- मूसा पैगम्बर अगर इधर मरेगा, तो उसको इस कब्र में दफनावेंगे । इसी प्रकार त्रिलोकी में मूसा पैगम्बर मरने के भय से दौड़ धूप करने लगे, परन्तु जहां गये वहां कब्र खोदते हुए देखा और सभी ने कहा :- मूसा साहब के लिये कब्र खोद रहे हैं । मूसा साहब जान गये कि तीनों लोकों में कहीं भी कोई क्यों न रहै, काल से बचना कठिन है । काल से तो एक अकाल पुरुष परमात्मा ही बचे हैं । मरण धर्म वाली वस्तुओं को तो, काल सभी को भक्षण कर लेता है । मूसा की रक्षा कहीं भी नहीं हुई । इसी प्रकार मरण धर्म वाला मन, जहां तहां सर्वत्र विषय सुखों में ही सुख की इच्छा करता है और लोक परलोक में दौड़ता है । परन्तु सर्वत्र वहां, काल का ही ग्रास बनता है ।

दोहा :- **मूसे को पुनी उलख को, देखि हंस्यो धर्मराज ।**
कही गरूड़ से जा धर्यो, गूहा मध्य अहि खात ।।६६।।

दृष्टान्त :- एक समय धर्मराज महाराज हंसने लगे । गरूड़ जी बोले :- महाराज ! कैसे हंसते हो ? धर्मराज बोले :- गरूड़ जी काल की शक्ति बड़ी भारी है । कोई काल से बच नहीं सकता । काल भगवान सबको भक्षण कर लेते हैं । अब थोड़ी देर में एक हजार मील दूर एक सर्प है, और सर्प से हजार मील दूर चुहा है । उस चुहो को अभी सर्प खाने वाला है । गरूड़ जी को बड़ा आश्चर्य हुआ, सुनकर । धर्मराज को नमस्कार करके गरूड़ जी चले और जहां बतलाया था चूहा, उसको वहां से उठाया और एक हजार मील दूर ले जाकर रखा और धर्मराज के पास आ बैठे । फिर धर्मराज महाराज हंसे । गरूड़ जी बोले :- महाराज !

अब क्या कारण है, हंसने का । धर्मराज महाराज बोले :- उस सर्प ने उस चूहे को खा लिया । गरुड़ बोले :- उसको तो मैं एक हजार मील दूर रख आया । धर्मराज जी बोले :- उसको तुम सर्प की बम्बी के ऊपर ही रख आये । सर्प को जाना ही नहीं पड़ा, वहीं भोजन कर लिया । गरुड़ जी ने धर्मराज महाराज को नमस्कार किया और कहा :- काल भगवान को भी हम बारम्बार नमस्कार करते हैं ।

दोहा :- जैसी होवै हो तबता, तैसी मिलै सहाय ।
कै चल आवै ताहि पै, कै ताहि तहां ले जाय ।।

सब मुख मांहै काल के, मांड्या माया जाल ।
दादू गोर मसाण में, झंपै सरग पयाल ।।७०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण प्राणी माया के जाल में फंस कर, मानो काल के ही मुँह में बैठे हुए हैं । काल भगवान ने अपना मुख सर्वत्र फैला रखा है । कोई गोर रूप कब्रस्तान में और कोई श्मशान में जलाये दफनाए जाते हैं । स्वर्ग में, पाताल में, सर्वत्र काल भगवान सबको पकड़कर खा रहे हैं ।

दादू मड़ा मसाण का, केता करै डफान ।
मृत्तक मुरदा गोर का, बहुत करै अभिमान ।।७१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर से विमुख जीव का शरीर, मसाण का प्रत्पक्ष मुरदा है परन्तु अपने शरीर और परिवार का, यह अज्ञानी जीव कितना अभिमान करता है ? यह तो प्रत्यक्ष में मृत्तक मुरदा गोर का, अर्थात् कब्रस्तान का होकर भी कितने अहंकार को प्राप्त हो रहा है ? इसको तो काल भगवान चूर्ण बना देंगे ।

राजा राणा राव मैं, मैं खानों सिर खान ।
माया मोह पसारै एत्ता, सब धरती असमान ।।७२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारी मनुष्य, माया में मग्न राम से विमुखी, उनकी तृष्णा का कोई पार नहीं है । वह राज प्रमुघ है तो आगे इक्छा करता है कि महाराजा प्रमुख हो जाऊं । और फिर महाराजा हो जावैं, तो सारी पृथ्वी के राज्य की इच्छा करता है । आगे इन्द्रासन की इच्छा होती है । इस प्रकार धरती आकाश,

सब पर अपना ही कब्जा चाहता है। इस तृष्णा का अन्त नहीं है। इसका अंत तो संतोष धारण करके, परमेश्वर का नाम स्मरण करने से ही होता है।

पंच तत्त का पूतला, यहु पिंड संवारा।
मंदिर मांटी मांस का, बिनसत नहीं बारा ॥७३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पंचीकृत पंच महाभूतों से बने हुए इस पिण्ड को, संसारिक प्राणी कितना हार शृंगार से सजाते हैं। परन्तु यह तो मन्दिर, मिट्टी मांस हड्डी चमड़ी से बना है, इसमें क्या सार पदार्थ है ? इसकी सफलता तो निष्काम परमेश्वर का स्मरण और जन समुदाय की सेवा करने में ही है। अन्यथा देखते देखते ही नास हो जायेगा।

हाड़ चाम का पिंजरा, बिच बोलणहारा।
दादू तामें पैसि करि, बहु कीया पसारा ॥७४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! राम विमुखी संसारिक पुरुष इस पंचीकृत शरीर में ही विकार रूप वासनाओं का प्लान बनाता रहता है। किन्तु बोलने वाले, सत्ता स्फूर्ति देने वाले, अपने स्वस्वरूप की, अज्ञानी मानव ने सुध बुध नहीं पाई।

बहुत पसारा करि गया, कुछ हाथन आया।
दादू हरि की भक्ति बिन, प्राणी पछताया ॥७५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमात्मा से विमुख जीव ने वासनामय बहुत पसारा फैला लिया, परन्तु परमेश्वर के नाम स्मरण के बिना, कुछ भी सार हाथ में नहीं आया। अन्त समय में परमेश्वर की भक्ति के बिना, यह प्राणी पश्चाताप ही करता है।

दोहा :- मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल।
मरद गरद मैं मिलि गये, सु हरि बोलो हरि बोलो ॥७५॥

माणस जल का बुदबुदा, पानी का पोटा।
दादू काया कोट में, मैं बासी मोटा। ॥७६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह मनुष्य का शरीर, जल के बुलबुले की भांति, वीर्य बिन्दू से पानी की पोट बना हुआ है। इस काया रूप कोट में बैठकर अपने को सबमें प्रधान मानता है। परन्तु यह तो क्षण भंगुर है। इसका क्या अभिमान करता है ? यह तो काल का ग्रास होने वाला है।

बाहरि गढ निर्भै करै, जीवे के तांहीं।
दादू मांहै काल है, सो जाणै नांहीं ॥७७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! संसारिक अज्ञानीजन, राम से विमुख अपनी रक्षा के लिये बड़े बड़े किले बनाकर, उसमें रहता है। और यह जानता है कि अब मुझे कोई भी शत्रु का डर नहीं है। किन्तु अज्ञानी मनुष्य यह नहीं जानता है कि वह काल भगवान तो मेरे भीतर ही है। उससे बचने का निष्काम राम नाम रूप स्मरण है। उसको तो यह करता नहीं है। तब काल रूप शत्रु से कैसे बचेगा ?

दोहा :- काल ग्रस्त है बावरे, चेतत क्यूं न अजान।
सुन्दर काया कोट मै, होइ रह्या सुलतान ॥७७॥
दोहा :- चौदह चोकी मांहि धर, मूसे रोक्या माग।
खेम काल सूं चाल कह, भयो चितेरो बाग ॥७७॥

दृष्टान्त :- एक साहूकार के लड़के की जन्मपत्री में यह शब्द पड़े कि इसकी जब शादी होगी, तो शादी होने के बाद इसकी मृत्यु, शेर के द्वारा हो जायेगी। यह सोचकर साहूकार लड़के की शादी नहीं करता। बड़े बड़े ठिकाने आये। बहुत से लोगों ने कहा कि जन्मपत्री की कोई सारी बात थोड़ा ही सिद्ध हुआ करती हैं। तब साहूकार ने विचार करके, एक कुलवती लड़की की अपने लड़के के साथ सगाई ले.ली। और शादी का दिन निश्चय हो गया। फिर भी साहूकार के मन मे संदेह था। राजा से सेना बरात के लिये साहूकार ने मंगवाई। सेना की चौदह चौकियों के बीच में, लड़के को शादी के लिये ले गये। शादी बड़े प्रेम से हो गई। उसी प्रकार सेना के बीच में लड़के को ला रहे थे। जब घर में घुसने लगे तो एक सैनिक के पास ढाल थी। उस ढाल के ऊपर शेर का चेहरा बना हुआ था। लड़के की अचानक उस ढाल के ऊपर निगाह पड़ी। उसको वह सच्चा शेर भान हुआ और बोला :- हाय ! वाग ने खाया। इतना कहते ही जान निकल गई।

(चित्त कपटी)

दादू सांचे मत साहिब मिलै, कपट मिलैगा काल।
सांचै परम पद पाइये, कपट काया में साल ॥७८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमात्मा की प्राप्ति का सत्य का मार्ग है । सत्य बोलना और सत्य सम्बन्धी कर्म करना । इस मार्ग से सत्य स्वरूप परमात्मा मिलते हैं । और कपट के मार्ग से काल प्राप्त होगा । परमेश्वर के सच्चे भक्त, सत्य के मार्ग से मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं । और ईश्वर विमुखी संसारीजनों को इस शरीर में ही कपट के कामों से काल प्राप्त होगा ।

(काल चितावणि)

मनहीं मांहै मीच है, सारों के सिर साल ।
जे कुछ व्यापै रात बिन, दादू सोई काल ।।७९।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमेश्वर के नाम स्मरण के बिना, जो कुछ मन में वासनायें फुरती रहती हैं, वह सब काल का ही स्वरूप हैं । हे मुमुक्षुओ ! राम स्मरण के बिना, जो भी कुछ अनात्म पदार्थों की वासना व्याप्त होती है, तन मन में । वह सब काल ही काल है ।

दादू जेती लहरि बिकार की, काल कवंल में सोइ ।
प्रेम लहरि सो पीव की, भिन्न भिन्न यौं होइ ।।८०।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! संसारी मनुष्यों के हृदय में विषय वासना और कामादि विकारों की जितनी भी फुरना फुरती है, वह सब काल का ही स्वरूप है । और परमेश्वर के अनन्य भक्तों के हृदय में निष्काम परमात्मा की भक्ति और वैराग्य आदि की जो लहर उठती है, वही परमेश्वर का स्वरूप है । भक्तों में और संसारिक प्राणियों में इतना ही अन्तर है ।

दोहा :- कालहि कर्म निरंजना, तिहु एकहि बास ।
भिन्न भिन्न करि जो कहै, सो सतगुरू मैं दास ।।८०।।

दादू काल रूप मांहैं बसै, कोई न जाणै ताहि ।
यह कूड़ी करणी काल है, सब कांहू कूं खाइ ।।८१।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! काल का स्वरूप तो सबके अन्तःकरण में ही बसता है । जो 'कूड़ी' कहिये खोटे काम हैं, वह सब काल का ही रूप है । परन्तु इस बात को संसारीजन नहीं जानते हैं कि यही काल रूप कर्म, हमको भक्षण कर रहे हैं ।

दादू बिष अमृत घट मै बसै, दूंन्यूं एकै ठांव।
माया बिखै बिकार सब, अमृत हरि का नांव ।।८२।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! विष और अमृत, ये दोनों घट कहिए अन्तःकरण में ही है। विषय शब्द आदि और काम वासना यह सब तो विष के समान हैं और निष्काम परमेश्वर का नाम स्मरण, यही अमृत है। संतजन इसको पीकर अमर होते हैं और संसारिकजन विषयों को भोगकर, मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

दादू कहां महम्मद मीर था, सब नबियों सिरताज।
सो भी मरि माटी हुवा, अमर अलह का राज ।।८३।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! काल की गति बड़ी बुलन्द है। देखो, मोहम्मद साहब, सब नवियों के शिरोमणी, उनका भी शरीर काल ने खा लिया और वह मिट्टी हो गया, और की क्या चली ? इसलिये अमर तो एक अल्लाह और उसका नाम ही है।

केत्ते मरि माटी भये, बहुत बड़े बलिवंत।
दादू केत्ते व्है गये, दानां देव अनन्त ।।८४।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! इस पृथ्वी के ऊपर बड़े बड़े बलवान हुए। परन्तु उनके भी शरीर सब मिट्टी हो गये। कितने ही दाना और देव अनन्त पृथ्वी के ऊपर हो गये। समय पाकर उन सभी के शरीर मृत्तिका में मिल गये।

दादू धरती करते एक डग, दरिया करते फाल।
हाकौं परवत फाड़ते, सो भी खाये काल ।।८५।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! काल भगवान की शक्ति के सामने, किसी की भी शक्ति नहीं चलती। जो धरती की एक डग करने वाले भगवान बावन जैसे, उनके शरीर को भी काल ने खा लिया। और समुद्र की एक फलांग करने वाले हनुमान जी जैसे बलिष्ट पुरूषों के स्थूल शरीरों को भी, काल ने चूर्ण कर दिया। और पहाड़ में जाकर 'हाक' देने से, जिनकी हाक से पहाड़ में दरार हो जाती, ऐसे ऐसे बलि भीम योद्धाओं को भी काल ने भक्षण कर लिया।

दोहा :- इंद्र लोक भय मानते, डरता सेस पाताल ।
जैमल ऐसे महाबली, केते खाये काल ।।८५।।

दादू सब जग कंपै काल थैं, ब्रह्मा बिश्न महेस ।
सुर नर मुनिजन लोक सब, सरग रसातल सेस ।।८६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! काल भगवान से तीन लोक कांपते हैं और कहां तक कहैं ? ब्रह्माजी, विष्णु जी, शंकर महाराज, सुर देवता, नर मनुष्य, मुनि लोग, सम्पूर्ण लोकों के निवासी, स्वर्ग और 'रसातल' कहिए पाताल में, शेष जी महाराज, यह सब ही काल भगवान से कंपायमान होकर, कारण ब्रह्म का ध्यान करके, काल की त्रास से मुक्त हुए हैं ।

चंद सूर धर पवन जल, ब्रह्म खंड परवेस ।
सो काल डरै करतार सैं, जै जै तुम आदेस ।।८७।।

टीका :- हे परमेश्वर ! चन्द्रलोक, सूर्यलोक, मृत्त लोक, पवन लोक, वरुण लोक, नौ खंड और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में काल भगवान व्याप्त हो रहे हैं । और प्राणी मात्र को क्रम क्रम से भक्षण कर रहे हैं । हे करतार ! प्रभु सच्चिदानन्द रूप, कारण ब्रह्म, आपसे काल डरते हैं । आपकी जय हो, जय हो, जय हो । आपका नाम स्मरण करके, आपके अनन्य भक्त भी काल की त्रास से मुक्त होते हैं । हे प्रभु ! आपको हमारी बारम्बार नमस्कार है ।

पवना पानी धरती अंबर, बिनसै रबि ससि तारा ।
पंच तत्त सब माया बिनसै, मानुस्य कहा बिचारा ।।८८।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जिन पंचीकृत पंच तत्वों से यह शरीर बना है, वह पांच तत्व भी समय पाकर नष्ट हो जाते हैं तो इस शरीर की क्या गणना है ? क्यों कि यह तो क्षण भंगुर है । जब माया के कार्य रवि, शशि तारे इत्यादिक सम्पूर्ण मायिक कार्य नास होने वाला है । अविनासी तो एक कारण ब्रह्म ही है । उसी का स्मरण करके, काल की त्रास से मुक्त होते हैं ।

दादू बिनसैं तेज के, माटी के किस मांहि ।
अमर उपावणहार है, दूजा कोइ नांहि ।।८९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बड़े-बड़े तेजस्वी भी नष्ट हो गये हैं। माटी के शरीरों की क्या गणना है ? अमर तो केवल एक सच्चिदानन्द निराकर, ब्रह्म ही है। बाकि सब ही काल के द्वारा नाश होने वाले हैं।

दोहा :- एक रहै करतार पुरूस, महाकाल को काल।
सुन्दर वह बिनसै नही, जाको यह सब ख्याल ॥८९॥

प्राण पवन ज्यौं पत्तला, काया करै कमाइ।
दादू सब संसार मै, क्योंहि गह्या न जाइ ॥९०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस शरीर को योगाभ्यास द्वारा ऐसा 'कमाइ' कहिए सूक्ष्म बना ले, प्राण वायु की तरह, जो सब जगह पहुंचने की गति हो जाय। और किसी के भी पकड़ धकड़ में नहीं आवै। उनके साहिब परमात्मा बस में रहते हैं, अथवा वे साहिब के बस में होते हैं।

नूर तेज ज्यौं जोति है, प्राण पिंड यौं होइ।
दिष्टि मुष्टि आवै नहीं, साहिब के बस सोइ ॥९१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिनका पिंड योगाभ्यास से नूररूप, तेजरूप, ज्योतिरूप, हो गया है। किसी के देखने में, किसी के पकड़ने में, वे नहीं आते हैं। वह साहिब रूप ही होते हैं।

(स्व की मित्र शत्रुता)

मन हीं मांहै व्है मरै, जीवै मन हीं मांहि।
साहिब साखी भूत है, दादू दूसण नाँहि ॥९२॥

टीका :- यह जीव रूप मन, नाना प्रकार की वासनाओं के द्वारा ही तो मरता है, और आप ही निर्वासनिक होकर, सजीवन भाव को प्राप्त हो जाता है। अधिष्टान चेतन्य साक्षी रूप है, उसे किसी भी प्रकार का कोई दोष नहीं लगता है।

आपै मारै आपको, आप आप कौं खाइ।
आपै अपना काल है, दादू कहि समझाइ ॥९३॥

टीका :- हे जिज्ञसुओ ! यह अज्ञानी जीव, निसिद्ध कर्मों द्वारा, अपने आपको आप ही मारता है । अपना काल, यह आप ही उत्पन्न करके, अपने आपको खाता है ।

आपै मारै आपको, यहु जीव बिचारा ।
साहिब राखणहार हैं, सो हेतु हमारा ॥९४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह बिचारा संसारिक अज्ञानी जीव, अनात्म वासनाओं के द्वारा, अपने आपको, आप ही पुनः पुनः मारता रहता है । 'साहिब' कहिए परमेश्वर तो हर समय, इसकी रक्षा ही करते हैं, क्योंकि यह उन्हीं का अंश है ।

अग्नि रूप पुरूष इक कहीं हे, संगतीं देह सहजहिं दहि है ।
दीसे माणस प्रत्यख काल, ज्यौं करि त्यौं करि दादू टाल ॥९५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! संसारिक अज्ञानी, राम बिमुखी जीव, कुसंगी ऐसे संसारीजन, मनुष्य रूप के आकार में दिखाई देते हैं, किन्तु वास्तव में, काल के ही स्वरूप हैं । ऐसे पुरूषों से सावधान रहना चाहिये, क्योंकि प्राणी मात्र को यह, काल रूप से दुख देते हैं । तथापि भजन स्मरण के द्वारा ऐसे काल रूप मनुष्य को टालिये ।

दोहा :- च्यार पुरूष बिद्या पढी, चले मिल्यो मग मूढ ।
एक टल्यो इक बचन कही, लाग मर्यो इक मूढ ॥९५॥

दृष्टान्त :- चार पुरूष कासी से विद्या पढ़कर आ रहे थे । मार्ग में एक मूर्ख, दूर से आता दिखाई पड़ा । एक तो उसको देखकर, उसने रास्ता छोड़ दिया । एक उसको मीठे बचन कह करके, अलग हो गया, तीसरा उसके शब्द का उत्तर ही नहीं दिया । मौन हो गया । चौथा तो उसमें भीड़ ही गया ।

(इति काल का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ सजीवनी का अंग २६ ।।

"अमृत पीवै आत्मा, यौं साधु बंचै काल०"—इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब सजीवनी का स्वरूप कहेंगे ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।१।।

टीका :- निरंजन, गुरूदेव और संतों को, हमारी बारम्बार वन्दना है । क्योंकि जिनकी कृपा से, जिज्ञासु कालरूप माया प्रपंच से मुक्त होकर, सजीवनी ब्रह्मस्वरूप होते हैं ।

दादू जेतु जोगी गुरूमुखी, तौ लेना तत्त बिचारि ।
गहि आवध गुरू ज्ञान का, काल पुरिस कौं मारि ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! यदि तूं गुरूमुखी योगी सब गुणों का जराने वाला है तो गुरू के उपदेश का यथार्थ पालन करके, ब्रह्म तत्व का यथार्थ विचार द्वारा, काल पुरूष को मारिये ।

नाद बिंद सौं घट भरै, सौ जोगी जीवै ।
दादू काहे कौं मरै, राम रस पीवै ।।३।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो साधक नाद प्रणव, और 'सोहं' शब्द आदि की जरणा करता है और वीर्य बिन्दु

से शरीर को पूर्ण रखता है, वह योगी गुरुमुखी मुक्त होता है। इस प्रकार एकत्व भावना रूप रस को पीने वाला साधक मुक्त होता हैं और वही अमर रहता है।

गुरू शिष्य बन में रहै, साधन साधत पीर।
खिचरी काली शिष्य भखी, व्है गयो अमर शरीर ।।३।।

दृष्टान्त :- एक गुरू और शिष्य बन में रहकर, काया कल्प की साधना में लगे थे। शिष्य गुरू की सेवा करता था। एक रोज शिष्य, जंगल से लकड़ी बीन कर लाया। और गुरू जी के लिये खिचड़ी बनाने लगा। एक लकड़ी से खिचड़ी को चलाया तो खिचड़ी काली हो गई। शिष्य ने देखा :- गुरू जी नाराज होंगे, काली खिचड़ी देखकर, इसका तो मैं भोजन कर लूं और फिर दुबारा गुरूदेव के लिये अच्छी खिचड़ी बना लूं। यह विचार कर, उस खिचड़ी को शिष्य ने खा लिया, पाते ही उसका शरीर अमर हो गया, क्योंकि वह अमर जड़ी थी। फिर उस लकड़ी को उसने चुल्हे में डाल दिया। गुरू ने जब शिष्य को देखा और पूछा - सौम्य ! तेरा ऐसा स्वरूप कैसे हो गया ? शिष्य ने उपरोक्त वृतान्त सब सुना दिया। गुरू बोले :- वह लकड़ी कहां है ? शिष्य बोला :- वह मैंने चुल्हे में जला दी। गुरू मन में समझ गये कि हमारी सेवा का फल परमेश्वर ने इसको दे दिया।

दोहा :- जबहि नाद निश्चल रहै, बिंदु न बाहरि जाइ।
जगन्नाथ जीवै सदा, अजरावर ल्यौ लाइ ।।३।।

साधू जन की बासना, सबद रहै संसार।
दादू आतम ले मिलै, अमर उपावणहार ।।४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरूषों की रहणी बासना, अर्थात् कथनी, उनका व्यवहार तो प्रगट में संसारिक मनुष्यों का सा है, किन्तु अन्तर गति से तो, वह पुरूष ब्रह्म में ही अभेद रहते हैं। परन्तु दया भाव करके, जीवों का कल्याण करने को ही, संसार में परमेश्वर की चर्चा, ज्ञान भक्ति का उपदेश करते हैं।

राम सरीखे व्है रहै, यहु नांही उनहार।
दादू साधू अमर है, बिनसै सब संसार ।।५।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! मुक्त पुरुष रामरूप होते हैं । अज्ञानी संसारिक पुरुषों जैसा उनका रूप नहीं होता है । वही संत अमर होते हैं, बाकी सब संसार के प्राणी नास को प्राप्त होते हैं ।

जे कोई सेवै राम को, तो राम सरीखा होइ ।
दादू नाम कबीर ज्यों, साखी बोलै सोइ ।।६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो उत्तम साधक राम की अनन्य भक्ति द्वारा सेवा करै, तो वह राम रूप ही हो जाता है । अर्थात् वह भाग्यशाली जिज्ञासु, नामदेव और कबीर आदि की तरह, निष्काम अनन्य भाव से, प्रभु भजन में लयलीन रहते हैं, वे ब्रह्म रूप होते हैं । तथा परचे संतों के शब्द ही, उनकी साक्षी देते हैं और लोक, वेद भी उनकी महिमा गाते हैं ।

अरथ न आया सो गया, आया सो क्यौं जाइ ।
दादू तन मन जीवत्तां, आपा ठौर लगाइ ।।७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन संसारिक मनुष्यों का तन मन परमेश्वर की भक्ति में और जन समुदाय की सेवा परोपकार में नहीं काम आया, उनका जीवन वृथा ही गया और जिन साधक पुरुषों का जीवन, परमात्मा की अनन्य भक्ति में और जन समुदाय की सेवा में लगा है, उनका ही जन्म सार्थक है । वे काल कर्म के आधीन नहीं होते । इसीलिये जीवित अवस्था में ही, अपने तन मन को परमेश्वर में लगाइये ।

दोहा :- बनक पास नृप मांगिया, रूपया दश सहस्त्र ।
तुलसी जल धरि देन लग्यो, लिये न मेड़तें बंस ।।७।।

दृष्टान्त :- मेड़ता के राजा एक समय, आपके नगर के साहूकार को बुलाया और बोला :- दस हजार रुपया चाहिये । साहूकार दस हजार रुपयों की थैलियां रखकर, उनके ऊपर तुलसी का पत्ता रखा, अर्थात् भगवान को अर्पण करके, राजा को देने लगा । राजा ने इन्कार कर दिया, क्योंकि बनिये ने यह सोचा कि राजा को रुपया देकर, फिर मांगने का तो सवाल ही नहीं रहता ।

जे जन बेधे प्रीति सौं, ते जन सदा सजीव ।
उलटि समाने आप मैं, अन्तर नांहीं पीव ।।८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो उत्तम साधक परमेश्वर की प्रेमा भक्ति में लग गये हैं, वे सदा ही सजीवन भाव को प्राप्त होते हैं, क्योंकि वह अपनी मन इन्द्रियों को बहिर्मुख से अन्तर्मुख उलट करके, परमेश्वर में लगाते हैं । उनमें और परमेश्वर में फिर कुछ अन्तर नहीं रहता है ।

(दया विनती)

दादू कहै सब रंग तेरे तैं रंगे, तूंही सब रंग मांहि ।
सब रंग तेरे तैं किये, दूजा कोई नांहि ॥९॥

टीका :- ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हे परमेश्वर ! यह सब रंग, भक्ति वैराग्य आदि, आपके हैं । और आपने ही अपने भक्तों को इन रंगों में रंगे हैं और आप ही सम्पूर्ण रंगों में व्याप्त हो रहे हो । आपके ही रचे हुए सब रंग हैं । आपके सिवाय दूसरा हमको तो, और कोई भी प्रतीत नहीं होता है ।

(सजीवन)

छूटै द्वन्द तौ लागै बंद, लागै बन्द तो अमर कंद ।
अमर कंद दादू आनन्द ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! शरीर के शीत, उष्ण और अन्तःकरण के राग, द्वेष आदि विकार छूटें, तब अखंड ब्रह्म ध्यान में, वृत्ति स्थिर रहती है । उसके बाद मुक्त पुरुष, अमर कंद कहिए, जीवन मुक्त भाव को प्राप्त होते हैं । ऐसे संतजन सदा ब्रह्म भाव में ही लीन रहते हैं ।

(प्रश्न)

कहं जम जौरा भंजियें, कहां काल कौ डंड ।
कहां मीच कौं मारिये, कहां जुरा सत्तखंड ॥११॥

टीका: - हे सत उपदेश के देने वाले सतगुरू ! इस जबरदस्त यमराम को हराने का और काल को सजा देने का क्या साधन है ? और मृत्यु को मार कर, वृद्धावस्था के टुकड़े करने का क्या साधन है ! और हे सतगुरू ! जीवन मुक्ति का क्या साधन है ?

(उत्तर :- चार साखियों से)

अमर ठौर अबिनासी आसन, तहां निरंजन लागि रहे ।
दादू जोगी जुग जुग जीवै, काल ब्याल सब सहज गये॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अन्तःकरण की अन्तर्मुख लय वृत्ति में, अविनाशी परमात्मा का आसण है । सो अन्तर्मुख होकर, निरंजन अखंड ब्रह्म में लय लगाने से ही, साधक की पूर्वोक्त कालों से मुक्ति होगी ।

रोम रोम लै लाई धुनि, ऐसैं सदा अखंड ।
दादू अबिनासी मिलै, तौ जम कौं दीजै दंड ।।१३।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब यह मन भक्ति परायण होकर, ब्रह्म में लीन होता है और फिर रोम रोम से ब्रह्म ध्वनि होने लगै, उस अवस्था में यह जीव, यम रूप काल से निर्भय हो जाता है ।

दादू जुरा काल जामण मरण, जहां जहां जिव जाइ ।
भक्ति पराइण लीन मन, ताकौं काल न खाइ ।।१४।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जर जर अवस्था, काल, जन्मना मरना, यह जीव जहां भी कर्मानुसार जाता है, यह सब इसके साथ ही रहते हैं । परन्तु जब निष्काम परमेश्वर की भक्ति में, मन लीन होता है, उसको फिर काल नहीं खाता । वह फिर काल से मुक्त हो जाता है ।

मरणा भागा मरण थैं, दुखैं नाठा दुख ।
दादू भै सो भै गया, सुखै छूटा सुख ।।१५।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जीवत मृत्तक अर्थात् अहम् भाव को मारने से, जन्म मरण का दुख भाग जाता है और साधन कोटी के दुखों से, संसार के नाना प्रकार के दुखों का नाश होता है । हरि, गुरू, संतों के भय से, काल का भय, नष्ट हो जाता है । इस रीति से हे पुरुषो ! विषय सुखों से छुटकारा पाने के बाद, अखंड ब्रह्मानन्द सुख की प्राप्ति होती है ।

(जीवन मरण निर्णय)

जीवत्त मिले सो जीवत्ते, मूये मिलि मरि जाइ ।
दादू दोन्यूं देखि कर, जहं जाणै तहं लाइ ।।१६।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! उत्तम साधक, अखंड लय वृत्ति द्वारा, जीवित काल में ही, परमेश्वर से जो अभेद होते हैं, वही संत जीवन मुक्त अमर हैं । और जो कहते हैं कि मरे के बाद, परमेश्वर को मिलते हैं, वह

संसारी जन तो जन्मले मरते ही रहते हैं । इस प्रकार दोनों मार्गों का विचार करके, अपने मन को परमेश्वर में लगाइये ।

(सजीवन)

दादू साधन सब किया, जब उनमन लागा मन ।
दादू अस्थिर आतमा, यों जुग जुग जीवैं जन ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब यह मन 'उनमन' कहिये ब्रह्मी अवस्था को प्राप्त हुआ, तो पूर्व काल के सम्पूण साधन, स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं । फिर वह स्थिर बुद्धि जीव, युग युग में अमर भाव को प्राप्त होता है ।

रहते सेती लागी रहु, तौ अजरावर होइ ।
दादू देखि बिचारि करि, जुदा न जीवै कोइ ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! माया और माया के कार्य से रहित, निरंजन निराकार परमेश्वर है । उसके नाम स्मरण में अपने मन को लगाये रहो, तो फिर तुम अजर अमर पद को प्राप्त हो जावोगे । उससे अलग रहकर, कोई भी अमर नहीं होता ।

दोहा :- जरा मीच व्यापै नहीं, मुवा न सुनिये कोइ ।
चलि कबीर तिस देस कूं, जहां बैद बिधाता होइ ॥१८॥

जेती करणी काल कीं, तेती पर हरि प्राण ।
दादू आतमराम सौं, जे तूं खरा सुजाण ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासु जितने भी निसिद्ध कर्म काल को प्राप्त कराने वाले हैं, उन सबका परित्याग करके और अन्तर्मुख वृत्ति से आत्म स्वरूप राम में लय लगा, यदि तूं चतुर जिज्ञासु है तो ।

बिष अमृत घट में बसै, बिरला जाणै कोइ ।
जिन बिख खाया ते मुये, अमर अमी सों होइ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ? संसार के विषय वासनाओं की कामना, संसारिक पुरूषों के अन्तःकरण में बसती है और परमेश्वर के अनन्य भक्तों के अन्तःकरण में, परमेश्वर का नाम स्मरण बसता है। इस बात को कोई बिरले पुरूष समझते हैं। जो विषय वासनाओं का उपभोग करते हैं, वह मृत्यु को प्राप्त होते हैं। और जिन भक्तों ने परमेश्वर का नाम स्मरण रूप अमृत पीया है, वह अमर होते हैं।

दोहा :- अमृत्त रूपी राम जी, विष रूपी जु बिकार।
तुलसी गुरू के ज्ञान बिनु, लागि मुवा संसार ।।२०।।

दादू सब ही मरि रहै, जीवै नांही कोइ।
सोई कहिये जीवते, जे कलि अजरावर होइ ।।२१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम से विमुख सम्पूर्ण संसार के प्राणी, जीते ही मरे हुए हैं, उनमें कोई भी सजीवन भाव को प्राप्त नहीं होंगे। वही साधक पुरूष सजीवन भाव को प्राप्त होते हैं, जो निष्काम परमेश्वर का स्मरण करके, अजर अमर भाव को प्राप्त होते हैं।

देह रहै संसार में, जीव राम के पास।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल झाल दुख त्रास ।।२२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के अनन्य भक्तों का शरीर तो संसार में रहता है, परन्तु उनका जीव परमेश्वर के स्वरूप में स्थिर है। इसीलिये उनको काल के जाल काम क्रोध आदि आशा तृष्णा रूप काल की झल, और जन्म मरण के दुख, यह कोई भी स्पर्श नहीं कर पाते।

काया की संगति तजै, बैठा हरि पद मांहि।
दादू निर्भै व्है रहै, कोइ गुण व्यापै नांहि ।।२३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के निष्कामी भक्त, काया के अध्यास को त्यागकर, परमेश्वर के ध्यान में स्थिर रहते हैं। फिर वह काल कर्म के भय से निर्भय होकर, कोई भी गुण विकारों में लिपायमान नहीं होते हैं।

दादू तजि संसार सब, रहै निराला होइ।
अबिनासी के आसिरै, काल न लागै कोइ ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के सच्चे भक्त, संसार से प्रीति हटाकर, अनासक्त भाव से रहते हैं और एक अविनाशी परमात्मा के नाम स्मरण का आश्रय ले लिया है जिन्होंने, उनको कोई भी काल स्पर्श नहीं कर पाता ।

जागहु लागहु राम सौं, रैन बिहानी जाइ।
सुमिर सनेही आपणा, दादू काल न खाइ ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! मोहरूप निद्रा से जागकर, राम नाम का स्मरण कर, क्योंकि यह उम्ररूप रात्रि, अज्ञान अवस्था में ही बीतती जा रही है । अपना हितेषी परमेश्वर है क्योंकि वह गर्भवास से लेकर मरण पर्यन्त जीव की रक्षा करता रहता है । उसी का स्मरण कर, तो फिर कोई भी काल तेरा स्पर्श नहीं कर पावेगा ।

दादू जागहु लागहु राम सों, छाड़हु बिषै बिकार।
जीवहु पीवहु राम रस, आतम साधन सार ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! मोहरूप निद्रा से जागकर, विषय विकारों का त्याग करके, राम नाम में लय लगा । कब तक ? जब तक इस शरीर और प्राणों का संयोग है, तब तक अखंड राम रस पीजिये । यही एक साधन, आत्म कल्याण का है ।

(स्मरण नाम निरसंसै)

मरै तपावै पीव को, जीवत बंचै काल।
दादू निर्भै नाम ले, दोन्यूं हाथ दयाल ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निष्काम राम नाम का स्मरण करते करते, यदि शरीर छूट जावे तो, राम को प्राप्त होवेगा । और जीवित रहेगा तो, काल को जीत लेगा । इसलिये सब प्रकार निर्संशय होकर, राम का स्मरण कर । दोनों स्थित में, दयालु परमात्मा की प्राप्ति है ।

दादू मरणे को चला, सजीवन के साथि ।
दादू लाहा मूल सौं, दोन्यूं आये हाथि ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! सजीवन, सब की जीवन रूप परमेश्वर, उसमें लीन होकर, जीवत मृतक, निष्काम गुणातीत भाव होवैं तो, प्रेमा भक्ति रूपी लाभ और मूल मनुष्य जन्म, दोनों ही सफल हैं ।

(करुणा)

दादू जाता देखिये, लाहा मूल गंवाइ ।
साहिब की गत्ति अगम है, सो कुछ लखी न जाइ ॥२९॥

टीका :- हे परमेश्वर ! हम अज्ञानियों को आप देख रहे हो । आपकी प्रेमाभक्ति रूप लाभ और मनुष्य जन्म रूपी मूल को, हमने गमा दिया है । परन्तु हे नाथ ! आपकी शक्ति अपार है, वह हमसे जानी नहीं जाती है । तथा हे संतो ! इस अज्ञानी को देखो ? यह परमेश्वर की प्रेमा भक्ति और मूल मनुष्य देह को खोकर, वृथा दुख पाता है । यह प्रभु की मायावी शक्ति अति अपार है । इसको कोई जान नहीं सकते ।

(सजीवन)

साहिब मिलै तो जीविये, नहीं तो जीवै नांहि ।
भावै अनंत उपाय करि, दादू मूवौं मांहि ॥३०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमेश्वर की प्राप्ति होने से ही‘ यह जीव अमर भाव को प्राप्त होता है और इस मनुष्य शरीर में परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होवैं, तो चाहे अनन्त उपाय कहिये साधन करने से भी, मृत्यु से नहीं बचेगा, अर्थात् वह मरे हुए पुरूषों की ही गणना में होगा ।

सजीवनी साधै नहीं, ताथैं मरि मरि जाइ ।
दादू पीवै राम रस, सुख मैं रहै समाइ ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक जन, परमेश्वर की सजीवनी भक्ति की तो साधना करते नहीं हैं, और सकाम कर्म करके ही, मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं तथा परमेश्वर के अनन्य निष्कामी भक्त, अभेद निश्चय रूप, राम रस को पान करके, सुख स्वरूप परमेश्वर में समा जाते हैं ।

दिन दिन लहुड़े हूंहि सब, कहैं मोटा होता जाइ ।
दादू दिन दिन ते बढ़े, जे रहे राम ल्यौ लाइ ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारीजनों की प्रतिदिन 'लहुड़े' कहिए, आयु क्षीण होती जा रही है । परन्तु शरीर में अध्यास करके, अज्ञानीजन आयु की वृद्धि और शरीर की पुष्टि का मिथ्या अभिमान करते हैं । किन्तु परमेश्वर के निष्कामी भक्त, राम नाम के स्मरण द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।

न जाणौं हांजी चुप गहि, मेटि अग्नि की झाल ।
सदा सजीवन सुमरिये, दादू बंचै काल ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! किसी भी कार्य में अपने को कर्त्ता न समझे । निर अभिमान होकर, असंग भाव से निष्काम शुभ कर्म करें और सदैव अविनाशी ब्रह्म का स्मरण करते हुए, वही काल से मुक्त होते हैं । अथवा हे जिज्ञासु ! अज्ञानी मूर्खों, के सामने, वह कहैं कि तूं नहीं जानता ? कि हां जी, मैं नहीं जानता या चुप हो जावे, तो क्रोध रूप अग्नि की झल शान्त हो जाती है । और फिर परमेश्वर का नाम स्मरण करके, क्रोध रूप अग्नि से, साधक बचता है ।

दोहा :- दो नित लड़ती मातलि, इक संतन से पूछ ।
जड़ि दइ दातों तलै, बोलिये न कह कुछ ॥३३॥

दृष्टांत :– एक जेठानी और दूसरी दोरानी, यह दोनों रोज खूब जंग करती । खाना पीना भी इनके झगड़े में घर वाले सब भूल जाते । परन्तु दोरानी कुछ समझदार और सात्विक विचार वाली थी । एक रोज, एक महात्मा के पास गई और बोली :- महाराज । मेरी जेठानी, मुझसे बहुत झगड़ा करती है । आप मुझको कोई ऐसी जड़ी देओ कि जिससे हम दोनों का झगड़ा खत्म हो जावे । महातमा बोले :- उस जड़ी का आप साधन कर लो गी ? वह बोली; "मैं जरूर कर लूं गी ।" महात्मा ने अपनी झोली से एक जड़ी का टुकड़ा दिया और बोले :- कि जब वह तुझे गाली देने लगे, तब इस जड़ी का थोड़ा टुकड़ा तोड़ कर, दातों के अन्दर दबा लेना । चाहे वह तेरे जूते भी मारै, तब भी कुछ मत बोलना । छह महीने इस प्रकार साधन रखना, तेरी जेठानी तेरे बस में हो जायेगी । महात्मा को नमस्कार करके, घर गई । और दोनों का ज्यों ही झगड़ा शुरू हुआ, तत्काल वह जड़ी तोड़ कर, दातों में दबाने लगी । कुछ देर में जेठानी शान्त हो गई । इस प्रकार दो महीने के अन्दर ही, जेठानी ने आकर उसके पावों में नमस्कार किया और बोली :- तेरे को धन्य है, मैं इतनी बकती हूं, परन्तु तूं मुझे एक भी जबाब नहीं देती है । ऐसी क्या जड़ी तुझे मिल गई ? तब दौरानी ने उपरोक्त वार्त्ता सब सुना दी । दोनों ने आकर महात्मा जी को नमस्कार किया और फिर उनकी आज्ञा मानकर, दोनों सुख शान्ति से घर में रहने लगी ।

(जीवन मुक्ति)

दादू जीवत छूटै देह गुण, जीवत्त मुक्ता होइ।
जीवत्त काटै कर्म सब, मुकति कहावै सोइ ॥३४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जीवित अवस्था में ही स्थूल शरीर के शीत उष्ण, चोरी जारी हिंसा, जिसके छूट गये हैं और मनके संकल्प विकल्प तृष्णा आदि नष्ट हो गये हैं। ऐसे निर्वासनिक पुरुष जीते ही मुक्त हैं। इसी का नाम जीवन मुक्ति है। वह तत्वज्ञान से सम्पूर्ण कर्म बन्धन को काट बैठे हैं।

दादू जीवत ही दूत्तर तिरै, जीवत लंघै पार।
जीवत्त पाया जगत गुरू, दादू ज्ञान बिचार ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जीते जी ही 'दूत्तिर' कहिए कठिन संसार समुद्र से उत्तम साधक, सतसंग द्वारा, तर जाते है, अर्थात् गुण विकारों से रहित हो जाते हैं। वही जगत-गुरू को प्राप्त करते हैं, जो गर्भवास में प्राणीमात्र को, उपदेश करता है।

जीवत्त जगपती को मिलै, जीवत आतम राम।
जीवत्त दरशन देखिये, दादू मन बिसराम ॥३६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवित अवस्था में ही 'जगपति' कहिए, परमेश्वर को निर्वासनिक होकर मिलते हैं। जीवित अवस्था में ही, आतमा रूप राम का साक्षातकार करते हैं, उन्हीं मुक्त पुरूषों का मन, अक्षय शान्ति को प्राप्त होता है।

दोहा :- सुनदर संशय को नहीं, बड़ो महोछव येह।
आतम परमातम मिले, रहो कि बिनसो देह ॥३६॥

जीवत पाया प्रेम रस, जीवत पिया अघाइ।
जीवत पाया स्वाद सुख, दादू रहै समाइ ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जीवित अवस्था में ही प्रेमा भक्ति का अमृत पीकर, 'अघाइ' कहिए तृप्त रहते हैं।

जीवित अवस्था में ही, जीव ब्रह्म की एकता की एकता के आनन्द का, अनुभव करते हैं। इस प्रकार मुक्तजन, ब्रह्मानन्द में अभेद होकर रहते हैं।

जीवत भागे भरम सब, छूटे कर्म अनेक।
जीवत्त मुकत्त सदगत्त भये, दादू दरसन एक ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जीवित काल में ही, जिनके अद्वैत सतसंग द्वारा, सम्पूर्ण भ्रम संदेह दूर हो गये हैं, उनके सम्पूर्ण कर्म छूट गये हैं। ऐसे पुरुष जीते ही मुक्त होते हैं, जो एक ब्रह्म का ही व्यापक रूप से दर्शन करके, सद्गति को प्राप्त हुये हैं।

जीवत्त मेला ना भया, जीवत परसन होइ।
जीवत्त जगपति ना मिलै, दादू बूड़ै सोइ ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जीवित अवस्था में ही, जिनका, परमेश्वर से संयोग नहीं हुआ, और जीवित अवस्था में ही परमेश्वर से स्पर्श नहीं किया। जीवित अवस्था में ही जगत्पति परमेश्वर से अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा नहीं मिले। वह अज्ञानी, संसार समुद्र में ही डूबते रहते हैं।

जीवत्त दूत्तर ना तिरे, जीवत न लंघे पार।
जीवत्त निरभै ना भये, दादू ते संसार ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो अज्ञानी, जीवित अवस्था में ही निर्वासनिक नहीं हुए, वह इस संसार से नहीं तरते। जीवित अवस्था में ही, देह अध्यास का त्याग करके, जो निर्भय नहीं हुए, अर्थात् काल कर्म के भय से मुक्त नहीं हुए, तो वह पुरुष, संसार समुद्र में ही गोते खाते रहते हैं।

जीवत्त प्रगट ना भया, जीवत परचा नांहि।
जीवत्त न पाया पीव कौं, बूड़े भो जल मांहि ॥४१॥

टीका:- हे जिज्ञासु ! जीवित अवस्था में ही आवरण से रहित नहीं हुए, जीवित काल में स्वरूप परचे नहीं किया, और जीवित अवस्था में ही अपने पालन करने वाले परमेश्वर का अपरोक्ष दर्शन नहीं हुआ, तो वे अज्ञानी, संसार समुद्र ही डूबते हैं।

जीवत्त पद पाया नहीं, जीवत्त मिलै न जाइ।
जीवत्त जे छूटे नहीं, दादू गये बिलाइ ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! इस मनुष्य शरीर से निर्वाण पद कहिए स्वस्वरूप में स्थित नहीं हुए, तो वह, आत्म स्वरूप परमेश्वर से नहीं मिलते और जीवित काल में कर्म बन्धन से मुक्त नहीं हुए, तो उन अज्ञानियों का यह मनुष्य शरीर, व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है ।

दादू छूटै जीवतां, मूवां छूटै नांहि ।
मूवा पीछै छूटीये, तो सब आये उस मांहि ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जीवित अवस्था में ही कर्म बन्धनों से साधनों द्वारा मुक्त हो सकता है, मरे बाद कोई भी मुक्त नहीं होता । मरने के बाद मुक्त होवे तो, सर्व संसार ही कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाना चाहिये । परन्तु ऐसे कोई भी नहीं हो पाते । इसलिये जीवित काल में ही अद्वैत सतसंग द्वारा, कर्म बन्धनों से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये ।

मूवाँ पीछै मुक्ति बतावै, मूवां पीछै मेला ।
मूवां पीछै अमर अभय पद, दादू भूले गहिला ॥४४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अज्ञानी संसार मनुष्य, मरने के बाद कहते हैं कि हरिद्वार में फूल डाल दिये, गया में पिंड भरा दिये, द्वादसा कर दिया, अब हमारे मातृ पितृ आदिक मुक्त हो गये । परमेश्वर से मिल गये । उन्होंने अमर पद और अभय पद को प्राप्त कर लिया । ऐसे कहने वाले सत्स्वरूप परमात्मा को भूले हुए 'गहिला' कहिए, बावले पुरुष हैं ।

मूवां पीछै बैकुंठ बासा, मूवां सुरग पठावै ।
मूवां पीछै मुक्ति बतावै, दादू जग बौरावै ॥४५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बाचक पंडित लोग, दान धर्म, क्रिया कर्म आदि कराके कहते हैं कि अब मृतक प्राणी बैकुन्ठ में गया । गया श्राद्ध कराके, स्वर्ग में भेज देते हैं और मरने के बाद गरूड़ पुराण सुनाकर मृत्तक की मुक्ति बतलाते हैं । ऐसे ही जगत को बहकाते हैं । वास्तविक मुक्ति तो आत्म ज्ञान द्वारा, जीवित अवस्था में ही होती है, मरने के बाद तो कर्मानुसार संसार चक्र में ही घूमता है ।

मूवां पीछै पद पहुंचावै, मूवां पीछे तारै ।
मूवां पीछै सद्गति होवै, दादू जीवत्त मारै ॥४६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! मरने के बाद, किया कर्म कराके, बेटे पोते आदिक कहते हैं कि मृत्तक अब निर्वाण पद को हो गया । मरने के बाद बताते हैं कि हमने मृत्तक को सब, हरिद्वार, गया, श्राद्ध आदि कराके तार दिया । और द्वैतवादी भी कहते हैं कि तुमने मृत्तक के सब कर्म काण्ड के द्वारा, कर्म करा कर, मृत्तक को तार दिया । फिर कहते हैं कि हमारे माता पिता सद्गति को प्राप्त हो गये । और जीवित काल में माता पिता की बात भी नहीं पूछते--"जीवतें न पूछी बात, मरे पीछै मीठा भात०" इत्यादिक अनेक चाल चलते हैं ।

मूवां पीछै भगत्ति बतावै, मूवां पीछै सेवा ।
मूवां पीछै संजम राखै, दादू दो जग देवा ॥४७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! संसारिक अज्ञानी प्राणी मिथ्यावादी, मृत्तक के लिये कहते हैं कि वह बड़ा भक्त था, वह बहुत सेवा करने वाला था, वह बहुत नेमी धर्मी था । ऐसे कहने वाले पुरुष, मृत्तक को और अपने आपको, नरक में देने वाले हैं ।

(सजीवन)

दादू धरति क्या साधन किया, अंबर कौन अभ्यास ।
रवि ससि किस आरंभ थैं, अमर भये निजदास ॥४८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! धरती ने ऐसा क्या तप किया है ? और आकाश ने कौनसा योग किया है ? और सूर्य चन्द्रमा ने क्या योग यज्ञ किया है ? किन्तु परमेश्वर के आज्ञाकारी निजदास होने से ही अमर सजीवन रूप हो रहे हैं । हे परमेश्वर ! यह सब आपकी केवल कृपा है ।

साहिब मारे ते मुये, कोई जीवै नांहि ।
साहिब राखै ते रहे, दादू निज घर मांहि ॥४९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिन अनन्य भक्तों की परमेश्वर ने सम्पूर्ण गुण विकार आदिकों से रक्षा की है, सो संतजन 'निज घर मांहि' कहिए, स्वस्वरूप में ही अखण्ड लय लगाई है और बाकी संसारिक जन, चौरासी में भ्रमते रहते हैं । जो परमात्मा को भूलता है, अथवा परमेश्वर जिनको भुलाता है । 'जीवै नहीं' अर्थात्, वह जीवनमुक्त अवस्था के बिना, कोई भी जीवित नहीं कहे जा सकते ? अर्थात् जिसने परमेश्वर को सदैव स्मृति में रखा है, वही परमेश्वर रूप होकर, कृत्य कृत्य हुए हैं ।

जे जन राखै राम जी, अपनै अंग लगाइ ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, जै कोट काल झखि जाइ ।।५०।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो साधक, अन्तःकरण में, आतम स्वरूप राम में अपनी वृत्ति में स्थिर करता है और फिर कोई वासना, विकार, गुण वृत्ति में उत्पन्न नहीं होने देता, वे ही सदैव जीवन मुक्त होते हैं । उनसे कदाचित् करोड़ों काल भी संघर्ष करैं, तो भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं कर पाते ।

दोहा :- ईश्वर राखै ते रहै, कठिन ठौर जगन्नाथ ।
कोटि काल जो पचि मरैं, परै नै तिनकै हाथ ।।५०।।

दोहा :- नर निरभय हरि नाम मै, यह गढ अगम अगाध ।
रज्जब रिपु लागै नहीं, सदा सुखी सो साध ।।५०।।

दोहा :- रज्जब मुये जु मारते, बिनसे बैरी पंच ।
तब ताकूं लागै नहीं, जरा मरण जम अंच ।।५०।।

(इति सजीवनी का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ पारिख का अंग २७ ।।

"साधु जन की वासना, सब्द रहै संसार०" - इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, सजीवन के अंग के अनन्तर, पारिख के अंग का निरूपण करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ।।१।।

टीका :- हे निरंजन देव ! आपको हमारी बारम्बार नमो नमो है और तद्नन्तर गुरूदेव को भी हमारा नमस्कार है तथा सर्व ही सन्त तीन काल, चार आश्रम, चार वर्ण के, उन सबको हमारी वन्दना होवै । इस प्रकार हरि, गुरू, संतों को बन्दना प्रणाम करके, पारिख द्वारा 'गतः' कहिये, संसार समुद्र से पार होते हैं ।

(साधुत्व परीक्षा)

दादू मन चित्त आतम देखिये, लागा है किस ठौर ।
जहं लागा तैसा जाणिये, का देखै दादू और ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'मन' - संकल्प विकल्प करने वाला, 'चित्त' - चितवन वृत्ति, बुद्धि निश्चय करने वाली वृत्ति, इन सबको विचारपूर्वक देखिये, किस जगह लगे हैं ? अनात्मा में लगे हैं या आत्मा में लगे हैं ? अनात्मा में लगे हैं तो संसार दशा को प्राप्त होंगे और आतमा में लगे हैं, तो जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त होते हैं । और ऊपर का चिन्ह क्या देखते हो ?

दादू साधु परखिये, अन्तर आत्म देख।
मन मांहि माया रहै, कै आपै आप अलेख ।।३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'साधु परखिये, अर्थात् अन्तःकरण की वृत्ति को देखिए, किस जगह लगी है ? माया और माया के कार्य में लगी है या आत्म स्वरूप परमात्मा में लगी है। जो परमात्मा में लगी है, तो वह आप स्वयं अलेख से एकरूप होकर रहता है। फिर परमेश्वर में और साधक में कुछ भेद नहीं रहता।

दादू मन को देखि कर, पीछै धरिये नांव।
अन्तर गति की जेलखैं, तिनकी मैं बलि जांव ।।४।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! अन्तःकरण की शुभ अशुभ भावना को देखकर, फिर साधु असाधु कहिये, इस प्रकार जो अन्दर की भावना जानते हैं, उनकी हम वारणैं जाते हैं।

यहु परखि सराफी ऊपलि, भितर की यहु नांहि।
अन्तर की जाणैं नही, ताथैं खोटा खांहि ।।५।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! ऊपर के भेख बाना आदि को देखना तो, ऊपर की परीक्षा है। यह भीतर की परीक्षा नहीं है। जो भीतर की वासनाओं को नहीं देख पाते हैं, वे ही 'खोटा खांहि' कहिये' दुख भोगते हैं।

दादू बाहरि का सब देखिये, भीतर लख्या न जाइ।
बाहिर दिखावा लोक का, भीतर राम दिखाइ ।।६।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! बाहर का सब भेष बाना, संसार के सब प्राणी देखते हैं, परन्तु भीतर की भावना उनसे नहीं देखी जाती है। बाहर के तो सम्प्रदाओं के चिन्ह दुनियां को दिखाने के हैं, उत्तम साधक पुरूष भीतर देवी सम्पदा के गुणों को धारण करके राम को दिखाते हैं।

दादू जे नांहीं सो सब कहैं, है सो कहै न कोइ।
खोटा खरा परखिये, तब ज्यों था त्यों ही होइ ।।७।।

टीका हे जिज्ञासुओ ! जो स्वरूप से संसार सत्य नहीं है, उसको तो संसारिक पुरूष कहते हैं कि है। और जो स्वरूप से सत्य चित्त आनन्द स्वरूप परमेश्वर है, उसके लियें कहते हैं, ईश्वर कहां है ? 'खोटा'--माया

और माया का कार्य संसार 'खरा'--सत्य स्वरूप परमेश्वर, विचार के द्वारा देखियें। फिर जैसा स्वरूप है, वैसा वैसा ही अनुभव होते लगता है।

दह दिश फिरै सो मन है, आवै जाइ सो पवन।
राखणहारा प्राण है, देखणहारा ब्रह्म ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासु! दशों दिशाओं में, वासना रूप संकल्प के द्वारा जो घूमता है, वह तो मन है। और आने जाने की क्रिया रूप कर्म करने वाला प्राण है, जो शरीर का रक्षक है। और जो सर्व का दृष्टा है, वही ब्रह्म है।

घट की भानि अनिति सब, मन को मेटि उपाधि।
दादू परहरि पंच की, राम कहैं ते साध ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासु! 'घट की' कहिए, स्थूल शरीर के अध्यास को दूर करे और परिछिन्न अहंकार को मिटावै। मन के संकल्प विकल्पों का त्याग करै। पंच ज्ञानेन्द्रियों के पांच विषयों को छोड़ और फिर निर्गुण राम का स्मरण करे, वही सन्त हैं।

अरथ आया तब जाणिये, जब अनरथ छूटै।
दादू भाँडा भरम का, गिरि चौड़ै फूटै ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासु! यह मनुष्य शरीर, सही काम में आया तब जानना कि आत्म ज्ञान को प्राप्त करके, मन बचन कर्म से सब दोष छूट जावैं और असत्य संसार में सत्य की प्रतीति का भ्रम दूर हो जावै, तत्व ज्ञान द्वारा।

दोहा :- साधु एक त्यागीं सदा, सेवग बान्धी म्होर।
कथा करत सकुचे बचन, गई बचन सर जोर ॥१०॥

दृष्टान्त :- एक संत सच्चे त्यागी थे। प्रवचन किया करते थे। त्याग वैराग्य का प्रसंग आता तो बड़े जोर शोर से प्रवचन करते। एक रोज एक सेवक के यहां भोजन करने गये। भोजन करने के बाद, सेवक ने एक मोहर भेंट करके, नमस्कार किया। संसार ने मोहर लेने से इन्कार किया। परन्तु उसने उनकी चद्दर के एक पल्ले के बांध दी है। जब आकर प्रवचन करने लगे तो लोगों ने ढीले ढीले बोलते देखा, और पूछा :-

आज महाराज प्रवचन में ढिलाई दीख पड़ती है। क्या कारण है ? महातमा नैं कहा :- कि इस चद्दर के पल्ले से, इस डाकन को खोल लो। श्रोताओं ने जब पल्ले से मोहर खोल ली, फिर वैसे ही निरपक्ष प्रवचन करने लगे।--जब माया रूप अनर्थ छूटै०।

दादू दूजा कहिबे को रह्या, अन्तर डार्या धोइ।
ऊपर की ये सब कहैं, मांहि न देखै कोइ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! स्थूल शरीर के द्वारा ब्रह्मवेत्ता संतजन परमेश्वर से भिन्न प्रतीत होते हैं। किन्तु आत्म विचार द्वारा मुक्त पुरूषों ने अन्तःकरण से सम्पूर्ण द्वैतभाव को धो दिया है। और फिर ब्रह्म में ही अभेद होकर रहते हैं।

दादू जैसे मांहि जीव रहै, तैसी आवै बास।
मुख बोलै तब जाणिये, अन्तर का परकास॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस शरीर के भीतर चिदाभास अन्तःकरण रूप जीव, जिस प्रवृत्ति में होता है यानि प्रवृति मार्ग या निवृत्ति मार्ग में लगा है वैसे ही शब्द मुख से बोलै, तब निकलते हैं।

दादू ऊपरि देखि करि, सबको राखै नांव।
अंतरगति की जेलखैं, तिनकी मैं बलि जांव॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! ऊपर शरीर के चिन्ह, भेष बाना आदि देखकर, सब कोई साधु असाधु नाम रखते हैं। परन्तु जो विवेकी अन्तःकरण की भावना को जान लेते हैं उनकी हम बलिहारी जाते हैं।

(दया निरवैरता)

तन मन आतम एक है, दूजा सब उणहार।
दादू मूल पाया नहीं, दुविधा भर्म बिकार॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब शरीर पंचिकृत पंच महाभूतों के हैं। इसलिये सब एक ही रूप हैं। और मन कहिये, सूक्ष्म शरीर, अपंचीकृत पंचभूतों से बने हैं, यह भी सबके एक ही हैं। चिदाभास अन्तःकरण रूप जीवात्मा सबमें एक ही है। और कारण ब्रह्म एक अद्वैत सर्व व्यापक है। व्यवहार में जो नानात्व भाव प्रतीत होता है, सो सब माया का विकार है। और जिन्होंने सबका मूल कारण ब्रह्म का विचार नहीं किया,

उनको द्वैतभाव नामरूप अनातम तत्व में, आतम तत्व की भ्रान्ति होने से, अनन्त विषय विकार व्याप्त होते रहते हैं।

काया के सब गुण बंधे, चौरासी लख जीव।
दादू सेवक सो नहीं, जे रंग रात्ते पीव ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! भक्ति वैराग्य ज्ञान आदि में लयलीन हुये संतजन, शरीर के सर्दी गर्मी और अन्तःकरण के सुख दुख आदि द्वन्दों से मुक्त रहते हैं। और संसारिक अज्ञानीजन, नाना प्रकार के गुण विचारों में फंसकर चौरासी में जाते हैं, फिर नाना प्रकार के दुख भोगते हैं।

काया के बसि जीव सब, व्है गये अनन्त अपार।
दादू काया बसि करै, निरंजन निराकार ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अज्ञानी संसारीजन, काया के अध्यास में बंधे हुए, अनन्त अपार प्राणी काल के आधीन होते है, अर्थात् उनको काल भक्षण करता है। फिर वह अनेक योनियों में भटकते रहते हैं। तथा शरीर के अध्यास से मुक्त रहने वाले संत तो, निरंजन निराकार ब्रह्म स्वरूप ही होते हैं।

पूरण ब्रह्म बिचारिये, तब सकल आतमा एक।
काया के गुण देखिये, तौ नाना वरण अनेक ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यदि सब जीवों के लक्ष स्वरूप ब्रह्म का विचार करें, तो सब एक ही रूप है। तथा जब शरीरों का विचार करैं, तो नाना वर्ण, काला गोरा, ब्राह्मण क्षत्रिय, अनेक भिन्न भिन्न रूप में प्रतीत होने लगते हैं।

(नरविड़ रूप पशु)

मति बुद्धि बिबेक बिचार बिन, माणस पसू समान।
समझाया समझै नही, दादू परम गियान ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक मनुष्य विषय आसक्त, मति, ब्रह्म अनुसारिणी वृत्ति, बुद्धि, परमार्थ व्यवहार को समझने वाली, नित्य अनित्य का विचार, इनके बिना मनुष्य रूप में ही, पशुवृत्ति वाले हैं। महापुरुष आत्म-उपदेश करते हैं, किन्तु अज्ञानी बहिर्मुख, श्रेष्ठ ज्ञान को नहीं धारण करते हैं।

सब जीव प्राणी भूत हैं, साधु मिलै तब देव ।
ब्रह्म मिलै तब ब्रह्म हैं, दादू अलख अभेव ।।१९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक अज्ञानी प्राणी विषयों में आसक्त हुए, जीते ही भूत प्रेत आदि के समान हैं । और जब उत्तम पुण्य के प्रभाव से संत मिल जावैं, तो वे देव संज्ञा को प्राप्त होते हैं । और ब्रह्मवेत्ता जीवन मुक्त पुरुषों का उपदेश मिल जावै, तो फिर अपने लक्ष स्वरूप, अलख अभेव को ही प्राप्त करते है ।

(करतूती कर्म)

दादू बंध्या जीव है, छूट्या ब्रह्म समान ।
दादू दोनों देखिये, दूजा नांही आन ।।२०।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब तक यह प्राणी, अविद्याकृत कर्म बन्धनों से बंधा हुआ रहता है, तब तक इसकी जीव संज्ञा है । और कर्त्ता भोगता आदि के, अध्यास में बंधा है । किन्तु जब तत्वज्ञान द्वारा, अविद्याकृत कर्म बन्धन से मुक्त होता है, और गुणातीत रहता है, तब यह ब्रह्म स्वरूप है । अर्थात् ब्रह्म और ब्रह्म परचे संतों में, फिर द्वैतभाव नहीं रहता ।

कर्मों के बस जीव है, कर्म रहित सो ब्रह्म ।
जहं आत्म तहं पर आतमा, दादू भागा भरम ।।२१।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब तक कर्मों के, अर्थात् शुभ अशुभ कर्म बन्धन में फंसा है, तब तक जीव संज्ञा है । और जब ब्रह्मनिष्ठ गुरुदेव के आत्म उपदेश से, कर्म बन्धन से मुक्त होता है, तब ब्रह्मी अवस्था प्राप्त होती है । फिर आत्मा को ही परमात्मा रूप, निश्चय करके, भेद भ्रम से मुक्त हो जाता है ।

(पारिख अपारिख)

काचा उछलै ऊफणै, काया हांडी मांहि ।
दादू पाका मिलि रहै, जीव ब्रह्म द्वै नांहि ।।२२।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! साधना अवस्था में कच्चा अज्ञानी जीव, मायावी चमत्कारों में आसक्त रहते हैं और नाना प्रकार के गुण और विकारों से 'उफणते' कहिए, अहंकार को प्राप्त होते हैं । और 'पाका' कहिये ज्ञान के साधन, विवेक वैराग्य आदि में स्थिर, वह ब्रह्म तत्व में ही अभेद रहते हैं ।

दादू बांधे सुर नवायें बाजैं, एहा सोधिरू लीज्यो ।
राम सनेही साधु हाथे, वेगा मोकलि दीज्यो ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो गुरू उपदेश द्वारा, जिन्होंने अपने मन इन्द्रियों को अन्तर्मुख कर लिये हैं और अहंकार रूपी सिर को झुका कर, दीन गरीबी भाव को धारण करके, आत्म चिन्तन करते हैं और गुरू की आज्ञा के अनुसार व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं । ऐसे कसौटी पूर्वक परीक्षा करके, संतजन उत्तम जिज्ञासु को अपनी शरण में लेकर, राम रतन धन का दान देते हैं ।

दोहा :- गुरू दादू गुजरात थैं, मंगवाये मंजीर ।
तब यह साखी लिख दई, सुनि लाये सिख धीर ॥२३॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज ने उपरोक्त साखी से उपदेश करके अपने शिष्य जग्गा जी को गुजरात में पत्र लिख कर भेजा कि सुर के बंधे हुए, अच्छे बजने वाले, ऐसे मंजीरों की जोड़ी ढूंढ कर लेना और राम के प्रेमी संतों के हाथ भेज देना । जग्गा जी गुरू आज्ञा पाकर, वैसा ही किया ।

प्राण जौहरी पारखु, मन खोटा ले आवै ।
खोटा मन कै माथै मारै, दादू दूरि उड़ावै ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! प्राणधारी जीव, अन्तःकरण में खोटी वासनाओं को ग्रहण करै, तो न्यायकारी ईश्वर के दरबार में, खोटे कर्मों की जीव रूप मन पर मार पड़ती है । और उसको चौरासी में धकेल देते हैं । अर्थात् जौहरी के पास कोई नकली नग, असली करके देवै, तो वह उसके माथे पर ही मारता है ।

(सांच)

श्रवणा हैं नैना नहीं, ताथैं खोटा खांहि ।
ज्ञान बिचार न उपजै, सांच झूठ समझांहि ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! संसारिक विषयासक्त संसारीजन, आत्म उपदेश का श्रवण तो करते हैं, परन्तु निष्ठा नहीं है । और इसलिये विवेक विचाररूपी नेत्र नहीं होने से, सांच झूठ के स्वरूप को नहीं जानते ।

(सांच)

दादू सांचा लीजिये, झूठा दीजै डारि ।
सांचा सनमुख राखिये, झूठा नेह निवारि ।।२६।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! सत्य वस्तु के ज्ञान द्वारा, अनातम ज्ञान का त्याग करिये । हे सच्चे साधक ! अपने आपकी वृत्ति को आत्मस्वरूप में लगा कर रहिये और झूठे संसार से स्नेह त्यागिये ।

साँचे को सांचा कहै, झूठे कौं झूठा ।
दादू दुविध्या को नहीं, ज्यौं था त्यौं दीठा ।।२७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! विवेकी पुरुष, सत्य को विवेक द्वारा, सत्य ही निश्चय करते हैं, और झूठ को झूठ ही कहते हैं । ऐसे पुरुषों के किसी प्रकार की अन्तःकरण में भ्रम रूप दुविध्या नहीं होती । ऐसे संतों ने ही आत्म तत्व का यथार्थ बोध, प्राप्त कर लिया है । उनके फिर माया प्रपंच का द्वैतभाव नहीं रहता ।

(पारिख अपारिख)

दादू हीरे कौं कंकर कहैं, मूरिख लोग अजान ।
दादू हीरा हाथि ले, परखैं साधु सुजान ।।२८।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! हीरा रूप परमेश्वर का निष्काम नाम स्मरण, और गुरू उपदेश को, तथा संतों के शब्दों की महिमा, इनको कोई विचारवान संत ही जानते हैं । परन्तु अविवेकी संसारिक जन, इनकी महिमा को कंकर के समान बताते हैं ।

हीरा कौड़ी नाल है, मूरख हाथि गंवार ।
पाया पारिख जौंहरि, दादू मोल अपार ।।२९।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! हीरा यदि मूर्ख को मिल जावे, तो वह उसकी कीमत एक कौडी भी नहीं समझता । जानता है कि पत्थर का टुकड़ा है । और यदि वही हीरा, परीक्षा करने वाले जौहरी के हाथ में आ जावे, तो अपार मोल को प्राप्त होता हैं । इसी प्रकार आत्म उपदेश रूप हीरे की कीमत, संसारीजन नहीं जान पाते । कोई विवेकी पुरूष ही उस उपदेश रूप हीरे की कीमत जानता है ।

अंधे हीरा परखीया, कीया कौडि मोल ।
दादू साधू जौहरी, हीरे मोल न तोल ।।३०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अंधे के हाथ में हीरा देकर, उसकी कीमत पूछें, तो वह बोलता है कि पत्थर का चिकना चिकना टुकड़ा है, एक कौडी का होगा ? और यदि वही हीरा जौहरी के हाथ में जावे, तो जौहरी बतलाता है कि न तो इसका कोई मूल्य है, और न तोल ही है । इसी प्रकार संतों के तत्वज्ञान के उपदेश को, विवेकहीन मनुष्य, रोटी दाल में ही समझता है, परन्तु वही उपदेश जौहरी रूप सतसंगी, विवेकी पुरुषों को मिल जावे, तो एस अपना तन मन धन सर्वस्व, उसके ऊपर वारणें करते हैं ।

(सगुरा निगुरा)

सगुरा निगुरा परखिये, साध कहैं सब कोइ ।
सगुरा सांचा निगुरा झूठा, साहिब के दरि होइ ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के दरबार में गुरूमुखी सगुरा, गर्भवास के कोल को, नाम स्मरण करके सच्चा होता है, और निगुरा मन मुखी, परमेश्वर की आज्ञा उलंघन करने वाला, झूठा होता है । इस बात को सभी संत कहते हैं ।

सगुरा सत्ति संजम रहै, सन्मुख सिरजनहार ।
निगुरा लोभी लालची, भूंचै बिखै बिकार ॥३२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! 'सगुरा' सत्यकामी, सत्य नेमी, सत्य प्रेमी, इन्द्रियों का संयम करके, सिरजनहार परमेश्वर के सन्मुख रहता है, अर्थात् उनकी आज्ञा में बर्तता है और 'निगुरा', अज्ञानी संसारिक जन, लोभी लालची, विषय विकारों को चाहने वाला, सदैव परमेश्वर से विमुख रहता है ।

दोहा :- सगुरा सोई जानिये, जो सुमिरै सिरजनहार ।
जैमल हरि का नाम बिनु, निगुरा सब संसार ॥३२॥

(कर्त्ता कसौटी)

खोटा खरा परखिये, दादू कसि कसि लेइ ।
सांचा है सो राखिये, झूठा रहण न देइ ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह समर्थ परमेश्वर, निष्कामी और सकामी भक्त की पुनः पुनः कसौटी द्वारा परीक्षा करके, सच्चे भक्त को अपनी शरण में लेते हैं, और झूठे को ठुकरा देते हैं ।

(पारिख अपारिख)

खोटा खरा करि देवै पारिख, तौ कैसे बनि आवै ।
खरे खोटे का न्याव नबेरै, साहिब के मन भावै ।।३४।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! परीक्षा करने वाले जौहरी को खोटे को खरा बता कर देवैं, तो बात कैसे बनेगी ? जो खरे और खोटे का निर्णय करै, विवेक विचार द्वारा, वही संत परमेश्वर को प्रिय हैं । अर्थात् संसारिक बाचक पंडित, आत्म अनात्म तत्व का विवेचन तो करते हैं, किन्तु स्वयं आत्म तत्व की धारणा किये बिना, परमेश्वर को प्रिय नहीं लगते ।

दादू जिन्है ज्यों कही, तिन्है त्यौं मानी, ज्ञान बिचारन कीन्हां ।
खोटा खरा जिव परखिन जानै, झूठ सांच करि लीन्हां ।।३५।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो पुरुष सकामी पंडितों के उपदेश को सुनकर, सत्य असत्य का विचार किये बिना ही, तद्नुसार अर्थात् उनके बताये मार्ग पर चलने लगते हैं । सो अज्ञानीजन, झूठे मायावी सुखों में ही, सत्य की भ्रान्ति करके, आत्मानन्द से विमुख होकर, संसार चक्र में भ्रमते हैं ।

(कर्त्ता कसौटी)

जे निधि कहीं न पाइये, सो निथि घर घर आहि ।
दादू मंहगें मोल बिन, कोई न लेवै ताहि ।।३६।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमेश्वर रूपी अमोलिक निधि, घट घट में व्याप्त है । किन्तु अज्ञानीजन, परमेश्वर की पहचान नहीं जानते, क्योंकि अनात्म अहंभाव त्यागे बिना, परमेश्वर का साक्षात्कार होना असम्भव है ।

दोहा :- दादू जी दोसा विषय, घर घर पूछी जाग ।
परख बिना बाहर गये, वृक्ष मिल्यो बड़ भाग ।।३६।।

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज सीकरी से लौटकर, जब आये, तो दोसा नगर के पास संतों को भोजन की इच्छा हुई । महाराज से बोले कि गुरूदेव ! इस नगर में किसी भक्त के यहां भोजन कर लें । गुरूदेव बोले :- इस नगर में तो कोई भोजन देने वाला नहीं है । शिष्य बोले :- महाराज ! इतना बड़ा गांव

है, क्या संतों को कोई भी भोजन नहीं देगा ? गुरुदेव बोले :- पूछ लो भई । जब गांव में होके गुरुदेव चले, तो पीछे शिष्य लोग बाजार में कहने लगे कि भाई भक्त, यहां ठहरें । बोले :- नहीं आगे जाओ महाराज ! ऐसे ही सारा गांव पार कर गये । कोई भी यह नहीं कहा कि यहां ठहरो । जब गेटोलाव बांध पर पहुंचे, तो वह पीपल का वृक्ष भाग्यशाली था जिसके नीचे ब्रह्मऋषि विराजे और माया को आज्ञा देकर, संतों को गर्म जलेबी का भोजन कराया । ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज, परमेश्वर रूप निधि, त्रिलोकी में मिलना कठिन है, वह दोसा नगर के घर घर के दरवाजों पर आई, परन्तु परीक्षा के बिना किसी ने भी नहीं अपनाई ।

खरी कसोटी कीजिये, बानी बधती जाइ ।
दादू सांचा परखिये, मंहगें मोलि बिकाइ ॥३७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर अपने सच्चे भक्तों को ज्यों ज्यों कसोटी देते हैं अर्थात् तपाते है, त्यों त्यों ही भक्तों की महिमा और तेज संसार में विस्तार को प्राप्त होता है । इस प्रकार सत्यस्वरूप परमेश्वर का साक्षात्कार करने से, भक्तों का मनुष्य जीवन महगें मूल्य से बिकता है अर्थात् भाग्य से ही, ऐसे भक्तों के दर्शन होते हैं ।

दादू राम कसै सेवग खरा, कदे न मोड़ै अंग ।
दादू जब लग राम है, तब लग सेवग संग ॥३८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो साधक सर्व कसौटी सहन करै, राम की दी हुई, क्योंकि राम देखता है कि सेवक खरा है कि खोटा । ऐसे ही सतगुरू भी शिष्य को कसौटी देकर परीक्षा करते हैं कि अधिकारी है या अनाधिकारी । जो गुरू और परमेश्वर की कसौटी में खरा उतरता है, अर्थात् गुरु और परमेश्वर से कभी विमुख नहीं होता, वही सच्चा सेवक है ।

दोहा :- हरि मार्ग माँहि परै, कठिन कसोटी बीर ।
जगन्नाथ जे तीस है, ते ती सुख की सीर ॥३८॥

दादू कसि कसि लीजिये, यहु ताते परिमान ।
खोटा गाँठिन बाँधियें, साहिब के दीवान ॥३९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! हरि के स्मरण और गुरू के उपदेश द्वारा, इस मन को बस में करिये । संकल्प शून्य बनाइये । और परमेश्वर की अनन्य शरण ग्रहण करिये, क्योंकि परमेश्वर की प्राप्ति में बड़ी कसौटी है । गुरू, संत कहते हैं कि हे प्रिय ! परमेश्वर के नाम स्मरण से अतिरिक्त, मायावी विकारों को मन में धारण नहीं करना ।

दादू खरी कसोटी पिव की, कोइ बिरला पहुंचन हार ।
जे पहुंचे ते ऊबरे, ताइ किये तत्त सार ॥४०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग बहुत ही खरा है । इस मार्ग में साधनों की बड़ी कसौटी सहन करनी होती है । कोई बिरला उत्तम साधक ही पहुंचता है । जो साधन मार्ग में डट गये, वही संसार चक्र से उबरते हैं । उनको ही परमेश्वर स्वस्वरूप में अभेद करते हैं ।

दुर्बल देही निर्मल बाणी, दादू पंथी ऐसा जाणी ।
काहू जीव सौं बिरोधै नांहि, परमेश्वर देखै सब माँही ॥४१॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमेश्वर को प्राप्त होने वाले साधक, शरीर से दुर्बल होते हैं । निर्मल उनकी बाणी होती है और चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, किसी भी जीव का बुरा नहीं करते । सबमें एक चेतन्य सत्ता को ही अवलोकन करते रहते हैं ।

दादू साहिब कसै सेवग खरा, सेवग कौं सुख होइ ।
साहिब करै सौ सब भला बुरा न कहिये कोइ ॥४२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! परमेश्वर सेवक को, हरिशचन्द्र आदि की भांति कसौटी में कस कर देखते हैं कि खरा है या खोटा । परन्तु साहिब की कसौटी ज्यों ज्यों सेवक को लगती है, तैसे तैसे सेवक को सुख होता है । और सेवक जानता है कि यह सब जो कुछ हो रहा है । वह सब साहिब की कृपा से, मेरे हक में अच्छा ही हो रहा है । उसको सेवक कभी भी बुरा नहीं करता ।

दोहा :- सन्त एक नृपपुर बसै, बाणी कही कहै राम ।
अश्व गज मरतें भी कह्यो, पग टूटत भल राम ॥४२॥

दृष्टान्त :- एक राजा के बगीचे में संत रहते थे। राजा और प्रजा उनका सतसंग करने जाया करते थे। एक रोज राजा के लड़के की मृत्यु आ गई। संत ने विचार किया कि राजा का लड़का मर जायेगा तो अच्छा नहीं होगा। तब परमेश्वर से प्रार्थना की कि इसकी मृत्यु इसके घोड़े पर टाल दीजिये। अचानक राजकुमार का घोड़ा मर गया। जब राजा दर्शन करते आया तब महात्मा जी को बोला कि राज कुमार का घोड़ा मर गया। संत बोले :- राम जी, अच्छा हुआ। राजा के मन में यह शब्द अच्छा नहीं लगा और राजा नमस्कार करके चला गया। फिर एक रोज राजा की मृत्यु आ गई। तो राजा के बायन हाथी पर टाल दी। हाथी मर गया। फिर राजा बोला :-आज मेरा हाथी मर गया। फिर संत बोले :- राम जी, अच्छा हुआ। तब राजा ने सोचा कि यह तो संत हमारा बुरा चाहते हैं। तब जल्लादों को बोला :- यह सुबह गंगा स्नान करने जाता है, इसको रास्ते में जान से मार दो। दूसरे रोज महात्मा, गंगा स्नान को सवेरे जल्दी ही चले गये। जल्लाद रास्ते में जाकर बैठे। सोचा, अब स्नान करके आवेगा, तब मार देंगे। उधर महात्मा जी स्नान करके चलने लगे तो सीढ़ी पर से गिर गये और पग टूट गया। दिन निकल आया। सबको मालुम हुआ। सब सेवक लोग आये। राजा भी आया और राजा बोला :- महाराज! यह क्या हो गया? महात्मा बोले :- राजा, राम जी की कृपा से यह भी अच्छा हुआ। तब राजा समझा कि इसमें तो कुछ और ही मतलब है। बोला :- अच्छा कैसे हुआ महाराज? आपका पांव टूट गया। संत बोले :- पांव टूट गया तो, राम जी ने जान बचा दी। राजा शर्मिन्दा हो गया और क्षमा याचना की। महात्मा ने उपरोक्त वृतान्त, सब राजा को सुना दिया। राजा ने निश्चय किया कि महात्मा कभी किसी का बुरा नहीं चाहते।

दादू ठग आमेर मैं, साधौं सौं कहियो।
हम सरणाई राम की, तुम नीके रहियो ॥४३॥

टीका :- हे जिज्ञासु! यह संसार ही मानो आमेर है अथवा यह मनुष्य शरीर ही आमेर है। और इसमें कुसंगीजन और काम क्रोध आदि ही मानो ठग हैं। इनसे जिज्ञासु को बचकर रहना चाहिये। और राम नाम का स्मरण करते रहना चाहिये।

अर्थात् एक समय ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज आमेर में बिराजते थे। एक कोई पाखण्डी साधु, दादू दयाल जी जैसा रूप बनाकर, दुनियां में घूमने लगा और बोलता, "मैं दादू दयाल हूं।" किसी ने कहा :- "दादू दयाल महाराज तो आमेर में बिराजते हैं।" वह बोला :- वह तो ठग है, असली दादू दयाल तो मैं हूं। यह वार्ता परम गुरुदेव ने आमेर में सुनी, तब यह साखी बोली कि "दादू ठग आमेर में।" "हम तो राम की शरण हैं, आप अच्छे रहना।"

(इति पारिख का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ उपजण का अंग २८ ।।

"मन मांहैं माया रहै, कै आपै आप अलेख०"--इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, पारिख के अंग के अनन्तर अब उपजण के अंग का निरूपण करते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।१।।

टीका :- हे निरन्जन देव ! आपको हमारी नमो नमो। तद्नन्तर गुरुदेव को भी नमस्कार करते हैं, और सर्व ही संतों को भी बन्दना करते हैं। इस प्रकार हरि, गुरू संतों को प्रणाम करके, उपजण के अंग का आरम्भ करते हैं। तो संसार से पार होकर, उपजण द्वारा 'गत:' कहिए परमेश्वर में अभेद होते हैं।

(विचार)

दादू माया का गुण बल करै, आपा उपजै आइ ।
राजस तामस सातगि, मन चंचल व्है जाइ ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस साखी में जगत् का संक्षिप्त रूप से वर्णन किया गया है। मूल प्रकृति अर्थात् शुद्ध सतोगुण प्रधान माया में सतोगुण स्फुरित होकर, महान अहंकार, पंच तन मात्रा, और प्रकृति रूप विकृति का विस्तार होता है। प्रकृति से महतत्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार में तीनों गुणों के सम्बन्ध से, तनमात्रा भूत आदि इन्द्रिये विकारों का विकास होता है। और यह सब संचार, जिनका इस शरीर में अन्त:करण द्वारा सम्बन्ध रहता है और अन्त:करण इन सबसे चंचल होता रहता है। अर्थात् माया का स्वभाव

है कि यह मिथ्या अभिमान उत्पन्न करती है, फिर राजस तामस और सात्व की फुरणायें होती हैं। इनसे मन चंचल रहता है।

दोहा :- एक गुसांई द्रव्य तैं, आधो बोलै बोल।
द्रव्य निरपती लूटीयो, सरल भयो जिम न्योल ।।२।।

दृष्टान्त :- एक दस नामी गुसांई साधु, एक गांव में रहता था और आटा की भिक्षा लाया करता था, रोटियां भी लाता। रोटी तो खाता और आटा बेच बेचकर, उसने कुछ दिनों में पांच सौ रुपया कर लिया। जो कोई उसके पास आते और बोलते "नमो नारायण" तो यह बोलता 'ना'। माया के बल से इतना अहंकार हो गया कि परमेश्वर का नाम भी पूरा नहीं बोलता। एक दिन गांव का राजा, इसकी कुटिया के पास होकर निकले और बोले :- "नमो नारायण" तो वह बोला :- 'ना'। राजा जान गया कि इसके पास कुछ पैसा हो गया है, और यह परमेश्वर का नाम भी पूरा नहीं बोलता है। राजा ने उसका द्रव्य लूट लिया। फिर तो वह ऐसा सीधा सरल हो गया, जैसे न्योल होता है। और कोई बोलै--'नमो नारायण', तो यह तीन दफा नमो नारायण, नमो नारायण, नमो नारायण, बोलता, क्योंकि माया का मद उतर गया। लोग जान गये कि अब बाबा जी ठण्डे हो गये।

आपा नाँहीं बल मिटै, त्रिबिध तिमर नहि कोइ।
दादू यहु गुण ब्रह्म का, सुंनि समाना सोइ ।।३।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! इस साखी में चतन्य ब्रह्म का संक्षिप्त परिचय दिया गया है, क्योंकि उपजण का अंग है। इसलिये इसके अनुसार हो, जड़ चेतन्य माया ब्रह्म का सामान्य रूप का पहले, दिग् दर्शन कराना संगत है। चेतन्य सत्ता जो माया अविद्या अंश से रहित अवस्था में रहती है, तब न तो वहां गुणों का सम्बन्ध है, और न वहां पर मलीन अहंकार ही है। तथा न तो वहां मूला तूला लेसा अविद्या का आवरण रूप अन्धकार ही रहता है। शून्यवत स्फुरणा रहित स्थिति है। इसी चेतन्य सत्ता का नाम ब्रह्म शब्द करके कहा गया है।

(उपजण)

दादू अनभय उपजी गुणभयी, गुण ही पैले जाइ।
गुण ही सौं गहि बंधिया, छूटै कौन उपाइ ।।४।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! 'अनभय' कहिए, स्वकीय स्मुरणा से उत्पन्न हुई, माया त्रिविध अविद्या, उसमें परिवर्तित होती हुई, गुणों के विस्तार की ओर बढ़ती जाती है। शुद्ध चेतन्य का अंश, जो जीव अविद्या

आदि अंशों से आवृत्त यानि ढका हुआ, अर्थात् उसी से बंध जाता है । माया, प्रपंच, अविद्या से आवृत्त कहिए, ढका हुआ, चिदाभास युक्त जीव, अंश की इस उपरोक्त आवरण बन्धन से मुक्ति कैसे होवै ।

द्वै पख उपजी पर हरै, निरपख अनुभव सार ।
एक राम दूजा नहीं, दादू लेहु बिचार ।।५।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! इस साखी में चिदाभास युक्त जीव की बन्ध निवृत्ति का निर्देश किया गया है । जो लय विलय वाले, दो स्वरूप से उत्पन्न होने वाला, विश्व रूप प्रपंच कहिए संसार है, उसकी सब प्रकृतियों का परित्याग करै, क्योंकि जितना सब विषय रूप प्रपंच है, इसकी सब आसक्तियों का सर्वथा निवारण करै । निरपेक्ष निर्द्वन्द वृत्ति से सार सत्य चेतन्य तत्व है, उसकी अनुभूति में लगै, अर्थात् विचार द्वारा, एकत्व भाव का निश्चय करै । असत्य द्वैतभाव को असत्य समझकर, उसमें वृत्ति को आसक्त न होने दे, इसी विचार को परिपक्व बनावै, तब बन्ध की निवृत्ति होती है ।

दादू काया ब्यावर गुणमयी, मन मुख उपजै ज्ञान ।
चौरासी लख जीव कौं, इस माया का ध्यान ।।६।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह काया रूप माया 'ब्यावर' कहिये नामरूप प्रपंच का पसारा फैलाने वाली है, अर्थात् अज्ञानी देह अध्यासियों को, बहिरंग ज्ञान ही उत्पन्न होता है । और वह फिर चौरासी लाख यौनियों में ही भ्रमते हैं ।

आत्तम उपजि अकाश की, सुणि धरती की बाट ।
दादू मारग गैब का, कोई लखै न घाट ।।७।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! इस साखी में बिहंगम कहिए पक्षियों का मार्ग और पिपील,--चींटी के मार्ग का निर्देश करते हैं - अर्थात् अन्तःकरण की वृत्ति में निर्लेप भावना की स्थिति हो, इसको बिहगंम मार्ग कहते हैं । इसमें वृत्ति आकाश की तरह, निर्लेप रहती है । और जैसे आकाश सब वस्तुओं में व्याप्त है, फिर भी उन वस्तुओं के गुण धर्मो से निर्लेप रहता है । इसी प्रकार साधक पुरूषों की वृत्ति रहै, और शून्य अवस्थावत वृत्ति में जो भेद ज्ञान की स्थिति है, वह पिपील का मार्ग है । शून्य में अहंत्व ज्ञान का अभाव होता है । ऐसी वृत्ति साधक की बनै, उसे शून्य मार्ग कहते हैं । और अकस्मात् आत्म ज्ञान की प्राप्ति होना, जैसे राजा, रघुगन हो हुई, इसको गैबी मार्ग कहते हैं । परन्तु बहिर्मुख अज्ञानी इन, मार्गों को कोई नहीं जान पाते ।

आत्म बोधी अनभई, साधू निरपख होइ।
दादू रात्ता राम सौं, रस पीवैगा सोइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! आत्म ज्ञानी अनुभवी साधक ही 'निरपख कहिये भेदभाव से रहित होता है। वही व्यापक राम के नाम स्मरण में रात्ता रत्त और मात्ता मस्त रहता है।

प्रेम भक्ति जब ऊपजै, निसचल सहज समाधि।
दादू पीवै राम रस, सतगुरू के परसाद ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अन्तःकरण में जब प्रेमा भक्ति उत्पन्न होती है, तब मन निश्चल होकर, सहजावस्था रूप समाधि में निश्चल रहता है। सतगुरू के ज्ञान उपदेश रूप प्रसाद से, फिर राम नाम स्मरण रूप अमृत को पीता है।

प्रेम भगति जब ऊपजै, पगुंल ज्ञान बिचार।
दादू हरि रस पाइये, छूटै सकल बिकार ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब अन्तःकरण में परमेश्वर की प्रेमाभक्ति उत्पन्न होती है, तो मन पंच ज्ञान इन्द्रिये रूप ज्ञान से पंगुला कहिए रहित होकर, आत्म बिचार में लग कर, समष्टि चेतन्य रूप हरि के नाम स्मरण रूपी रस को पीता है। उस स्थिति में मन के सम्पूर्ण विकार नष्ट हो जाते हैं।

दादू बंझ बियाई आतमा, उपज्या आनन्द भाव।
सहज सील संतोष सत्त, प्रेम मगन मन राव ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! साधक पुरूषों की आतमा रूप स्थिर बुद्धि, बांझ पुत्र की तरह, (बांझ तीन प्रकार की होती है) आतम ज्ञान को पैदा करके, प्रेमाभक्ति रूप अमृत को पीती है और सहजशील संतोष सत को धारण करके, मन रूपी सत अनात्म अहंकार तथा बहिरंग वासनाओं से मुक्त होता है।

(निन्दा)

जब हम ऊजड़ चालते, तब कहते मारग मांहि।
दादू पहुंचे पंथि चलि, कह यहु मारग नांहि ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब हम कहिए अधिकारी पुरुष, संसारिक पदार्थों की प्राप्ति के मार्ग का अनुसरण करते थे, तब अज्ञानी जन बोलते थे कि यह मार्ग पर चल रहा है और जब हम निवृत्ति मार्ग द्वारा, ज्ञान भक्ति के मार्ग में चलने लगे, तब संसारीजन कहते है कि यह कुमार्ग पर चलता है । यह कुल का मार्ग छोड़ दिया है, पागल हो गया है ।

(उपजण)

पहिले हम सब कुछ किया, भरम करम संसार ।
दादू अनुभव उपजी, रात्ते सिरजनहार ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू महाराज अपने को उपलक्ष करके कहते हैं कि ज्ञान से पूर्वकाल में, हमने संसार के भ्रम रूप कर्म सभी कुछ किये । परन्तु जब से यथार्थ ज्ञान उत्पन्न हुआ, तब से वृत्ति सिरजन हार परमात्मा से रत्त रहती है ।

सोई अनुभै सोई उपजी, सोई सबद तत्त सार ।
सुणतां हि साहीब मिलै, मन के जांहि बिकार १४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वही तो यथार्थ अनुभव ज्ञान है, और वही उपजन है, और वही शिक्षा रूप शब्द हैं, कि जिनसे सार वस्तु की प्राप्ति हो और विकारों की निवृत्ति होवै ।

(परिचय जिज्ञासु उपदेश)

पार ब्रह्म कह्या प्राण सौं, प्राण कह्या घट सोइ ।
दादू घट सबसौं कह्या, बिख अमृत गुण दोइ ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस साखी में परम गुरूदेव ज्ञान की प्राप्ति की परम्परा दिखाते हैं । परब्रह्म ने प्राण कहिये, हिरण्य गर्भ को ज्ञान का उपदेश किया । और हिरण्य गर्भ ने संतों के अन्तःकरण में ज्ञान की प्रेरणा की और ब्रह्मनिष्ठ मुक्त पुरूषों ने जिज्ञासुजनों को उपदेश किया । इस प्रकार विष अमृत कहिये प्रवृत्ति निवृत्ति मार्ग का उपदेश, संसार में प्रसारित हुआ । अथवा स्वयं प्रकाश परब्रह्म से प्राण चेतन्य हुए और प्राणों से शरीरधारी चेतन्य होते हैं । फिर संतों ने धर्मा धर्म का ज्ञान संपादित किया है ।

दादू मालिक कहा अरवाह सौं, अरवाह कहा औजूद ।
औजूद आलम सौं कहा, हुकम खबर मौजूद ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! खुदा ताला ने अपना ज्ञान उपदेश पैगम्बरों को दिया, पैगम्बरों ने मुरसिदों को सुनाया, मुरसिदों ने मुरीदों को उपदेश किया और मुरीदों ने आलम में विस्तार किया । अर्थात् १५ नम्बर साखी, का ही भाव, फारसी शब्दों से बताया है । 'मालिक' कहिये कूटस्थ चेतन' अरवाह'--अन्तःकरण आभास, 'औजूद'--शरीर, 'आलम'-- जहान, 'हुकम खबर मौजूद'--यह उस मालिक की आज्ञा है । इप प्रकार उपदेश किया है कि इसमें तत्पर रहो ।

दादू जैसा ब्रह्म है, तैसी अनभै उपजी होइ ।
जैसा है तैसा कहै, दादू बिरला कोइ ।।१७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ! जैसा निर्विकार निराकार अखंड व्यापक ब्रह्म है, ऐसा ही उसका ज्ञान उसकी कृपा से जिस मुक्त पुरूष के हृदय में फुरा है, वह ब्रह्मवेत्ता फिर वैसा ही ज्ञान उपदेश करता है । परन्तु ऐसे यथार्थ उपदेश करने वाले, कोई बिरले ही मुक्त पुरूष होते हैं ।

(इति उपजण का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ दया निर्बैरता का अंग २९ ।।

"आपा नाही बल मिटै, त्रिविध तिमर नहीं होइ"--इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब दया निरबैरता के अंग का निरूपण करते हैं। मन, वचन, कर्म से प्राणीमात्र से निरबैरता रखना ही सारमत है। मन को काम आदि दोषों से रहित करना ही सार है। और सब जीवों में, एक ही चेतन सत्ता का निश्चय करके, सम्पूर्ण जीवों को आत्म स्वरूप ही करके जानै, कभी भी किसी से द्वैतभाव नहीं करते हैं। इस अंग में अद्वैत ब्रह्म के समर्थन द्वारा, सब जीवों को एकता का उपदेश देते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।१।।

टीका :- हे निरन्जन देव ! आपको हमारी नमो नमो। और जो निरन्जन का ज्ञान प्राप्त करके, सब जीवों से निर्बैर हो गये हैं, ऐसे गुरूदेव को भी हम नमस्कार करते हैं। तीन काल चार आश्रम, चार वर्ण में हुए जो संत, उनको भी हम बन्दना करते हैं, क्योंकि उनके सतसंग द्वारा, जिज्ञासु सम्पूर्ण प्राणियों से निर्बैर होकर, संसार से पार, अद्वैत ब्रह्म में 'गत०' कहिये, समा जाते हैं।

(सारमत)

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार।
निरबैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस साखी में ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज ने बतलाया है कि जीवन किस तरह व्यतीत करें ? उसका सार स्वरूप बतलाया है कि संसार में भिन्न भिन्न धर्मों और मतों के नाना कर्त्तव्य कहे गये हैं । परन्तु सतगुरू देव ने सभी धर्म मत मतान्तरों का समन्वय किया है, इस अंग में । अर्थात् अनात्म अहंकार का त्याग और आत्म चिन्तन के अतिरिक्त, सब तन मन बाणी के विकार दूर करना, तथा सम्पूर्ण प्राणियों से प्रेम करना ही सार मार्ग है ।

दादू निरबैरी निज आतमा, साधन का मत सार ।
दादू दूजा रांम बिन, बैरी मंझि बिकार ।।३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरूषों का 'निरबैर' कहिये निज स्वरूप चेतन्य आत्मा में बैर भाव किसी से है ही नहीं, ऐसा ब्रह्मवेता संतों का मत है, क्योंकि बैरी तो 'मंझि' कहिए भीतर अन्तःकरण में, काम आदि विकार हैं और बाहर उनका कोई शत्रु नहीं है ।

दोहा :- काम क्रोध बैरी घट मांही, और कहूं कोई बैरी नांहीं ।
रात दिवस इनहीं से लड़ना, समझ देख निश्चय कर मरना ।।३।।

निर्बैरी सब जीव से, संतजन सोई ।
दादू एकै आतमा, बैरी नहीं कोई ।।४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मवेता संत ही समता के पक्ष में स्थिर रहने वाले, अद्वैत आत्म तत्व का निश्चय करके, सम्पूर्ण जीवों से निर्बैर होते हैं तथा काम क्रोध आदि विकारों से विरक्त होते हैं । फिर वे किसी प्राणी से बैर भाव नहीं करते ।

सब हम देख्यां सोधि करि, दूजा नांही आन ।
सब घट एकै आतमा, क्यां हिन्दू मुसलमान ।।५।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सतगुरू ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हमने सब ही धर्म ग्रन्थों में विचार कर देखा है कि एक कारण ब्रह्म से अतिरिक्त, दूसरा उपास्य देव किसी का भी, उससे भिन्न नहीं है ।

वह ही कारण ब्रह्म मात्र के अन्दर, आत्म स्वरूप से व्याप्त हो रहा है। फिर हिन्दू और मुसलमान आपस में विषमता क्यों देखते हैं ?

दोहा :- घट घट अपनी आतमा, पर आतम का बास ।
जगन्नाथ दूजा नहीं, करैं कौन का नास ।।५।।

चेतना सृष्टि में एक ही आत्मा है। दूसरा है ही नहीं। प्राणियों में मित्रता का अभाव अज्ञान से है।

दादू नारि पुरुष का नांव धरि, इहि संसै भ्रम भुलान ।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिंदू मुसलमान ।।६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! एक ही पंजीकृत पंचभूतों से रचे हुए शरीर का, चिन्ह भेद से, स्त्री पुरुष का नाम कह कर, विकल्प देह रूप आत्मा में, संसय ज्ञान से भ्रान्त होकर, लोग आत्म तत्व को भूल रहे हैं। परन्तु विचार कर देखैं तो हिन्दू मुसलमान कहां रह जाता है ! सब शरीरों में एक आत्मा ही व्याप्त हो रहा है।

दादू दोनौं भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान ।
दोनौं भाई नैन हैं, हिंदू मुसलमान ।।७।।

टीका: - हे जिज्ञासुओ ! जैसे एक ही शरीर में दोनों हाथ एक से ही हैं, वैसे ही दोनों पांव एक से ही हैं। और दोनों कान और दोनों नेत्र भी एक ही रूप हैं, शरीर में। तथा इस शरीर के कारण भी पंचीकृत पंचमहाभूत ही हैं। चेतन्य सत्ता भी सभी में समानता से व्याप्त है। जैसे शरीर में दो दो अवयव भ्रातृवत्त हैं, वैसे ही हिन्दू और मुसलमान भी एक ही हैं। कहने मात्र को ही, शरीर के अंगों की तरह भिन्नता प्रतीत होती है। वास्तविक विचार कर देखैं तो, परस्पर कुछ भी भेद नहीं है, "माता सभी की एक है, पिता सभी का एक०"।

दादू संसा आरसी, देखत दूजा होइ ।
भरम गया दुविध्या मिटी, तब दूसर नांही कोइ ।।८।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जैसे कुत्ता शीशे में अपना ही स्वरूप देख कर, दूसरे कुत्ते का भ्रम करके भौंकता है। इसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य, अपनी अन्तःकरण रूपी उपाधी द्वारा, एक अद्वैत चेतन्य की स्वप्रभा में,

अनन्त प्रतिबिम्ब रूप चिदाभास जीव जान कर, द्वैत बुद्धि से शत्रु मित्र भाव मान बैठा है। परन्तु जब यह द्वैतभाव का भ्रम, समता ज्ञान द्वारा छूटै, तो फिर सर्वत्र आत्म तत्व, आप ही आपके व्यापक स्वरूप का अनुभव करता है।

किस सों बैरी व्है रह्या, दूजा कोई नांहि।
जिसके अंग थैं ऊपजै, सोई है सब मांहि ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! विचार कर देखिये तो किससे बैरी हो रहे हो? दूसरा तो कोई है ही नहीं। शरीर भी सबके पंचीकृत पंच महाभूतों से उत्पन्न हुए हैं और चिदाभास युक्त जीव जिससे उत्पन्न हुआ है, वही साक्षी आत्मा, सबके अन्दर व्याप्त हो रहा है।

सब घट एकै आत्मा, जानैं सौ नीका।
आपा पर मै चीन्हि ले, दर्शन है पीवका ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासु! चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, सब शरीरों में एक सूत्र आत्मा व्याप्त हो रहा है। इस प्रकार ज्ञान नेत्रों से देखता है, वही उत्तम पुरूष है। अपने शरीर और पराये शरीर में देख ले, एक मुख प्रीति का विषय, आत्मा स्वरूप परमात्मा का ही, दर्शन हो रहा है।

काहे को दुख दीजिये, घटि घटि आतमराम।
दादू सब संतोसिये, यह साधु का काम ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासु! वही साधक पुरूष उत्तम है, जो सब शरीरों में एक ही जीवात्मा को देखकर, सबको संतोष शांति पहुंचाता है, ज्ञान के द्वारा। और किसी को भी नहीं सताता है।

काहे को दुख दीजिये, सांई है सब मांहि।
दादू एकै आतमा, दूजा कोई नांहि ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! क्यों किसी को दुख देते हो? सबको रचने वाला, सबका स्मामी परमेश्वर ही, सबमें आत्म स्वरूप से व्याप्त हो रहा है। और दूसरा रह ही क्या जाता है, उसके बिना!

साहिब जी की आत्मा, दीजै सुख संतोस ।
दादू दूजा को नहीं, चौदह तीनों लोक ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! कूटस्थ ब्रह्म चेतन की ही, चिदाभास रूप जीवात्मा हैं, सम्पूर्ण शरीरों में । इसलिये तीन लोक और चौदह भवन में, सभी जीवों को सुख और संतोष, कायक वाचक मानसिक क्रिया से दीजिये ।

दादू जब प्राण पिछाणै आपको, आतम सब भाई ।
सिरजनहारा सबन का, तासौं ल्यौ लाई ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब प्राणधारी अपने आपको पहचानै अर्थात् गुरु उपदेश द्वारा अपने स्वरूप आत्मा को जानै, तो फिर सभी शरीरों में, एक आत्मा को सिरजनहार रूप जानकर, अखंड लय लगाता है ।

आत्मराम बिचारि करि, घटि घटि देव दयाल ।
दादू सब संतोसिये, सब जीऊं प्रतिपाल ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जब आत्म स्वरूप राम का, अद्वैत सतसंग द्वारा विचार करिये, तो सब शरीरों में एक ही दयालु चेतन्यरूप, परमेश्वर का ही दर्शन है । इस लिये सभी प्राणधारी जीवों का प्रतिपालना, वस्त्र भोजन जल आदि से करिये ।

दादू पूरण ब्रह्म बिचारि ले, दुति भाव करि दूर ।
सब घटि साहब देखिये, राम रह्या भरपूर ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! पूर्ण ब्रह्म के विचार द्वारा, अन्तःकरण के द्वैतभाव को नष्ट करिये । और फिर सब शरीरों में सबका साहिब, राम को, विवेक विचार रूपी नेत्रों से देखिये ।

दादू मंदिर काच का, मर्कट सुनहां जाइ ।
दादू एक अनेक व्है, आप आपकौं खाइ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जैसे काच के महल में कुत्ता या बन्दर जावे तो, अपने अनेक प्रतिबिम्ब देख कर, अपने ऊपर ही आक्रमण करता है अर्थात् काच में बुटकियां मार मारकर, घायल होकर मर जाता है । इसी

प्रकार अनन्त पंचभूतमय शरीरों में, एक ही चेतन आत्मा, प्रतिबिम्ब हो रहा है, परन्तु अनेक प्रकार की वासनाओं में बिखरी हुई बुद्धि, विषयों में रत्त होकर, आत्म सम्बन्ध को भूल कर, शरीर के भाव को सत्य जान, राग द्वेषमय वृत्ति, "मैं और तूं" के अहंकार में प्रवृत्त होती है। इस तरह यह अज्ञानी प्राणी, आप ही, आपका बैरी और मित्र, संसार बन रहा है।

आत्म भाई जीव सब, एक पेट परिवार ।
दादू मूल बिचारिये, तौ दूजा कौन गंवार ।।१८।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! एक ही प्रकृत्ति के द्वारा, सबकी रचना हुई है और हे भाई ! आत्म दृष्टि से सभी जीव एक रूप हैं। हे गंवार ! विषयों के प्रेमी ! जब सबके मूल को विचार कर देखिये, तो दूसरा रह ही कहां जाता है !

(अदया हिंसा जीव में बनस्पतियों भाव)

दादू सूका सहजैं कीजिये, नीला भानै नांहि ।
काहे को दुख दीजिये, साहिब है सब मांहि ।।१९।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! सुखे हुए पेड़ को अपने उपयोग में लेने से कोई दोष नहीं हैं। परन्तु हरा दर्खत काटने में दुख रूप पाप होता है, क्योंकि हरे वृक्ष को सताने से अर्थात् काटने से, साहिब की व्यापकता में ठेस आती है।

(दया निरवैरता)

घट घट के ऊणहार सब, प्राण परस ह्वै जाइ ।
दादू एक अनेक ह्वै, बरतै नाना भाइ ।।२०।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! सब घट एक ही 'ऊणहार' कहिये समान हैं। और प्राण भी सबमें एक ही रूप हैं ? अर्थात् एक ही चिदात्मा अन्तःकरण रूप उपाधियों से, अनन्त मूर्तियों में नजर आने लगता है। वास्तविक विचार कर देखिये तो दूसरा कौन है !

आये एकंकार सब, सांई दिये पठाइ ।
दादू न्यारे नांव धरि, भिन्न भिन्न ह्वै जाइ ।।२१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब कोई एक ही कर्म मार्ग से अथवा गर्भवास के द्वारा जन्मते हैं। परमेश्वर ने सबको भेजे हैं। परन्तु यहां संसार में आकर, मैं हिन्दू हूं, में मुसलमान हूं, मैं ईसाई हूं, मैं पारसी हूं, मैं जैनी हूं, मैं सिख हूं, मैं अमुक मत को मानने वाला हूं, इस प्रकार मूल को न समझ कर, भिन्न भिन्न अपने से और को अलग समझ कर, विषमता को प्राप्त हो और रहे हैं।

आये एकंकार सब, सांई दिये पठाइ।
आदि अंति सब एक हैं, दादू सहज समाइ ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सब लोग परमेश्वर के यहां से संसार में आये हैं। और जब विचार कर देखिये तो अन्त में भी सबका ठिकाना एक ही प्रकृति है। जब आदि और अन्त में सव एक ही हैं, तो मध्य में भी सब एक ही रूप हैं। भिर भेद ही क्या रह जाता है !

आतमदेव अराधिये, बिरोधिये नहिं कोइ।
आराधे सुख पाइये, बिरोधें दुख होइ ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! सब देवों में आत्मा ही चेतन्य रूप देव है, इसी की एकत्व वृत्ति से आराधना कीजिये। आत्मा को नहीं सताना। आतमदेव को विचार द्वारा आराधना करने से, अन्तःकरण में शांति सुख उत्पन्न होता है। और आत्म विचार छोड़कर, यानि विरोध करने से, जन्म मरण रूपी दुख होते हैं।

ज्यों आपै देखै आपकौं, यौं जे दूसर होइ।
तौ दादू दूसर नहीं, दुःख न पावै कोइ ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जिस वृत्ति से हम अपने आपको सुखी दुखी देखते हैं, उसी प्रकार वृत्ति से सारे संसार को देखैं, तो न कोई दूसरा दिखाई पड़े और कोई कलेस ही उठाना पड़े।

दोहा :- काजी से कहि पातसाह, मम सुत्त सबही पढ़ाइ।
विद्या पर दिये चाबका, रोक दियो ल जाइ ॥२४॥

दृष्टांत :— एक बादशाह ने काजी को बुलाया और बोले कि इस शहजादे को सम्पूर्ण विद्या, राजनीति वगैरा सब पढ़ा दो। जब सब विद्या पढ़ गया, तो काजी को बादशाह ने बुलाया और बादशाह बोले :- अब

शहजादे को कितनी विद्या पढ़ाना बाकी है। काजी बोले :- सब पढ़ा दिया, जराक बाकी है, वह अभी ले जाकर पढ़ा देता हूं। काजी शहजादा को लेजाकर, सब कपड़े उपरवाये और रस्सी से दोनों हाथ बांधे। फिर एक ऊंची खूटी से कसके वांध दिया। एक चाबक लाया और लड़के के जोर से मारा। वह चाबक लड़के के बदन से चिपक गई। फिर हाथ खोल दिये। लड़का चिल्लाता हुआ, बादशाह के सामने गया। बादशाह ने लड़के से पूछा और फिर हुकम दिया कि काजी को फांसी पर लटका दो। काजी को जब फांसी पर ले गये और पूछा क्या कहना चाहते हो ? तब बोला :- बादशाह से दो बात करना चाहता हूं। बादशाह के पास ले-गये। बादशाह को बोला :- विद्या पढ़ाने की, यह मुझे फांसी की नजर दी जा रही है। बादशाह :- ऐसी विद्या पढ़ाई जाती है ? काजी :- आज पहले कभी एक ऊंगली भी इसे नहीं लगाई और सब विद्या पढ़ा दी। कल को यह बादशाह बनेगा और जनता के सुख दुख का इस बैंत से ध्यान रहेगा कि मैं किसी को सुख दुख दूंगा, तो मेरी तरह ही, इसको सुख दुख होगा। बादशाह यह सुनकर समझ गये और काजी जी की फांसी माफ कर दी और बहुत कुछ धन देकर बिदा किया।

दादू सम करि देखिये, कुंजर कीट समान।
दादू दुविध्या दूर करि, तजि आपा अभिमान ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! चींटी से हाथी पर्यन्त, सब ही प्राणियों को समत्व भावना से देखिये। दुविध्या कहिये द्वैतभाव भेद बुद्धि का त्याग करके और इस मिथ्या शरीर के आपा रूप अभिमान को छोड़िये।

(अदया हिंसा)

दादू अरस खुदाय का, अजरावर का थान।
दादू सौ क्यौं ढाहिये, साहिब का नीसाण ॥२६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! 'अरस खुदाय का' कहिए, प्रत्येक प्राणी ईश्वर का ही शरीर है। सब शरीरों में अजर अमर परमेश्वर ही निवास करते हैं। इसलिये परमात्मा के बनाये हुए 'निसान' कहिए, शरीरों की हिंसा नहीं करना।

दादू आप चिणावै देहुरा, तिसका करहि जत्तन।
प्रत्यख परमेसुर किया, सो भानै जीव रत्तन ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अपने बनाये हुए देव स्थान की रक्षा का आप प्रयत्न करता रहता है। परन्तु यह पशु आदिकों के शरीर रूप देव स्थान तो, प्रत्यक्ष परमेश्वर ने ही रचे हैं। उनको बामतंत्री हिन्दू लोग अर्थात् मांस खाने वाले, देवी भैरूं के नाम पर बलिदान करके, आप भक्षण करते हैं। उनको महापाप लगता है।

मसीति संवारी माणसां, तिसकौं करैं सलाम ।
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहैं मुसलमान ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! मनुष्यों की बनाई हुई मस्जिद में जाकर मुसलमान सलाम करते हैं और जो अपना मनुष्य शरीर रूपी मस्जिद, ईश्वर ने बनाई है, उसको हिंसा आदि खोटे कर्मों के द्वारा, विषय भोगों में फंसकर, नास कर रहे हैं ।

दादू जंगल मांहैं जीव जे, जगथैं रहैं उदास ।
भयभीत भयानक राति दिन, निश्चल नाही बास ॥२९॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! जंगल के जो जीव बकरा, बकरी, खरगोश, मृग आदि, जगत के मनुष्यों से भयभीत हुए, डर के मारे, जिनका निश्चल कोई स्थान नहीं है, कभी कहीं कभी कहीं, रात दिन मनुष्यों से उदास होकर भ्रमते रहते हैं ।

बाचा बांधी जीव सब, भोजन पानि घास ।
आत्म ज्ञान न ऊपजै, दादू करहि बिनास ॥३०॥

टीका :- ऐसे बिचारे जीव वचन से कुछ समझा कर, कह नहीं सकते और भोजन जिनका घास पत्ती का है, ईश्वर रचित जंगल में रहकर, पानी पत्ता पीते खाते हैं, ऐसे गरीब जीवों को हिंसक मांस खाने वाले लोग, उनको मारते हैं । उनके अन्तःकरण में यह ज्ञान नहीं होता है कि यह जीवात्मा सब परमेश्वर के ही अंश हैं इनको मारकर हम किस प्रकार परमेश्वर को जबाब देंगे ?

काला मुंह करि करद का, दिलथैं दूर निवार ।
सब सुरति सुबहान की, मूल्लां मुगध न मार ॥३१॥

टीका :- हे मुल्ला ! विषयों के यार ! स्वादों में फंसकर, तूं इस कुरबानी के शस्त्र, छुरे का अन्तःकरण से परित्याग कर, क्योंकि सब शरीर रूप आकृतियां परमात्मा की हैं और उनमें परमेश्वर ही निवास करता है । इन सबकी काया से, मन से, बचन से, रक्षा कर । किसी को न सता ।

गला गुसे का काटिये, मियां मनी कौं मारि ।
पंचौं बिसमिल कीजिये, ये सब जीव उबारि ॥३२॥

टीका :- हे मियां ! तूं गुस्से का गला काट और 'मनी' कहिए, अहंकार को मार। और पंच ज्ञानेन्द्रियों की कुरबानी कहिए, अपने अपने विषयों से इनको हटाकर, अन्तर्मुख कर। और यह सब जो ईश्वर रचित जीव हैं, सबकी रक्षा कर।

बैर बिरोधैं आतमा, दया नहीं दिल मांहि।
दादू मूरति राम की, ताकौं मार न जांहि ॥३३॥

टीका :- हे अज्ञानी ! अपने अन्तःकरण से बैर बिरोध भाव का त्याग कर। तूं मनुष्य का शरीर प्राप्त करके भी, दिल में दया नहीं धारता है। यह सब पशु पक्षी आदि के शरीर, राम की ही मूर्ति हैं। अपने स्वादों के लिए, इनको न मार। नहीं तो यह बदले तुझे भोगने पड़ेंगे।

(दया निरबैरता)

कुल आलम एक दीदम, अरवाहै इकलास।
बद अमल बदकार दूई, पाक यारां पास ॥३४॥

टीका :- हे मियां ! सम्पूर्ण संसार का एक ही स्वरूप है। अर्थात् सब एकसे ही हैं। और सबकी आत्मा भी एक समान रूप है। इसलिये बदमासियें और लड़ाइयें, यह सब अपने से अलग दूसरा मानकर, इस भेद अज्ञान रूप ज्ञान रूप से होती हैं और पाक कहिये, पवित्र परमेश्वर, वह उनके प्रेमी भक्तों के हृदय में साक्षात्कार परचै हो रहे हैं।

दोहा :- गुरू दादू आमेर थे, तुर्क संगोती ल्याइ।
तासन या साखी कही, लज्जित व्है उठि जाइ ॥३४॥

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव आमेर में बिराजते थे। एक रोज एक काजी अपने संगी कई बहिरंग मुसलमानों को साथ लेकर आया और महाराज से वाद विवाद करना चाहा। तब गुरू ने उपरोक्त साखी से उत्तर दिया। सब शर्मिन्दे होकर चले गये।

काल झाल थैं काढ करि, आत्तम अंगि लगाइ।
जीव दया यहु पालिये, दादू अमृत्त खाइ ॥३५॥

टीका :- हे हिन्दु मुसलमानों ! अपने आपको और दूसरों को भी काम क्रोध, विषय भोग रूप काला अग्नि से निकाल कर, आप स्वयं को और दूसरों को आत्म विचार में लगाओ । तथा सम्पूर्ण जीवों की रक्षा करके, ज्ञानामृत्त पान करो और दूसरों को पिलाकर जीवों को बचाओ । यही सच्ची जीव रक्षा है ।

दादू बुरा न बांछै जीव का, सदा सजीवन सोइ ।
परलै विषय बिकार सब, भाव भक्ति रत्त होइ ।।३६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! किसी भी जीव का, कभी बुरा करने की इच्छा नहीं करते, ऐसे मुक्त पुरुष सदैव सजीवन भाव को प्राप्त रहते हैं । और विषय शब्द आदि, और विकार काम आदि का नास करके, अखंड भाव और अनन्य भक्ति के द्वारा परमेश्वर में लीन रहते हैं ।

सतगुरू संतों की यह रीत,
ना को बैरी ना को मीत,
दादू राम मिलन की चीत ।।३७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस अंग में ब्रह्मनिष्ठ सतगुरू और सच्चे संतों की दया निर्बैरता रूप रीति का, दयालु महाप्रभु ने निरूपण किया है कि उन पुरूषों का न तो कोई मित्र है और न कोई शत्रु है । केवल राम में अभेद होने की ही चित्त में भावना रहती हैं ।

(इति दया निरबैंरता का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ सुन्दरी का अंग ३० ।।

"नाको बैरी ना को मीत०"--इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप दया निर्बैरता अंग के तद्नन्तर, अब सुन्दरी के अंग का निरूपण करते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।१।।

टीका :- हे निरन्जनदेव ! हम आपको बारम्बार नमो नमो करते हैं और जो गुरूदेव हैं, उनको भी हमारी नमस्कार होवै और सर्व ही संतों को हम वन्दना करते हैं। उन सबकी दया से हमारी सुरती रूप सुन्दरी, संसार से पार होकर, परमेश्वर रूप पति में अभेद होती है।

(सुन्दरी विलाप)

आरति बंती सुन्दरी, पल पल चाहे पीव।
दादू कारणि कंत के, ताला बेली जीव ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! यहां पर सुन्दरी, अन्त:करण की वृत्ति को कहा है। उस वृत्ति में अपने आपको पहचानने की या परमेश्वर को पहचानने की, प्रबल प्रेरणा उत्पन्न हो रही हो, इस तरह की वृत्ति को ही सुन्दरी कहा है। और इस प्रकार की वृत्ति बनने के पश्चात क्या होता है ? और क्या करना है ! यह सब इस अंग में समझाया गया है।

'आरति वंति' कहिए, जन्म से मृत्यु पर्यन्त, दुख से आरत दुखी सुन्दरी, संतों की वृत्ति, पीव कहिए कूटस्थ चेतन जो सबका स्वामी है, उसके लिये 'ताला'--तलफ, और 'बेली'--बिलाप के सहित, अति चाहमय रहती है।

काहे न आवहु कंत घरि, क्यौं तुम रहे रिसाइ।
दादू सुन्दरि सेज पर, जन्म अमोलिक जाइ ॥३॥

टीका :- हे ज्ञिजासुओ ! संत आतमा की वृत्ति रूप सुन्दरी प्रार्थना करती है कि हे हमारे स्वामी ! हे स्वस्वरूप कूटस्थ ब्रह्म ! 'घरि' कहिए हमारे अन्तःकरण रूपी स्थान में क्यों नहीं प्रत्यक्ष होते हो ? क्या कारण से आप नाराज हो ? 'सुन्दरि सेज, कहिए स्नेहवत वृत्ति वाली सेज, पलंग पर आप प्रगट होइये, क्योंकि आप के दर्शनों के बिना, यह मनुष्य जन्म अबके जो हमें मिला है, सो वृथा जा रहा है।

आतम अंतर आव तूं, याहै तेरी ठौर।
दादू सुन्दरि पीव तूं, दूजा नांही और ॥४॥

टीका :- हे परमेश्वर ! 'आतमा' कहिये हमारे शुद्ध हृदय प्रदेश में, 'आव' नाम प्रगट होइये। यही आपके मिलने का स्थान है। हे पीव ! आप ही हमारे लक्ष स्वरूप हो। आपसे अतिरिक्त और कोई दूसरा हमारा पीव कहिए स्वामी नहीं है।

दादू पीव न देख्या नैन भरि, कंठि न लागि धाइ।
सूतीं नही गलि बांह दे, बिच हीं गई बिलाइ ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! संतों की वृत्ति रूप सुन्दरी कहती है कि हे नाथ ! हे पीव ! हम आपको इस मनुष्य जन्म रूप अवसर में, ज्ञान रूपी नेत्रों द्वारा आपका दर्शन करके, आपके स्वरूप में अभी हम, अभेद नहीं हुए। "कंठि न लागि" कहिए, आत्म उपदेश द्वारा, आपसे वृत्ति अरस परस नहीं हुई। इसीलिये अभेद निश्चय रूप आनन्द हमने अभी तक नहीं पाया 'और बिच ही गई बिलाइ' अर्थात्, सारी आयु आपकी अप्राप्ति में ही वृथा जा रही है।

सुरति पुकारै सुन्दरी, अगम अगोचर जाइ।
दादू बिरहनि आतमा, उठि उठि आतुर धाइ ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! बिरहीजनों की सुरति वृत्ति रूप सुन्दरी अति स्नेह रूप प्रीति से, आत्म स्वरूप की अनवरत चाह में लग गई है । 'अगम अगोचर जाइ' कहिए, वृत्ति अन्तर्मुख होकर, वह जो निरूपाधिक सर्व का आधार स्वरूप चेतन हैं उसकी ओर लगी है । साधक पुरूष की वृत्ति पुनः पुनः उसी चेतन्य स्वरूप की ओर आर्कषित हो रही है ।

सांई कारणि सेज संवारी, सबथैं सुन्दर ठौर ।
दादू नारी नाह बिन, आणि बिठाये और ।।७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरहीजन भक्तों की वृत्ति रूप सुन्दरी, 'सेज संवारी' कहिए, अन्तःकरण रूपी सेज को देवी सम्पदा और विवेक वैराग्य आदि साधनों से सुस्ज्जित की है । आपकी प्राप्ति के लिये, यही सबसे अति उत्तम जगह है । हे हमारे पति ! हे स्वामी अराध्य निर्गुण समष्टि चेतन ब्रह्म ! आपकी अराधना त्यागकर, और 'आण बिठायें कहिये, सोपाधिक माया उपाधि सहित, सीमित अवतार तथा अन्य देव आदिकों की उपासना स्वीकार की है । उनको आप शुद्ध स्वरूप पति की प्राप्ति नहीं होती है ।

कोई अवगुण मन बस्या, चितथैं धरि उतार ।
दादू पती बिन सुन्दरी, हांडै घर घर बार ।।८।।

टीका :- हे स्वामी परमेश्वर ! क्या आपके मन में हमारी वृत्ति रूप सुन्दरी का, विषय वासना अहंकार आदिक अवगुण मन में बस गया है ? जिससे आप अपने चित्त से सुन्दरी को अलग कर दी है । क्या इसी लिये आप हमारी वृत्ति को अपनी ओर आर्कषित, नहीं होने दी है ? किन्तु आप स्वस्वरूप पति के बिना 'सुन्दरी' कहिए, हमारी वृत्ति ',हांडै घर घर बार०" कहिये, विषय वासना से प्रेरित होकर, इधर उधर घुड़दौड़ की तरह घूम रही है ।

(आन लगन व्यभिचार)

प्रेम प्रीत्ती सनेहै बिन, सब झूठे सिंगार ।
दादू आत्तम रत्त नहीं, क्यौं मानै भरतार ।।९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पति में निष्काम प्रेम प्रीति और स्नेह के बिना, सब श्रृंगार झूठा है । अर्थात् बहिरंग पूजा पाठ, तीर्थ व्रत, भजन स्मरण आदि रूप सब श्रृंगार मिथ्या है । क्योंकि परमेश्वर रूप पति में अनन्य प्रेम नहीं है, तो वह किस तरह, उस सुन्दरी को अपनावेंगे ?

दादू हूं सुख सूती नींद भरि, जागै मेरा पीव ।
क्यौं करि मेला होइगा, जागै नांही जीव ॥१०॥

टीका :- हम बिरहीजन या हमारी वृत्ति रूप सुन्दरी, विषय वासनाओ में लगकर, मोह और अज्ञान में सो सो रही है । और अधिष्ठान चेतन रूप पति, अविद्या आदि विकारों से रहित है । परन्तु 'जीव' कहिए अन्तःकरण, आभास विशुद्ध होकर, आत्मा की ओर प्रवृत्त नहीं होता है । इसीलिए आनन्द स्वरूप प्राप्त नहीं हो रहा है ।

सखी न खेलै सुन्दरी, अपने पीव सौं जागी ।
स्वाद न पाया प्रेम का, रही नहीं उर लागी ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरहीजन साधक की वृत्ति रूपी सुन्दरी, मोह निद्रा से जागकर, अपने आत्म स्वरूप की ओर अन्तःकरण में दृढ़ता से लगती नहीं, तो फिर एकत्व भाव का रस प्राप्त नहीं होता । क्योंकि वृत्ति बहिरंग है ।

पंच दिहाड़ै पीव सौं, मिलि काहे न खेलै ।
दादू गहली सुन्दरी, क्यौं रहै अकेलै ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरहीजनों की वृत्ति रूप सुन्दरी, 'पंच दिहाड़ै' कहिये पांच रोज के जीवन में परमेश्वर रूप पति से अभेद निश्चय रूप स्मरण के द्वारा, क्यों नहीं खेलती है ? अर्थात् यह वृत्ति रूप सुन्दरी, विषय वासनाओं में गहली हो रही है । इसीलिये अधिष्टान से विमुख होकर, बहिर्मुख साधनों में लगी है । और यदि गुरू उपदेश द्वारा अन्तर्मुख होकर, परमेश्वर के निष्काम स्मरण में लगै, तो वह अकेली क्यों रहै ? हे प्रभु ! आप हमारी वृत्ति रूप सुन्दरी पर कृपा करके, अपने स्वरूप में लगाइये ।

सखी सुहागनी सब कहैं, हूंर दुहागनि आहि ।
पिव का महल न पाइये, कहां पुकारौं जाइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरहीजन भक्तों की बुद्धि रूपी सखी, आत्म उपदेश में लगी हुई कहती है कि हमें तो परमात्मा का दर्शन रूपी सुहाग प्राप्त है । किन्तु 'हूं' कहिये मैं, दुहागनी अनातम पदार्थों में आसक्त, अपने आत्म स्वरूप पति से त्यागी हुई हूं । अन्तःकरण रूपी महल में आपका स्वरूप मुझे, किस तरह प्राप्त होवै ? हे स्वामी ! अब हम बिरहीजन आपके बिना, कहां जाकर किसको पुकारैं ?

सखी सुहागनि सब कहैं, कंत न बूझै बात।
मनसा बाचा कर्मणा, मुरछी मुरछी जिव जात ।।१४।।

टीका :- हे जिज्ञासुग्रो ! बिरहीजनों की स्वरूपाकार वृत्ति रूप सुन्दरी कहती है कि हम तो दर्शन करके कृत्य कृत्य हैं। परन्तु हे प्रभु ! मैं तो ग्रापकी ग्रप्राप्ति में मूछित हो होकर, प्राणी पिण्ड का वियोग करूंगी। क्योंकि ग्राप तो हमारी संभाल करते नहीं हो ? ग्रौर मन वचन कर्म से कहते हैं कि ग्रापके दर्शन हुए बिना, जीवित नहीं रहैंगे।

सखी सुहागनि सब कहैं, पीव सौं परसन होइ।
निस वासुर दुख पाइये, यहु बिथा न जाणैं कोइ ।।१५।।

टीका :- हे जिज्ञासुग्रो ! जिन बिरहीजनों को परमेश्वर का दर्शनरूपी सुहाग प्राप्त है, वह तो सब कहते सब कहते हैं कि हम तो परमेश्वर से ग्ररस परस हैं। परन्तु हम तो 'निसवासुर' कहिये रात दिन, परमेश्वर के वियोग में ग्रति दुखी रहते हैं। ग्रौर हमारे इस बिरह के दर्द को संसारीजन, कोई भी नहीं जान पाते हैं।

सखी सुहागनि सब कहैं, प्रगट न खेलै पीव।
सेज सुहागन पाइये, दुखिया मेरा जीव ।।१६।।

टीका :- हे जिज्ञासुग्रो ! बिरहीजनों की सुरति रूप सुन्दरी, पीव का दर्शन रूपी सुहाग को प्राप्त करके, ग्रानन्दित हो रही है। परन्तु हमसे तो पीव निरावरण होकर, ग्रन्तःकरण रूपी सेज पर, ग्रोत प्रोत नहीं होते। इसी से हमारा जीव ग्रति दुखी रहता है।

(ग्रान लगन व्याभिचार)

पुरूष पुरातन छाड़ि करि, चली ग्रान के ग्राथ।
सो भी संगथैं बीछुट्या, खड़ि मरोड़ै हाथ ।।१७।।

टीका :- हे जिज्ञासुग्रो ! सुरति रूप सुन्दरी, "पुरूष पुरातन छाड़ि करि" कहिये, विशुद्ध समष्टि चेतन रूप ब्रह्म की उपासना त्याग कर, ग्रौर कल्पित देव ग्रादिकों की ग्राराधना में वृत्ति रूप सुन्दरी, लगकर चली। किन्तु वह भी ग्रन्त में बिछुड़ गये। ग्रब तो निश्चय ही मनुष्य शरीर ग्रौर मोक्ष से वंचित रहकर, वृतिरूप सुन्दरी हाथ मसलती है।

अर्थात् सात फेरों के पति को छोड़कर, दूसरे पुरुष के साथ प्रीति करने वाली व्याभिचारणी स्त्री, व्यभिचारी पुरुष के साथ चली जाती है। परन्तु वह भी उसको व्यभिचारणि जानकर त्याग देता है। फिर वह खड़ी खड़ी हाथ मसल कर रोती है।

दोहा :- अपना पति तिय मार कै, चली जार के संग।
नदि पार सब ले गयो, नग्न फिरै जल ढिग ॥१७॥

दृष्टान्त :- एक स्त्री अपने पति से असंतुष्ट रहकर, दूसरे जार पुरुष के साथ प्रीति कर ली। वह उसको बोलीं कि अपन दोनों इस नगर से भाग निकलैं, और किसी अन्य नगर में चलकर रहैं। वह बोला :- तेरा पति पीछा करके हम लोगों को पकड़वा देगा, तब क्या करैंगी ? स्त्री बोली :- मैं उसको जान से मार देती हूं। घर का धन कपड़े वगैरा बांधकर, सूते हुए पति की गर्दन पर एक तलवार मारी और टुकड़े कर दिये। सब माल लेकर, जार के साथ चल पड़ी। आगे गये तो रास्ते में एक नदी बह रही थी। वह पुरुष बोला कि तेरे सब कपड़े बदन के भी उतार कर, कपड़ों के साथ बांध दे। मैं यह सब परले किनारे रख आता हूं। फिर आकर तुझे भी परले किनारे ले चलूंगा। वह सब कपड़े लेकर, नदी पार उतर गया और आगे मार्ग मार्ग जाता इसे दिखाई पड़ा। इसने आवाज दी कि मुझे तो ले चल। तब वह बोला :- कि रांड तैंने अपने खसम के दो टुकड़े कर दिये, अब तूं नंगी ही फिरती रह, यही तुझे दण्ड है। मुझे मारने में तुझे क्या देर लगेगी ? फिर जल के किनारे नंगी ही घूमने लगी। इतने में सवेरा हो गया। एक गीदड़ जंगल से मांस का टुकड़ा मुंह में लिये हुए, नदी पर जल पीने आया। गीदड़ को मछली दिखाई दी। वह मांस का टुकड़ा डालकर, मछली पकड़ने दौड़ा। मांस के टुकड़े को चील उठा ले गई और मछली पानी में कूद गई। तब जार स्त्री बोली :-

रे रे जंबुक दुरबुद्धि, मच्छा चल सलंगना।
स्वयं मुख मांस त्यक्त्वा, आकासं किम् दृश्यसी ॥

इतना सुन कर जबुंक बोला :-

पस्यति पर दोषं च, अप दोषो न पस्यति।
न जारो न भरतारो, जल तिष्ठति नग्न का ॥

(सुन्दरी बिलाप)

सुन्दरी कबहु कंत का, मुख सौं नांव न लेइ।
अपणे पीव के कारणैं, दादू तन मन देइ ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पतिव्रता सुन्दरी अपने पति का कभी अपने मुँह से नाम नहीं लेती है। और अपना तन मन सब पति की सेवा में न्यौछावर करती है। पति की आज्ञा से कभी बाहर नहीं जाती।

अर्थात् संतवृति रूप सुन्दरी, कभी भी परम पुरूष ब्रह्म का, मुख से नाम उच्चारण में नहीं लगी रहती हैं, किन्तु ब्रह्म प्राप्ति के लिये, तन मन के सब विकारों को छोड़कर, और अपने सहित सब को ब्रह्म में लीन करती है।

दोहा :- अन्तर नेष्टि नृपति, ज्यूं राम जपत तिय जाण।
धन वारत उछव कियो, सुनत तजै नृप प्राण ॥१८॥

दृष्टान्त :- एक राजा अन्तर्निष्ठा थे। उनकी रानी बड़ी पतिव्रता और ईश्वर भक्त थी। जब उसने राजा के ईश्वर प्राप्ति की धारणा कुछ भी नहीं देखी, तब मन में सोचने लगी कि राजा का उद्धार किस प्रकार होगा ? एक रोज राजा से बोली :-पतिदेव, आप भी ईश्वर भक्ति, दान धर्म, तीर्थ व्रत आदि किया करो। राजा बोले :-यह सब तो तुम करती हो, मेरी क्या आवश्यकता हैं ? रानी के मन में बहुत दुख हुआ कि राजा तो बिल्कुल नास्तिक है। तब ईश्वर से प्रार्थना करने लगी कि हे परमेश्वर ! एक रोज तो आप, राजा के मुंह से राम नाम का उच्चारण कराइये। मेरी यही इच्छा है कि आपके नाम को मैं अपने श्रोत्र से सुनूं। फिर बोली :- हे नाथ ! यदि जागृत में राजा आप का नाम नहीं लेता है, तो स्वप्न में ही आपका नाम, राजा के मुँह से निकालिये। रानी दिन में सो लेती और रात में राजा के चरणों की सेवा बैठी बैठी करती रहती और मन में यही भावना रखती कि कभी ईश्वर मेरी इच्छा पूरी करेंगे। एक रोज रात्रि को स्वप्न में राजा ने मुंह से, "हे राम ! हे राम ! हे राम !" स्मरण किया। रानी यह सुनकर कृत्य कृत्य हो गई। और प्रातःकाल होते ही, गाजे बाजे बजवाने लगी। अनेकों प्रकार का धर्म पुण्य करने लगी। सवेरे राजा ने पूछा :- आज यह इस प्रकार का उत्सव और धर्म पुण्य किस कारण से किया जा रहा है ? नौकरों ने कहा :- महारानी साहव का हुकम है। राजा महलों में आकर रानी से बोले :- आज प्रिय, यह उत्सव किस बात का हो रहा है ? रानी बोली :- हे राजन ? आज आप के मुंह से राम नाम निकल गया, उसी के उपलक्ष में यह आनन्द हो रहा है। राजा पलंग पर लेट गये और बिरह से पुकारने लगे, हे राम ! आप मेरे मुंह से कैसे निकल गये ? मैं तो आपको बहुत छुपा कर हृदय में रख रखे थे। अब मैं आपके बिना कैसे जी सकता हूं ? तब रानी की आंखें खुली कि मेरे पति तो अन्तर्निष्ठ भक्त थे, मैं इनको नहीं जान सकी। राजा ने हे राम ! हे राम ! पुकारते पुकारते, शरीर का त्याग कर दिया। रानी भी पतिव्रता होने के नाते, पति वियोग का दुख न सह सकी, वह भी सती हो गई। "सुन्दरी कबहु कंत का, मुख सौं नावं न लेइ०"

नैन बैन करि वारणै, तन मन पिंड परान ।
दादू सुन्दरी बलि गई, तुम परि कंत सुजान ।।१९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्ची पतिव्रता देवी, अपने मन से, अपने पति के ऊपर, नैन बैन न्योछावर करती है । अर्थात् सिवाय अपने पति के, न तो नेत्रों से किसी को पुरुष भावना से देखती है और न पति के सिवाय, अपने मुख से किसी का यश कहती है । अपना तन मन और प्राण, यह सब पति के समर्पित करती है । और कहती है कि हे पतिदेव ! आप ही मेरे सर्व सर्वा हैं, मैं आपके ऊपर न्योछावर जाती हूं । अथवा संत वृति सुन्दरी, शरीर के स्थूल, सूक्ष्म संघात सहित, अपने उपास्य देव के, आप समर्पित हो गई ।

तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिंड परान ।
सब कुछ तेरा तूँ है मेरा, यहु दादू का ज्ञान ।।२०।।

टीका :- हे परमेश्वर ! यह तन आपका दिया हुआ, आपकी आराधना द्वारा, आपके ही अर्पण करते हैं । और मन भी आपके अर्पण है । यह प्राण और स्थूल शरीर, यह सब आपका दिया हुआ, निष्काम कर्मों द्वारा, आपके ही अर्यण करते हैं । स्थूल सूक्ष्म सौंज सब आपके अर्पण है और आप हमारे हो । यही आपके अनन्य भक्तों का ज्ञान है ।

सुन्दरि मोहै पीव कौं, बहुत भांति भरतार ।
त्यों दादू रिझवै राम कौं, अनन्त कला कर्त्तार ।।२१।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! पतिव्रता स्त्री अपने पति को अनेकों प्रकार की सेवा द्वारा, अपने बस कर लेती है । इसी प्रकार अनन्य भक्तों की वृत्ति रूप सुन्दरी, निर्वासनिकता आदिक भाव द्वारा, सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर की रिझा लेती है ।

नदियां नीर उलंघ करि, दरिया पैली पार ।
दादू सुन्दरि सो भली, जाइ मिलै भर्तार ।।२२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि आशा तृष्णा रूप ही तो नदी है, और

मन के मनोरथ ही इसमें जल है, और संसार ही दरियाव है। परन्तु इसके अध्यास को छोड़ना ही पार होना है। इस साधना द्वारा, जो मुमुक्षुओं की वृति रूप सुन्दरी अधिष्ठान चेतन्य से अभेद होती है, वही धन्य है।

(सुन्दरी सुहाग)

प्रेम लहरि गहि ले गई, अपने प्रीतम पास।
आतम सुन्दरि पीव कौं, बिलसै दादू दास ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासु! परमेश्वर में अनन्य प्रेम की अवस्था ही, वृति रूप सुन्दरी को पकड़कर, आत्मा के स्वरूप में स्थिर करती है। तब शुद्ध बुद्धि रूप सुन्दरी अपने अधिष्ठान स्वरूप चेतन्य आत्मा का भजन करती है।

सुन्दरि कौं सांई मिल्या, पाया सेज सुहाग।
पीव सौं खेलै प्रेम रस, दादू मोटे भाग ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासु! अति उत्तम वृति रूप सुन्दरी को अधिष्ठान चेतन्य रूप परमेश्वर का साक्षात्कार सुहाग प्राप्त होता है। वही मुख प्रीति का विषय परमेश्वर से एकत्व रूपी प्रेम रस पीकर, कृत्य कृत्य होती है।

दादू सुन्दरि देह मैं, सांई कौं सेवै।
रात्ती अपणे पीव सौं, प्रेम रस लेवै ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासु! इस शरीर में ही वृति रूप सुन्दरी अन्तःकरण प्रदेश में अधिष्टान चेतन्य परमेश्वर की स्मरण रूप सेवा करती है। और उसी में राती रत्त और माती मतवाली बनी रहती है।

दादू निरमल सुन्दरि, निर्मल मेरा नाह।
दोन्यौं निरमल मिलि रहे, निरमल प्रेम प्रवाह ॥२३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! निर्वासनिक बिरहीजनों की वृत्ति रूप सुन्दरी, विषय वासना और अहंकार से शून्य, 'नाह' कहिये पति व माया अविद्या अंश से रहित और निष्काम स्नेह नाम प्रीति, प्रवाह कहिए अखंड धारा रूप प्रेम पीकर गलतान रहती है।

सांई सुन्दरी सेज परि, सदा एक रस होइ।
दादू खेलै पीव सौं, ता समि और न कोइ ॥२७॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! अद्वैत सतसंग में अथवा हृदय प्रदेश में संतो वृति और अधिष्ठान चेतन्य दोनों की ही अभेद स्थिति होती है। वही पीव से ब्रह्म चिन्तन रूपी खेल खेलते हैं। उनके समान बहिरंग सकामी देवी देवताओं के उपासक नहीं होते हैं।

(इति सुन्दरी का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ कस्तूरिया मृग का अंग ३१ ।।

इस अंग में कस्तूरिया मृग के उदाहरण से अज्ञान अवस्था की समानता करते हुये, उसका निरूपण करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।१।।

टीका :- हे निरन्जन देव ! आपको हम बारम्बार नमो नमो करते हैं और गुरूदेव को भी हम नमस्कार करते हैं । सम्पूर्ण संतों को भी वन्दना करते हैं, जिनकी कृपा से अन्त:करण में ही कस्तूरी रूप परमेश्वर को प्राप्त होते हैं ।

दादू घट कसतुरी मृग के, भर्मत फिरै उदास ।
अंतरि गति जाणै नहीं, ताथैं सूंघै घास ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जैसे मृग की नाभी में ही कस्तूरी है, इसी प्रकार प्रत्यक्ष मनुष्य के शरीर में ही, उसका आत्मा निवास करता है । परन्तु मृग की भांति मानवों में भी आस्तिक मनुष्य, अपने आप में, अपनी आत्मा को न जानकर, अनेक देवी देव आदि की उपासना ही मानो, घास सूंघने के समान है । उनसे आत्मज्ञान नहीं प्राप्त होता है ।

सब घट मे गोबिन्द है, संग रहै हरिपास ।
कस्तुरी मृग मै बसै, सूंघत डोलै घास ।।३।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! गोविन्द परमेश्वर, सबके अन्तःकरण में स्थित है, अत्यन्त समीप। परन्तु अज्ञानी मानव इसे नहीं जानता है। जैसे मृग की नाभी में ही कस्तूरी है। पर वह अपने अन्दर कस्तूरी न जानकर, अज्ञान वश जंगल पहाड़ों में घास सूंघता रहता है और महक कस्तूरी की उसके अन्दर से आती है। परन्तु वह जानता है कि इस घास में कस्तूरी की महक आती है।

दादू जीव न जानै राम कौं, राम जीव के पास।
गुरू के शब्दों बाहिरा, ताथैं फिर उदास ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! यह अज्ञानी बहिरंग वृत्ति वाला जीव, राम को नहीं जानता है और राम इसके अत्यन्त समीप है। क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ गुरू के शब्द रूप ज्ञान से यह रहित है। इसी से अन्तर परमेश्वर की तरफ से उदास होकर बहिरंग साधनों में ही घूमता है।

दादू जा कारण जग ढूंढिया, सो तौ घट ही मांहि।
मैं तैं पड़दा भरम का, ताथैं जानत नांहि ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जिस चेतन्य स्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, बहिरंग तीर्थ व्रत आदिक, अनेकों साधनों से जगत में तलाश किया, किन्तु वह प्राप्त नहीं हुआ। क्योंकि वह तो ज्ञान उपदेश द्वारा, अन्तःकरण में ही प्राप्त होने योग्य है। परन्तु मैं और तूं के भ्रम में पड़कर, उस सर्वव्यापक चेतन्य स्वरूप परमेश्वर को, कोई भी नहीं जान पाते, क्योंकि अनात्म अहंकार के कारण मैं तैं की भ्रममय वृत्ति होने से, कूटस्थ आत्मा का बोध नहीं होता है।

दोहा :- खाटू मकराणा बीच, लोक खोद वा धायो।
बखना रे गुरू ज्ञान सौं, धन घर ही में पायो ॥५॥

दृष्टान्त :- एक कोई बनिये का लड़का था, सतसंगी। एक समय एक महात्मा उसके गांव में आये। सभी लोग सतसंग करने आते थे। वह लड़का भी आया करता था। सभी लोग महात्मा जी को अपने अपने घर भोजन करने का क्रम क्रम से निमत्रंण देते थे। इस बनिये के लड़के के भी मन में आती, परन्तु घर में कुछ नहीं होने से कह नहीं सकता था। एक दिन किसी ने कहा :- महाराज, इसके पिता जी बहुत लखपती थे। परन्तु व्यापार आदि में धक्का लगा। सब सम्पत्ति इनकी खत्म हो गई और धीरे धीरे इसके मातृ पितृ वगैरा भी शान्त हो गये। अब यह अकेला ही घर में है और कोई भी नहीं है। इसने अपने बाप के लेन देन की

बही देखी, तो उसमें लिखा है कि एक लाख रूपया खाटू और मकराणा के बीच रखा है । गांव के साहूकारों को इसने बही दिखलाई । उनसे उधार रूपया मांगा । बही देखकर साहूकारों ने रूपया इसको दे दिया । उस रूपया से इसने खाटू और मकराणा के बीच की जमीन काफी लम्बी चौड़ी खुदवाई, परन्तु एक पैसा भी नहीं निकला और भी कर्जे से दब गया । अब अपनी मुसकिल से उदर पूर्ति करता है । महात्मा समझ गये और एक रोज उस अकेले लड़के को बोले कि तूं हमको तेरे घर भोजन का निमंत्रण देकर घर ले चल । वह बोला :-मेरे घर में आपके भोजन कराने लायक कुछ भी समान नहीं है । महात्मा जी बोले :- जो तूं भोजन करता है, वही हम कर लेंगे । तब एक रोज सतसंग होने के बाद, वह बोला :- महाराज ! कल मेरे घर पधारने की कृपा करें । उसको तरफ सब लोग झांकने लगे । परन्तु महात्मा जी ने उसका निमत्रंत्र मान ही लिया । जब दूसरे दिन बुलाने आया तो महातमा जी साथ चले । हवेली में पहुंचे और चारों मेर निगाह घूमा कर देखा और बोले :- यहां आसन बिछा दे । जो कुछ बनाया था महात्मा जी के सामने ला कर रखा महात्मा जी ने परमेश्वर के अर्पण करके, भोजन कर लिया । उठकर फिर बोले :- इस जगह खोद, जहां हम बैठे हैं । ज्यों ही उसने पत्थर उखाड़ा तो नीचे एक बड़ा पीतल का चरू रूपये और अर्शफियों से भरा हुआ देखा । लड़के ने कहा :- महाराज, यह क्या ? बही में तो कहां लिखा था ? और मिला कहां ? महात्मा जी ने कहा :- वही में लिखा था, वहां ही मिला है । यह तो खाटू के पत्थर का खंभा है और यह मकराने के पत्थर का खंभा है । खाटू मकराने बिच लिखा है, तो यह बीच में ही तो है । बनिया कोई पागल था क्या ? जो जंगल में लेजाकर धन गाडता । लड़का बोला :- धन्य हो गुरू के ज्ञान बिना नहीं मिलता है । इसी प्रकार परमेश्वर भी अन्तकरण में ही हैं । परन्तु गुरू के आतम उपदेश से ही प्राप्त होता है, और साधनों से प्राप्त नहीं होता ।

दादू दूरि कहैं तैं दूर है, राम रह्या भरपूरि ।
नैनहु बिन सुझै नहीं, ताथैं रवि कत दूरि ।।६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो राम को इस शरीर से अलग दूर बताते हैं, बैकुण्ठ स्वर्ग आदि में, वह स्वयं ही परमात्मा से बहुत दूर हैं । किन्तु राम तो सभी स्थान में परिपूर्ण व्यापक है । 'नैनहु बिन' कहिए ज्ञान विचारमय नेत्र, श्रुति स्मृतिमय नेत्रों से देखै, जैसे रवि, भानु । ऐसे ही आत्मारूप राम भरपूर है । तथापि नेत्रों के बिना, जो पुरूष हैं, उनको नहीं भान होता है ।

दादू ओडो हूवो पाण सौं, न लंधाऊ मंझ ।
न जाता ऊपाण मै, ताई क्या ऊपंध ।।७।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जिस परमेश्वर से यह स्थूल शरीर इतना बड़ा हुआ है, उस आधार को अभी तक अपने भीतर नहीं समझ सका है। अब जो मानव अपने आपको या ईश्वर को समझने की कोशिश नहीं करता और जिसकी वृत्ति बाहरी मायावी चकाचोंद में लगकर भ्रान्त रहती है, उसको क्या उपालंभ दिया जाय ?

दादू केई दौड़े द्वारिका, केई कासी जाइ।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घट ही मांहि ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कितने ही आस्तिक बुद्धि वाले पुरुष भगवान की प्राप्ति के लिये द्वारका जाते हैं और कितने ही शंकर भगवान की प्राप्ति के लिये कासी जाते हैं। और कितने ही पुरुष, भगवान कृष्ण की प्राप्ति के लिये मथुरा दौड़कर जाते हैं। परन्तु वह चेतन्य कृष्ण रूप शंकर और शंकर रूप कृष्ण, वह तो सबके अन्तःकरण में अधिष्ठान रूप से रह रहे हैं। उनको बहिरंग वृत्ति वाले कोई नहीं जान पाते।

दोहा :- कबीर केई दौड़ै द्वारका, केई जाइ जगन्नाथ।
साधु संगति हरि भक्ति बिन, कछु न आवै हाथ ॥८॥

दादू सब घट मांहै रमि रह्या, बिरला बूझै कोइ।
सोई बूझै राम कौं, जे राम सनेही होइ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह राम सम्पूर्ण शरीर में नख से चोटी पर्यन्त व्याप्त हो रहा है, जैसे तिलों में तेल, दूध से घृत, पुष्प में गंध। परन्तु कोई उत्तम विवेकी हो इस प्रकार समझता है। वही राम को इस प्रकार जानता है, जो संसार से अन्तर्मुख होकर, अधिष्ठान रूप राम से स्नेह करता है।

दादू जड़मति जीव जाणै नहीं, परम स्वाद सुख जाइ।
चेतन समझै स्वाद सुख, पीवै प्रेम अघाइ ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जड़ पदार्थों की उपासना करने वाले, अर्थात् स्थूल पदार्थों में ही बुद्धि का उपयोग करने वाला, परम स्वाद कहिये ब्रह्मानन्द रस के बिना, अज्ञानियों का विषय वासना में ही व्यर्थ जीवन जाता

है । और जो 'चेतन' कहिये मानव जीवन की सार्थकता में सावधान है, वही जिज्ञासु ब्रह्मानन्द रूपी रस का अनुभव द्वारा, पान करता है, अतृप्त भाव से ।

जागत जे आनन्द करै, सौ पावै सुख स्वाद ।
सूते सुख ना पाइये, प्रेम गंवाया बाद ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जो साधक अज्ञान और मोहरूप निद्रा से सचेत हो गये हैं, वही जीवन मुक्ति के सुख और ब्रह्मानन्द रूप सुख का रस पीते हैं । किन्तु अणअधिकारी कर्त्तव्य शून्य पुरूष, विषयों में प्रेम करके, मनुष्य जन्म को व्यर्थ गमा रहे हैं ।

दादू जिसका साहिब जागणा, सेवग सदा सुचेत ।
सावधान सनमुख रहै, गिर गिर पड़ै अचेत ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जिस साधक का स्वामी उपास्यदेव परमेश्वर सचेत है, उसका सेवक भी उसकी आराधना में सावधान रहता है । और सत् चित् आनन्द रूप उपास्य देव ही सच्चा स्वामी है और वही जागृत है । उसी की सत्ता से सम्पूर्ण संसार नामरूप सत्तावान प्रतीत होते हैं । परन्तु जिन्होंने अपना उपास्य देव जड़ अचेत को ही बनाया है, उसका सेवक भीं अचेत होकर, बहिरंग मार्ग में ही, आस्ता रखता है । और जो उपासक सावधान है, वह संसार के जड़ पदार्थों का मोह त्यागकर, आत्मा की ही आराधना में लगा रहता है ।

दादू सांई सावधान, हम हीं भये अचेत ।
प्राणी राखि न जाणही, ताथैं निरफल खेत ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सांई सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर तो सदैव ही हमारी रक्षा करने को सावधान रहते हैं । परन्तु हम अज्ञानी प्राणी, इस मानव जीवन को किस प्रकार बितावैं । यह हम ठीक ठीक नहीं समझ पाये हैं । इसी लिये यह जीवन रूपी खेती निष्फल ही जा रही है ।

(सगुना निगुना कृतघनी)

दादू गोबिन्द के गुण बहुत हैं, कोई न जाणैं जीव ।
अपणी बूझै आप गती, जे कुछ कीया पीव ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! गोविन्द परमेश्वर ने जीव का हित करके, बहुत से अण गिनती के गुण रूप उपकार किए हैं। परन्तु वह परमेश्वर आप स्वयं ही जानते हैं, अपने कृत को। किन्तु जो अज्ञानी विषय विकारों में आसक्ति रखने वाले जीव है, वे परमेश्वर के उस उपकार को नहीं जानते हैं, क्योंकि वे कृतघनी हैं।

(इति कस्तूरिया मृग का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ निन्दा का अंग ३२ ॥

"दादू गोविन्द के गुण बहुत हैं कोई न जाणै जीव०"--इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, अब निन्दा के अंग का निरूपण करते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ॥१॥

टीका :- हे निरंजनदेव ! आपको हमारी नमो नमो। और जिन गुरूदेव ने निन्दा का त्याग किया है, उनको भी हम नमस्कार करते हैं। तीन काल, चार वर्ण, चार आश्रम के सर्व ही संतों को भी बन्दना करते हैं, क्योंकि उनके सतसंग से जिज्ञासु, निन्दा आदि का त्याग कर, संहार समुद्र से पार होकर परमेश्वर में अभेद होते हैं।

(मत्सर ईर्षा)

साधू निर्मल मल नहीं, राम रमैं समभाइ ।
दादू अवगुण काढ कर, जीव रसातल जाइ ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सम्पूर्ण दोषों में जिनका तन मन रहित हो गया है, ऐसे निष्पाप और आत्मा आनन्द रूप राम में मग्न रहते हैं और सब जीवों में समान बुद्धि रखते हैं। परन्तु ऐसे महातमा पुरूषों में भी अज्ञानी कृतघनीजन दोष देखते हैं और निन्दा करते हैं। ऐसे पुरूष अधोगती को ही प्राप्त होते हैं। उनका कभी कल्याण नहीं होता है।

दादू जब ही साधु सताइये, तब ही ऊंघ पलट ।
आकास धसै धरती खिसै, तीनों लोक गरक ।।३।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जब सच्चे परमेश्वर के अनन्य भक्त, मुक्त संतों को सताते हैं, तब ही 'ऊंध पलट' कहिये, उसका परिणाम बुरा उत्पन्न होता है । परमेश्वर की व्यापकता और स्थिरता की भावना को बड़ा आघात पहुंचता है । तथा स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताल लोक की उत्तम रीति रिवाजों का नास होता है ।

दोहा :- खेड़ा पलटै धून्धलि, जय अरू बिजय अकास ।
धरणी फटी जयदेव हित, तिहूं लोक दुरबास ।।३।।

दृष्टांत :- धून्धलिमल महात्मा पट्टण गांव के पहाड़ पर समाधि में बैठे थे । उनका आज्ञाकारी शिष्य सेवा में रहता था । नगर में भिक्षा लेने गया । लोगों ने हंसी मजाक किया । एक कुम्हार कुम्हारी भक्त थे, उस गांव में । उन्होंने इसको आधी रोटी भिक्षा की दी । यह फिर बारह वर्ष तक कुम्हारी के लड़कों के साथ जंगल से लकड़ी लाकर, बाजार में बिक्री करके, अनाज लाकर कुम्हारी को देता । वह माई पीस पोकर रोज इसको रोटी देती । वह गुरू महाराज के सामने जाकर रखता और मानसिक भोग लगाकर पा लेता । बारह वर्ष में जब गुरू की समाधि खुली, शिष्य ने गुरूदेव के चरणों में प्रणाम किया । गुरू ने जब शिष्य के सिर पर हाथ रखा तो सिर के बाल उड़े देखे और पूछा :- बाल कैसे उड़ गये ? शिष्य बोला गुरूदेव ! यह गांव बड़ा दुष्ट है । उपरोक्त सब वार्ता सुना दी । तब गुरू भिक्षा लेने गये । वैसे ही लोगों ने हंसी मखौल किया । उसी कुम्हारी ने आधी रोटी भिक्षा की दी । गुरूदेव पहाड़ पर आ गये । शिष्य को बोले :- उस कुम्हारी को बोलो कि तुम्हारे बाल बच्चों को लेकर पहाड़ पर आ जाओ, गुरूदेव को कोप हो रहा है; न मालूम क्या होगा ? धून्धलिमल ने अपना पत्र हाथ में लिया और जमीन पर उल्टा करके मारते हुए बोले :- "पट्टण पट्टण सब डट्टण०" । भारत में सात पट्टण गांव थे, सातों के सातों उल्टे हो गये ।

जय और विजय भगवान के द्वारपाल थे । संकादिकों से सामना किया । उनके शराप से बैकुण्ठ छोड़कर, मृतलोक में इनको धकेल दिया । इस आख्यान का सब ही को पता है ।

किदूंबिल निवासी ब्राह्मण कुल में जयदेव जी महाराज भारी भक्त हुए, जिनका गीत गोविन्द ग्रन्थ बनाया हुआ है । उसको बुद्धिजीव जानते हैं । इनको ठगों ने लूट लिये थे, फिर आपने उन ठगों को साधु भेष में देखकर, उनकी राजा से बहुत सेवा कराई । जब वह ठग वहां से चले, तब राजपुरूषों के सामने, महाराज जयदेव जी की भारी निन्दा की । उनके पाप से पृथ्वी एकदम फटी और ठग जमीन में गरक हो गये ।

इसी प्रकार दुरवासा ऋषि ने भक्त राजा अमृस महाराज को कालकृत्या राक्षसी के द्वारा भस्म करना चाहा, तब सुदर्शन चक्र भगवान ने भक्त की रक्षा के लिये वहां रख रखा था। वह कोप करके कालकृत्या राक्षसणी के ऊपर पड़ा और उसे भस्म कर दी। फिर दुरवासा को अपने तेज से तपाने लगा। तीनों लोक में दुरवासा बारह वर्ष तक चक्र खाते रहे, परन्तु उनकी रक्षा किसी ने भी नहीं की। जब भगवान विष्णु के चरणों में जाकर पड़े, तब भगवान बोले :- हे ऋषि ! तुमने मेरे प्रिय साधु को सताया है, उन्हीं की शरण में जाओ, वह मेरा भक्त बड़ा दयालु है, वही तुम्हें सुखी करेंगे। जब दुरवासा अमृस महाराज के पास आकर, त्राहि त्राहि करके गिरे, भक्त राज ने ऋषि को उठाया और चरणों में नमस्कार किया और फिर सुदर्शन चक्र की तरफ देखकर बोले :-

दोहा :- "भक्तन चाहत आन पदार्थ, ब्राह्मण राखऊ कष्ट हरे हैं०।

हे भगवान के सुदर्शन चक्र ! मुझे कोई इच्छा नहीं है। आप इस ब्राह्मण की रक्षा करो।

(निन्दा)

दादू जिंहि घर निंदा साधु कीं, सो घर गये समूल।
तिनकी नींव न पाइये, नांव न ठांवन धूल ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिसके मनुष्य शरीर से सच्चे संतों की आलोचना अर्थात् निन्दा होती है, उसका मनुष्य शरीर शुभ कर्मों सहित नाश हो जाता हैं। और कहां तक कहें, उसके रहने के स्थान की नींव भी नही मिलती है, सब नाश हो जाता है।

दोहा :- साध सतांयां तीन हान, नाम गांम और बंस।
पीपा प्रत्यक्ष देख लै, रांवण कैरव कंस ॥४॥

दादू निंदा नांव न लीजिये, सुपनै ही जनि होइ।
ना हम कहैं न तुम सुनौं, हम जिन भाखैं कोइ ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! झूठे अवगुण दोषों का आरोप करना ही निन्दा है। किसी भी जीव की स्वप्न में भी निन्दा नहीं करना। न तो हम किसी की कहैं, और न तुम सुनो। अर्थात् हमको भी कोई आकर न सुनावे।

दादू निन्दा किये नरक है, कीट पड़ै मुख मांहि ।
राम बिमुख जामै मरैं, भग मुख आवै जांहि ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस मनुष्य में दूसरोंपर दोष लगाने, यानि निन्दा करने की आदत पड़ जाती है, उसका अन्तःकरण सदैव, दोष सम्पन्न रहने लगता है । और वे शनै शनै नरक निवासी बन जाता है । अर्थात् कहां तक कहैं ? मुख में उसके कीड़े भी पड़ जाते हैं और राम से, सदैव विमुख रहकर, जन्मता मरता यानि 'भग मुख'--सुचि मुख नरक द्वारा आवागमन करते हैं ।

दोहा :- द्विज पुत्री इक पुरुष लखि, रैन आन गृह जात ।
प्रात्त फूल तजि कीट झरी, पितु कहै निन्दा बात ॥६॥

दृष्टान्त :- एक ऋषि की पुत्री थी । वह ब्रह्मचारणी और ईश्वर भक्त होने से, ईश्वर कृपा से उसके मुंह से प्रातःकाल वह बोलती जब फूल झड़ते । एक रोज वह रात्रि को पड़ौसी की स्त्री के पास, एक दूसरे पुरूष को जाता देखा और पिता को बोलीं :- हे पिता ! अमुख स्त्री के पास, अमुख पुरुष रात्रि को गया था । इतना कहते ही उसके मुँह से फूल न झड़ कर कीडे झड़ने लगे । ऋषि बोले :- हे पुत्री ! यह निन्दा का फल है ।

दोहा :- देखि आईसा और तिय, बचन कह्यो लघु येहै ।
मुहम्मद कहि तूं थूक दे, लोहू थूक्यो ते है ॥६॥

दृष्टान्त :- मोहम्मद साहब की स्त्री आईसा, किसी दूसरे घर में एक स्त्री के पास, किसी और पुरुष को जाता देखा और मोहम्मद साहब से बोली । मोहम्मद साहब बोले :- तुम मुंह से थूको । तो खून का थूक निकला । मोहम्मद साहब बोले :- देखा, निन्दा करने का फल । फिर कभी निन्दा नहीं करना ।

दादू निंदक बपुरा जिन मरै, पर ऊपगारी सोइ ।
हमकूं करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निन्दा करने वाला तो बिचारा पर उपकारी होता है । जिनकी निन्दा करता है, उनके अन्तःकरण को तो शुद्ध बनाता है और अपने अन्तःकरण को पापों से मैला कर लेता है । ऐसा निन्दा करने वाला तो, सदैव ही जीता रहै । हे परमेश्वर ! आप ऐसी कृपा करना ।

दादू जिहि बिधि आतम उधरै, परसै प्रीतम प्राण ।
साधू सबद कूं निंदणा, समझै चतुर सुजाण ।।८।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जिस मार्ग से जीवात्माओं का उद्धार होता है और प्राणधारी प्रीतम प्यारे परमेश्वर का साक्षात्कार करते हैं, जिन मुक्त पुरूषों के आत्म उपदेशों से । ऐसे संतो की निन्दा करना या उन के आत्म उपदेश की निन्दा करना महापाप है । इसका फल नरक मिलता है । इस बात को चतुर विवेकी समझते हैं ।

(मत्सर ईर्षा)

अण देख्या अनरथ कहैं, कलि प्रथवि का पाप ।
धरती अंबर जब लगैं, तब लग करैं कलाप ।।९।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिना देखे किसी के ऊपर दोष लगाकर, मिथ्या कहते हैं, ऐसे निन्दक भूमि पर पाप का बोझा बढाते हैं और महा परलै पर्यन्त, दुख और संताप सहते रहते हैं ।

अण देख्या अनरथ कहैं, अपराधि संसार ।
जदि तदि लेखा लेइगा, समर्थ सीरजनहार ।।१०।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिना किसी के गुण दोष देखे ही उसकी आलोचना करते हैं, ऐसे मनुष्य संसार में, महा अपराध करने बाले पापी हैं । उनसे अवश्य सिरजनहार परमेश्वर हिसाब लेगा । अर्थात् उनके कर्मों का, उनको अवश्य दण्ड देगा ।

दादू डरिये लोक थैं, कैसी धरहि उठाइ ।
अण देखी अज गैब की, ऐसी कहैं बनाइ ।।११।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! इस लोक में मिथ्यावादी पुरूषों से डरिये । वे बाणी से ऐसी बात बनाकर कहते हैं कि मानो सत्य ही है । बिना देखी, बिना सुनी ऐसी बनाकर कहते हैं, जो सुनने वाले के निश्चय हो जावै ।

(अमिट पाप प्रचंड)

दादू अमृत्त कूं बिख, बिख कूँ अमृत्त, फेरि धरैं सब नांव ।
निरमल मैला, मैला निर्मल, जावैंगे किस ठांव ।।१२।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! मिथ्यावादी लोग, अमृतवत ईश्वर आत्मा, सत्य, इसको को तो बताते हैं विषवत । और विष को अमृत कहते हैं । अर्थात् जो जड़ असत्य पदार्थ हैं, जिनके कारण संसार के प्राणी, अनेकों राग द्वैषों में उलझकर, अनरथों में प्रवृत्त होते हैं, उन सबको अमृत के समान कहते हैं । और जो निर्मल शुद्ध चेतन्य सत्य आत्मा है, उसको मैला कहते हैं । संसार के विषय भोगों को उज्जवल सुखरूप बताते हैं, उनको कहां शान्ति प्राप्त होगी । अर्थात् कहीं भी शांति नहीं मिलेगी ।

(मत्सर ईर्षा)

दादू सांचे कूं झूठा कहैं, झूठे कूं सांचा ।
राम दुहाई काढिये, कंठ थैं बाचा ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम से विमुख संसारिक जीव, सच्चे संत पुरुषों को तो झूठे कहते हैं, और झूठे छली कपटी मनुष्यों को सच्चे बताते हैं कि जो यह कुछ कहते हैं , वह सत्य है । यहां तक कि ऐसे पुरुष, राम की सौगन्ध भी दूसरे के कंठ के हाथ लगाकर खा जाते है, अपनी झूठी बात को सत्य करने के लिये ।

दादू झूठ न कहिये सांच कूं, सांच न कहिये झूठ ।
दादू साहिब मानै नहीं, लागै पाप अखूठ ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सत्य को कभी झूठ नहीं कहना और झूठ को कभी सत्य कहीं कहना, क्योंकि साहिब की सत्ता, सत्य को तो झूठ और झूठ को सत्य बताना, इस तरह की शरारत को कभी भी स्वीकार नहीं करैंगे और ऐसा करने वालों को 'अखूठ' कहिए, जो कभी भी नास नहीं होता, ऐसा अपराध लगता है ।

दादू झूठ दिखावै सांच कूं, भयानक भैभीत ।
सांचा रात्ता सांच सौं, झूठ न आनै चीत ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मिथ्या को सत्य कहकर, संसार को बहकाने वाले मनुष्य, यदि उनकी इस बात को न स्वीकार किया जावै, तो वे विविध भांति का पाप लगने का भय कहते हैं, परन्तु सच्चे साधक, उनके बहकाने में नहीं आते और अपने लक्ष्य की साधना में ही लगे रहते हैं ।

सांचे को झूठा कहैं, झूठा सांच समान ।
दादू अचरज देखिये, यहु लोगों का ज्ञान ॥१६।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे परमेश्वर, सच्चे परमेश्वर के भक्त, और सत्य बोलने को, संसारिक मिथ्यावादी पुरुष, उनको झूठ कहकर, लोगों को जताते हैं। झूठे संसार को और संसार के झूठे कामों को, सत्य कहकर बताते है, ऐसा राम से विमुख संसारिक पुरूषों का ज्ञान है।

(निन्दा)

दादू ज्यौं ज्यौं निन्दै लोग बिचारा, त्यौं त्यौं छीजै रोग हमारा ।।१७।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरूषों की ज्यों ज्यों संसारिक अज्ञानीजन निन्दा करते हैं, त्यों त्यों उनका परिछिन्न अहंकार नष्ट होता है, और उनकी महिमा फैलती जाती है। इसीलिये निन्दा होने से, राम के भक्त संत लोग, दुख नहीं पाते, प्रसन्न रहते है।

(इति निन्दा का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ निगुणा का अंग ३३ ।।

"दादू ज्यों ज्यों निन्दै लोग बिचारा०" ---इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, निन्दा के अंग के तद्नन्तर, अब निगुणा के अंग का निरूपण करते हैं। यह अंग अकृतज्ञ कहिए उपकार न मानने वाले व्यक्तियों की प्रवृति को लक्ष करके कहा गया है।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ।।१।।

टीका :- हे निरंजन देव ! आपको हमारी बारम्बार नमो नमो है, और जो गुरूदेव निरंजन का उपदेश देने वाले हैं, उनको भी हम नमस्कार करते हैं। और जो सर्व संत हैं, परमेश्वर के उपकार को मानने वाले, उनको भी हम बन्दना करें हैं। क्योंकि उनके सतसंग से परमेश्वर के उपकार को समझकर, मुमुक्ष संसार से पार होकर, परमेश्वर को प्राप्त कर लेते हैं।

(सगुणा निगुणा कृतघ्नी)

दादू चंदन बावना, बसै बटाऊ आइ ।
सुखदाई सीतल किये, तीनों ताप नसाइ ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मलियागिरी चन्दन के समान जो ब्रह्मवेत्ता मुक्त पुरूष हैं। 'बटाऊ' कहिए, जिज्ञासु पुरूष, उनकी शरण, लेकर, आत्म उपदेश और 'शीलवृति' कहिये, ब्रह्मचर्य को धारण करके, कायक वाचक मानसिक दोषों से तथा अध्यात्म अधिदैव, अधिभौतिक तापों से मुक्त होते हैं।

दोहा :- पंथी राख्यो पेट मै, चन्दन मेटी ताप ।
फिर ले आयो लोक बहु, काट्यो पहलि आप ॥२॥

दृष्टान्त :- कोई पथिक मलियागिरी चन्दन के नीचे आकर बैठा । चन्दन ने उसको शांति सुख शीतलता सुगन्धी प्रदान की । उसके गुण को न मानकर, बहुत से लोगों को साथ लेकर आया और पहले आप ही उस चन्दन के वृक्ष के ऊपर कुल्हाड़ा चलाया । कटने लगा । इसी प्रकार ब्रह्मनिष्ठ मुक्त पुरुष, ज्ञान ध्यान की सुगन्धी रूप उपदेश करने वाले संत हैं । निगुण पुरुष उनके उपकार को न मानकर, प्रथम आप उनकी आलोचना करने लगता है ।

काल कुहाड़ा हाथि ले, काटन लागा ढाइ ।
ऐसा यहु संसार है, डाल मूल ले जाइ ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कृतघ्नी प्राणी चन्दन के वृक्ष से छाया सुगन्धी और आनन्द पाकर, फिर चन्दन के वृक्ष को मूल्य के लोभ से, उस चन्दन के वृक्ष को कुल्हाड़ों से काट काट कर नष्ट करने लगता है । इसी प्रकार मुक्त पुरुषों के आत्म उपदेश से अल्प कालिक शांति पाकर भी, कृतघ्नी अन अधिकारी लोग, उनकी फिर आलोचना करते हैं और उनके आत्म उपदेश को, अपने में विवेक वैराग्य आदि साधनों की कमजोरी से, उनके उपदेश को नष्ट करते हैं ।

(अज्ञ स्वभाव अपलट)

सतगुरू चन्दन बावना, लागै रहैं भवंग ।
दादू विष छाड़ै नहीं, कहा करै सतसंग ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सत् उपदेश के देने वाले सतगुरू ब्रह्मनिष्ठ 'बावना' कहिये, मलियागिरी चन्दन के समान हैं। और संसारिक अज्ञानी पामर विषयीजन, सर्प के समान हैं । सर्प चन्दन के वृक्ष के चिपटे रहते हैं । चन्दन शीतलता सुगन्धी दे रहा है । परन्तु सर्प अपना विष नहीं त्यागै, तो चन्दन क्या करै ? इसी प्रकार सतगुरू का सतसंग क्या करै ? संसारीजन वासनारूप विष को यदि नहीं त्याग करै तो ।

दादू कीड़ा नरक का, राख्या चंदन माँहि ।
उलटि अपूठा नरक मै, चन्दन भावै नांहि ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! नरक के कीड़े तद्वत विषयासक्त संसारीजन को, सतसंग रूपी चन्दन में रखिये, तो वह उसको अच्छा नहीं लगता । उसको तो वह ही संसारिक भोग वासना रूप नरक ही प्रिय लगता है । वहीं आसक्त होकर प्रसन्न रहता है ।

दोहा :- गांधी के बाजार में, भंगी निकस्यो आय ।
मुरछि पड्यो इक आय के, ले गयो नरक सुघांय ।।५।।

दृष्टान्त :- कन्नौज शहर में एक भंगियो की बारात गई । उनमें से एक भंगी का लड़का गंधियो के बाजार में, जहां अतर वगैराओं की दूकानें थी, वहां चला गया । उस बाजार में बहुत महक उड़ रही थी । उस महक को सूंघकर, मूर्छित होकर, वहीं पड़ गया । जब भंगियों ने उसका तलास किरा, तब पता चला कि वह अमुक बाजार में पड़ा है । कई भंगी आये और देखा :- कहने लगे, यह कैसे मूर्छित हो गया ? तब एक बूढ़ा भंगी बोला :- इसने कभी अपनी उमर में यह महक अतर की नहीं सूंघी थी । अचानक महक आने से इसको मूर्छा हो गई । यह तो नरक की दुर्गन्धि सूंघता था । क्योंकि रोज टट्टियां साफ करता था, तो नरक की दुर्गन्धि इसके दिमाग में भरी है, वही इसको प्रिय लगती है । बूढ़ा एक टट्टी में गया और ठिकरे के थोड़ी टट्टी लगा कर लाया और उसके नाक के लगाया, तत्काल मूर्छा खुल गई । उस बाजार से उसको फौरन ले आये ।

सतगुरू साधु सुजान है, सिख का गुण नहिं जाइ ।
दादू अमृत छाड़कर, विषै हलाहल खाइ ।।६।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! सच्चे निरपक्ष सतगुरू तो व्यवहार और परमार्थ में अत्यन्त चतुर हैं । जैसे जैसे अधिकारी देखते हैं, वैसा ही उपदेश करते हैं । परन्तु अन अधिकारी शिष्य, अपने अन्दर कृतघ्नता रूप दुर्गुण को नहीं छोड़ता, अर्थात् सतगुरू के उपकार को नहीं मानता है । और हलाहल विषय भोगों को भोगता रहता है । तो उसका सतगुरू क्या करें ?

कोटि बरस लौं राखीये, बंसा चन्दन पास ।
दादू गुण लीये रहै, कदे न लागै बास ।।७।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! चाहे करोड़ वर्ष तक भी बांस चन्दन के पास क्यों न रहे ? फिर भी उसमें सुगन्धी और शीतलता नहीं आती । इसी प्रकार पामर मनुष्य, बांस की तरह चाहे ब्रह्मनिष्ठ मलियागिरी रूप महात्मा के सतसंग में रहै' परन्तु मलिन वासना वाला पुरूष, अपनी वासनारूप मलिनता को छोड़ता नहीं है ।

दोहा :- अरंड बांस लागै नही, गुरू चन्दन की बास ।
रीते रहैं गठिले पोले, रज्जब परमल पास ।।७।।

कोटि बरस लौं राखिये, पत्थर पानी मांहि ।
दादू आडा अंग है, भीतर भेदै नांहि ।।८।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! जैसे पानी में पत्थर करोड़ों वर्ष से पड़ा रहता है, उसकी ऊपरी कठोरता पानी को भीतर प्रवेश नहीं होने देती । इसी प्रकार अन अधिकारी संसारीजन को चाहे करोड़ वर्ष तक भी सतसंग रखो, किन्तु उसके अज्ञान रूपी जड़ता है, जिससे सतसंग का ज्ञान ध्यान रूपी उपदेश, उसमें प्रवेश नहीं कर पाता ।

कोटि बरस लौं राखीये, लोहा पारस संग ।
दादू रोम का अन्तरा, पलटै नांहि अंग ।।९।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! लोहे को चाहे करोड़ वर्ष तक पारस के पास रखिये, परन्तु एक रोम भी लोहा और पारस के बीच अन्तर होगा, तो लोहा स्वर्ण नहीं बनेगा । ऐसे ही ब्रह्मनिष्ठ मुक्त पुरूष गुरू के पास, शिष्य चाहे, श्री चरणों में ही क्यों न रहै, परन्तु गुरू उपदेश को यथावत नहीं अपनावेगा, तो जीव भाव से ब्रह्मभाव को कदापि प्राप्त नहीं होगा ।

कोटी बरस लौं राखिये, जीव ब्रह्म संगि दोइ ।
दादू मांहैं बासना, कदे न मेला होइ ।।१०।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! करोड़ वर्ष पर्यन्त जीव को ब्रह्म विचार में लगाकर रखै, परन्तु जब तक मलीन वासना जीव में रहैगी, तब तक ब्रह्मस्वरूप नहीं होगा ।

(सगुणा निगुणा कृतघ्नी)

मुसा जलता देखि करि, दादू हंस दयाल ।
मान सरोवर ले चल्या, पंख्यों काटै काल ।।११।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! संसारीजन मूसे की तरह, संसारिक तापों से जलता देखकर, हंसरूप मुक्त पुरूष,

अपने सद् उपदेशों से शुद्ध अन्तःकरण रूप मानसरोवर पर या ब्रह्मस्वरूप अखण्ड सरोवर की तरफ ले चले। परन्तु निगुरा कृतघ्नी, उन्हीं के आत्म उपदेशों का खंड़न करने लगता है। फिर वह इसी संसार चक्र में गिर जाता है।

दोहा :- हंस उड्यो नभ जात हो, मूसो दौं मधि पेख।
पीठ चढ़ा सर ले चल्यो, निगुणे पंखन छेक ॥११॥

दृष्टान्त :- एक हंस आकाश में उड़ता हुआ मान सरोवर की ओर जा रहा था। जंगल में आग लग गई। एक मूसा बीच में आ गया। चारों तरफ आग जल रही थी। दौड़ कर निकल नहीं पाता। ऊपर से हंस ने देखा कि यह मूसा बिचारा जल जायेगा, कब तक बचैगा ? उसने एक झप्टे से मूसे को उठाकर, पीठ पर चढ़ा लिया और मानसरोवर की तरफ उड़ने लगा। मूसा ने अपने स्वभाव वश, हंस की पंखों को काटना शुरू किया। हंस की उड़ान में कुछ कमी आने लगी। हंस ने पीछे फिर कर देखा तो अपनी पंख कट कट कर उड़ती नजर आई। हंस समझ गया कि यह निगुरा है मैं तो इसको अग्नि से निकालकर मारसरोवर ले जा रहा हूं। और यह मेरी ही पंख काटने लगा। ऊपर से ही हंस ने उसको गिरा दिया।

सब जीव भुवंगम कूप में, साधू काढै आइ।
दादू बिसहरि बिस भरे, फिर ताहि कौं खाइ ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! अकृतज्ञ अर्थात् उपकार को न मानने वाले संसारीजन, वासना रूप दुखों के इस संसार रूपी कुए में पड़े हैं। किन्तु उपकार करने वाले मुक्त पुरुष, अपने सत्य उपदेशों से इस वासनारूप संसार कूप से जीवों को निकालते हैं। परन्तु वह निगुरे उन्हीं को दुख पहुंचाते है।

दोहा :- चार जीव कूवे पड्या, सगुणें निकस्यो आइ।
सर्प सिंघ नर बान्दरो, जाति सुनार दिखाइ ॥१२॥

दृष्टान्त :- एक जंगल में कूआ था। उसमें काला सर्प गिर गया और एक बन्दर दूसरे बन्दरों से डरकर, वह भी कुए में गिर गया। एक शेर एक रोज जंगल में घूमता हुआ, उस कुए के पास आया, तो उसने ज्यों झांका जल में, उसको प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ा। उसने जाना, इसमें दूसरा शेर और है, तो लड़ने को उसने

आवाज लगाई । अन्दर से उसी की वापिस आवाज सुनाई पड़ी । उसने देखा कि अन्दर वाला शेर बोल रहा है । अन्दर कूद गया । एक जाति का सुनार मार्ग में जा रहा था । कुआ देखकर, पानी पीने की इच्छा से कुए पर आया । पानी निकालने लगा । पांव फिसल गया और कुए में गिर गया ।

कोई सगुरा गुरूमुखी भी, कुआ देखकर, पानी पीने की इच्छा से आया । कुए के अन्दर झांका तो चार जीव कुए के बीच में पड़े दिखाई दिये । चारों ने उसको अपनी अपनी बात कह दी और बोले :- हमारी जान बचा। पहले उसने शेर को निकाला । शेर बोला :- अगर मैं तुझे खा जाऊं तो तूं क्या करै ? सुगरा बोला :- मैंने तो अपना कर्त्तव्य पालन किया है, तेरे समझ में आये, वह तूं कर । शेर बोला :- नहीं, तूं मेरा सच्चा मित्र है, तेरे में कोई कष्ट पड़ै, तो अमुक पहाड़ में आ जाना । परन्तु यह तीनों ही खतरनाक हैं, इनको नहीं निकालना । जिसमें यह सुनार तो बहुत खतरनाक है, इसको तो कभी निकालना ही नहीं । यह कहकर शेर चला गया । फिर बन्दर के प्रार्थना करने पर, उसे भी निकाला । और वह बोला :- तूं मेरा सच्चा मित्र है, कभी कष्ट पड़ै, तो मुझको याद कर लेना । पर सुनार को मत निकालना । यह बोल कर, बन्दर भी चला गया । काले सर्प की प्रार्थना सुनकर, उसे भी निकाला । सर्प ने कहा :- तूं मेरा सच्चा मित्र है, कभी कष्ट पड़ै, तो मुझको याद कर लेना, परन्तु सुनार को मत निकालना । सुनार कहने लगा :- भाई ! मुझे भी निकाल । सगुरा बोला :- भाई ! तेरे लिये तो तीनों ही मना कर गये हैं । सुनार बोला :- भाई ? मनुष्य से मनुष्य तो मिलते ही रहते हैं, कुए से कुआ नहीं मिलता । तूं मेरी जान बचावेगा तो कभी मैं भी तेरी मदद करूंगा । सगुरा ने उसको भी लिकाला । वह सुनार बोला :- कभी कोई काम हो तो मेरे पास अमुक जगह आ जाना । यह कहकर सुनार चला गया ।

एक समय वह गुरूमुखी शेर के पास पहुंचा । शेरनी घुर्राने लगी । शेर ने आंख खोल कर देखा, तो मित्र दिखाई पड़ा । झट बाहर आकर मिला । बोला :- मित्र कैसे आया ? गुरूमुखी ने अपनी बात कह दी । शेर एक रोज पहले, वहां के राजकुमार को मारकर, अपनी गुफा में ले गया था । राज कुमार के बदन पर सोने के हीरे जवाहरातों से जड़े हुए जेवर थे । शेर ने कहा मित्र को, गुफा में से सब जेवर उठा ला । जब जेवर ले आया, तो मित्र को शेर ने बिदा कर दिया । वह घर लाकर अपनी स्त्री के पास रख दिया । हाथ के कड़े की जोडी लेकर, उसी सुनार के पास गया और बोला :- मित्र, इसको बिकवा दे । सुनार ने कड़े लेकर विचार किया कि राजा के पुत्र को इसने ही मारा है । पुलिस में जाकर कड़े दे दिये । पुलिस ने आकर उसको गिरफ्तार कर लिया । राजा ने कड़े देखे और हुकम दे दिया कि उसे तोब से बांधकर उड़ा दो । जब उसे तोब से बांधने ले चले, तब इसने सर्प को याद किया । सर्प प्रगट हो गया । एक बूंटी का टुकड़ा दिया और बोला कि मैं राजा को डसता हूं जाकर, तुम यह बूंटी घोटकर पिला देना । इधर उसको तोब के लटकाया । तब इसने बन्दर को याद किया । बन्दर आ गया । जब तोब चलाने वाले बत्ती जलाकर, तोब के लगाने लगे, तब बन्दर हाथ से खोस कर, बुझा कर फैंक दे । इस तरह बार बार करने लगा । उधर सांप ने राजा को डस लिया । नगर में रोना पीटना मच गया । तोब चलाने वालों ने यह बात सुनी और बोले :- दुष्ट ! तूं किस सौंण का आया है, हमारे तो राजा को सर्प ने डस लिया । यह बोला :- यह सर्प की दवा तो मैं जानता हूं ।

इसको दरबार में ले गये। यह बुंटी को घोटकर, राजा को पिलाई। राजा का जहर उतर गया। राजा ने पूछा :- मुझे किसने जिलाया। लोगों ने कहा :- जिस डाकू ने आपके पुत्र को मारा है, उसी डाकू ने आपको जिलाया है। राजा बोले :- इसने हमारे पुत्र को नहीं मारा। राजा ने उससे सब बात पूछी। उसने उपरोक्त कथा सब राजा को सुना दी। राजा उसको गुरूमुखी और सच्चा जानकर, उसका सम्मान किया और सुनार को तोब से बांध कर उड़वा दिया।

दादू दूध पिलाइये, बिखहरि बिख करि लेइ।
गुण का औगुण करि लिया, ताही कौं दुख देइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिषहर सर्प को दूध पिलाइये, तो एक रोज वह दूध पिलाने वाले को ही डस लेता है। इसी प्रकार आत्म उपदेश रूपी दूध पिलाया मुक्त पुरुषों ने। परन्तु निगुरा कृतघ्नी, अनअधिकारी विषइ पामर, अन उपयोग करता रहता है और जो गुरूदेव ने उपकार किया है, उसको अनउपकार मानकर, उन्हीं की आलोचना करने लगता है।

दोहा :- राख्यो मारत सर्प को, सगुणा द्रव्य तलि ढांकि।
फिर निगुरो कहि काठस्यू, त्रिय मार्यो सिर नाखि ॥१३॥

दृष्टान्त :- एक जंगल में एक सर्प बैठा था और सर्प के चारों तरफ अग्नि लग रही थी। सगुरा आ गया। उसने देखा कि यह सर्प अग्नि में जल जायेगा। उसके पास ढाल थी। उसने ढाल फैंक करके सर्प को ढक दिया। जब अग्नि बुझ गई, सगुरे ने ढाल उठाई तो निगुरा सर्प कहने लगा कि मैं तेरे को डसूंगा। वह बोला :- मैंने तेरी जान बचाई है। सर्प बोला :- मेरा तो स्वभाव है, डसने का। इतने में एक स्त्री घास खोदने वाली आ पहुंची। उसने भी यह बात उनकी सुनी। उसने उठाकर एक पत्थर सर्प के सिर पर मारा। सर्प की जान निकल गई।

(अज स्वभाव अपलट)

बिना ही पावक जलि मुवा, जवासा जल मांहि।
दादू सूकै सींचता, तो जल कौं दूसण नांहि ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जवासा एक घास होता है, जंगल में। वह वर्षा का जल पाकर सूख जाता है। वर्षा का जल सबको पोख देता है और पनपाता है। परन्तु जवासा सूख जावै, तो जल को क्या दोष है ?

इसी प्रकार निगुरा गुरू उपदेश रूपी जल प्राप्त करके भी, सद्गुणों से वंचित रहता है, तो इसमें गुरू उपदेश का क्या दोष है ?

(सगुरा निगुरा कृतघनी)

सफल बिरख परमारथी, सुख देवै फल फूल ।
दादू ऊपर बैस करि, निगुणा काटै मूल ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वृक्ष का जीवन सफल है, जो सब प्राणी मात्र को सुख पहुंचाता है । छाया से, पत्तों से, फूलों से, फलों से, जो भी पथिक उसके नीचे आकर बैठते हैं, सबको सन्तुष्ट करता है, परन्तु निगुरा मनुष्य उसकी छाया में बैठकर, उसके फल फूल खाकर, फिर उसको मूल से काटने लगता है । इसी प्रकार निगुरा मनुष्य, जिन ब्रह्मवेत्ता मुक्त पुरुषों की शरण में आकर, उनसे सब कुछ शिक्षा प्राप्त कर लेता है, फिर संसारिक सुखों का उपभोग करने लगता है । परन्तु वह निगुरा उन मुक्त पुरूषों की आलोचना करने से नहीं डरता ।

दादू सगुणा गुण करै, निगुणा मानै नांहि ।
निगुणा मरि निरफल गया, सगुणा साहिब मांहि ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सगुरा गुरूमुखी सबका उपकार करता है, तन मन बाणी से । परन्तु निगुरा मन मुखी एक भी, उसके गुण को स्वीकार नहीं करता है । ऐसा निगुरा मनुष्य प्राण पिण्ड का वियोग होने के बाद चौरासी में जाता है । और सगुणा गुरूमुखी, परमातमा में समाता है ।

दोहा :- विप्र एक कन्या जिन्द लग्यो, बिन पूछे निकसै नांहि ।
एक गुंसाई छल कर्यो, जंत्र लिख्यो सु मांहि ॥१६॥

दृष्टान्त :- एक ब्राह्मण की कन्या के जिन्द लग गया । उसे पूछा तो कहता है, इसको लेकर जाऊंगा । तब एक गुसांई साधु ने जंत्र लिखा और बोला :- हमने सुना है कि जिन्द लोग तो बड़े चतुर होते हैं । तत्काल जाते हैं, और तत्काल आ जाते हैं । जिन्द बोला :- हां, आ जाते हैं । गुसांई बोले :- इस घड़े में घुसकर बाहर आ जाओ देखें, जिन्द लड़की में से निकलकर घड़े में घुसा, तो गुसांई ने घड़े का ढक्कन लगाकर बन्द कर दिया । और बोला :- इसको गांव से बाहर जा कर गड्ढे में दबा दो ।

निगुणा गुण मानै नहीं, कोटि करै जे कोइ ।
दादू सब कुछ सौंपिये, सो फिर बैरी होइ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! निगुरा मनुष्य सगुरे गुरूमुखी के गुण को नहीं मानता है चाहे उसके करोड़ो गुण कर दे, तो भी वह उसकी आलोचना ही करता है । और क्या कहें ? उसे सब कुछ दे दो, तो भी उन महापुरूषों का वह शत्रु ही बन बैठता है ।

दोहा :- सन्त दया करि उंदरो, कीनों पलटि बिलाव ।
श्वान कियो अरू भघेर पुनी, सिंह कियो कहि खाव ॥१७॥

दृष्टान्त :- एक संत जब भोजन करते, तो एक उंदरी का बच्चा उनके सामने आ जाता । उसको भी वह टुकड़ा डालने लग गये । एक रोज बिलाव ने उस पर आक्रमण किया, तब संत ने देखा कि इसको तो बिलाव का डर है, उसको भी बिलाव बना दिया । फिर एक रोज कुत्ता उसकी ओर झपटा, तो संत ने उसको भी कुत्ता बना दिया । एक रोज बघेरा आ गया । वह डरा, तो संत ने उसको भी बघेरा बना दिया । ऐसे ही फिर एक रोज शेर आ गया, तो बघेरे को डर लगा । संत ने फिर उसको, शेर बना दिया । शेर बना और फिर महात्मा जी के ऊपर आक्रमण किया । महात्मा बोले :- जा निगुरा, वापिस ही उंदरा हो जा । वह उंदरा बन गया ।

दादू सगुणा लीजिये, निगुणा दीजै डारि ।
सगुणा सनमुख राखींये, निगुणा नेंह निवार ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! मुक्त पुरूष सगुरा विवेकी उत्तम गुण ग्राही, जिज्ञासु को अपनी शरण में लेते हैं, और निगुरा मनमुखी पुरूषों को मन से त्याग देते हैं । सगुरे गुरूमुखियों को अपने आत्म उपदेशों में रखते हैं । निगुरे मन मुखियों से स्नेह नहीं करते हैं ।

सगुणा गुण केते करै, निगुणा न मानै एक ।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा नरक अनेक ॥१९॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! सगुरा गुरूमुखी जितने भी सतगुरू, उस पर आत्म उपदेश रूपी गुण करते हैं उन

का वह अपने ऊपर बहुत कुछ उपकार मानता है। परन्तु निगुरा एक भी गुण को नहीं मानता है। इस बात को सभी संत कहते हैं कि निगुरे मनुष्य अनेक नरक की त्रासों को भोगता रहता है।

दोहा :- सिंघ पिंजरा ते दियो, सगुणो पुरूष निकार।
खाण लग्यो बानर मिल्यो, न्याव करत दियो बार ॥१९॥

दृष्टान्त :- जंगल में एक पिंजरे में शेर बन्द था। गुरूमुखी सगुरा पुरूष उधर आ गया। उसने देखा, इसको किसने बन्द कर दिया। सगुरे ने पिंजरा खोलकर, शेर को बाहर निकाला। निगुरा शेर कहने लगा :- "मैं तुझे खाऊंगा।" इतने में एक बन्दर आ गया। उन्होंने बन्दर से कहा--हमारा फैसला कर दे। बन्दर बोला :- तूं पिंजरे में से किस तरह बैठा था, घुसकर बता। जब शेर पिंजरे में घुसा तो बन्दर, गुरूमुखी सगुरे को बोला :- यह पिंजरा कैसे बन्द हो रहा था? बन्द करके दिखा। सगुरे ने तत्काल पिंजरा बन्द किया। बन्दर बोला :- बस फैसला हो गया, इस निगुरे को बन्द ही रहने दे।

सगुणा गुण केते करै, निगुणा नाखै ढाहि।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा निरफल जाइ ॥२०॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! सगुरे गुरूमुखी कितने ही उपकार करते हैं, परन्तु निगुरा मनुष्य कहता है कि तैंने कुछ भी मेरा उपकार नहीं किया। इस बात को सब संत कहते हैं कि निगुरा मनमुखी, परमेश्वर के दर्शन रूपी फल से, इस मनुष्य जन्म में निष्फल रहकर, चौरासी में चला जाता है।

सगुणा गुण केते करै, निगुणा न मानै कोइ।
दादू साधु सब कहैं, भला कहां थैं होइ ॥२१॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! सगुरे गुरूमुखी पुरूष, अनेकों प्रकार की व्यवहारिक और परमार्थिक शिक्षा देते हैं परन्तु निगुरे मनमुखी विषय आसक्त पुरूष, एक भी शिक्षा को धारण नहीं करते। इस बात को सब ही साधु कहते हैं कि ऐसे निगुरों का इस संसार में कहां भला होगा?

सगुणा गुण केते करै, निगुणा न मानै नीच।
दादू साधू सब कहैं, निगुणा के सिर मीच ॥२२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! सगुरा गुरूमुखी कितने ही उपकार करता है । परन्तु निगुरा मनमुखी के अन्तःकरण में, मलीन वासना होने से, वह अपने ऊपर किये उपकार को नहीं मानता है । इस बात को सब संत कहते हैं कि ऐसे निगुरे मनुष्य के सिर पर काल बैठा रहता है ।

दोहा :- निगुणे सगुणे कूप में, जल पीवत दियो डारि ।
भूत मिले बिद्या लही, निगुणे नाख्यो मारि ॥२२॥

दृष्टान्त :- अपने अपने गांव से दो पुरूष विदेश जाने लगे । रास्ते में दोनों मिल गये । एक ने पूछा :- तूं कौन है ? वह बोला :- मैं सगुरा । सगुरे ने पूछा :- तूं कौन है ? वह बोला :-"मैं निगुरा ।" दोनों मार्ग में चलने लगे । सगुरे को प्यास लगी । कुआ के पास गया और उसको बोला, आ भई ! तूं भी जल पी ले । सगुरा ने जल निकाला और उसको पिलाया और जब अपने पीने को जल निकालने लगा, निगुरे ने धक्का देकर, कुए में डाल कर चल दिया । कोई पथिक कुए पर आया । उसे कुए में देखा और फिर कुए से बाहर निकाल दिया । सगुरा आगे एक शहर के किनारे शाम को पहुंचा, और बट वृक्ष के नीचे बैठा। विचार किया आज रात यहां ही रहूं, सुबह शहर में चलूंगा । रात्रि को एक जिन्द वहां प्रगट हुआ और एक काला सर्प भी बम्बी से बाहर निकला । काला सर्प बोला :- जिन्द ! आजकल कहां रहते हो ? राजा की लड़की में रहते हैं, खूब माल खाते हैं और मजे करते हैं । जिन्द बोला :- तुम कहां रहते हो ? हम तो यहां ही लाख रूपये पर बम्बी बनाकर बैठे हैं । जिन्द बोला :-तुम्हारी बम्बी में गर्म तेल डाल दे, तो तुम भस्म हो जाओ और लाख रूपया कोई निकाल ले, तब क्या हो ? सर्प बोला :-अमुक बूंटी को लेकर, राजा की लड़की के गले में गांध दे, तो फिर तुम उसको छोड़कर भाग जाओगे । जिन्द बोला :-हां, तब तो मुझे भागना पड़ेगा । यह बात सगुरा गुरूमुखी ने सुनी और वह बूंटी लेकर, सवेरे ही राजा के महलों की तरफ गया । इसे पूछा :-तूं कौन है ? यह बोला :-मैं भूत प्रेत जिन्द निकालने वाला हूं । उसको राजा के पास ले गये । राजा ने पूछा :-तुम कौन जात हो ? वह बोला :-राजपूत हूं । राजा बोले :-हमारी लड़की को ठीक कर दो तो, इसकी शादी हम तुम्हारे साथ कर देंगे । इसने लड़की के गले में बूंटी बांधी, फिर जिन्द लड़की को छोड़कर चला गया । राजा ने इसके साथ शादी कर दी । वहां ही रहने लगा । एक रोज हाथी की सवारी से घूमने निकला, तो वह निगुरा मित्र मिल गया । उसको इसने हाथी पर बैठाकर महलों में ले आया । अनेक प्रकार के भोजन बनवा कर, थाल लगवाया । अपनी स्त्री को कहा कि मेरे मित्र को आप जिमाओ । जब जीमने लगा, तो राज कन्या से बोला :- तुम कौन हो ? उसने उपरोक्त सब बात कह दी । निगुरा बोला :-यह तो हमारे गांव का भंगी है । मेरी खुशामद इसलिये करता है कि मेरी जाति न बतला दे यहां । तुम्हारा जन्म तो भ्रष्ट हो गया । भोजन करके बाहर आया । मैंने तो तुझे कुए में डाल दिया था, तूं इस पद को कैसे प्राप्त हो गया ? उसने कहा मित्र तेरी दया से, सब कुछ हुआ है । वहां से वह चल

पड़ा। राजकन्या अपनी माता के पास जाकर रोने लगी कि तुमनें मेरी भंगी के साथ शादी कर दी। राजा ने उसको बुलाया और बोले :-तुम अपनी राजपूत जाति का प्रमाण देओ। तुम्हारे मित्र ने तो तुम्हें भंगी बतलाया। वह बोला :-मैं तो मेरे पूर्वजों का अमुक जगह धन गड़ा है, उसको लेने आया था। यही प्रमाण है। आपनें शादी कर दी। मैं यहां रहने लगा। राजा उसके कहने मुताबिक गर्म तेल करवा कर, बम्बी में डलवाया। सर्प दूसरे मार्ग से दौड़ गया। उस जगह खुदाई करवाई, तो एक लाख रूपये निकल आये। राजा जान गये, वह कोई निगुरा, इसका द्वेष करने वाला है। एक दिन फिर वैसे ही इसको मिल गया वह। उसको ले आया। उसकी बहुत सेवा की। वह बोला :- मैं तो तेरा बुरा करता हूं और तेरा अच्छा होता है, इसका क्या कारण है? उसने पूर्व की सब कथा, निगुरे को सुना दी। निगुरा ने सोचा :-आज रात को मैं भी उस बड़ के नीचे जाकर, जिन्द और सर्प की बात सुनूं। वह वहीं पहुंचा। रात को जिन्द और सर्प इकट्ठे हुए। वह बोले :- उस दिन कोई अपनी बात सुनता था, दोनों के घर छूट गये। तब यह बोला :-अरे भई! मुझे भी कुछ बतलाओ। जिन्द और सर्प ने इसको आ पकड़ा। कहा :-यही दुष्ट है, कहां से आया है? सर्प ने बुटकियां भरी और जिन्द से उसका गला घोट दिया।

साहिब जी सब गुण करै, सतगुरु के घटि होइ।
दादू काढै काल मुखि, निगुणा न मानै कोइ ॥२३॥

टीका हे जिज्ञासुओ! परमेश्वर सर्वशक्तिवान, समर्थ सतगुरू के शरीर द्वारा, आत्म उपदेश सुनाकर, अज्ञानी जीव को मृत्यु के मुख से निकालते हैं। परन्तु कृतघ्नी अज्ञानी जीव, सतगुरू के उपदेशों को नहीं धारण करते हैं। इसलिए वह काल के मुंह में ही जाते हैं।

साहिब जी सब गुण करै, सतगुरु मांहैं आइ।
दादू राखै जीव दे, निगुणा मेटे जाइ ॥२४॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ! परमेश्वर, ब्रह्मनिष्ठ सतगुरूओं के अन्दर प्रगट होकर, प्राणीमात्र को उपदेशों के द्वारा, चेत कराते हैं, अर्थात् जीवों को आत्म उपदेश देकर, जन्म मरण से रक्षा करते हैं। परन्तु कृतघ्नी निगुरा, विषयों में आसक्त होकर, सतगुरू के उपदेश को नष्ट करता रहता है।

साहिब जी सब गुण करै, सतगुरु का दे संग।
दादू परलै राखि ले, निगुणा न पलटै अंग ॥२५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समर्थ परमेश्वर, ब्रह्मवेता सतगुरू के सतसंग द्वारा जीवों पर उपकार करते हैं। अर्थात् उनको तत्वज्ञान का उपदेश देकर, परलै से बचाते हैं। परन्तु निगुरा सतगुरू के उपदेश को धारण नहीं करता। इसीलिये वह जीव रूप से ब्रह्मरूप नहीं हो पाता।

साहिब जी सब गुण करै, सतगुरु आडा देइ।
दादू तारै देखतां, निगुणा गुण नहिं लेइ ।।२६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समर्थ परमेश्वर, सतगुरू की आड़ में होकर, प्राणीमात्र को सद् उपदेशों द्वारा संसार से तारते हैं। परन्तु निगुरा मनमुखी, उपदेश रूपी गुण को धारण नहीं करता है वह इस संसार में ही डूबता है।

सतगुरु दीया राम धन, रहै सुबुद्धि बताइ।
मनसा बाचा कर्मना, बिलसै बितड़ै खाइ ।।२७।।

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! सच्चे सतगुरू सत् उपदेश को देने वालों ने, उत्तम विवेकी साधक को बतलाया कि हे साधक! यह हमारा उपदेश राम नाम रूपी शुद्ध बुद्धि में धारण करने से, अन्तःकरण में रामधन रहेगा। इसको मन वचन से धारण करके, जो जिज्ञासु आप स्मरण करता है और दूसरों से कराता है, उसका ही कल्याण होता है।

कीया कृत मेटै नहीं, गुण ही मांहि समाइ।
दादू बंधै अनन्त धन, कबहूं कदे न जाइ ।।२८।।

टीका - हे जिज्ञासुओ ! जो समर्थ परमेश्वर ने ब्रह्मवेता सतगुरू के द्वारा, जिज्ञासु पर जो उपकार किया है, उसको वह गुरूमुखी सगुरा कृतज्ञजन, अपने पर किये हुए उपकार को नहीं मेटते हैं, अवज्ञा नहीं करते हैं। और उस उपकार को अधिक से अधिक अपना हितकारक मानते हैं। ऐसे जिज्ञासु का विवेक, ज्ञान रूप धन या नाम स्मरण रूप धन, बराबर बढ़ता जाता है। और जो उनको लाभ प्राप्त हुआ है वह कभी भी नष्ट नहीं होता है।

दोहा :- भूप विद्या लई भील पै, अरू राख्यो गुरु भाव।
गई नहीं नृप के रही, यूं मति चूको दाव ।।२८।।

दृष्टान्त :- एक भील को पहाड़ पर लकड़ी काटते हुए देखकर, महात्मा ने विचार किया कि यह कुल्हाड़ी इसके हाथ से छूट जाय, तो यह नीचे से लेकर, कब ऊपर चढ़कर लकड़ी काटै, यह सोचकर उसके पास आये। भील ने महात्मा जी को नमस्कार किया। महात्मा दया करके उसको एक मंत्र बताया और बोले :-इस मंत्र को पढ़ना, तेरी कुल्हाड़ी नीचे गिर जायेगी, तो इस मंत्र से तेरे पास ऊपर आप ही आ जायेगी। परन्तु इस मंत्र को तू यदि किसी को बता देगा, तो यह विद्या तेरे पास से उसके पास चली जायेगी। यह बताकर महात्मा रम गये। एक रोज राजा जंगल में शिकार खेलने गया। भील को पहाड़ की चोटी पर के वृक्ष के ऊपर लकड़ी काटता देखा। राजा सोचने लगा यह कुल्हाड़ी इसके हाथ से छूट जाय, तो यह नीचे से किस प्रकार लाएगा और कब लकड़ी काटेगा ? इतने में भील के हाथ से कुल्हाड़ी छूट ही गई । और लगभग सौ फुट जाकर नीचे गिरी। राजा देखने लगे कि कैसे कुल्हाड़ी लाता है ? भील ने महात्मा जी का बताया हुआ मंत्र पढ़ा। कुल्हाड़ी अपने आप ही उधर उसके पास पहुंच गई। राजा ने विचार किया कि यह विद्या तो इससे सीखनी चाहिए। उसके पास पहुंच गया। भील नीचे उतरा, राजा को नमस्कार किया। राजा भील के चरण पकड़कर बोला :- आप मेरे गुरू हैं, यह विद्या आप मुझे दें। भील राजा के तप तेज से दबकर, मंत्र बता दिया। राजा बहुत खुश हुआ और महलों में आ गया। भील घर गया और मन में बहुत चिंता करता था। उसकी स्त्री ने पूछा :- आज उदास कैसे हो ? उपरोक्त सब वृत्तांत सुना दिया। और बोला :- अब राजा के पास से तो विद्या आना मुसकिल है। तब भीलनी बोली :- एक उपाय है। आप लकड़ी का बोझा सिर पर रखकर, राजा के सामने जाओ। राजा आपको नमस्कार कर लेगा, तब तो विद्या आवेगी नहीं, और नमस्कार नहीं किया, तो आपकी विद्या आपके पास आ जावेगी। भील ने वैसा ही किया। राजा ने भील गुरू को सामने आते देखा। खुले सिर और नंगे पांव राजा सामने दौड़े। और सिर से लकड़ियों का बोझा अपने सिर पर रख लिया और भील गुरू को बड़ी श्रद्धा से नमस्कार किया। भील तत्काल उदास हो गया और जान गया, कि अब विद्या मेरे पास नहीं आ सकती है।

(इति निगुणा का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ बिनती का अंग ३४ ।।

"दादू बंधै अनन्त धन०" - इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, निगुणा के अंग के तद्नन्तर, विनती के अंग का निरूपण करते हैं, जो परमेश्वर से प्रार्थना रूप विनती करते हैं, वह नाम रूपी धन को अपने हृदय में बांधते हैं।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ।।१।।

टीका :- हे निरन्जनदेव ! हम आपको बार बार नमो नमो करते हैं। और जिन गुरूदेव ने निरन्जनदेव को विनती करी है, उनको हम नमस्कार करते हैं। क्योंकि वह जिज्ञासुओं को भी विनती का उपदेश देकर, परमेश्वर के सन्मुख करते हैं। और सर्व ही सन्तों को भी हम वन्दना करते हैं, जो सदैव निरन्जनदेव की विनती में लगे हैं। इसी प्रकार हरि, गुरू, संतों को प्रणाम करके, जो परमेश्वर से विनती करते हैं, वह संसार से पार होकर, परमेश्वर में समा जाते हैं।

(करूणा)

दादू बहुत बुरा किया, तुम्हैं न करना रोस ।
साहिब समाई का धनी, बंदे कौं सब दोस ।।२।।

टीका :- हे समर्थ परमेश्वर ! हमने मनुष्य जन्म पाकर बहुत बुरे बुरे काम किये हैं प्रभु ! आप हमारे

कर्मों को देखकर, हे नाथ ! हमारे ऊपर क्रोध नहीं करना ! हे साहिब ! हमारे अपराधों को आप ही क्षमा करने वाले हो । हम तो आपके बंदे, सब दोषों से पूर्ण हो रहे हैं ।

दादू बुरा बुरा सब हम किया, सो मुख कह्या न जाइ ।
निर्मल मेरा सांइयां, ताको दोष न लाइ ।।३।।

टीका :- हे परमेश्वर ! हे समर्थ ! जितने भी बुरे बुरे काम हैं, वह हमने किये हैं, उनको मुंह से बताने में भी हमें लज्जा आती है । हे हमारे निर्मल स्वामी सच्चिदानन्द स्वरूप ! उन हमारे कर्मों के दोषों को, आप मन में नहीं बिचारना ।

सांई सेवा चोर मैं, अपराधी बंदा ।
दादू दूजा को नहीं, मुझ सरीखा गंदा ।।४।।

टीका :- हे परमेश्वर ! प्रथम तो मैं आपकी आज्ञारूप, सेवा का उलंघन करने वाला चोर हूं और फिर मैं बड़े बड़े अपराध करने वाला अपराधी, आपका ही बन्दा हूं । हे नाथ ! मैं विचार कर देखता हूं तो, मेरे समान इस संसार में दूसरा और कोई गन्दा नहीं है ।

तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर ।
पल पल का मैं गुनही तेरा, बकसोहु औगुण मोर ।।५।।

टीका :- हे परमेश्वर ! मैं 'तिल तिल' कहिए तनिक तनिक दूर पर अपराध किए हैं, परन्तु आपही का बन्दा हूं और रत्ती रत्ती में आपकी सेवा का चोर हूं और एक एक पल में मैंने बड़े बड़े गुनाह किये हैं । इसीलिये हे नाथ ! आपसे हम प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे अवगुणों को क्षमा करना ।

महा अपराधी एक मैं, सारै इहि संसार ।
औगुन मेरे अति घणे, अनत न आवै पार ।।६।।

टीका :- हे सर्वज्ञ ईश्वर ! मैं इस संसार में अपराधियों में सबसे बड़ा अपराधी हूं । अपने अवगुणों का जब मैं विचार करता हूं तो, अणगिनित अवगुण मेरे, मुझको दिखाई दे रहे हैं । उनका न अन्त है और न पार ही है ।

पाप पुण्य का चौतरा, नृपती किये पुरबाझ ।
सब दुनियां पुण्य के चढि, दूजे संत बिराझ ।।६।।

दृष्टांत :- एक राजा ने अपने मंत्री से पूछा कि मंत्री ! हमारे राज्य में धर्मातमा कितने हैं ? और पापी लोग कितने हैं ? मंत्री ने कहा :- राजन् ! परीक्षा किये से पता लगेगा । राजा ने कहा :- परीक्षा करो । मंत्री ने नगर के बाहर दो बड़े बड़े प्लेट फार्म बनवाये । उनके ऊपर एक धर्मात्माओं का बोर्ड लगवा दिया, दूसरे पर पापियों का बोर्ड लगवा दिया । शहर में ढिंढोरा करवा दिया- "धर्मातमा लोग धर्म वाले प्लेटफार्म-पर चढ़ें और पापी लोग पाप वाले प्लेटफार्म-पर चढ़ें ।" राजा मंत्रियों के सहित बैठे देख रहे थे । सब दुनियां धर्म वाले प्लेट फार्म के ऊपर चढ़ रही है । पाप वाले पर कोई भी नहीं चढ़ रहे हैं । इतने में एक संत आये । उन्होंने पढ़ा और वे उस पाप वाले प्लेटफार्म पर जाकर बैठ गये । राजा आकर पूछने लगे :- आप तो उस प्लेटफार्म पर बैठने के लायक हैं, इस प्लेटफार्म पर बैठने के लायक नहीं हैं । महातमा बोले :-"नहीं राजन् ! हम इसी पर बैठने के लायक हैं, क्योंकि परमेश्वर के दरबार के हम बड़े गुनहगार और अपराधी हैं ।" राजा ने निश्चय किया कि असली धर्मातमा तो यह महापुरुष ही हैं, जो परमेश्वर से डरते हैं ।

बे मरजादा मिति नहीं, ऐसे किये अपार ।
मैं अपराधी बाप जी, मेरे तुम ही एक अधार ।।७।।

टीका :- हे परमेश्वर ! हम 'बे मरजादा' कहिए सीमा रहित, शास्त्र और गुरु आज्ञा का उलंघन करके, अनन्त अपराध हमने किये हैं । हे बाप जी ! हमारे तो आप ही एक आधार हो । अब हमें आप ही अपनी शरण में लीजिए और हमारे अपराधों को क्षमा करिए ।

दोस अनेक कलंक सब, बहुत बुरा मुझ मांहि ।
मैं कीये अपराध सब, तुम थैं छाना नांहि ।।८।।

टीका :- हे परमेश्वर ! हमारे में अनेकों दोष, अनेकों कलंक, अनेकों अपराध, बुरे से बुरे भरे हैं । मेरे अपराध आपसे कोई छुपे नहीं हैं ।

गुनहगार अपराधी तेरा, भाजी कहां हम जांहि ।
दादू देख्या सोधि सब, तुम बिन कहीं न समांहि ।।९।।

टीका :- हे प्रभु ! हम गुनहगार हैं, अपराधी हैं परन्तु फिर भी हम आपके हैं। आपको छोड़ करके हम किसकी शरण में भाग कर जावें ? हमने अच्छी तरह विचार करके देख लिया है कि आपके बिना हमारे अपराधों को कोई भी नहीं समा सकता।

आदि अंत लौं आय करि, सुकृत कछू न कीन्ह।
माया मोह मद मच्छरा, स्वाद सबै चित दीन्ह ॥१०॥

टीका :- हे परमेश्वर ! आदि से अन्त पर्यन्त हमने, मनुष्य शरीर में आकर, कुछ भी सुकृत नहीं किया और माया, मोह, मद, मत्सरता, स्वाद, इन्हीं में हमने अपने चित्त को लगाया है। आपका नाम स्मरण नहीं किया।

(बिनति)

काम क्रोध संसै सदा, कबहुं नाम न लीन।
पाखंड प्रपंच पाप मैं, दादू ऐसे खींन ॥११॥

टीका :- काम वासना, क्रोध आदि यह हमेशा हमारे अन्तःकरण में संशय बने रहते हैं। आपका निष्काम नास स्मरण, कभी भी हमने नहीं किया है। पाखंडपन का भेष बाना और प्रपंच कहिए वाणी का आडम्बर और नाना प्रकार के पाप, इन्हीं में अपने आपको क्षीण कर दिया है।

दादू बहु बंधन सौं बंधिया, एक बिचारा जीव।
अपने बल छूटै नहीं, छोड़नहारा पीव ॥१२॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि यह बिचारा जीव, बहुत से सकाम कर्म रूपी बन्धनों से बंधा हुआ है और अब यह अपने बल से, अपने पुरूषार्थ से, आप मुक्त नहीं हो सकता है। हे पीव परमेश्वर ! जब आप दया करके बन्धनों से मुक्त करोगे, तभी होगा।

दादू बंदीवान है, तूं बंदी छोड़ दीवान।
अब जिन राखौ बंदि मैं, मीरां मेहरवान ॥१३॥

टीका :- हे दीवाना ! हे न्यायकारी परमेश्वर ! यह जीव तो अपने आपको निसिद्ध कर्मों द्वारा, आप

बांधने वाला है । परन्तु आप अब इनको अपना अंश जानकर, कर्म बंधन से मुक्त करिये, क्योंकि आप महान कृपालु हैं ।

दादू अंतरी कालिमा, हिरदय बहुत बिकार ।
परगट पूरा दूरि करी, दादू करै पुकार ॥१४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि बिनती करते हैं कि हे परमेश्वर ! अन्तःकरण में विकार, मलीनता, काम आदि को आप ही अपनी कृपा द्वारा हटाइये, और फिर प्रगट होकर दर्शन दीजिये ।

सब कुछ व्यापै राम जी, कुछ छूटा नांही ।
तुम्ह थैं कहां छिपाइये, सब देखो मांही ॥१५॥

टीका :- हे राम जी ! इस शरीर में हमको सब कुछ व्याप रहे हैं । काम आदि दोष, अहंकार, यह कुछ भी नहीं छूटे हैं अर्थात् रज, तम आदि गुणों की प्रवृति और लोभ, मोह आदि विकार छूटते नहीं हैं । आप तो अन्तर्यामी रूप से सब देख रहे हो ।

सबल साल मन मै रहै, राम बिसर क्यों जाइ ।
यहु दुख दादू क्यों सहै, सांई करौ सहाइ ॥१६॥

टीका :- हे राम जी ! हर समय दुख मन में बना रहता है कि आपको और आपके नाम स्मरण को छोड़ कर, दूसरी तरफ कभी भी न जावें । इस दुःख को हम नहीं सहन कर सकते । हे स्वामी ! आप ही हमारी रक्षा करो ।

राखणनहारा राख तूं, यहु मन मेरा राखि ।
तुम बिन दूजा को नहीं, साधु बोलै साखि ॥१७॥

टीका :- हे परमेश्वर ! इस हमारे मन को, गुण विकारों से रहित करके, शुद्ध बनाइये । आपके बिना और दूसरा कोई भी नहीं है, जो इस हमारे मन को शुद्ध कर सकै । इस बात की सभी साधु साख देते हैं ।

माया बिसय बिकार से, मेरा मन भागै ।
सोई कीजे सांईयां, तूं मीठा लागै ॥१८॥

टीका :- हे हमारे स्वामी परमेश्वर ! आप ऐसी कृपा करो कि हमारा मन माया और माया के कार्य, विषय वासनाओं से अलग हो जावै । तब आप ही हमको सुखरूप प्रतीत होने लगोगे ।

सांई दीजै सौ रत्ती, तूं मीठा लागै ।
दूजा खारा होई सब, सूता जीव जागै ॥१६॥

टीका :- हे प्रभु ! आप कृपा करके, वही ज्ञान विचार रूप रति कहिये ज्ञान देओ, जिससे मोह रूप निद्रा से यह जीव जागकर, आपमें अनुरक्त रहै, और 'दूजा खारा होई सब' कहिए, मानसिक विकार काम क्रोध आदि एवं इन्द्रियों के शब्द स्पर्श आदि विषय, यह सब खारे लगने लगैं और सचेत होकर आत्म चिन्तन में लगें । ऐसी कृपा करिए ।

ज्यूं आपै देखै आपकौं, सो नैना दे मुझ ।
मीरां मेरा मेहर कर, दादू देखैं तुझ ॥२०॥

टीका :- हे परमेश्वर ! "आपै देखै आपकौं" कहिए, शुद्ध अन्तःकरण में शुद्ध आत्मा के स्वरूप को प्रत्यक्ष करें । वह ज्ञान विज्ञान, श्रुती स्मृति रूप नेत्र हमको देओ और आप हमको अपना अंश जानकर, ऐसी कृपा करो, जिससे हम आपका दर्शन करें ।

(बिनति)

दादू दिन दिन नौत्तम भक्ति दे, दिन दिन नौत्तम नांव ।
दिन दिन नौत्तम नेह दे, मैं बलिहारी जांव ॥२१॥

टीका :- हे प्रभु ! हम आपसे यह प्रार्थना करते हैं कि आप अपनी भक्ति, हमारे अन्तःकरण में उत्पन्न करिये । और आपके नाम स्मरण में, नवीन नवीन स्नेह दीजिए । आप में प्रतिदिन हमारी प्रीति को बढ़ाइये । हम आपके बारम्बार बलिहारी जाते हैं ।

सांई संसै दूर कर, करि संक्या का नास ।
भानि भरम दुविध्या दुख दारूण, समता सहज प्रकाश ॥२२॥

टीका :- हे सांई परमेश्वर ! हमारे अन्तःकरण से संशय अज्ञान और श्रद्धा इनको दूर कर । भ्रम पांच

प्रकार का, द्वैतभाव और सम्पूर्ण बड़े बड़े दु:ख, जन्म मरण आदि के, इनका नाश करके, समता कहिए समदृष्टि अर्थात् आत्म दृष्टि का प्रकाश करो। यही आपसे हमारी बिनती है।

(दया बिनती)

नांही प्रगट व्है रह्या, है सो रह्या लुकाइ।
संइया पड़दा दूरि कर, तूं व्है परगट आइ ॥२३॥

टीका :- माया और माया का कार्य संसार, स्वरूप से सत्य नहीं है, वह तो प्रतीत हो रहा है। और सत् चित् आनन्द स्वरूप जो आत्मा है, वह छुप रहा है। हे परमेश्वर ! इस अविद्या रूपी पड़दे को दूर करके, आप आत्मा रूप से प्रगट होइये।

दादू माया परगट व्है रही, यौं जे होता राम।
अरस परस मिलि खेलते, सब जीव सबहीं ठाम ॥२४॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादूदयाल महाराज कहते हैं कि जैसे यह माया और माया का कार्य, अन्तःकरण में प्रगट हो रहा है। इस प्रकार यदि हे राम ! आप प्रगट होते तो, सभी जीव, अन्तःकरण रूपी स्थान में आपसे ओत प्रोत हो करके 'खेलैं', अर्थात् आपका स्मरण करते।

दया करै तब अंगि लगावै, भक्ति अखंडित देवै।
दादू दरसन आप अकेला, दूजा हरि सब लेवै ॥२५॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज कहते हैं कि परमेश्वर, अपने निष्काम अनन्य भक्तों पर दया करके, अखंड लय रूप भक्ति के द्वारा, अपने स्वरूप में लगाते हैं। और फिर अपना साक्षात्कार कराके, सब प्रकार के भेदभाव की वृत्तियों का निवारण करते हैं।

दादू साध सिखावैं आत्मा, सेवा दिढ करि लेहु।
पारब्रह्म सों बीनती, दया करि दरसन देहु ॥२६॥

टीका :- मुक्त पुरुष, उत्तम जिज्ञासुओं को उपदेश करते हैं कि हे साधक पुरुषो ! परमेश्वर की निष्काम भक्ति रूप सेवा, दृढ़ निश्चय से करिये और फिर उस परब्रह्म से विनती करो, कि हे प्रभु ! आप हम पर दया करके, आपका दर्शन दीजिये।

साहिब साधु दयाल हैं, हमही अपराधी ।
दादू जीव अभागीया, अबिधा साधी ॥२७॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर और परमेश्वर के प्यारे अनन्य भक्त तो दयालु हैं , परन्तु 'हम' कहिये अज्ञानी अभागी जीव परमेश्वर से विमुखी, अनेक प्रकार के अपराधों में लगाकर, अविद्या रूप कार्य की ही साधना करी ।

सब जीव तोरैं राम सौं, पै रामन तोरै ।
दादू काचे ताग ज्यौं, टूटै त्यौं जोरै ॥२८॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बहिर्मुख सम्पूर्ण संसारिक जीव, राम से अपनी सुरति तोड़कर, संसार से जोड़ते हैं । परन्तु राम अपने भक्तों से अपना स्नेह नहीं तोड़ते है । जैसे कच्चे सूत का तार टूट जाय, तो उसको कातने वाला तत्काल जोड़ लेता है, वैसे ही राम के भक्त किसी कारण टूटी हुई वृत्ति को, विचार द्वारा फिर से राम में जोड़ लेते हैं । अथवा राम सम्पूर्ण जीवों को अपना अंश जानकर, उनसे अपना स्नेह नहीं तोडते हैं ।

(सजीवन)

फूटा फेरि संवारि करि, ले पहुंचावै और ।
ऐसा कोई ना मिलै, दादू गई बहोर ॥२९॥

टीका :- 'फूटा' कहिये, विषय प्रवृतियों में छिन्न भिन्न हुए मन को 'सवांर' अर्थात् विषय वासनाओं से हटाकर, आत्मा के स्मरण में लगावै और प्रारब्ध के अन्त तक, वृति को स्थिर करके आत्म साक्षात्कार तक की अवस्था को प्राप्त करा देवैं । ऐसा कोई मुक्त पुरुष नहीं मिले, जो गई हुई आयु को सफल बना देवैं ।

ऐसा कोई ना मिलै, तन फेरि संवारै ।
बूढे थैं बाला करै, खै काल निवारै ॥३०॥

टीका :- ऐसे मुक्त पुरुष कोई नहीं मिले, जो कि हमारे शरीर और अन्तःकरण के दोष हटाकर, आत्म चिन्तन में लगावै और 'बूढ़े थैं बाला करै' कहिये अज्ञान जन्य वृद्धावस्था से निकाल कर, सत्य ज्ञान रूपी बाल्यावस्था प्राप्त करा देवैं । और फिर सबका नाश करने वाले काल से मुक्त कर देवैं ।

(परच करुणा बिनती)

गलै बिलै करि बीनती, एक मेक अरदास ।
अरस परस करूणां करै, तब दरवै दादूदास ॥३१॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! 'गलै' कहिये, आत्म चिन्तन के प्रेम में गलतान होकर, संसारिक मायावी पदार्थों की इच्छा को त्यागकर, परमेश्वर से पराभक्ति द्वारा ओत प्रोत होकर, प्रार्थना करते हैं कि हे चेतन्य स्वरूप परमेश्वर ! हम आपसे सदैव ओत प्रोत रहते हुए आपका स्मरण करते रहें । तब परमेश्वर ऐसे संतों पर अपनी दया करके, अपना स्वरूप परिचय कराते हैं ।

सांई तेरे डर डरूं, सदा रहूं भैभीत ।
अजा सिंह ज्यौं भै घणां, दादू लीया जीत ॥३२॥

टीका :- हे परमेश्वर ! जैसे 'अजा' कहिए बकरी को सिंह का भय बना रहता है वैसे ही मेरे अन्तःकरण में मलीन वासना, काम आदि विकार, मिथ्या अहंकार आदि के होने से, आपके डर से, मैं सदा भयभीत सा हो रहा हूं ।

दोहा :- गयो बीरबल बिसर कर, अकबर पाड्यो ठीक ।
ग्राम ग्राम बकरो दियो, बढतन घटत रत्तीक ॥३२॥

दृष्टान्त :- एक समय बीरबल, बादशाह से अलग होकर, जहां तहां घूमने लगा । बादशाह ने सोचा :- बीरबल कहां गया ? तब बीरबल का पता लगाने के लिये, सब गांवों के नम्बरदारों को बुलाये, और उनको एक एक बकरा तोल तोल कर दे दिया । बादशाह बोला :- एक महीने में यह बकरे वापिस लाकर तुलवाना, यदि कोई बकरा बढ़ेगा या घटेगा, तो तुमको दण्ड होगा । सब लोग अपने अपने गांवों में ले गये । कोई गांव वाले खूब खिलाने लगे, कोई भूखा रखने लगे । जिस गांव में बीरबल छुपकर रहते थे, उन गांव वालों को बीरबल बोले, कि एक सिंह का बच्चा ले आओ और उसको पिंजरे में रखो । फिर बकरे को खूब दाना वगैरा चराओ । और थोड़ी देर पिंजरे वाले सिंह का दर्शन करा दो । इसी प्रकार वे एक महीने तक करते रहे । जब बादशाह के यहां सब नम्बरदार बकरे ले गये और उनके बकरे तुलने लगे, तो किसी का ज्यादा और किसी का कमती । परन्तु जिस गांव में बीरबल था, उस गांव का बकरा तोल में पूरा उतरा । बादशाह जान गये कि जिस गांव का यह बकरा है, उस गांव में बीरबल है ।

बादशाह ने पूछा :-यह तुम्हारा बकरा पूरा कैसे उतरा ? उन्होंने उपरोक्त सब वृतान्त सुना दिया। बादशाह बोले :- यह युक्ति तुमको किसने बतलाई ? नम्बरदार बोला :- हमारे गांव में ब्राह्मण आया हुआ है उसने बताई। बादशाह ने उसको बुलाया। वह बीरबल था। बादशाह को आकर सलाम किया। बादशाह ने कहा :-बीरबल आप चोर की तरह कहां जा छुपे ? बीरबल बोला :- हुजूर ! चोर के पीछे खोजी भी रहता है।

(पोख प्रतिपाल रक्षक)

दादू पलक मांहि प्रगटै सही, जे जन करै पुकार।
दीन दुखी तब देखि करि, अति आतुर तिहि बार ॥३३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अन्तःकरण में बिरह की आवाज़ से परमेश्वर को पुकारै, तो एक क्षण में ही तत्काल प्रगट हो जाते हैं। और फिर अपने जन को दुखी देखकर, परमेश्वर भक्त की तुरन्त रक्षा करते हैं।

दोहा :- द्विज तिय ले मुकलावते, ठग मार्यो बन जांहि।
बिरह बचन सुन तीये के, प्रभु आये छणि मांहि ॥३३॥

दृष्टान्त :- एक हरि भक्त ब्राह्मण, अपनी स्त्री को मुकलावे लेने ससुराल गया। ससुराल वालों ने इसे बहुत धन दिया, और स्त्री पुरुष दोनों को विदा कर दिये। रास्ते में इसको ठग मिल गए। यह उंनसे बोला :- राम राम भाई ! वह बोले :- राम राम। हरि भक्त पूछने लगा :- आप कहां जाओगे ? ठग बोले :- तूं जायेगा, वहीं हम जायेगें। ठग बोले :- यह जंगल वाला रास्ता सीधा है। हरि भक्त बोला :- नहीं भाई ! मैं तो सड़क से ही आता जाता हूं। ठग बोले :-हम जानते हैं कि यह यह रास्ता तुम्हें जल्दी पहुंचावेगा। तूं हमको कोई चोर बदमास नहीं समझना। हमारे तेरे बीच में रामजी है, हम तेरे से धोखा नहीं करेंगे। तब स्त्री बोली :- पति देव ! अब क्यों डरते हो ? अब तो जबरदस्त को बीच में दे दिया, इनके साथ ही चलिये। जब जंगल में पहुंचे, तब एक ठग तलवार हाथ में लेकर, हरि भक्त का सिर काट दिया। सब धन ले लिया और स्त्री को बोले :- चल हमारे साथ, नहीं तो तेरा भी सिर काट देंगे। स्त्री पांच कदम चलकर, पीछे देखने लगी। ठग बोले :- क्या देखती है ? वह तो मर गया। स्त्री बिरह की आवाज से बोली :- मैं उस समर्थ ईश्वर को देखती हूं जो तुम्हारे हमारे बीच में था। वह कैसे प्रगट नहीं हुए ? इतना कहते ही ठगों के और स्त्री के बीच में, वहीं भगवान प्रगट हो गये, और ठगों को जान से मार दिये। उस अपनी अनन्य भक्त को, भगवान ने हृदय से लगाई। उसके पति को जीवित कर दिया और भगवान बोले :- हे हरि भक्त ! तेरी

स्त्री का जितना मेरे में दृढ़ विश्वास है, उतना तुम्हारा नहीं है । इसकी बिरह भक्ति की आवाज से ही, मैं प्रगट हुआ हूं । दोनों स्त्री पुरुष ने भगवान के चरणों में नमस्कार किया । प्रभु ने दोनों भक्तों को अपनी निष्काम भक्ति का उपदेश देकर, कृत्य कृत्य कर दिये ।

आगै पीछै संग रहै, आप उठाये भार ।
साधु दुखी तब हरि दुखि, ऐसा सिरजनहार ।।३४।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! वह समर्थ परमेश्वर ! अपने अनन्य निष्कामी भक्तों की रक्षा करने को, आगे पीछे साथ रहते हैं, और भक्तों का सब भर भार आप उठाते हैं । ऐसे भक्तों को जो कदाचित् कभी दुख होवे, तो भगवान अपने आपको दुखी मानते हैं । ऐसे वे दयालु सिरजनहार हैं ।

दोहा :- बून्दी में बणियो भगत, रामदास जी नाम ।
पोट लई सिर राम जी, जग जाना सब गांव ।।३४।।

दृष्टान्त :- राजस्थान बून्दी नगर में रामदास जी नाम के एक वैश्य भगवान के और संतों के अनन्य भक्त थे । इनके यहां संतों की बहुत सेवा होती थी । आप बणजी का काम किया करते थे । एक रोज जिस गांव में बणजी करने गये वहां, बणजी का नाज लगभग दो मन इकट्ठा हो गया । आपने गट्ठड़ बंधवाया और गांव वालों को बोले :- मेरे सिर पर रख दो । गांव वाले बोले :- भक्त जी आपसे नहीं चलेगा । हम लोग आपके घर पहुंचा देंगे । परन्तु भक्त जी अपने सिर पर ही गट्ठड़ रखवा लिया और वहां से जब गांव के बाहर कुछ दूर पहुंचे तो, भक्त जी बोझा से घबरा गये और मन में राम जी से प्रार्थना करने लगे कि प्रभु कोई ऐसा तगड़ा आदमी भेजो, जो इस पोट को ठेठ घर ले जाकर उतारै । यह संकल्प भक्त जी का पूरा करने के लिए राम जी महाराज, आप ही मजदूर रूप में सामने से आते दीखे । और बोले :- भक्त जी आपके सिर पर तो बहुत वजन है ! लाओ मुझे देओ । झट अपने मस्तक पर पोट को रख ली । भक्त जी बोले : भाई ठेठ घर ले चलना, क्या लेगा ? मैं तो आपसे लेता ही रहता हूं, चिन्ता मत करो । यह कहकर राम जी चल पड़े, पोट लेकर । कुछ देर में ही बहुत दूर पहुंच गये । भक्त जी भगने लगे, बोले :- ठहर भाई ! राम जी बोले :- अब मैं नहीं ठहरता, तूं आता रहना । इतने जोर से चलने लगे कि दिखाई भी नहीं दिये । भक्त जी ने सोचा :- वह तो न मालूम कौन था ? दो मन नाज ले जायेगा, संतों की सेवा में लगता, मैंने बड़ी गलती की, जो गांव वालों की बात नहीं मानी । फिर मन में विचार करने लगे, आज तो गर्म पानी से स्नान करेंगे और कढी फुलका बनवा कर भोजन करेंगे । राम जी तत्काल घर जाकर पोट उतार दी और बोले- "भक्त जी पीछे आ रहे हैं । गर्म पानी रख दो और कढी फुलका उनके लिए

भोजन को बनाना, आज। भक्त जी ने बोला है।" घर से बाई बोली :- कुछ आपको मजदूरी देने को कहा है ? भगवान बोले :- मैं तो उनसे लेता ही रहता हूं। आप लोग तो खूब संतों की सेवा करो। यह कहकर चले गये। पीछे से भक्त जी घबराये हुए आये और बोले :- कोई नाज की पोट लेकर आया है क्या ? मैंने अनजान आदमी को आज पोट संभलवा दी। स्त्री बोली :- घबरा क्यों रहे हो ? वह तो बड़ा धर्मात्मा था बिचारा, पोट घर में रखी है, और कुछ उसने मेरे से मजदूरी भी नहीं ली। गर्म पानी आप के स्नान के लिए रखा है, और कढी बन गई है। आटा भिगो दिया है, फुलकों के लिये। वह बोल गया कि भक्त जी ने बताया है, सो अब स्नान करके भोजन करो। भक्त जी यह सुन कर रोमांच हो गये और नेत्रों से आंसू टपकने लगे और बोले :- हे प्रिय ! वह तो नौकर नहीं था, वह तो राम जी महाराज थे। हाय ! मैंने अपने इष्ट देव राम जी को तकलीफ दी। मैंने उनकी कोई भक्ति नहीं की। हे नाथ ! मेरा अपराध क्षमा करो। तब भगवान ने आकाशवाणी की कि हे भक्त जी ! आप जैसे भक्त दुखी होते हैं, तब मुझे दुःख होता है। मैंने आपके मन के संकल्प को पूरा किया है।

सेवग की रक्षा करै, सेवग की प्रतिपाल।
सेवग की बाहार चढे, दादू दीन दयाल ॥३५॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! समर्थ परमेश्वर ! अपने अनन्य भक्तों की सहाय करने को तत्पर रहते हैं। और उनकी सब प्रकार प्रतिपालना करते हैं। अपने सेवकों की मदद करते हैं। ऐसे वे दीन दयाल परमेश्वर हैं।

दोहा :- ओला पड़ते बालिका, पढी साखी करि प्रीत।
खेत बचयो सेवग बचयो, कर सांची प्रतीत ॥३५॥

दृष्टान्त :- जंगल में एक खेत की रखवाली करने को, एक लड़की बैठी थी। एक संत परचै सिद्ध उधर आये। लड़की ने संत को नमस्कार किया और बोली :- महाराज ! बाजरे के सिट्टे, फली का भोग लगाओ, बिराजो। संत बैठ गये। लड़की सिट्टे फली में से दाने निकाल कर, संत के सामने रखे। संत ने भोग लगाकर पा लिये और जाते समय उसको यह साखी याद करा गये, और बोले :- जब कोई दुख आवै तो, इसका पाठ करना। दुख मिट जावेगा। फिर एक रोज वर्षा के साथ ओले पड़ने लगे। लड़की इस साखी को बोलती जाती है और खेत के चारों मेर चक्कर लगाती है। खेत भी बच गया और लड़की भी ओलों से बच गई। बाकी आसपास के सब खेत ओलों की वर्षा से नष्ट हो गए। राम जी, महाराज और संत कृपा का फल सब ने प्रत्यक्ष में देखा।

दोहा :- जैमल व्है बाहार चढै, नगर मेड़ते मांहि ।
श्री धर के संग चोर थे, लूटण दीन्हो नांहि ।।३५।।

दृष्टान्त :— मेड़ता के राजा जैमल जी महाराज, भगवान कृष्ण के भक्त थे । यह तीन घंटा भगवान की पूजा सेवा में रहते थे । इनकी प्रतिज्ञा थी कि उस वक्त कोई आकर मुझे, कोई कुछ कहेगा, तो गोली से उड़ा दूंगा । मंडोर का ठाकुर सेना लेकर मेड़ते पर चढ़ाई कर दी । जयमल जी की माता को पता लगा । वह जाकर जयमल जी को बोली :- आंख मीच कर क्या बैठा है, शत्रु तो नगर पर कब्जा करना चाहते हैं । उठ, नगर की रक्षा कर । जैमल जी बोले :- मैं जिसका ध्यान करता हूं, वही रक्षा करेगा । जा, चली जा, तूं माता है, नहीं तो गोली से उड़ा देता । माता बोली :- मैं भी देख लूँगी, वह कैसी रक्षा करता है ? तब भगवान कृष्ण जैमल जी का रूप बनाकर, घोड़े पर सवार होके, तलवार ली है । शत्रुओं से जाकर, भारी युद्ध करके विजय प्राप्त कर ली । वहां उन शत्रुओं को एक मिल्ट्री का जवान दिखाई दे रहा था महलों में वापिस आये और सहीस को घोड़ा संभलाया । जैमल जी की तरफ जाकर, फिर अन्तर्ध्यान हो गये । जैमल जी पूजा से आये और फिर दूसरा घोड़ा लेकर, सेना के पास गये । मंडोर का ठाकुर बोला :- हे जैमल ! आपके उस श्यामसुन्दर सैनिक जवान के, मुझे एक दफा दर्शन और करा दें, चाहे फिर तूं मुझे, जान से मार दे । जैमल जी बोले :- हे ठाकुर ! मेरा कोई सिपाही नहीं था । न मैंने भेजा, वह भगवान कृष्ण थे । तुम्हारे अहोभाग्य हैं, जो तुम्हें दर्शन हो गये । मैं तो उनकी सेवा पूजा में बैठा था । मुझे पता नहीं था कि प्रभु मेरे जैसे अभक्त सेवकों की भी रक्षा करते हैं ।

इसी प्रकार श्रीधर नाम के एक भक्त थे वह उगराही का रूपया लेकर आ रहे थे । रास्ते में चोर साथ हो गये । चोरों ने पूछा कि तुम्हारे साथ कोई और भी है । वह बोले :- धनुषधारी हैं । जब चोर इसको मारने का विचार करें, तब घोड़े पर धनुष बाण लिये हुए, एक पुरुष दिखाई पड़ें । इसी प्रकार सारे रास्ते में, श्रीधर जी की रक्षा, भगवान करते आये । जब नगर में घुसे, तो चोरों का मन भगवान आकर्षित करके, अन्तर्ध्यान हो गये । श्रीधर जी जब घर में आ गये, तो फिर पीछे से चोर भी आये, और बोले :- आपके उस श्याम सुन्दर धनुषधारी सिपाही के एक दफा दर्शन और करा दो । हम चोर थे, आपकी उसने सारे रास्ते रक्षा की है । अब जाता जाता हमारा मन चुराके ले गया । श्रीधरजी बोले :- भाई ! मेरा कोई सिपाही नहीं था । तुम्हारे अहोभाग्य हैं, जो भगवान के तुम्हे दर्शन हुए । हे प्रभु ! मैंने आपकी कोई भक्ति नहीं की । इस मिथ्या सम्पत्ति के पीछे आपको कष्ट हुआ । यह विचार कर श्रीधर जी ने सारी सम्पत्ति, जनसमुदाय की सेवा में लगा दी और फिर विरक्त होकर, भगवान की अखंड भक्ति करने लगे । और चोर भी चोरी कर्म छोड़कर, सच्चे मानव बन गये ।

दादू काया नाव समंद मैं, औघट बूडै आइ ।
इहि औसर एक अगाध बिन, दादू कौन सहाइ ॥३६॥

टीका :- हे परमेश्वर ! यह हमारी कायरूपी नौका है । इस संसार समुद्र में उबड़ खाबड़ घाटों में डूब रही है । हे नाथ ! इस भयंकर समय में आपके बिना कौन हमारी रक्षा करे ? हमारे तो केवल आपका ही आधार है ।

यहु तन भेरा भौजला, क्यौं करि लंघैं तीर ।
खेवट बिन कैसे तिरै, दादू गहर गंभीर ॥३७॥

टीका :- हे परमेश्वर ! यह हमारा शरीर तो 'भेरा' कहिए बांस की नाव के समान है और यह संसार ही एक भारी समुद्र है । इससे पार परले किनारे कैसे उतरेंगे ? हे परमेश्वर ! आप ही खेवटिया हो । आप पार उतारोगे, तभी हम पार उतरेंगे, अन्यथा नहीं ।

पिंड परोहन सिंधु जल, भौ सागर संसार ।
राम बिना सुझै नहीं, दादू खेवनहार ॥३८॥

टीका :- हे राम जी ! यह हमारा शरीर ही मानो 'परोहन' कहिये छोटी नौका है और यह संसार ही समुद्र है, इसमें विषय वासना रूपी जल भरा है । हे राम ! आपके बिना यह नौका डिगमिगा रही है, इसको खेने वाला आपके सिवा, हमें और कोई दिखलाई नहीं पड़ता है ।

यहु घट बोहिथ धार मै, दरिया वार न पार ।
भैभीत भयानक देखि करि, दादू करी पुकार ।३९॥

टीका :- हे राम जी ! यह 'बोहिथ' शरीर रूपी नौका, विषय वासना और तृष्णारूप धार में फंस गई है । इस संसार रूपी दरियाव का न तो उरला किनारा और न परला किनारा पाते हैं, बीच मझधार में अटक रहे हैं । हे नाथ ! इस दरियाव को देखकर भयभीत भयानक से हम हो रहे हैं । आपको पुकारते हैं, आप ही इससे पार लगाने वाले हो ।

कलियुग घौर अंधार है, तिसका वार न पार ।
दादू तुम बिन क्यौं तिरै, समरथ सिरजनहार ।।४०।।

टीका :- हे समर्थ परमेश्वर ! यह कलयुग भयंकर अन्धकार रूप है। इसमें धर्म अधर्म का विचार लोप सा हो रहा है। इसकी अनितियों का कोई पार नहीं है। हे समर्थ सिरजनहार परमेश्वर ! आपके सहारे के विना, जीव इस संसार से कैसे तिर सकते हैं ? आप तारोगे तब तिरंगे।

काया के बसि जीव है, कसि कसि बंध्या मांहि ।
दादू आतमराम बिन, क्यों ही छूटै नांहि ।।४१।।

टीका :- हे राम जी ! शरीर के अध्यास और नाना प्रकार के गुण विकारों से, यह जीव कस कर बंध गया है। हे आतम स्वरूप राम जी ! आपके विचार के बिना कदापि नहीं छूट सकता। अर्थात् आतम परचे हुए बिना, मुक्त नहीं होगा।

दादू प्राणी बन्ध्या पंच सूं, क्योंहि छूटै नांहि ।
नींधणी आया मारीये, यहु जीव काया मांहि ।।४२।।

टीका :- हे परमेश्वर ! हम प्राणधारी, पंच इन्द्रियों के विकारों से बंधे हैं। अपने आपसे हम छूट पाते। आपके बिना हम, बिना धणी के हो रहे हैं। इस काया में हमारे जीव को, काम आदि विकार यह सब ही मारने को तत्पर हो रहे हैं।

(दया बिनती)

राम बिमुख जुग जुग दुखि, लख चोरासी जीव ।
जामै मरै जगि आवटै, राखणहारा पीव ।।४३।।

टीका :- हे राम ! आपसे विमुख होकर यह जीव, चौरासी लाख यौनी के कष्ट को, जुग जुग में प्राप्त होता है। जन्मता है, मरता है हौर जगत में अध्यात्म अधिदैविक अधिभौतिक तापों से तप्ता रहता है। हे मुख प्रीति के विषय पीव परमेश्वर ! आप ही इन दुखों से रक्षा करने वाले हो।

तुम बिन धणी न धोरी जीव का, यौंही आवै जाइ ।
जे तूं सांई सति है, तौ बेगा प्रगटहु आइ ।।४४।।

टीका :- हे राम जी ! आपके बिना इस जीव का, कोइ धणी धोरी नहीं है, अर्थात् कोई रक्षा करने वाला नहीं है । ऐसे ही यह चौरासी में आता जाता है, अर्थात् जन्मता मरता है । हे स्वामी ! वेद शास्त्र सतगुरू आपके लिये कहते हैं, इसलिये आप सप्य स्वरूप हो, तो जल्दी प्रगट होकर,इस जीव की रक्षा करो, क्योंकि यह जीव आपका ही अंश है ।

नीधणि आया मारिये, धणीं न धोरी कोइ ।
दादू सो क्यूं मारिये, साहिब सिर पर होइ ।।४५।।

टीका :- हे परमेश्वर ! बिना धणी वाले को, कोई भी पीट देता है, दुनियां में भी कहते हैं कि इसका कोई धणी धोरी नहीं है । और जिसके सिर पर मालिक रक्षा करने वाला होवे, उसे कोई कैसे मार सकता है ?

(पोख प्रति पाल रक्षक)

समर्थ सिरजनहार हैं, जे कुछ करै सो होइ ।
दादू सेवग राखि ले, कालन लागै कोइ ।।४६।।

टीका :- हे सिरजनहार प्रभु ! आप सब प्रकार समर्थ हो । जो कुछ आप करो, सोई आप कर सकते हो । इसलिये हे नाथ ! हम आपके ही सेवक हैं । आप हमारी रक्षा करोगे, तो कोई भी काल, हमारा स्पर्श नहीं कर सकता ।

(बिनती)

सांई सांचा नाम दे, काल झाल मिटि जाइ ।
दादू निर्भैं व्हैं रहे, कबहु काल न खाइ ।।४७।।

टीका :- हे सत्य स्वरूप स्वामी परमेश्वर ! आप अपने सत्य स्वरूप नाम का निष्काम स्मरण, हमको दीजिये, जिससे काम आदि काल और आशा तृष्णा रूपी काल की झाल नष्ट हो जाय और फिर हम आपके नाम को जप कर, निर्भय पद को प्राप्त होवें । फिर कभी भी काल हमारा स्पर्श नहीं कर सकता ।

कोई नहि करतार बिन, प्राण उधारणहार ।
जियरा दुखीया राम बिन, दादू इहि संसार ।।४८।।

टीका :- हे करतार ! सृष्टि के रचिता परमेश्वर आपके बिना हमारे प्राणों का उद्धार करने वाला, दूसरा कोई भी नहीं है । हे रामजी ! आपके बिना यह जीव, दुखी बना रहता है, इस संसार में । इसको कोई भी सुखी नहीं कर सकता ।

जिनकी रक्षा तूं करै, ते उबरे करतार ।
जै तैं छाड़ै हाथ थैं, ते डूबै संसार ॥४६॥

टीका :- हे करतार परमेश्वर ! जिन भक्तों की आप संसार के जन्म मरण से रक्षा करते हो, वही संसार से तरते हैं । और जिन विषयी पामरों को आप दया रूप हाथ से छोड़ देते हो, वह इस संसार समुद्र में डूब जाते हैं ।

राखणहारा एक तुं, मारणहार अनेक ।
दादू के दूजा नहीं, तूं आपै ही देख ॥५०॥

टीका :- हे परमेश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप ! जन्म मरण से रक्षा करने वाले तो एक आप ही हो और मारने वाले तो, विषय वासना राग द्वेष आदि विकार, और रजोगुण तमोगुण की प्रवृतियें, सकाम कर्म बन्धन यह सब जन्म मृत्यु के देने वाले हैं । परन्तु हे परमेश्वर ! हमारे तो और दूसरा कोई आश्रय है नहीं, आप के सिवाय ।

दादू जग ज्वाला जम रूप है, साहिब राखणहार ।
तुम बिचि अन्तर जिन पड़ै, ताथैं करूं पुकार ॥५१॥

टीका :- हे साहिब ! इस जगत में यह क्रोध अग्नि, काम अग्नि, यह तो सब जमराज का ही स्वरूप है । सम्पूर्ण संसार के प्राणी इसमें जले जा रहे हैं । इससे आप ही रक्षा करने वाले हो । हमारी आपसे यही प्रार्थना है कि आपके नाम स्मरण से हम अलग नहीं होवें ।

जहं तहं बिषय विकार थैं, तुम ही राखणहार ।
तन मन तुम को सौंपीया, सांचा सिरजनहार ॥५२॥

टीका :- हे परमेश्वर ! 'सिरजनहार' प्रारब्ध बसात, चाहे हमारा शरीर प्रवृति मार्ग में रहै या निवृति मार्ग में । हमने अपना तन मन धन आपके समर्पण कर दिया है । इनकी विषय विकारों से, आप ही रक्षा करने वाले हो ।

दादू गरक रसातक जात है, तुम बिन सब संसार ।
कर गहि कर्त्ता काढि ले, दे अवलम्बन आधार ।।५३।।

टीका :- हे करतार परमेश्वर ! सभी संसारिक प्राणी, आपसे विमुख रहकर, अधोगति को जा रहे हैं । हे प्रभु ! आप अपने नाम स्मरण का आश्रय देकर, अथवा कृपा करके, दया रूपी हाथ से डूबते हुए, अधोगति में जाते हुए जीवों को अपना भक्ति वैराग्य रूपी अवलम्बन देकर बचाइये ।

दादू दौं लागी जग पर जलै, घजि घटि सब संसार ।
हमथैं कछु न होत है, तुम बरस बुझावणहार ।।५४।।

टीका :- हे सिरजनहार परमेश्वर ! घट घट में दावा अग्नि भभक रही है, अर्थात् क्रोधा अग्नि । और प्राणीमात्र जल रहे हैं, आसुरी गुणों से । ब्रह्मऋषि अपने को उपलक्षण करके कह रहे हैं कि यह प्राणधारी असमर्थ हैं । आप स्वयं अपनी दया की दृष्टि से सबका संताप दूर करो ।

दादू आतमजीव अनाथ सब, करतार ऊबारै ।
राम निहोरा कीजिये, जिन काहू मारै ।।५५।।

टीका :- हे करतार परमेश्वर ! सभी जीव 'अनाथ' कहिये, बिना स्वामी के होकर, जन्म मरण में जा रहे हैं । हे राम जी ! आप दया करके, सभी जीवों को अपना अंश जानकर, इनकी रक्षा कीजिये ।

दोहा :- गुरू दादू आमेर तैं, उठत साखि कहि येह ।
पुनि फरीद जी जहाज में, कांही लगायो नेह ।।५५।।

दृष्टांत :— शेख फरीद माता के उपदेश से खुदा की प्राप्ति के लिये, ३६ वर्ष तक जंगल में जाकर, भारी तप किया । और फिर कुए में उलटे लटक कर, तीन रोज तक झूलते रहे । परमेश्वर कव्वे का रूप बनाकर, इनकी परीक्षा अर्थ, इसके पांव पर चोंच मारने लगा । फिर उड़कर इसकी छाती पर जा बैठा और कपोलों पर चोंच मारने लगा । तब इसने कहा :-

कागा सब तन खाइये, चुन चुन खाइयो मांस ।
दो नैना मत खाइयो, मोहीं राम मिलन की आस ।।

यह कहते ही खुदा प्रगट हो गए और कुए से इसको निकाल लिया और बोले :- वर मांग । यह बोला :- मेरा वचन सिद्ध कर दो । परमेश्वर बोले :- जा तेरा वचन सिद्ध हो जायेगा, परन्तु गुरू बना लेना । फिर यह आकर माता को नमस्कार किया और गुरू की खोज में चलने लगा, तो एक जिज्ञासु उसके पास आया और बोला :- मुझको चेला बना लो । फरीद बोला :- अभी तो मैं ही चेला नहीं बना । दोनों समुद्र के किनारे पहुंच गये । फरीद बोले :- एक कागज की नाव आ जाओ । आ गई । दोनों बैठे । फिर बोला :- जिधर महात्मा है, उधर चलो । नौका चलने लगी । सामने एक टापू दिखाई पड़ा । कुटिया में से एक महात्मा ने इसको कागज की नौका में आता देखा और विचार किया कि देखो कितना यह घमण्डी है, इसकी नौका डूबो । जब नौका डगमगाने लगी । फरीद ने दूर से देखा कि एक खिड़की से मुंह निकाले फकीर दिखाई दे रहा है । यह बोला :- इस फकीर के दो लम्बे सिंग हो जाओ । सिंग हो गये । फकीर बोला :- फरीद यह सिंग मेरे क्यों बना दिये ? फरीद बोला :- मेरी नौका क्यों डुबाता है ? फकीर बोले :- फरीद की नौका मत डूबो । फरीद बोलें :- फकीर के सिंग मिट जाओ । फरीद उस मुरीद के सहित, फकीर के पास आये और बोले :- मुझे चेला बनाओ । फकीर बोले :- तू भी सिद्ध, मैं भी सिद्ध, तुझे क्या चेला बनाऊं ? फरीद बोले :- इसको आपका मुरीद बना लो । फिर वहां से फरीद पैदल चला । फकीर ने कहा :- आगे तुझे गुरू मिलैंगे । एक नगर के समीप पहुंचा । बहुत से बच्चे गेंद खेल रहे थे । ब्रह्मऋषि भी बच्चे रूप से, उन बच्चों के साथ गेंद खेल रहे थे । फरीद जाकर खड़ा हुआ । दूसरे बच्चे ने गेंद फेंकी । ब्रह्मऋषि बच्चे रूप में, फरीद को बोले :- जा वह गेंद उठा ला । यह बोला :-मैं यहां ही गेंद मंगा लूंगा । फरीद बोला :- गेंद आ जा । गेंद नहीं आई । फिर बोले :- वहां जाकर लाओ । फरीद बोला :- अबके मंगा लूगां । बोला गेंद आ जा । जब गेंद नहीं आई, तब ब्रह्मऋषि ने दूसरे बच्चे के हाथ से बल्ला लेकर, फरीद की पीठ में एक मारा और बोले :- सब जगह सिद्धाई दिखाता आता है और कागज की जहाज में क्या सिद्धार्थ का नेह लगाया तैंने ? तब फरीद चरणों में गिर गया और बोला :- मुझको उपदेश करो । तब ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज ने आतम उपदेश देकर, इसको अजर अमर बना दिया ।

अरस जमी औजुद मै, तहां तपै अफताप ।
सब जग जलता देखि करि, दादू पुकारै साध ।।५६।।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! जैसे 'अरस' - आकाश, और 'जमी'-भूमि के बीच, सूर्य आसमान में तपता है । इसी प्रकार शरीर के भीतर, आशा तृष्णा रूपी सूरज के तेज से, प्राणीमात्र जल रहे हैं । किन्तु मुक्त संतजन यह देखकर, करूणा से परमेश्वर को पुकारते हैं, कि हे नाथ ! इन जीवों की आप रक्षा करो ।

सकल भुवन सब आत्मा, निर्विष करि हरि लेइ ।
पड़दा है सो दूर करि, कुसमल रहण न देइ ।।५७।।

टीका :- हे हरि ! सर्व लोक लोकान्तरों में यह जीवात्मा, आपका ही अंश स्वरूप है, इसलिये सम्पूर्ण प्राणियों को निर्मल, पाप आदि मल रहित शुद्ध बनाकर, आपनी शरण में लीजिये और पड़दा कहिए, आड भ्रांति अज्ञान से उत्पन्न हुआ आवरण, पाप आदि यह अन्तःकरण में अब न रहने पावैं ।

तन मन निर्मल आत्मा, सब काहू की होइ ।
दादू विषय बिकार की, बातन बूझै कोइ ।।५८।।

टीका :- हे स्वामी ! आप ऐसी कृपा करो कि तन मन और बुद्धि, प्राणी मात्र की पवित्र हो जावैं, अर्थात् पाप कर्मों से मुक्त हो जाय, फिर विषय शब्द आदि और विकारों की वह कोई बात भी नहीं करैं ।

(विनती)

समर्थ धोरी कंध धरि, रथ ले और निवाहि ।
मार्ग मांहि न मेलिये, पीछै बिड़द लजाहि ।।५९।।

टीका :- हे दयामय समर्थ प्रभु ! हमारा बोझ कहिए भार जीवन का, आपके कंधों पर है । आप इस शरीर रूप हमारे जीवन को निभाइये । अर्थात् बीच में नहीं छोड़ना । नहीं तो आपका पति तपावन, भक्त वत्सल बिड़द लज्जित होवैंगा ।

दादू गगन गिरै तब को धरै, धरतीं धर छंडै ।
जे तुम छाड़हु राम रथ, कंध को मंडै ।।६०।।

टीका :- हे राम जी ! जो आकाश से गिरै, तो उसको धैर्य कैसे रहै ? और फिर पृथ्वी भी कदाचित उस का त्याग कर दे, तो फिर उसको ठिकाना कहां है ? इसी प्रकार हे प्रभु ! आप हमको त्याग देओ, तो फिर कौन पार लगाने वाला है ?

अन्तर जामी एक तूं, आत्म के आधार ।
जे तुम्ह छाड़हु हाथ थैं, कौण संभालणहार ।।६१।।

टीका :- हे अन्तर्यामी ! एक आप ही हमारे जीवात्मा के आधार हो। यदि आप अपने दयामय हाथ से हम को छोड़ दो, तो फिर हमारी रक्षा करने वाला, इस संसार में कौन है ? अर्थात् कोई भी नहीं है ।

तेरा सेवग तुम्ह लगै, तुम्ह ही माथै भार ।
दादू डूबत राम जी, बेगि उतारौ पार ॥६२॥

टीका :- हे समर्थ राम जी ! आपके दास तो, आप तक ही दौड़ कर सकते हैं। इनके तो जीवन का सम्पूर्ण भर भार, आपके ही सिर पर है । अब आपके आत्मीय जनों को आप, इस संसार में डूबते हुयों को जल्दी ही पार उतारो प्रभु ।

सत छूटा सूरात्तन गया, बल पौरीस भागा जाइ ।
कोई धीरज ना धरै, काल पहुंत्ता आइ ॥६३॥

टीका :- ब्रह्मऋषि अपने को उपलक्षण करके कहते हैं कि हे अन्तर्यामी सत्यस्वरूप ! आपके बिना सूरातन से हथास हो गये हैं और शारीरिक शक्ति, 'पौरीस' अर्थात् मानसिक बल भी बिचारे अज्ञानियों में अब है नहीं । तथा तन मन आदि का सब धैर्य छूट चुका है, अब अन्त समय का दिन आ गया है ।

संगी थाके संग के, मेरा कुछ न बसाइ ।
भाव भक्ति धन लूटिये, दादू दुखि खुदाइ ॥६४॥

टीका :- हे हमारे समर्थ खुद खामिंद ! हमारे साथी मन, इन्द्रिये, अन्तःकरण आदि थकित हो रहे हैं, अर्थात् थक गये हैं और श्रद्धा भक्ति रूप धन वह भी लुट गया है, अर्थात् यह जीव अत्यन्त दुखी हो रहा है ।

(प्रचय करुणा बिनती)

दादू जियरे जक नहीं, विश्राम न पावै ।
आत्म पाणी लूण ज्यूं, असै होइ न आवै ॥६५॥

टीका :- हे समर्थ स्वामी ! आपके बिरह रूपी दुख से, हमारे जीव में अब शांति नहीं है । हमारे मन को विश्राम नहीं है, क्योंकि हमारी आतमा कहिए वृत्ति, जब तक आपके स्वरूप में अभेद, पानी में नमक की तरह नहीं हो जावै, तब तक हमको कहां शांति है ?

(दया बिनती)

दादू तेरी खूबि खूब है, सब नीका लागै ।
सुन्दर शोभा काढि ले, सब कोई भागै ॥६६॥

टीका :- हे समर्थ ! जब तक आपकी चेतन्य शक्ति का इस शरीर से सम्बन्ध है, तभी तक यह शरीर आपकी खूबी से कहिये, आतम शक्ति रूप व्यापकता से सुन्दर प्रतीत होता है । और जब काल, इस शरीर से प्राणों को निकाल लेता है, तब सब कोई कुटम्बी डर कर अलग हो जाते हैं ।

(बिनती)

तुम्ह हो तैसी कीजिये, तो छूटैंगे जीव ।
हम हैं ऐसी जिन करो, मैं सदिकै जाऊं पीव ॥६७॥

टीका :- हे प्यारे प्रीतम ! जैसे आप परम दयालु हो, वैसी हम जीवों पर दया करो, तो तो यह जीव संसार चक्र से छुटकारा पावेंगे । परन्तु जैसे हम जीव आपसे बर्हिमुख हो रहे हैं, इन हमारे कर्त्तव्यों को देख कर आप अपनी दया नहीं हटा लेना । हम आपके सदके जाते हैं ।

अनाथों के आसिरा, निरधारौं आधार ।
निरधन का धन राम है, दादू सिरजनहार ॥६८॥

टीका :- हे सिरजनहार परमेश्वर ! आप अनाथों के नाथ स्वामी हो और निराधारों के आधार हो । और हम निर्धनों के धनरूप हो ।

दोहा :- कर कट्या अरू धन लुट्या, छूट्या नगर का बास ।
बैबल बाई यौं कहै, राम तुम्हारी आंस ॥६८॥

दृष्टान्त :- एक राजा के नगर में, कोई पाखण्डी भेखधारी नाम बराये साधु ने, नगर में भारी अपराध किया । राजा ने उसको देश निकाला दे दिया और शहर में ढिंढोरा करवा दिया कि जो कोई साधुओं की सेवा सत्कार करेगा, उसका सम्पूर्ण धन लूट लिया जायेगा और उसको नगर से बाहर कर दिया जायेगा । एक साहूकार के पुत्र की स्त्री राम की और साधुओं की अनन्य भक्त थी । वह एक साधु को रोज घर बुला कर पूजा करती । चरण धोकर चरणामृत लेती और फिर भोजन जिमा कर, उनका सीत प्रसाद ग्रहण करके

भोजन करती । जब साधु कोई नगर में नहीं आ सके, तो इसे सात रोज अन्न जल खाये हो गये । सास ससुर पति समझाई कि किसी तीर्थ पर जाकर, आप भंडारा कर देना । परन्तु उसने अपने नेम का त्याग नहीं किया । तब आठवें दिन भगवान, संत रूप धरके, जहां यह बाई बैठी थी, उस कमरे में पहुंच गये । संत को देखकर बाई हरी हो गई । तत्काल चरण धोकर चरणामृत लिया । पूजा की । पूजा करके, परक्रमा दी और नमस्कार करके बोली :- आज आठवें दिन महाराज, आपके दर्शन पाये हैं । संत बोले :- बाई ! हम भी आज आठ दिन से भोजन नहीं किया । बाई बोली :- महाराज, मुझे भी आठ दिन हो गये, भोजन किये । अब मैं तुरन्त भोजन लाती हूं । बाई थाल लगाकर, महात्मा जी के सामने रखा । महात्मा परमेश्वर के अर्पण करके पाने लगे । और कहा :- बाई ! यह सीत प्रसादी लो और आप भी थाली लगाकर, भोजन पाओ । जब महात्मा जी और बाई ने भोजन पा लिया, उसके बाद महात्मा बोले :- बाई ! अपने सत पर रहना, कष्ट आ जावे तो, घबराना नहीं । यह कहकर महात्मा जी हवेली से बाहर निकले और सबके देखते हुए, शहर में होके जा रहे हैं । लोगों ने पूछा :- महाराज ! आप कहां से आये ? संत बोले :- अमुक सेठ के घर भोजन करके आये हैं। इस बात का राजा को पता चला । राजा ने तत्काल साहूकार को बुलाया और बोले :- तुम्हारे घर तुमने किसी साधु को बुला कर भोजन कराया है ? साहूकार बोले :- नहीं अन्नदाता ! राजपुरुष बोले :- हमने देखा है, तुम्हारी हवेली से निकलता हुआ साधु, और उसको पूछा है । तब साहूकार ने अपनी पुत्र वधु की उपरोक्त सब कथा सुना दी । राजा ने उस लड़की को दरबार में बुलाई । उसकी गोदी में बारह महीने का एक लड़का था । उसने राजा को नमस्कार किया । राजा बोले :- तुमने किसी साधु को भोजन कराया है ? वह बोली :- हां मैंने कराया है, बुलाने मैं नहीं गई । भगवान ने भेजा और मेरा नेम रखा । राजा बोले :- तुम्हारा सेठ के घर में क्या है ? बाई बोली :- मेरा कुछ नहीं है । जो इस मेरे शरीर पर है, वही मेरा है । राजा बोले :- इसका सब जेवर उतार लो और दोनों हाथ कलम कर दो, और यह बच्चा इसकी गोदी में दो और इसको नगर के बाहर जंगल में छोड़ आओ । वैसा ही किया । यह जंगल में नदी के किनारे घूमने लगी, बच्चे को लिये । जब बच्चा रोने लगा, उसको जमीन पर डाल कर और गंगा जी की तरफ मुहं करके, यह सोचने लगी कि मेरे हाथों की ठूठ से पानी लेकर, इसके मुहं में डालूं, और बोली :-

कर कटा अरू धन लुटा, छुट्या नगर का बास ।
बैबल बाई यौं कहै, राम तुम्हारी आस ।।

यह कहकर ज्यों गंगा जी की तरफ दोनों हाथों की ठूठ फैलाई कि दोनों हाथ बन गये । यह देखकर राजा प्रजा सब, इसके दर्शन करने दौड़े चले आये । राजा के सहित सब प्रजा गण इसका दर्शन किया और परमेश्वर की समर्थाई को देखकर, धन्य धन्य कहने लगे । सबको ज्ञान हो गया कि सत की अवश्य विजय होती है । बाई को राजा के सहित सारी प्रजा हाव भाव से इसके घर में लाकर प्रवेश की ।

साहिब दर दादू खड़ा, निसदिन करै पुकार ।
मीरां मेरा मिहर कर, साहिब दे दीदार ।।६९।।

टीका :- ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हे साहिब ! हम तो अन्तःकरण रूपी आपके दरवार में खड़े होकर, बिरह से रात दिन आपको पुकारते हैं । हे हमारे महान प्रीतम ! आप हमको अपने बिरहीजन जानकर, अपना दर्शन दीजिए ।

दादू प्यासा प्रेम का, साहिब राम पिलाइ ।
परगट प्याला देहु भरि, मृत्तक लेहु जिलाइ ।।७०।।

टीका :- हे हमारे रामरूप साहिब ! हम बिरहीजन तो आपकी प्रेमा भक्ति रूप अमृत के और दर्शनों के ही प्यासे हैं । आप प्रगट होकर कृपा करो और हमारे इस विषयों में आसक्त हुए, आपकी तरफ से मरे हुए मन को, दर्शना अमृत पीलाकर जिलाओ ।

अल्लह आले नूर का, भरि भरि प्याला देहु ।
हमकूँ प्रेम पिलाइ करि, मतवाला करि लेहु ।।७१।।

टीका :- हे अल्लाह ! तल स्पर्श रहित परमेश्वर ! आपके शुद्ध स्वरूप का दर्शना अमृत रूप, प्रेम का प्याला पिलाकर, हम विरहीजनों को जगत की तरफ से रहित करके आप अपनी तरफ लेकर, हमको मतवाले बनाइये ।

तुम्ह को हमसे बहुत हैं, हमको तुमसे नांहि ।
दादू को जिन परि हरै, तूं रहु नैंनहु मांहि ।।७२।।

टीका :- हे स्वामिन् ! आपको तो हमारे जैसे सेवक बहुत हैं, परन्तु हम बिरहीजनों को आप जैसा स्वामी और कहीं भी नहीं मिल सकता है । इसलिए अब आप हमारा त्याग नहीं करना और आप हमारे सदैव नेत्रों में बसना ।

दोहा :- गज सिंह बीकानेर को, कियो बादशाह दूरि ।
द्वादस बर्ष सेवा करी, भूखो रह्यो हजूरि ।।७३।।

दृष्टान्त :- बादशाह अकबर ने बीकानेर के राजा गजसिंह को किसी कारण, अपने दरबार से मुक्त कर दिया । परन्तु राजा बारह वर्ष तक भूखा रहकर, प्रेम से बादशाह की सेवा करता रहा । फिर बादशाह अकबर ने उसको राज सेवा से मुक्त करके, उसका राज उसको दे दिया ।

तुम्हथैं ही तब होइ सब, दरस परस दर हाल ।
हमथैं कबहुं न होइगा, जे बीत्तहि जुग काल ।।७३।।

टीका :- हे समर्थ स्वामी ! आपसे तो तत्काल ही, आपका दर्शन हमको हो सकता है, परन्तु हम अपने करणी कर्त्तव्य से आपका दर्शन करना चाहें, तो अनेकों कालरूप जुग बीतने पर भी, हम आपका दर्शन नहीं पा सकते हैं ?

तुमहीं थैं तुमको मिलै, एक पलक मै आइ ।
हमथैं कबहु न होइगा, कोटि कलप जे जाइ ।।७४।।

टीका :- हे प्रभु ! आपकी कृपा से तो हम, आपको एक पलक में मिल सकते हैं । और हम अपने करनी कर्त्तव्य से तो, करोड़ कलप बीतने पर भी, आपको नहीं मिल सकते ।

दोहा :- ध्यान करे जन प्रीति सौं, बैठि आमलि हेठ ।
नारद सौं कही कब मिलै, पूछो हरि सौं नेंठ ।।७५।।

दृष्टान्त :- एक आमलि के नीचे बैठकर साधु परमेश्वर का ध्यान करता था । परन्तु मन में भक्ति का अहंकार ले रखा था । एक रोज नारद जी आये और संत को नमस्कार किया और बोले :- मैं नारद हूं, भगवान के पास कोई समाचार भेजने हों तो, मैं ले जाऊं । साधु बोले :-भगवान से बोल देना कि आपका खूब तप जप कर चुके हैं, आप उसको अब जल्दी दर्शन देकर, आपके धाम में ले आना । नारद जी भगवान से जाकर उपरोक्त सब कुछ सुना दिया । भगवान बोले--नारद जी ! मैं उसको अभी नहीं मिलूंगा । उसको आप बोल देना कि जितने इमली के पत्ते हैं, उतने तेरे जन्म और होगे, तब भगवान तेरे को दर्शन देंगे । जब नारद जी आकर, साधु से वही बात बोले--तब साधु एकदम भड़क उठा और माला को तोड़ डाली, आसन को फैंक दिया । और भगवान के नाम स्मरण को छोड़कर, खोटे करने लगा ।

(छिन बिछोह)

साहिब सूं मिलि खेलते, होता प्रेम सनेह ।
दादू प्रेम सनेह बिन, खरी दुहेली देह ।।७५।।

टीका :- हे साहिब ! यदि हमारे अन्तःकरण में बिरह के सहित, आपका पूर्ण प्रेम होता तो, बिरहीजन आपसे अभेद होकर खेलते । परन्तु पूर्ण प्रेम और आप परमेश्वर की प्रीति के बिना; यह हमारा शरीर, परम दुखदायक हो रहा है ।

साहिब सौं मिलि खेलते, होत्ता प्रेम सनेह ।
परगट दरसन देखते, दादू सुखिया देह ।।७६।।

टीका :- हे बिरहीजनों ! यदि हमारे अन्तःकरण में परमेश्वर का, बिरह के सहित पूर्ण प्रेम होता, तो हम बिरहीजन, परमेश्वर का प्रगट दर्शन पाकर, अपने शरीर में सुखी होते ।

(करुणा)

तुम्ह को भावै और कुछ, हम कुछ कीया और ।
मिहर करौ तौ छूटिये, नहीं तौ नांही ठौर ।।७७।।

टीका :- हे परमेश्वर ! आपको तो सरलता, निश्चलता, निश्कपटता, प्रेमभाव, प्रेमा भक्ति इत्यादिक सद्गुणयुक्त भक्त प्रिय, लगते हैं और हमने तो हे दयालु ! इनके विपरीत ही काम किए हैं, आप हमारे ऊपर दया करोगे तभी हमारा जन्म मरण आदि दुखों से छुटकारा होगा, नहीं तो हमको कहीं भी, ठिकाना नहीं हैं।

मुझ भावै सो मैं किया, तुझ भावै सो नांहि ।
दादू गुनहगार है, मैं देख्या मन मांहि ।।७८।।

टीका :- हे दयालु ! जो जो हमारे मन को व्यवहारिक काम प्रिय लगे, वह वह हो हमारे मन ने काम किये हैं । आपको प्रिय लगने वाले कोई भी काम हमने नहीं किये, इसीलिये हम आपके गुनहगार अपराधी हैं। मैंने मन में भली प्रकार से विचार कर देख लिया है कि हम आपके दरबार के सदैव, अपराधी बंदे हैं ।

खुसी तुम्हारी त्यूँ करौ, हम तो मानी हारि।
भावै बंदा बकसीये, भावै गहि करि मारि ।।८९।।

टीका :- हे स्वामिन् ! जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा ही आप हमारे साथ बर्ताव करें। हमतो सब प्रकार आपके सामने हार मान चुके हैं। क्योंकि हमने भारी भारी अपराध किये हैं। चाहे तो आप, हमको अपने अपराधी सेवक जानकर, हमारे अवगुणों को माफ करिये और चाहे आप हमको पकड़कर मारियें, सजा दीजिये। हम तो सब प्रकार आपके सामने हताल हो रहे हैं।

दादू जे साहिब लेखा लिया, तो सीस काटि सूली दिया।
मिहर मया करि फिलि किया, तौ जीये जीये करि जिया ।।८०।।

टीका :- हे साहिब ! यदि आप हमारे मनुष्य जन्म के कर्त्तव्यों का हिसाब लेओ, तो हम आपको देने में असमर्थ हैं। चाहे तो आप हमारा सिर काट लो, चाहे आप सूली पर चढ़ा दो, तो भी उन अपराधों का दण्ड पूरा नहीं हो सकता है। और आप अपने अपराधी सेवक जानकर 'मिहर' कहिये, क्षमा कर दो, तो हम जीकर, आप सब जीवों की जीवन रूप हो, आपके स्वरूप को प्राप्त हो सकते हैं।

दोहा :- **बर्स छत्तीस हजार लौं, करीं बंदगी सार।**
अदल किया उलटी पड़ि, फजल किया छुटकार ।।८०।।

दृष्टान्त :- एक तपस्वी ने छत्तीस हजार वर्ष तक तप किया। जब परमेश्वर के दरबार में वह पहुंचा, तो न्यायकारी परमेश्वर उसको बोले--तुमसे हिसाब लें या माफ कर दें। तपस्वी जी बोले :- महाराज ! आप हिसाब ले लो। तब परमेश्वर बोले :- कि तुम तप करके जब चले तो, एक नगर के किनारे पनघट के कुए पर, एक लड़की से जल पीने को मांगा था। उस लड़की ने तुम्हें कहा कि मेरे पतिदेव के पास थोड़ा ही जल रखके आई हूं। उनको जल की जरूरत है। मुझे देर हो जायेगी। आपको पिलाकर, फिर मुझे दुबारा और जल निकालना पड़ेगा, इसलिये आप मेरे घर चलो, वहां मैं आपको जल भी और भोजन भी दोनों आपको देऊंगी। तब तुम उस लड़की से बोले :- कि तुम मुझे एक लोटा जल का दे दो, मैं तुम्हें एक हजार वर्ष की तपस्या का फल देता हूं। तब उस लड़की ने तुम्हें, एक लोटा जल का दिया। और उसने हजार वर्ष की तपस्या का फल तुमसे लेकर, अपने पति को अर्पण कर दिया, तो छत्तीस पानी के लोटों में तो, तुम्हारे छत्तीस हजार वर्ष का

तप खत्म हो गया । तुममे तो मेरा पानी बहुत गिराया है, बहुत पिया है, बहुत स्नान किया है । पानी का हिसाब तो तुम पहले पूरा दे दो, उसके बाद और सब हिसाब लेंगे । तपस्वी जी कांपने लग गये और रोम खड़े हो गये, और नेत्रों में से आंसू बहाते हुए बोले :- हे नाथ ? आपको हिसाब कोई नहीं दे सकता है । जब आप हमको अपराधी जानकर क्षमा करोगे, तभी छुटकारा हो सकता है ।

(इति बिनती का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ साक्षीभूत का अंग ३५ ।।

"खुशी तुम्हारी त्यूं करौ, हम तो मानी हारि०"--इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, बिनती के अंग के तदनन्तर साक्षी स्वरूप का विचार करने के लिये, साक्षी भूत का अंग निरूपण करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवत: ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगत: ।।१।।

टीका :- हे सर्व के साक्षी रूप निरन्जन देव ! आपको हमारी बारम्बार नमो नमो है और जो गुरुदेव निरंजन को साक्षी रूप करके जाना है, उनको भी हमारी नमस्कार है । और सर्व ही संत जो उस परमेश्वर को साक्षीरूप जानकर, उसके स्मरण में लग रहे हैं, उनको भी हम बन्दना करते हैं । इस प्रकार हरि, गुरु, संतो को जो प्रणाम करते हैं, वह संसार से पार होकर, 'गत:' कहिये साक्षी रूप परमात्मा में अभेद होते हैं ।

(भ्रम विध्वंसण)

सब देखणहारा जगत का, अंतरि पूरै साखि ।
दादू स्यावत सो सही, दूजा औरन राखि ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह अधिष्ठान रूप चेतन परमात्मा, सब संसार के शुभ अशुभ कर्मों को भीतर साक्षीरूप से देखता रहता है और सर्व के अन्दर प्रेरणा करता है तथा सर्व का साक्षी है । उसी परमात्मा रूप साक्षी में अपनी वृत्ति को स्थिर कर और संसार के नास होने वाले पदार्थों में आसक्त मत हो ।

मांही थैं मुझकौं कहै, अन्तर जामी आप ।
दादू दूजा धंध है, सांचा मेरा जाप ॥३॥

टीका:- हे जिज्ञासुओ ! मांहीथैं कहिए, शरीर के भीतर अन्तःकरण में, वह अन्तर्यामी रूप साक्षी, प्रेरणा रूप उपदेश करते हैं कि सच्चा तो मेरा एक जाप ही है । माया और माया का कार्य रूप सब धन्धे जीव को फंसाने वाले हैं । अथवा संसार के वासनामय कर्म सब व्यर्थ हैं ।

(कर्त्ता साक्षीभूत)

करता है सौ करैगा, दादू साखी भूत ।
कौतिग हारा व्है रह्या, अणकरता अवधूत ॥४॥

टीका - हे जिज्ञासु ! 'साक्षीभूत' कहिए सबका कारण चेतन्य, वह अन्तर्यामी, 'कौतिगहारा' कहिये, तमास गिर होकर, आप विराट रूप, एकान्त दृष्टा अणकर्त्ता अर्थात् कूटस्थ चेतन्य, वह अवधूत, किसी माया और माया के कार्य से न धूताने वाला, सूत्र आत्मा रूप से, आप सबमें व्याप्त हो रहा है । उसी में अपनी वृत्ति को स्थिर कर ।

दादू राजस करि उतपति करै, सात्तिक करि प्रतिपाल ।
तामस करि परलै करै, निर्गुण कौतिगहार ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह निर्गुण साक्षी चेतन्य रजोगुण प्रधान, प्रकृति से, सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति करता है, और सतोगुण द्वारा, सबका पालन होता है, क्या तमोगुण प्रधान प्रकृति रूप से सबका संहार करता है ।

दादू ब्रह्म जीव हरि आत्मा, खेलैं गोपी कान्ह ।
सकल निरन्तर भरि रह्या, साखी भूत सुजाण ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह साक्षी चेतन्य, आप स्वयं ब्रह्म और जीव रूप से, तथा हरि और आत्मा रूप से, गोपी और कृष्ण की भांति खेल, खेल रहे हैं । और हे सुजाण साधक ! वही साक्षी चेतन्य, सबमें परिपूर्ण रूप से व्याप्त हो रहे हैं ।

(स्वकीय मित्र शत्रुता)

दादू जामन मरणा सानि करि, यहु पिंड उपाया ।
सांई दिया जीव कूं, ले जग मै आया ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह चेतन रूपी जीव, परमात्मा का दिया हुआ, प्रारब्ध कर्म अनुसार, जन्मने मरने वाले शरीर रूपी पिंड को लेकर, जगत में आया है। फिर जैसे कर्म करता है, वैसे आगे, मित्र और शत्रु तैयार होते रहते हैं।

दादू बिख अमृत सब पावक पाणी, सतगुरू समझाया।
मनसा बाचा कर्मणा, सोई फल पाया ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! सत् उपदेश के देने वाले सतगुरू ने, अपने सत् उपदेशों द्वारा, परमार्थ और व्यवहार का मार्ग बताया है, और विचारवान साधक, स्वयं विचार करके, सतगुरू के बताये हुए मार्ग को समझे। विष अमृत कहिए, माया और माया का कार्य प्रपंच में आसक्ति, विष के समान है। और परमेश्वर का नाम स्मरण, अमृत के तुल्य है। क्रोध अग्नि रूप है, और शांति जलरूप है। जैसे जैसे राजस सात्विक तामस कर्म करता है, वैसे वैसे यह जीव फल भोगता रहता है।

दादू जाणै बूझै जीव सब, गुण औगुण कीजे।
जानि बुझि पावक पड़ै, दई दोसन दीजे ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जीव गुण और अवगुण अर्थात् पाप और पुण्य को जानता है, भली प्रकार समझता है, जैसे कोई अग्नि में जान बूझकर पांव रखै, तो जलेगा ही। इसी प्रकार जीव, शुभ अशुभ जैसे कर्म करेगा, उनका वैसा ही फल भोगेगा। इसमें ईश्वर को दोष नहीं देना चाहिये।

मन ही मांहै व्है मरै, जीवै मन ही मांहि।
साहिब साखी भूत है, दादू दूसण नांहि ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह जीव चेतन मन के द्वारा, वासना से निसिद्ध कर्मों में प्रवृत्त होकर, जन्मता मरता है। और अपने अधिष्टान चेतन का विचार करके, सदा सजीवन भाव को प्राप्त हो जाता है। और वह परमात्मा चेतन्य, साक्षी रूप से सम्पूर्ण भूतों में, स्थित हो रहा है। जीव के कर्म फल का उसे कोई दोष नहीं लगता है।

बुरा भला सिर जीव के, होवै इस हीं मांहि।
दादू कर्त्ता करि रह्या, सो सिर दींजै नांहि ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! इस शरीर के भीतर, चिदाभास युक्त अन्तःकरण में ही, शुभ अशुभ पाप पुण्य उत्पन्न होते हैं । उसके अनुसार ही, सृष्टिकर्त्ता ईश्वर फल देता है ।

(साधु साक्षीभूत)

कर्त्ता व्है करि कुछ करै, उस मांहि बंधावै ।
दादू उसको पूछिये, उत्तर नहिं आवै ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यदि 'कर्त्ता' कहिए सबका कारण चेतन्य ही, आप सब शुभ अशुभ करके, स्वयं चेतन्य रूप जीव, उस कर्त्ता रूप अहंकार में बांध जावे, तो कैसे ठीक है ? क्योंकि कर्त्ता तो सब शुभ अशुभ कर्म रूप बन्धनों से, अलग रहता है ।

दोहा :- कुंड खणायो खोद करि, जतीं घाट नही कीन्ह ।
गाय मरी बासव कही, हत्या मम क्यूं दीन्ह ॥१२॥

दृष्टान्त :- एक नगर में जती जी बहुत पैसे वाले थे । उसी नगर में एक वेदान्ती संत भी आकर प्रवचन करने लगे । सभी लोग प्रवचन में जाते । एक रोज जती जी भी गये । जती जी को प्रवचन अच्छे लगे, फिर तो रोज ही जाने लगे । महात्मा जी को किसी ने कहा कि जती जी बहुत पैसे वाले हैं । महात्मा बोले :- जती जी आपके पास पैसा है इसका आप क्या करोगे ! कुछ जन समुदाय की सेवा में खर्च कर दो । जती जी बोले :- कहां लगाऊं ? महात्मा बोले :- अमुक स्थान पर एक जलाशय कुण्ड बना दो । जती जी ने खूब पैसा लगाकर, प्रेम से कुण्ड बनवा दिया । परन्तु उसके गऊ घाट नहीं रखा । ग्रीष्म काल में एक गऊ प्यास से घबराई हुई कुण्ड के चारों तरफ घूमने लगी । जब रास्ता न मिला तो पानी देखकर, पानी पीने को सीढ़ियों से उतरती समय गिर गई और खत्म हो गई । वह गऊ हत्या जती के पास आई और बोली :- आप मुझको धारण करो । जती जी बोले :- तुम पानी के लिये गिरी हो, इन्द्र के पास जाओ; इन्द्र भोगेगा, इन्द्र ने पानी बरसाया है । जब इन्द्र के पास गई, इन्द्र बोले :- चलो तुम कुण्ड पर, मैं आता हूं । सायंकाल जती जी कुण्ड पर रोज जाया करते थे और कुण्ड को देखकर मन में राजी होते और सोचते कि मैंने कितना पैसा लगाया है ! मेरे जैसा कुण्ड कौन बनाएगा ? जती जी कुण्ड पर बैठे थे । इन्द्र मनुष्य रूप में आये और कुण्ड के चारों मेर घूमने लगे और बोले :- धन्य हो ! किस महात्मा ने इतना पैसा लगाकर, यह कुण्ड बनाया है ? उसको तो स्वर्ग की प्राप्ति होगी ? पुनः पुनः कहने लगे । तब जती जी बोले अरे ! मैंने लगाया है और किसने लगाया है ? अभी तो मैं जिन्दा बैठा हूं । इन्द्र बोले :- यह गऊ हत्या मेरे पास क्यों भेजी ? आप तो कर्त्ता हो रहे हो, तो गऊ घाट क्यों नहीं बनाया ? जती जी चुप हो गये, और गऊ हत्या का पाप भोगना पड़ा । जब जीव कर्त्ता होकर कर्म करता है तो, उसके फल को भी भोगता है ।

दादू केई उतारैं आरती, केई सेवा करि जांहि।
केई आइ पूजा करैं, केई खुलावैं खांहि ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! कई संसारिक जीव सकाम कर्मी, मन्दिरों में जाकर आरती उतारते हैं और कई जाकर सकाम सेवा करते हैं। कई वासनाओं को लेकर पूजा करते हैं। कई फल इच्छा से संतों को भोजन कराके, आप खाते हैं। परन्तु यह दिखावटी और सकाम सेवा पूजा आदि, विशेष फल देने वाले नहीं हैं।

केई सेवग व्है रहे, केइ साधु संगति मांहि।
केई आइ दरसन करैं, हमथैं होता नांहि ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! कई संसारिक प्राणी, अनेक प्रकार की वासना लेकर, सेवक बन रहे हैं। वैसे ही कई साधुओं की संगति करते हैं। कितने ही आ आकर दर्शन करते हैं, परन्तु निष्कामी अन्तर्मुखी संतजन, इन बहिरंग दिखावटी सब कर्मों का, त्याग किया है।

नां हम करैं करावैं आरती, नां हम पिवैं पिलावैं नीर।
करै करावै सांईयां, दादू सकल सरीर ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! मुक्तजन अन्तर्मुखी संत कहते हैं कि न तो हम बहिरंग आरती करते हैं, और न कराते हैं, वैसे ही न हम पीते हैं, और न पिलाते हैं। कर्त्ता करने वाला, कराने वाला, हमारे तो केवल अधिष्ठान चेतन्य ही है। वह सब शरीरों में सूत्र आत्मा रूप से व्यापक हो रहा है। ऐसे मुक्त पुरुष व्यष्टि अहंकार से रहित होकर, समष्टि चेतन में अभेद हो गये हैं।

करै करावै सांईयां, जिन दीया औजूद।
दादू बन्दा बींचि मैं, सोभा कूं मौजूद ॥१६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! मुक्तपुरुषों का निश्चय रूप यह व्यवहार है कि जिस समर्थ ने यह औजूद, यह शरीर दिया है, वही इसमें कर्त्ता कराने वाला आप है। अपने अनन्य दासों के अन्तःकरण में स्थित होकर, उनको संसार में शोभा दिलाते हैं, परन्तु वह अनन्य दास, अपने को कर्त्ता नहीं मानते।

देवै लेवै सब करै, जिन सीरजे सब कोइ।
दादू बन्दा महल में, सोभा करै सब कोइ ॥१७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जिसने तीन लोक और चौदह भवन रचे हैं, वही समर्थ इनमें निवास करने वाले, जीवों को प्रारब्ध कर्मानुसार देते लेते हैं । परन्तु अनन्य भक्त तो अन्तःकरण रूपी महल में, निष्काम स्मरण रूप सेवा में लगे हैं । और संसार में सभी लोग, उन भक्तों की शोभा करते हैं ।

(कर्त्ता साक्षीभूत)

दादू जुवा खेलै जाण राये, ताकौं लखै न कोइ ।
सब जग बैठा जीति करि, काहू लिप्त न होइ ॥१८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह जाणराय अन्तर्यामी, घट घट की जानने वाले परमात्मा, आप स्वयं सम्पूर्ण बाजी रचकर आप ही खिलाड़ी बन रहा है । किन्तु अज्ञानरूप आवरण होने से, साधारण प्राणी उसको देख नहीं सकते और वह आप स्वयं कूटस्थ चेतन्य, सबको जीत कर साक्षीरूप से स्थित हो रहे हैं । और किसी भी बन्धन से, वे बंधे हुए नहीं हैं ।

(इति साक्षीभूत का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ बेली का अंग ३६ ।।

"सब जग बैठा जीति करि, काहू लिप्त न होई०" -इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप, साक्षीभूत अंग के तद्नन्दर अब बेली के अंग का निरूपण करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरूदेवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारंगतः ।।१।।

टीका :-अब हरि, गूरू संतो को नमो नमस्कार बन्दना करके, बेली का स्वरूप प्रतिपादन करते हैं ।

दादू अमृत रूपी नांव ले, आतम तत्त पोखै ।
सहजैं सहज समाधि मैं, धरणी जल सोखै ।।२।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! निर्वासनिक निष्काम भाव से आत्म स्वरूप परमेश्वर का, अभेद निश्चय रूप नाम स्मरण रूप अमृत, काल से छुड़ाने वाला, अन्तःकरण चतुष्टय की चारी अवस्थाओं (जागृत, स्वप्न, सुसुप्ति, तुरिया) में, आत्माकार वृत्ति की दृढ़ता स्थिति से, आत्म तत्व की भावना रूप बेली को पोषण करता रहै, और निर्द्वन्द सहज समाधि में स्थित होकर, धरती रूप शरीर में, नाम स्मरण रूप जल को पीता रहै ।

पसरै तीन्यूं लोक मैं, लिपत नहीं धोकै ।
सौ फल लागै सहज मैं, सुन्दर सब लोकै ।।३।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! ब्रह्म अनुसारणी वृतिरूप बेली, अर्थात् असत्य नाम रूप संसार में सत्य की कल्पना और सत्य में असत्य की कल्पना करके, वृति धोखे में नहीं आवै । उस वृति का प्रवाह, स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर से आगे बढ़कर, कूटस्थ रूप वृक्ष पर 'पसरै' कहिए, स्थिर होवै और फिर पंच कोषमय शरीरों के अध्यास में, वृत्ति को आसक्त न होने देवै, तो फिर इस वृति के जीव ब्रह्म की एकता रूप, ज्ञान फल लगता है । यही फल तीन लोक और चौदह भवन में, सबसे उत्तम है ।

दादू बेली आत्मा, सहज फूल फल होइ ।
सहजि सहजि सतगुरू कहैं, बूझै बिरला कोइ ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अन्तःकरण की आत्माकार वृति रूप बेली, सहज समाधि में स्थित होने पर, इसके निष्काम भक्ति रूपी फूल और ज्ञान रूपी फल लगता है । सत्य उपदेश के देने वाले ब्रह्मनिष्ठ सतगुरू ने, सहज सहज, इस बेली को अपने अनुभव रूप उपदेश जल से सींचते हैं । उपरोक्त फल फूल लगने वाली बेली को, अपने प्रयत्न से ब्रह्माकार बनाते हैं । परन्तु इस सतगुरू के भेद को, कोई उत्तम जिज्ञासु ही जानते हैं ।

जे साहिब सींचै नहीं, तो बेली कुमलाइ ।
दादू सींचै सांइयां, तो बेली बधत्ती जाइ ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! ब्रह्मनिष्ठ सतगुरू जिज्ञासु की वृत्ति रूप बेली को, अपने सत्य उपदेश रूपी जल से नही सींचै, तो साधक की वृक्तिरूप बेली मुरझाती है, अर्थात् उदास रहती है । और सतगुरू भक्ति वैराग्य ज्ञान रूपी जल से सींचते रहैं, तो यह बेली साक्षी कूटस्थ रूप वृक्ष पर, अपना विस्तार करती रहती है । अर्थात् स्वरूपाकार बनी रहती है ।

हरि तरवर तत्त आत्मा, बेली करि बिसतार ।
दादू लागै अमर फल, कोइ साधू सींचणहार ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! कूटस्थ साक्षीरूप हरि तो वृक्ष हैं और जिज्ञासु की आत्माकार वृत्ति बेली है । जैसे वृक्ष का सहारा लेकर बेली पनपती है, वैसे ही साधक की चेतन्य रूप बेली, कूटस्थ साक्षी का विचाररूपी आसरा लेकर स्वरूपाकार विस्तार को प्राप्त होती है । उस बेली के ज्ञान रूपी अमृत फल लगता है, परन्तु इस बेली को कोई सच्चे काच बाच निष्कलंक ब्रह्मनिष्ठ संत, कोई कोई अपने उपदेशों से सींचने वाले होते हैं ।

दादू सूका रूखड़ा, काहे न हरिया होइ ।
आपै सींचै अमी रस, सु फल फलिया सोइ ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह स्थूल शरीर रूपी वृक्ष, ज्ञान भक्ति रूप जल प्राप्त किये बिना, सूख रहे हैं। अब किस प्रकार हरे होवें ? यदि उत्तम भाग से, सच्चे ब्रह्मनिष्ठ सतगुरु मिलें और वे अपने सत्य उपदेश अमृत रूप जल से सीचें, तो फिर उन शरीर रूपी वृक्षों के ज्ञान अमृत रूप फल लगें ।

कदे न सूकै रूखड़ा, अमृत्त सीच्या आप ।
दादू हरिया सो फ फलै, कछु न व्यापै ताप ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो चतुर साधक, इस काया रूप वृक्ष को अर्थात् अन्तःकरण में, निष्काम नाम चिन्तन रूप जल से सींचै, तो भाव भक्ति रूप हरियाली वाला बना रहै, और आत्म परचै रूपी ज्ञान फल से फलै। फिर उस फल को उत्तम साधक खाकर, जन्म मरण रूप संताप से मुक्त होवै ।

जे घट रोपै राम जी, सींचै अमी अघाइ ।
दादू लागै अमर फल, कबहू सूकि न जाइ ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! जो उत्तम साधक, इस घट रूप अन्तःकरण में, निर्गुण ब्रह्मरूप राम को धारण करै अथवा इस शरीर को अद्वैत सतसंग में रोपै, और फिर अन्तःकरण में अद्वैत नाम चिन्तन रूप प्रवाह बहावै। फिर इस प्रकार तृप्त होने से, जीवन मुक्ति रूप अखंड फल, इस मनुष्य शरीर में प्राप्त होता है । उसका मनुष्य जन्म फिर व्यर्थ नहीं जाता ।

दादू अमर बेलि है आत्मा, खार समंदां मांहि ।
सूकै खारे नीर सौं, अमर फल लागै नांहि ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! 'अमर बेलि' कहिए साधक की अन्तर्मुख वृत्ति, संसार में आसक्ति रखने वाली, विषय वासना रूपी खारे जल को पीकर, आत्म भावना की तरफ से सूक गई है। उस बुद्धिरूप बेलि के, ज्ञान अमृत रूप फल नहीं लगता है ।

दादू बहुगुण बंती बेली है, ऊगी कालर मांहि ।
सींचै खारे नीर सौं, ताथैं निपजै नांहि ॥११॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! बुद्धि रूपी बेली बहुत गुणवान है । परन्तु विषय वासना रूप कालर भूमि में स्थिर हो रही है । और इन्द्रियों के विषय रूपी खारे नीर को पीकर क्षीण होती जाती है । वह बुद्धि ब्रह्म अनुसारणि नहीं बनती, इसीलिये अमर फल से वंचित रहती है ।

बहुगुण वंती बेली है, मीठि धरत्ती बाहि ।
मीठा पानी सींचिये, दादू अमर फल खाइ ॥१२॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! मनुष्य की बुद्धिरूपी बेली बहुत गुणवान है । इसको सतसंग रूपी मीठी धरती में लगाइये । और फिर निष्काम नाम स्मरण रूपी, मीठे जल से सींचिये । फिर उस बुद्धि रूप बेली का ज्ञान अमृत रूपी फल खाकर, साधक जीवन मुक्त हो जाता है ।

अमृत बेली बाहिये, अमृत का फल होइ ।
अमृत का फल खाइ करि, मुवा न सुणीया कोइ ॥१३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! अन्तर्मुख विवेक बुद्धि रूप बेली को, निष्काम भक्ति में लगाइये, तो फिर उस बुद्धि रूप बेली के ज्ञानरूपी अमृत फल लगेगा । उसको भक्षण करने वाले उत्तम साधक, न तो कोई मरे हैं और न आगे मरेंगे । जीवन मुक्त हो जावेंगे ।

दादू बिख की बेली बाहिये, बिखहि का फल होइ ।
बिखहि का फल खाइ करि, अमर नहीं कलि कोइ ॥१४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! बहिर्मुख बुद्धि रूप बेली कुसंग में लगी हुई, विषय रूपी जल को पाकर, चौरासी में, जीव जाते हैं । फिर चौरासी के दुखों को भोगते रहते हैं । वह जीव कलयुग में कोई भी अमर नहीं होते ।

सतगुरू संगति नीपजै, साहिब सींचणहार ।
प्राण बिरख पीवै सदा, दादू फलै अपार ॥१५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! यह बेली सतगुरू की संगति से उत्तम साधक के अन्तःकरण में पनपती है और साहिब परमात्मा की दया रूपी जल से यह पुष्ट होती है । इस प्रकार प्राण रूप वृक्ष, ईश्वर की दया और सतगुरू के सत्य उपदेश रूपी जल को पीकर, अपार मुक्ति रूप फल को प्राप्त होता है ।

दया धर्म का रूखड़ा, सत सौं बधता जाइ ।
संतोष सौं फूलै फलै, दादू अमर फल खाइ ।।१६।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! दया रूप धर्म का वृक्ष, सत्य स्वरूप परमात्मा का नाम स्मरण रूप जल प्राप्त करके, हरा भरा रहता है, और फिर संतोष के द्वारा, भक्ति रूप फूल, और ज्ञान वैराग्य रूपी फल को प्राप्त करता है । उस फल को उत्तम साधक भक्षण करके, जीवन-मुक्त होते हैं ।

दोहा :- कोइ नृप के तन कोढ हो, हंस दरस के काज ।
सदाव्रत पक्षीन दीयो, सुन आये खगराज ।।१६।।

दृष्टांत :- एक राजा के शरीर में कोढ़ हो गया । उससे राजा का शरीर जलता रहता । एक महात्मा ने बताया कि हंस का दर्शन करने से, यह बीमारी नष्ट हो जाएगी । राजा ने पूछा :-हंसों का दर्शन कैसे होवै ? महात्मा बोले :- पक्षियों को सदाव्रत दिया करो, अर्थात् भोजन दिया करो । कभी हंस भी आ जावेंगे और उनका दर्शन पा लोगे । राजा वैसे ही करने लगा । एक समय मान सरोवर पर अकाल पड़ गया । हंस हंसनी उड़ते हुए, सदाव्रत के लिए इस राजा के यहां आ गये । राजा आये और उनको मोतियों का भोजन दिया । और उनका दर्शन करते ही, राजा का कोढ निवृत्त हो गया ।

दोहा :- दाता तरवर दया फल, उपगारी जीवन्त ।
पक्षी चले दिसावरां, वृक्षा सुफल फलन्त ।।

धर्मात्मा वृक्ष रूप हैं, उनके दया रूपीफल है । ऐसे उपकारी संसार में जीवित हैं । पक्षी हंस हंसनी ने आशीर्वाद दिया कि हे वृक्ष रूप राजा ! तूं हमेशा सुन्दर फलों से फलता फूलता रहना । यह कहकर मान सरोवर को उड़ चले ।

(इति बेली का अंग टीका सहित, सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ अबिहड़ का अंग ३७ ॥

"दादू अमर फल खाइ०"--इस सूत्र के व्याख्यान स्वरूप बेली के अंग के तद्नन्तर, अब अबिहड़ के अंग का निरूपण करते हैं ।

(मंगलाचरण)

दादू नमो नमो निरंजनम्, नमस्कार गुरू देवतः ।
बन्दनम् सर्व साधवा, प्रणामं पारगंतः ॥१॥

टीका :- अब हरि, गुरू, संतों, को नमो, नमस्कार, बन्दना प्रणाम आदि करके 'अबिहड़' कहिये न बदलने वाले स्वरूप निरंजन देव,, अर्थात् उस एक अद्वैत अविनाशी ब्रह्मतत्व का विचार करने के लिए, अज्ञान से पार होकर, नित्य संयोग को समझ कर, उस ब्रह्म में अभेद होते हैं ।

दादू संगी सोई कीजीये, जे कलि अजरावर होइ ।
नां वहु मरै न बीछूटै, नां दुख व्यापै कोइ ॥२॥

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उसी को अब साथी बनाइये, जो इस कलि संसार में, अजर अमर स्वरूप है, वह न तो मरता है और न बिछुड़ता है । न उसको किसी प्रकार का दुख व्याप्त होता है ।

दादू संगी सोई कीजिये, जे सुथिर इहि संसार ।
नां वहु खिरै न हम खपैं, ऐसा लेहु बिचार ॥३॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! उस अविनाशी आत्म स्वरूप परमात्मा को अपना संगी बनाइये, जो इस संसार में सदैव स्थिर रहता है । न तो वह कभी खिरता है और उसका संग करके, न हम मुक्त पुरुष, उसमें अभेद होकर, नष्ट ही होते हैं । ऐसे अविनाशी स्वरूप का विचार करके, हे मुमुक्षुओ ! उसी के साथ अपनी वृत्ति को लगाओ ।

दादू संगी सोई कीजिये, सुख दुख का साथी ।
दादू जीवण मरण का, सो सदा संगाती ॥४॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह अविनाशी समर्थ परमेश्वर, सच्चा साथी है । उसी का संग कहिये शरणा लेना चाहिये । क्योंकि जन्म से मरण पर्यन्त, सुख दुख में, वही इस जीव का साथ देता है और सदैव वह इसके साथ रहता है ।

दोहा :- मित्र मृग मुसा जिसे, काग कछू चहुं यार ।
दुख सुख में बिहड़ै नहीं, त्युं हरिजन हरि लार ॥४॥

दृष्टान्त :- कव्वा मृग इनकी मित्रता थी । सच्चे मित्र जानकर, एक मुसा भी आकर, उनका मित्र बन गया । चोथा कछुवा एक नदी के किनारे, इन तीनों से बोला :- कि आप लोग भी, मुझे अपना मित्र बना लो । बना लिया । यह चारों आपस में सुख दुख में एक को एक साथ देते रहे । कभी भी मित्र से मित्र अलग नहीं हुए । इसी प्रकार हरिजन जो भक्त हैं, उनसे कभी भगवान भी अलग नहीं होते हैं । उनकी रक्षा करते है । यह दृष्टान्त पहले आ चुका है ।

दादू संगी सोई कीजिये, कबहू पलटि न जाइ ।
आदि अंति बिहड़ै नही, तासन यहु मन लाइ ॥५॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! ऐसा साथी बनाइये, जिसका कभी परिवर्तन नहीं होता है । और काल से आदि से अन्त पर्यन्त, कभी भी नाश को नहीं प्राप्त होता । ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप, अधिष्टान चेतन से अपना मन लगाइये ।

दादू अबिहड़ आप है, अमर उपावणहार ।
अविनासी आपै रहै, बिनसै सब संसार ॥६॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! आप सृष्टि रचिता परमेश्वर अविनासी, वह आप स्वयं न बदलने वाला है। और बाकी माया और माया का कार्य सम्पूर्ण संसार, परिवर्तनशील है। उसी अमर पुरुष में अपने मन को लगाकर, अमरभाव को प्राप्त होइये।

दादू अबिहड़ आप है, सांचा सिरजनहार।
आदि अंति बिहड़ै नहीं, बिनसै सब आकार ॥७॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह सत्य स्वरूप परमात्मा अपरिवर्तनिय है और आदि से अन्त तक चेतन्य शक्ति एक रस रहती है, कभी उसका उत्पत्ति नाश नहीं होता। काल का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अपने मन को उसी में लगा।

दादू अबिहड़ आप है, अविचल रह्या समाइ।
निहचल रमिता राम है, जो दीसै सो जाइ ॥८॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! 'अबिहड़' कहिए, आप स्वयं न बदलने वाला परमात्मा अविनासी, अचल, कृपालु सर्वव्यापक, एक रस, निर्गुण राम है। 'जो दीसै सो जाइ' —अर्थात् नामरूप आकार वाली सम्पूर्ण वस्तु, काल पाकर वह सब नष्ट हो जाती है। इसलिये उस चेतन्य स्वरूप में अपने मन को लगाओ।

दादू अबिहड़ आप है, कबहूं बिहड़े नांहि।
घटै बधै नहीं एक रस, सब उपजी खपै उस मांहि ॥९॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! आप स्वयं सत्यस्वरूप परमात्मा न बदलने वाला है। कभी भी उसके चेतन्य स्वरूप में परिवर्तन नहीं आता है। वह न तो कभी घटता है, न कभी बढ़ता है, उसका सदैव एक रस स्वरूप रहता है। नाम रूप सम्पूर्ण वस्तु मायावी, उसी में उत्पन्न होती हैं और उसी में समय पाकर, विलय हो जाती है। जैसे फैन तरंग बुदबुदे लहर जल से उत्पन्न होकर जल में ही विलय होते रहते हैं।

अबिहड़ अंग बिहड़ै नहीं, अपलटी पलटि न जांइ।
दादू अघट एक रस, सब मै रह्या समाइ ॥१०॥

टीका :- हे जिज्ञासु ! वह चेतन्य ब्रह्मस्वरूप कूटस्थ, कभी पलटता नहीं है। और न उसमें आने जाने

रूप क्रिया ही है । और फिर 'अघट' कहिये वह बेसी कमती भाव को, कभी प्राप्त नहीं होता । सबमें सूत्र आत्मारूप से समा रहा है, उसी में अपने मन को लगाइये ।

(अन्त समय की साखी)

जेते गुण व्यापे जीव को, ते ते तैं तजे रे मन ।
साहिब अपणे कारणैं, भलो निबाह्यो प्रण ।।११।।

टीका :- ब्रह्मऋषि जगत्गुरू दादू दयाल जी महाराज कहते हैं कि हे मन ! जितने गुणों के विकार, विषय वासना अनात्म अहंकार आदि तैंने त्यागे, अपने स्वस्वरूप ब्रह्म प्राप्ति के लिये । यह तैंने अपना प्रण बहुत अच्छा निभाया, इस मनुष्य देह में । अपनी प्रतिज्ञा पूरी करी तैंने, तुझे धन्यवाद है । यह साखी अन्त समय में, परमगुरू देव महाराज ने उच्चारण करी थी ।

(इति अबिहड़ का अंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

* * *

"अनन्त विभूषित श्री ब्रह्मऋषि जगत्गुरू दादू दयाल जी महाराज की अनुभव बाणी", पूर्वार्द्ध भाग की सजीवनी टीका दृष्टान्तों सहित रची :-

महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ पंडित स्वामी भूरादास नें ।

इतिः- शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !

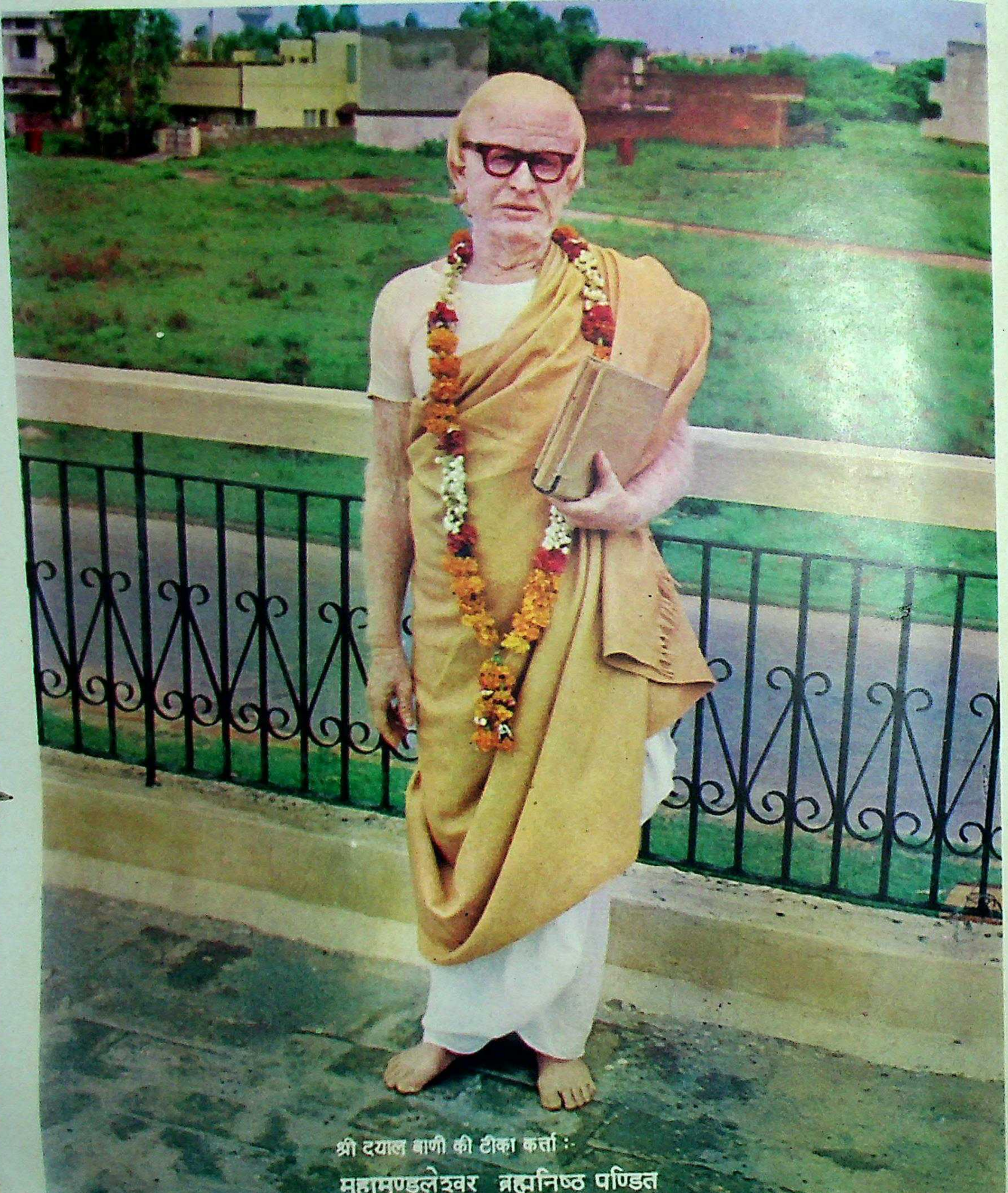

श्री दयाल बाणी की टीका कर्ता :-

महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ पण्डित
श्री १०८ स्वामी भूरादास जी महाराज ।

॥ दोहा ॥

बन्ध हरण सुख करण, श्री दादू दीनदयाल ।
पढ़ै सुणै जो ग्रन्थ यह, ताके हरहु जंजाल ॥

अनन्त विभूषित श्री ब्रह्मऋषि जगत्गुरू दादू दयाल महाराज़ की अनुभव बाणी (शब्द)

(श्री राम जी सत्य)

॥ अथ राग गौड़ी १ ॥

1. सूमिरन सूरातन नाम निश्चय

राम नाम नहिं छाड़ूँ भांई, प्राण तजौं निकट जिव जाई ॥टेक॥
रत्ती रत्ती करि डारै मोहि, सांई संगी न छाड़ौं तोहि ।
भावै ले सिर करवत दे, जीवन मूरिन छाडौं ते ।
पावक में ले डारै मौहि, जरै सरीर न छाड़ौ तोहि ।
अब दादू ऐसी बनि आई, मिलौं गोपाल निसान बजाई ।

टीका :- हे जिज्ञासु ! नाम स्मरण में दृढ़ निश्चय पूर्वक शूरवीरता दिखा रहे हैं । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि चाहे हम प्राणों का भी त्याग कर सकते हैं । चाहे निकट भविष्य में ही हमारा जीव, शरीर को त्याग कर चला जाय, तो भी हम राम नाम को नहीं त्यागेंगे । चाहे शरीर के 'रत्ती रत्ती' कहिए टुकड़े टुकड़े कर डालें, चाहे मोरध्वज की भांति सिर पर आरा चलावें, भक्त प्रहलाद की भाँति चाहें शरीर को अग्नि में डाल कर जलावें, तो भी हम जीवन के मूल, उस परमेश्वर का स्मरणरूप संग नहीं छोड़ेंगे । अब तो हमारी ऐसी अवस्था हो गई है कि हम नाम रूप निशान चढ़ाकर, भक्ति रूप नगाड़ा बजाकर, भगवान से मिलेंगे ।

दोहा :- चातक मीन पतंग मृग, सत्ती सूर दात्तार ।
हरिजन ये इक ते लगे, होहि यश संसार ।।१।।

---

2. अन्य उपदेश

राम नाम जिन छाड़ै कोई, राम कहत जन निर्मल होई ।।टेक।।
राम कहत सुख संपति सार, राम नाम तिरि लंघै पार ।
राम कहत सुधि बुधि मति पाई, राम नाम जिन छाड़हु भाई ।
राम कहत जन निर्मल होई, राम नाम कही कुसमल धोइ ।
राम कहत को को नहिं तारे, यहु तत्त दादू प्राण हमारे ।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! राम नाम के स्मरण को हृदय से कोई भी नहीं त्यागना, क्योंकि राम नाम का स्मरण करने से, हे जनो ! अन्तःकरण निर्मल होता है । राम का स्मरण करने से सब प्रकार के सुख, देवी सम्प्रदा की सार सम्पत्ति रूप गुण प्राप्त होते हैं । राम नाम के स्मरण से संसार समुद्र से पार हो जाते हैं । राम नाम के स्मरण करने से ही, बुद्धि शुद्ध होकर, ब्रह्म अनुसारिणी मति बनती है । इसलिये हे भाई ! राम नाम के स्मरण का कोई भी त्याग नहीं करना । राम का स्मरण करने वाले जन, निर्मल, पाप रहित होते हैं । राम का स्मरण करने वालों को राम ने, सभी को तारे हैं । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि राम नाम रूपी तत्व, हमारे प्राणों से भी प्रिय है ।

दोहा :- इन दोउ जन में शीरै, सो जो हरि में रहै समाइ ।
कहि जगजीवन लीन मन, आनन्द अंगन माइ ।।२।।

दोहा :- सात पहर सुमरण करै, एक पहर कृत्त देह ।
कह जगजीवन बंदगि, परम पुरष से नेह ।।२।।

दोहा :- एक पहर सुमरण करै, सात पहर सतसंग ।
कहि जगजीवन बदंगी, हरि से लागा रंग ।।२।।

3. सुमिरन उपदेश

मेरे मन भैया राम कहो रे, राम नाम मोहि सहज सुनावै,
उन हि चरण मन लीन रहौ रे ।।टेक।।
राम नाम ले संत सुहावै, कोई कहै सब सीस सहो रे ।
वाही सौं मन जोरे राखौ, नीकै रासि लिये निवहौरे ।
कहत सुनत तेरो कछू न जावै, पाप निछेदन सोइ लहोरे ।
दादू रे जन हरि गुण गावो, कालहि जालहि फेरि दहौरे ।

टीका :- हे हमारे भईया मन ! राम नाम का स्मरण कर । जो हमको राम नाम की महिमा स्वभाव से ही सुनाते हैं, उन संतों के चरणों में लीन रहो । राम नाम का स्मरण करने से ही संत सुहावने लगते हैं, और कोई बहिरंग पुरूष कुछ खोटा शब्द कहै, तो उसको सहन कर लो । और अपने मन को नाम स्मरण में लगा कर रखो । राम नाम स्मरण रूपी रास को धारण करके, जीवन को सफल बनाओ । राम नाम के कहने में और सुनने में तेरा कुछ नुकसान नहीं है, फायदा ही है । पापों का छेदन करने वाला जो राम नाम है, उसको कायक वाचक मानसिक क्रिया से स्मरण करो । ब्रह्मऋषि कहते हैं हे जनो ! पापों को हरने वाले हरि रूप राम के गुण गाओ । इस प्रकार फिर तुम, काल और काल के जाल को 'दहो' कहिये, नास करो ।

दोहा :- सज्जन सु समझ स्नेह कर, सज्जन देख सुबोल ।
जण जण सेति जिन करे, निकस जायगो मोल ।।३।।

---

4. बिरह

कौंण विधि पाइये रे, मीत हमारा सोइ ।।टेक।।
पास पीव परदेस है रे, जब लग प्रगटै नांहि ।
बिन देखे दुख पाइये, यहु सालै मन मांहि ।।
जब लग नैंन न देखिये, परगट मिलै न आइ ।
एक सेज संगहि रहै, यहु दुख सह्या न जाइ ।।

तब लग नेड़ै दूर है रे, जब लग मिलै न मौहि ।
नैंन निकट नहीं देखिये, संग रहै क्या होइ ।।
कहा करौं कैसे मिलै रे, तलपै मेरा जीव ।
दादू आतुर बिरहनी, कारन अपने पीव ।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव अपने को उपलक्षण करके कहते हैं कि हे भाई ! हमारे मित्र परमेश्वर को हम किस प्रकार प्राप्त करें ? उसकी अप्राप्ति रूप बिरह का दर्द हमको सता रहा है, क्योंकि वह पास में होते हुए भी, परदेशी की तरह हो रहे हैं । जब तक वह हृदय में दर्शन नहीं देते, उनके दर्शन करे बिना, बिरह का साल मन में बना है । जब लग ज्ञान विचार रूपी नेत्रों से हम नहीं देख लें, और वह प्रगट होकर, जब तक हम से नहीं मिलें, तब तक अन्तःकरण रूपो सेज पर संग रहने से भी क्या ? क्योंकि यह वियोग रूपी दुख, अब नहीं सहा जाता । तब तक नजदीक बसते हुये भी, वे दूर ही हैं, क्योंकि हमको जब तक दर्शन नहीं होवें, अर्थात् अपने ज्ञान विचार रूपी नेत्रों से जब तक हम दर्शन नही कर लें, तब तक साथ साथ रहने से भी क्या होता है ? अब हम बिरहीजन क्या करें ? हमको हमारा स्वामी कैसे मिलें ? अब तो यह हमारा जीव तड़फ रहा है । इस प्रकार हम बिरहीजन, पीव कहिये मुख प्रीति का विषय, परमेश्वर के लिये हृदय में तलफ रहे हैं ।

दोहा :- क्या करूं बैकुण्ठ को, कलप वृक्ष की छांह ।
हेत्तम ढाक सुहावणे, जहां सज्जन गल बांह ।।४।।
सज्जन रूप समुद्र महि, हुं झाझ भई कंत ।
तन मन जोवन बूडीगो, प्रेम ध्वजा फररंत ।।४।।

---

5. बिरह बिलाप

जियरा क्यौं रहै रे, तुम्हारे दर्शन बिन बेहाल ।।टेक।।
परदा अंतरि करि रहै रे, हम जीवैं किहि आधार ।
सदा संगाती प्रीतमा, अबकै लेहु उबारि ।।

गोपि गुसांई व्है रहै, अब काहे ने परगट होइ ।
राम सनेही संगिया, दूजा नांही कोइ ।।
अन्तरजामी छिप रहे, हम क्यों जीवैं दूर ।
तुम बिन व्याकुल केसवा, नैन रहे जल पूर ।।
आप अपरछन व्है रहे, हम क्यौं रैन बिहाइ ।
दादू दरसन कारणै, तलफि तलफि जिव जाइ ।।

टीका :- हे परमेश्वर ! आपके दर्शनों के बिना, इस शरीर में हमारा जीव अब कैसे रहै ? बेहाल हो रहा है । हे नाथ ! आपने अज्ञानरूपी परदा हमारे और आपके बीच डाल रखा है । अब हम किसके आसरैं जीवैं ? हे प्रीतम प्यारे ! आपतो हमारे सदा साथ रहने वाले हो, अबके इस मनुष्य शरीर में बिरह के दुख से, भव सागर के भय से, हमको उबार ले ओ । हे गुसांई ! आप क्यों छिप रहे हो ? अब क्यों प्रगट नहीं होते हो ? हे राम ! आप ही अब हमारे संगी हो, दूसरा मायिक कार्य कोई भी आपके सिवाय हमारा अब संगी नहीं है । हे अन्तर्यामी ! आप छिप रहे हो, आपसे अलग रहकर हम अब कैसे जीवैं ? हे केसव ! केसी राक्षस को मारने वाले, तुम्हारे बिना हम अति व्याकुल हो रहे हैं, और नेत्रों में पूर्णतया आंसू भरे हुए हैं । आप हमसे छुपे हुए हो । हम यह उमर रूपी रात्री, आपके वियोग में कैसे काटैं ? हे नाथ ! आपके दर्शनों के बिना, अब हमारा जीव तलफ तलफ कर इस शरीर से निकल जायेगा ।

दोहा :- भवंरा रसिया मल्लक कहै, जिन रस छाड्या नांहि ।
जो जीया तो रस ही में, मुवा तो रस ही मांहि ।।५।।

6· बिरह हैरान

अजहूं न निकसैं प्राण कठोर ।
दर्शन बिना बहुत दिने बीते, सुन्दर प्रीतम मोर ।।टेक।।
चारि पहर चार्यौं जुग बीते, रैन गवांई भोर ।
अवधि गई अजहूं नंहि आये, कतहूं रहे चित चौर ।

कबहूं नैन निरखि नहिं देखे, मारग चित्तवत तोर ।
दादू ऐसैं आतुर बिरहनी, जैसे चंद चकोर ।

टीका :- बिरहीजन कहते हैं कि परमेश्वर के वियोग में, यह हमारे कठोर प्राण, अभी तक भी नहीं निकल रहे हैं, क्योंकि परमेश्वर के दर्शनों के बिना, आयु के बहुत दिन समाप्त हो चुके हैं। हे प्यारे सुन्दर हमारे प्रीतम ! अब हम क्या करें ? हे प्यारे ! यह चार पहर दिन, चारों जुग के समान, हम बिता रहे हैं। और उमर रूपी रात्रि, आपके दर्शनों के बिना खत्म होती जा रही है। समय दर्शन करने का, जवानी बीत गई। आप अभी तक भी दर्शन नहीं दिये। हे हमारे चित्त को चुराने वाले प्रभु ! आप कहां रह गये ? ब्रह्मऋषि कहते हैं कि आपके बिरहीजन तो, आपके दर्शनों के बिना, ऐसे व्याकुल हो रहे हैं, जैसे अमावस्या के दिन चन्द्रमा के दर्शन किये बिना, चकोर व्याकुल रहता है।

दोहा :- रक्त नैन पाती लिखूं, जे बस होय हमार ।
अक्षर हो कागज चढ़ूं, दरशन करूं निहार ।।६।।
दोहा :- इस मन को कागज करूं, लेखनि करूं स्वजीव ।
रोय लिखों इन पलक से, को बांचे बिन पीव ।।६।।

---

7. सुन्दरी शृंगार

सौधन पीव जी साजि संवारी, अब बेगि मिलौ तन जाइ बनवारी ।।टेक।।
साजि सिंगार किया मन मांही, अजहूं पीव पतीजैं नांही ।
पीव मिलन कौं अहि निस जागी, अजहूं मेरी पलकन लागी ।
जतन जतन करि पंथ निहारौं, पिव भावै त्यौं आप संवारौं ।
अब सुख दीजै जाऊं बलिहारी, कहै दादू सुणि बिपति हमारी ।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! उसको धन्य है, जिस पतिव्रता स्त्री सखी ने, 'साजि' हृदय को शुद्ध करके, दैवी सम्पदा से सुसज्जित किया है। हे बनवारी ! हे प्रीतम ! अब बिरहीजनों को जल्दी ही दर्शन दीजिये, नहीं तो आपके वियोग में यह शरीर चला जायेगा। क्योंकि 'पतीजैं' - भरोसा करें और रात दिन साधन कर करके, आत्म चिन्तन के निरोध रूप उपाय करते करते, भावै, अच्छा लगै आपको। उसी प्रकार 'संवांरौं'

कहिये, अपने को सुसज्जित करूं। हम तो मन इन्द्रियों को अन्तःकरण में एकाग्र कर करके, आपकी प्राप्ति का मार्ग देख रहे हैं। हे प्रीतम! जैसे आपको हम बिरहीजन भावें, वैसा कहो। तो वैसे ही हम अपने आपको बिरह भक्ति द्वारा संवारें। हे प्रभु! अब आप अपने दर्शनों का हमें सुख दीजिये। हम आपकी बार-बार बलिहारी जाते हैं। यह हमारे बिरहीजनों के दुख को, अब आप सुनिये।

शेर :- जल शील का स्नान करके, तिलक तन का कीजिये।
भक्ति प्रेमा माल गल में, साज यह सज लीजिये।
करनी के कपड़े पहन के, निसकामता रंग दीजिये।
सोलह करो सृगांर अब, जिस देखि प्रीतम रीझिये ॥७॥

---

8. विरह चिन्ता

सो दिन कबहूं आवैगा, दादूड़ा पीव पावैगा ॥टेक॥
क्यूं ही अपने अंगि लगावैगा, तब सब दुख मेरा जावैगा।
पीव अपनें बैन सुनावैगा, तब आनंद अंग न मावैगा।
पीव मेरीं प्यास मिटावैगा, तब आपहि प्रेम पिलावैगा।
दें अपना दर्श दिखावैगा, तब दादू मंगल गावैगा ॥

टीका :- हे स्वामी! ऐसा दिवस कब होवेगा? जो हम बिरहीजन आप स्वामी का साक्षात्कार दर्शन करैंगे। आप अपने स्वरूप में वृत्ति लगाओगे, तो हमारे सम्पूर्ण वियोगजन दुख मिट जावैंगे। हे बिरहीजनो! जब वह पीव, भीतर एकत्व के बचन ज्ञान अमृत सुनावेंगे, तो अन्तःकरण में अति आनन्द बरतैगा। स्वामी बिरहीजनों की आस पूरैंगे। आप स्वयं अपना अन्तर प्रेम प्रदान करैंगे। बिरहीजनों को ज्ञान नेत्र देकर, फिर अपना व्यापक रूप प्रगट करैंगे। तब हम बिरहीजन, आनन्द के मंगल गावैंगे।

दोहा :- प्रीतम भंवर बियोग कीं, सुन लीजे यह बात।
मुख तो पीरो हो गयो, श्याम भयो सब गात ॥८॥

9. विरह प्रीति

तैं मन मोह्यो मोर रे, रहि न सकौं हौं राम जी ॥टेक॥
तोरे नावं चित्त लाइया रे, अवरनि भया उदास ।
सांई ये समझाइया, हौं संग न छाड़ौं पास रे ॥
जाणौं तिलहि न बिछूटौं रे, जिनि पछतावा होइ ।
गुण तेरे रसना जपौं, सुणसी सांई सोई रे ॥
भोरे जन्म गंवाइया रे, चीन्हा नहीं सो सार ।
अजहूं यह अचेत है, अवर नहीं आधार रे ॥
पीव की प्रीत तौ पाइये रे, जो सिर होवै भाग ।
यौं तो अनत्तन जाइसी रे, रहसी चरणहुं लाग रे ॥
अनत्तैं मन निवारिया रे, मोहि एकही सेती काज रे ।
अनत गये दुख ऊपजै, मौहि एक ही सेती राज रे ॥
सांई सौं सहजैं रमौं रे, और नहीं आन देव ।
तहां मन बिलंबिया, जहां अलख अभेव रे ॥
चरण कंवल चित्त लाइया रे, भोरैं ही ले भाव ।
दादू जन अचेत है, सहजैं ही तूं आव रे ॥

टीका :- हे राम ! आपने हमारे बिरहीजनों के मन को मोहित कर लिया है । आपके बिना, हम अब इस शरीर में नहीं रहैंगे । आपके नाम में हमने अपना चित्त लगाया है, औरों से अब हम उदास हो रहे हैं । हे सांई ! हे स्वामिन् ! हमको सतगुरू ने यह समझाया है कि हम अब आपका संग नहीं छोड़ैंगें । हम बिरहीजन जानते हैं कि अब हम आपसे, एक तिल भी नहीं अलग होंगे । तो फिर हमको पश्चापाप नहीं होगा । आपके गुणानवाद रसना से जपैं, तो आप अवश्य सुनोगे । हे नाथ ! हमने अब तक भूल में मनुष्य जन्म गमा दिया । आपके तत्व सार स्वरूप को हमने नहीं जाना । अभी तक भी यह हमारा मन अचेत है, परन्तु आपके सिवाय हमारा कोई भी आधार नहीं है । हे मन ! परमेश्वर की प्रीति तब प्राप्त होती है जब उत्तम भाग्य उदय होता है । हे नाथ ! यह बिरहीजन आपको छोड़कर, अन्य की शरण नहीं जाऐंगे ।

अब, आपके चरणों में ही लगकर रहेंगे । औरों से हम अपने मन को अलग कर लिया है । हमें तो एक आपसे ही काम है, क्योंकि आपको छोड़कर दूसरी जगह जाने से, जन्म मरण रूपी दुख उत्पन्न होता है । हे हमारे राजा ! हमको तो आप ही से काम है । हे स्वामी ! आपके व्यापक स्वरूप में हम निर्द्वन्द होकर रमैं, अब हमारे आपके सिवाय, उपास्य देव कोई दूसरा नहीं है । अब तो हमारा मन हे अलख ! मन वाणी के अविषय, आप में ही विचार द्वारा, लग रहा है । हृदय कमल में, आपके तेज पुंज रूप चरणों में, हमारा चित्त लगा है । हे नाथ ! आप अपने भोले भक्तों के भाव को ही, ग्रहण करते हो । हे प्रभु ! हम तो अचेत हैं । आप अपनी दया करके, हमारे हृदय में आप सहज में ही आइये, अर्थात् प्रगट होइये ।

दोहा :- लोक लाज उपहास जग, सहूं कहै कुछ कोइ ।
मन मोहन गौहन फिरूं, जग आपन पो खोइ ॥६॥

छन्द :-प्रीत की रीति नहीं कछु राखत, जातिन पाति नहीं कुलगारो ।
प्रेम कै नेम कहूं नहीं दीसत, लाजन कान लग्यो सब खारो ।
लीन भयो हरि से अभी अन्तर, आठउं याम रहै मतवारो ।
सुन्दर कोउ न जान सकै यह, गोकुल गांव को पैन्डो ही न्यारो ॥

दोहा :- भैंस सिंह भोले भज्यो, भोले भज्यो करीर ।
बखत कुबखत भोलै भज्यो, प्रभु मिले सहज शरीर ॥६॥

दृष्टान्त :- एक भैंस चराने वाला ग्वाल, महात्मा के पास गया और बोला :-महाराज ! मुझे भगवान के दर्शन हो जावें, ऐसा नाम देओ । महात्मा बोले :-राम राम किया कर । यह तो मुझे याद नहीं रहेगा । तो तूं क्या काम करता है ? मैं भैंस चराता हूं, और मुझे एक भैंस के सींग बहुत अच्छे लगते हैं, वह तो मुझे याद रहते हैं । महात्मा बोले :-भैंस का सींग भगवान का ही नाम है, इसको खूब स्मरण कर । इसके स्मरण करने से भगवान के दर्शन हो जाएंगे ? महात्मा बोले :-हां, जरूर हो जाएंगे । कहां करू ? इस कुटिया में बैठकर स्मरण कर, अन्दर कुन्दी लगा ले । लगा "भैंस का सींग, भैंस का सींग" करने । तीसरे रोज भगवान भैंस का चेहरा बनाकर, उसकी छाती के दोनों सींग लगा दिये । गुरू जी ने आवाज दी । आंख खोली और बोला :-गुरू जी भैंस के सींग अड़ते हैं । जब गुरू जी ने दरवाजा खोला तो देखा, भगवान प्रगट हैं । गुरू जी बोले :- जिनका तूं ध्यान करता है । वह भगवान यही हैं । तब बोला :-

दोहा :- गुरू गोविन्द दोउ खड़े, किसके लागूं पांय ।
बलिहारी गुरूदेव की, गोविन्द दियो मिलाइ ॥

भगवान बोले :-पहले गुरूदेव को नमस्कार कर, इनकी कृपा से मैं मिला हूं ।

इसी प्रकार एक भोला महात्मा के पास गया और बोला :-महाराज ! मुझे भगवान के दर्शन होवैं, ऐसा नाम बताओ । महात्मा बोले :- तूं क्या काम करता है ? मैं जंगल में करीर वृक्ष की लकड़ियां काटा करता हूं । महात्मा बोले :-तूं करीम करीम स्मरण किया कर । वह बोला :-करीम तो याद नहीं रहेगा । महात्मा ने कहा :-करीर करीर किया कर । यह भगवान का ही नाम है । करीर करीर करता हुआ चल दिया । किसी ने सोचा, इसके मुरसिद ने तो इसको करीम बताया होगा, यह करीर करीर भजता है । तब वह बोला :-करीर नहीं करीम करीम भज । तब तो भ्रम हो गया कि हाय ! करीम भजूं कि करीर भजूं । भगवान प्रगट हो गये और बोले :-करीम नहीं करीर करीर भज, तेरे गुरूदेव ने यही उपदेश किया है ।

तीसरा एक और भोला महात्मा के पास गया और बोला :- मेरा उद्धार हो जाय, ऐसा नाम बताओ । महात्मा बोले :-कभी एकान्त में बतावैंगे । एक दिन वह महात्मा जी के पीछे हो लिया । जब महात्मा जंगल में करमण्डलु लेकर निमटने गये और फिर निपटने के लिये ये बैठे, तो वह बोला :-महाराज ! अब एकान्त में कृपा करो । नाम बताओ । तब महात्मा ने एक ईंट उठाकर, उसकी तरफ फैंका और बोले :- "बखत देखै न कुबखत देखै ?" भोले ने सोचा कि गुरू जी ने मंत्र बता दिया । तो उस ईंटा को उठा लिया और रटता हुआ चला कि "बखत देखै न कुबखत देखै, बखत देखै न कुबखत देखै" । एक राजा के शहर में पहुंचा । वहां राजा का लड़का मर गया था । लोग रोते थे ? यह बोला :-कैसे रोते हो ? बखत देखो न कुबखत देखो । राजा के दरबार में पहुंच गया और बोला :- कैसे रोते हो ? बखत देखो न कुबखत देखो ।" राजा बोला :-मेरा लड़का मर गया । उसने एक ईंट उठाकर, लडके को मारी और बोला :-उठ कैसे मर गया । बखत देखै न कुबखत देखै । लड़का जीवित हो गया । गुरू के वचन में श्रद्धा विश्वास रखने से भगवान ने उसके वचन सत्य कर दिये । "चरण कंवल चित्त लाइया रे' भोरे ही ले भाव " - भगवान अपने भोले भक्तों का भाव ही लेते हैं, और उनका कल्याण करते हैं" ।

10· बिरह विलाप

बिरहनि कौं सिंगार न भावै, है कोई ऐसा राम मिलावै ॥टेक॥
बिसरे अंजन मंजन चीरा, बिरह बिथा यहु व्यापै पीरा ।
नव सत थाके सकल सिंगारा, है कोई पीड़ मिटावनहारा ।

देह गेह नही सुधि शरीरा, निसदिन चितवत चात्रग नीरा ।
दादू ताहि न भावै आन, राम बिना भई मृत्तक समान ।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! बिरहीजन भक्तों को ऊपर का भेष बाना टीप टाप आदि प्रिय नहीं लगते हैं । इस संसार में है कोई ऐसा सतगुरु, जो हम बिरहीजनों को राम से मिला देवे । हम आंखों में अंजन, दांत में मंजन, स्नान आदि करना, वस्त्रों का धारण करना, उस पीव के वियोग में सब भूल गये हैं । यह बिरह का दर्द रात दिन हमारे शरीर में व्याप रहा है । जैसे पतिब्रता पति वियोग में सोलह शृंगार भूल जाती है वैसे भूल गये हैं । कोई है ऐसा, जो हमारी बिरह की पीड़ा को मिटावै । अब हम बिरहीजनों को न तो शरीर ही हम सब की सुध है, और न घर आदि की ही सुध है । रात और दिन जैसे पपैया स्वांति नक्षत्र की बूंद के लिये पुकारता है, वैसे ही हम बिरहीजन, परमेश्वर के दर्शनों के लिये पुकार रहे हैं । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि बिरहीजनों को परमात्मा के सिवाय, और कोई भी प्रिय नहीं लगते हैं । राम के बिना बिरहीजन, मृत्तक की तरह, सम्पूर्ण चेष्ठा रहित हो चुके हैं ।

दोहा :- जैसें नारी नाह बिन, भूलि सकल सिंगार ।
त्युं रज्जब भूलासकल, सुनि सनेही दिलदार ॥१०॥

---

11. करुणा बिनती

अब तौ मोहि लागी बाइ, उन निहचल चित्त लियो चुराइ ॥टेक॥
आनन रूचै और नहीं भावै, अगम अगोचर तहं मन जाइ ।
रूप न रेख बरण कहौं कैसा, तिन चरणों चित्त रह्या समाइ ।
तिन चरणों चित सहजि समाना, सो रस भीना तहं मन धाइ ।
अब तो ऐसी बनि आई, बिख तजै अरू अमृत खाइ ।
कहा करौं, मेरा बस नांही, औरन मेरे अंगि सुहाइ ।
पल एक दादू देखन पावै, जन्म जन्म की त्रिखा बुझाइ ।

टीका :- हे जिज्ञासु ! बिरहीजन कहते हैं कि अब तो हमारे हृदय में बिरह की भाप लगी है । उस निश्चल परमेश्वर ने हमारे दिल को चुरा लिया है । अब दूसरे कर्मों में हमारी रूचि नहीं है । कोई भी

साधन हमें बिरह के सिवाय प्रिय नहीं लगते हैं। जो इन्द्रियों से अगोचर है, उसी अगम में हमारा मन स्थिर हो रहा है। न तो उसका कोई रूप है और जैसे हाथ पर रेखा है, ऐसे वह अलग भी नहीं हैं। उसका बर्णन कैसे करैं ? उसके तेज पुंज रूपी चरणों में हमारा चित्त स्वभाव से ही समा रहा है। अब तो हमारा मन उसके प्रेम रूपी रस में भीग रहा है। और ऐसी प्रीति उससे हमने बनाई है, जो शब्द आदि विषयों को त्याग कर, निष्काम नाम रूपी अमृत को पीते हैं। अब हम क्या करैं, हमारा कुछ भी बस नहीं है। हमारे हृदय में अब उसके सिवाय, और दूसरा कोई भी नहीं सुहाता है। हे प्रभु ! एक पल भी हम आपका दर्शन कर सकैं, तो हम जन्म जन्मान्तरों की प्यास को बुझा लें।

दोहा :- रज्जब रूचै न राम बिन, सकल भांति के सुक।
भगवंत सहित भावहि सबै, नाना विधि के दुख ॥११॥

---

12. करुणा विनती

तूं जनि छाडै केसवा, मेरे और निवाहनहार हो ॥टेक॥
अवगुण मेरे देखी करि, तू ना करि मैला मन।
दीनानाथ दयाल है, अपराधी सेवक जन हो ॥
हम अपराधी जनम के, नख सिख भरे विकार।
मेट हमारे अवगुणा, तूं गरवा सिरजनहार हो ॥
मैं जन बहुत बिगारिया, अब तुम ही लेहु संवारि।
समरथ मेरा सांइयां, तूं आपै आप उधारि हो ॥
तूं न बिसारि केशवा, मैं जन भूला तोहि।
दादू को और निवाहि ले, अब जनि छाड़ै मोहि हो ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज करुणा सहित विनती करते हैं, समर्थ परमेश्वर से, कि हे केशव ! आप अपने हेतरूपी हाथ से, हमको नहीं छोड़ देना। हमको ठेठ तक निभाने वाले, आप ही हमारे स्वामी हो। हे नाथ ! हमारे तन मन के अवगुणों को देखकर, आप हमसे घृणा नहीं करना, क्योंकि आप तो दीनानाथ दयाल हो, और हम अपराधी सेवक जन हैं। हे बाप जी ! हम एक जन्म के नहीं, अनेकोंजन्मों से,

नख से शिखा पर्यन्त, अपराधों से, विकारों से, भरे हुए हैं। आप हमारे अवगुणों पर दृष्टि नहीं देना। आप 'गरवा' नाम गहरे हो। हे सिरजनहार! मैंने तो बहुत बिगाड़ किये हैं, अब आप ही हमारा सुधार करो। हे हमारे स्वामी! आप समर्थ हैं, आप अपनी दया से ही हमारा उद्धार करो। हे केसव! आप हमको नहीं भूलना, हम तो आपको जन्म जन्मान्तरों से भूले हुए हैं। हे स्वामिन्! अब हम अपराधी सेवकों को निभाओ। अब हमको अध बीच नहीं छोड़ना। आपका स्वरूप साक्षात्कार कराना।

दोहा :- रज्जब सम अधम नहि, तुम प्रभु अधम उधार।
उभय अंग में फेर क्या, कीजे कृपा बिचार ॥१२॥

दोहा :- रज्जब पापी पृथ्वी परि, रोम रोम रचि पाप।
कृपा करो तो उद्धरै, सेवक सुत हरि बाप ॥१२॥

---

13. केवल बिनती

राम संभालिये रे, बिखम दुहेली बार ॥टेक॥
मंझि समंदा नावरी रे, बूडै खेवट बाज।
काढनहारा को नहीं, एक राम बिन आज॥
पारन पहुचै राम बिन, भेरा भव जल मांहि।
तारणहारा एक तूं, दूजा कोई नांहि॥
पार परोहन तौ चलै, तुम खेवहु सिरजनहार।
भव सागर मै डूबि हैं, तुम्ह बिन प्राण अधार॥
औघट दरिया क्यौं तिरै, बोहित बैसणहार।
दादू खेवट राम बिन, कौण उतारै पार॥

टीका :- ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हे राम! इस विकट समय में, आप हमको संभालो, क्योंकि संसार समुद्र के बीच में, यह हमारी मनुष्य देह रूपी नौका, मायावी जल के भंवर में फंस रही है। खेवटिया के बिना, यह डुबने वाली हो रही है। इस नौका को उबारने वाला, आपके सिवाय, दूसरा और कोई भी नहीं है।

हे राम ! आपके बिना, यह हमारी नौका, इस समुद्र से पार होना असम्भव है । यह हमारा मनुष्य देह रूपी बेड़ा, विषय वासना रूपी जल में घूम रहा है । इस समय इसको तारने वाले आप ही हो । आपके सिवाय, दूसरा कोई नहीं दिखाई दे रहा है । हे सिरजनहार ! आप खेवो तो यह 'परोहन' - मनुष्य देह रूपी हमारी नौका पार होवेगी । हे प्राणाधार ! संसार समुद्र में हम आपके बिना, डूबे जा रहे हैं, हे नाथ ! यह दरियाव बड़ा भारी है । 'औघट' कहिए, काम क्रोध आदि बड़े बड़े तूफानों में, यह हमारी 'बोहित' - मनुष्य देह रूपी नौका, डूबने वाली हो रही है । हे राम ! आप ही इस नौका को खेने वाले हो । आपके बिना, दूसरा और हमको कोई भी नहीं दीखता है, जो इस नौका को पार करै ।

दोहा :- सकल पतित पावन किये, अधम उधारन हार ।
बिरद बिचारो बाप जी, जन रज्जब की बार ॥१३॥

दोहा :- रज्जब टेरै रात दिन, क्यों बोलै नहीं कंत ।
कै तुम अब मोनी भये, कै तुम चाहो अंत ॥१३॥

14

पार नहीं पाइये रे, राम बिना को निर्वाहणहार ॥टेक॥
तुम बिन तारण को नही, दूभर यहु संसार ।
पैरति थाके केसवा, सूझै वार न पार ॥
बिखम भयानक भव जला, तुम्ह बिन भारी होइ ।
तूं हरि तारण केसवा, दूजा नांहि कोई ॥
तुम्ह बिन खेवट को नहीं, अतिर तिर्यो नहीं जाइ ।
औघट भेरा डूबि है, नाही आन उपाइ ॥
यहु घट औघट बिखम है, डूबत मांहिं सरीर ।
दादू काइर राम बिन, मन नंहि बांधै धीर ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू विनय करते हैं कि हे राम ! इस संसार समुद्र का हम पार नहीं पा सकते । आपके बिना कौन है ? जो इससे हमें पार कर सके । हे राम ! आपके बिना कोई भी, इस भयंकर संसार समुद्र से पार करने वाला नहीं है । हे केसव ! योग आदि साधन करते हुए भी, अब हम थक रहे हैं । इस संसार समुद्र का उरला किनारा और परला किनारा, नहीं दिखाई देता है । यह कठिन समय भय देने वाला संसार समुद्र है । आपके बिना इससे पार होना हमारे लिये भारी हो रहा है । हे केसव । हे हरि ! आपही इससे तारने वाले हो । आपके सिवाय दूसरा कोई भी, हमें उबारने वाला नहीं है । इस मनुष्य देह रूपी नौका को खेने वाला, आपके सिवाय, दूसरा कोई नहीं हैं । हम तो अतिर हैं । हममें कोई भक्ति वैराग्य आदि साधन नहीं हैं, इसीलिये इससे हम पार नहीं हो सकेंगे । यह हमारा मनुष्य देहरूपी नौका, भंवर में आ गया है । डूबने वाला हो रहा है । आपके सिवाय, और दूसरा तारने वाला, हमें कोई साधन नहीं दिखाई दे रहा है । हे नाथ ! यह शरीर ही औघट घाट है । इसके अध्यास में हम डूबे जा रहे हैं । हे राम जी ! अब तो हमारा मन कायर हो रहा है । आपके बिना धैर्य छोड़ दिया है । आप ही, अब हमारी रक्षा करो ।

दोहा :- देही दूतीर मन अतिर, मौज मनोरथ मांहि ।
बिखम बारी निधी राम बिन, रज्जब तिरीयें तांहि ।।१४।।

दोहा :- बाहिर कहिये कौन सौं, मांहि मुसकिल काम ।
अन्तरी अंतर मेंटीये, अन्तर जामी राम ।।१४।।

15

क्यौं हम जीवैं दास गुसांई, जे तुम छाड़हु समर्थ सांई ।।टेक।।
जै तुम जन कौं मन हि बिसारा, तौं दूसर कौंण संभालणहारा ।
जे तुम पर हरी रहो निन्यारे, तौ सेवक जाइ कवन के द्वारे ।
जे जन सेवक बहुत बिगारै, तौ साहिब गरवा दोस निवारै ।
समर्थ सांई साहिब मेरा, दादू दास दीन है तेरा ।

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज अपने को उपलक्षण करके कहते हैं कि हे हमारे स्वामी परमेश्वर ! हम आपके बिना कैसे जीवित रह सकते हैं, इस शरीर में ? हे समर्थ ! जो आप हमको दयारूप हाथ से

छोड़ो, तो फिर कौन हमको बचावैगा ? हे प्रभु ! जो आप हमको अपने मन से बिसार देओगे, तो फिर दूसरा कौन हमारी रक्षा करेगा ? हे हरि ! यदि आप हमारा परित्याग करके, हमसे अलग रहोगे, तो फिर हमारी दूसरा कौन संभाल करेगा ? हम किसके द्वार पर जायेंगे ? हे प्रभु ! हम आपके निकम्मे सेवक, बहुत बिगाड़ करैं, तो भी आप तो हमारे स्वामी गम्भीर हो । हमारे दोषों पर ध्यान नहीं देंगे । हे समर्थ ! हे हमारे स्वामी ! आप ही हमारे 'साहिब' कहिये मालिक हो, हम तो आपके अति दीन गरीब दास हैं ।

16. करुणा

क्यौं करि मिलै मोकौं राम गुसांई, यहु बिखीया मेरे बसी नांही ।।टेक।।
यहु मन मेरा दह दिसि धावै, नियरें राम न देखन पावै ।
जिभ्या स्वाद सबै रस लागै, इन्द्रिय भोग बिसय को जागै ।
श्रवणहुं सांच कदे नहिं भावै, नैन रूप तहं देखि लुभावै ।
काम क्रोध कदे नहीं छीजै, लालचि लागि बिखै रसी पींजै ।
दादू देखौ मिलै क्यौं सांई, बिखै बिकार बसै मन मांही ।।

टीका :- जिज्ञासु कहता है कि हे सतगुरू ! मेरे स्वामी राम मुझे कैसे मिलैंगे ? यह स्त्री आदि पदार्थ बड़े भयंकर हैं । इनसे छुटकारा पाना, मेरे बस की बात नहीं है । मेरे काबू से बाहर है, क्योंकि यह मेरा मन दसों दिशाओं में वासनाओं के द्वारा दौड़ रहा है । इसीलिये राम अत्यन्त समीप अन्तःकरण में है । फिर भी यह दर्शन नहीं कर पाता, क्योंकि इन्द्रिये भी अपने अपने विषयों के रस को लेने में रत्त हो रही हैं । और हे गुरूदेव ! काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, यह तो कभी भी हृदय से अलग नहीं होते हैं । नाना प्रकार से विषयों के लालच में फंसकर, विषय वासना रूपी रस का ही उपभोग करता रहता है । हम अपने कर्त्तव्यों को देखते हैं कि इस प्रकार परमेश्वर कैसे हमें मिलैगा ? क्योंकि हमारे मन में तो, विषय वासनारूप विकार, हर समय फुरते रहते हैं ।

दोहा :- तुम योग सेवक नहि, मैं मंदभागी करतार ।
रज्जब गुनही बाप जी, बहुत किये बिभचार ।।१६।।

17. परिचय विनती

जो रे भाई राम दया नहिं करते, नवका नाम खेवट हरि आपै,
यौं बिन क्यों निसतरते ।।टेक।।
करणी कठिन होत नहीं मोपै, क्यों कर ये दिन भरते ।
लालचि लागि परत पावक में, आपहि आपै जरते ।।
स्वाद हि संग बिखै नहि छूटै, मन निहचल नहि धरते ।
खाय हलाहल सुख के तांई, आपै ही पचि मरते ।।
मैं कामी कपटि क्रोध काया में, कूप परत नहिं डरते ।
करवत काम सीस धरि अपने, आपहि आप बिहरते ।।
हरि अपना अंग आप नहीं छाड़ै, अपनी आप बिचरते ।
पिता क्यूं पूत कूं मारै, दादू यूं जन तिरते ।।

टीका :- हे जिज्ञासु ! यदि राम अपने भक्तों पर दया नहीं करैं, तो भक्त संसार से कैसे तरते ? वह हरि स्बयं नामरूपी नौका में बैठा कर, आप ही केवट रूप बनते हैं । ऐसे प्रभु दया नहीं करते तो, हम कैसे तरते ? संसार से पार होने की करणी तो, अर्थात् योग हठयोग आदि तो करना, हमारे से बहुत कठिन है । यह उमर के दिन विरह युक्त कैसे हम बिताते ? विषयों के लालच में लग करके, विषयरूप पावक में अपने आप ही पड़कर जलते रहते । इन स्वादों के बस पड़कर बिषयों से पीछा नहीं छूटता और मन को निश्चल स्वरूप में नहीं रख सकते थे । विषयरूपी सुख के लिये हलाहल स्त्री आदि पदार्थों को भोगते, अज्ञान में अपने आप ही पच पच कर, इनसे मरते रहते । हम तो काम वासना, कपट युक्त कर्म, क्रोध, इनके वशीभूत होकर इस शरीर में, संसार रूप अन्ध कुए में पड़ने से, कभी नहीं डरते थे । अपने मस्तक पर काम रूप करवत धरके, अपने आपको आप ही चीरते थे । परन्तु वह पतितपावन भक्त वच्छल हरि, हमको अपना अंश जानकर, आप स्वयं विचारते हैं कि यह तो कपूत है, तो भी मेरा ही है, क्योंकि पिता पुत्र को कभी नहीं मारता, अपराधी होने पर भी । वह जानता है कि यह है तो मेरा ही । इसी प्रकार, हे नाथ ! हम जन भी, आपकी दया के आसरे से ही तरगें ।

दोहा :- पार ब्रह्म पूरी करी, हित करि पकड़्या हाथ ।
रज्जब राख्या रहम करि, मीच मिटाई नाथ ।।१७।।

---

18. बिरह बिलाप बिनती

तौ लग जिन मारै तु मोहि, जौ लग मैं देखूं नहि तोहि ।।टेक।।
अब के बिछुरे मिलन कैसे होई, इहि बिधि बहुरि न चिन्हे कोई ।
दीन दयाल दया करि जोइ, सब सुख आनंद तुम्ह थैं होइ ।
जन्म जन्म के बन्धन खोइ, देखन दादू अहि निस रोइ ।

टीका :- हे समर्थ परमेश्वर ! आप हमको तब तक नहीं मारना, जब तक हम आपके दर्शन नहीं कर लें। इस मनुष्य देह से आपसे बिछुर जायेंगे, तो फिर अन्य शरीरों में तो, आपसे मिल ही कैसे सकते हैं ? इस प्रकार तो फिर कोई भी, हमारे मन इन्द्रिय आदिक आपको नहीं जान सकते । हे दीन दयाल ! आप दया करोगे, तभी हम बिरहीजन, आपका दर्शन कर सकैंगे । तब फिर हमको सब प्रकार का सुख प्राप्त होगा, आपके आनन्द स्वरूप से परचे होते ही । और हे नाथ ! हम अपने जन्म जन्मान्तरों के कर्म बन्धनों को, आपको कृपा से काट देंगे । इसलिए हे प्रभु ! आपके व्यापक रूप के दर्शनों के लिये, हम रात दिन रुदन कर रहे हैं ।

दोहा :- बिरही प्राण चकोर है, बिरहा अगनि अंगार ।
रज्जब जारै और को, उनके प्राण अधार ।।१८।।

---

19. स्पर्श बिनती

संग न छाड़ूं मेरा पावन पीव, मैं बलि तेरे जीवन जीव ।।टेक।।
संग तुम्हारे सब सुख होइ, चरण कमल मुख देखूं तोहि ।
अनेक जतन कर पाया सोइ, देखूं नैन हुं तो सुख होइ ।
शरण तुम्हारी अंतर वास, चरण कमल तहं देहु निवास ।
अब दादू मन अनत न जाइ, अंतर बेधि रह्यो ल्यौ लाइ ।

टीका :- हे हमारे परम पवित्र मुख प्रीति के विषय स्वामी ! अब हम आपका संग कभी नहीं छोड़ेंगे । हे हमारे जीव की जीवन परमेश्वर ! हम आपकी बारम्बार बलिहारी जाते हैं । हे नाथ ! आपके साथ हमको सब प्रकार का सुख प्राप्त है, जब हम आपके तेज पुंज रूपी चरणों का हृदय में आपका दर्शन करें, क्योंकि जन्म जन्मान्तरों से साधन करते करते, अबके आप हमको प्राप्त हुए हो । जब हम अपने ज्ञान विचार रूपी नेत्रों से, आपका दर्शन करते रहैं, तभी हम बिरहीजनों को सुख होगा । हे नाथ ! अब हम आपकी शरण हैं, क्योंकि आप हमारे अन्दर ही निवास कर रहे हो । अब हमको आप अपने, तेज पुंजरूप चरणों में निवास देओ । हे प्रभु ! अब यह हमारा मन आपको छोड़कर, किसी भी मायिक कार्य की तरफ नहीं जाता है, आपकी प्रीति में पूर्णतया बिध गया है, अर्थात् आपमें ही लय लगा रहा है ।

20. परिचय बिनती (गुजराती भाषा)

नहिं मेल्हूं राम नहिं मेल्हूं, मैं शोधि लीधो नहिं मेल्हूं,
चित्त तुम सूं बांधूं नहिं मेल्हू ॥टेक॥
हूं तारे काजे तालाबेली, हवे केम मने जाशो मेली ।
साहसि तूँ ने मनसों गाढौ, चरण समानो केवी पेरे काढौ ।
राखिश हृदे तूं मारो स्वामी, मैं दूहिले पाम्यों अंतरजामी ।
हवे न मेल्हूं तूं स्वामी म्हारो, दादू सन्मुख सेवक तारो ।

टीका :- ब्रह्मऋषि परमेश्वर का साक्षात्कार होने पर विनय कर रहे हैं कि हे राम ! मैने अबके आपको खोज लिया है । अब मैं मन वचन कर्म से कभी भी आपको नहीं छोडूगा । मैं अपने चित्त को आपके चिन्तन में ही बांधूगा । आपका स्मरण कभी नहीं छोडूंगा । मैं आपके लिये अति व्याकुल रहता हूं । अब आप मुझे छोड़कर, कैसे जाओगे ? मैंने उत्साह पूर्वक दृढ़ता से, आपको पकड़ा है और आपके चरणों में समा रहा हूं । अब आप मुझे दूर कैसे हटाओगे ? हे अन्तर्यामी ! मैं बिरह दुख को सहन करता हुआ, बड़ी कठिनता से आपको प्राप्त किये हैं । आप ही मेरे स्वामी हैं, मैं आपको अपने अन्तःकरण में रखूंगा । अब आपको नहीं छोड़ूंगा, क्योंकि आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूं, आपके सदैव सन्मुख ही रहूंगा ।

दोहा :- कृष्ण द्वारका को चले, कुन्ती कियो बिलाप ॥
राख लिये पुनि प्रेम बसि, मेटी जन की ताप २०॥

दृष्टान्त :- धर्मनिष्ट पांडव, भगवान कृष्ण की कृपा से, पुनः भारत का राज्य प्राप्त करके, धर्म पूर्वक राज करने लगे। तब भगवान श्री कृष्ण कोन्तां जी के पास जाकर, नमस्कार किया और बोले :- भुआ जी ! अब मुझे द्वारका जाने की आज्ञा दो और जो कुछ आप चाहती हो, वह मुझ से मांग लो। कोन्तां जी बोली, नेत्रों में आंसू भरके, हृदय की प्रीति से, कि हे नाथ ! हमको आप राज दिया है, तो आपका सदैव दर्शन देओ। और नहीं तो हमको फिर बनवास दे दो, क्योंकि जब हम बनवास में रहेंगे, तो आप हमें दर्शन देकर, रक्षा करते रहोगे। यह वचन भगवान कृष्ण सुनकर, भक्त वत्सल भगवान को कहना पड़ा कि हे भुआ जी! जब आप आज्ञा दोगे, तब जाऊंगा। तब कोन्ती जी के हृदय का बिरह दुख शान्त हुआ।

---

21. परिचय करुणा बिनती

राम सुनहु न विपति हमारी हो, तेरी मूरति की बलिहारी हो ।।टेक।।
मैं जु चरण चित्त चाहना, तुम सेवक साधारना।
तेरे दिन प्रति चरण दिखावना, कर दया अंतर आवना।
जन दादू विपति सुनावना, तुम गोविन्द तपत बुझावना ।।

टीका :- हे राम जी ! आप हमारी बिरह की आवाज की सुनते हो न ? हम आपकी व्यापक मूर्ति की बारम्बार बलिहारी जाते हैं। हम बिरहीजनों के चित्त में, आपके चरणों की चाहना है, और आप अपने बिरहीजन सेवकों को साधारणरूप से ही प्राप्त होते हो। हे नाथ ! आप अपने तेज पुंज के चरणों का प्रति दिन दर्शन दीजिये। हे राम जी ! आप दया करके, हमारे हृदय में, आपके दर्शन दीजिये। हे गोबिन्द ! आप अपने बिरहीजन भक्तों के अन्दर, बिरह की तपत को दर्शन देकर बुझाने वाले हो।

22. परिचय बिनती—प्रश्न

कौण भांति भल मानैं गुसांई, तुम भावे सो मैं जानत नांहीं ।।टेक।।
कै भल मानैं नाचे गाये, कै भल मानैं लोक रिझाये।
कै भल मानैं तीरथ न्हाये, कै भल मानैं मूंड मूंडाये।
कै भल मानैं सब घर त्यागी, कै भल मानैं भये बैरागी।
कै भल मानैं जटा बधाये, कै भल मानैं भस्म लगाये।
कै भल मानैं बन बन डोलें, कै भल मानैं मुखहि न बोले।

कै भल मानैं जप तप कीये, कै भल मानैं करवत लीये ।
कै भल मानैं ब्रह्म गियानी, कै भल मानैं अधिक धियानी ।
जे तुम भावे सो तुम पै आहि, दादू न जाणें कह समझाइ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज, परमेश्वर से परिचय होने पर प्रार्थना करते हैं कि हे हमारे स्वामी ! समर्थ परमेश्वर, आप किस प्रकार भला मानते हो ? अर्थात् किस प्रकार आपकी उपासना करने पर, आप अच्छा मानते हो ? जो मार्ग आपको प्रिय है, वह मैं नहीं जानता । क्या आप नाचने से या गायन करने से, या लोगों को रिझाने से, आप राजी हो ? अथवा तीर्थ स्नान से, या घोट मोट होने से, या कंठी माला धारण करने से, या कासाये वस्त्र पहनने से, या जटा बढाने से, या भस्म लगाने से या बन बन बिचरने से या मौन रखने से, या जप तप करने से, आप किस प्रकार राजी हो ? या कासी में जाकर, कासी करवत लेनें से, या विशेष ध्यानी होने से या ब्रह्मज्ञानी होने से, अच्छा मानते हो ? हे नाथ ! जो भी आपको साधना प्रिय है, वह आप ही जानते हो । हम नहीं जानते कि आप किस प्रकार प्रसन्न होते हो ? हे स्वामी ! आप हमें कहकर बताइये कि आपको कौनसी साधना प्रिय है ? फिर वही हम साधना करके, आपको प्रसन्न करें ।

उक्त प्रश्नों के उत्तर बाणी जी की साखियों द्वारा, इस प्रकार दिये हैं ।

दादू जे तूं समझै तौ कहौं, सांचा एक अलेख ।
डाल पान तजि मूल गहि, क्या दिखलावै भेख ॥
दादू सच बिन सांई ना मिलै, भावै भेख बनाइ ।
भावै करवत उरध मुखि, भावै तीरथ जाइ ॥

दोहा :- लेखक स्याहीं पीवतां, माखी ताड़ी नांहि ।
आतम दृष्टि बिचारतां, हरि प्रगटे छिन मांहि ॥२२॥

दृष्टान्त :- एक आत्म दृष्टि संत पुस्तक लिख रहे थे । एक मक्खी दवात पर बैठकर, स्याही पीने लगी । आप उस मक्खी को नहीं उड़ाई और विचार किया कि हरि परमेश्वर चेतन्य रूप, स्याही पी रहे हैं । ऐसी भावना होते ही लेखक को, छन में प्रगट होकर, भगवात ने दर्शन दिया । संत भगवान के दर्शन करके, कृत्य कृत्य हो गया ।

23. परिचय बिनती

अहो गुण तोर, अवगुण मोर गुंसाई ।
तुम कृत कीन्हा, सो मैं जानत नांहीं ॥टेक॥

तुम उपकार किये हरि केते, सो हम बिसर गये ।
आप उपाइ अग्नि मुख राखे, तहां प्रतिपाल भये
हो गुंसाई ॥

नख सिख साज किये हो सजीवन, उदर आधार दिये ।
अन्न पान जहं जाइ भस्म हो, तहां तैं राखि लिये
हो गुंसाई ॥

दिन दिन जान जतन कर पोखें, सदा समीप रहें ।
अगम अपार किये गुन केते, कबहूं नांहि कहे
हो गुंसाई ॥

कबहूं नांहींन तुम तन चितवत, माया मोह परें ।
दादू तुम तज जाइ गुंसाई, विषया मांहि जरे
हो गुंसाई ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज, परमेश्वर का साक्षात्कार होने के बाद विनय कर रहे हैं कि हे प्रभु ! आपके हमारे ऊपर, अनन्त उपकार हैं, किन्तु हे प्रभु ! आपके किये उपकारों को, में नहीं याद रखता । सो यह मेरा महान दोष है । हे हरि ! आपने हमारे शरीर को उत्पन्न किया और गर्भवास में जठरा अग्नि के मुख से, इसकी रक्षा करी और नख से शिखा पर्यन्त, सारे शरीर को, अंग उपांगों से, अर्थात् इन्द्रियों से सजा कर, चेतन्य सत्ता द्वारा चेतन बनाया । फिर उलटे मुख जहां झूलता था, वहां आपने आश्रय दिया । तथा जहां अन्न जल जठरा अग्नि से पचता है, वहां आपने कोमल शरीर की रक्षा की है। और प्रतिदिन नाल के द्वारा, आपने हमारा पोषण किया, अर्थात् पोख दिया और नजदीक रहकर, हमारी रक्षा करी। इस प्रकार हे प्रभु ! आपने हमारे ऊपर, कितने ही उपकार किये हैं ? जो अगणित अगम अपार हैं । परन्तु फिर भी आपने कभी ऐसा नहीं कहा कि मैंने तुम्हारे ऊपर इतना उपकार किया है ? और हमारा अति महान दोष है, जो कि हम

ने आपके स्वरूप की ओर, कभी देखा भी नहीं। क्योंकि हम आपको छोड़कर, माया मोह और विषयों की तरफ ही लगे रहे और उन्हीं में पुनः पुनः जलते रहे।

दोहा :- समय स्मरण ना करै, अंतकाल नर रोय।
जगन्नाथ दस कंध ज्यूं, पछताये क्या होय ॥२३॥

---

24. उपदेश चेतावनी

कैसे जीवियें रे, सांई संग न पास,
चंचल मन निश्चल नहीं, निशि दिन फिरे उदास ॥टेक॥
नेह नहीं रे राम का, प्रीति नहीं परकाश।
साहिब का सुमिरण नहीं, करे मिलन की आश॥
जिस देखे तूं फूलिया रे, पाणी पिंड बंधाणा मांस।
सो भी जल बल जाइगा, झूठा भोग विलास ॥
ते जीवी जे जीवणा, सुमरे श्वांसै श्वांस।
दादू परगट पिव मिलै, तो अंतर होइ उजास ॥

टीका :- जिज्ञासुओं को उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं कि यह चंचल मन, प्रभु से उपराम होकर, रात दिन विषयों वासनाओं में लग रहा है। ऐसी स्थिति में, हे जिज्ञासु ! तूं कैसे जी रहा है ? तेरे हृदय में राम का स्नेह और प्रीति नहीं है, तो फिर हृदय में ज्ञान का प्रकाश कैसे होवेगा ? और न परमेश्वर का स्मरण ही करता है और फिर परमेश्वर को प्राप्त करने की आशा रखता है। जिस शरीर को देख देखकर, तूं फूल रहा है, यह तो पानी और मांस की पोट बना है। यह भी फिर स्थिर नहीं रहेगा। या तो जल जायेगा अथवा मिट्टी में गल जायेगा, इसके द्वारा, जो तूं जानता है कि मैं भोगों को भोगता हूं। यह भोग और भोगने वाला शरीर यह सभी मिथ्या हैं। जो तेरे को जीना है, तो सबकी जीवनरूप उस परमेश्वर का, श्वांस श्वांस पर स्मरण कर। जब तेरे अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश होगा, तब वह मुख प्रीति का विषय परमेश्वर, तुझे आत्मस्वरूप से ही साक्षात्कार प्रगट दर्शन देंगे।

25. हित उपदेश

जियरा मेरे सुमिर सार, काम क्रोध मद तज विकार ।।टेक।।
तूं जनि भूले मन गंवार, शिर भार न लीजे मान हार ।
सुन समझायो बार बार, अजहूं न चेते हो हुसियार ।
कर तैसे भव तरिये पार, दादू अबतैं यही विचार ।

टीका :- ब्रह्मऋषि अपने को उपलक्षण करके कहते हैं कि हे हमारे जीव ! सबका सार स्वरूप जो परमेश्वर है, उनके निष्काम नाम का स्मरण कर । काम, क्रोध, आठ प्रकार का मद आदि, इन सम्पूर्ण विकारों का त्याग कर । हे हमारे मन ! 'गवांर' कहिये विषयों के यार ! प्रभु के स्मरण को नहीं भूलना और पाप का बोझा, सिर पर नहीं लेना । प्रभु के स्मरण से हार नहीं मानना । गुरू और संतों ने तुझे अपने शब्दों के द्वारा, तुझे बार बार समझाया है, उसी को सुनकर विचार कर । तूं अभी भी नहीं चेत रहा है । अब इस अज्ञानता को छोड़कर, प्रभु स्मरण में लीन हो । हे मन ! अब वैसा ही कर, जिससे कि इस संसार से पार हो सके । तेरे उद्धार का यही एक विचार है ।

26. (क)—भय चेतावनी

जियरा चेती रे जनि जारै, हेजैं हरि सौं प्रीति न कीन्हीं ।
जनम अमोलक हारै ।।टेक।।
बेर बेर समझायो जियरा, अचेत न होइ गंवार रे ।
यहु तन है कागद की गुड़िया, कछु इक चेत विचार रे ।
तिल तिल तुझको हानि होत है, जे पल राम बिसार रे ।
भय भारी दादू के जिय में, कहु कैसे कर डारे रे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि मन को सावधान रहे हैं । हे हमारे मनरूप जीव ! अज्ञानता से चेत कर । वासनाओं की ओर अब नहीं जाना । तैंने अब तक, हेज पूर्वक हरि से प्रीति नहीं करि । इस अमोलिक मनुष्य जन्म को व्यर्थ ही क्यों हारता है, अर्थात् क्यों खोता है ? हे गवांर ! विषयों के प्रेमी, तुझे बारबार ईश्वर वचन और गुरू वचनों से चेत कराया । यह शरीर तो कागज की पतंग की तरह है । इसके फटने में कुछ भी देर नहीं लगेगी । कुछ तो अज्ञान से चेत कर और विचार कर देख । क्षण क्षण में तेरी हानि होती जा रही है, प्रभु

के भजन बिना । हे जीव ! परमेश्वर से विमुख रहने में, तेरे लिये भारी भय है । न मालूम वह न्यायकारी ईश्वर, क्या से क्या लेकर बना दें ?

छंद :- पाई अमोलिक देह यह नर, क्यों न विचार करै दिल अन्दर ।
काम हु क्रोध हु लोभ हु मोह हु, लूटत है दसहू दिसी द्वन्दर ।
तूं अब वंछत है सुर लोक ही, काल हू पाइ परै सु पुरंदर ।
छाड़ कुबुद्धि सुबुद्धि हीरदै धर, आतमराम भजै क्यों न सुन्दर ।

---

26 (ख)

जियरा काहे रे मूढ डोलै, बनवासी लाल पुकारै, तुंही तुंही
करि बोलै ।।टेक।।
साथ सवारी लैन गयो रे, चालण लागो बोलै ।
तब जाइ जीयरा जाणै गोरे, बांधे ही कोइ खोलै ।
तिल तिल मांहैं चेत चलो रे, पंथ हमारा तोलै ।
गहिला दादू कछू न जाणै, राखि लेहु मेरे मोलै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि उपदेश करते हैं कि हे मोह में अंधे हुए जीव ! परमेश्वर का स्मरण त्यागकर, विषयों की और क्यों भटकता है ! देख, जंगल में रहने वाले पक्षी भी 'तुंही तुंही' करके परमेश्वर का स्मरण करते हैं । यह हाथी घोड़े, कार मोटर साथ में कोई भी लेकर नहीं गया है । जाने वाले जाते समय बोलते हैं कि यह सब सम्पत्ति, हम यहां ही छोड़कर जा रहे हैं । हमारे साथ यह कुछ भी नहीं जा सकतीं है । हे जीव ! ऐसे ही तूं भी जब जायेगा, तब जानेगा कि मैंने जो कुछ पसारा किया, यह सब मेरे बन्धन का ही कारण बना है । इन बन्धनों से अब मुझे कौन खोलै ? इसलिये हे जीव ! अब क्षण क्षण में चेत करके चल और हमारा' 'कहिये परमेश्वर के भक्तों के मार्ग को, अपना । हे परमेश्वर ! आप कृपा करो । यह गहला'--मोह ममता में पागल हुआ जीव, कुछ भी आपके मार्ग को नहीं जानता है । आप ही कृपा करके, अब इस अज्ञानी जीव की रक्षा करो ।

ता सुख कौं कहो का कीजै, जाथैं पल पल यहु तन छीजै ॥टेक॥
आसण कुंजर सिर छत्र धरीजै, ताथैं फिरि फिरि दुख सहीजै ।
सेज संवारि, सुन्दरी संगि रमीजै, खाइ हलाहल भरम मरीजै ।
बहु बिधि भोजन मानि रूचि लीजै, स्वाद संकट भ्रम पासि परीजै ।
ये तजि दादू प्राण पतीजै, सब सुख रसना राम रमीजै ।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! ऐसे सुख का कहो क्या करें ? जिस सुख के भोगने से, यह शरीर क्षण क्षण में दुखों को प्राप्त होवै । जैसे राज सुख अर्थात् हाथी के ऊपर आसण लगाकर बैठे, मस्तक पर सोने का छत्र झूलै। आगे पीछे सेवक सेवा में खड़े रहैं, परन्तु परमेश्वर का स्मरण किये बिना, इस राज सुख का फल तो बारबार नरक की ही त्रास भोगनी पड़ती है और सुन्दर सेज के ऊपर, मन इच्छा स्त्री के साथ, रमण करने रूप, सुख का उपभोग करके, भ्रम में फंसकर, बारबार जन्म मरण को प्राप्त होता है । और नाना प्रकार के इच्छा अनुसार, भोजन की चाहना करके, स्वादों के वशीभूत होकर, यमराज के दूतों की फांसी गले में पड़ती है । उपरोक्त सब सुखों का त्याग करके, हे जीव ! सब सुखरूप परमेश्वर के नाम का रसना के द्वारा, स्मरण करके, रमते राम में अपने मन को रमाइये ।

छंद :- बेर बेर कह्यो तोहि सावधान क्यूँ न होई ।
ममता की मोट सिर, काहे कूं धरत है ।
मेरो धन मेरो धाम, मेरे सुत मेरी बाम,
मेरें पसू मेरे ग्राम, भूल्यो हि फिरत है ।
तूं तो भयो बावरो बिकाई गई बुद्धि तेरी,
ऐसो अंध कूप गेह तामे तूं परतु है ।
सुन्दर कहत तोहि नेक हूं न आवै लाज,
काज को बिगार के अकाल क्यों करत है ॥२७॥

28. उपदेश

मन निरमल तन निरमल भाई, आन उपाई बिकार न जाई ।।टेक।।
जो मन कोयला तौ तन कारा, कोटि करै नहिं जाइ बिकारा ।
जो मन बिसहर तौ तन भुवंगा, करै उपाइ बिखै पुनि संगा ।
मन मैला तन उज्जवल नांहि, बहु पचि हारे बिकार न जांहि ।
मन निरमल तन निरमल होई, दादू सांच बिचारै कोई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज सत्य उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु ! मन पाप आदि मल से रहित होगा, तो शरीर भी सब दोषों से मुक्त हो जायेगा और दूसरे साधनों से मन के विकार नहीं निवृत्त होंगे । जो मन पाप आदि दोषों से कोयले के समान काला होगा, तो तन भी सदोष बना रहेगा । बहिरंग कितने ही साधन कर्म कर लो, सकाम कर्म रूपी, तब भी तन मन उज्जवल नहीं होंगे । जो मन विषय वासना रूप विष से विषहर रूप है, तो तन भी सर्प रूप ही है । उस समय इन्द्रियों के विषय प्राप्ति के ही साधन करेंगे । मन मलीन है वासनाओं से, तो शरीर और इन्द्रिये कदापि निर्दोष नहीं हो सकते । बहिरंग साधनों से बहुत से पच पच कर के थक गये, परन्तु मन इन्द्रिय और शरीर आदि निर्दोष नहीं हुए । जब मन सत्य कामी, सत्य प्रेमी, सत्य नेमी बनेगा, तभी मन निर्मल होगा । तब फिर शरीर इन्द्रिय भी निर्मल हो जायेंगे । परन्तु जो साधक मन से, वचन से तन से, सत्य सम्बन्धी निष्काम कर्मों को विचार पूर्वक करेंगे, उन्हीं का तन मन इन्द्रिये उज्जवल बनेंगे ।

29. उपदेश चेतावनी

मैं मैं करत सबै जग जावै, अजहूं अंध न चेतै रे ।
यह दुनिया सब देखि दिवानी, भूल गये हैं केते रे ।।टेक।।
मैं मेरे मै भूल रहे हैं, साजन सोइ बिसारा ।
आया हीरा हाथ अमोलक, जन्म जुवा ज्यूं हारा ।।
लालच लोभैं लागि रहे रे, जानत मेरी मेरा ।
आपहि आप बिचारत नांहीं, तूं काको को तेरा ।।

आवत हैं सब जाता दीसैं, इन मै तेरा नाहीं ।
इन सौं लागि जन्म जनि खोवै, सोध देख सचु मांहीं ।।
निहचल सौं मन मानैं मेरा, सांई सौं बनि आई ।
दादू एक तुम्हारा साजन, जिन यहु भुरकी लाई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! संसारिक मानव, इसमें आसक्त हो रहे हैं, कि मैं धनी हूं, मैं बली हूं, इस प्रकार अहंकार करके, सभी संसार के प्राणी काल के मुंह में जा रहे हैं । यह देख करके भी मद में अन्धे हुए प्राणी, सचेत नहीं होते । यह सब संसार विषय वासनाओ में पागल हो रहा है । इनको देखकर, कितने ही बिचारवान पुरूष भी, संसार में, अपने हित को भूले जा रहे हैं । मैं और मेरा इस अभिमान में फंसकर, अपना सच्चा स्वामी परमात्मा था, उसके उपकार को बिसार कर, उसको भी भूल गये हैं । यह मनुष्य जन्म रूप अमोलिक हीरा, बुद्धिरूप हाथ में आया था, परन्तु इसको भी जुआरी की भांति, विषय वासनाओं में खो रहे हैं । और नाना प्रकार के लोभ और विषयों के लालच में लग रहे हैं और फिर कहते हैं कि यह मेरी स्त्री है, यह मेरे पुत्र हैं, यह मेरा घर द्वार है, यह मेरा धन धान्य है किन्तु अपने हृदय में यह स्वयं विचार नहीं करते कि तूं किसका है ? और इनमें कौन तेरा है ? यह सब तो आते जाते दिखाई पड़ते हैं । इनमें तो विचार कर देखै तो, तेरा कुछ भी नहीं है । और यदि तेरे होवैं, तो तेरे पास से क्यों चले जाते हैं ? हे प्राणी! इनमें आसक्त होकर, अपने मनुष्य जन्म को, व्यर्थ में क्यों खो रहा है ? अब तूं विचारपूर्वक देख, परम सुख तो अन्तःकरण में ही है । हमारा मन तो परमेश्वर के एक नाम स्मरण में ही सुख मानता है, उसी से हमारी तो सम्पूर्ण वार्ता ठीक बन रही है । तुम सब भी याद रखो, जिस समर्थ परमेश्वर ने यह माया रूप भुरकी डाली है, वही तुम्हारा सच्चा रक्षा करने वाला मित्र है, और सब तो संसार में, अपने अपने स्वार्थ के ही साथी हैं । निःस्वार्थ तो एक परमेश्वर और सतगुरू ही हैं ।

छंद :- मात पिता सुत भाई बन्ध्यो, युवती के कहे कहे काम करै है ।
चोरी करै बटपार करै, किरसी बन जीकर पेट भरै है,
शीत सहै, सिर घाम सहै, कहि सुन्दर सो रन मांहि मरै है ।
बांधि रह्यो ममता सब से नर, याहि ते बंधहि बंध फिरै हैं ।।२९।।

30

का जिवना का मरणा रे भाई, जो तैं राम न रमसि अघाई ।।टेक।।
का सुख संपत्ति छत्रपति राजा, बन खंडि जाइ बसे किहिं काजा ।
का विद्या गुन पाठ पुराना, का मूरिख जो तैं राम न जाना ।
का आसन करि अह निसि जागे, का फिर सोवत राम न लागै ।
का मुक्ता का बंधे होई, दादू राम न जाना सोई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे भाई ! जो तूं मनुष्य जन्म पाकर, रमता राम का स्मरण करके तृप्त नहीं हुआ, तो क्या जीने में जीना है ? जीना और मरणा समान ही है । छत्रपति राजा होकर, सम्पत्ति का उपभोग किया तो इससे क्या तृप्ति होती है ? यदि राज्य आदि का उपभोग करने से तृप्ति हो जाती, तो राजा लोग राज्य छोड़कर, किसलिये बन में जाकर बसते थे ? हे अज्ञानी मानव ! यदि राम का स्मरण नहीं जाना, तो तेरी अधिक विद्या और नाना प्रकार के गुण, अनेकों कलायें, धर्म शास्त्र आदिकों के पठन पाठन से क्या लाभ होता है ? और निर्गुण राम का स्मरण नहीं किया, तो आसन लगाकर, नाना प्रकार की सिद्धियों की साधना से क्या लाभ होगा ? जिन्होंने राम का अद्वैत रूप नहीं जाना, उनकी मुक्ति में और बन्धन में क्या बिशेषता है ? वे तो दोनों ही समान हैं, अर्थात् बाणी से अपने को मुक्त हुआ कहता है ब्रह्म स्वरूप राम को नहीं जाना, तो वह बंधा हुआ ही है ।

31. मन प्रमोद

मन रे राम बिना तन छीजै, जब यहु जाइ मिलै माटी में,
तब कहु कैसै कीजै ।।टेक।।
पारस परसि कंचन करी लीजै, सहज सुरति सुखदाई ।
माया बेलि बिखै फल लागे, ता परि भुलि न भाई ।।
जब लग प्राण पिंड है नीका, तब लग ताहि जनि भूलै ।
यहु संसार सैंवल के सुख ज्यूं, तापर तूं जनि फूलै ।।
अवसर येह जानि जगजीवन, समझी देखि सचु पावै ।
अंग अनेक आन मति भूलै, दादू जनि डहकावै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू मन को उपदेश करते हैं कि हे मन ! राम की भक्ति के बिना, यह तेरा तन क्षण क्षण में नष्ट होता जा रहा है । जब यह एक रोज मिट्टी में मिल जायेगा, तब फिर तूं, दूसरे शरीरों में क्या राम का स्मरण करेगा ? इस मनुष्य जन्म में पारस रूप गुरू का ज्ञान, उसका स्पर्श करके, अपने स्वरूप को बदल ले । जैसे लोहा पारस का संग करके, कंचन हो जाता है, इसी प्रकार तूं ज्ञानरूप पारस द्वारा ब्रह्मरूप हो जा । 'सहज' कहिए, निर्द्वन्द होकर, सहजावस्था रूप समाधि में अपनी सुरति को स्थिर कर ले । हे मन ! स्त्री आदि माया रूप बेली के तो, विषय वासना रूप विष फल ही लगता है । इनको देखकर, सत्य स्वरूप परमात्मा को नहीं भूलना । जब तक स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर स्वस्थ है, तब तक गुरू उपदेश का स्मरण करना और यह संसार तो सैंवल वृक्ष के समान देखने मात्र का है । इसमें सार कुछ है नहीं । सैंवल वृक्ष की लाली को देखकर, गीध पक्षी बहुत छले गये हैं, और तोता इसके फूलों को लाल फल जानकर, आकर चोंच मारता है, तो कुछ सार नहीं मिलता, सिवाय रूई के । सिर धुन कर पश्चाताप करता है । इसी प्रकार का यह मायिक संसार रूपी सैंवल का वृक्ष है । अज्ञानी, बहिर्मुख, विषयासक्त मनुष्य, इसको देख देखकर, राजी होते हैं, परन्तु सार कुछ नहीं पाते हैं, तब पछताते हैं । हे मन ! इसको देखकर, तूं क्या राजी होता है ? इस मनुष्य जन्म रूपी अवसर में, जगत का जीवन रूप, जो परमेश्वर है, उसको विचार द्वारा जान ले । नित्य अनित्य का विचार करके देख, तभी तूं सत्य को प्राप्त करेगा । माया के रचे हुए, स्त्री, धन, पुत्र आदि अनेकों रूप हैं । इनको देखकर अर्थात् इनमें स्नेह करके, इनके बहकाने में नहीं आना, तभी तेरे जीवन की सार्थकता है ।

छंद :-

कै बेर तूं मन रंक भयो सठ, मांगत भीख दशों दिश डूल्यो ।
कै बेर तूं मन, छत्र धर्‍यो शिर, कामनि संगि हिंडोरन झूल्यो ।
कै बेर तूं मन, छीन भयो अति, कै बेर तूं सुख पायके फूल्यो ।
सुन्दर कै बेर तोहि कह्यो मन, कौन भली किहीं मारग भूल्यो ।।३१।।

32. मृगोक्ति उपदेश

मोह्यो मृग देखि बन अंधा, सूझत नहीं काल के फंधा ।।टेक।।
फूल्यौ फिरत सकल बन मांहि, सिर साधे सर सूझत नांही ।

उदमति मातौ बन के ठाट, छाड़ि चल्यौ सब बारह बाट ।
फंध्यो न जानै बन के चाइ, दादू स्वादि बंधानौ आइ ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, मृग के दृष्टान्त से उपदेश करते हैं कि विचाररूप नेत्रों से हीन, चेतन्य मनरूप मृग, संसार रूप बन को देखकर, मृग की भांति, मोहित हो रहा है । परन्तु इसको काल के रचे हुए, नाना प्रकार के विषय वासना रूपी फंदे, नहीं सूझते हैं। इस संसार रूपी बन में, माया की चहल पहल देखकर, मृग की भांति प्रसन्न होकर, विचर रहा है। और इसको काल रूपी शिकारी का बाण नहीं दीखता है । संसार रूपी बन के ठाठ बाट, अर्थात् स्त्री पुत्र, धन आदि को देखकर, उन्मत्त हो रहा है । किन्तु अन्त में, इन सबको छोड़कर जाता है । स्वादों के बन्धन में पड़कर, यह नहीं जानता कि मैं यमराज के फन्दों में फंस गया हूं । फिर भी संसार में, नाना प्रकार की वासनाओं में ही रत्त रहता है । इस प्रकार यह बारहबाट होकर, निराश ही चला जाता है ।

33. मन प्रति उपदेश

काहे रे मन राम बिसारै, मनखा जन्म जाय जिय हारै ।।टेंक।।
मात पिता को बन्धन भाई, सब ही सुपना कहा सगाई ।
तन धन जोबन झूठा जाणी, राम हृदय धरि सारंग पाणी ।
चंचल चित वित झूठी माया, काहे न चेतै सो दिन आया ।
दादू तन मन झूठा कहिये, राम चरण गहि काहे न रहिये ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, मन को उपदेश करते हैं कि हे मन ! राम को क्यों भूलता है ? यह मनुष्य जन्म राम का स्मरण एवं सत्य कर्मों के बिना, व्यर्थ ही जा रहा है । हे मन रूप जीव ! इसमें तो तेरी हार है । माता है, पिता है, स्त्री है, पुत्र है, यह तो सब तुझे बांधने वाले हैं । और यह सब स्वप्न सृष्टि की भांति, प्रतिभासक सत्ता वाले हैं । और हे मन ! यह तन मन, जवानी अवस्था आदि तो सब मिथ्या है । निर्गुण राम का निश्चय, अन्तःकरण में धारण कर, उनकी आज्ञा रूपी हाथ में काल चक्र घूमता है । और यह माया तो चंचला है, इसका क्या चिन्तन करता है ? यह तो स्वरूप से मिथ्या है । अब तूं हे मन ! अज्ञान से सचेत होकर क्यों नहीं देखता है ? तेरे अन्तकाल का दिन समीप आ रहा है । हे जीव ! यह तन और मन, राम की भक्ति के बिना, सब निरर्थक ही जाता है । राम की भक्ति से ही, तन मन की सार्थकता है । अब हृदय प्रदेश में राम के तेजपुंज रूपी चरणों की शरण, ग्रहण कर । इसी में तेरा कल्याण है ।

छंद :-

कौन कुबुद्धि भई घट अंदर, तूं अपने प्रभु सों मन चोरै ।
भूल गयो बिसिया सुख में सठ, लालच लाग रह्यो अति थोरै ।
ज्यूं कोउ कंचन छार मिलावत, लेकर पत्थर से नग फोरै ।
सुन्दर या नर देहै अमोलीक, तीर लगै नवका कित बोरै ।

---

34. मनुष्य देह महात्म्य

अैसा जनम अमोलिक भाई, जामैं आइ मिलै राम राई ।।टेक।।
जामैं प्राण प्रेम रस पीवै, सदा सुहाग सेज सुख जीवै ।
आत्म आइ राम सौं राती, अखिल अमर धन पावै थातीं ।
परगट परसन दरसन पावै, परम पुरूष मिलि मांहि समावै ।
अैसो जन्म नहीं नर आवै, सो क्यूं दादू रतन गंवावै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव मनुष्य शरीर की महिमा बता रहे हैं कि हे भाई ! यह मनुष्य का जन्म ऐसा अमूल्य है कि इसमें जीव आने पर, संसार के राजा रामजी, इसमें मिलते हैं । और प्राणधारी परमेश्वर की प्रेमाभक्ति रूप, अमृत रस का पान करता है और सदा हृदय शय्या पर, प्रभु का दर्शन करके, सुख से जीवन बिताता है, और फिर इस मनुष्य शरीर में जीव आत्मा, संसारिक भावनाओं से रहित होकर, राम से अनुरक्त होता है । और सम्पूर्ण संसार के अमर धन, परब्रह्म रूप धरोहर को प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार, परमेश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करके, जीवात्मा उसी में समा जाता है । हे मानव ! ऐसे रत्नरूप नरतन को, विषयों में व्यर्थ क्यों गमाता है ?

35. परिचय सतसंग

सत संगति मगन पाइये, गुरू प्रसाद राम गाइये ।।टेक।।
आकास धरन धरीजै, धरनी आकास कीजै,
सुन्नि मांहि निरखि लीजे ।

निरखि मुक्ता हल मांहैं साइर आयौ,
अपने पिया हौं ध्यावत खोजत पायौ ।
सोच साइर अगोचर लहिये,
देव देहुरे मांहैं कवन कहिये ।
हरि को हितारथ ऐसो लखै न कोई,
दादू पीव पावै अमर होई ।

टीका :- अब ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव सतसंग से, साक्षात्कार होने की प्रक्रिया बता रहे हैं कि निरंतर सतसंग में लगे रहकर, कृपा पूर्वक सतगुरू की बताई हुई विधि से, राम का स्मरण करते हुए, राम को प्राप्त करो । और ब्रह्मस्वरूप आकाश को, वृत्ति रूप पृथ्वी में धारण करो, अर्थात् निरन्तर ब्रह्माकार वृत्ति बनाये रखो । वृत्तिरूप पृथ्वी को, ब्रह्मरूप आकाश में अभेद करो, अर्थात् वृत्ति को निर्विकार बनाकर, फिर सहज समाधि द्वारा, परब्रह्म का साक्षात्कार करके, इस प्रकार देखने पर ही, हृदयरूप सरोवर में परमात्मा रूप मोती, हमारी ज्ञानदृष्टि से देखने में आया है । हमने अहंग्रह ध्यान तथा विवेक विचार द्वारा खोजकर, अपने प्रभु को अन्तःकरण में ही प्राप्त कर लिया है । हे साधको ! तुम भी इस प्रकार अन्तःकरण रूप सरोवर में ही, इन्द्रियों का अविषय परब्रह्म को साक्षात्कार प्राप्त करो । वह परब्रह्म किसी मन्दिर मस्जिद आदि में ही नहीं है । किन्तु वह सर्वत्र परिपूर्ण रूप से व्यापक है । परन्तु अपने कल्याण के लिये, उक्त प्रकार से बताये हुए, परमेश्वर को अज्ञानी मानव, कोई भी नहीं जानते हैं । यदि सतगुरू कृपा से उपरोक्त मार्ग के द्वारा, ब्रह्म स्वरूप आत्मा को जान लेवे, तो वह ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है ।

दोहा :- मनखा देई दिन उदय, जन रज्जब भज तात ।
चौरासी लख जीव की, देई दीरघ रात ।।३५।।
वित्त ऊपर बीति पड़ी, नर नारायन देह ।
जन रज्जब जगदीस भजि, जन्म सफल करि लेह ।।३५।।

36. उपदेश चेतावनी

कौण जनम कहं जाता है, अरे भाई राम छाड़ि कहां राता है ।।टेक।।
मैं मैं मेरी इन सौं लागी, स्वाद पतंग न सूझै आगि ।
बिसिया सौं रत्त गर्व गुमाना, कुन्जर काम बंधे अभिमान ।
लोभ मोह मद माया फंध, ज्यों जल मीन न चेतै अंध ।
दादू यहु तन यूं हि जाइ, राम विमुख मरि गये बिलाइ ।

टीका :- ब्रह्मऋषि उपदेश करते हैं कि हे भाई ! तेरा यह मनुष्य शरीर किस लिये हुआ है ? अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति-करने के लिये हुआ है, और तूं किधर जा रहा है ? हे भाई ! राम का स्मरण त्यागकर, कहां संसार में राता रत्त हो रहा है । तूं तो इस मैं और मेरापन में फंस रहा है । जैसे पतंग दीपक की ज्योति रूप अग्नि को देखकर, नेत्र इन्द्रिये के स्वाद में लगकर भस्म हो जाता है । इसी प्रकार तूं विषिया स्त्री आदि पदार्थों से राता रत्त होकर, गर्व गुमान को प्राप्त हो रहा है कि मेरे समान कौन है ? जेसे कुंजर हाथी काम इन्द्रिय के बस में होकर, कलाबूत की हथनी देखकर गड्ढे में गिरता है और आप ही बन्धन में आ जाता है, इसी प्रकार तूं लोभ, मोह, मद आदि माया रूप फंदों में फंस गया है । जैसे मछली जिह्वा के रस में लगकर, प्राण गमा देती है, इसी प्रकार यह मनुष्य शरीर, विषयों में आसक्त प्राणियों का, उपरोक्त प्रकार से राम से विमुख जीव, व्यर्थ ही खो देते हैं ।

दोहा :- **आदम सेति औलिया, नर नरायन होइ ।**
मुक्ति द्वारा मानव, देही रज्जब खोइ ।।३६।।

37

मन मूरिखा तैं क्या कीया, कुछ पीव कारण बैराग न लीया,
रे तैं जप तप साधी क्या दीया ।।टेक।।
रे तैं करवत कासी कदि सह्या, रे तूं गंगा मांहैं ना बह्या ।
रे तैं बिरहनि ज्यौं दुख ना सह्या ।।

रे तूं पालै परवत ना गल्या, रे तूं आप ही आपा ना दह्या।
रे तैं पीव पुकारी कदि कह्या॥
होइ प्यासे हरि जल ना पिया, रे तूं बजरन फाटो रे हिया।
धिग जीवन दादू ये जीया॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू अपने मन को उपलक्षण करके उपदेश करते हैं कि हे मन मूर्ख ! तंने परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, विषयों से कुछ भी वैराग्य धारण नहीं किया ? हे मन ! तंने जप तप करके, परमेश्वर को क्या दिया? और तूं परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, कासी करवत जैसा दुख कब सहा है? परमेश्वर की प्राप्ति के लिये कभी तंने गंगा स्नान किया है ? हे मन तंने बिरहनी की तरह, प्रभु वियोग का दुख कभी सहा है। रे तूं हिमालय में जाकर, प्रभु प्राप्ति के लिये कभी गला है। हे मन मूर्ख ! तंने अपने अहंकार को कभी बिरह रूप अग्नि में जलाया है ? हे मन ! तंने कभी हृदय की पुकार से, पीव का स्मरण किया है ? और तूं कभी अत्यन्त हरि दर्शनों की प्यास से, मूर्ख मन ! स्मरण नहीं किया। हे हमारे हृदय ! तूं बज्र के समान है। तूं कभी फट करके, तंने के लिये पुकार नहीं की। ऐसे जीव के जीने में धिक्कार है, जो प्रभु विमुख होकर, जीता है।

दोहा :- हींग हलद खड़िये बसै, तो त्रिया क्यूं त्यागि।
कै मोकों खड़िये करो, कै ल्यो तीब्र बैराग॥३७॥

दृष्टान्त :- तुलसीदास जी संत होने के बाद घूमते घूमते अपने गांव में आये। गांव वाले उनका सतसंग सुनने लगे और क्रम क्रम से सेवा भी करने लगे। इनकी स्त्री भी सतसंग में आई और बोली :- कि कल भोजन का सामान मैं लाऊंगी। जब दूसरे दिन वह रसोई का सामान सब लाई, परन्तु हल्दी नहीं लाई। तुलसीदास जी ने सब सामान देखा और बोले :- हल्दी तो नहीं लाये। वह बोली महाराज ! अब लाती हूं। तुलसीदास जी बोले :- नहीं अब मत लाओ, हमारे खड़िया में हल्दी है, उसको काम में ले लेंगे। तब वह बोली :-

हींग हलद खड़िया बसै, तो त्रिया कयूँ त्यागि।
कै मोकों खड़िये करो, कै ल्यौ तीब्र बैराग॥

यह सुनकर, तुलसीदास जी के अन्दर के चक्षु खुल गये और झोली झन्डे भी वहीं डाल दिये और फिर महान् बीतराग होकर, मन प्रभु भजन में सलग्न हो गया।

38

क्या कीजै मनखा जन्म कौ, राम न जपहि गंवारा रे।
मायां के मदि मातो बहै, भूलि रह्या संसारा रे ।।टेक।।
हिरदै राम न आवई, आवै बिसै बिकारा रे।
हरि मारग सूझै नहीं, कूप परत नहीं बारा रे।।
आपा अगनि जु आप मै, ताथैं अह निसि जरै सरीरा रे।
भाव भक्ति भावै नहीं, पीवै न हरि जल नीरा रे।।
मैं मेरी सब सूझैई, सूझै माया जालो रे।
राम नाम सूझै नहीं, अंध न सूझै कालो रे।।
ऐसैं ही जनम गंवाइया, जित आया तित जाई रे।
राम रसायण ना पिया, जन दादू हेत लगाइ रे।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि हे मूर्ख मानव ! हे गंवार ! राम नाम का स्मरण, इस मनुष्य शरीर में नहीं किया, तो फिर इस मनुष्य शरीर का क्या करेगा ? विषय सुख तो सभी योनियों में प्राप्त होते हैं, यह शरीर तो परमेश्वर की भक्ति के लिये मिला है। हे मूर्ख ! तूं प्रभु स्मरण को भूलकर, माया के मद में मतवाला होकर, संसार में इधर उधर घूम रहा है। तूं अपने हृदय में राम नाम का स्मरण कभी नहीं करता है। सदैव शब्द आदि विषय, और काम आदि विकारों, का ही चिन्तन करता रहता है। परन्तु परमेश्वर के पास ले जाने वाला परोपकार, और परमेश्वर की भक्ति, तेरे को नहीं दिखती है। किन्तु विषय वासना रूपी संसार कूप में ही तूं पड़ता है, और आपा अभिमान रूपी अग्नि में तेरा शरीर जलता रहता है। फिर भी तेरे को संसार से वैराग्य नहीं होता ? और परमेश्वर की भक्ति प्रिय नहीं लगती है। तैंने कभी भी हरि की प्रेमाभक्ति रूपी अमृत जल को नहीं पीया। हे मूर्ख ! तुझे "मैं और मेरापन" ही दीखता है। हे विवेक विचाररूपी आंखों से अन्धे ! न तो तूं काल को ही देखता है और न राम नाम का स्मरण ही करता है। इसी प्रकार तैंने, इस मनुष्य शरीर को वृथा ही नष्ट कर दिया है। और कभी भी राम रसायन को तैंने

नहीं पीया । हे मूर्ख ! चौरासी भोग कर, मनुष्य के शरीर में आया था । अब तूं फिर, उसी चौरासी में जाने के काम कर रहा है ।

दोहा :- रे प्रानी पासा पड्या, मानुस देही मांहि ।
जन रज्जब जगदीस भज, यह ओसर भी नांहि ।।३८।।

---

39 . परिचय वैराग्य

इनमै क्या लिजै क्या दिजै, जन्म अमोलिक छीजै ।।टेक।।
सोवत सुपिना होई, जागे थैं नहिं कोई ।
मृग तृष्णा जल जैसा, चेति देखि जग ऐसा ।
बाजी भरम दिखावा, बाजीगर डहकावा ।
दादू संगी तेरा, कोई नहीं किस केरा ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुदेव प्रत्यक्ष रूप से वैराग्य का उपदेश कर रहे हैं कि हे भाई ! इन संसार के विषय वासनाओं में क्या लेना देना है ? यह मानव जन्म अमूल्य, दिन दिन क्षीण होता जा रहा है । तूं क्या अज्ञान निन्द्रा में सोया हुआ है ? ज्ञान जागृत आते ही, यह सब स्वप्न के समान मिथ्या हो जाता है । यह मायिक कार्य संसार, मृग तृष्णा के जलवत देखने मात्र का है । इससे कोई तृप्त नहीं होता है, क्योंकि यह असत्य है । विचार कर देख । जैसे बाजीगर भ्रम की बाजी रचकर दिखाता है अर्थात् बहकाता है, इसी प्रकार यह सब माया विशिष्ट ईश्वर की, रची हुई बाजी केवल देखने मात्र को ही है । तुम्हारा संगी तो केवल, एक सत्य स्वरूप परमेश्वर है । और इस संसार में कोई भी, किसी का साथी नहीं है ।

दोहा :- हरि सुमिरन की ठौर यहु, मानुस देहि मांही ।
सो ठाहिर सोंपी तुझे, रज्जब समझै नांहीं ।।३९।।

40. चेतावनी उपदेश

खालिक जागै जियरा सोवै, क्यों करि मेला होवै ॥टेक॥
सेज एक नहिं मेला, ताथैं प्रेम न खेला ।
सांई संग न पावा, सोवत जनम गवांवा ।
गाफिल नींद न कीजै, आव घटै तन छीजै ।
दादू जीव अयाना, झूठे भरम भुलानां ।

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज साधक को सावधान होने के लिये उपदेश करते हैं कि खलक को रचने वाला परमेश्वर, सदा जागता है और यह जीव अज्ञान निद्रा में सो रहा है । तो इस जीव का, ईश्वर से कैसे मिलाप होवं ? अन्तःकरण रूपी सेज पर ही, ईश्वर और जीव दोनों स्थित हैं, अर्थात् कूटस्थ रूप ईश्वर और आभास रूप जीव । परन्तु अन्तर्मुख वृत्ति से जीव प्रेमा भक्ति द्वारा, स्मरण नहीं करता है । इसीलिये स्वामी के साथ रहता हुआ भी, यह पहचान नहीं पाता । अज्ञान निद्रा में ही, अमूल्य मनुष्य जन्म को व्यर्थ गमा दिया है । हे जीव ! अब नींद में गाफिल मत हो, क्योंकि तेरी आयु दिन दिन घटती जा रही है और शरीर क्षीण हो रहा है । हे अज्ञानी जीव ! इस मिथ्या भ्रम में पड़कर, सत्य स्वरूप परमेश्वर को क्यों भूल बैठा है ?

छंद :- बेर बेर कह्यो तोही, सावधान क्यूं न होइ,
ममता की मोट शिर, काहे को धरत है ।
मेरो धन मेरो धाम, मेरो सुत मेरी बाम,
मेरे पशु मेरे ग्राम, भूल्योइ फिरत है ।
तूँ तो भयो बावरो, बिकाइ गई बुद्धि तेरी,
ऐसो अन्ध कूप गेह, तामे तूँ परतु है ।
सुन्दर कहत तोहि, नेकहु न आवै लाज,
काज कूं बिगार के, अकाज क्यूँ करतु है ॥४०॥

।। अथ राग जंगली गौड़ी ।।

41. पहरा (पंजाबी भाषा)

पहलै पहरै रैणि दे बणजारिया, तूं आया इहि संसारि वे ।
माया दारस पीवण लागा, बिसार्या सिरजनहार वे ।
सिरजनहार बिसारा किया पसारा, मात पिता कुल नारि वे ।
झूठी माया आप बंधाया, चेतै नहीं गंवार वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तूं आया इहि संसार वे ।।१।।

टीका :- ब्रह्मऋषि उपदेश करते हैं कि हे जीवरूप बणजारिया तूं इस संसार में विणज करने के लिये आया है, और इस उम्ररूप रात्रि के प्रथम पहर में है, तूं । परन्तु सृष्टिकर्त्ता ईश्वर को भूलकर, तूं माया के विषय वासना रूप रस को पान करने लगा है । और परमेश्वर को भूलकर, तैंने माता पिता, स्त्री पुत्र आदि के साथ बहुत फैलाव फैला लिया है, मोह ममता का । इस मिथ्या माया के चक्र में स्वयं ही फंस गया है । हे सचेत ! सावधान होकर देख, तैंने कितने अवगुण किये हैं । अपने किए हुए दोषों के कारण ही तूं, सम्पूर्ण परिवार में बंधा हुआ है । संतजन तेरे को उपदेश करते हैं कि तूं इस मायिक संसार में आया है, सचेत रहना ।

दूजै पहरै रैंणि दे बणिजारीया, तूं रत्ता तरूणी नाल वे ।
माया मोहि फिरै मतवाला, राम न सक्या संभालि वे ।
राम न संभाले रत्ता नाले, अंध न सूझै काल वे ।
हरि नहीं ध्याया जनम गवांया, दह दिस फूटा ताल वे ।
दह दिसि फूटा नीर निखूटा, ले खाडे बण साल वे ।
दादू दास कहै बणिजारा, तूं रत्ता तरूणी नाल वे ।।२।।

टीका :- हे जीवरूप बणजारिया ! यह तेरी आयुरूप रात्रि का दूसरा पहर है, इसमें तूं तरुण स्त्री के साथ अनुरक्त हो रहा है और फिर माया के मोह ममता में मतताला होकर बिचरता है । अब तैंने राम का स्मरण

बिसार दिया है। और तरूणी के साथ ही स्नेह करता है। हे अंधे विवेक रहित ! तेरे को काल नहीं सूझता है और न तैंने, हरि की भक्ति ही की है। इस प्रकार, इस अमूल्य नर तन को तैंने वृथा ही गमा दिया। तेरा हृदयरूप सरोवर फूटकर, श्वांसरूपी जल, दशों इन्द्रियों के द्वारा, दशों दिशाओं मैं फैल गया है। इस प्रकार तेरी सम्पूर्ण शक्ति नष्ट हो चुकी है। अब तुझे परमेश्वर को हिसाब देने में अति कष्ट होगा। हम संतजन तुझे कह रहे हैं कि तूं युवती के साथ अनुरक्त होकर, अपना सर्वस्व खो बैठा है।

तीजै पहरै रैणि दे बणजारिया, तैं बहुत उठाया भार वे।
जो मन भाया सो करि आया, ना कुछ किया बिचार वे।
बिचार न कीया नावं न लिया, क्यों कर लंघै पार वे।
पार न पावै फिर पछितावै, डूबण लग्गा धार वे।
डूबण लग्गा भेरा भग्गा, हाथनि आया सार वे।
दादू दास कहै बणिजारा, तैं बहुत उठाया भार वे ।।३।।

टीका :- हे जीवरूप बणजारिया ! यह तेरी रात्री का तीसरा पहर है। इसमें तैंने ममता रूप बहुत सा भार कहिए, बोझा उठा लिया है। जो तेरे मन को अच्छा लगा, वही वही काम तैंने किये, भले बुरे का कुछ भी विचार नहीं किया। और न आत्मारूप परमात्मा का स्मरण ही किया। तूं इस संसार समुद्र को कैसे पार कर सकेगा ? जब इस संसार समुद्र में डूबने लगेगा, तब फिर पश्चाताप ही करना होगा। जब डूबने लगा और मनुष्य देह रूपी भेरा कहिए नौका, टूट गई और फिर तेरे हाथ में कहिए हृदय में, परमात्मा का नाम स्मरण रूप सार भी नहीं रहा। हे जीव ! तत्ववेता संत कह रहे हैं कि तैंने पाप रूपी बोझा बहुत उठा लिया है, तेरा कल्याण होना असम्भव है।

चौथे पहरै रैणि दे बणिजारिया, तूं पक्का हूवा पीर वे।
जोबन गया जरा बियापी, नांही सुधी शरीर वे।
सुधि ना पाई, रैनि गवांई, नैनों आया नीर वे।
भव जल भेरा डुबण लग्गा, कोई न बंधै धीर वे।
कोई धीर न बंधै जम के फंधे, क्यौ करि लंघै तीर वे।
दादू दास कहै बणिजारा, तूं पक्का हूवा पीर वे ।।४।।

टीका :- हे जीपरूप बणजारिया ! यह तेरी उम्ररूप रात्रि का चौथा पहर है। इसमें तूं घर की तथा परिवार की परिस्थितियों का विचार करता करता, वृद्ध हो गया है। तेरे शरीर कीं जवानी खत्म हो गई है और जरजरी अवस्था, बुढ़ापा शरींर में आ पहुंचा है। अब तुझे तेरे शरीर की सुध बुध भी नहीं रहने लगी है। परन्तु तंने अब तक परमेश्वर के नाम की सुध नहीं पाई। वृथा ही तंने उम्ररूपी रात्रि को खो दी है। अब तो नेत्रों से दिखना भी कम हो गया और आंसू टपकने लग गये हैं। इस संसार समुद्र में, यह मनुष्य देह रूपी नौका, तेरी डूबने लगी है। इस समय में कोई भी, तेरे को धैर्य बंधाने वाला नहीं है। ऐसी समय में कोई भी धैर्य नहीं रख सकते, क्योंकि यमराज के दूत, सामने फांसी लेकर खड़े हो जाते हैं और गले में डाल देते हैं। ऐसी स्थिति में, तूं संसार समुद्र से कैसे पार हो सकेगा ?

शब्द :- सोइ सोइ सब रैन बिहानी, रतन जन्म की खबर न जानी ।।टेक।।
पहले पहर मरम नहि पावा, मात पिता सौं मोह बंधावा ।
खेलत खात हस्या कहुं रोया, बालपना ऐसे ही खोया ।।
दूजै पहर भया सतवारा, परधन परत्रिय देख खुसाला ।
काम अंध कामनी संग जाई, ऐसैहि योवन गयो शिराई ।।
तीजे पहर गया तरू तापा, पुत्र कलत्र का भया संतापा ।
मेरै पीछै कैसी होई, धरि धरि फीरि है लरिका जोई ।।
चौथे पहर जरा तर व्यापीं, हरि न भज्यो इहिं मूरख पापी ।
कहि समुझावै सुन्दर दासा, राम बिमुख मर गये निरासा ।।४१।।

---

42. काल चेतावनी

काहे रे नर करहु डफाण, अंति कालि घर गोर मसाण ।।टेक।।
पहले बलवंत गये बिलाइ, ब्रह्मा आदि महेसुर जाइ ।
आगै होते मोटे मीर, गये छाड़ि पैगम्बर पीर ।
काची देह कहा गर्वाना, जे उपज्या सो सबै बिलाना ।
दादू अमर उपावनहार, आपहि आप रहै करतार ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव काल से चेत कराते हैं कि हे मानव ! तूं अपने को महान समझकर, क्यूं अहंकार करता है ? अन्त में तो तेरा घर, कब्र या श्मशान ही होगा। तेरे पहले अनेकों बलिष्ट पुरुष हो गये हैं, वे सब ही मिट्टी में मिल गये। और कहां तक कहैं ? ब्रह्मा जी, शंकर जी आदि के भी माया रचित स्थूल शरीर विलय हो गये हैं। तेरे से पहले बड़े बड़े सरदार, मीर उमराव, पीर पैगम्बर, यह सब ही शरीर आदि से लेकर, सब कुछ यहां ही छोड़ गये हैं। इस मिट्टी के कच्चे घड़े के समान, तेरा शरीर है। इसको पाकर क्या अभिमान करता है ? जो कुछ नामरूप जगत उत्पन्न हुआ है, वह समय पाकर सब ही काल के द्वारा नष्ट हो जायेगा। अमर तो केवल सबकी उत्पत्ति करने वाला, परमेश्वर और उसका नाम ही है, और वही काल से रहित है।

छंद :- सोइ रह्यो कही गाफील व्है करी, तो सिर ऊपर काल दहाड़ै।
धामस धुमस लाग रह्यो सठ, आइ अचानक तोइ पछाड़ै।
ज्यों बन में मृग कूदत फांदत, चित्र गले नख सूं उर फाड़ै।
सुन्दर काल डरै जिनके डर, ता प्रभु कूं कहु क्यों न संभारै।।४२।।

---

43. उपदेश

इत घर चोर न मूसै कोई, अंतरि है जे जानै सोई।।टेक।।
जागहु रे जन तत्त न जाई, जागत है सो रह्या समाई।
जतन जतन करि राखहु सार, तसकर उपजैं कौन बिचार।
इव कर दादू जाणैं जे, तो साहिब सरणा गती ले।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव अब जीवों के कल्याण अर्थ उपदेश करते हैं कि हे भाई ! जो शरीर के भीतर आत्मस्वरूप ब्रह्म है, उसको जो जानते हैं, उनके अन्तःकरण रूपी घर में काम क्रोध आदि चोर, ज्ञान रूप धन को नहीं चुरा पाते। हे मनुष्यों ! मोह रूप निद्रा से जागो, जिससे ज्ञान रूप सार आनन्द सुख, तुम्हारे हृदय से नहीं जायेगा। जो पुरुष ज्ञानरूप जागृत अवस्था में है, वह उसी आनन्द स्वरूप में समाकर रहता है। यदि तुम भी बारम्बार प्रयत्न करके, सारभूत ज्ञान की रक्षा करोगे, तो उस विचार से फिर अन्तःकरण में काम आदि चोर कैसे उत्पन्न हो सकेंगे ? अर्थात् नहीं उत्पन्न हो सकेंगे। आत्मज्ञान के रहते हुए काम आदि को उत्पन्न करने वाला कोई भी विचार हृदय में नहीं आवेगा। इस प्रकार जो आत्मा से अन्य, काम आदिकों को चोर जानकर, उनको मारने में सचेत रहता है, उस पुरुष को परमेश्वर, अपने स्वरूप में अभेद कर लेता है।

दोहा :- इक पंडित इक हरि भक्त, दोउ जन बैठे तीर ।
मृत्तक ऐक आवत बह्यो, सनमुख सलता नीर ।।४३।।

शब्द शियाली तहां करै, जांग लाल है चार ।
कोइ ले भख मोहि दे, समझै शब्द बिचार ।।
साधू सूरति गह अगम की, हरि में रह समाइ ।
पंडित प्रवृत्ति आस धर, जल में बैठ्यो धाइ ।।
राम नाम मुख आन दुःख, कोई न जाणै तास ।
चित्त भ्रम छले अनेक नर, सु कहि जगजीवन दास ।।
जो सुख चाहै राम तजि, सो सुख दुख की रास ।
कहि जगजीवन बासना, कर्म काम की पास ।।
रवि दीपक ज्यूं जन रहै, परम पुरिस की आस ।
अविगती आज्ञा सोइ सत्य, सु कहि जगजीवनदास ।।

---

44. उपदेश चेतावनी

मेरी मेरी करत जग खीना, देखत ही चलि जावै ।
काम क्रोध तृष्णा तन जालै, ताथैं पार न पावै ।।टेक।।
मूरख समता जन्म गमावै, भूल रहे इहि बाजी ।
बाजीगर कौं जानत नांही, जनम गंवावै बादी ।।
परपंच पंच करै बहु तेरा, काल कुटम्ब के तांई ।
बिख के स्वादि सबै ये लागे, ताथैं चीन्हत नांही ।।
येता जिये मै जानत नांहीं, आइ कहां चलि जावै ।
आगै पीछै समझै नांहीं, मूरख यूं डहकावै ।।

ये सब भरम भानि भल पावै, सोधि लेहु सो सांई।
सोई एक तुम्हारा साजन, दादू दूसर नांही ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव उपदेश द्वारा चेत कराते हैं कि संसार के प्राणी 'मेरी मेरी' कहिए, यह स्त्री मेरी है, यह धन दौलत सम्पत्ति सब मेरी है। ऐसा करते करते ही क्षीण होते जा रहे हैं। और यह काम है क्रोध है, तृष्णा रूप अग्नि, शरीर को जला रही है। इसी से अज्ञानी प्राणी, संसार का पार नहीं पाते। ऐसे मूर्ख, ममता मोह में बन्धकर, मनुष्य जन्म को वृथा ही गमा रहे हैं। इस संसार रूप माया की रचना को देखकर, परमात्मा को भूल रहे हैं। वह परमेश्वर रूप बाजीगर को नहीं जानते। वह अपने मनुष्य जन्म को निर्थरक ही गमाते रहते हैं। पांच ज्ञान इन्द्रियों के विषयों में फंसकर, नाना प्रकार के भोगों की वासना से, झूठ कपट के काम करते हैं। अथवा अपने इस कालरूप कुटम्ब के लिये, अनेक प्रकार के शुभ अशुभ कर्म करते हैं। परन्तु यह सब स्वाद तो, विष रूप हैं। इस बात को अज्ञानी, अपने जीव में नहीं समझता, कि मैं कहां से आया हूं, और कहां जाऊंगा ? भूतकाल के जन्म और कर्मों को, तथा भविष्यकाल में होने वाले कार्य को नहीं समझता है। इस प्रकार परमेश्वर से विमुखी मूर्ख, बहक रहा है। इस सब भ्रम को, तत्व ज्ञान से नाश करै, तो परमेश्वर को प्राप्त होवै। इस प्रकार अपने स्वामी परमेश्वर को विचार द्वारा, ढूंढ ले। वह परमेश्वर ही एक, हे जीव ! तेरा साजन कहिए मित्र है। और दूसरा माया और माया का कार्य स्वरूप से, सत्य नहीं है।

45. गर्व हानिकर

गर्व न कीजीये रे, गर्वै होई बिनास।
गर्वै गोबिन्द ना मिलै, गर्वै नरक निवास ॥टेक॥
गर्वै रसातल जाइये, गर्वै घोर अन्धार।
गर्वै भौजल डूबिये, गर्वै वार न पार ॥
गर्वै पार न पाईये, गर्वै जमपुर जाइ।
गर्वै को छूटै नहीं, गर्वै बंधे आइ ॥
गर्वै भाव न ऊपजै, गर्वै भक्ति न होइ।
गर्वै पिव क्यों पाइये, गर्वै करै जनि कोई ॥
गर्वै बहुत बिनास है, गर्वै बहुत बिकार।
दादू गर्व न कीजिये, सनमुख सिरजनहार ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव गर्व को हानिकारक बता कर, उसके त्यागने का उपदेश कर रहे हैं कि हे जीवो ! गर्व नहीं करना, क्योंकि गर्व करने से विनाश हो जाता है । गर्व करने वाले को, गोविन्द भगवान की कभी भी प्राप्ति नहीं होती है । गर्व करने वाले का, नरक में वास होता है । गर्व करने वाला अधोगति को जाता है । गर्व भयंकर अन्धकाररूप है । इसमें आसक्त हुये मनुष्य को, सत्य असत्य कुछ भी नहीं दीखता है । गर्व करने वाला, संसार समुद्र में ही डूबता है, अर्थात् जन्म मरण को प्राप्त होता है । गर्व करने वाला इस संसार का, उरला किनारा और परला किनारा नहीं पा सकता । गर्व से यमलोक की प्राप्ति होती है । गर्व करने वाला, जन्म मरण से कभी छुटकारा नहीं पाता । गर्व करने वाला निसिद्ध कर्मों में, अर्थात् पाप कर्मों में ही बंधा रहता है । गर्व करने वाले पुरुष के अन्तःकरण में, परमेश्वर प्राप्ति का भाव नहीं उत्पन्न होता है । गर्व करने वाले प्राणियों से, भगवान की निष्काम भक्ति नहीं होती । गर्व करने वालों को मुखप्रीति का विषय, आत्मस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती है । इसलिये हे भाई ! गर्व का सदैव त्याग करने से ही कल्याण होता है क्योंकि गर्व करने से तो सब प्रकार से नाश हो जाता है । गर्व करने वालों के अन्दर तो, हर प्रकार के विकार होते हैं । इसलिये तत्ववेत्ता पुरुष कहते हैं कि हे जीवो ! गर्व नहीं करना, तो वह सिरजनहार परमेश्वर, तुम्हारे सन्मुख ही प्रत्यक्ष हैं ।

46. हित उपदेश

हुसियार रहौ मन मारैगा, सांई सतगुरू तारैगा ।।टेक।।
माया का सुख भावै, मूरख मन बौरावै रे ।
झूठ सांच करि जाना, इन्द्रिय स्वाद भुलाना रे ।
दुख कौं सुख करि मानै, काल झाल नहीं जानै रे ।
दादू कहि समझावै, यहु अवसर बहुरी न पावै रे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव जीवों के हित के लिये, उपदेश करते हैं कि हे साधक पुरुषों ! इस मन से सावधान रहना क्योंकि यह मन विषयों में प्रवृत्ति कराके, परमार्थ मार्ग से गिरा देगा । और यदि कभी मन के बस होकर गिर भी जावै, तो तूं फिर परमात्मा और सतगुरु की शरण में जाना, वही तेरा उद्धार करेंगे । इस मन को मायावी नाना प्रकार के संसारिक सुख प्रिय लगते हैं । यह उन्हीं में लगकर, परमात्मा की तरफ से पागल हो रहा है । और झूठे संसार को ही सत्य करके जाना है । इन्द्रियों के विषयों के स्वादों में लगकर, परमात्मा को भूल रहा है । दुखरूप संसार को ही सुखरूप समझकर, इसमें प्रसन्न रहता है । यह अज्ञानी जीव, यह नहीं जानता कि यह तो सब उपरोक्त, काल की लपट हैं । तत्ववेता पुरुष कह कर समझाते हैं कि हे जीव ! यह मनुष्य जन्म रूपी अवसर, कहिये समय, बारबार नहीं प्राप्त होगा ।

दोहा :- लिखि भेजी तुक दयाल जी, गरीबदास आमेरि ।
उन गुरू को अगली लिखी, सांई सतगुरू मेहरि ।।४३।।

दृष्टान्त :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव आमेर में बिराजते थे। उपरोक्त साखी की पंक्ति लिखकर, गरीबदास जी के पास आंधी ग्राम में भेजी कि "हुसियार रहो मन मारैगा०" हे गरीबदास जी ! सचेत रहना मन से, इस मन ने बहुतों को श्रय साधन से गिरा दिये हैं, तब गरीबदास जी ने अगली तुक लिख भेजी कि :- "सांई सतगुरू तारैगा०" कि हे गुरूदेव ! आप परमेश्वर स्वरूप हैं आप ही मेहर करके मन से तारोगे ।

---

47. विश्वास

साहिब जी सत मेरा रे, लोग झखैं बहुतेरा रे ।।टेक।।
जीव जनम जब पाया रे, मस्तकि लेखि लिखाया रे ।
घटै बधै कुछ नांही, कर्म लिख्या उस माहीं रे ।
बिधाता बिधि कीन्हां, सिरजि सबनि को दीन्हा रे ।
समरथ सिरजनहारा, सो तेरे निकटि गवांरा रे ।
सकल लोक फिर आवै, तौ दादू दीया पावै रे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, अपना परमेश्वर में विश्वास दिखा रहे हैं कि हे भाईयो ! हमें तो एक सत्यस्वरूप परमेश्वर का ही आश्रय है । और संसारिक लोग तो अपना धन, जन, बल का आसरा लेकर, बहुत खैंचातानी में लगे रहते हैं । हे भाई ! जिस दिन जीव ने जन्म लिया है, तभी से इसका प्रारब्ध कर्म, इसके साथ है । वैंसा ही सुख दुख, या प्राप्ति अप्राप्ति होती रहती है । उस प्रारब्ध कर्म में, न्यूना अधिकभाव कुछ नहीं होता है । समर्थ परमेश्वर ने जीव के संचित कर्मों से, विधिपूर्वक शरीर की रचना करके, जीव को दिया है । वह समर्थ परमेश्वर, सब को उत्पन्न करने वाला, अन्तःकरण में जीव के पास ही है । परन्तु ये गंवार जीव, उसको नहीं देखता है । हे मूर्ख ! चाहे तूं सम्पूर्ण लोकों में फिर आवै, तो भी तेरे प्रारब्ध कर्मानुसार ही, परमेश्वर तुझको देंगे, वही तुझको मिलेगा ।

दोहा :- दिया मिलै परलोक मै, करण तन मति जोइ ।
कंचन दत्त कंचन लह्यौ; अवर मिल्यौ नहिं कोइ ।।४७।।

दृष्टान्त :- इस लोक में जो कुछ हाथ से देता है, वही परलोक में मिलता है। राजा कर्ण ने सोने का दान दिया था, तो परलोक में उसको सोना ही मिला। फिर धर्मराज की आज्ञा से मृत लोक में आकर, सोलह रोज तक अन्न वस्त्र जल आदि का दान किया। तब फिर उसको सम्पूर्ण पदार्थ प्राप्त हुए। उसी दिन से सोलह श्राद्ध भी दुनियां में सभी लोग करने लगे।

दोहा :- दियो लियो दफतर चढै, छाजन भोजन रोक।
जगन्नाथ दरबार में, मंडै थोक का थोक ॥४७॥

48

पूरि रह्या परमेश्वर मेरा, अण मांग्या देवै बहुतेरा ॥टेक॥
सिरजनहार सहज मैं देइ, तो काहे धाइ मांगि जन लेइ।
बिसंभर सब जग कौ पूरै, उदर काजि नर काहे झूरै।
पूरक पूरा है गोपाल, सबकी चिंत करै दरहाल।
समरथ सोई है जगनाथ, दादू देख रहे संग साथ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव अपने को उपलक्षण करके कहते हैं कि वह हमारे परमेश्वर, हमारे मन के सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण कर रहे हैं। अर्थात् बिना याचना के ही बहुत कुछ दे रहे हैं। जब सम्पूर्ण सृष्टि को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर, स्वभाव से ही दे रहे हैं, तो फिर क्यों किसी के पास दौड़कर मांगने का प्रयत्न करैं ? वह सम्पूर्ण विश्व को रचकर सबका भरण पोषण करने वाले सारे जगत् को पूर रहे हैं। तो हे नर ! तूं क्यों अपने उदर पूर्ति के लिये छटपटाता है ? वह गोपल सबका पालन करने वाले, सब प्रकार देने में पूर्ण हैं। चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त को, तत्काल पूरते हैं। ऐसे वह समर्थ जगत् के 'नाथ' कहिए स्वामी हैं। वह सब ही के साथ निवास कर रहे हैं। उन्हीं को अन्तर्वृत्ति से साक्षात्कार करो।

49. नाम विश्वास

राम धन खात न खूटै रे, अपरंपार पार नहिं आवै,
आथिन टूटै रे ॥टेक॥
तस्कर लेइ न पावक जालै, प्रेम न छूटै रे।

चहुं दिसि पसर्‍यो बिन रखवाले, चोर न लूटै रे ।
हरि हीरा है राम रसाइण, सरस न सूकै रे ।
दादू और आथि बहुतेरी, तुस नर कूटै रे ।

टीका :– ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव राम नाम में विश्वास कराते हैं कि राम नाम रूपी धन का स्मरण करने से, वह धन खत्म नहीं होता । किन्तु अपार वृद्धि को प्राप्त होता है । वह धन कभी कम नहीं होता और उसको चोर चुरा नहीं सकते तथा अग्नि जला नहीं सकती । भक्तजनों का इसीलिये, उस नाम धन से प्रेम नहीं छूटता है । और यह रामरूपी धन, सब दिशाओं में बिना रखवाली के ही फैला हुआ है । अर्थात् भजन की कीर्ति सर्वत्र प्रकाश करती रहती है । तो भी उसको अज्ञानी निन्दक रूप चोर मनुष्य लूट नहीं सकते । फिर वह हरि नाम रूपी अमोलिक हीरा है, और राम की निष्काम भक्ति संतों के हृदय में सरस कहिए, कभी भी नहीं सूखती है । इस प्रकार राम धन के बिना, और धन की इच्छा करना, हे नर ! भूसा कूटने के समान है । भूसा कूटने से कोई अन्न के दाने प्राप्त नहीं कर सकता । जिसके हृदय में रामधन है, उस पुरुष की सभी लोग सेवा करते हैं, और उससे अपना कल्याण चाहते हैं ।

50. तत्व उपदेश

तूं है तूं है तूं है तेरा, मैं नही मैं नहीं मैं नही मेरा ॥टेक॥
तूं है तेरा जगत उपाया, मैं मैं मेरा धंधै लाया ।
तूं है तेरा खेल पसारा, मैं मैं मेरा कहै गंवारा ।
तूं है तेरा सब संसारा, मैं मैं मेरा तिन सिर भारा ।
तूं है तेरा काल न खाइ, मैं मैं मेरा मरि मरि जाइ ।
तूं है तेरा रह्या समाइ, मैं मैं मेरा गया बिलाइ ।
तूं है तेरा तुम्ही मांहि, मैं मैं मेरा मैं कुछ नांहि ।
तूं है तेरा तूं हीं होइ, मैं मै मेरा मिल्या न कोइ ।
तूं है तेरा लंघै पार, दादू पाया ग्यान बिचार ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू देव तत्व ज्ञान का उपदेश कर रहे हैं कि हे परमेश्वर ! आप सत्य चित्त आनन्द स्वरूप हैं, और यह सब कुछ रचना आपकी ही रची हुई है। और जो अज्ञानी मनुष्य कहते हैं कि मैं हूं और मेरा है, वह सब मिथ्या है। अथवा न मैं हूं और न मेरा है। मन वचन कर्म से मुक्तजन कहते हैं कि सब कुछ आप ही हो और यह सब आप ही की रचना है। आप ही हो और यह जगत आपका ही उत्पन्न किया हुआ है। जो कहता हूं, मैं हूं और मेरा है, उसको आपने जन्म मरण के काम में लगा दिया है। परन्तु संतजन कहते हैं कि आप हो और सारा पसारा आप ही का पसारा हुआ है और इस पसारे में आप ही खेलते हो। जो कहते हैं मैं हूं, मैं हूं, वह विषय आसक्त गंवार, अज्ञानी हैं। आप हो और यह सारा संसार आपका है और जो कहते हैं मैं हूं और मेरा है, उनके मस्तक पर, मिथ्या ही अहंकार रूपी पाप का भार रखा है। और जो कहते हैं परमेश्वर तूं है और तेरा है, उनको काल भक्षण नहीं करता है। जो कहते हैं, "मैं हूं, मैं हूं," मेरा है, वह पुनः पुनः संसार में जन्मते मरते हैं। जो कहते हैं, तूं है सब कुछ तेरा है, वह सब आपमें ही समा कर रहते हैं। और जो कहते हैं मैं हूं मेरा है, वह सभी नष्ट हो गये हैं। जो कहते हैं, तूं है और तेरा है, वह आपके अन्दर ही निवास करते हैं और जो कहते हैं मैं हूं मेरा है, वह अज्ञानी वास्तविक में कुछ भी नहीं हैं। और जो कहते हैं, तूं है और सब कुछ तेरा है, वह तुम्हारा ही रूप हो जाते हैं। जो कहते हैं मैं हूं और मेरा है, वह कभी भीं आपको नहीं मिले और न मिलैंगे। जो कहते हैं तूं है तेरा है, वही संसार को पार कर जाते हैं। इस प्रकार तत्ववेता पुरूष कहते हैं कि हमने तो विचार रूप ज्ञान के द्वारा ही, परमेश्वर को प्राप्त किया है।

51.· सजीवनी

राम बिमुख जग मरि मरि जाइ, जीवैं संत रहे ल्यौ लाइ ॥टेक॥
लीन भयें जे आतम रामा, सदा सजीवनी कीये नामा ।
अमृत राम रसाइन पीया, ताथैं अमर कबीरा कीया ।
राम राम कहि राम समाना, जन रैदास मिलै भगवाना ।
आदि अंति केते कलि जागे, अमर भये अबिनासी लागे ।
राम रसाइन दादू माते, अविचल भये राम रंगि रातें ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव सजीवनी रूप राम रस का परिचय करा रहे हैं कि राम सजीवन स्वरूप से विमुख रहकर, संसार के प्राणी, मर मर कर चौरासी में जाते हैं। और राम के भक्त संत, राम नाम स्मरण में लय लगाकर, सजीवन रूप होते हैं। जो जीवरूप आत्मा, राम रसायन में लीन हुए हैं, वह नामदेव भक्त की भांति, सदा सजीवन रूप हो गये हैं। इस राम रसायन रूप अमृत को कबीर जी पीकर, अमर हो गये। और राम नाम का स्मरण करते करते, भक्त रैदास दास जी, भगवान में अभेद हुये।

इस कलि काल में आदि से अन्त पर्यन्त, कितने ही सतसंग द्वारा जागकर, राम नाम का स्मरण करते हुए, अविनासी राम को प्राप्त करके, अमर हो गये हैं । जो राम रसायन को पीकर, राते रत्त और माते मतवाले रहते हैं, वह राम के रंग में रत्त होकर, अविचल स्वरूप हो गये हैं ।

कवित्त :-

एक अनेक अनेक फीर एक है, एकहि एकन और कोई ।
सत को एक अनेक संसार को, रहा भरपूर स्मभाल सोई ।
संत तो अमर है मरै है असंतजन, नरक और स्वरग इहि भांती होई ।
नरक और स्वर्ग सब होत है अनेक को, दास पलटु देख देख रोई ॥५१॥

52

निकटि निरंजन लाग रहे, तब हम जीवत मुक्त भये ॥टेक॥
मरि करि मुकति जहां जग जाइ, तहां न मेरा मन पतियाइ ।
आगे जनम लहैं औतारा, तहां न मानै मन हमारा ।
तन छूटे गति जो पद होइ, मृतक जीव मिलै सब कोइ ।
जीवत जन्म सुफल करि जाना, दादू राम मिलै मन माना ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि हम तो हृदय प्रदेश में, निरंजन निराकार रूप राम है, उसी में नाम स्मरण द्वारा स्थिर हो रहे हैं, इस प्रकार हम जीते ही मुक्त हो गए हैं । शरीर छोड़कर, जिस मुक्ति धाम में, जगत के प्राणी जाते हैं, उस मुक्तिधाम में हमारा मन विश्वास नहीं करता है । क्योंकि वहां से तो फिर वापिस संसार में आकर जन्म लेते हैं। उस सिद्धान्त से हमारे मन को संतोष नहीं है। जो शरीर छूटने के बाद ब्रह्म प्राप्तिरूप सदगति को प्राप्त होते हैं, तो फिर सम्पूर्ण प्राणीमात्र, शरीर त्यागने के बाद ब्रह्म को प्राप्त होने चाहिये । इसलिये जीवित अवस्था में ही जिसने स्वस्वरूप को प्राप्त कर लिया, उसी ने अपने जन्म को सार्थक बना लिया हैं, राम में मिलकर ।

53. हैरान प्रश्न

कादिर कुदरति लखी न जाइ, कहां थैं उपजै कहां समाइ ।।टेक।।
कहां थैं कीन्ह पवन अरू पानी, धरनि गगन गति जाइ न जानी ।
कहां थैं काया प्राण प्रकासा, कहां पंच मिलि एक निवासा ।
कहां थैं एक अनेक दिखावा, कहां थैं सकल एक व्है आवा ।
दादू कुदरत बहु हैरानां, कहां थैं राखि रहे रहिमाना ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव आश्चर्य युक्त प्रश्न कर रहे हैं परमेश्वर से, कि हे परमेश्वर ! आपकी समर्थाई रूप शक्ति जानी नहीं जाती है । हे प्रभु ! यह संसार आप कहां से उत्पन्न करते हो ? और फिर कहां समा जाता है ? और यह आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथ्वी कहां से उत्पन्न किये हैं । आपकी शक्ति जानी नहीं जाती है । फिर आपने यह शरीर रचकर प्राणों के द्वारा, कहां से चेतन किया है ? और फिर कैसे पांच ज्ञानेन्द्रियां एक शरीर में निवास करती हैं ? आप अपने एक स्वरूप से अनेक जीव प्रगट करके कैसे दिखाते हो ? और फिर प्रलयकाल में सब एक किस प्रकार हो जाते हैं ? हे दयालु ईश्वर ! आप सबकी रक्षा करते हुए भी, फिर निर्विकार रूप होकर, कैसे रहते हो ? यह आपकी माया बड़ी ही आश्चर्यरूप दिखाई पड़ती है ।

साखी उत्तर की

रहै नियारा सब करै, काहु लिप्त न होइ ।
आदि अंति भानै घड़ै, अैसा सम्रथ सोइ ।।
सुरम नही सब कुछ करै, यौं कल धरि बनाइ ।
कोतिग हारा व्है रह्या, सब कुछ होता जाइ ।।
दादू सबदैं बन्धया सब रहै, सबदैं ही सब जाइ ।
सबदैं ही सब ऊपजै, सबदैं सबै समाइ ।।

---

54. स्वरूप गति हैरान

अैसा राम हमारे आवै, वार पार कोई अन्त न पावै ।।टेक।।

हलका भारी कहा न जाइ, मोल माप नहि रह्या समाइ ।
कीमत लेखा नही परिवाण, सब पचि हारे, साधु सुजाण ।
आगौ पीछौ परिमित नांहि, केतें पारिख आवहि जांहि ।
आदि अन्त मधि कहै न कोइ, दादू देखै अचिरज होइ ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव राम के साक्षात्कार स्वरूप का आश्चर्य दिखा रहे हैं कि हमारे अनुभव में ऐसा राम का स्वरूप आता है कि उसके स्वरूप का उरला किनारा और परला किनारे का कोई अन्त नहीं पाते । न उसको हलका कह सकते हैं और न भारी कहा जाता है, क्योंकि डाकोर जी में रामदास भक्त के यहां हलके बन गये और नामदेव भक्त के यहां भारी बन गये । न उनका कोई मूल्य है, और न उनके स्वरूप का कोई माप तोल ही कर सकता हैं, क्योंकि वह सबमें परिपूर्ण रूप से व्याप्त हो रहे हैं । किसकी मति है, जो उनका कोई लेखा हिसाब से पार पा सकै ? सुजान, चतुर, नित्य अनित्य का विचार करने वाले सभी संत, थकित हो रहे हैं, क्योंकि न तो राम का आगा है, और न पीछा ही है, और न मिति है कि फलां मिति से राम चले आ रहे हैं ? कितने ही विवेकी अनुभव द्वारा, राम का विचार करते करते, राममय हो गये ! और कितने ही अनुभव द्वारा, राम का विचार करते हुए जा रहे हैं ? परन्तु न तो किसी ने राम का आदि कहा है, और न मध्य ही बताया और न अन्त ही कहा है । उसके स्वरूप को अनुभव द्वारा, साक्षात्कार कर करके, आश्चर्य करते हैं ।

दोहा :- राम दास डाकोर में, हलके भये रण छोड़ ।
भारी नामा के भये, तुला चढ्यो धन जोड़ ॥५४॥

दोनों कथा भक्तमाल में देखो ।

---

55. प्रश्न

कौण सबद कौण परखणहार, कौण सुरति कहु कौण बिचार ॥टेक॥
कौण सुज्ञाता कौण गियान, कौण उन्मनी कौण धियान ।
कौण सहज कहु कौण समाध, कौण भक्ति कहु कौण आराध ।
कौण जाप कहु कौण अभ्यास, कौण प्रेम कहु कौण पियास ।
सेवा कौण कहो गुरुदेव, दादू पूछै अलख अभेव ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव जिज्ञासुओं के बोध के लिये परमेश्वर से प्रश्न करते हैं कि हे परमेश्वर ! आपका आदि कौन है ? —प्रणव । परीक्षक कौन है ? --विवेकी संत । वृत्ति कौन सी श्रेष्ठ है ? - सहजा अवस्था रूप । उत्तम विचार क्या है ? - ब्रह्म बिचार । श्रेष्ठ ज्ञाता कौन है ? - ब्रह्म ज्ञानी । उत्तम ज्ञान कौनसा है ? - जीव ब्रह्म की एकता रूप अभेद ज्ञान । उनमनी कौन है ? - नासिक के अग्र भाग पर दृष्टि लगाकर, प्राणों का निरोध करता है । श्रेष्ठ ध्यान कौन है ? - आत्मध्यान । सहजावस्था कौन है ? निर्द्वन्द अवंस्था । उत्तम समाधि कौन है ? - निर्विकल्प । श्रेष्ठ भक्ति कौन है ? -परा भक्ति । आराध्य देव कौन है ? पर ब्रह्म । श्रेष्ठ जाप कौन है ? - अजपा सोहं । श्रेष्ठ अभ्यास कौन है ? - अहंकार रहित होना । उत्तम प्रेम कौन है ? - निर्वासनिक । श्रेष्ठ अभिलाषा कौन है ? - परमेश्वर प्राप्ति की इच्छा । उत्तम सेवा कौन है ? - जीव ब्रह्म सेवा करै । ब्रह्मऋषि सतगुरु देव कहते हैं कि हे मन इन्द्रियों के अविषय अनुभवगम्य परमेश्वर ! यह जो हमने आपसे प्रश्न किये इनके विषय में आपका क्या मत है ? सो कृपा करके साधकों को बताइये । हे साधको ! प्राणीमात्र से निर्बैर होकर, अनन्य भाव से मेरा स्मरण करना ही श्रेष्ठ मत है ।

उत्तर की साखी

कौण शब्द :-

दादू सब्द अनाहद हम सुन्या, नख सीख सकल सरीर ।
सब घट हरि हरि होत है, सहजैं ही मन थीर ।।

कौण परखणहार :-

प्राण जौहरी पारिखु, मन खोटा ले आवै ।
खोटा मन के माथे मारै, दादू दूरि उड़ावै ।।

कौण सुरति :-

दादू सहजै सुरति समाइ ले, पारब्रह्म के अंग ।
अरस परस मिलि एक व्है, सनमुख रहिबा संग ।।

कौण बिचार :-

सहज बिचार सुख मैं रहै, दादू बड़ा विवेक ।
मन इन्द्रि पसरै नहीं, अंतरि राखै एक ।।

कौण सुज्ञाता :-

दादू सोई पंडित ज्ञाता, राम मिलण की बूझै ।

कौण गियान :-

हंस ग्यानी सो भला, अंतर राखै एक ।
बिख में अमृत काढि ले, दादू बड़ा बमेक ॥

कौण उनमनी :-

मन लौरू के पंख हैं, उनमनि चढ़ै आकास ।
पग रह पूरे सांच के, रोप रह्या हरि पास ॥

कौण धियान :-

जहं बिरहा तहं और क्या, सुधि बुधि नाठे ज्ञान ।
लोक बेद मारग तजे, दादू एकै ध्यान ॥

कौण सहज :-

सहज रूप मन का भया, जब द्वै द्वै मिटी तरंग ।
ताता सीला समि भया, तब दादू एकै अंग ॥

कौण समाधि :-

सहज सूनि मन राखीये, इन दून्यू के मांहि ।
लै समाधि रस पीजिये, तहां काल भै नांहि ॥

कौण भक्ति :-

जोग समाधि सुख सुरति सौं, सहजैं सहजैं आव ।
मुक्ता द्वारा महल का, इहै भगति का भाव ॥

कौण आराध :-

आत्मदेव अराधीये, बिरोधिये नहीं कोइ ।
आराधे सुख ऊपजै, बिरोधे दुख होइ ॥

कौण जाप :-

सतगुरू माला मन दिया, पवन सुरति सूं पोइ ।
बिना हाथौं निस दिन जपै, परम जाप यौं होइ ॥

कौण अभ्यास :-

दादू धरती ह्वै रहै, तजि कूड़ कपट अहंकार ।
सांई कारण सिरि सहै, ताकौं परतखि सिरजनहार ॥

कौण प्रेम :-

प्रेम लहरि की पालकी, आतम बैसे आइ ।
दादू खेलै पीव सौं, सो सुख कह्या न जाइ ।

कौण पियास :-

दादू कोई बांछै मुक्ति फल, कोई अमरापुरी बास ।
कोई बांछै परमगति, दादू राम मिलन की पियास ॥

सेवा कौण :-

तेज पुंज कौ बिलसना, मिलि खेलै इक ठाम ।
भरि भरि पीवै राम रस, सेवा इसका नाम ॥
आपा गर्व गुमान तजी, मदि मतसर अहंकार ।
गहै गरीबि बन्दगी, सेवा सिरजनहार ॥

सार मत कौण है :-

आपा मेटै हरि भजै, तन मन तजै बिकार।
निर्बैरी सब जीव सौं, दादू यहु मत सार ॥

दोहा :- मत्सर पै दृष्टान्त है, समुदर दीनों संख।
जो चाहे सो देइगो, दुगुन परोसी अंक ॥

दृष्टान्त :- एक सात्विक ब्राह्मण था। शिवजी की भक्ति करके, शंकर भगवान को प्रसन्न कर लिया। शंकर जी बोले :- मांग। ब्राह्मण बोले :- खाने पीने की तंगी रहती है। शंकर भगवान बोले :- समुद्र के पास जाकर बोलो कि शंकर भगवान ने मुझे भेजा है, कुछ देओ। ब्राह्मण समुद्र के पास जाकर पहुंचा। समुद्र ने उसको शंख दिया और बोला :- इसकी पूजा करके इससे मांगना, तो यह एक तोला रोज सोना दे देगा। वह शंख लेकर, एक गांव मे मन्दिर में आकर ठहरा। शंख की पूजा की और बोला :- कुछ देओ, तो एक तोला दे दिया। पुजारिन को उस ब्राह्मण ने सोना दिया और बोला, खूब रसोई बनाओ, भगवान के भोग लगाओ और हम भी जीमें, तुम भी जीमो। पुजारिन ने रात को ब्राह्मण के थैले में से वह शंख निकाल लिया और अपना शंख रख दिया। ब्राह्मण सवेरे उठकर अपने गांव चला और वहां जाकर, अपने घर शंख की पूजा करी और बोला :- कुछ देओ। तब शंख ने कुछ भी नहीं दिया, तब फिर समुद्र के पास पहुंचा और सब बात सुना दी। समुद्र ने दूसरा शंख दिया, और बोला - जिस मन्दिर में तूं जाकर ठहरा था, उसी में जाकर ठहरना। ब्राह्मण को देखकर पुजारिन बहुत खुश हुई। और लम्बे लम्बे नमस्कार करने लगी। बहुत बढिया रसोई बनाई। ब्राह्मण बोला:- खर्चा हम देंगे। शंख की पूजा करके, ब्राह्मण बोला :- कुछ देओ। शंख बोला:- ले लो कितने रुपये चाहिये। ब्राह्मण बोला :- सौ रुपये दे दो। शंख बोला :- दो सौ ले लो। इस प्रकार ब्राह्मण बोलता, उस से शंख दुगना देने को कहता है। फिर ब्राह्मण बोला:- अच्छा ! अभी नहीं चाहिये। शंख ने कहा :- अच्छी बात है। पुजारिन ने देखा इससे मांगे "सौ और दे दो सौ", यह शंख ठीक है। रात को वह शंख तो रख दिया और लहरी शंख पुजारिन ने लिया। ब्राह्मण सुबह उठकर अपने घर पहुंचा। स्नान करके शंख की पूजा की और बोला कुछ देओ। तो शंख ने एक तोला सोना उगल दिया। उधर पुजारिन ने भी शंख की पूजा की और बोली सौ रुपया दे दो। शंख बोला:- दो सौ ले लो। दो सौ दे दो। चार सौ ले लो। इस प्रकार काफी समय हो गया। पुजारिन बोली:- कुछ देते भी हो या कहते ही हो। शंख बोला :- देने लेने को क्या है ? हम तो लहरी शंख कहने मात्र के हैं। देने वाला तो चला गया।

56. प्रश्न

मैं नहिं जानौं सिरजनहार, ज्यूं है त्यूं हि कहो करतार ।।टेक।।
मस्तक कहां कहां कर पाइ, अविगत नाथ कहो समझाइ ।
कहं मुख नैनां श्रवणा सांई, जानराइ सब कहो गुसांई ।
पेट पीट कहां है काया, पड़दा खोलि कहो गुरु राया ।
ज्यौं है त्यों कहि अन्तरजामी, दादू पूछै सतगुरु स्वामी ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरु कहते हैं कि हे परमेश्वर ! हम नहीं जानते कि आपका स्वरूप कैसा है ? आप ही कृपा करके, अपना स्वरूप जैसा है वैसा कहो । हे अविगत नाथ ! आपका मस्तक कहां है ? कहां हाथ पैर हैं ? हे मन इन्द्रियों से अज्ञात स्वामी ! आप समझाकर कहो, कि आपका मुख नेत्र, श्रवण पेट, पीठ, शरीर यह हब हमको बताओ कहां हैं । हे, गुरुदेव ! पड़दा खोलकर, सब स्पष्ट समझाओ ।

उत्तर की साखी

दादू सबै दिसा सो सारिखा, सबै दिसा मुख बैन ।
सबै दिसा श्रवणहुं सुणै, सबै दिसा कर नैन ।
सबै दिसा पग सीस हैं, सबै दिसा मन चैन ।
सबै दिसा सममुख रहै, सबै दिसा अंग ऐन ।।

---

57. प्रश्न

अलख देव गुरु देहु बताइ, कहां रहौ त्रिभुवन पतिराइ ।।टेक।।
धरती गगन बसहु कैलास, तिहूं लोक मैं कहां निवास ।
जल थल पावक पवनां पूरि, चंद सुर निकट कै दूर ।
मंदिर कौण कौण घर बार, आसण कौण कहो करतार ।
अलख देव गति लखी न जाइ, दादू पूछै कहि समझाइ ।

टीका:-ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव परमेश्वर से प्रश्न करते हैं कि हे तीनों लोकों के स्वामियों के राजान् पतराजा! हे मन इन्द्रियों के अविषय परब्रह्म रूप गुरुदेव ! आप कहां निवास करते हो ? यह बताओ । पृथ्वी पर या आकाश में अथवा कैलाश में बसते हो ? या तीनों लोकों में कहां निवास करते हो ? हे नाथ ! जल पृथ्वी, पवन , अग्नि, क्या इनमें आप पूर्ण रूप से व्यापक हो रहे हो ? चन्द्रमा सूर्य के आप नजदीक हैं या दूर हैं ? और आपका मन्दिर कौन है ? आपके घर बार कौन से है ? और हे करतार ! आपका आसन कौनसा है ? जिस पर आप स्थिर हो । हे अलखदेव ! आपकी गति कहिये रहन सहन, हमसे जानी नहीं जाती है आप ही कृपा करके, हमको समझाकर कहो ।

उत्तर की साखी

दादू मुझही मांहीं मैं रहूं, मैं मेरा घर बार ।
मुझ ही मांहीं मैं बसूं, आप कहै करतार ।।
दादू मैं ही मेरा अरस मै, मैं ही मेरा थान ।
मैं ही मेरी ठौर मै, आप कहै रहिमान ।।
दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार ।
मेरे तकिये मैं रहूं, कहैं सिरजनहार ।।
दादू मैं ही मेरी जाति मै, मैं ही मेरा अंग ।
मैं ही मेरा जीव मै, आप कहै परसंग ।।

दोहा .- सुख अनंत हरि नाम मै, जाका वार न पार ।
जन रज्जब आनन्द है, सुमरऊ सिरजनहार ।।

सकल सुखी हरि नाम सूं, मनसा बाचा मान ।
जन रज्जब रूचि सौं रटी, यह जीव जीवनी जान ।।५७।।

58· रस

राम रस मीठा रे, पीवै साधु सुजाण ।
सदा रस पीवै प्रेम सौं, सो अविनासी प्राण ।।टेक।।
इहि रसि मुनि लागे सबै, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सुर नर साधू संतजन, सो रस पीवै शेष ।।
सिध साधिक योगी जती, सती सबै सुख देव ।
पीवत अंत न आवही, अैसा अलख अभेव ।।
इहि रसि राते नामदेव, पीपा अरू रैदास ।
पीवत कबीरा नाथ क्या, अजहूं प्रेम पियास ।।
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस ही मांहि समाइ।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ ।।

टीका :-ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव रामभक्ति रूप रस का परिचय दे रहे हैं कि हे भाई ! राम की भक्ति रूप अमृत रस अति मधुर है, परन्तु इसको कोई उत्तम विवेकीं संत पान करते है । जो इस राम रस को सदा प्रेम के सहित पीते हैं, वह संत भक्त परमेश्वर कों प्राणों से प्रिय हैं । इस राम रस को पीने में सभी मुनिजन, ब्रह्मा विष्णु महेस, देवता, नारद, साधक, संत मुक्तजन, शेष जीं आदिक, सब इस राम रस रूप अमृत को प्रीति सहित पान करते हैं । सिद्ध, साधक, योगी, छह जती, सताईस सती, सुखदेव जी, इस राम रस रूप अमृत को सभी ने पीया है, एक दिल होकर । परन्तु पीते पीते इसका किसी ने भी अंत नहीं पाया, इस अलख अभेव के नाम स्मरण रूप अमृत रस का । इसी रस को पीकर, नामदेव भक्त, राते रत्त और माते मतवाले हो गये । भक्त पीपा जी, भक्त रैदास जी, संत कबीर जी आदिक इसको पीते पीते थकित नहीं हुए । पीने की इच्छा ही बनी रही । यह राम रस अति मधुर है । जिसने इसको पीया है, वह इस राम रस में ही समा गये । इस मधुर रस को पीने वाले संतजन सुखरूप परमात्मा में ही समाते हैं । फिर वह अन्य शरीरों को नहीं प्राप्त होते ।

59

मन मतिवाला मधु पीवै, पीवै बारम्बारो रे ।
हरि रसि रातो राम के, सदा रहै इकतारो रे ।।टेक।।

भाव भक्ति भाठी भई, काया कसणी सारो रे।
पोता मेरे प्रेम का, सदा अखंडित धारो रे॥
ब्रह्म अग्नि जौवन जरै, चेतन चित्तहि उजासो रे।
सुमति कलाली सारवै, कोइ पीवै बिरला दासो रे॥
प्रीति पियाले पीवही, छिन छिन बारंबारो रे।
आपा धन सब सौंपिया, तब रस पाया सारो रे॥
आपा पर नहि जाणिये, भूलो माया जालो रे।
दादू हरि रसि जे पिवै, ताकौं, कदे न लागै कालौ रे॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव मद्य के रूप से, राम भक्ति रूप रस का परिचय दे रहे हैं कि हे भाई! हमारा मन तो अब, परब्रह्म का साक्षात्कार रूप, मद्य रस का पान करता है और मतवाला रहता है। और पुनः पुनः पान करता हुआ, इस सम्पूर्ण पापों को और तापें को हरने वाले, इस राम रस में सदा दत्चित्त रहता है। अब इस राम रस रूपी मद्य को बनाने की विधि बताते हैं। श्रद्धा रूप भूमिका पर, भक्ति रूप भट्टी बनावै। निर्दोष शरीर रूप पात्र को, रस निकालने के लिए, भट्टी पर रखा गया है और ब्रह्मज्ञान रूपी उस भट्टी में अग्नि जलती है। और युवावस्था के विकार रूप जलाने का ईंधन है। चित्त में निरन्तर चेतन्य स्वरूप आत्मा का चिंतन होना ही अग्नि का प्रकाश है और सुबुद्धि कहिए सुन्दर बुद्धि ही कलाली है और उसके हेत रूपी हाथ में आत्म प्रीति रूप ही मानो गीला कपड़ा है। उसको शरीर रूप पात्र पर घुमाने से फिर राम रस रूपी मद्य निकलता है। इस क्रम से, वह सदा अखंड धारा रूप से राम रस रूप मद्य निकलता रहता है। अब आगे राम रस मद्य पीने वाले पुरूषों का परिचय दे रहे हैं।

इस प्रकार से जो राम रस रूप मद्य निकाला है, उसको पीने वाले अनन्य ईश्वर के भक्त प्रीति रूप प्याले से बारम्बार पान करते रहते हैं। फिर वह मतवाले होकर, अपने पराये का भेद कुछ भी न समझकर तथा सम्पूर्ण मायिक संसार जाल को अन्तःकरण से भूलकर, अपना सम्पूर्ण अनात्म अहंकार रूप धन, प्रभु को समर्पण किया है। उन्हीं संतों को यह राम रस रूप मद्य रस, प्राप्त हुआ है। इस प्रकार से निकाले हुए हरि रस का जो पान करते है, वे परब्रह्म के स्वरूप में ही, समा जाते हैं। फिर उन पर काल का जोर नहीं चलता।

60

रस के रसिया लीन भये, सकल सिरोमणि तहां गये ॥टेक॥

राम रसायण अमृत माते, अविचल भये नरक नहीं जातें ।
राम रसाइण भरि भरि पीवै, सदा सजीवन जुग जुग जीवै ।
राम रसाइण त्रिभुवन सार, राम रसिक सब उतरे पार ।
दादू अमलि बहुरि न आये, सुख सागर ता मांहि समाये ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, अब राम रस का महात्म्य कह रहे हैं कि हे सज्जनों ! राम रस को पीने वाले रसिक भक्त, राम रस में ही लीन रहते हैं और फिर सकल शिरोमणि परमेश्वर के स्वरूप में ही, वह समा जाते हैं । और फिर राम रसायण रूप अमृत में मतवाले, होकर अविचल भाव को प्राप्त होते हैं, नर्क के मार्ग से मुक्त रहते हैं । इस प्रकार जो राम रसायण को पुनः पुनः अन्तर्मुख वृत्ति से पोते हैं, वे योगी सदा सजीवन भाव को प्राप्त होते हैं । यह राम रसायण तीनों लोकों में सार स्वरूप है । इसको पीकर सभी राम रसिक लोग संसार से पार उतर गये हैं । राम रस का अमल करने वाले संत भक्त, फिर इस संसार के जन्म मरण में नहीं आते । वह सुख रूप परमात्मा में ही समा जाते हैं ।

61. भेष

भेख न रीझे मेरा निज भरतार, तार्थं कीजै प्रीति बिचार ।।टेक।।
दुराचारिणी रचि भेख बनावै, सील साच नहिं पिव को भावै ।
कंत न भावै करै सिंगार, डिंभपणैं रीझै संसार ।
जो पै पतिव्रता व्है है नारी, सो धन भावै पियहिं पियारी ।
पीव पहिचानैं आन नहि कोई, दादू सोई सुहागिनि होई ।

टीका :- हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर की प्रप्ति में भेष भूषा कोई कारण नहीं है, क्योंकि वह हम बिरहीजन भक्तों का निज भरतार परमेश्वर, ऊपरी भेख बाना आदि के धारण करने से राजी नहीं होते हैं । इसलिये उनसे अन्तःकरण में विचार पूर्वक स्नेह कीजिये । जैसे दुराचार व्यभिचार करने वाली स्त्री, नाना प्रकार का हार शृंगार करै, परन्तु उसके हृदय में शील कहिये ब्रह्मचर्य और पतिव्रत आदि सच्चा धर्म तो है नही, तो फिर वह स्त्री पीव को प्रिय नहीं लगतो । वह शृंगार करती है, परन्तु उसका शृंगार पति को प्रिय नही लगता । इसी प्रकार ऊपर भेष बाना, माला तिलक, कासाये वस्त्र आदि धारण करते हैं । परन्तु चरित्रवान नहीं है, तो उनके पाखंड रूप शृंगार को देखकर संसारिक प्राणी तो राजी होते हैं अर्थात् रीझते हैं । परन्तु

परमेश्वर रूप पति नहीं रीझता । जिस पुरुष के पतिव्रता स्त्री होती है, उसको धन्य है, वही पति को प्रिय लगती है । वह अपना पति, अपने पीव को ही जानती है । उसकी दृष्टि में और कोई दूसरा पुरुष है ही नहीं । वही पतिव्रता अटल सुहाग को प्राप्त होती है ।

62. बिरह

सब हम नारी एक भरतार, सब कोई तन करैं सिंगार ।।टेक।।
घर घर अपने सेज सवांरैं, कंत पियारे पंथ निहारैं ।
आरत अपने पीव को धावैं, मिलै नाह कब अंगी लगावैं ।
अति आतुर ये खोजत डोलैं, बानि परी बियोगनि बोलैं ।
सब हम नारी दादू दीन, दे सुहाग काहु संग लीन ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव बिरह भाव दिखा रहे हैं कि हम सभी बिरहीजन संत आत्माओं के स्वामी, एक परमात्मा ही है और हम सब ही अपने तन मन को निर्दोष बनाने रूपी श्रृंगार कर रही हैं । तथा अपने अपने अन्तःकरण रूपी शय्या को देवी सम्पत्ति के गुणों से सुसज्जित कर रही हैं । और फिर परमेश्वर रूप पति के दर्शन रूपी मार्ग को देखती हैं । उनके वियोग से दुखी होकर, अपने स्वामी को प्राप्त करने के लिए बिरह की साधना रूपी मार्ग पर चल रही हैं; और मन में विचार करती हैं कि हे परमेश्वर ! आप हमसे कब मिलोगे ? और हम आपके स्वरूप में कब अभेद होवेगें ? हम सब संत आत्मा, आपके वियोग में दीन नारियां अति दुखी होकर, आपको खोजती फिर रही हैं; और पुकारती हैं; क्योंकि आपको पुकारने का तो हमारा एक स्वभाव ही पड़ गया है । किन्तु आप हमारी पुकार सुनते हुए भी ध्यान नहीं दे रहे हो । क्या जानूं, आप किन बिरहीजन भक्तों के साथ रम रहे हो ? अब तो कृपा करके हमको भी, नित्य आपकी प्राप्ति रूप सुहाग दीजिये ।

दोहा :- मीरां बृन्दावन गई, सब ठां दरशन कीन्ह ।
जीव गुसांई के गई, तर्क बचन कह दीन्ह ।।६२।।

दृष्टान्त :- जब भक्त मीरांबाई वृन्दावन यात्रा को गये और वहां सबही धार्मिक स्थानों में जा कर दर्शन करने लगे, तब एक ब्राह्मण बोले कि बाईसा यहां एक जीव गुसांई जी भगवान के भक्त भी निवास करते हैं, तब उनके दर्शन करने को मीरांबाई आश्रम में गई, तो द्वारपाल जाकर जीव गुसांई जी को बोला कि

मीरांबाई आपके दर्शन करने आई हैं । तब गुसांई जी बोले :-उनको बोल दो कि वह स्त्री का दर्शन नहीं करते । द्वारपाल दरवाजे पर आकर भक्त मीरांबाई से बोले :-स्वामी जी बोलते हैं कि हम स्त्री का दर्शन नहीं करते । यह सुनकर मीरांबाई जोर से बोली कि इस वृन्दावन में तो पुरुष एक भगवान कृष्ण ही हुए हैं, यह दूसरा पुरुष कहां से आ गया ? यहां तो सभी भक्त लोग, सखी रूप से भगवान के दर्शन करते हैं । यह मीरांबाई की अवाज सुनते ही, जीव गुसांई जी का अहंकार नष्ट हो गया और उसी समय दौड़कर आये और मीरांबाई को हृदय से लगा लिया और बोले :- हे भक्तराज ! आज आपने मेरे अहंकार को दूर कर दिया । ठीक है, इस वृन्दावन में तो सभी भक्त सखी रूप से ही रहे हैं और भगवान के दर्शन किये हैं ।

---

63. आत्मा अर्थी भेष

सोई सुहागनि सांच सिंगार, तन मन लाई भजै भरतार ।।टेक।।
भाव भगति प्रेम ल्यौ लावै, नारी सोई सार सुख पावै ।
सहज संतोष सील सब आया, तब नारी नाह अमोलिक पाया ।
तन मन जोबन सौंप सब दीन्हा, तब कंत रिझाइ आप बसि कीन्हा ।
दादू बहुरी वियोगन होई, पिव सौं प्रीति सुहागनि सोई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव परमेश्वर की प्राप्ति में जो उपयोगी भेष है, उसे बतलाते हैं, जो अपने तन मन को लगाकर परमेश्वर रूप पति की आराधना करती है, उसी संत आत्मा को सच्चा सुहाग प्राप्त होता है । भाव के सहित प्रेमाभक्ति से, परमेश्वर में जो अखण्ड लय लगाती है, वही संत आत्मा परमेश्वर का दर्शन रूपी सार आनन्द को प्राप्त होती है । जिस संत आत्मा के हृदय में निर्द्वन्दता, संतोष ब्रह्मचर्य आदि सद्गुण रहते हैं, तब वह संत आत्मा अमोलिक अविनासी रूप पति को हृदय में ही प्राप्त करती है । उसने अपना तन और मन, अपनी यौवन अवस्था, यह सब परमेश्वर की आराधना में लगाकर, फिर वह संत आत्मा, परमेश्वर रूप पति को सेवा भक्ति के द्वारा, प्रसन्न करके अपने बस में कर लेती है । फिर उस संत आत्मा का परमात्मा रूप पति से, कभी वियोग नहीं होता । मुखप्रीति का विषय जो पीव है, उससे पूर्वोक्त प्रकार से, जिस संत आत्मा ने प्रीति की है, उसी ने अखण्ड सुहाग प्राप्त कर लिया है ।

64. समता

तब हम एक भये रे भाई, मोहन मिलि सांची मति आई ।।टेक।।
पारस परसि भये सुखदाई, तब दुतिया, दुरमती दूर गंवाई ।

मलियागिरि मरम मिलि पाया, तब बंस बरण कुल भर्म गंवाया ।
हरि जल नीर निकट जब आया, तब बूंद बूंद मिलि सहज समाया ।
नाना भेद भर्म सब भागा, तब दादू एक रंगै रंग लागा ।

टीका :-ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव समत्व ज्ञान दिखा रहे हैं कि हे भाई ! परमेश्वर के प्राप्त होने पर, जब हमारे में यथार्थ ज्ञानमय बुद्धि उत्पन्न हुई, तब हम परमेश्वर से मिलकर एकरूप हुए हैं । पारस रूप परमेश्वर को हृदय में प्राप्त करके, सुखी हो रहे हैं, फिर भेद बुद्धि और दूर्मति को अन्तःकरण से त्यागकर, मलियागिरि रूप परमेश्वर का मर्म कहिये ज्ञान, प्राप्त करके, बांस रूप थोथे वर्ण आश्रम कुल आदि के, भर्म रूप कर्मों को, अन्तःकरण से त्याग कर, हरि कहिये समष्टि चेतन के पास, अहग्रंह उपासना के द्वारा, जब जीव विचार द्वारा आया, तब सम्पूर्ण शरीरों में नाना जीव रूप होकर भी, समता ज्ञान द्वारा, ब्रह्म समुद्र में समा जाता है । इस प्रकार फिर ज्ञान द्वारा, नाना प्रकार के भेदभाव अन्तःकरण से दूर हो जाते हैं । फिर सजातिय विजातिय स्वगत भेद रहित ब्रह्म से मिलकर, ब्रह्मरूप हो जाता है ।

65

अलह राम छूटा भ्रम मोरा, हिंदु तुरक भेद कछु नांही,
दैखौं दरसन तेरा ।।टेक।।
सोई प्राण पिंड पुनि सोई, सोई लोही मांसा ।
सोई नैन नासिका सोई, सहजैं कीन्ह तमासा ।।
श्रवणों सबद बाजता सुणिये, जिभ्या मीठा लागै ।
सोई भूख सबन को व्यापै, एक जुगत्ती सोई जागै ।।
सोई संधि बंध पुनि सोई, सोई सुख सोई पीरा ।
सोई हस्त पांव पुनि सोई, सोई एक शरीरा ।।
यहु सब खेल खालिक हरि तेरा, तैंही एक कर लीना ।
दादू जुगती जानि करी ऐसी, तब यहु प्रान पतीना ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू कहते हैं कि अल्लह और राम का जो भिन्नता का भाव था, वह हमारे अन्तःकरण से दूर हो गया। क्योंकि यह तो नाम का ही भेद है, वास्तविक नामी का स्वरूप तो एक ही है। इसी प्रकार हिन्दू और मुसलमानों के शरीरों में भी कुछ भेद नहीं है। सभी पंचीकृत, पंचभूतों से रचित हैं। हे परमेश्वर! हमतो दोनों में ही आपका दर्शन करते हैं और फिर विचार कर देखें तो, सब शरीरों में एकसा ही प्राण, वैसा ही मांस, एक सा ही रक्त है। इन्द्रियें भी सब शरीरों में यथायोग्य स्थान पर, और समान ही हैं। परन्तु आपने यह सब खेल अपनी इच्छा से, अनायास ही रच दिया है, इसमें भेद को कहां जगह है? दोनों ही कान से शब्द समान सुनते हैं, वैसे ही जिभ्या से समान ही रस लेते हैं। इसी प्रकार हिन्दू मुसलमान दोनों को बराबर ही भूख लगती है। एक ही तरह सब लोग सोते हैं और जागते है, वैसे ही हिन्दू मुसलमानों के शरीरों में, संधि जोड़ आदि भी समान ही हैं। सुख और दुख भी दोनों को बराबर ही होते हैं। हाथ पांव भी सबके समान ही हैं। शरीर भी दोनों का एकसा ही है। हे खालिक! खलक को रचने वाले परमेश्वर! यह तो सब आपका एक खेल मात्र ही है। वास्तविक विचार किये से तो, सब एक ही रूप हैं। हमने तो आप ही को सबमें देख लिये हैं। हमने ऐसी ही युक्ति जानकर, विचारधारा से जगत में, एकता समझकर, एक निष्ठ हुए हैं। तभी हमारे मन में एकत्व का विश्वास हुआ है।

दोहा :- एक साध के कहे ते, बेटो भयो न एक।
दूजे सन्त बेटा दिया, रूस्यो जन हरि एक ।।६५।।

दृष्टान्त :- एक समय नारद जी संतरूप में घूमते हुए मृतलोक में, एक ग्रहस्थी के यहां आये, उसने नारद जी को नमस्कार किया और एक लड़का मांगा। नारद जी बोले :-भगवान से पूछकर फिर बतावेंगे। नारद जी बैकुण्ठ में भगवान से पूछा कि महाराज! अमुख ग्रहस्थी के लड़का लिखा है कि नहीं। भगवान बोले :- नारद जी उसके तो नहीं लिखा। नारद जी आकर बोले :-भाई! तेरे तो लड़का लिखा नहीं है। ग्रहस्थी बोले :-अच्छा महाराज! लिखा ही नहीं है तो कहां से दोगे? नारद जी रम गये।

फिर कुछ दिन के बाद एक बेहद्दी महात्मा नगर में आ गये और वे बोले :-एक रोटी और एक बेटा। यह ग्रहस्थी उस महात्मा को नमस्कार किया और अपने घर ले आया। महात्मा ने पांच फुलके खाये और और पांच बेटे दे दिये। महात्मा तो रम गये, इसके पांच लड़के हो गये।

कुछ दिन के वाद फिर नारद जी घूमते हुए उसके दरवाजे पर आये। ग्रहस्थी अपनी धर्मपत्नी के सहित नारद जी को नमस्कार किया। आसन देकर बैठाये। फिर बच्चे आ कर नमस्कार करने लगे। नारद जी बोले :- यह बच्चे किसके है? ग्रहस्थी :- महाराज! यह सब आपके ही हैं। नारद जी भगवान के ऊपर रुष्ट हो गये, और वहां से सीधे बैकुण्ठ धाम को गये। भगवान को जाकर नमस्कार किया। भगवान बोले :- नारद जी, और सब आनन्द मंगल तो है। नारद जी बोले :- बस महाराज,

महाराज, आपको जान लिये, आप दूसरे का अपमान करते हो । भगवान :- कैसे ? मुझे तो कहा उसके एक भी लड़का नहीं लिखा, और उसको आपने पांच लड़के दे दिये । भगवान बोले :-मैंने नहीं दिये । कोई मुझसे भी जबरदस्त है, उसने दिये हैं । यह कहकर भगवान ने कहा :-नारद जी मेरे कलेजे में भारी दर्द हो रहा है । नारद :-महाराज ! फिर क्या साधन करें ? भगवान :- किसी भक्त के कलेजे की पट्टी बांधो । नारद जी कटोरा और चाकू लेकर उसी भक्त के पास गये और बोले :-भगवान की छाती में भारी दर्द हो रहा है । भक्त तूं, अपना कलेजा दे दे, तो फिर इसकी पट्टी बांधें, जिससे भगवान का दर्द शान्त हो जाये । भक्त बोला :-महाराज कलेजा देगें, तो भक्ति कैसे करेंगे ? तब नारद जी उसी महातमा के पास पहुंचे, जहां वह एकान्त में पड़ा था । उसको भी उसी प्रकार बोले । तब महातमा नारद जी से चक्कू लेकर, अपने शरीर का कई जगह का मांस काट काट कर दिया और फिर अपनी छाती में ज्यूं चक्कू मारने लगा, भगवान प्रगट होकर, हाथ पकड़ लिया । और भगवान की दृष्टि से महातमा का शरीर ज्यों का त्यों स्वस्थ हो गया । नारद से भगवान बोले :-इसने बेटे दिये हैं, यह मुझसे जबरदस्त है, जो मेरे लिये, अपना कलेजा भी काढ कर दे रहा है । इसका बचन तो मुझे सत्य करना ही पड़ा । आप भी, तो मेरे भक्त हो । आप भी अपना कलेजा काढकर मुझे दे सकते थे ? नारद जी की नीची निगाह हो गई ।

66

भाई रे ऐसा पंथ हमारा, द्वै पख रहित पंथ गहि पूरा,
अवरण एक अधारा ।।टेक।।
बाद बिबाद काहु सौं नांहीं, माहीं जगतथैं न्यारा ।
सम दृष्टी सुभाइ सहज में, आप ही आप बिचारा ।।
मैं तैं मेरी यहु मति नांहि, निरबैरी निरकारा ।
पूरण सबै देखी आपा पर, निरालंब निरधारा ।।
काहु के संगि मोह न ममता, संगी सिरजनहारा ।
मनही मन सौं समझि सयाना, आनन्द एक अपारा ।।
काम कल्पना कदे न कीजै, पूरण ब्रह्म पियारा ।
इहि पंथि पहुंचि पारी गहि दादू, सो तत सहजि संभारा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे भाई ! हमारा पंथ कहिये मार्ग तो, ऐसा है जिसमें एक चेतन्य निरावरण परब्रह्म का ही आधार है । फिर हिन्दू मुसलमान आदि द्वैतपक्ष वहां नहीं है । और न वहां जाति पाति, वर्ण आश्रम ही है । उसको जो अन्तर्मुख वृति द्वारा ग्रहण करता है, वह पूर्ण ब्रह्म स्वरूप ही हो जाता है । फिर वह किसी से वाद विवाद नहीं करता । वह जगत में रहता हुआ भी, जगत से अलग ही रहता है । स्वभाव से ही उनकी समदृष्टि होती है और फिर अपने अन्तःकरण में आत्म स्वरूप का विचार करता रहता है । उसमें फिर "मैं तूं आदि भेद बुद्धि नहीं रहती । वह प्राणीमात्र से निर्वैर होता है, और फिर अपने पराये सबमें निराकार पूर्ण ब्रह्म को देखता है । इस प्रकार समत्वभाव को प्राप्त होकर, फिर उसकी किसी के साथ में भी, मोह ममता नहीं होती । फिर वह परमात्मा को ही, अपना साथी जानता है । ऐसा बुद्धिमान विचार द्वारा, अपने मन ही मन में समझकर कहिये, अद्वैत आनन्द को प्राप्त होता है । और फिर संसार की कल्पनायें त्यागकर, उपरोक्त मार्ग से संसार से पार होकर, परमप्रिय पूर्णब्रह्म का साक्षात्कार करता है ।

67. परिचय हैरान

ऐसो खेल बन्यो मेरी माई, कैसै कहौं कछु जान्यौं न जाई ।।टेक।।
सुर नर मुनिजन अचरज आई, राम चरण को भेद न पाई ।
मंदिर माँहिं सुरति समाई, कोऊ है सो देहु दिखाई ।
मनहिं बिचार करहु ल्यो लाई, दिवा समान कहां जोति छिपाई ।
देहि निरंतर सुन्य ल्यौ लाई, तहं कौण रमै कौण सूता रे भाई ।
दादू न जाणै ये चतुराई, सोई गुरू मेरा जिन सुधि पाई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव परब्रह्म के साक्षात्कार का आश्चर्य प्रगट कर रहे हैं कि हे संतो ! हमारे अनुभव में राम के साक्षात्कार का ऐसा खेल बना है, जो उसका वर्णन भी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि बाणी से वर्णन करने का तो कुछ भी उपाय नहीं है वहां । अर्थात् देवता, साधक, नर नारद आदि, मुनि लोमस आदि, यह सब राम के चरणों का दर्शन करके, आश्चर्य करते हैं । उस राम के वास्तविक स्वरूप का, आदि अन्त मध्य का रहस्य, किसी को भी प्राप्त नहीं होता । जब हृदय रूप मन्दिर में अन्तर्मुख वृत्ति, साक्षी चेतन्य में स्थित होती है, तब जो सत्य तत्व है, वही प्रतीत होता है । इसलिये अन्तर्मुख मन से, साक्षी चेतन्य का ही, सम्यक् रूप से विचार करो । इस प्रकार वृत्ति अन्तर्मुख होकर, सम्यक् रूप से, आत्म विचार

करने से, साक्षात्कार होगा। क्योंकि वह ज्ञानरूप आत्म ज्योति कहां छुपेगी ? शरीर के अन्तःकरण में निरन्तर इस प्रकार, शुद्ध चेतन्य में वृत्ति लगाने से, फिर वहां ज्ञानी पुरुष, ब्रह्म विचार में रमते हैं और अज्ञानी ब्रह्म विचार से विमुख रहते हैं। उपरोक्त चेतन की व्यापकता रूप चतुराई को, आप स्वयं परब्रह्म ही जानते हैं। वही परब्रह्म हमारे गुरू हैं।

68. निज घर परिचय

भाई रे घर ही में घर पाया, सहज समाइ रह्यो ता मांहीं,
सतगुरू खोज बताया ।।टेक।।
ता घरि काजि सबै फिर आया, आपै आप लखाया ।
खोलि कपाट महल के दीने, थिर अस्थान दिखाया ।।
भयो भेद भरम सब भागा, सांचे सोई मन लागा ।
पिंड परे जहां जिव जावै, तामै सहजि समाया ।।
निहचल सदा चलै नहिं कबहुं, देख्या सब में सोई ।
ताहि सौं मेरा मन लागा, और न दूजा कोई ।।
आदि अनन्त सोई घर पाया, इब मन अनत न जाई ।
दादू एक रंगै रंग लागा, तामैं रह्या समाई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव परब्रह्म स्वरूप घर का परिचय दे रहे हैं कि हे साधक ! ब्रह्मनिष्ठ सतगुरू विचार द्वारा खोज करके बताया है कि वह संसार का निवास स्थान, परमेश्वर रूप घर, इस शरीर रूप घर में ही, मुक्तजनों ने प्राप्त किया है। और सहजावस्था द्वारा उसी में समा कर रहते हैं। उस परब्रह्म रूप घर की प्राप्ति के लिये, सम्पूर्ण बहिरंग साधनों में ढूंढते ढूंढते आये, परन्तु वह कहीं पर भी बाहर प्राप्त नहीं हुआ। जब सतगुरू कृपा से अन्तर्मुख वृत्ति करके, आत्मा का विचार किया, तो आत्मा का स्वरूप ही ब्रह्म प्रतीत हुआ। इस प्रकार सतगुरू के ज्ञान ने अन्तःकरण के अज्ञान रूपी कपाट जब खोले, तो फिर स्थिर ब्रह्म स्वरूप स्थान साक्षात्कार हुआ। इस प्रकार अपने चेतन स्वरूप का भेद प्राप्त करके, सत्य स्वरूप में मन स्थित होकर, देह अध्यास से मुक्त हुआ मन रूप जीव, अपने साक्षी स्वरूप ब्रह्म में समाकर सदैव, निश्चल भाव को प्राप्त होता है। फिर तो सम्पूर्ण संसार में, अपने स्वरूप का ही, अनुभव होता है। उसी में मुक्तजनों का मन स्थिर हो रहा है। अब उनकी दृष्टि में माया और माया का कार्य, कोई भी सत्य प्रतीत नहीं होता

है । वह सबका आदि और अन्त, जो ब्रह्म स्वरूप घर है, वही हमने प्राप्त कर लिया है । अब हमारा मन, अन्यत्र नहीं जाता है । एक अद्वैत ब्रह्म रंग के समीप, आत्मविचार एकत्व भावना रूपी रंग में लगकर, उसी में अभेद हो रहे हैं ।

69. मानस तीर्थ

इत है नीर नहांवन जोग, अनतहि भ्रम भूला रे लोग ।।टेक।।
तिहि तटि न्हाये निरमल होइ, वस्तु अगोचर लखै रे सोइ ।
सुघट घाट अरू तीरवो तीर, बैठे तहां जगत गुरू पीर ।
दादू न जाणै तिन का भेव, आप लखावै अंतरि देव ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें मानस तीर्थ का परिचय दे रहे हैं । यहां इस मनुष्य शरीर में ही स्नान करने योग्य, आत्म विचार रूप जल का स्नान है । इम तीर्थ से विमुख होकर, बहिरंग लोग अन्य तीर्थों में भटक रहे हैं । अन्तःकरण में मन पवन सुरति की एकाग्रता रूप तट पर, ब्रह्म विचार रूपी जल में स्नान करने से, तन मन सब निर्मल होता है । फिर मन इन्द्रियों का अविषय ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं । यही मनुष्य देह रूपी सुन्दर घाट है, संसार समुद्र से तरने के लिये । वह सम्पूर्ण जगत के प्राणियों को, गर्भवास में उपदेश करने वाले गुरू रूप पीर, अन्तःकरण में ही स्थित है । बहिर्मुख संसारिक प्राणी इस भेद को नहीं जान पाते । जिन पर वह स्वयं परमेश्वर दया करके, अपना स्वरूप आप, अन्तःकरण में साक्षात्कार कराते हैं, वही उत्तम जिज्ञासु, अपने अन्तःकरण में आत्म स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं ।

70

ऐसा ग्यान कथौ मन ग्यानी, इहि घरि होइ सहजि सुख जानी ।।टेक।।
गंग जमुन तहँ नीर नहाइ, सुखमन नारी रंग लगाइ ।
आप तेज तन रह्यो समाइ, मैं बलि ताकि देखौं अघाइ ।
वास निरन्तर सो समझाइ, बिन नैनहुं देखै तहं जाइ ।
दादू रे यहु अगम अपार, सो धन मेरे अधर अधार ।

टीका :- ब्रह्मऋषि समगुरूदेव कहते हैं कि हे ज्ञानी मन ! हमारे सामने ऐसा ज्ञान कथन करो, जिससे हम स्वरूप ज्ञान प्राप्त करके, इस मनुष्य शरीर रूप घर में ही, सहज स्वरूप ब्रह्म को साक्षात्कार करके सुखी

होवैं। पिंगला नाड़ी रूप गंगा, इड़ा नाड़ी रूप यमुना के पूरक रेचक रूप प्राणायाम में स्नान करके, एकाग्रता में सुषमना नाड़ी, "सोहं हंसो" रूप ध्यान द्वारा जो अपना चेतन्य आत्म स्वरूप प्रकाश, शरीर में व्याप्त हो रहा है, उसे अन्तर्मुख वृति द्वारा देखकर, उसकी बार बार बलिहारी जाते हैं। क्योंकि जिसमें हम निरन्तर बस रहे हैं, अथवा जिसका हमारे में निरन्तर निवास है, उसी को निरन्तर समझाओ कि विचार द्वारा, उसके स्वरूप के समीप जाकर, बाह्य नेत्रों के बिना ही, साधक उसका साक्षातकार कर सके। हे साधक ! यह जो अगम अपार ब्रह्मतत्व है, वही हमारा धन और आधार है।

71. परिचय सतसंग

इब तो ऐसी बन आई, राम चरण बिन रह्यो न जाई ॥टेक॥
सांई को मिलबे के कारनि, त्रिकुटी संगम नीर नहाई।
चरण कंवल की तहं ल्यौ लागै, जतन जतन करि प्रीत बनाई।
जे रस भीना छावर [illegible] सुन्दरी सहजैं संग समाई।
अनहद बाजे बाजन लागे, जिह्वा हीणैं कीरति गाई।
कहा कहौं कछु बरणि न जाई, अविगति अंतरि जोत जगाई।
दादू उनको मरम न जानै, आप सुरंगे बैन बजाई।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव सतसंग का परिचय करा रहे हैं। हे संतो ! अब तो हमारी ऐसी अवस्था बन गई है कि राम जी के हृदय में तेज पुंजरूपी चरण हैं उनसे अब हमारी वृत्ति अलग नहीं होती। हम प्रभु से मिलने के लिये, मन पवन सुरति रूप त्रिकुटी के अन्दर नाम स्मरण रूप नीर से स्नान करते हैं। और हृदय कंवल में ही, हमारी राम के चरणों में लय लगी है। ऐसी प्रीति प्रभु से, हमने यत्नपूर्वक बनाई है। अब तो उनके प्रेम रूपी रस में, हमारा मन और पांचों ज्ञानेन्द्रिये मस्त हो गये हैं। इस प्रकार अन्तर्मुख वृत्ति रूप सुन्दरी स्वभाव से ही चेतन्यरूप परमेश्वर में एक रूप हो रही है। और अब अनहद ध्वनि 'सोहं हंसो' रूप हो रही है, रोम रोम से। और बिना किसी जिह्वा के ही परमेश्वर के यश का गायन करते हैं। क्या कहैं ? उस आनन्द का कुछ वर्णन नहीं कर सकते। अन्तःकरण में जीव ब्रह्म की एकता रूप ज्ञानज्योति जगमगा रही है। परन्तु उसका मर्म कहिए अन्त, कोई भी नहीं जान पाते ? आप स्वयं अपने आत्मीय जनों को अपने रंग में रंग कर, अनहद वाणी रूप बैन सुनाते हैं।

72. शब्द

नीकैं राम कहत है बपुरा, घर मांहैं घर निरमल राखै,
पंचौं धोवै काया कपड़ा ।।टेक।।
सहज समर्पण सुमिरण सेवा, तिरवेणी तट संजम सपरा ।
सुन्दरि सनमुख जागण लागी, तहं मोहन मेरा मन पकरा ।।
बिन रसना मोहन गुण गावै, नाना बाणी अनभै अपरा ।
दादू अनहद ऐसैं कहिये, भगति तत यहु मारग सकरा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि परमेश्वर के बिरह से साधक, अच्छी प्रकार राम का स्मरण करता है। इस स्थूल शरीर में अन्तःकरण रूपी घर को वासनारूप विकारों से निर्मल रखता है और पांचों ज्ञान इन्द्रियों को इस शरीर में, अपने अपने विषयों से रहित करके, राम नाम स्मरण से शुद्ध बना ली हैं। और फिर परमेश्वर के, इन इन्द्रियों को अर्पण करके स्मरण रूप सेवा करते रहते हैं। मन पवन सुरति के तट पर, राम नाम स्मरण रूपी स्नान कर रहे हैं। अन्तर्मुख सुरति रूप सुन्दरी, अज्ञानता से जागकर, विवेक विचार के द्वारा, परमेश्वर के सन्मुख हो रही है। 'तहां' कहिये अन्तःकरण में ही, बिरहीजनों के मन को, परमेश्वर ने अपने स्मरण में आकर्षण कर लिया है। अब तो बिरहीजन, बिना जिह्वा के ही, परमेश्वर का स्मरण रूप गुणानवाद गाते हैं, वृत्ति द्वारा। और फिर हृदय में ही, ज्ञान भक्ति वैराग्यरूप, अनुभव कहिए, चेतन की प्रेरणारूप बाणी सुनते हैं। इस प्रकार फिर अनहद बाणी, वाक इन्द्रिये के द्वारा, बाहर उच्चारण करते हैं। परन्तु यह पराभक्ति रूपी मार्ग, बहुत सूक्ष्म है।

73. मनसा गायत्री

अवधू कामधेन गहि राखी, बस कीन्हीं तब अमृत सरवै,
आगैं चारिन नाखी ।।टेक।।
पोखन्तां पहली उठि गरजै, पीछैं हाथि न आवै ।
भूखी भलैं दूध नित दूणा, यूं या धेनु दुहावै ।।
ज्यूं ज्यूं खीण पड़ै त्यूं दूझै, मुक्ता मेल्यां मारै ।
घाटा रोक घेरि घरि आणैं, बांधी कारज सारै ।।

सहजैं बांधि कदे न छूटै, कर्म बंधन छुटी जाई ।
काटै कर्म सहजै सौं बांधै, सहजैं रहै समाई ॥
छिन छिन मांहि मनोरथ पूरै, दिन दिन होइ अनन्दा ।
दादू सोई देखतां पावै, कलि अजरावर कंदा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, मनसा रूप गायत्री का स्वरूप दिखाते हैं कि हे अवधूत ! मन को धूतने वाले, जो नाना वासनारूप कामनाओं को उत्पन्न करने वाली, बहिरंग बुद्धि रूप कामधेनु रूप गऊ है, इसको संयम द्वारा पकड़ कर रखै, अर्थात् विषय वासनाओं की तरफ से रोकै । तब यह ज्ञान अमृत रूप दूध देती है। परन्तु इसको भोग वासनारूप चारा नहीं चरावै, क्योंकि भोग रूप चारा डालने से पहले ही, यह वासना के द्वारा, प्रबल भोगों की इच्छारूप गर्जना करेगी और संसार में, नाना प्रकार के भोगों में दौड़ जायेगी । फिर तुम्हारे संयम रूपी हाथों से पकड़ने में नहीं आवेगी । इसको तो भोग वासनाओं की तरफ से, भूखीं रखने से ही, जिज्ञासु का कल्याण है । फिर तो इससे नित्य ही, ब्रह्मानन्द रूपी दूध दुहते रहो । इस प्रकार यह मनसा रूप गाय दुहाती है, अर्थात् दूध देती है । और जैसे जैसे यह भोग वासनारूप, विकारों की शक्ति से कमजोर होती जायेगी, वैसे वैसे ही यह, अधिक अधिक ज्ञान रूपी दूध देती रहेगी । और यदि इसकी इच्छा अनुसार, विषय वासना रूपी चारा देते रहोगे, तो फिर यह परमार्थ मार्ग से हट कर, संसार के जन्म मरण में पटक कर मारेगी । इसके पांच ज्ञान इन्द्रिये रूपी जो विषयों में जाने के घाट हैं, उनसे इसको हटाकर अन्तःकरण में रखै । इस प्रकार इसको निर्द्वन्द रूपी रस्सी से बांधै । तो फिर यह इस लोक परलोक तक के, अर्थात् मोक्ष मार्ग पर्यन्त, सब काम सिद्ध करती है । इस प्रकार इस को जिसने स्वभाव से ही, अन्तःकरण में रोक ली है, फिर यह कभी बहिर्मुख नहीं होती है । तो फिर मुमुक्षु के सम्पूर्ण संचित और आगामी कर्म बन्धन कट जाते हैं । इम प्रकार जिसने विचार द्वारा, अपने कर्म बन्धन काट लिये हैं, वह सहजावस्था से, परमेश्वर में ही समा कर रहते हैं । तो फिर यह मनसा रूप कामधेनु साधक पुरूषों के क्षण क्षण में, मन के संकल्पों को पूरा करती रहती है। और दिन दिन आनन्द स्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति होती है । सोई साधक संसार के देखते देखते इस कलिकाल में आनन्द कंद ब्रह्म को, आत्म स्वरूप करके ही, प्राप्त कर लेते हैं ।

दोहा :- धूतै मन की बासना, आप धूतावै नांहि ।
ताहि थैं अवधू कह्या, बास करै हरि मांहि ॥७३॥

74. परिचय

जब घटि परघट राम मिलै, आतम मंगल चार चहूं दिसी,
जनम सुफल करि जीति चले ।।टेक।।
भगति मुक्ति अभै करि राखै, सकल सिरोमणी आप किये ।
निरगुण राम निरंजन आपै, अजरावर उर लाइ लिये ।।
अपने अंग संग करि राखै, निरभय नावं निसान बजावा ।
अविगत नाथ अमर अविनासी, परम पुरिस निज सो पावा ।।
सोई बड़भागी सदा सुहागी, परगट प्रीतम संगि भये ।
दादू भाग बड़े बर बरी करि, सो अजरावर जीत गये ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, परमेश्वर का साक्षात्कार रूपी परिचय बता रहे हैं कि जब अन्तःकरण रूपी घर में आत्मारूपी राम, साक्षात्कार रूप से मिलता है तब आत्मा कहिए बुद्धि में, और चारों अवस्थाओं में मंगलाचार बर्तता है । वही जिज्ञासु अपने मनुष्य जन्म को सफल करके, संसार में बाजी जीत कर जाते हैं । उनको परमेश्वर अपनी पराभक्ति द्वारा जीवनमुक्त करके, अपने अभय स्वरूप में रखते हैं । वह सर्व के शिरोमणि परमेश्वर, उनको अपने समान बना लिये हैं । और वह निर्गुण राम निरन्जन रूप आप स्वयं अजर अमर, अपने स्वरूप में उनको लगा लिये हैं । अर्थात् अपना अंग जानकर, अपने साथ रखते हैं । फिर वह भक्त, काल कर्म से निर्भय होकर, निष्काम नाम रूप नोबत बजाकर, अव्यक्त सम्पूर्ण संसार के स्वामी, अजर अमर स्वरूप अविनाशी, परम पुरूष को प्राप्त करते हैं । सोई इस संसार में बड़भागी कहिये, बड़े भाग्य वाला, पुण्य आत्मा है । वह सदा ही जीव ब्रह्म की एकता रूप आनन्द का प्रगट रूप से साक्षात्कार उपभोग करते हैं । इसी प्रकार हमारा भी बर कहिए श्रेष्ठ भाग्य है, जो हम भी परब्रह्म रूप वर को प्राप्त करके, संसार में मनुष्य जन्म को जीत लिया है, अर्थात् सार्थक बना लिया है ।

75. पराभक्ति प्रार्थना

रमैया यहु दुख सालै मोहि, सेज सुहागन प्रीति प्रेम रस,
दरसन नांही तोहि ।।टेक।।
अंग प्रसंग एक रस नांही, सदा समीप न पावै ।

ज्यों रस मैं रस बहुरी न निकसै, ऐसैं होइ न आवै ।।
आत्म लीन नहीं निस बासुर, भगति अखंडित सेवा ।
सनमुख सदा परसपर नाहीं, ताथैं दुख मोहि देवा ।।
मगन गलित महारसि माता, तूं है तब लग पीजै ।
दादू जब लग अंत न आवै, तब लग देखण दीजै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, पराभक्ति को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करते हैं कि हे रमैया ! सबमें रमने वाले, आप हमारे हृदय रूप पलंग पर पधार कर, हमको दर्शनों का सुहाग रूप सुख नहीं देते । और न हमारी प्रीति के अनुसार, आप अपना प्रेम रस ही पिलाते और न आप अपना दर्शन ही देते । यही दुख हमें दुखी बना रहा है । आपके स्वरूप में निरन्तर संयोग बने रहने का, अवसर हमें नहीं मिलता है । और न आपकी सदा समीपता ही हमें प्राप्त होती है । जैसे रस में रस मिलने के बाद, फिर अलग नहीं होता है, इसी प्रकार आपके स्वरूप में, हमारी आत्मा मिलकर, फिर अलग नहीं हो सकती, ऐसी अवस्था हमारी नहीं बन रही है । तथा अब बुद्धि अखंडित भक्ति सेवा द्वारा, सदा आपके सन्मुख रहकर, रात दिन आपके स्वरूप में लीन नहीं रहते और आप परमात्मा से मेरी आत्मा, ओत प्रोत नहीं होती । हे देव ! यही मुझे दुख है । हे प्रभु ! जब तक आपका स्वरूपमुझे भिन्न प्रतीत होता है, तब तक यह मेरा अनात्म अहंकार, आपके साक्षातकार रूप, महारस का पान करने में, प्रतिबंधक हो रहा है । इसलिये अब आप ऐसी कृपा करो कि मैं आपके एकत्व भावरूप प्रेम में मग्न होकर, मस्त रहूं । हे प्रभु ! जब तक मेरे शरीर का अन्त समय नहीं आवै, तब तक उक्त प्रकार से पराभक्ति द्वारा, आपके स्वरूप का दर्शन करने दीजिये । फिर तो मैं आपके स्वरूप में अभेद हो ही जाऊंगा ।

76. अधीरता अस्थिरता

गुरू मुखि पाइये रे ऐसा ग्यान बिचार,
समझि समझि समझ्या नही, लागा रंग अपार ।।टेक।।
जाणि जाणि जाण्या नही, ऐसी उपजै आइ ।
बूझि बूझि बूझ्या नही, डोरी लाग्या जाइ ।।
ले ले ले लीया नही, हौंस रही मन मांहि ।
राखि राखि राख्या नही, मैं रस पीया नांहि ।।

पाय पाय पाया नही, तेजैं तेज समाइ ।
करि करि कछु कीया नही, आत्म अंगि लगाइ ॥
खेलि खेलि खेल्या नही, सन्मुख सिरजनहार ।
देखि देखि देख्या नही, दादू सेवग सार ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, परमेश्वर के साक्षात्कार अर्थ, साधक में अधैर्य रहता है, उसको बता रहे है कि हे साधक ! गुरुजनों के मुख से ही ऐसा ज्ञान विचार सुनने में आता है कि उस परब्रह्म का ज्ञान विचार रूप रंग लगा है, परन्तु सत् शास्त्र और सतगुरु के ज्ञान द्वारा, उसको बारम्बार समझ कर भी, उसका आदि अन्त और मध्य नहीं समझ पाये हैं । उसको व्यापक अपना स्वस्वरूप जानकर भी, बुद्धि में ऐसी भावना उत्पन्न होती है कि अभी परब्रह्म को हमने पूर्णरूप से नहीं पहचाना है । उसके विषय में पुनः पुनः प्रश्न करके भी, अभी तक न पूछने के समान भावना हो रही है । और ब्रह्मनिष्ठ संत ब्रह्माकार वृति द्वारा, लगनपूर्वक उसकी ओर आगे बढ़ते रहते हैं । मन वचन कर्म से, उसकी प्राप्ति होने का निश्चय कर लेने पर भी, नहीं प्राप्त करने की सी, स्थिति प्रतीत होती रहती है, और परब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा बनी रहती है । तथा अन्तर्मुख ध्यान से हृदय में, और नित्य अनित्य के विचार द्वारा बुद्धि में, रखने पर भी, नहीं रखने के समान प्रतीत होता है । कारण कि मैंने निदिध्यान द्वारा, ब्रह्मानन्द रूप अखंड रस का पान नहीं किया ? उस स्वरूप को व्यापक और आत्म स्वरूप से तो जान लिया, परन्तु आत्म प्रकाश समष्टि परमात्मा में लय होकर, व्यवहारकाल में भी उसकी भिन्नता प्रतीत न हो, ऐसे नहीं प्राप्त कर सके । इसलिये शांख्य योग आदि साधन करने पर भी, व्यष्टि आत्मा को समष्टि परमात्मा में अपरोक्ष रूप से अभेद न कर सके । तब तक कुछ भी नहीं करने के समान भावना बनी रहती है । और ध्यान अवस्था में सहज समाधि द्वारा, परब्रह्म का विचार रूपी खेल, खेलते हुए भी, जीव ब्रह्म के एकतारूपी ज्ञान द्वारा, ब्रह्म के सन्मुख होकर, ब्रह्म से अभेद नहीं हुए, तब तक अखंड आनन्द प्राप्तिरूप खेल, न खेलने के समान ही, भावना बनी रहती है, इस प्रकार निर्विकल्प समाधि अवस्था में बारम्बार साक्षात्कार होने पर भी, नहीं देखने के समान, देखने की इच्छा बनी रहती है । वही साधक श्रेष्ठ है ।

77. गुरु अधीन ज्ञान

बाबा गुरु मुखि ग्याना रे, गुरु मुखि ध्याना रे ॥टेक॥
गुरु मुखि दाता गुरु मुखि राता, गुरु मुखि गवना रे ।
गुरु मुखि भवना, गुरु मुखि छवना, गुरु मुखि रवना रे ॥

गुरू मुखि पूरा, गुरू मुखि सूरा, गुरू मुखि बाणीं रे ।
गुरू मुखि देणा, गुरू मुखि लेणा, गुरू मुखि जाणी रे ।।
गुरू मुखि गहिबा, गुरू मुखि रहिबा, गुरू मुखि न्यारा रे ।
गुरू मुखि सारा, गुरू मुखि तारा, गुरू मुखि पारा रे ।।
गुरू मुखि राया, गुरू मुखि पाया, गुरू मुख मेला रे ।
गुरू मुखि तेजं, गुरू मुखि सेंजं, दादू खेला रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि परमात्मा रूपी ब्रह्म का, और संसारिक यथार्थ व्यवहार का, सम्पूर्ण ज्ञान, गुरू के द्वारा ही होता है । हे संतो ! सब प्रकार का ज्ञान गुरू के मुखार्बिन्द से श्रवण करने से ही, जिज्ञासु को होता है । गुरू मुख से विधि श्रवण करके ही, परमेश्वर का ध्यान किया जाता है, और गुरू के मुख से श्रवण करके ही, दान देने का ज्ञान होता है । गुरूमुखी पुरूष ही, परमेश्वर के स्मरण में राता रत्त और माता मस्त रहता है । और गुरूमुखी ही, परमेश्वर की तरफ गवन करता है । गुरूमुखी ही अन्त:करण रूपी भवन में, स्थिर रहता है । परमेश्वर में वही गुरूमुखी, राम के व्यापक स्वरूप में रमण करता है । गुरू, मुखी ही, सम्पूर्ण साधनों में पूरा शूरवीर है, और गुरूमुखी पुरूषों को ही, शब्द उच्चारण करने का ज्ञान प्राप्त है । गुरूमुखी ही सत्य उपदेश देते हैं, और गुरूमुखी ही सत्य उपदेश के द्वारा, परमेश्वर को जानते हैं, और उनके स्मरण को ग्रहण करते हैं। गुरूमुखी ही गुरू आज्ञा में रहते हैं । ऐसे गुरूमुखी ही, माया और माया के कार्य से, 'न्यारा' कहिए रहित होकर, परमेश्वर में निवास करते हैं, अथवा संसारिक भावना से रहित होकर, सार तत्व को प्राप्त करते हैं । गुरूमुखी को ही संसार समुद्र से तैरने का, और संसार समुद्र से पार होने का ज्ञान होता है । गुरूमुखी ही, सबके राजा राम जी को प्राप्त करते हैं । गुरूमुखी ही गुरूमुखियों से मेल मिलाप रखते हैं । गुरूमुखी ही हृदयरूपी सेज पर, तेजोमय ब्रह्मतत्व का अनुभव करते हैं, और ओत प्रोत भाव को प्राप्त होते हैं ।

78. निज स्थान निर्णय

मैं मेरे मै हेरा, मधि मांहि पीव नेरा ।।टेक।।
जहां अगम अनुप अवासा, तहं महापुरूष का बासा ।
तहं जानेगा जन कोई, हरि मांहि समाना सोई ।।
अखंडि जोति जहं जागै, तहं राम नाम ल्यो लागै ।
तहं राम रहै भरपूरा, हरि संग रहै नहि दूरा ।।

तिरवेणी तट तीरा, तहं अमर अमोलिक हीरा ।
उस हीरें सौं मन लागा, तब भरम गया भौ भागा ।।
दादू देख हरि पावा, हरि सहजैं संगि लखावा ।
पूरण परम निधाना, निज निरखत हौं भगवाना ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव अपने को उपलक्ष करके कह रहे हैं कि हमने ध्यान द्वारा, अपने अन्तःकरण में खोजा तो, परमेश्वर मेरे अत्यन्त समीप हृदय में ही ज्ञात हुए, तो वहां बाह्य इन्द्रियों का अविषय, अगम अनुपम स्वरूप का, हृदय में ही बास है । परन्तु वहां पर कोई बिरले निष्कामी अनन्य भक्त ही, उनको जानेगें, वे ही हरि के स्वरूप में समावैंगे, जहां पर जीव ब्रह्म की एकता रूप अखंड ज्ञान की ज्योति जगमगाती है । और अभेद निश्चय रूप से, राम नाम स्मरण में लय लगती है । वृत्ति की ऐसी स्थिति में राम का भरपूर रूप से दर्शन होता है । फिर वह हरि, जीव के अत्यन्त पास, निज रूप से ही भान होने लगते हैं । किंचित भी फरक नहीं रहता । मन पवन सुरति के किनारे पर ही, वह अमोलिक हीरारूप चेतन्य प्रकासता है । उस चेतन्य रूप हीरे में मुक्त पुरूषों का मन, स्थिर हो रहा है । तब उनके अन्तःकरण से सम्पूर्ण भय भ्रम नष्ट हो जाता है । इस प्रकार मुक्त पुरुषों ने चेतन्य रूप हरि को देखा तो, वह हरि अपने व्यापक स्वरूप को, जीव के अन्दर ही, जीव को प्रत्यक्ष होने लगे ।

79

मेरा मनि लागा सकल करा, हम निसदिन हिरदय सो धरा ।।टेक।।

हम हिरदै मांहैं हेरा, पीव परगट पाया नेरा ।
सो नेरे ही निज लीजै, तब सहजैं अमृत पीजै ।।
जब मन ही सौं मन लागा, तब जोति स्वरूपी जागा ।
जब जोति सरूपी पाया, तब अन्तर मांही समाया ।।
जब चित्तहि चित्त समाना, हम हरि बिन और न जाना ।
जाना जीवनि सोई, इब हरि बिन और न कोई ।।
जब आतम एकै बासा, पर आतम माहि प्रकासा ।
परकासा पीव पियारा, सो दादू मित हमारा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि जिस परमेश्वर ने इस सम्पूर्ण संसार की रचना की है, वही हमारे मन को प्रिय लगता है, और अब हमने रात दिन उसी को हृदय में धारण किया है, क्योंकि हमने अहग्रंह ध्यान द्वारा हृदय में खोजा तो, वह आत्म स्वरूप परब्रह्म अति समीप हृदय में ही प्रत्यक्ष रूप से भान हो रहे हैं। हे जिज्ञासुओ ! तुम भी उसे उपरोक्त ध्यान द्वारा हृदय में ही प्राप्त करो, तो फिर अनायास ही जींव ब्रह्म की एकता रूप अमृत पीओगे। जिस समय हमारा मन अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, परब्रह्म के नाम स्मरण में लगा तो हमने उस परब्रह्म को ज्ञानमय ज्योति रूप से साक्षात्कार किया। फिर उसी में आभास रूप वृत्ति अभेद हो गई। इस प्रकार व्यष्टि चित, समष्टि चित में अभेद हुआ, तो फिर हम उस हरि के बिना, और जो मायिक कार्य है, उसको सत्य नहीं जाना। और उस हरि को ही अपने जीव की जीवन जानकर निश्चय किया कि सत स्वरूप परमेश्वर के बिना, और कुछ भी सत्य नहीं है। जब आत्मा में वृत्ति स्थिर हुई, तो परमात्मा आत्मा रूप होकर ही प्रकासने लगे। इस प्रकार वह सुख प्रीति का विषय पीव ही, हम मुक्त पुरुषों का मित्र है।

दोहा :- रज्जब भजन भंडार में, दीरघ दौलत होइ।
यहां सुखी संसार में, आगे आनन्द होइ॥

सब ठाहिर सु उपाधि है, सुमरन मै सु समाधि॥
रज्जब गुरू प्रसाद सों, सो ठाहर सुख लाधि॥

(इति राग गौड़ी टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ राग माली गौड़ २ ॥

80. नाम महिमा

गोबिन्दे नाऊं त्तेरा, जीवन मेरा, तारण भो पारा ।
आगै इहि नाम लागे, संतनि आधारा ॥टेक॥
करि बिचार तत्त सार, पूरण धन पाया ।
अखिल नाम अगम ठाऊं, भाग हमारे आया ॥
भक्ति मूल मुकति मूल, भौ जल निसतरना ।
भरम करम भंजना भै, कलि बिर्ख सब हरना ॥
सकल सिधि नव निधि, पूरण सब कामा ।
राम रूप तत्त अनुप, दादू निज नामा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुदेव नाम महिमा बता रहे हैं कि हे गोबिन्द ! आपका राम नाम हमारे जीव की जीवन रूप है और संसार समुद्र से पार करने वाला है। पूर्वकाल में होने वाले संत भी, इसी आपके राम नाम स्मरण में लगे थे। ऐसा यह आपका राम नाम संतों का आधार स्वरूप है। संतों ने इस नाम का स्मरण रूप विचार करके, आपका जो स्वरूप तत्व सार है उसको, प्राप्त किया है। इस प्रकार हमने भी गुरूदेव के द्वारा, आपका नामरूप पूर्ण धन प्राप्त कर लिया है। इस आपके नाम का स्मरण करके, संतजन अखिल भाव को प्राप्त होकर, अगम ठाम, आपके स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। हमारे उत्तम भाग्य से या आपको कृपा द्वारा, हमारे हृदय में यह राम नाम आया है। यह आपका राम नाम भक्ति और मुक्ति को देने वाला है। इसी

नाम से संसार समुद्र से संतजन तैरते हैं, और फिर यह नाम, पांच प्रकार के भ्रम और सम्पूर्ण संचित कर्मों के भय को नष्ट करता है, और कलिकाल के सम्पूर्ण पापों को हरने वाला है। फिर सम्पूर्ण सिद्धि और नौ निद्धिओं को देने वालाहै, और भक्तजनों के सम्पूर्ण कामों को सिद्ध करता है। और फिर राम नाम का स्मरण, रामरूप ही बना देता है। ऐसा आपका यह राम नाम का स्मरण है।

४१. करुणा

गोबिन्दे कैसैं तरिये, नाव नांही खेव नाहीं,
राम विमुख मरिये ।।टेक।।
ग्यान नांही ध्यान नांही, लै समाधि नांही ।
बिरहा बैराग नांही, पंचौं गुण मांही ।।
प्रेम नांही प्रीति नांही, नांव नाही तेरा ।
भाव नांही भगति नांहीं, काइर जीव मेरा ।।
घाट नांही बाट नांही, कैसैं पग धरीये ।
वार नांहीं पार नांही, दादू बहु डरिये ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि दादू दयाल जी महाराज अपने को उपलक्षण करके, परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, दुख प्रगट कर रहे हैं कि हे गोबिन्द परमेश्वर ! हम इस संसार समुद्र से कैसे पार उतरैंगे, क्योंकि न तो हमारे पास साधन रूपी नौका ही है और न नौका को खेने वाला मल्लाह ही है। इसलिये अब हम आप राम से विमुख होकर, इस संसार समुद्र में डूब कर मरने वाले हो रहे हैं, क्योंकि न तो हमारे में आतम बोध है, और न आपका ध्यान ही है। और न स्वरूपाकार वृत्ति ही बनी है, न सहजावस्था रूप समाधि ही प्राप्त की है, न आपका बिरह और वैराग्य ही है, क्योंकि यह हमारा मन बहिरंग विषयों मे ही आसक्त हो रहा है तथा पांचों ज्ञान इन्द्रिये भी, अपने अपने विषयों में लगी हैं। न आपके संत भक्तों में हमारा प्रेम ही है, और न आपमें हमारा स्नेह ही है। न आपके नाम का स्मरण ही होता है, और न आपकी हमारे हृदय में श्रद्धा भक्ति ही है। यह हमारा जीव, उपरोक्त सम्पूर्ण साधनों से कायर हो रहा है। इस संसार समुद्र से तैरने का ऐसा कोई मार्ग नहीं दिखाई देता, जिससे कि हम, इससे पार हो सकें। क्योंकि इसका वार पार कुछ भी हम नहीं पा सकते, हे नाथ ! हमें इसका बहुत भय हो रहा है।

82. बिरह

पिव आव हमारे रे, मिलि प्राण पियारे रे,
बलि जाऊं तुम्हारे रे ॥टेक॥
सुनि सखी सयानीं रे, मैं सेव न जानी रे,
हौं भई दिवानी रे।
सुनि सखी सहेली रे, क्यूं रहूं अकेली रे,
हूं खरी दुहेली रे।
हूं करौं पुकारा रे, सुनि सिरजनहारा रे,
दादू दास तुम्हारा रे।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू देव महाराज, परमेश्वर के वियोग रूप बिरह दर्द को दिखा रहे हैं कि हे मुख प्रीति के विषय परमेश्वर रूप पति ! आप हमारे हृदय में अपना प्रादुर्भाव करो, अर्थात् दर्शन देओ। हे प्राण पति ! अब हमसे जल्दी ही मिलो। मैं आपकी बार बार बलिहारी जाती हूं। हे परमेश्वर के प्रेमी बिहरीजनो ! हमारी बात आप ध्यान देकर सुनो, मैं प्रभु की सेवा भक्ति करना नही जानती, मैं तो उनके प्रेम में पागल हो गई हूं। हे बिरहीजनो ! अब मैं अकेली इस शरीर में कैसे रहूं ? अब तो हम बिरह से भारी दुखी हो रहे हैं। हम बिरहीजन पुकार कर रहे हैं, हे सिरजनहार परमेश्वर ! अब आप हमारी पुकार को सुनिये। हम तो आप ही के अनन्य दास हैं।

83

वाल्हा सेज हमारी रे, तूं आवहूं वारी रे,
हूं दासी तुम्हारी रे ॥टेक॥
तेरा पंथ निहारूं रे, सुन्दर सेज संवारूं रे,
जियरा तुम्ह परि वारूं रे।
तेरा अंगड़ा पेखूं रे, तेरा मुखड़ा देखूं रे,
तब जीवन लेखूं रे।

मिलि सुखड़ा दीजे रे, यहु लाहड़ा लीजे रे,
तुम देखैं जीजे रे।
तेरे प्रेम की माती रे, तेरे रंगडै राती रे,
दादू बारणैं जाती रे।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे प्यारे प्रीतम परमेश्वर ! आप हमारे हृदयरूपी सेज पर आओ, मैं आपके वारणैं जाती हूं। मैं आपकी ही बिरहीजन दासी हूं। आपके दर्शनों का मार्ग देख रही हूं। आपकी खातर हृदय रूपी सेज को देवी सम्पत्ति के गुणों से, सुसज्जित करते हैं। हम अपना जीव आपके ऊपर न्यौछावर कर रहे हैं। आपका दर्शन करके, आपके स्वरूप में अभेद होवेंगे, तब अपने जन्म को सफल समझेंगे। आप हमको मिलकर, अब मनुष्य जन्म का लाभ देओ। आपको देखकर ही, हम बिरहीजन जीवेंगे। हम तो केवल आपके प्रेम में ही मतवाले हो रहे हैं। तुम्हारे ही रंग में राते रत्त होकर आपके बार बार बलिहारी जाते हैं।

84

दरबार तुम्हारे दरद बंद, पीव पीव पुकारै।
दीदार दरूने दीजिये, सुनि खसम हमारे ।।टेक।।
तनहां के तनि पीर है, सुनि तुंही निवारै।
करम करीमा कीजिये, मिलि पीव पियारे ।।
सूल सुलाको सों सहूं, तेग तनि मारै।
मिलि सांई सुख दीजिये, तूंही तूं संभारै ।।
मैं सुहदा तन सोखता, बिरहा दुख जारै।
जिय तरसै दीदार को, दादू नै बिसारै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे परमेश्वर ! हम आपके बिरहीजन हृदय रूपी दरबार में, आपकी अप्राप्ति रूप बिरह के दर्द से "हे पीव ! हे पीव !" ऐसे पुकारते हैं। हे नाथ ! आप अपना दीदार, भीतर ही देओ। हे हमारे पति ! हमारी पुकार सुनो। हम बिरहीजनों के तन में, आपका वियोग रूपी दुख

हो रहा है, हमारी पुकार सुनो। इस दुख को आप अपना दर्शन देकर, निवारण करोगे। हे कृपालु ! अब हम पर दया रूपी कर्म करो। हे प्यारे प्रीतम ! अब आप मिलो। आपका वियोग रूपी दुख, सेल की चोट के समान हम सह रहे हैं। यह बिरह हमारे तन पर तलवार का सा वार कर रहा है। हे हमारे स्वामी ! आप दर्शन देकर हमें सुखी करो। हम आपको तूं ही तूंही करके, बार बार रट रहे हैं। मेरे तन को आपके वियोग में, यह बिरह रूप दुख जला रहा है। हे नाथ ! अब हमारा जीव, आपके दर्शनों के लिये तरस रहा है। अब आप हमको न भुलाओ।

85

संइयां तूं है साहिब मेरा, मैं हूं बंदा तेरा ॥टेक॥
बन्दा बर्दा चेरा तेरा, हुकमि मैं बीचारा।
मीरां मेहरबान गुसांई, तूं सिरताज हमारा ॥
गुलाम तुम्हारा मुल्लां जादा, लौंडा घर का जाया।
राजिक रिजक जीव तैं दीया, हुकम तुम्हारे आया ॥
सादी लबै हाजीर बंदा, हुकम तुम्हारे मांही।
जब ही बुलाया तब ही आया, मैं मेवासी नांही ॥
खसम हमारा सिरजनहारा, साहिब समरथ सांई।
मीरां मेरा मेहर मया कर, दादू तुम्ह ही तांई ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे परमेश्वर ! आप ही हमारे बिरहीजनों के स्वामी हो, और हम बिरहीजन, आपके सेवक हैं। हमतो आपके वरदाये हुए दास हैं। मैं तो बिचारा, आपके हुकम में रहने वाला हूं। आप हमारे दयालु स्वामी, हम बिरहीजनों के सिर के ताज हो। हम तो आपके मोल लिये हुये गुलाम दास हैं। और फिर आपके ही घर के पैदा हुए लोंडे हैं। आप हमारे जीव को रिजक देने वाले, राजिक हो। मैं तो आपके हुकम से आया हूं। जब आप मुझे 'सादी' कहिए बुलाओगे, तभी मैं आपका बन्दा, आपके हाजिर हो जाऊंगा। मैं तो आपके हुकम में रहने वाला हूं। जब ही बुलाओगे, तब ही तत्काल आऊंगा। मैं यहां का रहने वाला नहीं हूं। हे सिरजनहार ! आप ही हमारे खाविंद हो। हे समर्थ साहिब ! अब आप हमको अपना जानकर, दया मया करो। हम तो आपके लिये ही पुकार करते हैं।

86. करुणा

मुझथीं कछु न भया रे, यहु यूंहि गया रे,
पछितावा रह्या रे ॥टेक॥
मै सीस न दीया रे, भरि प्रेम न पीया रे,
मैं क्या कीया रे ।
हौं रंग न राता रे, रस प्रेम न माता रे,
नहिं गलित गाता रे ।
मैं पीव न पाया रे, कीया मन का भाया रे,
कुछ होइ न आया रे ।
हूं रहूं उदासा रे, मुझ तेरी आसा रे,
कहै दादू दासा रे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि अपने को उपलक्षण करके कह रहे हैं कि हमारे से परमेश्वर की प्राप्ति के लिये, कुछ भी साधन नहीं हुए । यह हमारा मनुष्य शरीर, मैं मेरेपन में वृथा ही जा रहा है । हमारे अन्तःकरण में यह पश्चाताप हो रहा है कि हमने परमेश्वर के दर्शनों के लिये, अपना शीश, उनको भेंट नहीं किया । इसीलिये हम प्रेमाभक्ति का अमृत नहीं पी सके । इस मनुष्य जन्म में आकर, हमने कुछ भी कर्म, परमात्मा की प्राप्ति के लिये नहीं किये । हम परमेश्वर के भक्ति वैराग्य रूपी रंग में, कभी भी रत्त नहीं हुए । और न प्रेसाभक्ति के रस को पीकर, मतवाले ही हुए । हमारा यह 'गात कहिये शरीर, प्रभु प्रेम में, हमने गलतान नहीं किया । इसीलिये हम अब तक, पीव का दर्शन नहीं कर सके । जो हमारे मन को भाये, वही हमने बहिरंग काम किये । उनसे कुछ भी हमारा सुधार नहीं हुआ । इसी से हम अब उदास हो रहे हैं । हे प्रभु ! अब तो हमें केवल आपकी ही आशा है । हम आपके ही दास हैं ।

87. वैराग्य उपदेश

मेरा मेरा छाड़ गंवारा, सिर पर तेरे सिरजनहारा ।
अपणे जीव बिचारत नांहीं, क्या ले गइला बंस तुम्हारा ॥टेक॥

तब मेरा कृत्त करत्ता नांही, आवत है हंकारा ।
काल चक्र सौं खरी परी रे, बिसर गया घर बारा ॥
जाइ तहां का संजम कीजै, बिकट पंथ गिरधारा ।
दादू रे तन अपना नांहीं, तो कैसे भया संसारा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरु इसमें वैराग्य का उपदेश कर रहे हैं कि हे गंवार ! विषयों के प्रेमी ! मैं हूं, यह सब कुछ मेरा है, इसको अन्तःकरण से छोड़ दे । यह सब धन, धाम, कुटम्ब परिवार आदि तो, तेरे मस्तक पर सृष्टि कर्त्ता ईश्वर है, उसी के यह सब किये हुए हैं । तूं इनका अहंकार क्यों करता है ? अपने जीव में सत्य असत्य का विचार क्यों नहीं करता है ? तेरे पूर्वज, क्या यहां से कुछ साथ ले गये हैं, जो तूं अब अहम्ता करता है ? जब यमदूत अन्त समय में आवैंगे, तब तेरा किया हुआ कर्म, तेरी कोई भी रक्षा नहीं करेगा । और वह यमलोक के हलकारे, तेरे गले में यम फांसी डाल लेंगे । और निश्चय ही करके कालरूपी चक्र, तेरे ऊपर पड़ेगा । उस वक्त तूं सम्पूर्ण घर बार और परिजनों को भूल जायेगा । जहां तुझे जाना है, उस संयम रूपी मार्ग को धारण कर । आगे बड़े भारी विकट रास्ते से तुझे जाना है । हिमालय की चोटी को टपना है । यह शरीर ही तेरा नहीं है, तो तैंने संसार को अपना कैसे बना रखा है ?

88

दादू दास पुकारै रे, सिरि काल तुम्हारै रे,
सर सांधे मारै रे ॥टेक॥
जम काल निवारी रे, मन मनसा मारी रे,
यहु जनम न हारी रे ।
सुख नींद न सोई रे, अपणा दुख रोई रे,
मन मूल न खोई रे ।
सिर भार न लीजी रे, जिसका तिसको दीजी रे,
इब ढील न कीजी रे ।

यहु औसर तेरा रे, पंथी जाग सवेरा रे,
सब बाट बसेरा रे।
सब तरवर छाया रे, धन जोबन माया रे,
यहु काची काया रे।
इस भरम न भूली रे, बाजी देखि न फूली रे,
सुख सागर झूली रे।
रस अमृत पीजी रे, बिख का नाम न लीजी रे,
कह्या सो कीजी रे।
सब आतम जाणी रे, अपणा पीव पिछाणी रे,
यहु दादू बाणी रे।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि हे लोगो ! हम तुमको पुकार कर कह रहे हैं कि काल तुम्हें लक्ष्य बनाकर, रात दिन रूप धनुष बाण लेकर, तुम्हें मार रहा है। तुम अपने मन बुद्धि को, बहिरंग से अन्तर्मुख करके, परमेश्वर के नाम स्मरण द्वारा यमराज को हटाओ। इस मनुष्य जन्म को व्यर्थ नहीं खोना। परमेश्वर के स्मरण बिना, मोह रूप निद्रा में सुखपूर्वक नहीं सोना। अपना जन्म मरण रूपी दुख या परमेश्वर की अप्राप्ति रूप दुख से रुदन करना। हे मन ! सबका कारण रूप जो यह मनुष्य देह है, इसको नाम स्मरण के बिना वृथा नहीं गमाना। परमात्मा से विमुख होकर, सिर पर पाप रूप बोझा नहीं उठाना। यह मनुष्य देह जिस परमेश्वर का दिया हुआ है। उसी के, निष्काम कर्मों द्वारा, इसको समर्पण करना। इस काम में अब देर नहीं लगाना। यही अपने आपका उद्धार करने का, तेरा समय है। हे पथिक ! अब मोह रूप निद्रा से जवानी अवस्था में ही सचेत होकर, परमेश्वर का नाम स्मरण कर। सब लोग आने जाने के मार्ग पर बस रहे हैं। और यह सब धन योवन माया तो, वृक्ष की छाया के समान चंचल है, और तेरा शरीर कच्चे घट के समान खतरनाक है। इन सबको देखकर सत्यता के भ्रम में, परमेश्वर को नहीं भूल जाना। यह सम्पूर्ण संसार रूपी बाजी मिथ्या है, इसको सत्य जानकर, राजी नहीं होना। सुख सागर तो केकल परमेश्वर की भक्ति है। निष्काम नाम स्मरण रूपी रस को पीना। संसार के विषय भोगों का किंचित मात्र भी चिन्तन नहीं करना। यह परमेश्वर ने सत् शास्त्र और सतगुरु ने चेतावनी उपदेशों द्वारा बताया है, इसी को करना। और सब आत्माओं को एकरूप जानकर, मुखप्रीति का विषय परमेश्वर को, निज आत्म स्वरूप करके जानना। यही परिचय सिद्ध मुक्त पुरुषों की बाणी है।

89. भक्ति उपदेश

पूजौं मैं पहली गणपति राइ, पड़ि हौं पावों चरणों धाइ ।
आगै होकर तीर लगावै, सहजैं अपने बैन सुनावै ।।टेक।।
कहूं कथा कुछ कही न जाइ, इक तिल में ले सबै समाइ ।
गुनहूं गहीर धीर तन देही, ऐसा समर्थ सबै सुहाइ ।
जिस दिस देखूं ओही है रे, आप रह्या गिरि तरवर छाइ ।
दादू रे आगै क्या होवै, प्रीति पिया करि जोड़ि लगाइ ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव भक्ति का उपदेश करते हैं कि हमतो उसी परमेश्वर की उपासना करते हैं, जो सर्व से प्रथम, कहिए सम्पूर्ण सृष्टि के उपादान कारण और निमित कारण हैं, वही सम्पूर्ण देवों के, मुनि गण के, नर गण आदि सभी के, वह उपास्य देव हैं, और सम्पूर्ण विश्व के वह राजा हैं । हम संसार की ओर से हटकर, उन्हीं प्रभु के चरणों की शरण ले रहे हैं । वही साधन मार्ग में हमें, आगे साथ लेकर, पार करने वाले हैं । और स्वभाव से ही अपने भक्तजनों को, वे ज्ञान भक्ति के उपदेश, अपनी प्राप्ति कराने वाले सुनाते रहते हैं । मैं उनके गुणों का कुछ वर्णन करूं, परन्तु मेरे लिये उनके गुण अकथनीय हैं, क्योंकि वह ऐसे समर्थ हैं, एक तिल रूप माया में, सम्पूर्ण सृष्टि को लय करते हैं । उनके गुण बहुत गहरे हैं और उनके शरीर में अपार धैर्य है, और फिर ऐसे समर्थ हैं कि सबको अपनी शक्ति से उत्पन्न करके, कर्मा अनुसार पालन करते हैं और महा प्रलय काल में, सबको अपने आप में समा लेते हैं । जिस जिस दिशा में हम देखते हैं, उधर वह ही वह, व्यापक रूप से दिखाई दे रहे हैं । जैसे पहाड़ वृक्षों से, लताओं से, अच्छादित रहता है, उसी प्रकार वह सम्पूर्ण विश्व को अच्छादित कर रखा है । मुक्तजन कहते हैं कि आगे न मालूम क्या होवेगा ? हे जीवो ! अभी से उस परमेश्वर में अपनी प्रीति द्वारा अपने मन को लगा लो ।

90. परिचय

नीको धन हरि करि मैं जान्यौं, मेरे अखई ओही ।
आगै पीछे सोई है रे, और न दूजा कोई ।।टेक।।
कबहूं न छाड़ौं संग पिया को, हरि के दरसन मोही ।
भाग हमारे जो हौं पाऔं, सरनैं आयो तोही ।।

आनन्द भयो सखी जिय मेरे, चरण कवंल को जोई।
दादू हरि को बावरो, बहुरि बियोग न होई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, परमेश्वर के साक्षात्कार का परिचय दे रहे हैं कि हमने विचार पूर्वक अन्तः-करण में देखा है कि हरि का नाम स्मरण रूपी धन ही अति श्रेष्ठ है । हमारी आंखों के सामने तो अब हरि का दर्शन रूपी धन ही, अब सदैव रहता है । इस सृष्टि के आदि में और अन्त में, वह हरि ही शेष रहते हैं। माया और माया का कार्य, सब परिवर्तनशील है । ऐसे प्रीतम का अब हम, कभी भी संग नहीं छोड़ेंगे, क्योंकि उस प्रभु का हमें सदैव दर्शन हो रहा है । हें नाथ ! हमारे जन्म जन्मान्तरों का, पुण्य अबके उदय हुआ है जो हम आपकी शरण में आकर, आपको पाया है। हे संतो ! अब हमारे अन्तःकरण में आनन्द हो रहा है, प्रीतम के चरणों का दर्शन करके। हे प्रभु ! हमतो आपके बावरे भक्त हैं । हमारा आपसे अब कभी भी वियोग न होवै, ऐसी कृपा करना ।

91. हित उपदेश

बाबा मर्द मर्दां गोइ, यें दिल पाक करदम धोइ ।।टेक।।
तर्क दुनियां दूर कर दिल, फर्ज फारिग होइ ।
पैवस्त परवर दिगार सौं, आकिलां सिर सोइ ।।
मनी मुरदः हिर्स फानी, नफ्स रा पामाल ।
बदी रा बरतरफ करदः, नाम नेकी ख्याल ।।
जिंदगानी मुरदः बाशद, कुंजे कादिर कार ।
तालिबां रा हक हासिल, पास बाने यार ।।
मर्दे मर्दां सालिकां सर, आशिकां सुलतान ।
हजूरी होशियार दादू, इहै गो मैदान ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें कल्याण प्रद उपदेश कर रहे हैं कि हे बाबा ! मर्दों में मर्द उसी को समझो जिसने, 'करदम = पापरूपी कीचड़ धोकर, अपना हृदय 'पाक' = शुद्ध साफ कर लिया है। संसारिक बातों को 'तर्क' = त्यागकर, अपने मन को संसार से दूर कर लिया तथा 'दोइ' = द्वैतभाव, भेदभाव, 'फर्ज' =

अपना कर्त्तव्य, 'फारिग' = जिम्मेदारी से बरी होना, अथवा निश्चिन्त होकर, 'परवर दिगार' = विश्व पालक परमात्मा से, 'पैवस्त' लग जाओ, अर्थात् उसमें प्रवेश करो । वही 'आकिलां' = अकलवालों में, अकलबंद, 'सिर सोइ' = शिरोमणि प्रधान है अथवा यही बुद्धिमानों का रहस्यमय सिद्धान्त है । 'मनी' = अहंकार को, 'मुरदः' = मारकर, 'फानी' = नश्वर पदार्थों की 'हिर्स' = तृष्णा अर्थात् चाह को दूर करे । और 'नफ्स' = मन की विषय बासना, 'रा' = को, 'पामाल' = नष्ट कर । अर्थात् मन की शैतानी को नष्ट कर दो । 'बदी रा' = बुराई को, 'बरतरफ' = दूर कर । 'नाम नेकी' = इज्जत और भलाई का, 'ख्याल' = ध्यान रख । जिन्दगानी = जीवित अवस्था में हीं, 'मुरदः' = मृत्तक समान, निर्द्वन्द होकर, अर्थात् अहंकार रहित मरे हुए की तरह दिन रात रहो । और कुछ भी 'बाशद' = परवा, न रख । कुँज = हृदय, गुफा, 'कादिरकार' = ईश्वर की चाह से युक्त, 'तालिबां' = ऐसे जिज्ञासु साधक जनों को, 'हक हासिल' = अपनी साधना का फल मिलता है । 'पासवाने यार' = अपने स्वामी, परमात्मा के पास रहने का, 'मर्दे मर्दां = साधकों में साधक, सालिकां = मुख्य शिरोमणि, 'आशिकां सुलतान = वही मुमुक्षुओं का सिरताज है । 'हजूरी' = आत्म जिज्ञासु, 'हुसियार' = सावधान, रहते हैं । इहै = यह मानव शरीर ही, 'गो मैदान = इस खेल का मैदान है ।

92. ईश्वर चकित

ये सब चरित तुम्हारे मोहना, मोहे सब ब्रह्मण्ड खंडा ।
मोहे पवन पानी परमेसुर, सब मुनि मोहे रवि चंदा ।।टेक।।
साइर सप्त मोहे धरणी धरा, अष्ट कुली परवत मेर मोहे ।
तिनि लोक मोहे जगजीवन, सकल भवन तेरी सेवा सोहे ।।
शिव बिरंची नारद मुनि मोहे, मोहे सुर सब सकल देवा ।
मोहे इन्द्र फूनंग फूनि मोहे, मुनि मोहे तेरी करत सेवा ।।
अगम अगोचर अपार अपरम्परा, को यहु तेरे चरित न जानै ।
ये सोभा तुम्ह कौं सोहै सुन्दर, बलि बलि जाऊं दादू न जानै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, ईश्वर के कार्य की अपारता दिखा रहे हैं कि हे मन मोहन परमेश्वर ! आपके सम्पूर्ण चरित्र अलौकिक हैं । आपने सम्पूर्ण ब्रह्मण्डों को, नो खंड पृथ्वी को मोहित किये हैं, और हे परमेश्वर ! आपने पवन पानी सम्पूर्ण मुनि, सूर्य चन्द्रमा, इन सबको आपने मोहित किये हैं, जो आपकी आज्ञा

पालन रूप सेवा में लगे रहते हैं। और हे प्रभु! आपने सातों समुद्र और वासिक नाग, अष्ट कुली पर्वत, सुमेरू, इन सबको आपने मोहित किये हैं। आपकी सेवा में ये लगे हुए हैं। हे जगत् के जीवन! तीनों लोकों को और उनमें जो सृष्टि आबाद हो रही है, सबको आपने मोहित कर रखे हैं और सम्पूर्ण भवनों में निवास करने वाले सभी, आपकी सेवा करके ही, शोभा को प्राप्त हो रहे हैं। हे नाथ! आपने शिवजी, ब्रह्माजी, नारद मुनि इन सबको आपने मोहित किये हैं, जो आपकी आज्ञा में बरत रहे हैं। और सम्पूर्ण देवताओं को भी आपने मोहित किये हैं। इन्द्र, शेष जी, इनको भी आपने मोहित कर रखे हैं और सभी मुनियों को भी आपने मोहित किये हैं, जो यह सब ही आपकी आज्ञा पालन रूप सेवा कर रहे हैं। हे अगम! आपके चरित्र इन्द्रियातीत हैं, जाने नहीं जाते। आपसे परे कोई भी नहीं है, सबसे परे और सर्व से नजदीक, आप ही हैं। हे नाथ! आपके चरित्र इन्द्रियों से जाने नहीं जाते। हे सुन्दर! यह शोभा आपको ही शोभनीय है। हम तो आपकी और आपकी शोभा की बार बार बलिहार जाते हैं।

93. गुरू ज्ञान

ऐसा रे गुरू ग्यान लखाया, आवै जाइ सो द्रिष्टि न आया ।।टेक।।
मन थिर करौंगा, नाद भरौंगा, राम रमौंगा, रस माता ।
अधर रहूंगा, करम दहूंगा, एक भजौंगा, भगवंता ।
अलख लखौंगा, अकथ कथौंगा, एक मथौंगा, गोबिन्दा ।
अगह गहौंगा, अकह कहौंगा, अलह लहौंगा, खोजन्ता ।
अचर चरौंगा, अजर जरूंगा, अतिर तिरूंगा, आनन्दा ।
यहु तन तारौं, बिखै निवारौं, आप उबारौं, साधन्ता ।
आऊं न जाऊं उनमनि लाऊं, सहज समाऊं गुणवंता ।
नूर पिछाणौं, तेजहि जाणौं, दादू जोतिहि देखन्ता ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें गूरू के ज्ञान से होने वाले लाभ को दिखा रहे हैं। गुरूदेव के ज्ञान ने हमें ऐसा बताया है कि जन्मने और मरने वाला है, हम उसे परमात्मा रूप से नहीं देखते। हम तो अपने मन को स्थिर करके, गुरुदेव के ज्ञानरूप शब्द को अन्तःकरण में भरेंगे, और फिर निर्गुण राम में रमेंगे। इस प्रकार प्रेमाभक्ति के रस में मतवाले रहेंगे। और माया आदि गुणों से अधर रहकर, सम्पूर्ण कर्मों का नाश करेंगे। और एक सजातिय, विजातिय स्वगत भेद रहित परमेश्वर को भजेंगे। अलख को अनुभव

द्वारा देखैंगे। अकथ को अकथ ही कहकर, कथन करेंगे। और एक गोविन्द के नाम का ही विचार करेंगे। अगह कहिए मन इन्द्रियों का अविषय, उसको अगह करके ग्रहण करेंगे। अकह को अकह की कहकर, कथन करेंगे। 'अलह' - तल स्पर्श रहित को, विचार द्वारा खोजकर ग्रहण करेंगे। 'अचर' - इन्द्रियों का अविषय अनुभव द्वारा भजन करेंगे। उसी अजर अमर के भजन की जरणा करेंगे। यह अतिर शरीर को पाप ताप से रहित करके, तरैंगै। उस आनन्द स्वरूप में स्थिर रहैंगे। विषयों का त्याग करके, इस मनुष्य शरीर को सफल करेंगे। अन्तरंग साधनों के द्वारा, संसार से अपने आप को उबारेंगे। आवागमन रूप चक्र से रहित होकर, ब्रह्मी अवस्था में अपने आपको स्थिर करैंगे। सहज अवस्था रूप समाधि में, इस गुणरूप शरीर को, लय चिन्तन द्वारा अभेद करेंगे। अपना आत्मस्वरूप शुद्ध ब्रह्म को तेजोमय जानकर, उसी में स्थिर रहैंगे। इस प्रकार जीव ब्रह्म की एकता रूप, ज्ञान ज्योति को देखैंगे।

94. तत्व उपदेश

बंदे हाजिरां हजूर वे, अल्लह आली नूर वे ।
आसीकां रा सिदक स्याबती, तालिबां भरपूर वे ।।टेक।।
औजूद मै मौजूद है, पाक परवर दिगार वे ।
देखि ले दीदार कौं, गैब गोता मारि वे ।।
मौजूद मालिक तखत खालिक, आशिकां रा अैंन वे ।
गुदर कर दिल मगज भीतर, अजब है यहु सैंन वे ।।
अर्श ऊपरी आप बैठा, दोस्त दाना यार वे ।
खोजि करीं दिल कब्ज कर ले, दारूनै दीदार वे ।।
हुसियार हाजिर चुस्त करदम, मीरां मेहरवान वे ।
देखि ले दरहाल दादू, आप है दीवान वे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव तत्व सार का उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! परमेश्वर के प्रेमी, अनन्य निष्काम भक्ति द्वारा, हृदय में परमेश्वर के सामने हाजिर रहते हैं। वही अल्लह का, 'आले' जो श्रेष्ठ स्वरूप है, उसका दर्शन करते हैं। वह परमेश्वर के प्रेमी, परमेश्वर की प्राप्ति के मार्ग में, 'सिदक स्याबती' = पूरा निश्चय रखने वाले, 'तालिबा = दर्शनों की इच्छा चाहने वाले मुमुक्षु, जो सबमें व्यापक परमेश्वर है, उसके सन्मुख रहते हैं। वह परमेश्वर इस शरीर में ही, साक्षीरूप से मौजूद है। 'पाक' कहिए पवित्रों से भी पवित्र

सबका पालन करने वाले परमेश्वर का दीदार नाम दर्शन, अचानक सहसा प्राप्त करते हैं । वह सबका स्वामी हृदय रूपी तख्त पर स्थित है । वह सम्पूर्ण खलक को रचने वाला है । अपने प्रेमीयों को साक्षात्कार होता है । तूं अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, जो नख से शिखा पर्यन्त, दिल दिमाग में, जो व्याप्त हो रहा है । उसको देख । यही ब्रह्मनिष्ठ गुरू का सैन कहिए उपदेश है । हृदय रूपी, आकाश में आप स्थिर हो रहा है । वह तेरा 'दोस्त' = मित्र, 'दाना' = जबरदस्त, सर्वशक्तिवान भक्तों का यार, अर्थात् मित्र, उसको ज्ञान भक्ति वैराग्य द्वारा, अपने दिल को कहिए मन को अन्तर्मुख करके भीतर ही, उसका दीदार कर । इस प्रकार जो साधन सम्पन्न चतुर जिज्ञासु हैं, उस परमेश्वर की बन्दगी में हाजिर रहने वाले । वह कहते हैं कि हे हमारे मेहरबान दयालु सतगुरू ! आप अपना हमें उस परमेश्वर का दीदार कराइये । तब तत्ववेत्ता मुक्तपुरूष मुमुक्षुओं को कहते हैं कि उपरोक्त मार्ग द्वारा तुम भी, 'दरहाल कहिए तत्काल, तुम्हारे भीतर ही, उस दीवान न्यायकारी अन्तर्यामी ईश्वर का साक्षात्कार करो ।

95· वस्तु निर्देश

निर्मल तत्त निर्मल तत्त निर्मल तत्त असा ।
निर्गुण निज निधि निरन्जन, जैसा है तैसा ।।टेक।।
उतपति आकार नांही, जीव नांही काया ।
काल नांही कर्म नांही, रहिता राम राया ।।
सीत नांही घाम नांहीं, धूप नांहीं छाया ।
बाव नांही बरण नांहीं, मोह नांही माया ।।
धरणी आकास अगम, चंद सूर नांही ।
रजनी निस दिवस नांहीं, पवना नहिं जाही ।
कृत्यम घट कला नांहीं, सकल रहित सोई ।
दादू निज अगम निगम, दूजा नहिं कोई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव जिज्ञासुओ को परब्रह्म रूप सत्य वस्तु का निर्देश कर रहे हैं कि वह निर्गुंण परब्रह्म परमेश्वर, निर्मल कहिए सत्य चित्त आनन्द स्वरूप, माया के आवरण से रहित है, फिर वह निर्गुंण निज

सबका आत्मस्वरूप निधि समूहरूप निरंजन, माया अंजन रहित, जैसा उसका स्वरूप है, वैसा ही ब्रह्मनिष्ठ पुरुषों ने अनुभव किया है। न तो जिसकी कभी उत्पत्ति होती है, न उसका कोई आकार ही है। न उसमें जीव भाव ही है और न माया रूप काया ही है। न उसमें किसी प्रकार के काल की गति ही पहुंचती है। न किसी प्रकार के कर्मों का लेप ही लगता है। इन सबसे रहित, वह सबके राजा रूप राम हैं। उसके स्वरूप में सर्दी, गर्मी, धूप छाया अर्थात् सुख दुख, वह इन सब विकारों से रहित हैं। उनके स्वरूप में न तो वायु है, न वर्ण-काला, गोरा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, और न माया और माया का कार्य, मोह आदि ही है। और न धरती, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य ही है, इन सबसे वह अगम हैं। न उनके स्वरूप में रात्रि रूप अज्ञान ही है, और न दिन रूप ज्ञान ही है, न प्राणों की गति ही पहुंचती है। माया रचित घट आदि कृतम, किसी प्रकार की भी उसमें कोई कला नहीं है। वह सम्पूर्ण नामरूप प्रपंच से रहित, सोई तुम्हारा निज आत्म स्वरूप साक्षी ब्रह्म है। 'निगम' = बेद, 'अगम' = शास्त्र भी, उसको लक्षणावृत्ति द्वारा, निज स्वरूप करके ही बोध कराते हैं।

॥ इति राग माली गौड़ टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ॥

।। अथ राग कल्याण ३ ।।

96. उपदेश चेतावनी

मन मेरे कछु भी चेत गवांर, पीछे फिर पछतावेगा रे ।
आवै न दूजी बार ।।टेक।।
काहे रे मन भूल्यो फिरत है, काया सोचि बिचार ।
जिन पंथों चलना है तुझ को, सोई पंथ सवांर ।।
आगै बाट बिखम जो मन रे, जैसे खांडे की धार ।
दादू दास सांई सौं सूत करि, कूड़े काम निवार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव अपने मन को उपलक्षण करके उपदेश करते हैं कि हे हमारे मन ! अब मनुष्य देह पाकर, इसमें कुछ तो सावधान हो, राम नाम का स्मरण कर । अब सत्य कर्मों को मत भूलै। हे गंवार ! विषय वासनाओं के प्रेमी, पीछे अन्तकाल में पश्चाताप करेगा अथवा चोरासी में जाकर पछतावेगा । इस मनुष्य शरीर में दुबारा आना तेरा, राम भजन के बिना असम्भव है । हे मन ! सतगुरु के उपदेश को बिसार कर, विषयों में क्यों भटकता है ? कुछ तो अन्तःकरण में परमेश्वर के नाम स्मरण का विचार कर । जिस मार्ग से, परमेश्वर के पास तुझे चलना है, अब उस मार्ग को अपना ले । निष्काम निर्वासनिक अनन्य भक्ति रूप मार्ग को धारण कर ले । और नहीं तो आगे मार्ग कठिन है, परमात्मा की प्राप्ति का । क्योंकि काम आदि बड़े बड़े लुटेरे हैं। वह चलने नहीं देंगे । परमार्थ के मार्ग पर चलना, खांडे की धार पर चलने के समान है । अथवा खांडे की धार जैसा तीक्ष्ण है । मुक्तपुरुष कहते हैं कि हे मन ! अब तूं निषिद्ध पाप आदि कर्मों का त्याग करके, परमेश्वर के नाम स्मरण में अपने आपको लगा ले । इसी में तेरा कल्याण है ।

97. परिचय

जग सौं कहा हमारा, जब देख्या नूर तुम्हारा ।।टेक।।
परम तेज घर मेरा, सुख सागर मांहिं बसेरा ।
झिलिमिलि अति आनन्दां, तहं पाया परमानन्दा ।
जोति अपार अनन्ता, खेलैं फाग बसन्ता ।
आदि अंति अस्थाना, जन दादू सो पहिचाना ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि हे परब्रह्म स्वरूप परमेश्वर ! जब हम आपको अपना आत्म स्वरूप करके अनुभव द्वारा, पहचान लिये, तो फिर इस मिथ्या जगत से हमारा क्या प्रयोजन है ? आपका जो शुद्ध तेजोमय स्वरूप है, अब तो वही हमारा घर है । आपका जो स्वरूप व्यापक चेतन्य सुखरूप है, उसी में हम बास करते है । जहां जीव ब्रह्म की एकता रूप ज्ञान ज्योति का झिलमिलाहट रूप आनन्द हो रहा है । रोम रोम में आपका दर्शन कर रहे हैं । इस प्रकार हृदय प्रदेश में ही परम आनन्द को प्राप्त हो रहे हैं । हे अनन्त ! आपकी अपार ज्ञानरूप ज्योति के प्रकाश में हम संसारिक जनों की भांति बसन्त रूप, आनन्द उत्सव मना रहे हैं । जो आप सबके आदि और अन्त स्वरूप हैं, ऐसे आपके स्वरूप को, हमने अन्तर्मुख वृति द्वारा, पहचान लिया है ।

(इति राग कल्याण टीका सहित, सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ राग कान्हड़ा ४ ।।

९४. बिरह बिनती

दे दर्सन देखन तेरा, तो जिय जक पावै मेरा ।।टेक।।
पीव तूं मेरी बेदन जानै, हूं कहा दुराऊं छानै,
मेरा तुम्ह देखे मन मानै ।
पीव करक कलेजे मांही, सो क्योंहि निकसै नांही,
पीव पकरि हमारी बांही ।।
पीव रोम रोम दुख सालै, इन पीरों पिन्जर जालै,
जीव जाता क्यों ही वालै ।।
पीव सेज अकेलि मेरी, मुझ आरति मिलणै तेरी,
धन दादू वारी फेरी ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें बिरह का स्वरूप दर्शाते हैं कि हे परमेश्वर ! अब हम बिरहीजनों को आपका दर्शन करने दो, तभी हमारे को अन्तःकरण में शान्ति प्राप्त होगी । हे नाथ ! आप हमारे बिरह के दुख को जानते हो । में आपसे, इस बिरह के दर्द को कहां छिपा सकती हूं ? अब तो हमारा मन अति व्याकुल हो रहा है । जब आपका दर्शन करैं, तब ही हमारा मन सन्तुष्ट होवै । हमारे कलेजे में यह बिरह का दुःख, पुनः पुनः रिड़क रहा है । यह दुख हमारे कलेजे में, आपके दर्शनों के बिना, कभी भी शान्त नहीं होता । हे प्रीतम प्यारे परमेश्वर ! अब आप हमारी बांह पकड़कर, अपनी शरण में हमें लीजिये । हे पीव ! यह आप

का बियोग रूपी, बिरह का दर्द हमारे रोम रोम में व्याप्त हो रहा है। हे नाथ ! यह बिरह की पीड़ा, हमारे शरीर को जला रही है। हमारा जीव आपके वियोग में, इस शरीर से निकलने वाला है। अब आप दर्शन देकर, इसको बचाइये। हे परमेश्वर ! हमारी हृदय रूपी सेज, आपके बिना प्रगट हुए, सूनी दिखाई पड़ती है। आपके मिलने को हम अति दुखी हैं। उन बिरहीजन भक्तों को धन्य है, जो आपका साक्षात्कार दर्शन करते हैं। हम उनके वारणै जाते हैं।

99

आव सलौने देखन दे रे, बलि बलि जाऊं बलिहारी तेरी ॥टेक॥
आव पिया तूं सेज हमारी, निस दिन देखौं बाट तुम्हारी।
सब गुण तेरे अवगुण मेरे, पीव हमारी आहि न ले रे।
सब गुणवंता साहिब मेरा, लाड गहेला दादू केरा।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे हमारे मन मोहन परमेश्वर ! आपके दर्शन हमें, अति सलोने, सुन्दर लगते हैं। हम बिरहीजनों को हृदय में ही, आपका दर्शन दीजिये। हम आपके दर्शन करके, आप पर बार बार बलिहारी जाते हैं। हे प्रीतम ! आप हमारे अन्तःकरण रूपी सेज पर पधारिये। हम रात दिन, आपके दर्शनों का समय देख रहे हैं। हे नाथ ! आपने तो सब हमारे ऊपर गुण ही गुण किये हैं। वह आपके गुण हम वर्णन नहीं कर सकते। और हमने इस मनुष्य शरीर में आकर, अवगुण ही अवगुण किये हैं। परन्तु हे पीव ! अब आप हमारी हाय नहीं लेना। हे हमारे हमारे साहिब ! आप तो सब गुणों से सम्पन्न हो। केवल आप अपने आत्मीयजनों को प्यार करके ही, अपनी शरण में लेते हो।

100

आव पियारे मींत हमारे, निसदिन देखौं पांव तुम्हारे ॥टेक॥
सेज हमारी पीव संवारी, दासी तुम्हारी सो धन वारी।
जे तुझ पाऊं अंग लगाऊं, क्यों समझाऊं वारणैं जाऊं।
पंथ निहारौं बाट संवारौं, दादू तारौं तन मन वारौं।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे परमेश्वर ! आप ही हमारे, हितैषी मित्र हो। इस हृदय में आप प्रगट होइये। हम रात दिन आपके तेजपुंज रूप चरणों के दर्शनों के लिये, ध्यान कर रहे हैं। हे प्रीतम !

हमने हृदय रूपी सेज, आपके दर्शनों के लिये, देवी सम्पत्ति रूप गुणों से सजाई है। हम आपकी ही, बिरहीजन दासी, दासातन भक्ति धारण किये हुए हैं। और आपके बार बार वारणै जाते हैं। हे प्रीतम ! हम आपको हृदय रूपी सेज पर प्राप्त करें, तो अपना धन्य भाग्य समझें और आपके स्वरूप में हम अपने जीव को अभेद करें। हे नाथ ! अब हम आपको कैसे समझावें ? आप तो सब ही बिरहींजनों की हालत जानते हैं। हम तो आपके बार बार वारणै जाते हैं। अपने आपको, आपके ऊपर न्यौछावर किये हैं। आपके दर्शनों का पंथ देख रहे हैं और मनुष्य जन्म की सार्थकता रूप साधनों को, धारण कर रहे हैं। हे प्रभु ! इस प्रकार हम अपने तन मन को, आपके ऊपर न्यौछावर करते हैं। आप ही हमें संसार समुद्र से तारेंगे।

101. पंजाबी भाषा

आवे सजण आव, शिर पर धर पांव।
जानी मैंडा जिन्द असाडे, तूं रावैंदा राव वे,
सजण आव ।।टेक।।

इत्थां उत्थां जित्थां कित्थां, हूं जीवां तो नाल वे।
मीयां मैंडा आव असाडे, तूं लालों सिर लाल वे,
सजण आव ।।

तन भी डेवां, मन भी डेवां, डेवां पिंड पराण वे।
सच्चा सांई मिल इत्थांईं, जिन्द करां कुरवाण वे,
सजण आव ।।

तूँ पाकों शिर पाक वे सजण, तूं खूबों शिर खूब।
दादू भावे सजण आवे, तूं मिट्ठा महबूब वे,
सजण आव ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें बिरहीजनों का स्वरूप दिखा रहे हैं। हे हमारे प्यारे सज्जन परमेश्वर! आप हमारे हृदय में अहंकार रूपी मस्तक पर, पांव रखकर, पधारिये। आप ही हमारे सच्चे मित्र हैं। हम आपको अपनी जान से भी प्रिय जानते हैं। आप हमारी जान के जीवन रूप हो, और आप ही हमारे राजाओं के भी राजा हो। हे सज्जन मित्र ! इस लोक में, परलोक में, जहां भी हम रहैं, आपके साथ रहकर ही, हम

जीवन बितावैं, अर्थात् जीवेंगे । हे हमारे मालिक ! अब आप हमारे हृदय में आओ । आप ही हमारे अति श्रेष्ठ प्रीतम प्यारे हो । हम अपना तन मन प्राण स्थूल शरीर सब आपके अर्पण करते हैं । हे हमारे सत् स्वरूप परमेश्वर ! इस मनुष्य शरीर में ही, हमको आप दर्शन दीजिये । हम अपना जीव आपके ऊपर कुरबान करते हैं । हे प्रभु! आप पवित्रों में भी, सबसे अति पवित्र, हमें दिखाई पड़ते हो । आप सुन्दरों में भी, अति सुन्दर हमें दिखलाई देते हो । हे सज्जन् ! आप हमारे हृदयरूपी मन्दिर में आओ । आप ही हमको तो प्रिय लगते हो । हे महबूब ! हे प्यारे ! आप ही हमको सुख रूप प्रतीत हो रहे हो ।

102· विनती

दयाल अपनै चरननि मेरा, चित्त लगावहु नीकैं करी ।।टेक।।
नख सिख सुरति सरीर, तूं नांव रहौं भरी ।
मैं अजाण मति हींण, जम की पासि थैं रहत हूं डरी ।
सबै दोष दादू के दूरि करि, तुम ही रहो हरी ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव नित्य प्रभु के नाम स्मरण परायण रहने के लिये, बिनती कर रहे हैं कि हे दयालु परमेश्वर ! हृदय में, आपके तेजपुंज रूपी चरणों में, हमारे चित्त को अच्छी प्रकार स्थिर रखिये । हम नख से शिखा पर्यन्त सारे शरीर में, आपके नाम स्मरण से सुरति द्वारा पूर्ण रहैं । हे प्रभु ! हमारी 'मति' कहिए बुद्धि, बहुत गिरी हुई है । आपको जानने की इसमें शक्ति नहीं है । इसीलिए हम यमराज की फांसी से डरते हैं । आप ही उस फांसी से हमें मुक्त करेंगे । हे नाथ ! हमारे में तो सब प्रकार के दोष भरे हैं, परन्तु आप ही उन सबको दूर करके, हे हरि ! हमारे हृदय में सदैव आप ही प्रकट रहिये ।

103· तर्क चेतावनी

मन मति हींण धरै, मूरख मन कछु समझत नाहीं,
ऐसैं जाइ जरै ।।टेक।।
नाम बिसारि अवर चिति राखै, कूड़े काज करै ।
सेवा हरि कीं मन हूं न आणै, मूरख बहुरि मरै ।।
नाम संगम करि लीजि प्राणी, जमथैं कहा डरै ।
दादू रे जे राम संभारै, सागर तीर तिरै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, जिज्ञासुओ को तर्क पूर्वक उपदेश करते हैं कि यह मूर्ख मन, नीच विचार धारण करके, विषयों की ओर प्रवृत्त होकर, विषय वासनाओं के सुख रूप दुख में जलता रहता है। परमेश्वर के निष्काम नाम स्मरण को भूलकर, अपने चित्त में लोक परलोक के मायिक सुखों की वासना करता रहता है। और खोटे कर्मों में प्रवृत्त होता है। यह मूर्ख मन, परमेश्वर को भक्ति से विमुख रहकर, बार बार जन्मता मरता है। हे प्राणधारी ! निष्काम नाम स्मरण द्वारा, परमेश्वर से अपना सम्बन्ध कायम कर ले। फिर यमराज से क्या डरता है ? जिन्होंने राम का स्मरण किया है, वह संसार समुद्र से तैर गये हैं।

104. संत सहाय रक्षा

पीव तैं अपने काज संवारे, कोई दुष्ट दीन कौं मारन,
सोई गहि तैं मारै ॥टेक॥

मेर समान ताप तनि व्यापै, सहजैं ही सो टारे।
संतन को सुखदाई माधौ, बिन पावक फंद जारे॥
तुम थैं होइ सबै विधि समर्थ, आगम सबै बिचारे।
संत उबार दुष्ट दुख दीन्हा, अंध कूप मैं डारे॥
ऐसा है सिर खसम हमारे, तुम जीते खल हारें।
दादू सौं ऐसैं निरवहिये, प्रेम प्रीति पिव प्यारे॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें जिज्ञासुओं को बता रहे हैं कि परमेश्वर, सदा सहायक होकर, भक्तों की रक्षा करते हैं। हे परमेश्वर ! आप इस संसार में अपने आत्मीयजन अनन्य भक्तों के सम्पूर्ण काज सुधारते हो। यदि कोई दुष्ट लोग, आपके भक्तों को आकर सतावै, तो आप तत्काल उसको पकड़कर मारते हो। पहाड़ के समान भी, जो भारी ताप आपके भक्तों को होवै, तो उसको आप स्वभाव से ही निवारण कर देते हो। हे माधव ! आप अपने संतभक्तों को सदा सुखदायी रहते हो। उनके संचित कर्मरूपी सम्पूर्ण कर्म बन्धनों को, बिना ही अग्नि के जलाते हो। हे समर्थ ! आपसे सब प्रकार, आपके भक्तों के सम्पूर्ण कार्य पूरे होते हैं। आप आने वाले भक्तों के सुख दुख आदि को, प्रथम ही विचार कर देख लेते हो। इस प्रकार आप संसार समुद्र से या दुष्टों की त्रास से अपने संतभक्तों को बचाते हो और उन दुष्टों को, उनके कर्मानुसार दुख देते हो। इस संसार कूप में उनको जन्म मरण के दुखों में डालते हो। हे समर्थ ! ऐसे आप हमारे मालिक, हमारे सिर पर हो। आपकी हमेशा ही जीत होती है और दुष्ट आपके सामने, सदा हार

मान लेते हैं। हे मुख प्रीति के विषय पीव ! हमको आप निबाहो, तभी हम निबहेंगे। हमने तो प्रेमपूर्वक, अपनी प्रीति आपसे ही लगाई है।

दोहा :- गुरू दादू को कपट करि, मारन मेले नीच।
तब स्वामी यह पद कह्यो, दुष्ट कूप के बीच ॥१०४॥

दृष्टान्त :- पक्षपाती सम्प्रदायिक लोगों को ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव का पक्षपात रहित, उपदेश प्रिय नहीं लगा। तब उन लोगों ने महाराज को मारने के लिये षड़यंत्र रचा। एक गहरा गढ्ढा खोदा। उसके ऊपर बारीक बारीक कूचों की सिखें लगा दी और ऊपर सफेद चद्दर बिछाकर, सामने किनार पर मसन्द रख दी। पतली सी एक गद्दी चद्दर के ऊपर बिछा दी। जब महाराज को शिष्यों के सहित बुलाकर लाये, परमगुरूदेव ने अपनी छड़ी से उस चद्दर का एक पल्ला पलटा और गड्ढे के अन्दर बड़े बड़े हथियार खड़े, शिष्यों को दिखाए। वह दुष्ट लोग शर्मिन्दे हो गये और आप ही अपने कर्मों से लज्जित होकर, कूप में गिर कर मर गयें।

दोहा :- मेले आवत साधु को, लूटण लागे मूढ़।
चढ़ घोड़े रक्षा करी, भेद दियो न गूढ़ ॥१०४॥

दृष्टान्त :- एक उत्तराध से महात्मा संत सेवा के लिये रुपये लेकर, नँराना मेले में आ रहे थे। रास्ते में चोरों ने उनका भेद पाकर, उनके साथ लग गयें और बोले :- आपके साथ आपका कोई रक्षा करने वाला भी है, इस जंगल में ? संत बोले :- समर्थ स्वामी, हमारी रक्षा करने वाला है। चोरों ने देखा कि कोई समर्थदास नाम का स्वामी, आगे पीछे होगा। इधर उधर उन्होंने देखा तो कोई दिखलाई नहीं पड़ा। फिर बोले :- कि वह कहां हैं समर्थ स्वामी ! संत बोले :- आ रहे हैं। "साधु बोले सहज स्वभाव, साध का बोला, वृथा न जाव"। समर्थ परमेश्वर, आप घोड़े पर सवार होकर, सामने से आते दिखाई दिये। चोर लज्जित हो गये। भय से घबरा उठे। जब तक नगर न आया, तब तक समर्थ घोड़े पर साथ ही चलते रहे। परन्तु अपना भेद किसी को भी नहीं दिया। और अन्तर्ध्यान हो गये। फिर संत ने विचार किया कि हो न हो, वह तो परमेश्वर थे। उन्होंने ही मेरी रक्षा की है। बारम्बार मन ही मन में, परमेश्वर को नमस्कार करने लगे और सम्पूर्ण सम्पत्ति को परमेश्वर के निमित्त, संत सेवा में आकर लगा दी।

105. माया

काहु तेरा मरम न जाना रे, सब भये दीवाना रे ।।टेक।।
माया के रस राते माते, जगत भुलाना रे ।
को काहू का कह्या न मानै, भये अयाना रे ।।
माया मोहे मुदित मगन, खान खाना रे ।
विषया रस अरस परस, साच ठाना रे ।।
आदि अंति जीव जन्त, कीया पयाना रे ।
दादू सब भरमि भूले, देखि दाना रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इस शब्द में बता रहे हैं कि संसारिक प्राणी, विषय आसक्त, माया के सुख स्त्री धन पुत्र आदि में फंसकर, सत्य स्वरूप परमेश्वर को भूल बैठे हैं। हे प्रभु ! आपके मार्मिक स्वरूप को, ये न जानकर, विषय रस पीकर दीवाने हो रहे हैं। नाना प्रकार के मायिक रस को पीकर, जगत के अज्ञानी प्राणी, आपको भूल रहे हैं। यदि कोई विवेकी संत आपकी प्राप्ति का सद् उपदेश करें, तो उसको भी वह स्वीकार नहीं करते। ऐसे अयाने अर्थात् अजान से बने रहते हैं कि मानो यह कुछ समझते ही न हों ? ऐसे अज्ञानियों को माया ने मोहित कर लिये हैं। उनका मन माया में ही प्रसन्न रहता है। अपने को वह राजाओं का भी राजा समझते हैं। और विषया स्त्री आदि पदार्थों के रस में, ओत प्रोत रहते हैं। अन्तःकरण से और बाणी से जिन्होंने सत्य का त्याग कर दिया है। इस प्रकार इस सृष्ठि में, ऐसे जीव प्राणीमात्र, आदि से अन्त कहिए महा प्रलय पर्यन्त, काल के मुंह में ही जाते हैं। सब कोई इस मायिक भ्रम में पड़कर, हे परमेश्वर ! आपको भूल गये हैं। अर्थात् कई बुद्धि जीव भी, इसी भ्रम में भूल रहे हैं।

106. अनन्य शरण

तूं ही तूं गुरुदेव हमारा, सब कुछ मेरे नाम तुम्हारा ।।टेक।।
तुम ही पूजा, तुम ही सेवा, तुम ही पाती, तुम ही देवा ।
जोग जग्य तूं साधन जापं, तुम्ह ही मेरे आपै आपं ।
तप तीरथ तूं ब्रत ~~समाना~~ स्नाना, तुम ही ज्ञाना तुम ही ध्याना ।
वेद भेद तूं पाठ पुराना, दादू के तुम पिंड पराना ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें अनन्य शरण दिखा रहे हैं कि हे हमारे स्वामी परमेश्वर ! आप ही हमारे उपदेष्टा गुरुदेव हैं । हम तो सम्पूर्ण साधन, आपके नाम स्मरण में ही देख रहे हैं । आप ही हमारे उपास्यदेव हैं । और आपकी ही हम पूजा करते हैं । आप ही हमारे सेवा और स्वामी रूप हो । आप ही तुलसीजल या बील पत्र रूप हो । और तुम ही हमारे दिव्य रूप देव हो । आप ही योग, आप ही यज्ञ, आप ही साधन, आप ही जाप, यह सर्व कुछ हमारे आप ही हो । या आप ही के निमित्त, हम सब कुछ ये करते हैं । आप ही तप, तीर्थ, व्रत, स्नान रूप हो, हमारे । आप ही ज्ञेय ज्ञाता, ज्ञानरूप हो । आप ही ध्येय ध्याता और ध्यान रूप हो । और वेद के भेद को जानने वाले भी, हमारे आप ही हो । आप ही पुरान और पुरानों के पाठ रूप हो । हे नाथ ! हमारे तो पिंड और प्राणमय आप ही व्याप्त हो रहे हो ।

107

तूं ही तूं आधार हमारे, सेवग सुत हम राम तुम्हारे ।।टेक।।
माइ बाप तूं साहिब मेरा, भक्ति हीण मैं सेवक तेरा ।
मात पिता तूं बान्धव भाई, तुम्ह ही मेरे सजन सहाई ।
तुम्ह ही तातं तुम्हं ही मातं, तुम्ह ही जातं, तुम्ह ही न्यातं ।
कुल कुटुम्ब तूं सब परिवार, दादू का तूं तारणहार ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें अनन्य शरण बता रहे हैं कि हे राम ! हम अपने मन वचन कर्म से कह रहे हैं कि आप ही हमारे आश्रय हैं और हम आपके सेवक और पुत्र हैं । हमारे माता पिता, और स्वामी आप ही हो । मैं आपका भक्ति रहित सेवक हूं । आप हमारे जन्म जन्मान्तरों से माता, पिता, बान्धव, भ्राता और सहायक सज्जन हैं । आप ही हमारे ऊपर, परमार्थ करने वाले, यानि ज्ञान देने वाले, मोक्ष दाता, माता पिता हैं । और आप ही का हमारे नाता है । आप ही हमारी जाति हैं । आप ही हमारी न्याति वाले हैं । कुल कुटम्ब परिवार आप ही हैं, हमारे । हम तो सब कुछ आपको ही समझते हैं । हमारा तो उद्धार करने वाले, आपके सिवाय और दूसरा कोई भी नहीं है । मैं तो आपकी ही शरण में पड़ा हूं ।

108· परिचय बिनती

नूर नैन भरि देखण दीजे, अमीं महारस भर भर पीजे ।।टेक।।
अमृत धारा वार न पारा, निरमल सारा तेज तुम्हारा ।

अजर जरंता, अमी झरंता, तार अनंता, बहु गुणवंता ।
झिलिमिलि सांई जोति गुसांई, दादू मांही नूर रहांई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, निरन्तर साक्षात्कार के लिये इसमें विनती कर रहे हैं कि हे प्रभु ! आपके शुद्ध ब्रह्मस्वरूप को, हमें ज्ञान विचार नेत्रों से देखने दीजिये । जिससे कि हम स्वस्वरूप आनन्द का अमृत पुनः पुनः पान करें । आपके निर्मल कहिये माया आदि विकार रहित, ब्रह्म तेज स्वरूप अमृत की धारा का न उरला किनारा है, न परला किनारा है । अखंड रूप से व्याप्त है । आपका ब्रह्मतेज सबका सार और निर्मल है । आप अजर को अजर ही करके जराते हैं कहिये गुप्त रखते हैं । आपका दर्शनरूपी अमृत, ब्रह्माकार वृत्ति में साक्षात्कार हो रहा है । हे देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित अनन्त स्वरूप, आप अपने आत्मीय जनों को, इस संसार समुद्र से, अपने स्वरूप का ज्ञान करा कर तारे हैं । और आपने बहुत से गुण किये हैं । हे हमारे स्वामी ! आपकी व्यापक ब्रह्म ज्योति का झिलमिलाहट, हमारे अन्तःकरण में भरपूर रूप से भास रहा है । उस स्वरूप को हम अपने अन्दर ही देख रहे हैं ।

109. परिचय

अैन एक सो मीठा लागै, जोति सरूपीं ठाढा आगै ।।टेक।।
झिलमिल करणा, अजरा जरणा, नीझर झरणा,
तंह मन धरणा ।
निज निरधारं, निर्मल सारं, तेज अपारं,
प्राण अधारं ।
अगह गहणा, अकह कहणा, अलह लहणा,
तहं मिल रहणा ।
निरसंध नूरं, सकल भरपूरं, सदा हजूरं,
दादू सूरं ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें जिज्ञासुओं को, साक्षात्कार किये स्वरूप का परिचय दे रहे हैं कि 'अैन' - जो साक्षात् यर्थार्थ ज्योति स्वरुप ब्रह्म हैं वही हमको अब सुखरूप प्रतीत हो रहे हैं । वह हमारे

ज्ञान विचार रूप नेत्रों के सामने, प्रत्यक्ष हो रहें हैं। जिनके स्वरूप प्रकाश का झिलमिलाहट हो रहा है। जो दूसरों को न पचने वाले, वह संसार को पचा रहे हैं और वह फिर परम आनन्द स्वरूप रस के बरसने वाले हैं। तहां हृदय में ही हमने अपने मन को स्थिर किया है। वही निज स्वरूप हैं, सर्व के आधार हैं। आप स्वयं निराधार हैं। माया मल रहित सबमें सार स्वरूप, जिनका अपार तेज है, प्राणों का आधार भूत हैं, वह मन इन्द्रियों के ग्रहण करने में नहीं आते, अनुभव द्वारा ग्रहण किये जाते है। बाणी से अकथनीय, उनको अनुभव द्वारा कथन करते हैं। वह तल स्पर्श रहित स्वरूप को, अन्तर्मुख वृत्ति से लेते हैं। ऐसे स्वरूप में ब्रह्मवेता अन्नर्मुख वृत्ति द्वारा स्थिर रहते हैं। उनका स्वरूप सन्धि रहित है और रोम रोम में भरपूर हैं। ऐसे चेतन्य परब्रह्म में शूरवीर होकर, उत्तम जिज्ञासु, सदैव हजुरी की भांति लगे रहते हैं।

110. निस्पृहता

तो काहे की परवाह हमारे, राते माते नाउं तुम्हारे ।।टेक।।
झिलिमिलि झिलिमिलि तेज तुम्हारा, परगट खेलै प्राण हमारा ।
नूर तुम्हारा नैनों मांही, तन मन लागा छूटै नांही ।
सुख का सागर वार न पारा, अमी महारस पीवणहारा ।
प्रेम मगन मतिवाला माता, रंग तुम्हारे दादू राता ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें अपनी निर्लोभता दिखा रहे हैं कि हे प्रभु ! जब हम आपके नाम स्मरण में अनुरक्त होकर मस्त हुए, तो फिर हमें किसकी परवाह है ? आपके ब्रह्मतेज का झिलमिलाहट, अब हृदय में हो रहा है। वहां पर ही हमारे प्राण और अन्तर्मुख सुरति द्वारा हम, आपकी आराधना रूपी खेल खेल रहे हैं। आपका शुद्ध ब्रह्म स्वरूप, हमारे ज्ञान विचार रूपी नेत्रों में व्याप्त हो रहा है। आपके स्वरूप में हमारा तन और मन भी बहिरंग चेष्टाओं को त्यागकर अन्तर्मुख होकर, आपमें स्थिर हो रहा है। आपका स्वरूप सुख का समुद्र है। जिसका न उरला किनारा है, न परला किनारा है। वह महारस रूप अमृत है। उसी को हमारा मन पी रहा है, कहिए स्मरण कर रहा है। इस प्रकार आपकी एकत्व भावना रूप प्रेम के रंग में, हम राते रत्त और माते मस्त हो रहे हैं।

(इति राग कान्ड़ा टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ राग अडाणा ५ ।।

111. समर्थ गुरू महिमा

भाई रे ऐसा सतगुरू कहिये, भक्ति मुक्ति फल लहिये ।।टेक।।
अविचल अमर अविनासी, अठ सिधि नव निधि दासी ।
ऐसा सतगुरू राया, चारि पदारथ पाया ।
अमी महारस माता, अमर अभै पद दाता ।
सतगुरू त्रिभुवन तारै, दादू पार उतारै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें समर्थ गुरू की महिमा दिखा रहे हैं कि हे भाई ! ऐसे महापुरुष को ही सतगुरू कहते हैं कि जिनके द्वारा साधक, परमेश्वर की निष्काम भक्ति और कैवल्य मुक्ति, चारों फल प्राप्त करते हैं । और अविचल अमर अविनासी स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं । आठ सिद्धि अणिमा महिमा आदि, नौ सिद्धि कुन्द मुकन्द आदि, जिन सतगुरू के चरणों में दासी के समान, सेवा करती हैं । ऐसे सतगुरू की कृपा से सबके राजा राम, और चारों पदार्थों को, मुमुक्षु प्राप्त करते हैं । वह सतगुरू अमृतरूप ब्रह्म रस में, माते मस्त रहते हैं । वही जिज्ञासुओं को अमर पद और अभय पद का दान देते हैं । ऐसे ब्रह्मनिष्ठ सतगुरू, त्रिलोकी में उत्तम साधकों को, संसार समुद्र से पार उतारते हैं ।

112. गुरूमुख कसौटी

भाई रे भान घड़ै गुरू मेरा, मैं सेवग उस केरा ।।टेक।।
कंचन करि ले काया, घड़ि घड़ि घाट निपाया ।

मुख दर्पण मांहि दिखावै, पिव परगट आनि मिलावै ।
सतगुरू साचा धोवै, तो बहुरी न मैला होवै ।
तन मन फेरि संवारै, दादू कर गहि तारै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, जिज्ञासुओं को इसमें गुरू द्वारा कसौटी का स्वरूप कह रहे हैं कि हे साधक! ब्रह्मनिष्ठ सतगुरू, काम क्रोध आदि आसुरी गुणों को अन्तःकरण से नष्ट करके, और देवी सम्पदा के शील, संतोष, दया, धर्म, विवेक वैराग्य आदि को उत्पन्न करते हैं । ऐसे समर्थ गुरुदेव के, 'हम' कहिए उत्तम मुमुक्ष, सेवक हैं । वह गुरूदेव शरीर को अपनी कसौटी द्वारा, तपा कर, चोरी जारी हिंसा आदि दोषों से कंचन के समान शुद्ध कर लेते हैं । इस प्रकार मुमुक्षुओं के शरीरों को, अपनी कसौटी रूपी घाट पर 'घड़ि घड़ि' कहिये निर्दोष बनाते हैं । फिर उनमें किसी प्रकार का दुगुर्ण रूपी मैल नहीं रह सकता । फिर अन्तःकरण रूपी दर्पण में, अपना साक्षी स्वरूप दिखाते हैं । इस प्रकार मुख प्रीति का विषय, जो साक्षी चेतन्य, उससे चिदाभास रूप जीव को, अभेद निश्चय कराते हैं । सत्य उपदेश के देने वाले सतगुरू, साधकों के तन मन को, अपनी ज्ञान सिला पर धोकर, परमेश्वर से सच्चे बना देते हैं । सतगुरू के धोये हुए, साधकों के तन मन, फिर संसार के विषय वासनाओं से, मैले नहीं होते । इस प्रकार सतगुरू, साधक की वृत्ति रूपी हाथ को, अपने हित भावना रूप हाथ से पकड़कर, संसार समुद्र से पार करते हैं ।

दोहा :- नारी बियाहीं रांगड़ै, सो जूती को नेम ।
छाज तोड़ खोतो हन्यो, डरी रांड कीयो प्रेम ।११२॥

दृष्टान्त :- एक राजपूत था । उसकी स्त्री बड़ी चकचाल थी । चलती लड़ाई मोल ले लेती और खसम के सौ जूते रोज मारती । लुगाई से डरकर, बिचारा इधर उधर घूमता रहता । एक उसके लड़की थी । वह शादी के योग्य हो गई । परन्तु उसकी मां के आचरण देखकर, उससे शादी करने को कोई तैयार नहीं होता । एक रोज वह खसम को बोली कि मेरी लड़की के लिये, कोई जाकर लड़का ढूंढ । वहां जहां तहां गावों में लड़का देखने गया । परन्तु सब लोग उसकी तूती सुन चुके थे । सो कोई हां नहीं करै । एक गांव में एक लड़का, गांव वालों के कहने से हां भर ली । परन्तु वह बोला :-मुझे दहेज में एक तो छाज देना पड़ेगा, एक गधा, एक कुत्ता और एक मुर्गा । उसने कहा :-यह हम आपको जरूर देंगे । जब शादी हो गई और बारात बिदा होने लगी, तब लड़के ने वह चारों चीजें मांगी । उसके सामने लाकर खड़े कर दिये । वह छाज को रथ के ऊपर बंधवा दिया और गधे को, कुत्ते को, मुर्गे को रथ के साथ इधर उधर बांध दिये । वहां से

बरात रवाना हो गई। हवा के झोंके से छाज, फड़ फड़ करने लगा। वह डंडा लिया और छाज के मारने लगा और बोला :-बिना हुकम कैसे बज रहा है? कुछ देर में गधा रीका। डंडा लेकर गधे को मारने लगा और बोला :-बिना हुकम कैसे बोलता है? इतने में कुत्तों को देखकर, कुत्ता भोंकने लगा। उसी प्रकार कुत्ते की पिटाई करी। समय आने पर मुर्गा बोला। वैसे ही मुर्गे को पीटा और बोला। तुम लोग बिना हुकम बोलते हो? लड़की डर गई। और मन में सोचा कि इसका हुकम नहीं मानूंगी तो ऐसा ही मेरे साथ करेगा। घर पहुंचा और बोला :- उठ, वहां जाकर बेठ। अब तो लड़की उसके हुकम में हाजिर रहने लगी। एक रोज लड़की की मां बोली :-जा मेरी लड़की को ला। तब वह चला। सोचने लगा, जैसे इस रांड ने इस गांव में, ऊती उड़ा रखी है, वैसे उस रांड ने भी, उस गांव में ऊती उड़ा रखी होगी। जब लड़की के घर पहुंचा, जमाई से रामा श्यामा हुई और लड़की का चाल चलन देखकर, चकित हो गया। तब जमाई को बोला कि इसको तैंने कैसे सुधार ली। मुझे भी युक्ति बता। जो मैं अपनी रांड को भी ठीक कर लूं। जमाई बोला :-कुम्हार के से एक कच्चा घड़ा लिया और एक पक्का लिया। इनको अलग अलग पीस ले। अब कुम्हार के पास ले जा और बोल :-इनके घड़े बना दे। कुम्हार के यहां गया। कुम्हार बोला :- इसका तो नहीं बनेगा, क्योंकि यह पहले पक चुका और इसका बन जायेगा, यह कच्चा है। वापिस जमाई के पास आया। कुम्हार के शब्द सुना दिये। जमाई बोला :-तेरे वाली नहीं सुधर सकती है, वह पक चुकी। यह कच्ची थी, इसलिये मैंने इसे सुधार ली। इसी प्रकार गुरू कसौटी से, उत्तम जिज्ञासु का कल्याण करते हैं।

113. गुरुमुख उपदेश

भाई रे तेन्हौं रूड़ौ थाये, जें गुरू मुख मारगि जाये।।टेक।।
कुसंगती परि हरिये, सत संगति अण सरिये।
काम क्रोध नहिं आनैं, बाणी ब्रह्म बखानैं।
बिखिया थैं मन वारै, ते आपण पो तारै।
बिख मुकी अमृत लीधो, दादू रूड़ौ कीधो।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुदेव, जिज्ञासुओं को इसमें गुरूमुख उपदेश की विशेषता बता रहे हैं कि हे भाई! तैंने गुरू की आज्ञा का जो पालन किया है, यह बहुत अच्छा किया है, जो गुरू के बताये हुए मार्ग पर चल रहा है। कुसंगति, बहिर्मुख पुरुषों की सोबत और भीतर काम क्रोध आदि की संगति, परित्याग दी है और

सतसंगति को धारण कर ली। यह बहुत अच्छा किया। और अपने हृदय में काम क्रोध आदि विकारों को नहीं आने देता है। अपने मुँह से बाणी द्वारा, ब्रह्म का स्मरण करता है और विषिया कहिये स्त्री आदि पदार्थों से, अपने मन को हटा लिया है। तैंने इस प्रकार अपने आपको, संसार समुद्र से तार लिया है और विषय वासना हृदय से छोड़ दी हैं और परब्रह्म का नाम स्मरण रूपी अमृत, पी रहा है। मुक्त पुरुष कहते हैं कि हे भाई! यह तो तैंने बहुत अच्छा किया।

114. बिनती

बाबा मन अपराधी मेरा, कह्या न मानै तेरा ॥टेक॥
माया मोह मदि माता, कनक कामिणी राता।
काम क्रोध अहंकारा, भावै विषय विकारा।
काल मीच नहिं सूझै, आतम राम न बूझै।
समरथ सिरजनहारा, दादू करै पुकारा।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें जिज्ञासुओं के मन सुधार अर्थ, परमेश्वर से बिनती कर रहे हैं कि परमेश्वर पितामह बाबा! हमारा मन बहुत अपराधी है। आपने सत शास्त्रों में और सतगुरु रूप से उपदेश द्वारा, इसके कल्याण के अन्तरंग साधन बताये हैं। परन्तु यह वहिर्मुख मन, आपकी आज्ञा को नहीं धारण करता है। इसको तो काम है, क्रोध है, लोभ है, मोह है, पंच ज्ञान इन्द्रियों के पांच विषय हैं। यही सब प्रिय लगते हैं। इस मूर्ख को अपने सिर पर मृत्यु रूप काल नहीं दीख रहा है और न ही यह आत्मारूप राम को ही बूझता है। हे समर्थ! हे सिरजनहार! हमतो आपसे ही पुकार करते हैं कि इस मन का आप ही सुधार करो।

115. चेतावनी

भाई रे यूं बिनसै संसारा, काम क्रोध अहंकारा ॥टेक॥
लोभ मोह मैं मेरा, मद मत्सर बहुतेरा।
आपा पर अभिमाना, केता गर्व गुमाना।
तीनि तिमिर नहिं जाहीं, पंचों के गुण मांहीं।
आतम राम न जाना, दादू जगत दिवाना।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरु, इसमें तर्क पूर्वक जिज्ञासुओं को उपदेश कर रहे हैं कि हे भाई ! संसार के अज्ञानी प्राणी, इस प्रकार नाश को प्राप्त होते जा रहे हैं। अर्थात् काम क्रोध, अहंकार, लोभ, मोह, मैं, मेरा, मद, मत्सर, ऐसे इन बहुत से आसुरी गुणों सें आसक्त होकर, नाश हो रहे हैं। अपने पराये के अभिमान से कितने ही गर्व गुमान को प्राप्त हुए, उनके अन्तःकरण से, तीन गुणों का कार्यरूप अहंकार निवृत नहीं होता है। पंच ज्ञान इन्द्रियों के विषय में फंसे रहते हैं। इसीलिये जगत के अज्ञानी मनुष्य, विषयों में दीवाने हुए आत्मारूप राम से विमुख होकर, चौरासी में चले जाते हैं।

116. ज्ञान

भाई रे तब क्या कथिसि गियाना, जब दूसर नाहीं आना ।।टेक।।
जब तत्तहि तत्त समाना, जहं का तहं ले साना ।
जहं का तहां मिलावा, ज्यूं था त्यों होइ आवा ।
संधे संधि मिलाई, जहां तहां थिति पाई ।
सब अंग सबही ठांई, दादू दूसर नांहीं ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें कहते हैं कि अद्वैत अवस्था में ज्ञान उपदेश करने का अवकाश नहीं रहता। हे जिज्ञासु ! जब अन्तःकरण में स्वस्वरूप से भिन्न और विचार आता ही नहीं, तब उस अद्वैत ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त हुआ ज्ञानी, तब क्या ज्ञान का उपदेश करेगा ? जब दूसरा कोई आन है ही नहीं, आत्मा के सिवाय। जब व्यष्टि चेतन विचार द्वारा, समष्टि चेतन में अभेद हो जावै। जीव चेतन ब्रह्म का अंश ब्रह्म में मिला दिया। जब जहां का था, वहां ही मिला दिया। जैसे ब्रह्मरूप था, वैसा ही ब्रह्मरूप हो गया। संधि से संधि मिल गई। अब तो जागृत, स्वप्न, सुषोप्ति, तुरिया, सर्वत्र एक चेतन्य मय स्थिति प्राप्त कर ली। तो सम्पूर्ण शरीर में, और सब जगह चेतन्य स्वरूप की ही अनुभूति होने लगी। फिर और दूसरा कुछ भी द्वैतभाव नहीं फुरता है।

(इति राग अडाणा टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

◆

।। अथ राग केदार ६ ।।

117. बिनती (गुजराती भाषा)

मारा नाथ जी तारो नाम लेवाड़ रे, राम रतन हृदया में राखे,
महारा बाला जी, बिषया थी वारै ।।टेक।।
बाला बाणी ने मन मांहै मारै, चितवन तारो चित राखै ।
श्रवण नेत्र आ इन्द्री ना गुण, मारा मांहेला मल ते नाखै ।।
वाहला जीवाड़े तो राम रमाड़े, मने जीव्यानो फल ये आपे ।
तारा नाम बिना हूं ज्यां ज्यां बंध्यो, जन दादू ना बंधन कांपै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें परमेश्वर परायणता अर्थ बिनती कर रहे हैं कि हे हमारे नाथ परमेश्वर ! आप मेरे से अपने नाम का स्मरण कराओ । मेरा मन आपके राम नाम रूपी रतन को, हृदय में रख सके, ऐसी कृपा करो । और हे हमारे प्यारे! बिषय वासनाओं से हमें बचाइये । हम अपनी बाणी और मन से, आपका ही चिन्तन करें । और हे प्यारे परमेश्वर ! फिर हमारा मन, हमारे भीतर सम्पूर्ण पाप वासनाओं का त्याग करैं । चित्त से भी निरन्तर, आपका ही चिन्तन होता रहै, ऐसी कृपा करिये । इन श्रवण, नेत्र आदि इन्द्रियों के विषयों की आसक्ति तथा मेरे भीतर के आसुरी गुण और पाप भावना रूप मल इन सबको हमारा मन त्याग देवैं, ऐसी कृपा करो । हे प्रीतम ! यदि आप हमको जीवित रखते हो तो, हे राम ! आपके स्वरूप में हमें रमण करने दीजिये । मेरे जीने का यही फल है अतः यह मुझेदीजिये । आपके नाम बिना, मैं जहां जहां बंधा हूं मैं मेरा राग कहिये प्रेम है । जिन जिन पदार्थों में, मेरा राग कहिए प्रेम है । उन सब हमारे बन्धनों को आप काटिये ।

दोहा :- शिव पारवती भक्त को, दीनों बिभव अघाय।
विसनु भक्त के गाइ इक, मार चले सुख पाय ।।११७।।

दृष्टान्त :- एक समय शिव और पार्वती आ रहे थे। एक सकामी भक्त आकर नमस्कार किया और अपनी गद्दी में ले जाकर बैठाये। पूजा की। चरण धोए, चरणामृत लिया। और अनेक प्रकार के व्यंजन बनवा कर, प्रसाद कराया। उसके मन की बासना शंकर भगवान सब जानते थे। आप चलती समय बोले :- जा तेरे दुना हो। आगे एक निष्कामी भगवान के भक्त स्त्री पुरूष थे। उनके एक गऊ थी। शिव पार्वती उन के यहां गये, संत संतनि रूप से। दोनों ने दर्शन किये और बोले :- आज तो भगवान शंकर और पार्वती आ गये। पूजा सेवा, सब प्रकार करी। परन्तु भक्त बार बार अपनी स्त्री को कहते :- जाओ गाय को जल पिला दो, गाय को चारा डाल दो, छाया में बांध दो। सतसंग होने लगा और जब भगवान शंकर और पार्वती चलने लगे। दोनों स्त्री पुरूष ने नमस्कार किया। शंकर बोले जा तेरी गऊ मर जाय। यह कहकर चल पड़े। पार्वती बोली :- महाराज ! जिसके यहां तो खूब धन था, उसको कह दिया दूना हो तेरे, और इस बिचारे के कुछ भी नहीं है, एक गैया थी, उसको भी मार दी। शंकर बोले :- पार्वती, वह पहले वाला तो संसार में जन्म मरण के चक्र में घूमेगा, वह पहले माया का भक्त था। और यह भगवान का भक्त है, निष्कामी। यह गाय इसकी भक्ति में बाधक थी। अब यह निसंक होकर भक्ति करैगा, फिर भगवान को प्राप्त हो जायेगा।

118· बिरह बिनती

अरे मेरे सदा संगाति रे राम, कारणि तेरे ।।टेक।।
कंथा पहिरौं भसम लगाऊं, बैरागनि व्है ढूंढौं रे राम।
गिरिवर वासा रहूं उदासा, चढि सिर मेर पुकारौं रे राम।
यहु तन जालौं यहु मन गालौं, करवत सीस चढाऊं रे राम।
सीस उतारौं तुम्ह परि वारौं, दादू बलि बलि जाइ रे राम।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें बिरह के सहित बिनती कर रहे हैं कि हे हमारे सदैव साथ रहने वाले राम जी ! मैं आपके दर्शनों के लिये, गूदड़ी रूपी भेष धारण करूं, आपको अच्छा लगे तो, । और यदि आपको भस्म लगाना अच्छा लगे तो, इस तन पर भस्म लगाऊं और बैराग लेकर, आपको ढूंढे । पहाड़ पर बास करें । सम्पूर्ण भोग वासनाओं से उदास रहें । पहाड़ की चोटी पर चढ़कर, आपका स्मरण करें । इस तन को बिरहरूप अग्नि से जलावें । मन को आपके प्रेमरूपी पाले में गलावें । आपके दर्शना अर्थ मोरधज भक्त की भाँति, मस्तक पर आरा चलवावें । हम अपना शीश उतार कर, हात्तम भक्त की तरह, आपके चारणं करें या सेऊ समन की तरह, आपके चढावें । हे राम ! आप हमको दर्शन दीजिये, आपकी बार बार बलिहारी जाते हैं ।

119. बिनती

अरे मेरा अमर उपावणहार रे खालिक, आसिक तेरा ।।टेक।।
तुम्ह सौं राता, तुम्ह सौं माता, तुम्ह सौं लागा रंग रे
खालिक ।
तुम्ह सौं खेला, तुम्ह सौं मेला, तुम्ह सौं प्रेम स्नेह रे
खालिक ।
तुम्ह सौं लेणा, तुम्ह सौं देणा, तुम्ह सौं रत होइ रे
खालिक ।
खालिक मेरा, आशिक तेरा, दादू अनत न जाइ रे
खालिक ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें कहते हैं कि हे सृष्टि रचिता सर्व शक्तिवान परमेश्वर ! आप अमर हैं और हमको उत्पन्न करने वाले हैं । हम आपके ही प्रेमी भक्त हैं । आपके नाम से ही रात्ते रत्त और माते मतवाले रहते हैं । हमारे तो अब आपका ही रंग लगा है, भक्ति वैराग्य रूपी । आप से ही मिलकर खेलेंगे । हमने तो अपना प्रेम और स्नेह, आपसे ही लगाया है । आप ही को यह मनुष्य शरीर देकर, आपका दर्शन लेंगे । आप से ही हमारा मन रत्त रहेगा । हे खालिक ! आप हमारे स्वामी हो और हम बिरहीजन, आपके सेवक हैं । हे खालिक परमेश्वर ! हम अब आपको छोड़कर, दूसरे की शरण में नहीं जावेंगे ।

120. स्तुति

अरे मेरे समर्थ साहिब रे अल्लह, नूर तुम्हारा ।।टेक।।
सब दिसि देवै, सब दिसि लेवै, सब दिसि वार न पार रे अल्लह ।
सब दिसि कर्त्ता, सब दिसि हरता, सब दिसि तारणहार रे अल्लह ।
सब दिसि बकता, सब दिसि सुरता, सब दिसि देखणहार रे अल्लह ।
तूं है तैसा कहियें अैसा, दादू आनन्द होइ रे अल्लह ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें परमेश्वर से प्रार्थना कर रहे हैं कि हे हमारे समर्थ परमेश्वर साहिब ! आपका स्वरूप ही हमारा आधार है । आप ही सब दिशाओं में चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, जिसकी जो खुराक है, सब जीवों को पूर रहे हो और सब दिशाओ में आप अपने भक्तों की, भाव भक्ति रूप सेवा को ग्रहण कर रहे हो । हे परमेश्वर ! आपका स्वरूप सब दिशाओं में परिपूर्ण हो रहा है । कोई आपका वार पार नहीं पाते । सब दिशाओं में आप ही कर्त्ता रूप होकर, सब कुछ कर रहे हो और सब दिशाओं में आप ही असुर लोगों के, उनके कर्मानुसार, उनके प्राण हर रहे हो । और आप ही सब दिशाओं में, अपने भक्तों को तार रहे हो । सब दिशाओं में आप ही, बक्ता रूप से सत् शास्त्रों की शिक्षा दे रहे हो । और सब दिशाओं में आप अपने आत्मीय जनों की प्रार्थना सुन रहे हो । आप ही सर्व दिशाओं में दृष्टारूप बन करके, प्राणियों के शुभ अशुभ कर्मों को देख रहे हो । हे नाथ ! जैसे आप हो, वैसा ही आप हमको कहिये, तब हमारे अन्तःकरण में आनन्द होगा ।

121. बिरह विलाप

हाल असां जो लालड़े, तो के सब मालूम ड़े ।।टेक।।
मंझे खामा मंझि बराला, मंझे लागी भाहिड़ें ।
मंझे मेड़ी मुच थईला, कैं दरि करिया धाहड़े ।।

बिरह कसाई मुगरेला, मंझे बढे माइहड़े ।
सीख्यो करै कवाब जीला, इयें दादू जे ह्याहड़े ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, बिरहीजनों का बिलाप दिखा रहे है कि हे हमारे प्यारे परमेश्वर ! असां = हमारी, हाल = दशा स्थिति, लालड़े = हे ईश्वर ! "तो के सब मालूम ड़े" = आपको हमारा हाल सब मालूम है । हमारे, मंझे = भीतर, खामा = दबी हुई बिरह अग्नि, बरला = हमको जला रही है । भीतर, भाहीड़े = जलन, लग रही है । मंझे = भीतर, मेड़ी = मुझको आप, मुच थईला = त्यागकर, अलग हो रहे हो । हम, कै = किसके, दरि = दरवाजे, जाकर, करिया धाहड़े = पुकार करें । यह बिरह रूप कसाई, मुगरेला = मेरा गला, मंझे = भीतर, बढे = काटकर, माइहड़े = मेरे मांस को, सीख्यो करै = लोहे के तकवों पर । कवाब जीला = सेक रहा है कवाब की तरह । इयें = ऐसे, ह्याहड़े = हम दीनता से पुकार रहे हैं ।

122· बिनती

पीव जी सेती नेह नवेला, अति मीठा मोहि भावै रे ।
निसदिन देखौं बाट तुम्हारी, कब मेरे घरि आवै रे ॥टेक॥
आइ बनी है साहिब सेती, तिस बिन तिल क्यौं जावै रे ।
दासी कौं दरसन हरि दीजै, अब क्यौं आप छिपावै रे ॥
तिल तिल देखौं साहिब मेरा, त्यों त्यों आनन्द अंग न मावै रे ।
दादू ऊपर दया करी, कब नैनहूं नैन मिलावै रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर के दर्शनार्थ बिनती कर रहे हैं कि हे परमेश्वर ! आपसे हमारा प्रेम, नित्य नया बढ़ रहा है । आपके दर्शन हमको, अति प्रिय लगते हैं । रात दिन आपके दर्शनों की बाट देख रहे हैं । हमारे हृदयरूपी घर में, आप कब प्रकट होंगे ? आपसे ही हमारी सब बात बनेगी । आपके बिना अब तो, एक पल भी उमर का बीतना कठिन हो रहा है । हम बिरहीजन दासों को, अब हे हरि ! आकर दर्शन दीजिये । अब आप अपने स्वरूप को हमसे क्यों छिपा रखा है ? हे हमारे साहिब ! क्षण क्षण में आपका दर्शन करें, तब हमारे हृदय में आपके दर्शनों का आनन्दमय सुख समा नहीं सकता । अब हम बिरहीजनों पर दया करके, आप अपने नेत्र, हमारे नेत्रों से मिलाइये, अर्थात् आमने सामने करिये ।

123. (गुजराती भाषा)

पीव घरि आवै रे, बेदन मारी जाणी रे ।
बिरह संताप कौण पर कीजै, कहूं छूं दुख नी कहाणी रे ।।टेक।।
अंतरजामी नाथ मारो, तुज बिण हूं सीदाणी रे ।
मंदिर मारे केम न आवै, रजनी जाइ बिहाणी रे ।।
तारी बाट हूं जोइ जोइ थाकी, नेण निखूट्या पाणी रे ।
दादू तुज बिण दीन दुखी रे, तूं साथी रह्यो छे ताणी रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर से बिनती कर रहे हैं कि हे परमेश्वर ! आप हमारे बिरह के दर्द को जानकर, हमारे हृदय रूपी घर में दर्शन दीजिये । हम बिरहीजन, इस बिरह के संताप की पुकार किसके पास जाकर करें । हम अपनी दुख भरी कथा, आपको ही सुना रहे हैं । हे अन्तर की जानने वाले हमारे स्वामी ! आपके बिना हम मुरझा रहे हैं । हमारे हृदयरूपी मन्दिर में, आप क्यों नहीं प्रगट होते हो ? यह हमारी उम्ररूपी रात्रि, आपके बिना वृथा ही जा रही है । आपका रास्ता देख देख कर थक रहे हैं । और हमारे नेत्रों से पानी भी सूख गया है, रुदन करते करते । हे नाथ ! हम बिरहीजन आपके बिना, दुखी हो रहे हैं । आप हमारे साथ रहकर भी, हमसे 'ताण' कहिये 'अलग' क्यों हो रहे हो ?

124. बिरह बिनती

कब मिलसी पीव ग्रिह छाती, हूं औरां संग मिलाती ।।टेक।।
तींसज लागी तिसही केरी, जन्म जन्म नो साथी ।
मीत हमारा आव पियारा, ताहरा रंगनी राती ।।
मीत बिना मने नींद न आवे, गुण ताहरा ले गाती ।
दादू ऊपर दया मया करि, ताहरे वारणैं जाती ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें बिरहपूर्वक विनती कर रहे हैं कि हे हमारे प्रीतम परमेश्वर ! इस शरीर में हृदय रूपी घर में, कब हमसे छाती से छाती मिलाकर, मिलोगे ? हम बिरहीजन, जब तक आपका दर्शन नहीं पाते, तब तक अपनी छाती 'कहिये' सुरति, दुखों से मिला रहे हैं । हमें तो आपके दर्शनों की ही प्यास

लग रही है । क्योंकि आप हमारे जन्म जन्मान्तरों के साथी हो । हे हमारे मित्र ! आप हमारे हृदय में आओ । हम आपके वारणै जाते हैं । हम तो आपके रंग में रंगी हुई हैं । हे प्रीतम ! आपके बिना हम, सुख की नींद नहीं सोते । हृदय में आपके गुणों को याद करके, आपका स्मरण करते रहते हैं । अब हम बिरहीजनों पर आप दया मया करो । हम आपके ऊपर वारणै जाते हैं ।

125· बिरह

म्हारा रे वाहला ने काजे, हृदये जोवा ने हूं ध्यान धरूं ।
आकुल थाये प्राण माहरा, कोने कही पर करूं ।।टेक।।
संभायो आवे रे वाहला, वेहला एहों जोई ठरूं ।
साथी जी साथे थइ ने, पेली तीरे पार तरूं ।।
पीव पाखै दिन दुहेला जाये, घड़ि बरसां सौं केम भरूं ।
दादू रे जन हरि गुण गाता, पूरण स्वामी ते बरूं ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें बिरहीजनों का भाव दिखा रहे हैं कि हे हमारे प्यारे ! आपको हृदय में देखने के लिये, बिरह सहित आपका ध्यान करते हैं । हमारे प्राण आपके दर्शनों के बिना व्याकुल हो रहे हैं । कहो न आपके बिना किसके पास पुकार करैं ? आप तो स्मरण करते ही, बिरहीजन भक्तों के हृदय में आते हो । हमारे को भी इस समय आप दर्शन देओ । जिससे आपका दर्शन करके, हमारा हृदय शीतल होवे । हे साथी जी ! साथ रहने वाले, आपके साथ रहकर, हम संसार समुद्र से पार तिरेंगे । हे पीव ! आपके बिना मेरी उमर के दिन कठिनता से बीत रहे हैं । आपके बिना एक एक घड़ी हम वर्षों के समान बिता रहे हैं । पूरा दिन कैसे काटैं ? हे स्वामी ! हम आपके बिरहीजन, आपका स्मरण करते हैं और आपको ही हम अपना पति कहिये स्वामी धारण किया है ।

126· बिरह बिलाप

मरिये मीत बिछोहै, जियरा जाइ अंदोहै ।।टेक।।
ज्यौं जल बिछुरे मीना, तलफि तलफि जिय दीन्हा,
यौं हरि हम सौं कीन्हा ।

चात्रिग मरै पियासा, निसदिन रहै उदासा,
जीवै किहि बेसासा ।
जल बिन कवंल कुमिलावै, प्यासा नीर न पावै ।
क्यौं करि त्रिखा बुझावै ॥
मिलि जिन बिछुरो कोई, बिछुरें बहु दुख होई,
क्यों करि जीवै जन सोई ।
मरणा मीत सुहेला, बिछुरन खरा दुहेला,
दादू पीव सौं मेला ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, विरह बिलाप का स्वरूप कहते हैं कि हे हमारे मित्र परमेश्वर ! आपके दर्शनों के बियोग से, अब तो हम बिरहीजन मर रहे हैं । और हमारे जीव में यह आपकी अप्राप्तिरूप पश्चाताप ही साथ जायेगा । जैसे मछली जल के वियोग में अपने प्राण तड़फकर त्याग देती है, वैसे ही हें हरि ! हम बिरहीजन भी आपके दर्शनों के बिना तलफ तलफ कर जीव दे रहे हैं । जिस प्रकार पपैया स्वांति नक्षत्र की बूंद के बियोग में, रात दिन उदास रहकर पुकारता है, जल के बिना । जैसे प्यासा कमल, जल के बिना सूख जाता हैं, अपनी प्यास नीर के बिना किससे बुझावै ? इसी प्रकार परमेश्वर से मिलकर कोई भी बिरहीजन भक्त नहीं बिछुरते, क्योंकि परमेश्वर से बिछुड़ने से, बिरहीजनों को बहुत दुख होता है । आपके बिरहीजन भक्त, आपके वियोग में कैसे जीवें ? हे मित्र ! मरणा तो हमारे लिये 'सुहेला' कहिए सुख रूप है, परन्तु आपसे वियोग होना भारी दुख है । इसलिये हम बिरहीजनों से आप मिलाप करिये ।

127·

पीव हौं कहा करौं रे, पाइ परौं के प्राण हरौं रे,
अब हौं मरणे नांहि डरौं रे ॥टेक॥
गालि मरौं कै, जालि मरौं रे, कै हौं करवत सीस धरौं रे ।
खाइ मरौं कै घाइ मरौं रे, कै हौं कतहू जाइ मरौं रे ।

तलफि मरौं कै झूरी मरौं रे, कै हौं बिरही रोइ मरौं रे ।
टेरी कह्या मै मरण गह्या रे, दादू दुखिया दीन भया रे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें बिरह बिलाप दिखा रहे हैं कि हे प्रीतम प्यारे परमेश्वर ! हम आपके वियोग में अब क्या करें ! हम आपके चरणों में पड़ते हैं या इस शरीर से हम प्राणों का त्याग कर दें । अब तो हम मरणे से कुछ भी भय नहीं करते हैं । क्या इस इस शरीर को बर्फ में गलाकर करें या अग्नि में जला कर मरैं या अपने मस्तक पर करवत धारण करें । अथवा कुछ खाकर मर जावें, या इस शरीर पर शस्त्रों का आघात करके मरें । या कहीं पहाड़ पर्वत में जाकर मर जावें । आपके लिये तलफ तलफ, झूर झूरकर, हम मर रहे हैं । हम बिरहीजन क्या आपके लिये अब रो रो कर मरेंगे । हम आपको पुकार कर कहते हैं कि आपके दर्शनों के लिये हमने मरणा मांड लिया है । क्योंकि हम बिरहीजन अति दुखी आपके आधीन हो रहे हैं ।

128: गुजराती भाषा

बाहला हूं जाणूं जे रंग भरि रमिये,
मारो नाथ निमिख नहिं मैलूं रे,
अंतरजामी नाह न आवे,
ते दिन आव्यो छैलो रे ।।टेक।।
बाहला सेज हमारी एकलड़ी रे,
तहं तुजने केम न पामूं रे ।
आदत्त अमारो पूरबलो रे,
ते तो आव्यो सामो रे ।
बाहला मारा हृदया भीतर केम न आवै,
मने चरण बिलम्ब न दीजे रे ।
दादू तो अपराधी तारो,
नाथ उधारि लीजे रे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, बिरहीजनों का बिलाप दिखा रहे हैं कि है हमारे प्यारे परमेश्वर ! हम बिरहीजन अपने अन्तःकरण में आपका प्रेम रूपी रंग भरकर, आपसे खेलें, क्योंकि आप हमारे स्वामी हो। आपको हम अपने हृदया से एक क्षण भी अलग नहीं करना चाहते। हे अन्तर्यामी हमारे पति ! आप अभी तक आये नहीं और अन्त समय का दिन हमारा आ पहुंचा है। हे प्यारे ! हमारी हृदया रूपी सेज आपके बिना खाली है। इस पर हम आपको क्यों नहीं प्राप्त कर रहे हैं, हमारे कोई पूर्व के कर्म प्रतिबन्धक हो रहे हैं, आपके दर्शनों के बीच। हे प्यारे ! आप दया करके हमारे हृदय में अपने दर्शन क्यों नहीं देते हो ? यह उमर रूपी रात्रि बीतती जा रही है। अब तो हमको, आपके चरणों का दर्शन करने दो। हम तो बिरहीजन, आपके अपराधी सेवक हैं। हे स्वामी ! अब आप ही हमारा उद्धार करो।

129.

तूं छे मारो राम गुसांई, पालवे तारे बांधी रे।
तुज बिना हूं आंतरे रवल्यौं, कीधी कमाई लीधी रे ।।टेक।।
जीवुं जेटला हरि बिना रे, देहड़ी दुखे दाधी रे।
अणे अवतारे कांई न जाणयूं, माथे टक्कर खाधी रे।
छूट को मारो क्यारे थशे, शक्यो न राम अराधी रे।
दादू ऊपर दया मया कर, हूं तारो अपराधी रे।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें बिरहीजनों का भाव दिखा रहे हैं कि हे परमेश्वर राम ! आप ही हमारे पति हो। अब तो हम आपके पल्ले बंध गये हैं। अब तक हम आपके बिना, अन्यत्र भटक रहे थे। यह मेरे पूर्व कर्मों का ही फल, मुझे मिल रहा है। अब हम हे हरि ! आपके दर्शनों बिना, जब तक जीते रहेंगे, तब तक हमारा शरीर, बिरहरूप अग्नि से जलकर, संतप्त रहेगा। इस मनुष्य जन्म में, हम आपके दर्शन क्यों नहीं पाते हैं ? आपके बियोग में हमने बहुत सी साधक रूपी टक्करें खाई हैं। अब हमारा छुटकारा किस प्रकार होगा ? क्योंकि हम जानते हैं कि आपकी जैसी आराधना करनी चाहिये, वैसी हमने नहीं करी है। हे नाथ ! हमतो आपके अपराधी सेवक हैं। आप ही हम पर दया मया करो।

130. बिनती

तूंही तूं तनि माहरे गुसांई, तूं बिना तूं केने कहूं रे।

तूं त्यां तूं ही थई रह्यो रे, शरण तुम्हारी जाय
रहूं रे ।।टेक।।
तन मन मांहि जोइये त्यां तूं, तुज दीठा हूं सुख
लहूं रे ।
तूं त्या जेटली दूर रहूं रे, तेम तेम त्यां हूं दुःख
सहूं रे ।
तुम बिन म्हारो कोई नहीं रे, हूं तो ताहरा बण
बहूं रे ।
दादू रे जण हरि गुण गाता, मैं मेलू माहरो
मैं हूं रे ।।

टीका:–ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें विनय कर रहे हैं, कि हे हमारे स्वामी परमेश्वर ! आपका ही स्मरणरूप, हमारे अन्तःकरण में ध्वनि हो रही है । हे प्रभु ! आपके प्रगट हुए बिना मैं 'तू' किसको कहूं, क्योंकि 'तूं' तो अपने अत्यन्त स्नेही को ही कहा जाता है । आप ही जड़ चेतन सृष्टि में वृत्ति द्वारा भासित हो रहे हो । अब मैं आपकी ही शरण रूप स्थिति में जा रहा हूं । अपने तन में, मन में, आपको ही व्याप्त देखते हैं । आपका दर्शन करके ही, हम सुखी रहते हैं । आप वहां हो, इतना कहने में ही जो फरक पड़ता है, त्यों त्यों ही हमको दुख होता है । हे नाथ ! आपके बिना हमारा स्नेही कोई भी नहीं है । मैं तो आपका बनाया हुआ ही, इधर उधर साधनों में बह रहा हूं । बिरहीजन कहते हैं कि हमतो हरि के गुणानवाद गाते हुए ही, अपने अनात्म अहंकार को त्यागकर, हम आपको अपना लक्ष्य स्वरूप जानकर, आपमें ही रहेंगे ।

131. केवल विनती

हमारे तुम्ही हो रखपाल, तुम बिन और नहीं को मेरे,
भव दुख मेटणहार ।।टेक।।
बैरी पंच निमिख नहिं न्यारे, रोकि रहे जमि काल ।
हां जगदीस दास दुख पावै, स्वामी करहु संभाल ।।

तुम्ह बिन राम दहैं ये द्वन्दर, दसौं दिसा सब साल ।
देखत दीन दुखी क्यौं किजे, तुम्ह हो दीन दयाल ।।
निरभै नाऊं हेत हरि दीजे, दरशन परसन लाल ।
दादू दीन लीन करि लीजै, मेंटहु सब जंजाल ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें केवल बिनती कर रहे हैं कि हमारे तो हे परमेश्वर ! आप ही रक्षा और पालन करने वाले हो । और दूसरा आपके बिना हमारे, संसार में जन्म मरण रूप दुख मेटने वाला कोई है नहीं । हे नाथ ! यह काम आदि या शब्द, स्पर्श रूप बैरी, एक क्षण भी अन्तःकरण से अलग नहीं हो रहे हैं । यही हमारे जम रूप काल बनकर, आपके मार्ग में रूकावट डाल रहे हैं । हे स्वामी ! हे जगदीश ! हम आपके दास, इनसे दुःखी हो रहे हैं । आप ही हमारी रक्षा करो । आपके बिना हे राम ! यह राग द्वैष आदि द्वन्द, हमको दुखी कर रहे हैं । दशों दिशाओं में, इनका 'साल' कहिये दुख हमको व्याप रहा है । हे नाथ ! आप देखते हुए भी, हम दीनों को इनसे दुखी क्यों करते हो ? आपके नाम स्मरण में हमको प्रीति देकर, इनसे निर्भय कीजिये । हे लाल ! हे प्यारे परमेश्वर ! इस प्रकार हमको आप, अपना दर्शन देकर, अपने में अभेद करिये । हे नाथ ! हमतो आपके दीन गरीब जन हैं । आप हमारे सम्पूर्ण मायिक जाल को निवारण करके, अब अपने स्वरूप में लीन कर लीजिये ।

132. बिनती

ये मन माधौ बरजि बरजि, अति गति बिखिया सौं रती,
उठत जु गरजि गरजि ।।टेक।।
बिखै बिलास अधिक अति आतुर, बिलसत संक न मानैं ।
खाइ हलाहल मगन माया मै, बिख अमृत करि जानैं ।।
पंचन के संगी बहत चहूं दिसि, उलटी न कबहूं आवै ।
जहं जहं काल ये जाइ तहं तहं, मृग जल ज्यौं मन धावै ।।
साध कहैं गुरू ग्यान न मानै, भाव भजन तुम्हारा ।
दादू के तुम्ह सजन सहाई, कछु न बसाइ हमारा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू, मन निग्रह अर्थ बिनती कर रहे हैं कि हे माधव ! इस हमारे मन को, आप अपनी दया दृष्टि से रोकिये । हमतो इसको बरज बरज कर, थक रहे हैं। परन्तु इसकी गति तो विषया स्त्री आदि से रत्त होकर, पुनः पुनः उन्हीं पदार्थों के लिये, वासना रूप गर्जना कर करके चलता है । यह अति आतुरता से, बिषयों को भोगता है । उनके भोगने में शास्त्र की, गुरुओं की, उत्तम पुरुषों की, शंका नहीं मानता है । अर्थात् लज्जा नहीं करता है । और हलाहल विषयों को ही भोगता है। सदैव यह माया और माया के कार्यों में ही मग्न रहता हैं । और विषयों को ही अमृत सुख जानता है । पांच ज्ञान इन्द्रियों के साथ, अन्तःकरण की चारों वृत्तियों के द्वारा, जागृत स्वप्न में बहता रहता है । अपने आपको उधर से उलट कर, अन्तःकरण में आपके नाम में कभी भी नहीं लगता है । जहां जहां काल है, वहां वहां ही वह जाता है । जैसे मृग मरिचिका के जल के लिये दौड़ता रहता है । वैसे ही यह मन मायावी विषय वासनाओं के लिये दौड़ता रहता है । हे परमेश्वर ! सच्चे संत और तत्ववेता गुरूदेव ज्ञान देते हैं, परन्तु उनके ज्ञान को यह नहीं कबूल करता है । आपका भाव भजन तो इसको भाता ही नहीं । हे परमेश्वर ! आप ही हमारे सज्जन और सहायक हो । इस मन पर तो हमारा कुछ भी वश नहीं चलता है ।

133. मन उपदेश

हां हमारे जियरा राम गुण गाइ, यही बचन बिचारि मान ।।टेक।।
केती कहूं मन कारणैं, तूं छाड़ि रे अभिमान ।
कहि समझाऊं बेर बेर, तुझ अजहूं न आवै ग्यान ।।
अैसा संग कहां पाइये, गुण गावत आवै तान ।
चरणौं सौं चित्त राखिये, निस दिन हरि कौ ध्यान ।।
वे भी लेखा देंहिगे, आप कहावैं खान ।
जन दादू रे गुण गाइये, पूरण है निरवाण ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें मन के प्रति उपदेश करते हैं कि हे हमारे मन रूप जीव ! अब तो तूं राम नाम का स्मरण कर । इस हमारे बचन को बिचार करके, तूं धारण कर । हे मन ! तेरे कल्याण के लिये हम कितना कहैं । अब तो तूं इस अनात्म अहंकार का त्याग कर । तेरे को पुनः पुनः कह कह कर समझाते हैं, परमेश्वर प्राप्ति का मार्ग । परन्तु अभी तक तुझे यह ज्ञान प्रिय नहीं लगता है। विचार कर । ऐसे मनुष्य देह का संग फिर तुझे कहां मिलेगा ? परमेश्वर का इसमें गुणगान करने से, प्रेमरूप आनन्द

उत्पन्न होता है। हे मन ! अब तो तूं अपने आपका, हरि चरणों में ध्यान रख, रात दिन । क्योंकि वह भी परमेश्वर को लेखा, हिसाब देंगे। जो अपने आपको सबमें खान सुलतान कहलाते हैं। इसलिये हे मन ! काल कर्म के बाण से रहित होना है तो उस परिपूर्ण व्यापक परमेश्वर, के गुणानवादगा।

134. काल चेतावनी

बटाऊ ! चलना आज की काल, समझि न देखै कहा सुख सोवै,
रे मन राम संभालि ।।टेक।।
जैसे तरवर बिरख बसेरा, पंखी बैठे आइ।
ऐसैं यहु सब हाट पसारा, आप आपकौं जाइ ।।
कोइ नहिं तेरा सजन संगाती, जिन खोवै मन मूल ।
यहु संसार देखि जनि भूलै, सब ही सैंवल फूल ।।
तन नहिं तेरा धन नहिं तेरा, कहा रह्यो इहि लागि ।
दादू हरि बिन क्यौं सुख सोवै, काहे न देखै जागि ।।

टीका :-ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें काल से चेत करा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! यह प्राणधारी तो बटाऊ के समान हैं, परन्तु अभी तक भी, गुरु शास्त्र के उपदेश को सुनकर, परमेश्वर का विचार नहीं करते। हे प्राणी! क्या अज्ञान रूप निद्रा में सो रहे हो ? अब तो अपने मन के द्वारा, राम नाम का स्मरण करो । जैसे सायंकाल को वृक्षों के ऊपर पक्षी आकर बैठते हैं और प्रातःकाल होते ही उड़ जाते हैं। उनमें कोई किसी का साथी नहीं होता और जैसे बणिया सवेरे हाट मांडकर बैठता है और शाम को सब पसारा समेट लेता है। ऐसे ही यह सब माया का पसारा है। इसको देखकर क्या राजी होता है ? यह तो अपने अपने कर्मों द्वारा, सब जाने वाले हैं। इनमें कोई भी तेरा स्नेह करने वाला तथा रक्षा करने वाला, अन्तःकाल में नहीं है। हे मूर्ख मन ! इनमें लगकर तूं अपने इस मूल मनुष्य देह को, क्यों वृथा गमा रहा है। यह संसार तो सैंवल वृक्ष की भांति है‘ इसको देखकर तूं क्या राजी होता है ? न तो यह शरीर है तेरा, और न यह धन ही है तेरा, इनमें क्या आसक्त हो रहा है ? हे मूर्ख ! हरि के स्मरण बिना, मोह रूप निद्रा में, क्या सुख से सो रहा है ? अब अन्त समय नजदीक आ गया। मोह निद्रा से मुक्त होकर, परमेश्वर को क्यों नहीं देखता है ?

दोहा :- बाप वृद्ध को पुत्र जो, धरे ठीकरे खान ।
पोते ले ले धर दिये, तो कौं द्यूंगो आन ॥१३४॥

दृष्टान्त :- एक पुरुष की स्त्री बड़ी कमबखत थी । अपने ससुर को बड़ा दुख देती । खाने पीने को भी समय पर ठीक ठीक नहीं देती और कुम्हार के यहां से बहुत से ठिकरे लाकर रख लिये । अपने पति को बोली :- इसको खेत में, झौपड़ी डालकर, उसमें गिरा दे । यहां घर में गन्दगी फैलाता है । वैसे ही किया । परन्तु उसका बेटा, बुढे का पोता सत्संगी था । उसने अपनी मां को विचार द्वारा ठीक बनाई । वह ठिकरे में भोजन डालकर बेटे के हाथ खेत में भेजती । वह उसको भोजन कराता, जल भर देता, बिस्तर झाड़ देता और लेटा कर, ठिकरे को धोके घर में टांड पर लाकर धर देता । एक रोज मां ने देखा, बहुत ठिकरे रखे हैं । उसको बोली :-यह क्यों लाकर रखता है ? लड़का बोला :-पिता जी और तूं आगे बूढ़े होंगे, तब मेरे कौन ठिकरे लावेगा ? इन्हीं ठिकरों में तुम दोनों को भोजन दे दिया करूंगा । मां बाप दोनों बिगड़े । लड़का बोला :- अगर मेरे से सुख चाहते हो, तो पितामह को घर में लाओ और उसकी सब प्रकार सेवा करो । माता पिता दोनों, पुत्र ने कहा, वैसे ही सेवा करके, पूर्व पाप से मुक्त हो गये ।

---

135. तर्क चेतावनी

जात कत मद को मातो रे, तन धन जोबन देखि गुर्बानु,
माया रातो रे ॥टेक॥
अपनुहि रूप नैन भरि देखै, कामनी को संग भावै रे ॥
मैं बड़ आगै और न आवै, करत केत अभिमाना रे ।
मेरी मेरी करि करि भूल्यौ, माया मोह भुलानां रे ॥
मैं मैं करत जन्म सब खोयो, काल सिराणै आयो रे ।
दादू देख मूढ नर प्राणी, हरि बिन जन्म गमायो रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें तर्क पूर्वक सावधान करते हैं कि हे भाई ! तूं मायारूप मद में मतवाला हुआ किधर जा रहा है, परमेश्वर के मार्ग को छोड़कर ? शरीर की जवानी और फन को पाकर, स्त्री आदि माया में क्या रत्त हो रहा है ? अपने रूप को या शरीर की छाया को क्या निरख रहा है ? हे मूढ़ ! तुझे

तो कामनी आदि का संग प्रिय लगता है, सतसंग प्रिय नहीं लगता। बारम्बार विषयों में रत्त हुआ, मरने के दिन को तूं चित्त से भूल रहा हैं। और तूं जानता है कि मेरे बराबर बड़ा और कौन है? हे मूर्ख! तूं यह कितना अभिमान कर रहा है? मैं हूं, यह मेरी है, ऐसे कर करके परमेश्वर को भूल रहा है। माया और माया का कार्य, मोह की फांसियों में बंध रहा है। और "मैं हूं; मैं हूं" ऐसे करके इस मनुष्य जन्म को तैंने वृथा ही गमा दिया है। और तेरे सिरहाणे अब काल आ पहुंचा है। तत्ववेताओं के देखते देखते ही, हे मूढ! तूं विषयों में अन्धा हुआ, हरि से विमुख रहकर, मनुष्य जन्म को वृथा ही गमा दिया है।

136. हित उपदेश

जागत कौं कदे न मूसै कोई, जागत जान जतन करि राखै,
चोर न लागू होई ॥टेक॥

सोवत साह वस्तु नहि पावे, चोर मूसै घर घेरा।
आस पास पहरे को नाही, वसतु कौन नवेरा॥
पीछै कहु क्या जागे होई, बसत हाथ थैं जाई।
बीति रैन बहुरि नहि आवै, तब क्या करि है भाई॥
पहले ही पहरे जें जागै, वस्त कछु नहि छीजै।
दादू जुगति जानि कर ऐसो, करना है सो कीजै॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें हित उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ! जो विवेक विचार द्वारा जागते हैं, उनके कोई भी काम आदि चोर, चोरी नहीं कर पाते। वह जागते हुए देवी सम्पत्ति के गुणों को यत्न पूर्वक हृदय में रखते हैं। उनके काम आदि चोर चोरी नहीं कर सकते। और यदि जीव रूपी साहूकार, मोह रूपी निद्रा में सोया रहै, तो सार वस्तु को चोर चुरा ले जाते हैं, शरीर के घेरा लगाकर। गुरु उपदेश आदि पहरा, उन अज्ञानियों के अन्तःकरण में है नहीं। चोरों ने वस्तु को खत्म कर दी है। अन्तकाल में जागे तो केवल पश्चाताप ही करता है। यह उमर रूपी रात्रि विषयों में बीत गई। वह फिर वापिस सार्थक नहीं हो सकती। जो बाल्यवस्था में ही जागते हैं, ध्रुव आदि की भांति, उनकी मानसिक और शारीरिक वस्तु, ज्यों की त्यों रहती है। सतशास्त्रों से और सतगुरुओं से परमेश्वर की प्राप्ति की युक्ति जानकर, साधना करिये।

137. उपदेश

सजनी रजनी घटती जाइ, पल पल छीजै अवधि दिन आवै,
अपनो लाल मनाइ ।।टेंक।।
अति गति नींन्द कहा सुख सोवै, यहु अवसर चलि जाइ ।
यहु तन बिछुरैं बहुरि कहं पावै, पीछै ही पछताइ ।।
प्राण पति जागै सुन्दरि क्यों सोवै, उठि आतुर गहि पाइ ।
कोमल बचन करूणा करि आगै, नख शिख रहु लपटाइ ।।
सखी सुहाग सेज सुख पावै, प्रीतम प्रेम बढाइ ।
दादू भाग बड़े पिव पावै, सकल सिरोमणि राइ ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें बुद्धि वृत्ति रूप सखी को उपदेश कर रहे हैं कि हे हमारी बुद्धि वृत्ति रूप सहेली ! उमर रूपी रात्रि पल पल में घटती जा रही है । और अन्त समय का दिन नजदीक आ रहा है । अपने प्रीतम प्यारे परमेश्वर को राजी कर ले । मोह रूप निद्रा में अति से बेहोश होकर, क्या सुख से सोती है ? यह भजन करने का जवानी रूप अवसर तो बीता जा रहा है । यह मनुष्य देह हाथ से छूट जायेगा तो फिर ऐसा शरीर चौरासी में कहां मिलेगा ? चौरासी में जाकर, फिर पीछे पश्चाताप करना पड़ेगा । प्राणों को सत्ता स्फुरती देने वाला परमेश्वर रूप पति तो जागता है, और तूं बुद्धि रूप सुन्दरी क्यों सो रही है ? अब मोह रूप निद्रा से उठ और अति आतुर होकर, परमेश्वर के चरणों की शरण ग्रहण कर और नख से शिखा पर्यन्त, सारे शरीर को शुभ कर्मों द्वारा, परमेश्वर के लिपट कर रहै । ऐसी बुद्धि रूपी सखी, हृदय रूपी सेज पर परमेश्वर के दर्शन रूप सुहाग को प्राप्त होती है । उन्हीं से प्रीतम प्यारे परमेश्वर बढ़ाकर प्रेम करते हैं । ऐसी साधक संत आत्मा सुन्दरी के भारी भाग्य उदय हुआ है । जो सर्व के शिरोमणि राजन् पतराजा, मुखप्रीति का विषय, पीव को प्राप्त कर लिया है ।

138. प्रश्न उत्तर

कोई जानै रे मरम माधया केरो, कैसे रहै करै क्या सजनी
प्राण मेरो ।।टेंक।।

कौन विनोद करत री सजनी, कवननि संग बसेरौ ।
संत साधु गमि आये उनके, करत जो प्रेम घणेरो ।।
कहां निवास बास कहं सजनी, गवन तेरो ।
घट घट मांहि रहै निरन्तर, ये दादू नेरो ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें प्रश्न करके, अन्तिम चरण से उत्तर दे रहे हैं । हे संतरूप सजनी ! आप कोई उस माधव के स्वरूप का मरम कहिए भेद जानते हो क्या ? हम उसके वियोग में कैसे रहैं ? हमारा प्राण अब क्या करै ? वह हृदय के भीतर क्या विनोद रूप खेल करते है ? और किस किस के साथ उनका बास है ? क्या उनके प्रेमी मुक्तसंत और साधक, उनसे घणा प्रेम करने वाले उनके ध्यान विचार में आए हैं । हे संत रूप सहेलियो ! आपका निवास कहां है ! और आपकी वृत्ति किसमें लगी है ! और आपका गमन कहां और किसमें हो रहा है ? उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर, हे संतरूप सहेली ! वह माधव, माया को अपनी आज्ञा में चलाने वाले, सभी के अन्तःकरण रूपी घट घट में निरन्तर कहिये अन्तराय रहित, साक्षीरूप से, सब जीवात्माओं के समीप ही रहते हैं ।

139 विरह विनती

मन बैरागी राम को, संग रहै, सुख होई हो ।।टेक।।
हरि कारनि मन जोगिया, क्यों हि मिलै मुझ सोइ ।
निरखण का मोहि चाव है, क्यों हि आप दिखावै मोहि हो ।।
हिरदै में हरि आव तूं, मुख देखौं मन धोइ ।
तन मन में तूं ही बसै, दया न आवै तोहि हो ।।
निरखण का मोहि चाव है, ए दुख मेरा खोइ ।
दादू तुम्हारा दास है, नैन देखन को रोइ हो ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें विरहपूर्वक प्रार्थना कर रहे हैं कि हे संतों ! हमारा मन राम के दर्शनार्थ विषयों से वैरागी हो रहा है । जब हम विरहीजन राम के संग रहेंगे, तभी हमको सुख प्राप्त होगा । हरि के कारणं हमारा मन भोगों का त्याग करके, योगी बन रहा है और यह इच्छा करता है कि किस प्रकार अब

हमें हरि के दर्शन होंगे ? प्रभु दर्शन करने को हमारे अन्दर, बहुत बड़ा उत्साह हो रहा है। हे प्रभु ! अब आप किस प्रकार अपने दर्शन, हम बिरहीजनों को दिखाओगे ? हे हरि ! आप हमारे हृदय में पधारिये। हम अपने मन को शुद्ध करके, आपका दर्शन करें। आप हमारे तन मन में व्याप्त हो रहे हो। क्या हम बिरहीजनों पर आपको दया नहीं आ रही है ? आपके दर्शन करने का हमें चाव, उत्साह हो रहा है। यह आपकी अप्राप्ति रूपी दुःख, हमारा दूर करिये। हम तो आपके बिरहीजन दास हैं। आपके दर्शनों के लिये रो रहे हैं।

140. अधीर उराहन

धरणी धर वाह धूतो रे, अंग परस नहिं आपै रे।
कह्यो हमारो कांई न मानें, मन भावे ते थापे रे ॥टेक॥
वाही वाही ने सर्वस लीधो, अबला कोइ न जाणे रे।
अलगो रहे येणी परि तेड़े, आपनड़े घर आणे रे ॥
रमी रमी ने राम रजावी, केन्हों अंत न दीधो रे।
गोप्य गुह्य ते कोइ न जाणै, एहो अचरज कीधो रे ॥
माता बालक रुदन करंतां, वाही वाही ने राखै रे।
जेवो छे तेवो आपणपो, दादू ते नहिं दाखे रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें धैर्य रहित उपालभं दिखा रहे हैं कि हे धरणी धर परमेश्वर ! आपने मायावी गुणों द्वारा, हमारे मन को अपनी तरफ से बहा दिया है। हे नाथ ! आपके स्वरूप का हमें स्पर्श नहीं हो रहा है। हमारा कहना आप क्यों नहीं मानते हो ? जो आपके मन में भाता है, उसी भक्त को आप अपने स्वरूप में रखते हो। हे प्रभु ! आप हमको मायावी गुणों में बहका बहका कर, हमारा अन्त ले लिया है। और हम बिरहीजन, आपके निर्बल भक्त हैं। आप हमें कुछ भी नहीं समझते हो। आप हमसे अलग रहकर, अपने स्वरूप की ओर आने की इस प्रकार प्रेरणा करते हो कि दया करके अपने स्वरूप की ओर ले ही आते हो। हे राम जी ! आप बिरहीजन भक्तों के साथ, खेल खेलकर, आपने उनको रिझाये हैं। अथवा बिरहीजन भक्त आपके साथ विचार रूपी खेल खेलकर, आपको रिझा लिये हैं। परन्तु आपने किसी को अपने स्वरूप का अन्त नहीं दिया है। हे अति गुप्त से गुप्त, गहन से भी गहन ! आपके पूर्णतया मर्म को कोई भी नहीं जानते। ऐसा आपने कुछ अचरज रचा है ! परन्तु जो बालक रोता है, उसी को माता दूध पिलाती है, और जाकर उसी की रक्षा करती है। जैसा है वैसा अच्छा बुरा, उसको अपना जानकर, अपनी समर्थाई से

वह उसकी रक्षा करे है । इसी प्रकार हम बिरहीजन भक्त आपके हैं । आप हमारी अच्छाई बुराई पर ध्यान न देकर, अपना जानकर, हमारी रक्षा करो ।

141. समर्थाई

सिरजनहार थैं सब होइ, उत्पत्ति परलै करै आपै,
दूसर नांहीं कोइ ।।टेक।।
आप होइ कुलाल करता, बूंद थैं सब लोइ ।
आप करि अगोचर बैठा, दुनी मन को मोहि ।।
आप थैं उपाइ बाजीं, निरखी देखै सोइ ।
बाजीगर कौं यहु भेद आवै, सहजि सौंज समोइ ।।
जे कुछ कीया सु करै आपै, येह उपजै मोहि ।
दादू रे हरि नांउं सेती, मैल कुसमल धोइ ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, ईश्वर समर्थाई दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह परमात्मा सर्व की उत्पत्ति करने वाले हैं, उनकी समर्थाई बड़ी भारी है । वह सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले हैं । वह अपनी समर्थाई से ही परलै आदि सब कुछ करते हैं । आप स्वयं कुलाल की भांति कर्त्ता हो रहे हैं । पानी की बूंद से कहिए वीर्य आदि से सम्पूर्ण शरीरों की रचना करके, उनमें छुप कर आप ही बैठे हैं । और मन इन्द्रियों के अविषय हो रहे हैं । और दुनियां के मन को अपनी मायावी लीला से, मोहित कर रखा है । आप स्वयं अपने आपसे, जगत रूपी खेल को रचकर, आप ही दृष्टा रूप बनकर, देख रहे हैं । उसी ईश्वर रूप बाजीगर को, यह जगत रूप बाजी रचने का भेद मालूम है । सहज स्वभाव से ही स्त्री आदि शरीर रूप सौंज बनाकर, प्राणीमात्र को मोहित कर दिये हैं । यह जो कुछ भी किया है, सो आप परमेश्वर ने ही किया है । यही हमारे अन्दर उसका ज्ञान उत्पन्न हो रहा है । इस प्रकार तत्ववेता कहते हैं कि हे मुमुक्षुओ ! निष्काम हरिनाम स्मरण द्वारा, अपने अन्तःकरण के मैल पाप आदि को धोइये ।

142: परिचय

देहुरे मंझे देव पायो, बस्त अगोचर लखायो ।।टेक।।
अति अनूप ज्योति पति, सोई अन्तर आयो ।
पिंड ब्रह्मण्ड सम, तुलि दिखायो ।।

सदा प्रकास निवास निरंतर, सब घट मांहि समायो ।
नैन निरख नेरो, हिरदै हेत लगायो ।।
पूरब भाग सुहाग सेज सुख, सो हरि लेन पठायो ।
देव को दादू पार न पावै, अहो पै उनहीं चितायो ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें साक्षात्कार का परिचय बता रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! इस शरीर में अन्तःकरण रूपी मन्दिर में चेतन्य रूपी देव, ज्ञान रूप नेत्रों से या सुरति स्मृति रूप नेत्रों से, हमने दर्शन किया। वह मन इन्द्रियों का अविषय चेतन्य स्वरूप, आप अपनी कृपा द्वारा, हमको अपना स्वरूप साक्षात्कार करा रहे हैं। जो अति अनूप हैं। सब जीवरूप ज्योतियों के वह स्वामी हैं, वही हमारे 'अन्तर' कहिए जीव मात्र के भीतर प्राप्त करने योग्य हैं। शरीर और ब्रह्माण्ड के अन्दर अपना व्याप्त स्वरूप दिखा रहे हैं। वही सदा ज्ञान स्वरूप, सबके अन्दर अन्तराय रहित होकर, सब घटों में प्रकाश रहे हैं। ज्ञान रूपी नेत्रों से निरख करके, हमने अपने हृदय की प्रीति, उनसे ही लगाई है। पूर्व का अक्षय भाग्य उदय हुआ, जिससे कि हरि हृदया रूपी सेज पर, जीव ब्रह्म की एकता रूप सुहाग को लेने के लिये, हमको इस मनुष्य शरीर में भेजे हैं। उस चेतन्य स्वरूप देव का हमने पार नहीं पाया है। जिन पर उन्होंने दया की है, उनको ही अपना स्वरूप, 'चिताया' कहिए बताया है।

।। इति राग केदार टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

।। अथ राग मारू ७ ।।

143. उपदेश

मना जप राम नाम लीजै, साध संगति सुमिर सुमिर,
रसना रस पीजै ।।टेक।।

साधुजन सुमिरन करि, केते जपि जागे ।
अगम निगम अमर किये, काल कोइ न लागे ।।
नीच ऊंच चिन्तन करि, सरणागत लीये ।
भक्ति मुक्ति अपनी गति, ऐसैं जन कीये ।।
केते तिर तीर लागै, बन्धन भव छूटे ।
कलिमल बिख जुग जुग के, राम नाम खूटे ।।
भरम करम सब निवारि, जीवनी जपी सोई ।
दादू दुख दूर करना, दूजा नहिं कोई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, मन को नाम स्मरण का उपदेश कर रहे हैं कि हे हमारे मन ! इस मनुष्य शरीर में, अब राम नाम का स्मरण कर। और सच्चे संतों की संगति में, राम नाम के महत्व को जान कर, रसना से निष्काम भाव से, राम नाम के स्मरण रूपी रस का पान करिये। कितने ही संतजन, राम नाम

का जाप कर करके, मोह निद्रा से जागे हैं। 'अगम' - शास्त्र और 'निगम' - बेद भी, जिस राम नाम के महात्म का वर्णन करते हैं कि यह राम नाम का स्मरण जीव को अमर करता हैं। और किसी भी प्रकार का कोई भी काल, उस जीव का स्पर्श नहीं करता। इस राम का स्मरण, नीच कुल में करो, चाहे ऊंच कुल में। राम जी उन भक्तों को अपनी शरण में लेकर, मोक्ष गति दी है। उनको अपनी अनन्य भक्ति देकर, जीवन मुक्ति द्वारा, अपने समान रामरूप बना लिये हैं। इस कलिकाल में कितने ही संत, राम नाम को जपकर, संसार समुद्र से तैर कर, जन्म मरण रूप वन्धन से मुक्त हो गये हैं। कलयुग के पाप और शब्द आदि विषय, यह सब रामनाम के स्मरण से, अन्तःकरण से नष्ट हो जाते हैं। और पांच प्रकार का भ्रम और सकाम कर्म आदिकों के बन्धन, राम नाम के प्रताप से, सब दूर हो जाते हैं। हे मन ! यह संत और भक्तों का जीवन रूप राम नाम का, तूं अब जाप कर। इस संसार में राम नाम के सिवाय दुखों को दूर करने वाला, और कोई भी उपाय नहीं है।

144

मना जपि राम नाम कहिये, राम नाम मन विश्राम,
संगी सो गहिये ॥टेक॥

जागि जागि सोवै कहां, काल कंध तेरै।
बारम्बार करि पुकार, आवत दिन नेरै॥
सोवत सोवत जनम बीते, अजहूं न जीव जागै।
राम संभारि नींद निवारी, जनम जुरा लागै॥
आस पास भरम बन्ध्यो, नारी गृह मेरा।
अंतकाल छाड़ चल्यो, कोई नहिं तेरा॥
तज काम क्रोध मोह माया, राम राम करणा।
जब लग जीव प्राण पिंड, दादू गहि सरणा॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू मन प्रति उपदेश करते हैं कि हे मन ! अब राम नाम का जाप कर और इसी का उपदेश दे। यह राम नाम का स्मरण, तेरे विश्राम का स्थान है। इसके द्वारा जो राम आत्म स्वरूप है, उसे ग्रहण कर। हे मन ! अब मोह रूप निद्रा में क्या सोता है ? जाग। तेरे शरीर के कंधे पर काल, बाजा बजा रहा है। सतगुरू और संतजन, अपने उपदेशों द्वारा, पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि तेरे अन्त समय का दिन, नजदीक आ रहा है अज्ञान रूप निद्रा में सोते सोते, तेरे अनेकों जन्म बीत गये, परन्तु अभी तक भी, हे

मनरूप अज्ञानी जीव ! तूं नहीं जाग रहा है । अब जागकर, राम नाम के स्मरण द्वारा, मोह रूप निद्रा को दूर कर । इस मनुष्य जन्म में शरीर की जरजर अवस्था कहिये बुढ़ापा, आ पहुंचा है । परन्तु अब भी तूं, आशा रूपी फांसीयों से जकड़ा हुआ है कि मेरी स्त्री है, मेरा घर बार है, मेरे बेटे पोते हैं, ऐसे करता करता ही, तूं अन्तकाल में, सबको छोड़कर चला जाएगा । इसमें कोई भी तेरा साथ देने वाला नहीं है । इसलिये अब तूं, काम क्रोध, मोह माया को त्यागकर, राम नाम का स्मरण कर । जब तक हे जीव ! तेरे प्राण पिंड का वियोग नहीं होता, तब तक राम नाम की शरण ग्रहण करके रह । इसी में तेरा कल्याण है ।

दोहा .- सांई सवर्ग पधारिया, कुछ सानु भी अख ।
खीर सपासप मारिया, कुछ पींडी भी चख ।।१४४।।

दृष्टान्त :- एक ग्रहस्थी था । उसकी स्त्री बद चलन थी । परन्तु वह उसको कहा करती कि मैं तुम्हारे बिना, इस घर में अकेली कैसे रहूं ? मुझे तो कुछ खाना पीना, सोना जागना, पहरना ओढना, अच्छा ही नहीं लगता । जिस रोज यह विदेश जाने लगा, तब बोला :- आज खीर और चूरमा बना लो । जब बन गया, तब उसने सोचा,, जरा इसकी परीक्षा तो कर लूं । पलंग पर लेट गया और फिर अपने श्वांस को चढा लिया । वह आकर पति को जगाने लगी, तो देखा यह तो मर गया । तब सोचा कि पहले खीर तो खा लूं, फिर रोऊंगी, नहीं तो बहुत लोग घर में आ जायेंगे । फिर खीर कैसे खाऊंगी ! उसने थाली में खीर ठंडी करके, खूब डट कर चढा ली और बर्तन वगैरा सब मांज धोकर रख दिये । खीर और चूरमा की पिंडी को दबा कर रखी । फिर बैठ कर रोने लगी । आस पास के बंदे इकट्ठे हो गये और बड़दावे दे देकर रोने लगी ।

सांई सवर्ग पधारिया, कुछ सानु भी अख ।

हे स्वामी ! तुम तो स्वर्ग में चले गये, परन्तु कुछ मुझे भी तो कह जाते । तब वह पलंग पर सूता ही बोला :-

खीर सपासप मारिया, कुछ पींडी भी चख ।

यह कहकर बैठा हो गया । सब लोग चकित हो गये । और उस स्त्री को जैसी पतिव्रता थी वह, वैसी उसने जान ली और फिर उसको तलाक दे दिया ।

---

1४5. विरह

क्यों बिसरै मेरा पिव पियारा, जीव की जीवन प्राण हमारा ।।टेक।।

क्यों करि जीवै मीन जल बिछुरै, तुम्ह बिन प्राण सनेही ।
चिन्तामणि जब कर थैं छूटे, तब दुख पावै देही ॥
माता बालक दूध न देवै, सो कैसे करि पीवै ।
निरधन का धन अनंत भूलाना, सो कैसे करि जीवै ॥
बरसहु राम सदा सुख अमृत, नीझर निरमल धारा ।
प्रेम पियाला भरि भरि दीजै, दादू दास तुम्हारा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, विरह दिखा रहे हैं कि हे हमारे प्यारे पीव परमेश्वर ! आप मुझे क्यों भूल रहे हो ?आप तो हमारे जीव की जीवन और हमें प्राणों से भी प्रिय हो । मछली जल से वियोग होने पर, कैसे जीवित रह सकती है ! हे प्राण स्नेही ? ऐसे हम आपके बिना कैसे जीवित रहें ? किसी के हाथ से चिन्तामणि रूप हीरा खोया जाय, तब उसको भारी दुख होता है । और जब माता, बच्चे को दूध न दे तो वह अपने आप कैसे पी सकता है ! जैसे निर्धन को अनायास धन प्राप्त हो जावै, और वह उस धन को अन्यत्र रख कर भूल जावै, तो फिर वह कैसे जीवित रह सकता है ? इसी प्रकार हम बिरहीजन आपके बिना कैसे जीवित रह सकते हैं ? हे राम ! आप सदा ही सुख रूप हो । आपके दर्शनरूपी आनन्द की, हमारे हृदय में बरसा करो । और फिर आपका अखंड प्रेम वृत्ति रूप प्याले में भर भर कर हमको पिलाओ । हे प्रभु ? हमतो आप ही के बिरहीजन दास हैं ।

दोहा :- फकीर रूपया धर धरे, नारनोल के मांहि ।
फोज गई कोउ ले गयो, सीस टेक मर जांहि ॥१४५॥

दृष्टान्त :- एक फकीर नारनोल की एक बगीची में रहता था । बगीची के बाहर जमीन में कुछ रूपया गाड़ दिये । एक समय सैनिक लोगों ने वहां आकर, बगीची के आस पास पड़ाव डाला । रोटी बनाने को जमीन खोदकर चुल्हा बनाया, उसी जगह । सैनिक को रूपये मिल गये । जब सेना वहां से रवाना हो गई, फकीर जाकर अपने रूपये देखे, तो वहां नहीं मिले । वहीं सिर टेक करके, जान दे दी । यह माया ऐसे प्राण ले लेती है ।

दूसरा दृष्टान्त :-

दोहा :- एक कहत धोवत गई, एक सुनत बोराइ ।
सो कैसे धीरज धरै, जो धरी हाथ सौं जाइ ॥१४५॥

दृष्टान्त :-"एक गरीब बनिये का लड़का था । नदी पर स्नान को गया । हाथ धोने को मिट्टी खोदी । वहां एक धन का बर्तन निकल आया । लड़के ने खोलकर देखा तो असरफी भरी हैं । ईंटा लेकर मांजने लगा कि इसको उज्जवल कर लूं । कोई जानेगा कि पानी लेजा रहा है । फिर उस बर्तन के दोनों किनारे पकड़ कर, गहरे पानी में जाकर, बर्तन के गोता लगाया । हाथ से छूट गया । अथाह पानी में चला गया । पागल हो गया । "हाय ! धोवत गई", इस प्रकार करता हुआ, घर आया । लोगों ने देखा, इसको कोई भूत प्रेत लग गया । बाप ने पूछा :- क्या गई धोवत ? उपरोक्त बात पिता को सुनाई । पिता सुनकर पागल हो गया । वह बोलाः- "हाय ! क्यों धोवै था हाय ! क्यों धोवै था" । बेटा कहै, धोवत गई । बाप कहै, हाय ! क्यों धोवै था ? ऐसे ही कपड़े में लपेट कर, धन के बर्तन को क्यों नहीं ले आया ? यह माया इस प्रकार, जीवों को पागल बना देती है ।

146· अत्यन्त विरह (गुजराती भाषा)

कोई कहो रे मारा नाथ ने, नारी नेण निहारे बाट रे ॥टेक॥
दीन दुखीया सुन्दरी, करूणा बचन कहै रे ।
तुम बिन नाह बिरहणि व्याकुल, केम करि नाथ रहै रे ॥
भूधर बिन भावे नहिं कोई, हरि बिन और न जाणे रे ।
देह गृह हूं तेने आपूं, जे कोइ गोबिन्द आणे रे ॥
जगपति ने जोवा ने काजैं, आतुर थई रही रे ।
दादू ने देखाड़ो स्वामी, व्याकुल होई गई रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरु इसमें अत्यन्त बिरहभाव कह रहे हैं कि हे संतो ! कोई उस हमारे प्रीतम परमेश्वर को जाकर कहो कि आपकी बिरहीजन सुन्दरी, आपके दर्शनों के लिये, नेत्रों से मार्ग देख रही है। हमतो उस प्रभु के दर्शनों के, बिना, दीन दुखी हो रही हैं और कायरता युक्त बचन कह रहे हैं । हे पति !

आपके बिना, हम बिरहीजन, अत्यंत व्याकुल हैं। इस शरीर में अब हमारे प्राण कैसे रहें ? हे भूधर ! भूमिका को या गोवरधन को धारण करने वाले, आपके बिना हमें इस त्रिलोकी में कुछ भी प्रिय नहीं लगता है। हम तो हे हरि ! आपके बिना और किसी को भी अपना स्वामी नहीं आपनाते ? हे संतो ! जो कोई हमको गोविन्द से मिला दे, तो उसको हम अपना घर द्वार और प्राण भी अर्पण कर दें। हे जगपति ! आपके दर्शन करने के लिये, हम तो अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। अब तो हम बिरहीजनों को, आप अपना दर्शन दिखाओ, हम अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं।

147. बिरह बिलाप

कबहूं ऐसा बिरह उपावै रे, पीव बिन देखे जीव जावै रे ॥टेक॥
बिपति हमारी सुनहु सहेली, पीव बिन चैन न आवै रे।
ज्यौं जल मीन भीन तन तलफै, पीव बिन बज्र बिहावै रे ॥
ऐसी प्रीति प्रेम की लागै, ज्यूं पंखी पीव सुनावै रे।
त्यूं मन मेरा रह नीस वासुर, कोइ पीव कूं आण मिलावै रे ॥
तो मन मेरा धीरज धरही, कोइ आगम आण जनावै रे।
तो सुख जीव दादू का पावै, पल पिवजी आप दिखावै रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरु इसमें बिरहीजनों का बिलाप दिखा रहे हैं कि हे स्वामी परमेश्वर ! कभी आप हमारे अन्तःकरण में, ऐसा बिरह उत्पन्न करोगे कि जिस बिरह से, आपके दर्शन करे बिना, हमारा जीव इस शरीर से निकल जाय। हे बिरहीजनों ! हमारी इस बिरह की विपत्ति को सुनो, हमें पीव का दर्शन करे बिना, अब शान्ति नहीं है। जैसे मछली जल से अलग होकर तड़फती है, ऐसे ही हम तड़फ रहे हैं। अब तो पीव के दर्शन करे बिना, हमारे को ऐसा मालूम पड़ता हैं, जैसे कोई हमारे वज्र मार रहा हो। जैसे पपैया स्वांति नक्षत्र की बूंद के लिये पुकारता है, ऐसी ही हमारी प्रीति, प्रेम पूर्वक पीव से लगी हैं। ऐसे हमारा मन रात दिन, पपैया बनकर पुकार रहा है। है कोई ऐसा विरहीजन ? जो हमको, हमारे प्रीतम से मिला दे, तभी हमारा मन धैर्य को प्राप्त होवै। अथवा जो पहले ही आकर कहै कि परमेश्वर, तुम्हारे को दर्शन देने आ रहे हैं। तब ही हमारा बिरहीजनों का जीव सुख मानेगा, जब पीव अपना दर्शन दिखावेंगे।

कवन देस कहं जाइये, कीजे कौन उपाय ।
कौन अंग कैसे रहे, कहां करै समझाइ, पंथीड़ा ॥
परस सनेही प्राण का, सो कत देहु दिखाइ ।
जीवन मेरे जीव की, सो मुझ आनि मिलाइ, पंथीड़ा ॥
नैन न आवै नींदड़ी, निस दिन तलफत जाइ ।
दादू आतुर बिरहणी, क्यूं करि रैन बिहाइ, पंथीड़ा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें, बिरह के सहित प्रश्न कर रहे हैं कि हे संतरूप बिरहीजनों। मैं आपसे पूछती हूं कि क्या आप पीव के मार्ग को जानते हो ? हमको कहो नै, उनके कब दर्शन होंगे ? हमारे हृदय रूपी घर में कब आवेंगे ? हम उनसे कब मिलेंगे ? रात दिन हम बाट देख रहे हैं। वह हमारे प्रीतम कहां हैं ? कहां बास करके रहते हैं। मैं उनको कहां ढूढूं ? कहां मिलेंगे ? हे संतो ! वह किसके पास रहते हैं ? उनका कौनसा देश है ? कहां जावें ? अब हम बिरहीजन क्या उपाय करें ? उनका अंग कैसा है और कैसे रहते हैं ? हें संतो ! अब आप हमको समझा कर कहो, क्या करें ? हमारे प्राणों के स्नेही को कहीं हमें दिखाइये ? वह तो हमारे जीव की जीवन हैं। हे संतो ! उनको हमसे मिलाओ। अब तो हमारे नेत्रों में नींद भी नहीं आती है और रात दिन को तड़फते तड़फते बिता रहे हैं अब हम बिरहीजन, अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। हे संतो ! यह उमर रूपी रात्रि कैसे बितावें ?

150. समुच्चय उत्तर

पंथीड़ा पंथ पिछाणी रे पीव का, गहि बिरह की बाट ।
जीवत मृतक व्है चलै, लंघै ओघट घाट, पंथीड़ा ॥टेक॥
सतगुरु सिर पर राखिये, निरमल ग्यान बिचार ।
प्रेम भक्ति करि प्रींत सौं, सनमुख सिरजनहार, पंथीड़ा ॥
पर आतम सौं आत्मा, ज्यों जल जलहि समाइ ।
मन हीं सौं मन लाइये, लै के मारग जाइ, पंथीड़ा ॥

148. (गुजराती भाषा)

अमे बिरहणिया राम तुम्हारड़िया, तुम बिन नाथ अनाथ,
कांइ बिसारड़िया ॥टेक॥
अपने अंग अनल पर जाले, नाथ निकट नहिं आवे रे ।
दरशन कारण बिरहणि व्याकुल, और न कोई भावे रे ॥
आप अपरछन अमने देखे, आपणपो न दिखाड़े रे ।
प्राणी पिन्ज़र लेइ रह्यो रे, आड़ा अन्तर पाड़े रे ॥
देव देव करि दरशन मांगे, अन्तरजामी आपै रे ।
दादू बिरहणि बन बन ढूंढे, ये दुख कांइ न कापे रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, बिरहीजनों का बिलाप बता रहे हैं कि हे राम ! हमतो आपके ही बिरहीजन हैं । हमको आपने क्तों बिसार दिये ? हे नाथ ! हम अपने शरीर को, विरह रूप अग्नि से जला रहे हैं, क्योंकि आप हमारे नजदीक होते हुए भी, प्रगट नहीं हो रहे हो । आपके दर्शना अर्थ हम बिरहीजन अति व्याकुल हो रहे हैं । हमको आपके सिवाय और कोई देवी देवता अच्छा नहीं लगता है । आप छिपकर हमको देख रहे हो, परन्तु हमको आपका स्वरूप नहीं दिखाते हो । मैं प्राणधारी, शरीर रूप पिंजर को इसलिये धारण किये हुए हूं कि आप हमको दर्शन दोगे । किन्तु आप तो हमसे दूर रहने के लिये, आवरण रूप पर्दा ही डाल रहे हो । हे अन्तर्यामी ! हम आपसे, आपके दर्शन मांगते हैं, आप दर्शन देओ । हम बिरहीजन आपको अनेक प्रकार के साधनों द्वारा, आपको बन बन में ढूंढ रहे हो । इस हमारे दुख को क्यों नही काटते हो ?

98. बिरह प्रश्न

पंथीड़ा बूझै बिरहणी, कहिनै पीव की बात,
कब घरि आवै कब मिलौं, जोऊं दिन अरू राति, पंथीड़ा ॥टेक॥
कहां मेरा प्रीतम कहां बसे, कहां रहे करि बास ।
कहं ढूंढौं कहं पाइये, कहां रहे किस पास, पंथीड़ा ॥

तालाबेली ऊपजै, आतुर पीड़ पुकार ।
सुमिर सनेही आपणा, निसदिन बारम्बार, पंथीड़ा ॥
देखि देखि पग राखियें, मारग खांडे धार ।
मनसा बाचा कर्मना, दादू लंघै पार, पंथीड़ा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, उपरोक्त शब्द का समुच्चय उत्तर दे रहे हैं कि हे बिरहजनों ! उस पीव के मार्ग को, अब आप पहचानो । बिरहरूपी मार्ग को ग्रहण करो । जो जीवित ही, आपा अभिमान से रहित मृत्तक तुल्य हो जाते हैं, वह बिरहीजन काम क्रोध आदि अथवा शरीर अध्यास रूपी घाट से जो मुक्त होते हैं और सतगुरू को सिर पर धार कर, उनके निर्मल ज्ञान का विचार करते हैं । और प्रीति पूर्वक निष्काम प्रेमाभक्ति में लगे हैं, वह सिरजनहार का सन्मुख दर्शन पा लेते हैं। और हे बिरहीजनों ! आप अपनी व्यष्ठि आत्मा को, समष्टि परमात्मा में अभेद करियें, जैसे जल में जल मिल जाता है। अपने व्यष्टि मन को, समष्टि चेतनरूप मन में लगाइये । और अखंड लय रूपी मार्ग पर जाइये । ताला तलप और बेली बिलाप सहित; अन्तःकरण में पुकारिये । इस प्रकार अपने स्नेही परमेश्वर का रात दिन स्मरण करिये। परन्तु विचार विचार करके, विरहरूपी मार्ग पर चलना । परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग, तलवार की धार के समान तीक्षण है । मन वचन कर्म करके, बिरहरूपी मार्ग को अपनाइये ।

151. अनुक्रम उत्तर

साध कहैं उपदेश बिरहणी, तन भूलै तब पाइये,
निकट भया परदेश, बिरहणी ॥**टेक**॥
तुम्ही माहैं ते बसैं, तहां रहे करि बास ।
तहं ढूंढौ पिव पाइये, जीवन जीव के पास बिरहणी ॥
परम देस तहं जाइये, आतम लीन उपाइ ।
एक अंग असे रहै, ज्यौं जल जलहि समाइ, बिरहणी ॥
सदा संगाती आपणा, कबहूं दूरी न जाइ ।
प्राण सनेही पाइये, तन मन लेहु लगाइ, बिरहणी ॥

जागत जगपति देखिये, परगट मिलि है आइ ।
दादू सनमुख ह्वै रहै, आनन्द अंगि न माइ, बिरहणी ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें उपरोक्त शब्दों का उत्तर दे रहे हैं। मुक्तपुरूष कहते हैं कि हे बिरहीजनो ! जब तुम शरीर का अध्यास भूलोगे, तब तुम्हारे प्रीतम को प्राप्त कर लोगे, क्योंकि वह तुम्हारे अत्यन्त समीप में होता हुआ भी, विदेश के तरह हो रहे हैं । वह तो तुम्हारे अन्तर ही बास करते हैं । तुम अपनी अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, उसके स्वरूप में स्थिर रहो । अन्तःकरण में ढूंढो तो पीव, जीव की जीवन रूप, जीव के पास ही प्राप्त होंगें । सहजावस्था में जाईये । यही तुम्हारी व्यष्टि आत्मा को समष्टि परमात्मा में लीन करने का साधन है । हे बिरहीजनों ! इस प्रकार 'एक अंग' कहिए एक रूप होकर, उसमें रहो । जैसे, जल में जल समा जाता है, ऐसे ही समाकर रहो । वह परमेश्वर, सदा जीव के साथ रहते हैं, कभी भी अलग नही होते । हे बिरहीजनो ! तुम अपने तन मन को विचार द्वारा, उनमें लगाकर, प्राण स्नेही को, प्राप्त करिये । परन्तु ज्ञान अवस्था में जगतपति परमेश्वर का दर्शन पाईये । तो वह तुम्हारे अन्तःकरण में ही प्रगट होकर, निजरूप से तुमको भान होने लगेंगें । हे बिरहीजनों ! इस प्रकार जब तुम सन्मुख होकर रहोगे तो, तुम्हारे हृदय में अपार आनन्द उत्पन्न होवेगा ।

152. बिरह बिनती

गोबिन्दा गाइबा देरे आडड़ी आन निवार, गोबिन्दा गाइ बादे रे ।
अनदिन अनतर आनन्द कीजै, भगति प्रेम रस सार रे ।।टेक।।
अनभै आतम अभै एक रस, निरभय काइ न कीजै रे ।
अमी महारस अमृत आपै, अम्हे रसिक रस पीजै रे ।।
अविचल अमर अखै अविनाशी, ते रस कांइ न दीजै रे ।
आतम राम अधार अम्हारो, जनम सुफल करि लीजै रे ।।
देव दयाल कृपाल दमोदर, प्रेम बिना क्यूं रहिये रे ।
दादू रंग भरी राम रमाड़ौ, भगत बछल तूं कहिये रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें बिरह सहित विनती कर रहे हैं कि हे गोविन्द परमेश्वर ! आपका नाम स्मरण करने दीजिये । आपके भजन में अन्तराय करने वाले जो भी अड़चन हैं, उनको दूर करिये और आपका स्मरण, हमको करने दीजिये । हमारे हृदय में प्रतिदिन आपकी प्रेमाभक्ति रूप सार अमृत को पान करते रहैं । हे गोविन्द ! अभय और एक रस आत्मा के अनुभव द्वारा, हमें निर्भय क्यों नहीं करते हो ? और आप अमर भाव रूप महान् अमृत रस दें । तो हम बिरहीजन रसिक, उस रस का पान करें । जो अचल, अमर, अक्षय और अविनाशी आपका स्वरूप रस है, वह रस आप क्यों नहीं पिलाते हो ? हमारे तो केवल आप, आत्म स्वरूप राम ही आधार हो । आपका साक्षात्कार करके, हम अपने जन्म को सफल करैं । ऐसी कृपा कीजिये ! हे देब ! दयालु ! कृपालु ! दामोदर ! आपकी प्रेमा भक्ति के बिना, हम कैसे जीवित रहैं ! आप हमारे हृदय में एकत्व भावना रूप, भक्ति रूपी रंग भरकर, अपने स्वरूप में हमको रमाओ । आप भक्त वच्छल हो ।

दोहा :- नगर निराने देहुरे, गुरू राखे पधराइ ।
स्वामी पद यह गावते, पुतिली गई हिराइ ॥१५२॥

दृष्टान्त :- नरेना के राजा नारायण सिंह और भोज राज को भगवान कृष्ण ने स्वप्न में आज्ञा दी कि तुम मेरे रूप ब्रह्मऋषि दादूदयाल को नरेना में लाकर बिराजमान करो । तब दोनों भ्राताओं ने महाराज को जाकर प्रणाम किया और बोले :- नरेना मे पधारिये । ब्रह्मऋषि को भी भगवान ने आज्ञा दी कि आप नरेना में अपना अन्तिम धाम बनाइये । तब ब्रह्मऋषि को राजा लाकर, मन्दिर में पधारिये । नगरवासी लोग राजा के सहित, महाप्रभु के उपदेश सुनने लगे । उस मन्दिर में चितराम मंडे हुए थे । कई उपदेश सुनते सुनते चितराम देखने लगे और बोलने लगे । वह मोर है, वह मनुष्य है, वह तोता है । उस समय महाप्रभु ने उपरोक्त पद गाया, 'गोबिन्दा गाइबा देरे आडडियां आण निवार०" । हे गोबिन्द ! आपका स्मरण करने दो, इन जीवों को । आपके स्मरण में अन्तराय करने वाली पुतलियों को निवारण करिये । इतना कहते ही मन्दिर की सम्पूर्ण पुतलियां साफ हो गई । यह देखकर, राजा के सहित सम्पूर्ण नगरवासी नत मस्तक होकर, नमस्कार करके, धन्य धन्य कहने लगे ।

---

153. (गुजराती भाषा)

गोबिन्द जोइबा देरे, जे बरजै ते वारि रे,
गोबिन्दा जोइबा देरे ।
आदि पुरुष तूं अछय अम्हारो, कंथ तुम्हारी नारी रे ॥टेक॥

अंगै संगै रंगै रमिये, देवा दूर न कीजै रे ।
रस मांहैं रस इम थइ रहिये, ये सुख अमने दीजै रे ॥
सेजड़ियें सुख रंग भरि रमिये, प्रेम भक्ति रस लीजै रे ।
एकमेक रस केलि करन्ता, अम्हे अबला इम जीजै रें ॥
समर्थ स्वामी अन्तरजामी, बार बार कांइ बाहे रे ।
आदैं अन्तैं तेज तुम्हारो, दादू देखैं गाये रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें बिरह बिनती दिखा रहे हैं कि हे गोबिन्द परमेश्वर ! आपके दर्शन हम बिरहीजनों को अब करने दीजिये । जो आपके दर्शनों में अन्तर करने वाले हैं, उनको हमारे हृदय से निवारण करिये । आप ही हमारे आदि अनादि पुरुष कहिये स्वामी हो । हे कंथ ! हम तो बिरहीजन, आपकी ही 'नारी' कहिये सेविका हैं । हे नाथ ! आपकी पराभक्ति रूप रंग के द्वारा, अपने स्वरूप में हमें अभेद करिये । यही बिरहजनों की इच्छा है । हे देव ! अब हमको, आप अपने स्वरूप से अलग नहीं करना । जैसे रस में रस मिल जाता है, इसी प्रकार हम आपके स्वरूप में मिलकर रहैं । ऐसा आनन्द हमको आप दीजिये । और आप हमारे अन्त:करण रूपी सेज पर, एकत्व भावना रूपी रंग भरके, हमारे साथ आप रमण करिये । और फिर हम आपकी प्रेमाभक्ति रूपी, अमृत रस को पान करते रहैं । आपके स्वरूप में ओत प्रोत होकर, किलोल करैं । इस प्रकार हम बिरहीजन, जीवनभाव को प्राप्त होवैं । हे हमारे समर्थ स्वामी ! आप तो अन्तर की जानने वाले, अन्तर्यामी होकर भी, हमको क्यों बहकाते हो ? हमतो आपके तेजोमय स्वरूप को, सृष्टि के आदि से अन्त पर्यन्त, ज्ञानरूपी नेत्रों से देखकर, आपका गायन कर रहे हैं ।

154. (गुजराती भाषा)

तुम्ह सरसी रंग रमाड़, आप अपरछन थई करी,
मनें मा भरमाड़ ॥टेक॥
मन भोलवे कांइ थई बेगलो, आपणपो देखाड़ ।
केम जीवूं हूं एकली, बिरहणिया नार ॥
मन बाहिश मा अलगो थई, आतमा उद्धार ।
दादू सूं रमिये सदा, येणे परैं तार ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें बिरह बिनती का स्वरूप कह रहे हैं कि हे परमेश्वर ! आपको अब तो हम बिरहीजनों को, आपके अखंड प्रेम रस में रमाना ही पड़ेगा । आप छुपकर हमको भ्रम में नहीं भटकाइये । आप हमारे मन को भूलावे में डालकर, मुझसे अलग होकर, आपको क्या लाभ होगा ? आप अपना स्वरूप हमको दिखाइये । हम बिरहीजन आपके बिना अकेले कैसे जीवित रह सकेंगे ? आप हमको छोड़कर, अलग नहीं होना । मेरी आभास बुद्धि को आपके वियोग जन्म दुख से बचाइये । हे नाथ ! हम बिरहीजनों के साथ आप सदा रमिये । और हमें इस संसार से पार उतारिये ।

155. काल चेतावनी

जागी रे किस नींदड़ी सूता, रैंणी बिहाई सब गई,
दिन आइ पहूंता ।।टेक।।
सो क्यों सोवै नींदड़ी, जिस मरणा होवे रे ।
जोरा बैरी जागणा, जीव तूं क्यों सोवै रे ।।
जाके सिर परि जम खड़ा, सर सांधे मारै रे ।
सो क्यूं सोवै नींदडी, कहि क्यूं न पुकारै रे ।।
दिन प्रति निस काल झंपै, जीव न जागै रे ।
दादू सूता नींदड़ी, उस अंग न लागै रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें काल से सावधान कर रहे हैं कि हे अज्ञानी जीव ! अब तो इस मनुष्य जन्म में मोह रूप निद्रा से जाग और राम नाम का स्मरण कर । उमर रूपी रात्रि सब बीती जा रही है और अन्त समय का दिन नजदीक आ गया है । वह मोह रूप निद्रा में क्यों सोवेगा ? जिसको मरणा याद रहेगा । हे जीव ! वह जम के दूत बड़े जबरदस्त शक्तिवान जाग रहे हैं । तुझे देख रहे हैं । तूं मोहरूप निद्रा से क्यों सोता है ? जिसके माथे पर जमराज बाण खैंच कर खड़े हैं और मारना चाहते हैं, वह जीव अज्ञान रूप नींद में कैसे सोवेगा ? राम नाम का पुकार करके, स्मरण क्यों नहीं करता ? रात दिन काल, क्रम क्रम से जीवों को पकड़ रहा है । हे अज्ञानी जीव ! तूं अब तक भी नहीं जाग रहा है ? तूं अब अज्ञान, रूप नींद में क्या सोता है ? उस परमेश्वर के 'अंग' कहिए स्वरूप में क्यों नहीं लगता है ।

156.

जागी रे सब रैणि बिहाणी, जाइ जन्म अंजुलि को पाणी ।।टेका।।
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै, जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै ।
सूरज चंद कहैं समझाइ, दिन दिन आव घटंती जाइ ।
सरवर पाणी तरवर छाया, निस दिन काल गरासै काया ।
हंस बटाऊ प्राण पयाना, दादू आतम राम न जाना ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरु इसमें, काल से चेत कराते हैं कि हे अज्ञानी मानव ! अब तूं क्या मोह रूप निद्रा में सो रहा है ? तेरी उमर रूपी रात्रि तो बीतने वाली हो रही है । और अन्तकाल का दिन नजदीक आ गया है । पहरेदार घड़ी घड़ी में सूचना करता है कि अब यह गई हुई समय, फिर नहीं आवेगी और जो दिन उमर के बीत गये, वह फिर नहीं मिलने के । सूर्य चन्द्रमा भी आवागमन से, प्राणियों को यही समझा कर कह रहे हैं कि क्षण क्षण में प्राणी की आयु घटती जा रही है । जैसे सरोवर का जल और वृक्ष की छाया प्रति क्षण घटती जाती है, वैसे ही रात्रि दिन के प्रति क्षण में, शरीर की आयु को काल ग्रासवत क्षीण करता है । इस प्रकार आत्म स्वरूप राम के बिना जाने ही, इस जीव रूप हंस के प्राण, राम से विमुख ही इस शरीर से गमन कर जाते हैं ।

157.

आदि काल अंत काल, मधि काल भाई ।
जन्म काल जुहा काल, काल संगि सदाई ।।टेका।।
जागत काल सोवत काल, काल झंपै आई ।
काल चलत काल फिरत, कबहूं लै जाई ।।
आवत काल जावत काल, काल कठिन खाई ।
लेत काल देत काल, काल ग्रसे धाई ।।

कहत काल सुनत काल, करत काल सगाई ।
काम काल क्रोध काल, काल जाल छाई ।।
काल आगै काल पीछे, काल संग समाई ।
काल रहित राम गहित, दादू ल्यौ लाई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें काल का स्वरूप बता रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! भयंकर काल, आदि कहिये उमर के शुरूआत से लेकर, मध्य और अन्तपर्यन्त, मनुष्य के साथ रहता है । कईयों को जन्मते ही, भक्षण कर लेता है । कई को जर जर अवस्था में भक्षण करता है । इस प्रकार काल जीव के सदा साथ रहता है । जागृत अवस्था में, काल साथ रहता है । निद्रा अवस्था में काल, साथ रहता है । कभी भी काल प्राणी को झपट लेता है । प्राणी के साथ ही काल चलता है और आस पास फिरता रहता है । इस प्रकार किसी समय भी उठा कर ले जा सकता है । आने में, जाने में, काल साथ रहता है । यह काल भयंकर शत्रु है, इस प्रकार प्राणियों को भक्षण करता रहता है । लेते में देते में, दौड़ करके किसी अवस्था में भीं यह काल, भक्षण कर जाता है । कहने में सुनने में, सम्बन्ध करने में, सदा काल साथ रहता है । यह काम क्रोध, लोभ मोह, आदि रूपों में काल ने ही अपना जाल बिछा रखा है । प्राणी मात्र इस जाल में फंस रहे हैं । प्राणी के आगे पीछे, भीतर अन्तःकरण में प्राणों के साथ ही काल, बास, कर रहा है । इसलिये काल से रहित तो एक राम जी हैं । उन्हीं के नाम स्मरण में अखंड लय लगाकर, काल से मुक्त हो जाइये ।

158· हित उपदेश

तो को केता कह्या मन मेरे, खिण इक मांहै जाइ अनेरे,
प्राण उधारीं लेरे ।।टेक।।
आगै है मन खरी बिमासणि, लेखा मांगै दे रे ।
काहे सोवै नींद भरी रे, कृत बिचारै तेरे ।।
ते परि कीजै मन बिचारे, राखै चरणहु नेरे ।
रत्ती एक जीवनी मोहि न सूझै, दादू चेति सवेरे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, मन प्रति हितोपदेश कर रहे हैं कि हे हमारे मन ! तेरे को सत् शास्त्रों की शिक्षा और सतगुरु का उपदेश, कितनी बार समझाया, परन्तु तूं उसको नहीं अपनाता है । जिन पदार्थों को

तूं देख रहा है, ग्रहण कर रहा है, यह सब स्वरूप से मिथ्या, एक क्षण में जाने वाले हैं । अपने प्राणों का नाम स्मरण द्वारा उद्धार कर ले । हे मन ! आगे परलोक में तेरी सच्ची परीक्षा होनी है, तुझसे तेरे सम्पूर्ण कर्मों का हिसाब मांगा जावेगा । अत: अभी से तूं ऐसा व्यवहार कर, जिससे तूं सुख पूर्वक हिसाब दे सके । अब मोहरूप घोर निद्रा में क्यों सो रहा है ? तेरे को करणा है, सुकृत, और परमेश्वर का स्मरण, उसका विचार कर । माया और मायावी सुख, यह सब आगमा पाई हैं, इसलिये हे मन ! इनसे तटस्थ होकर, परमेश्वर के नाम स्मरण में विलम्ब न कर, तब वह परमेश्वर तुझे अपने चरणों की शरण में रखेंगे । फिर तुझे कोई काल कर्म का भय नहीं रहेगा । इस मायिक प्रपंच में तो एक रत्ती भर भी सुख नहीं है, ऐसे तत्ववेत्ता पुरुष कह रहे हैं ।

159

मन बाहला रे कछू बिचारी खेल, पड़सी रे गढ भेल ।।टेक।।
बहु भांति दुख देइगा बाहला, ज्यों तिल मांहें लीजै तेल ।
करणी ताहरी सोधसी, होसी रे सिर हेल ।।
अब ही थैं करि लीजिये रे बाहला, सांई सेती मेल ।
दादू संग न छाड़ी पीव का, पाई है गुण की बेल ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, मन प्रति हितोपदेश करते हैं कि हे हमारे प्यारे मन ! कुछ विचार करके, कर्म रूपी खेल खेल । क्योंकि बिना बिचारे सकाम निसिद्ध कर्म और बुरे संकल्प करने से, तेरे काया रूप किले में भारी दुख पड़ेगा और शरीर को भेल देगा, नष्ट कर देगा । परलोक में धर्मराज तेरे कर्मों का विचार करके ऐसी कसौटी देंगे, जैसे तिल में से तेल निकालते हैं । तेरे करणी कर्त्तव्य सब, वहां विचारेंगे । तेरे माथे पर जमराज के दूतों का हमला होगा । हे प्यारे मन ! अब जवानी अवस्था में ही, परमात्मा के निष्काम नाम स्मरण से, मेल कर ले । हे मन ! इस मनुष्य शरीर में ही, वह मुख प्रीति का विषय परमेश्वर बास करता है, उसका साथ नहीं छोड़ना । अबके यह मनुष्य शरीर सम्पूर्ण देवी सम्पदा के गुणों की बेल, तुझे प्राप्त हो गई है ।

160

मन बावरे हो अनत जनि जाइ,
तो तूं जीवै अमीरस पीवै, अमर फल काहे न खाइ ।।टेक।।

रहु चरण शरण सुख पावै, देखहु नैन अघाइ ।
भाग तेरे पीव नेरे, थीर थान बताइ ॥
संग तेरे रहै घेरे, सहजैं अंगि समाइ ।
सरीर मांहैं सोधि सांई, अनहद ध्यान लगाइ ॥
पीव पास आवै सुख पावै, तन की तपति बुझाइ ।
दादू रे जहं नाद ऊपजै, पीव पास दिखाइ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, मन प्रति हितोपदेश कर रहे हैं कि हे हमारे प्रभु की तरफ से बावले मन ! अब तूं प्रभु के मार्ग को छोड़कर, अन्यत्र नहीं जाना । हे मन ! जब नाम रूप अमृत रस का पान करके, अमर फल रूप परमेश्वर के दर्शन रूप, सुख का उपभोग करेगा, तब तो तूं प्रभु सजीवन भाव को प्राप्त होगा। परमेश्वर के चरणों की शरण में रहने से ही, तुझे सुख प्राप्त होगा । ज्ञान रूपी नेत्रों से हृदय प्रदेश में ही तृप्त होकर, प्रभु का दर्शन कर । तेरा उत्तम भाग्य यदि उदय होवै, तो पीव तेरे पास ही है । वह परमेश्वर तुझे अपना स्वरूप भूत स्थान दिखावैंगे । वह परमेश्वर तो तेरे सदैव संग हैं । जागृत स्वप्न सुषोप्ति तुरिया आदि में, व्याप्त हो रहे हैं । तूं सहजावस्था द्वारा, उनके स्वरूप में, अपने आपको समा ले । तेरे शरीर में ही, उस अधिष्टान चेतन्य को देख ! 'अनहद' कहिए सोहं शब्द में ध्यान लगा । इस प्रकार तूं जब पीव के पास आवेगा, तो अपने तन के सम्पूर्ण दुखों को शान्त कर लेगा । हे मन ! जहां इस शरीर में अनहद शब्द की उत्पत्ति होती है, उसी में मुख प्रीति का विषय, परमेश्वर साक्षात्कार होगा ।

161. भ्रम विध्वंसण

निरंजन अंजन कीन्हा रे, सब आतम लीन्हा रे ॥टेक॥
अंजन माया अंजन काया, अंजन छाया रे ।
अंजन राते अंजन माते, अंजन पाया रे ॥
अंजन मेरा अंजन तेरा, अंजन मेला रे ।
अंजन लीया अंजन दीया, अंजन खेला रे ॥
अंजन देवा अंजन सेवा, अंजन पूजा रे ।
अंजन ज्ञाना अंजन ध्याना, अंजन दूजा रे ॥

अंजन बकता अंजन सुरता, अंजन भावै रे ।
अंजन राम निरंजन कीन्हा, दादू गावै रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें भ्रम का नाश करते हैं कि हे जिज्ञासु ! उस निरंजन राम परमेश्वर ने, यह माया का कार्य रूप अंजन संसार रचा है । इसी में सम्पूर्ण संसार के प्राणी, लीन हो रहे हैं । अंजन रूप माया ने, अपना कार्य, काया रूप अंजन उत्पन्न किया है । माया रूप अंजन ही सर्वत्र संसार के रूप में व्याप्त हो रहा है । बहिर्मुख संसारिक प्राणी, माया रूप अंजन में राते रत्त और माते मस्त हो रहे हैं । वह सर्वत्र माया रूप अंजन को ही प्राप्त करते हैं । मैं मेरा, तूं तेरा, इसमें फंसकर, मायावी धर्मों में ही मिले रहते हैं । माया रूप अंजन में ही लिया, माया रूप अंजन मे ही दिया, इस प्रकार माया रूप अंजन में ही खेलते हैं । माया रूप अंजन का ही देव बनाकर, ससांरिक मनुष्य, मायिक पदार्थों से ही सेवा पूजा करते हैं । वह माया रूप अंजन की ही, उनकी पूजा होती है । वह माया रूप अंजन का ही ज्ञान कथन करते हैं । माया रूप अंजन का ही ध्यान करते हैं । जो भी कुछ द्वैत प्रपंच है, वह सब अंजन रूप ही है । अंजन रूप ही वक्ता है, संसार में । और माया रूप अंजन की ही कथा सुनाते हैं । अंजन रूप ही श्रोता हैं । और माया रूप अंजन की ही कथा सुनते है । माया रूप अंजन ही, संसार के प्राणियों को प्रिय लगता है । इस माया रूप अंजन की तो रचना, उस निरंजन रूप राम ने रची है । उस निरंजन राम का तो कोई बिरले, तत्ववेता मुक्त पुरुष ही यश गायन करते हैं ।

162· निज वचन महिमा

ऐन बैन चैन होवै, सुणतां सुत लागै रे ।
तीण गुण त्रिविध तिमर, भरम करम भागै रे ।।टेक।।
होइ प्रकास अति उजास, परम तत्त सूझै ।
परम सार निर्विकार, बिरला कोई बूझै ।।
परम थान सुख निधान, परम सुनि खेलै ।
सहज भाइ सुख समाइ, जीव ब्रह्म मेलै ।।
अगम निगम होइ सुगम, दूतिर तिर आवै ।
आदि पुरिस दरस परस, दादू सोइ पावै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परमेश्वर वचन एवं सतगुरु उपदेश की महिमा बता रहे हैं कि परमेश्वर के वचन और सतगुरु का उपदेश, यथार्थ आनन्द को देने वाले होते हैं । उनके श्रवण करने से,

अक्षय सुख प्राप्त होता है । और तीनों गुणों का कार्य रूप, तामस राजस सात्विक धर्म रूप तिमर, भ्रम सकाम कर्म, यह सब अन्तःकरण से निवृत हो जाते हैं । और फिर हृदय में जीव ब्रह्म की एकता रूप ज्ञान का प्रकाश कहिए, उजास होता है । फिर अपना स्वरूप परम तत्व भान होने लगता है । वही सबसे उत्कृष्टं, सम्पूर्ण संसार का सार, और निर्विकार रूप है । कोई बिरले मुक्त पुरूष ही, इस प्रकार समझते हैं । वह चेतन स्वरूप ही परम स्थान और सम्पूर्ण सुखों का 'निधान' कहिए कारण, उसी में, अथवा वही परम शून्य रूप से, सर्व में व्याप्त हो रहे हैं । मुक्त पुरूष इस प्रकार, जीव ब्रह्म का अभेद निश्चय करके, सहजावस्था द्वारा, उस सुख स्वरूप में समाये रहते हैं । 'अगम'- शास्त्र और 'निगम' - बेद, जिसका लक्षणावृत्ति द्वारा कथन करते हैं; वह ब्रह्म चेतन्य अनुभव ज्ञान द्वारा, मुक्त पुरूषों को सुगमता से ही साक्षात्कार होता है । इस प्रकार कठिन संसार समुद्र से मुक्त पुरूष, पार होते हैं । वह सबका आदि पुरूष परब्रह्म, उसका हृदय में अनुभव करके, उसमें तत्ववेता ओत प्रोत भाव को प्राप्त होते हैं ।

163. साधु साँई है रे

कोई राम का राता रे, कोई प्रेम का माता रे ।।टेक।।
कोई मन कौं मारै रे, कोई तन को तारै रे,
कोई आप उबारै रे ।
कोई जोग जुगंता रे, कोई मोक्ष सुकंता रे,
कोई है भगवंता रे ।
कोई सद्गति सारा रे, कोई तारणहारा रे,
कोई पीव का प्यारा रे ।
कोई पार को पाया रे, कोई मिलकर आया रे,
कोई मन को भाया रे ।
कोई है बड़भागी रे, कोई सेज सुहागी रे,
कोई है अनुरागी रे ।
कोई सब सुख दाता रे, कोई रूप बिधाता रे,
कोई अमृत खाता रे ।

कोई नूर पिछाणैं रे, कोई तेज कौं जाणैं रे,
कोई जोति बखाणैं रे।
कोई साहिब जैसा रे, कोई सांई तैसा रे,
कोई दादू अैसा रे।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें नाना प्रकार से प्रभु की खोज बता रहे हैं कि कोई संत भक्त तो निष्काम राम के स्मरण में, रात्ते रत्त हो रहे हैं और कई राम के प्रेम में मतवाले हो रहे हैं। कोई मन को विषय वासनाओं से मुक्त कर रहे हैं। कई संत भक्त मनुष्य शरीर को सतकर्म और परोपकार आदि द्वारा तार रहे हैं। कोई अपने जीवात्मा का उद्धार होने के साधनों में लग रहे हैं। कई योग की साधना में लगे हैं। कोई जीवन मुक्ति रूप, मोक्ष साधनों में लग रहे हैं। कोई भगवत् स्वरूप ही बन गये हैं। कोई सार सद्‌गति को प्राप्त हो रहे हैं। कई ज्ञानोपदेश के द्वारा, अधिकारियों को तार रहे हैं। कई संत भक्त परमात्मा के अत्यन्त प्रिय बन रहे हैं। कई ज्ञान द्वारा संसार के पार को पा लिया है। कोई सहजावस्था रूप समाधि में, प्रभु का साक्षात्कार करके, फिर सूते हुए जीवों को जगाने के लिये आते हैं। कोई प्रभु के मन को भाने वाले, परोपकार आदि कार्य कर रहे हैं। कई धर्मनिष्ठ जन समुदाय को सेवा करते हुए, बड़े भाग्यशाली दिखाई पड़ते हैं। कोई हृदयारूपी सेज पर, प्रभु दर्शनरूपी सुहाग को प्राप्त हो रहे हैं। कोई स्वभाव से ही प्रभु के अनुराग में रंगे हुए हैं। कोइ संतभक्त, प्राणी मात्र को सेवा भाव द्वारा, सुख देने वाले हो रहे हैं। कोई विधाता के ब्रह्मस्वरूप हो रहे हैं। कोई ज्ञान अमृत को पी रहे हैं। कोई अनुभव द्वारा, शुद्ध स्वरूप को पहचान रहे हैं। कोई ब्रह्मतेज को सबमें जान रहे हैं। कोई ब्रह्मज्योति का घट घट में बखान कर रहे हैं। कोई परमात्मा स्वरूप ही दिखाई दे रहे हैं। मुक्त पुरूष कह रहे हैं कि कोई अधिष्टान रूप ही हो रहे हैं।

164. साधु लक्षण

सदगति साधवा रे, सनमुख सिरजनहार।
भौ जल आप तिरैं ते तारैं, प्राण उधारनहार ॥टेक॥
पूरण ब्रह्म राम रंग राते, निर्मल नाम अधार।
सुख संतोख सदा सति संजम, मति गति वार न पार ॥
जुगि जुगि राते, जुगि जुगि माते, जुगि जुगि संगति सार।
जुगि जुगि मेला, जुगि जुगि जीवन, जुगि जुगि ग्यान बिचार ॥

सकल सिरोमणि सब सुख दाता, दुरलभ इहीं संसार ।
दादू हंस रहै सुख सागर, आये पर उपगार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, साधु लक्षण बता रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! सच्चे संतों के मन की धारणा, सत्य स्वरूप ब्रह्म में ही होती है । वह उस सत्य स्वरूप ब्रह्म के स्मरण द्वारा, ब्रह्म में ही अभेद होते हैं । वह आप तो संसार समुद्र तैर चुके हैं, और मुमुक्षुओं को तारते हैं । वह सम्पूर्ण प्राणियों का उद्धार करने वाले होते हैं । वह पूर्ण ब्रह्मस्वरूप राम के भक्ति वैराग्य ज्ञान रूप रंग में रत्त हुए, निष्काम नाम स्मरण का आधार रखते हैं । उनको सत संतोष और संयम द्वारा, सदा सुख प्राप्त होता है । उनकी मति की 'गति' कहिए धारणा, वार पार रहित ब्रह्म में रहती है । वह जुग जुग में राते रत्त और माते मस्त रहते हैं । उनकी सदा संगति करने से, विश्व के सार रूप ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है । वह सदा प्रभु से मिले हुए रह कर, सबसे प्रेम करके, सदा सर्व के जीवन रूप बने रहते हैं । और जुग जुग में ब्रह्म ज्ञान रूप विचार में लगे हुए, वह सब संतों में शिरोमणि, सबको सुख देने वाले, इस संसार में उनका दर्शन अति दुर्लभ है । भाग्य से ही प्राप्त होते हैं । वह हंसरूप ब्रह्मनिष्ठ, परब्रह्म रूप सरोवर में बास करने वाले, इस संसार में परोपकार के लिये आते हैं और फिर जीवों को जगाकर, अपने स्वस्वरूप में विलय हो जाते हैं ।

165. परिचय उत्साह मंगल

अम्ह घरि पाहुणा ये, आव्या आतम राम ।।टेक।।
चहूं दिसि मंगलाचार, आनन्द अति घणा ये ।
वरत्या जै जै कार, बिरद बधावणा ये ।।
कनक कलस रस मांहिं, सखि भरि ल्याव ज्यो ये ।
आनन्द अंगि न माइ, अम्हारे आव ज्यो ये ।।
भावै भक्ति अपार, सेवा कीजिये ये ।
सनमुख सिरजनहार, सदा सुख लीजिये ये ।।
धन्य अम्हारा भाग, आव्या अम्ह भणी ये ।
दादू सेज सुहाग, तूं त्रिभुवन धणी ये ।।

टीका :– ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें, साक्षात्कार होने पर, मंगल उत्साह दिखा रहे हैं कि हे सन्त रूप सखियो ! हमारे शरीर में, अन्तःकरण रूप घर में, आत्म स्वरूप राम अतिथि आये है । हमारे अन्तःकरण की चारों वृत्ति रूप दिशाओं में (मन, बुद्धि, चित, अहंकार में) मंगलाचार रूप, अति आनन्द बरत रहा है । और जय जयकार रूप ध्वनि हो रही है । और राम जी की कीर्ति के मंगलमय बधावणे गाये जा रहे हैं । हे संतरूपी सखी ! या अन्तर्मुख इन्द्रिय रूप सखी ! आप हमारे शुद्ध मन रूप स्वर्ण के कलस में, प्रेम रूपी जल भरकर, लाइये । उस समय जो आनन्द बरतेगा, वह हमारे अन्तःकरण में नहीं समावेगा । इस प्रकार आप हमको आकर दर्शन देना । फिर हम अपार भाव भक्ति द्वारा, राम की अराधना रूप सेवा करेंगे । उस समय हम अपने भाग्य की सराहना करते हैं कि हमारे भाग्य को धन्य हो ! जो कि आज हम साभास वृत्ति द्वारा, राम का हृदय में दर्शन कर रहे हैं । और अब हम जीव ब्रह्म की एकता रूप भजन करते हैं । हे त्रिभुवनपति ! हमारे स्वामी, आप आज हमें हृदय रूपी सेज पर, दर्शनों का सुहाग दे रहे हो । हम आपके बारम्बर वारणै जाते हैं ।

166

गावहु मंगलाचार, आज बधावणा ये ।
सुपनौ देख्यौ सांच, पीव घर आवणा ये ।।टेक।।
भाव कलस जल प्रेम का, सब सखियन के सीस ।
गावत चली बधावणा, जै जै जै जगदीस ।।
पदम कोटि रबि झिलमिलै, अंगि अंगि तेज अनन्त ।
बिगस बदन बिरहनि मिली, घरि आये हरि कंत ।।
सुन्दर सुरति सिंगार करि, सन्मुख परसे पीव ।
मो मंदिर मोहन आविया, वारूं तन मन जीव ।।
कंवल निरन्तर नर हरी, प्रगट भये भगवंत ।
जहं बिरहनि गुण बीनवे, खेलै फाग बसन्त ।।
वर आयौ बिरहनि मिली, अरस परस सब अंग ।
दादू सुन्दरि सुख भया, जुगि जुगि यहु रस रंग ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें साक्षात्कार होने पर मंगल उत्साह दिखा रहे हैं कि हे परमेश्वर की प्रेमी सन्तरूप सखियो ! आज हमारे बधावणे रूप गीत गाइये । जो हमको पहले स्वप्न हुआ था कि परमेश्वर तुम्हारे हृदय रूपी घर में आवेंगे, सो आज हमने उस स्वप्न का फल प्रत्यक्ष रूप से देख लिया है कि हमारे स्वामी परमेश्वर ! हृदय रूप मन्दिर में पधार गये हैं । अब भाव रूप कलस में प्रेम रूप जल भरा है । यह कलश अन्तर्मुख इन्द्रिय रूप सखियों ने अपने सिर पर धारण किया है और प्रभु की कीर्ति रूप बधावणे गीत गाती हुई, जय जयकार ध्वनि सहित अन्तःकरण में प्रभु के सम्मुख आकर, परमेश्वर आकार हो गई हैं। उन हमारे प्रभु का तेजोमय स्वरूप कोटि पदमसम्र, सूर्यों के समान झिलमिलाता हुआ प्रतीत हो रहा है। उनके प्रत्येक अंगों पर, अनन्त तेज बिराज रहा है । ऐसे हरि रूप परमेश्वर, जब हमारे हृदय रूपी घर में पधारे, तब बिरहीजन प्रसन्न मुख होकर, अपने स्वामी से मिले और हमारी सुरति रूप सुन्दरी, साधन रूप श्रृंगार करके, प्रभु के सन्मुख हुई अर्थात् स्वस्वरूपाकार रूप स्पर्श करती है और कहती है कि हमारे हृदय रूप मन्दिर में विश्व को मोहित करने वाले, चेतन्य ब्रह्म स्वरूप मोहन पधारे हैं । हम अब उन पर अपना तन मन जीवन सब न्योछावर करते हैं। वह हमारे नर हरि रूप भगवान, शुद्ध हृदय रूप कवंल में, हमें निजरूप होकर, दर्शन दे रहे हैं । वहां ही हम निरन्तर, उनका दर्शन रूप बसन्त उत्सव मनाते हैं, उनसे संयोग अर्थ विनती करते हैं । इस प्रकार परब्रह्मरूपी वर हमारे हृदय में आये, तब हम सुरति रूप बिरहीजन उनसे मिली । अब उनके स्वरूप में अरस परस कहिए ओत प्रोत भाव को प्राप्त हो गए हैं । इस प्रकार सुरति रूप सुन्दरी के सदा के लिये, यह अभेद निश्चय रूप रंग लग कर, फिर वह सदा के लिये परमानन्द रूप हो गई हैं ।

॥ इति राग मारू टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ॥

॥ अथ राग राम कली ८ ॥

167· सतगुरु शब्द महिमा

सबद समाना जो रहै, गुरू बाइक बीधा ।
उनही लागा ऐक सौं, सोई जन सीधा ॥टेक॥
अैसी लागी मरम की, तन मन सब भूला ।
जीवत मृतक व्है रहै, गहि आतम मूला ॥
चेतन चितहि न बीसरै, महा रस मीठा ।
शब्द निरंजन गहि रह्या, उन साहिब दीठा ॥
एक सबद जन ऊधरे, सुनि सहजैं जागै ।
अंतरि रात्ते एक सौं, सर सनमुख लागै ॥
सबदि समाना सनमुख रहै, पर आत्तम आगै ।
दादू सीझै देखतां, अविनासी लागै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें सतगुरू शब्द की महिमा दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! सत्य उपदेश के देने वाले सतगुरू, उनके ज्ञान युक्त शब्दों को श्रद्धा से श्रवण करने से ही मुक्ति होती है। जो सतगुरू शब्दों में मन लगा कर रहता है, उसका हृदय उन ज्ञान रूप शब्दों से बिध रहा है। उन शब्दों के द्वारा, एक सजातिय विजातिय स्वगत भेद रहित, परमेश्वर के भजन में लगा है, वही मुमुक्ष अहंकार आदि

को त्याग कर, सरल स्वभाव होता है। उसी के हृदय में सतगुरू शब्द की चोट लगती है। फिर वह अपने तन मन आदि के, अध्यास से मुक्त हो जाता है। और फिर जीवन मृत्तक होकर, सबका मूल कारण आत्मा रूप ब्रह्म को प्राप्त करके, अति मधुर चेतन्य रूप महारस को कभी अपने चित्त से नही भूलता। इस प्रकार जिसने निरंजन स्वरूप का बोध कराने वाले सतगुरू के ज्ञान रूप शब्दों को ग्रहण किया है उसने परब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है। क्योंकि सतगुरू के एक शब्द से भी, जिज्ञासुओं का उद्धार हो जाता है। इसलिये जिसने एकाग्र चित से, सतगुरू के उपदेश सुने हैं, वह मोह रूप निद्रा से जागे हैं; अब भी जो सतगुरू की शरण जाकर उपदेश श्रवण करते हैं, वह उपदेश रूप बाण, कान द्वारा, भीतर जाकर, अन्तःकरण को बेध देते हैं। फिर वह जिज्ञासु, निरन्तर अपनी वृत्ति को परब्रह्म के स्वरूप में अभेद करके रहते हैं। इस प्रकार जो सतगुरु शब्द द्वारा, परमात्मा के स्वरूप में लगकर, रहते हैं। वह संसार अवस्था से आगे जाकर, इस वर्तमान शरीर में ही, मुक्त पुरुषों के देखते देखते ही, अविनाशी ब्रह्म स्वरूप में अभेद रूप से सलग्न होकर, संसार से मुक्त हो जाते हैं।

168· नाम महिमा

अहो नर नीका है हरि नाम,
दूजा नहीं नाम बिन नीका, कहले केवल राम ।।टेक।।
निर्मल सदा एक अविनाशी, अजर अकल रस ऐसा।
दृढ गह राख मूल मन मांहीं, निरख देख निज कैसा ।।
यहु रस मीठा महा अमी रस, अमर अनूपं पीवे।
राता रहै प्रेम सौं माता, ऐसे जुग जुग जीवे ।।
दूजा नहीं और को ऐसा, गुरू अंजन कर सूझे।
दादू मोटे भाग हमारे, दास विवेकी बूझे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें नाम महिमा दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ! हरि परमेश्वर का नाम स्मरण सब साधनों में सुगम साधन है। नाम स्मरण के बिना, और बहिरंग साधन, जीव का उद्धार नहीं कर सकते। इसलिये निष्काम भाव से, केवल राम नाम का स्मरण कर। जो सदा माया आदि मल रहित, एक अविनाशी, अजर, अमर, कला, अवयव रहित, सब मूल कारण ब्रह्म है, उसको नाम स्मरण के द्वारा, मन से दृढता पूर्वक ग्रहण कर और ज्ञान रूपी नेत्रों से उस निजस्वरूप को देख। कैसा अलोकिक है? यह

पराभक्ति रूप महा अमृत रस, सम्पूर्ण रसों में, अति मीठा सुखरूप है। जो इस अनूप अमृत रस को पीता है, वही अमर होता है। इस रस में राता रत्त और प्रेम से माता मतवाला होता है, वही जुग जुग में सजीवन रूप होता है। हे जिज्ञासुओ ! ऐसा अमृत रस और कहीं नहीं है। परन्तु जो मुमुक्ष गुरु का ज्ञान रूपी अंजन, विवेक विचार रूप नेत्रों में आंजते हैं, उन्हीं को यह दिखाई पड़ता है। जिन मुमुक्षओं के मोटे भाग्य हैं, वही इस रस को समझते हैं।

दोहा :- भाई कान्हा तप कियो, दिन पचीस गये बोल।
भाई सेवा भोजन दियो, कह तिये लागो बोल ॥१६८॥

दृष्टान्त :- कान्हा और सेवा दोनों भाई थे। कान्हा को वैराग्य हो गया। वह घर त्याग कर, जहां तहां घूमने लगे। कुछ रोज के बाद फिर आकर अपने गांव में किसी एकान्त स्थान पर बैठकर, भजन करने लगे। भाई सेवा ने सुना। वह जाकर बोला :- भोजन तो आप रोजाना घर पर ही आकर किया करो। तब कान्हा रोज भोजन करके आ जाते। पच्चीसवें रोज, सेवा की स्त्री बोली, कमा के क्यों नहीं खाता है ? बाबा जी बना बैठा है। अगले दिन आप भोजन करने नहीं गये। सेवा को बोले :- भाई ! तेरी स्त्री की भोजन कराने की श्रद्धा नहीं है। फिर तो गांव वाले सभी नाम स्मरण के प्रताप से कान्हा की सेवा करने लगे।

---

169. अत्यन्त विरह

कब आवैगा कब आवैगा, पिव परगट आप दिखावैगा,
मिठड़ा मुझ कूं भावैगा ॥टेक॥
कंठड़ै लागि रहूं रे, नैनों मै बाहि धरूं रे,
पीव तुझ बिन झूरि मरूं रे।
पाऊं मस्तक मेरा रे, तन मन पीव जी तेरा रे,
हौं राखौं नैनहुं नेरा रे।
हियड़े हेत लगाऊं रे, अब कै जै पीव पाऊं रे,
तो बेर बेर बलिजाऊं रे।
सेजड़िये पीव आवै रे, तब आनन्द अंग न मावै रे,
दादू दरस दिखावै रे।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुदेव, इसमें अत्यन्त बिरह का स्वरूप दिखा रहे हैं कि हे प्यारे प्रीतम परमेश्वर ! आप हमारे हृदयरूप घर में कब ओवोगे ? कब आवोगे ? आप प्रगट होकर, कब दर्श दिखाओगे ? हे परमेश्वर ! आपका दर्शन अति मीठा है । हम बिरहीजनों को आप ही प्रिय लगते हो । आपके कंठ से हम लग करके रहें, यही हमारी इच्छा है । हे प्रीतम ! आपको, हम अपने नेत्रों में धारण करके रखें। आपके बिना हम झूर झूर कर मरे जा रहे हैं । हे नाथ ! हम आपके चरणों में अपना मस्तक रखते हैं । हे पीव ! यह तन और मन, हमको आपने ही दिया है । हम आपके ही, इसको अर्पण करते हैं । यह तन और मन आपके अर्पण करके, आपको, हृदय में ज्ञान रूप नेत्रों के समीप ही देखेंगे और हम अपने हृदय का प्रेम आपसे लगावेंगे । 'अबके' कहिए इस मनुष्य जन्म में, आपको पावें, तो फिर हम आपके, बार बार बलिहारी जावेंगे। हे प्रीतम ! आप हमारी हृदया रूपी सेज पर जब आओगे, और आप अपना दर्शन कराओगे तब हमारे अन्तःकरण में आनन्द नहीं समावेगा ।

170

पिरी तूं पाण पसाईड़े, मूं तनि लागी भाहिड़े ।।टेक।।
पांधी बींदो निकरीला, असां साण गल्हाइड़े ।
सांई सिका सड़केला, गुझी गालि सुनाइड़े ।।
पसां पाक दीदार केला, सिक असां जी लाहिड़े ।
दादू मंझि कलूब मेला, तोड़े बीयां न काइड़े ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरु इसमें, अत्यन्त बिरह दिखा रहे हैं कि 'पीरि' = हे हमारे प्यारे परमेश्वर ! 'पाण' = आप, पसाइड़े = दर्शन देओ । मूं = मेरे, तन में, भाइड़े = बिरह की धधक लगी है। यह पांधी = पथिक रूप जीवात्मा, 'बींदो = आपका बन्दा, 'नकरीला' = निकल रहा है, जा रहा है। असां साण = हमारे साथ, आप, 'गल्हाइड़े' = बात करिये । सांई = हे हमारे स्वामी ! हम, सिकां = तीव्र इच्छा, से पुकार रहे हैं । हमको आप अपनी, गुझी = गुप्त, गालि = बात, सेनाइड़े = सुनाइये । हम आपके, अपना, पाक = पवित्र, केला = अद्वैत स्वरूप को, पंसा = देखें । यह हमारी 'सिक' = तीव्र इच्छा है । इसे आप 'लाहिड़े = पूरी करो । आप हमारे 'कलूब' = हृदय में प्रगट होकर, हमसे, मेला = मिलें। तोड़े = आपके बिना, बीयां = अन्य, काइड़े = कोई, की भी मुझे इच्छा नहीं है ।

171

को मैड़ि दो सज्जणा, सुहारि सुरति केला,
लगे डीहु घणां ।।टेक।।
पीरीयां संदी गाल्हड़ीला, पांधीड़ा पूछां ।
कड़ीं ईंदो मूं गरेला, डीदों बांह असां ।।
आहे सिक दीदार जीला, पिरी पूर पसां ।
इयं दादू जे ज्यंद येला, सजण सांण रहां ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरु इसमें अत्यन्त विरह दिखा रहे हैं कि को मड़ि = कोई, सच्चे मुक्तजन संत, दया करके मुझको, सुहारि = अति सुन्दर, केला = अद्वैत हमारे सज्जन परमेश्वर से मिलाओ । उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते करते बहुत 'डीहु' = दिन लग गये हैं। अपने 'पीरीयां' = प्रियतम, संदी = की, 'गरेला' = बातें पहुंचे हुए संतरूप पांधीड़ा = पथिकों से पूछते हैं कि वे प्रियतम, मूं = मेरे ईंदो = हृदय रूपी घर में आकर, 'कड़ी' = कब 'असां' = हमारे, गरेला = गले में, अपनी भुजा 'डीदो' = देंगे ? उनके 'दीदार जीला' = दर्शन के लिये, 'सिक' = तीव्र इच्छा, आहे = लग रही है । हे प्रियतम ! हम आपको 'पसां' = देखें । यह हमारी, पूर = भीतर की उत्कंठा है । हे सज्जन ! मैं सदा आप के 'संग रहां' = साथ रहूं । मेरे 'ज्यंद' = जीवन के, येला = लिये, 'इयं' = ऐसी, व्यवस्था कीजिये ।

172· विनती

हरि हां दिखावो नैना, सुन्दर मूरति मोहना ।
बोलि सुनाओ बैना ।।टेक।।
प्रगटि पुरातन खंडना, महीमान सुख मंडना ।
अविनासी अपरम्परा, दीनदयाल गगन धरा ।
पारब्रह्म परिपूरणा, दरस देहु दुख दूरणा ।
कर कृपा करूणामई, तब दादू देखे तुम दई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें परमेश्वर से दर्शना अर्थ बिनती कर रहे हैं कि हे हरि ! तब परमेश्वर बोले :- हां क्या है ? हे प्रभु ! हमको आपके दर्शन कराओ, अपनी सुन्दर मन मोहनी मूर्ति का । और फिर आप अपने मुखारबिन्द से, भक्ति ज्ञान वैराग्य के बचन सुनाओ । और हमारे हृदय में प्रगट होकर, मेरे पुरातन संचित कर्म बन्धन को काटिये तथा आपके महान महिमा से, हमारे हृदय में आनन्द को बैढाइये । हे अविनाशी! वार पार रहित, अपार स्वरूप, दीन दयाल, धरती आकाश के आधारभूत, हे पारब्रह्म ! परिपूर्ण स्वरूप, आप अपने व्यापक स्वरूप का हमारे हृदय में दर्शन देकर, आपकी अप्राप्ति रूप दुख को दूर करिये । हे करुणा सागर ! हम बिरहजनों पर आप ऐसी कृपा करो, तब हम बिरहीजन आपका दर्शन पावैं ।

173. निस्पृहता

राम सुख सेवग जाने रे, दूजा दुख करि मानै रे ।।टेक।।
और अग्नि की झाला, फंद रोपे हैं जम जाला ।
सम काल कठिन सर पेखैं, यह सिंह रूप सब देखैं ।।
बिख सागर लहर तरंगा, यहु ऐसा कूप भुवंगा ।
भैभीत भयानक भारी, रिपु करवत मीच बिचारी ।।
यहु ऐसा रूप छलावा, ठग फांसी हारा आवा ।
सब ऐसा देखि बिचारे, ये प्रान घात बटपारे ।।
ऐसा जन सेवग सोई, मन और न भावै कोई ।
हरि प्रेम मगन रंगि राता, दादू राम रमै रसि माता ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, संतभक्तों की निस्पृहता दिखा रहे हैं कि संतजन एक राम को ही सुख स्वरूप जानते हैं, राम से अलग और सबको दुख रूप मानते हैं । माया और माया का कार्य, वह सब अग्नि की ज्वाला के समान, चिन्ता द्वारा जलाने वाले हैं । यह माया ने, यमराज का जाल बिछा कर, जीवों को फंसाने के लिये, फंदे रोपे हैं । इन सबको, काल के कठिन सर (बाण) के समान देखै । और यह भयंकर सिंह रूप जीवों को खाने वाले काल रूप हैं । जो मन में विषयों की वासना रूप तरंग उठती है, वह विष समुद्र की लहर के समान है । जैसे सर्पों से परिपूर्ण कूप भयंकर होता है, ऐसा ही अति भयानक, भय देने वाला यह संसार रूपी कुआ है । इसमें नाना प्रकार के संशय रूप सर्प पड़े हुए हैं । यह भयानक भय और करतव से

चीर कर मारने वाले शत्रुओं के समान हैं। यह ठग तथा गले में फांसी डालने वाले हैं, किन्तु ऐसे छलिया के रूप में सामने आते हैं कि अज्ञानी प्राणी इसे हितकर मान लेते हैं। फिर भी साधक जन भगवान से भिन्न, सबको विचार पूर्वक ऐसे देखते हैं कि यह माया के बनाए हुए ऐसे ठग, छलावे रूप छलने वाले हैं, जैसे रास्ते में प्राणों के घातक लुटेरे लूट लेते हैं इसी प्रकार स्त्री धन पुत्र परिवार, यह सब मोह रूप फांसी डाल कर, मोक्ष मार्ग में प्रतिबन्धक हैं।

जो कोई ऐसा निसप्रिय जन भक्त होता है, उसके मन को भगवान् के बिना, और कोई भी प्रिय नहीं लगते। वह तो हरि में अनुरक्त रहकर, हरि प्रेम में निमग्न रहता है और प्रेम रस से मस्त हुआ, राम के साथ ही रमण करता है।

दोहा :- किलो बणत कही छीतरी, डारि लेहु कही नाम।
दूणी कोडी देंगे, अलसानै गये धाम ॥१७३॥

दृष्टान्त :- एक राजा का किला बनता था। राजा भक्त थे। मंत्री को बोले :- इन मजदूरों को जाकर बोलो कि मिट्टी खोदते समय, राम राम कहो, टोकरी में डालते समय राम राम कहो, लेकर आते समय राम राम कहो और फिर वापिस जाते समय राम राम कहो। आपस में दूसरी बात मत करो। तुमको दुगनी मजदूरी मिलैगी। थोड़ी देर तो वैसे करने लगे और फिर बातें करनी शुरू कर दिया। राजा बोले :- जैसे तुम्हें बताया, वैसे करो। फिर राम राम करने लगे, फिर बातें करने लग गये। शाम को सब मजदूर बोले :- हमारे पैसे दे दो, हम कल काम करने नहीं आवैंगें। राजा बोले :- क्या बात है ? क्यों नहीं आवोगे ? मजदूर बोले :- हमसे राम राम नहीं होता है, मिट्टी तो डाल देंगे, परन्तु राम राम नहीं करैंगे। राम राम से उदास होकर, घर चले गये।

---

174. साधु महिमा

आप निरंजन यौं कहै, कीरति करतार।
मैं जन सेवग द्वै नहीं, एकै अंगै सार ॥टेक॥
मम कारणि सब पर हरै, आपा अभिमान।
सदा अखंडित उर धरै, बोलै भगवान ॥

अनतर पट जीवै नहीं, तब हीं मरि जाइ।
बिछुरे तलपै मीन ज्यूं, जीवै जल आइ ॥
क्षीर नीर ज्यूं मिलि रहै, जल जलहि समान।
आतम पाणी लूण ज्यूं, दूजा नांही आन ॥
मैं जन सेवग द्वै नहीं, मेरा विश्राम।
मेरा जन मुझ सारखा, दादू कहै रे राम ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें संत महिमा का स्वरूप बता रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! स्वयं निरन्जन राम संतों का यश प्रकार कहते हैं--मैं और मेरे सेवक संतजन दो नहीं हैं, किन्तु एक ही अंग रूप हैं। जो मेरी प्राप्ति के लिये शरीर का अभिमान और कुल कुटुम्ब का आपा त्याग दिया है और सदा अपनी वृत्ति को बहिर्मुख से अन्तर्मुखी हृदय प्रदेश में मुझ में लगाकर, बाणी से मेरा नाम स्मरण करते रहते हैं। उन विरहीजन भक्तों के, और मेरे बीच में, यदि कोई पड़दा आ जाये, तो वह मेरे दर्शनों के बिना, तलफ तलफ कर मर जाते हैं। मेरे वियोग से मछली की तरह तड़फते रहते हैं। मछली को जल प्राप्त हो जाय, तो तभी जी जाती है। इसी प्रकार वह मेरा दर्शन पाते ही, सुखी हो जाते हैं। वह जल दूध की भांति, मुझमें एक रूप होकर, और जल में जल मिल जाये, इस प्रकार मेरे चेतन्य स्वरूप में अभेद रहते है। जैसे पानी में नमक जलरूप होता है, वैसे ही उनकी आत्मा ब्रह्मस्वरुप में अभेद रहती है। फिर उनमें द्वैतभाव समाप्त हो जाता है। परमेश्वर कहते हैं कि हे संतो ! मेरे भक्तजनों में और मुझमें द्वैतभाव नहीं है। ऐसे मैं मेरे भक्तों में विश्राम करता हूं और भक्त मेरे में विश्राम करते हैं। मेरे भक्तजन मेरे स्वरूप ही हैं। ऐसे जानकर तत्ववेता, मेरा स्मरण करते रहते हैं।

175. परिचय विनती

शरण तुम्हारी केसवा, मैं अनन्त सुख पाया।
भाग बड़े तूं भेटिया, हौं चरणौं आया ॥टेक॥
मेरी तपति मिटी तुम्ह देखतां, सीतल भयो भारी।
भव बंधन मुकता भया, जब मिले मुरारी ॥

भरम भेद सब भूलिया, चेतनि चित्त लाया ।
पारस सूं परचा भया, उन सहज लखाया ॥
मेरा चंचल चित्त निहचल भया, इब अन्त न जाई ।
मगन भया सर बेधिया, रस पीया अघाई ॥
सनमुख व्है तैं सुख दिया, यहु दया तुम्हारी ।
दादू दरसन पावई, पीव प्राण अधारी ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें, परमेश्वर से परिचय विनती कर रहे हैं कि हे केशव ! मैं आपकी शरण में आकर, जब आपका दर्शन किया, तब से मैं अनन्त सुखी हो रहा हूं । जिस सुख का कभी अन्त नहीं होता, उस सुख को प्राप्त कर लिया है । हे नाथ ! मेरा आज बड़ा भाग्य उदय हुआ है, जो आपने दर्शन दिये । अब मैं आपके चरणों में समा रहा हूं । मेरे हृदय में सम्पूर्ण बिरह की तप्त शान्त हो गई । आपका दर्शन पाते ही, मैं अक्षय शान्ति को प्राप्त हो रहा हूं । हे मुरारी ! जब आपसे हम मिले तभी से संसार के जन्म मरण रूपी, हमारे सम्पूर्ण बन्धन कट गये हैं । पांच प्रकार के भ्रम और पांच प्रकार के भेद को हम भूल गयें हैं । और अपने चित्त को, आप समष्टि चेतन में लगाकर, हम एक रूप हो रहे हैं । हे नाथ । पारसरूप ब्रह्मवेता गुरूदेव से, जब हम मिले, तब उन्होंने आपको हमारा आत्म स्वरूप करके ही बताये हैं । तभी से हमारा चंचल चित्त, आप निश्चल आत्म स्वरूप में स्थिर हो रहा है । अब आपको छोड़कर अन्यत्र बासना द्वारा, संसार में नहीं जाता है । जब से हमारा मन, गुरु उपदेश रूपी बाण से बिध गया है, तब से जीव ब्रह्म की एकता रूपी रस को, तृप्त होकर पी रहा है । हे नाथ ! आप हमारे सन्मुख आकर दर्शन दिये, यह आपकी हम पर पूर्ण कृपा है । हे प्राणाधार । हे मुख प्रीति के विषय परमेश्वर ! आपकी दया से ही आपके बिरहीजन भक्तो को, आपका दर्शन प्राप्त होता है ।

176. परस्पर गोष्टी परिचय विनती

गोबिन्दा राखौ अपणी ओट, काम क्रोध भये बटपारे,
ताकि मारैं उर चोट ॥टेक॥
बैरीं पंच सबल संगि मेरे, मारग रोकि रहे ।
काल अहेडी बधिक व्है लागै, ज्यूं जिव बाज गहे ॥

ग्यान ध्यान हिरदै हरि लीना, संग ही घेरि रहे ।
समझि न परई बाप रमईया, तुम्ह बिन सूल सहै ।।
सरण तुम्हारी राखौ गोबिन्द, इन सौं संग न दीजे ।
इनके संगि बहुत दुख पाया, दादू कूँ गहि लीजै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें परमेश्वर की शरण बता रहे हैं । अपने को उपलक्ष करके कप रहे हैं कि हे गोबिन्द ! हमको अब आप अपने चरणों की ओट में रखिये । यह काम क्रोध, लोभ, मोह आदि लुटेरे हमारे हृदय में मौक़ा पाकर चोट मारते हैं । और पंच ज्ञानेन्द्रियें रूपी शत्रु, यह सब बड़े बलवान, हमारे रात दिन साथ ही रहते हैं । आपकी प्राप्ति के मार्ग में, हमको हर समय रूकावट डालते रहते हैं । और काल तो मानो बाण लेकर बधिक रूप से, हमारे पीछे, हमारी शिकार करने को पड़ रहा है, जैसे पक्षियों को बाज पकड़ता हैं । ऐसे हमारे सिर पर ही घूमता रहता हैं, काल रूपी बाज । हे हरि । हमारें अन्तःकरण से आपके ज्ञान ध्यान को हर रहा है । अपने संग हर समय हमको घेर रखे हैं । हे पिता ! हे राम ! हमारे समझ में नहीं आती है । आपकी प्राप्ति बिना, हम हर समय, सेल की चोट जैसा दुख सह रहे हैं । हे गोबिन्द ! अब आप हमको, अपनी शरण में रखिये, इनका साथ हमको नहीं देना । इनके साथ हम जन्म जन्मान्तरों में बहुत दुख पाये हैं । अबतो हमको आप, अपनी शरण में ग्रहण कर लो ।

177. भयमान विनती

राम कृपा करि होहु दयाला, दरसन देहु करहु प्रतिपाला ।।टेक।।
बालक दूध न देइ माता, तो वै क्यूं करि जिवै बिधाता ।
गुण औगुण हरि कुछ न बिचारै, अंतर हेति प्रीति करि पालै ।
अपणौ जाणी करै प्रतिपाला, नैन निकट उर धरै गोपाला ।
दादू कहै नहीं बस मेरा, तूं माता मैं बालक तेरा ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें, भयमान विनती कर रहे हैं कि हे राम ! दयामूर्ति दयालु,अब हमारे ऊपर कृपा करो । हमें अपने स्वरूप का दर्शन देकर, हमारा प्रतिपालन करिये । हे प्रभु ! शिशु बच्चे को यदि माता दूध नहीं पिलावै, तो वह बच्चा कैसे जी सकता है ? इस प्रकार हम तो आपके छोटे बच्चे हैं । आप ही

ही हमको अपना दर्शन रूपी दूध पिलाईये । हे हरि ! आप तो हमारें माता रूप हैं, गुण अवगुणों पर जैसे माता दृष्टि न देकर भी, भीतर की प्रीति से बच्चे को पालती हैं, अपना पुत्र जानकर, प्रतिपालना करती है । हे गोपाल ! इसी प्रकार, आप भी हमको, अपनी दृष्टि के सामने रखिए । हम तो आपके बालक हैं । हमारा आप पर कोई जोर नहीं चलता है, केवल रोने के सिवाय । आप ही हमारी माता रूप हो, रक्षा करने वाली ।

178. बिनती

भगति मांगू बाप भगति मांगौं, मूनै ताहरा नांव नौ प्रेम लागौ ।
शिवपुर ब्रह्मपुर सर्व सौं कीजिये, अमर थावा नहिं लोक मांगौं ।
आपि अवलंबन ताहरा अंगनौं, भगति सजीवनी रंगि राचौं ।
देहनै ग्रेहनौं बास बैकुंठ तणौं, इन्द्र आसण नहीं मुकती जाचौं ।
भगति वाहली खरी, आपि अविचल हरि, निर्मलौ नाउं रस
पान भावै ।
सिद्धि नै रिद्धि नै राजरूड़ौ नहीं, देव पद माहरै काजि न आवै ।
आत्मा अंतरि सदा निरंतरि, ताहरी बाप जी भगति दीजै ।
कहै दादू हिवै कौड़ी दत आपै, तुम्ह बिना ते अम्हे नही लीजै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें अनन्य भक्ति की याचना कर रहे हैं कि हे परम पिता परमेश्वर ! हम तो अब आपकी अनन्य भक्ति, आपसे मांगते हैं । क्योंकि आपके नाम स्मरण का हमारे अन्तःकरण में प्रेम लगा हैं । हे नाथ ! शिवपुरी, कैलाश, ब्रह्मलोक उन सबसे मुझे क्या लेना है ? और अमर होकर हम क्या करेंगे ? और स्वर्ग आदि लोकों में भी जाकर, क्या करैंगे ? आप दया करके, आपके स्वरूप को प्राप्त कराने वाली, आपकी अनन्य भक्ति, हमको दीजिये । आपकी इस निष्काम भक्ति रूप रंग में ही हमारा मन सप्रेम लगै, क्योंकि इस अनन्य भक्ति द्वारा, हम आप सजीवन स्वरूप को प्राप्त होवैंगे । न हमें देह प्राप्त करके, घर में रहने की, या बैकुण्ठ में बसने की ही इच्छा है । न इन्द्रासन की ही इच्छा है । न हम आपसे चार प्रकार की मुक्ति ही मांगते हैं । हे परमेश्वर ! आपकी प्यारी भक्ति ही हमें खरी सच्ची लगती है । हे हरि ! जैसे आप अविचल हो, ऐसा ही आपका निष्काम नाम स्मरण रूपी रस, हमको प्रिय लगता है । न हमें सिद्धियों की इच्छा है, न

रिद्धियों की, न राज पद की ही इच्छा है । और देव पद प्राप्त करने से हमें क्या मतलब है ? हे बाप जी ! हमारे अन्तःकरण में आप अपनी अनन्य भक्ति दीजिये । हे प्रभु ! हमें अब आप चाहे, करोड़ों का धन देवें, वह भी हम आपके बिना नहीं लेंगे ।

179

एव्हो एक तूं राम जी नाम रूड़ो ।
ताहरा नाम बिना बीजो सबै ही कूड़ो ।।टेक।।
तुम्ह बिन अवर कोई कलिमां नहीं, सुमिरतां संत नै
साद आपै ।
कर्म कीधा कोटि छोड़वै बांधो, नाम लेतां खिणत ही
ये कापै ।।
संत न सांकडो दुष्ट पीड़ा करै, बाहरै बाहलो
बेगि आवै ।
पापना पुंज परहा करी लीधो, भाजियां भर्म जोनि
न आवै ।।
साधनैं दुहेलौ तहां तूं आकुलो, माहरो माहरो करी
नैं धाए ।
दुष्टनै मारिबा संत नै तारिबा, प्रगट थावा तिहां
आप जाए ।।
नाम लेतां खिन नाथ तैं एकलैं, कोटिना कर्मनां
छेद कीधा ।
कहै दादू हिवैं तुम्ह बिना को नहीं, साखी बोलैं जे
सरण लीधा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, अनन्य, भाव कह रहे हैं; कि हे राम जी ! ‘एव्हो’ = जैसे, आप अखण्ड अद्वितीय स्वरूप हैं ऐसे आपका नाम स्मरण भी, हमको ‘रूड़ो’ = अति उत्तम, लगता है । आपके नाम बिना और सब ‘कूड़ो’ = मिथ्या है । स्मरण करने से संत को ‘साद आवै = आनन्द देने वाला, ऐसा आपके नाम बिना, इम कलयुग में और कोई नहीं है । पूर्व किये हुए करोड़ों प्रकार के कर्म बन्धनों से बंधे हुए प्राणी को, “खिणतहीं” = एक क्षण में आपका नाम स्मरण, कर्म बन्धन से मुक्त करता है । दुष्ट जब संतों को सताते हैं, तब आप अपने संतों के, ‘वाहलो’ = प्यारे, शीघ्र ही संत की, ‘वाहरैं’ = सहायता के लिये, संत के पास आते हो । जिस संत ने नाम स्मरण द्वारा, सम्पूर्ण पाप को दूर करके, आपके स्वरूप का ज्ञान, लीधो = प्राप्त किया है, उनका भेद जन्य भय भ्रम, अन्तःकरण से दूर हो गया है । वह फिर ज्ञान द्वारा मुक्त हो जाते हैं । जन्म मरण में नहीं जाते । ऐसे संतों को जब दुख होता है । तब आप आतुरता से व्याकुल होकर, “मेरा है मेंरा है” ऐसे करते हुए, उसकी रक्षा के लिये, वह जहां भी होता है, वहीं आप दौड़कर जाते हो । और फिर वहां प्रगट होकर, दुष्ट को मारकर, संत को तारते हो । हे नाथ ! फिर आपका नाम स्मरण करते ही, आप अकेले ही, अपने भक्तों के करोड़ों कर्मों को काटते हो । आपके बिना, अब हमारा और कोई भी आश्रय नहीं है, क्योंकि जिन संतों ने आपकी शरण ली है, अथवा जिन संतों को आपने अपनी शरण में लिये हैं, वह आपकी महिमा की ऐसी ही, गवाही देते हैं ।

180. परिचय बिनती

हरि नाम देहु निरंजन तेरा, हरि हरखै जपैं जीव मेरा ।।टेक।।
भाव भगति हेत हरि दीजे, प्रेम उमंगि मन आवै ।
कोमल बचन दीनता दीजै, राम रसाइण भावै ।।
बिरह बैराग प्रीति मोहि दीजै, हिरदै सांच सति भाखौं ।
चित्त चरणौं चिंतामणि दीजै, अंतर दिढ करि राखौं ।।
सहज संतोष शील सब दीजे, मन निसचल तुम्ह लागै ।
चेतनि चिंतनि सदा निवासी, संगी तुम्हारे जागै ।।
ग्यान ध्यान मोहन मोहि दीजै, सुरति सदा सँगी तेरे ।
दीन दयाल दादू को दीजै, परम जोति घट मेरे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परिचय विनती कर रहे हैं कि हे निरंजनदेव रूप हरि! आपका नाम स्मरण हमको दीजिये, क्योंकि फिर हमारा जीव, आपके नाम को प्रसन्न होकर जपैगा। फिर आप हमको, आपके संत भक्तों में भाव भक्ति दीजिये और हमारे मन में, आपका प्रेम दीजिये। हमारे वचन में कोमलता दीजिये। संत भक्तों के सामने दीन होकर रहें, ऐसी कृपा कीजिये। और आपके नाम स्मरण रूपी रस पीने में, हमारी हमारी दिन दिन प्रीति बढ़ती रहै। यही हमको प्रिय लगता है। आपके बिरह का दर्द, विषयों से वैराग्य, आपके चरणों में अखंड प्रीति, हृदय में सत्यता, वाणी से सत्य शब्दों का उच्चारण करें। और हमारा चित्त, आपके तेज पुंज के चरणों में लगा रहै। आपका निष्काम नाम स्मरण रूप चितामणि दीजे, जिससे हम हृदय में दृढ़ता पूर्वक नाम को धारण करैं। निरद्वन्दता, संतोष, ब्रह्मचर्य, यह सब सद्गुण, हमें आप बखशीश करैं। और आपके चेतन्य स्वरूप में हमारा मन, सदैव निश्चल रहै। आप चेतन्य ब्रह्म स्वरूप आत्मा का, श्वांस श्वांस पर चिन्तन बना रहै, और सदा आपमें अभेद रहै। अज्ञानता से जागकर, सदा आपके संग रहैं। हे मन मोहन! आपका अद्वैत ज्ञान और अहंग्रह ध्यान, यही सब, हमें आप दीजिये। और फिर हमारी वृत्ति, आपके स्वरूपाकार बनी रहै। हे दीनों पर दया करने वाले परमेश्वर! आप हम पर दया करके, हमारे अन्तःकरण में आपकी श्रेष्ठ ज्ञान ज्योति जगाइये।

181. आशीर्वाद मंगल

जै जै जै जगदीस तूं, तूं समर्थ सांई।
सकल भवन भानैं, घड़ै, दूजा को नांही ॥टेक॥
काल मीच करूणा करै, जम किंकर माया।
महा जोध बलिवंत बली, भय कंपै राया ॥
जुरा मरण तुम्ह थैं डरै, मन कौं भै भारी।
काम दलन करूणा मई, तूं देव मुरारी ॥
सब कंपै करतार थैं, भव बंधन पासा।
अरि रिपु भंजन भयगता, सब विघन विनासा ॥
सिर उपर सांई खड़ा, सोई हम मांहीं।
दादू सेवगराम का, निर्भै न डराहीं ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें आशीर्वाद मंगल दिखा रहे हैं कि हे सत् चित् आनन्द रूप जगदीश परमेश्वर ! आपकी जय हो । आप ही समर्थ, सर्व के स्वामी हो । तीन लोक और चौदह भवन की आप उत्पत्ति करते हो और आप ही सबको नष्ट करते हो । हे समर्थ ! आपकी जय हो । आपके सिवाय ऐसा समर्थ, और दूसरा कोई भी नहीं है । आपके सामने काल रूप मृत्यु भी, हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है । और यमराज यम के दूत भी, कंपायमान होते हैं । बड़े बड़े योद्धा बलिष्ट भी, और सब प्रकार का भय, यह सब ही आपकी समर्थाई के सामने कंपायमान हो रहे हैं । जर जर अवस्था, मरण और भय भी, यह सब आपके सामने डर रहे हैं । और मन का भारी भय भी, आपके सामने डर रहा है । हे समर्थ ! आप काम क्रोध आदि शत्रुओं का दलन करने वाले हो । आपके सामने यह सब करुणा कर रहे हैं । हे मुरारी ! सृष्टि के रचिता ! आपसे संसार के सम्पूर्ण कर्म बन्धन भी, कंपायमान हो रहे हैं । आपसे अन्तर आसुरी गुण रूप शत्रु और बाहर के शत्रु, सभी कंपायमान होते हैं । आप अपने भक्तों के सम्पूर्ण शत्रुओं को नाश करने वाले हो । आपके सामने सब प्रकार का भय, नष्ट होता है । सम्पूर्ण पाप ताप आदि विघ्नों को, आप नाश करने वाले हो । हे स्वामी ! आप सबके सिर ऊपर हो । वही आपका चेतन्य स्वरूप, हमारे हृदय में विराजमान है । हे राम ! ऐसे हम आपके सेवक, आपके आसरे निर्भय हो रहे हैं । काल कर्म आदि का, अब हमको कुछ भी भय नहीं है ।

182. हित उपदेश

हरि के चरण पकरि मन मेरा, यहु अविनासी घर तेरा ।।टेक।।
जब चरण कवंल रज पावै, तब काल व्याल बौरावै ।
तब त्रिविध ताप तन नासै, तब सुख की रासि बिलासै ।।
जब चरण कवंल चित्त लागै, तब माथैं मीच न जागै ।
तब जनम जुरा सब खोना, तब पद पावन उर लीना ।।
जब चरण कवंल रस पीवै, तब माया न व्यापै जीवै ।
तब भरम करम भै भाजै, तब तीन्यूं लोक बिराजै ।।
जब चरण कंवल रूचि तेरी, तब चारि पदारथ चेरी ।
तब दादू और न बांछै, जब मन लगै सांचै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें हितोपदेश कर रहे हैं कि हे हमारे मन ! अब तूं पापों का हर्ता हरि, उनके चरणों की शरण ग्रहण कर । वे हरि अविनाशी ही, तेरा वास्तविक घर है । जब हरि के प्यारे संतों

के चरणों की रज, ग्रहण करेगा तब फिर तेरा काल रूपी सर्प, बावला हो जायेगा । और तीन प्रकार की जो तन की ताप हैं, वह भी तेरी नष्ट हो जायेंगी । तथा सम्पूर्ण सुख की 'राशि' हरि की भक्ति करके, तूं आनन्द को प्राप्त होगा । जब हृदय कमल में हरि के चरणार्बिन्द में तेरा चित्त लगेगा, तब मेरे सिर पर मौत नहीं आवेगी, और जन्म मृत्यु, जर जर अवस्था भी क्षीण हो जायेगी । जब पवित्र प्रभु चरणों में तूं लीन रहेगा और कमल रूप चरणों की भक्ति अमृत रस को पीवेगा, तब तेरे जीव पर माया और माया का कार्य रूप धर्म, व्याप्त नहीं होगा । तब सम्पूर्ण कर्म भय, तेरा दूर हो जायेगा । तब तीनों लोकों में व्याप्त प्रभु का तुझे, साक्षात्कार होंने लगेगा । जब चेतन्य स्वरूप के, तेज पुंज रूपी चरणोंसें, तेरी प्रीति उत्पन्न होगी, तब चार पदार्थ कहिए अर्थ धर्म काम मोक्ष, यह तेरे सामने सेवक बनकर रहेंगे । परन्तु सच्चे परमेश्वर के निष्कामी भक्त, उन किसी की भी, इक्छा नहीं रखते । अपने मन को सत्य स्वरूप परमेश्वर में लगाकर, मस्त रहते हैं ।

183. संत उपदेश

संतो और कहो क्या कहिये, हम तुम्ह सीख इहै सतगुरू की,
निकट राम के रहिये ।।टेक।
हम तुम्ह मांहि बसे सो स्वामी, सांचे सौं सचु लहिये ।
दरसन परसन जुग जुग कीजै, काहे को दुख सहिये ।।
हम तुम संगि निकट रहैं नेरे, हरि केवल कर गहिये ।
चरण कंवल छाड़ि करि ऐसे, अनत काहे कौ बहिये ।।
हम तुम्ह तारन तेज घन सुन्दर, नीके सौं निरवहिये ।
दादू देख और दुख सब ही, तामैं तन क्यौं दहिये ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें संत उपदेश कर रहे हैं कि हे संतों ! हम आपको और कहो, "क्या कहैं ?" हमारे को और आपको, सत्य उपदेश के देने वाले, परमेश्वर रूप सतगुरू की यही शिक्षा है कि निर्गुण व्यापक रात के स्मरण में स्थिर रहना । हमारें में और आपमें जो चेतन्य परमेश्वर रूप सत स्वरूप स्वामी बास करते हैं, उन्हीं को सत्यता से ग्रहण करिये । अन्तर्मुख वृति द्वारा, उनका आत्म स्वरूप से दर्शन करके, उसी में अभेद होकर रहिये । और बहिरंग साधनों के कलेश को क्यों उठाते हो ? हमारे और आपके हृदय में, अत्यन्त समीप वह प्रभु, बास करते हैं । केवल उन हरि के चरणों की शरण ग्रहण करिये । ऐसे प्रभु के

कमल रूप चरणों की शरण छोड़कर, अन्य साधनों में क्यों भटकते हो ? हमको और आपको तारने वाला सुन्दर तेजोमय परमेश्वर ही सुखरूप हैं। उन्हीं के स्मरण द्वारा, अपना निर्वाह करो। उनको छोड़कर और सब ही साधन दुख रूप हैं। उनमें अपने शरीर को क्यों जलाते हो ?

दोहा :- गलता ते जे आईया, सांभर स्वामी पास।
या पद ते उत्तर दियो, उठि गये होय उदास ।।१८३।।

दृष्टान्त :- गलता से चार वैरागी साधु कंठी तिलक लेकर, सांभर झील छतरी में आकर महाराज को प्रणाम किया और कंठी तिलक सामने रख दिया। तब महाराज ने उपरोक्त शब्द से उन चारों साधुओं को उत्तर दिया। उनमें एक रामदास था, एक घटाराम था, एक जंगीदास था, एक गैबीदास था, महाराज के उपदेश सुनकर, उदास हो गये और नमस्कार करके चले गये।

---

184. मन प्रति उपदेश

मन रे बहुरि न ऐसे होई, पीछैं फिरि पछितावैगा रे,
नींद भरे जनि सोई ।।टेक।।
आगम सारैं संचु करि ले, तो सुख होवैं तोही।
प्रीति करि पीव पाईये, चरणौं राखैं मोही ।।
संसार सागर बिखम अति भारी, जन राखैं मन मोहीं।
दादू रे जन राम नाम सौं, कुसमल देही धोई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव, इसमें मन प्रति उपदेश करते हैं कि हे हमारे मन ! ऐसा मनुष्य जन्म का अवसर फिर नहीं मिलेगा। फिर चौरासी में जाकर, पश्चाताप करना पड़ेगा। इसलिये अब मोहरूप गहरी निद्रा में नहीं सोना। आगे के लिये परमेश्वर का नाम स्मरण रूपी सार कमाई संचित कर ले, तभी तेरे को आगे का सुख प्राप्त होगा। परमेश्वर से प्रीति करके, उस पीव को प्राप्त कर ले। तो वह परमेश्वर तेरे को अपने चरणों में मोहित करके रखेंगे। क्योंकि इस संसार समुद्र से तैरना, बड़ा भारी काम है। अपने मन को परमेश्वर के अलावा, नाम रूप पदार्थों में मोहित करके नहीं रखना। हे जनो ! राम नाम के स्मरण द्वारा, अपने स्थूल सूक्ष्म शरीर के पापों को धो लीजिये। तभी कल्याण को प्राप्त होगे।

185. काल चेतावनी

साथी सावधान व्है रहिये, पलक मांहि परमेश्वर जाणै,
कहा होइ कहा कहिये ॥टेक॥
बाबा बाट घाट कुछ समझि न आवै, दूर गवन
हम जाना ।
परदेसी पंथि चलै अकेला, औघट घाट पयाना ।
बाबा संग न साथी कोइ नहीं तेरा, यहु सब हाट पसारा ।
तरवर पंखी सबै सिधाये, तेरा कौण गंवारा ॥
बाबा सबै बटाऊ पंथि सिरानै, सुथिर नांही कोई ।
अंति काल को आगै पीछै, बिछुरत बार न होई ॥
बाबा काची काया कौण भरोसा, रैनि गई क्या सोवै ।
दादू संबल सुकृत लीजै, सावधान किन होवै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें काल से सावधान कर रहे हैं कि हे साथी ! हमारे मन ! इस मनुष्य शरीर में अब सावधान होकर रहना । अगले पलक में न मालुम क्या से क्या हो जाय? इस बात को परमेश्वर ही जानते हैं । इसके विषय में क्या कहा जा सकता है ? हे संतो ! 'दूर देश में' कहिए परमेश्वर के स्वरूप में हमें जाना है । परन्तु इस मार्ग में बड़ी बड़ी भयंकर, काम क्रोध लोभ मोह आदि पहाड़ों की घाटियां चढ़ना है । इनको उलंघन करने का कुछ उपाय, हमारी समझ में नहीं आ रहा है । यह हमारा जीव परदेशी है और परमेश्वर प्राप्ति के मार्ग पर, अकेले को चलना है और फिर सामने बड़े बड़े भयंकर घाट हैं, विषय वासना रूपी । और पैदल चलने का मार्ग है । हे संतो ! इस जीव का न तो कोई संगी है, न कोई साथ देने वाला ही है । यह सब संसार में, मैं मेरा कुल कुटम्ब, सब आठवें दिन का, हाट का पसारा है । जैसे वृक्ष के ऊपर पक्षी शाम को बैठते हैं और सवेरे सब अपने अपने विचार से उड़ जाते हैं, इसी प्रकार यह सब रिश्ते नातेदार हैं । हे गंवार ! इनमें तेरा कौन है ? कोई किसी का नहीं है, साथ देने वाला । हे संतो ! सभी बटाऊ रूप होकर, मार्ग पर बैठे हुए हैं, इनमें कोई स्थिर रहने वाला नहीं है । सबका काल अंत कर रहा है, किसी का आगे और किसी का पीछे । इनके वियोग होने में कोई देर नहीं लगती । हे संतो ! यह शरीर तो कच्चे घड़े के समान है, इसके नाश होने में देर नहीं लगती । आयु रूपी रात्रि तो बीतती जा रही है । और मोह रूप निद्रा में, तूं क्या सुख से सोता है ? हे मानव ! सुकृत कर्म रूपी, 'संबल' कहिए धन इकट्ठा कर ले । इस मनुष्य शरीर में सावधान क्यों नहीं होता है ।

186. तर्क चेतावनी

मेरा मेरा काहे को कीजै रे, जे कुछ संगि न आवै।
अनत करी नै धन धरीला रे, तेऊ तो रीता जावै ॥टेक॥
माया बंधन अंध न चेतै रे, मेर मांहि लपटाया।
ते जाणै हूं येह बिलासौं, अनत बिरोधे खाया ॥
आप स्वारथ यह बिलुधा रे, आगम मरम न जाणै।
जम कर माथे बाण धरीला, ते तो मनि न आणै ॥
मन बिचार सारी ते लीजै, तिल मांहै तन पड़िबा।
दादू रे तहं तन ताड़ीजै, जेणै मारग चढ़िबा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, तर्क पूर्वक चेतावनी दे रहे हैं कि हे मन ! तूं "यह मेरा है, यह मेरा है, इस प्रकार क्यों करता है ? यह जो भी कुछ देख रहा है। यह न तो संग में आता है और न जाता है। तूं जोड़ जोड़ कर धन इकठ्ठा करता है और जानता है कि यह मेरे अन्त में काम आवेगा। परन्तु तूं तो रीता ही जायेगा। हे अंधे ! यह सब माया के बन्धन हैं। तूं अब तक भी चेत कर नहीं देख रहा है। तूं तो मैं मेरे में लिपट रहा है। तूं जानता है, मैं इसको बिलसूंगा। और दूसरों से विरोध करके, धन खाने को संग्रह करता है। अपने स्वार्थ के लिये, 'बिलूधा' कहिए चिपट रहा है। 'आगे का' कहिए परलोक का, तुझे कुछ भी भय नहीं है। तेरे सिर के ऊपर यमराज ने अपला बाण रख रखा है। उसका तूं मन में विचार नहीं करता है। हे मन ! अब तूं विचार करके परमेश्वर के नाम का स्मरण कर। एक क्षण में, यह तेरा शरीर नष्ट होने वाला है। फिर यमराज के यहां तेरे तन पर ताड़ना होगी। जिस मार्ग से परमेश्वर की तरफ तुझे जाना है। उस भाव भक्ति रूपी मार्ग पर अब तूं चल।

187. हित उपदेश बिनती

सनमुख भईला रे, तब सुख दुख गहला रे, ते मेरे प्राण अधारी।
निराकार निरंजन देवा रे, लेवा तेह बिचारी ॥टेक॥

अपरम्पार परम निज सोई, अलख तोर बिस्तारं ।
अंकुर बीजे सहजि समाना रे, ऐसा समर्थ सारं ॥
जे तैं किन्हा किन्हि इक चीन्हा रे, भइला ते परिमाणं ।
अविगत तोरी बिगति न जानूं, मैं मूरख अयानं ॥
सहजैं तोरा ए मन मोरा, साधन सौं रंग आई ।
दादू तोरी गति नहिं जानै, निर्वाहो कर लाई ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें तर्क पूर्वक चेतावनी कर रहे हैं कि हे मन ! उस परम पिता परमेश्वर के जब तूं सन्मुख होगा, तब तेरे सम्पूर्ण दुख निवृत्त हो जायेंगे। वह परमेश्वर हमारे प्राणों के आधार हैं। वह निराकार निरंजन माया अंजन रहित, दिव्य स्वरूप देव हैं, उनका विचारपूर्वक नाम स्मरण कर।

हे अपरम्पार ! आप परम निज आत्म स्वरूप ही हो। हे अलख ! मन बाणी के अविषय, यह सब विस्तार आपका ही फैलाया हुआ है। जैसे बीज में अंकुर, अंकुर में बीज, वैसे ही आपके सहज स्वरूप में सब समाये हुए हैं। ऐसे आप समर्थ सबके सार रूप हैं। जो आपने किया है, उसको कोई कोई तत्ववेता ही जानता है। वही इस संसार में प्रमाणित हुए हैं। हे अव्यक्त ! आपकी 'गति' कहिए शक्ति, कोई भी नहीं जानते। मैं तो मूर्ख अज्ञानी हूं। सहज स्वभाव से ही, यह हमारा मन, आपके साधनों से हमने इसको रंगा है। हे प्रभु ! परन्तु आपकी गति कोई भी नही जान पाते। जैसे हमारा निर्वाह हो, वैसे ही आप अपने चरणों में हमको लगाइये।

188. मन प्रति सूरातन

हरि मारग मस्तक दीजिये, तब निकटि परम पद लीजिये ॥टेक॥
इस मारग मांहैं मरणा, तिल पीछै पांव न धरणा ।
अब आगै होई सु होई, पीछै सोच न करना कोई ॥
ज्यूं सूरां रण झूझै, तब आपा पर नहिं बूझै ।
सिर साहिब काज संवारै, घण घावां आपा डारै ।
सती सत गहि साचा बोलै, मन निहचल कदे न डोलै ।
वाकै सौच पोच जिय न आवै, जग देखत आप जलावै ॥

इस सिर सौं साटा कीजै, तब अविनाशी पद लीजै ।
ताका तब सिर स्याबति होवै, जब दादू आपा खोवै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें मन प्रति शूरातन का उपदेश करते हैं कि हे मन ! परमेश्वर की प्राप्ति रूप मार्ग में, अपना आपा अभिमान रूपी मस्तक, जब तूं परमेश्वर के अर्पण करेगा, तो तेरे को निकट ही कहिए अन्तःकरण में ही, परम पद प्राप्त होगा । हरि प्राप्ति रूप मार्ग में विषय वासनाओं की तरफ से मर कर चलना । फिर एक पल भी विषयों का मनोरथ नहीं करना । जो कुछ परमार्थ मार्ग में आगे चलते चलते होगा, सो होता रहेगा । फिर पीछे कुल कुटम्ब आदि का सोच नहीं करना । जैसे शूरवीर रणभूमि में जाता है, फिर पीछे कुटम्ब का सोच नहीं करता । मरने से ही डरता है । अपने पराये का कुछ भी सोच नहीं करता । अपना सिर देकर भी, मालिक का काम संवारता है । हथियारों का शरीर पर घाव खाकर भी, अपने उद्देश्य को पूरा करके, अपने स्वामी का प्रिय बन जाता है । जिस प्रकार सती सत्य को धारण करके, मुँह से सत्य उपदेश करती हुई, अपने पति को गोदी में लेकर, चिता में बैठ जाती है और मन पति के ध्यान में निश्चल रहता है । अग्नि के भय से किंचित भी चलायमान नहीं होता । जिस सती के मन में न तो कायरता आती है, न पीछे का सोच ही करती है । जगत के देखते देखते, अपने शरीर को, पति के शव के साथ जलाकर, पति लोक को प्राप्त हो जाती है । हे मन ! इसी प्रकार तूं अपने अहंकार रूपी मस्तक को, परमेश्वर के अर्पण करके, अविनाशी पद को प्राप्त कर ले । इस प्रकार जब जिज्ञासु, अपने मन का आपा अभिमान रूपी मस्तक, परमात्मा के समर्पित करता है, तब उसका सिर प्रमाणित हो जाता है । अर्थात् सार्थक होता है ।

182: कलिजुग

झूठा कलिजुग कह्या न जाइ, अमृत को विष कहैं बनाइ ।।टेक।।
धन को निर्धन, निर्धन को धन, नीति अनीति पुकारै ।
निर्मल मैला, मैला निर्मल, साध चोर करि मारै ।।
कंचन काच काच को कंचन, हीरा कंकर भाखै ।
माणिक मणियां, मणियां माणिक, सांच झूठ करि नाखै ।।
पारस पत्थर, पत्थर पारस, कामधेनु पशु गावै ।
चन्दन काठ, काठ को चन्दन, असी बहुत बनावै ।।

रस को अणरस, अणरस को रस, मीठा खारा होई ।
दादू कलियुग ऐसा बरतै, सांचा बिरला कोई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें कलियुगी प्राणियों का स्वरूप दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! यह कलयुग पापमय युग है । इसका जैसा स्वरूप है, वैसा पूरा कहा भी नहीं जाता । इसमें उत्पन्न हुए विषयी पामर जीव, अमृत रूप सत्य बाणी को, मिथ्या झूठ रूप विष में छिपाकर बोलते हैं । और जिनके हृदय में राम नाम रूपी धन है, उनको तो निर्धन ही कहते हैं और राम नाम रूपी धन रहित, विषयी पामरों को, भक्त जी कहते हैं । नीति को तो अनीति कहते हैं और अनीति को युगधर्म बताकर, नीति कहते हैं । निर्मल पाप आदि दोष रहित सच्चे पुरूषों को, दोषी बतलाते हैं और नाना प्रकार के विषय वासनाओं में, आसक्ति रखते वालों को चरित्रवान निर्मल बताते हैं । और परमेश्वर प्राप्ति के मार्ग पर चलने वाले साधक पुरूषों को, चोर कह कर मारते हैं । कंचन रूप खरे मनुष्य को, काच रूप खोटा बताते हैं और काच रूप खोटे मनुष्यों को, कंचन के समान खरे बताते हैं । हीरा रूप परमेश्वर के नाम को, निरर्थक कंकर रूप जानकर त्यागते हैं, और कहते हैं, राम राम करने में बेकार समय क्यों खोते हो ? माणिक रूप संतों को पाखण्डी बताते हैं और पाखण्डियों को संसार का कल्याण करने वाले, सतगुरू बताते हैं । सत्य को झूठ बताकर त्यागते है । पारस रूप सच्चे ब्रह्मवेताओं को पत्थर रूप बताते हैं । और काले पत्थर की भांति, भेषबाना धारण करने वाले पाखण्डियों, को सच्चे पारस रूप बताते हैं । और कामधेनु, सम्पूर्ण कामना पूर्ण करने वाली गऊ को, साधारण पशुवत बताने लगते हैं । चंदन रूप, जिनमें ज्ञान, भक्ति वैराग्य रूप की सुगन्धि निवास करती है, उनको साधारण काठवत मनुष्य बताते हैं और खाली काठवत मनुष्यों को हास्य रस, श्रृंगार रस की बातें कहने वाले मनुष्य को चंदन रूप कहते हैं । ऐसी ऐसी विपरीत बातें कलियुगी मनुष्य, बहुत सी बना बना कर कहते हैं । जिस जगह एकत्व भावना रूप विचार रूप रस की चर्चा होती है, उस जगह के लिए कहते हैं, वहां कुछ नहीं है । और जिस जगह नाना प्रकार के विषय वासना लूटना खसोटना आदि की बातें होती हैं, वहां सब कुछ रस बताते हैं । जो सबको मीठा सुखरूप हैं, उनको खारे दुखरूप कहते हैं और जो सबको दुख देने वाले, चोन उचक्के उनको मीठा सुख रूप कहते हैं । तत्ववेता सच्चे पुरूष बताते हैं कि कलयुगी प्राणियों का ऐसा ऐसा बर्ताव रहेगा । ऐसे कलयुगी समाज में, सत्यवक्ता पुरूष, कोई बिरले ढूंढ़ने से प्राप्त होंगे ।

190. भगवत् भरोसा

दादू मोहि भरोसा मोटा, तारण तिरण सोई संगि मेरे,
कहा करै कलि खोटा ।।टेक।।

दौं लागी दरीया थैं न्यारी, दरिया मंझि न जाई ।
मच्छई कच्छ रहैं जल जेते, तिनकूं काल न खाई ।।
जब सूवै पिंजर घर पाया, बाज रह्या बन मांहीं ।
जिनका सम्रथ राखणहारा, तिनकूं कोउ डर नांहीं ।।
सांचे झूठन पूजै कबहूं, सति न लागै काई ।
दादू सांचा सहजि समाना, फिरि वै झूठ बिलाई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, भगवत् भरोसा बता रहे हैं कि परमेश्वर के सच्चे संतभक्तों को तो केवल एक समर्थ परमेश्वर का भरोसा है । उसके आसरे निर्भय रहते हैं । अपने संतभक्तों को तारने वाले परमेश्वर, उन्हीं के आसरे, हमारा भी तैरना होगा । वह हमारे अन्तःकरण में, हमारे साथ ही हैं । यह पापमय कलयुग और इसमें उत्पन्न हुए कुकर्मी खोटे प्राणी, हरि भक्तों का क्या बिगाड़ कर सकते हैं ? जब आग लगती है तो दरियाव में रहने वाले मच्छ कच्छ आदि जीवों को, नहीं जला पाती । दरियाव के अन्दर अग्नि की लपट नहीं जाती है । जब तोता पिंजरा रूप घर में बैठा है, तो बन में रहने वाला बाज, उसका क्या बिगाड़ कर सकता है । इसी प्रकार जिन सच्चे, संतभक्तों की रक्षा करने वाला समर्थ परमेश्वर है, उनको फिर कलयुग और कलियुगी प्राणियों का कोई डर नहीं होता । सच्चे संतभक्त कलयुगी झूठे बनावटी, देवी देवताओं को, कभी नहीं पूजते । उन सच्चे पुरूषों के, कलयुग की पाप आदि कालिमा, कभी नहीं लगती है । वह सच्चे पुरूष, सत्य स्वरूप परमात्मा में समा कर रहते हैं और झूठे मिथ्यावादी कलियुगी प्राणी, पुनः पुनः जन्मते मरते रहते हैं ।

191. सांच झूठ निर्णय

सांई को सांच पियारा, सांचै सांच सुहावै देखो,
सांचा सिरजनहारा ।।टेक।।
ज्यूं घण घावां सार घडीजै, झूठ सबै झड़ि जाई ।
घण के घाऊं सार रहैगा, झूठ न मांहि समाई ।।
कनक कसौटी अगनि मुख दीजै, कंप सबै जलि जाई ।
यों तो कसणी सांच सहैगा, झूठ सह नहिं भाई ।।

ज्यूं घृत कूं ले ताता कीजै, ताइ ताइ तत्त कीन्हा ।
ततैं तत्त रहैगा भाई, झूठ सबै जलि खीनां ।।
यौं तो कसणी सांच सहैगा, सांचा कसि कसि लेवै ।
दादू दरसन सांचा पावै, झूठे दरसन देवै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें सत्य और झूठ का निर्णय दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! सत्य स्वरूप परमात्मा को सच्चे संतभक्त ही प्रिय लगते हैं । वह सत्य स्वरूप को सत्य ही प्रिय लगता है, क्योंकि वह सृष्टि रचिता सिरजनहार भी, सत्य स्वरूप ही है । जैसे घण की चोटों से लोहे की कई चीजें लुहार बनाता है । परन्तु पहले उसका सम्पूर्ण मैल अग्नि में तपाकर, घण की चोटों से निकाल देता है । फिर उस लोहे में मैल नहीं समाता है । इसी प्रकार सच्ची कसौटी, सच्चा साधक ही सहन कर सकता है । जैसे सुनार सोने को अग्नि के मुख में तपाता है, तो उसका सम्पूर्ण मैल भस्म हो जाता है, और उसका आभूषण बनाने लगता है । इस प्रकार की कसौटी कोई सच्चा सुवर्ण रूप साधक ही सहन करता है । परमेश्वर से झूठे, सतगुरू से झूठे, वे कोई भी मिथ्यावादी पुरुष, ईश्वर और गुरू की दी हुई कसौटी को नहीं सहन कर सकते । जिस प्रकार घी को तपाकर, उसके अन्दर के फूल छाछ को जला देते हैं । इस प्रकार तपा तपाकर स्वच्छ घी कर लेते हैं । सार स्वरूप घी रहता है, बाकी सब मैल जलकर क्षीण हो जाता है । इसी प्रकार जब ममुक्षु अन्तःकरण से सम्पूर्ण दोष त्याग देता है, तव एक ब्रह्मतत्व मे आत्मा अभेद होकर के रहता है । इस प्रकार की कसौटी, सच्चा साधक ही सहन करेगा, परमेश्वर और सतगुरू, कसौटी में कस कस कर, अपनी शरण में लेते हैं । ऐसे सच्चे साधक ही सत्य स्वरूप परमात्मा का दर्शन पाते हैं । झूठे मिथ्यावादी विषयी पामर मनुष्यों को, परमेश्वर अपना दर्शन नहीं देते ।

192. करणी बिना कथनी

बातैं बाद जाहिंगी भाइये, तुम्ह जनि जानौं बात न पइये ।।टेक।।
जब लग अपना आपा न जानै, तब लग कथनी काची ।
आपा जान सांई को जानै, तब कथनी सब सांची ।।
करनी बिना कंथ नही पावै, काहै सुने का होई ।
जैसी कहै करै जे तैसी, पावैगा जन सोई ।।

बातन हीं जे निर्मल होवै, तो काहे को कसी लीजै ।
सोना अगनि दहै दस वारा, तब यहु प्रान पतीजै ।।
यौं हम जाना मन पतियाना, करनी कठिन अपारा ।
दादू तन का आपा जारै, तो तिरत न लागै बारा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें कर्त्तव्य रहित कथन दिखा रहे हैं कि हे भाई ! कर्त्तव्य कर्म किये बिना, केवल बातों के करने से तो, कुछ भी नहीं होता है । तूं यह नहीं जानना कि बातों के करने से ही परमेश्वर की प्राप्ति हो जायेगी । जब तक अपने आपे को मिथ्या नहीं जानेगा, तब तक परमार्थ मार्ग का तेरा कथन मिथ्या ही है । जब अपने आपे अभिमान को मिथ्या जानेगा, तभी परमेश्वर को सत्य स्वरूप करके पहचानेगा । तब तो तेरा कथन, परमार्थ मार्ग का सत्य है । सत्यतायुक्त करणी किये बिना, कंथ परमेश्वर रूप पति प्राप्त नहीं होता है । खाली कथनी कथने से और खाली सुनने से, परमपद की प्राप्ति नहीं होती । जैसी कथनी कथै, वैसे ही कायक बाचक मानसिक क्रिया से करै, वही पुरुष परमात्मा को प्राप्त करैगा । बातों के करने से ही, निर्मल कहिये पाप रहित हो जाय, तो फिर कसौटी देने की कोई आवश्यकता नहीं रहती । परन्तु बातों के करने से निर्मल नहीं होता है । सुनार सोने को दस दफा अग्नि में तपाकर मैल जलाता है, फिर विचारता है कि अब इसमें कोई खोट नहीं है । इस प्रकार हमने मन में विचार किया है कि करणी कहिए परमात्मा की प्राप्ति के साधन कठिन हैं । जब अपने शरीर का अध्यास ज्ञानाग्नि में जला दे, तो फिर संसार समुद्र से तैरने में विलम्ब नहीं लगता ।

193. उपदेश

पंडित राम मिलै सो कीजे, पढि पढि वेद पुरान बखानत्त
सोई तत्त कहि दीजै ।।टेक।।
आत्म रोगी विखम बियाधी, सोई करौं औषधि सारा ।
परसत प्राणी होइ परम सुख, छूटै सब संसारा ।।
ए गुण इन्द्रीय अग्नि अपारा, ता सन जलै सरीरा ।
तन मन सीतल होइ सदा सुख, सो जल नहाओ नीरा ।।

सोई मार्ग हमहि बतावो, जेहि पंथ पहुंचै पारा ।
भूलि न पड़ै उलटि नहीं आवै, सो कुछै करहु बिचारा ।।
गुरू उपदेश देहु कर दीपक, तिमिर मिटै सब सूझै ।
दादू सोई पंडित ज्ञाता, राम मिलन की बूझै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! जिस मार्ग से राम की प्राप्ति होवै, उसी मार्ग पर चलने का काम करना चाहिये । इसलिये शरीरधारी को, राम नाम का स्मरण, निष्काम भाव से करने से ही, राम की प्राप्ति होती है । वेद और पुराणों का प्रवचन करने से ही, राम की प्राप्ति नहीं होती । वेद पुराण लक्षणा वृत्ति द्वारा, जिस तत्व को बतलाते हैं, उसी चेतन्य तत्व का, अपने मन को उपदेश करके, ग्रहण करिये । यह जीवात्मा जन्म मरण रूपी व्याधियों से अति रोगी रहता है । इसलिये वह चेतन्य सबका सार रूप परमेश्वर है । उसका नाम स्मरण रूप, औषधि करनी चाहिये । जिससे यह प्राणधारी, उस राम का स्पर्श करके, परम सुख को प्राप्त होवै, तभी सम्पूर्ण संसार से छुटकारा होता है । इन इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, गुण रूप अपार अग्नि में, शरीर सदैव जलता रहता है । हे भाई ! अब उसी निष्काम नाम स्मरण रूप जल से स्नान करो, जिससे तन और मन, शीतलता को प्राप्त होकर, सदा सुख की अनुभुति करै । इसके सिवाय और दूसरी कोई साधना है तो मुक्तपुरूष कहते हैं कि वह हमें बताओ । जिस मार्ग से चलकर, संसार से पार, परमेश्वर को प्राप्त हो जावैं । परन्तु यह जीव मायिक सुखों में, उस परमेश्वर को भूलकर, फिर वापिस संसार में न आवै । उस मार्ग का विचार करो, वह कौनसा मार्ग है ? वह तो केवल गुरू का ज्ञान उपदेश रूप दीपक, बुद्धिरूप हाथ में लेकर, अन्तःकरण में अन्तर्मुख आने से ही, अज्ञानरूप तिमर, अन्धकाक नष्ट होता है । तब सत्य मिथ्या का स्वरूप, जैसा है, वैसा प्रतीत होने लगता है । मुक्त पुरूष कहते हैं कि वही शरीरधारी पंडित, वेद पुरानों को पढने वाला, श्रेष्ठ है, जो राम के मिलने के मार्ग को, अन्तर्मुख वृत्ति से समझता है ।

दोहा :- जग जीवन जी बैल लदि, आये चरचा काज ।
गुरू दादू यह पद कह्यो, सब तजि सिख सिरताज ।।१६३।।

दृष्टान्त :- जगजीवन जी पंडित, कई विद्यार्थियों को साथ लिये, पुस्तकों की बालद भरके, कासी से दिग्विजय करने को चले । जहां तहां शास्त्रार्थ में, पंडितों को जीतते हुए' उनसे जीत के पत्र प्राप्त करते करते

आमेर आ पहुंचे । वहां के सम्पूर्ण विद्वानों को, इन्होंने शास्त्रार्थ में जीत लिया और उनसे अपनी जीत का पत्र मांगा। तब वे सब ब्रह्मऋषि जगत गुरू दादू दयाल महाराज के पास आकर, नमस्कार किया और उपरोक्त सब बात सुनाई और बोले, हमारी लाज आप बचाइये और आमावती नगर की शोभा बढाइये। परमगुरूदेव बोले कि आप खास दरबार में पंडित जी को बुलाओ, राजा के समक्ष में। दिन निश्चय कर लिया। उस रोज राजा मानसिंह के आमखास दरबार में ब्रह्मऋषि पधारे। राजा के सहित सभी दरबारियों ने सतगुरू को नमस्कार करके चरण स्पर्श किये और आसन पर पधराये। सम्पूर्ण विद्वानों की सभा लगी। फिर महाराज का आदेश पाकर, पंडित जी को लेने गये। जगजीवन राम जी को, आमेर के पंडित बोले कि आज आप हमारे गुरूदेव को, शास्त्रार्थ में जीत लीजिये, तो हम आपको जीत का पत्र लिख देंगे। यह सुनकर पंडित जगजीवनराम जी ब्राह्मणों के साथ, दरबार की ओर चले। जब दूर से गुरूदेव ने पंडित जी की तरफ देखा और पंडित जी ने भी, गुरूदेव के दर्शन किये, तो पंडित जी के अन्तःकरण में शास्त्रार्थ करने की भावना, खत्म हो गई। और यह विचार करने लगे कि इनसे तो उपदेश ग्रहण करके, अपना कल्याण करूं। यह सोचकर, तत्काल गुरूदेव के चरणों में आकर साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर, गदगद कंठ से विनती की, कि सूते हुए जीव को, अपनी दया करके जगाइये। तब परमगुरूदेव उपरोक्त शब्द से इनको उपदेश किया और यह सम्पूर्ण सम्पत्ति, जो जीत कर लाये थे, पुस्तकों के सहित, सब गुरूदेव के भेट कर दी। ब्रह्मऋषि ने वह सम्पूर्ण विभूति वहां के ब्राह्मणों को बटवा दी और विद्यार्थियों को वापिस कासी जाने का आदेश दिया, पंडित जगजीवन राम जी ने। आप ब्रह्मऋषि के श्री चरणों में निवास करके जीवन मुक्त हो गए। सभा में जय जय कार की ध्वनि गूंज उठी।

194. उपदेश

हरि राम बिना सब भर्मि गये, कोई जन तेरा सांच गहै ॥टेक॥
पीवै नीर त्रिखा तनि भाजै, ग्यान गुरू बिन कोइ न लहै।
परगट पूरा समझि न आवै, ताथैं सो जल दूर रहै ॥
हरख सोक दोउ सम करि राखै, एक एक के संगि न बहै।
अनतहि जाइ तहां दुख पावै, आपहि आपा आप दहै ॥
आपा पर भरम सब छाड़ै, तीनि लोक परि ताहि धरै।
सो जन सही सांच कौं परसे, अमर मिले नहिं कबहुं मरैं ॥
पारब्रह्म सूं प्रीति निरन्तर, राम रसाइण भरि पीवै।
सदा आनन्द सुखी सांचै सौं, कहै दादू सौ जन जीवै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हरि रूप राम के नाम स्मरण बिना, सब संसारिक प्राणी भ्रम रहे हैं। हे प्रभु ! आपके कोई निष्कामी भक्त ही, सत्य स्वरूप नाम का स्मरण ग्रहण करते हैं । जल पीने से ही तन की तृषा कहिए प्यास दूर होती है, इसी प्रकार गुरू का उपदेश श्रवण किये बिना, कोई भी परमेश्वर के ज्ञान को, प्राप्त नहीं होता है । जिनको गुरू का ज्ञान प्राप्त हुआ है, वही हर्ष और शोक, दोनों को समान देखते हैं । न इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से, उनको हर्ष ही होता है और न अनिष्ट पदार्थ की प्राप्ति से शोक ही होता है। परमेश्वर को छोड़कर, अन्यत्र जाने से ही दुख होता है। और गुरू ज्ञान का विचार किये से, अपने अनातम आपा को, विवेकी पुरूष आप ही नष्ट करता है। फिर अपना और पराया का सम्पूर्ण भ्रम, अन्तःकरण से त्याग देता है । और समष्टि व्यष्टि रूप त्रिलोकी के धर्म से परै, जो चेतन्य स्वरूप परमेश्वर है, उसमें विवेकी अपने मन को एकाग्र करता है । ऐसा उत्तम साधक ही सत्य स्वरूप परमेश्वर को हृदय में, अन्तर्मुख वृत्ति से, साक्षातकार करके, अमर ब्रह्मस्वरूप में अभेद होते हैं। फिर वह कभी भी जन्म मरण को प्राप्त नहीं होते । इस प्रकार परब्रह्म से जिन्होंने निरन्तर प्रीति करी है, वही राम का स्मरण रूपी रस को, वृत्ति रूप प्याले से, पुनः पुनः पीते हैं । उनके सदा ही, सत्य स्वरूप से स्नेह करके, सुखरूप आनन्द बना रहता है। ऐसे जन सदा, सजीवन भाव को प्राप्त होते हैं ।

195. भ्रम विध्वंसण

जग अंधा नैन न सूझै, जिन सिरजे ताहि न बूझै ।।टेक।।
पाहण की पूजा करै, करि आतम घाता ।
निर्मल नैन न आवई, दो जग दिसि जाता ।।
पूजै देवी देहाडियां, महा माई मानैं ।
प्रगट देव निरंजना, ताकी सेव न जानैं ।।
भैरौं भूत सब भ्रम के, पसु प्राणी ध्यावैं ।
सिरजनहारा सबनि का, ताकूं नंहि पावैं ।।
आप सुवारथ मेदनी, का का नंहि करई ।
दादू सांचे राम बिन, मरि मरि दुख भरई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उपास्य देव सम्बन्धि भ्रम, दूर करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! संसार के विषयी पामर जीव, विवेक विचार रूप नेत्रों से अन्धे, जो परमेश्वर सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करते हैं, उनको

वह जगत के प्राणी, उपास्यदेव करके नहीं जागते । पत्थरों के देव बना बना कर पूजते हैं और उनके बलि चढ़ाने के लिये बकरे आदि जीव मारते हैं । उनको माया मल रहित, शुद्ध ब्रह्म नहीं दिखाई देते । ऐसे प्राणी पुनः पुनः नरक में जाते रहते हैं । फिर वह अज्ञानी, देवी, देहाड़ी, महामाई, इन सब कल्पित देवों की मान्यता करते हैं और निरंजनदेव, सबके हृदय में आत्म स्वरूप से प्रगट हैं, उनकी सेवा भक्ति वह अज्ञानी नहीं जान पाते । भैरू भूत भ्रम के देव बनाकर, पशु रूप बुद्धि वाले प्राणी, उनकी ध्यावना करते रहते हैं और जो सबकी उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर है, उसको वह अज्ञानी कभी भी प्राप्त नहीं होते । संसारिक विषय आसक्त जीव, अपने इन्द्रियों के स्वार्थ के लिये, पृथ्वी पर क्या क्या खोटे नहीं करते ? सच्चे राम को त्यागकर, वे पुनः पुनः जन्मते मरते और दुख पाते रहते हैं ।

196. अन्य उपासक विस्मयवादी भ्रम

सांचा राम न जाणै रें, सब झूठ बखाणै रे ॥टेक॥
झूठे देवा झूठी सेवा, झूठा करे पसारा ।
झूठी पूजा झूठी पाती, झूठा पूजणहारा ॥
झूठा पाक करै रे प्राणी, झूठा भोग लगावै ।
झूठा आड़ा पड़दा देवै, झूठा थाल बजावै ॥
झूठे बकता झूठे सुरता, झूठी कथा सुणावै ।
झूठा कलिजुग सब कोइ मानै, झूठा भर्म दिढावै ॥
थावर जंगम जल थल महियल, घटि घटि तेज समाना ।
दादू आतम राम हमारा, आदि पुरिष पहिचाना ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुदेव इसमें, परमात्मा से भिन्न अन्य की उपासना करने वालों का भ्रम दिखाते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! संसार के अज्ञानी प्राणी, सत्यस्वरूप राम को न जानकर, झूठे देवी देवताओं को बनाकर उनकी सेवा पूजा करते हैं और उन्हीं के गुणों का बखान करते रहते हैं । वह झूठे देव हैं, उनकी सेवा भी झूठी है, उसीं का संसार में पसारा पसारते हैं । उन झूठे देवों के ऊपर, पक्षियों की खाई हुई, झूठी तुलसीपत्र आदि चढ़ाते हैं और झूठी ही पूजा करते हैं । और उनकी पूजा करने वाला प्राणी भी, परमेश्वर से झूठा है, गर्भवास के कोल करार को पूरा न करने वाला । और झूठा पाक पदार्थ बनाता है । पशु पक्षी आदिकों के

खाये हुए, सम्पूर्ण पदार्थ, रस गोरस आदि हैं। इसलिये सब पाक, रसोई झूठी ही है। और फिर झूठा ही भोग लगाते हैं और कहते हैं भगवान ने भोग लगा लिया। दिखावटी पड़दे की आड़ करते हैं, फिर झूठे घंटा झालर बजाते हैं। कहते हैं अब प्रभु शयन करते हैं, अब प्रभु जागते हैं। उनकी कथा करने वाले भी, परमेश्वर से झूठे हैं, और सुनने वाले भी, सत्यस्वरूप परमेश्वर की कथा से रहित, झूठी कथा ही सुनते हैं। यह कलियुग झूठा है' झूठ कपट से भरा हुआ है। ऐसे कलयुगी प्राणी, झूठ पाखण्ड में रचे हुए, कलयुग के झूठे धर्मों को सब कोई मानते हैं और नाना प्रकार के झूठे भ्रम में ही, सबको दृढ़ता कराते हैं। स्थावर सृष्टि, जंगम सृष्टि, जल, पृथ्वी, अग्नि, पवन आकाश और सम्पूर्ण शरीरों में, उपरोक्त सभी स्थान पर ब्रह्मतेज व्याप्त हो रहा है। वही हमारा आत्म स्वरूप राम आदि पुरूष है। मुक्त पुरूष कहते हैं कि हमने तो उसको अपना निजस्वरूप करके ही, पहचान लिया है। अर्थात् निश्चय किया है।

197. निज मार्ग निर्णय

मैं पंथि एक अपार का, मनि और न भावै।
सोई पंथ पावै पीव का, जिसै आप लखावै ॥टेक॥
को पंथि हिंदू तुरक के, को काहू राता।
को पंथि सोफी सेवड़े, को सन्यासी माता ॥
को पंथि जोगी जंगमा, को सकति पंथ ध्यावै।
को पंथि कमड़े कापड़ि, को बहुत मनावै ॥
को पंथि काहू के चलै, मै औरन जानौं।
दादू जिन जग सिरजिया, ताही को मानौं ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें, निज मार्ग दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ! हमको तो एक अद्वैत परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग, भक्ति वैराग्य ज्ञान रूप ही, प्रिय लगता है और हमारे मन को दूसरे अन्य मार्ग प्रिय नही लगते। जिसको वह परमात्मा दया करके, अपना व्यापक स्वरूप बताते हैं, उन्हीं को परमेश्वर की प्राप्ति का, ज्ञान भक्ति वैराग्य रूप मार्ग प्राप्त होता है। और संसारिक प्राणी तो, कोई हिन्दुओं के पंथ में, कोई मुसलमानों के मार्ग में और कोई अन्य अन्य किसी मार्ग में रत्त रहते हैं। कोई सूफियों के पंथ में कोई सेवड़े, कोई सन्यासी, मतवाले हो रहे हैं। कोई जोगियों के, कोई जंगमों के, कोई शक्ति पंथ ध्यावै, बाम मार्गी, कोई चमारों के कमड़े, कोई कापड़िया, कोई बहुतों को मनाता है कहिए पूजता है। कोई किसी के पंथ

में चलता है ? परन्तु मुक्तपुरूष कहते हैं कि उपरोक्त बतलाए हुए, पंथा पंथी को हम नहीं जानते । जिस परब्रह्म परमात्मा ने सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न किया है। हमतो उसी को मानते हैं । और उसके भक्ति वैराग्य ज्ञान रूपी पंथ पर चलते हैं ।

198· साधु मिलाप मंगल

आज हमारे राम जी साधु घरि आये,
मंगलाचार चहुं दिसि भये, आनन्द बधाये ।।टेक।।
चौक पुराऊं मोतियां, घिस चंदन लाऊं ।
पंथ पदारथ पोइ कै, यहु माल चढाऊं ।।
तन मन धन करौं वारनैं, प्रदक्षिणा दीजे ।
सीस हमारा जीव ले, नौछावर कीजे ।।
भाव भक्ति करि प्रीति सौं, प्रेम रस पीजे ।
सेवा बंदन आरती, यहु लाहा लीजे ।।
भाग हमारा हे सखी, सुख सागर पाया ।
दादू को दरसन भये, मिले त्रिभुवन राया ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें, संत मिलाप मंगल कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! आज हमारे घर राम के रूप संत पधारे हैं । हमारे अन्तःकरण की चारों वृत्तियों में आनन्द मंगल बरत रहा है और हम संत मिलन रूप आनन्द के 'बधावणे' कहिए गीत गा रहे हैं । मोतियों का चौक पूर रहे हैं, और तन रूप सिला पर, मन रूप चंदन को घिसकर, संतों के चढा रहे हैं । अथवा केसर चन्दन के तिलक लगा रहे हैं । पांच पदार्थ रूप नग, पांच ज्ञानेद्रिये रूप हीरों की माला बनाकर, संतों को चढा रहे हैं । हम अपना तन, मन, बचन रूप धन, यह सब संतों के ऊपर वारणै कर रहे हैं, अर्थात् न्यौछावर करते है । और संतों की परिक्रमा दे रहे हैं । हमारा जीव, अपना सिर भी, संतों के ऊपर न्यौछावर कर रहा है । इस प्रकार प्रीतिसहित भाव भक्ति द्वारा, संतों का दर्शन रूप अमृत को पी रहे हैं । संतों की सेवा बन्दना नमस्कार द्वारा, आरती उतारते हैं । इस मनुष्य जन्म का आज हमने यथार्थ लाभ प्राप्त कर लिया है । हे संत रूप सहेलियो ! आज हमारा जन्म जन्मान्तरों का उत्तम भाग्य उदय हुआ है, जो परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप, सुख सागर रूप संतों के हमें दर्शन हो रहे हैं । मानो कि आज त्रिभुवन पति परमात्मा, शरीर धारकर प्रगट होकर, हमें दर्शन दे रहे हैं ।

199. संत समागम प्रार्थना

निरंजन नांऊं के रसि माते, कोई पूरे प्राणीं राते ।।टेक।।
सदा सनेही राम के, सोई जन सांचे ।
तुम्ह बिन और न जान हीं, रंग तेरे ही राचे ।।
आन न भावै एक तूँ, सति साधु सोई ।
प्रेम पियासे पीव के, ऐसा जन कोई ।।
तुम ही जीवनि उर रहै, आनन्द अनुरागी ।
प्रेम मगन पिव प्रितड़ी, लै तुम्ह सूं लागी ।।
जे जन तेरे रंग रंगे, दूजा रंग नांही ।
जनम सुफल करि लीजिये, दादू उन मांहीं ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, संत समागम रूप प्रार्थना कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! निरंजन रूप राम के प्रेमा भक्ति द्वारा, पूर्ण रूप से नाम स्मरण रस में अनुरक्त होकर, मस्त हैं । और वह सदा, राम के स्वरूप के ही प्रेमी हैं, वही आपके सच्चे भक्त हैं । वह आपके सिवाय और किसी देवी देवता को नहीं जानते हैं । तुम्हारे ही भक्ति रूप रंग में रच रहे हैं । आपके सिवाय और दूसरा कोई भी उन्हें प्रिय नहीं लगता है । वही आपके प्रेमी सच्चे साधु हैं । हे पीव ! वह आपकी प्रेमाभक्ति के ही प्यासे हैं । ऐसे संत इस संसार में कोई बिरले ही होते हैं । वह आपको अपने हृदय में, अपनी जीवन जानकर, आपके ही अनुराग में रंगे रहते हैं । हे पीव ! आपके प्रेम में मस्त होकर, उनकी अखंड लय प्रीति के सहित, आपमें ही लगी रहती है । इस प्रकार जो आपके भक्ति रूप रंग में रंगे है, उन पर फिर दूसरा कोई मायावी रंग नहीं चढ पाता । ऐसे संतों के समागम में, हे साधक ! तूँ अपने मनुष्य जन्म को सार्थक बना ले ।

200. अत्यन्त निर्मल उपदेश

चल रे मन जहां अमृत बना, निर्मल नीके संत जना ।।टेक।।
निर्गुण नाउं फल अगम अपार, संतन जीवनि प्राण अधार ।
सीतल छाया सुखी शरीर, चरण सरोवर निर्मल नीर ।
सुफल सदा फल बारह मास, नाना बाणी धुनि परकास ।
तहां बास बसि अमर अनेक, तहं चलि दादू इहै बिबेक ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, अत्यन्त निर्मल उपदेश कह रहे हैं कि हे हमारे मन ! अब तूं संसार अवस्था से हटकर वहां चल, जहां निर्मल संतरूप वृक्षों का बन है, क्योंकि उन निर्मल संतों का, शरीररूपी वृक्ष सुख देने वाला है और उन संतरूप वृक्षों के, परमेश्वर का निष्काम नाम स्मरण रूप फल लगा है। उस फल को खाने से तेरे को अगम अपार परमेश्वर की प्राप्ति होगी। वह नामरूप फल संतों की जीवनी और प्राणों का आधार है। ऐसे संतों की शरण शीतल छाया के समान है, जो भी जीव, उनकी शरण आकर बैठते हैं, उनके शरीरों में सुख शान्ति आती है। जैसे भागीरथी गंगा का जल, निर्मल और पवित्र करने वाला है, इसी प्रकार ब्रह्मवेता पुरूषों के चरणों का ध्यान भी, पाप ताप को हरने वाला होता है। उन संतरूप वृक्षों के, सदा ही ज्ञान भक्ति वैराग्य रूपी फल लगते हैं और फिर उनके नाना प्रकार की बाणी, नीतियुक्त सदाचार, प्राणीमात्र से प्रेम, जन समुदाय की सेवा, भक्ति वैराग्य आदि बाणी रूप ध्वनि होती रहती है। हे मन ! वहां कितने ही जिज्ञासु बास कर करके, अमर हो गये हैं। तेरे भी उद्धार का एक यही विचार है कि ऐसे संतों के सतसंग में निवास कर।

छन्द :-

मृत्तक दादुर जीव, सकल जीवाय जिन,
बरसत बानी मुख, मेघ कीसी धार जु।
देत उपदेस कोइ, स्वारथ न लव लेस,
निसदिन करत है, ब्रह्म के विचार को।
और हू संदेह सब, मेटत निमक मांहि,
सुरज मिटाइ देत, जैसे अन्धकार को।
सुन्दर कहत हंस, बासी सुख सागर के,
संतजन आये हैं, सो पर उपकार को ॥

201

चलो मन माहरा जहां मित्र अम्हारा,
तहं जामण मरण नहिं जाणिये, नहिं जाणिये ॥टेक॥

मोह न माया मेरा न तेरा, आवागमन नहीं जम फेरा ।
पिंड पड़ै नहि प्राण न छूटै, काल न लागै आव न खूटै ।
अमर लोक तहं अखिल सरीरा, व्याधि बिकार न व्यापै पीरा ।
राम राज कोइ भिड़ै न भाजै, सुस्थिर रहणा बैठा छाजै ।
अलख निरंजन और न कोई, मित्र अम्हारा दादू सोई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें अत्यन्त निर्मल उपदेश करते हैं कि हे हमारे मन ! वहां चल जहां हमारा मित्र परमेश्वर है । मैं तुझे बारबार समझाता हूं कि वहां जाने से जन्म मरण आदि क्लेश को कोई जानता ही नहीं है । वहां माया, माया का कार्य मोह मेरा तेरा, जन्मना मरना, यमराज के द्वारा नरक में जाना, वहां नहीं है । शरीर गिरता नहीं, और शरीर से प्राण नहीं निकलते हैं । वहां पर फिर काल का कोई भी जोर नहीं चलता है तथा न आयु समाप्त होती है । वह अमर लोक है । उस जगह सम्पूर्ण शरीरों को कभी रोग जन्य पीड़ा नहीं व्याप्ती है । वहां उस निरन्जन राम के राज्य में "कोई भिड़ै न भाजै" अर्थात् न तो वहां कोई किसी के साथ युद्ध करता है और न कायरता से कोई भागता हो है । वहां तो सम्यक् रूप से बैठे हुए ही सुशोभित होते हैं, अर्थात् ब्रह्मीभाव ही बना रहता है । ऐसा तो अलख, मन बाणी का अविषय निरंजन राम ही का स्वरूप है । उसमें किसी प्रकार का कोई दुनियावी देश नहीं है और मुक्त पुरूषों का परम श्रेष्ठ मित्र भी वही है ।

छन्द :-

तो सो न कपूत कोऊ, कित हू न देखियत,
तो सो न सपूत कोऊ, देखिये न और है ।
तूंहि आप भूल महा नीच हूते नीच होई,
तूंहि आप जानै तो सकल सिर मोर है ।
तूंहि आप भ्रमै तब, जगत भ्रमत देखै,
तेरे स्थित भये सब, ठौर ही को ठौर है ।
तूं हि जीव रूप, तूं ही ब्रह्म है आकासवत,
सुन्दर कहत मन, तेरी सब दौर है ॥२०१॥

202. बेली

बेली आनन्द प्रेम समाइ, सहजैं मगन राम रस सींचैं,
दिन दिन बधती जाइ ।।टेक।।
सतगुरू सहजैं बाही बेली, सहजि गगन घर छाया ।
सहजैं सहजैं कूंपल मेल्हैं, जाणै अवधू राया ।।
आतम बेलि सहजैं फूलै, सदा फूल फल होई ।
काया बाड़ि सहजैं निपजै, जानैं बिरला कोई ।।
मन हठ बेली सूकण लागी, सहजैं जुग जुग जीवै ।
दादू बेलि अमर फल लागै, सहजि सदा रस पीवै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें बुद्धि रूप बेली का परिचय दे रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमारी बुद्धि रूप बेली, परमेश्वर के प्रेम में अब समा रही है और राम नाम स्मरण से दिन दिन बढ़ती जा रही है तथा सहजावस्था में जाकर, ब्रह्माकार हो रही है । यह अमृतरूप बेली, हृदय में, सतगुरू ने उत्पन्न की है । अब यह 'सहज' कहिए, निर्द्वन्द स्वरूप ब्रह्म में मग्न होकर, अन्तःकरण रूप घर में फैल रही है, ब्रह्माकार हो रही है अर्थात् अन्तःकरण और इन्द्रियों में परमार्थ भावना जागृत हो रही है । तथा धीरे धीरे इसका अंकुर बढ़ता जा रहा है । इस बुद्धि रूप बेली के स्वरूप को, मन में धूतने वाले महापुरुष ही जानते हैं । यह बुद्धिरूप बेली, वैराग्य का फूल और ज्ञान भक्ति रूप फल को देने वाली है । यह बेली शरीर बाड़ी की हृदय रूप क्यारी में, स्वतः ही सतगुरू की कृपा से उत्पन्न हुई है । इसको कोई विवेकी संत ही जान पाते हैं । इस परमार्थ बुद्धि के उत्पन्न होने के बाद, मन हठ बेली विषयकार बुद्धि हृदय से, सूकने लगती है । और उस अमृतरूप परमार्थ बुद्धि के, ब्रह्म साक्षात जीवन मुक्ति रूप फल, लगता है । उस आनन्द को पान करके, निर्द्वन्द भाव होकर, सदा सजीवन भाव को प्राप्त होते हैं ।

203. शब्द बाण

संतो राम बाण मोहि लागे, मारत मिरग मरम तब पायो,
सब संगी मिलि जागे ।।टेक।।

चित चेतनि चिंतामणि चीन्है, उलटि अपूठा आया ।
मंदिर पैसि बहुरि नहिं निकसै, परम तत्त घर पाया ।।
आवै न जाई जाई नहि आवै, तिहि रस मनवा माता ।
पान करत परमानन्द पायो, थकित भयो चलि जाता ।।
भयो अपंग पंक नहि लागै, निर्मल संगि सहाई ।
पूरण ब्रह्म अखिल अविनाशी, तिहि तजि अनत न जाई ।।
सो सर लागि प्रेम परकासा, प्रगटी प्रीतम बाणी ।
दादू दीन दयाल हि जानै, सुख मैं सुरति समानी ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, शब्द बाण की विशेषता बता रहे हैं कि हे संतो ! सतगुरू के चलाये हुए राम की प्राप्ति के शब्द बाण, हमारे अन्तःकरण में लगे हैं । उन शब्द रूपी बाणों ने हमारे मन रूपी मृग को मारा, तब हमको परमात्मा की प्राप्ति का मर्म प्राप्त हुआ । फिर तो पांच ज्ञान इन्द्रिये रूपी साथी भी, विषया--आसक्ति रूप निद्रा से जाग उठे । और हमारे चित्त ने चेतन्य आत्मारूप चिंतामणि को जाना, जब बहिर्मुख से अन्तर्मुख हुआ । अब तो चित अन्तःकरण रूप मन्दिर में आकर, परब्रह्म रूप घर को प्राप्त करके, अब बहिर्मुख नहीं होता । जो परमेश्वर न कभी आता है, न जाता है । हमारा मन उसके नाम स्मरण में लगकर, आने जाने रूप संकल्प का त्याग करके, उसकी प्रेमाभक्ति रूप रस में मतवाला हो गया है । इस प्रकार एकत्व भावना रूप प्रेमरस को पीते पीते, परमानन्द स्वरूप को प्राप्त कर लिया । और वासना द्वारा, पहले आता जाता था, उससे अब रहित हो गया । अब मन, उस गुण किया रूप पावों से पंगुला होकर, पाप रूपी कीचड़ से मुक्त हो गया है । और माया आदि मल रहित परब्रह्म, के स्मरण में सदा लगा रहता है । अब वही इसकी जन्म मरण से रक्षा करता है । अब तो यह हमारा मन, पूर्णब्रह्म, अखण्ड अविनाशी को छोड़कर, अन्यत्र संकल्प द्वारा, अब नहीं जाता है । यह सब सतगुरू का शब्द रूपी बाण लगने से ही हृदय में, परमेश्वर के प्रेम का प्रकाश हुआ । और प्रीतम प्यारे परमात्मा की अनुभव बाणीं प्रगट हुई । अब तो यह हमारा मन, उस दीन दयाल प्रभु को, अपना लक्ष्य रूप जानकर, उस सुख स्वरूप में ही, अपनी वृत्ति को लगा कर रहता है ।

204. निज स्थान निणय

मर्ध्य नैन निरखौं सदा, सो सहज स्वरूप,
देखत ही मन मोहिया, है सो तत्त अनूप ।।टेक।।

त्रिवेणी तटीं पाइया, मूरति अविनासी ।
जुग जुग मेरा भांवता, सोई सुख रासी ।।
तारूणी तटी देखि हों, तहां अस्थाना ।
सेवग स्वामी संगि रहैं, बैठे भगवाना ।।
निरभै थान सुहात सो, तहं सेवग स्वामी ।
अनेक जतन करि पाइया, मैं अन्तरजामी ।।
तेज तार परमिति नहीं, अैसा उजीयारा ।
दादू पार नै पाइये, सो सरूप संभारा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निज स्थान का निर्णय बता रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! जो सहज निर्द्वन्द स्वरूप ब्रह्म है, उसको हम हृदय के भीतर, ज्ञान रूप नेत्रों से सदा देखते हैं । जो तत त्वम् पद का लक्ष्य स्वरूप है, उस अनूप को देखकर, अब हमारा मन, उसी में मोहित हो गया है । वह अविनाशी स्वरूप मन पवन सुरति के किनारे ही प्राप्त हुआ है । जुग जुग में समूह सुखरूप, वही हमें प्रिय लगता था । उसको अब हम इड़ा पिगुंला सुषुम्ना रूप स्थान में देख रहे हैं । अब तो आभास बुद्धिरूप सेवक, सोहं में स्वामी के साथ, भगवत् स्वरूप होकर, स्थिर हो रहा है । काल कर्म का बाण रहित, यह स्वस्वरूप स्थान ही अब प्रिय लगता है । इस स्थिति में सेवक, स्वामी का रूप ही हो जाता है । नाना प्रकार के साधन करते करते, इस प्रकार हमने अन्तर्यामी को प्राप्त किया है । उनके ब्रह्मतेज की कोई मिति प्रमाण नहीं है । वह असीम है । ऐसा ज्ञान स्वरूप प्रकाश भान हो रहा है । उसके स्वरूप का कोई भी पार नहीं पाते । उसी का अब हमारा मन, स्मरण कर रहा है ।

205.

निकटि निरंजन देखि हौं, छिन दूर न जाई ।
बाहरि भीतर एकसा, सब रह्या समाई ।।टेक।।
सतगुरू भेद लखाइया, तब पूरा पाया ।
नैनन ही निरखूं सदा, घर सहजैं आया ।।

पूरे सौं परचा भया, पूरी मती जागी।
जीव जान जीवनि मिल्या, असे बड़ भागी ॥
रोम रोम में रमि रह्या, सो जीवन मेरा।
जीव पीव न्यारा नहीं, सब संगी बसेरा ॥
सुन्दर सो सहजैं रहै, घटि अंतरजामी।
दादू सोई देखौं हौं, सारौं संगि स्वामी ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें, निज स्थान निर्णय बता रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ! अब तो हम 'निकटि' कहिए' हृदय में ही, निरंजन स्वरूप ब्रह्म को, ज्ञान रूप नेत्रों से देख रहे हैं। वह अब एक क्षण भी हृदय से अलग नहीं होता है। वह सब में समाया हुआ है। सब भूतों के बाहर और भीतर, वही व्याप्त हो रहा है। परन्तु यह ज्ञान; सतगुरू के शब्दों से हमने प्राप्त किया है, तभी परिपूर्ण ब्रह्म के स्वरूप को पा लिया है। अन्तःकरण रूपी घर में ही प्रगट हुए हैं। तहां ही हम ज्ञान रूप नेत्रों से देख रहे हैं। जब परिपूर्ण ब्रह्म से, हमारी अन्तर्मुख वृत्ति अज्ञानता से जागकर लगी है, तब से पूर्ण ब्रह्म स्वरूप हो रही है। तब जीव अपना जीवन ब्रह्म को जानकर, ब्रह्म में अभेंद हो गया है। ऐसे मुमुक्षु ही बड़ भागी हैं। शरीर के बाहर और भीतर रोम रोम में भरपूर हो रहा है, वही चेतन्य स्वरूप परमेश्वर, हमारे जीव का जीवन है। ऐसी स्थिति में जीव और पीव अलग नहीं रहते ? दोनों का एक साथ ही बास है। वह अन्तर्यामी अति सुन्दर, सभी घटों में व्याप्त है, जो सबके साथ रस रहा है। और वही सबका स्वामी है, उसी को अब हम, सुरति स्मृति रूप नेत्रों से देख रहे हैं।

206. परिचय उपदेश

सहज सहेलड़ी हे, तूं निर्मल नैन निहारि।
रूप अरूप निर्गुण अगुण मै, त्रिभुवन देव मुरारि ॥टेक॥
बारम्बार निरखि जग जीवन, इहि घरि हरि अविनासी।
सुदंरि जाइ सेज सुख बिलसे, पूरण परम निवासी ॥
सहजैं संग परस जग जीवन, आसणि अमर अकेला।
सुन्दरि जाइ सेज सुख सोवै, जीव ब्रह्म का मेला ॥

मिल आनन्द प्रीति करि पावन, अगम निगम जहं राजा ।
जाइ तहां परसि पावन को, सुन्दरि सारे काजा ।।
मंगलाचार चहू दिसि रोपै, जब सुन्दरि पिव पावै ।
परम जोति पूरे सौं मिलि करि, दादू रंग लगावै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें परिचय उपदेश कर रहे हैं कि हे हमारी बुद्धि वृत्ति रूप सहेली ! तूं शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञान रूप नेत्रों से, सर्गुण स्वरूप और निर्गुण को, 'अगुण' में कहिए सभी गुणरूप पदार्थों में, उस मुरारि देव को देख । वही जगत् के जीवन रूप हैं । पुनः पुनः उन्हीं को विचार विचार कर देख । व अविनासी हरि, इस मनुष्य देह रूपी घर में ही प्राप्त होने योग्य हैं । सुरति रूपी सुन्दरी बहिर्मुख से अन्तर्मुखह होकर, हृदय रूपी सेज पर, परमेश्वर के साथ, अभेद निश्चय रूप सुख का उपभोग करती है । वह पूर्ण ब्रह्म के साथ सदैव निवास करती है । फिर अनायास ही जग जीवन प्रभु के संग होकर, उनके स्पर्श द्वारा, अद्वैत स्वरूप अमर आसन को प्राप्त करती है । ऐसे जब वृत्ति रूप सुन्दरी, अद्वैत अमर ब्रह्म की शय्या पर जाकर, ब्रह्मानन्द रूप निद्रा में शयन करती है, उस अवस्था में जीव ब्रह्म एकरूप होते हैं । 'अगम' शास्त्र और 'निगम' वेद, से भी आगे प्रभु सुशोभित हो रहे हैं । वहां ही शुद्ध प्रीति द्वारा, प्रभु से मिलकर आनन्द ले । वहां शुद्ध हृदय में जाकर, वृत्ति रूप सुन्दरी, प्रभु के शुद्ध स्वरूप का स्पर्श करती है । वही संत आत्मा रूप सुन्दरी, अपने कार्य को पूरा कर लेती है, तब चतुष्टय अन्तःकरण में मंगलाचार होने लगता है । इस प्रकार जब सुन्दरी मुख प्रीति का विषय परमेश्वर को प्राप्त करती है, तब उस परम श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप से मिलकर, अभेद होकर, फिर उत्तम जिज्ञासुओं के भी वही रंग लगाती है ।

207. वस्तु निर्देश

तहं आपैं आप निरंजना, तहं निस वासुरि नहि संजमा ।।टेक।।
तहं धरती अम्बर नांही, तहं धूप न दीसै छांहीं ।
तहं पवन न चालै पानीं, तहं आपै एक बिनानीं ।।
तहं चंद न ऊगै सूरा, मुख काल न बाजै तूरा ।
तहं सुख दुख का गमि नांहीं, औ तौ अगम अगोचर मांहीं ।।
तहं काल काया नहिं लागै, तहं को सोवै को जागै ।
तहं पाप पुण्य नहि कोई, तहं अलख निरंजन सोई ।।

तहं सहजि रहै सो स्वामी, सब घटि अंतरजामी ।
सकल निरन्तर बासा, रटि दादू संगम पासा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, ब्रह्म वस्तु का निर्देश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! सहजावस्था रूप समाधि में आपे आप स्वयं निरंजन स्वरूप ब्रह्म ही है । वहां किसी प्रकार के संयम आदि साधन नहीं हैं । न रात है, न दिन, न धरती है, न आकाश है, न धूप है, न छाया है, न पवन है, न पानी है, वहां आप स्वयं एक सजातिय विजातिय स्वगत् भेद रहित, एक ब्रह्म ही है, कर्ता हर्ता । न वहां चन्द्रमा उदय होता है, न वहां सूर्य, और न वहां काल प्राणियों को ले जाने वाला, मुख से बाजा ही बजाता है । उस स्वरूप में न सुख है, न दुख है, मन इन्द्रियों का अविषय अनुभव गम्य, वे हृदय में आत्म स्वरूप से स्थित हैं । उस ब्राह्मी अवस्था में शरीर को काल दंड नहीं देता । अज्ञानी सोते हैं, ज्ञानी जागते हैं । पाप पुण्य का फल, सुख दुख नहीं होता है । अलख मन वाणी का अविषय, आप स्वयं निरंजन ब्रह्म ही है । वहां निर्द्वन्द, स्वरूप, सबका स्वामी अन्तर्यामी, सब शरीरों में, आप स्वयं आत्म रूप से स्थित हैं । वही सबके भीतर अन्तराय रहित निरन्तर बस रहे हैं । मुक्त पुरुष कहते हैं कि हे मुमुक्षुओ ! वह तुम्हारे समीप आत्म स्वरूप ही हैं, उन्हीं का स्मरण करो ।

208·

अबधु बोल निरंजन बाणी, तहं एकै अनहद जाणी ।।टेक।।
तहं बसुधा का बल नाहीं, तहं गगन घाम नहि छांहीं ।
तहं चंद सूर नहि जाई, तहं काल काया नहिं भाई ।।
तहं रैणि दिवस नहिं छाया, तहं बाव बरण नहिं माया ।
तहं उदै अस्त नहि होई, तहं मरै न जीवै कोई ।।
तहं नांही पाठ पुराना, तहं अगम निगम नहिं जाना ।
तहं विद्या वाद नही ग्याना, नहिं तहां जोग अरू ध्याना ।।
तहं निराकार निज ऐसा, तहं जाण्या जाइ न जैसा ।
तहं सब गुण रहिता गहिये, तहं दादू अनहद कहिये ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें, ब्रह्म वस्तु का निर्देश कर रहे हैं कि हे मन को धूतने वाले जिज्ञासु ! तहां हृदय में निरंजन ब्रह्म सम्बन्धी बाणी बोल । कारण कि अन्तर्मुख स्थिति में अनुभव द्वारा, एक ब्रह्म सम्बन्धी अनहद बाणी ही, जानने में आती है । तहां ब्रह्मी अवस्था में वसूधा कहिये पृथ्वी का कठोरता आदि गुण नहीं है । न आकाश की ही वहां गम है । न वहां मायिक सुख दुख ही है । न वहां चन्द्रमा सूर्य की ही गति पहुंचती है । और न काया का नास करने वाले काल की ही गम है । उस स्वरूप में न रात्रि है, न दिन है, न छाया है। न वहां वायु है, न वर्ण काला गोरा है, न वहां माया की गति ही पहुंचती है । न वहां कोई उदय होता है, न कोई अस्त होता है । न वहां कोई मरता है, न जन्मता है । उस स्वरूप में न पुरान है, न पुरानों के पाठ ही होते हैं । वह 'अगम' शास्त्र और 'निगम' वेद से भी अगम्य है । न तहां किसी प्रकार की विद्या है । और न तर्क वितर्क रूपी वहां बाद ही है, न वहां लौकिक ज्ञान ही है । न वहां अष्टांग योग, और न वहां ध्येय ध्याता, ध्यान ही है । वहां हृदय प्रदेश में ऐसा निज स्वरूप निराकार है । जैसा उसका अपार स्वरूप है, वैसा जानने में नहीं आता । वहां हृदय में, सब गुणों से रहित, उस आत्म स्वरूप ब्रह्म को, ब्रह्मानुसारिणी वृत्ति द्वारा ग्रहण करिये । क्योंकि उस चेतन्य की निरपेक्षित व्यापकता है ।

209. प्रसिद्ध साधु

बाबा को ऐसा जन जोगि, अजंन छाड़ै रहै निरंजन,
सहज सदा रस भोगी ।।टेक।।
छाया माया रहै विवरजित, पिंड ब्रह्मण्ड नियारे ।
चंद सूरथैं अगम अगोचर, सो गहि तत्त विचारे ।।
पाप पुण्य लिपै नही कबहू, दोइ पख रहिता सोई ।
धरनि आकास ताहि थैं ऊपर, तहां जाइ रत्त होई ।।
जीवण मरण न बांछै कबहूं, आवागमन न फेरा ।
पानी पवन परस नहि लागै, तिहि संगी करै बसेरा ।।
गुण आकार जहां गमि नांही, आपै आप अकेला ।
दादू जाइ तहां जन जोगी, परम पुरीस सौं मेला ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, प्रसिद्ध साधु का कथन करते हैं कि हे बाबा ! संतो, ऐसा योगी कोई बिरला ही होता है, जो माया रूप अंजन के कार्य को छोड़कर, शुद्ध निरंजन निराकार ब्रह्म में स्थिर होकर नाम स्मरण रूप रस का उपभोग करता है। माया और माया की सुखरूप छाया से रहित होकर, 'पिंड' स्थूल शरीर' ब्रह्मण्ड'--संसार से आसक्ति रहित, चन्द्रमा और सूर्य से 'अगम' कहिए आगे, इन्द्रियों का अविषय, उस तत्व को विचार पूर्वक ग्रहण करता है। वह महापुरूष पाप पुण्य से अलिप्त, दो पख कहिए हिन्दू मुसलमान भेख पंथ आदि, पक्ष से रहित, पृथ्वी आकाश के विकारों से रहित, जो चेतन्य तत्व है, उसमें अन्तर्मुख वृति द्वारा जाकर, रत्त होते हैं। न जीने की इच्छा है जिनको, न मरने का भय ही है, ऐसे महापुरूष आवागमन रूप फेर फार से मुक्त होते हैं। जिस चेतन्य स्वरूप ब्रह्म को, न पानी स्पर्श करता है और न पवन ही स्पर्श करती है, उसी तत्व में वह योगी वास करते हैं। मायिक गुण आकारों की जिसमें गति नहीं पहुंचती, 'आप आप' स्वयं केवल चेतन्य रूप ब्रह्म ही है। ऐसे परम पुरूष, ब्रह्म स्वरूप परमेश्वर से निष्काम कर्म योगी महापुरूष ही, अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, उसमें अभेद होते हैं।

210. परिचय पराभक्ति

जोगी जान जान जन जीवै, बिनहीं मनसा मन हि बिचारै,
बिन रसना रस पीवै ।।टेक।।
बिनही लोचन निरखि नैन बिन, श्रवण रहित सुन सोई ।
ऐसैं आत्म रहै एक रस, तो दूसर नांऊं न होई ।।
बिन हीं मारग चलै चरण बिन, निह्चल बैठा जाई ।
बिन ही काया मिलै परस्पर, ज्यों जल जलहि समाई ।।
बिन ही ठाहर आसण पूरे, बिन कर बैन बजावै ।
बिन ही पाऊं नाचै निसदिन, बिन जिभ्या गुण गावै ।।
सब गुण रहिता सकल बियापी, बिन इंद्री रस भोगी ।
दादू ऐसा गुरू हमारा, आप निरंजन जोगीं ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, पराभक्ति का स्वरूप कह रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! योगीजन अष्टांग योग के साधनों द्वारा, मातिक प्रपंच को मिथ्या जानकर, परब्रह्म को सत्य स्वरूप जानकर, जीवनमुक्त होकर

रहते हैं। वह संसारिक भावना से रहित होकर, अन्तर्मुख मन बुद्धि द्वारा, स्वस्वरूप का विचार करते हैं। रसना बिना ही स्वरूपानन्द रस का पान करते हैं। बाह्य नेत्रों के बिना, ज्ञान नेत्रों से स्वस्वरूप स्थिति देखते हैं। बाह्य श्रवणों बिना ही, अन्तर्मुख वृति रूप श्रोत्र से, उस आत्मस्वरूप ब्रह्म का अभेद निश्चय रूप श्रवण करते हैं। यदि उक्त प्रकार आत्मस्वरूप ब्रह्म में, अद्वैत रूप से स्थित रहे तो, द्वैत का कुछ भी भान नहीं होता। जो बाह्य मार्ग रूप चरणों के बिना ही, साधन रूप चरणों से, आत्म स्वरूप ब्रह्म के पास जाकर बैठा है और बिना ही शरीर से, आत्मा तथा ब्रह्म परस्पर मिलकर, जैसे जल में जल समाता है, ऐसे ब्रह्म में समा गया है। संसारिक स्थान बिना ही, परब्रह्म में, पूर्ण अभेद रूप से आसन लगाया है। और बहिरंग हाथों के बिना ही, अनहद ध्वनि रूप बंसी बज रही है। बाह्य पैरों के बिना ही, भावना रूप पैरों से रात दिन अन्तः-करण में नृत्य होता है। बाह्य जिह्वा बिना ही अन्तर्मुख वृति द्वारा, गुणानवाद गाते हैं। सम्पूर्ण मायिक गुणों से रहित, सकल व्यापी परमेश्वर का दर्शना अमृतरूप रस को, बिना इन्द्रियों के ही, अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा उपभोग करते हैं। ऐसा परब्रह्म रूप निरंजन आप स्वयं हमारे गुरू वृद्ध रूप धार कर, हमको उपदेश किया है।

211·

इहै परम गुरू जोगं, अमी महारस भोगं ॥टेक॥
मन पौना थिर साधं, अविगत नाथ अराधं,
तहं सबद अनाहद नादं।
पंच सखी परमोधं, अगम ज्ञान गुरू बोधं,
तहं नाथ निरन्जन सोधं।
सतगुरू मांहि बतावा, निराधार घर छावा,
तहं जोति सरूपी पावा।
सहजैं सदा प्रकासं, पूरण ब्रह्म बिलासं,
तहं सेवग दादू दासं।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, पराभक्ति का स्वरूप कह रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! इस मनुष्य शरीर में ही सतगुरूदेव का बताया हुआ परम श्रेष्ठ योग, इसके द्वारा 'महा' कहिए ब्रह्म रस का अब उपभोग करते हैं। मन श्वांस और सुरति की साधना द्वारा, अव्यक्त परमेश्वर की आराधना करते हैं, अनहद शब्द के द्वारा।

और पांच ज्ञानेन्द्रियों को भी गुरु उपदेश द्वारा, पांच विषयों से रहित कर लिये हैं। अब तो यह भी गुरुदेव का अगम ज्ञान का बोध प्राप्त कर लिया है। अब तो हृदय में ही निरंजन परमेश्वर का विचार कर रहे हैं। इस प्रकार सत्य उपदेश के देने वाले सतगुरु ने हृदय में ही बताया है। वह सर्व का आधार भूत परब्रह्म ही, अन्तःकरण में व्याप्त हो रहा है। हम अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, ज्योति स्वरूप को प्राप्त किया है। अब तो वह निर्द्वन्द स्वरूप, सदैव हमारे तन मन में आप ही प्रकाश रहे हैं। उसी पूर्ण ब्रह्म में, अब हम अन्तर्मुख होकर, निवास करते हैं या उसका स्मरण रूपी विलास खेल खेलते हैं। ऐसे उत्तम पुरुष ही, उसके साथ एकत्व भावना रूप खेल खेलते हुए, अभेद रहते हैं।

212. अनभई

मूनै येह अचंभौ थाये, कीड़ीये हस्ती बिड़ार्यो,
तेन्है बैठी खाये ॥टेक॥

जाण हुतो ते बैठो हारे, अजाण तेन्हैं ता वाहे।
पांगुलोऊ जावा लाग्यो, तेन्हैं कर को साहे॥
नान्हो हुतो ते मोटो थायो, गगन मण्डल नहिं माये।
मोटे रो विस्तार भणीजे, ते तो केन्हे जाये॥
ते जाणै जे निरखी जोवै, खोजी नैं बिलमांहे।
दादू तेन्हो मर्म न जाणै, जे जिह्वा विहूँणों गाये॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, अनुभव दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ! हमको यह भारी अचम्भा हो रहा है कि शुद्ध मनसा रूपी कीड़ी ने, काम रूप हाथी को मार गिराया और उसको बैठकर खा रही है। जो जानकार था मन, तह तो संसार भ्रमण से हार कर, आत्म विचार द्वारा, ब्रह्म स्वरूप को समझ कर, उसी में स्थिरता पूर्वक बैठ गया है। और जो अज्ञानी है, उसको वह पूर्व की संसार वासनायें, संसार में भ्रमाती हैं। पहले जब गुणरूप पैरों से युक्त था मन, तब परमेश्वर की ओर नहीं जाता था। जब गुरुज्ञान के द्वारा, गुण क्रिया रहित मन पगुंल हुआ, तब परमेश्वर की तरफ जाने लगा है। अब इसके हाथ को कौन पकड़ सकता है? अज्ञान अवस्था में, परब्रह्म का स्वरूप, परिछिन्न प्रतीत होता था और अब ज्ञान दशा में वही परब्रह्म, आकाश में नहीं समाता है, अर्थात् निरपेक्षिक व्यापकता वाला दिखाई पड़ता है। उस व्यापक ब्रह्म का विस्तार वर्णन

करै, ऐसा पुत्र कौनसी माता ने जाया है ? अर्थात् किसी ने भी नहीं जाया । परन्तु जो उत्तम साधक, नित्य अनित्य के विचार द्वारा, उसको देखने का प्रयत्न करते हैं, वही उसको हृदय में देख पाते हैं । ऐसे साधक पुरुषों को फिर वह अपने स्वरूप में ही लीन कर लेते हैं । मुक्त पुरुष कहते हैं कि जिसका गुणगान जिह्वा बिना, अन्तर्मुख वृति द्वारा किया जाता है, उसका हम कोई भी अन्त नहीं पा सकते हैं ।

(इति राग राम कली टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ राग आसावरी ९ ॥

213. उत्तम स्मरण

तूं हीं मेरे रसना, तूं ही मेरे बैना,
तूं ही मेरे श्रवना, तूं ही मेरे नैना ॥टेक॥
तूं हीं मेरे आत्म कंवल मंझारी,
तूं ही मेरी मनसा, तुम्ह परिवारि ॥
तूं हीं मेरे मन ही, तूं हीं मेरे श्वांसा,
तूं ही मेरे सुरतै, प्राण निवासा ॥
तूं हीं मेरे नख सिख सकल शरीरा,
तूं हीं मेरे जियरे ज्यौं जल नीरा ॥
तुम्ह बिन मेरे अबर कोइ नांही,
तूं ही मेरी जीवन दादू मांहीं ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उत्तम स्मरण दिखा रहे हैं कि परमेश्वर ! आपही हमारे रसना रूप हैं आप ही का नाम हम रसना से गाते हैं। आप ही वचन रूप हैं। वचन से आपका ही स्मरण करते हैं। आप ही हमारे श्रवण रूप हैं, श्रोत्र से आपके ही गुण सुनते हैं। और आप ही नेत्र रूप हैं, नेत्रों में आपको ही देखते हैं। आप ही हमारे हृदय कवंल में आत्मस्वरूप से स्थित हैं। आप ही हमारी मनसा रूप हैं।

मनसा आपके ऊपर ही वारणै जाती है। आप ही हमारे मन रूप हैं। मन आपका ही चिंतन करता है। आप ही हमारे प्राण श्वांस रूप हैं। प्राण आपमें ही गमन कर रहे हैं। आप ही हमारे सुरतै रूप हैं, आप में ही हमारे प्राण निवास करते हैं। हे प्रभु ! आप हमारे नख से सिखा पर्यन्त, सारे शरीर में व्यापक हो। आप ही हमारे जीव में, जीव रूप ब्रह्म हैं। जैसे नीर और जल एक ही रूप हैं। हे परमेश्वर ! आपके बिना अब हमारे इस संसार में, और कोई भी सगा सम्बन्धी नहीं है। आप ही हमारे जीव की जीवन, इस शरीर में व्यापक हो रहे हो।

214. अनन्य शरण

तुम्हारें नाम लागि हरि जीवन मेरा,
मेरें साधन सकल नांव निज तेरा ॥टेक॥
दान पुन्य तप तीरथ मेरे, केवल नांउ तुम्हारा।
यह सब मेरे सेवा पूजा, ऐसा बरत हमारा ॥
यह सब मेरे बेद पुराना, सुचि संयम है सोई।
ग्यान ध्यान येई सब मेरे, और न दूजा कोई ॥
काम क्रोध काया बसि करना, ये सब मेरे नामा।
मुक्ता गुपता परगट कहिये, मेरे केवल रामा ॥
तारण तिरण नाउं निज तेरा, तुम्ही एक अधारा।
दादू अंग एक रस लागा, नाउं गहै भौ पारा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें अनन्य शरण दिखा रहे हैं कि हे परमेश्वर ! आपके नाम स्मरण में लगकर, हम अपने जीवन को सार्थक बनाते हैं। आपका निज राम नाम का स्मरण ही, हमारे तो सम्पूर्ण साधनों में परम श्रेष्ठ साधना है। दान, पुण्य, तप तीर्थ, सब कुछ हम तो केवल आपके नाम स्मरण को ही मानते हैं। और सेवा, पूजा यह सब, हम तो आपके नाम स्मरण में ही देखते हैं। हमारा तो ऐसा व्रत है। और आपका 'नाम स्मरण ही, हमारे तो वेद पुरानों का पठन पाठन आदि है। और पवित्रता बाहर भीतर की संयम नेम् आदि लेना, यह सब हमतो आपके नाम में ही देखते हैं। बहुत गुप्त या प्रगट जो भी कुछ है, सब आपके नाम स्मरण में ही मानते हैं। तारने वाला, और जिसके आसरे तैरिये; सब कुछ हमतो आपके

निज राम नाम को ही समझते हैं । आप ही हमारे सब प्रकार के आधार हैं । आपके नाम स्मरण द्वारा ही, आपके स्वरूप में एक रस हो रहे हैं । इस नाम को जो भी साधक निष्कामता पूर्वक अन्तःकरण में ग्रहण करेंगे, वही संसार से पार हावेंगे ।

215

हरि केवल एक अधारा, सोई तारण तिरण हमारा ।।टेक।।
ना मैं पंडित पढि गुण जानों, ना कुछ ग्यान बिचारा ।
ना मैं अगमी जोतिग जाणों, ना मुझ रूप सिंगारा ।।
ना तप मेरे इन्द्रिय निग्रह, ना कुछ तीरथ फिरणा ।
देवल पूजा मेरे नांहीं, ध्यान कछू नहिं धरणा ।।
जोग जुगति कछु नहीं मेरे, ना मैं साधन जानौं ।
औषधि मूली मेरे नांही, ना मैं देस बखानों ।।
मैं तो और कछू नहिं जानूं, कहो और क्या कीजै ।
दादू एक गलित गोबिन्द सौं, इहि विधि प्राण पतीजै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परमेश्वर की अनन्य शरण दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह पाप और पापों के फल, दुखों के हर्ता ऐसे हरि ही हमारे एक आधार हैं । हम तो उन्हीं के आसरे हैं । वही सबको तारने वाले हैं । उनके आसरे ही हम तरेंगे । क्योंकि न तो हम ऐसे पंडित ही हैं, वेद पुरानों को पढ़कर, उनको पूर्णतया गुण लें ।। न हमारे में कुछ विचार रूप ज्ञान ही है । न हम ज्योतिष द्वारा, भविष्यकाल की बात ही जानते हैं । न हमारा कोई सुन्दर रूप ही है और न किसी प्रकार का शृंगार ही कर जानते हैं । न इन्द्रिये निग्रह रूपी हमारे में तप ही है, और न हम तीर्थों में जाकर, स्नान प्रदक्षणा आदि ही करते हैं । न हमारे कोई मन्दिर और मन्दिर की पूजा ही है । न किसी प्रकार का हम, ध्यान ही कर जानते हैं । न हमारे में कोई अष्टांग योग की युक्ति ही है । और न हम किसी प्रकार के साधनों की साधना ही करते हैं । और न हम किसी प्रकार की औषध मूली ही जानते हैं । न हम देश विदेश का वर्णन ही करते हैं । हम तो कोई भी साधन नहीं जानते हैं । हे संतो ! कहो, अब और हम क्या करें ? हमारे प्राणों में तो एक गोविन्द भगवान का विश्वास है । उन्हीं के नाम स्मरण द्वारा, उनमें गलतान हो रहे हैं ।

216· परिचय

पीव घरि आवनो ए, अहो मोहि भावनो ते ॥टेक॥
मोहन नीकौ री हरि, देखौंगी अंखियां भरी ।
राखौं हौं उर धरी प्रीति खरी, मोहन मेरो री माई ।
रहौं हौं चरणौं धाई, आनन्द बधाई, हरि के गुण गाई ॥
दादू रे चरण गहिये, जाई ने तिहां तो रहिये ।
तन मन सुख लहिये, बीनती गहिये ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परिचय विधि दिखा रहे हैं कि हे संतरूप सहेली ! वह सुख प्रीति के विषय पीव परमेश्वर हमारे हृदय रूप घर में, वह अपना आगमन करेंगे । तब हमको वह अति से प्रियरूप बनकर, प्रिय लगेंगे । हे सहेली ! वह विश्ववी मोहन हरि हमें अति प्रिय लगते हैं । उनको अब हम अपने विचार रूपी नेत्रों में भरकर देखेंगे । और 'उर' कहिये हृदय में ही गुप्त रखेंगे । उन्हीं से हमने अपनी सच्ची प्रीति लगाई है । हे संतो ! वह मोहन हमारे हैं और हम मोहन के हैं । उन्हीं के चरणों में हम संसार की तरफ से हटकर, रहेंगे । और फिर उनसे मिलकर, आनन्द के 'बधावणे' कहिए उन हरि के गीत गावेंगे । अब हम हृदय में जाकर, प्रभु के चरणों की शरण ग्रहण करके, उनके पास ही रहेंगे ।

217·

हां माई मेरो राम बैरागी, तजि जनि जाई ॥टेक॥
राम बिनोद करत उर अंतरि, मिलि हौं बैरागनि धाई ।
जोगनी व्है कर फिरौंगी बिदेसा, राम नाम ल्यौ लाई ।
दादू को स्वामी हरै उदासी, रहि हौं नैन दोइ लाई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें परिचय विधि दिखा रहे हैं कि संत रूप माई ! आप ठीक ही कहती हो । वह हमारे राम जी वैराग्य युक्त हैं । हमको त्यागकर, कभी हमसे अलग न हो जावें, क्योंकि अभी तो वह हमारे हृदय में ही, क्रीड़ा कर रहे हैं । हम भी विषयों से वैराग्य धारण करके, शीघ्र ही अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, उनसे मिलेंगे और इतने पर भी, यदि वह हमसे नहीं मिलेंगे तो, योगिनी बनकर, देश त्यागकर, विदेशों

में राम नाम की लय लगाती हुई भ्रमण करेंगे। वही हमारे स्वामी हैं। हमने अपने दोनों नेत्र, उनके दर्शनों की इच्छा में लगाये हैं। और वही हमारी उदासी को दूर करेंगे।

218. उपदेश चेतावनी

रे मन गोविन्द गाइ रे गाइ, जन्म अविरथा जाइ रे जाइ ॥टेक॥
ऐसा जनम न बारम्बारा, ताथैं जपि ले राम पियारा।
यहु तन असा बहुरि न पावै, ताथैं गोबिन्द काहे न गावै।
बहुरी न पावै मनखा देही, ताथैं करि ले राम सनेही।
अब कै दादू किया निहाला, गाइ निरंजन दीन दयाला।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपदेश चेतावनी कर रहे हैं कि हे हमारे मन! अब इस मनुष्य जन्म, में, गोबिन्द भगवान के गुणानवाद 'गाइ रे गाइ'। नहीं तो यह मनुष्य जन्म, प्रभु भजन के बिना, वृथा ही बीतता जा रहा है। हे मन! ऐक्षा नर जन्म, तेरे को बार बार नहीं मिलेगा। इसलिए अब प्यारे राम नाम स्मरण रूप जाप कर ले। यह मनुष्य तन बिना भजन किये, पुनः मिलना कठिन है। अब इसमें गोविन्द के गुणानवाद क्यों नहीं गाता है? बार बार मनुष्य का शरीर मिलना कठिन है। इसलिये अब राम से स्नेह कहिए प्रीति कर ले। अबके परमेश्वर ने दया करके, तुझको निहाल कर दिया है। अब उसी दीन दयाल निरंजनदेव के गुणानवाद गायन कर।

219. काल चेतावनी

मन रे सोवत रैन बिहानी, तैं अजहूं जात न जानी ॥टेक॥
बीतीं रैनि बहुरी नहीं आवै, जीव जागि जनि सोवै।
चारों दिसा चोर घर लागै, जागि देख क्या होवै॥
भोर भयो पछितावन लागे, मांही महल कुछ नांही।
जब जाइ काल काया कर लागे, तब सोधै घर मांहीं॥
जागि जतन करि राखौ सोई, तब तन तत्त न जाई।
चेतन पहरै चेतत नांहीं, कहि दादू समझाई॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, काल से चेत कराते हैं कि हे हमारे मन ! अज्ञान रूप निद्रा में सोते सोते ही, उमर रूपी रात्रि बीती जा रही है। तैंने अभी तक भी नहीं जानी कि राम भजन के बिना आयु बीत रही है। हे भाई ! जो उम्र रूपी रात्रि बीत गई, वह फिर नहीं वापिस आवैगी। हे जीव ! अज्ञान रूप निद्रा में अब क्या सोता है ? अब तो जाग। अब नहीं सोना। तेरी चारों अवस्थाओ में काम क्रोध आदि चोर, घर में चोरी कर रहे हैं। ज्ञान ध्यान रूप धन चुरा रहे हैं। अब अज्ञानता से जागकर तो देख, क्या हो रहा है ? अन्तकाल में पछताने लगेगा। हृदय रूपी महल में चोरों ने भक्ति वैराग्य आदि धन, कुछ भी नहीं छोड़ा। जब काल आकर, तेरी काया के अपने हाथ लगावैगा और तेरे घर में शुभ अशुभ कर्मों को अच्छी प्रकार सोध लेगा, तब तूं क्या करैगा ? अब अज्ञान अवस्था से जागकर, नाम स्मरण द्वारा परमेश्वर को हृदय में रखिये। तो शरीर में से फिर तत्वज्ञान नहीं जायेगा। यह चेतने का पहरा है। अथवा चेतन्य पहरेदार चेतन्य नहीं रहै तो, फिर काल से मुक्त नहीं हो सकता है।

220

देखत ही दिन आइ गये, पलटि केस सब सेत भये ।।टेक।।
आई जुरा मींच अरू मरणा, आया काल अबै क्या करणा।
श्रवणौं सुरति गई नैंन न सूझै, सुधि बुधि नाठी कह्या न बूझै ।।
मुख तैं सबद बिकल भइ बाणी, जनम गया सब रैनि बिहाणी।
प्राण पुरूष पछितावण लागा, दादू औसर काहे न जागा।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें, काल से चेत कराते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! संसार के मायिक पदार्थों के देखते, खाते, पीते स्पर्श करते करते ही, उमर रूप रात्रि के वृद्धावस्था रूप दिन आ पहुंचे। सिर के केश भी काले से सफेद हो गये हैं। जमराज का नोटिस आ गया। जर जर अवस्था और मरण रूप मौत आ पहुंची। प्राण पिंड का वियोग करने वाला काल आ गया। अब क्या उपाय करें ? कानों में तो सुनने की शक्ति क्षीण हो गई। नेत्रों में देखने की ज्योति खत्म हो गई। बुद्धि में स्मरण शक्ति नष्ट हो गई है। अब तो संतो के कहे हुए उपदेश भी नहीं समझ में आते। मुख से शब्द भी सही उच्चारण नहीं होता है। बाणी बिकल हो रही है। इसी प्रकार मनुष्य जन्म वृथा ही नष्ट हो गया। उम्र रूपी सम्पूर्ण रात्रि निरर्थक ही बीत गई। अब अन्तकाल में प्राणधारी पुरूष पश्चाताप करता है, परन्तु अब क्या होवें ? जागने की समय क्यों नहीं जागा ?

221. उपदेश

हरि बिन हां हो कहुं सचु नांही, देखत जाई बिखै फल खाही ।।टेक।।
रस रसना के मीन मन भीरा, जल थैं जाइ यौं दहै सरीरा ।
गज के ग्यान मगन मदि माता, अंकुस डोरि गहै फंद गाता ।
मरकट मूठि मांहि मन लागा, दुख की रासी भ्रमै भ्रम भागा ।
दादू देखु हरि सुख दाता, ताकूं छाड़ि कहां मन राता ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें मन प्रति उपदेश कर रहें हैं कि हे मन ! हरि के नाम स्मरण के बिना कहीं भी कोई पदार्थ सत्य नही है । हे मूर्ख ! तूं तत्ववेताओं के देखते देखते ही, विषयों में जाकर, विषय भोग रूपी नश्वर फल को खाता है । जैसे जिह्वा के रस में लगकर, मछली जल से वियोग पाकर, मांसहारी द्वारा प्राण त्याग देती है । वैसे ही हाथी 'काम' के मद में अन्धा हुआ खढ्ढे में गिरता है । फिर मस्तक में अंकुश की मार खाता रहता है और बन्धन में आ जाता है इसी प्रकार बन्दर का मन, चने की मुट्ठी के स्वाद में फंस कर, बाजीगर के द्वारा, गले में डोरी डला कर भ्रमता रहता है, और उसके सिर पर दुखों की रास आ पड़ती है । हे मन ! तूं विचार करके देख, इस संसार में पापों के हर्ता हरि ही सुख देने वाले सुख स्वरूप हैं । उनके नाम स्मरण को छोड़कर, विषयों में कहां राता रत्त हो रहा है ।

222

सांई बिना संतोस न पावै, भावै घर तजि बन बन धावै ।।टेक।।
भावै पढि गुनि वेद उचारै, आगम निगम सबै विचारै ।
भावै नव खँड सब फिर आवै, अजहूँ आगै काहे न जावै ।
भावै सब तजि रहै अकेला, भाई बन्धन काहू मेला ।
दादू देखै सांई सोई, सांच बिना सँतोस न होई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! चाहे गृहस्थ आश्रम को छोड़कर, बन बन में विचरता रहै, परन्तु परमेश्वर के भजन के बिना, सुख शान्ति संतोष प्राप्त नहीं होता है । चाहे वेदों को पढ़कर-प्रवचन करै और शास्त्र वेद उपवेद सबका विचार करै । अथवा नौ खंड पृथ्वी पर सारे तीर्थ आदि करके आवै । उससे भी आगे फिर चाहे क्यों न जाइ । चाहे सबका त्याग करके, आप अकेला ही एकान्त स्थान में जाकर रहै । भाई कुल बान्धव आदि सभी से चाहे मेल मिलाप न करै । तत्ववेता कहते हैं कि हम तो सर्वत्र एक सत्य स्वरूप परमेश्वर को ही देख रहे हैं । हे जिज्ञासुओ ! तुम भी चाहे कहीं रहो । उस सत्य स्वरूप परमेश्वर को ही सबमें देखिये । उसके बिना देखें, सुख संतोष प्राप्त नहीं होता है ।

223. मन उपदेश चेतावनी

मन माया रातो भूलै, मेरीं मेरी करि करि बौरे,
कहा मुगध नर फूलै ।
माया कारणि मूल गंवावै, समझि देखि मन मेरा ।
अंति काल जब आइ पहूंता, कोई नहीं तब तेरा ॥
मेरी मेरी करि नर जाणै, मन मेरी करी रहिया ।
तब यहु मेरी का मन आवै, प्राण पुरिस जब गहिया ॥
राव रंक सब राजा राणा, सबहिन को बौरावै ।
छत्रपति भूपति तिनहूं के संग, चलति बेर न आवै ॥
चेति बिचार जानि जिय अपनैं, माया संगि न जाई ।
दादू हरि भज समझि सयाने, रहो राम ल्यो लाई ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव, इसमें मन उपदेश चेतावनी का स्वरूप दिखा रहे हैं कि हे मन ! तूं माया मोह में रत्त होकर, परमेश्वर को भूल कर बैठा है और मैं हूं मेरी है, इस प्रकार जान कर, तूं बावला हो रहा है । हे मूर्ख ! इस मैं मेरी में क्या भूल रहा है ? माया के लिये इस मनुष्य देह रूपी मूल को विषयों में, तूं गमा रहा है ? ऐसा मनुष्य देह फिर नहीं मिलैगा ? हे हमारे मन ! इस हमारी बात को तूं हृदय में विचार करके देख । जब अन्त समय आ जाएगा, उस वक्त इनमें कोई भी तेरे को साथ देने वाला नहीं मिलैगा । हे अज्ञानीनर ! मेरी मेरी करके जानता है और यह मन सम्पूर्ण मायिक पदार्थों को अपना मानकर, उनमें आसक्त हो रहा है । जब काल प्राणों को आकर पकड़ैगा, तब जिसको तूं मेरी मेरी करके जानता था, तब वह कोई भी तेरे काम नहीं आवैगी । यह माया, राव राजा रंक और महाराणा सभी को बावले करती है । साथे

पर जिनके छत्र झूलते थे, सम्पूर्ण भूमिका को अपनी समझते थे, उनके साथ भी अन्त समय में यह माया न तो गई है और न अब जायेगी । हे अज्ञानी जीव ! अपने अन्तःकरण में चेत करके विचार कर । यह माया तेरे साथ नहीं जायेगी । हे सयाने ! इस बात को समझ और अखंड लय लगाकर, प्रभु का स्मरण कर । इसी में तेरा कल्याण है ।

224. काल चेतावनी

रहसी एक उपावनहारा, और चलसी सब संसारा ।।टेक।।
चलसी गगन धरणि सब चलसी, चलसी पवन अरू पाणीं ।
चलसी चंद सूर पुनि चलसी, चलसी सबै उपानीं ।।
चलसी दिवस रेणि भी चलसी, चलसी जुग जम बारा ।
चलसी काल व्याल पुनि चलसी, चलसी सबै पसारा ।।
चलसी सरग नरक भी चलसी, चलसी भूचणहारा ।
चलसी सुख दुख भी चलसी, चलसी कर्म बिचारा ।।
चलसी चंचल निहचल रहसी, चलसी जे कुछ कीन्हा ।
दादू देख रहै अविनासी, और सबै घट खीना ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें काल से सावधान कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह परमेश्वर सबकी उत्पत्ति करने वाले, वही काल से रहित हैं, बाकी तो सारा संसार, काल द्वारा, आने जाने वाला है । आकाश, धरती, पवन, पानी, चन्द्रमा सूर्य, जो भी कुछ उत्पन्न हुआ है, यह सब ही काल के ग्रास होते हैं । दिन रात, जुग सतयुग द्वापर त्रेता आदि, यम, बार, इन सब ही को काल ग्रासवत कर लेता है । काल रूपी सर्प, और जो भी कुछ माया का पसारा है, सब चलैगा । स्वर्ग नरक, उनके सुख दुख भोगने वाले, सभी समय पाकर चलैंगे, कोई स्थिर नहीं रहैगा । सुख और दुख, और उनके देने वाले कर्म, यह सब ही चलैंगे । इनमें कोई स्थिर नहीं रहता । चंचल माया और माया का कार्य, सब ही समय पाकर जाने वाला है । माया का अधिष्टान चेतन्य ब्रह्म, वही सदा निश्चल रहता है । और माया का किया हुआ, जो भी कुछ है, वह चलैगा । मुक्त पुरुष कहते हैं कि एक अविनाशी ब्रह्म ही रहैगा, और सब ही घट धारी अर्थात् माया के कार्य सब ही शरीर क्षीण होंगे ।

225·

इहि कलि हम मरणे को आये, मरण मीत उन संगी पठाये ।।टेक।।
जब थैं यहु हम मरण बिचारा, तब थैं आगम पंथ संवारा ।
मरण देख हम गर्व न कीन्हा, मरण पठाये सो हम लीन्हा ।
मरणा मीठा लागै मोहि, इहि मरणे मीठा सुख होई ।
मरणे पहलि मरै जो कोई, दादू सो अजरावर होई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें काल से चेत कराते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! इस कलिकाल में, हम कहिए प्राणी मात्र, परमेश्वर से विमुखी, केवल मरने जन्मने को ही, संसार में आये हैं । उस समर्थ परमेश्वर ने मरणा रूप मित्र, जीव के साथ ही भेजा है । जबसे हमने इस मरणे का विचार किया है, तभी से आगे का रास्ता संवारने लगे हैं । इस मरणे को 'देख' कहिये याद करके, विचारवान पुरुष धन योवन का गर्व नहीं करते । जो परमेश्वर ने हम जीवों के साथ, मरणा रूपी मित्र भेजा है, उस मित्र को हमने धारण कर लिया है । यह मरणा रूपी मित्र हमें, सुख रूप लग रहा है । अथवा आपा अभिमान से जीवित काल में ही रहित होना, यही मरणा है । यह मरणा हम, विवेकी पुरुषों को सुख रूप लगता है । प्राण पिण्ड का वियोग रूप जो मरणा है, इस मरणे से पहले ही, नाना प्रकार के अनातम अहंकार का त्याग करना ही, जीवत मृत्तक मरणा कहलाता है । इस मरणे को जो साधक अपनाता है, वह अजर अमर स्वरूप होता है ।

226·

रे मन मरणे कहा डराई, आगै पीछै मरणा रे भाई ।।टेक।।
जे कुछ आवै थिर न रहाई, देखत सबै चल्या जग जाई ।
पीर पैगम्बर किया पयाना, सेख मसाइक सबै सयाना ।
ब्रह्मा विष्णु महेस महा बलि, मोटे मुनि जन गये सबै चलि ।
निहचल सदा सोई मन लाई, दादू हरखि राम गुण गाई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, काल से चेत करा रहे हैं कि हे भाई मन ! मरणे से अब क्या डरता है ? किसी को आगे और किसी को पीछे, सभी को संसार में मरणा है । जो कुछ उत्पन्न होता है, वह कोई

भी स्थिर रहने वाला नहीं है। विचारवानों को देखते देखते ही, सारा जगत काल के मुंह में चला जा रहा है। पीर पैगम्बर, शेख मसायक यह सब ही काल के मुंह में समा गए हैं। और कहां तक कहैं ? ब्रह्मा विष्णु महेश, महा बलवान बड़े बड़े मुनि लोमस आदि, यह सब ही समय पाकर, काल के मुंह में समा गये हैं। हे साधक ! निश्चल तो सदा एक निर्गुण राम ही है। अन्तःकरण में प्रसन्न होकर, उन्हीं के गुणानवाद गाओ।

127: वस्तु निर्देष निर्णय

ऐसा तत्त अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न खाई ।।टेक।।
पावकि जरै न मार्‌यो मरई, काट्यो कटै न टार्‌यो टरई।
आखिर खिरै न लागै काई, सीत घाम जल डूबि न जाई।
माटी मिलै न गगन बिलाई, अघट एक रस रह्या समाई।
ऐसा तत्त अनूपम कहिये, सो गहि दादू काहें न रहिये।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें ब्रह्म स्वरूप आत्म वस्तु का निर्देश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह ब्रह्म स्वरूप आत्मा, अनूप उपमा रहित, तत्त पद और त्वम् पद का लक्ष स्वरूप है, न वह मरता है, न जन्मता है, न उसे कभी काल खाता है। न वह अग्नि में जलता है, न मारने से मरता है, न काटने से कटता है, न हटाने से हटता है। वह अक्षय स्वरूप है। वह कभी क्षर भाव को प्राप्त नहीं होता, न उसके किसी प्रकार की मायावी कालिमा ही लगती है। न वह सर्दी से गलता है, न घाम से तपता है, न जल में डूबता है, न मृत्तिका में मिलता है, न आकाश में विलय होता है। न कभी घटता है, न बढ़ता है। वह एक रस सबमें समाया हुआ है। ऐसा वह आत्म स्वरूप ब्रह्म अनुपम तत्व है। उसको ग्रहण करके, उसमें समाकर क्यों नहीं रहते हो ?

228. मन उपदेश

मन रे सेव निरँजन राई, ताको सेवो रे चित लाई ।।टेक।।
आदि अन्तै सोई उपावै, परलै लेऽ छिपाई।
बिन थँभा बिन गगन रहाया, सो रह्या, सबन में समाई ।।
पाताल मांहैं जे आराधै, वासिग रे गुण गाई।
सहस मुख जिभ्या द्वै ताकै, सोभी पार न पाई ।।

सुर नर जाको पार न पावै, कोटि मुनि जन ध्याइं।
दादू रे तन ताको है रे, जाको सकल लोक आराही ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें मन को उपदेश कर रहे हैं कि हमारे मन ! अब तूं इस मनुष्य जन्म में सबके राजान् पत राजा, निरंजनदेव की भक्ति रूप सेवा कर। उसका अन्तर्मुख चित्त से स्मरण कर। वह इस सृष्टि का आदि और अन्त, सबको उत्पन्न करने वाला आप स्वयं है, और महा प्रलय में सम्पूर्ण सृष्टि को अपने में लय कर लेता है। हे जिज्ञासु ! वह समर्थ, बिना थंभा के ही आकाश में, सूर्य चन्द्रमा आदि को ठहरा रखे हैं और वही आप सबमें समाये हुए हैं। जिसकी पाताल में रहने वाले वासिग नाग आदि भी आराधना नाम भक्ति करते हैं। और शेष जी महाराज हजार मुख वाले, एक एक मुंह में दो दो जिह्वाओं से, उसका स्मरण करके भी, उसके नामों का पार नहीं पा रहे हैं। सुर-देवता, नर नारद आदि भी, जिसका पार नहीं पाया है, और करोड़ों मुनिजन जिसका ध्यान करतें हैं, उसका ही दिया हुआ यह मनुष्यदेह है, जिसकी सब लोकों में, लोक वासी भक्ति कर रहे हैं। उसी के यह मनुष्य देह स्मरण द्वारा अर्पण कर।

229. जीव उपदेश

निरँजन जोगी जान ले चेला, सकल बियापी रहै अकेला ।।टेक।।
खपर न झोली डंड अधारी, मंढी न माया लेहु बिचारी।
सींगी मुद्रा बिभूति न कंथा, जटा जाप आसण नहि पंथा।
तीरथ ब्रत न बन खंडि बासा, मांगी न खाई नहीं जगि आसा।
अमर गुरू अविनासी जोगी, दादू चेला महारस भोगी।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें जीवके प्रति उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! निरंजनरूप योगी को विचारपूर्वक जानकर, मन में ग्रहण कर ले। वह नामरूप सम्पूर्ण संसार में व्यापक होकर भी, अकेला रहता है। उस निरंजन योगी के पास न खप्पर है, भिक्षा लेने का। न झोली है, न डंडा है, अर्था `आसा'--सहारा लेने का। न माया रूप कोई उसकी कुटिया ही है। उस योगी का विचार कर ले। नत उसके गले में सींगी है, न कानों में मुद्रा, न अंग पर विभूति है, न गूदड़ी है, न सिर पर जटा है, और न किसी प्रकार का जाप ही करता है। और न कोई जिसका मृग छाला आदि आसण ही है। न कोई पंथा पंथी रूप मत ही है। न किसी प्रकार का कोई तीर्थ ही करता है। न व्रत ही करता है। न किसी बन आदि

में जाकर बसता ही है। न मांगता ही है, न खाता ही है, न जगत की आस करता है। वह निरंजन रूप अविनासी योगी, हमारा अमर गुरू है। उसका अंश जीव रूप चेला, जीव ब्रह्म की एकता रूप, महारस का उपभोग करता है।

230. उपदेश

जोगिया बैरागी बाबा, रहै अकेला उनमनि लागा ॥टेक॥
आतम जोगी धीरज कंथा, निहचल आसण आगम पंथा।
सहजैं मुद्रा अलख अधारी, अनहद सींगीं रहणि हमारी।
काया बन खंड पांचों चेला, ज्ञान गुफा में रहै अकेला।
दादू दरसन कारनि जागै, निरंजन नगरी भिक्षा मांगै।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें जीवात्मा रूप योगी जिज्ञासु को उपदेश कर रहे हैं कि हे बाबा! हमारा जीवात्मा रूप जिज्ञासु ही विरक्त योगी है। वह विषयों से अलग रहकर, ऊंची ब्रह्मी अवस्था में स्थिर हो रहा है। इस जीवात्मा रूप योगी की धैर्य रूप ही गूदड़ी है और निश्चल ब्रह्म में स्थिति रूप ही जिसका आसण है। और मन बाणी से अगम ब्रह्म विचार रूपी; जिसका मार्ग है। निर्द्वन्दता रूप ही जिसकी मुद्रा है, और मन बाणी का अविषय अलख ही, जिसका आधार है। अनहद शब्द रूप ही, जिसकी सींगी है और रहणि करणि रूप ही, जिसकी धारणा है। काया रूपी बन में पांच ज्ञान इन्द्रिये रूप ही जिसके शिष्य हैं और जीव ब्रह्म की एकता रूप ज्ञान ही, जिसकी गुफा है। उसमें स्वयं ही निवास करता है और स्वस्वरूप साक्षात्कार करने अर्थ, अज्ञान रूप निद्रा से जागता है और इस शरीर रूप नगरी में, निरंजन की दर्शन रूप ही भिक्षा मांगता है।

231. समता ज्ञान

बाबा कहु दूजा क्यौं कहिये, ताथैं इहि संसै दुख सहिये ॥टेक॥
यहु मति ऐसी पसुवां जैसी, काहे चेतत नांही।
अपना अंग आप नहि जानै, देखै दर्पण मांही ॥
इहि मति मीच मरण कै तांई, कूप सिंह तहं आया।
डूबि मुवा मन मरम न जान्या, देखि आपनी छाया ॥

मद के माते समझत नांहीं, मैगल की मति आई ।
आपै आप आप दुख दीया, देखि आपणी झांई ॥
मन समझै तो दूजा नांहीं, बिन समझे दुख पावै ।
दादू ज्ञान गुरू का नांहीं, समझि कहां थैं आवै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें समता ज्ञान का उपदेश कर रहे हैं कि हे 'बाबा' कहिए हे संतो ! कहो, समत्व ज्ञान उपदेश को छोड़कर, भेद ज्ञान का उपदेश क्यों कहा जावै ? इस संशय में पड़कर, जन्म मरण रूपी दुख सहन करना पड़ता है । यह बुद्धि तो पशुओं जैसी है, क्यों नहीं चेत करके देखते हो ? इस भेद ज्ञान से तो, अपने ब्रह्म स्वरूप को यह जीव आप नहीं जानता है । अन्तःकरण रूप दर्पण में अपने से अलग दूसरे का विचार करके दुख पाता है, श्वान और बंदर की भांति । यह मति तो पशुओं की है । इस मति के बस होकर, मरणे के लिये सिंह कूप पर आकर, कुए के अन्दर पानी में अपनी छाया देखता है । इस भेद को न समझकर, दूसरा सिंह कूप में जानकर,कुएं में छलांग मारता है, और डूब कर मर जाता है । इसी प्रकार काम रूप मद से सतवाला हाथी, चमकीले पत्थर में, अपनी छाया देखकर, भ्रम वस दूसरा हाथी मानता है । अपनी 'झांई' कहिए छाया को न समझकर, उससे लड़ कर अपने आपको ही, आप दुख देता है । यह मन अद्वैत स्वरूप को विचार द्वारा समझै, तो फिर आतमा के सिवाय दूसरा कोइ है ही नहीं । अपने स्वरूप आत्म तत्व को, यह मन न समझकर ही, संसार में जन्म मरण रूपी दुख बार बार उठाता है । परन्तु सच्चे सतगुरूओं का सच्चा ज्ञान, जिस मन को प्राप्त नहीं हुआ, उसको यह समझ कहिए बुद्धि कहां से प्राप्त होवै ?

दोहा :- जाट खेत में हल खड़ो, छोरो रोटी खाइ ।
ग्रास कुंभ बालक लख्यो, फिटे मुंह कहि आइ ॥२३१॥

दृष्टान्त :- एक जाट खेत में हल जोत रहा था । पानी का घड़ा भरा रखा था, पीने के लिये । छोटा लड़का बैठा बैठा रोटी खाता था । जब पानी पीने को घड़े के पास गया, तो बालक ने घड़े के पानी में अपना मुंह रोटी खाते हुए देखा । मुंह फाड़कर रोने लगा । जाट दौड़ कर आया और बोला :- क्या है ? बालक बोला :- इसमें एक रोटी खा रहा है । वह घड़े में आकर झांका और लड़के को बोला :- "ऊत, इसमें तो तेरी ही छायां सै, क्यों दुख पावै सै ?"

दोहा :- बड़ा भया तो क्या भया, जो बुध उपजी नांहि ।
ससै सिंह कालू कहै, नाख्यो कूवै मांहि ॥२३१॥

दृष्टान्त :- जंगल में एक शेर रहता था । भोजन के लिये अपनी गुफा से निकलकर, बन में कई जीवों को मारता । एक रोज जंगल के सारे जीव मिलकर पंचायत करी और शेर के पास पहुंचे और बोले :- जंगल के राजा ! हम आपकी प्रजा हैं । आपको भोजन भी चाहिये, सो हमने यह विचार किया है कि जितनी जाति के इस जंगल में जीव रहते हैं, वह अपनी अपनी जाति में से, एक एक दिन आपके पास ही, एक जीव भोजन के लिये भेज देंगे । आप भोजन ढूंढ़ने का कष्ट न करें । शेर ने कहा :- बहुत अच्छा, हम भी यही चाहते हैं । एक रोज खरगोश जाति में से नम्बर आया । तब खरगोश को भेजा, वह मार्ग में एक कुए के ऊपर चढकर, कुए में झांका, उसको पानी में अपनी छाया दिखाई पड़ी और बुद्धि आ गई । सोचा, आज इस काल का नास करना है । फिर चला धीरे धीरे, और झाड़ झंकाड़ में फंसकर, अपने बदन में खून निकाल लिया । उधर शेर भूख से पीड़ित, क्रोध में भरा बैठा था । सुसा को देखा और बोला :- मूर्ख ! बहुत देर में तूं आ रहा है, अभी तुझे खाऊंगा । सुसा बोला :- जंगल के राजा, मेरी प्रार्थना सुन लो । मैं तो आपका भोजन हूं ही । परन्तु इस जंगल में दूसरा शेर और आ गया है । उसने मुझे पकड़ लिया । उससे मैं अपने आपको छुड़ाकर, दौड़ा आ रहा हूं । कल से आपके पास और जीव भोजन के लिये, मुश्किल ही पहुंचेंगे । क्योंकि वह शेर भी जंगल के जीवों का भोजन करेगा ? तब शेर बोला :- बताओ कहां है ? पहले उससे युद्ध करूंगा, मेरे जंगल में वह कैसे आया ? फिर तुझे खाऊंगा । सुसा शेर को साथ लेकर चला । उसी कुए पर आ पहुंचा और बोला :- राजा इसमें है, इसमें देखो । शेर कुए में देखा, तो उसी की छाया जल में दिखाई पड़ी । शेर भ्रमवस दूसरा शेर जाना और गर्जना की । कुए में से गर्जना का शब्द आया । सुसा बोला :- राजन् आपसे डरता नहीं है, सामने बोल रहा है । शेर ने कुए में छलांग मारी, और पानी डूबकर मर गया । सुसा खुशी होता हुआ, सारे जंगल के जीवों को निर्भय कर दिये ।

232

बाबा नांही दूजा कोई, एक अनेक नाउं तुम्हारे
मोपै और न होई ॥टेक॥

अलख इलाही एक तूं, तूं ही राम रहीम ।
तूं हीं मालिक मोहना, केसो नाउं करीम ॥

सांई सिरजनहार तूं, तूं पावन तूं पाक ।
तूं काइम करतार तूं, तूं हरि हाजिर आप ॥
रमता राजिक एक तूं, तूं सारंग सुबहान ।
कादिर करता एक तूं, तूं साहिब सुलतान ॥
अविगत अल्लह एक तूं, गनी गुसांई एक ।
अजब अनुपम आप हैं, दादू नाउं अनेक ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें समता ज्ञान का स्वरूप बता रहे हैं कि बाबा हे परमेश्वर ! आपके सिवाय दूजा माया और माया का कार्य सब मिथ्या है । आप ही एक सत्य हो और आप ही के अनेकों नाम हैं । हमारे से तो अब आपके सिवाय और किसी की सिद्धि होती ही नहीं । आप ही अलख और इलाही स्वरूप हैं । आप ही राम और रहीम स्वरूप हैं । आप ही मलिक और मोहन रूप हैं । आप ही करीम और केशव रूप हैं । आप ही सांई और सिरजनहार स्वरूप हैं । यह सब आपके ही नाम हैं । आप ही पवित्रों में पवित्र और पाक रूप हैं । हे करतार ! आप ही सदा स्थिर रहने वाले, कायम रूप हैं । हे हरि ! जो आपके भक्त, आपके नाम स्मरण में सदा हाजिर रहते हैं उनको आप अपने समता स्वरूप का ज्ञान प्रदान करते हो । आप ही रमता राम, सबको रीजक देने वाले राजिक स्वरूप हैं और आप ही सुबहान सारंग रूप हैं । आपकी आज्ञा में काल चक्र घूमता है । आप ही सृष्टि के कर्ता, कादिर रूप हैं और हे साहिब ! आप ही सुलतान रूप हैं । आप ही अल्लह अविगत स्वरूप हैं । आप ही गनी गुसांई रूप हैं । आप ही अजब अनूप स्वरूप हैं । हे नाथ ! यह सब आप ही के अनेकों नाम हैं, साधकों का कल्याण करने वाले ।

233. समर्थाई

जीवत मारें मुये जिलाये, बोलत गुंगे गुंग बुलाये ॥टेक॥
जागत निस भर सोई सुलाये, सोवत रैनि सोई जगायें ।
सूझत नैनहुं लोइन लीये, अंध बिचारे ता मुख दीये ।
चलते भारी ते बिठलाये, अपंग बिचारे सोई चलाये ।
ऐसा अद्भुत हम कुछ पाया, दादू सतगुरू कहि समझाया ।

टीका :- ब्रह्मर्षि सतगुरूदेव इसमें, ईश्वर समर्थाई दिखा रहे हैं कि हे समर्थ परमेश्वर ! आपकी समर्थाई को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं । जो विषय वासना में जिनके मन इन्द्रिये जीते थे, उनके मन इन्द्रियों को मारकर, आपके नाम स्मरण में, आपकी समर्थाई ने तुलसीदास जैसों को जिला दिया । अथवा सदा जिते थे, उनको आपने मार दिए । और मरते थे, उनको जिला दिए । ज्यादा बोलते थे, उनको गुंगे बना दिते और गुंगे थे, उनको ज्यादा बोलने वाले बना दिए, ऐसे आप समर्थ हो । और सारी रात जागते थे, उनको आप सुला देते हो और सोते हैं उनको आप जगा देते हो । जिनको नेत्रों से दिखता था, उनकी आप दृष्टि को ले लेते हो और बिचारे अंधों को नेत्र देकर आप मुख दिखला देते हो, जैसे बिलमंगल आदि को । भारी चलते थे हनुमान जी जैसे, उनको आप राम चरणों में स्थिर कर दिये । और बिचारे अपंग थे, उनको पांव देकर चला दिये । हे साहिब ! ऐसी आपकी अद्भुत समर्थाई को, हमने आप में देखी है । यह आपकी समर्थाई का ज्ञान, सत्य उपदेश के देने वाले सतगुरू ने, हमको कहकर समझाया है ।

234· प्रश्न

क्यौं करि यहु जग रच्यौ गुसांई, तेरे कौन बिनोद बन्यो मन मांही ।।टेक।।
कै तुम आपा परगट करना, कै यहु रचि ले जीव उधरना ।
कै यहु तुम्ह कौं सेवग जानै, कै यहु रचि ले मन के मानै ।
कै यहु तुम्ह कौं सेवग भावै, कै यहु रचिले खेल दिखावै ।
कै यहु तुम्ह कौं खेल पियारा, कै यहु भावै कीन्ह पसारा ।
यहु सब दादू अकथ कहानी, कहि समझावो सारंग पानी ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें परमेश्वर से प्रश्न कर रहे हैं कि हे गुसांई ! हमारे स्वामी, आपने यह संसार किस लिये रचा है ? आपके मन में यह क्या विनोद आया ? क्या आप अपने को प्रगट करने के लिये रचा है ? या जीवों का उद्धार करने को रचा है ? क्या इसलिये रचा है कि आपके सेवक, आपको पहचान लें ? क्या आपके इस रचना को रचने की मन में ही आ गई ? या आपको सेवा करने वाले सेवक भाते हैं ? या इस जगतरूप रचना को अपना खेल दिखाने के लिये रचा है ? अथवा आपको यह जगत् रूपी खेल प्रिय लगता है ? या यह मायारूपी पसारा आपको भाता है ? इसलिए किया है ? हे नाथ ? यह आप समर्थ की अकथ कहानी है । हे सारंग पाणी ! (सारंग = काल चक्र जिनकी आज्ञा रूप, पाणी हाथ में घूम रहा है ।) आप ही हमको कहकर के समझाइये ।

उत्तर की साखी

दादू परमारथ कौं सब किया, आप सवारथ नांहि ।
परमेसुर परमारथी, कै साधु कलि मांहि ॥
खालिक खेलै खेल करि, बूझै बिरला कोइ ।
लेकर सुखिया ना भया, देकरि सुखिया होइ ॥

235. समर्थाई

हरे हरे सकल भुवन भरे, जुगि जुगि सबै करै ।
जुगि जुगि सबै धरै, अकल सकल जरै हरे हरे ॥टेक॥
सकल भुवन छाजै, सकल भुवन राजै,
सकल कहै ।
धरती अम्बर गहै, चंद सूर सुधि लहै,
पवन प्रगट बहै ।
घट घट आप देवै, घट घट आप लेवै,
मंडित माया ।
जहां तहां आप राया, जहां तहां आप छाया,
अगम अगम पाया ।

रस मांहैं रस राता, रस मांहैं रस माता,
अमृत पीया ।
नूर मांहैं नूर लिया, तेज मांहैं तेज कीया,
दादू दरस दीया ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, ईश्वर समर्थाई दिखा रहे हैं कि हे समर्थ परमेश्वर हरि ! आप ही सब भवनों में व्याप्त हो रहे हो । और जुग जुगान्तरों में सम्पूर्ण सृष्टि की रचना, आप ही करते हो । जुग जुग में आप ही सबको धारण किये हैं । हे अकल ! कला अवयव रहित, आप ही फिर सबकी जरणा करते हैं, हे हरे ! हे हरे ! हे सर्व भवनों के राजा ! आप ही सर्व भवनों में शोभा पा रहे हो । आपके सर्व संतभक्त ऐसा कहते हैं कि वह प्रभु, धरती और आकाश को धारण किये हैं । और चन्द्रमा सूर्य, उन्हीं की आज्ञा से गमन आगमन रूप क्रिया करते हैं और उन्हीं की समर्थाई से, पवन चल रहा है । घट घट में आपही दाता रूप बन कर दे रहे हैं और घट घट में आप ही ले रहे हैं । हे समर्थ ! यह मायावी मंडान सब आपने ही रचा है । हे राजन् पत राजा ! लोक परलोक में आप ही बिराजते हो । अस्थावर जंगम सृष्टि में, आप ही व्याप रहे हो । आप अगम से भी अगम हैं । इस प्रकार आपके भक्तों ने आपको प्राप्त किया है । आप ही रस रूप हैं । भक्ति रस द्वारा हम आपमें रत्त होकर, मस्त हो रहे हैं । आपका भक्ति ज्ञाना अमृत इस प्रकार पीकर, शुद्ध हृदय में ही आपका शुद्ध स्वरूप प्राप्त किया है । आपके ब्रह्म तेज में व्यष्टि जीवरूप तेज को, हमने अभेद किया है । ऐसे आप अपने जीवनमुक्त भक्तों को, अपना स्वरूप साक्षात्कार कराया है ।

236· परिचय उपदेश

पीव पीव आदि अंति पीव, परसि परसि अंग संग,
पीव तहां जीव ॥टेक॥
मन पवन भवन गवन, प्राण कवंल मांहि ।
निधि निवास विधि बिलास, राति दिवस नांहि ॥
सास वास आस पास, आत्म अंगी लगाइ ।
अैन बैन निरखि नैन, गाइ गाइ रिझाइ ॥
आदि तेज अंति तेज, सहजैं सहजि आइ ।
आदि नूर अंति नूर, दादू बलि बलि जाइ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, साक्षात्कार अर्थ उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! इस सृष्टि के आदि में और अन्त में, एक परमेश्वर ही स्थिर रहते हैं। हम अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, बारम्बार उनके स्वरूप का स्पर्श करके, हमारा जीव उनके संग ही रहता है। और जिस निर्द्वन्द अवस्था में परमेश्वर रहते हैं, उसी में उनके साथ जीव रहता है। साधक अपने मन और प्राणों को रोककर, हृदय कमल में, जहां परमेश्वर रूप निधि का निवास है, वहां ही हमारा मन गमन करता है। उस जगह सभी विधियां कहिए साधन आनन्द स्वरूप को प्राप्त करने के होते हैं। और वहां ज्ञान अज्ञान रूप रात दिन का भेद, प्रतीत नहीं होता है। अपने अति समीप आत्म स्वरूप ब्रह्म में ही, अन्तर्मुख वृत्ति लगाकर, श्वांस श्वांस पर वहीं निवास करते हैं। इस प्रकार सतगुरू उपदेश के द्वारा, ज्ञान रूप नेत्रों से प्रत्यक्ष देखकर, ध्यान अवस्था में ही, बारम्बार गुणानवाद गाते हुए, प्रभु को प्रसन्न करते है। और अब सृष्टि के आदि अंत पर्यन्त, ब्रह्म ही साक्षात्कार भास रहा है। इस प्रकार ब्रह्मतेज को अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, देखते देखते अनायास ही सहजा अवस्था रूप समाधि में आकर, अपने आदि और अन्त में प्रतीत होने वाले परमेश्वर को, हृदय में ही प्राप्त करते हैं। ऐसे मुक्त पुरूषों की हम बार बार बलिहारी जाते हैं।

237

नूर नूर अव्वल आखिर नूर, दाइम काइम
काइम दाइम, हाजिर है भरपूर ।।टेक।।
आसमान नूर, जमीं नूर, पाक परवरदिगार ।
आब नूर, बाद नूर, खूब खूबां यार ।।
जाहिर बातिन, हाजिर नाजिर, दाना तूं दीवान ।
अजब अजाइब, नूर दीदम, दादू है हैरान ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें परिचय उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! शुद्ध स्वरूप ब्रह्म ही सृष्टि के आदि अन्त मध्य में स्थिर है। तथा वह स्थिर स्वरूप ब्रह्म, सदा सबके पास और सम्पूर्ण संसार में परिपूर्ण हो रहा है। वही आकाश और पृथ्वीरूप है। और वह ही पवित्र स्वरूप, सबका पालन करने वाला है। वही जल और वायु रूप है। और उत्तम से भी उत्तम वही सबका मित्र है। इस प्रकार अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा देखने वाले और दिखनें वाले के रूप में, आप ही प्रकाशित होते हैं। हे स्वामी ! आप ही बुद्धिमान सचिव के रूप में, सबके अन्तःकरण में प्रेरणा करते हो। और आपकी यह रचना बड़ी आश्चर्यंकारक है। आपका अद्भूत स्वरूप अनुभव में देखकर, हम सभी मुक्तजन चकित हो रहे हैं।

238. रस

मैं अमली मतवाला माता, प्रेम मगन मेरा मन राता । ।।टेक।।
अमी महारस भरि भरि पीवै, मन मतवाला जोगी जीवै ।
रहै निरन्तर गगन मंझारी, प्रेम पियाला सहजि खुमारी ।
आसणि अवधू अमृतधारा, जुगि जुगि जीवै पीवणहारा ।
दादू अमली इहि रस माते, राम रसाइन पीवत छाके ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, प्रभु प्रेम रस की विशेषता दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हम प्रभु की प्रेमा भक्ति रूप रस के अमली, माते मस्त रहने वाले हैं । हमारा मन, प्रभु प्रेम में मगन होकर उसी में रत्त हो रहा है । नाम स्मरण रूप महा अमृत रस को पुनः पुनः वृति द्वारा पी रहे हैं । इस प्रकार हमारा मन रूप मतवाला योगी सदा सजीवन भाव को प्राप्त हो रहा हैं । हृदय रूप कमल में ही निरन्तर प्रभु के स्वरूप में बास करता है । और एकत्व भाव रूप प्रेम का प्याला पीकर, स्वभाव से ही खुमारी नशे में मस्त हो रहे हैं । हृदय रूप आसण पर ही मन रूपी अवधूत प्रभु के अखंड दर्शन रूप अमृत धार को पी रहा है । ऐसे मन जुग जुग में, सजीवन भाव को प्राप्त हो रहा है । इस ब्रह्म रस के मतवाले अमली, राम रस को पीते पीते छक रहे हैं, अर्थात् तृप्त हो रहे हैं; और पीते जा रहे हैं ।

239. निज उपदेश

सुख दुख संसा दूर किया, तब हम केवल राम लिया ।।टेक।।
सुख दुख दोऊ भरम बिचारा, इन सूं बंध्या है जग सारा ।
मेरी मेरा सुख खे तांई, जाइ जन्म नर चेतै नांहीं ।
सुख के तांई झूठा बोलै, बांधे बंधन कबहूं न खोलै ।
दादू सुख दुख संगि न जाई, प्रेम प्रीति पिव सौं ल्यौ लाइ ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निज अनुभव रूप उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के सच्चे संत भक्त, संसारिक पदार्थों की प्राप्ति अप्राप्ति से, होने वाले सुख दुख को मिथ्या जानकर, इस संशय से मुक्त होकर, वे केवल शुद्ध स्वरूप राम का स्मरण ही लिया है । विचार कर देखे तो, सुख दुख

दोनों ही भ्रम रूप है । इस सुख दुख से सारा संसार बंधा हुआ है । सुख में राजी होते हैं, दुख में रोते हैं । अज्ञानी संसारीजन, विषय सुखों के लिये ही कहते हैं कि यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, इसी में अमोलिक मनुष्य जन्म, उनका जा रहा है । वे इसको विचार कर नहीं देखते हैं । वे विषय सुखों के लिये ही, रात दिन झूठ कपट के बचन बोलते रहते हैं । इस प्रकार भूतकाल के कर्म बन्धन, और वर्तमान के कर्म बन्धन, इनको काटने का कभी, निष्काम कर्म का अनुष्टान नहीं करते हैं । हे अज्ञानीजनों ! यह मायिक सुख दुख संग में नहीं जावेंगे । प्रेम प्रीति के सहित, पीव के नाम स्मरण में अखंड लय लगाइये ।

240. हैरान

कासौं कहूं हो अगम हरि बातां, गगन धरणी दिवस
नहि राता ॥टेक॥
संग न साथी गुरू न चेला, आसन पास यूं
रहै अकेला ।
वेद न भेद न करत बिचारा, अवरण वरण सबन
थैं न्यारा ।
प्राण न पिंड रूप नहिं रेखा, सोइ तत्त सार नैन
बिन देखा ।
जोग न भोग मोह नहिं माया, दादू देख काल
नहिं काया ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर सम्बन्धी आश्चर्य दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! उस अगम मन वाणी का अविषय हरि की भक्ति ज्ञान रूपी बातें, किसको कहें ? उसके स्वरूप में आकाश धरती, दिन और रात, यह कुछ भी नहीं है । वहां न कोई संग साथी है और न चेला और गुरूभाव ही है । वह आशा रूप फांसी से रहित केवल शुद्ध स्वरूप है । वहां वेद का भेद रूप विचार भी नहीं किया जाता । वह वर्ण काला गोरा, ब्राह्मण क्षत्री, इन सबसे रहित अवरण रूप है । उसमें न प्राण है, न पिंड हैं । ऐसा रूप, हाथ पर रेखा की भांति, जीव से दूर नहीं है । वह तत् पद और त्वम् पद का लक्ष्य सार स्वरूप, बहिमुख नेत्रों के बिना अन्तर्मुख नेत्रों से देखते हैं । वहां न योग है न भोग है, न मोह और माया है । न काया है और न काया का भक्षण करने वाला काल ही है । ऐसे स्वरूप को मुक्तजन अनुभव द्वारा देख रहे हैं ।

241. गुरू ज्ञान

मेरा गुरू अैसा ग्यान बतावै, काल न लागै संसा भागै,
ज्यूं है त्यूं समझावै ।।टेक।।

अमर गुरू के आसणि रहिये, परम जोति तहं लहिये ।
परम तेज सो दिढ करि गहिये, गहियें लहिये रहिये ।।
मन पवना गहि आतम खेला, सहज सुंनि घर मेला ।
अगम अगोचर आप अकेला, अकेला मेला खेला ।।
धरति अम्बर चंद न सूरा, सकल निरंतर पूरा ।
सबद अनाहद बाजहि तूरा, तूरा पूरा सूरा ।।
अविचल अमर अभै पद दाता, तहां निरंजन राता ।
ग्यान गुरू ले दादू माता, माता राता दाता ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, गुरू ज्ञान का परिचय दे रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमारे परमेश्वर रूप गुरू, ऐसा ज्ञान बताते हैं कि जिस ज्ञान को धारण करने से, किसी प्रकार का काल आकर, स्पर्श नहीं करता है और सम्पूर्ण शंसय भी भाग जाते हैं, अन्तःकरण से । और जैसा शुद्ध स्वरूप है आपका, वैसा ही समझाकर कहते हैं । ऐसे ब्रह्म स्वरूप गुरूदेव के पास ही रहिये । उनके उपदेश से जीव ब्रह्म की एकता रूप ज्ञान ज्योति को सम्पादन करै । उस ज्ञान ज्योति को दृढ़ निश्चय से ग्रहण करिये तो फिर परमेश्वर के शुद्ध स्वरूप को हृदय में लीजिये और उसी में स्थिर रहिये । मन और श्वांस का निरोध करके, ब्रह्मस्वरूप आत्मा का विचार रूपी खेल खेलिये । इस प्रकार निर्द्वन्द हृदय रूपी घर में ही मिलाप करिये । वहां वह 'अगम' मन इन्द्रियों का अविषय आप स्वयं शुद्ध स्वरूप स्थित है । वह आप ही अकेला ब्रह्मवेता, मुक्तपुरूषों के साथ मिलकर, एकता रूप खेल खेलता हे । उसके स्वरूप में न धरती है, न आकाश है, न चन्द्रमा और सूर्य ही है । वह आप सबके अन्तर, निरन्तर रूप से पूर्ण हो रहा है । और वहां अनहद शब्दरूपी, अखण्ड बाजे बज रहे हैं । उस शब्द को कोई शूरवीर साधक, श्रवण करते हैं । वह अपने अविचल, अमर, अभय पद को देते वाले दाता हैं । वहां उत्तम साधक, उस निरंजन स्वरूप में राते रत्त रहते हैं । इसी प्रकार गुरू का ज्ञान लेकर, जो 'माता'-मस्त, और 'राता' - रत्त, रहता है, वह ही उत्तम मुमुक्षुओं को, उपरोक्त ज्ञान का उपदेश देने वाला है ।

242

मेरा गुरू आप अकेला खेलै, आपै देवै आपै लेवै,
आपै द्वै कर मेलै ॥टेक॥
आपै आप उपावै माया, पंच तत्त करि काया ।
जीव जनम ले जग मैं आया, आया काया माया ॥
धरती अंबर महल उपाया, सब जग धंधै लाया ।
आपै अलख निरंजन राया, राया लाया उपाया ॥
चन्द सूर दोइ दीपक कीन्हा, रात दिवस कर लीन्हा ।
राजीक रिजक सबन को दिन्हा, दीन्हा लीन्हा कीन्हा ॥
परम गुरू सो प्राण हमारा, सब सुख देवै सारा ।
दादू खेलै अनन्त अपारा, अपारा सारा हमारा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें गुरू उपदेश का परिचय दे रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमारे परब्रह्म रूप गुरूदेव ही, आप स्वयं अकेले संसार में व्यापक रूप से खेल रहे हैं । आप स्वयं ही भक्तों को दर्शन देते हैं और आप ही भक्तों का अर्पण किया हुआ, पत्र पुष्प फल जल आदि को ग्रहण करते हैं, और आप ही भक्तों की भाव भक्ति के द्वारा, अपने रूप भक्तों से मिलते हैं और वे समर्थ परमेश्वर, अपने आपसे ही आप माया उत्पन्न करते हैं और फिर माया से पांच तत्व और फिर पांच तत्वों से, काया की रचना करते हैं । फिर शरीरधारी जीव जन्म लेकर, संसार में आता है, यह काया रूप माया लेकर । वह समर्थ प्रभु, धरती रूप आंगन और आकाशरूपी छत वाला, यह ब्रह्माण्ड रूप महल उत्पन्न किया है । और इसमें सम्पूर्ण जगत् के जीवों को, कर्म रूपी धंधों में लगाये हैं । वह आप स्वयं मन वाणी का अविषय, अलख, निरंजनरूप राजा; जीव को उत्पन्न करके, कर्मों में लगाया है । उपरोक्त ब्रह्माण्ड रूपी महल के, उसने चन्द्रमा सूर्य रूप दो दीपक रचे हैं । और फिर रात दिन बनाकर, कर्मानुसार सबको फिर आप ही, राजिक रूप होकर, रीजक दे रहे हैं । और जीव ले रहे हैं । ऐसा काम वह समर्थ, आप करता है । वह ही हमारे परम गुरुदेव, प्राणों से भी अधिक, हमें प्रिय हैं । वही हमको सम्पूर्ण सुखों में, सार सुख के देने वाले हैं । इस प्रकार मुक्त पुरूष, उस अनन्त अपार, सबके सार स्वरूप सुख को, अपना स्वरूप जानकर, उस विश्व के सार रूप को, अपना निज रूप करके ही, निश्चय किया है ।

243. हैरान

थकित भयो मन कह्यो न जाई, सहजि समाधि रह्यो ल्यौ लाई ।।टेक।।
जे कुछ कहिये सोच बिचारा, ज्ञान अगोचर अगम अपारा ।
साइर बूंद कैसे करि तोलै, आप अबोल कहा कहि बोलै ।
अनल पंख परै पर दूरी, ऐसे राम रह्या भरपूरि ।
अब मन मेरा ऐसे रे भाई, दादू कहिबा कहण न जाई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें परमेश्वर सम्बन्धि आश्चर्य दिखाते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमारा मन तो थकित हो रहा है । उस आश्चर्य रूप परब्रह्म के स्वरूप को हम क्या कहें ? अब हमारा मन तो सहज कहिए निर्द्वन्द होकर, सहजावस्था रूप समाधि में उसमें अखण्ड लय लगा रहा है, जो कुछ सोच विचार कर कहें तो, उसका ज्ञान अगम है, मन इन्द्रियों का अविषय । समुद्र की बूंद, समुद्र का थाह कैसे पा सकती है ? क्या कह कर बतला सकती है ? आप तो बूंद समुद्र में पड़ते ही समुद्र रूप हो गई । कैसे कहकर समुद्र का अन्त बता सकती है ? और पक्षी तो बहुत हैं, परन्तु अनल पक्षी तो आकाश में सबसे ऊपर विचरता है, वहां कौन जा सकता है ? सौर आकाश का वह अन्त नहीं पा सकता । वैसे ही राम में सब रहते हैं, और राम सबमें परिपूर्ण रूप से व्यापक होने पर भी, सबसे दूर हैं, उनका पार कोई भी भक्त नहीं पा सकते । हे भाई ! अब तो हमारे मन की ऐसी अवस्था हो रही है कि राम के विषय में कहना चाहता है, परन्तु कुछ कह नहीं पाता है । क्योंकि अनुभव करने की शक्ति है, कहने की नहीं । और बाक इन्द्रिय में कहने की शक्ति है, अनुभव करने की नहीं है । इसलिए ब्रह्म स्वरूप अकथनीय होने से, बाणी का विषय नहीं है ।

244

अविगत की गति कोइ न लहै, सब अपना उनमान कहै ।।टेक।।
केते ब्रह्मा वेद विचारैं, केते पंडित पाठ पढैं ।
केते अनभै आतम खोजैं, केते सुर नर नाउं रटैं ।।
केते ईश्वर आसणि बैठे, केते जोगी ध्यान धरैं ।
केते मुनिवर मन कूं मारैं, केते ग्यानी ग्यान करैं ।।

केते पीर केते पैगम्बर, केते पढैं कुराना ।
केते काजी केते मुल्लां, केते शेख सयाना ॥
केते पारिख अन्त न पावैं, वार पार कछु नांही ।
दादू कीमत कोई न जाने, केते आवैं जांही ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें परमेश्वर सम्बन्धि आश्चर्य दिखाते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! उस अव्यक्त परब्रह्म की गति कहिए, उसके स्वरूप का अन्त कोई भी नहीं प्राप्त कर सके हैं । सभी भक्तजन अपने अनुमान से ही, उसके ज्ञान ध्यान और स्वरूप का अनुमान लगाया है । कितने ही ब्रह्मा तो वेदों के द्वारा, उसका विचार, विचार कर, थकित हो रहे हैं । और नैति नैति करके वेद कहता है । कितने ही पंडित लोग, पुराण और धर्मशास्त्र के पाठ पढ़ पढ़कर, थकित हो रहे हैं । और कितने ही आत्म अनुभव रूप ज्ञान की खोज कर रहे हैं । कितने ही देवता और नारद आदि नर, नाम स्मरण द्वारा, उसका अन्त पाना चाहते हैं, परन्तु वह बे अन्त है । कितने ही शंकर जैसे योगा अभ्यास द्वारा, उसका पार पाना चाहते हैं । कितने ही योगी उसके ध्यान में, लग रहे हैं । कितने ही मुनि मन को बहिर्मुख से अन्तर्मुख करके, साधना में लग रहे हैं । कितने ही ज्ञानी, उसके स्वरूप का ज्ञान कथ कथ कर थक रहे हैं । कितने ही पीर और पैगम्बर, उसका विचार करके थकित हो रहे हैं । और कितने ही काजी, मुल्लां, शेख, यह सब सयाने कुरान पाठ के द्वारा, उसका अन्त पाना चाहते हैं । कितने ही पूर्वोक्त प्रकार से, साधनों के द्वारा, उस परब्रह्म की खोज में लगे हैं, परन्तु उसके स्वरूप का किसी ने भी अन्त नहीं पाया । ब्रह्मवेता मुक्त पुरूष कहते हैं कि कितने ही तो साधना के द्वारा, उसके स्वरूप में आ रहे हैं और कितने ही सतसंग में जाकर संतों से, साधना के मार्ग को अपना रहे हैं । परन्तु उस आश्चर्य स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर की, किसी ने भी कीमत और अन्त नहीं बतलाया ।

245

ए हौं बूझि रहीं पिव जैसा है, तैसा कोइ न कहै रे ।
अगम अगाध अपार अगोचर, सुधि बुधि कोइ न लहै रे ॥टेक॥
वार पार कोइ अन्त न पावै, आदि अन्त मधि नांहीं रे ।
खरे सयाने भये दिवाने, कैसा कहां रहै रे ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर बूझै, केता कोई बतावै रे ।
सेख 'मसाइक पीर पैगम्बर, है कोइ अगहै गहै रे ॥

अम्बर धरती सूर ससी बूझैं, बाव वरण सब सोधैं रे ।
दादू चकित है हैराना, को है करम दहै रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें परमेश्वर के आश्चर्य स्वरूप का कथन करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हम परमेश्वर के विषय में बूझ रहे हैं कि परमेश्वर का स्वरूप कैसा है ? परन्तु कोई भी ज्ञानी, ध्यानी, जपी, तपी, योगी, जैसा स्वरूप है, वैसा कोई भी नहीं बताते हैं । शुद्ध बुद्धि वाले भी, उसको अगम अगाध अपार अगोचर कहिये इन्द्रियों का अविषय, ऐसा ही बताते हैं । उसके स्वरूप का आदि अन्त किसी ने भी नहीं पाया है । न उसका आद है, न मध्य है, न उसके स्वरूप का अन्त ही है । सच्चे तत्ववेता भी उसके स्वरूप का विचार करते करते दीवाने हो रहे हैं, जड़भर्त, बामदेव जैसे । किसी ने भी नहीं बताया कि परब्रह्म ऐसा है, और वहां रहता है । कितमे ही तो ब्रह्मा जी को जानते हैं, कितने ही विष्णु जी की उपासना में लगे हैं और कई शंकर जी को ही बताते हैं कि वह ही अकथनीय परब्रह्म है । और कोई कितने ही और देवों को बताते हैं । कई शेख, मसायक, पीर, पैगम्बरों को ही बताते हैं, परन्तु वह इन सबसे अलख कोई है, अगह । जिसको यह सब भज रहे है । आकाश और पृथ्वी के बीच, कोई सूर्य की कोई चन्द्रमा की, उपासना में लगे हैं और उन्हीं को बताते हैं । कोई पवन उपासक हैं, कोई वरूण की उपासना में लगे हैं । तत्ववेता मुक्तपुरूष कहते हैं कि यह सब ही और इन सबके उपासक चकित हो रहे हैं, परन्तु वह जो सब कर्मों का जलाने वाला परब्रह्म परमात्मा अकथ है । उसके बिना और कौन है ऐसा, जो कर्म बन्धन को काट सकै ।

(इति राग आसावरी टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ राग सिन्दूरा १० ।।

246. परिचय उपदेश

हंस सरोवर तहां रमैं, सूभर हरि जल नीर ।
प्राणीं आप पखालिये, निरमल सदा ही सरीर ।।टेक।।
मुकताहल मन मानिया, चुगै हंस सुजान ।
मधि निरंतर झूलिये, मधुर विमल रस पान ।।
भंवर कवंल रस बासना, रातो राम पीवंत ।
अरस परस आनन्द करै, तहां मन सदा हो जीवंत ।।
मीन मगन मांहैं रहै, मुदित सरोवर मांहि ।
सुख सागर क्रीड़ा करैं, पूरण परमिति नांहि ।।
निरभै तहां भै को नहीं, बिलसै बारम्बार ।
दादू दरसन कीजिये, सनमुख सिरजनहार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परब्रह्म के साक्षात्कार का उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! उत्तम हृदय रूप सरोवर में हरि समष्टि चेतन रूप परब्रह्म, जल रूप से परिपूर्ण हो रहे हैं। हंस रूप ब्रह्मवेता संत, ब्रह्माकार वृत्ति द्वारा वहां रम रहे हैं। वहां उस नाम स्मरण रूप नीर में, जो प्राणधारी साधक, अपने

अनात्म अहंकार आदि विकारों को धोता है, उसका शरीर सदा के लिये, निर्दोष निर्मल हो जाता है। बुद्धिमान हंस रूप संतों का मन, ब्रह्म स्वरूप हल मुक्ता के स्मरण रूप चुगने में ही प्रसन्न रहता है। और अति मधुर माया आदि मल रहित, शुद्ध स्वरूप का दर्शन रूप, रस पान करके ही, उसी आनन्द स्वरूप में झूमता रहता है। जैसे भंवरा कमल की सुगन्धि रूप रस को पान करता है, ऐसे ही संतों का मन रूप भंवरा, राम की प्रीति में अनुरक्त होकर, स्वस्वरूप दर्शन रूप रस को पीकर, अरस परस आनन्द लेता हुआ, सदा सजीवन भाव को प्राप्त हो रहा है। और जिस प्रकार मछली सरोवर में निमग्न रहती है, वैसे ही ब्रह्म सरोवर में मुक्त पुरुष अभेद चिन्तन द्वारा, आनन्दमय रहते हैं। वह ब्रह्म स्वरूप काल कर्म के भय रहित, निर्भय स्थान है। उसमें मुक्त पुरुष ब्रह्मानन्द का उपभोग करते हैं। इसी प्रकार हे जिज्ञासुओ ! तुम भी अभेद चिन्तन द्वारा, सिरजनहार सबको उत्पन्न करने वाले, परब्रह्म के सन्मुख होकर, उसका साक्षात्कार रूप दर्शन करो।

247·

सुख सागर में झूलिबो, कुसमल झड़ै हो अपार।
निर्मल प्राणी होइबो, मिलबो सिरजनहार ॥टेक॥
तिहिं संजमि पावन सदा, पंक न लागै प्राण।
कवंल बिगासे तिहिं तणों, उपजे ब्रह्म गियान ॥
अगम निगम तहं गमि करै, तत्तैं तत्त मिलान।
आसणि गुरू के आइबो, मुकतै महलि समान ॥
प्राणी परि पूजा करै, पूरै प्रेम बिलास।
सहजैं सुन्दर सेवियै, लागी लै कविलास ॥
रैणि दिवस दीसै नहीं, सहजैं पुंज प्रकास।
दादू दरसन देखियै, इहि रसि रातो हो दास ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परब्रह्म के साक्षात्कार का उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! शुद्ध हृदय रूप सुख सागर में, राम नाम रूपी जल से स्नान करने से, अपार पाप दोष नष्ट हो जाते हैं। और प्राणधारी निर्मल होकर, सृष्टि कर्ता परमेश्वर से मिलता है। इस प्रकार स्नान करने से, सदा के लिये

प्राणधारी, निर्मल रहता है। फिर पाप आदि कीचड़ प्राणधारी को, स्पर्श नहीं करता। और फिर उसका हृदय कवंल खिल कर उसमें ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता हैं। 'अगम निगम'—शास्त्र वेद, जिसका नैति नैति करके वर्णन करते हैं, उस परब्रह्म स्वरूप में लक्षणावृत्ति द्वारा पहुंच जाता है। व्यष्टि चेतन को समष्टि चेतन में, विचार द्वारा अभेद करके, गुरू के उपदेश द्वारा, ब्रह्मी स्थिति रूप आसण पर आकर, फिर इस शरीर रूप महल में रहता हुआ भी, इसके अध्यास से मुक्त रहता हैं। फिर वह प्राणधारी साधक, परिपूर्ण रूप ब्रह्म की आराधना रूप पूजा करता है। फिर सहज सहज उसकी वृति, पूर्ण प्रेम में विभल होकर, फिर उस वृतिरूप सुन्दरी की अखंड लय, ब्रह्म स्वरूप कैलास में लगती है। वहां रात और दिन का अभाव है। लौकिक ज्ञान अज्ञान वहां नहीं है। सहज निर्द्वन्द समूह, ब्रह्मतेज का ही प्रकाश भान होता है। उपरोक्त भक्ति वैराग्य ज्ञान रूप रस में रत्त होते वाले उत्तम पुरुष ही, इस प्रकार हृदय में ब्रह्म साक्षात्कार करते हैं।

248

अविनासी संग आत्मा, रमे हो रैणी दिन राम।
एक निरंतर तें भजै, हरि हरि प्राणी नाम ॥टेक॥
सदा अखंडित उरि बसै, सो मन जाणी ले।
सकल निरंतर पूरि सब, आतम रातो ते ॥
निराधार निज बैसणौ, तिहिं तत्ति आसण पूरि।
गुरू सिख आनन्द ऊपजै, सनमुख सदा हजूरि ॥
निहचल ते चालै नहीं, प्राणी ते परिमाण।
साथीं साथैं ते रहैं, जाणैं जाण सुजाण ॥
ते निर्गुण आगुण धरी, मांहैं कोतिगहार।
देह अछत अलगो रहै, दादू सेवि अपार ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें ब्रह्म परिचय उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! जो साधक हरि हरि उच्चारण करते हुए, निरन्तर एक अविनासी रूप राम में रमते हैं, उनकी बुद्धि रात दिन, उस राम का ही स्मरण करती है। वह राम सदा हृदय में ही बसता है, उसको साधन सम्पन्न होकर, अन्तर्मुख मन से विचार कर प्राप्त कर ले, क्योंकि जो राम निरन्तर सब में परिपूर्ण हो रहा है, उसी में हमारा जीव, आत्मा अनुरक्त

रहता है। हे साधक ! जब उस निराधार निज स्वरूप तत्व में, स्थिति रूप आसण लगाकर बैठै, तब उसको ब्रह्मतत्व प्रत्यक्ष भासता है। और फिर ब्रह्मनिष्ठ गुरू और उत्तम जिज्ञासु, उन दोनों के हृदय में, ब्रह्मानन्द उत्पन्न होता है। ऐसे साधक संयम रूप प्रमाण से, स्वस्वरूप ब्रह्म में निश्चल रहते हैं। फिर उनकी वृत्ति बहिरंग विषयों में नहीं जाती है। ऐसे बुद्धिमान ज्ञान रूप साधन द्वारा, अपने सदा के साथी परब्रह्म के साथ ही रहते हैं। फिर वह गुणों का विस्तार करने वाली माया को त्यागकर, जो अपनी सत्ता नाम समर्थाई से, संसार रूप खेल को रचने वाले, निर्गुण ब्रह्म में ही स्थिर रहते हैं। इस प्रकार उस अपार स्वरूप की उपासना करके, इस शरीर में रहते हुए भी, इस शरीर अध्यास से मुक्त होते हैं।

249·

पार ब्रह्म भजि प्राणिया, अविगत एक अपार।
अविनासी गुरू सेविये, सहजैं प्राण अधार ।।टेक।।
ते पुर प्राणी तेंहनो, अविचल सदा रहंत।
आदि पुरिस ते आपणों, पूरण परम अनंत ।।
अविगत आसण कीजिये, आपैं आप निधान।
निरालम्ब भजि तेहनों, आनंद आतम राम ।।
निरगुण निहचल थिर रहै, निराकार निज सोइ।
ते सति प्राणी सेविये, लै समाधि रत होइ।।
अमर आप रमिता रमै, घटि घटि सिरजनहार।
गुणातीत भज प्राणिया, दादू येह बिचार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, ब्रह्म परिचय उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! उस परब्रह्म परमात्मा का भजन कर। वह अव्यक्त एक सजातिय विजातिय, स्वगत भेद रहित, अपार, अशिनाशी की, गुरू उपदेश द्वारा, आराधना रूप सेवा कर। वही सबका प्राणधार है। वह सदा निश्चल रहने वाला, प्रभु रूप 'पुर' ही तेरा स्थान है। वह स्वयं अविचल, सदैव रहने वाला, वह आदि पुरूष ही, अपना पूर्ण, परम, श्रेष्ठ, अनन्त, देशकाल वस्तु परिच्छेद रहित, अव्यक्त स्वरूप, उसमें अपने मन को स्थिर कीजिये। वही आप स्वयं सबका कारण मूल है उसमें किसी प्रकार का मावावी अवलंबन नहीं है। उस आनन्द स्वरूप राम क:, अन्तर्मुख वृत्ति

द्वारा भजन कर । वह आप स्वयं निर्गुण, निश्चल, स्थिर निराकार निज ब्रह्म स्वरूप है । हे प्राणधारी साधक ! उस सत्य स्वरूप की उपासना करिये, अर्थात् अखंड लय लगाकर, सहजा अवस्था रूप समाधि द्वारा, उसमें रत्त रहिये । वह आप अमर ब्रह्म, रमता रूप से घट घट में रम रहा है । हे साधक ! वही सबकी उत्पति पालन संहार करने वाला सिरजनहार है । तूं गुणातीत होकर, उसका स्मरण कर । तेरे उद्धार का वही एक श्रेष्ठ उपाय है ।

250. सूरातन

क्यूं भाजै सेवग तेरा, अैसा सिरि साहिब मेरा ॥टेक॥
जाके धरती गगन आकाशा, जाके चंद सूर कैलाशा ।
जाके तेज पवन जल साजा, जाके पंच तत्त के बाजा ॥
जाके अठारह भार बनमाला, गिरि परवत दीनदयाला ।
जाके सायर अनन्त तरंगा, जाके चौरासी लख संगा ॥
जाके ऐसे लोक अनन्ता, रचि राखै विधि बहु भंता ।
जाके ऐसा खेल पसारा, सब देखै कोतीगहारा ॥
जाके काल मीच डर नाहीं, सो बरत रह्या सब मांही ।
मन भावै खेलै खेला, अैसा है आप अकेला ॥
जाके ब्रह्मा ईश्वर बंदा, सब मुनिजन लागे अंगा ।
जाके साध सिद्ध सब मांही, परिपूरण परिमित नांहीं ॥
सोइ भानै घड़ै संवारै, जुग केते कबहु न हारै ।
ऐसा हरि साहिब पूरा, सब जीवनि आतम मूरा ॥
सो सबहिन की सुधि जानै, जो जैसा तैसी बानै ।
सर्बंगी राम सयाना, हरि करै सो होइ निदाना ॥
जे हरि जन सेवग भागै, तो अैसा साहिब लाजै ।
अब मरण मांडि हरि आगै, तो दादू वाण न लागै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें साधनों में शूरातन दिखा रहे हैं कि हे परमेश्वर ! समर्थ ! हम आप के सेवक आपकी स्मरण रूप सेवा छोड़कर, इन्द्रियों के विषय वासनाओं की ओर क्यों दौड़ें ? हे साहिब ? ऐसे सर्व शक्तिवान, आप हमारे सिर पर विराजते हो । आपने ही धरती, गगन रूप आकाश और आकाश में चन्द्रमा सूर्य रचे हैं । कैलास पर्वत आदि बनाये हैं । तेज पवन जल आपने ही सजाये हैं और यह आपकी आज्ञा में बरत रहे हैं । और आपके पंच तन्मात्रा रूप बाजे बज रहे हैं । आपकी आज्ञा में अठारह भार वनस्पितयों के फल फूल लग रहे हैं । यही आपका बगीचा है । और हे दीन दयाल ! आपके द्रोणागिर पर्वत आदि सेवा में बरत रहे हैं । और आपके रचे हुए सात समुद्र और सातों दीप आपकी आज्ञा में लग रहे हैं और चौरासी लाख जीवा जोन ही आपकी सेना है । हे नाथ ! ऐसे ऐसे अनन्त लोक आपके रचे हुए, आपके स्वरूप में स्थिर हो रहे हैं । बहुत प्रकार से इनकी रचना करके, आपने धारण कर रखे हैं । हे कोतिगहार, परमेश्वर ! आप ही यह सब रचकर देख रहे हो । और फिर काल और मृत्यु करने वाली मीच का, किसी प्रकार का भी, आपके भक्तों को डर नहीं है । आप ही सबमें व्यापक हो रहे हो । आपके मन में आवै, जैसा ही खेल रचकर खेलने लगते हो । और फिर ऐसे समर्थ, आप अकेले ही सबसे अलग रहते हो । और आपके ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शंकर जी, आदि सेवक हैं, और सब ही मुनिजन आपके 'अंग' में कहिए स्वरूप का ध्यान कर रहे हैं । सभी सिद्ध और साधु आपकी आराधना में लगे हैं । परन्तु हे परमेश्वर ! आप सर्वत्र परिपूर्ण रूप से स्थिर हो रहे हो । कोई प्रमाण मिति आपके स्वरूप में नहीं है । ऐसे समर्थ हमारे स्वामी परमेश्वर, काल पाकर सबको प्रलय करते हैं, और फिर सृष्टि की उत्पति कर देते हैं । कितने ही युग के युग बीत जाते हैं, परन्तु कभी इस कार्य से थकित नहीं होते । ऐसे वे हरि रूप हमारे साहिब, सब प्रकार पूर्ण हैं और सर्व की जीवन, और सर्व के आत्मा स्वरूप हैं । वह सबकी सुध जानते हैं अर्थात् सबकी खबर लेते हैं । जो जैसा जीव है, वैसी ही उसकी बात खान पान आदि की बना देते हैं । वह सर्व अंगी राम, ऐसे सयाने कहिए चतुर हैं । जो कुछ वह कर दें, वही सही परमाणित रहता है । जो ऐसे हरि के जन कहिए भक्त होकर, हरि की भक्ति से अलग होवैं, तो उपरोक्त समर्थ परमेश्वर को वह लजावैंगे । और परमेश्वर को भी लाज आवैगी । इसलिये हे जिज्ञासुओ ! अब इस मनुष्य देह में ही आसुरी गुणों से शूरवीरता पूर्वक युद्ध करते हुए, मरणा मांड कर हरि के दर्शन प्राप्त करो ।

251·

हरि भजतां किम भाजिये, भाजे भज नांहीं ।
भागे भल क्यूं पाइये, पछतावै मांहीं ।।टेक।।
सूरा सो सहजैं भिड़ै, सार उर झेलै ।
रण रोकै भाजै नहीं, ते बाण न मेलै ।।

सती सत सांचा गहै, मरणै न डराई ।
प्राण तजै जग देखता, पिवड़ो उर लाई ॥
प्राण पतंगा यौं तजै, वो अंग न मोड़ै ।
जोवन जारै जोति सूं, नैना भल जोड़ै ॥
सेवग सौ स्वामी भजै, तन मन तजि आसा ।
दादू दरसन ते लहैं, सुख संगम पासा ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें साधनों में शूरातन दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के भजन करते समय, विषयों की कामना रखकर, पदार्थों की तरफ नहीं जाना चाहिये, क्योंकि उधर दौड़ने से पूर्णतया भजन नहीं होता है । संत भक्तों को विषय आशा पूर्ति के लिये दौड़ने से, लोक परलोक में भलाई कैसे मिलेगी? पश्चाताप ही बना रहेगा । वीर जिज्ञासु तो वही है, जो सहजावस्था में आकर, साधन रूपी हथियारों से, महा मोह को नष्ट करने के लिये युद्ध करता रहता है कौर ब्रह्मनिष्ठ गुरूदेव के सार शब्द रूप शस्त्रों को छाती पर झेलता है। फिर अन्तःकरण में, काम क्रोध आदि को रोकता रहता है । उनके वेग को आने नहीं देता । सती पतिव्रता नारी, पति से प्रेम करके, सच्चा सत्य ग्रहण करती है और फिर मरने भय नहीं करती । जगत्, के देखते देखते, पति के शव को, अपने हृदय से लगाकर, प्राणों का त्याग कर देती है, और तब ही पति लोक को प्राप्त हो जाती है । इसी प्रकार पतंग, दीपक का प्रेमी, जलते दीपक से आकर टक्कर खाता है और अपने शरीर को भस्म कर देता है । उस ज्योति से अपने नेत्र जोड़कर, अपनी जवानी को खत्म कर देता है । वही उत्तम मुमुक्ष है, जो तन मन की विषय वासना रूप आशाओं का त्याग करके, परमात्मा को भजता है । वही सेवक अन्तर्मुख वृत्ति से, स्वामी के पास आकर, हृदय में परमेश्वर का दर्शन पाता है और उनके अभेद रूप एकता का आनन्द अनुभव करता है ।

252· चेतावनी

सुणि तूं मना रे, मूरखि मूढ विचार,
आवै लहरि बिहावणी, दमैं देह अपार ॥टेक॥
करिबो है तिम कीजिये रे, सुमिरि सो आधार ।
चरण बिहूणों चालिबो रे, संभारी ले सार ।
दादू तेहज लीजिये रे, सांचो सिरजनहार ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें मन को परमेश्वर के भजन के लिये सावधान कर रहे हैं कि हे हमारे मूर्ख मन ! तूं अब हमारी बात, अर्थात् उपदेश सुन। और उसका विचार कर। देख, आगे विषयों की आशा रूप लहर, हृदय में आवैगी, उससे तेरी देह में अपार दहन कहिए दुख होगा। जो तेरे को अपने कल्याण का साधन करना है, उसकी साधना कर। अर्थात परमेश्वर का नाम स्मरण कर ले। वही तेरे जीवन का अधार है। क्योंकि हृदय में परमेश्वर के पास, इन चरणों के बिना, विचार रूपी चरणों से चलना है। इसलिये अब शीघ्र ही, सम्पूर्ण संसार के सार रूप परमेश्वर का नाम स्मरण कर। इस प्रकार स्मरण करता हुआ, उस सृष्टि कर्ता सिरजनहार परमेश्वर को प्राप्त कर ले।

253·

रे मन साथी माहरा, तूंनै समझायो कै बारो रे।
रातो रंग कसूंभ के, तैं बिसार्‍यो आधारो रे ॥टेक॥
सुपिनां सुख कै कारणै, फिरि पीछै दुख होई रे।
दीपक दृष्टि पतंग ज्यूं, यूं भ्रम जलै जिनि कोई रे॥
जिभ्या स्वारथि आपणैं, ज्यूं मीन मरै तजि नीरो रे।
मांहैं जाल न जाणियो, ताथैं उपनो दुख सरीरो रे॥
स्वादैं हीं संकुटि पर्‍यो, देखत ही नर अंधो रे।
मूरख मूठी छाड़ि दे, होइ रह्यो निरबंधो रे॥
मानि सिखावणि माहरी, तूं हरि भज मूल न हारी रे।
सुख सागर सोई सेविये, जन दादू राम संभारी रे॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, मन प्रति उपदेश कर रहे हैं कि हे हमारे साथी मन ! तेरे को हमने कितनी दफा सत्शास्त्र और सतगुरू उपदेश द्वारा समझाया। यह मायावी संसार का रंग, 'कसूंभ' पुष्प के समान, मिथ्या है। इसमें तूं क्या रत्त हो रहा है ? तेरा जो जन्म जन्मान्तरों का आधार परमेश्वर है, उसको तूं भूल गया है। यह संसार तो स्वप्न सुख के समान है, इसमें आसक्त होने से, फिर पीछे अन्त समय में, इसका फल दुख होगा। जैसे पतंग एक नेत्र इन्द्रिय के विषय के वश में होकर, दीपक की ज्योति में जल जाता है, इसी प्रकार अज्ञानी जन, स्त्री आदि पदार्थ, दीपक की ज्योति के तदवत् हैं, उनसे सुख प्राप्ति की

इच्छा करके, भ्रमवश अपने आपको कोई भी नष्ट नहीं करना। जैसे मछली जिह्वा के रस में लगकर, नीर से अलग होकर मर जाती है ; क्योंकि पानी में झीवर के जाल को नहीं देखा, इसी से उसके शरीर में जाल में फंसने रूप दुख प्राप्त होता है। इसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य देखते देखते ही, पंच ज्ञान इन्द्रियों के स्वादों में फंसकर, काल के संकट में पड़ जाता है। बन्दर पकड़ने वाला मदारी, एक छोटे मुंह के घड़े को जमीन में गाढ़ देता है। अन्दर थोड़ें चने डालता है, कुछ बाहर बखेर देता है। बन्दर चने देखकर वहां आता है, घड़े में हाथ ड़ालता है। चने ज्यादा होने से, लालचवश, दूसरा हाथ और डाल देता है, दोनों मुट्ठी भर लेता है। साथ दोनों हाथ निकालना चाहता है। मुंह छोटा होने से हाथ नहीं निकल पाते मदारी आकर गले में जंजीर डाल देता है। अगर बन्दर मुट्ठी खोल देता तो, बन्धन रहित ही था। इसी प्रकार अजानीजन देखता हुआ भी, विषयों में अंधा होकर, काल रूप बाजीगर के फंदों में फंस जाता है। हे मन ! तूं यह हमारी शिक्षा मान। स्वादों का त्याग कर, और पापों का हर्ता हरि का नाम स्मरण कर। इस मूल मनुष्य देह को, विषयों में आसक्त होकर, तूँ वृथा नहीं हार जाना। सुख सागर रूप तो, एक परमेश्वर ही हैं। उन्हीं की भक्ति रूप सेवा कर। हे मन ! अब राम का स्मरण, हर समय विचार पूर्वक कर।

दोहा :- अली गज मीन पतंग मृग, एकएक दोष विनाश।
सुन्दर तन पांचों बसै, ताकी कैसी आस ।।२५३।।

।। इति राग सिन्दूरा टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

।। अथ राग देवगंधार ११ ।।

254. विनती अनन्य शरण

सरणि तुम्हारी आइ परे, जहां तहां हम सब फिर आये,
राखि राखि हम दुखित खरे ।।टेक।।
कसि कसि काया तप ब्रत करि करि, भ्रमत भ्रमत
हम भूलि परे ।
कहूं शीतल कहूं तपति दहे तन, कहूं हम करवत
सीस धरे ।।
कहूं बन तीरथ फिरि फिरि थाके, कहूं गिरि परवत
जाइ चढे ।
कहूं सिखिर चढि परे धरणि पर, कहुं हति आपा
प्राण हरे ।।
अंध भये हम निकट न सूझै, ताथैं तुम्ह तजि
जाइ जरे ।
हा हा हरि अब दीन लीन करि, दादू बहु
अपराध भरे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें अनन्य शरण रूप विनती करते हैं कि हे समर्थ परमेश्वर ! अब हम आपकी शरण में आकर पड़े हैं । 'जहां तहां' कहिए लोक परलोक में सभी स्थलों पर भटक भटक कर, अत्यन्त दुखी हो गये हैं । अब आप ही हमारी रक्षा करो, रक्षा करो । हे नाथ ! हम तो बारम्बार तप और नाना प्रकार के व्रत करके, शरीर को कष्ट देते रहे हैं । संसार में भ्रमते भ्रमते, आपकी प्राप्ति का सही मार्ग भूलकर, बहिरंग साधनों के चक्र में पड़ गये । कभी तो किसी जन्म में, शीतल जल की पंच धारायें लेकर, शरीर को काठ की भांति शून्य बनाया । और कभी पंच धूनी तापते हुए शरीर को, तप्त ज्वालाओं से जलाते रहे । कभी किसी शरीर में, सिर पर करवत धारकर शरीर को चीरा । कभी बन तीर्थों में फिरते फिरते थक गये । और कहीं जाकर, छोटे बड़े पर्वतों पर चढ़े । वहां तप किया । किसी जन्म में, पर्वत शिखर पर चढ़कर, कामनावश पृथ्वी के ऊपर गिरे । कहीं पर किसी जन्म में, अपने हाथों अपने को मार कर प्राण खोये । इस प्रकार हम तो नाना स्वार्थों में फंसकर, अंधे हो गये थे । इसीलिये आप हमारे अत्यन्त समीप हृदय में रहते हुए भी, हमें दिखाई नहीं पड़ते थे । हे प्रभु ! आपके हमें दर्शन न होने से ही, हम आपको छोड़कर, संसार में जा जा कर, अनेक प्रकार की कलेश रूप अग्नि से जलते रहे हैं । हे हरि ! हम बहुत से, पाप रूप अपराधों से भरे हुए हैं । हा ! हा !, हमें अति दुख है । हे हरि ! अब हम दीनों पर दया करके, आप अपने स्वरूप में हमें रख लीजिये ।

255· पतिव्रत उपदेश

बौरी तूं बार बार बौरानी, सखी सुहाग न पावै ऐसै,
कैसै भरमि भुलानी ।।टेक।।
चरनौं चेरी चित नहिं राख्यो, पतिव्रत नांहि न जान्यो ।
सुन्दरि सेज संगि नहिं जानै, पीव सौं मन नहिं मान्यो ।।
तन मन सबै सरीर न सौंप्यो, सीस नाइ नहिं ठाढी ।
इक रस प्रीति रही नहि कबहुं, प्रेम उमंग नहिं बाढी ।।
प्रीतम अपनो परम सनेही, नैन निरखि न अघानी ।
निस वासुर आनि उर अंतरि, परम पूज्य नहिं जानी ।।
पतिव्रत आगै जिन जिन पाल्यो, सुन्दरि तिनि सब छाजै ।
दादू पिव बिन और न जानै, ताहि सुहाग बिराजै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, पतिव्रत का उपदेश कर रहे हैं कि हे हमारी बावली बुद्धि ! तूं बारबार पागल हुई है । हे बुद्धि रूप सखी ! इस प्रकार तो परमेश्वर रूप पति का, तेरे को दर्शन रूपी सुहाग प्राप्त नहीं होगा । तूं क्यों मायावी भ्रम में पड़कर, पतिव्रत रूप धर्म को भूल रही है ? तूं पति के चरणों की दासी बनकर, अपने चित्त को, उनकी सेवा में क्यों नहीं लगाया ? इसलिये तैंने पतिव्रत धर्म को नहीं पहचाना । हे सुन्दरी ! तेरे हृदय रूपी सेज के ऊपर ही, परमेश्वर रूप पति है । परन्तु तैंने उनको नहीं जाना, क्योंकि तेरा मन पीव से प्रीति नहीं करी । तैंने तन मन आदि सम्पूर्ण शरीर, भाव भक्ति द्वारा, उनके अर्पण नहीं किया । और आपा अभिमान रूपी सिर झुकाकर, अभी तक तूं पति के सामने खड़ी नहीं हुई । तेरी परमेश्वर से निष्काम एक रस प्रीति, अभी तक नहीं लगी । पति की प्रेमाभक्ति, तेरे हृदय में उमंग कर, वृद्धि को प्राप्त नहीं हुई । वह अपना प्रीतम परमेश्वर परम श्रेष्ठ, उसको स्नेह पूर्वक, ज्ञान रूप नेत्रों से दर्शन करके, तूं अभी तक तृप्त नहीं हुई । हे वृत्ति रूप सखी ! रात दिन परमेश्वर रूप पति को, हृदय रूप मन्दिर में बुलाकर, श्रेष्ठ सेवा पूजा करना, अभी तक भी तैंने नहीं जाना । हे बुद्धि रूप सुन्दरी ! जिन जिन भक्तों ने पहले पतिव्रत धर्म पालन किया है, वह संत आत्मा रूप सुन्दरी, सबके ऊपर सुशोभित होती है । जो पीव परमेश्वर के बिना, अपना स्वामी और किसी भी देवी देवता को नहीं मानती । उसी को परमेश्वर रूपी पति का सुहाग प्राप्त होता है ।

256· उपदेश चेतावनी

मन मूरिखा ! तैं योंही जन्म गवांयो, सांई केरी सेवा न कीन्हीं,
इहि कलि काहे कूं आयो ।।टेक।।
जिन बातन तेरो छूटिक नांहीं, सोइ मन तेरे भायो ।
कामी व्है विषया संग लागो, रोम रोम लपटायो ।।
कुछ इक चेति विचारी देखो, कहा पाप जिय लायो ।
दादू दास भजन करि लीजै, सुपिने जग डहकायो ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपदेश चेतावनी दिखा रहे हैं कि हे हमारे मूर्ख मन ! तूं यह मनुष्य जन्म परमेश्वर की भक्ति और परोपकार के बिना, वृथा ही क्यों गमा रहा है ? परमात्मा की तैंने निष्काम

भक्ति नहीं करी । इस कलिकाल में मूर्ख तूं, काहे को आया है ? तूं परमेश्वर की भक्ति के लिए आया था, उसको भूलकर, तैंने यह काम किये हैं, जिनसे कभी भी तेरा जन्म मरण से छुटकारा नहीं हो सकता । हे मन ! वही काम तेरे को प्रिय लगते हैं । तूं कामी क्रोधी बनकर, स्त्री आदि के संग में रत्त हो रहा है । और रोम रोम तेरा उसके प्रेम में लिपट रहा है । कुछ तो अज्ञान से चेत और विचार कर देख । यह क्या पाप तैंने, अपने जीव के लगाया है । अरे मूर्ख ! इस स्वप्न समान जगत को देखकर, तूं क्यों बहक रहा है ? परमेश्वर का भजन करके अपना उद्धार कर ले । इस पद से बखना जी के प्रति उपदेश किया था'।

(इति राग देवगंधार टीका सहित, सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ राग कालिंगड़ा १२ ।।

257. विनती

वाल्हा हूं ताहरी तूं माहरो नाथ, तुम सौं पहलि प्रीतड़ी,
पूरबलो साथ ।।टेक।।
वाल्या मैं तूं म्हारो ओलखियो रे, राखिस तूंनै हृदा मंजारि ।
हूं पामूं पीव आपणों रे, त्रिभुवन दाता देव मुरारि ।।
वाल्हा मन माहरो मन मांहैं राखिस, आतम एक निरंजन देव ।
चित मांहैं चित सदा निरंतर, येणी पेरे तुम्हारी सेव ।।
वाल्हा भाव भगति हरि भजन तुम्हारो, प्रेमैं पूरि कवंल बिगास ।
अभि अंतर आनन्द अविनासी, दादू नी एवैं पूरबी आस ।।

टीका :- ब्रह्मर्षि सतगुरूदेव इसमें, विनती करते हैं कि हे प्यारे प्रीतम परमेश्वर ! मैं तो आपकी दासी हूं और आप मेरे स्वामी हो । आपसे मेरी प्रीति पहले जन्मों से ही है । इसलिए आपका और मेरा साथ, पहले ही से चला आ रहा है । हे प्रीतम ! मैंने आपको पहचान लिया है । मैं अपने हृदय में आपको रखूंगी । मैंने त्रिभुवन के दाता, जीविका देने वाले परमेश्वर को, अपना पीव करके, पहचान लिया है । हे आत्म स्वरूप अद्वैत निरंजनदेव प्रीतम ! अब मेरे मन और चित्त को सदा के लिये, निरन्तर आप अपने मन और चित्त में रखिये । इस प्रकार अभेद रूप से आपकी, आराधना रूप सेवा करता हूं । तथा हे प्रियतम् हरि ! आपकी

निष्काम श्रद्धा भक्ति और पूर्ण प्रेम के द्वारा, मेरा हृदय रूप कमल खिलता रहै। और अन्तःकरण में अखण्ड आनन्द का अनुभव होता रहै। इस प्रकार हमारी आशा को आप पूर्ण करिये।

258. उपदेश चेतावनी

बारी बार कहूं रे गहिला, राम-राम कायें बिसार्‍यो रे।
जनम अमोलिक पामियो, एह्वो रतन कांई हार्‍यो रें ।।टेक।।
विखिया वाह्यो नैं तहं धायो, कीधो नहिं महारो वार्‍यो रे।
माया धन जोई नै भूल्यो, सर्वस येणे हार्‍यो रे ।।
गर्भवास देह दमैतो प्राणी, आश्रम तेह संभार्‍यो रे।
दादू रे जन राम भणींजे, नहिं तो यथा विधि हार्‍यो रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपदेश द्वारा सावधान कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! तेरे को बार बार परमेश्वर सम्बन्धी उपदेश करते हैं कि तुमने राम नाम का स्मरण क्यों भूला है ? यह अमूल्य मनुष्य शरीर तुम्हारे को मिला है। इस रतन रूप शरीर को विषय वासनाओं में क्यों नष्ट करता है ? विषयों की बात सुन कर, परमेश्वर को भूलकर, पागल की तरह विषयों की ओर ही तुम दौड़ते हो। हमने तुमको विषय वासना और काम आदि त्यागने को कहा , उस हमारी आज्ञा की तुमने अवहेलना ही की है। माया, सोना चांदी को देखकर, परमेश्वर को क्यों भूल रहे हो ? इस प्रकार के काम करके तो तुम, अपना सर्वस्व नास कर रहे हो और गर्भवास में तुम्हारा शरीर अति दुख पाता आ रहा है। फिर तुम उसी गर्भ आसन पर जाने का काम करते हो। इसलिए अब राम नाम का स्मरण करो। राम नाम स्मरण नहीं करने से तो, तुम अपने मनुष्य जन्म को वथा ही गमा रहे हो।

।। इति राग कालिंगड़ा टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

॥ अथ राग परजिया १३ ॥

259. परिचय

नूर रह्या भरपूर, अमी रस पीजिये,
रस मांहै रस होइ, लाहा लीजिये ॥टेक॥
परगट तेज अनन्त, पार नहिं पाइयें ।
झिलमिल झिलमिल होइ, तहां मन लाइये ॥
सहजैं सदा प्रकास, जोति जल पूरिया ।
तहां रहैं निज दास, सेवग सूरीया ॥
सुख सागर वार न पार, हमारा बास है ।
हंस रहैं ता मांहीं, दादू दास है ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें साक्षात्कार करने की स्थिति बता रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह ब्रह्म स्वरूप चेतन सर्वत्र, पिंड ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहा है। उसी का अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, चिन्तनरूप अमृत का पान करो और उस रस रूप ब्रह्म में उसका स्वरूप आत्मा ब्रह्मरूप हो सके, ऐसा विचार पूर्वक अध्यास करके लाभ लेओ। वह अनन्त तेजोमय ब्रह्म सहज समाधि में भान होता है। किन्तु उसका आदि और अन्त का ज्ञान नहीं होता, वह अपार स्वरूप है। उसका ध्यानावस्था में झिलमिल झिलमिल प्रकाश हो रहा है, उसी में अपने मन

को स्थिर करो । वह प्रकाश स्वभाव से ही, जल में ज्योति प्रतिबिम्ब के समान, हृदय में प्रकाशित हो रहा है । उत्तम जिज्ञासु ही अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, हृदय प्रदेश में ज्योति स्वरूप प्रभु के पास ही रहते हैं । जो सुख समुद्र ब्रह्म है, वार पार रहित, उसी में, ब्रह्मवेता रूप हंस निवास करते हैं ।

।। इति राग परजिया टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

॥ अथ राग भाणमली १४ ॥

260. बिनती

महारा वाल्हा रे ! तारे सरणि रहीश,
बिनतड़ी वाल्हा ने कहतां, अनंत सुख लहीश ॥टेक॥
स्वामी तणों हूं संग न मेलूं, बीनतड़ी कहीश।
हूं अबला तूं बलिवंत राजा, ताहरा बना बहीश ॥
संगी रहूं ता सब सुख पामूं, अंतरथैं दहीश।
दादू ऊपर दया करी नैं, आवो आणी वेश ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें विनती कर रहे हैं कि हे हमारे प्यारे परमेश्वर ! अब मैं आपकी शरण में रहूंगी। आपसे बिनती करके मैं जिस सुख का कभी अन्त नहीं होता, उस सुख को प्राप्त करूंगी। आप ही मेरे स्वामी हो, मैं आपका साथ कभी नहीं छोड़ूंगी। यही मेरी आपसे बिनती है। मैं बिरहीजन, आपकी अबला भक्त हूं, और आप हमारे सब प्रकार समर्थ राजा हो। आपके बिना मैं विषय प्रवाह में बह जाऊंगी। आपके संग रहकर, मैं सब प्रकार का सुख प्राप्त हुआ मानूंगी। और नहीं तो आपके वियोग बिरह के दुख से, भीतर से जल जाऊंगी। इसलिये हम बिरहीजनों पर दया करके, आप हमारे हृदय में आकर बिराजो, जिससे फिर हमारा कभी आपसे वियोग न हो सकै।

261·

चरण देखाड़ तो परमाण, स्वामी महारै नेणों निरखूं,
मांगू येज मान ।।टेक।।
जोवौं तुझनं आसा मुझने, लागूं येज ध्यान ।
वाहला मारा मलो रे सहिये, आवै केवल ग्यान ।।
जैणी पेरे हूं देखूं तुझने, मुझने आलो जाण ।
पीव तणी हूं पर नहिं जाणू, दादू रे अजाण ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें बिनती कर रहे हैं कि हे हमारे स्वामी परमेश्वर ! आपके चरणों का हमें दर्शन दिखाओ, तब ही आपका भक्त वचछलता बिड़द सिद्ध होगा । हे स्वामी ! मैं अपने नेत्रों से, आपका दर्शन कर सकूं, यही आपसे मांगता हूं । यह मेरी प्रार्थन स्वीकार करो । मेरे अन्तःकरण में, आपके दर्शन देखने की, आशा लग रही है । इसीलिये मैं आपका ध्यान करता हूं । हे बिरहीजनों ! हमारी बुद्धि में अद्वैव, ज्ञान प्रगट होवै, तब तो हम प्रीतम प्यारे से मिले हुए ही हैं । हे परमेश्वर ! जिस प्रकार हम आपको देख सकैं, ऐसा ही अपने स्वरूप का उत्तम ज्ञान हमें दीजिये । हे पीव ! मैं आपका ही अंश हूं, परन्तु आपका आदि मध्य और अन्त नहीं जानता । इसलिये में अज्ञानी ही हूं ।

262·

ते हरि मिलूं म्हारो नाथ, जोवा ने म्हारो तन तपै,
केवी पेरे पामूं साथ ।।टेक।।
ते कारण हूं आकुल व्याकुल, ऊभी करूं बिलाप ।
स्वामी म्हारो नेणैं निरखूं, ते तणों मने ताप ।।
एक बार घर आवै वाल्हा, नवे मेलूं कर हाथ ।
ये बिनती सांभल स्वामी, दादू तारो दास ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें विनती कर रहे हैं हे हरि ! आप ही हमारे नाथ हो, आप हमसेबअ मिलिये । आपको देखने के लिये, मेरा शरीर बिरह की ताप से जल रहा है । मैं आपका साथ, किस तरह प्राप्त

कर सकूंगी ? मैं आपके दर्शनों के लिये व्याकुल हो रही हूं और एक निश्चय से अन्तःकरण में खड़ी खड़ी विलाप करती हूं । आप मेरे स्वामी हो, मैं ज्ञानरूप नेत्रों से, आपका दर्शन करूं । हे नाथ ! आपका दर्शन न पाने से ही, मुझे दुख हो रहा है । हे प्यारे प्रीतम ! आप एक दफा हमारे हृदया रूप घर में आ जाओ, तो फिर हम आपका हाथ नहीं छोड़ेंगे । हे हमारे स्वामी सावंलसा परमेश्वर ! यही हमारी आपसे बिनती है । हम आपही के दास हैं ।

263

ते केम पामिये रे, दुर्लभ जे आधार ।
ते बिना तारण को नहीं, केम उतरिये पार ।।टेक।।
कैवी पेरे कीजै आपणो रे, तत्व ते छे सार ।
मन मनोरथ पूरे म्हारा, तन नो ताप निवार ।।
संभार्यो आवै रे वाल्हा, वेलाये अवार ।
बिरहणी बिलाप करे, तेम दादू मन विचार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें विनती कर रहे हैं कि हे संतो ! जो हमारे आधार प्रभु हैं, वे हमको कैसे प्राप्त होवैं ? उनका दर्शन तो दुर्लभ है । उनको हम कैसे प्राप्त कर सकैंगे ? उनके बिना हमको इस संसार समुद्र से तारने वाला दूसरा कोई भी नहीं है । तो फिर हम कैसे पार उतरैंगे ? जो वह संसार का सार तत्व है, उसको फिर किस तरह अपना बना सकेंगे । हे प्यारे प्रीतम परमेश्वर ! हमारे मन के मनोरथ पूरे करके, अन्तःकरण की ताप दूर करिये । हे प्रियतम ! बिरहीजन भक्तों के स्मरण करने पर तो, आप शीघ्र या देर से आते ही हैं । जैसे बिलाप करने वाली बिरहनी के चित्त की दशा होती है, वैसे ही हमारे मन के बिरह रूप दुख को, विचार करके, आप शीघ्र ही पधारिये ।

।। इति राग भाणमली टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

।। अथ राग सारंग १५ ।।

264. गुरू ज्ञान

हो ऐसा ग्यान ध्यान, गुरू बिना क्यों पावै ।
वार पार पार वार, दुस्तर तिरि आवै ।।टेक।।
भवन गवन गवन भवन, मन हीं मन लावै ।
रवन छवन छवन रवन, सतगुरू समझावै ।।
खीर नीर नीर खीर, प्रेम भक्ति भावै ।
प्राण कंवल बिगस बिगस, गोबिन्द गुण गावै ।।
जोति जुगति बाट घाट, लै समाधि धावै ।
परम नूर परम तेज, दादू दिखलावै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें गुरू ज्ञान की दुर्लभता दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! ब्रह्मनिष्ठ सत गुरूओं के बिना, जैसा अखंड परमेश्वर है, वैसा उसका अखण्ड ज्ञान और अखण्ड ध्यान, कैसे प्राप्त हो सकता है । जिस गुरू के ज्ञान के द्वारा साधक, दुस्तर संसार समुद्र के, विषयासक्ति रूप तट से तैरकर, अनासक्ति रूप अगले तट पर आ पहुंचे । और विषय वासना रूप भवन में, गवन करने वाले मन को, ज्ञान तथा ध्यान द्वारा, परब्रह्म में लगा सके, तथा मन भी ब्रह्म भवन में गमन कर सके, और स्थिर होकर फिर विषयों में रमण करना छोड़ दे तथा स्थिरता पूर्वक ब्रह्म में ही रमण कर सके, ऐसा ज्ञान और ध्यान तो, सत्य उपदेश के देने वाले सतगुरू ही समझा सकते हैं । जैसे दूध में जल, और जल में दूध, एक रूप हो जाता है, इसी प्रकार प्रेमा भक्ति के द्वारा

आतमा और परमात्मा एक रूप हो जाते हैं। और साधक का प्राण सहित हृदय कमल, प्रसन्न हो होकर, गोबिन्द के गुणनवाद गाने लगता है। योग की युक्ति कहिए साधना द्वारा, अन्तर्मुख वृत्ति सहज समाधी रूप घाट पर पहुंचावै तथा परम ब्रह्मतेज, अपने स्वरूप को दिखा सकै, ऐसा ज्ञान ध्यान, सच्चे सतगुरू के बिना नहीं प्राप्त होता है।

265. केवल बिनती

तो निबहै जन सेवग तेरा, असै दया करि साहिब मेरा ।।टेक।।
जे ~~ज्यूं~~ हम तोरैं त्यूं तूं जोरैं, हम तोरैं पै तूं नहिं तोरैं।
हम बिसरैं पै तूं न बिसारैं, हम बिगरैं पै तूं न बिगारैं।
हम भूलैं तूँ आन मिलावै, हम बिछुरैं तूँ अंगि लगावै।
तुम्ह भावैं सो हम पैं नांहीं, दादू दरसन देहु गुसांई।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें परमेश्वर से केवल विनती करते हैं कि हे हमारे स्वामी परमेश्वर ! तब तो हम आपके सेवक निबहैंगे। जब आप परम दयालु होकर, हम पर ऐसी दया करोगे कि जो हमतो आपसे वृत्ति तोड़ें, परन्तु आप हमारी वृत्ति को, अपने स्वरूप में, त्यों ही तत्काल जोड़ लो गे। हे दयालु ! हम तो आपसे अपने मन को तोड़ें, परन्तु आप हमको अपना अंश जानकर, हमसे नहीं तोड़ना। हमतो आपको भूलते ही रहते हैं, परन्तु आप हमको नहीं बिसारते। हमारी संभाल हर समय करते हो। हम तो आपसे बिगाड़ लें, परन्तु आप हमको अपना जानकर नहीं बिगाड़ते। हम तो आपको भूले हुए ही फिरते हैं, परन्तु आप हमको बहिर्मुख से अन्तर्मुख करके, अपने स्वरूप में मिलाते हो। हम तो आपसे बिछुड़ रहे हैं, परन्तु आप हमको अपने स्वरूप में दया करके लगाते हो। हे प्रभु ! आपको जो भावै अनन्य प्रेम, वह हमारे पास नहीं है। परन्तु हे गुसांई ! आप हमको साधनहीन जानकर भी, दया करके अपना दर्शन दीजिये।

566. काल चेतावनी

माया संसार की सब झूठी, मात पिता सब ऊभे भाई,
तिनहिं देखतां लूटी ।।टेक।।

जब लग जीव काया में थारै, खिण बैठी खिण ऊठी।
हंस जुथा सो खेलि गया रे, तब थैं संगति छूटी ।।

ए दिन पूगे आव घटानी, तब निचन्त होइ सूती ।
दादू दास कहै असी काया, जैसी गगरिया फूटी ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें काल से चेत कराते हैं कि हे जिज्ञासु ! संसार की रचना करने वाली यह माया और इसका कार्य मिथ्या है । माता पिता, भाई बंधु, इनके देखते देखते ही, इस माया रुप काया को काल लूट लेता है । जब तक तेरी काया में जीव है, तब तक यह कभी उठती है, कभी बैठती है, कभी आती है, कभी जाती है । इसमें जीवरूप हंस था, वह नाना प्रकार के खेल खेल कर, इसमें से जब चला जाता है, तब यह निश्चिन्त होकर, लम्बी ही सो जाती है । तत्ववेता कहते हैं कि हे साधक ! यह काया ऐसी है जैसे कि फूटी हुई गगरिया अर्थात् मटकी होती है। उसमें पानी नहीं रुकता। ऐसे ही इसमें, श्वांस रूपी पानी जाता रहता है ।

267. माया मध्य मुक्ति

असै गृह मै क्यूं न रहै, मनसा बाचा राम कहै ।।टेक।।
संपति बिपति नहीं मैं मेरा, हरिख सोक दोउ नांही ।
राग द्वैष रहित सुख दुख थैं, बैठा हरि पद मांही ।।
तन धन माया मोह न बांधै, बैरी मीत न कोई ।
आपा पर समि रहै निरन्तर, निज जन सेवग सोई ।।
सरवर कवंल रहै जल जैसै, दधि मथि घृत करि लीन्हा ।
जैसे बन मै रहै बटाऊ, काहु हेत न कीन्हा ।।
भाव भगति रहै रसि माता, प्रेम मगन गुण गावै ।
जींवत मुकत होइ जन दादू, अमर अभै पद पावै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, माया मध्य मुक्ति का स्वरूप बता रहे हैं कि हे मन ! ऐसा जो अविनाशी ब्रह्म स्वरूप तेरा जो घर है, इसमें तूं क्यों नहीं स्थिर रहता है ? अब तूं मन बचन कर्म से, ब्रह्म स्वरूप राम का स्मरण कर, जिसमें न सम्पत्ति है, न बिपत्ति है, न मैं है, न मेरापन है, न हर्ष है न शोक है । इन दो-

दो गुणों से रहित, वह ब्रह्म स्वरूप राम है । और न जिसमें राग है, न द्वेष है, न लौकिक सुख है और न उसमें दुख ही है, उसमें रहने से हरि आत्म स्वरूप में, तेरी सदैव स्थिति रहेगी । जो मुक्त पुरूष तन धन माया, माया का कार्य मोह से रहित हैं और न जिनके कोई बैरी है, न कोई मित्र ही है, अपना और पराया, सब जिनकी दृष्टि में समान ही हैं, ऐसे पुरुष उस परमेश्वर के निज स्वरूप सेवक, उसमें निरन्तर निवास करते हैं । वह मुक्त पुरूष इस मायावी संसार में ऐसे रहते हैं निर्लिप्त, जैसे कि सरोवर में कमल, पानी से निर्लेप रहता है। और जैसे दहीं को बिलोने वाला, दही बिलोकर घी निकाल लेता है । इसी प्रकार इस अनित्य संसार से नित्य, आत्म तत्व को विचारवान पुरूष, अलग कर लेते हैं और जैसे बन में रास्तेगीर अर्थात् रास्ते जाने वाला, किसी से प्रीति नहीं करता है । इसी प्रकार तत्ववेता ज्ञानी, इस मायारूप संसार बन में, किसी में भी आसक्ति नहीं रखता । वह निष्काम भाव भक्ति द्वारा, एकत्व भावना रूप प्रेम में मग्न होकर, परमेश्वर के गुणानवाद गाते हैं । वही पुरूष जीवन मुक्त होकर, अमर और अभय पद को प्राप्त करते हैं ।

268. परिचय उपदेश

चल रे मन तहां जाइये, चरण बिन चालिबो ।
श्रवण बिन सुनबो, बिन कर बैन बजाइये ॥टेक॥
तन नाहीं जहं मन नाहीं तहं, प्राण नहीं तहं आइये ।
सबद नहीं जहं जीव नहीं तहं, बिन रसना मुख गाइये ॥
पवन पावक नहीं धरणि अंबर नहीं, उभै नहीं तहं लाइये ।
चन्द नहीं जहं सूर नहीं तहं, परम जोति सुख पाइये ॥
तेज पुंज सो सुख का सागर, झिलमिल नूर नहाइये ।
तहं चलि दादू अगम अगोचर, तामैं सहज समाइये ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर के साक्षात्कार अर्थ उपदेश कर रहे हैं कि हे हमारे मन ! अब तूं आशा रूपी चरणों के बिना, वहां जा, जहां अन्तर्मुख वृति द्वारा पहुंचते हैं । और बहिरंग श्रवण के बिना, अन्तर वृत्ति द्वारा सुना जाता है । बहिरंग हाथ बिना, अन्तर हेत रूप हाथ से, अनहद नाद रूप बंसी

बजती है। जहां पर तन मन का अध्यास नहीं रहता और प्राणों की क्रिया भी वहां स्थूल रूप से नहीं होती, वहां चलिये। व्यष्टि शब्द जीव भाव और बिना रसना के, अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा गायन करते हैं। पवन अग्नि, धरती अम्बर, दो दो गुण रूप कोई भी विकार, जिसमें नहीं है। उसी शुद्ध स्वरूप ब्रह्म में अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, अपने को स्थिर करिये। वहां चन्द्रमा सूर्य का प्रकाश भी नहीं पहुंच पाता है। उस शुद्ध हृदय प्रदेश में, श्रेष्ठ ज्ञानमय ज्योति से, आनन्द स्वरूप सुख की अनुभूति करिये। वह ब्रह्म, समूह तेजरूप, सुख रूप समुद्र, उसके शुद्ध नूर के, झिलमिलाहट रूप नीर में, विचार रूप स्नान करिये। उस इन्द्रियों के अविषय, अगम स्वरूप में, सहजावस्था द्वारा अभेद होइये।

(इति राग सारंग टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः)

-::०::-

॥ अथ राग टोडी १६ ॥

269. स्मरण उपदेश

सो तत्त सहजैं सुखमन कहणा, सांच पकड़ मन जुगि जुगि रहणा ॥टेक॥
प्रेम प्रीति करि नीका राखै, बारम्बार सहजि नर भाखै ।
मुखि हिरदै सो सहज संभारै, तिहि तत्त रहणा कदे न बिसारै ।
अन्तरि सोई नीका जाणै, निमख न बिसरैं ब्रह्म बखाणै ।
सोई सुजाण सुधा रस पीवै, दादू देख जुगै जुगि जीवै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें स्मरण का उपदेश करते हैं कि हे हमारे मन ! उस परमात्मा रूपी तत्व का नाम स्मरण कर और उसी को वाणी द्वारा मुमुक्षुओं को स्मरण का आदेश दे । क्योंकि वह सत्य स्वरूप है, उसकी शरण ग्रहण कर । तो तूं जुग जुग में उसके स्वरूप में ही स्थिर रहेगा । परन्तु प्रीति के सहित प्रेमा भक्ति द्वारा, उसके नाम स्मरण को अच्छी प्रकार हृदय में रखना । और पुनः पुनः उसी का उपदेश करना । मुख से और हृदय में, स्वभाव से ही उसको हर समय याद रख, तो फिर उसी तत्व स्वरूप में तूं रहैगा । उसको कभी भी जागृत स्वप्न में नहीं भूलना । हृदय में वही चेतन स्वरूप निवास करता है, उसको विचार पूर्वक जाणै ।एक क्षण भी उसको नहीं भूलै । इस प्रकार उस ब्रह्म तत्व का अन्तर वृत्ति द्वारा विचार करना और जिज्ञासुओं के सामने उसी का बखान करना अर्थात् वर्णन करना । ऐसा विवेकी साधक ही 'सुजाण' कहिए चतुर है, जो उपरोक्त प्रकार से ब्रह्म अमृत रस का पान करता है । मुक्त पुरूष कहते हैं कि ऐसा विवेकी पुरूष ही, जुग जुग में सलीवन भाव को प्राप्त होता है ।

270. नाम महिमा

नाउं रे नाउं रे, सकल सिरोमणि नाउं रे,
मै बलिहारी जाउं रे ।।टेक।।
दूत्तर तारै पार उतारै, नरक निवारै नाउं रे ।
तारणहारा भो जल पारा, निरमल सारा नाउं रे ।
नूर दिखावै तेज मिलावै, जोति जगावै नाउं रे ।
सब कुछ दाता अमृत राता, दादू माता नाउं रे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, नाम स्मरण की महिमा कह रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर का नाम स्मरण रूपी साधन कलि काल में, सर्व साधनों में शिरोमणि साधन है । हम ऐसे राम नाम की बारबार बलिहारी जाते हैं । कठिन संसार समुद्र से तारकर, पार करने वाला, और नरक से उद्धार करने वाला एक नाम स्मरण रूप साधन ही श्रेष्ठ है । इसी नाम का निष्काम स्मरण, भक्तों को तारने वाला, संसार समुद्र से पार करने वाला और विश्व का सार निर्मल ब्रह्म को प्राप्त कराने वाला, एक नाम स्मरण ही है । नाम का स्मरण, अपने स्वस्वरूप नूर को दिखाने वाला है । व्यष्टि चेतन को समष्टि चेतन रूप ब्रह्म तेज में मिलाने वाला, एक नाम ही है । ज्ञान रूप ज्योति को हृदय में जगाने वाला भी नाम ही है । सम्पूर्ण सुखों को देने वाला यह नाम है । भक्ति रूप अमृत को प्राप्त कराकर, भक्तों को मस्त करने वाला, यह नाम स्मरण ही है ।

271 केवल विनती

राइ रे राइ रे सकल भुवनपति राइ रे, अमृत देहु अघाइ रे ।।टेक।।
परगट राता परगट माता, परगट नूर दिखाइ रे ।
अस्थिर ग्याना अस्थिर ध्याना, अस्थिर तेज मिलाइ रे ।
अविचल मेला अविचल खेला, अविचल जोति समाइ रे ।
निहचल बैना निहचल नैना, दादू बलि बलि जाइ रे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर के प्रति केवल विनती करते हैं कि हे परमेश्वर ! आप राजान् पत राजा हो । तीन लोक और अनन्त भवनों में, बसने वाले सम्पूर्ण सृष्टि के पुज्य राजा हो । आपका

दर्शन रूप अमृत पिलाकर, हमें तृप्त कीजिये । आप प्रगट होकर, हमको आपके स्वरूप में राते रत्त और माते मस्त करिये, जिससे हम भी, आप प्रगट स्वरूप से ओत प्रोत होवें । यह हमारी आपसे प्रार्थना है कि आप अपना 'नूर' कहिए शुद्ध स्वरूप का, हृदय में दर्शन दिखाकर, और फिर आप अपना स्थिर ज्ञान, स्थिर ध्यान देकर, स्थिर अखंड ब्रह्म तेज में हमें अभेद करिये । फिर हम आप अविचल स्वरूप से अन्तर्मुख वृति द्वारा मिलकर, आप अविचल स्वरूप का ही स्मरण रूपी खेल खेलैं । इस प्रकार आप हमारे हृदय में, अविचल ज्ञान की ज्योति जगाइये, और हमारे बचन भी, आप निश्चल स्वरूप में लगाकर, निश्चल करिये । फिर आप निश्चल स्वरूप को, हम अपने ज्ञान रूप नेत्रों से, आपका दर्शन करके, निश्चल भाव को ही प्राप्त होवैं । हे प्रभु ! हम आपकी बारम्बार बलिहारी जाते हैं ।

272. रसिक अवस्था

हरि रस माते मगन भये, सुमरि सुमरि भये मतवाले ।
जामण मरण सब भूलि गये ।।टेक।।
निर्मल भगति प्रेम रस पीवैं, आन न दूजा भाव धरैं ।
सहजैं सदा राम रंगि राते, मुकति बैकुंठैं कहा करैं ।।
गाइ गाइ रस लीन भये हैं, कछू न मांगै संत जना ।
और अनेक देहु दत्त आगै, आन न भावै राम बिना ।।
इक टग ध्यान रहैं ल्यौ लागे, छाकि परे हरि रस पीवैं ।
दादू मगन रहैं रसि माते, ऐसे हरि के जन जीवैं ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, रसिक पुरुषों की अवस्था दिखाते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! परमेश्वर के निष्कामी भक्तजन, नाम स्मरण रूप रस को पीते पीते, राते रत्त और माते मतवाले होकर, जन्म मरण से आदि लेकर, सम्पूर्ण दुखों को भूल गये हैं । क्योंकि निर्वासनिक प्रेमा भक्ति रूप रस को पीकर, अपने हृदय में परमेश्वर के सिवाय, दूसरे का भाव नहीं रखते । सहज स्वभाव से ही, सदा राम के भक्ति वैराग्य, ज्ञान रूप रंग में राते रत्त रहते हैं । उनको परमेश्वर कहते हैं कि चार मुक्ति और बैकुण्ठ का बास ले लो । राम के रसिक भक्त, तब भगवान से बोलते हैं कि प्रभु मुक्ति और बैकुण्ठ का हम क्या करैं ? हम तो अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, आपके गुणानवाद गा गाकर, भक्ति रूप रस में लीन हो रहे हैं । ऐसे संतजन कोई भी मायिक पदार्थ की इच्छा नहीं करते । चाहे उनको कोई अनेकों प्रकार का 'दत्त' कहिए धन लाकर, सामने रखै, परन्तु उनको राम की भक्ति के बिना, कुछ भी प्रिय नहीं लगता है । उनकी यही इच्छा रहती है कि एक अटल ध्यान, राम

का लय वृति द्वारा लगाकर लीन रहैं। इस प्रकार तृप्त होने पर भी यही इच्छा बनी रहती है कि इस रस को बारम्बार पीते ही रहैं। ऐसे हरि के जन, भक्ति रस में मग्न होकर, सदा सजीवन भाव को प्राप्त होते हैं।

273: केवल विनती

ते मैं कीधेला राम जे तैं वार्‌या ते, मारग मेल्हीं।
अमारग अणसरी, अकरम करम हरे ॥टेक॥
साधू को संग छाड़ी नै, असंगति अणसरियां।
सुकृत मूकी अविद्या साधी, बिखिया बिस्तरियां॥
आन कह्यु आन सांभल्युं, नेणैं आन दीठो।
अमृत कड़बो बिख इम लागो, खातां अति मीठो॥
राम रिदाथी बिसारी नै, माया मन दीधो।
पांचे प्राण गुरू मुखि बरज्या, ते दादू कीधो॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें केवल विनती कर रहे हैं कि हे राम जी ! जो आपने मना किया उन कामों को, मन बचन कर्म से मैंने किये हैं। आपकी प्राप्ति के मार्ग को छोड़कर, कुमार्ग को अपनाया और मैंने जाना कि इनके बिना किये, मेरा निर्वाह नहीं होगा। उन अकर्मों को किये और निष्काम कर्म योग का त्याग किया। आपके सच्चे संतों का सतसंग त्यागकर। जिनकी संगति नहीं करनी चाहिए थी, उनकी संगति मैंने करी। उनके बिना मुझे नहीं सरा। इसलिये मेरे सुकृत कर्म तो समाप्त होने आये, और अज्ञान मिश्रित कर्मों की मैंने साधना करी। और 'विखिया' कहिए स्त्री आदि पदार्थों के विषरूपी रंग का ही मैंने विस्तार किया। आपने जिन कामों को मना किया, मैंने उनसे विपरीत काम ही किए हैं। जैसे मैंने शुभ अशुभ कर्म किए, उनका फल, अब मैं नेत्रों के सामने देख रहा हूं। हे राम जी ! आपके नाम का स्मरण अमृत रूप था, वह मुझे कड़वा लगा और विषय वासना रूपी जहर भोगने में बड़ा मीठा लगा। हे राम ! मैंने आपका नाम स्मरण हृदय से त्यागकर और अपने मन को माया और माया के कार्य में ही लगाया। गुरुदेव ने पांच ज्ञान इन्द्रियों के विषयों का त्याग बताया परन्तु, मैंने गुरू की आज्ञा मेटकर, उन्हीं विषयों में अपने मन को लगाया।

274. बिरह बिनती

कहो क्यूं जन जीवै सांइयां, दे चरण कवंल आराध हो ।
डूबत है भौ सागरा, कारी करो करतार हो ॥टेक॥
मीन मरै बिन पाणियां, तुम बिन येह बिचार हो ।
जल बिन कैसें जीव हीं, इब तो किती इक बार हो ॥
ज्यूं परै पतंगा जोति में, देखि देखि निज सार हो ।
प्यासा बूंद न पाव हीं, तब बनि बनि करै पुकार हो ॥
निस दिन पीर पुकार ही, तन की ताप निवारि हो ।
दादू बिपत्ति सुनावही, करी लोचन सनमुख चारि हो ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें बिरह विनती दिखा रहे हैं कि हे हमारे स्वामी परमेश्वर ! कहो हम बिरहीजन आपके दर्शनों के बिना केसे जीवें ? अब आप अपने चरणों की शरण में हमको रखिए । हम इस संसार समुद्र में डूबे जा रहे हैं । हे सृष्टि के कर्त्ता ईश्वर ! हमें आप ही पार करोगे । जैसे मछली पानी के बिना तड़फती है, वैसे ही आपके बिना हमारी दशा हो रही है । आप जल रूप हैं, हम बिरहीजनों के लिये । आपके दर्शन बिना, अब हम कितनी बार जीवित रहेंगे । जैसे पतंग दीपक की ज्योति में गिरकर, प्राण गमाता है । इसी प्रकार हम बिरहीजन, बिरहरूप अग्नि में जलकर, पतंग की भांति हम अपने प्राण गमावेंगे । हे विश्व के सार स्वरूप ! आप अपने निज स्वरूप के हमें दर्शन कराइये । प्यासा पपैया स्वांति बूंद के लिये, बन बन में पुकारता रहता है । ऐसे ही हम बिरहीजन, आपके दर्शनों के लिये रात दिन पुकारते हैं । हमारे इस तन के बिरहरूप दर्द को आप दूर करिये । हम बिरहीजन अपना दुख आपको सुना रहे हैं । अब दया करके आप अपना दर्शन देओ । बिरहीजनों के दो नेत्र और दो आपके नेत्रों का आमने सामने दर्शन कराइये ।

275. केवल बिनती

तूं सांचा साहिब मेरा, कर्म करीम कृपाल निहारो,
मैं जन बंदा तेरा ॥टेक॥

तुम्ह दीवान सबहिन की जानो, दीना नाथ दयाला ।
दिखाइ दीदार मौज बंदे को, कायम करो निहाला ॥

मालिक सबै मुलिक के सांई, समर्थ सिरजनहारा ।
खैर खुदाइ खलक मैं खेलत, दे दीदार तुम्हारा ॥
मैं शिकस्त दरगह तेरी, हरि हजूर तूं कहियें ।
दादू द्वारैं दीन पुकारै, काहे न दर्शन लहियें ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, केवल बिनती कर रहे हैं कि हे हमारे साहिब परमेश्वर ! आप ही इस त्रिलोकी में सत्य स्वरूप हैं ? हे कृपालु ! अब आप दया रूप कर्म करके हमारी तरफ देखो । हम तो आप ही के बन्दे हैं । हे न्यायधीश ! आप सबके हृदय की भावना जानते हो । हे दीन गरीबों के स्वामी दयालु ! अब आप अपने स्थिर स्वरूप का दर्शन दिखा कर, हमको आनन्द दीजिये । अर्थात् कृत्य कृत्य करिये । हे समर्थ सिरजनहार ! आपही सम्पूर्ण संसार के मालिक हो । हे परमेश्वर ! आपकी कृपा द्वारा ही, मैं इस संसार में बिचरना रूप खेल खेलता रहा हूं । परन्तु अब मैं संसार रूप खेल से थक कर, आपकी शरण में आया हूं । अब आप हमको, आपका दीदार कराइये । क्योंकि अब हम हार कर आपके सतसंग रूप दरबार में अथवा हृदय रूप दरबार में अन्तर्मुख वृत्ति से आये हैं । और आप पाप रूप ताप को हरने वाले हरि, हजूर कहलाते हैं । हम तो आपके हजूरी दीन गरीब बन्दे हैं । आपके दर्शनों के लिए पुकार रहे हैं । हमको अब आपके दर्शन क्यों नहीं हो रहे हैं ?

276. उपदेश चेतावनी

कुछ चेति रे कहि क्या आया, इन मैं बैठा फूलि कर,
तैं देखी माया ॥टेक॥
तूं जिनी जानैं तन धन मेरा, मूरखि देख भुलाया ।
आज कालि चलि जावै देही, ऐसी सुन्दर काया ॥
राम नाम निज लीजिये, मैं कहि के समझाया ।
दादू हरि की सेवा कीजे, सुन्दर साज मिलाया ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपदेश द्वारा चेत कराते हैं कि हे जिज्ञासु ! तूं गर्भवास में परमेश्वर से क्या कह कर आया है ? उसका चेत करके, उस कोल को पूरा कर । तूं इस मायिक परिवार, मैं मेरे में 'फूल कर' कहिए राजी होकर बैठा है, और जानता है कि यह माया धन मेरा है । हे मूर्ख ! तूं यह मत जानै कि

तन धन मेरा है, इसको देख करके क्या लुभायमान हो रहा है ? आज काल करते करते, यह मनुष्य देह रूप सुन्दर काया भजन बिना क्षीण होती जा रही है। हे मूर्ख ! राम नाम का अपने उद्धार के लिये स्मरण कर ले। वह पाप और पापों के फल दुख को हरने वाले, हरि का भक्ति रूप सेवा कर ले। उस प्रभु ने सुन्दर मनुष्य देह रूपी साज, तेरे को दिया है।

277·

नेटि रे माटी में मिलना, मोड़ि मोड़ि देही काहे को चलना ।।टेक।।
काहे को अपना मन डुलावै, यहु तन अपना नीका धरना।
कोटि बरस तूं काहे न जीवै, बिचार देख आगै है मरना ।।
काहे न अपनी बाट संवारै, संजमि रहना सुमिरण करना।
गहिला दादू गर्व न कीजै, यहु संसार पंच दिन भरना ।।

टीका :–ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपदेश द्वारा चेत कराते हैं कि हे मानव ! निश्चय ही तेरा शरीर एक दिन मिट्टी में मिलैगा। इसका क्या घमंड करता है ? शरीर को मोड़ मोड़ कर कहिए अपनी छाया देख देख कर क्या चलता है ? अपने मन को परमेश्वर के स्मरण से हटा कर, विषयों में क्यों घुमाता है ? इस मनुष्य शरीर को राम नाम स्मरण, परोपकार और संत सेवा से सफल बनाइये। यदि करोड़ वर्ष भी तूं जीवित रहने की इच्छा करै, तो भी फिर अन्त में तो मरणा ही होगा। अपना आगे का रास्ता भजन द्वारा क्यों नहीं संवारता है ? इसलिये अब संयम पूर्वक रहकर, परमेश्वर का नाम स्मरण करिये। हे विषयों में बावले हुए मानव, इस धन जोवन का गर्व कहीं करना। तुझे इस संसार में पांच दिन ही जीवन यात्रा करनी है। अर्थात् सात बार हैं। एक मरने का और दूसरा जन्मने का है। बाकी शेष तो, पांच ही दिन की यात्रा है।

दोहा :- ऊंचा बांधै खंडावा, अपनी देखैं छांहि।
नितानन्द वह अन्ध नर, नरक मांहि मिल जांहि ।।२७७।।

278·

जाइ रे तन जाइ रे, जनम सुफल करि लेहु राम रमि।
सुमिरि सुमिरि गुन गाइ रे ।।टेक।।

नर नाराइन सकल सिरोमणि, जनम अमोलिक आहि रे ।
सो तन जाइ जगत नहि जानै, सक हि ठाहर लाइ रे ॥
जरा काल दिन जाइ गरासै, तासौं कुछ न बसाइ रे ।
छिन छिन छीजत जाइ मुग्ध नर, अंति काल दिन आइ रे ॥
प्रेम भक्ति साधु की संगति, नाउं निरंतर गाइ रे ।
जे सिरि भाग तौ सौंज सुफल करि, दादू बिलम्ब न लाइ रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, उपदेश द्वारा चेत कराते हैं कि हे मानव प्राणी ! हम तेरे को बारबार समझाते हैं कि इस मनुष्य शरीर के अमोलिक श्वांस विषयों में लग कर, वृथा जा रहे हैं । अब तूं बारबार राम का गुणानबाद स्मरण करके, उस राम में अभेद रूप से रमण करता हुआ, इस मनुष्य को सफल कर ले । यह मनुष्य देह सब शरीरों से अति श्रेष्ठ और नारायण की प्राप्ति का मुख्य साधन है । और यह अमूल्य जन्म है । प्रभु भजन के बिना, यह विषय भोगों में वृथा क्षीण होता जा रहा है । तूं काम वश होकर, इसको नहीं समझ रहा है । इसलिये अब तूं शीघ्र ही इस मनुष्य शरीर को परोपकार और भजन द्वारा, परमेश्वर के स्वरूप में लगा । क्योंकि वृद्धावस्था इसकी सुन्दरता को, और काल इसकी आयु के दिनों को, ग्रासवत भक्षण करता जा रहा है । उस काल पर तेरी कोई शक्ति काम नहीं करेगी । हे मूर्ख प्राणी ! यह शरीर क्षण क्षण में क्षीण होता जा रहा है । और ऐसे ही अन्त समय का दिन आ जायेगा । यदि तूं मनुष्य शरीर प्राप्ति में अपना अच्छा भाग्य समझता है, तो अब संतों की संगति और प्रभु भजन द्वारा, इस मनुष्य देह रूपी सामग्री को सफल करने में बिलम्ब नहीं करना ।

279.

काहे रे बकि मूल गवांवैं, राम के नाम भलैं सचु पावै ॥टेक॥
बाद विवाद न कीजै लोई, वाद विवाद न हरि रस होई ।
मैं तैं मेरीं मांनैं नांहीं, मैं तैं मेटि मिलै हरि मांही ॥
हारि जीति सौं हरि रस जाई, समझि देखि मेरे मन भाई ।
मूल न छाड़ि दादू बौरे, जनि भूलै तूं बकिबे औरे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उपदेश द्वारा चेत करा रहे हैं कि हे भाई ! राम के नाम को छोड़कर और बकवाद द्वारा इस मनुष्य देह रूपी मूल को क्यों वृथा गमा रहा है ? सत्य स्वरूप राम तो नाम स्मरण द्वारा ही प्राप्त होगा । हे लोगो ! भक्ति मार्ग में मत मतान्तरों की पक्ष लेकर, वाद विवाद में प्रेमा भक्ति रूपी रस नहीं प्राप्त होता है । मैं हूं मेरी है, तूं है तेरी है, इसको परमेश्वर नहीं मानते हैं । जो मैं और तूं के भेद को मिटा दिया है, वही पुरूष अपने हृदय में, हरि के स्वरूप में अभेद हुए हैं । हरि मार्ग में जो साम्प्रदायिक हार जीत की भावना रखते हैं, वहां से हरि का प्रेमा भक्ति रूपी रस चला जाता है । इस बात को हे भाईयो! अपने मन में समझकर देखिये । हे बावलेओ ! इस मूल मनुष्य देह को वाद विवाद में परमेश्वर के भजन को छोड़कर, निरर्थक नहीं गमाना ।

दोहा :- पंडित बाद्यो पाठ पै, दूजो बोल्यो डाटि ।
पाठ करत अन्तर पड्यो, रसना डारी काटि ॥२७९॥

दृष्टान्त :- दो पंडित एक स्थान पर पाठ कर रहे थे । अपनी अपनी सम्प्रदा के सिद्धान्तों पर शास्त्रार्थ होने लग गई । पाठ तो छूट गया और झगड़ा बढ गया । एक शास्त्रर्थ में डटकर बोला:-"अगर में तेरे से हार जाऊं, तो अपना रसना को काट कर फैंक दूँ ।" कुछ देर में, क्रोध के आवेश में पंडित ने अपनी रसना ही काट कर फैंक दी । ऐसे मत वादियों के झगड़े होते हैं ।

280·

हुशियार हाकिम न्याव है, सांई के दीवान ।
कुल का हिसाब व्हैगा, समझि मुसलमान ।।टेक।।
नीयत नेकी सालिकां, रास्ता ईमान ।
इखलास अंदर आपणे, रखणां सुबहान ।।
हुकम हाजिर होइ बाबा, मुसल्लम मिहरबान ।
अकल सेतीं आपना, सोधि लेहु सुजान ।।
हक सौं हजूरी हूणा, देखणा करि ग्यान ।
दोस्त दाना दीन का, मनणा फरमान ।।

गुस्सा हैवानी दूरि कर, छाड़ि दे अभिमान ।
दुई दरोगा नांहि खुशियां, दादू लेहु पिछान ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपदेश द्वारा चेत करा रहे हैं कि हे हाकिम! न्याय में सावधान रहकर, फ़ैसले करना, नहीं तो परमेश्वर की अदालत में, धर्मराज दीवान के सामने, तेरे सम्पूर्ण किये फ़ैसलों का, हे मुसलमान ! हिसाब होगा । इसलिए अपनी नीति, जनता की भलाई में रखना । सच्चे न्यायकारी भक्त यात्रियों का मार्ग, धर्म ही है । अपने अन्तःकरण में सबके साथ प्रेम रखना और मालिक की आज्ञा में रहते हुए, पूर्णतया प्राणियों पर दया रखना । हे बुद्धिमान ! बुद्धि द्वारा अपना सच्चा मार्ग तलाश कर ले । और मालिक के नाम स्मरण द्वारा, सत्य स्वरूप परमेश्वर के समीप जाकर, आत्म ज्ञान द्वारा, उसको प्राणिमात्र में देखने का यत्न करना । दीन गरीब जीवों का मित्र परमेश्वर और संतों की आज्ञा को मानना । क्रोध और पशुवृति हृदय से त्याग देना । अभिमान को छोड़कर, मिथ्या भेद जन्य प्रसन्नता में राजी नहीं होना । यही सच्चे हाकिम का कर्त्तव्य है, इसको पहचान कर न्याय करना ।

दोहा :- सांभर हाकिम सूं कह्यो, पद यह दादूदेव ।
मान बचन गहि नीति को, करी गुरून की सेव ।।१८०।।

दृष्टान्त :- सांभर झील छत्री में जब ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज विराजते थे, उस समय आपके निरपक्ष ज्ञान उपदेश को हिन्दु मुसलमान मजहबी लोग सुनकर, भयभीत हो उठे और हाकिम के पास जाकर पुकार करी । हाकिम का आदेश पाकर, राजपुरूष महाराज को लाकर काराग्रह में बन्द कर दिये । उधर छत्री में भगवान, दादू जी के रूप में प्रगट होकर, पद गाने लगे । जब हाकिम को इस बात का पता चला, तब दोनों स्थान पर ब्रह्मऋषि को देखा । फिर काराग्रह से निकाल कर नतमस्तक होकर, चरणों में नमस्कार किया और अपने अपराध की क्षमा याचना की । उस समय ब्रह्मऋषि परमगुरूदेव ने उपरोक्त पद से उपदेश किया ।

---

281. साधु प्रति उपदेश

निरपख रहणा राम राम कहणा, काम क्रोध में देह न दहणा ।।टेक।।
जेणैं मारिग संसार जाइला, तेणैं प्राणी आप बाहायला ।

जे जे करणी जगत करिला, सो करणी संत दूरी धरीला ।
जेणैं पंथैं लोक राता, तेणैं पंथैं साधु न जाता ।
राम नाम दादू ऐसैं कहिये, राम रमत रामहि मिलि रहिये ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, साधक पुरूषों को उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! मत मतान्तरों की पक्ष को त्यागकर, राम नाम का स्मरण करना और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि विकारों में अपने शरीर को नहीं जलाना । जिस काम क्रोध आदि मार्ग पर संसारिक प्राणी जाते हैं । वह प्राणधारी, अपने आपको अपने कर्त्तव्य द्वारा, चौरासी में ले जावेंगे । जो जो निसिद्ध और सकाम कर्म रूप करणी कर्त्तव्य, जगत के प्राणी करते हैं उन सम्पूर्ण करणी कर्त्तव्य को, निरपक्ष संत साधक, अन्तःकरण से त्याग देते हैं । जिस मार्ग पर संसारिक प्राणी, राते रत्त हो रहे हैं, उस मार्ग पर सच्चे परमेश्वर के साधक पुरुष नहीं जाते हैं । हे सच्चे निरपक्ष साधुओ ! राम राम निष्काम भाव से कहते हुए, रमते राम में मिलकर, राम रूप होकर रहिये ।

282· भेष बिडंबन

हम पाया हम पाया रे भाई, भेख बनाइ ऐसी मन आई ।।टेक।।
भीतर का यहु भेद न जानैं, कहै सुहागनि क्यूं मन मानैं ।
अंतरि पीव सौं परचा नांहीं, भई सुहागनी लोगन मांही ।
सांई सुपिनै कबहुं न आवै, कहिबा ऐसैं महलि बुलावै ।
इन बातनि मोहि अचिरज आवै, पटम कियां [redacted] कैसे पिव पावै ।
दादू सुहागनि ऐसैं कोई, आपा मेटि राम रत्त होई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें पाखण्डी साधुओं का परिचय दे रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! 'दंभी' - ऊपर का भेख बाना बनाकर, पाखंडी साधु, अज्ञानी जगत् के प्राणियों को बहकाते हैं और कहते है हमने परमेश्वर को पा लिया है । केवल भेख बनाकर ऐसी मिथ्या बातें, उनके मन में आती हैं । अन्तःकरण में तो उनको परमेश्वर का किंचित भी भेद मालूम नहीं हुआ है । और अपने लिए कहते हैं कि हम तो नित्य ही हृदय में, परमेश्वर का दर्शनरूपी सुहाग को प्राप्त कर रहे हैं । ऐसे पाखंडियों को स्वप्न में भी कभी प्रभु

का दर्शन प्राप्त नहीं होता है और वह मिथ्यावादी कहते हैं कि हमतो नित्य ही परमेश्वर को, अपने हृदयरूपी महल में बुलाते हैं । उन पाखंड़ियों की यह बातें सुन सुनकर सच्चे मुक्त पुरुष कहते हैं कि हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसे पाखण्ड करने से हे भाईयो ! तुम कैसे पीव को प्राप्त कर लोगे ? जो अपने अनात्म आपा अहंकार को मेटकर राम में सदैव रत्त रहती हैं, ऐसी सुहागनी संत आत्मा तो, कोई बिरली ही होती है ।

दोहा :- कुंभ गाड़ि आसण तलै, दीपक धरि ढकि मांहि ।
लोगन को कहि रात को, ब्रह्म जोति दरसांहि ॥२८२॥

दृष्टान्त :- एक पाखण्डी साधु अपने स्थान में, एक कमरे में गढा खोदकर, उसमें एक मिट्टी का घड़ा जमीन में गाड दिया । उस घड़े के अन्दर एक दीपक रख दिया और ऐसा फिट कर दिया कि दीपक दिखाई न दे, केवल जोति ही जोति दीखै । और उसके ऊपर अपना आसन बिछाकर बैठ गया और दो चार अपने ऐजन्ट बना लिए, प्रचार करने को । वह लोगों से कहने लगे कि हमारे गुरू जी ब्रह्म ज्योति का दर्शन कराते हैं, उनके चेले बन जाओ । तुम संसार से पार हो जाओगे । संसार के अज्ञानी भोले प्राणी आने लगे । वह पाखण्डी गुरू, उनको रात को, अपने आसण को हटाकर बोलता, नीचे इस ब्रह्म ज्योति का दर्शन करो । इस प्रकार ऋस क्रम से लोगों को बहका बहका कर, बहुत से चेले कर लिये । एक सच्चा विवेकी संतपुरुष, अपने कुर्ते की बांह में एक डण्डा रख लिया और चेला बनने को आकर, कुछ भेट पूजा चढ़ाई और नमस्कार किया और बोला :-गुरूदेव ! ब्रह्म ज्योति का दर्शन कराओ । जो उन्होंने आसन का पल्ला पलटा और कहा :- "दर्शन करो ब्रह्म ज्योति के ।" तत्काल साधु, कुर्ते की बांह से, डंडे को नीचे लेकर, उस घड़े में ठूसा मारा । वह सब ब्रह्म ज्योति चौपट हो गई । और फिर लोगों को कहने लगा :-अरे ! इस पाखण्डी के चक्र में फंसकर, क्यों तुम अपने मनुष्य जन्म को परमात्मा की तरफ से खो बैठे हो ?

---

283. आतम समता

ऐसैं बाबा राम रमीजै, आतम सौं अंतर नहीं कीजै ।टेक॥
जैसैं आतम आप लेखैं, जीव जंत ऐसैं करि पेखैं ।
एक राम ऐसैं करि जानै, आपा पर अंतर नहिं आनै ।
सब घटी आतम एक बिचारै, राम सनेही प्राण हमारै ।
दादू सांची राम सगाई, ऐसा भाव हमारे भाई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, समता भाव से बर्ताव करते हुए, स्मरण करने की प्रेरणा करते हैं कि हे संतो ! इस प्रकार राम के स्मरण द्वारा, राम में रमिमे । आत्मारूप राम से, किसी भी शरीर में, भेद नहीं करना । जैसे अपने आपको देखते हो और सुख दुख अपने ऊपर अनुभव करते हो, वैसे ही चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, सब जीवों में, सुख दुख अपनें समान ही अनुभव करिये । किसी को न सताइये । एक सजातिय विजातिय स्वगत भेद रहित, राम को ही व्यापक रूप, सब शरीरों में जानियें । अपने और पराये में फर्क नहीं देखना । सब शरींरों में एक चेतन्य रूप आत्मा को ही, विचारपूर्वक देखिये । परन्तु राम के सच्चे ब्रह्मनिष्ठ भक्त तो, हमको, हमारे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं । हे जिज्ञासुओ ! इस संसार में सच्ची तो, एक राम के साथ, 'सगाई' कहिए नाता, वही सही है । हमारे हृदय में तो ऐसा ही भाव है । आप भी इसी भाव को धारण करके, अपना जीवन सार्थक बनाइये ।

284. नाम समता

माधइयो माधइयो मीठो री माइ, माहुवो माहुवो भेटिये आइ ।।टेक।।
कान्हइयो कान्हयो करतां जाइ, केसवो केसवो केसवो धाइ ।
भूधरो भूधरो भूधरो भाइ, रामयो रामयो रह्यो समाइ ।
नरहरि नरहरि नरहरि राइ, गोबिन्दो गोबिन्दो दादू गाइ ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, नाम समता का रूप दिखा रहे हैं कि हे संतो ! हमें तो यह माधव नाम बड़ा मधुर लगता है और गुजराती भाषा से "माहुवो माहुवो" रटते रटते, अपने भक्तजनों से आप आकर, भेट करते हैं । और हम तो "कान्हैया, कान्हैया" नाम रटते रटते, रात दिन व्यतीत कर रहे हैं । और "केशव केशव" इस नाम को, संसार की तरफ से हटकर, स्मरण कर रहे हैं । हमें तो 'भूधर' यह राम बड़ा प्रिय लगता है, क्योंकि वह भूमिका को धारण करने वाले, अर्थात् गोवर्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर धारण करके, ब्रज की रक्षा करने वाले समर्थ परमेश्वर, उसका यह 'भूधर' नाम हमको बड़ा ही प्रिय लगता है । और वह राम रूप से अणु अणु में समाये हुए हैं, उनका यह राम नाम हमको बहुत ही प्रिय लग रहा है । इस नाम के साथ ही उसके स्वरूप में हम रम रहे हैं । और वह नर हरि स्वामी, प्रहलाद की रक्षा करने के लिए, नर सिंह रूप में हरि आप प्रगट होकर, भक्त की रक्षा की । उन राजान् पत राजा का, इसी नाम से हम स्मरण कर रहे हैं । 'गो' नाम इन्द्रियां गऊएं, पृथ्वी इन सबकी रक्षा करने वाले, सबको सत्ता स्फुर्ति देने वाले, इस गोबिन्द नाम को हम, रात दिन गाते हैं । सारे ही नाम उस परमेश्वर के जानकर, समता भाव से संत भक्त, निष्कामता पूर्वक नाम स्मरण द्वारा प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं ।

285· समता

एकहीं एकैं भया अनंद, एकहीं एकैं भागे द्वन्द ॥टेक॥
एकहीं एकैं एक समान, एकहीं एकैं पद निर्वान ।
एकहीं एकैं त्रिभुवन सार, एकहीं एकैं अगम अपार ।
एकहीं एकैं निर्भै होइ, एकहीं एकैं काल न कोइ ।
एकहीं एकैं घट परकास, एकहीं एकैं निरन्जन बास ।
एकहीं एकैं आपहि आप, एकहीं एकैं माइ न बाप ।
एकहीं एकैं सहज स्वरूप, एकहीं एकैं भये अनूप ।
एकहीं एकैं अनत न जाइ, एकहीं एकैं रह्या समाइ ।
एकहीं एकैं भये लै लीन, एकहीं एकैं दादू दीन ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें, समता भाव दिखा रहे हैं कि हे संतो ! हमारे तो इस ब्रह्म विचार रूप एकता के द्वारा, अन्तःकरण में आनन्द बरत रहा है और उस अद्वैत की एकता रूप विचार से सम्पूर्ण राग द्वेष आदि द्वन्द नष्ट हो गये हैं । उस एक सजातिय विजातिय स्वगत भेद रहित, ब्रह्म विचार से ब्रह्म स्वरूप हो गए हैं । उस एक ब्रह्म विचार से ही, हमको तो निर्वाण पद प्राप्त हुआ । इस एकत्व का विचार करने पर ही हमको तो, त्रिभुवन के सार, अगम अपार प्रभु का परिचय हुआ है । अब हम एक ब्रह्म तत्व का विचार करके, निर्भय हो गए और काल का हमें कोई भय नहीं रहा । जब एक ब्रह्म तत्व का विचार किया तो घट में ज्ञान के प्रकाश द्वारा, निरन्जन स्वरूप में ही बास करने लगे हैं । अब हमें कोई माता पिता आदि न भासकर, एक स्वरूप की ही स्थिति प्राप्त हो गई है । अब हम सहजावस्था द्वारा, अनूप ब्रह्म में अभेद होकर, अनूप ब्रह्म स्वरूप ही हो रहे हैं । अब हम अन्य किसी लोक विशेष स्थानों में न जाकर, अपने स्वरूप में ही समा गये हैं । इस प्रकार हम दीनता द्वारा, समता भाव में आकर, अद्वैत ब्रह्म में, अन्तर्मुख वृत्ति से अखंड लय लगाकर, ब्रह्मरूप हो रहे हैं ।

286· विनती

आदि है आदि अनादि मेरा, संसार सागर भगति भेरा ।
आदि है अंत है अंत है आदि है, बिड़द तेरा ॥टेक॥

काल है झाल है झाल है काल है, राखिले राखिले
प्राण घेरा ।
जीव का जनम का, जनम का जीव का, आपहीं आपले
भांनि झेरा ॥
भर्म का कर्म का कर्म का भर्म का, आइबा जाइबा
मेटि फेरा ।
तारि ले पारि ले पारि ले तारि ले, जीव सौं सींव है
निकटि नेरा ॥
आत्मा राम है, राम है आत्मा, जोति है जुगति सौं
करो मेला ।
तेज है सेज है सेज है तेज है, एक रस दादू खेल खेला ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, विनती करते हैं कि हे उत्पत्ति रहित ! सबके मूल कारण आदि देव परमेश्वर, आपकी भक्ति ही संसार समुद्र को पार करने के लिए एक नौका है । और आप ही इस सृष्टि के आदि और अन्त में, रहने वाले हैं । तथा आपका यश रूप कीर्ति, इस संसार में आदि से अन्त पर्यन्त फैला है । हे नाथ ! काल की दुःख देने वाली तरंगें, वे कालरूप होकर, हमारे प्राण निकालने के लिये, इस शरीर के घेरा दे रही हैं । आप ही रक्षा करोगे तो, हमारी रक्षा होगी । और इस जीव का जन्न धारण करने का, कारण कर्म रूप और जीव पर जो जन्म का प्रभाव कर्तृत्व रूप झगड़ा है, उसको तोड़कर, अपना अंश जानकर, इस जीवात्मा को आप अपने स्वरूप में विलय करिये । इस प्रकार भ्रम रूप कर्मों का दुख और कर्म तथा भ्रम के वश होकर, आने जाने रूप चक्कर को मेटिये । एवं इन काम आदि विकारों से हमारी रक्षा करके, इनके वेग से पार करिये और फिर उनके आगे देवी गुणों से भी पार करके, निर्गुण अवस्था द्वारा, जीव को अपने कूटस्थ शिव स्वरूप के निकट और शिव स्वरूप कूटस्थ को जीव के समीप करिये । तथा यह आत्मा ही राम रूप है और राम ही आत्मा ज्योति रूप है, ऐसी अभेद बोध कराने वाली, वेद की युक्तियां, हमारे हृदय में उत्पन्न करके, दोनों को एक रूप करिये । ब्रह्म तेज ही ब्रह्माकार वृत्ति रूप शय्या है और जो ब्रह्म वृत्ति रूप शय्या है, वही ब्रह्म तेज है । इस प्रकार ब्रह्माकार वृत्ति और ब्रह्म तेज एक रूप होकर रहे, और फिर हम अद्वैत विचार रूप आनन्द का खेल खेलते रहें, ऐसी दया करिये ।

287. परिचय

सुन्दर राम राया, परम ग्यान परम ध्यान,
परम प्राण आया ।।टेक।।
अकल सकल अति अनूप, छाया नहिं माया ।
निराकार निराधार, वार पार न पाया ।।
गंभीर धीर निधि सरीर, निरगुण निरकारा ।
अखिल अमर परम पुरिस, निर्मल निज सारा ।।
परम नूर परम तेज, परम जोति परकास ।
परम पुंज परापरं, दादू निज दास ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, साक्षात्कार परिचय दिखा रहे हैं कि हे संतो ! निर्गुण ब्रह्म का उत्तम ध्यान और उत्तम ज्ञान के द्वारा, परम सुन्दर अपनी सत्ता मात्र से विश्व को कहिए संसार के प्राणी मात्र को, चलाने वाला राजा, परम श्रेष्ठ प्राण रूप से सबमें रमने वाला राम अब हमें अपने आत्म स्वरूप होकर ही प्रतीत होने लगा है । वह काल कर्म से रहित, अति अनूप, निराकार होने से, माया और माया की छाया, सुख दुख आदि से रहित निराधार स्वरूप है । न उसका आदि है और न अन्त ही है । वह अथाह स्वरूप और अति धैर्य निधि स्वरूप है, परन्तु निर्गुण ब्रह्म होने से उकार का वाच्य विष्णु नहीं है और वही परम पुरूष सम्पूर्ण आकारों में अखिल रूप से स्थित हो रहे हैं और वही अपना वास्तविक आत्म स्वरूप है और परम तेजोमय है । उसी परम ज्योति स्वरूप का ज्ञान रूप प्रकाश, सबमें व्याप्त हो रहा है । वह सब प्रकार की परम श्रेष्ठ राशि रूप हैं और माया से परे है, हम ब्रह्मवेता मुक्त पुरूष, उसी के निज भक्त हैं ।

288. परिचय पराभक्ति

अखिल भाव अखिल भगति, अखिल नावं देवा ।
अखिल प्रेम अखिल प्रीति, अखिल सुरति सेवा ।।टेक।।
अलिख अंग अखिल संग, अखिल रंग रामा ।
अखिला रत अखिला मत, अखिला निज नामा ।।

अखिल ग्यान अखिल ध्यान, अखिल आनन्द कीजै ।
अखिला लै अखिला मैं, अखिला रस पीजै ॥
अखिल मगन अखिल मुदित, अखिल गलित सांई ।
अखिल दरस अखिल परस, दादू तुम मांहीं ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परिचय पराभक्ति कह रहे है कि हे संतो ! अनुभव गम्य परब्रह्म परमेश्वर में, मन वचन कर्म से, श्रद्धा द्वारा भक्ति करिये, अर्थात् हर समय उनका एकत्व भाव से, नाम स्मरण करिये । उनमें सब प्रकार से अखिल प्रेम, अखिल प्रीति और अखिल सुरति कहिए अखण्ड सुरति से उनकी आराधना रूप सेवा करो । उनका स्वरूप अखिल है, कभी खिलभाव को प्राप्त नहीं होता । ब्रह्मवेताओं की वृत्ति, ब्रह्मस्वरूप के संग होकर, फिर कभी टूटती नहीं है । उस व्यापक चेतन्य राम का पराभक्ति रूप रंग भी अखिल है । कभी नाश नहीं होता । उस अखिल स्वरूप में ही राते रत्त रहिये । उसका ज्ञानरूप मत भी अखिल ही है । उसका निज नाम "सोहं ओइम्" आदि भी अखिल है । इसको जपने वाले भी, अखिल स्वरूप ही हो जाते हैं । उसके अद्वैत ज्ञान और अहंग्रह ध्यान द्वारा, उस अखिल आनन्द में अपने व्यष्टि आनन्द स्वरूप को अभेद करिये । उस अखिल स्वरूप को ही वृत्ति में धारण करिये । और अखिल रस को पीकर, अखिल स्वरूप में ही अभेद रहना । इस प्रकार उस अखिल स्वरूप में मगन होकर, उसके अखिल प्रेम से प्रसन्न रहना । ऐसी पराभक्ति करने वालेभक्त,उस अखिल सांई के स्वरूप में गलतान रहते हैं । हे अखिल स्वरूप परमेश्वर ? पराभक्ति द्वारा, मुक्त पुरुष अन्तर्मुख वृत्ति से, आप अखिल स्वरूप परब्रह्म का स्पर्श करके, अपने आपमें ही आपकी अभेद होते हैं ।

(इति राग टोडी टीका सहित, सम्पूर्ण समाप्तः)

।। अथ राग हुसेनी बंगाल १७ ।।

289. अनन्यता

है दाना है दाना, दिलदार मेंरे कान्हा ।
तूं ही मेरे जान जीगर, यार मेरे खाना ।।टेक।।
तूं ही मेरे मादर पिदर, आलम बेगाना ।
साहिब सिरताज मेरे, तूं ही सुलताना ।।
दोस्त दिल तूं ही मेरे, किसका खिल खाना ।
नूर चशम जिंद मेरे, तूं ही रहमान ।।
एकै असनाम मेरे, तूं ही हम जाना ।
जानिबा अजीज मेरे, खूब खजाना ।।
नेक नजर मेहर मीरां, बंदा मैं तेरा ।
दादू दरबार तेरे, खूब साहिब मेरा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, अनन्यता दिखा रहे हैं कि हे परब्रह्म स्वरूप समर्थ ! हे जबरदस्तों के भी जबरदस्त कृष्ण ! आप ही हमारे दिलदार मित्र हो । आप ही हमारे जीव की जीवन और 'जिगर' कहिए हमारा कलेजा रूप, हमारे मित्र, सहायक और निवास स्थान हैं । आप ही हमारे इस संसार में माता पिता और बेगाना कहिए पराये जन हैं । आप ही हमारे साहिब स्वामी, सिर के ताज सुलतान बादशाह रूप हैं ।

आप ही हमारे दोस्त दिल में, दिलदार रूप हैं । और यह हमारा शरीर रूप घर भी किसका है ? आपका ही है । हे परमेश्वर ! आपका शुद्ध स्वरूप ही, हमारे नेत्र और जीवन का लक्ष्य स्वरूप है । हे रहमान, परमेश्वर! हमने यह जान लिया है कि एक मात्र आप ही, संसार में और मेरे बीच में शोभा रूप हैं । तथा आप ही मेरे पक्ष पर रहने वाले सम्बन्धी और हमारे धनरूप हैं । हे हमारे श्रेष्ठ परमेश्वर ! मैं आपके हृदय रूप दरबार में आया हूं । और आप ही का दास हूं । हे हमारे सरदार ! हम पर आप अपनी दया की दृष्टि करिये ।

290. निनय

तूं घर आव सु लच्छिन पीव,
हिक तिल मुख दिखलावहु, तेरा, क्या तरसावै जीव ।।टेक।।
निसदिन तेरा पंथ निहारौं, तूं घरि मेरे आव ।
हिरदा भीतरि हेत सौं रे वाल्हा, तेरा मुख दिखलाव ।।
वारी फेरी बलि गई रे, शोभित सोइ कपोल ।
दादू ऊपरि दया करीनै, सुनाइ सुहावे बोल ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, विनय करते हैं कि हे हमारे शुभ लक्षणयुक्त प्रीतम प्यारे परमेश्वर! आप मेरे हृदयरूपी घर में पधारिये । और आप अपने दर्शन देने का लालच देकर, हमारे जीव को क्यों तरसाते हो ? हे प्रभु ! हम रात दिन आपके दर्शनों के लिये, आपका मार्ग देखकर रहे हैं । हे हमारे परमेश्वर ! हमारे हृदय के भीतर, आप हमको अपना जानकर, स्नेहपूर्वक अपना मुख दिखलाइये । मैं आपके ऊपर, अपने तन मन को न्यौछावर करके, बलिहारी जाती हूं । हे नाथ ! आपके कपोल बड़े ही शोभा पाने वाले हैं । अब हम बिरहीजनों पर आप दया करके, अपने प्रेम भरे बचन सुनाइये । आपके बचन हमको बड़े सुहावने और प्रिय लगते हैं ।

।। इति राग हुसेनी बंगाल टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

।। अथ राग नट नारायण १८ ।।

291. हित उपदेश

ताकौं काहे न प्राण संभालै, कोटि अपराध कलप के लागे,
माँहि महूरत टालै ।।टेक।।
अनेंक जनम के बंधन बाढै, बिन पावक फंद जालै।
असो है मन नांव हरि को, कबहूं दुख न सालै ।।
चिंतामणि जुगति सौं राखै, ज्यूं जननी सुत पालै।
दादू देंखु दया करै ऐसी, जन कौं जाल निरालै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, हितोपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! उस समर्थ परमेश्वर के नाम स्मरण को, निष्कामता पूर्वक क्यों नहीं संभालता ? करोड़ों प्रकार के पाप कलप में लगे हुए, हृदय के भीतर से एक महुरत में, वह समर्थ का नाम स्मरण काटता है। और जन्म जन्मान्तरों के कर्म बन्धनों को बिना अग्नि के ही, वह समर्थ परमेश्वर, अपने आत्मीय जनों के जला देते हैं, अपने नाम के द्वारा। हे साधक ! ऐसा उस हरि का नाम स्मरण है, तेरे मन को उसके स्मरण में लगा। फिर दुख रूप साल तेरे को कभी भी नहीं व्यापेगा। जैसे माता अपने पुत्र को, हृदय के भाव से पालती है। इसी प्रकार भक्तजन, नामरूप चिंतामणि को युक्ति से हृदय में धारण करते हैं। फिर वह परमेश्वर ऐसी दया करते हैं कि आप अपने भक्त को, जमराज के दूतों के जाल से, निराला कर लेते हैं।

292. विरह

गोबिंद कबहुं मिलै पिव मेरा,
चरन कवंल क्यूँ ही करि देखौं, राखौं नैनहुं नेरा ।।टेक।।
निरखण का मोहि चाव घणेरा, कंब मुख देखौं तेरा ।
प्राण मिलन को भयी उदासी, मिल तूँ मीत सवेरा ।।
व्याकुल ताथै भई तन देही, सिर पर जम का हेरा ।
दादू रे जन राम मिलन कूं, तप हीं तन बहुतेरा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परमेश्वर का विरह दिखा रहे हैं कि हे हमारे प्यारे प्रियतम गोबिन्द ! आप हमको कब दर्शन देंगे ? मैं आपके तेज पुंज रूपी चरणों को, अपने हृदय कमल में किस प्रकार देख पाऊंगा ? क्योंकि आपको हम अपने ज्ञान रूपी नेत्रों के सामने, नजदीक हीं रखैंगे । हे नाथ ! आपके निरखने का, अर्थात् देखने का, हमारे हृदय में बहुत चाव लग रहा है । आप कृपा करके, हमको बतलावो कि हम आपके मुखारबिन्द का कब दर्शन करैंगे ? हे हमारे मित्र गोविन्द ! आपको मिलने के लिये, हम प्राणधारी लोक परलोक के सम्पूर्ण विषय वासनाओं से, अब उदास हो गये हैं । अब तो आप सवेरा कहिए, आयु के पहले या दूसरे पहरे में ही, हमको दर्शन दीजिए । विरह के दर्द से, हमारा तन मन व्याकुल हो रहा है और इसके उपरान्त, हमारे सिर पर जमराज का चक्र लग रहा है । हे राम ! आपसे मिलने के लिये, हमारा तन बिरहरूपी तपन से, खूब तप रहा है ।

293

कब देखौं नैनहुं रेख रती, प्राण मिलन को भई मती ।
हरि सौं खेलौं हरि गती, कब मिल हैं मोहि प्राण पती ।।टेक।।
बल कीती क्यूं देखौंगी रे, मुझ माहैं अति बात अनेरी ।
सुणि साहिब येक बिनती मेरी, जनम जनम हूं दासी तेरी ।।
कहु दादू सो सुनसी सांई, हौं अबला बल मझ मैं नांही ।
करम करी घरि मेरे आई, तो सोभा पिव तेरे तांई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, विरह का स्वरूप कह रहे हैं कि हे संतो ! हमारे जीवात्मा में परमेश्वर प्राप्ति के लिये, बिरह का दर्द हो रहा है । हे नाथ ! आपको हम अपने ज्ञान रूप नेत्रों से, एक क्षण भी दर्शन देखैं, तो हमारा प्राण और बुद्धि आपके मिलने के लिये, व्याकुल हो रहे हैं, वह दुख शान्त होवे और फिर हे हरि ! आपका अभेद चिन्तनरूप खेल खेलकर, हमारी वृत्ति आपसे अनुरक्त रहे । हे हमारे प्राण पति परमेश्वर ! आप हमसे कब मिलैंगे ? मैं अपनी शक्ति करके तो आपको कैसे देख सकूंगी । क्योंकि मुझमें बहुत सी ऐसी गलत बातें हैं, जिनसे कि मैं आपको नहीं देख पाऊंगी । परन्तु हे हमारे साहिब ! एक हमारी प्रार्थना आप सुनिये कि मैं आपकी जन्म जन्मान्तरों से दासी हूं । और आपसे बिनती कर रही हूं कि मेरी बिनती को आप अवश्य सुनेंगे तथा दर्शन देंगे, ऐसी आशा है । हे प्रभु ! ऐसा दया रूपी कर्म करके, आप हमारे हृदयारूपी घर में आइये, तो आप ही की इसमें शोभा है ।

दोहा :- नृपती हरसहि साध के, जातो दरस चलाइ ।
जो सिध तो धन भाग मो, न तो बड़ाई पाइ ॥२६३॥

दृष्टान्त :- एक राजा सतसंगी थे । उन्होंने सुना कि अमुक स्थान में सन्त आये हैं । तब विचार किया कि मैं सन्त के दर्शन करने चलूं । अगर महात्मा भक्ति ज्ञान रूपी सिद्धि सम्पन्न हैं ? तो मेरा अहो भाग्य है और नहीं तो साधु के लिये बड़ाई तो मिलेगी । मान प्रतिष्ठा होगी, दुनियां में, कि राजा उनके पास दर्शन करने जाता है ।

294

नीके मोहन सौं प्रीति लाई,
तन मन प्राण देत बजाई, रंग रस के बनाई ॥टेक॥
येही जीरे वैही पीव रे, छोर्‌यो न जाई माई ।
बाण भेद के देत लगाई, देखत ही मुरझाई ॥
निरमल नेह पिया सौं लागो, रत्ती न राखी काई ।
दादू रे तिल में तन जावै, संग न छाड़ौं माई ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, विरह का स्वरूप कह रहे हैं कि हे संतो ! अब तो हमने माया से प्रीति हटाकर, मोहन के साथ अच्छी प्रकार अपनी प्रीति लगाई है। हृदय में अखंड प्रेम रूपी बाजे बजाते हुए, हम अपना तन मन प्राण, मोहन को समर्पण कर रहे हैं। उसके निष्काम भक्ति रूपी रंग में, अपनी इन्द्रियों को भी रंगकर, रस पीने वाली बना ली हैं। वही हमारे पीव हमारे जीवरूप हैं। हे संतो ! अब हम उनको छोड़ नहीं सकते। क्योंकि वे फिर अपना वियोग रूपी बिरह के बाण लगा देते हैं, जिससे हमारा हृदय कमल कुमला जाता है। अब तो हमारा निर्मल निर्वासनिक स्नेह, प्रीतम प्यारे परमेश्वर से लगा है। अब हम उनसे एक रत्ती भी 'कालिमा' कहिए अन्तर नहीं रखते हैं। क्योंकि हे संतो ! यह हमारा तन एक क्षण में जाने वाला है। न मालूम कब चला जाय ? इसलिए अब हम अपने स्वामी अधिष्टान चेतन परमेश्वर का संग नहीं छोड़ेंगे।

295. परमेश्वर महिमा

तुम्ह बिन अैसैं कौन करै, गरीब निवाज गुसांई मेरो।
माथै मुकुट धरै ।।टेक।।
नीच ऊंच ले करै गुसांई, टार्यो हूं न टरै।
हस्त कवंल की छाया राखै, काहू थैं न डरै ।।
जाकी छोति जगत कौं लागै, तापरि तूं हीं ढरै।
अमर आप ले करे गुसांई, मार्यो हूं न मरै ।।
नामदेव कबीर जुलाहा, जन रैदास तिरै।
दादू वेगि बार नहीं लागै, हरि सौं सबै सिरै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर की महिमा दिखा रहे हैं कि हे हमारे स्वामी दयालु परमेश्वर ! गरीबों को निवाजने वाले ! आपके बिना ऐसी दया हम अधम पापी जीवों पर, कौन कर सकता है ? मैं स्त्री, धर्म सम्पन्न वेश्या जाति में, मुझसे ब्राह्मण वैगरा, नफरत करते हैं। परन्तु आप मुझ अभक्त पर दया करके, मेरे हाथों से, अपने सिर पर मुकट धारण कर रहे हो। हे गुसांइं ! मेरे जैसी नीच स्त्री को भी आप अपनी शरण में लेकर, ऊंच राम भक्तों में शामिल कर दी है। फिर ऐसे भक्त को आपकी भक्ति से कोई हटावैं, तो वह हट नहीं सकता, क्योंकि आप अपने कमल रूप हाथों की छाया में कहिए शरण में रखते हो। फिर वह भक्त राजा से रंक पर्यन्त और जमराज आदि के किसी भी भय से नहीं डरते। हे दयालु ! जिस रजस्वला स्त्री की छोत जगत मानता है, उस पर आप दया करके, अपनी शरण में अमर कर लेते हो। वह फिर किसी

के मारने से भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होती । हे नाथ ! नामदेव छीपा, कबीर जुलाहा, रैदास चैमार कुल में, यह सब ही जन, आपकी शरण में आकर, आपके नाम स्मरण द्वारा, संसार समुद्र से तैर गये हैं । हे हरि ! आपके भक्तों के सम्पूर्ण काम, शीघ्रतापूर्वक आप ही सब सिद्ध करते हो ।

भक्तमाल से :- दक्षिण भारत पडंलपुर नगर में, रंगनाथ भगवान ने, रजस्वला वेश्यां स्त्री के भाव भक्ति और प्रेम भरे हाथों से अर्पण किए हुए, सोने के मुकट को भगवान सिर झुकाकर धारण किया है । यह कथा भक्तमाल जी में समदाई टीका में आती है ।

---

296. मंगलाचरण

नमो नमो हरि नमो नमो, ताहि गुसांई नमो नमो,
अकल निरंजन नमो नमो ।
सकल बियापी जिहिं जग कीन्हा, नारायण निज
नमो नमो ।।टेक।।
जिन सिरजे जल शीश चरण कर, अविगत जीव दियो ।
श्रवण संवारि नैन रसना मुख, ऐसो चित्र कियो ।।
आप उपाइ किये जग जीवन, सुर नर संकर साजे ।
पीर पैगम्बर सिध अरू साधिक, अपनैं नाम निवाजे ।।
धरती अम्बर चंद सूर जिन, पाणी पवन किये ।
भानण घड़न पलक मै केते, सकल संवारि लिये ।।
आप अखंडित खंडित नाहीं, सब समि पूरि रहे ।
दादू दीन ताहि नइ बंदित, अगम अगाध कहे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, नमस्कार आत्मक मंगल कर रहे हैं कि हे हरि ! पाप और पाप के फल, दुख का नाश करने वाले, आप सत्य चित् आनन्द स्वरूप को, हमारा पुनः पुनः नमस्कार होवै । हे सकल बियापी ! आपने इस जगत की रचना की है । हे नारायण ! निज आत्म स्वरूप, आपको हमारी नमो

नमो । हे संतो ! जिस प्रभु ने जल की बून्द से उत्पन्न किये, और नख से शिखा पर्यन्त, सारे शरीर में सब अंग उपांग रचकर, फिर इसमें चेतन रूप जीव दिया है । जिससे सारा शरीर चेतन्य हो रहा है । श्रवण, नेत्र, मुख में रसना, बकतृत्व की शक्ति, ऐसा शरीर रूप एक अजब चितराम, गर्भवास में बनाया है । ऐसे प्रभु को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं । वह आप स्वयं, अपने आप से, सारे जगत् को उत्पन्न करके, सबकी जी जीवनरूप हो रहे हैं । उन्होंने ही 'सुर' - देवता, नर-नारद आदि, शंकर शिवजी, इन सबको रचकर, सृष्टि के पुज्य बनाये हैं । पीर, पैगम्बर, सिद्ध, साधक, इन सबका अपने नाम स्मरण द्वारा, उद्धार किया है । धरती और अम्बर रचकर, इसमें चन्द्रमा सूर्य, प्रकाश करने वाले बनाए हैं । पानी और पवन की रचना की है । एक पलक में प्रलय करके, दूसरी पलक में कितने ही ब्रह्माण्डों की रचना रचते हैं । वह अपने भक्तों की, इस संसार में रक्षा करके, अपनी शरण में लेते हैं । और आप स्वयं अखण्ड हैं । कभी नाश को प्राप्त नहीं होते । सबमें समान भाव से व्याप्त हो रहे हैं । हे अगम अगाध ! हम आपके दीन गरीब भक्त, आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं ।

297. हैरान

हम थैं दूर रही गति तेरीं, तुम हो तैसे तुम हीं जानो,
कहा बपरी मति मेरी ।।टेक।।
मन थैं अगम दृष्टि अगोचर, मनसा की गमि नांहीं ।
सुरति समाइ बुद्धि बल थाके, बचन न पहुंचैं तांहीं ।।
जोग न ध्यान ग्यान गमि नांही, समझि समझि सब हारे ।
उनमनी रहत प्राण घट साधे, पार न गहत तुम्हारे ।।
खोजि परे गति जाइ न जानी, अगह गहन कैसे आवै ।
दादू अविगति देहु दया करि, भाग बड़े सो पावै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, ब्रह्म स्वरूप की आश्चर्यंता दिखा रहे हैं कि हे समर्थ पूर्णब्रह्म ! आपका स्वरूप हमारे मन इन्द्रियों से अप्राप्य है, जैसे आप अखण्ड हो, निर्गुण हो, वैसे आप ही अपने आपको जानते हो । मेरी बिचारी बुद्धि, आपको क्या जान सकती है ? आपका स्वरूप मन से भी अगम्य है । मन को आपके स्वरूप की, गम नहीं होती । और दृष्टि से भी आप अविषय हैं । मनसा की भी आपमें गम नहीं पहुंचती । बुद्धिरूप सुरति की भी 'बल' नाम शक्ति, थकित हो रही है । आपके स्वरूप में पहुंच नहीं पाती । वहां बचन तो पहुंच ही क्या सकता है ! अष्टांग योग के करने वाले योगी, भेद वृत्ति वाले ध्यानी, और

लौकिक वैदिक ज्ञान वाले ज्ञानी, इन साधनों के द्वारा, आपकी खोज कर करके थकित हो रहे हैं। और जो उनमनी मुद्रा की साधना वाले और हृदय में प्राणों का निरोध करने वाले, वह भी आपका पार नहीं पाये हैं। आपकी उपरोक्त साधनों के द्वारा, खोज करने वाले खोजी, थकित हो गये हैं। आपकी गति जानी नहीं जाती है। क्योंकि आप अगह हैं। आपका स्वरूप ग्रहण करने में कैसे आवै ? हे अव्यक्त ! आप जिन भक्तों पर दया करके, अपने व्यापक रूप का दर्शन देते हो, वही भाग्यशाली साधक आपका दर्शन पाते हैं।

(इति राग नट नारायण टीका सहित, सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ राग सोरठ १९ ॥

298. स्मरण

कोलि साल न छाड़ै रे, सब घावर काढें रे ॥टेक॥
प्रेम पाण लगाई धागे, तत्त तेल निज दीया ।
एक मना इस आरंभ लागा, ग्यान राछ भरि लीया ॥
नांव नली भरि बुण कर लागा, अंतर गति रंग राता ।
ताणैं बाणैं जीव जुलाहा, परम तत्त सौं माता ॥
सकल सिरोमणि बुनै बिचारा, सान्या सूत न तोड़ै ।
सदा सचेत रहै ल्यौ लागा, ज्यौं टूटै त्यौं जोड़ै ॥
ऐसे तनि बुनि गहर गजीना, सांई के मन भावै ।
दादू कोली करता कें संगि, बहुरि न इहि जुग आवै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, स्मरण दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! कोठी रूप साधक जीव जुलाहा; परमेश्वर का बनने रूप पट हृदय रूप स्थान को नहीं छोड़ता है । और वृत्ति रूप घागें से 'घावर' कहिए मल विक्षेप आदि सम्पूर्ण दोष निकाल देता है । और इस धागे में, प्रभु प्रेम रूपी पाण लगाता है । तथा तत्व विचाररूपी तेल के द्वारा, प्रकासिक साक्षी रूप दीपक के सत्ता रूप प्रकाश का आश्रय लेकर, एकाग्र मन से, परमेश्वर भजन रूप पट का, बुनना आरम्भ करता है । ज्ञान विचार रूप औजार लेकर, नाम स्मरण रूप नलकी में वृति रूप धागा भरकर, नामाकार वृति बनाता है । इस प्रकार नलकी भरकर, भजन रूपी वस्त्र

बनाने लगता है और हृदय में प्रभु प्रेम रूप रंग में रत्त रहता हैं। यह जीवरूप जुलाहा, वृति धागे को परम तत्व रूप तानें के बुनने में मस्त रहता है। यह जीव रूप जुलाहा, वृतिरूप सूत्र को भजन रूप पट में लगाकर, सूत्र को तोड़ता नहीं। और सर्व से शिरोमणि निष्काम भजन रूप पट बुनता है। सदा सावधान होकर, वृत्तिरूप सूत्र को परमेश्वर के भजन में लगाये हुए रहता है। किसी प्रारब्ध कर्म के कारण से वृत्ति रूप धागा टूट जावै, तो फिर तत्काल विचार द्वारा जोड़ देता है। पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर के भजन द्वारा, ब्रह्म विचाररूप गाढ़ा खद्दर बुनकर तैयार करता है। तब वह परमेश्वर के मन को प्रिय लगता है और ऐसे भजनरूप पट को बुनने वाला जीव रूप जुलाहा, सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर के सदा, साथ ही रहता है। फिर जन्म धारण करके, संसार में नहीं आता।

299. बिरही

बिरहणी बपु न संभारै, निस दिन तलफै राम के कारण,
अंतर एक बिचारै ॥टेक॥
आतुर भई मिलन के कारण, कहि कहि राम पुकारै।
सांस उसांस निमख नहिं बिसरै, जित तित पंथ निहारै ॥
फिरै उदास चहूं दिसि चितवत, नैन नीर भरि आवै।
राम वियोग बिरह की जारी, और न कोई भावै ॥
व्याकुल भई शरीर न समझै, बिखम बाण हरि मारै।
दादू दर्सन बिन क्यूं जीवै, राम सनेही हमारै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, बिरहीजनों की स्थिति बता रहे हैं कि हे परमेश्वर! आपकी बिरहीजन भक्त, अब तो अपने शरीर को भी नहीं संभाल पाती हैं। हे राम! आपको मिलने के कारण, रात दिन बिरह दर्द से तड़फ रहे हैं। और हृदय में आपका विचार करते हैं। आपको मिलने के लिए अत्यन्त आतुर हो रहें हैं और आर्त स्वर से, "हे राम!" हे राम! कह कहकर पुकार रहे हैं। श्वांस श्वांस पर एक क्षण भी, आपके नाम का स्मरण नहीं भूलती है। जहां तहां घर में बन में, जागृत स्वप्न में, आपके मार्ग को देख रही हैं कि हरि अब भी आवैं। अब भी आवैं। सम्पूर्ण संसारिक सुखों से उदास होकर, अन्तःकरण की चारों वृत्तियों में, आपका चिन्तन कर रही है और नेत्रों में आंसू भर रहे हैं। हे राम! आपका वियोग और बिरह रूप अग्नि में जली हुई, हम बिरहीजनों को, आपके सिवाय दूसरा अच्छा नहीं लगता है। हम बिरहीजन व्याकुल हो रही हैं। शरीर की भी कुछ नहीं समझ रहे हैं। हे हरि! यह आपके कठिन बिरह

के बाण, हमें सता रहे हैं। अब हम बिरहीजन, हे राम ! आपके दर्शनों के बिना, कैसे हम इस शरीर में जीवें ? हे हमारे स्नेही राम ! अब आप दर्शन देकर, इस बिरह के दुख को शान्त करिये।

300. मन उपदेश चेतावनी

मन् रे राम रटत क्यूं रहिये, यहु तत्त बार बार क्यूं न कहिये ॥टेक॥
जब लग जिभ्या बाणी, तो लौं जपि लै सारंग पाणी।
जब पवना चलि जावै, तब प्राणी पछितावै ॥
जब लग श्रवण सुणीजै, तो लौं साधु सबद सुण लीजै।
श्रवणौं सुरति जब जाई, ए तबका सुणि है भाई।
जब लग नैंन हुं पेखै, तो लौं चरण कवंल क्यूं न देखै।
जब नैनहुं कछु न सूझै, ये तब मूरखि क्या बूझै ॥
जब लग तन मन नीका, तो लों जप लै जीवनि जीका।
जब दादू जीव आवै, तब हरि के मन भावै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उपदेश द्वारा मन को सावधान कर रहे हैं कि हे हमारे मन ! अब तूं राम नाम स्मरण करने में पीछें क्यों हटता है ? इस राम नाम रूपी तत्व को अपनी बाणी से, बारम्बार क्यों नहीं उच्चारण करता है ? जब तक तेरी जिभ्या और बाणी में उच्चारण करने की शक्ति है, तब तक सारंग पाणी अर्थात् जिनकी आज्ञा रूप हाथ में काल चक्र घूमता है, उस राम का नाम स्मरण कर ले। और जब तक तेरे श्रवण इन्द्रिये से अन्तःकरण की वृत्ति का सम्बन्ध है, तब तक गुरू संतों की बाणी रूप शब्दों को सुन ले। जब वृत्ति का श्रवण इन्द्रिये से सम्बन्ध छूट जायेगा, तब गुरू संतों की बाणी, हे भाई ! क्या सुनेगा ? और जब तक नेत्रों से दिखाई पड़ता है, तब तक परमेश्वर के प्यारे गुरू संतों के चरणों का दर्शन कर ले। और जब नेत्रों की दृष्टि क्षीण हो जाएगी हे मूर्ख ! तब तूं क्या गुरू संतों के दर्शन करैगा ? जब तक तेरा तन और मन नीरोग है, तब तक जीव की जीवन रूप उस राम का स्मरण कर ले। इस प्रकार हे मन ! तेरा जीव नाम स्मरण द्वारा जब, हरि परमेश्वर के सन्मुख आवैगा, तभी तूं हरि के मन में प्रिय लगैगा।

301·

मन रे तेरा कौन गंवारा, जपि जीवनि प्राण अधारा ।।टेक।।
रे मात पिता कुल जाती, धन जोबन सजन संगाती ।
रे गृह दारा सुत भाई, हरि बिन सब झूठा व्है जाई ।।
रे तूं अंत अकेला जावै, काहू के संगि न आवै ।
रे तूं ना कर मेरी मेरा, हरि राम बिना को तेरा ।।
रे तूं चेत न देखै अंधा, यहु माया मोह सब धंधा ।
रे काल मीच सिरि जागै, हरि सुमिरण काहे न लागै ।।
यहु औसर बहुरि न आवै, फिर मनिखा जन्म न पावै ।
अब दादू ढील न कीजै, हरि राम भजन करि लीजै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, मन प्रति चेत कराते हैं कि हे हमारे गंवार मन ! इस संसार में तेरा हितेषी कौन है, एक राम के बिना ? वह सबको जीवन और प्राणों का आधार रूप जो राम है, उनका नाम स्मरण कर ले । माता, पिता, कुल, जाति, धन यौवन, जवानी, सज्जन संगातो, घर, स्त्री, पुत्र, भाई, येह सब हरि का स्मरण किये बिना, तेरे को कोई भी साथ देने वाले नहीं हैं । न, तो ये साथ आए हैं और न किसी के साथ जावेंगे । येह तो सब स्वरूप से मिथ्या है । हे मन ! तूं अकेला ही आया है और अकेला ही जायेगा । हे मन ! तूं यह मत जानै कि "यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरे घर द्वार हैं ।" तूं विचार कर देख । "हरि स्वरूप राम के बिना, इनमें तेरा कोई भी हित करने वाला नहीं है ।" हे जन्म के अन्धे ! तूं विचार कर नहीं देखता है । यह तो सब माया का कार्य फंसाने वाला, मोह ममता रूप धंधा है । तेरे सिर पर काल रूप मृत्यु जाग रही है । हे मूर्ख ! हरि के स्मरण में क्यों नहीं लगता है ? ऐसा समय फिर तेरे हाथ नहीं लगेगा, यह मनुष्य देह दुबारा मिलना कठिन है । गुरू संत उपदेश करते हैं कि हे मूर्ख ! अब ढील करने का समय नहीं है । हरि रूप राम का नाम स्मरण कर ले ।

302·

मन रे देखत जनम गयो, ताथैं काज न कोई भयो रे ।।टेक।।
मन इंद्रि ग्यान विचारा, ताथैं जनम जुवा ज्यूं हारा ।
मन झूठ सांच करि जानै, हरि साधु कहैं नहिं मानै ।।

मन रे बादि गहै चतुराई, ताथैं मनमुख बात बनाई।
मन आप आपको थापै, करता होइ बैठा आपै ॥
मन स्वादी बहुत बनावै, मैं जान्या बिसै बतावै।
मन मांगै सोई दीजै, हम हिं राम दुखी क्यूं कीजै ॥
मन सबही छाड़ि बिकारा, प्राणी होइ गुनन थैं न्यारा।
निर्गुण निज गहि रहिये, दादू साधु कहैं ते कहिये ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें मन को उपदेश चेतावनी दिखा रहे हैं कि हे हमारे मन ! तत्ववेता पुरूषों के देखते देखते यह तेरा मनुष्य जन्म, परमेश्वर की भक्ति के बिना वृथा जा रहा है, परन्तु तेरे से तेरे उद्धार का कोई भी ऐसा ईश्वर सम्बन्धी या परोपकार सम्बन्धी काम नहीं हुआ। हे मन ! तूं तो बहिर्मुख इन्द्रियों के विषय रूप ज्ञान विचार को ही कर रहा है। तूं तो अपने जन्म को ऐसे हार गया है, जैसे कोई जुवारी अपने धन को जूवा में हार जाता है। हे मन ! तैंने झूठे संसार को और इसके कारबार को सत्य करके जाना है और इसमें प्रवृत्त से रहा है। हरि परमेश्वर, सत शास्त्रों द्वारा और सतगुरू संत अपने बाणी उपदेशों द्वारा, तेरा उद्धार का उपदेश कह रहे हैं। परन्तु तूं उनके उपदेश को नहीं धारण कर रहा है। तूं जो चतुरता की बातें मनमुखी करता है, वाद विवाद रूप, संतों के सामने यह तो सब वृथा है। हे मन ! तूं तो अपने आपसे अपनी प्रतिष्ठा स्थापन करता है और कर्ता धर्ता खुद ही बन रहा है। तूं तो स्वादों की बातें बहुत बनाता है। मैंने तेरी चतुरता जान ली। तूं तो विषयों के मार्ग को ग्रहण करता है और औरों को भी यही बताता है। हे राम जी ! आपसे यह हमारा मन, जो कुछ मांगता है, विषय वासना रूप पदार्थ, वह देकर हमें क्यों दुखी करते हो ? अब तो तूं हे मन ! सभी विषय विकारों को छोड़ कर, अपने प्राणों को तीनों गुणों के कार्य से अलग कर ले। निर्गुण ब्रह्म का नाम स्मरण, अपने हृदय में ग्रहण करके, स्थिर रह। जो ब्रह्मवेता मुक्त संत उपदेश करते हैं, उसी को तूं मन वाणी कर्म से धारण करिये।

303.

मन रे अंतिकाल दिन आया, ताथैं यहु सब भया पराया ॥टेक॥
श्रवनौं सुनैं न नैंनहुं सूझै, रसना कह्या न जाई।
सीस चरण कर कंपन लागे, सो दिन पहुंच्या आई ॥

काले धोले बरन पलटिया, तन मन का बल भागा।
जोबन गया जुरा चलि आई, तब पछतावन लागा ॥
आव घटै घटि छीजै काया, यहु तन भया पुराना।
पांचों थाके कह्या न मानैं, ताका मर्म न जाना ॥
हंस बटाऊ प्राण पयाना, समझि देखि मन मांहीं।
दिन दिन काल गरासै जियरा, दादू चेते नांहीं ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें मन को काल चेतावनी रूप उपदेश दे रहे हैं कि हे हमारे मन ! अब तो भाई, अन्तकाल का दिन नजदीक आ गया है और यह सब जिसको तूं अपना समझता है, घर द्वार आदि सम्पत्ति। इसके तो मालिक दूसरे ही होने वाले हैं। तेरे को तो अब श्रवण से सुनाई नहीं पड़ता है, नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ता है और रसना से शुद्ध शब्द उच्चारण नहीं किया जाता है। तेरा सिर हिलने लगा है। और चरण रखते ही सारा शरीर कांपने लगा है। यह दिन तेरे बुढ़ापे के आ पहुंचे हैं। सिर के बाल काले से सफेद हो गये हैं। तन का और मन का चपलता आदि बल नष्ट हो गया है। तेरी जवानी खत्म हो गई है, तेरे शरीर में जरजर अवस्था आ पहुंची है, अब तूं उपरोक्त अपने कर्मों को विचार विचार कर पश्चाताप करने लगा है। तेरी उमर घट गई है, स्थूल शरीर भी क्षीण हो गया है। परन्तु अब तो तेरी पांचों ज्ञानेन्द्रिय, अपने अपने विषयों को भोगने रूप शक्ति से रहित हो गई हैं, किन्तु विषयों की वासना, अब भी अपने अन्दर रखती हैं। गुरू संतों का उपदेश तैंने नहीं ग्रहण किया, इसी से उस परमेश्वर का मर्म अर्थात् भेद अब तक तैंने नहीं पाया। हे मन ! तूं अपने अन्दर समझकर देख। तेरा प्राण रूप हंस, बाट के बटाऊ की तरह, अब चलने वाला है। इस बात को अपने अन्दर विचार कर कि दिन दिन काल जीवों का ग्रास कर रहा है। हे मूर्ख ! तूँ अब तक भी, चेत नहीं करता है।

304.

मन रे तूँ देखै सो नांहीं, है सो अगम अगोचर मांहीं ॥टेक॥
निस अंधियारी कछू न सूझै, संसै सरप दिखावा।
अैसैं अंध जगत नहिं जानै, जीव जेवड़ी खावा ॥
मृग जल देखि तहां मन धावै, दिन दिन झूठी आसा।
जहं जहं जाइ तहां जल नांहीं, निश्चय मरै पियासा ॥

भरम बिलास बहुत विधि कीन्हां, ज्यौं सुपिनै सुख पावै ।
जागत झूठ तहां कुछ नाहीं, फिरी पीछै पछितावै ।।
जब लग सूता तब लग देखै, जागत भरम बिलाना ।
दादू अंति इहां कुछ नांहीं, है सो सोधि सयाना ।।

टीका :-ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, मन प्रति उपदेश कर रहे हैं कि हे मन ! जिस मायिक संसार को तूं स्नेहपूर्वक देख रहा है, यह सत्य नहीं है । जो सत्य है, वह तो तेरे मन वाणी और इन्द्रियों से अगम है और सभी के भीतर व्याप्त हो रहा है । किन्तु जैसे अन्धेरे में कुछ भी नहीं दीखता, तब अपने ही भ्रम से रस्सी में सांप दिखाई देता है, और उस रस्सी को जीव सर्प समझ कर कहता है कि यह डस लेगा, वैसे ही संसार के अज्ञानी प्राणी चेतन्य स्वरूप ब्रह्म को न जानकर, उसके विवर्त को शत्रु आदि मानकर दुखी होते हैं । जैसे मृग, मरीचिका के जल को देखकर, वहां जाता है, किन्तु जहां जहां जाता है, वहां जल नहीं मिलता और वह मिथ्या जल की आशा करके, प्यास से दुखी रहता है । वैसे ही अज्ञानी संसारिक प्राणी, मिथ्या बिषय सुख की आशा करके, प्रतिदिन उनके पीछे दौड़ता रहता है और दुख पाता है । इसी प्रकार सोता हुआ स्वप्न में प्राणी, नाना तरह के सुख भोगता है, किन्तु जागने पर, सबको मिथ्या निश्चय करता है, उनसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता । ऐसे ही प्राणी भ्रमवश मिथ्या पदार्थों के उपभोग से आनन्द मानता है, परन्त ज्ञान रूप जागृत अवस्था होने पर, उन सबको मिथ्या जानता है, तब फिर उनके उपभोग में, बीती हुई आयु का, पश्चाताप ही करता है । अरे ! ह मन ! तूं भी जब तक अज्ञान निद्रा में सोया है, तब तक ही यह मायिक पदार्थ, तुझे सत्य प्रतीत होते हैं । जब तूं ज्ञान रुप जागृत अवस्था को प्राप्त होगा, तब ही यह सब भ्रम नष्ट हो जाएगा । इस मोह रुप निद्रा में सोते हुए को, इस माया रूप प्रपंच में, सत्य कुछ भी प्राप्त नहीं होगा । इसलिये हे साधक ! जो इस प्रपंच में सत्य तत्व छिपा हुआ है, उसी चेतन्य स्वरूप ब्रह्म की खोज कर ।

305. उपदेश

भाई रे बाजीगर नट खेला, असैं आपै रहै अकेला ।।टेक।।
यहु बाजी खेल पसारा, सब मोहै कोतिगहारा ।
यहु बाजी खेल दिखावा, बाजीगर किनहूं न पावा ।।
इहि बाजी जगत भुलाना, बाजीगर किनहूं न जाना ।
कुछ नांही सो पेखा, है सो किनहुं न देखा ।।

कुछ अैसा चेटक कीन्हा, तन मन सब हर लीन्हा ।
बाजीगर भुरकी बाही, काहू पै लखी न जाई ॥
बाजीगर परकासा, यहु बाजी झूठ तमासा ।
दादू पावा सोई, जो इहि बाजी लिपत न होई ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! ईश्वर रूप बाजीगर ने यह संसार रूपी खेल, नट की बाजी के समान रचा है और आप बाजीगर की भांति, अद्वैत रूप से अलग रहता है । इस खेल को रचने वाले परमेश्वर ने, सारे संसार के जीवों को मोहित किये हैं । यह संसार की बाजीरूप खेल, ऐसा उसने दिखाया है, जो सब ही इसमें मोहित हो रहे हैं । बाजीगर को किसी ने भी नहीं पाया है हे परमेश्वर! यह आपकी बाजी, सम्पूर्ण जगत को भुलावे में डाल रखा है । इसीलिए आप बाजीगर रूप को, कोई भी नहीं जान पाते । वास्तविक विचार किये से, यह माया और माया का कार्य सत्य है नहीं, परन्तु अज्ञानी जीव, इसी को देख रहे हैं, और जो हस्ती भांति प्रिय आपका स्वरूप है, उसको कोई भी अज्ञानी नहीं देख पाते । आपने यह ऐसा मा यारूप चेटक किया है, कि जिसने सबके तन मन को, अपनी तरफ आकर्षित कर लिया है । हे संतो ! ईश्वर रूप बाजीगर ने, माया रूप भुरकी ऐसी जीवों पर फैंकी है कि जिस भुरकी की शक्ति, कोई भी जान नहीं सकते । परन्तु जब हृदय में, परमेश्वर रूप बाजीगर के ज्ञान का प्रकाश होता है, तब यह बाजी, मिथ्या खेल रूप प्रतीत होने लगती है । मुक्त पुरूष कहते हैं कि हे साधक ! वही चेतन्य रूप ब्रह्म को हृदय में अनुभव करता है, जो इस मायावी बाजी में आसक्त नहीं होता ।

306· ज्ञान उपदेश

भाई रे अैसा एक बिचारा, यूं हरि गुरू कहै हमारा ॥टेक॥
जागत सूते सोवत सूते, जब लग राम न जाना ।
जागत जागे सोवत जागे, जब राम नाम मन माना ॥
देखत अंधे अंधे भी अंधे, जब लग सत्य न सूझै ।
देखत देखैं अंध भी देखैं, जब राम सनेही बूझै ॥
बोलत गूंगे गूंगे भी गूंगे, जब लग सत्य न चीन्हां ।
बोलत बोले गूंगे भी बोले, जब राम नाम कहि दीन्हां ॥

जीवत मूयें मुये भी मूये, जब लग नहीं प्रकासा ।
जीवत जीये मुये भी जीये, दादू राम निवासा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, ज्ञान उपदेश करते हैं कि हे भाई जिज्ञासु ! हमारे हरि रूप गुरुदेव, एक ऐसा आश्चर्य रूप विचार कहते हैं कि जो व्यवहार काल में, सावधानता रूप जागृत अवस्था में है और जो व्यवहार से शून्य हैं, तब तक वह दोनों प्रकार के मनुष्य सूते ही हैं । और जिनके मन ने राम नाम स्मरण को, कल्याण का साधन मानकर, निरन्तर चिन्तन आरम्भ करते हैं, वे जागते और सोते हुए होने पर भी, जाग रहे हैं । जब तक सत्य तत्व नहीं दीखता, तब तक देखने वाले और न देखने वाले दोनों ही अंधे हैं । और जब अपने परम स्नेही राम को, आत्म स्वरूप से समझ लिया, तब देखने वाले और न देखने वाले, दोनों ही देखने वाले हैं । जब तक सत्य स्वरूप ब्रह्म को नहीं पहचाना, तब तक वेद शास्त्रों के उच्चारण करने वाले भी, और गूंगे, दोनों एक समान हैं । और जब जीभ्या से राम नाम का निरन्तर उच्चारण करते हैं, तब बोलने वाले और न बोलने वाले, दोनों ही बोलने वाले हैं । जब तक बुद्धि में आत्म ज्ञान का प्रकाश नहीं होता, तब तक जीवित और मृतक दोनों ही समान हैं । और जब ज्ञान द्वारा, राम के वास्तविक स्वरूप में निवास हो गया, तब जीवित और मृतक दोनों ही जीते हैं ।

307. नाम महिमा

राम जी नाउं बिना दुख भारी, तेरे साधन कही बिचारी ।।टेक।।
केई जोग ध्यान गहि रहिया, केई कुल के मारग बहिया ।
केई सकल देव को ध्यावैं, केई रिधि सिधि चाहैं पावैं ।।
केई बेद पुरानौं माते, केई माया के संगि राते ।
केई देस दिसंतर डोलैं, केई ग्यानी व्है बहु बोलैं ।।
केई काया कसै अपारा, केई मरै खड़ग की धारा ।
केई अनंत जीवन की आसा, केई करैं गुफा में बासा ।।
आदि अंति जे जागै, सो तो राम नाम ल्यौ लागै ।
इब दादू इहै बिचारा, हरि लागा प्राण हमारा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, नाम महिमा दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! राम जी के नाम स्मरण के बिना, इस जीव पर जन्म मरण का भारी दुख पड़ता है। इस प्रकार राम जी के भक्त, विचारवान संतों ने कहा है ! कितने ही तो योगाभ्यास द्वारा, ध्यान की साधना में लगे हैं और कई संसारिक जन, कुल के मार्ग मार्ग में बहे जाते हैं। कितने ही अनेकों देवी देवताओं की उपासना में लगे हैं। और कई आठ सिद्धि और नौ सिद्धि की चाहना करके, साधना कर रहे हैं। कई वाचक पंडित, वेद पुराणों को पढ़ पढ़ करके, मतवाले हुए फिरते हैं। कई माया के संग राते रत्त हो रहे हैं। कई देश देशान्तरों में घूमते हैं। कई अपने को ज्ञानी मानकर, बहुत सी बातें बोलते रहते हैं। कितने ही इस शरीर को नाना प्रकार की कसौटी से कस रहे हैं। कई तलवार की धार से मरे हैं। कितने ही लम्बे समय तक, जीने की आशा रखकर साधन करते हैं और कई पहाड़ों की गुफाओं में जाकर बस रहे हैं। परन्तु जो साधक, जन्म से मरण पर्यन्त, मोहरूप निद्रा से जागे हैं, उनकी अखण्ड राम नाम में लय लगती है। मुक्तजन कहते हैं कि हमतो अपने श्वासों को परमेश्वर के नाम स्मरण में ही लगाया है, आप भी ऐसे ही लगाइये।

308. भ्रम विध्वंसन

साधो हरि सौं हेत हमारा, जिन यहु कीन्ह पसारा ।।टेक।।
जा कारणि व्रत कीजै, तिल तिल यहु तन छीजै।
सहजैं ही सो जाना, हरि जानत ही मन माना ।।
जा कारणि तप जइये, धूप सीत सिरि सहिये।
सहजैं हीं सो आवा, हरि आवत ही सचु पावा ।।
जा कारणि बहु फिरिये, करि तीरथ भ्रमि भ्रमि मरिये।
सहजैं ही सो चीन्हा, हरि चीन्ह सबै सुख लीन्हा ।।
प्रेम भक्ति जिन जानी, सो काहे भ्रमैं प्रानी।
हरि सहजैं ही भल मानैं, ताथैं दादू और न जानैं ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, भ्रम का विध्वंस दिखाते हैं कि हे संतो ! अब हमारा प्रेम तो केवल एक हरि से ही लगा है। जिस हरि ने यह सम्पूर्ण संसार रूपी पसारा फैलाया है। जिसकी प्राप्ति के लिये, नाना प्रकार के व्रत करके, क्षण क्षण में यह तन क्षीण करते हैं। उस हरि को हमने सतगुरू के उपदेश से, अपने

हृदय में ही जानकर, उसमें मन को लगाया है । जिसकी प्राप्ति के लिये कई तप करने जाते हैं, जंगलों में। मस्तिष्क पर धूप और बदन पर सर्दी सहन करते हैं । वह हरि अपनी दया करके, निष्कामी भक्तों के हृदय में आप आते हैं । उनके प्रगट होते ही भक्त उन सत्य स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं । जिसकी प्राप्ति के लिये पृथ्वी पर, जहां तहां फिरते थे, और नाना प्रकार के तीर्थ आदि कर करके, भ्रम में ही मरे जाते थे, उस हरि को सहज स्वभाव से ही, गुरू ज्ञान द्वारा जानकर, उनके दर्शनों से सब प्रकार के सुख प्राप्त करते हैं । जिन भक्तों ने उसकी प्रेम भक्ति को जान लिया है, वह अज्ञानी प्राणियों की तरह, क्यों भ्रमने लगे ? उपरोक्त प्रेमा भक्ति करने वाले भक्त करने वाले भक्त को ही हरि, अपना सच्चा भक्त मानते हैं । इसलिए अब हमतो, उस हरि की प्रेमाभक्ति से अलग, और कोई भी साधन नहीं जानते ।

309. परिचय विनती

राम जी जिन भरमावै हम को, ताथैं करौं बीनती तुम्ह कौं ।।टेक।।
चरण तुम्हारे सब ही देखौं, तप तीरथ व्रत दाना ।
गंग जमुन पासि पाइन के, तहां देहु अस्नाना ।।
संग तुम्हारे सब ही लागै, योग यज्ञ जे कीजै ।
साधन सकल एई सब मेरे, संग आपनौ दीजै ।।
पूजा पाती देवी देवल, सब देखौं तुम मांही ।
मोकौं ओट आपणी दीजै, चरण कवंल की छांही ।।
ये अरदास दास की सुणिये, दूर करो भ्रम मेरा ।
दादू तुम्ह बिन और न जानै, राखौ चरनौं नेरा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परिचय विनती कर रहे हैं कि हे राम जी ! अब आप हमको आपकी अनन्य भक्ति रूप साधना में ही रखना । अन्य बहिरंग साधनों में नहीं भटकाना । इसीलिये हम आपसे पुनः पुनः विनती करते हैं । हमतो आपके चरणों की शरण में ही, तप तीर्थ व्रत दान पुण्य आदिक सब देखते हैं । गंगा जमुना का स्नान भी, आपके चरणार्विन्दों में ही मानते हैं । आपके चरणों की शरण रूपी स्नान देओ । और योग यज्ञ आदि जो किये जाते हैं । वह सब आपके चरणों के संग लगने में ही, सब कुछ मान लेंगे । तथा आप निरन्तर अपना संग दें, वही हमारे तो सम्पूर्ण साधनों की साधना है । देव पूजा तुलसी जल आदि पत्रिका चढ़ाना और नाना देवी देवों की पूजा करना, हमतो यह सब आपकी आराधना में ही मानते हैं । हमारे को तो

आप अपने चरणों की ओट रूप छाया देओ । यह बिनती आप हमारी सुनिये । उपरोक्त सब भ्रम रूप साधनों को हमसे दूर ही रखना । हमतो आपके बिना और कोई भी साधन नहीं जानते हैं । आप अपने चरणों के नजदीक रखना ।

310. उपास्य परिचय

सोई देव पूजौं, जो टांची नहिं घड़िया,
गरभवास नाहीं औतरिया ।।टेक।।
बिन जल संजम सदा सोइ देवा, भाव भगति
करौं हरि सेवा ।
पाती प्राण हरि देव चढाऊं, सहज समाधि
प्रेम ल्यौ लाऊं ।
इहि बिधि सेवा सदा तहं होई, अलख निरंजन
लखै न कोई ।
ये पूजा मेरे मनि मानै, जिहि विधि होइ सु
दादू न जानै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें उपास्यदेव का परिचय दे रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! हम तो उसी अनघड़ निरंजनदेव को पूजते हैं, जो हथोड़ा टांकी से नहीं घड़्या गया है और न वह गर्भवास द्वारा अवतार ही लेता है । और बिना ही जल के जिनका स्नान होता है और सदा ही जिनका संयम बना रहता है, वही हमारा निराकार उपास्यदेव है । उनकी भाव भक्ति रूप सेवा करते हैं । उस हरि रूप देव के ऊपर, पांच प्राण तथा पंच ज्ञानेन्द्रिये रूप तुलसी पत्र चढ़ाते हैं और निर्द्वन्द सहज समाधि द्वारा, प्रेमा भक्ति से अखण्ड लय लगाते हैं। इस प्रकार उस निरंजन देव की सेवा हृदय में होती है । इस सेवा रूप पूजा को, वह आप स्वयं अलख निरंजन रूप परमेश्वर देखते हैं । इस पूजा से हमारा मन मानता है, अर्थात् विश्वास करता है । और जिस विधि से हे देव ! आपकी पूजा होती है, उसको हम नहीं जानते ।

311. परिचय हैरान

राम राये मोको अचिरज आवै, तेरा पार न कोई पावै ।।टेक।।
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद, नेंति नेंति जे गावै ।
सरण तुम्हारी रहै निस बासुर, तिनकौ तूं न लखावै ।।
संकर शेष सबै सुर मुनिजन, तिनकौं तूं न जनावै ।
तीनि लोक रटै रसना भरि, तिनकौं तूं न दिखावै ।।
दीन लीन राम रंगि राते, तिनकौं तूं संगि लावै ।
अपने अंग की जुगति न जानै, सो मन तेरैं भावै ।।
सेवा संजम करै जप पूजा, सबद न तिनको सुनावै ।
मैं अछोप हीन मति मेरी, दादू को दिखलावै ।।

टीका :-"ब्रह्मऋषि सतगुरु इसमें साक्षात किये स्वरूप का आश्चर्य दिखा रहे हैं कि हे विश्व के राजा राम! आपके स्वरूप का साक्षात्कार करने पर' हमको बड़ा आश्चर्य हो रहा है । आपका कोई भी पार नहीं पा सकता है । ब्रह्मा जी वेद द्वारा, सनकादिक ज्ञान द्वारा, नारद कीर्तन भक्ति द्वारा, यह सब आपका यश नेति नेति करके गायन करते हैं, क्योंकि आपके स्वरूप का कोई पार नहीं पाया है । और जो आपकी रात दिन शरण में रहते हैं, उनको भी आप अपना भेद नहीं देते । शंकर, शेष सम्पूर्ण देवता, सभी मुनिजन, उनको भी आप अपने आदि अन्त का भेद नहीं देते । और भी जो तीनों लोकों में आपके भक्त, आपका नाम स्मरण करते हैं, उनको भी आप अपने यथार्थ स्वरूप का अन्त नहीं दिखाते । जो दीन गरीब भक्त आपके भक्ति वैराग्य रूप रंग में राते रत्त हैं, उनको आप अपने संग, अपने स्वरूप में लगातें हो । और जो भक्त अपने शरीर पोषण की साधना भी भूल गये हैं, आपके प्रेम में । क्या ऐसे भक्त आपको प्रिय लगते हैं ? और जो बहिरंग साधन रूप वृत्ति से, आपकी सेवा पूजा जप तप करते हैं, अभिमान के सहित, उनको तो आप अपने मुखार्बिन्द से, अपना शब्द भी नहीं सुनाते हैं । हे नाज ! हम तो बुद्धिहीन, छूने लायक भी नहीं हैं । फिर भी आप परम दयालु हमको, अपने स्वरूप का दर्शन दिखा रहे हो ।

।। इति राग सोरठ टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

॥ अथ राग गुंड २० ॥

312· भक्ति निष्काम

दरसन दे दरसन दे, हौं तो तेरी मुकति न मागौं ॥टेक॥
सिधि न मागौं रिधि न मागौं, तुम्ह ही मागौं गोबिन्दा ।
जोग न मागौं भोग न मांगौं, तुम्ह ही मांगौं राम जी ।
घर नहीं मांगौं बन नहीं मांगौं, तुम्ह ही मांगौं देव जी ।
दादू तुम्ह बिन और न मांगौं, दर्सन मांगौं देहु जी ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निष्काम भक्ति दिखा रहे हैं कि हे परमेश्वर ! हमको आप अपने स्वरूप का दर्शन दीजिए । और हम आपसे यह चारों मुक्ति (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायोज्य) रूप भी नहीं मांगते । केवल आपके दर्शन मांगते हैं । और न आठ सिद्धि और नौ सिद्धि ही मांगते हैं । हे गोबिन्द ! हमतो केवल आपके स्वरूप का दर्शन ही चाहते हैं । हे राम जी ! न हम आपसे योग की साधना ही मांगते हैं और न भोगों में प्रवृत्ति ही मांगते हैं । केवल आपका साक्षात्कार रूप दर्शन मांगतें हैं । हे देव दिव्य स्वरूप ! न हम घर प्रवृति मार्ग ही आपसे मांगते हैं और न बन निवृत्ति मार्ग में रहना ही मांगते हैं । केवल आपका दर्शन मांगते हैं । निष्कामी मुक्तजन कहते हैं कि हे परमेश्वर ! आपके बिना और मायावी कोई भी पदार्थ, हम आपसे नहीं मांगते । आपका दर्शन मांगते हैं, सो आप कृपा करके दीजिए ।

313. बिरह बिनती

तूं ग्रापैं हीं बिचार, तुझ बिन क्यूं रहौं।
मेरे ग्रौर न दूजा कोइ, दुःख किसकौं कहौं ।।टेक।।
मीत हमारा सोइ, ग्रादैं जे पीया।
मुझे मिलावै कोइ, वै जीवन जीया ।।
तेरे नैन दिखाइ, जीऊं जिस ग्रासरे।
सो धन जीवै क्यूं नहीं, जिस पासि रे ।।
पिंजर मांहैं प्राण, तुझ बिन जाइसी।
जन दादू मांगै मान, कब घरि ग्राइ सी ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, बिरह बिनती दिखा रहे हैं कि हे परमेश्वर ! ग्राप स्वयं बिचार करिये कि हम ग्रापके बिरहीजन, ग्रापके दर्शन पाए बिना, इस शरीर में कैसे रह सकते हैं ? हमारे तो ग्रापके सिवाय ग्रौर कोई स्वामी है नहीं। ग्रापकी ग्रप्राप्ति का यह दुख, हम ग्रापको ही सुनाते हैं ग्रोर किसको कहैं ? हे प्रीतम ! ग्राप ही हमारे ग्रादि ग्रनादि के मित्र हो। हे संतो ! उस हमारे जीव की जीवन परमेश्वर को, हमें कोई मिलावोगे ? हे प्रीतम ! ग्राप ग्रपने सुन्दर मुखार्बिन्द ग्रौर नेत्रों के दर्शन दिखाइये। जिसके ग्रासरे हम जीवित रहैं। हे प्रीतम ! उस बिरहीजन भक्त का जीवन कैसे रह सकता है ! ग्रापके दर्शनों के बिना। उसी बिरहीजन भक्त का जीवन धन्य है, जो ग्रापके दर्शन पा रहे हैं। हे परमेश्वर ! इस शरीर रूप पिंजर में हमारे प्राण, ग्रापके दर्शनों के बिना ही ग्रब चले जाएंगे। हम बिरहीजन तो ग्रापसे यही मांगते हैं कि ग्राप हमारे हृदय रूपी घर में कब ग्राग्रोगे ग्रौर हम बिरहीजनों को प्यार करके, कब ग्रपनाग्रोगे ?

314.

हूं जोइ रही रे बाट, तूं घरि ग्रावने।
तारा दरसन थी सुख होइ, ते तूं ल्यावने ।।टेक।।
चरण जोवा ने खात, ते तूं देखाड़ने।
तुझ बिना जीव देह, दुहेली कामिनी ।।

नैन निहारूं बाट, ऊभी चावनीं ।
तूं अंतर थी ऊरौ आव, देही जावनी ।।
तूं दया करि घर आव, दासी गावनी ।
जन दादू राम संभाल, बैन सुहावनी ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, बिरह बिनती दिखाते हैं कि हे परमेश्वर ! हम बिरहीजन आपकी बाट देख रहे हैं । आप हमारे हृदय रूपी घर में आइये । हे प्रभु ! आपके दर्शनों से हमें सुख होवेगा । आपके दर्शन, हमारे हृदय में आप लाईये, प्रगट करिये । हम आपके चरणों का दर्शन करने के लिये व्याकुल हो रहे हैं । आप अपने चरणों का हमें हृदय में दर्शन कराइये । हे प्रभु ! आपके दर्शन करे बिना, आपकी बिरहीजन नार अति दुखी होकर, अपने प्राण त्याग देगी । हम बिरहीजन हृदय में अन्तर्मुख वृत्ति में विवेक विचार रूपी नेत्रों से, आपके दर्शन करने की इच्छा से, आपका मार्ग देख रहे हैं । आप हमारे हृदय में, जीव के पास ही प्रगट होइये, नहीं तो अब यह बिरहीजनों का शरीर, आपके वियोग में जाने वाला है । आप हम बिरहीजनों पर दया करके, हृदय रूपी घर में पधारिये । हम आपके ही गुणनबाद रात दिन गा रहे हैं । हे राम ! हम बार बार आपका स्मरण करके, आपको बिरह दुख के सुहावने बचन सुना रहे हैं ।

315:

पीव देखे बिन क्यूं रहौं, जिय तलफै मेरा ।
सब सुख आनन्द पाइये, मुख देखौं तेरा ।।टेक।।
पीव बिन कैसा जीवना, मोहि चैन न आवै ।
निर्धन ज्यूं धन पाइये, जब दरस दिखावै ।।
तुम्ह बिन क्यूं धीरज धरौं, जो लौं तोहि न पाऊं ।
सनमुख व्है सुख दीजिये, बलिहारी जाऊं ।।
बिरह बियोग न सहि सकौं, काइर घट काचा ।
पावन परस न पाइये, सुनि साहिब सांचा ।।
सुनि यूं मेरी बीनती, इब दरसन दीजै ।
दादू देखन पाव ही, तैसैं कुछ कीजै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, बिरह बिनती दिखा रहे हैं कि हे पीव परमेश्वर ! आपके दर्शन करे बिना, हम बिरहीजन, इस शरीर में कैसे रहैं ? हमारा जीव तड़फ रहा है । आपके मुखार्बिन्द का दर्शन पाने से, हम सम्पूर्ण सुख रूप आनन्द को प्राप्त हो जावेंगे ! हे प्रीतम ! आपके बिना हमारा क्या जीने में जीना है । एक पल तो हमें चैन नहीं मिलता है । हे नाथ ! जैसे निर्धन को धन प्राप्त होने से सुखी होता है, वैसे ही हम आपके बिना दुखी हैं । जब आप अपने दर्शन दिखाओगे तभी हम सुखी होवैंगे । जब तक आपको प्राप्त नहीं कर लें, तब तक हमारे धैर्य नहीं होता । अब आप हमारे सन्मुख आकर दर्शन दीजिए । हम आपके बार बार बलिहारी जाते हैं । यह हमारा शरीर कच्चे घड़े की तरह है । और आपका बिरह दर्द के सहित वियोग नहीं सहा जाता । अब तो हम अति कायर हो रहे हैं । हे पवित्र मूर्ति ! जब तक आपका स्पर्श नहीं कर लें, तब तक हमें चैन नहीं है । हे सत्य स्वरूप साहिब ! अब हम बिरहीजनों की पुकार सुनो । हमारी यह बिनती सुनकर, आप अपना दर्शन दीजिए । हे नाथ ! जैसे हम बिरहीजन आपको देख सकैं, वैसा ही कुछ कार्य करिये ।

316. प्रति अखंडित

इहि विधि बेध्यो मोर मना, ज्यूं लै भृंगी कीट तना ।।टेक।।
चात्रिग रटतैं रैनि बिहाइ, पिंड परै पै बान न जाइ ।
मरै मीन बिसरै नहि पानी, प्राण तजे उनि और न जानी ।
जलै सरीर न मोड़ै अंगा, जोति न छाड़ै पड़ै पतंगा ।
दादू इबथैं अैसैं होई, पिंड परै नहिं छाड़ौं तोही ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, अखण्ड प्रीति दिखा रहे हैं कि हे परमेश्वर ! जैसे पीले रंग की लट भृंगी के शब्द को सुनकर, उसकी प्रीति में बिध कर भृंग रूप हो जाती है, वैसे ही आपकी अखण्ड प्रीति में हमारा मन बिध रहा है । जैसे चातृग पपैया स्वांति बूंद के लिए, रात दिन पुकार पुकार कर, आयु बिताता है, वैसे ही हम बिरहीजन, आपके दर्शनों के लिये, पुकारते हुए उम्र रूपी रात्रि बिता रहे हैं । जब तक आपका दर्शन नहीं होगा, तब तक शरीर छूटने के बाद भी, हम ऐसे हो पुकारते रहेंगे । मछली जल के बिना मर जाती है, परन्तु मन से जल की प्रीति नहीं त्यागती, वैसी ही हम बिरहीजनों की हालत हो रही है । प्राण चाहे त्याग देंगे, परन्तु आपके बिना, दूसरे को अपना स्वामी नहीं जानेंगे । जैसे पतंग दीपक की ज्योति में आकर, अपने शरीर को भस्म करता है, तथापि मन से ज्योति की प्रीति का त्याग नहीं करता ! हे परमेश्वर ! अब तो हमारी प्रीति भीं आपसे ऐसी लगी है कि चाहे यह शरीर आपके बिरह वियोग में छूट जावे, परन्तु आपका त्याग, हम कभी नहीं करैंगे ।

317. बिरह

आओ राम दया करि मेरे, बार बार बलिहारी तेरे ।।टेक।।
बिरहनि आतुर पंथ निहारै, राम राम कहि पिव पुकारै ।
पंथी बूझै मारग जोवै, नैन नीर जल भरि भरि रोवै ।
निस दिन तलफै रहै उदासा, आतम राम तुम्हारे पासा ।
बपु बिसरै तन की सुधि नांही, दादू बिरहनि मृतक मांही ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, बिरह व्यथा दिखा रहे हैं कि हे राम जी ! आप दया करके हम बिरहीजनों के हृदय में पधारिये, हम आपके ऊपर बार बार बलिहारी जाते हैं । हर बिरहीजन, दुखी होकर, आपका मार्ग देख रहे हैं । और हे राम ! हे राम ! इस प्रकार आप पीव को पुकार रहे हैं । हम बिरहीजन बार बार आपके बिरहीजन भक्तों से, आपके समाचार पूछ रहे हैं और आपका मार्ग देख रहे हैं । दर्शनों के लिये नेत्रों से आंसू भरभर कर रूदन कर रहे हैं । हे आतम स्वरूप राम जी ! हम बिरहीजन हृदय में आपके पास ही उदास होकर रहते हैं और आपके दर्शनों के लिये तड़फ रहे हैं । हे नाथ ! अब हम अपने शरीर को भी भूल रहे हैं । और किंचित भी हमें तन की क्षुधा पिपासा, सर्दी गर्मी आदि का भान नहीं होता है । अब तो हम बिरहीजन, मृतक अवस्था तक पहुंच गए हैं ।

318. केवल बिनती

निरंजन क्यूं रहै, मोनि गहै बैराग, केते जुग गये ।।टेक।।
जागै जगपति राई, हंस बोलै नहीं ।
परगट घूंघट मांहि, पट खोलै नहीं ।।
सदकै करौं संसार, सब जग वारणै ।
छाड़ौं सब परिवार, तेरे कारणै ।।
वारौं पिंड परान, पाऊं सिर धरूं ।
ज्यूं ज्यूं भावै राम, सो सेवा करूं ।।
दीनानाथ दयाल, बिलंब न कीजिये ।
दादू बलि बलि जाइ, सेज सुख दीजिये ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, केवल बिनती कर रहे हैं कि हे संतों ! वह निरन्जदेव कैसे रहते हैं ? वह हमसे बोलते नहीं । उनको वैराग्य युक्त होकर, मौन ग्रहण किये, कित्तने ही युग बीत गये । हे संतो ! वह जगत के स्वामी, जगत् को सत्ता स्फूर्ति देने वाले, सदा ही जागते हैं, परन्तु हमसे हंस करके अभी तक नहीं बोले हैं । वह माया रूप घूंघट के पड़दे में छुप रहे हैं । जब अपनी दया करके, माता रूप पड़दे को हटावेंगे, तभी उनके प्रगट दर्शन, उनके भक्तजन पावेंगे । हम तो अब उनके सारे संसार के सुख दुख अर्पण करते हैं और जगत में जितने भी हमने शरीर धारण किये हैं, वह सब उनके ऊपर न्यौछावर करते हैं । हे परमेश्वर ! आपके दर्शनार्थ, हम अपने बाहर भीतर के, सारे परिवार का त्याग किया है । और यह हमारा स्थूल शरीर और प्राण भी आपके ऊपर न्यौछावर करते हुए, आपके चरणों में नमस्कार करते हैं । हे राम ! जो जो आपको भावै, वेसे वैसे ही हम आपकी सेवा करैं । हे अपने दीन गरीब भक्तों के स्वामी, अब देर नहीं करना। हमको हृदयरूपी सेज पर, दर्शनों का सुहाग सुख दीजिये । हम आपकी बार बार बलिहारी जाते हैं ।

319. निरंजन स्वरूप

निरंजन यूं रहै, काहू लिपति न होइ,
जल थल थावर जंगमा, गुण नहीं लागै कोइ ।।टेक।।
धर अंबर लागै नहीं, नहि लागै ससिहर सूर ।
पाणी पवन लागै नहीं, जहां तहां भरपूर ।।
निस वासुरि लागै नहीं, नहिं लागै सीतल घाम ।
क्षुधा त्रिखा लागै नहीं, घट घट आतम राम ।।
माया मोह लागै नहीं, नहिं लागै काया जीव ।
काल करम लागै नहीं, प्रगटै मेरा पीव ।।
इकलस एकै नूर है, एकलस एकै तेज ।
इकलस एकै जोति है, दादू खेलै सेज ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उपरोक्त शब्द में किये प्रश्नों का उत्तर देते हुए, निरन्जन का स्वरूप कह रहे हैं कि हे संतो ! वह निरन्जनदेव, माया अंजन रहित, वह ऐसे रहते हैं कि किसी के लेप से लिपायमान नहीं होते । उसके स्वरूप में जल का शीतलता रूप गुण, पृथ्वी का कठोरता आदि गुण, 'थावर' वृक्ष

आदि के गुण विकार, चलने फिरने वाली सृष्टि, इन किसी के भी गुण विकार निरंजन स्वरूप को लिपायमान नहीं कर पाते। धर, अंबर आकाश, चन्द्रमा सूर्य आदि के गुण, निरंजन को स्पर्श नहीं कर पाते। पानी और पवन, इन किसी के भी गुण, निरन्जन में नहीं लगते। और वह आप स्वयं, जहां तहां सबमें, सर्वत्र व्यापक हो रहे हैं। रात्रि का शीतलता आदि गुण और दिन का घाम, यह कोई भी गुण निरंजन में व्याप्त नहीं होते। न उनके स्वरूप में क्षुधा लगती है और न तृषा ही लगती है, और न ही उस घट घट में रहने वाले आत्माराम के, माया मोह ही लगता है। न काया के गुण उसको स्पर्श करते हैं और न जीव का जीव धर्म ही, उसमें लागू होता है। वे ऐसे मेरे प्रियतम, जब जिसके हृदय में प्रगट होते हैं, तब उस साधक के भी काल कर्म नहीं लगते, फिर तो एक रस अद्वैत स्वरूप में, एक रस अद्वैत आत्म ज्योति का प्रकाश है, वहां ही हृदय शय्या पर' हम प्रभु से ब्रह्मानन्द प्राप्ति रूप खेल खेलते हैं।

320. विनय

जग जीवन प्राण अधार, बाचा पालणा।
हौं कहां पुकारौं जाइ, मेरे लालना ॥टेक॥
मेरे वेदन अंगि अपार, सो दुख टालना।
सागर ये निस्तार, गहरा अति घणा॥
अंतर है सो टालि, कीजै आपणा।
मेरे तुम्ह बिन और न कोइ, इहै बिचारणा॥
ताथैं करौं पुकार, यहु तन चालणा।
दादू को दरसन देहु, जाइ दुख सालणा॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, दर्शनार्थ विनय करते हैं कि हे हमारे प्राणाधार परमेश्वर ! आप ही जग के जीवन रूप हैं यह जगत आपके ही आसरे जीता है। आप अपनी भक्त वच्छलता आदि प्रतिज्ञा पूरी करने वाले हैं। या आपके भक्तों के वचन आप ही सत्य पूरे करते हो। हे हमारे प्यारे ! आपके बिना अब हम और किसके पास जाकर पुकारें ? हमारे अंग में आपकी अप्राप्ति रूप दुख की वेदना अपार बढ रही है। आप अपना दर्शन देकर, इस दुख को निवृत्त करिये। यह संसार समुद्र अति गहरा है। इससे आप ही हमारा निस्तारा करोगे। आपके दर्शनों के बीच जो अन्तराय डालने वाले हैं, उनको हटाइये और हमको अपनी शरण में लीजिये। इस बात को पूर्णतया विचार लेना आप। हमारे आपके बिना और दूसरा कोई भी रक्षा करने वाला सहारा नहीं है। इसीलिए हम पुकार करते हैं कि अब यह शरीर जाने वाला है।

आप ही हमारी रक्षा करोगे। अब कृपा करके हमको दर्शनों का आनन्द देओ। आपके बिना जो दुख हम साल हो रहा है। यह आपके दर्शन करने से ही जाएगा।

321. मन सुधार अर्थ बिनती

मेरे तुम ही राखणहार, दूजा को नहीं।
ये चंचल चहुं दिसि जाइ, काल तहीं तहीं ॥टेक॥
मैं केते किये उपाइ, निहचल ना रहै।
जहं बरजौं तहं जाइ, मदि मातो बहै ॥
जहं जाणैं तहं जाइ, तुम्ह थैं ना डरै।
तासौं कहा बसाइ, भावै त्यूं करै ॥
सकल पुकारैं साध, मैं केता कह्या।
गुरू अंकुस मानै नहिं, निरभै व्है रह्या ॥
तुम बिन और न कोइ, इस मन को गहै।
तूं राखै राखणहार, दादू तो रहै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, मन सुधार अर्थ बिनती करते है कि हे समर्थ परमेश्वर! हमारे तो आप ही रक्षा करने वाले हो। आपके सिवाय दूसरा कोई हमारा रक्षक नहीं हैं। हे नाथ! यह हमारा चंचल मन, चारों अवस्थाओं में विषय वासनाओं के लिये दौड़ता है और यह जहां जहां जाता है, वहां वहां ही काल का भय है। मैंने इसको आपका नाम स्मरण करने में कितनी ही साधना द्वारा लगाया, परन्तु यह स्थिर नहीं होता है। जहां, स्त्री आदि पदार्थों के लिए इसको मना करते हैं, तो यह काम के मद में मतवाला होकर वहां वहां ही जाता है। यह जहां जहां विषय स्वादों को जानता है, वहां वहां ही दौड़ दौड़कर जाता है। आपसे भी यह नहीं डरता। हे नाथ! अब हमारा इस पर कोई काबू नहीं चलता है। इसको जैसे प्रिय लगते हैं वैसे ही काम करता है। इस बात को सम्पूर्ण सन्त भी वाणी द्वारा पुकार पुकार कर कहते हैं। और मैंने भी बहुत बार इसको समझाया। यह तो गुरू का शब्द रूपी अकुंश को भी नहीं धारता है। इस संसार में निर्भय हो रहा है। काल कर्म के भय को भी यह नहीं देख रहा है। अब तो आपके बिना और कोई भी दूसरा नहीं है, जो इस हमारे मन को एकाग्र करे। हे रक्षा करने वाले परमेश्वर! आप इस मन को अपनी शक्ति से रोकोगे, तो यह अवश्य रुक जायेगा।

322. संसार तारणार्थ विनती

निरंजन काइर कंपै प्राणिया, देखि यहु दरिया ।
वार पार सूझै नहीं, मन मेरा डरिया ।।टेक।।
अति अथाह ये भो जला, आसंघ नहिं आवै ।
देखि देखि डरपै घणा, प्राणी दुख पावै ।।
बिख जल भरिया सागरा, सब थकें सयाना ।
तुम्ह बिन कहुं कैसैं तिरौं, मैं मूढ अयाना ।।
आगै ही डरपै गणा, मेरी का कहिये ।
कर गहि काढो केसवा, पार तो लहिये ।।
एक भरोसा तोर है, जे तुम्ह होहु दयाल ।
दादू कहु कैसै तिरै, तूं तारि गोपाल ।।

पुस्तकालय
[illegible] कांगड़ी

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, संसार से तारणा अर्थ विनय कर रहे हैं कि हे निरंजनदेव ! हम इस संसार समुद्र को देखकर, भय से कांप रहे हैं । इसका उरला किनारा और परला किनारा, हमको नहीं दीख पड़ता है । हमारा मन भय को प्राप्त हो रहा है । और इस समुद्र में विषय रूपी जल, अथाह भरा है, तथा यहां संसारिक सम्बन्धियों का यह समाज भी, इसके पार करने में काम नहीं आता । इसमें डुबोने का ही यत्न करते हैं । इसीलिये इसको देख देखकर डरते हैं । हमारे प्राण दुख पाते हैं । यह संसार समुद्र विषय रूप जल से पूर्ण हो है । इसके पार जाने में, बड़े बड़े सयाने, साधन सम्पन्न भी थक रहे हैं । हे नाथ ! मैं तो महा मूढ और अज्ञानी हूं । आपके बिना इसको मैं कैसे तैर सकता हूं ? मेरे से पहले भी, बड़े बड़े महापुरूष, बहुत से इस संसार समुद्र को देखकर डरते रहे हैं । मैं अपनी बात क्या कहूं ? हे केशव ! आप हमारा हाथ पकड़ कर, इस संसार समुद्र से हमें निकालो । तब तो हम इससे पार हो सकेंगे । हे दयालु ! हमको तो अब एक आप का ही भरोसा है । अब आप ही हम पर दया करो । हम अपने आपसे कैसे तिरें ? हे गोपाल ! आप ही हमको तारिये ।

323. समर्थ उपदेश

समर्थ मेरा सांइयां सकल अघ जारै,
सुख दाता मेरे प्राण का संकोच निवारै ।।टेक।।

त्रिविध ताप तन की हरै, चौथे जन राखै।
आप समागम सेवगा, साधू, यूं भाखै॥
आप करै प्रतिपालना, दारन दुख टारै।
इच्छा जन की पूरवै, सब कारिज सारै॥
करम कोटि भै भंजना, सुख मंडन सोई।
मन मनोरथ पूरणा, ऐसा और न कोई॥
ऐसा और न देखि हौं, सब पूरण कामा।
दादू साधु संगी किये, उनि आतम रामा॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर की सामर्थ्य का परिचय दे रहे हैं कि हे हमारे स्वामी समर्थ निरंजनदेव ! आप अपने आत्मीय जनों के सम्पूर्ण पापों को जलाने वाले हैं। और फिर हमारे कहिए भक्तों के प्राणों को, आप ही सुख का दान देते हैं। और सब प्रकार के संकोच को निवारण करते हैं। अपने भक्तों के शरीर की तीनों तापों की आप नष्ट कर देते हैं और तुरिया अवस्था में, आप अपने भक्तजनों को रखते हो। आपके संत इस प्रकार कहते हैं कि वह प्रभु, अपने सेवकों को अपना समागम देकर, अपने समान ही बना लेते हैं। और फिर आप उनके बड़े बड़े दुखों को भी टाल कर उनका प्रतिपालन करते हैं। अपने भक्तजनों की सम्पूर्ण इच्छा पूरी करके, उनका सब कार्य आप सिद्ध करते हैं। करोड़ों प्रकार के कर्म बन्धन को काट कर, आप यमराज का भय नष्ट कर देते हैं और भक्तों के यहां सुख का मंडान मांडते हैं। भक्तों के मन के मनोरथों को पूर्ण करने वाला, आपके सिवाय और दूसरा उनके कोई नहीं है। हे प्रभु ! आपके सिवाय हम ऐसा समर्थ, दूसरा कोई भी नहीं देखते हैं, जो सम्पूर्ण कामनाएं सिद्ध कर दे। इस बात को संतजन कहते हैं कि वह, ऐसे निष्कामी अपने आत्मीजनों को, अपने साथ रखते हैं।

324. मन स्थिरार्थ विनती

तुम्ह बिन राम कौन कलि मांही, बिखिया थैं कोइ वारै रे।
मुनियर मोटा मनवै वाह्या, येन्हा कौन मनोरथ मारै रे॥टेक॥
छिन एकै मनवो मर्कट माहरो, घर घर बारि नचावै रे।
छिन एकै मनवो चंचल माहरो, छिन एकै घर मैं आवै रे॥

छिन एकै मनवो मीन अम्हारो, सचराचर में ध्यायो रे ।
छिन एकै मनवो उदमदि मातो, स्वादै लागो खाये रे ॥
छिन एकै मनवो जोति पतंगा, भ्रमि भ्रमि स्वादैं दाझै रे ।
छिन एकै मनवो लोभैं लागो, आपा पर मै बाझै रे ॥
छिन एकै मनवो कुंजर माहरो, बन बन मांहि भ्रमाड़ै रे ।
छिन एकै मनवो कामी माहरो, बिसिया रंग रमाड़ै रे ॥
छिन एकै मनवो मिरग अम्हारो, नादैं मोह्यो जाये रे ।
छिन एकै मनवो माया रातो, छिन एक हमनै बाहै रे ॥
छिन एकै मनवो भंवर अम्हारो, बासैं कंवल बंधाणों रे ।
छिन एकै मनवो चहुं दिसि जाये, मनवा नै कोई आणैं रे ॥
तुम्ह बिन राखै कौण बिधाता, मुनिवर साखी आणै रे ।
दादू मृत्तक छिन में जीवै, मनवा चरित न जाणै रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, मन स्थिरता अर्थ विनय करते हैं कि हे राम जी ! आपके बिना इस कलिकाल में ऐसा और कोई नहीं है, जो इस मन को विषय वासनाओं से हटावै । हे परमेश्वर ! इस मन ने बड़े बड़े मुनियों को भी बहकाया है । इसके मनोरथों को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता । यह हमारा मन एक क्षण में बानर स्वभाव को धारकर, विषय रूप प्रत्येक घर के द्वार पर नृत्य करता है । और एक क्षण में चंचल होकर दौड़ता है, दूसरे क्षण में हृदय रूप घर में आ जाता है । यह एक क्षण में मछली की भांति विषय रूप जल में रमता है । क्षण भर में विषय रूप आशा से उन्मत्त होकर, विषय स्वादों में, प्रसन्नता पूर्वक विषयों का उपभोग करता है । एक क्षण में रूप आदि ज्योति को देखकर, भ्रमवश जलता है । एक क्षण में काम वृति से हाथी की तरह, कामनी के साथ रमण करता है । दूसरे क्षण में मृग की भांति, स्त्री आदिकों के गायन सुनकर, मोहित हो जाता है । और तीसरे क्षण में हमको बहकाने लगता है । चौथे क्षण में भवंर की भांति, विषय कमल की अनुराग रूप गंध में बंध जाता है । पांचवे क्षण में चारों दिशाओं में घूमने लगता है । ऐसा कोई साधक है, जो इस मन को बहिरंग विषयों से हटाकर, हृदय में हरि नाम स्मरण में लगावै ? हे परमेश्वर ! आपके बिना इस चंचल मन को कौन स्थिर कर सकता है ? इस विषय में तो मुनिलोग भी साक्षी देते हैं कि प्रभु कृपा से ही मन स्थिर होता है । हे नाथ ! यह एक क्षण में मर कर, दूसरे क्षण में जीवित

हो जाता है। इस मन के अपार चरित्र हैं। इसके सम्पूर्ण चरित्रों को हम, जानते भी नहीं हैं। हे समर्थ! आप ही कृपा करके, इस हमारे मन को अन्तर्मुख बनाकर, आपके नाम स्मरण में लगाइये।

325. बेखर्च व्यसनी

करणी पोच, सोच सुख करई, लोह की नाव,
कैसै भौ जल तिरई ॥टेक॥
दखिन जात पछिम कैसै आवै, नैन बिन भूलि बाट
कत पावै।
बिख बन बेलि, अमृत फल चाहै, खाइ हलाहल,
अमर उमाहै।
अगनि गृह पैसि करि, सुख क्यूँ सोवै, जलणि लागी
घणी, सीत क्यूं होवै।
पाप पाखंड कीये, पुण्य क्यूँ पाइये, कूप खनि पड़िबा,
गगन क्यूँ जाइये।
कहै दादू मोहि अचरज भारी, हिरदै कपट क्यूँ
मिलै मुरारी।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, साधन रहित प्रभु प्राप्ति चाहने वालों का स्वरूप कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ! कर्म तो निसिद्ध करते हैं और सुख प्राप्ति करने का सोच करते रहते हैं, ऐसे मनुष्य लोह की नाव में बैठकर, समुद्र तैर कर, पार ज़ाने वाले के समान हैं। अर्थात् पाप कर्म रूपी नौका में बैठकर, संसार समुद्र से कैसे पार उतरेंगे? दक्षिण को जाने वाला, पश्चिम की तरफ कैसे आ जाएगा? इसी प्रकार नेत्रहीन, मार्ग छोड़ दे, तो फिर रास्ते पर कैसे आवैगा? बन में विष रूप बेली है, उससे अमृत फल चाहे तो कैसे मिलेगा? उसके तो विष के ही फल हैं। उन फलों को खाकर, अमर होने की इच्छा करे, तो अमर कैसे हो जायेगा? इसी प्रकार संसार रूप बन में स्त्री रूपी विष की बेली के विषय वासना रूप फल को भोगता हुआ, मोक्ष चाहे तो कैसे मिलेगी? अग्नि गृह में प्रवेश करके, सुख से कैसे सोयेगा? वहां तो अति जलन ही लगेगी, शीतलता कहां से आवैगी? पाप रूप पाखंड किये से, पुण्य की प्राप्ति कैसे होगी?

कूप खोदकर उसमें गिरने से, आकाश में जाना चाहे, तो कैसे पहुंचेगा ? इसलिये हमें अचरज हो रहा है कि जिन मनुष्यों के हृदय में कपट भरा है और फिर मुरारी भगवान से मिलना चाहते हैं, उनको कैसे परमेश्वर का दर्शन होगा ?

326. परिचय प्राप्ति

मेरा मन कें मन सौं मन लागा, सबद के सबद सौं नाद बागा ।।टेक।।
श्रवण के श्रवण सुणि सुख पाया, नैन के नैन सौं निरखि राया ।
प्राण के प्राण सौं खेलि प्राणी, मुख के मुख सौं बोलि बाणी ।
जीव के जीव सौं रंग राता, चित्त के चित्त सौं प्रेम माता ।
सीस के सीस सौं सीस मेरा, देखि रे दादूवा भाग तेरा ।

टीका :—ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, प्रत्यक्ष ब्रह्म प्राप्ति परिचय दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमारा तो व्यष्टि मन, समष्टि चेतन्य रूप मन से अब लगा है । हमारा व्यष्टि बाणी रूप शब्द, समष्टि विराट कीं बाणी रूप शब्द में अभेद हो रहा है। हमारा व्यष्टि श्रवण, समष्टि श्रवण से एक रूप होकर, सुख प्राप्त किया है । हमारा व्यष्टि नेत्र समष्टि नेत्र में अभेद होकर, ब्रह्म के स्वरूप को देख रहा है। हमारे व्यष्टि प्राण, विराट के समष्टि प्राण में, ओत प्रोत रूप खेल खेल रहा है । हमारा व्यष्टि मुख, विराट स्वरूप समष्टि मुख में अभेद होकर, ब्रह्म बाणी बोल रहा है । हमारा व्यष्टि जीव, समष्टि चेतन्य रूप जीव के, ज्ञानरूप रंग में रक्त हो रहा है । हमारा व्यष्टि चित्त, समष्टि चित्त के प्रेम में मस्त हो रहा है । हमारा व्यष्टि शीश, विराट रूप समष्टि शीश में, अभेद हो गया है । इस प्रकार हमारा कितना उत्तम भाग्य, आज उदय हुआ है, जो ब्रह्म के साथ हमारे अंग प्रति अंग, अभेद हो रहे हैं ।

327. मन को उपदेश

मेर सिखर चढि बोलि मन मोरा, राम जल बरिसै सुणि सबद तोरा । ।।टेक।।
आरति आतुर पीव पुकारै, सोवत जागत पंथ निहारै ।
निस वासुर कहि अमृत बाणी, राम नाम ल्यौ लाइ लै प्राणी ।
टेर मन भाई जब लग जीवै, प्रीति करि गाढी प्रेम रस पीवै ।
दादू औसरि जे जन जागै, राम घटा जल बरिसण लागै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, मन को उपदेश कर रहे हैं कि हमारे मन रूप मयूर ! इस देह रूप पर्वत के अहंकार रूपी शिखर पर चढ़कर बोल, अर्थात् इस अनात्म देह का अभिमान छोड़कर, राम से प्रार्थना कर । तव तेरे प्रार्थना रूप शब्द को, राम जी सुनकर, अपने दर्शन रूप जल की वर्षा करेंगे । बिरह से व्याकुल होकर, जो परमेश्वर को पुकारै और सोते जागते हुए, परमात्मा का मार्ग भक्ति वैराग्य का विचार करै । रात दिन अपनी निरअभिमानता, कोमलता युक्त अमृत वाणी से, प्रभु नाम का स्मरण करै, इस प्रकार जो प्राणधारी राम नाम में अखण्ड लय लगाते हैं, उन पर प्रभु अवश्य कृपा करते हैं । अतः हे हमारे भाई मन ! जब तक हम जीवित हैं, तब तक दृढ़ प्रीति के साथ, राम नाम रस पी सकै, वैसे ही प्रभु का स्मरण कर । इस प्रकार भक्तजनों का मनरूपी मयूर, युवा अवस्था में ही मोहरूपी निद्रा से जागकर, परमेश्वर से प्रार्थना करै, तो राम जी की दया रूपी घटा, अवश्य ही दर्शन रूपी जल की वृष्टि करैगी ।

328. वैराग्य उपदेश

नारी नेह न कीजिये, जे तुझ राम पियारा,
माया मोह न बंधिये, तजिये संसारा ।।टेक।।

विखिया रंगि राचै नहीं, नहीं करै पसारा ।
देह गेह परिवार मैं, सब थैं रहै नियारा ॥
आपा पर उरझै नहीं, नाहीं मैं मेरा ।
मनसा बाचा कर्मना, सांई सब तेरा ॥
मन इन्द्रिय सुस्थिर करै, कतहुं नहिं डोलै ।
जग बिकार सब परि हरै, मिथ्या नहिं बोलै ॥
रहै निरंतर राम सौं, अंतरि गति राता ।
गावै गुण गोबिंद का, दादू रसि माता ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, वैराग्य उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु ! यदि तूं राम से मिलना मिलना चाहता है तो स्त्री में, स्त्री स्नेह रूप प्रीति नहीं करना । माया और माया का कार्य संसार से, स्नेह नही करना। विरक्त रहना । स्त्री के रंग में कभी नहीं रचना, क्योंकि इससे बल बुद्धि और सद् विचारों का नाश होता है । मोह ममता का पसारा नहीं फैलाना। अपना शरीर घर परिवार आदि में आसक्ति का त्याग करके रखना । अपना पराया के भाव का त्याग करना । न मैं हूं और न मेरा है । हे परमेश्वर ! यह सब आपका है, मैं मन बचन कर्म से आपकी शरण हूं । और फिर अर्थात् अपने मन और पांच ज्ञानेन्द्रियों को परमेश्वर के नाम स्मरण में लगावै । संसार के सम्पूर्ण विकारों का त्याग करै । कभी मुँह से झूठ नहीं बोलै । हृदय में अन्तराय रहित, निरन्तर राम के रंग में रत्त रहै । इस प्रकार गोबिन्द के गुणानबाद गाता हुआ, उसकी प्रेमा भक्ति रूपी रस में, राता रत्त और माता मस्त रहै ।

329. आज्ञाकारी

तूं राखै त्यूं हीं रहै, तेई जन तेरा ।
तुम्ह बिन और न जान ही, सो सेवग तेरा ॥टेक॥
अम्बर आपै हीं धर्या, अजहूं उपगारी ।
धरती धारीं आपथैं, सबही सुखकारी ॥

पवन पासि सब के चलै, जैसै तुम कीन्हा।
पानी परगट देखिहूं, सब सौं रहै भीना॥
चंद चिराकी चहुं दिसा, सब सीतल जानै।
सूरज भी सेवा करै, जेसै भल मानै॥
ये निज सेवग तेरड़े, सब आग्याकारी।
मोको अैसें कीजिये, दादू बलिहारी॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निरन्तर परमेश्वर की आज्ञा में रहने के लिये प्रार्थना कर रहे हैं कि हे समर्थ परमेश्वर ! आपके अनन्य भक्त, जैसे आप उनको रखते हो, उसी प्रकार आपकी आज्ञा में रहते हैं। वही आपके निज सेवग हैं। वह आपके बिना, अपना स्वामी और दूसरे को नहीं मानते हैं। ऐसे सेवक ही आपके नजदीक हृदय में, नाम स्मरण रूप सेवा आपकी करते हैं। हे प्रभु ! आपने ही जीवों के उपकार अर्थ, आकाश को धारण किया है, और इस पृथ्वी को सबको सुख देने अर्थ आपने ही अपनी सत्ता पर धार रखी है। जैसे आपने पवन को आज्ञा दी, वैसे पवन सबके बाहर और भीतर, जीवन रूप बन कर, चल रहा है। और जल भी आपका किया हुआ, आपकी आज्ञा में सबकी जीवन रूप उपकार कर रहा है। चन्द्रमा, सूर्य, यह दोनों भी, आपकी आज्ञा में, जैसे आप अच्छा मानते हो, उसी प्रकार रात दिन, प्रकाश कर रहे हैं, एक शीतलता रूप प्रकाश करता है, दूसरा तेज रूप प्रकाश कर रहा है, चारों दिशाओं में। हे समर्थ ! यह सेवकों में, आपके निज सेवक हैं। आपकी आज्ञा से सम्पूर्ण कार्य करते हैं। हे प्रभु ! हमको भी आप ऐसे ही सेवक बनाइये। आपकी बार बार बलिहारी जाते हैं।

330. निन्दक

निंदक बाबा बीर हमारा, बिन ही कौडि बहै बिचारा॥टेक॥
कर्म कोटि के कुसमल काटै, काज संवारै बिन ही साटै।
आपण डूबै और को तारै, अैसा प्रीतम पार उतारै।
जुग जुग जीवो निन्दक मोरा, राम देव तुम्ह करौ निहोरा।
निंदक बपुरा पर ऊपगारी, दादू निंदा करै हमारी॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, सारग्राही दृष्टि से निन्दक को मित्र बताते हैं कि हे संतो ! निन्दा करने वाला निन्दक तो, हमारा मित्र है । बिना मेहनत लिए ही विचारा हमारे पाप रूपी बोझे को ढोता रहता है । करोड़ों जन्मों के निसिद्ध कर्म रूप पापों को काटता रहता है । हमारा ऐसा काम करता है, जो बदले में कुछ लेता ही नहीं । आप तो दूसरों के पाप रूप बोझे से संसार समुद में डूबता है और औरों को तारता है । निन्दक तो ऐसा हमारा प्यारा है, जो हमें संसार समुद्र से पार उतारता है । हे रामजी ! हम आपसे बार बार बिनती करते हैं कि हमारी निन्दा करने वाला निन्दक, जुग जुग में जीता ही रहै, ऐसी आप दया करो । हे राम जी ! निन्दक तो बिचारा परोपकारी है, भले ही हमारी निन्दा करता ही रहै ।

331. बिरह बिनती

देहु जी देहु जी, प्रेम पियाला देहु जी, देकरि बहुरि न लेहु जी ।।टेक।।
ज्यूं ज्यूं नूर न देखौं तेरा, त्यूं त्यूं जियरा तलफै मेरा ।
अमी महारस नांव न आवै, त्यूं त्यूं प्राण बहुत दुख पावै ।
प्रेम भगति रस पावै नांहीं, त्यूं त्यूं सालै मन ही मांहीं ।
सेज सुहाग सदा सुख दीजै, दादू दुखिया बिलम्ब न कीजै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, बिरह बिनती दिखा रहे हैं कि हे समर्थ परमेश्वर हमारे इष्टदेव ! आपकी प्रेमाभक्ति रूप प्रेम का प्याला, हमको देओ प्रभु ! और फिर प्रेमाभक्ति देकर, कभी हमारे चित्त से अलग नहीं करिये । जैसे जेसे आपके स्वरूप, दर्शनों में देर होती है, वैसे वैसे ही हमारा जीव तड़फता है । आपका निष्काम नाम स्मरण रूप महारस, जब हमारे हृदय में नहीं आता है, तब तब ही हमारे प्राणों में भारी दुख होता है । हमारे मन को, आपकी प्रेमा भक्ति रूपी रस, जब तक नहीं प्राप्त होवैं, वैसे वैसे ही हमारे अन्तःकरण में, बिरह का साल व्याप्त रहता है । हे नाथ ! हमारे हृदय रूपी सेज पर आप प्रगट होकर, दर्शनों का सुख दीजिए । हम बिरहीजन अति दुखी हैं । अब आप दर्शन देने में विलम्ब नही करना ।

332. परिचय बिनती

बरसहु राम अमृतधारा, झिलिमिलि झिलिमिलि सींचनहारा ।।टेक।।
प्राण बेलि निज नीर न पावै, जल हरी बिना कवंल कुम्हलावै ।

सूकै बेलि सकल बनराइ, राम देव जल बरिसहु आइ।
आतम बेलि मरै पियास, नीर न पावै दादूदास।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परिचय विनती कर रहे हैं कि हे रामजी ! आपके झिलमिल ब्रह्मतेज रूप दर्शन अमृत की अखण्ड धारा बरसा कर, आप ही हमारे प्राणों को सींचने वाले हो। हमारी बुद्धि रूपी बेलि को, आपका निष्काम नाम स्मरण रूपी नीर नहीं प्राप्त होवै, तो हे हरि ! जैसे सरोवर में जल के बिना, कमल मुरझा जाता है और बन में नाना प्रकार की लताएं और बृक्ष आदि, बिना जल के सभी सूख जाते हैं। इसलिये हे दयामूर्ति राम ! आप जलरूप होकर, वर्षा करिये। इसी प्रकार हमारी अन्तर्मुख आभास बुद्धि रूप बेलि, आप साक्षी राम के दर्शन रूप जल के बिना, सूख रही है। आप दर्शन रूप अमृत धारा बरसाकर, देव सम्पत्ति के गुणों से हरी भरी करिये।

(इति राग गंड टीका सहित, सम्पूर्ण समाप्तः)

* * *

।। अथ राग बिलावल २१ ।।

333. परिचय बिनती

दया तुम्हारी दरसन पइये, जानत हो तुम्ह अंतरजामी ।
जानराय तुम सौं कहा कहिये ।।टेक।।
तुम्ह सौं कहा चतुराई कीजै, कौण कर्म करि तुम्ह पाये ।
को नहिं मिलै प्राण बल अपणैं, दया तुम्हारी तुम्ह आये ।।
कहा हमारो आनि तुम्ह आगैं, कौण कला करि बसि कीये ।
जीतै कौण बुद्धि बल पौरिस, रूचि अपनी तैं सरनि लीये ।
तुम्ह ही आदि अंति पुनि तुम्ह ही, तुम्ह कर्त्ता त्रिय लोक मंझारि ।
कुछ नांहीं थैं कहा होत है, दादू बलि पावै दीदार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परिचय बिनती कर रहे हैं कि हे समर्थ परमेश्वर ! आपकी दया होने से ही, हम आपका दर्शन पा सकते हैं। हे अन्तर के प्रेरक अन्तर्यामी ! आप घट घट की भावना जानते हो। आप तो स्वयं जानराय हो। आपको क्या कह करके जनावें ? क्या चतुराई करें ? आप ही दया करके बताओ कि कौनसा कर्म करके, हम आपको प्राप्त कर सकेंगे। कोई भी प्राणधारी अपनी शक्ति से तो, आपको प्राप्त नहीं कर सकता है। जिन भक्तों पर आप अपनी दया करके आते हो, वही आपको प्राप्त करते हैं। आपके सामने हमारा क्या बस है ? कोई भी अपनी शक्ति से आपको बस नहीं कर पाते। आपको कौन जीत सकता है। किसकी बुद्धि का ऐसा पुरूषार्थ है, जो आपको प्राप्त कर ले। जिन पर आपने दया करी,

उन्हीं को आप अपनी इच्छा से, शरण में लिये हैं। हे परमेश्वर ! आप ही इस सृष्टि के आदि, मध्य और अन्त में हैं। इस त्रिलोकी में जो भी कुछ रचना है, उसके कर्ता आप ही हैं। और जिसकी शक्ति आपके सामने कुछ भी नहीं है, वह जीव क्या कर सकता है ? वह अपने बल से आपका दर्शन कर सके। इसलिये हे प्रभु ! आप ही दया करके, दर्शन दीजिए।

334. बिनती

मालिक महरबान करीम, गुनहगार हर रोज हर दम,
पनह राखि रहीम ।।टेक।।

अबल आखिर बंदा गुनही, अमल बद बिसियार।
गरक दुनियां सितार साहिब, दरद बंद पुकार ।।
फरामोश नेकी बदी करदः, बुराई बद फैल।
बर्कसिदः तूं अजीब आखिर, हुक्म हाजिर सैल ।।
नाम नेक रहीम राजिक, पाक परवर दिगार।
गुनह फिल करि देहु दादू, तलब दर दीदार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, प्रभु से विनती कर रहे हैं कि हे दयालु हमारे स्वामी ! आप इस सम्पूर्ण संसार की रचना करने वाले हो और हम इस संसार में अपराध करने वाले, हर रोज हर समय के हैं। हे रहम दिल दयालु परमेश्वर ! आपके चरणों की शरण में हम आए हैं, आप ही हमारी रक्षा करो। शुरू से अन्त समय तक, हमने तो अपराध ही किए हैं, परन्तु हम बन्दे आपके ही अपराधी हैं। और फिर हम बुरी बुरी आदतों के वश में हो रहे हैं। तथा दुनियां में डूबे हुए हैं। हे साहिब ! आप ही तारने वाले हो। हम जन्म मरण के दुख से दुखी होकर, आपको पुकार रहे हैं। नेकी को त्यागकर, बदी के काम किये हैं। जितने भी बुरे बुरे कर्म हैं और खराब चाल चलन हैं, हमारे। परन्तु आप तो अन्त तक आश्चर्यरूप क्षमा करने वाले हैं। आपकी आज्ञा में रहने से ही हमें आनन्द प्राप्त होता है। इसलिए हे अजीविका देने वाले मालिक ! पवित्र ! अति कृपालो ! मेरे दोषो को क्षमा करके, मुझे परोपकार परायणता, आपका नाम चिन्तन और हृदय में, आपके दर्शनों की प्रबल इच्छा दीजिये।

335

कौण आदमी कमीण बिचारा, किसकूं पूजै गरीब पियारा ।।टेक।।
मैं जन एक अनेक पसारा, भौ जल भरिया अधिक अपारा ।
एक होइ तो कहि समझाऊं, अनेक अरुझे क्यूं सुरझाऊं ।
मैं हौं निबल सबल ये सारे, क्यूं करि पूजौं बहुत पसारे ।
पीव पुकारौं समझत नांहीं, दादू देखु दसौं दिसि जांहीं ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, विनती कर रहे हैं कि हे समर्थ परमेश्वर ! तुच्छ विचार वाले अज्ञानी मानव आपको छोड़कर, कोई किसी देवी देवता को, कोई किसी भूत प्रेत को इष्ट मानकर, अपनी कामना अर्थ पूजते हैं । इस प्रकार समाज में अनेक देवी देवताओं की उपासना का पसारा पसर रहा है । मैं तो आपका जन एक हूं और संसार समुद्र के विषय जल से, परिपूर्ण हृदय वाले प्राणी, अति अपार हैं । यदि एक हो तो अपने विचार कह कर समझावें, परन्तु यह तो अनेक प्राणी माया जाल में उलझे हुए हैं, इनको मैं कैसे सुलझाऊं और मैं तो धन जन तन, आदि बल से रहित हूं । और ये बहिर्मुख प्राणी, धन जन तन आदि शक्तियों से युक्त हैं । तथा मुझे भी वह अपनी उपासनाओं के अन्दर लगाना चाहते हैं । तथापि मैं आपको छोड़कर, इन अनेकों देवी देवताओं को कैसे पूज सकता हूं ? क्योंकि मेरे तो आप ही इष्टदेव हैं । हे प्रियतम ! मैं इनको पुकार पुकार कर कहता हूं कि एक ईश्वर की ही उपासना करो । किन्तु ये लोग समझते ही नहीं, और मेरे देखते देखते ही देव आदि की उपासना करके दशों दिशाओं में भटक रहे हैं । हे समर्थ परमेश्वर ! आप ही इनको अपनी भक्ति रूप मार्ग पर लाओ, तो आ सकते हैं । अन्यथा कठिन है । दाराष्टान्त में इसका अर्थ मन इन्द्रियों पर भी घट जाता है ।

336 उपदेश चेतावनी

जागहु जियरा काहे सोवै, सेई करीमा तो सुख होवै ।।टेक।।
जाथैं जीवन सो थैं बिसारा, पछिम जाना पंथ न सवांरा ।
मैं मेरी करी बहुत भुलाना, अजहूं न चेतै दूर पयाना ।।
सांई केरी सेवा नांहीं, फिर फिर डूबै दरिया मांहीं ।
और न आवै, पार न पावा, झूठो जीवन बहुत भुलावा ।।

मूल न राख्या लाह न लीया, कौडी बदलै हीरा दीया ।
फिर पछिताना संबल नाहीं, हारि चल्या क्यूं पावै सांई ।।
इब सुख कारणि फिर दुख पावै, अजहूं न चेतै क्यूं डहिकावै ।
दादू कहै सीख सुणि मेरी, कहु करीम संभालि सवेरी ।।

टीका :–ब्रह्मऋषि सतगुरु इसमें, उपदेश द्वारा साधवान कर रहे हैं कि हमारे जीव ! अब तूं मोह रूप निद्रा में क्यों सो रहा है ? अब तूं शीघ्र जागकर, कृपालु परमेश्वर की भक्ति कर, तभी तुझे सुख प्राप्त होगा । जिससे तेरा जीवन सुखपूर्वक रहैगा, उस परमेश्वर के चिन्तन को तो तूं भूल गया है । पश्चिम में हज आदि करने तो तूं जाता है, परन्तु हृदय में परमेश्वर है, उसकी प्राप्ति के मार्ग को, तैंने नहीं संभाला । मैं और मेरी इसमें फंसकर, बहुत से जन्मों से तूं परमेश्वर को भूल रहा है । और अब इस मनुष्य देह को प्राप्त करके भी, अज्ञानता से चेत नहीं करता है । तुझे संसारिक भावनाओं से रहित होकर, परमेश्वर के पास जाना है । तैंने परमेश्वर की निष्काम भक्ति रूप सेवा नहीं करी है । पुनः पुनः इस संसार के विषय रूप दरियाव में ही तूं डूबता है । इस विषय रूप दरियाव का ओड़ नहीं है । कोई भी संसारिक प्राणी, इन विषय भोगों से तृप्त नहीं हुए हैं । तूंने इस जीवन को भी झुठा बनाया और बहुत से जन्मों से भी तूं ईश्वर को भूलता हुआ आया । तैंने इस मनुष्य देह रूपी मूल की भी रक्षा नहीं की । परमेश्वर की प्राप्ति रूप लाभ तो लेता ही क्या ? संसारिक भोग वासनाओं के लिए मनुष्य जन्म रूपी हीरे को गमाया । फिर अन्त में तुझे पश्चाताप ही करना होगा, क्योंकि नाम स्मरण रूपी सबंल धन तो तेरे पास है ही नहीं । इस जन्म को खोकर जाने से, परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होगी । अब इन्द्रियों के सुखों को भोगने के कारण तूँ, नाना प्रकार के कुकर्म करता है । इसका फल तुझे जन्म जन्म में दुख ही प्राप्त होगा । अब भी तूँ मोह रूप निद्रा से नहीं चेत करता । इनमें क्यों बहक रहा है ? मुक्त पुरुप कहते हैं कि इस हमारी शिक्षा को सुन । अब जल्दी उस करीम कृपालु परमेश्वर का नाम स्मरण कर, तब तो तेरा उबारा हो जाएगा ।

337·

बार बार तन नहीं बावरे, काहे को बादि गवांवै रे ।
बिनसत बार कछू नहिं लागै, बहुरि कहा कोइ पावै रे ।।टेक।।
तेरे भाग बड़े भाव धरि कीन्हां, क्यूं करि चित्र बनावै रे ।
सो तूं लेइ बिखै मै डारे, कंचन छार मिलावै रे ।।

तूं मति जानै बहुरि पाइये, अब कै जनि डहिकावै रे ।
तीनि लोक की पूंजी तेरे, बनजि बेग सो आवै रे ॥
जब लग घट मैं श्वांस बास है, तब लग काहे न धावै रे ।
दादू तन धरि नाउं न लीन्हा, सो प्राणी पछितावै रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें उपदेश चेतावनी कह रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! ऐसा मनुष्य तन बावले, बार बार प्राप्त होना अति कठिन है । इसको तूँ पाकर भजन के बिना, व्यर्थ क्यों खो रहा है ? इसके विनाश होने में कोई देर नहीं लगेगी । और फिर दुबारा इसको कहां कोई प्राप्त कर सकता है ? यह तो अमूल्य जन्म है । तेरा कोई अक्षय पुण्य उदय हुआ है, जो परमेश्वर यह मनुष्य देह बनाकर तुझे दिया है । अब उसी की भाव भक्ति हृदय में धारण कर । देख उसकी शक्ति ? किस प्रकार गर्भवास में, यह मनुष्य देह रूप चित्र बनाया है । हे मूर्ख ! ऐसा मनुष्य शरीर, तूँ परमेश्वर से लेकर, विषय वासनाओं में डालकर, जैसे कोई कंचन को मिट्टी में मिलाता है, ऐसे तूँ इसका नाश कर रहा है । तूँ यह मत समझ, कि ईश्वर से विमुख रहकर यह मनुष्य देह, फिर भी मिल जायेगा । अब के यह तेरे को मिल चुका ? इसमें अब अज्ञान से बहकना नहीं । त्रिलोकी में जितने भी तैंने शुभ कर्म किये, जन्म जन्मान्तरों में । उन्हीं का यह फल है । इससे परमेश्वर का नाम स्मरण और परोपकार आदि बणज कर, तो परमेश्वर तेरे को जल्दी ही दर्शन देंगे । जब तक तेरे शरीर में श्वासों का बास है, तब तक समर्थ परमेश्वर का नाम स्मरण क्यों नहीं करता है ? उसी का ध्यान कर । हे मूर्ख ! जो मनुष्य जन्म पाकर के परमेश्वर का नाम स्मरण नहीं किया, वही अन्त में पश्चाताप करता है ।

338

राम बिसार्यो रे जगनाथ, हीरा हार्यो देखत हीरे ।
कौड़ी कीन्ही हाथ ॥टेक॥
काच हुता कंचन करि जानै, भूल्यो रे भ्रम पास ।
सांचें सौं पल परचा नांहीं, कर काचे की आस ॥
बिख ताको अमृत करि जानै, सौ संग न आवै साथ ।
सैंबल के फूलन परि फूल्यो, चूक्यो अबकी घात ॥

हरि भजि रे मन सहजि पिछानै, ये सुनि सांची बात ।
दादू रे इब थैं करि लीजै, आव घटै दिन जात ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, उपदेश चेतावनी कह रहे हैं कि हे मानव ! तैंने जगत का नाथ कहिए स्वामी, सबको सत्ता स्फुर्ति देने वाले राम को, तूं भूल गया है। और विषय वासना रूप कौड़ियों को अन्तःकरण रूप हाथ में लेकर, उनको देखता देखता ही, मनुष्य जन्म रूप हीरे को गमा दिया। भ्रमरूपी फांसी में फंसकर, सत्य स्वरूप को तूं भूल गया है। तथा विषय सुख काच के समान को ही, तैंने कंचन जाना है। सत्य स्वरूप को जानने के लिये तो, तूं एक क्षण भी नहीं लगाता है। और निरन्तर विषयों की आशा में आयु पूरी कर रहा है। परन्तु उस विषय रूप विष को ही तैंने अमृत मान रखा है और उसके लिये तूं अनर्थ करता रहता है। किन्तु वह विषय सुख, न तो संग आता है और न जाता है। जैसे सेमल वृक्ष के फूलों को देखकर, गिद्ध तोता देव अंगना आदि धोखे में आकर, बहुत छले जाते हैं, और फिर पश्चाताप करने लगते हैं। वैसे ही तूं सैमल वृक्ष के समान, स्त्री आदि पदार्थों को देखकर, तूं क्या फूल रहा है। इनमें सार कुछ है नहीं। याद रख, अब के यह मनुष्य देहरूपी दाव को हार जायेगा, तो फिर यह समय नहीं मिलेगा। इस मेरी बात को याद रख, कि तूं अब हरि भजन करै तो, तूं अनायास ही, उस परमेश्वर को पहचान लेगा। इस भजन रूप कार्य को अभी से प्रारम्भ कर ले, क्योंकि दिन दिन तेरी आयु घटती जा रही है।

339. मन

मन चंचल मेरो कह्यो न मानै, दसों दिसा दौरावै रे ।
आवत जात बार नहि लागै, बहुत भांति बौरावै रे ॥टेक॥
बेर बेर बरजत या मन को, किंचित सीख न मानै रे ।
ऐसे निकसि जात या तन थैं, जैसे जीव न जानै रे ॥
कोटिक जतन करत या मन को, निहचल निमख न होई रे ।
चंचल चपल चहूं दिसि भरमै, कहा करै जन कोई रे ॥
सदा सोच रहत घट भीतर, मन थिर कैसे कीजै रे ।
सहजैं सहज साधु की संगति, दादू हरि भजि लीजै रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, मन का स्वभाव और उसको निग्रह करने का साधन बताते हैं कि संतों ! यह चंचल मन, हमारा कहना नहीं मानता है। यह मन दसों इन्द्रियों के द्वारा, दशों दिशाओं में

दौड़ता है । आप बहिर्मुख जीवों को दौड़ाता रहता है । और इसको हृदय में आने में और संसार में जाने में, कुछ भी देर नहीं लगती है । बहुत प्रकार से प्राणियों को, बावरे बनाता है । इस मन को हम बहिर्मुख जाने से बार बार रोकते हैं, परन्तु यह किंचित भी, हमारी शिक्षा को नहीं मानता है । और इस प्रकार शरीर से निकलता है यह, कि जीव इसको जान नहीं पाता । इस मन को राम नाम में रोकने के लिये, करोड़ो प्रकार के साधन रूप, यत्न करते हैं, परन्तु एक क्षण भी निश्चल नहीं होता । यह बड़ा ही चपल चंचल है । अन्तःकरण की चारों वृत्तियों के द्वारा, चारों दिशाओं में बासना से भ्रमता रहता है । इस मन का, कोई साधक बिचारे क्या करैं ? हृदय में सदा यह ही सोचते रहते हैं कि इस मन को कैसे स्थिर करैं ? मुक्त पुरुष कहते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! इस मन को सच्चे संतो की संगति में, धीरे धीरे ले जाओ और हरि रूप परमेश्वर का नाम स्मरण करो । तो यह मन अन्तर्मुख होगा ।

340. माया

इन कामनि घर घालै रे, प्रीति लगाइ प्राण सब सोखै,
बिन पावक जिय जालै रे ।।टेक।।
अंगि लगाइ सार सब लेवै, इनथैं कोई न बाचै रे ।
यहु संसार जीति सब लीया, मिलन न देई सांचै रे ।।
हेत लगाइ सबै धन लेवै, बाकी कछु न राखै रे ।
माखन मांहि सोधी सब लेवै, छाछ छिया करि नाखै रे ।।
जे जन जानि जुगति सौं त्यागै, तिन को निज पद परसै रे ।
काल न खाइ मरैं नहिं कबहूं, दादू तिनको दरसै रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, माया रूप कामनि से जो अनर्थ होता है, उसका निर्देश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! यह माया रूप कामनि, सभी शरीरों को नष्ट करती रहती है । यह अपना स्नेह लगाकर, सभी प्राणियों के प्राणों को शोषण कर लेती है, क्षीण कर देती है । और बिना अग्नि के ही काम रूप शीतल अग्नि से, प्राणी मात्र को जलाती रहती है । अपने शरीर से स्पर्श करके, नर के शरीर का सम्पूर्ण सार, वीर्य बिन्दू नष्ट करती रहती है । इस माया रूप नारी से चींटी से लगाकर हाथी पर्यन्त, मनुष्य देव आदि, इससे कोई भो नहीं बचे हैं । इसने सम्पूर्ण संसार के प्राणीमात्र को जीत लिया हैं । सत्य स्वरूप परमात्मा से, जीव को नही मिलने देती । यह स्नेह लगाकर, सम्पूर्ण बहिरंग धन और अन्तरंग सद् विचार रूपी धन, मनुष्य के पास कुछ भी नहीं छोड़ती है खोखला बना देती है । जैसे दही को बिलोकर, मक्खन निकाल लेते हैं और

फिर छाछ को पूर्णतया हाथ से हिलाकर, एक भी मक्खन का दाना नहीं छोड़ते। फिर उस छाछ को निरर्थक जानकर त्याग देते हैं। उसी प्रकार मनुष्य के शरीर के वीर्य बिन्दू रूप घी को पूर्णतया खैंच कर, फिर निसार जानकर, उसके शरीर का त्याग कर देती है। जो गुरूमुखि विवेकी इस प्रकार जानकर, विचार रूप युक्ति से कामनि का त्याग करैं, उन मुमुक्षुओं को निज कहिए, ब्रह्म पद का साक्षात्कार अनुभव होता है। फिर उस पुरूष को काल दण्ड नहीं दे सकता। वह स्व इच्छाचारी होते हैं। और कभी भी जन्म मरण के चक्र में नहीं पड़ते। मुक्त पुरूष कहते हैं कि उन्हीं को स्वस्वरूप ब्रह्म का दर्शन होता है।

341. विश्वास

जनि सत छाड़ै बावरे, पूरक है पूरा।
सिरजे कीं सब चिंत है, देवे कौं सूरा ॥टेक॥
गर्भवास जिन राखीया, पावक थैं न्यारा।
जुगती जतन करि सींचिया, दे प्राण अधारा॥
कुंज कहां धरि संचरै, तहां को रखवारा।
हेम हरत जिन राखिया, सो खसम हमारा॥
जल थल जीव जिते रहैं, सो सब को पूरै।
सपट सिला मै देत है, काहे नर झूरै॥
जिन यहु भार उठाइया, निर्वाहै सोई।
दादू छिन न बिसारिये, ताथैं जीवन होई॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर का विश्वास पूर्वक, भजन करने की प्रेरणा कर रहे हैं कि हे बावरे मनुष्य ! मन बाणी से सत्य का आचरण करना, सत्य का त्याग नहीं करना। और उस सत्य स्वरूप परमेश्वर का विश्वास रखना, क्योंकि वह सम्पूर्ण सृष्टि को पूरने वाला परमेश्वर, सब प्रकार से पूरे हैं। अपने उत्पन्न किये की वही चिन्ता करते हैं। प्राणी मात्र को अन्न वस्त्र आदि आवश्यक वस्तु, देने को वह शूरवीर हैं। सभी को पूर्ण करते हैं। देख उसकी शक्ति ? गर्भवास में जठरा अग्नि से रक्षा करते हैं। बड़ी युक्ति से यत्न पूर्वक अर्थात् नाल के द्वारा, प्राणों को गर्भवास में पोख देते हैं, और रक्षा करते हैं। कुंज पक्षी, शीत प्रदेश में जाकर, अपने अण्डे रखती है। बह बर्फ से ढके जाते हैं। कुंज पक्षी नींचे आ जाता है। मन से पोख देता रहता है वह समर्थ ही बर्फ से, अण्डों की रक्षा करते हैं। वही समर्थ परमेश्वर, हमारा खामिन्द है,

अर्थात् मालिक है । जल में, पृथ्वी पर और भी जहां तहां जीव रहते हैं, उन सबको को वह समर्थ, जिसकी जैसी खुराक है, वह पूर्ण करता है । और क्या कहें, उस समर्थ की समर्थाई ? पत्थर के अन्दर, जो कीड़ा है, उसकी खुराक वहीं पहुंचाता है । हे मनुष्य ! तूं उदर पूर्ति के लिये क्यों कलपता है ? क्या वह तुझे नहीं देंगे ? जिसने इस सम्पूर्ण सृष्टि को रच करके, धारण कर रखी है, वही इन सबका निर्वाह कर रहे है । हे मानव ! तूं उस प्रभु का एक क्षण भी नाम को मत भूलै । उसी से तेरा जीवन निर्वाह स्वतः ही होता रहेगा । अथवा वही तेरे जीव की जीवन रूप हैं ।

342

सोई राम संभालि जियरा, प्राण पिंड जिन दीन्हा रे ।
अम्बर आप उपावनहारा, मांहि चित्र जिन कीन्हा रे ।।टेक।।
चंद सूर जिन किये चिराका, चरनों बिना चलावै रे ।
इक सीतल इक ताता डोलै, अनन्त कला दिखलावै रे ।।
धरति धरनि बरनि बहु बाणी, रचि ले सप्त समंदा रे ।
जल थल जीव संभालनहारा, पूरि रह्या सब संगा रे ।।
प्रगट पवन पानी जिन कीन्हा, बरीखावै बहु धारा रे ।
अठारे भार बिरख बहू विधि के, सबका सींचनहारा रे ।।
पंच तत्त जिन किये पसारा, सब करि देखन लागा रे ।
निहचल राम जपी मेरे जियरा, दादू तातैं जागा रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर का विश्वास पूर्वक, भजन करने की प्रेरणा कर रहे हैं कि हे हमारे जीव ! उसी समर्थ राम का नाम स्मरण कर, जिसने तेरे को मनुष्य देह रूपी शरीर में, प्राण दिये हैं । वह आप स्वयं समर्थ, आकाश रूपी मन्दिर रचकर, इसमें नाना प्रकार के तारा रूप चितराम कैसे बनाये हैं । और चन्द्रमा सूर्य रूप दो चिराग, बनाए हैं । इनको चरणों के बिना ही चला रहे हैं । एक शीतल और एक गर्म, दोनों चिराग घूमने वाले बनाये हैं और फिर उनमें अनन्त कला दिखलाई हैं । वही समर्थ इस पृथ्वी को रच करके, धारण करी है । और बहुत प्रकार की वाणी का वर्णन करा रहे हैं । और उसी ने सातों समुद्र रच लिये हैं । फिर जल में थल में कहिए पृथ्वी पर, जितने भी जीव बसते हैं, उन सबकी संभाल करता है और सब प्राणी के साथ में पूर्ण रूप से व्यापक हो रहे हैं । उस समर्थ ने ही, यह पवन और पानी प्रगट रचा है

और अनन्त धाराओं से, पृथ्वी पर पानी बरसा रहा है । फिर वह समर्थ अठारह भार, बहुत प्रकार के वृक्षों को जंगल में सींच रहे हैं पंच महा भूतों का यह सारा पसारा फैलाकर, आप ही इसमें दृष्टा रूप से देख रहे हैं । हे हमारे जीव ! ऐसा जो समर्थ निश्चल राम है, उसी को तूं जप । तब तूं जान कि आज मैं, अज्ञानता से जाग उठा हूं ।

343 परिचय

जब मैं रहते की रह जानीं, काल काया के निकट न आवै,
पावत है सुख प्राणी ।।टेक।।
सोग संताप नैन नहिं देखौं, राग द्वैस नहिं आवै ।
जागत है जासौं रुचि मेरी, सुपनै सोइ दिखावै ।।
भरम करम मोह नहिं ममता, बाद विवाद न जानो ।
मोहन सौं मेरी बनि आई, रसना सोई बखानो ।।
निस वासुरी मोहन तनि मेरे, चरण कंवल मन मानै ।
सोई निधि निरखौं देखि सचु पाऊं, दादू और न जानै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परिचय साक्षात्कार से लाभ दिखा रहे हैं कि हे संतो ! जब से हमने माया और माया का कार्य से रहित, एक अद्वैत परब्रह्म प्राप्ति का ज्ञान रूप रहस्य जाना है । तब से काल जो सम्पूर्ण संसार का भक्षण करने वाला है, वह हमारी काया के नजदीक भी अब नहीं आता और प्राण ब्रह्मानन्द रूप सुख को प्राप्त हो रहे हैं । तब से शोक जन्य संताप, दुःख तो हम देखते ही नहीं और राग द्वैष भी अब हमारे अन्तःकरण में नही प्रगट होते । जाग्रत अवस्था में जिस सत्य स्वरूप में मेरी प्रीति है, स्वप्न में भी मुझे परमात्मा, वही अपना स्वरूप दिखाते हैं । अब पांच प्रकार का भ्रम और सम्पूर्ण सकाम कर्म, ममता मोह, वाद शास्त्र के अनुसार और विवाद शास्त्र से विरूद्ध, यह कोई भी अब अमारे अन्तःकरण में नहीं भान होते हैं । विश्व विमोहन परमेश्वर से अब हमारी प्रीति अखण्ड लग गई है । जिह्वा से भी हम, उन्हीं का नाम स्मरण करते हैं । मेरे हृदय प्रदेश में रात दिन परमेश्वर विशेष रूप से विराजते हैं । उनके तेज पुँज रूप चरणों में ही अब हमारा मन स्थिर हो रहा है । तत्ववेता पुरूष कहते हैं कि हम उसी परब्रह्म रूप निधि को निज आत्म स्वरूप से ज्ञान रूप नेत्रों द्वारा, देख करके सत्य स्वरूप को प्राप्त किया है । उसके सिवाय अब माया और माया के कार्य को सत्य रूप करके नहीं जानते ।

344

जब मैं सांचे की सुधि पाई, तब थै अंगि और नहीं आवै,
देखत हूं सुखदाई ।।टेक।।
ता दिन थैं तन ताप न व्यापै, सुख दुख संगि न जाऊं ।
पावन पींव परसि पद लीन्हा, आनंद भरि गुन गाऊं ।।
सब सौं संग नहीं पुनि मेरे, अरस परस कछु नांहीं ।
एक अनंत सोई संगि मेरे, निरखत हूं निज मांही ।।
तन मन मांहि सोधि सो लीन्हा, निरखत हौं निजसारा ।
सोई संग सबै सुखदाई, दादू भाग हमारा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परिचय प्राप्ति का स्वरूप दिखा रहे हैं कि जब से हमने सत्य स्वरूप परब्रह्म की सुध प्राप्त की है, तब से हमारे हृदय में, दूसरे का स्वरूप कहिए अवतार आदि का नहीं आता है। हम ज्ञानरूपी नेत्रों से, उसी का आत्म स्वरूप से दर्शन करके, सुखी हो रहे हैं। उस दिन से तीनों ताप कोई भी हमारे तन को नहीं व्याप्ती हैं और न सुख में सुखी होते हैं, न दुख में दुखी होते हैं। परमेश्वर के पवित्र चरणों में ही लीन रहते हैं। और आनन्द में मग्न होकर, उसके गुणानुवाद गा रहे हैं। शरीर दृष्टि से तो सब सम्बन्धी दीख रहे हैं, फिर भी आत्म स्वरूप में तो, कुछ सम्बन्ध बनता नहीं। आत्मा तो ब्रह्मस्वरूप से सदा मिला हुआ है। आत्मा और परमात्मा में कुछ भी अन्तर नहीं है। ओत प्रोत हो रहे हैं। जो अद्वैत और अनन्त ब्रह्म है, वह सदा हमारे साथ है। उसको हम हृदय में ज्ञान नेत्रों द्वारा देख रहे हैं। मैंने उस आत्म स्वरूप ब्रह्म को नित्य अनित्य का विचार करके, हृदय में ही प्राप्त किया है। और उसी विश्व के सार स्वरूप ब्रह्म को सर्वत्र देखते हैं। वह सुख स्वरूप परब्रह्म है तो सभी के साथ। परन्तु हमारा पूर्ण भाग्य उदय हुआ है, जिससे हमें भान हो रहे हैं। और संसारिक अज्ञानी प्राणियों को, वह साथ होता हुआ भी, उन्हें दिखाई नहीं पड़ता है।

345. सांच निदान

हरि बिन निहचल कहीं न देखौं, तीनि लोक फिरि सोधा रे।
जे दीसै सौं बिनसि जाइगा, ऐसा गुरू परमोधा रे ।।टेक।।

धरती गगन पवन अरू पानी, चंद सूर थिर नांहीं रे ।
रैनि दिवस रहत नहिं दीसै, एक रहै कलि मांही रे ॥
पीर पैगम्बर सेख मसाइक, शिव विरंच सब देवा रे ।
कलि आया सो कोई न रहसी, रहसी अलख अभेवा रे ॥
सवा लाख मेर गिरि परबत, समंद न रहसी थीरा रे ।
नदी निवान कछू नहिं दीसै, रहसी अकल सरीरा रे ॥
अविनासी वह एक रहेगा, जिन यहु सब कुछ कीन्हा रे ।
दादू जाता सब जग देखौं, एक रहत सो चीन्हा रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, सांच का निदान कर रहे हैं कि हे संतों ! इस संसार का कारण परब्रह्म, वही सत्य स्वरूप निश्चल है । हमने व्यष्टि समष्टि रूप त्रिलोकी में विचारपूर्वक यह देखा है । जो नाम रूप प्रपंच दीखता है, वह सब परिवर्तनशील है । सतगुरू का भी यही उपदेश है । धरती, गगन, पवन, पानी, चन्द्रमा सूर्य, सभी आगमा पाई हैं । समय पाकर सभी नष्ट हो जाएंगे । रात दिन यह मायिक कार्य, कोई भी स्थिर रहने वाला नहीं है । इस संसार में, इसका रचिता एक सच्चिदानन्द स्वरूप अविनाशी परब्रह्म ही रहता है । उसका कभी परिवर्तन नहीं होता । पीर, पैगम्बर, सेख मसायक, शिव, ब्रह्मा, सम्पूर्ण देवगण, इस कलिकाल में जो भी उत्पन्न हुए हैं, वह कोई भी नहीं रहेगा । समय पाकर सबके स्थूल नष्ट होने वाले हैं । एक सजातिय विजातिय स्वगत भेद रहित, अलख कहिए मन वाणी का अविषय, सत् चित् आनन्द रूप ब्रह्म ही रहेगा । सुमेरू द्रोणागिरि और अनेकों पहाड़, समुद्र आदि यह कोई भी स्थिर रहने वाले नहीं हैं । नदी हैं, कुए बावड़ी हैं, यह कोई भी रहने वाले नहीं हैं । एक कला अवयव रहित अविनाशी परमेश्वर ही रहने वाले हैं । जिसने यह सब कुछ रचना रची है, वह अविनाशी ही रहेगा । मायिक कार्य सम्पूर्ण आने जाने वाला हम देख रहें हैं । एक वह परमेश्वर माया का अधिष्टान चेतन्य, वही सदैव रहता है । उसी को हमने 'चीन्हा' कहिए जान लिया है ।

346. पतिव्रता

मूल सींच बधै ज्यूं बेला, सो तत्त तरवर रहै अकेला ॥टेक॥

देवीं देखत फिरै ज्यूं भूलै, खाइ हलाहल बिखै को फूलै ।
सुख को चाहै पड़ै गलि फांसी, देखत हीरा हाथ थैं जासी ॥
केइ पूजा रचि ध्यान लगावैं, दैंवल देखैं खबर न पावै ।
तोरैं पाति जुगति न जानी, इहि भ्रमि भूलि रहै अभिमानी ।
तीर्थ व्रत न पूजैं आसा, बनखंड जाहिं रहै उदासा ।
यूं तप करि करि देह जलावैं, भरमत डोलैं जन्म गमावैं ॥
सतगुरू मिलै न संसा जाई, ये बंधन सब देही छुड़ाई ।
तब दादू परम गति पावै, सो निज मूरति मांहि लखावै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, संतरूप पतिव्रता का स्वरूप दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! जैसे वृक्ष के मूल को सींचने से, वृक्ष के डाल पत्ते फल फूल, सभी सींचे जाते हैं। बेली के मूल को सींचने से बेली बढ़ती है, ऐसे ही सबका मूल तत्व, परब्रह्म की उपासना करने से, सबकी उपासना हो जाती है । हे परमेश्वर को भूले हुए ! देवी देव आदि पत्तों के समान विनाशी हैं, अद्वैत ब्रह्म ही एक स्थिर है । जैसे कोई हलाहल विष खाकर, मृत्यु को भूला हुआ फूला फिरता हो, वैसे ही देवी के उपासक देवी के दर्शन करके, तथा मांस मदिरा आदि अभक्ष्य भक्षण, अपेय पान करके, उनके परिणाम में होने वाले दुख को भूल कर फूले फिरते हैं । वे चाहते तो सुख को हैं, किन्तु अन्त में उनके गले में यम पाश ही पड़ती है। ऐसे लोकों का मानव जन्म हीरा, देखते देखते ही हाथ से चला जाता है । कितने ही अन्य देवताओं की पूजा करके ध्यान करते हैं । देव मंदिर में जाकर, देवता का दर्शन करते हैं, किन्तु वे अपने आत्मा स्वरूप प्रभु का कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं करते । अभिमानी होने के कारण संतों के पास जाकर, प्रभु उपासना की युक्ति न जानने से, अति मात्रा में तुलसी विल्व पत्र आदि तोड़ते हैं और इन पत्रों के चढ़ाने से ही, प्रभु मिल जायेंगे ? इस भ्रम से अन्तर साधन भूल रहे हैं । ग्राम से विरक्त हो, वन के भयंकर भाग में जाकर रहने से, तीर्थ व्रत करने से, प्राणी की आशा पूर्ण नहीं होती । इस प्रकार तपस्या करके, तथा पंच धूनी तप कर, शरीर को जलाते हैं । भ्रम वश इधर उधर घूमते हुये, अपने मानव जीवन जन्म को खो देते हैं । उन्हें जब तक सतगुरु न मिलें, तब तक उनका संशय दूर नहीं होता ? सतगुरू मिल जाएं तो, ये उक्त सभी बन्धन रूप कर्म छुड़ा दें । जो प्रभु पतिव्रत से युक्त, प्रभु उपासना करता है, उसी संत रूप पतिव्रता को प्रभु अपना स्वरूप, उसके हृदय में दिखाते हैं । वह जब प्रभु का साक्षात्कार कर लेता है, तब प्रभु से अभेद स्थिति रूप, परमगति को प्राप्त करता है ।

347. साधु परीक्षा

सोई साधु सिरोमणी, गोबिंद गुण गावै ।
राम भजै बिखिया तजै, आपा न जनावै ।।टेक।।
मिथ्या मुख बोलै नहीं, पर निंदा नांहीं ।
औगुण छाड़े गुण गहै, मन हरि पद मांही ।।
निरबैरी सब आतमा, पर आतम जानै ।
सुखदाई समता गहै, आपा नहीं आनै ।।
आपा पर अंतर नहीं, निर्मल निज सारा ।
सत बादी सांचा कहै, लै लीन बिचारा ।।
निरभै भजि न्यारा रहै, काहू लिपत न होई ।
दादू इस संसार मै, ऐसा जन कोई ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, साधु लक्षणों द्वारा, संत की परीक्षा बता रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! संतों में वही संत शिरोमणि हैं, जो गोबिन्द भगवान के गुण गाते रहते हैं । और विषिया स्त्री आदि का संग त्याकर, राम का स्मरण करते हैं । किसी प्रकार का आपा अहंकार नहीं जनाते हैं । मुख से झूठ नहीं बोलते, दूसरों की निन्दा नहीं करते । अपने हृदय में दुर्गुणों का त्याग करके, देवी सम्पदा के गुणों को धारण करते है । अथवा जीवों के अवगुणों को छोड़कर, उनमें जो गुण होते हैं, उनको ग्रहण करते हैं । और मन हरि के स्वरूप में लगाया है जिसने । चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त में, निर्बैर, होकर, एक आत्म रूप देखै । और आत्मा को ही परमात्मा जानै, समत्व ज्ञान द्वारा, सबको सुख देने वाला होवै । मिथ्या शरीर का अध्यास नहीं रखते । अपने और पराये में कोई अन्तर नहीं देखते । माया आदि मल रहित, विश्व का सार ब्रह्म को, निज आत्म स्वरूप करके जानै । और मन बचन से सत्य का आचरण करते हैं । बिचार के द्वारा, सत्य स्वरूप को ग्रहण करके, उसी में लयलीन रहते हैं । और निर्भय स्वरूप का नाम स्मरण करके, माया प्रपंच से अलग रहते हैं । किसी भी पाप और पुण्य में लिपायमान नहीं होते । मुक्त पुरूष कहते हैं कि सम्पूर्ण संसार में ऐसे संतजन कोई बिरले ही होते हैं ।

348. परिचय परीक्षा

राम मिल्या यूँ जानिये, जाको काल न व्यापै ।
जुरा मरण ताकौं नहीं, अरू मेटै आपै ।।टेक।।
सुख दुख कबहुं न ऊपजै, अरू सब जग सूझै ।
करम को बांधै नहीं, सब आगम बूझै ।।
जागत व्है सो जन रहै, अरू जुगि जुगि जागै ।
अंतरजामी सौं रहै, कछु काई न लागै ।।
काम दहै सहजैं रहै, अरू सुन्य बिचारै ।
दादू सो सब की लहै, अरू कबहूं न हारैं ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परिचय किये हुए लक्षणों द्वारा, संत की परीक्षा बता रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! जिसको राम का दर्शन हो गया, तो फिर उसको किसी प्रकार का काल आकर, स्पर्श नहीं करता । और न शरीर में जर जर अवस्था ही आती है । न मरणे का ही भय व्याप्त होता है । वह अपने अन्दर से सम्पूर्ण संसारिक अभिमान को नष्ट कर देता है । और उसके मन में किसी प्रकार के संयोग और वियोग से सुख दुख नहीं होते । सम्पूर्ण संसार माया का परिणाम प्रतीत होता है । उसे कोई भी प्रकार का कर्म, बन्धन में नहीं बांधता । और आगम कहिए शास्त्र जिसको, लक्षणा वृत्ति से प्रतिपादन करते हैं, उस ब्रह्म को वह निज आत्म स्वरूप करके जानता है । ऐसा ज्ञानी संत मोह निद्रा से जागकर, जन्म मरण से रहित होकर, जुग जुग में ब्रह्म स्वरूप में ही जागता रहता है । अन्तर्यामी ब्रह्म से अभेद होकर, सदैव रहता है । उसके किसी प्रकार की पाप आदि कालिमा नहीं लगती । काम क्रोध आदि का स्वभाव से ही नाश करके, शून्य कहिए निर्विकार ब्रह्म के विचार में लगा रहता है । और सबकी वाणी अपने विचार अनुकूल ग्रहण करता है । उसकी इस संसार में कभी हार नहीं होती । वह अपनी निष्ठा में स्थिर रहता है ।

349. समता ज्ञान

इन बातनि मेरा मन मानै, दुतिया दोइ नहीं उर अंतरि,
एक एक करि पीव कौं जानै ।।टेक।।

पूरण ब्रह्म देख सबहिन में, भ्रम न जीव काहूं थैं आनै।
होइ दयाल दीनता सब सौं, अरि पांचनि को करै किसानै ॥
आपा पर सम सब तत्त चीन्हैं, हरि भजै केवल जस गानै।
दादू सोई सहजि घरि आनै, संकट सबै जीव के भानै।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, समता ज्ञान की विशेषता बता रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! इन निम्न बातों से हमारा मन मानता है, अर्थात् संतोष को प्राप्त होता है। जिसके हृदय में "मैं तूं" यह भेद ज्ञान नहीं रहता। मुख प्रीति का विषय एक पीव को ही जानता है और उसी पूर्ण ब्रह्म को, सबमें व्यापक रूप से देखता है। किसी भी जीव से भेद भाव नहीं रखता और जिसके अन्तःकरण से पांचों प्रकार का भ्रम नष्ट हो गया है। प्राणी मात्र के ऊपर दयालु रहता है। उत्तम पुरूष एवं संतों के सामने, दीनता को धारण करता है। काम क्रोध आदि शत्रु तथा पंच ज्ञान इन्द्री, इन सबके विषय विकारों को त्यागता है। अपने और पराये में समता ज्ञान से, एक चेतन तत्व को ही जानता है। पापों के हर्ता हरि का, भजन रूप यश गाता रहता है। ऐसा पुरूष स्वभाव से ही, अपने जीव को हृदय प्रदेश में परब्रह्म रूप घर में स्थित करके, अपने जन्म मरण आदि कलेशों को नष्ट कर देता है।

350. परिचय

ये मन मेरा पीव सौं, औरन सौं नांही।
पीव बिन पल हि न जीव सौं, यह ऊपजै मांही ॥टेक॥
देखि देखि सुख जीव सौं, तहां धूप न छांही।
अजरावर मन बंधिया, ताथै अनत न जांही ॥
तेज पुंज फल पाइया, तहां रस खांहीं।
अमर बेलि अमृत झरै, पीव पीव अघाही ॥
प्राण पती तहं पाइया, जहं उलटि समांही।
दादू पीव परचा भया, हिय रे हित लाई ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, साक्षात्कार की स्थिति बता रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! अब तो यह हमारा मन, प्रियतम प्रभु के चिन्तन में ही प्रसन्न रहता है, दूसरे मायावी उपास्य देवों में नहीं लगता। हमारे जीव में ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ है कि पीव के बिना, एक पल भी अब जीव से नहीं रहा जाता। उस पीव को देख देख करके, जीव सुखी रहता है। वहां न तो मायिक पदार्थों की अप्राप्ति रूप, धूप का दुख ही है और न प्राप्ति की सुख रूप छाया ही है। हमारा मन अब उस अजर अमर ब्रह्म में ही बंध रहा है। अब अन्यत्र मायिक पदार्थों में नहीं जाता है। अब तो ब्रह्म तेज की प्राप्ति रूप फल प्राप्त हो गया है। उसका दर्शन रूप उपभोग करता है। आत्माकार वृत्ति रूप अमर बेली से, जीव ब्रह्म की एकता रूप ज्ञाना अमृत झरता है। उसको पान करके तृप्त हुए 'पीव पीव' ही रटते रहते हैं। हमने अपने मन इन्द्रियों को बहिर्मुख से अन्तर्मुख उलट कर, प्राणों को सत्ता स्फुर्ति देने वाले चेतन्य रूप पति को हृदय स्थान में ही प्राप्त किया है। मुक्त पुरुष कहते हैं कि ऐसे जिज्ञासु ही, हृदय के हित से परमेश्वर से परिचय होते हैं।

351.

आजि परभाति मिले हरि लाल, दिल की बिथा पीड़ सब भागी,
मिट्यो जीव को साल ।।टेक।।
देखत नैन संतोस भयो है, इहै तुम्हारो खयाल ।
दादू जन सौं हिलि मिलि रहिबो, तुम्ह हो दीन दयाल ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परिचय उत्साह वर्णन कर रहे हैं कि हे संतो ! आज मनुष्य देह के प्रभात काल में, हमारे प्यारे प्रीतम हरि हमें अपनी कृपा द्वारा, हृदय में ही आकर मिले हैं। तब से हमारे दिल का उनकी अप्राप्ति रूपी दुख, बिरह रूप पीड़ा सब निवृत्त हो गई है। और जीव का जन्म मरण रूपी साल भी नष्ट हो गया है। हे प्रभु ! हमें अपने ज्ञान रूपी नेत्रों से, आपका दर्शन करके, सन्तोष को प्राप्त हो रहे हैं। यह संसार रूपी खेल, आप ही ने रचा है और आप ही प्रभु इसमें खेल रहे हो। हे दीन दयाल ! आप अपने आत्मीय जन भक्तों से ओत प्रोत होकर, इसी प्रकार सदैव रहना।

352. निज स्थान निर्णय उपदेश

अरस इलाही रब्बदा, ईथांई रहिमान वे ।
मक्का बीचि मुसाफरीला, मदीना मुलतान वे ।।टेक।।

नबी नाल पैगम्बरे, पीरों हंदा थान वे।
जनत हुंले हिकसाला, इथां भिस्त मुकाम वे॥
इथां आव जमजमा, इथांई सुबहान वे।
तखत रवानी कंगुरेला, इथां ई सुलतान वे॥
सब इथां अंदरि आव वे, इथांई ईमान वे।
दादू आप वंजाइ बेला, इथां हीं आसान वे॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निज स्थान निर्णय उपदेश कर रहे हैं कि हे निजाम ! "ईलाही"-बेपरवाह, "रब्ब"--परमेश्वर का, इस शरीर के भीतर हृदय रूप स्थान है। इसी में वह रहमान विराजता है। यह हृदय रूपी स्थान ही मक्का और मदीना है। अपनी अन्तर्मुख वृत्ति से, इसमें यात्रा कर। यहां ही मदीना और मुलतान का दर्शन है। भीतर ही हज कर। यहां ही उस रहमान के साथ, नबी, पैगम्बर, पीर आदिकों का स्थान है। 'नाल' कहिए यह सभी, यहां रहमान के साथ रहते हैं। हे जन ! तूं अपनी वृत्ति को संसार दशा से अन्तर्मुख करके, एक चेतन्य रूप परमेश्वर से लगा। यह हृदय ही भिस्त रूप मुकाम है। 'इथां' कहिए भीतर ही 'जमजमा' रूप पवित्र नाम स्मरण रूपी जल है, इसमें स्नान कर। मुहम्मद के वंश में मुहम्मद १८ पीढ़ी पहले असमाइल के जन्म समय, माता की प्यास मिटाने के लिये, शिशु ने एड़ियां घिसकर, भूमि से जल निकाल दिया था। अरब में स्थित मक्का नगर के काबे का जो 'जमजमा' नामक कूप है, वह इसलामियों का पवित्र तीर्थ है। यहां शरीर के भीतर ही सुबहान अति शोभनिक, परमेश्वर का दर्शन है। भीतर ही 'कगुंरेला'-कोरणी किया हुआ शुद्ध अन्तःकरण रूप तख्त है। इसी पर वह सुलतान रूप रब्ब निवास करता है। सब कुछ इस शरीर के भीतर ही है। 'ईमान' कहिए वह सत्य निश्चय रूप, परमेश्वर है। उसकी भीतर ही 'बेला' कहिए साधन अवस्था में, वंजाई' नाम उसकी पवित्र यात्रा कर। 'इथां' कहिए भीतर, वह आसानी से प्राप्त करने योग्य है। इस पद से निजाम जो हज करने जा रहा था, जब मार्ग में ब्रह्मऋषि का दर्शन पाया और उनके चरणों में नमस्कार किया, तब ब्रह्मऋषि ने इस पद से उपदेश देकर, अन्तर्मुख बना दिया। यह निजाम दादू जी के ५२ शिष्यों में एक शिष्य कहलाए।

353.

आसण रमिदा रामदा, हरि इथां अविगत आप वे।
काया कासी बंजणां, हरि इथैं पूजा जाप वे॥टेक॥

महादेव मुनि देवते, सिद्धंदा बिश्राम वे।
सर्ग सुखासण हुलणैं, हरि इथैं आतमराम वे॥
अमीं सरोवर आतमा, इथांई आधार वे।
अमर थान अविगत रहै, हरि इथैं सिरजनहार वे।
सब कुछ इथैं आव वे, इथां परमानन्द वे।
दादू आपा दूरि करि, इथांई आनंद वे॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निज स्थान निर्णय कर रहे हैं कि हे नागर ! निर्गुण ब्रह्म रूप राम का आसण, भीतर हृदय स्थान ही है। वह पापों को हर्ता हरि, अविगत रूप, आप स्वयं यहां ही प्रगट हैं। इस काया रूप कासी में ही वजंणां' कहिए यात्रा कर। उस हरि की भीतर ही जाप रूप पूजा कर। यहां ही महादेव, मुनि, देव आदि सब निवास करते हैं इसी में सिद्धों का विश्राम है। और स्वर्ग का सुख रम्भा उर वसी आदिकों के साथ, किलोल रूप भी यहां ही है। और इस शरीर में ही आतमा रूप राम का दर्शन है। यहां आत्म विचार रूप ही अमृत का सरोवर है। हृदय में ही, सर्व ता आधार स्वरूप परमेश्वर है। अमर स्वरूप अविगति का यही स्थान है। वही हरि आप सिरजनहार रूप हैं। सब कुछ इस काया के अन्दर ही है। इसमें ही अन्तर्मुख वृति से आओ। इसी में परम आनन्द स्वरूप चेतन्य निवास करते हैं परन्तु। अपने अनात्म आपा अभिमान को त्याग करै, तो इस शरीर में ही सदैव आनन्द स्वरूप के साथ अभेद होते हैं। इस पद से नागर ब्राह्मण को उपदेश किया था, जब वे कासी आदि की यात्रा करने जा रहे थे और परम गुरूदेव का टैंठड़ा गांव में दर्शन प्राप्त हुए। चरणों में नमस्कार करके, इस उपदेश द्वारा, आपने अपनी अन्तर्मुख वृत्ति करके, स्वस्वरूप का आनन्द प्राप्त किया। बहिरंग सम्पूर्ण भटकना जिनकी दूर हो गई। फिर नागर और निजाम दोनों महाराज का आदेश पाकर, टैंटड़ा में ही निवास करते रहे।

॥ इति राग बिलावल टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः॥

।। अथ राग सूहा २२ ।।

354. विनती

तुम्ह बिचि अंतर जिन परै माधव, भावै तन धन लेहु ।
भावै सरग नरक रसातल, भावै करवत देहु ।।टेक।।
भावै विपति देहू दुख सकुंट, भावै संपत्ति सुख सरीर ।
भावै घर बन राव रंक करी, भावै सागर तीर ।।
भावै बंध मुक्त करि माधव, भावै त्रिभुवन सार ।
भावै सकल दोष धरि माधव, भावै सकल निवारि ।।
भावै धरिनि गगन धरि माधव, भावै सीतल सूर ।
दादू निकटि सदा संगि माधव, तूं जनि होवै दूरि ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें विनती करते हैं कि हे माधव ! माया को अपनी आज्ञा में चलाने वाले हमारे स्वामी, चाहे आप हमारा तन धन आदि सवंस्व ले लें, किन्तु आपके और मेरे बीच में, किसी प्रकार का अन्तराय नहीं पड़ना चाहिये । सदैव आपके हमें दर्शन होते रहैं । चाहे मुझे आप स्वर्ग, नरक या रसातल में भैज दें, इसकी चिन्ता नहीं है । शिर पर करवत चलावैं, चाहे सम्पूर्ण विपत्ति में डालैं, शारीरिक दुख दें, या मानसिक संकट प्राप्त हों, इनकी चिन्ता नहीं है । पर आपके दर्शनों से अलग न होवैं । घर-प्रवृत्ति मार्ग में रखैं, या बन-निवृत्ति मार्ग में रखैं । राजा या रंक करैं, चाहे समुद्र के किनारे रखैं चाहे बन्धन में डालैं । चाहे सब कर्म बन्धनों से मुक्त कर दें, चाहे त्रिभुवन की सम्पूर्ण सार वस्तुएं हमें दे दें । चाहे सब दोष हृदय में रख दें,

या हृदय से हटा दें । चाहे पृथ्वी पर हमको रखें या आकाश में उड़ावें । चाहे बर्फ की तरह शीतल बना दें, चाहे सूर्य के समान उष्ण बना दें । हे हमारे स्वामी माधव ! चाहे आप कुछ भी कर दें परन्तु सदा आप हमारे निकट रहते हुए मुझे अपने संग रखिये, कभी भी आप हमसे दूर न हों, यही हमारी बिनती है ।

355. परिचय

इब हम राम सनेही पाया, आगम अनहद सौं चित लाया ।।टेक।।
तन मन आतम ताकौं दीन्हा, तब हरि हम अपना करि लीन्हा ।
बाणी बिमल पंच पराना, पहिली सीस मिलै भगवाना ।।
जीवत जनम सुफल करि लीन्हा, पहली चेते तिन भल कीन्हा ।
औसरि आपा ठौर लगावा, दादू जीवत ले पहुंचावा ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें साक्षात्कार सम्बन्धी विचार कह रहे हैं कि हे संतो ! जब से हमने अनहद शब्द में चित्त की वृत्ति लगाई है, तभी से हमारे स्नेही राम को हमने पा लिया है । प्रथम हमने उसके, तन मन आदि सर्वस्व अर्पण किया है, तभी वह हरि हमको आत्म स्वरूप से प्राप्त हुए हैं । जिसने अपनी वाणी और पंच इन्द्रियें, मन तथा प्राणों को निर्मल बनाकर, भगवान को अपना सर्वस्व अर्पण किया है, उन्होंने जीवित अवस्था में ही अपना जन्म सफल बना लिया है । जो पहली बाल्यवस्था में ही ध्रूव जी, दादू दयाल महाराज की भांति, कर्त्तव्य परायण हो गये हैं, उन्होंने ही इस संसार में अच्छा काम किया है । क्योंकि ठीक समय जीवित अवस्था में अपने अनात्म अहंकार रूप सिर को, परमेश्वर के अर्पण करके, विचार द्वारा, अपने आत्मा को मिथ्या संसार की आसक्ति से उठा कर, सत्य स्वरूप परब्रह्म के स्वरूप में स्थिर कर लिया है । उन्होंने ही अपने मानव जन्म को सार्थक बनाया है ।

(इति राग सूहा टीका सहित, सम्पूर्ण समाप्तः)

॥ अथ काया बेली ग्रन्थ ॥

356· पिंड ब्रह्माण्ड शोधन

सांचा सतगुरू राम मिलावे, सब कुछ काया मांहि दिखावे ॥टेक॥
काया मांहे सिरजनहार, काया मांहे औंकार ।
काया मांहैं है आकास, काया मांहे धरती पास ॥
काया मांहे पवन प्रकास, काया मांहैं नीर निवास ।
काया मांहे ससिहर सूर, काया मांहैं बाजे तूर ॥
काया मांहे तीन्यूं देव, काया मांहैं अलख अभेव ।
काया मांहे चारों बेंद, काया मांहे पाया भेद ॥
काया मांहे चारों खाणी, काया मांहे चारों बाणी ।
काया मांहे उपजै आइ, काया मांहे मर मर जाइ ॥
काया मांहे जामे मरै, काया मांहे चौरासी फिरै ।
काया मांहे ले अवतार, काया मांहे बारम्बार ॥
काया मांहे रात दिन, उदै अस्त इकतार ।
दादू पाया परम गुरू, कीया एकंकार ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, जो ब्रह्मांड में है, वही काया में भी है । यह दिखाते हुए पिंड ब्रह्माण्ड की एकता बता रहे हैं ।

सांचा सतगुरू राम मिलावै :- गुरू के लक्षण जिनमें घटित हों, ऐसे सच्चे सतगुरू, शरीर के भीतर ही हृदय में, निरंजन राम का दर्शन करा देते हैं ।

दोहा :- सबद साल ताला जड्या, अर्थ दरबता मांहि ।
रज्जब गुरू कूंची बिना, हस्त सुआवै नांहि ॥

दोहा :- थिर जंगम व्यापक सबै, निराकार निरधाम ।
सो दरसावै दिलमई, ता गुरू कूं परनाम ॥

साखी :- झूठे अंधे गुरू घणे, भटकै घर घर बारि० ।

सब कुछ काया मांहि दिखावै :- काया भंडार में सब निधि हैं । जो ब्रह्मंडे सो पींडे । परन्तु उपदेश से मिलती है ।

दोहा :- सकल कर्म ताला भया, जीव जड़ा ता मांहि ।
गुरू दृष्टि कूंचि बिना, कबहूं खुटै नांहि ॥

दोहा :- त्रिगुण रहित कूंची गुरू, ताला त्रिगुण सरीर ।
जन रज्जब जीव तौ खुलै, जे योगि मिलै गुरू पीर ॥

काया मांहैं सिरजनहार :- सृष्टि कर्ता ईश्वर व्यापक होने से शरीर में विद्यमान हैं ।

साखी :- दादू जल मै गगन, गगन मै जल है, फुनिवै गगन निराल० ।

साखी :- ज्यूं दरपन मै मुख देखिये, पाणी मै प्रतिबिम्ब० ।

साखी :- जीये तेल तिलन मै, जीये गंध फुलंनि० ।

साखी :- इयें रबु रूहैंनि मै, जीये रूह रगीन० ।

साखी :- आप आपण मै खोजो रे भाई, बस्त अगोचर गुरू लखाई० ।

श्लोक :- तिल मध्ये यथा तेल्यं, काष्ठ मध्ये हुताशनं ।
पये मध्ये यथा घृतं, देह मध्ये तथा दैवं ॥

दोहा :- कबीर ज्यूं नैनूं मै पूतली, त्यूं खालिक घटि मांहि ।
मूरख लोगन जाण ही, बाहिर ढूंढण जांहि ॥

काया मांहै ओंकार :- ओंकार शब्द के अतंरग सम्पूर्ण सृष्टि है । तैसे ही अनहद शब्द से शरीर के सब व्यवहार होते हैं । और यही स्थूल शरीर का जीवन मूल है । इसी के आधीन प्राण गति है ।

काया मांहैं है आकास :- जैसे आकाश सब को अवकाश देता है, तैसे समताभाव से संत सबको आदर देवै !

साखी :- साहीब जी की आतमा, दीजै सुख संतोस० ।

साखी :- आतम राम बिचारिये, घटि घटि देव दयाल० ।

बाहर जो इन्द्रिय पसारा पसरता है, सो संत अंतरमुख समावै, और अनंत विद्या शब्द श्लोक ग्रंथों को अंतर धारण करै ।

काया मां है धरती पास :- जैसे धरती सबकी धमस क्षमा करती है, तैसे संत सम्पूर्ण त्रास कसौटियों को क्षमा करै और धैर्यवान हो ।

दोहा :- सिर मै दई रबाब की, क्रोध नहीं लव लेस ।
फिर उलटि पूजा करी, राघो वै दुरवेस ॥

दृष्टान्त :- एक मिरासी रबाब बाज लेकर, सवेरे रोजी के लिये घर से निकल कर चला । सामने खुले सिर से एक संत आते हुए मिले । मिरासी ने सोचा, अपसगुन हो गया । वापिस घर आ गया । दूसरे रोज फिर चला । सामने वही संत फिर मिल गये । फिर वापिस घर आ गया । तीसरे रोज फिर सवेरे चला वही महात्मा घूमते हुए फिर सामने टकरा गये । मिरासी को बड़ा क्रोध आया और रबाब की गज निकाल कर, महात्मा की खोपरी में एक मारी और बोला :- सवेरे रोज सामने मिल जाता है, खुले सिर से । महात्मा के खून चल पड़े । परन्तु अपने सिर पर ध्यान न देकर, उसकी गज टूट कर गिर गई थी । महात्मा उठाई और बोले :- चल हमारे सेवक के पास । तेरी गज की मरम्मत करवा दें । जिससे तूं बाजा बजाकर, अपने बाल बच्चों का पालन पोषण करेगा । यह सुनकर मिरासी की भीतर की आखें खुल गई और चरणों में गिरकर नमस्कार किया । अपराध के लिए क्षमा मांगी । महात्मा बोले :- कोई बात नहीं । हमने तेरा पहले जन्म में सिर फोड़ा होगा । तैंने हमारा फोड़ दिया । महात्मा के किंचित भी मन में क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ । ऐसे संतों को धन्य है । वही परमेश्वर के सच्चे प्रिये हैं ।

दोहा :- खूंदणि तो धरती सहै, बाढ सहै बनराइ ।
कूशब्द तो हरि जन सहै, दूजे सह्या न जाइ ॥

काया माहैं पवन प्रकास :- प्राण वायु काया को जीवित रखता है । बाहर जब पवन जोर से चलता है, तब वृक्ष गिर पड़ते हैं । धूल उड़ती है । धैर्य रहता नहीं । इधर संतों की ज्ञान रूपी आंधी चलै, तब वृक्ष रूपी मान बड़ाई का अभिमान छूट जाय । और रजोगुण रूपी रेत उड़ जाय एवं ज्ञान का प्रकाश हो जाय ।

काया माहैं नीर निवास :- पानी की वृष्टि से जिस प्रकार जड़ चेतन जगत सर स्बज रहता है और सब को आनन्द देता है । इसी प्रकार संत वाणी रूप ज्ञान जल शांति सुख फैलाते हैं ।

साखी :- अमी महारस भरि भरि पीजे, दादू जोगी जुग जुग जीजे० ।

कीया माहैं ससिहर सूर :- 'ससिहर-मन सूर पवन, एवं दोनों नेत्र, बावां नेत्र चन्द्र, दाहिना नेत्र सूर्य। ब्रह्मांड में जैसे चन्द्र सूर्य प्रकाशते हैं, तैसे ही शरीर में दोनों नेत्र प्रकासते हैं और वहां शीतल तप्त किरणें हैं। यहां शान्त दृष्टि शशि की और तेज दृष्टि सूर्य की है। वहां १६ कला चन्द्रमा की, और १२ कला सूर्य की हैं। इसी प्रकार काया में यह मन चन्द्र की १६ कला :- शान्ति, निवृति, क्षमा, उदारता, निर्मलता, निश्चलता, निर्भयता, निसंकता, समता, निरलोभता, निरममता, निरअहंकारता, सहवीर्यता, ज्ञान, आनन्द, निर्वाण। सूर्य की १२ कला :- चिंता, तरंग, डिंभ, माया, परिग्रह, प्रपंच, हेत, बुद्धि, काम, क्रोध, लोभ।

काया माहैं बाजै तूर :- अनहद शब्द।

काया मांहै तीन्यूँ देव :- तीन गुण :- राजस - ब्रह्मा, सात्विक - विष्णु, तामस - महादेव। ब्रह्मा का बास नाभि में, विष्णु का हृदय में, महादेव का मस्तक रूपी कैलास में।

काया मांहै अलख अभेव :- लक्ष स्वरूप अविगत ब्रह्म भी काया ही में है। जैसे सिरजनहार की टीका में कह आये हैं।

काया मांहै चारों बेद :-

दोहा :- रिग रटण जरणां यजुर, साम सहनता जाणि।
अनभै अथर्वण पिंड में, चारि बेद परवाणि॥

अष्टांग योग में तिन के स्थान। नाभी - ऋग, हृदय - यजुर, कंठ - साम, मुख - अथर्वण।

काया मांहैं पाया भेद :- भेद ज्ञान काया रूपी उपाधी करके ही है।

काया मांहैं चारै खानी :- चार प्रकार से सब जीव शरीरों की उत्पत्ति होती है। सो यह चारि खनिया है। जरायुज - मनुष्य चोपाये, अंडज - पक्षी सर्प आदि, उद्विज - वनस्पति, स्वेदज - जूं लीख शरीर में, जरायुज रूपी नाड़ी हैं। अंड़ज रूपी नेत्र, उद्भिज रूपी रोम, स्वदज रूपी हड्डियां। प्रथम खानि आत्मा, द्वितीय खानी मन, तृतीय खानी - प्रकृति, चतुर्थ खानी शरीर, पंचम खानी ज्ञान है।

काया मांहैं चारै बाणी :-'परा' ब्रह्मबाणी 'पश्यन्ती', देव बाणी, 'मध्यमा'; पशु पक्षियों की बाणी, 'बैखरी'-मनुष्यों की बाणी, इनके रूप, स्थान अवस्था, देवता इस प्रकार हैं :- पराबाणी-बीजरूप, स्थान-नाभी,

अवस्था-तुरिया, देवता-सोहं। पश्यन्ती-देव वाणी, रूप-अकूर, स्थान-हृदय, अवस्था-सुषुप्ति, देवता-ईश्वर। मध्यमा-बाणी, रूप-पात, स्थान-कंठ, अवस्था-स्वप्न, देवता-विष्णु। वैखरि-रूप वृक्ष विस्तार, स्थान-मुख, अवस्था जागृत, देवता-ब्रह्मा।

साखी :- पार ब्रह्म कहा प्राण सौं, प्राण कहा घट सोइ०।

काया मांहैं उपजै आइ, काया मांहैं मरि मरि जाइ :- अन्तःकरण में लहर तरंग रूपी वृत्तियों की उत्पत्ति और लय।

साखी :- सब गुण सब ही जीव के, दादू व्यापै आइ०।

काया मांहैं जामैं मरै :- मन के मनोरथ, गुण विकारों की उत्पत्ति और मिटना ही जन्म मरण है।

साखी :- जीव जनम जाणै नहीं, पलक पलक में होइ०।

दोहा :- कबीर प्राण पिंड कूँ तजि चले, मुवा कहै सब कोइ।
जीव छतां जामै मरै, सूक्षम लखै न कोइ॥

काया मांहैं चौरासी फिरै :- नाना प्रकार की मनो भावनाओं में मन गमना गमन ही चौरासी फेर है।

साखी :- दादू चौरासी लख जीव की, परकीरति घट मांहि०।

काया मांहै ले अवतार, काया मांहै बारम्बार :-

साखी :- दादू जेते गुण व्यापै जीव कौं, तेते ही अवतार० ।

काया मांहैं रात दिन, उदै अस्त इकतार :- राति - अज्ञान, वास्व - दिन, ज्ञान व जागृत अवस्था, उदै - द्वैतरूपी गुण, उनका ब्रह्माकार वृति में एक रस होना, अस्त ।

दादू पाया परम गुरू, कीया एकंकार :- परमगुरू परमेश्वर है । तिसको उसी की कृपा से पाया तब सब द्वैत - भावनाओं का लय होकर, एकंकार अद्वैत निष्ठा प्राप्त हुई ।

साखी :- दादू पाणी लूण ज्यूं, अैसे रहै समाइ० ।

357·

काया मांहे खेल पसारा, काया मांहैं प्राण अधारा ।
काया मांहैं अठारह भारा, काया मांहै उपावनहारा ॥
काया मांहै सब बन राइ, काया मांहै रहै घर छाइ ।
काया मांहै कदलि बासा, काया मांहै हे कैलाशा ॥
काया मांहै तरूवर छाया, काया मांहै पंखी माया ।
काया मांहै आदि अनंत, काया मांहै है भगवन्त ॥
काया मांहै त्रिभुवन राइ, काया मांहै रहै समाइ ।
काया मांहै चौदह भुवन, काया मांहै आवागमन ॥
काया मांहै सब ब्रह्मंड, काया मांहै है नव खण्ड ।
काया मांह स्वर्ग पयाल, काया मांहै आप दयाल ॥
काया मांहै लोक सब, दादू दिये दिखाइ ।
मनसा बाचा कर्मना, गुरू बिन लख्या न जाइ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, जो ब्रह्माण्ड में है, वह काया में भी है, यह दिखाते हुए पिंड ब्रह्माण्ड की एकता बता रहे हैं कि :-

काया माँहैं खेल पसारा :- पृथ्वी पर अनेक लीलायें हैं, तैसे काया में अनेक तरंगें तासीर हैं। भूमिका के राजा, प्रजा, स्थानीय शरीर का राजा मन है। और प्रजा प्रकृति जगत् में, धनवंत और कंगाल हैं। यहां स्वांसो स्वांस ब्रह्म में लय लगाये रहै, सोई धनवान है। और राम भजन के बिना, जो स्वांस ले, सोई कंगाल है। परन्तु जिसके हृदय में परमेश्वर का भाव है, सो उत्तम है, और जिसका हृदय मलीन है, सोई अधम है। जिसका मन निर्मल, निसंक, निर्भय, उदार, अपने, आत्मरूप से सन्तुष्ट है, सोई राजा है। जिसका अन्तःकरण, तरह तरह की कामनाओं से, राग द्वेष से, काया शोक से, इसी घृणा से गंधा रहता है, सोई अधम जीव है।

काया मांहै प्राण आधारा :- प्राणाधार परमेश्वर जो सबका प्रतिपालन करता है, सो काया ही में है। सोई अपना आत्मा है। मरना जीना जीव का, अपने ही आधीन है। जो अपने को दृढ़ निश्चय से, अमर मानता है सो अमर है। और जो अपने को शरीर रूप मानता है, सो मृत्यु पाता है। जो अपने आत्मा में दृढ निश्चय से, सन्य मार्ग में बिचरता है, उसका प्रतिपालन अंतरयामी आप करता है।

साखी :- दादू हूं बलिहारी सुरति की, सब की करै संभाल० ।

साखी :- दादू राजीक रिजक लीयें, खड़ा देवै हाथों हाथ० ।

साखी :- दादू साँई सबन को, सेवग ह्वै सुख देइ० ।

काया मांहै अठारह भारा, काया मांहै उपावनहारा :- अठारह, जैसे अष्टादश पुराण, स्मृति महाभारत के पर्व, भगवद्गीता के १८ अध्याय और जगत प्रपंच, जैसे ब्रह्माण्ड में है, तैसे केश लोम आदि काया में हैं। इन सबका रचने वाला, एक आत्मा ही है। जैसे मायोपहित समष्टि रूप ईश्वर ने सब ब्रह्माण्ड रचा है। तैसे ही व्यष्टि रूप कायोपहित जीव, अपने कर्मानुसार अपने भोग निमित प्रपंच रचकर, हर्ष शोक मानता है।

पद :- सिरजनहार थैं सब होइ, उतपति परलै करै, आपै दूसर नाँही कोइ० ।

काया मांहै सब बनराइ :- काया को वन विचार कर, संत न्यारे हुए। एवं बनराय श्रीराम जी, तिनको सब शरीरों में देख कर, समता धारण की है।

साखी :- दादू जिन प्राणी करि जाँणिया, घर बन एक समान०।

साखी :- सब जग माँहै एकला, देह निरंतर बास०।

दोहा :- कबीर हरि का भाँवता, दूरहितैं दीसंत।
तन खीना मन उनमना, जग रूठा फिरन्त॥

पद :- ऐसैं ग्रिप मैं क्यूं नर है, मनसा बाचा राम कहै०।

काया मांहै रहे घर छाइ :- घर हृदय जिसमें, संत राम नाम लेते हुए स्थिर हो रहे हैं।

साखी :- दादू जे मुख मांहै बोलता, श्रवणहुं सुणता आइ०।

साखी :- दादू चुम्बक देखि करि, लोहा लागै आइ००।

काया मांहै कदली बास :- आतम कवंल में वास, सोई पर्वत की कंदरा का बास है।

साखी :- दादू राम नाम मै पैसि करि, राम नाम ल्यौ लाइ०।

काया मांहै है कविलास :- दशवां द्वार माना है।

काया मांहै तरवर छाया, काया मांहै पंखी माया :- ब्रह्म तरवर उसकी छाया रूप सुख, पंखी जीव माया में मोहित।

काया मांहै आदि अनन्त, काया मांहै है भगवंत :- आदि ओंकार, अनन्त पसारा, भगवंत परमेश्वर, जिसका कभी भंग नहीं, जो सदा अभंग है, सोई कूटस्थ अपना आत्मा है।

पद :- ऐसा तत् अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न खाहि० ।

काया मांहै त्रिभुवन राइ :- स्वर्ग मृत्यु पाताल, 'राय'—राम जी सो भक्तों के हृदय में बिराजते हैं ।

साखी :-
अठ सिधि नौ निधि नांउं मंझारि ।
कहै कबीर भज चरन मुरारि ॥

काया मांहै रहे समाइ :- शरीर के भीतर, अन्तर्मुख वृत्ति करके, ब्रह्म में लीन हो रहे ।

पद :- रे मन जाइ जहां तोहि भावै, अबन तोरे कोई अंकुस लावै० ।

साखी :- जहं जहं जाइ तहं तहं रामा, हरि पद चीन्ह किया बिश्रामा० ।

साखी :- तन रीझत तब देखियत, सोई प्रगट्यो ग्यान० ।

दोहा :-
लीन निरन्तर बपु बिसराया ।
कहै कबीर सुख सागर पाया ॥

काया मांहै चौदह भवन :- भक्ति अंग में पंच ज्ञान इन्द्रिये, पंच कर्म इन्द्रिये, चतुष्टय अंतःकरण यह १४ भवन कहलाते हैं और लोक प्रख्यात हैं । तिनके स्थान काया में अष्टांग योगानुसार कहते हैं ।

(१) भूर—मनुष्य, पशु, स्थान—नाभी । (२) भूवः—भूत, पक्षी, स्थान—उर । (३) स्वः—देवता, स्थान—हृदय । (४) महर—ऋषि, स्थान—छाती । (५) जन—भक्त सकामी, स्थान—कंठ । (६) तप—सूर सती, सन्यासी; स्थान—नासिका । (७) सत्य—ज्ञानी सन्यासी; स्थान—दशवां द्वार । (८) अतल—महादेव; स्थान—कोखी । (९) बितल—बाणासुर; स्थान—कमर । (१०) सुतल—मय नामा; स्थान—जंघा ।

(११)-रसातल—शेज; स्थान—घुटने। (१२) तलातल—बलि; स्थान—पिंडली। (१३) महातल—बासुकी नाग; स्थान—टखने (गिरिया)। (१४) पाताल—कद्रु के पुत्र; स्थान—पगतली।

काया मांहै आवागवन :- मन मनोरथ जो जीव के उपजते हैं, सोई आवागवन हैं।

साखी :- अनेक रूप दिन के करै, यहु मन आवै जाइ०० ।

काया मांहै सब ब्रह्मंड :- सुमेर में २१ स्वर्ग कहे हैं। उनके नाम :- बासुरी, भूत, यम, किन्नर, ब्रह्म-राक्षस, राक्षस, काल, चित्र गुप्त स्वर्ग, योगणी, गन्धर्व, अर्यमा, महा स्वर्ग, तप स्वर्ग, जन स्वर्ग, सती स्वर्ग, देवी स्वर्ग, सुर नर लोक, देवा स्वर्ग, पयालि स्वर्ग, विश्व कर्मा खंड स्वर्ग। यहां शरीर में पीठ मध्य २१ गंठें हैं, सोई स्वर्ग कहे हैं। बन्हि पुराण में २१ स्वर्गों के नाम इस भांति से दिये हैं। आनन्द प्रमोद श्रोख्य निर्मल, त्रिविष्टय, नाक पृष्ठ, निर्वृति, पौष्टिक सौभाग्य, अप्सरस, निरहंकार, शांतिक, अनल, पुण्याय, मंगल, स्वेत, मन्मथ, उपसोहन, शान्ति, निर्वेर निरहंकार, अभेद।

काया मांहै है नव खंड :- जैसे पृथ्वी के नव खंड कहे हैं, तैसे काया में नव द्वार हैं। अष्टांग योग में ९ चक्र, इस प्रकार से दिये हैं।

नाम चक्र	पंखड़ी	अक्षर	देवता	स्थान
१ आधार	४	४	गणेश	गुदा
२ स्वाधिष्ठान	८	८	ब्रह्मा	लिंग
३ मणि पूर	१०	१०	पवन	नाभी
४ निरंजन	८	८	मन	उदर
५ उद्यद	१२	१२	सूर्य	हृदय
६ विशुद्ध	१६	१६	चन्द्रमा	कंठ
७ बतीसा	३२	३२	विष्णु	तालू
८ आज्ञा	२	२	महादेव	मस्तक
९ ब्रह्मरंध्र	१०००	१०००	दसों दिशा	दशवां द्वार

जंबू द्वीप के नव खंडों के नाम यह हैं। १. इलाबृत्त, २. रम्यक, ३. हिरण्यमय, ४. कुरू, ५., हरि वर्ष, ६. किम पुरुष, ७. भारतवर्ष, ८. केतुमाल, ६. भद्राश्व वर्ष।

काया माँहें लोक सब, दादू दिये दिखाइ, मनसा बाचा कर्मना गुरू बिन लख्या न जाइ :- स्वर्ग मृत्यु पाताल, इन तीनों ही के अन्तर्गत १४ भुवन, २१ ब्रह्माण्ड हैं। कायी में स्वर्ग लोक दशवें द्वार स्थान है। मृत लोक, उदर-स्थान, एवं - पाताल लोक, पगथली है। किन्तु हम मन वचन कर्म से कहते हैं कि सतगुरू कृपा बिना, यह बाह्य ब्रह्मांड शरीर में नहीं देखा जा सकता।

358.

काया मांहै सागर सात, काया मांहै अविगत नाथ।
काया मांहै नदिया नीर, काया मांहै गहर गंभीर ॥
काया मांहै सरवर पाणी, काया मांहै बसै बिनाणी।
काया मांहै नीर निवान, काया मांहैं हंस सुजान ॥
काया मांहै गंग तरंग, काया मांहै जमुना संग।
काया मांहै सरस्वती, काया मांहै द्वारावती ॥
काया मांहै कासी स्थान, काया मांहै करे स्नान।
काया मांहै पूजा पाती, काया मांहै तीरथ जाती ॥
काया मांहै मुनिवर मेला, काया मांहै आप अकेला।
काया मांहै जपिये जाप, काया मांहै आपै आप ॥
काया नगर निधान है, मांहै कौतिक होइ।
दादू सद्गुरू संग ले, भूल पड़े जनि कोइ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, जो ब्रह्मांड में है, वही काया में भी है, यह दिखाते हुए पिंड ब्रह्मांड की एकता बता रहे हैं कि :-

काया मांहै सागर सात :- भक्ति अंग में सात धातु माने हैं; सोई सात सागर हैं। माता की धातु से लोहू, मांस, त्वचा नाड़ी, पिता की धातु से वीर्य, हाड, मेद मज्जा। सप्त द्वीप सप्त सागरों में इस प्रकार कहते हैं। द्वीप :-जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, कौन्च, साक, पुष्कर। सागर :-लवण, ईखरस, सुरा, क्षीर, दधि, घृत, स्वाद। काया में द्वीप एवं सागर। योग मार्ग में यह कहे हैं। द्वीप :-श्रवण, नेत्र, नासिका, मुख, हस्त, उदर, पग। सागर स्थान क्रम से सुधा, दशवें द्वार घृत, श्रवण, ईख, नेत्र, दधि, नासिका, सुधा, मुख, क्षीर-हृदय, क्षार-कमर स्थान।

कवित्त :-प्रथमहिं जम्बू दीप, पार सागर में सो है।
पलक्ष ईख रस मध्य, सालमलि सुरा सु मोहै
कुस है खीर समुद्र, कूचं दधि मध्य रहा ही।
साक घृत चहुं फैर, पुष्कर सुधा बसा ही।
लख जो जन विस्तार लेहु, गुण एक तैं एक है।
दीप मानि सागर सप्त, हरि आज्ञा उर धरि है।

सप्त दीप, सप्त समुद्र, काया में इस प्रकार से जानिये।

काया मांहै अविगत नाथ :- अविगत परमेश्वर, जिसकी गति कोई नहीं जानता।

पद :-अविगत की गति कोई न लहै, सब अपना अनमान कहै०० ।

काया मांहै नदिया नीर, काया मांहैं गहर गभीर :- नदी कहिये नव द्वार एवं नाड़िये अथवा नवधा भक्ति नीर राम नाम।

दोहा :- नदी आशा शुभ अशुभ तट, भरी मनोरथ नीर।
तृष्णा अमित तरंग जहं, भ्रम भंवर गंभीर ॥

काया मांहैं सरवर पाणी, काया मांहैं बसै बिनाणी :- सरवर-आत्मा सरोवर या हृदय सरोवर, प्रेम रूप पाणी, बिनाणी-बुद्धि, जो शुभ अशुभ का निर्णय करती है। एवं बिनाणी परमेश्वर-रमैणी।

एक बिनाणी रच्या बिनान, सब अयानउ आपै जान ।
सत रज तम तैं कीनी माया, चारि खाणि बिस्तार उपाया ।।

काया मांहैं नीर निवान, काया मांहैं हंस सुजान :- नीर-राम नाम, निवान-हृदय, नीर-निर्मल ज्ञान, निवान-नम्रता से नवना, हंस-ब्रह्म में लै लगाने वाला योगी ।

साखी :- कबीर नैवै सु आपको, पर कौं नैवै न कोइ ।
घालि तराजु तोलिये, नवै सुभारी होइ ।।

दोहा :- नवै सु ग्यानी गुरुमुखि, नवै सु संत सुजान ।
तुलसी बैजड़ क्यूं नवै, लिये बोझ अभिमान ।।

साखी :- दादू सहज सरोवर आतमा, हंसा करै कलोल० ।

साखी :- सुनि सरोवर हंस मन, मोती आप अनन्त० ।

काया मांहैं गंग तरंग, काया मांहैं जमना संग :- गंगा-उठती बाणी, पिंगलाश्वर-प्रेम तरंग, जमना-बैठती बाणी, इड़ा-स्वर, राम नाम का संग ।

साखी :- रज्जब गंगा ग्यान की, कर्मन रेतरू काइ ।
पाप पहाड़ौं फोड़ि करि, मिली हरि समदं कूं जाइ ।।

साखी :- सहज जोग सुख मै रहै, दादू निरगुण जाणि ।
गंगा उलटि फेरि करि, जमना मांहैं आणि ।

पद :- गंग जमुन तहं नीर नहाइ, सुखमन नाड़ी रंग लगाइ० ।
गंगा जमना अंतर वेद सुरसरी नीर बहै परसेद० ।

काया मांहै है सुरसती, काया मांहै द्वारामती :- शुद्ध सुरती—द्वारामती। दशवें द्वार पर आत्म रत्त बुद्धि।

काया मांहै कासी थान, काया मांहै करै सनान :- कासी थान आत्म कवंल में स्थिर वृत्ति और शुद्ध ब्रह्म के नित्य, चिन्तन रूप स्नान से अन्तःकरण के मलों को धोवै।

साखी :- सरीर सरोवर राम जल, मांहै सजंम सार०० ।
राम नाम जलं कृत्वा, स्नानं सदा जितः ।

काया मांहै पूजा पाति :- भाव पूजा पाती—प्रीति।

साखी :- देव निरंजन पूजिये, पाती पंच चढ़ाइ० ।

साखी :- आत्म मांही राम है, पूजा ताकी होइ० ।

दोहा :- कबीर देवल मांहै देव हरी, तिलजे है बिसतार ।
मांहै पाती मांहै जल, मांहै पूजनहार ।।

पद :- सोई देव पूजौं जे टांची,
नहीं छड़िया गरभवास नहीं औतरिया०० ।

काया मांहै तीरथ जाती :- भक्ति अंग में मन पवन सुरति जो कहे हैं, तिनका तृकुटी ही तीर्थ है। शास्त्रों में केदार, गंगा सागर, गया, प्रयाग, बाणारसी यह पंच तीर्थ कहे हैं। सो काया में भी हैं। सिर - केदार, कंठ - गया, नाभी - प्रयाग, उपस्थ - सागर, सर्वव्यापक - बाणारसी, जाती - यात्री, प्राण - संतों के।

काया मांहै मुनियर मेला, काया मांहै आप अकेला :- मन सहित इन्द्रियों का एकाग्र होकर, ब्रह्म में लीन होना, सोई मेला है। आप ब्रह्म अकेला पाप पुण्य से न्यारा है।

दोहा :- दिन कर उदै दसौं दिसि धावै, भले बुरे बहु कर्म कमावै ।
पाप पुण्य में लिपै न प्यारा, अैसें अकल सकल तैं न्यारा ।

दोहा :- जोति उजारै रमै जुवारी, इक जीते इक हारै भारी ।
हरिख सोक मैं दोऊ बंधाना, दीपक के कुछ हेत न हाना ।

काया मांहै जपिये जाप :- अजपा अंतरगति जाप ।

साखी :- अंतर गति हरि हरि करै, तब मुख की हाजति नांहि०० ।

दोहा :- मन पवन अरू सुरति सौं, आतम पकड़ै आप ।
रज्जब लावै तत्व सौं, ईहै अजपा जाप ॥

दोहा :- शरीर शब्द अरू श्वांस करि, हरि सुमिरण तिहुं ठांव ।
जन रज्जब आतम अगम, अजपा इसका नांव ॥

दोहा :- ब्रह्मण्ड पिंड मन प्राण तजि, सुख मैं सुरति समाइ ।
रज्जब अजपा जाप यहु, निर देखौ निरताइ ॥

काया मांहै आपै आप :- आपै आप स्वयंभु, माया अंजन रहित निरंजन कहिये वाको ।

पद :- तहं आपै आप निरंजना, तह निस वासुर नहि सजंमा० ।

काया नगर निधान है :- काया शहर बड़ा गंभीर, सब निधियों की खान है । जो खोजै सो गुरू ज्ञान से पावै । भाव, भक्ति, प्रेम, प्रीति, शील, संतोष, दया, धर्म, क्षमा, गरीबी, निर्दोषता, निरबैरता, लघुता, निवृति, निर्भयता, सहवीर्यता, परिपूर्णता, परमानन्द ।

मांहै कोतिग होइ :- आत्म परमात्मा का मेल, सोई कोतिग है।

पद :- पहुप प्रेम बरसै सदा, हरिजन खेलैं फाग०० ।

दादू सतगुरू संगि ले, भूल पड़ै जिन कोई :- सतगुरू जो परमात्मा है, उन्हों को सुमिरण सदैव बनाये रखो और उस को भूलकर, तीर्थ धाम आदि बाह्य साधनों में ही, जीवन न गमावै।

359·

काया मांहै बिषमी बाट, काया मांहै औघट घाट ।
काया मांहै पट्टण गांव, काया मांहै उत्तम ठांव ॥
काया मांहै मण्डप छाजै, काया मांहै आप बिराजै ।
काया मांहै महल आवास, काया मांहै निश्चल बास ॥
काया मांहै राजद्वार, काया मांहै बोलणहार ।
काया मांहै भरे भण्डार, काया मांहै वस्तु अपार ॥
काया मांहै नौ निधि होइ, काया मांहै अठ सिद्धि सोइ ।
काया मांहै हीरा साल, काया मांहै, निपजै लाल ॥
काया मांहै माणिक भरै, काया मांहै ले ले धरै ।
काया मांहै रतन अमोल, काया मांहै मोल न तोल ॥
काया मांहै कर्तार है, सो निधि जानै नाँहि ।
दादू गुरू मुख पाइये, सब कुछ काया मांहि ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, जो ब्रह्माण्ड में है, वही काया में भी है। यह दिखाते हुए पिंड ब्रह्माण्ड की एकता बता रहे हैं कि :-

काया मांहै बिखमी बाट :- ब्रह्म पंथ अति कठिन है।

दोहा :- सांई गीत न पाईए, बातूं मिल्या न कोइ ।
रज्जब सौदा राम सौं, सिर बिन कदे न होइ ।।

साखी :- दादू बिन पाइन का पंथ है, क्यूं कर पहुंचै प्राण०० ।

साखी :- दादू बिखम दुहेला जीव कूं, सतगुरू थैं आसान०० ।

साखी :- दादू पारब्रह्म पैंडा दिया, सहज सूरति लै सार०० ।

जैसे बद्री केदार के मार्ग में छीकौं पर से यात्री जाते थे । सोई बिखमी बाट था । इसी प्रकार ब्रह्म मार्ग में, आपा, अभिमान, मान, बड़ाई, अहम् बुद्धि माया मोह, यह ही पहाड़ हैं ।

साखी :- अनल पंखि आकास कौं, माया मेर उलंघि०० ।

लोभ मोह पर्वत की धारवत हैं । वहां छीकौं से पार उलंघते हैं । यहां पंच इन्द्रियों और मन को खैंचकर, ब्रह्म में लीन होते हैं एवं छीकौं से उतरती समय, बावैं दहने दृष्टि नहीं जाने देते । तैसे ब्रह्म मार्ग में ।

साखी :- बावैं देखि न दहिनै, तन मन सनमुख राख०० ।

साखी :- दादू नैनूं भरि नहि देखिये, सब माया का रूप०० ।

काया मांहैं औघट घाट :- तन मन के विकारों को जीतना, सोई औघट घाट है ।

पद :- राम संभालिये रे, बिखम दुहेली बार०० ।

साखी :- काया नाव समंद मै, औघट बूड़ै आइ०० ।

काया मांहैं पट्टण गांव :- पट्टन नगर प्रेम सहित पिंड । जैसे शहर में सब सौदा मिलै है, तैसे ही प्रेमी पिंड में सब ज्ञान ध्यान भाव भक्ति रहते हैं ।

काया मांहैं उत्तम ठांवं :- पवित्र हृदय कवंल में परमेश्वर के चरण हैं ।

दोहा :- तेज पुंज के चरण हैं, हाड़ चाम के नांहि ।
तुलसी बेदों वर्णिया, हृदया कवंल के मांहिं ॥

साखी :- जब देव निरंजन पूजिए, तो सब आया उस मांहि०० ।
साखी :- सब आया उस एक मै, डाल पान फल फूल०० ।

काया मांहै मंडप छाजै, काया मांहै आप बिराजै :- मंडप - मनसा मंदिर, करण गोलक आदि, श्रोत्र नेत्र आदि के स्थान । आप परमेश्वर रोम रोम में बिराजमान है ।

काया मांहै महल अवास, काया मांहै निहचल बास :- महल पंच कोश :- अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय । निश्चल परमेश्वर, तिसका अन्तर्मुख ध्यान, सोई निश्चल बास है ।

काया मांहै राजद्वार, काया मांहै बोलणहार :- ब्रह्मांड का राजा ईश्वर है । उसका स्थान काया में हृदय एवं दसवां द्वार है और बोलने वाले प्राण का नेता ईश्वर है ।

पद :- राम राज कोइ भिड़ै न भाजै, स्थिर रहना बैठा छाजै० ।

काया मांहै भरे भंडार :- जिसका हृदय भाव भक्ति से पूर्ण है । जो अपने आत्मा ही को, सर्व जगत् का कर्त्ता धरता मानता है, जिसकी दृष्टि में सर्व प्रपंच, आत्मा रूप ही है । उसके लिये सम्पूर्ण भंडार काया ही में है । बाह्य पदार्थों की न उसको कामना होती है, और न उसके शरीर निर्वाह में कमी पड़ती है ।

साखी :- चारि पदारथ मुक्ति बापुरी, अठ सिद्धि नौ निद्धि चेरी० ।

काया मांहै वस्तु अपार :- परमेश्वर अपार है । जिसका कोई पार नहीं ।

पद :- रामधन खात न खूटै रे, अपरम पार पार नहीं आवै, अर्थ न टूटै रे।

काया मांहै नौ निधि होइ :- नौ नाड़ी अष्टांग योग में कही हैं। तिनके नाम और स्थान, इस प्रकार हैं। तैसे निद्धियों के नाम भी बताले हैं।

नाड़ी नाम	नाड़ी स्थान	सिद्धि नाम
१. इड़ा	देह के बांये भाग	पद्म
२. पिंगला	दहिने भाग	महापद्म
३. सुषुम्ना	बीचले भाग	शंख
४. गंधारी	बायें नेत्र	मकर
५. हस्ति जिह्वा	दायें नेत्र	कच्छप
६. पूषा	दहिने कान	मुकुन्द
७. यशस्विनी	बायें कान	कुन्द
८. अलम्बुखा	मुख में	नील
९. कुहू	लिंग	वर्च्च
१०. शंखिनी	गुदा	

काया मांहैं अठ सिद्धि सोइ :- भक्ति अंग में पंच तत्वों और तीन गुणों की पूर्ति में जो सिद्धि होय, सोई अष्ट सिद्धि हैं। अष्टांग योग में अष्ट सिद्धि यह हैं। अणीमा, महिमा लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईसीत्व, वसीत्व, गरिमा, सर्व का भाव सायित्व है। इनके सिवाय दस सिद्धि और कही हैं। सर्वज्ञता, दूर श्रवण, पर काय प्रवेश, वाक सिद्धि, कल्प वृक्षत्व, सृजन शक्ति, संहार शक्ति, ईशता, अमरत्व, सर्व्वांग, यह दस सिद्धियां हैं, वैसे ही काया में।

काया मांहै हीरा साल, काया मांहैं निपजै लाल :- ब्रह्म परिचय रूप ही रसाल—खान सो ज्ञान की खान, हृदय गुफा शुद्ध बुद्धि है। लाल-पंच ज्ञान इन्द्रिये और मन।

साखी :- पंच संगी पिव पिव करैं, छठा जु सुमरै मन।
आई सुरति कबीर की, पाया राम रत्तन॥

काया मांहै माणक भरे, काया माँहैं लै लै धरे :- स्वांस राम नाम से भरे थिर किये, एवं माणिक वत आत्म प्रकास में अन्तर्मुख वृत्ति को रोक बैठे।

काया मांहै रतन अमोल, काया मांहै मोल न तोल।

रत्तन रूपी मन तो ब्रह्म में लीन होकर, अमोल हुआ है।

साखी :- पंच पदारथ मन रत्तन, पवना माणिक होइ००।
साखी :- अजब अनुपम हार है, सांई सरीखा सोइ००।
साखी :- रतन पदारथ माणिक मोती, हीरों का दरीया००।
साखी :- मिसरी मांहै मेलि करि, मोल बिकाना बंस०।
साखी :- राम बिना किस काम का, नहिं कौडी का जीव००।

दोहा :- भाव भक्ति जत्त सत्त संतोस, ग्यान ध्यान धीरज धुंनि मोक्ष।
क्षमा दया दासातन लीन, रतन सु राम चौदह दीन॥

चौदह रत्नों के नाम यह हैं :- लक्ष्मी, मणी, कल्पवृक्ष, कामधेनु, अमृत, विष, संख, धन्वन्तर, चंद, सुरा, सप्त मुखी घोड़ा, ऐरावत हाथी, रंभा, धनुष।

कवित्त :-प्रथम लक्ष मणि संख, धनु जगदीस हि लीए।
काम धेन गज वृक्ष, रंभा सुरपति कूं दीये॥

दोहा :- सुधा सुरन कूं दयो, सुरा असुरनि कूं अरप्यौ ।
बिखहि मकर दोउ सुतो, ले शंकर ही समरप्यौ ।

दोहा :- बैद धनन्तर लोक में, सप्त मुख अस्व रवि कौं दियो ।
चौदह रतन बिभाग कौं, यह कवित्त कवि जन कियो ।

दोहा :- लक्ष्मी भक्ति मणि शान्ति, कल्प तरू ग्यान बिचारो ।
कामधेनु सत्य बुद्धि, बैन शुभ अमृत धारो ।

दोहा :- अहम् बुद्धि बिख जाणि, संख अनहद धुनि बाजै ।
धनन्तर अष्टांग, चंद संतोष बिराजै ।

दोहा :- सुरा काम मन सप्त मुख है, गज धीरज जानि येहु ।
तहां जुगती सु रंभा सबद गुर, नरसिंह धनुष पिछाणि लेहु ॥

काया मांहै करतार है, सो निधि जाणै नांहि :- जगत का रचिता तो काया ही में है । मन रूपी ब्रह्म ही अपनी स्फुरना से सम्पूर्ण प्रपंच रचता है । सो काया के भीतर है, जैसे स्वप्न अवस्था में मन, बिना अन्य सामग्री के सृष्टि रच कर, स्वप्न में सुख दुख भोगता है । इसी प्रकार जागृत अवस्था में, वही मन व्यवहारिक प्रपंच रचता है । सम्पूर्ण दृश्य मन के ही अन्दर है ।

साखी :- जहं मन नाहीं सो नहीं, जहं मन चेतन सों आहि० ।

साखी :- मन ही माया ऊपजै, मन ही माया जाइ० ।

दादू गुरूमुखी पाइये, सब कुछ काया मांहि -: गुरु की कृपा से गूढ़ रहस्यों का भेद मिलता है । काया में सब कुछ मिल सकता है । जो खोजै सो पावै ।

काया मांहै सब कुछ जान, काया मांहै लेहु पिछान ।
काया मांहै बहु विस्तार, काया मांहै अनन्त अपार ॥
काया मांहै अगम अगाध, काया मांहै निपजे साध ।
काया मांहै कह्या न जाइ, काया मांहै रहे ल्यौ लाइ ॥
काया मांहै साधन सार, काया मांहै करे विचार ।
काया मांहै अमृत वाणी, काया मांहै सारंग पाणी ॥
काया मांहै खेले प्राण, काया मांहै पद निर्वाण ।
काया मांहै मूल गह रहै, काया मांहै सब कुछ लहै ॥
काया मांहै निज निरधार, काया मांहैं अपरमपार ।
काया मांहैं सेवा करै, काया मांहै नीझर झरे ॥
काया मांहै बास कर, रहै निरंतर छाइ ।
दादू पाया आदि घर, सद्गुरू दिया दिखाइ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, जो ब्रह्माण्ड में हैं, वही काया में भी है। यह दिखाते हुए पिंड ब्रह्माण्ड की एकता बता रहे हैं कि :-

काया मांहै सब कुछ जाणि, कायां मांहै लेहु पिछाणि :- सम्पूर्ण संसार में एक सत्ता परमेश्वर की है। दूसरा लेस मात्र भी नहीं है। द्वैत प्रपंच सब मन करके कल्पित है। इसलिये सब कुछ काया में ही जानने योग्य है।

दोहा :- मीत तुम्हारा तुम्ह कनैं, तुम्ह हीं लेहु पिछाणि ।
कबीर ज्यूं नैनों में पूतली, त्यूं खालिक घट मांहि ॥

साखी :- मूरख लोग न जाणही, बाहिर ढूंढन जांहि° ।

पूजा की सौंज सब काया ही में, ब्रह्मऋषि दादू दयाल महाराज ने कही है। सो विचार कर देख लों।

काया माँहै बहु बिस्तार, काया माँहै अनन्त अपार :- बिस्तार ब्रह्म का जिसका अन्त वार पार, शोभा यश कीर्ति कहने में नहीं आ सकती। तो संतों ने काया में प्रत्यक्ष परिचय की है।

साखी :- दादू पाणी मांहैं पैसी करि, देखै दृष्टि उघारि० ।

साखी :- देखि दिवाने व्है गए, दादू खरे सयान० ।

साखी :- केते पारिख पचि मुये, कीमत कही न जाइ० ।

काया माँहै अगम अगाध :- अगम-ब्रह्म, अगम-ध्यान। जिस ब्रह्म को देख कर संत हैरान हो रहे हैं।

साखी :- रतन एक बहु पारिखू, सब मिलि करैं बिचार० ।

पद :- ये हौं बूझि रही पिव, जैसा है तैसा कोइ न कहै रे० ।

पद :- अगम अगाध अपार अगोचर, सुधि बुधि कोइ न लहै रे० ।

काया माँहै निपजै साध :- संत निपजै, नाम के प्रताप एवं भाव से तथा।

साखी :- साधु सकणां मांहैं मन, ज्यूं मक्के की ज्वारि ।
जन रज्जब ज्योंख्यूं गई, पंखी सकै न प्यारि ॥

दोहा :- साधु सिरठा मकई, दस बागे तन धार ।
ब्रह्म भोमि रस पीजिये, मन कण निपजि अपार ॥

दोहा :- कण मोटो साऊ सीरो, चढै रू भै कुछ नांहि ।
साध मका की ज्वार ज्यूं, बखनां निपनां मांहि ।।

सकणां दानेदार ज्वारी दाना-प्यारि । खिराय-बियराय । सिरठा-मुट्ठा । बागे-वस्त्र । चड़ेरू-चिड़ियों का।

पद :-

सुणि भाई महिमा नाम तणी, म्हारा सतगुरू पासैं,
जो मैं सुणी ।।टेक।।
कोटि कोटि बार जो पढिये वेद, सब शास्त्र को लीजे भेद ।
पुराण अठारह का मत जोइ, राम नाम समि तुलै न कोइ ।।
कोटि कोटि कूप खणावै वाइ, कोटि कोटि कन्या दे परणाइ ।
कोटि कोटि बार जो कीजै यज्ञ, जग तुलै न नाऊं सहस्त्र में भागि ।।
धर सगली जो दीजै दान, कोटि कोटि तीर्थ करै सनान ।
कोटि कोटि जप तप साधै पान, तउ न आवे नांव समान ।।
गज गनका गोत्तम बधु तीरि, निर्मल नाम एहो छै हरि ।
पतित अजामेल सरणैं गयो, भाव कुभाव जिन हरि नांव लयो ।।
सुख नारद प्रहलाद अभ्यासा, सुमिर्‌यो ध्रूव मती करि बिसवासा ।
तिन के हरि काटे बहु फंद, ते निहचल चलैं रवि चंद ।।
हृदै सति करि सुमिरयो राम, आन धर्म सब तजि बेकाम ।
भणत नामदेव हरि शरणा, आवागमन मिटै ज्यूं मरणां ।।

काया माँहैं कह्या न जाइ :- ब्रह्म मन वाणी का विषय नहीं है। इससे कथन करने में नहीं आता है।

पद :- ऐसा राम हमारै आवै, वार पार कोई अंत न पावै० ।

साखी :- थकित भयो मन कह्यो न जाइ, सहज समाधि रह्यो
ल्यौ लाइ० ।

दोहा :- हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ ।
बूँद समानी समंद मै, सो कत हेरी जाइ ।।

काया मांहैं रहै ल्यौ लाइ :- संसार से निवृत होकर, काया के भीतर ब्रह्म में संत लय लगा बैठे हैं।

साखी :- दादू सब बातन कि एक है, दुनीयां तैं दिल दूरि० ।

साखी :- दादू सहज सुनि मन राखिये, इन दून्यूं कै मांहि० ।

साखी :- दादू लै लागी तब जाणिए, जे कबहूं छूटि न जाइ० ।

काया मांहैं साधन सार :- सार ब्रह्म का नित्य प्रति सुमिरण है।

साखी :- प्रेम भगति दिन दिन बधै, सोई ग्यान बिचार० ।

काया मांहैं करै बिचार :- ब्रह्म का ध्यान, चितवन रूप विचार सदा करै।

साखी :- सहज बिचार सुख में रहै, दादू बड़ा बमेक० ।

काया मांहै अमृत बाणी :- अमृत बचन आपा रहित, राम नाम बाणी।

साखी :- कबीर अैसी बाणी बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ।।

पद :- जे बोलै तौ राम हीं बोलि, नातर बदन कपाट न खोलि ।।टेक।।
जे बोलै तौ कहिये राम, आन बकन सौं नांहीं काम।
राम नाम मेरै हृदै लेखि, राम बिना सब फोकट देखि।
नाम देव कहै मेरे एकै राम, राम नाम की मैं बलि जाउं।

काया मांहैं सारंग पाणी :- सारंग दरब रंग हैं।

जिसमें अन्तर्मुख वृत्ति से योगी, अद्भुत रंग काया के भीतर देखते हैं।

काया मांहै खेलै प्राण :- प्राणधारी जीव परमेश्वर से खेलै।

साखी :- पुहप प्रेम बरिसैं सदा, हरिजन खेलैं फाग० ।

साखी :- दादू रंग भरी खेलौं पीव सौं, तहं बाजै बैन रसाल० ।

काया मांहै पद निरवाण :- निर्वाण पद परमेश्वर है। उसके काल कर्म के बाण नहीं लगते हैं। वह सदा अविचल एवं शान्त स्वरूप है।

पद :- अैसा तत्त अनूपम भाई, मरै न जीवै काल न खाई० ।

काया मांहै मूल गहि रहै :- सर्व का मूल मंत्र ब्रह्म है । उसको संतों ने ग्रहण किया ।

साखी :- सब आया उस एक में, डाल पान फल फूल० ।

काया मांहैं सब कुछ लहै :- चिंतामणी में सब कुछ है ।

साखी :- जिसमें सब कुछ सो लिया, निरंजन का नाम० ।

काया मांहै निज निरधार, काया मांहै अपरम्पार :- निज स्वरूप जो अपार ब्रह्म है । सो निराधार अपने ही आप में है । किसी दूसरे के आसरे नहीं है ।

साखी :- दादू मैं हीं मेरे आसरै, मैं मेरे आधार० ।

दोहा :- कारन सूक्ष्म स्थूल देह अरू, पंच कोस इन हीं मै जान ।
कर विवेक लखि आतम न्यारो, मुंज ईसी का ते ज्यू भान ।।

दोहा :- धरीया को धीजौं नही, ऐसा पाया नाका ।
निराकार आकार विवरजित, ताका सेवग रांका ।।

काया मांहै सेवा करै :- शरीर के भीतर परमेश्वर की सेवा करै ।

साखी :- मस्तक मेरे पांव धरि, मंदिर मांहैं आव० ।

साखी :- तेज पुंज कौं बिलसणा, मिलि खेलै इक ठांउ० ।

साखी :- दादू भीतर पैसि करि, घटके जड़े कपाट० ।

साखी :- गहै गरीबी बंदगी, सेवा सिरजनहार० ।

काया मांहै नीझर झरै :- नीझर ब्रह्म सीर अखंड झरै ।

साखी :- घन बादल बिन बरखै, नीझर निरमल धार० ।

साखी :- ऐसा अचिरज देखिया, बिन बादल बरसै मेहै० ।

काया मांहै बास करि, रहे निरंतर छाइ :- बास - परमेश्वर के चरणों का ध्यान। निरन्तर-अन्तराइ से रहित होकर, ब्रह्मस्वरूप में लीन रहै ।

साखी :- दादू पाया आदि घर, सतगुरू दिखाइ० ।

आदि घर ब्रह्म स्थान, सो सतगुरू परमेश्वर की कृपा से पाया ।

साखी :- दादू पहलि घर किया, आदि हमारी ठौर० ।

काया मांहै अनुभव सार, काया मांहै करे विचार ।
काया मांहै उपजै ज्ञान, काया मांहै लागै ध्यान ॥
काया मांहै अमर स्थान, काया मांहै आतम राम ।
काया मांहैं कला अनेक, काया मांहै कर्त्ता एक ॥
काया मांहै लागे रंग, काया मांहै सांई संग ।
काया मांहै सरवर तीर, काया मांहै कोकिल कीर ॥
काया मांहै कच्छप नैन, काया मांहै कूंजी बैन ।
काया मांहै कमल प्रकाश, काया मांहै मधुकर बास ॥

काया मांहै नाद कुरंग, काया मांहै ज्योति पतंग ।
काया मांहै चातक मोर, काया मांहैं चंद चकोर ॥
काया मांहै प्रीति कर, काया मांहै सनेह ।
काया मांहै प्रेम रस, दादू गुरूमुख येह ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, जो ब्रह्माण्ड में है, वह काया में भी है, यह दिखाते हुए, पिंड ब्रह्माण्ड की एकता बता रहे हैं कि

काया मांहै अनभै सार :- अनुभव सार साक्षात्कार परमेश्वर का दर्शन ।

साखी :- दादू जैसा ब्रह्म है, तैसी अनभै उपजी होइ० ।

काया मांहै करै बिचार :- परमेश्वर का चितवन रूप अखंड बिचार, सदैव करता रहे ।

साखी :- दादू एक बिचार सौं, सब थैं न्यारा होइ० ।

काया मांहै उपजै ग्यान :- परमेश्वर का ।

साखी :- आपै आप प्रकासिया, निर्मल ग्यान अनन्त० ।

काया मांहै लागै ध्यान :- ध्यान अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, ब्रह्म में लय स्थिति ।

साखी :- मन इन्द्री पसरै नहीं, अहनिस एकै ध्यान० ।

काया मांहै अमर अस्थान :- अमर ब्रह्म सोई जीव की शांति और स्थिति का स्थान है । जिसको हृदय गुहा में अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा पा सकते हैं । अमर तत्व के निरन्तर चिन्तन से अमर पद मिलता है ।

काया मांहै आत्म राम :– आतम राम परमेश्वर ।

साखी :- आत्म आसण राम का, तहां बसै भगवान० ।
जहां राम तहं संतजन, जहं साधु तहं राम० ।
जहं आत्म तहं राम है, सकल रह्या भरपूर० ।

काया मांहै कला अनेक :- कला ब्रह्म से आनन्द कलोल ।

साखी :- सहज सरोवर आत्मा, हंसा करै कलोल० ।

काया मांहै करता एक :- हमारे कर्त्ता हर्त्ता एक परमेश्वर ही है ।

साखी :- दादू मेरे हृदै हरि बसै, दूजा नांही और० ।
दादू नारायण नैना बसै, मन हीं मोहन राइ० ।
दोहा :- कबीर रेख सिंदुर की, काजल दिया न जाइ ।
नैनों रमईया रमि रहा, दूजा कहां समाइ ।।

काया मांहै लागै रंग :- रंग परमेश्वर की भक्ति ।

साखी :- जे जन हरि के रंग रंगे, सो रंग कदे न जाइ० ।
दादू राता नाम का, अविनासी रंग मांहि० ।
साहिब किया सो क्यूं मिटै, सुन्दर सोभा रंग० ।

पद :- रंग लागौ रें राम कौ, सो रंग कदे न जाइ।
हरि रंग मेरो मन रंग्यो, और न रंग सुहाइ॥

काया मांहै सांई संग :- सांई परमेश्वर सदा जीव के संग है।

साखी :- प्राण हमारा पीव सौं, यूं लागा सहिए०।

काया मांहै सरवर तीर, काया मांहैं कोकिल तीर :- सरवर-हृदय, सोई तीर-तट, कोकिल-मनसा, कीर-तोता रूपी मन।

काया मांहै कछिब नैन :- कछप मन, तिसके अन्तर्मुख नैन, आत्म कमल में ब्रह्म ध्यान में स्थित।

काया मांहैं कुंजी बैन :- कुंजी सुरति-बैन, ब्रह्म से बीनती।

साखी :- सुरती पुकारै सुंदरी, अगम अगोचर जाइ०।

साखी :- काया मांहैं कवंल प्रकास, काया मांहै मधुकर बास०।

कंवल प्रकास-हृदय का प्रफुल्लित होना। मधुकर-मन से ब्रह्म की बास लेवैं।

काया मांहै नाद कुरंग :- नाद-अनहद, शब्द-कुरंग, शुद्ध अन्तःकरण।

साखीं :- अनहद है द्वै भांति कौ, जुवो जुवो विचार।
जगन्नाथ असली हृदै, तत सुर श्रवनन द्वार॥

काया मांहै जोति पतंग :- जोति-ब्रह्म प्रकास। पतंग-प्रकृति पांच तत्वों की २५ प्रकृति इस प्रकार है।

पृथी प्रकृति अस्थि मांस, तुचा नाड़ि केस।
आब प्रकीरति लाल अरू नीत, प्रस्वेद सुकल सनेवच जोति॥
तेज प्रकीरति क्षुधा पियास, आलस निद्रा क्रोध अभ्यास।
बाइ प्रकीरति गोवै ध्यावै, ग्यान कथा अगोचर पावै॥
अकास प्रकीरति माया मोह, लज्जा करै राग अरू द्रोह।
पच्चीस प्रकीरति पांचूं तत्त, भिन्न भिन्न ब्यौरा यहु मंत॥

काया मांहै चात्रिग मोर, काया मांहै चंद चकोर :- चात्रिग-प्राण, मोर-मन, चन्द्र-ज्ञान, चकोर-चित्त।

काया मांहै प्रीति करि, काया मांहै सनेह :- सर्व ओर से मन को तोड़कर, परमेश्वर से प्रीति स्नेह।

साखी :- प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहि०।

काया मांहै प्रेम रस :- ब्रह्मरस।

साखी :- मैं अमली मतवाला माता, प्रेम मगन में राम न राता।

दादू गुरू मुखि येह :- परमेश्वर का दर्शन, भाव, भक्ति, प्रेम, प्रीति, काया का भेद, यह सब गुरु की कृपा से मिलता है।

साखी :- दूर देख आराधते, करते आस उमेद ।
स्यौपुर नेड़ा पाइया, जब लाधा गुर मुखि भेद ।।

362

काया मांहैं तारणहार, काया मांहैं उतरे पार ।
काया मांहैं दुस्तर तारे, काया मांहै आप उबारे ।।
काया माहैं दुस्तर तरे, काया मांहै होइ उद्धरे ।
काया मांहै उपजे आइ, काया मांहै रहै समाइ ।।
काया मांहै खुले कपाट, काया मांहै निरंजन हाट ।
काया मांहै है दीदार, काया मांहैं देखणहार ।।
काया मांहै राम रंग राते, काया मांहै प्रेम रस माते ।
काया माँहैं अविचल भये, काया मांहै निश्चल रहे ।।
काया मांहै जीवे जीव, काया मांहै पाया पीव ।
काया मांहै सदा अनंद, काया मांहै परमानन्द ।।
काया मांहैं कुशल है, सो हम देख्या आइ ।
दादू गुरू मुख पाइये, साधु कहैं समझाइ ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, जो ब्रह्माण्ड में है, वही काया में भी है । यह दिखाते हुए, पिंड ब्रह्माण्ड की एकता बता रहे है कि

काया मांहै तारणहार, काया मांहै उतरे पार :- परमेश्वर जिस पर कृपा करै सो तरै । काया के गुण विकार जीत, संसार लाज कुल मरजादा तज, जो भगवत् भजन करै, सो पार उतरते हैं ।

साखी :- दादू खोई आपणी, लज्या कुल की कार० ।

काया मांहैं दूतर तारै, काया मांहै आप उबारै :- दूतर संसार सागर, इसके काम क्रोध लोभ मोह भय, इनसे परमेश्वर तारै, तो जीव तरै ।

पद : राम उबारिया रे, ताको डर नहिं कोइ,
बहु बैरी पचि पचि पचि गये, बाल न बंका होइ ।।टेक।।
प्रगट तीन्यूं लोक मै रे, साखि कहैं सब साध ।
जिन हरणाकुस मारियो, उबार्‌यो प्रहलाद ।।
हैगै नर गैवर गुड्‌या, भारत बहु बिस्तार ।
अंडा अंतरि राखिया, टीटोहड़ी का च्यारि ।।
जहं तहं भीड़ भगत की माधो, तुम्ह बिन कोई नांहि ।
पांचों पांडू राखिया, लाखां जौहर मांहि ।।
बाछा गऊ बिनासीया रे, नामदेव पकड़्‌यो धाइ ।
बाहर आयो बीठलौ, मुई जिलाई गाइ ।।

दोहा :- बांध्या हाथ पांव परि बांध्या, चौकस कियो सरीर ।
हाथी आगै रालियो, राख्यो दास कबीर ।।

दोहा :- अकबर साह बुलाइया, गुरू दादू कौं आप ।
ज्ञान ध्यान पूरा हुआ, रह्‌या नांव परताप ।।

दोहे :- पावक सुनहां पारधी, फंद रोप्यौ दौं लाइ ।
मृग नै मारग को नहीं, तब सुमिरयो यदु राइ ।।

फंद जल्या सुनहां टल्या रे, पारधी मल कर धूण ।
गुण टुटो रक्षा करी, तब मारण हारो कौंण ।।

मंजारी सुत मेल्या रे, ऊपरि धकैं अहाव ।
तिहि बासण बखनो कहै, ताती लगी न बाव ।।

पद :- जोरे भाई राम दया नहीं करते, नौका नांव खेवट
हरि आपै, यूँ बिन क्यूं निसतरते ।।टेक।।

साखी :- चार पहर में जल गई, होली हो गई राख० ।।

दोहा :- होली अजहूं जरत है, जन गोपाल जग मांहि ।
साधु द्रोह सबसे बुरो, भूल हू किजे नांहि ।।

दोहा :- प्रहलाद बच्यो होली जरी, रही उभै रस रीति ।
रज्जब पेखि प्रवीनता, अग्नि न करी अनीत ।।

दोहा :- बिखम बार हरी चढ़े, धाए आए धाम ।
पल मांहै जल रूप व्है, रज्जब राखै राम ।।

काया मांहै दूतर तिरे :- दूतर-संसार सागर, इसमें माया ममत्व से हरि कृपा से तैरते हैं ।

रमैणी :- सिरजनहार नांव धूं तेरा, भव सागर तरबे कौं भेरा ।
जे यहु भेरा राम न करता, तो आपै आप आवट जग मरता ।
राम गुसांई मेहरि, जु कीन्हां, भेरा साज संत को दीन्हां ।।
दुख खंडन मही मंडणा, भक्ति मुक्ति विश्राम ।
बिधि करि भेरा साजीया, कबीर धर्या राम का नाउं ।।

काया मांहै होइ उधरे :- मनुष्य शरीर पाया है। जो परमेश्वर में रत्त होकर, मोक्ष हो गये। यह शरीर मुक्ति क्षेत्र है।

काया मांहै निपजै आइ, काया मांहैं रहैं समाइ :- बाहिर के दृश्यों से मन निवृत्त होकर, जब अन्तर्मुख वृत्ति हुई, तब काया में निपजै, कहिए संसार के झगड़ों से छूटे और आतमा आनन्द में मग्न हो जावैं।

काया मांहै खुले कपाट, काया मांहै निरंजन हाट :- कर्म कपाट--बन्धन दूर हुये। माया अंजन रहित निरंजन, हाट रूपी परमात्मा, हृदय गुहा में शुद्ध बुद्धि द्वारा पाया है।

साखी :- पांच तत्त के पांच हैं, आठ तत्त के आठ०।

साखी :- राम नाम कौं बणजण बैठ, ताथैं मांड्या हाट०।

काया मांहैं है दीदार, काया मांहै देखणहार :- दीदार ब्रह्म का तिसको देखने वाला प्राणी।

साखी :- दादू देखि देखि सुमिरण करै, देखि देखि लै लीन०।

साखी :- दादू बिगस बिगस दरसन करै, पुलकि पुलकि रस पान०।

काया मांहै राम रंगि राते, काया मांहै प्रेम रस माते :- आत्म रंग को देखने से तो मायावी सभी राग रंग फीके लगते हैं, परन्तु वह अन्तर्मुख ध्यान में दिखाई देता है। उसकी शोभा अवाच्य है। मूक्त पुरुष उसमें मग्न रहते हैं।

साखी: - दादू माता प्रेम का, रस में रह्या समाइ०।

काया मांहै अविचल भये काया मांहै निहचल रहे :- स्थिर हुए चिंता मिटि, निश्चिंत हुए, मन मनसा शांत हुई।

साखी :- हरि चिंता मणि चिंतता, चिंता चित्त की जाइ० ।

साखी :- जब अन्तर उरझ्या एक सों, तब थाकें सकल उपाइ० ।

साखी :- दादू कउवा बोहित बैस करि, मंझी समंदा जाइ० ।

काया मांहै जीवै जीव :- जीवता वही जीव है, जो अपनी आत्मा की संभाल करता है ।

पद :- जीवत जीये मुये भी जीये, दादू राम निवासा० ।

दोहा :- कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल ।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ।।

काया मांहै पाया पीव :- पीव-परमेश्वर ।

पद :- ये मन मेरा पीव सूं औरन सूं नांहीं ।
पिव बिन पलहि न जीव, सूं येह उपजै मांहीं ।

काया मांहै सदा आनंद, काया मांहै परमानन्द :-सच्चिदानन्द ब्रह्म से भिन्न कोई वस्तु है नहीं । एक आनन्द रूप ब्रह्म ही सर्वत्र है । सतगुरू की कृपा जिस पर हो सो सम्पूर्ण भ्रम रूपी दुखों से छुट कर, केवल आनन्द को अनुभव करैं । नित्य आनन्द के उत्साह में जय जय कार, परमानन्द में प्रफुल्लित रहते हैं ।

साखी :- जब निराधार मन रह गया, आतम के आनन्द० ।

काया मांहै कुशल है :- जब द्वन्द्वों से मन रहित हुआ, तो आनन्द है ।

साखी :- इक राजी आनन्द है, नगरी निहचल बास० ।

सो हम देख्या आइ :- सो ब्रह्म देखा, जब बाहरी विषयों से वृत्ति समेट कर अन्तर्ध्यान हुए ।

साखी :- दादू अख्यूं पसण के पिरी, भिरे उलथौ मंझ० ।

दादू गुरू मुखि पाइए :- शील संतोष परमेश्वर का दर्शन । काया का भेद तैसे ज्ञान ध्यान सच्चे गुरू से मिलते हैं ।

पद :- हो अैसा ग्यान ध्यान, गुरू बिना क्यूं पावै ।
वार पार पार वार, दूतर तिरि आवै हो ॥

साध कहैं समझाइ :- पूर्वाक्त प्रकार से संतजन समझा कर कहते हैं ।

काया मांहै देख्या नूर, काया मांहै रह्या भरपूर ।
काया मांहै पाया तेज, काया मांहै सुन्दर सेज ॥
काया मांहै पुंज प्रकाश, काया मांहै सदा उजास ।
काया माँहैं झिलमिल सारा, काया मांहै सब तैं न्यारा ॥
काया मांहै ज्योति अनन्त, काया मांहैं सदा बसन्त ।
काया मांहै खेलें फाग, काया मांहै सब बन बाग ॥
काया मांहै खेलें रास, काया मांहै विविध विलास ।
काया माहैं बाजे बाजै, काया मांहै नाद ध्वनि साजै ॥

काया मांहैं सेज सुहाग, काया मांहैं मोटे भाग ।
काया मांहै मंगलाचार, काया मांहै जै जै कार ।।
काया अगम अगाध है, मांहै तूर बजाइ ।
दादू परगट पीव मिल्या, गुरू मुख रहे समाइ ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, जो ब्रह्माण्ड में है, वही काया में भी है । यह दिखाते हुए पिंड ब्रह्माण्ड की एकता बता रहे हैं कि:-

काया मांहै देख्या नूर :-

साखी :- दादू अलख अल्लाह का, कहु कैसा है नूर० ।

पद :- नूर नूर अव्वलि आखिर नूर० ।

पद :- नूर रह्या भरपूर, अमि रस पीजीये० ।।

काया मांहै रह्या भरपूर :- ब्रह्म को काया में नख से शिखा पर्यन्त पूर्ण रूप से पाया ।

साखी :- जहं आतम तहां राम है, सकल रह्या भरपूर० ।

काया मांहै पाया तेज :- ब्रह्म तेज संतों ने ब्रह्म परिचय में साक्षात देखा ।

साखी :- ज्यूं रवि एक अकास है, ऐसैं सकल भरपूर० ।

साखी :- दादू हीरे हीरे तेज के, सो निरखै त्रिय लोइ० ।

पद :- नैनहुं वाला निरखि करि, दादू घालै हाथ० ।।

साखी :- नैनहुं बिन सूझै नहीं, भूला कतहूं जाइ० ।।

काया मांहै सुन्दर सेज :- सुन्दर शोभायमान परमेश्वर । सेज-हृदय एवं निर्मल भाव रूपी सेज है ।

काया मांहै पुंज प्रकास, काया मांहै सदा उजास :- पुंज :- अतिभारी प्रकास ब्रह्म का काया में देखा, वे नित्य अविनासी प्रकाश है । उसके प्रभाव से सब प्रकास प्रतीत होते हैं ।

काया मांहैं झिलमिलि सारा :- झिलमिलाट ब्रह्म जोति का सार रूप देखा ।

साखी :- दादू नैनू आगै देखिए, आतम अंतर सोइ० ।

काया मांहै सबथैं न्यारा :- देह के गुणों से ब्रह्म न्यारा है ।

साखी :- रहै निराला सब करै, काहू लिप्त न होइ० ।

साखी :- सुर मनहीं सब कुछ करै, यूँ कलि धरी बनाइ० ।

काया मांहै जोति अनन्त :- जिसका अन्त नहीं, ऐसी अपार जोति ।

काया मांहै सदा बसन्त :- सर्व काल आनन्द उत्साह ब्रह्म का सुख ।

साखी :- दादू रंग भरि खेलौं पीव सौं, तहं बारह मास बसंत० ।

काया मांहै खेलै फाग :- फाग ब्रह्म प्रीति ।

पद :- जोति अपार अनन्ता, तहं खेलैं फाग बसन्ता० ।

साखी :- अखंड जोति तहं भयो प्रकास, फाग बसंत जो बारह मांस० ।

काया मांहै सब बन बाग :- बन रोम रोम बाग ब्रह्म से बनाव ।

काया मांहै खेलै रास, काया मांहै विविध बिलास :- रास-आत्म बिलास विविधभाव, जैसे संत हंस-मोती दर्शन संत, मीन जल राम नाम संत, भंवर ब्रह्म कवंल, इस प्रकार काया में माने हैं ।

साखी :- घटि घटि गोपी घटि घटि कान ० ।

साखी :- नाना विधि पिया राम रस, केति भांति अनेक ० ।

काया मांहै बाजे बाजै, काया मांहै नाद धुनि साजै :- अखंड ध्वनि रोम रोम में । तूंही तूँही सदा नाद धुनि साजे, अनहद शब्द में ध्यान लगा ।

पद :- रोम रोम लै लाइ, धुनि ऐसैं सदा अखंड० ।

काया मांहै सेंज सुहाग, काया मांहै मोटे भाग :- हृदय में दर्शन का सुख । बड़े भाग्य से परमेश्वर प्राप्त हुआ ।

पद :- मेरा मन के मन सौं मन लागा० ।

काया मांहै मंगलाचार :- चतुष्टय अन्तःकरण आनंदित होवै ।

साखी :- अरस परस मिलि खेलिए, तब सुख आनन्द होइ० ।

कांया मांहैं जै जै कार :- जय जय ब्रह्मराज सदा आनन्द ।

काया मांहै अगम अगाध :- काया की सौंज अगम अगाध है । भाव भक्ति अगम अगाध है । तैसे ही ब्रह्म जोति अगम अगाध है ।

काया मांहै बाजैं तूर :- अनहद शब्द अखंड बाजै ।

साखी :- दादू परगट पीव मिल्या, गुरू मुखि रहै समाइ० ।

पीव-परमेश्वर, सो कृपा कर प्रत्यक्ष मिला, जिसकी प्राप्ति से सर्व शोक मोह दुख दर्द शारीरिक मानसिक विकार निवृत हुये । ऐसा आनन्दमय पद गुरू वाक्यों में श्रद्धा भक्ति, ध्यान और योग से पाया, तिसमें निश्चित मग्न और लयलीन होकर रहते हैं ।

इस काया बेली ग्रन्थ से, विद्यापति बीरबल को सिकरी में ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव दादू दयाल महाराज ने उपदेश किया था ।

।। इति काया बेली ग्रन्थ टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

।। अथ राग बसंत २३ ।।

364. भजन भद

निर्मल नाउं न लीया जाइ, जाके भाग बड़े सोई फल खाइ ।।टेक।।
मन माया मोह मद माते, कर्म कठिन ता मांहि परे ।
बिखै बिकार मानीं मन मांही, सकल मनोरथ स्वाद खरे ।।
काम क्रोध ये काल कलपना, मैं मैं मेरी अति अहंकार ।
तृष्णा तृपति न मानै कबहूं, सदा कुसंगी पंच बिकार ।।
अनेक जोध रहैं रखवाले, दुर्लभ दूर फल अगम अपार ।
जाके भाग बड़े सोइ फल पावै, दादू दाता सिरजनहार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, सकामी और निष्कामी भक्तों के भजन में भेद का वर्णन कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! सर्व साधारण सकामी प्राणियों से परमेश्वर का निष्काम नाम स्मरण नहीं किया जाता। जिस निष्कामी भक्त का महान भाग्य उदय होता है, वह ही परमेश्वर के निष्काम नाम स्मरण रूप फल का उपभोग करता है। और बहिर्मुख प्राणियों के मन, माया मोह धन आदि मद से मतवाले हो रहे हैं। जो निर्दयता आदिक हिंसक कर्म हैं, उनको कर रहे हैं। तथा मन में विषय, विकारों के सम्पूर्ण मनोरथों को और विषय भोग के सुख को ही सत्य करके मान रहे हैं। ऐसे मनुष्य जो काल रूप काम, क्रोध, नाना प्रकार की कल्पनाएं, "मैं हूं मेरी है" यह उच्चारण करते हुए अति अहंकार को प्राप्त हो कहे हैं। इनकी तृष्णा कभी भी पूरी नहीं होती। पंच ज्ञान इन्द्रियों के विषय, शब्द आदि में फंसकर, सदा कुसंगी हो रहे हैं। क्षमा, वस्तु विचार आदि

अनेक योद्धा रक्षक होने पर भी, अगम अपार प्रभु की प्राप्ति रूप फल प्राप्त होना, अति कठिन है। अतः जिस पुण्य आत्मा साधक का भाग्य बड़ा है, उसी को सिरजनहार परमेश्वर, अपने व्यापक स्वरूप का दर्शन रूप फल देते हैं।

365· विरह

तूं घर आवने माहरें रे, हूं जाऊं वारणे ताहरे रे ।।टेक।।
रैनि दिवस मूनै निरखतां जाये,
वेलो थई घरि आवै रे, वाहला आकुल थाये ।
तिल तिल हूं तो तारी वाटड़ी जोऊं,
एने रे आंसूड़े वाहला, मुखड़ो धोऊं ।
ताहरीं दया करि घर आवे रे वाहला ।
दादू तो तहारो छे रे, मा कर टाला ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, बिरहभाव दिखा रहे हैं कि हे हमारे प्यारे परमेश्वर ! आप हमारे हृदय रूपी घर में आओ नै ! मैं आपके ऊपर न्योछावर हो रही हूं। हे प्रीतम ! हम तो यह रात दिन बिरह दर्द से, आपको देखते देखते, बिता रहे हैं। यह समय मनुष्य देह का, व्यर्था जा रहा है, आपकी प्राप्ति बिना। हे प्यारे ! हम तो व्याकुल हो रहे हैं। तिल तिल कहिए पय पल में, आपके दर्शनों की बाट देख रहे हैं। हे प्यारे ! हम तो अपना मुख आंसुओं के जल से धो रहे हैं। हे दयालु परमेश्वर ! आप अपनी दया करके, हमारे हृदय रूपी घर में आओ। हम तो आपके ही बिरहीजन दास हैं। अब हमसे आह अलग नहीं रहना।

366· करूणा विनती

मोहन दुख दीरघ तूं निवार, मोहि सतावै बारम्बार ।।टेक।।
काम कठिन घट रहै मांहि, ताथैं ग्यान ध्यान दोउ उदै नांहि ।
गति मति मोहन बिकल मोर, ताथैं चिति न आवै नांव तोर ।।
पांचों द्वन्दर देह पूरि, ताथैं सहज सील सत रहैं दूर ।
शुद्ध बुद्धि मेरी गई भाज, ताथैं तुम बिसरे महाराज ।।

क्रोध न कबहु तजै संग, ताथैं भाव भजन का होइ भंग ।
समझी न काई मन मंझारि, ताथैं चरण विमुख भये श्री मुरारि ।।
अन्तरजामी करि सहाइ, तेरो दीन दुखित भयो जनम जाइ ।
त्राहि त्राहि प्रभु तूं दयाल, कहै दादू हरि करि संभाल ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें, बिरह के दर्द से बिनती कर रहे हैं कि हे मन मोहन परमेश्वर ! हमें यह जन्म मरण रूपी विशाल दुखः, अति दुखी कर रहा है । इसको आप ही दूर कर सकते हैं । और यह काम भारी शत्रु, हमारे घट में स्थित हो रहा है । यह आपके ज्ञान और ध्यान को हृदय में उदित नहीं होने देता । इसलिये हे मोहन ! हमारी मति की गति, अति से विकल रहती है । आपका निष्काम नाम स्मरण, हमारे चित में नहीं आ रहा है । और यह पांचो ज्ञान इन्द्रिये, शरीर के भीतर, अपने अपने विषयों को भोगने रूपी पूर्णणतया द्वन्द मचा रही हैं । अतः हमारे हृदय में, सहन निर्द्वन्दता शील ब्रह्मचर्य और सत्य, यह सब ही सदगुण हमसे अलग हो रहे हैं । तथा हमारी शुद्व कहिए पवित्र बुद्वि भी, हृदय से दूर हो गई है । इसलिये हे महाराज परमेश्वर ! हम आपको भूल रहे हैं । और यह क्रोध तो हमारे पीछे अैसा पड़ा है कि एक क्षण भी हृदय से अलग नहीं होता । आपके भाव और भजन जो तत्काल ही भस्म कर देता है । और मन में पाप रूपी कालिमा रहने से हमारे शुद्ध विचार स्थिर नहीं रहते । इसीलिये हे मुरारी भगवान ! आपके चरणों की शरण से हम विमख हो रहे हैं । हे अन्तर की जानने वाले प्रभु, अब आप ही सहाय नाम हमारी रक्षा करो । हम तो आपके ही दीन गरीब दास हैं । आपकी प्राप्ति के बिना, अत्यन्त दुखी हो रहे हैं । और यह मनुष्य जन्म हमारा वृथा जा रहा है । हे प्रभु ! आप अत्यन्त दयालु हो । हम आपकी बार बार शरण पड़ते हैं । आप हमारी रक्षा करो, रक्षा करो ।

367. मन स्थिरार्थ बिनती

मेरे मोहन मूरति राखि मोहि, निस बासुरि गुन रमौं तोहि ।।टेक।।
मन मीन होइ ज्यूं स्वादि खाइ, लालचि लागो जलथैं जाइ ।
मन हस्ती मातो अपार, काम अंध गज लहै न सार ।।
मन पतंग पावक परै, अग्नि न देखै ज्यूं जरे ।
मन मृगा ज्यूं सुनै नाद, प्राण तजै यूं जाइ बाद ।।

मन मधुकर जैसे लुबधि बास, कवंल बंधानो होइ नास ।
मनसा बाचा सरण तोर, दादू को राखो गोबिन्द मोर ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें मन स्थिरार्थ विनती करते हैं कि हे हमारे मन मोहन इष्टदेव परमेश्वर ! हमको आप अपने स्वरूप से लगाकर रखिये । और मैं रात दिन आपके गुणगान करता हुआ आपके स्वरूप में रमूं, ऐसी कृपा करिये । जैसे मछली स्वाद वश, गले में कंटक फंसाकर, जल से वियोग होकर मर जाती है, वैसे ही यह हमारा मन, आपके स्वरूप को त्यागकर, विषियों में दौड़ता है । जैसे कामांध हाथी, काले कागज की हथनी को देखकर, स्पर्श अर्थ गढ्ढे में पड़ता है, वैसे ही यह मन, आपके स्वरूप ज्ञान को त्यागकर, कामवश हो बन्धन में पड़ता है । जैसे पतंग दीप ज्योति रूप अग्नि में पड़ कर जलता है, वैसे ही यह मन, सुन्दर रूप आदि को देखकर, उसमें प्रीति करके, मोह रूप अग्नि में जलता है । जैसे मृग बरवा राग सुनकर प्राण गमा देता है, वैसे ही यह मन स्त्री आदि के प्यार भरे बचन सुनकर, अपना सर्वस्व खो बैठता है । जैसे भंवरा, गंध के लोभ से, सूर्यमुखी कमल पर जाकर बैठता है और कमल कोश बन्द होने पर, उसी में बन्ध होकर नाश हो जाता है, इसी प्रकार यह मन गंध आधीन होकर, अत्यन्त दुखी होता है । हे हमारे गोविन्द प्रभु ! हम मन बचन से आपकी शरण हैं । मेरे मन को आपके स्वरूप में स्थिर करके, उसकी चंचलता रूप दुःख से हमारी रक्षा करिये ।

368. उपदेश

बहुरि न कीजे कपट काम, हिरदै जपिये राम नाम ।।टेक।।
हरि पाखैं नहिं कहूं ठाम, पीव बिन खड़भड़ गावं गावं ।
तुम राखो जियरा अपनी माम, अनत जित ~~[illegible]~~ जाय रहो विश्राम ।।
कपट काम नहीं कीजे हांम, रहु चरण कवंल कहु राम नाम ।
जब अंतरजामी रहै जाम, तब अखै पद जन दादू प्राम ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! यह मनुष्य जन्म पाकर, अब कभी भी कपट के काम नहीं करना । और हृदय में राम नाम का स्मरण करते रहना । क्योंकि हरि स्मरण के बिना, कहीं भी शान्ति का स्थान नहीं है । पीव के स्मरण के बिना, गांव गांव कहिए सभी शरीरों में, अशान्ति व्याप्त रहती है । हे जीव ! तूं अपना ममत्व, स्नेह पूर्वक प्रीति, प्रभु में ही लगाकर रहै । अन्यत्र जाकर कहीं भी तुम शांति और विश्राम को प्राप्त नहीं होगे । और धोखा, कपट के कामों में, हिम्मत नहीं करना अर्थात्

शामिल नहीं होना । अपने हृदय में प्रभु का नाम स्मरण करते रहना । जब एक अन्तर्यामी का ही आठों याम स्मरण बना रहै, तब वह साधक, अक्षय पद को प्राप्त होता है ।

दोहा :- नृपति एक हरि भक्त हो, त्रिया कही दई सैन ।
ता अंग ते तिस खोपड़ि, लात सही गुरू नैन ।।

दृष्टान्त :- एक राजा हरि भक्त थे । वह घोड़े पर सवार होकर आखेट को गये । जब वापिस आ रहे थे, रास्ते में शमशान पड़ते थे । वहां एक मनुष्य की खोपड़ी पड़ी थी । राजा ने उसको उठा कर देखा, तो उसमें लिखा था "हुआ है क्या ? होगा तो अब ।" राजा सोचने लगा कि यह लोगों की ठोकरों से ठुकराई जा रही है । और क्या होगा अब ? यह देखना है । ऐसा सोचकर, उस खोपड़ी को ले आया और अपने कमरे में रख दी । रानी ने एक रोज राजा के कमरे में देखा कि अलमारी में एक खोपड़ी रखी है । दासी (नौकरानी) आई । रानी ने पूछा :- यह खोपड़ी राजा जी ने क्यों रखी है ? नौकरानी बोली :- महारानी जी, यह राजा साहब, आपके ऊपर कुछ जादू टोना करके रख रखी है । रानो बोली :- फिर क्या करें? इसका अपन ! नौकरानी :- इसको पीस कर, नाले के जरिये, पानी से बहा दें । रानी :- ठीक है, ऐसा ही करो । नौकरानी ने उसको पीसकर, नाले के द्वारा बहा दिया । राजा आये । अलमारी में खोपड़ी नहीं दिखाई दी । राजा ने रानी से खोपड़ी के बारे में पूछा, कि खोपड़ी कहां गई ? रानी ने उपरोक्त सब वृतान्त राजा से कह सुनाया । राजा हंसने लगे । रानी :- आप कैसे हंस रहे हैं ? राजा बोले :- उस खोपड़ी में यह लिखा हुआ था, "हुआ है क्या ? होगा तो अब ।" वही देखने को मैंने यहां लाकर रखी थी । वह इतना और होना बाकी था । मरने के बाद भी कपटी मनुष्य की खोपड़ी की ऐसे दुर्गति होती है ।

---

369. परिचय प्राप्ति

तहं खेलौं नित हीं पीव सूं फाग, देखि सखि री मेरे भाग ।।टेक।।
तहं दिन दिन अति आनन्द होइ, प्रेम पिलावै आप सोइ ।
संगियन सेती रमौं रास, तहं पूजा अरचा चरन पास ।।
तहं बचन अमोलिक सब ही सार, तहं बरतै लीला अति अपार ।
उमंगि देइ तब मेरे भाग, तिहि तरवर फल अमर लाग ।।

अलख देव को जाणैं भेव, तहं अलख देव की कीजै सेव ।
दादू बलि बलि बारम्बार, तहं आप निरंजन निराधार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, प्रत्यक्ष प्रीति का परिचय दिखा रहे हैं कि हे संत रूपी सखी ! देखो, हमारा कैसा उत्तम भाग्य उदय हुआ है कि जो ध्यानावस्था में, मैं अपने प्रियतम प्रभु के साथ, प्रतिदिन होली के उत्सव के समान एकत्व प्रेम का खेल खेलती हूं । हृदय प्रदेश में दिन दिन अति आनन्द बरत रहा है । वह आ स्वयं परमेश्वर हमको, अपने व्यापक स्वरूप का दर्शनामृत रूप प्रेम पिला रहे हैं । अब तो हम अपनी मन इन्द्रिये रूप सहेलियों के सहित, उनके स्वरूप में रमण करते हैं । और हृदय में ही, उनके तेज पुंज रूपी चरणों की पूजा करके, हमारी वृत्ति वहीं निवास करती है । वहां पर जीव ब्रह्म की एकता की फुरणा रूप बचन, अमोलिक सार रूप, अन्तर्वृत्ति से सुनते हैं । वहां अपार स्वरूप के साथ, अपार रूप से ही लीला खेलते हैं । हृदय के भीतर ही, ज्ञान रूप उमंग उठती है । वहां हम अपने भाग्य की सराहना करते हैं, क्योंकि हमारे श्रद्धा रूपी तरवर के तब अमर फल लगता है । मन इन्द्रियों का अविषय, उस अलख देव का, ऐसा भेद कोई ब्रह्मनिष्ठ मुक्तजन ही जानते हैं । हे जिज्ञासुओ ! उपरोक्त प्रकार से, उस अलख देव की अन्तःकरण में, आराधना रूप सेवा करिये । हम उस अलखदेव की बारम्बार बलिहारी जाते हैं, क्योंकि वह आप निरंजन स्वरूप और निराधार हैं । सम्पूर्ण नाम रूप प्रपंच उनके 'आधार' कहिए आश्रय है । वह स्वयं निराश्रय हैं ।

370. परिचय सुख वर्णन

मोहन माली सहज समाना, कोई जाणैं साधु सुजाना ।।टेक।।
काया बाड़ी मांहै माली, तहां रास बनाया ।
सेवग सौं स्वामी खेलन कौं, आप दया करि आया ।।
बाहरि भीतर सर्व निरंतरि, सब में रह्या समाई ।
परगट गुप्त गुप्त पुनि परगट, अविगत लख्या न जाई ।।
ता माली की अकथ कहाणी, कहत कहि नहिं आवै ।
अगम अगोचर करत अनन्दा, दादू ये जस गावै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परिचय सुख का वर्णन करते हैं कि हे मन मोहन ! इस संसार रूप बगीचे को रचने वाले, आप ही इस बगीचे में समाये हुए हो । आपके व्यापक स्वरूप को कोई चतुर विवेकी

मुक्त संत ही जानते हैं । इस काया रूपी बाड़ी के भीतर ही, हे मन मोहन रूप माली ! आप अपने भक्तों के साथ, रास लीला बनाते हो । हे स्वामी ! मन मोहन ! आप अपनी दया करके, अपने भक्तों के साथ, रास खेलने को स्वयं पधारते हो । आप ही सबके बाहर और भीतर निरन्तर अन्तराय रहित सबमें व्यापक हो रहे हो रहे हो । ज्ञानियों के तो आप प्रगट ही और अज्ञानियों के गुप्त हो । और जो अज्ञानी आपके अद्वैत संतो के सतसंग में आते हैं, उनके हृदय में भी फिर आप प्रगट हो जाते हो । हे अव्यक्त ! आपकी समर्थाई शक्ति को कोई जान नहीं पाते । हे जिज्ञासुओ ! उस व्यापक मन मोहन माली की कथा अकथ है, कहने में नहीं आती । इन्द्रियों का अविषय अगम है । मुक्त पुरुष उस आनन्द स्वरूप में अभेद होंकर, सदैव आनन्द स्वरूप हो रहें हैं । और उसका एकत्व भावना रूप यश गाते रहते है ।

371. परिचय

मन मोहन मेरे मनही माँहिं, कीजै सेवा अति तहां ।।टेक।।
तहं पायो देव निरन्जना, परगट भयो हरि ये तना ।
नैननहिं देखौं अघाइ, परगट्यो है हरि मेरे भाइ ।।
मोहि कर नैनन की सैन देई, प्राण मूंसि हरि मोर लेई ।
कब उपजै मोकौं इहै बानि, निज निरखत हौं सारंग पानि ।।
अंकुर आदैं परगट्यो सोइ, बैन बान ताथैं लागै मोहि ।
शरणै दादू रह्यो जाइ, हरि चरन दिखावै आप आइ ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, साक्षात्कार परिचय स्थिति बता रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह परमेश्वर मन मोहन भक्तों के मन को, अपने स्वरूप में मोहित करने वाले, हमारे मन रूप मन्दिर में ही, निवास करते हैं । तहां हृदय में ही, उनकी एकत्व भावना रूप से आराधना करिये । वह हरि निरन्जन देव, जिसकी प्राप्ति के लिये, अनेक साधन करते थे, वह तो अब इस तन में, हृदय प्रदेश में प्रगट होकर दर्शन दे रहे हैं । अब तो हम ज्ञान रूप नेत्रों से तृप्त होकर, व्यापक स्वरूप का दर्शन कर रहे हैं । वह हरि हमारे अखंड भाव से ही प्रगट हुए हैं । हमको अब तो वह ध्यान अवस्था में, अपने ज्ञान रूप नेत्रों की और हेत रूप हाथ की सैन देते हैं, अपने व्यापक स्वरूप में ही स्थिर रहने को । और हमारे हृदय प्राणों को अपनी तरफ आर्कषित कर लिया है । अब तो हमारे हृदय में, उनकी अद्वैत बाणी उत्पन्न होती है, तभी से हम उन सारंग पाणी को हम निजरूप करके ही देख रहे हैं । हमारा ऐसा कोई पुण्य का अंकुर उत्पन्न हुआ है आदि का, जो उसके एकत्व भावना रूप बचनों के बाण, हमारे हृदय में लगे हैं, जिससे अब हम अन्तर्मुख वृत्ति से, हृदय में

उनकी शरण जाकर स्थिर हुए हैं। तब वह हरि कृपा करके प्रगट होकर अपने तेज पुंज रूप चरणारबिन्दों का, दर्शन करा रहे हैं।

372. थकित निश्चल

मतिवाले पंचो प्रेम पूरि, निमख न इत उत जांहि दूर ।।टेक।।
हरि रस माते दया दीन, राम रमत व्है रहे लीन ।
उलटि अपूठे भये थीर, अमृत धारा पीवहि नीर ।।
सहजि समाधी तजि बिकार, अविनासी रस पीवहि सार ।
थकित भये मिलि महल मांहि, मनसा बाचा आन नांहि ।।
मन मतिवाला राम रंग, मीलि आसणि बैठे एक संगि ।
सुस्थिर दादू एक अंग, प्राण नाथ तहं परमानन्द ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव अब इसमें, कहते हैं कि संसार भ्रमण से हारकर, हमारे मन इन्द्रिये परमेश्वर के स्वरूप में स्थिर हो रहे हैं। अब हम हमारे मन इन्द्रिये परमेश्वर के एकत्व स्वरूप में मतवाले होकर, अपनी पंच ज्ञानेन्द्रियों को भी उनके प्रेम में पूर्णतया लगा ली है। अब यह मन इन्द्रिये, एक क्षण भी प्रभु से अलग होकर, इस लोक परलोक के मायिक सुखो में नहीं जाते हैं। उन परमेश्वर की कृपा से ही, हरि रस में कहिए उनकी प्रेमा भक्ति रूप आनन्द में मतवाले होकर, उनकी दया से, नाम स्मरण में लग रहे हैं और रमता राम में रमकर लीन हो रहे हैं। जब से हमने संसार की तरफ से इनको उलट कर, हृदय में लाये, तब से परमेश्वर के स्वरूप में ही स्थिर हो रहे हैं। और अमृतधारा रूप दर्शनों का नीर पी रहे हैं। अब तो सब विकारों को त्यागकर, सहज समाधि में, अविनाशी स्वरूप का दर्शन रूपी, सार रस पीते हैं। हृदया रूपी महल में चेतन्य स्वरूप में अभेद होकर, थकित हो रहे हैं। इधर उधर कभी भी नहीं जाते। हम सत्य कहते हैं, मन बचन कर्म से, कि परमेश्वर के सिवाय, हमारे और कोई भी नहीं है। हमारा मन भी राम के रंग में मतवाला होकर, एक हृदय रूपी आसण पर बैठा है। जहां 'प्राणनाथ' कहिए प्राणों के स्वामी, सत्ता स्फुर्ति देने वाले, परम आनन्द स्वरूप में ही, अब स्थिर हो रहा है।

।। इति राग बसंत टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

॥ अथ राग भैरूं २४ ॥

373. सतगुरू तथा नाम महिमा

सतगुरू चरणा मस्तक धरणा, राम नाम कहि दूतर तिरणा ॥टेक॥
अठ सिधि नव निधि सहजैं पावै, अमर अभै पद सुख में आवै।
भक्ति मुक्ति बैकुंठा जाइ, अमर लोक फल लेवै आइ।
परम पदारथ मंगल चार, साहिब के सब भरे भंडार।
नूर तेज हैं जोति अपार, दादू राता सिरजनहार।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, सतगुरू और नाम की महिमा दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! सत्य उपदेश के देने वाले सतगुरू के पवित्र चरणार्बिन्दों में, अपना मस्तक हमेशा रखिये अथवा अपने मन के आपा अभिमान रूपी सिर को चढाइये। और राम नाम का स्मरण करता हुआ, इस दुतिर कठिन संसार समुद्र से पार हो जाइये। इस प्रकार उस उत्तम जिज्ञासु को आठ सिद्दि और नौ निद्दि स्वभाव से ही प्राप्त होती रहती हैं, परन्तु वह उन में लोलुप नहीं होता है। भक्ति ग्यारह प्रकार की, मुक्ति चार प्रकार की, और बैकुंठ के अभिमानी देव, यह सब ही शरीर रूप से उनका आकर स्वागत करते हैं और कहते हैं कि आप हमको अपना लो। और अमर लोक का मोक्षरूपी फल आप चलकर लीजिये। चार पदार्थ अथं धर्म काम मोक्ष रूप साहिब के नाम में उपरोक्त सभी वस्तुओं के भंडार भरे हैं। परन्तु जो ब्रह्मतेज शुद्ध स्वरूप अपार है। उसी के अभेद निश्चय रूप नाम स्मरण में राते रत्त और माते मतवाले रहने वाले किसी प्रकार की भी, अपने हृदय में वासना नहीं रखते।

374. उत्तम ज्ञान स्मरण

तन ही राम मन ही राम, राम हिरदै रमि राखि ले ।
मनसा राम सकल परिपूरण, सहज सदा रस चाखि ले ।।टेक।।
नैना राम बैना राम, रसना राम संभारि ले ।
श्रवना राम सन्मुख राम, रमता राम बिचारि ले ।।
सांसै राम सुरतैं राम, सबदैं राम समाइ ले ।
अंतरि राम निरंतरि राम, आत्मराम ध्याइ ले ।।
सर्वै राम संगै राम, राम नाम ल्यौ लाइ ले ।
बाहरि राम भीतरि राम, दादू गोविन्द गाइ ले ।।

टीका :-ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उत्तम ज्ञान एवं उत्तम स्मरण कह रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! हमारे तन में और मन में, एक अद्वितीय राम ही, स्थिर हैं । तुम भी हृदय में, रमने वाले राम में, अपने को स्थिर कर लो । वह राम जी मन मनसा में सर्वत्र परिपूर्ण रूप से व्यापक हैं। तुम निर्द्वन्द होकर, सदा अन्तर्मुख वृत्ति से, उनका नाम स्मरण रूपी रस को चाखिये । वह राम नेत्रों में नारायण रूप से निवास करते हैं। बचन रूप से उसी में निवास करते है । उसी व्यापक राम को अपनी जिह्वा से रटिये । और वह श्रवण रूप से श्रोत्र में विराजते हैं अथवा श्रोत्र से उन्हीं का यश श्रवण करिये । वह राम ही ब्रह्मवेताओं के सन्मुख, ब्रह्म रूप से भान हो रहे हैं । तुम भी उस रमने वाले राम के स्वरूप का विचार करो । और अपने श्वांस में, सुरति में, गुरू शब्द में, व्यापक राम में, अपने आपको स्थिर कर लें । वह राम सबके अन्तर, निरन्तर रूप आत्म स्वरूप से स्थिर हो रहे हैं । उन्हीं का ध्यान कर ले । हे जिज्ञासु ! यह सब कुछ राम ही है और राम ही सबके साथ व्यापक हो रहे हैं । इस प्रकार उस राम को जानकर, अखंड लय लगाइये । इस शरीर के बाहर भी और भीतर भी, वह एक गोबिन्द स्वरूप राम ही व्यापक हो रहे हैं । ऐसे एक निष्ठा होकर, उसका गायन करिये ।

375. उत्तम स्मरण

ऐसी सुरति राम ल्यौ लाइ, हरि हिरदै जनि बिसरि जाइ ।।टेक।।
छिन छिन मात संभारै पूत, बिंद राखै जोगी औधूत ।
त्रिया कुरूप रूप कौं रटै, नटणी निरखि बांस बरत चढै ।।

कछिब दृष्टि धरै ध्यान, चत्रिग नीर प्रेम की बान ।
कूंजी कुरलि संभालै सोइ, भृंगी ध्यान कीट को होइ ।।
श्रवणों सबद ज्यूं सुनै कुरंग, जोति पतंग न मोड़ै अंग ।
जल बिन मीन तलफि ज्यों मरै, दादू सेवग ऐसै करै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें उत्तम स्मरण दिखाते हैं कि हे जिज्ञासु ! उस व्यापक राम के स्वरूप में अपनी ऐसी वृत्ति दृढ़ लगाओ कि वृत्ति बाह विषयों में जाकर, हरि का नाम स्मरण कभी न भूल सके । निरन्तर हृदय में स्मरण बना रहै । जिस प्रकार माता अपने शिशु को बराबर संभालती रहती है । और जैसे अवधूत मन को धूतने वाला योगी, अपने वीर्य बिन्दु को शरीर में धारण किये रहता है । कुरूप स्त्री, रात दिन सुन्दर रूप प्राप्त करने की इच्छा से, नाना साधन करती है । तथा नटणी बांसों पर बंधे हुए ‘बरत’ कहिए रस्से पर चढ़ कर, उस रस्से को सुरति से देखती है । कछवी अपनी दृष्टि से, तीर पर रखे हुए अंडों को सेती है, वैसे ही चातक पपैया स्वांति जल से प्रेम करता है । रात दिन पीव पीव रटता है, इस रटना का त्याग नहीं करता । ऐसें ही कुंज पक्षी अपनी वृत्ति से बोलती हुई अंडों का ध्यान करती है । पीले रंग की लट, भृंगी का शब्द सुनकर, भृंगी का ध्यान करती है । पशु मृग एक दिल होकर, सारंग राग का शब्द सुनता है । इसी प्रकार पतंग, दीपक ज्योति से अपने शरीर को न हटाकर, उसी से प्रीति करता है, और मछली जल के बिना, तत्काल प्राण त्यागती है । इस प्रकार उपरोक्त सभी प्रेमियों की भांति, निष्कामी अनन्य भक्त भी, परमेश्वर का अखंड प्रीति से, नाम स्मरण करते हैं । यही अति उत्तम स्मरण कहा जाता है ।

376. स्मरण फल

निरगुण राम रहै ल्यौ लाइ, सहजैं सहज मिलै हरि जाइ ।।टेक।।
भौ जल ब्याधि लिपै नही कबहूं, करम न कोई लागै आइ ।
तीन्यूँ ताप जरै नहिं जियरा, सो पद परसै सहज सुभाइ ।।
जनम जरा जोनि नहिं आवै, माया मोह न लागै ताहि ।
पांचौ पीड़ प्राण नहीं व्यापै, सकल सोधि सब इहै उपाइ ।।
संकट संसा नरक न नैनहुं, ताको कबहूं काल न खाइ ।
कंप न काई भै भ्रम भागै, सब विधि ऐसी एक लगाइ ।।

सहज समाधि गहै जें दिढ करि, जासौं लागै सोइ आइ।
भृंगी होइ कीट की नांही, हरि जन दादू एक दिखाइ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, स्मरण का फल बता रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! निर्गुण ब्रह्म स्वरूप राम के स्मरण में, अपनी वृत्ति को लगाकर रहै, तो सहज सहज उस व्यापक चेतन्य के स्वरूप में अभेद हो जाते हैं। और संसार के जन्म मरण रूपी दुःख में, वह फिर लिपायमान नहीं होते और कोई भी सकाम कर्म का बन्धन या संचित कर्मों का बन्धन स्पर्श नहीं कर पाते। तीनों ताप अध्यात्म, अधिदैविक अधिभौतिक, में जीव कभी भी तपायमान नही होता, और सहज स्वभाव से ही, उस निर्वाण पद का जीव, स्पर्श करता है। तथा जन्म मरण और जर जर अवस्था को प्राप्त नहीं होता। न कुम्भी पाक नरक में बास करता है, और न सुचिमुख योनी से जन्म ही लेता हैं। माया और माया का कार्य, मोह ममता आदि से भी, वह मुक्त हो जाता जाता है। पंच ज्ञानेन्द्रियों के विषय वासना रूपी दुःख प्राणधारी को फिर स्पर्श नहीं करते। इस प्रकार तन मन की सम्पूर्ण सामग्री को शुद्ध करने का, नाम पवित्र करने का, यहीं एक उपाय है। किसी प्रकार शंसय आदि संकट नहीं व्याप्ता है। और फिर नरक को तो कभी नेत्रों से भी नहीं देखता है। उस पुरूष को फिर कभी भी काल भक्षण नहीं कर पाता। कोई भी प्रकार का पाप रूपी कालिमा नहीं रहती। भय भ्रम सम्पूर्ण अन्तःकरण से निवृत्त हो जाते हैं। इस प्रकार उस एक चेतन्य स्वरूप परमेश्वर में ही, अपनी वृत्ति को स्थिर करैं। यही एक आत्म कल्याण की विधि है। सहजावस्था रूप समाधि में, जो दृढ़तापूर्वक उसके नाम स्मरण को ग्रहण करता है अर्थात् जिसके चिन्तन में लगा है, वही फिर प्रगट हो जाता है। जैसे कोट, भृंग का शब्द सुनकर, भृंग रूप हो जाता है, इसी प्रकार साधक पुरूष, गुरू के शब्द को ग्रहण करके, हरि रूप हो जाता है। अर्थात् हरि रूप दिखाई पड़ता है।

377. आशीर्वाद

धनि धनि तूं धनि धणी, तुम्ह सौं मेरी आइ बणी ॥टेक॥
धनि धनि तूं तारै जगदीस, सुर नर मुनि जन सेवै ईस।
धनि धनि तूं केवल राम, सेस सहस मुख ले हरि नाम॥
धनि धनि तूं सिरजनहार, तेरा कोई न पावै पार।
धनि धनि तूं निरंजनदेव, दादू तेरा लखै न भेव॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमैं आशीर्वादात्मक मंगल दिखा रहे हैं कि हे सत्यरूप परमेश्वर ! आपको धन्य है । हे चेतन रूप परमेश्वर, आपको धन्य है । हे आनन्द स्वरूप परमेश्वर, आपको धन्य है । आप ही हमारे अधिष्टान रूप स्वामी हो । आप से ही हमारी, अबके गुरू उपदेश द्वारा, बात बनी है । हे जगत् के ईश्वर ! अपने आत्मीय जनों को इस संसार से आप ही, तारने वाले हो । आपको धन्य है, धन्य है । हे नाथ ! आपको सुर-देवता, नर-नारद आदि, मुनिजन, हे ईश्वर ! यह सभी आपकी सेवा में लग रहे हैं । हे शुद्ध स्वरूप निर्गुण राम ! आपको धन्य है, धन्य है । शेष जी भी, एक हजार मुख और दो हजार जिह्वाओं से आपके नामों का उच्चारण करते हैं । हे सिरजनहार ! सबकी उत्पत्ति पालन संघार के करने वाले प्रभु, आपको धन्य है धन्य है । आपके स्वरूप और नामों का, किसी ने भी पार नहीं पाया है । हे निरंजन देव ! आपको धन्य है, धन्य है । हम आपके स्वरूप का पूर्णतया भेद नहीं पा सके हैं ।

378. भयभीत भयानक

का जाणौं मोहि काले करसी, तन हि ताप मोहि छिन
न बिसरसी ।।टेक।।
आगम मोपे जान्यूं न जाइ, इहै बिमासण जियरे मांहि ।
मैं नहि जानों क्या सिर होइ, ताथैं जियरा डरपै रोइ ।
काहू थै ले कछु करै, ताथैं मइया जीव डरैं ।
दादू न जाणैं कैसे कहै, तुम सरणागति आइ रहै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, भयानक संसार से डरकर, उसका निर्देश करते हैं कि हे संतो ! न मालुम उस प्रभु की प्राप्ति के बिना, काल हमको पकड़कर, क्या क्या त्रास देगा और क्या बनावेगा ? यह दुख हमारे तन में सदा बना रहता है । एक क्षण भी, हम इसको नहीं भूल रहे हैं । आगे की बात हमसे जानी नहीं जाती, कि हमारा क्या होगा ? यह विचार हमारे हृदय में जीव करता ही रहता है । हम नहीं जानते कि हमारे कर्मों का क्या दंड, काल हमारे सिर पर देगा । काल की त्रास को याद कर करके, हमारा जीव रात दिन रोता है । कर्म फल का विचार करता हुआ काल, मनुष्य शरीर से लेकर, न मालूम काल चौरासी में कौनसा शरीर देवै ? इसीलिये हे संतो ! हमारा जीव डरता रहता है । हे नाथ ! हम तो उपरोक्त किसी भी बात को ठीक तरह से नहीं जान पाए हैं । केवल आपके चरणों की शरण में हम तो पड़े हैं ।

379.

का जाणौं राम को गति मेरी, मैं विषयी मनसा नहीं फेरी ।।टेक।।
जे मन मांगै सोई दीन्हा, जाता देखी फेरि नहि लीन्हा ।
देवा द्वन्दर अधिक पसारे, पांचों पकरि पटकि नहिं मारे ।
इन बातन घटि भरे बिकारा, तृष्णा तेज मोह नहिं हारा ।
इनहिं लागि मैं सेव न जाणी, कहे दादू सो कर्म कहाणी ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, भयानक संसार से डरकर, उसका निर्देश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हम राम की गति विधि को क्या जानै ? हम तो विषय वासनाओं में आसक्त हो रहे हैं । अपने मन और मनसा को कभी भी विषयों की तरफ से अन्तर्मुख नहीं किये । जो जो हमारे मन ने संसारिक पदार्थ मांगे, वही वही हम इसको दिए हैं और विषयों में जाता देखकर भी, इसको कभी नहीं रोका और न परमेश्वर का नाम स्मरण ही किया । हे देव परमेश्वर ! हमने तो नाना प्रकार के राग द्वेष आदि द्वन्दों का पसारा ही पसारा है । इन पांच ज्ञानेन्द्रियों को, पांचों विषयों से हटा कर, एकाग्र नहीं कर सके । हे नाथ ! इन्हीं बातों से और सम्पूर्ण विकारों से हमारा अन्तःकरण तो पूर्ण हो रहा है । तृष्णा का वेग तो बहुत ही ज्यादा बढ़ता जा रहा है और मोह को तो कभी भी हम जीत नहीं पाये हैं । हे परमेश्वर ! इनसे लगकर, हम आपकी सेवा नहीं कर सके । यह हमने अपने कर्मों की कथा, आपको सुनाई है प्रभु ।

380.

डरिये रे डरिये, तार्थैं राम नाम चित्त धरिये ।।टेक।।
जिन ये पंच पसारे रे, मारे रे ते मारे रे ।
जिन ये पंच समेटे रे, भेटे रे ते भेटे रे ।

कछिब ज्यूं करि लीये रे, जीये रे ते जीये रे।
भृंगी कीट समाना रे, ध्याना रे यहु ध्याना रे।
अजा सिंघ ज्यूं रहिये रे, दादू दरसन लहिये रे।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, भयानक संसार से डरकर, उसका निर्देश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! उस समर्थ न्यायधीश परमेश्वर से डरिये, क्योंकि वह सबके कर्मों का, दूध पानी जैसा न्याय करता है। इस लिये निसिद्ध कर्मों को छोड़कर, राम नाम का चित्त से स्मरण करिये। देख, वह समर्थ कैसा है ? जिसने पंच भूतों का यह सारा पसारा, पसारा है। इसमें जो जैसा कर्म करता है, उसके अनुसार ही, यमराज उनको पुनः पुनः मारते हैं। और जिसने मनुष्य जन्म प्राप्त करके, इन पंच ज्ञानेन्द्रियों को पांचों विषयों से समेट लिए कहिए एकाग्र कर लिये, वे ही परमेश्वर से अभेद हुए हैं। जैसे कछुवा बाहर के भय से, अपनी पांचों ज्ञानेन्द्रियों को अपनी खोपरी में ले जाता है, वैसे ही इन पांच ज्ञानेन्द्रियों को, जिसने एकाग्र करी है, वही सदा जीवन भाव को प्राप्त होते हैं। जैसे कीट भृंग का ध्यान करके, भृंग रूप हो जाता है, ऐसे ही उत्तम जिज्ञासु, ब्रह्म का ध्यान करके, ब्रह्मरूप हो जाते हैं। परन्तु जैसे बकरी शेर से डरकर रहती है। इसी प्रकार सम्पूर्ण पाप ताप आदि निसिद्ध कर्मों से डरते रहना, तभी परमेश्वर के दर्शन प्राप्त कर सकोगे।

381- हरि प्राप्ति दुर्लभ

तहं मुझ कमीन की कौण चलावै, जाको अजहूं मुनि जन महल न पावै।
शिव विरंचि नारद जस गावै, कौन भांति करि निकट बुलावै।
देवा सकल तेतीसौं कोटि, रहे दरबार ठाढ़े करि जोरि।
सिध साधिक रहे ल्यौ लाइ, अजहूं मोटे महल न पाइ।
सब थैं नीच मैं नांव न जाना, कहै दादू क्यूं मिलै सयाना।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर प्राप्ति कठिन बता रहे हैं कि हे संतो ! उस समर्थ परमेश्वर के पास हमारी बात कौन चलावैंगे ? जिसका स्वस्वरूप महल, अनेक साधन साधते हुए, मुनिजन अभी तक भी प्राप्त नहीं किया है । शिव जी, ब्रह्मा जी, नारद आदि देवऋषि भी, जिनका यश गा रहे हैं । वह मुझे किस प्रकार अपने समीप बुलाएंगे ? जिनके दरबार के द्वार पर, तेतीस कोटि सब देवता हाथ जोड़े खड़े रहते हैं और जय जयकार करते हैं । सिद्ध साधक भी अपनी वृत्ति, जिनके स्वरूप में लगाकर, खड़े हो रहे हैं । किन्तु अभी तक भी हम, जिसके स्वरूप में सम्पूर्ण संसार स्थिर हो रहा है, उसके स्वरूप को हम नहीं प्राप्त कर सके हैं । और मैं तो उनके तुच्छ से भी तुच्छ बन्दों में से हूं और नाम स्मरण की रीति कुछ भी नहीं जान पाई है । फिर वह परम चतुर परमेश्वर मुझ से कैसे मिल सकैंगे ? उनका मुझे प्राप्त होना कठिन ही प्रतीत होता है ।

382. करूणा विनती

तुम्ह बिन कहु क्यों जीवन मेरा, अजहूं न देख्या
दरसन तेरा ।
होइ दयाल दीन के दाता, तुम पति पूरण सब
विधि सांचा ।
ज्यौं तुम्ह करो सोई तुम्ह छाजै, अपने जन कौं काहे
न निवाजै ।
अकरन करन ऐसैं अब कीजै, अपनो जानी करी
दरसन दीजै ।
दादू कहै सुनहुं हरि सांई, दरसन दीजै मिलो
गुसांई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, दुखपूर्वक दर्शनार्थ विनय कर रहे हैं कि हे समर्थ परमेश्वर हमारे स्वामी ! आपके नाम स्मरण बिना, कहो हमारा जीवन कैसे बीतेगा ? बहुत सी आयु तो हमारी बीत गई है, परन्तु अभी तक हम आपका दर्शन नहीं कर सके हैं । हे अपने दीन गरीब भक्तों को दर्शन देने वाले दाता ! हम पर भी आप दया करो । आप सत्य स्वरूप सबमें परिपूर्ण, और हे पति ! सब प्रकार सत्य का पालन करने वाले हो । जैसा आप कर्म करते हो, वैसा ही आपको सुशोभित होता है, क्योंकि आप समर्थ हैं । तो

फिर अब आप अपने जन पर क्यों नहीं दया करते हो ? जो जीव से नहीं करने योग्य कार्य है, उसको आप ही करने वाले हो । इसलिये अब आप ही हमको दर्शन दीजिए। हम अपने बल करके, आपका दर्शन नहीं कर सकते । आपकी कृपा से ही दर्शन पा सकते हैं ।

383. उपदेश चेतावनी

कागा रे करंक परि बोलै, खाइ मांस अरु लग ही डोलै ।।टेक।।
जा तन कौं रचि अधिक संवारा, सो तन ले माटी मै डारा ।
जा तन देख अधिक नर फूलै, सो तन छाडि चल्या रे भूले ।
जा तन देखि मन में गर्वाना, मिलि गया माटी तजि अभिमाना ।
दादू तन की कहा बड़ाई, निमख मांहि माटी मिलि जाई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, उपदेश द्वारा चेत कराते हैं कि हे जिज्ञासु ! जैसे कऊवा मृतक, पशु के शरीर रूप पिंजरे पर बैठकर बोलता हैं । मांस खाता है और उसके आस पास ही घूमता है । इसी प्रकार विषिया सक्त संसारीक प्राणी, स्त्री आदि परमेश्वर से विमुख, मृतक तुल्य शरीर का स्नेह रूपी मांस खाते हैं और उसके आस पास ही कव्वे की भांति उसके लालन पालन में लगे रहते हैं । हे अज्ञानी ! जिस मनुष्य शरीर को उस समर्थ परमेश्वर ने, चौरासी के शरीरों से अधिक सुन्दर रचा है, उसको तूं प्राप्त करके, परमेश्वर की भक्ति के बिना, विषय वासना रूप मिट्टी में मिला रहा है, नाम खो रहा है । जिस अपने शरीर को देखकर तूँ, फूल रहा है, राजी हो रहा है । हे परमेश्वर से विमुखी अज्ञानी ! इस शरीर को तो तूं संसार में छोड़कर चला जाएगा । जिस तन के बल को देख देखकर के तूं मन में गर्व करता है, यह तन तो, बड़े बड़े बलियों का भी मिट्टी में मिल गया है । तूं इसका अभिमान क्या करता है ? ऐसे शरीर की क्या बड़ाइयां करता रहता है ? यह तो एक क्षण में मिट्टी में मिलने वाला है । उस समर्थ परमेश्वर के गुणनवाद गा ।

384. उपदेश

जप गोविन्द बिसरी जनि जाइ, जनम सुफल करिये
लै लाइ ।।टेक।।
हरि सुमिरण सौं हेत लगाइ, भजन प्रेम जस
गोविन्द गाइ ।

मनिखा देह मुकति का द्वारा, राम सुमरि जग सिरजनहारा ।
जब लग बिखम व्याधि नहिं आइ, जब लग काल काया नहिं खाइ ।
जब लग सबद पलटि नहीं जाइ, तब लग सेवा करि राम राइ ।
औसरि राम कहसि नहीं लोई, जनम गया तब कहै न कोई ।
जब लग जीवै तब लग सोई, पीछै फिर पछितावा होई ।
सांई सेवा सेवग लागै, सोई पावै जे कोइ जागै ।
गुरू मुखि भरम तिमर सब भागै, बहुरि न उलटै मारग लागै ।
ऐसा औसर बहुरि न तेरा, देखो बिचार समझि जिय मेंरा ।
दादू हारि जीति जग आया, बहुत भांति कहि कहि समझाया ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उपदेश करते हैं कि हे हमारे मन ! अब तूं उस गोबिन्द का जाप कर । उसके जाप को भूल करके, अन्यत्र नहीं जाना । इस प्रकार नाम स्मरण में लय लगाकर, अपने मनुष्य, जन्म को सफल बनाइये । अपने चित्त का हित कहिए स्नेह, हरि के स्मरण से कर । प्रेम में गद गद होकर अन्तरंग वृत्ति से ध्यान कर और बाणी से नाम कीर्तन करता रहै । यह मनुष्य शरीर मुक्ति का द्वार है । इसमें सिरजनहार राम का स्मरण कर । जब तक तेरे शरीर में भयंकर रोग आदि उत्पन्न नहीं होवैं और तेरी काया को काल भक्षण नहीं करै और बाणी सुचारू रूप से उच्चारण होती रहै. तब तक राजान् पत राजा राम

की. निष्कामभाव से भक्ति रूप सेवा करिये । हे लोगो ! इस मनुष्य देह रूपी अवसर में राम का स्मरण नहीं करोगे, तो फिर यह मनुष्य देह वृथा चला जायेगा । फिर कोई क्या राम का स्मरण करोगे ? जब तक इस शरीर में प्राण रूपी जीव स्थिर है, तब तक उस परमेश्वर का नाम स्मरण करिये और नहीं तो फिर पीछे, अन्त समय में पछताना ही पड़ेगा । सेवक वही है जो स्वामी की सेवा में सदैव लगा रहता है । वही परमेश्वर को पाता है, जो मोह रूप निद्रा से जागता है । उस गुरूमुखि के हृदय से भ्रमरूप अन्धकार, सब दूर हो जाता है । फिर वह परमेश्वर से विमुख करने वाले मार्ग पर नहीं जाता है । हे हमारे जीवरूप मन ! ऐसा मनुष्यदेह रूपी अवसर फिर मिलना कठिन है । इसमें विचार रूप नेत्रों से परमेश्वर को देखिये । इस हमारे उपदेश को हे जीव ! समझ कर अपनाइये । इस संसार में तूं आया है, चाहे तो इस मनुष्य देह को हार, और चाहे इस मनुष्य जन्म को जीत । उपरोक्त प्रकार से तुझे बहुत उपदेश द्वारा समझाया है ।

दोहा :- इक जन जोरे देह के, साध बचन नहिं धार ।
खेद भई सन्तन कही, जम को किमैं निवार ॥३८४॥

दृष्टान्त :- एक संसारिक मनुष्य, शरीर से बड़ा बलवान था । उसको एक महात्मा बोले कि इस शरीर के बल से, गरीबों को अनाथों की, दीन दुखियों की सेवा कर । कोई उन पर अत्याचार करें तो, उन असुर प्रकृति वाले पुरूषों का दमन करिये, तो तेरे शरीर का बल सार्थक होगा । इस सतों के उपदेश को, उसने मन में नहीं धारण किया । जब अन्त समय में नाना प्रकार के दुखों से दुखी होकर, त्राहि त्राहि करता था, तब वही संत फिर आये और बोले :- अब क्यों रोता है ? अब तो जमराज से मुकाबला है । पहले ही शारीरिक शक्ति का सद् उपयोग क्यों नहीं किया ? अब क्या पछताता है ? अब तो तेरे कर्मो का भोग, तुझे भोगना ही पड़ेगा ।

385

राम नाम तत्त काहे न बोलै, रे मन मूढ अनत जनि डोलै ॥टेक॥
भूला भरमत जनम गमावै, यहु रस रसना काहे न गावै ।
क्या झखि औरै परत जंजालै, वाणी विमल हरि काहे न संभालै ।
राम बिसारि जनम जनि खोवै, जपि ले जीवन साफिल होवै ।
सार सुधा सदा रस पीजै, दादू तन धरि लाहा लीजै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, उपदेश करते हैं कि हे हमारे मूर्ख मन ! राम नाम का स्मरण छोड़ कर, दूसरी जगह क्यों भटकता है ? अपने उद्धार का साधन, राम नाम का जाप क्यों नहीं करता है ? हे राम को भूले हुए, नाना प्रकार के बहिरंग साधनों में भ्रमता भ्रमता, इस मनुष्य जन्म को वृथा क्यों गमा रहा है ? इस राम नाम रूपी रस को रसना से क्यों नहीं गा कर आनन्द लेगा है ? क्यों वृथा सकाम कर्मों को करके, यमराज के जाल में फंसता है । अपनी निर्दोष बाणी से हरि का नाम, क्यों नहीं स्मरण करता है ? हे मूर्ख ! राम को भूलकर, इस मनुष्य जन्म को वृथा, अब क्यों खो रहा है ? वह राम नाम ही तेरे जीव की जीवन है। उसको जप कर, अपने जन्म को सफल बना ले । सारे विश्व का सार स्वरूप राम नाम है । सदा इसका निष्काम भाव से स्मरण रूप, अमृत रस को पान करिये । इस मनुष्य जन्म को धारण करके, अब इस लाभ को प्राप्त करिये ।

386. तत्व उपदेश

आप आपण मैं खोजो रे भाई, वस्तु अगोचर गुरू लखाई ।।टेक।।
ज्यूं मही बिलोये माखण आवै, त्यूं मन मथिया तैं तत्त पावै ।
काष्ठ हुतासन रह्या समाई, त्यूं मन मांहि निरंजन राई ।
ज्यूं अवनी मैं नीर समाना, त्यूं मन मांहै सांच सयाना ।
ज्यूं दर्पण के नंहि लागै काई, त्यूं मूरति मांहैं निरखि लखाई ।
सहजैं मन मथिया तैं तत्त पाया, दादू उन तौ आप लखाया ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, आत्म तत्व प्राप्ति का उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! अब तुम स्वयं अपने अन्तकरण में गुरू उपदेश द्वारा, मन इन्द्रियों के अविषय, ब्रह्म स्वरूप आत्मा का विचार करो, तो वह तुम्हें अपना निज स्वरूप होकर ही दिखाई देगा । जैसे दही के बिलोने से मक्खन निकलता है, वैसे ही मन में नित्य अनित्य का विचार करने से, आत्म तत्व प्राप्त होता है । जैसे काठ में अग्नि व्यापक हो रही है, वैसे ही मन के स्वरूप में ही, सर्व के राजा निरंजन निराकार, व्याप्त हो रहे हैं । और जिस प्रकार पृथ्वी में जल समाया हुआ है । हे चतुर जिज्ञासु ! ऐसे ही सत्य स्वरूप मन में समा रहा है । जैसे दर्पण में स्थित, मुख के प्रतिबिम्ब को दर्पण का मैल स्पर्श नहीं करता, वैसे ही शरीर में स्थित, आत्म स्वरूप ब्रह्म को शरीर के, कोई भी विकार नहीं स्पर्श कर पाते । इसी प्रकार अन्त:करण रूप दर्पण में ज्ञान विचार रूपी नेत्रों से देख, तो वह व्यापक चेतन्य तेरे निज स्वरूप होकर ही दिखाई देंगे । इस प्रकार मन को निर्द्वन्द करके, विचार किये से ही, तत् पद और त्वम् पद का, लक्ष अर्थ ब्रह्म स्वरूप, उनको आप, अनुभव ज्ञान से दिखाई देता है ।

387. उपदेश

मन मैला मन हीं सौं धोइ, उनमनि लागै निरमल होइ ।।टेक।।
मन ही उपजै बिखै विकार, मन ही निर्मल त्रिभुवन सार ।
मन ही दुविधा नाना भेद, मन ही समझै द्वै पख छेद ।
मन ही चंचल चहुं दिसि जाइ, मन ही निहचल रहा समाइ ।
मन ही उपजै अगनि शरीर, मन ही शीतल निरमल नीर ।
मन उपदेश मन ही समझाइ, दादू यहु मन उनमन लाइ ।

टीका ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें उपदेश करते हैं कि हे जिज्ञासु ! इस अपने मलीन मन को, समष्टि चेतन्य रूप, मन के विचार से उज्जवल बना । तब यह निर्मल होकर, ब्रह्म दिशा में लगेगा अर्थात् ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त होगा । बहिरंग मन से ही विषय विकार की फुरणा, अन्तःकरण में होने लगती है । और जब यह मन निष्काम कर्मों द्वारा निर्मल होकर, त्रिभवन का सार परमेश्वर में स्थित होता है, तभी यह ब्रह्म रूप हो जाता है । और मन ही द्वैतवादियों का संग करके, नाना प्रकार के भेद भावों को प्राप्त हो जाता है । जब मन अद्वैतवादियों के सतसंग द्वारा, तत्व ज्ञान को प्राप्त करके, द्वैतभाव को त्याग देता है । और यह मन ही सकाम कर्मों के द्वारा चंचल होकर, वासना से चारों दिशाओं में घूमता रहता है । और जब मन गुरू उपदेश द्वारा अन्तर्मुख होता है, तब निश्चल स्वरूप में समा कर रहता है । प्रतिकूल शब्द को सुनकर, मन में क्रोधाग्नि उत्पन्न हो जाती है । और फिर अनुकूल शब्दों को सुनकर, यह मन निर्मल, गंगा नीर के समान शीतल हो जाता है । हे जिज्ञासु ! इस अपने मन को उपदेश करके समझाइये । इस मन को उनमनि ब्रह्म अबस्था में लगाइये । तब यह मन ब्रह्म स्वरूप हो जाएगा ।

388. मन प्रति शूरातन

रहु रे रहु मन मारौंगा, रत्ती रत्ती कर डारौंगा ।।टेक।।
खंड खंड करि नाखौंगा, जहां राम तहं राखौंगा ।
कह्या न मानै मेरा, सिर भानौंगा तेरा ।
घर में कदे न आवै, बाहरि को उठि धावै ।

आतम राम न जानै, मेरा कह्या न मानै ।
दादू गुरू मुखि पूरा, मन सौं झूझै सूरा ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, मन प्रति शूरातन दिखा रहे हैं कि हे हमारे मन ! अब तूं कुमार्ग में जाना छोड़ दे और राम नाम में स्थिर हो जा । नहीं तो मैं तेरी रत्ती रत्ती कर दूंगा अर्थात् तुझे कसनी में कस कर, संकल्प शून्य बनाऊंगा । और जहां हृदय प्रदेश में राम है, वहां ही तुझे एकाग्र करके रखूंगा । यदि तूँ इस मेरे उपदेश को नहीं मानेगा, तो तेरे अहंकार रूपी सिर को मैं गुरू उपदेश से तोड़ गिराऊंगा । हे मूर्ख ! तूं अपने शुद्ध आत्म स्वरूप घर में तो नहीं आता है और बाहर विषय वासनाओं में दौड़ दौड़ कर जाता है । तूं अब तक आत्म स्वरूप राम को नहीं पहचाना और न हमारा कहना ही तैने स्वीकार किया । मुक्त पुरूष कहते हैं कि जो पूरे गुरूमुखि कहिए गुरू आज्ञा में चलने वाले मुमुक्षु ही, इस मन को शूरवीरता द्वारा, एकाग्र करते हैं ।

389. नाम शूरातन

निरभय नाम निरंजन लीजै, इन लोगन का भय नहिं कीजै ।
सेवग सूर संक नहि मानै, राणा राव रंक करि जानै ।
नाव निसंक मगन मतिवाला, राम रसाइन पिवै पियाला ।
सहजैं सदा राम रंगि राता, पूरण ब्रह्म प्रेम रसि माता ।
हरि बलवंत सकल सिर गाजै, दादू सेवग कैसे भाजै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, नाम स्मरण में शूरवीरता दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओं ! इन संसारिक विषय आसक्त ईश्वर विमुखी जीवों का भय न मानकर, इससे निर्भय होकर, निरंजन निराकार स्वरूप राम का स्मरण कीजिए । निष्कामी राम के सेवक और शूरवीर, अपने उद्देश्य की पूर्ति में किसी की शंका कहिए डर नहीं मानते । राणा महाराणा, राजा राव और रंक, इनको समान करके देखते हैं, मानव दृष्टि से । और सबसे निशंक होकर राम नाम का स्मरण रूपी रस का प्याला पीकर, जिनका मन मतवाला रहता हैं । वह स्वभाव से ही सदा राम की प्रेमाभक्ति रूपी रंग में, राते रत्त रहते हैं । और पूर्ण ब्रह्म के प्रेम रस में माते मतवाले होते हैं । सर्व शक्तिवान समर्थ हरि, उनके सिर पर रक्षा अर्थ, पापियों को डराने के लिए, शास्त्रों में गर्जना रूप शब्द उच्चारण कर रहे हैं । उस प्रभु के सच्चे निष्कामी, भक्ति करने वाले सेवक, भक्ति मार्ग से कैसे हट सकते हैं ? कदापि नहीं हटते । अपने स्वामी के नाम स्मरण में निर्भय होकर, लगे रहते हैं ।

390. समर्थाई

ऐसो अलख अनंत अपारा, तीनी लोक जाको विसतारा ।
निरमल सदा सहज घर रहै, ताको पार न कोई लहै ।
निर्गुण निकटि सब रह्यो समाइ, निहचल सदा न आवै जाइ ॥
अविनाशी है अपरंपार, आदि अनंत रहै निरधार ।
पावन सदा निरंतर आप, कला अतीत लिपत नहिं पाप ॥
समरथ सोई सकल भरपूर, बाहरि भीतरि नेड़ा न दूर ।
अकल आप कलै नहीं कोई, सब घट रह्यो निरंजन होई ॥
अवरण आपै अजर अलेख, अगम अगाध रूप नहिं रेख ।
अविगत की गति लखी न जाइ, दादू दीन ताहि चित्त लाइ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परमेश्वर की समर्थता दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह समर्थ परमेश्वर, ऐसे अलख, मन वाणी के अविषय, अनन्त और अपार स्वरूप हैं, जिन्होंने यह त्रिलोकी रूपी विस्तार फैलाया है । वह माया आदि मल रहित शुद्ध स्वरूप हृदय रूपी घर में ही चेतन्य स्वरूप निवास करते हैं । परन्तु उन अपार स्वरूप का कोई पार नहीं पाया है । वह आप गुणातीत निर्गुण स्वरूप से, सबके अत्यन्त समीप में व्याप्त हो रहे हैं । वही निश्चल स्वरूप हैं, उनमें आवागमन रूपी कोई क्रिया नहीं होती है । वह अविनाशी अपरम्पार स्वरूप हैं । सर्व के आदि और अन्त में, वही एक निराधार स्वरूप रहते हैं । वह आप सदा पवित्र स्वरूप अन्तराय रहित, निरन्तर सबमें स्थिर हो रहे हैं । वह कलाओं से अतीत हैं । और किसी प्रकार के पाप पुण्य में लिपायमान नहीं होते । वह समर्थ सर्वत्र परिपूर्ण रूप से भरपूर हो रहें हैं । सम्पूर्ण भूत प्राणियों के बाहर और भीतर व्यापक हैं । उनको न नजदीक कहा जाता है और न दूर ही कह सकते हैं । आप कला अवयव रहित अकल स्वरूप हैं । किसी प्रकार कीं कभी कलना को प्राप्त नहीं होते । वही सब शरीरों में निरन्जन रूप से स्थिर हो रहे हैं । वह अवरण कहिए वर्ण व्यवस्था या रूप रंग रहित अजर, जर जर भाव रहित और लेखा हिसाब से रहित अगम्य, मन वाणी के अविषय, अगाध, रूप रहित अरूप हैं । और हाथ पर रेखा है, इतने भीं जीव से अलग नहीं हैं । वह अव्यक्त हैं । उनकी गति कहिए समर्थताई, शक्ति, किसी के जानने में नहीं आती है । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हमतो दीनता को धारण करे हुए, उनके नाम स्मरण में ही, अपने चित्त को लगाया है ।

391. समर्थ लीला

ऐसो राजा सेऊं ताहि, और अनेक सब लागै जाहि ॥टेक॥
तीनि लोक ग्रह धरे रचाइ, चंद सूर दोउ दीपक लाइ ।
पवन बुहारै गृह अंगणां, छपन कोटि जल जाके घरां ॥
राते सेवा शंकर देव, ब्रह्म कुलाल न जानै भेव ।
कीरति करणा चार्यूं वेद, नेति नेति न जाणै भेद ॥
सकल देव पति सेवा करैं, मुनि अनेक एक चित्त धरैं ।
चित्र विचित्र लखैं दरबार, धर्म राइ ठाढे गुण सार ।
रिधि सिधि दासी आगे रहैं, चारि पदारथ जी जी कहैं ।
सकल सिधि रहे ल्यौ लाइ, सब परि पूरण ऐसो राइ ॥
खलक खजीना भरे भंडार, ता घरि बरतै सब संसार ।
पूरि दिवान सहजि सब दे, सदा निरंजन ऐसो है ॥
नारद गावें गुण गोविन्द, करैं सारदा सब ही छंद ।
नटवर नाचै कला अनेक, आपन देखै चरित अलेख ॥
सकल साध बाजैं नीसान, जै जै कार न मेटै आन ।
मालिन पहुप अठारह भार, आपण दाता सिरजनहार ॥
ऐसो राजा सोई आहि, चौदह भुवन मैं रह्यो समाइ ।
दादू ताकी सेवा करै, जिन यहु रची ले अधर धरै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, समर्थ की लीला का निर्देश करते हैं कि हे संतों ! हम तो ऐसे समर्थ राजा की सेवा रूप उपासना करते हैं, जिनकी सेवा में अनेकों राजा लग रहे हैं । जिसने यह त्रिलोकी रची है और ग्रह आदि को रचकर यथा योग्य स्थानों में रखे हैं । और जिसने सूर्य चन्द्रमा रूप दो दीपक जलाये हैं । और जिनके घर में वायु देवता आंगण को साफ करता रहता है । छप्पन कोटि मेघ माला, जिनके जल भरने वाले हैं । शंकर आदि देवता जिनकी सेवा में हाजिर रहते हैं । ब्रह्मा जी कुलाल के समान, सब शरीरों की रचना रूप सेवा कर रहे हैं, परन्तु उन प्रभु के स्वरूप का अन्त नहीं पाते । जिनका चारों वेद यश गान करते हैं, किन्तु उनके स्वरूप रहस्य को न जानकर, नेति नेति कहकर मौन हो जाते हैं । सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी राजा इन्द्र भी उनकी आज्ञा में वर्तता है । और अनेकों मुनि लोग भी, उन प्रभु के स्वरूप में अपने चित्त को लगाये रहते हैं । तथा जिनके दरबार में चित्रगुप्तरूप कारिन्दा, प्राणियों के पाप पुण्य को विचित्र ढंग से लिखते रहते हैं । सामने श्रेष्ठ गुणों से युक्त धर्मराज महाराज खड़े रहते हैं । नौ निद्धि और आठ सिद्धि, दासी के समान सामने खड़ी रहती हैं । अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष रूप चारों पदार्थ हाथ जोड़कर, जी जी कहते रहते हैं । सभी सिद्ध लोग अपनी वृत्ति, उनके स्वरूप में लगाये रहते हैं । वह ऐसे राजान् पत राजा हैं, जो सम्पूर्ण कलाओं में परिपूर्ण रूप हैं । संसार के लिये, उन प्रभु ने ही धन के कोश, सम्पूर्ण वस्तुओं के भंडार भरे हैं । सम्पूर्ण संसार, उनसे ही सब वस्तुएं लेकर अपने उपयोग में लाते हैं । वह महान से महान प्रभु, अपने भक्तों की सम्पूर्ण कमियों को दूर कर देते हैं । वह समर्थ ऐसा कार्य करते हुए भी, सदा निरंजन स्वरूप ही बने रहते हैं । माया अंजन से वे रहित होते हैं । नारद आदि मुनि, उन गोबिन्द भगवान के गुणानुवाद गाते रहते हैं । सब प्रकार के छन्दों द्वारा, सरस्वती जी उनकी स्तुति करती रहती हैं । वही नटवर अनेक कलाओं करके नृत्य कर रहे हैं । और वे स्वयं अलेख, अपने चरित्रों को आप ही दृष्टा रूप होकर देख रहे हैं । सम्पूर्ण संतभक्तों के उनकी महिमा गायन करने रूप, नगाड़े बजते रहते हैं । और जय हो, जय हो, जय हो, इस प्रकार की ध्वनि सदा जिनके दरबार में होती रहती है । परन्तु सन्त लोग उनकी मर्यादा का उलंघन नहीं करते हैं । और अठारह भार वनस्पति ही, उनके पुष्प माला पहुंचाने वाली मालिनि है । और वे सृष्टि रचिता प्रभु आप ही सबके कर्मानुसार, सबका पालन पोषण करते रहते हैं । और आप स्वयं चौदह भवनों में व्यापक हो रहे हैं । ऐसे जो राजान् पत राजा हैं, वही हमारे उपास्यदेव हैं जिसने इस संसार को रचकर, अधर धर रखा है । हम उन्हीं प्रभु की सेवा रूप भक्ति करते हैं ।

दोहा :- कही भरूटे राव जी, दादू चल मम गांव ।
ताको या पद ते कही, नृपति सुनायो नांव ॥३९१॥

दृष्टान्त :- बीकानेर के राजा जब ब्रह्मऋषि दादू दयाल की महिमा सुनी, तो दर्शन करने को गया और गुरुदेव के चरणों में नत मस्तक होकर नमस्कार किया । राजा बोले :- महाराज बीकानेर पधारिये । तब

परम गुरूदेव उपरोक्त पद से उत्तर दिया कि हमतो राजा की सेवा में सदैव लगे रहते हैं। आप भी उस राजा की सेवा करो, इसी में आपका कल्याण है।

---

392. जीवित मृतक

जब यहु मैं मैं मेरी जाइ, तब देखत बेगि मिलै राम राइ ॥टेक॥
मैं मैं मेरी तब लग दूरि, मैं मैं मेटि मिलै भरपूरि।
मैं मैं मेरी तब लग नांहि, मैं मै मेटि मिलै मन मांहि।
मैं मैं मेरी न पावै कोइ, मैं मैं मेटि मिलै जन सोइ।
दादू मैं मैं मेरी मेटि, तब तूं जाणि राम सौं भेटि।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमे, जीवित अवस्था में ही, मृतक के समान निर्द्वन्द होने से, निर्गुण राम साक्षात्कार होता है, यह कहते हैं। हे जिज्ञासु ! जब अन्तःकरण से "मैं और मेरी" का अध्यास दूर हो जाय, तब हृदय में ज्ञान रूपी नेत्रों से देखते के साथ ही, विश्व के राजा राम, शीघ्र ही राम प्राप्त हो जायें। जब तक मैं और मेरी का अध्यास है तब तक राम जी नजदीक होते हुए भी दूर हैं। जब मैं और मेरापन को जिसने मिटा दिया, तब ही राम भरपूर कहिए व्यापक रूप से, उसको दिखाई पड़ने लगते हैं। और 'मैं और मेरी' यह अहंकार जब तक मन में है तब तक राम हृदय में, होते हुए भी, नहीं के समान प्रतीत होते हैं। मैं और मेरा' इस अहंकार को मिटा दे, तो राम मन में ही प्राप्त होंगे। मैं हूं और यह सब कुछ सम्पत्ति मेरी है, तब तक कोई भी राम को प्राप्त नहीं कर सकता है। जिसने मैं और मेरापन को मिटा दिया, वही जन राम में अभेद होते हैं। दयाल महाराज कहते हैं कि हे साधक ! मैं और यह मेरी है, इस अभिमान को हृदय से मिटा दे। तब तूं निश्चय करना कि अब मैं राम से भेट करूंगा अर्थात् अब मुझे राम मिलगे।

---

392. ज्ञान प्रलय

नाहीं रे हम नाहीं रे, सत्यराम सब मांहीं रे ॥टेक॥
नाहीं धरणि अकासा रे, नांही पवन प्रकासा रे।
नाहीं रवि ससि तारा रे, नांहि पावक प्रजारा रे॥

नाहीं पंच पसारा रे, नांहीं सब संसारा रे ।
नाहीं काया जीव हमारा रे, नांहिं बाजी कौतिग हारा रे ।।
नाहीं तरवर छाया रे, नांहिं पंखी मांया रे ।
नांहि गिरवर वासा रे, नांही समंद निवासा रे ।।
नांहि जल थल खंडा रे, नांही सब ब्रह्मंडा रे ।
नाहीं आदि अनन्ता रे, दादू राम रहंता रे ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, ज्ञान प्रलय का स्वरूप दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! हम जिस स्थूल रूप से दिखाई दे रहे हैं । इस रूप से सत्य नहीं हैं ? जो मैं राम, आतम स्वरूप से सत्य हूं । वही मेरा स्वरूप नाम रूप जगत में व्यापक हो रहा है । और यह धरती आकाश, रवि, शशी तारा मंडल, यह कोई भी सत्य नहीं है । न प्रज्जवलित होने वाली अग्नि ही सत्य है । यह पंच महाभूतों का पसारा, कुछ भी सत्य नहीं है । और यह संसार भी सत्य नहीं है । न यह हमारी काया ही सत्य है और न जीव भाव ही सत्य है । न यह जगत रूप बाजी ही सत्य है । न इसको रचिता ईश्वर ही सत्य है । न वृक्ष ही सत्य हैं । न उन पर रहने वाले पक्षी ही सत्य हैं । न उनकी छाया ही सत्य है । और न यह माया ही सत्य है । न पहाड़ ही सत्य हैं, न समुद्र ही सत्य है । न उनमें निवास करने वाले ही सत्य हैं । न जल ही सत्य है । न पृथ्वी ही सत्य है । न नव खंड में बसने वाले ही सत्य हैं । यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही असत्य कहिए मिथ्या है । अर्थात् न जिसका आदि है और न जिसका अन्त है, ऐसा केवल एक शुद्ध ब्रह्म स्वरूप राम ही सत्य अचल हैं ।

394. मध्य मार्ग निष्पक्ष

अलह कहो भावै राम कहो, डाल तजो सब मूल गहो ।।टेक।।
अलह राम कहि कर्म दहो, झूठे मारगि कहा बहो ।
साधू संगति तो निबहो, आइ परै सो सीसि सहो ।
काया कवंल दिल लाइ रहो, अलख अलह दीदार लहो ।
सतगुरू की सुणी सीख अहो, दादू पहुंचै पार पहो ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, निरपक्ष मार्ग दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! अल्लाह और राम, यह दोनों एक ही ईश्वर के नाम हैं । किसी नाम से भी स्मरण करो । दोनों से एकसा ही फल प्राप्त होता है ।

पक्षपात रूप शाखाओं का त्याग करके, चेतन्य स्वरूप राम की शरण ग्रहण करो। अल्लाह या राम नाम का निष्काम स्मरण द्वारा ज्ञान प्राप्त करके, अपने संचित कर्मों को जलाओ और संसार के मिथ्या मार्ग पर क्यों जाते हो ? सच्चे संतो की सत्संगति द्वारा ही, तुम्हारा सच्चे मार्ग में निर्वाह होवैगा। और प्रारब्धवश शरीर पर सुख दुख आदि आवें, उनको सिर पर सहन करो। शरीर के हृदय रूप कमल में अपनी वृत्ति को नाम स्मरण में लगाओ, तो अलख रूप अल्लाह का भीतर ही दीदार करोगे। इस सतगुरू के उपदेश को श्रवण करके, उसके अनुसार साधन करते हुए चलिये। तभी संसारिक भावना से पार हो जाओगे। तो फ़िर परमानन्द स्वरूप प्रभु को प्राप्त करोगे।

395

हिंदू तुरक न जाणौं दोइ, सांई सबनि का सोई है रे,
और न दूजा देखौं कोइ ॥टेक॥
कीट पतंग सबै जोनिन में, जल थल संगि समाना सोइ।
पीर पैगम्बर देवा दानव, मीर मलिक मुनि जन कौं मोहि॥
करता है रे सोई चीन्हौं, जनि वै क्रोध करै रे कोइ।
जैसैं आरसी मंजन कीजै, राम रहीम देही तन धोइ॥
सांई केरी सेवा कीजे, पायो धन काहे कौं खोइ।
दादू रे जन हरि जप लीजै, जनम जनम जे सुरजन होइ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निरपक्ष मार्ग दिखा रहे हैं, कि हे जिज्ञासुओ ! हम हिन्दू और मुसलमान दो नहीं समझते। इस भेद का हमने त्याग किया है, क्योंकि दोनों का स्वामी, एक चेतन्य रूप परमेश्वर ही है। उसके सिवाय दूसरे को हम नहीं देख रहे हैं। जल तथा स्थल के कीट पतंग आदि सभी योनियों में, वह चेतन्य स्वरूप परमेश्वर, व्यापक रूप से सबके साथ रह रहा है। वह परमेश्वर पीरों पैगम्बरों, देवता, दानव, सरदारों, बादशाह और मुनिजन आदि सबको, वह मोहित करता है। इसलिये उस सृष्टि रचिता परमेश्वर को ही चेतन्य रूप से पहचानो। उसके स्वरूप का विचार किये बिना; कोई भी हिन्दू मुसलमान, साम्प्रदायिक पक्ष को लेकर, झगड़ा न करैं, क्योंकि वह चेतन्य स्वरूप आत्मा, सबमें एक ही व्यापक रूप से स्थित हो रहा है। जिस प्रकार शीशे को मांजकर साफ करने से मुख आदि सम्पूर्ण शरीर, ठीक दिखाई देता है, वैसे ही अपने अपने अन्तःकरण रूप दर्पण को, निष्काम अल्लह और राम के नाम स्मरण द्वारा पवित्र

बनाग्रो । फिर राम ग्रौर रहीम दोनों, एक रूप ही दिखाई पड़ेंगे । इस प्रकार निरपक्ष मध्य मार्ग द्वारा, चेतन्य स्वरूप परमेश्वर की भक्ति करो । ग्रौर जन समुदाय में उसी का ग्रात्म रूप से दर्शन करो । यही परमेश्वर की सच्ची सेवा है । यह मनुष्य देह रूपी ग्रपूर्व धन ग्रबके प्राप्त हुग्रा है । इसको पक्षपात रूप, राग द्वेष के कामों में वृथा क्यों गमाते हो ? ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे जनों ! जन्म मरण के दुखों से सुलझना है तो, चेतन्य स्वरूप हरि का निरपक्ष नाम स्मरण करिये ।

396

को स्वामी को सेख कहै, इस दुनियां का मर्म न कोई लहै ।।टेक।।
कोई राम कोई ग्रलह सुनावै, पुनि ग्रलह राम का भेद न पावै ।
कोई हिन्दू कोई तुरक करि मानै, पुनि हिन्दू तुरक की खबरि न जानै ।
यहु सब करणी दोन्यूं बेद, समझ परी तब पाया भेद ।
दादू देखै ग्रात्म एक, कहिबा सुनिबा ग्रनन्त ग्रनेक ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निरपक्ष मार्ग दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुग्रो ! इस दुनियां में निरपक्ष मध्यमार्गी संतों को कोई तो स्वामी कहते हैं, कोई शेख कहते हैं । परन्तु इस संसार में उस ब्रह्मवेता महापुरूष के मार्मिक ज्ञान को, पक्षपाती लोग कोई भी नहीं ग्रहण करते हैं । कोई तो ग्रपने को राम का उपासक ग्रौर कोई ग्रल्लाह का उपासक सुनाते हैं । परन्तु यह महजबी लोग ग्रल्लाह ग्रौर राम के चेतन्य स्वरूप का, कुछ भी भेद प्राप्त नहीं कर सके हैं । इसी प्रकार कोई तो ग्रपने को हिन्दू करके मानते हैं ग्रौर कोई ग्रपने को मुसलमान बतलाते हैं । किन्तु हिन्दुग्रों के सिद्धान्त का ग्रौर मुसलमानों के वास्तविक सिद्धान्त का, उनको कुछ भी पता नहीं है । उक्त प्रकार से जो दोनों, महजबी खेंचा तानी के कर्म में लगे हैं, उस कर्म के लिए कहते हैं कि यह हमारे वेद ग्रौर कुरान का सिद्धान्त है । परन्तु हमारी बुद्धि में जब यथार्थ चेतन्य स्वरूप का ज्ञान ग्राया है, तब से हम क्या हिन्दू क्या मुसलमान क्या ईसाई, क्या पारसी, क्या सिख, सबमें हम तो एक ही ग्रात्मा का दर्शन करते हैं । किन्तु ऊपरी व्यवहार में कहना सुनना नाना प्रकार का है । वास्तविक सभी के ग्राचार्यों का सिद्धान्त, एक ही है ।

397. निन्दा

निन्दत है सब लोक बिचारा, हमको भावै राम पियारा ।।टेक।।
निर संसै निरदोस लगावै, ताथैं मोको ग्रचिरज ग्रावै ।

दुविधा द्वै पख रहिता जे, तासन कहत गये रे ये।
निरबैरी निहकामी साध, ता सिरि देत बहुत अपराध।
लोहा कंचन एक समान, तासनि कहत करत अभिमान।
निन्दा सतुति एकै तोलै, तासन कहैं अपवाद हि बोलै।
दादू निन्दा ताको भावै, जाकै हिरदै राम न आवै।

टीका :-ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें, निन्दक पुरूषों का स्वरूप दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु! परमेश्वर से विमुखी राम भक्ति रहित, संसारिक लोगों को पर निन्दा प्रिय लगती है। परन्तु हमको तो केवल राम ही प्रिय लगते हैं। किन्तु संसारिक लोग, राम के सच्चे भक्त और उनकी भक्ति की निन्दा करते हैं। और जो सम्पूर्ण संशय रहित निर्दोषी संत हैं, उनके वह निन्दक लोग, नाना प्रकार के दोष लगाते हैं। इसी से हमको, बड़ा आश्चर्य होता है कि यह इस निन्दा रूप पाप को, अपने अन्तःकरण से कहां धोवेंगे ? जो निरपक्ष महापुरूष हिन्दू मुसलमान दोनों की पक्षपात रूप दुविधा से रहित हैं, उनके लिये वह राम बेमुखी कहते हैं कि यह तो गये बीते हैं। इनके ज्ञान को क्या सुनते हो ? यह न हिन्दू हैं और न मुसलमान हैं। जो ब्रह्मवेता चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त में, एक ब्रह्मदर्शन करके, सबसे निबैर हो रहे हैं। और किसी प्रकार मन में, मायावी पदार्थों की, जिनके अन्तःकरण में कामना नहीं होती है, ऐसे महापुरूषों के सिर पर, वह नकली भक्त, बहुत अपराध लगाते हैं। परन्तु वह ब्रह्मवेता, अपनी निन्दा और स्तुति को बराबर ही मानते हैं और कहते हैं कि भाई निन्दा और स्तुति तो बराबर ही है। उन महापुरूषों के लिये,वे संसारीजन बोलते हैं कि देखो, कितने झूठे हैं ये। ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि निन्दा उनको प्रिय लगती है, जिनके हृदय में, राम की निष्काम भक्ति और ज्ञान नहीं आता।

398. अनन्य शरण

महारूं सूं जेहूं आपू, ताहरूं छै तूनै थापूं॥टेक॥
सर्व जीव ने तूं दातार, तैं सीरज्या ने तूं प्रतिपाल।
तन धन ताहरौ तैं दीधो, हूं ताहरो ने तैं कीधो।
सहुवे ताहरो सांचौ ये, मैं मैं माहरो झूठो ते।
दादू ने मनि और न आवै, तूँ कर्ता ने तूंहि जु भावै।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर की अनन्य शरण का परिचय दिखा रहे है कि हे परमेश्वर ! हमारा क्या है ? जो हम आपके अर्पण करें। आप ही का सब कुछ हैं। यह सब आपके ही समर्पण करते हैं। हे प्रभु ! कीड़ी से लेकर हाथी पर्यन्त, सब जीवों को आप ही देने वाले हैं। और आपने ही सबको पैदा किया है। आप ही सबके रक्षक और पालन करने वाले हो। यह हमारा तन मन धन, सब कुछ आपका ही है। और आपने ही दिया है। और मैं भी आपका रचा हुआ आपका ही हूं। वास्तविक विचार करके देखा तो यह सब कुछ आप ही का है। जो यह कहते हैं कि मैं और मेरा है, यह सब मिथ्या है। हे नाथ ! हमारे मन में तो आपके सिवाय और दूसरा कोई कर्त्ता है, यह बिचार कभी आता ही नहीं है, क्योंकि आप ही सबके कर्त्ता हो। तथा आप ही हमारे को प्रिय लगते हो।

399. निष्काम साधु

ऐसा अवधू राम पियारा, प्राण पिंड थैं रहै नियारा ॥टेक॥
जब लग काया तब लग माया, रहै निरन्तर अवधू राया।
अठ सिधि भाई नो निधि आई, निकटि न जाई राम दुहाई।
अमर अभै पद बैकूंठ बासा, छाया माया रहै उदासा।
सांई सेवग सब दिखलावे, दादू दूजा दिष्टि न आवै।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निष्कामी संत का परिचय दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! ऐसा अवधूत मन की वासनाओं को धूतने वाला संत, राम को प्यारा होता है, जो प्राण पिंड के अध्यास से न्यारा रहता है। जब तक शरीर का अध्यास रहता है, जब तक ही माया प्रतीत होती है। परन्तु जो अवधूत संत हैं, वह अपनी अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, चेतन्य स्वरूप परमेश्वर में लगे हैं। आठ सिद्धि और नो निद्धि उनके पास आती हैं, परन्तु वह उनका स्पर्श नहीं करते। उनके समीप में भी नहीं जाते और कहते हैं कि तुम्हें राम की दुहाई है, हमारे पास नहीं आन।। तथा देवताओं का अभय स्थान, स्व ' आदि, बैकुण्ठ का बास, इन सबको माया की छाया रूप सुख जानकर, इनसे उपराम रहते हैं। अथवा माया की छाया रूप इस संसार से विरक्त होकर, जो परब्रह्म अमर अभय स्वरूप है, उसी में निवास करते हैं। और वह समर्थ परमेश्वर, ऐसे सच्चे सेवकों को देने के लिये, सब कुछ दिखाते हैं, परन्तु उपरोक्त अवधूत की दृष्टि में, आत्म स्वरूप परब्रह्म को छोड़कर, दूसरा और कुछ भी सत्य प्रतीत नहीं होता है।

400. शूरातन कसौटी

तूं साहिब मैं सेवग तेरा, भावै सिरि दे सूली मेरा ॥टेक॥

भावै करवत सिर परि सारि, भावै लेकर गरदन मारि ।
भावै चहुं दिस अग्नि लगाइ, भावै काल दसौं दिसि खाइ ।
भावै गिरवर गगन गिराइ, भावै दरिया मांहै बहाइ ।
भावै कनक कसौटी देहु, दादू सेवक कसि कसि लेहु ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, भगवत् भक्त बनने के लिये कसौटी दिखा रहे हैं कि हे सत्य स्वरूप परमेश्वर ! आप तो हमारे साहिब कहिए स्वामी हो और हम आपके दीन गरीब सेवक हैं । आप चाहें तो हमारे सिर को सूली पर चढ़ाओ, सेऊ समन की तरह । और चाहे हमारे मस्तक पर मोरध्वज की तरह, करवत चलवा कर, परीक्षा करें और चाहे तलवार लेकर, हमारी गर्दन पर प्रहार करवावें । भावै हमारे चारों तरफ अग्नि लगावै, प्रहलाद की भांति । अथवा दरियाव में हमें बहा दें, कबीर साहब की तरह । और भावै जैसे सुनार सोने को अग्नि में तपाता है, कसौटी देकर मैल निकालता है और फिर उसको उपयोग में लाता है, अर्थात् जेवर बनाता है । ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि हे समर्थ परमेश्वर ! उपरोक्त सब प्रकार की कसौटी दे दे कर, आप अपने भक्तों को आप अपनी शरण में लेते हो और आपके भक्त, उस सब कसौटी को सहन करते हुए भी, आपका त्याग नहीं करते ।

401. साधू

काम क्रोध नहिं आवै मेरे, ताथैं गोबिन्द पाया नेरे ।।टेक।।
भरम करम जालि सब दीन्हा, रमीता राम सबन मैं चीन्हा ।
दुविधा दुरमति दूरि गवांई, राम रमति सांची मनि आई ।
नीच ऊंच मधिम को नांही, देखौं राम सबन के मांही ।
दादू सांच सबन मैं सोई, पेड़ पकरि जन निरभै होई ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, साधु अंग का निर्देश करते हैं कि हे जिज्ञासुओ ! यह काम क्रोध, मोह, अब हमारे प्रभु कृपा से पास भी नहीं आते । इसी से हमने उस गोबिन्द प्रभु को अपने हृदय में ही प्राप्त किया है । भ्रम और सम्पूर्ण संचित कर्म, इन सबको, ज्ञान रूप अग्नि में जला दिये हैं और अब तो हम सबमें रमने वाले निर्गुण राम का ही, सर्वत्र अनुभव कर रहे हैं । दुविधा द्वैतभाव और दुर्बुद्धि को हृदय से त्यागकर, रमता राम में रम रहे हैं । उनकी सच्ची पराभक्ति, हमारे मन में आ गई है । अब हमारी दृष्टि में न कोई नीच है, न कोई ऊंच है, न कोई मध्यम है । सभी में एक राम को ही परिपूर्ण रूप से देख रहे हैं । हे

जिज्ञासुओ ! वह सत्य स्वरूप राम ही सबमें व्यापक हो रहा है । इस संसार रूप वृक्ष के वही मूल हैं । उनकी शरण ग्रहण करके, हमतो निर्भय हो रहे हैं । आप भी उनकी शरण ग्रहण करके, काल कर्म के बाण से निर्भय हो जाओ ।

402. हित उपदेश

हाजिरां हजूर सांई, है हरि नेड़ा दूरि नांही ।।टेक।।
मनी मेटि महल मैं पावै, काहे खोजन दूरि जावै ।
हिरस न होइ, गुसा सब खाइ, ताथैं संइयां दूरि न जाइ ।
दुई दूरि दरोग न होइ, मालिक मन मैं देखै सोइ ।
अरि ये पंच सोधि सब मारै, तब दादू दैखै निकटि बिचारै ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, हितोपदेश दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हम तो उन समर्थ परमेश्वर के निकट ही हैं और वह हरि भी व्यापक होने से हमारे अत्यन्त समीप ही हैं । हमसे दूर नहीं हैं । तुम अपने अनात्म अहंकार को मिटा दो, तो तुम्हें भी वह तुम्हारे हृदय रूपी महल में प्राप्त होवेंगे । फिर उनकी प्राप्ति के लिये दूर बहिरंग तीर्थ धाम आदिकों में क्यों जाते हो ? और जिन पुरूषों में 'हिर्स' कहिए लोभ या देखा देखी का भाव नहीं होता और अकारण रूप क्रोध को जिन्होंने नष्ट कर दिया है, ऐसे पुरूषों से परमेश्वर दूर नहीं रहते । जिनके दिल से द्वैतभाव और झूठ दूर हो गई है, वह अपने परमेश्वर को अपने मन में ही साक्षात्कार करते हैं और इन पंच ज्ञानेन्द्रियों को विचारपूर्वक अपने अपने विषयों से हटाकर, अन्तर्मुख कर लिये हैं, तभी वह उत्तम जिज्ञासु, अपने हृदय में ही परमेश्वर को ज्ञान विचाररूपी नेत्रों से समीप ही देखता है ।

403.

राम रमत है देखै न कोई, जो देखै सो पावन होई ।।टेक।।
बाहिर भीतर नेंड़ा न दूरि, स्वामी सकल रह्या भरपूरि ।
जहं देखौं तहं दूसर नांहि, सब घटि राम समाना मांहि ।
जहां जाऊं तहं सोई साथ, पूरि रह्या हरि त्रिभुवन नाथ ।
दादू हरि देखे सुख होइ, निसदिन निरखन दीजे मोहि ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, हितोपदेश दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह परब्रह्म स्वरूप निर्गुण राम तो, सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक हो रहे हैं। परन्तु कोई भी उनको देखता नहीं और जो उनको व्यापक रूप से देखता है, वह स्वयं पवित्र होकर, दूसरों को भी पवित्र करने वाला होता है, क्योंकि उन प्रभु को बाहर भीतर, समीप दूर, नहीं कह सकते। वे तो सबमें परिपूर्ण रूप से व्यापक हो रहे हैं। हम तो जहां कहीं भी देखते हैं। वहां राम के सिवाय और दूसरा, कोई देखते ही नहीं। क्योंकि राम ही सब शरीरों में समाये हुए हैं। जहां कहीं भी व्यवहार काल में जाते हैं, वहां वहां वह राम ही हमारे साथ हमको दीखते हैं। क्योंकि वह त्रिभुवनपति तीनों लोकों में, आप पूर्ण रूप से व्यापक हो रहे हैं। ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, कहते हैं कि हे संतो ! उस हरि के दर्शन करने से ही जीव को सम्पूर्ण सुख प्राप्त होते हैं। हे परमेश्वर ! आप हम पर कृपा कीजिये। जो हम रात दिन, आपके दर्शन करते रहैं।

404. अध्यातम

मन पवन ले उनमन रहै, अगम निगम मूल सो लहै ॥टेक॥
पंच बाइ जे सहजि समावै, ससिहर के घर आणै सूर।
सीतल सदा मिलै सुखदाई, अनहद शब्द बजावै तूर ॥
बंक नालि सदा रस पीवै, तब यहु मनवा कहीं न जाइ।
बिगसै कवंल प्रेम जब उपजै, ब्रह्म जीव की करै सहाइ ॥
बैस गुफा मै जोति बिचारै, तब तेंहि सूझै त्रिभुवन राइ।
अंतरि आप मिलै अविनासी, पद आनन्द काल नहिं खाइ ॥
जामण मरण जाइ भव भाजै, अवरण के घर वरण समाइ।
दादू जाय मिलै जग जीवन, तब यहु आवागवन बिलाइ ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें अध्यात्म विषय दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! जो अन्तरंग साधनों द्वारा, प्रथम अपने मन और प्राण को एकाग्र कर लेता है, वही समाधि में स्थिर होता है और वेद शास्त्रों से अगम ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। इड़ा नाड़ी रूप चन्द्र के वामें स्वर में, पिगुंला नाड़ी रूप सूर्य को लाता है, और फिर दोनों सुर सुषुम्ना में लाकर, पांच प्राणों को सहजावस्था रूप समाधि में स्थिर करता है।

तब सदा शीतल रूप सुख देने वाली अवस्था प्राप्त होती है और वहां स्थिर हुआ प्राण वायु अनहद शब्द रूप नगाड़ा बजाता है और फिर साधक सुषुम्ना नाड़ी में, सदा आनन्द रस का अनुभव करता है। फिर यह मन उस स्थिति को छोड़कर, अन्यत्र नहीं जाता है। इस प्रकार साधना द्वारा, जब परम प्रेम, हृदय में उत्पन्न होता है, तब हृदय कमल प्रफुल्लित होता है तथा कूटस्थ रूप ब्रह्म जीव को, अपनी ओर बढ़ाने की विचार रूप सहायता देता है। फिर साधक भ्रमर गुफा में स्थित होकर, जीव ब्रह्म की एकता रूप ज्योति को देखता है। तब उस समय त्रिभवन में व्यापक रूप राजा परमेश्वर ही, एक दीखने लगते हैं और फिर साधक भीतर ही, अविनाशी स्वरूप ब्रह्म में अभेद हो जाता है। यह ब्रह्म परम आनन्द स्वरूप है। उसमें स्थिर होने के पश्चात्, फिर काल का जोर नहीं चलता, जन्म मरण रूप दुख नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण संसारिक वासनाएं, हृदय से निवृत हो जाती हैं। अवर्ण ब्रह्म के स्वरूप में जीव कर्त्ता भोगता रूप वर्ण से रहित होकर, कूटस्थ रूप ब्रह्म में अभेद हो जाता है। इस प्रकार जब जीवात्मा, जगत् के जीवन रूप ब्रह्म में जा मिलता है, तब संसार में आवागमन रूप चक्र उसका नष्ट हो जाता है।

405

जीवन मूरी मेरे आतम राम, भाग बड़े पायो निज ठाम ॥टेक॥
सबद अनाहद उपजै जहां, सुखमन रंग लगावै तहां।
तहं रंग लागे निर्मल होइ, ये तत्त उपजै जानै सोइ ॥
सरवर तहां हंसा रहे, करि स्नान सबैं सुख लहैं।
सुखदाई कौं नैनहुं जोइ, त्यूं त्यूं मन अति आनन्द होइ ॥
सो हंसा सरनागति जाइ, सुन्दरि तहां पखालै पाइ।
पीवै अमृत नीझर नीर, बैठे तहां जगत गुरू पीर ॥
तहं भाव प्रेम की पूजा होइ, जा परि किरपा जानै सोइ।
कृपा करि हरि देइ उमंग, तहं जन पायो निर्भै संग ॥
तब हंसा मनि आनंद होइ, वस्तु अगोचर लखै रे सोइ।
जा को हरि लखावै आप, ताहि न लिपैं पुन्य न पाप ॥

तहं अनहद बाजै अद्भुत खेल, दीपक जलै बाति बिन तेल ।
अखंड जोति तहं भयो प्रकास, फाग बसंत जो बारह मास ।।
त्री अस्थान निरंतरि निरधार, तहं प्रभु बैठे सम्रथ सार ।
नैनहुं निरखौं तो सुख होइ, ताहि पुरिस कौं लखै न कोइ ।।
ऐसा है हरि दीन दयाल, सेवग की जानैं प्रतिपाल ।
चलु हंसा तहां चरण समान, तहं दादू पहुंचे परिवान ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, अध्यातम विषय दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमारे जीवन के तो एक आत्मा रूपी राम ही आधार हैं । मेरा बड़ा भाग्य था जो मैंने अपने हृदय में ही, उनको प्राप्त किये हैं। जहां नाभी कमल में, अनहद शब्द उत्पन्न होता है, फिर हृदय में सुनाई पड़ता है । फिर हम सुषुम्ना द्वारा, प्रभु के स्वरूप में प्रेम लगाते हैं । फिर प्राणधारी निर्मल हो जाता है । यह एकत्व भावना रूप प्रेम, जिसमें उत्पन्न होता है, वही इसके महत्व को समझता है । फिर वहां हृदय सरोवर में हमारा मन रूप हंस अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, ब्रह्म चिन्तन रूप जल में, निमग्नता रूप स्नान करके, सब प्रकार शांति सुख का अनुभव करता है । फिर जैसे जैसे सुख रूप आत्म ज्योति को ज्ञान नेत्रों से देखते हैं, वैसे वैसे ही मन में अति आनन्द वर्तता है । जहां हृदय प्रदेश में सम्पूर्ण ऋद्धि सिद्धियों से मुक्त, जगत गुरू परमात्मा विराजते हैं, वहां जो हंस रूप संत उनकी शरण में जाते हैं, उस संत की बुद्धि रूप सुन्दरी, वहां पर उन प्रभु के कमल रूप चरणों को प्रेम रूप जल से धोती है और अमृत झरने रूप प्रभु का दर्शन रूपी नीर का पान करती है । और फिर मानसिक सामग्री से प्रभु की पूजा करती है । जिस पर प्रभु कृपा करते हैं, वही उस मानसिक पूजा को जानते हैं, और फिर कृपा करके हरि ही अपनी प्रेम की लहर प्रदान करते हैं । हम दासों ने उनकी कृपा से ही, उनका निर्भय साथ प्राप्त किया है । जब जो इन्द्रियों से अतीत, ब्रह्म वस्तु को अनुभव से देखता है, तब उस हंस रूप संत के अन्तःकरण में आनन्द वर्तता है । जिस भक्त को हरि अपना स्वरूप स्वयं प्रत्यक्ष कराते हैं अथवा उन्हीं को हरि, उनके स्वरूप होकर ही प्रतीत होने लगते हैं । उनको फिर पुण्य पाप लिपायमान नहीं करते । और वहां हृदय प्रवेश में अनहद बाजे बजने रूपी अद्भुत खेल होता है । और बिना बत्ती तेल ही ज्ञान दीपक जगमगाता है । वह उस आतम ज्योति का अखंड प्रकाश है । जैसे बसन्त उत्सव में फाग आदि का आनन्द होता है, उसी प्रकार हृदय में बारह मास ही आनन्द उत्सव बना रहता है । और वे विश्व के सार प्रभु चेतन्य स्वरूप जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, मन, बुद्धि, चित्त आदि में, तीनों स्थानों में समर्थ प्रभु निरन्तर विराजते हैं । हम उनको भीतर ज्ञान रूपी नेत्रों से देख रहे हैं, तभी हमारे अन्तःकरण में आनन्द वर्तता है । परन्तु उन परम पुरूष चेतन्य स्वरूप को, बहिर्मुख अज्ञानी कोई भी नहीं देख पाते । वे ऐसे समर्थ प्रभु हैं, जो सेवक

के मन की इच्छाएं और परिस्थितियों को जानकर, तत्काल ही उसकी रक्षा करते हैं। हे जीव रूप हंस! जहां हृदय प्रदेश में, उन प्रभु के तेजपुंज रूपी चरण हैं, वहां ही चल। वहां चलने पर ही तेरा मानव जन्म, सार्थक हो जाएगा।

406. आत्म परमात्म रास

घटि घटि गोपी घटि घटि कान्ह, घटि घटि राम अमर अस्थान ।।टेक।।
गंगा जमना अंतर बेद, सुरसती नीर बहै परसेद।
कुंज केलि तहं परम बिलास, सब संगी मिलि खेलैं रास।
तहं बिन बैना बाजैं तूर, बिगसैं कवंल चंद अरू सूर।
पूरण ब्रह्म परम परकास, तहं निज देखैं दादू दास।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, आत्म परमात्म रास दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ! सभी शरीरों में अन्तर्मुख वृति रूप गोपियां और साक्षी रूप कृष्ण हैं और शुद्ध हृदय ही, जिस चेतन्य रूप कृष्ण का वृन्दावन स्थान है। इड़ा पिंगला स्वर ही गंगा यमुना बह रही है। अंतर वेद कहिए, इन दोनों के बीच सरस्वती सुषुम्ना नाड़ी गुप्त बह रही है। या जैसे सरस्वती पृथ्वी से उमंगती है, वैसे ही सुषुम्ना सरस्वती मिलने पर अर्थात् कुम्भक होने पर शरीर से प्रस्वेद आता है, वही सरस्वती का नीर प्रवाह है। साक्षी चेतनाकार वृत्तियों को जो परमानन्द प्राप्त होता है, वही हृदय रूप कुंज को क्रीडा है। मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि सब अन्तर्मुख होकर, ब्रह्म स्वरूप का विचार रूपी रास खेलते हैं। उस अन्तर रास में बिना वाणी ही, वृत्ति द्वारा गायन होता है। और बिना हाथों के ही अनहद शब्दरूपी नगाड़े बजते हैं। तथा हृदय कमल खिल उठता है। इड़ा पिंगला दोनों, सुषुम्ना नाड़ी में लय हो जाती हैं। तब फिर वहां, एक परम प्रकाश रूप पूर्ण ब्रह्म का ही, निष्कामी भक्त, निज आत्म स्वरूप से दर्शन करते हैं।

।। इति राग भैरूं टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

।। अथ राग ललित २५ ।।

407. पराभक्ति

राम तूं मोरा हूं तोरा, पाइन परत निहोरा ।।टेक।।
एकै संगै बासा, तुम्ह ठाकुर हम दासा ।
तन मन तुम्ह कौं देवां, तेज पुंज हम लेवां ।
रस मांहै रस होइबा, जोति सरूपी जोइबा ।
ब्रह्म जीव का मेला, दादू नूर अकेला ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, पराभक्ति दिखा रहे हैं कि हे राम ! आप हमारे स्वरूप हो और हम आपके स्वरूप हैं, परन्तु फिर भी मैं आभास रूप से आपका सेवक हूं। आपके चरणों में नमस्कार करता हूं। बारवार आपसे बिनती करता हूं। आपके साथ ही मेरा बास है। कूटस्थ ब्रह्म से अभेद ही है। मैं आभास रूप आपका दास हूं। अपना बाध्य करके, आपके स्वरूप में अभेद होता हूं। हम अपना तन और मन, लय चिन्तन द्वारा, आपमें ही अभेद करते हैं। और समूह तेज रूप आपके ब्रह्म स्वरूप का हम दर्शन कर रहे हैं। व्यष्टि समष्टि की एकता रूपी रस में, रस का अभेद करते हैं। हे ज्योति स्वरूप ! अब तो आपका ही, हम तन मन में, अनुभए कर रहे हैं। ब्रह्मऋषि कहते हैं कि उपरोक्त पराभक्ति द्वारा, जीव ब्रह्म की एकता होने के बाद, केवल शुद्ध स्वरूप ही एक शेष रह जाता है।

छंद :-

ज्यूं जल बीच धर्‌यो जल पिंड सू, पिंड रू नीर जुदे
कछु नांहि ।
ज्यूं द्रीघ में पुतली द्रघ एकसु, नहीं कछु भिन्न रू
भिन्न दिखाई ।
तैसे ही सेवक भावै सदा यह, भक्ति परा परमात्म
मांहि ।

---

408. अनन्य शरण

मेरे गृह आव हों गुरू मेरा, मैं बालक सेवग तेरा ।।टेक।।
मात पिता तूं अम्हचा स्वामी, देव हमारे अंतरजामी ।
अम्हचा सजणी अम्हचा बंधू, प्राण हमारे अम्हचा जिन्दू ।
अम्हचा प्रीतम अम्हचा मेला, अम्हची जीवनि आप अकेला ।
अम्हचा साथी संग सनेही, राम बिना दुख दादू देही ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, अनन्य शरण दिखा रहे हैं कि हे गर्भवास में उपदेश करने वाले, हमारे गुरूदेव राम ! आप हमारे हृदय रूपी घर में अब प्रगट होइये । मैं आपका अबोध बालक सेवक हूं । हे अन्तर्यामी ! आप ही हमारे माता, पिता, स्वामी, देवता, सज्जन, भ्राता, जीवित रखने वाले प्राण और प्रियतम, हमारे सम्मेलन रूप हमारी जीवन सहायक और सदैव संग रहने वाले स्नेही, हमारे तो सब कुछ आप ही केवल हैं । हे राम ! आपके बिना, हमारे जीवात्मा को भारी दुःख हो रहा है ।

409. हितोपदेश

वाहला माहरा ! प्रेम भक्ति रस पीजिये,
रमिये रमिता राम महारा वाहला रे ।

हिरदा कवंल में राखिये, उत्तम एहज ठाम,
महारा वाहला रे ।।टेक।।
वाहला म्हारा ! सतगुरू सरणै अणसरै,
साध समागम थाइ, म्हारा वाहला रे ।
बाणी ब्रह्म बखाणिये, आनन्द मैं दिन जाइ,
म्हारा वाहला रे ।
वाहला म्हारा ! आतम अनभै ऊपजै,
ऊपजै ब्रह्म गियान, म्हारा वाहला रे ।
सुख सागर में झूलिये, सांचो यह स्नान,
म्हारा वाहला रे ।
वाहला म्हारा ! भव बन्धन सब छूटिये,
कर्म न लागे कोइ, म्हारा वाहला रे ।
जीवनि मुकति फल पामिये, अमर अभय पद होइ,
म्हारा वाहला रे ।
वाहला म्हारा ! अठ सिधि नौ निधि आंगणै,
परम पदारथ चार, म्हारा वाहला रे ।
दादू जन देखै नहीं, रातो सिरजनहार,
म्हारा वाहला रे ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, हितोपदेश कर रहे हैं कि हे हमारे प्रिय जिज्ञासु ! अब परमेश्वर की प्रेमा भक्ति रूप अमृत रस का पान कीजिये और रमता राम से अब इस मनुष्य शरीर में ही, एकत्व भावना द्वारा रमिये। हे प्यारे जिज्ञासु ! अपने हृदय रूपी कमल में, परमेश्वर का नाम चिन्तन रखिये, क्योंकि यही स्थान भजन करने का, अति उत्तम है। परन्तु हे जिज्ञासु ! सत्य उपदेश के देने वाले सतगुरू की शरण

सदैव रहना, तभी उपरोक्त सब काम सिद्ध होगा और फिर सच्चे संतों का समागम करना। और अपनी बाणी से व्यापक ब्रह्म का ही वर्णन करना, तो फिर आयु के दिन, आनन्दपूर्वक व्यतीत होंगे। इस प्रकार हे जिज्ञासु ! आतम परमात्मा की एकता रूप अनुभव, ब्रह्म ज्ञान उत्पन्न होगा। फिर सुखरूप ब्रह्म सरोवर में एकत्व भावना रूप झूले पर झूलिये। और फिर जीव ब्रह्म की एकता का विचार रूपी सच्चा स्नान करिये। हे प्रिय जिज्ञासु ! फिर तेरे सम्पूर्ण संसार के बन्धन और संचित कर्म, सब नष्ट हो जावेंगे। फिर जीवन मुक्ति रूपी फल, और अमर अभय पद पाइये। फिर तो आठ सिद्धि नौ निद्धि, अर्थ धर्म काम मोक्ष, यह सब तुम्हारे आंगण में आकर नृत्य करैंगे। ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव महाराज कहते हैं कि, सच्चा निष्कामी उपरोक्त लक्षणयुक्त जिज्ञासु, उनकी तरफ देखता भी नहीं है। केवल स्वस्वरूप ब्रह्म में ही मग्न रहता है।

410· अखंड प्रीति

हमारो मन माई, राम नाम रंगि रातो,
पिव पिव करै पीव कौं जानै, मगन रहै रसी मातो ॥टेक॥
सदा सील संतोष सुभावत, चरण कंवल मन बांधो।
हिरदा मांहि जतन करि राखौं, मानौं रंक धन लाधो॥
प्रेम भगति प्रीति हरि जानौं, हरि सेवा सुखदाई।
ग्यान ध्यान मोहन को मेरे, कंप न लागै काई॥
संगि सदा हेत हरि लागो, अंगि और नहिं आवै।
दादू दीन दयाल दमोदर, सार सुधा रस भावै॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, अखण्ड प्रीति दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमारा तो मन अब एक राम नाम में ही राता रत्त हो रहा है, और हे पीव ! हे पीव ! इस प्रकार रटता रटता, एक पीव-को ही, अपने जीव की जीवन जानकर, उनके प्रेम रस को पीकर, मस्त हो रहा है। सदैव स्वभाव से ही, शील ब्रह्मचर्य संतोष आदि को धारण करके, हृदय कमल में प्रभु के तेज पुंज रूपी चरणो में बिंध गया है। और हृदय प्रदेश में ही, अब तो हमारे स्वामी राम को, यत्नपूर्वक रखा है, जैसे रंक को धन प्राप्त हो जावे, तो वह उस धन का कभी त्याग नहीं करता। अब तो हम एक हरि की ही प्रेमा भक्ति रूप सेवा, प्रीतिपूर्वक जानी है कि यही जीवन मुक्ति रूपी सुख को देने वाली है। और अब हमारे हृदय में एक विश्ववी मोहन का ही ज्ञान ध्यान है। पाप रूप कालिमा किसी प्रकार की अब हमें स्पर्श नहीं कर पाती। हरि के संग ही

सदैव, अब हमारी प्रीति लगी है, तब से हमारे हृदय में अब दूसरे की प्रीति नहीं आती है। ब्रह्मऋषि कहते हैं कि वह अपने दीन गरीब भक्तों पर दया करके दर्शन देने वाले, विश्व के सार रूप उन्हीं का दर्शनरूपी अमृत रस, हमको भाता है, अर्थात् प्रिय लगता है।

411. साहिब सिफत

मेहरवान मेहरवान, आब बाद खाक आतिस
आदम नीसान ।।टेक।।
सीस पांव हाथ कीये, नैन कीये कान ।
मुख कीया जीव दीया, राजिक रहमान ।।
मादर पिदर परद पौस, सांई सुबहान ।
संग रहै दस्त गहै, साहिब सुलतान ।।
या करीम या रहीम, दाना तूं दीवान ।
पाक नूर है हजूर, दादू है हैरान ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, साहिब की सिफत कहिए गुण दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! वह समर्थ स्वामी परमेश्वर अति दयालु हैं। उन्होंने जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि इनके द्वारा मानव की रचना की है। यह सब उनकी अद्भुत शक्ति के चिन्ह हैं। फिर उस समर्थ ने मानव के शरीर के सम्पूर्ण अवयव उचित स्थानों पर ही बनाये हैं और फिर मुख देकर वक्तृत्व शक्ति उसमें रखी है। फिर जीव रूप चेतनता दी है। यह सब देकर, वह रहम दिल कहिए दयालु परमेश्वर, चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त को आप ही रिजक दे रहे हैं। और वही सबके माता पिता रूप हैं तथा सम्पूर्ण दोषों को छिपाने वाले हैं। वह हमारे स्वामी, अति शोभनीक, अपने आत्मीय जनों के सदैव साथ रहते हैं, उनका हाथ पकड़े हुए। ऐसे वह हमारे साहिब, बादशाहों के भी बादशाह हैं। हे कृपालु ! हे रहमदिल ! हे जबरदस्तों के भी जबरदस्त दाना ! हे न्यायधीश ! आपका नूर कहिए स्वरूप पवित्र से भी पवित्र है। हे हुजूर ! ऐसे आपके शुद्ध स्वरूप का दीदार करके, आपके हजूरी बन्दे हैरान हो रहे हैं। अर्थात् थकित हो रहे हैं।

।। इति राग ललित टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ।।

卐 ॐ 卐

॥ अथ राग जैत श्री २६ ॥

412. अमिट नाम विनती

तेरे नाऊं की बलि जाऊं, जहां रहौं जिस ठाऊं ॥टेक॥
तेरे बैनों की बलिहारी, तेरे नैनहुं ऊपरि वारी ।
तेरी मूरति की बली केती, बारी बारी हौं दीती ॥
सोभित नूर तुम्हारा, सुन्दर जोति उजारा ।
मीठा प्राण पियारा, तूं है पीव हमारा ॥
तेज तुम्हारा कहिये, निर्मल काहे न लहिये ।
दादू बलि बलि तेरे, आव पिया तूं मेरे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, नाम और नामी में अखण्ड प्रेम दिखाते हुए, नामी की प्राप्ति के लिये विनय कर रहे हैं कि हे प्यारे प्रीतम राम ! हम आपकी और आपके नाम की बारम्बार बलिहारी जाते हैं। हम जहां भी कहिए जिस जगह भी रहैं, वन में या नगर में, प्रवृति मार्ग में, या निवृति में, उसी जगह आपके मन मोहनी बचनों की भी बलिहारी जाते हैं। और आपके नेत्रों पर, हम अपने आपको बार बार न्यौछावर करते हैं। हे प्रभु ! आपकी अलौकिक मूर्ति के ऊपर, हम अपने आपको, कितनी दफा वार फेर करते हैं। क्योंकि हे प्रीतम ! आपका नूर कहिए स्वरूप, अति शोभनीक है। हे सुन्दर ! आपकी दर्शन रूप ज्योति का प्रकाश हो रहा है। हे प्राणों के प्रिय ! आप हमको बड़े सुख रूप लगते हो। आप ही हमारे प्रीतम हो।

हे नाथ ! आपका अलौकिक तेज, माया आदि मल रहित निर्मल है। ऐसे स्वरूप को अब हम क्यों नहीं लेवेंगे ? हे सुख प्रीति के विषय प्रीतम ! आप हमारे हृदय में अपना प्रादुर्भाव करिये। हम आपकी बार बार बलिहारी जाते हैं।

413. बिरह बिनती

मेरे जीव की जाणैं जाणराय, तुमथैं सेवग कहा दुराइ ॥टेक॥
जल बिन जैसे जाइ जिय तलफत, तुम्ह बिन तैसैं हम हु बिहाइ।
तन मन व्याकुल होइ बिरहनी, दरस पियासो प्रान जाइ।
जैसैं चित्त चकोर चंद मनि, ऐसैं मोहन हम हि आहि।
बिरह अगनि दहत दादू कौ, दरसन परसन तन सिराइ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, बिरहपूर्वक विनती कर रहे हैं कि हे समर्थ परमेश्वर ! घट घट की जानने वाले जाणराय अन्तर्यामी ! हमारे जीव के इस बिरहरूपी दर्द को आप ही जानते हो। हम आपके बिरहीजन सेवक, आपसे क्या छिपावें ? हे मोहन जैसे जल की प्राप्ति के बिना प्यासे मनुष्य का जीव तड़फता रहता है, अैसे ही, आपके दर्शन किये बिना, हमारा समय बीत रहा है। हे नाथ ! अबतो हम बिरहीजनों का तन मन व्याकुल हो रहा है। आपके दर्शनों के बिना, हमारे प्राण, आपके वियोग में ही निकल जाएंगे। हे मन मोहन ! जैसे चन्द्रमा के दर्शनों के लिये, चकोर व्याकुल होकर देखता है, ऐसी स्थिति हमारी हो रही है। ब्रह्मऋषि कहते हैं यह आपकी वियोग जन्य, बिरह रूप अग्नि, हमको जला रही है। हे नाथ ! आप अपना हम बिरहीजनों को दर्शन दीजिए। आपके दर्शनों का स्पर्श करके ही हम बिरहीजनों का तन, शीतलता को प्राप्त होगा।

॥ इति राग जैत श्री टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ॥

॥ अथ राग धनाश्री २७ ॥

414. अमिट अविनाशी रंग

रंग लागौ रे राम को, सो रंग कदे न जाई रे ।
हरि रंग मेरो मन रंग्यो, और न रंग सुहाई रे ॥टेक॥
अविनासी रंग ऊपनौं, रचि मचि लागो चोलो रे ।
सो रंग सदा सुहावणो, ऐसो रंग अमोलो रे ॥
हरि रंग कदे न ऊतरै, दिन दिन होइ सुरंगो रे ।
नित नवो निरवाण है, कदे न व्है लो भंगो रे ॥
सांचो रंग सहजैं मिल्यो, सुन्दर रंग अपारो रे ।
भाग बिना क्यूं पाइये, सब रंग माहैं सारो रे ॥
अवरण को का वरणिये, सो रंग सहज सरूपो रे ।
बलिहारी उस रंग की, जन दादू देखि अनूपो रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, अविनाशी परमेश्वर के रंग का परिचय दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हमारे तो केवल एक सच्चिदानन्द रूप अविनाशी, निरंजन राम का निष्काम भक्ति रूपी अद्वैत रंग लगा है । अब वह रंग हमारे हृदय से कभी मिटने वाला नहीं है । हरि के उस अविनाशी रंग में हमने हमारे मन को रंग लिया है । अब दूसरे मायावी रंग हमको प्रिय नहीं लगते । वह रंग गुरु कृपा से हमारे

हृदय में ही उत्पन्न हुआ है। और हमारा चोला कहिए शरीर, उस रंग में रच मच अर्थात् अति गहरा रंगा है। वह रंग अति शोभनीय सबको प्रिय लगने वाला है, देवता भक्त जनों को भी अति प्रिय है। और फिर वह अमूल्य रंग है। यह हरि का रंग कभी भी शरीर में फीका पड़ने वाला नहीं है। हे संतो! दिन दिन गहरा होता जा रहा है। नित्य नया रूप धारण करता रहता है और फिर निर्वाण है, भक्त को काल कर्म के बाण से रहित कर देता है। और कभी भी नाश को प्राप्त होने वाला नहीं है। यह सच्चा रंग सहजें कहिए हमारे पूर्व पुण्य के प्रभाव से ही प्राप्त हुआ है। यह रंग अति सुन्दर और अपार है। परन्तु उत्तम भाग्य के बिना, सब रंगों में यह सबका सार रूप रंग इसका प्राप्त होना कठिन है। यह रंग अवर्ण है, इसको क्या कह करके वर्णन करें। वह तो सहज कहिए निरद्वन्द स्वरूप है। इसमें कोई विकार नहीं है। इस रंग की हम बार बार बलिहारी जाते हैं कि जिसने हमको अनूप अविनाशी परमेश्वर के दर्शन करा दिए हैं।

415.

लागि रह्यो मन राम सौं, अब अनंत नहिं जाये रें।
अचला सौं थिर व्है रह्यो, सकै न चित्त डुलाये रे ।।टेक।।
ज्यूँ फुनिग चंदन रहै, परिमल रहै लुभाये रे।
त्यूँ मन मेरा राम सौं, अब की बेर अघाये रे।।
भवंर न छाड़ै बास कूं, कवंल हि रह्यो बंधाये रे।
त्यूं मन मेरा राम सौं, बेधि रह्यो चित्त लाये रे।।
जल बिन मीन न जीवई, बिछुरत ही मरि जाये रे।
त्यूं मन मेरा राम सौं, ऐसी प्रीति बनाये रे।।
ज्यूं चात्रिग जल कौं रटै, पिव पिव करत बिहाये रे।
त्यूँ मन मेरा राम सौं, जन दादू हेत लगाये रे।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, अविनाशी परमेश्वर के रंग का परिचय दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ! अब तो हमारा मन, एक निरंजन राम के स्वरूप में लग रहा है। अब अन्य किसी का भी चिन्तन नहीं करता है। अचल अमर ब्रह्म में ही स्थिर हो रहा है। अब हमारा चित्त चंचल नहीं होता है। जिस प्रकार सर्प चन्दन की सुगन्धि और शीतलता के लिये चन्दन के वृक्ष के आकर लिपटता है, ऐसे ही हमारा मन परम

आनन्द की प्राप्ति के लिये, राम के स्वरूप चिन्तन में लगा है। और हम इस वर्तमान मनुष्य जन्म में ही, तृप्त हो रहे हैं। जिस प्रकार भंवर कमल की सुगन्धि का त्याग नहीं करता, और सायंकाल सूर्य छिपने पर, उसी में बन्द हो जाता है, वैसे ही हमारा मन, राम के स्वरूप चिन्तन से विद्ध होकर, उसी में स्थिर रहता है। जैसे जल के बिना, मछली जीवित नहीं रह सकती, वैसे ही हमारे मन ने, राम स्मरण से, मछली जैसी प्रीति बनाई है। स्मरण का त्याग करके, जीवित नहीं रह सकता। जैसे पपैया स्वांति बूंद के लिये, रटना लगाता रहता है, और पिव पिव पुकारता है। हे जनो! वैसे ही हमारा मन, एक राम को, पपैया की भांति प्रीति सहित, पुकारता रहता है।

416· विनती

मन मोहन हो! कठिन बिरह की पीर, सुन्दर दरस
दिखाइये ।।टेक।।
सुनहु न दीन दयाल, तब मुख बैन सुनाइये।
करूणामय कृपाल, सकल सिरोमणि आइये।
मम जीवन प्राण अधार, अविनासी उर लाइये।
इब हरि दरसन देहु, दादू प्रेम बढ़ाइये।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर से बिनती कर रहे हैं कि हे मन मोहन परमेश्वर! आपके वियोग जन्य, यह बिरह का दर्द, हमें सता रहा है। इसलिये आप अब दया करके, हमको आपका दर्शन कराइये। हे दयालु! अब हमारी विनती सुनिये और आपके मुखारबिन्द के अमृत भरे वचन हमको सुनाइये। हे सर्व शिरोमणी करूणा सिन्धु कृपालु! हमारे हृदय में पधारिये। हे हमारे जीव के जीवन प्राणाधार अविनाशी मन मोहन! अब आप हमें शीघ्र ही दर्शन देकर, अपने हृदय से लगाइये और हमारे से प्रेम बढ़ाइये।

417·

कतहूं रहे सो विदेश, हरि नहिं आये हो।
जन्म सिरानौं जाइ, पीव नहिं पाये हो ।।टेक।।
विपति हमारी जाइ, हरि सौं को कहै हो।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि क्यूं रहै हो।

पीव के बिरह बियोग, तन की सुधि नहीं हो ।
तलफि तलफि जिव जाइ, मृतक व्है रही हो ॥
दुखित भई हम नारि, कब हरि आवै हो ।
तुम्ह बिन प्राण अधार, जीव दुख पावै हो ॥
प्रगटहु दीन दयाल, बिलम्ब न कीजिये हो ।
दादू दु:खी बेहाल, दरसन दीजिये हो ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर से विनती कर रहे हैं कि हे हरि ! हमारे स्वामी आप कहां विदेश में रह गये । अभी तक भी हमें दर्शन नहीं हो रहे हैं । हे नाथ ! हमारा यह मनुष्य जन्म, वृथा ही जा रहा है । हे प्रीतम ! आप अभी तक हमको प्राप्त नहीं हुए हो । हे संतो ! हमारी विपत्ति हरि से जाकर अब कौन कहै कि हे नाथ ! आपके बिना दर्शन किये, आपके बिरहीजन भक्त अनाथ हो रहे हैं । बिरहीजन आपके बिना, इस शरीर में कैसे रहैं ? हे प्रीतम ! आपके बिरह रूप वियोग से, तन की सुध बुध भी भूल रहे हैं । और तड़फ तड़फ करके जीव, शरीर से जाने को मृत्तक तुल्य हो रहा है । हम बिरहीजन नारी, अति दुखी हो रही हैं । हे हरि ! आप हमारे हृदया रूपी घर में कब आवोगे ? हे प्राणाधार स्वामी ! आपके बिना इस शरीर में जीव, अत्यन्त दुख पा रहा है । हे दीन दयाल ! अब प्रगट होकर, दर्शन दीजिए । इसमें विलम्ब नहीं करना । हम बिरहीजन आपके बिना बेहाल दु:खी हो रहे हैं । आप अपना दर्शन कराइये ।

418.

सुरजन मेरा वे ! कीहैं पारी लहांऊ ।
जे सुरिजन घरि आवै वे, हिक कहाण कहांउं ॥टेक॥
तो बाझे मेकौं चैन न आवै, ये दुख कींह कहांउं ।
तो बाझे मेकौं नींद न आवै, अखियां नीर भराउं ॥
जे तूं मेकौं सुरजन डेवै, सो ही सीस सहाउं ।
ये जन दादू सुरजन आवै, दरिगह सेव कराऊं ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर से विनती कर रहे हैं कि हे हमारे सुन्दर प्रीतम ! आपके वियोग जन्य इस विरह के दुख से, हम कैसे पार होवें ? हे सुन्दर प्रीतम ! आप हमारे हृदय रूपी घर में आओ, तो हम आपको एक अपनी कहानी सुनावें। आपके बिना हमको चैन नहीं आता है । यह दुख हम किसको कहकर सुनावें ? आपके बिना हमें आंखों में नींद भी नही आती है, और हमारे नेत्र आपकी याद कर करके, आसुओं से पूर्ण हो रहे हैं। हे सुन्दर प्रीतम ! जो भी कसौटी रूप दुख, आप हमको देओगे, वह सब अपने सिर पर सहन करेंगे। हम तो आप ही के जन हैं। हे सुन्दर प्रीतम ! हमारी हृदय रूपी दरगाह में आप आईये, तब हम आपकी सेवा करके, आपके दर्शन पावें।

419-

मोहन माधो कब मिलै, सकल सिरोमणि राइ।
तन मन व्याकुल होत है, दरस दिखावो आइ ।।टेक।।
नैन रहै पंथ जोवतां, रोवत रैणि बिहाइ।
बाल सनेही कब मिलै, मो पैं रह्या न जाइ ।।
छिन छिन अंगि अनल दहै, हरि जी कब मिलि हैं आइ।
अंतरजामी जाणि करि, मेरे तन की तपति बुझाइ ।।
तुम्ह दाता सुख देत हो, हां हो सुणी दीन दयाल।
चाहैं नैन उतावले, हां हो कब देखौं लाल ।।
चरन कवंल कब देखि हों, हां हो सनमुख सिरजनहार।
सांई संग सदा रहौं, हां हो तब भाग हमार ।।
जीवनि मेरी जब मिलै, हां हो तब ही सुख होइ।
तन मन मैं तूं ही बसै, हां हो कब देखौं सोइ ।।
तन मन की तूं ही लखै, हां हो सुणि चतुर सुजान।
तुम्ह देखे बिन क्यूं रहौं, हां हो मोहि लागे बान ।।

बिन देखे दुख पाइये, हां हो इब बिलम्ब न लाइ।
दादू दरसन कारनै, हां हो सुख दीजै आइ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर से विनती कर रहे हैं कि हे मन मोहन ! माधव ! हमारे स्वामी, आप दया करके, हमसे कब मिलोगे ? हमारा तन मन व्याकुल हो रहा है। हे सर्व के शिरोमणि राजान् पत राजा ! आप आकर हमें अपना दर्शन दिखाइये। आपका मार्ग देखते देखते, हमारे नेत्र थकित हो रहे हैं, और रूदन करते करते हम उम्र रूपी रात्रि बिता रहे हैं। हे गर्भवास के साथी ! हमारी रक्षा करने वाले, अब आपके बिना, हमसे इस शरीर में रहा नहीं जाता है। एक एक क्षण में बिरह रूपी अग्नि, हमारे शरीर को जला रही है। हे प्राणपति हरि जी ! आप कब आकर, हमसे मिलेंगे। हे अन्तर्यामी ! आप हमारे अन्तर बिरह की तप्त जानकर, इस तन की तप्त को बुझाइये। आप तो अपने आत्मीयजनों को सुख देने वाले हो। हां, तो हे दीन दयाल ! हमारी भी विनती सुनिये। अब तो हमारे नेत्र, आपके दर्शन जल्दी ही करना चाहते हैं। हां, तो हे लाल ! आपने चरणार्विन्द का हम, कब दर्शन करैंगे अथवा आप हमें अपने चरण कमलों का, कब दर्शन कराओगे ? हां, तो हे सिरजनहार ! अब आप हमारे सन्मुख आइये। हे स्वामी ! आपके संग हम सदा रहैं। हां, तो फिर हे प्रभु ! हम अपने भाग्य की क्या सराहना करैं ? हे हमारे जीवन ! जब आप हमसे मिलोगे। हां, तो फिर हमको आपके दर्शनों से सुख होगा। आप तो हमारे तन मन में निवास कर रहे हो। हां, तो हे प्रभु ! हम आपके स्वरूप को कब देखेंगे ? आप हमारे तन मन की सब जानते हो। हां, तो हे चतुर सुजान ! आप फिर हमारी विनती सुनिये। हे नाथ ! आपके देखे बिना, हम इस शरीर में कैसे रहैं ? हां, आपके बिरह बाण, हमें सता रहे हैं। आपके दर्शन करे बिना, हम दुख पा रहे हैं। हां, तो हे प्रभु ! अब क्यों विलम्ब करते हो ? हे नाथ ! आपके दर्शनों के लिये, हम अति व्याकुल हो रहे हैं। हां, तो हे प्रभु ! अब आप हमारे हृदय में आकर, दर्शन दीजिए।

420. वैराग्य

ये खूहि पये सब भोग बिलासन, तैसेहु वाको छत्र सिंघासन ॥टेक॥
जनतिहुंरा भिस्त नहिं भावैं, लाल पलिंगा क्या कीजै।
भाहि लगै इहि सेज सुखासन, मेंकौं देखण दीजै॥
बैकुंठ मुक्ति स्वर्ग क्या कीजै, सकल भवन नहिं भावै।
भठी पये सब मंडप छाजे, जे घरि कंत न आवै॥

लोक अनंत अभै क्या कीजै, मैं बिरहीजन तेरा ।
दादू दरसन देखण दीजै, ये सुनि साहिब मेरा ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, वैराग्य दिखा रहे हैं कि हे परमेश्वर ! आपके दर्शन बिना, यह संसार के जितने भी भोग विलास हैं, सब कुए में गिरो । हमें इनकी कोई इच्छा नहीं है । और वैसे ही श्वेत सिंघासन, सोने के छत्र सहित भी, उस पर बैठना हमारे लिये व्यर्थ है । आपके भक्त को भिस्त और हुरां भी प्रिय नहीं लगती । हे प्रीतम ! हम लाल पलंग का क्या करें । और यहां संसार में सेज के सुख और भी जितने दुनियावी सुख हैं, इन सबके आग लगो । हम क्या करें । हमको तो आपका दर्शन देखने दो । वैसे ही बैकुण्ठ का बास और सुख का क्या करैं तथा चार प्रकार की मुक्तियों का भी क्या करें और स्वर्ग का क्या करैं ? तीन लोक और चौदह भवन के सम्पूर्ण सुखों का हम क्या करें, हमको प्रिय नहीं लगते । और मण्डप महलों का बास, यह सब भट्टी में पड़ो । जब तक हे कंत ! आप हमारे हृदय रूपी घर में नहीं प्रगट होते, तो हम तब तक, दुखी ही रहैंगे । अनन्त लोकों का बास और अभय पद का क्या करें ? हम तो आपके बिरहीजन भक्त हैं । आपके दर्शनों की प्यास लगी है । हे हमारे साहिब ! अब आपका दर्शन देखने दो, यह हमारी पुकार सुनिये ।

421. ईमान साबित

अल्लह आशिकां ईमान,
बहिश्त दोजख दीन दुनियां, चिक्कारे रहमान ।।टेक।।
मीर मीरी पीर पीरि, फरिस्ता फरमान ।
आव आतीस अरस कुरसी, दीदनी दीवान ।।
हरदो आलम खलक खाना, मोमिना इसलाम ।
हजा हाजी कजा काजी, खान तूं सुलतान ।।
इल्म आलम मुल्क मालुम, हाजते हैरान ।
अजब यारां खबरदारां, सूरते सुबहान ।।
अव्वल आखिर एक तूं हीं, जिंद है कुरबान ।
आसीकां दीदार दादू, नूर का नीसान ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरू इसमें, ईमान साबित दिखा रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! ईश्वर के सच्चे आशिकों का ईमान रूप, वह आप स्वयं अल्लह परमेश्वर ही है । उन सच्चे परमेश्वर के प्रेमियों को भिस्त, दोजक़, नरक आदि के सुख दुख से और दुनियां के दो दीन हिन्दू मुसलमानों की रिस्म रिवाज, सम्प्रदायिक झगड़ों से, रहमान के भक्तों को, इनसे क्या काम है ? सरदारों की सरदारी, पीरों की पीरि, फरिश्ताओं की आज्ञा, जल, अग्नि, आकाश और पृथ्वी की विशेषता खोजने की भी, उन्हें क्या आवश्यकता है ? हे सुबहान ! वह तो आपके ही केवल दर्शन चाहते हैं । और इस लोक वा परलोक दोनों ही, संसार के प्रत्येक प्राणी के घर के, हिन्दू मुसलमान धर्म और और उसमें निष्ठा रखने वाले मोमिनों के, नियत समय पर यात्रा करने वाले हाजियों के न्याय करने वाले काजियों के, आप ही मुखिया और बादशाह हैं । संसार की जितनी भी ज्ञान आदि विद्या, देश के प्राणियों को, व्याकुल करने वाली उनकी इच्छायें, सब कुछ ही, उन प्रभु को ज्ञात हैं । अतः हे अद्भुत प्रभु के प्रेमियों ! उन पवित्र प्रभु के स्वरूप चिन्तन में सावधान रहो । हे प्रभो ! सृष्टि के आदि और अन्त में आप ही रहते हैं । हम अपना जीवन आप पर न्यौछावर करते हैं । हमारा लक्ष्य आपका स्वरूप देखना ही है । आप हम प्रेमियों को दर्शन दीजिये ।

422. विरह विनती

अल्लाह तेरा जिकर फिकर करते हैं,
आशिकां मुश्ताक तेरे, तरस तरस मरते हैं ॥टेक॥
खलक खेस दिगर नेस, बैठे दिन भरते हैं ।
दायम दरबार तेरे, गैर महल डरते हैं ॥
तन सहीद मन सहीद, रात दिवस लड़ते हैं ।
ग्यान तेरा ध्यान तेरा, इश्क आग जलते हैं ॥
जान तेरा जिन्द तेरा, पावों सिर धरते हैं ।
दादू दीवान तेरा, जर खरीद घर के हैं ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें विरह विनती कर रहे हैं कि जब परमेश्वर ब्रह्मऋषि से बोले कि हे मेरे रूप, क्या करते हो ? हे अल्लह ! हमतो प्रभु आपकी ही चर्चा और आपके दर्शन अब तक न होने का फिकर कर रहे हैं । और हम तो आपके आशिक, दर्शनों के लिये, तरस तरस करके, दुनियां की तरफ से, मरे जा रहे हैं । हे प्रभु । इस संसार में अपने पराये सभी, नष्ट होने वाले हैं । इस प्रकार बैठे हुए विचार

करते करते, दिन बिता रहे हैं। हे सबको देने वाले मालिक ! हृदय रूपी दरबार में या आपके सत्संग रूपी दरबार में बैठे हुए, आपका भजन करते हैं। और अन्य राजा महाराजाओं के महलों में जाते हुए डरते हैं। क्योंकि वहां नाना प्रकार के भोग विलास, भोगने वालों के संग से, आपकी भक्ति में विघ्न होने की सम्भावना रहती है। और अपने तन मन से, इनके गुण विकारों को त्यागने के लिये, रात दिन संग्राम करते रहते हैं। और आपका ही ज्ञान, आपका ही ध्यान, आपका इश्क कहिए विरह रूप अग्नि में रात दिन जलते रहते हैं। हमारे प्राण और जीव, आपके ही हैं। हम आपके चरणों में अपना सिर रखे हुए हैं। हे न्यायधीश परमेश्वर ! हमतो आपके खरीदे हुए, आपके घर के बन्दे हैं। अब हम पर आप कृपा करके, दर्शन दीजिये।

423

मुखि बोल स्वामी तूं अंतरजामी, तेरा सबद सुहावै राम जी ।।टेक।।
धेनु चरावन बैनु बजावन, दरश दिखावन कामिनी ।
बिरह उपावन तपति बुझावन, अंगि लगावन भामिनी ।।
संगि खिलावन रास बनावन, गोपी भावन भूधरा ।
दादू तारन दुतिर निवारण, संत सुधारण राम जी ।

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
विश्वविद्यालय

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, विरह विनती कर रहे हैं कि हे हमारे स्वामी, राम जी ! आप हमसे, अपने मुखार्बिन्द से बोलिये, क्योंकि अन्तर्यामी राम जी ! आपके मुखार्बिन्द के शब्द, हमको अति प्रिय लगते हैं। आप गऊओं को चराने वाले भगवान कृष्ण रूप राम, मुरली बजाने वाले प्रभु, अपने भक्त रूप कामनियों को अपना दर्शन देने वाले स्वामी हैं। अथवा इन्द्रिये रूपी दहनों को सत्ता स्फूर्ति देने वाले, हृदय में अनहद ध्वनि रूप बैन बजाने वाले, आपकी बुद्धि रूप कामनी की, दर्शन रूप चाहना पूर्ण करने वाले प्रभु ! अपने निष्कामी भक्तों के हृदय में, बिरह रूपी दर्द को उत्पन्न करने वाले और फिर दर्शन देकर, बिरह अग्नि को शांत करने वाले, अपनी भामनी कहिए प्रिय बिरहीजनों भक्तों को, अपने अंग में लगाने वाले, आप ही हैं। फिर अपने भक्तों की सुरति को अपने साथ आप खिलाते हो और उनके साथ रास लीला रूपी बिनोद रचते हो। अपने भक्त रूप गोपियों को प्रिय लगने वाले, गोवर्धन पर्वत को, अथवा इस शरीर रूप पर्वत को या भूमिका को धारण करने वाले आप भूधर हैं। ब्रह्मऋषि कहते हैं कि इस संसार समुद्र से हमको तारने वाले आप ही हो। हे प्रभु ! आप ही अपने संतों की सब प्रकार से बात को सुधारने वाले हैं।

424. केवल बिनती

हाथ देहो रामा, तुम पूरण सब कामा, हौं तो उरझि
रह्यो संसार ॥टेक॥
अंध कूप गृह मै पर्‌यो, मेरी करहु संभाल ।
तुम बिन दूजा को नहीं, मेरे, दीना नाथ दयाल ॥
मारग को सूझै नहीं, दह दिसि माया जाल ।
काल पासि कसि बांधियो, मेरे कोइ न छुड़ावन हार ॥
राम बिना छूटै नहीं, कीजै बहुत उपाइ ।
कोटि किया सुलझै नहीं, अधिक अलूझत जाइ ॥
दीन दुखी तुम देखतां, भै दुख भंजन राम ।
दादू कहै कर हाथ दे हो, तुम सब पूरण काम ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, केवल विनती कर रहे हैं कि हे हमारे समर्थ स्वामी राम ! आप अपना दया रूपी हाथ हमको पकड़ा कर, इस संसार समुद्र से पार करिये । आप अपने आत्मीय जनों की सम्पूर्ण कामना पूर्ण करने वाले हैं । मैं तो इस संसार में नाना प्रकार की वासनाओं में उलझ रहा हूं प्रभु । हे नाथ ! यह घर द्वार आदि अन्ध कूप के समान हैं, इनमें नाना प्रकार की कामनारूप, अंधेरे में पड़े हैं । अब आप ही हमारी संभाल करो, अपना अंश जान कर । हे दीनानाथ दयालु ! आपके बिना अब हमारा इस समय, कोई भी रक्षक नहीं है । दसों दिशाओं में आपका माया रूप जाल बिछा हुआ है । इसमें आपको प्राप्ति का हमें मार्ग नहीं दीख पड़ता है । हे राम जी ! कर्म रूपी काल की फांसियों से हम बंध रहे हैं । इस फांसी से हमको आपके बिना, दूसरा और कोई भी छुड़ाने वाला नहीं दीख पड़ता है । हे राम जी ! आपके बिना हमारा छुटकारा नहीं होगा, हमने बहुत से उपाय करके देख लिये हैं । क्योंकि हमने करोड़ों प्रकार के सकाम कर्म रूप साधन साधे हैं । परन्तु हम ज्यादा से ज्यादा, संसार में उलझते हुए जा रहे हैं । हे राम जी ! आपके देखते हुए, हम दीन गरीब आपके दास, संसार रूपी भय से अति दुखी हैं । इस हमारे भय को आप ही निवारण करने वाले हैं । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हे राम ! आप अपना दया रूपी हाथ हमको पकड़ा कर, संसार से पार करिये । क्योंकि आप ही अपने दासों की सम्पूर्ण कामना पूर्ण करने वाले पूर्ण राम हैं ।

425. करुणा विनती

जनि छाड़ै राम जनि छाड़ै, हमहि बिसारि जनि छाड़ै,
जीव जात न लागै बार, जनि छाड़ै ॥टेक॥
माता क्यूं बालक तजै, सुत अपराधी होइ ।
कबहुं न छाड़ै जीव थैं, जनि दुख पावै सोइ ॥
ठाकुर दीन दयाल है, सेवग सदा अचेत ।
गुण औगुण हरि ना गिणै, अंतरि तासौं हेत ॥
अपराधी सुत सेवगा, तुम्ह हो दीन दयाल ।
हमथैं औगुण होत है, तुम्ह पूरण प्रतिपाल ॥
जब मोहन प्राणी चलै, तब देही किहि काम ।
तुम्ह जानत दादू का कहै, अब जनि छाड़ै राम ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, करुणा विनती कर रहे हैं कि हे समर्थ हमारे स्वामी राम ! हम आपसे बार बार विनय कर रहे हैं कि आप हमको, कभी भूल कर भी नहीं त्यागिये । क्योंकि इस शरीर से, जीव को जाने में देर नहीं लगती है । न मालूम कब इसको त्याग कर चला जाय ? इसलिये आप हमको कभी भी, अपने दया रूप हाथ से नहीं छोड़िये । हे स्वामी ! पुत्र यदि दोषी भी होवै, तब भी माता उसका कभी त्याग नहीं करती है । वह अपने पुत्र को, अपने चित्त से कभी भी नहीं त्यागती है और पुत्र कभी दुख न पावे, ऐसा प्रयत्न करती रहती है । इसी प्रकार आप हमारे स्वामी दीन दयालु हैं । अपने दास सेवकों की रक्षा के लिये, सदा आप सचेत रहते हैं । हे हरि ! आप शरीरों के सुरूप कुरूप आदि गुण अवगुण भी नहीं देखते हैं । और जो भक्तों के हृदय में भाव भक्ति प्रेम है, उसी को आप लेने हैं । परन्तु हमतो आपके अति अपराधी सुत सेवक हैं । तथा आप दीन दयाल हैं । हमारे से तो सदैव अवगुण ही होते जा रहे हैं । किन्तु हे दयालु ! आपतो फिर भी हमारी पूर्ण रूप से रक्षा ही कर रहे हैं । हे मन मोहन ! जब यह जीव चला जायेगा, तो शरीर फिर किस काम का है ? यह सब आप जाणराय, जानते हैं । मैं आपसे क्या कहूं । हमारी तो आपसे यही प्रार्थना है कि आप अब हमको न त्यागिये ।

426·

बिखम बार हरि अधार, करूणा बहु नामी ।
भगति भाव वेगि आइ, भीड़ भंजन स्वामी ।।टेक।।
अंति अधार संत सुधार, सुन्दर सुखदाई ।
काम क्रोध काल ग्रसत, प्रगटो हरि आई ।।
पूरण प्रतिपाल कहिये, सुमिर्‌या थैं आवै ।
भरम करम मोह लागै, काहे न छुड़ावै ।।
दीन दयाल होइ कृपाल, अंतरजामी कहिये ।
एक जीव अनेक लागे, कैसे दुख सहिये ।।
पावन पीव चरण सरण, जुगि जुगि तैं तारै ।
अनाथ नाथ दादू के, हरि जी हमारै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, करूणा विनती कर रहे हैं कि हे हरि ! अब यह कठिन समय, अन्त का आ रहा है । आप ही के नाम का एक हमारे आधार है । हे करूणा सिन्धु दयालु बहुनामी ! आप भक्ति भाव वाले भक्तों के पास जल्दी ही आ जाते हैं औह उनके भीड़ कहिए दुख का भंजन करने वाले आप ही हैं । अन्त में आप ही उनके आधार हैं । अपने संत भक्तों की बात को आप ही सुधारते हैं । हे सुन्दर ! आप ही सुखदाई सुख देने वाले हो । हे हरि ! यह काम, क्रोध, लोभ, मोह हमको खा रहे हैं । आप हृदय में प्रगट होकर, इनसे हमको बचाइये । हे प्रभु ! आप सब प्रकार अपने भक्तों का प्रतिपालन करने वाले पूर्ण काम हैं । जब आपके भक्त आपको पुकारते हैं, तब आप तत्काल ही आकर, उनकी रक्षा करते हैं। हे स्वामी ! नाना प्रकार के भ्रम रूपी कर्म और मोह ममता, हमको घेर लिये हैं । हे प्रभु ! आप हमको इनसे क्यों नहीं छुड़ाते हो ! हे दीन दयाल ! अब कृपा करें । आप अन्तर्यामी कहलाते हैं । हे प्रभु ! इस शरीर में, हमारा तो यह एक जीव है । और इसके अनेकों आसुरी सम्पदा रूप शत्रु लग रहे हैं । इन सबका दुःख हम कैसे सहन करें । हे पवित्र स्वरूप मुख प्रीति का विषय पीव ! अब तो हम आपकी शरण में हैं । हे नाथ ! युग युग में आप अपनी शरण में आये संत भक्तों का उद्धार किया है । ब्रह्मऋषि कहते हैं कि हम तो अनाथ हैं । हे हरि ! आप ही हमारे नाथ हो, हमको तारने वाले ।

427. बिनती

साजनियां नेहै न तोरी रे,
जे हम तोरैं महा अपराधी, तो तूं जोरी रे ॥टेक॥
प्रेम बिना रस फीका लागै, मीठा मधुर न होई।
सकल शिरोमणि सब थैं नीका, कड़वा लागै सोई ॥
जब लग प्रीति प्रेम रस नांहीं, त्रिखा बिना जल ऐसा।
सब थैं सुन्दर एक अमीरस, होइ हलाहल जैसा ॥
सुन्दरि सांई खरा पियारा, नेंहैं नवा नित होवै।
दादू मेरा तब मन मानै, सेज सदा सुख सोवै ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, अखंड प्रीति अर्थ बिनती कर रहे हैं कि हे हमारे साजन परमेश्वर ! आप हमसे अपनी प्रीति नहीं तोड़ लेना, और यदि हम अपराधी होने के कारण आपसे प्रीति तोड़ भी लें, तो भी आप कृपा करके, जोड़ने की ही दया करना। जिस प्रकार प्रेम बिना मीठे मधुर पदार्थ भी, दिये हुए फीके लगते हैं, इसी प्रकार हृदय में प्रेमा भक्ति के बिना, सर्व के शिरोमणि और सर्व से श्रेष्ठ परमेश्वर हैं, उनका निष्काम नाम स्मरण, संसारिक प्राणियों को फीका लगता है। अर्थात् कड़वा लगता है। जब तक हृदय में परमेश्वर में प्रीयि उत्पन्न नहीं होवै, तब तक परमेश्वर की प्रेमाभक्ति का रस प्राप्त नहीं होता है। जैसे प्यास के बिना, कोई भी प्रीतिपूर्वक जल को नहीं पीते, इसी प्रकार सब मायावी रसों से उत्तम, एक निष्काम प्रेमाभक्ति रूपी अमृत रस भी, संसारिक प्राणियों के लिये, हलाहल विष की भांति प्रतीत होता है। परन्तु जिस सुन्दरी संत आत्मा के हृदय में, सत्य स्वरूप प्यारे परमेश्वर का स्नेह अर्थात् प्रीति नित्य नई बढ़ती है। वही संत आत्मा हृदय रूपी सेज पर, अपने अधिष्टान चेतन्य परमेश्वर से, ओत प्रोत होकर, एकत्व रूप आनन्द का अनुभव करती है। ऐसे उत्तम साधक का मन, एक परमेश्वर से ही 'माने' कहिए लगा है।

428. कर्त्ता कीर्ति

काइमां कीरति करौं ली रे, तूं मोटो दातार।
सब तैं सिरजीला साहिब जी, तूँ मोटो करतार ॥टेक॥

चौदह भवन भानै घड़ै, घड़त न लागै बार।
थापै उथपै तूं धणी, धनि धनि सिरजनहार ॥
धरती अंबर तैं धर्‌या, पाणी पवन अपार।
चंद सूर दीपक रच्या, रैणि दिवस विसतार ॥
ब्रह्मा शंकर तैं किया, विष्णु दिया अवतार।
सुर नर साधु सिरजिया, करि ले जीव बिचार ॥
आप निरंजन ह्वै रह्या, काइमां कोतिगहार।
दादू निर्गुण गुण कहै, जाऊंली बलिहार ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, ईश्वर का यश गायन करते हैं कि हे सृष्टि कर्ता सर्व शक्तिवान, सर्वज्ञ अचल परमेश्वर ! मैं आपकी कीर्ति का क्या वर्णन कर सकता हूं ? हे साहिब ! आपने ही तीन लोक और चौदह भवन में सम्पूर्ण सृष्टि रची है। ऐसे आप महान कर्ता हैं। आप ऐसे समर्थ हैं कि एक क्षण में चौदह भवन को नाश करके, पुनः उत्पन्न कर देते हो। इनको बनाने में आपको किंचित भी समय नहीं लगती है। आप ही सबको स्थापित करने वाले और उखाड़ने वाले स्वामी हैं। हे सृष्टि कर्ता परमेश्वर ! आपको धन्य है, धन्य है। आपने पृथ्वी और आकास को बनाकर, धारण किया है। हे अपार ! आपने ही पानी और पवन बनाया है। चन्द्रमा और सूर्य रूपी, दो दीपक आपने रचे हैं। फिर रात्री और दिन का विस्तार किया है। सृष्टि रचिता ब्रह्मा, संहार कर्त्ता शंकर, पालन कर्त्ता विष्णु, इन सबको आपने ही रचे हैं तथा समय समय पर विष्णु को अवतार, आप ही देते रहते हैं। सुर-देवता, नर-नारद आदि और साधना करने वाले साधु, इन सबको आपने ही सिरजे हैं, अर्थात् उत्पन्न किये हैं। हे हमारे जीव ! तूँ भी ऐसे समर्थ, परमेश्वर का विचारपूर्वक, नाम स्मरण कर ले। हे जीव ! वह आप स्वयं समर्थ परमेश्वर, सबको रचकर, निरंजन निराकार रूप हो रहे हैं। ऐसा वह आप कोतिकहार, सृष्टि कर्त्ता परमेश्वर है। ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि वह निर्गुण स्वरूप हैं, परन्तु सत् शास्त्र और सच्चे संत भक्त, उनके गुणों का वर्णन करते हैं। हम उनकी बार बार बलिहारी जाते हैं।

429. उपदेश चेतावनी

जियरा राम भजन करि लीजै, साहिब लेखा मांगैगा रे
उत्तर कैसे दीजै ॥टेक॥

आगै जाइ पछितावन लागो, पल पल यहु तन छीजै ।
तातैं जिय समझाइ कहूं रे, सुकृत अबथैं कीजै ।।
राम जपत जम काल न लागै, संगि रहै जन जीजै ।
दादू दास भजन करि लीजै, हरि जी की रासि रमीजै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, उपदेश द्वारा चेत कराते हैं कि हे हमारे जीव रूप मन ! इस मनुष्य देह रूपी अवसर में राम का भजन कर ले, इसी में तेरा कल्याण है । वह साहिब सर्व शक्तिवान परमेश्वर, तुझे इस संसार में मनुष्य देह देकर भेजा है, सत् कर्म करने के लिये । जब तूं धर्मराज के दरबार में जायेगा, तो तेरे कर्त्तव्यों का लेखा हिसाब वहां लिया जाएगा । भजन और सत् कर्म किए बिना, वहां क्या जवाब देगा ? हे मन ! एक एक पल में तेरे मनुष्य देह के श्वांस और यह तन क्षीण होता जा रहा है । आगे वृद्धावस्था में या अन्त समय में पश्चाताप करना पड़ेगा । इसलिए हे जीव रूप मन ! हम तेरे को सत्शास्त्र और सतगुरू के उपदेशों द्वारा समझा कर कहते हैं कि तूं अब सुकृत कहिए निष्काम कर्म और परोपकार, जन समुदाय की सेवा कर ले । हे जीव रूप मन ! राम का भजन करने से काल रूप जम तेरा स्पर्श नहीं करेगा । और राम के साथ रहकर, हे जन ! सजीवन भाव को प्राप्त होगा । ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि उपरोक्त प्रकार से सुकृत और राम का भजन करके, हरि स्वरूप राम से आनन्द अनुभव रूपी रास रमिजे ।

430. काल चेतावनी

काल काया गढ भेलसी, छीजै दसों दुवारो रे ।
देखतड़ा ते लूटिये, हो सो हाहाकारो रे ।।टेक।।
नाइक नगर न मेल्हसी, एक लड़ो ते जाई रे ।
संग न साथी कोइ न आसी, तहं को जाणो किम थाई रे ।।
सत जत साधो माहरा भाईड़ा, कांई सुकृत लीजै सारो रे ।
मारग बिखमी चालिबो, कोई लीजै प्राण अधारो रे ।।
जिमि नीर निवाणा ठाहरै, तिमि साजी बांधो पालो रे ।
समर्थ सोई सेविये, तो काया न लागै कालो रे ।।

दादू थिर मन आणिये, तो निहचल थिर थाये रे।
प्राणी ने पूरो मिलो, तो काया न मेल्ही जाये रे॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, काल से चेत कराते हैं कि हे हमारे जीव रूप मन! समर्थ राम का भजन किये बिना तो भाई, वह जबरदस्त काल, तेरे काया रूपी गढ को भेल देगा। अर्थात् पंच ज्ञानेन्द्रिये और पंच कर्म इन्द्रिये, यह दस द्वार वाला मनुष्य शरीर, क्षीण हो जाएगा। और तेरे दसवें द्वार को काल फोड़ देगा। तत्ववेत्ता पुरूषों के देखते देखते या तेरे देखते देखते ही, इस काया रूप नगर में, अन्त समय में हाहाकार मच जायेगा। और इस काया के राजा, मन रूप जीव को जमदूत नहीं छोड़ेंगे। उनके साथ अकेले को ही जाना पड़ेगा। तेरे संग के साथी, उस समय कोई भी काम नहीं आवेंगे। फिर वहां पर न मालूम तेरे साथ, क्या बर्ताव करेंगे? इसलिये हे हमारे मन! सत् स्वरूप परमात्मा के नाम स्मरण और जत ब्रह्मचर्य आदि की साधना करो। कोई सार सुकृत कर्म रूपी धन साथ में लेओ। आगे बड़े कठिन मार्ग पर चलना पड़ेगा। कुछ प्राणों की रक्षा के लिए, सार कमाई लीजिए। जैसे नीची भूमि में जल ठहरता है, वैसे ही तुम भी संयम आदि साधनों को अपना कर, भजन रूपी बांध बांधिये, तो यह मन रूपी जल या नाम स्मरण रूपी जल, हृदय प्रदेश में रूकेगा। तब तुम उस समर्थ प्रभु की भक्ति करने से, तुम्हारी काया कहिए सूक्ष्म शरीर को काल पकड़ कर नहीं ले जाएगा। और फिर स्थिर मन से, ब्रह्म स्वरूप में अभेद हो जाओगे। अर्थात् प्राणधारी को पूर्ण ब्रह्म प्राप्त होवेगा। फिर वह अपने सूक्ष्म शरीर को संसार में छोड़कर नहीं जाता। किन्तु सभी व्यष्टि, सूक्ष्म सृष्टि, अपने अपने कारण, अपंचीकृत भूतों में लय हो जाती है।

431. भयभीत भयानक

डरिये रे डरिये, परमेसुर थैं डरिये रे।
लेखा लेवै भरि भरि देवै, ताथै बुरा न करिये रे॥टेक॥

सांचा लीजी सांचा दीजी, सांचा सौदा कीजी रे।
सांचा राखी झूठा नाखी, विख न पीजी रे॥
निर्मल गहिये निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे।
निर्मल लीजी निरमल दीजी, अनत न बहिये रे॥

साहि पठाया बनिजन आया, जनि डहकावै रे।
झूठ न भावै फेरि पठावै, कीया पावै रे ॥
पंथ दुहेला जाइ अकेला, भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला, सो कुछ कीजी रे ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर और भयानक कर्मों से डरने का निर्देश करते हैं कि हे मानव ! उस समर्थ परमेश्वर से, और पाप आदि कर्मों से डरते रहना। क्योंकि हम तुमको बारम्बार उपदेश करते हैं कि अपने हृदय में परमेश्वर का भय रख कर ही, जीवन यात्रा बिताइये। अर्थात् वह प्रभु तुम्हारे मनुष्य जन्म का हिसाब लेंगे। और तुम्हारे कर्मों के अनुसार ही, तुम्हें भावी जन्म का विधान बनाकर, आगे जन्म देंगे। इसलिये काया मन वचन से, निसिद्ध कर्मों का त्याग करिये। सत्य स्वरूप परमेश्वर को हृदय में देखते हुए, लेन देन आदि कर्म करिये। और उस सत्य स्वरूप परमेश्वर का, नाम स्मरण करते रहो। मिथ्या मायिक कार्य में आसक्ति छोड़कर, विषय वासनाओं का त्याग करिये। और निर्मल, माया आदि मल रहित शुद्ध ब्रह्म को, अन्तर्मुख वृत्ति से ग्रहण करके, उसी में स्थिर रहो। तथा उत्तम साधक पुरुषों को शुद्ध ब्रह्म का उपदेश करिये। इस प्रकार निर्मल ब्रह्म को ही सत् शास्त्र, सतगुरु के उपदेश द्वारा ग्रहण करिये। और उसी शुद्ध ब्रह्म का उपदेश दीजिए। अन्यत्र मार्ग पर नहीं चलना, क्योंकि परमात्मा रूपी साहूकार ने, इस संसार में जीव को, मनुष्य देह देकर भेजा है। तथा सत्कर्म और भजन रूप व्यापार करने का आदेश दिया है। इसलिये अब माया रूप संसार को देखकर, विषय वासनाओं में नहीं बहकना, क्योंकि उस परमेश्वर को मिथ्या विषयों का व्यवसाय अच्छा नहीं लगता है। अर्थात् तुम विषय वासनाओं में ही अपने जीवन को बिताओगे, तो परमेश्वर फिर तुम्हें चौरासी में जन्म देंगे। क्योंकि फिर तुम अपने निसिद्ध कर्मों का फल वहां भोगोगे। अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति का मार्ग तो अति कठिन है। अतः उसमें अकेले को ही जाना पड़ता है। इसलिये निसिद्ध और सकाम कर्मों के भार को नहीं उठाना। जो भी कर्म करो, वह निष्काम भाव से, ईश्वर अर्पण बुद्धि से करो। जिससे जीव आत्मा और ब्रह्म का अभेद रूप मिलन सुगम होवै। वही अद्वैत विचार करिये।

432

डरिये रे डरिये, देखि देखि पग धरिये।
तारे तरिये मारे मारिये, ताथैं गर्व न करिये रे ॥टेक॥

देवै लेवै समर्थ दाता, सब कुछ छाजै रे।
तारै मारै गर्व निवारै, बैठा गाजै रे॥
राखै रहिये बाहै बहिये, अनत न लहिये रे।
भानै घड़ै संवारै आपै, ऐसा कहिए रे॥
निकटि बुलावै दूर पठावै, सब बनि आवै रे।
पाके काचे काचे पाके, ज्यूं मन भावै रे॥
पावक पाणी पाणी पावक, करि दिखलावै रे।
लोहा कंचन कंचन लोहा, कहि समझावै रे॥
ससिहर सूर सूरथैं ससिहर, परगट खेलै रे।
धरति अंबर अंबर धरती, दादू मेलै रे॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर और भनानक कर्मों से डरने का निर्देश करते हैं कि हे मानव ! पाप कर्मों से और परमेश्वर से डरते रहना और पृथ्वी पर देख देखकर, अर्थात् विचार विचार कर पैर रखना। निष्काम शुभ कर्मों में अपनी वृत्ति लगाना। जब परमेश्वर दया करके, जिस जीव का उद्धार करते हैं, उसी का उद्धार होता है और वे मारें, तो जीव का मरण होता है। इसलिये गर्व रूप कर्मों का त्याग करके, सदैव ईश्वर से डरते रहना चाहिये। वह परमेश्वर उदार वृत्ति हैं, परन्तु भक्तों को तारने और दुष्टों को मारने तथा गर्व नष्ट करने में समर्थ हैं। और फिर सदा हृदय में स्थिर रहकर, सत् कर्मों की प्रेरणा रूप गर्जना करते रहते हैं। फिर सम्पूर्ण प्राणियों की भावना अनुसार फल देते हैं, क्योंकि वह समर्थ हैं जो भी करें उनको सभी कुछ शोभा देता है। जब वह प्राणी को अपने स्वरूप में स्थिर रखैं, तभी स्थिर रहता है, और वह चलावें तो चलायमान हो जाता है। वह स्वयं समर्थ, सबको कर्मानुसार उत्पन्न करते हैं और फिर नष्ट भी कर देते हैं। इस प्रकार तत्ववेता संत, अपनी बाणी द्वारा और सत् शास्त्र ऐसा ही कहते हैं। इसलिये उस समर्थ को ही उपास्यदेव अपनाओ और सब कल्पित देवी देवों का त्याग करिये। वह प्रभु ऐसे समर्थ हैं कि एक को समीप बुला लेते हैं और दूसरे को दूर भेज देते हैं, जैसे सनादिकों को समीप बुला लिये और जय विजय को दूर भेज दिये। उनसे सभी कुछ हो सकता है। और यदि उनके मन में भावै, तो वह कच्चे को पक्का, पक्के को कच्चा कर देते हैं, जैसे बनिये के लडके कच्चे को पक्का कर दिया और तपस्वी पक्के को कच्चा कर दिया। क्षत्रिय धर्म युक्त महाराज अमरीष को अग्नि स्वभाव से, जल रूप बना दिया और जल रूप दुर्वासा को, अग्नि करके दिखा दिया। वह समर्थ लोहे रूप कुल वाले बालमिकी को कंचन रूप भक्त दिखा

दिया और कंचन रूप ब्राह्मणों को भक्ति रहित, लोहा रूप दिखाये, पांडवों के राजसूये यज्ञ में। फिर सबको कहकर भक्ति और भक्त की महिमा समझाई। वह फिर सूर्य को चन्द्रमा और चन्द्रमा को सूर्य बना सकते हैं। वही सभी के अन्दर चेतन्य रूप से खेल रहे हैं। वह पृथ्वी को आकाश और आकाश को पृथ्वी रूप कर देते हैं। अर्थात् आकाश की भांति उदार वृत्ति वालों को, पृथ्वी की तरह कठोर वृत्ति बना देते हैं। और कठोर वृत्ति वालों को आकाश की भांति सबको अवकाश देने वाले, उदार वृत्ति बना देते हैं। ऐसे वे हमारे समर्थ उपास्यदेव हैं।

433. हित उपदेश

मनसा मन सबद सुरती, पंचौं थिर कीजै।
एक अंग सदा संग, सहजैं रस पीजै ॥टेक॥
सकल रहित मूल गहित, आपा नहिं जानैं।
अनतर गति निरमल रति, ऐकै मनि मानैं ॥
हिरदै सुधि विमल बुद्धि, पूरण परकासै।
रसना निज नांउं निरखि, अन्तर गति बासै ॥
आतम मति पूरण गति, प्रेम भगति राता।
मगन गलित अरस परस, दादू रसि माता ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, हितकर उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु! अपनी मनसा, मन, सुरति, पांचों ज्ञान इन्द्रिये, इन सबको गुरू के उपदेश रूपी शब्द रूपी शब्द में स्थिर करके, सहजावस्था द्वारा, सदा अद्वैत ब्रह्म स्वरूप के, अभेद रूप संग में रहकर, जीव ब्रह्म की एकता रूप ज्ञानामृत का पान करिये। और अनात्म अहंकार को भूलकर, सम्पूर्ण मायावी प्रपंच से रहित, सबका मूल कारण ब्रह्म को, उपास्य देव रूप से, जो ग्रहण करते हैं तथा निर्मल प्रेम से वृत्ति अन्तर्मुख, आत्मा में ही लगाये रहते हैं, उनके मन इन्द्रिये, अद्वैत ब्रह्म चिन्तन में ही सन्तुष्ट रहते हैं। उन्हीं के शुद्ध हृदय में और शुद्ध बुद्धि में केवल पूर्ण ब्रह्म का प्रकाश प्रगट रहता है। और जिह्वा के ऊपर सदैव गुरू उपदेश निवास करता है। उपरोक्त साधन द्वारा, आत्म स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करके, अन्तर्मुख वृत्ति से आत्मा में ही स्थिर रहते हैं। इस प्रकार आत्म चिन्तन से पूर्ण ब्रह्म में ही वृत्ति का गमन होता रहता है। ऐसे साधक एकत्व भावना रूप, प्रेमाभक्ति में मस्त रहते हैं। इस प्रकार चिन्तन करने वाले साधक का, अनात्म अहंकार निवृत्त हो जाता है। वह फिर अद्वैत ब्रह्म से अरस परस होकर, ब्रह्मानन्द रूप रस में मस्त रहते हैं।

434. बिनती

गोबिन्द के चरनौं ही ल्यौ लाऊं,
जैसै चातक बन में बोलै, पीव पींव करि ध्याऊं ।।टेक।।
सुरजन मेरी सुनहु बीनती, मैं बल तेरे जाऊं ।
बिणति हमारि तोहि सुनाऊं, दे दरसन क्यूं ही पाऊं ।।
जातैं दुख सुख उपजत तिनकौं, तुम सरनागति आऊं ।
दादू को दया करि दीजै, नाउं तुम्हारो गाऊं ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर के दर्शना अर्थ विनती कर रहे हैं कि हे गोबिन्द ! अब हमने तो केवल आपके चरणार्बिन्द में ही, अपनी वृत्ति लगाई है । जैसे चातक पपैया बन में, स्वांति बूंद के लिए पीव पीव पुकारता रहता है, इसी प्रकार हम प्रियतम प्रियतम कर करके, आपके दर्शनार्थ ध्यान लगा रहे हैं । हे सुन्दर संत भक्तों के स्वामी ! अब हमारी भी आप प्रार्थना सुनिये । हम आपके ऊपर बार बार बलिहारी जाते हैं । हे प्रीतम ! हम आपके बिरह रूपी दर्द से अति दुखी हैं । आपको ही हम अपना दुख सुनाते हैं । अब आप कृपा करके दर्शन दीजिये । आपकी दया बिना, हम आपका दर्शन कैसे पा सकते हैं ? अब आप ही कृपा करके बताइये कि आपके दर्शन कब होंगे ? जो आपकी शरण में आते हैं, उनके सम्पूर्ण दुख नष्ट होकर, आपके दर्शन रूपी सुख को प्राप्त कर लेते हैं । हम भी आपकी शरण में आये हैं । अब हम पर दया करके, आपके नाम का दान दीजियें, जिससे हम निष्काम नाम स्मरण द्वारा, आपका दर्शन प्राप्त कर सकैं ।

435

ये ! प्रेम भगति बिन रह्यो न जाई, परगट दरसन
देहु अघाई ।।टेक।।
ताला बेली तलफै मांहीं, तुम बिन राम जियरे जक नांही ।
निस वासुरि मन रहै उदासा, मैं जन व्याकुल श्वांसो श्वांसा ।।
एक मेक रस होइ न आवै, ताथैं प्राण बहुत दुख पावै ।
अंग संग मिलि यहु सुख दीजै, दादू राम रसाइन पीजै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, दर्शना अर्थ परमेश्वर से विनती कर रहे हैं कि हे परम्मेवर ! आपकी निष्काम प्रेमाभक्ति के बिना, हमसे अब इस शरीर में रहा नहीं जाता है । अब आप हमारे हृदय में प्रगट हो कर दर्शन दीजिये, फिर हम अतृप्त भाव से आपका दर्शन करें । हे राम जी ! आपके दर्शनों के बिना, ताला तलफ और बेली बिलाप के सहित जीव तड़फ रहा है । जीव को शांति नहीं है । अब तो हमारा मन रात दिन संसार की तरफ से उदास हो रहा है । हम आपके बिरहीजन, श्वांस श्वांस पर व्याकुल हो रहे हैं, क्योंकि आपके अद्वैत स्वरूप का, ओत प्रोत भावना रूप रस नहीं प्राप्त हो रहा है । इसीलिये हमारे प्राण अति दुखी हो रहे हैं । हे नाथ ! आप हमारे शरीर में, हृदय के भीतर हमको प्राप्त होकर, दर्शनों का सुख प्राप्त कराइये । तब फिर हम जीव ब्रह्म की एकता रूप राम रस का पान करेंगे ।

436. परिचय उपदेश

तिस घरि जाना वे, जहां वै अकल सरूप ।
सोई अब ध्याइये रे, सब देवनि का भूप ।।टेक।।
अकल सरूप पीव का, बान बरन न पाइये ।
अखंड मंडल मांहि रहै, सोई प्रीतम गाइये ।।
गावहु मन बिचारा वें, मन बिचारा सोई सारा,
प्रगट पीव ते पाइये ।
सांई सेंती संग सांचा, जीवत तिस घरि जाइये ।।
अकल सरूप पीव का, कैसै करि आलेखिये ।
सुन्य मंडल मांहि सांचा, नैन भरि सो देखिये ।।
देखौं लोचन सार वे, देखौं लोचन सार सोई,
प्रगट होई, यह अचम्भा पेखिये ।
दयावंत दयाल ऐसो, बरण अति बिसेखिये ।।

अकल सरूप पीव का, प्राण जीव का,
सोई जन जे पावई।
दयावंत दयाल ऐसो, सहजैं आप लखावई ॥
लखै सु लखणहार वे, लखै सोई संग होई,
अगम बैन सुनावहीं।
सब दुःख भागा रंग लागा, काहे न मंगल गाव हीं ॥
अकल सरूपी पीव का, कर कैसै करि आणिये।
निरंतर निरधार आपै, अन्तर सोई आणिये ॥
जाणहुं मन विचारा वे, मनि बिचारा सोई सारा,
सुमिरि सोई बखानिये।
श्री रंग सेती रंग लागा, दादू तो सुख मानिये ॥

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर का साक्षात्कार रूपी उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! अब उस सहजावस्था रूप घर में जाइये, जहां वे कला रूप अवयव से रहित, निरंजन स्वरूप ब्रह्म प्राप्त होते हैं। वे सब देवों के राजान् पत राजा हैं। उन्हीं का हृदय में ध्यान करिये। उस निराकार स्वरूप ब्रह्म में भेष बाना, जाति, रंग रूप आदि कुछ भी नहीं है। फिर वह अपनी स्वमहिमा रूप, अखंड मंडल में रहते हैं। अथवा तेरे हृदय रूप मंडल में, चेतन्य रूप से निवास करते हैं। उसी प्रियतम स्वरूप परमेश्वर के नाम का गायन करते हुए, अन्तःकरण से, उस सार रूप ब्रह्म का, आत्म स्वरूप से ही, साक्षात्कार करते हैं। इस प्रकार सहजावस्था रूप समाधि घर में जाकर, इस जीवित अवस्था में ही, परब्रह्म के साथ, अभेदरूप सच्चा संग प्राप्त करिये। उस निर अवयव स्वरूप प्रियतम ब्रह्म का, उपरोक्त प्रकार से साक्षात्कार करिये। अर्थात् वह सत्य स्वरूप ब्रह्म, फिर निर्विकार हृदय मंडल में ही प्रतीत होंगे। उनको तुम अपने ज्ञान रूप नेत्रों से साक्षात्कार देखिये। फिर वहां यह आश्चर्य देखने में आवैगा कि जो निराकार हैं, वही ब्रह्म प्रगट हो रहे है। वह ऐसे दया रूप गुणों से युक्त दयालु हैं, कि रंग रूप रहित होने पर भी, भक्तों पर दया करके, अति विशेष ओंकार वर्ण से, वा भक्तों की भावना द्वारा, रंग रूप होकर भासने लगते हैं।

वही जीव के प्राणाधार हैं, उन रंग रूप रहित ब्रह्म का जो उनका भक्त होता है, वही उसको प्राप्त करता है। वे ऐसे परम दयालु हैं कि अपने भक्त को अनायास ही, अपना स्वरूप साक्षात्कार कराते हैं। परन्तु इस

प्रकार चतुष्टय साधन सम्पन्न जिज्ञासु ही देखता है । इस प्रकार जो देखता है, वही उनके संग हो जाता है । और फिर उस अगम ब्रह्म सम्बन्धि ही वचन सुनाता है । फिर सुनाने वाले और सुनने वालों के सम्पूर्ण दुख नष्ट हो जाते हैं । फिर ब्रह्म का ही अभेद भावना रूपी रंग, हृदय में आ लगता है । फिर वही ब्रह्म सम्बन्धि, मंगलमय गीत गाता है । हे जिज्ञासुओ ! उस कला विभाग रहित परब्रह्म का दया रूपी हाथ, भक्ति, वैराग्य ज्ञान रूप साधन साधनों द्वारा पकड़ना चाहिए । और फिर उस अविचल स्वरूप ब्रह्म का, अपने आत्म स्वरूप से अभेद करके, फिर उस अद्वैत निष्ठा को भीतर रखना चाहिए । इस प्रकार अन्तःकरण में विचार करके उसे जानिये । जब अन्तःकरण में विचार करके जानोगे, तब वह सम्पूर्ण विश्व के सार स्वरूप से ज्ञात होंगे । इस प्रकार उसका स्मरण करिये । तथा उसी का कथन करिये । इस प्रकार परब्रह्म स्वरूप, श्री रंग से जो तुम्हारा प्रेम लग जाय, तो तभी तुमको सुख मानना चाहिए । इस स्थिति से पहले, बिरह भक्ति द्वारा, हरि का स्मरण करते रहना चाहिए ।

437

राम तहां प्रगट रहै भरपूर, आत्मा कवंल जहां,
परम पुरिस तहां, झिलमिल झिलमिल नूर ।।टेक।।
चन्द सूर मधि भाइ, तहां बसै राम राइ,
गंग जमन के तीर ।
त्रिवेणी संगम जहां, निर्मल बिमल तहां, निरखि निरखि
निज नीर ।।
आत्मा उलटि जहां, तेज पुंज रहै तहां सहजि समाइ ।
अगम निगम अति, तहां बसै प्राण पति,
परसि परसि निज आइ ।।
कोमल कुसम दल, निराकार जोति जल,
वार न पार ।
शून्य सरोवर जहां, दादू हंसा रहै तहां,
बिलसि बिलसि निज सार ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, परमेश्वर का साक्षात्कार रूपी उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! ऐसे तो राम सर्वत्र परिपूर्ण रूप से व्यापक हो रहे हैं, परन्तु शुद्ध हृदय में अहंग्रह ध्यान में, प्रगट रूप से भास रहे हैं। आत्मा रूप कवंल कहिए आत्मा के स्वरूप में ही परम पुरुष चेतन्य रूप परमेश्वर निवास करते हैं। उनका स्वरूप झिलमिल रूप दीख रहा है। हे साधक ! जहां इड़ा रूप चन्द्र सुर और पिंगला रूप सूर्य सुर, इनके बीच में, सुषुम्ना नाड़ी चलती है। उस सुषुम्ना में, चेतन्य रूप राम राजा प्रतीत हो रहे हैं अर्थात् इड़ा सुर जमुना रूप है, पिंगला सुर गंगा रूप है, सुषुम्ना रूप सरस्वती है। कुंभक के समय तीनों का संगम होता है। उस संगम रूप त्रिवेणी के ज्ञान तट पर, निज आत्म स्वरूप माया मल से रहित, निर्मल नीर को पुनः पुनः विचार रूप नेत्रों से देख। वहां प्रकाश समूह रूप, आत्म स्वरूप ब्रह्म स्थित है। तूँ अपनी वृत्ति को अन्तर्मुख लाकर, उनके निर्द्वन्द स्वरूप में लय करिये। जो वेद शास्त्रों से भी अगम्य हैं, वह अपनी स्वमहिमा में ही, प्राणों को सत्ता स्फूर्ति देने वाले, चेतन्य रूप ब्रह्म बसते हैं। उनका "अहं ब्रह्मास्मि" वृत्ति द्वारा ही चिन्तन रूप स्पर्श करके ही, निज स्वरूप में आइये। 'कोमल कुसम दल' कहिए शुद्ध हृदय कमल में, प्रतिबिम्बित चेतन रूप जल, वासना विहिन हृदय सरोवर में ही, हंसा कहिए साधक की वृत्ति, उपभोग कर करके, विश्व के सार स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करती है।

438.

गोबिन्द पाया मन भाया, अमर कीये संग लीये।
अखै अभै दान दीये, छाया नहीं माया ।।टेक।।
अगम गगन अगम तूर, अगम चन्द्र अगम सूर।
काल झाल रहै दूर, जीव नहीं काया ।।
आदि अंति नहीं कोइ, राती दिवस नहीं होइ।
उदै अस्त नहीं दोइ, मन ही मन लाया ।।
अमर गुरू अमर ग्यान, अमर पुरिस अमर ध्यान।
अमर ब्रह्म अमर थान, सहजि सुन्य आया ।।
अमर नूर अमर बास, अमर तेज सुख निवास।
अमर जोति दादू दास, सकल भुवन राया ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परमेश्वर का साक्षात्कार रूपी उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! अब तो हमने हमारे मन को प्रिय लगने वाले गोविन्द को प्राप्त कर लिया है। वह गोविन्द हमको अभेद रूप से अपने संग लेकर, हमको अमर किये हैं। और फिर अक्षय पद, अभय पद का दान दिया है। उनके स्वरूप में माया और माया की छाया लौकिक सुख, इन दोनों का ही अभाव है। वह हृदय आकाश से और अनहद शब्द से भी आगे हैं। तथा चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से भी, अगम्य हैं। अथवा इन किसी की भी, उनके स्वरूप में भ्रम नहीं पहुंचती है। काल की झल, उनसे दूर ही रहती है। तथा वह जीवत्व भाव कहिए कर्त्ता भोगतापन से भी अलग हैं। और न वे स्थूल शरीर रूप ही हैं। हे जिज्ञासु ! ऐसे समर्थ परमेश्वर के स्वरूप का, आदि अंत किसी प्रकार भी नहीं ज्ञात होता है। न उनके स्वरूप में रात है और न दिन ही है। अर्थात् उनके स्वरूप में अज्ञान रूप रात्रि और इन्द्रिये ज्ञान रूपी दिन नहीं है। न उनके पास चन्द्र सूर्य आदि का, उदय अस्त ही होता है। और न ज्ञान का उदय अस्त ही होता है। वे स्वयं नित्य ज्ञान स्वरूप हैं। हमने अपने व्यष्टि मन को चिन्तन द्वारा, उन समष्टि मन में अभेद किया है। वह अमर स्वरूप गुरुदेव हैं। उनका ज्ञान भी अमर ही है। वही अमर पुरुष हैं, और उनका ध्यान भी अमर करने वाला है। वह परब्रह्म ही अमर स्थान रूप हैं। वह सहज कहिए निर्विकार स्वरूप, सहजावस्था रूप समाधि में, ज्ञान रूप नेत्रों से दिखाई पड़ते हैं। उनका शुद्ध रूप ही अमर है। उसमें ब्रह्मवेत्ता अपनी सुरति के द्वारा बास करते हैं। उनका ब्रह्मतेज ही अमर है। वही ब्रह्मवेताओं का निवास स्थान है। ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि वह हमारा उपास्यदेव परब्रह्म, अमर ज्योतिरूप हैं। और सम्पूर्ण भवनों के राजनृपत राजा हैं। हम दासों का उस नित्य आनन्द स्वरूप में ही निवास है।

439.

राम की राती भई माती, लोक वेद विधि निषेध ।
भागै सब भ्रम भेद, अमृत रस पीवै ॥टेक॥
भागे सब काल झाल, छूटे सब जग जंजाल ।
बिसरे सब हाल चाल, हरि की सुधि पाई ॥
प्राण पवन जहां जाइ, अगम निगम मिले आइ ।
प्रेम मगन रहे समाइ, बिलसै बपु नांहीं ॥
परम नूर परम तेज, परम पुंज परम सेज ।
परम जोति परम हेज, सुन्दरि सुख पावै ॥

परम पुरिस परम रास, परम लाल सुख बिलास ।
परम मंगल दादू दास, पीव सौं मिलि खेलै ।।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, परमेश्वर का साक्षात्कार रूपी उपदेश कर रहे हैं कि हे जिज्ञासु ! अब तो हमारी सुरति राम की निष्काम अनन्य भक्ति में रत्त होकर मस्त हो रही है । अब लौकिक और वैदिक कर्म विधि निषेध रूप और पांचो प्रकार का भ्रम भेद, यह सब हमारे अन्तःकरण से दूर हो गये हैं । और अभेद चिन्तनरूप अमृत रस ही हम सदा पान कर रहे हैं । तथा काल की ज्वालारूप काम क्रोध आदिक सभी आसुरी गुण, अन्तकरण से भाग गये हैं । और यम का जाल रूप, जगत् के सम्पूर्ण कपट रूप व्यवहार, छूट गये हैं । तथा संसारिक प्राणियों के वृत्तान्त, सभी हम भूल गये हैं । और हरि की ही निष्काम अनन्य भक्ति प्राप्त कर ली है । और प्राण वायु जहां दशवें द्वार में जाकर स्थिर होता है, वहां हम शास्त्र वेद से भी अगम ब्रह्म स्वरूप में आकर मिले हैं । ब्रह्म प्रेम में मग्न होकर अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा, उन्हीं में समा रहे हैं । अब हम शरीर अध्यास द्वारा, मायिक विषयों का उपभोग नहीं करते । उस ब्रह्म का स्वरूप और प्रताप अति उत्तम है । उनसे अत्यन्त अन्तर्मुख वृति द्वारा प्रेम करके, हमारी वृत्ति रूप सुन्दरी सुख पा रही है । उन परम प्रिय, परम पुरुष स्वामी के साथ मिलकर, हम दास अभेद भावना रूप रास खेलते हुए परमानन्द का उपभोग कर रहे हैं । इस प्रकार हमारे हृदय में परम आनन्द हो रहा है ।

440 आरती

इहि विधि आरती राम की कीजै, आतमा अंतरि
वारणा लीजै ।।टेंक।।
तन मन चन्दन प्रेम की माला, अनहद घंटा दीन दयाला ।
ग्यान को दीपक पवन की बाती, देव निरंजन पांचों पाती ।
आनन्द मंगल भाव की सेवा, मनसा मन्दिर आतम देवा ।
भगति निरन्तर मै बलिहारी, दादू न जानै सेवा तुम्हारी ।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव इसमें, निरंजन राम की आरती की विधि बताते हुए, आरती कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! उस निरन्जन राम की आरती इस प्रकार करिये । अपने अन्तःकरण के भीतर ही उन आत्म स्वरूप निरंजन राम पर न्योछावर होना चाहिये । अपने तन और मन को चन्दन बनाकर, राम के

अर्पण करिये। और अखंड प्रेमरूपी पुष्पों की माला आत्मरूप राम को, धारण कराइये। और अनहद घंटा रूपी ही मानो दीन दयालु के सामने बाजे बज रहे हैं। अन्तःकरण रूपी दीपक में श्वांस रूपी बत्ती में ज्ञान, सम्पादन रूप ज्योति जगाइये। इस प्रकार आत्म स्वरूप निरंजन राम पर फिर पांच ज्ञानेन्द्रिये रूप तुलसी जल चढ़ाइये। इस प्रकार आनन्दपूर्वक मंगला आरती प्रभु की करिये। ऐसे अखण्ड भावमय सेवा कीजिये। उन आत्म स्वरूप निरंजन राम का शुद्ध मनसा रूपी ही मानो मन्दिर है। उसमें आत्म स्वरूप निरंजन ही देव हैं। इस प्रकार आरती रूप भक्ति निरंतर अन्तराय रहित हृदय में निरंजन राम की करिये। अथवा हम उन निरंजन राम की आरती रूप भक्ति, निरन्तर हृदय में करते हैं। और बार बार उन पर बलिहारी जाते हैं। ब्रह्मऋषि सतगुरुदेव कहते हैं कि हे परमेश्वर! जैसे आप अखंड परिपूर्ण हैं ऐसी आपकी सेवा, हम नहीं कर जानते प्रभु! अथवा हे संतों! उपरोक्त प्रकार से बाणी रूप निरंजन राम की आरती करिये। और बारबार बाणी जी के ऊपर, अपने आपको न्योछावर करिये। तन मन को बाणी जी की सेवा में लगाइये। अखंड प्रेम रूप माला पहनाइये और नाना प्रकार के गाने बाजे सहित, ज्ञान भक्ति द्वारा, निरंजनदेव बाणी के पंच ज्ञानेन्द्रिये रूप तुलसीजल चढ़ाइये। इस प्रकार भाव पूर्वक, सदैव जो बाणी जी की आरती करते हैं, उनके सदा ही आनन्द मंगल बना रहता है। और फिर प्रार्थना करे कि हे ब्रह्म बाणी दयाल रूप! हम आपकी सेवा नहीं कर जानते हैं। जैसे आप हैं, ऐसी आपकी आराधना हमसे नहीं हो सकी है।

441

आगती जग जीवन तेरी, तेरे चरन कवंल परि वारी फेरी ।।टेक।।
चित चांवर हेत हरि ढारैं, दीपक ग्यान हरि जोति बिचारैं।
घंटा सबद अनाहद बाजैं, आनन्द आरती गगन गाजैं।
धूप ध्यान हरि सेती कीजैं, पुहप प्रीति हरि भांवरी लीजैं।
सेवा सार आत्मा पूजा, देव निरंजन और न दूजा।
भाव भगति सौं आरती कीजैं, इहि विधि दादू जुगि जुगि जीजैं।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निरंजन राम की आरती की विधि बताते हुए, आरती कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ! अपने हृदय में उस सम्पूर्ण जगत के जीवन रूप, जग जीवन राम की आरती करिये कि हे राम! हम आपके तेज पुंज रूप चरण कमलों पर, अपने आपको वार फेर करते हैं। और हेत रूपी हाथ से शुद्ध चित्त रूप चंवर आपके उपर ढुराते हैं। और हे हरि! आपके सामने ज्ञान विचार रूपी दीपक जगाते हैं। अनहद शब्द रूप मानों घंटा बजा रहे हैं। आप आनन्द स्वरूप के विचार रूपी ही मानो, आरती

की गर्जना हृदय में हो रही है। ध्यान रूपी धूप कर रहे हैं। और अखंड प्रेम रूपी पुष्प माला, आप पर चढ़ा रहे हैं। तथा श्रद्धा रूप से ही, आपकी परिक्रमा कर रहे हैं। इस प्रकार यह जीवात्मा रूप उपासक, आपकी सेवा रूप पूजा करता है। हे निरंजनदेव ! आप ही हमारे उपास्यदेव हैं। आपसे अतिरिक्त दूसरा कोई देवी देव, हमारा उपास्य देव नहीं हैं। इस प्रकार हे संतो ! भाव भक्ति द्वारा, जो हृदय में निरंजन राम की आरती करता है, वह निरंजन ब्रह्म स्वरूप होकर, युग युग में जीवित रहता है।

अथवा हे जगत की जीवन रूप ब्रह्म बाणी ! आपके ऊपर हम न्यौछावर जाते हैं। और आपके ऊपर शुद्ध चित्त रूपी चंवर ढुरा रहे हैं। और विचारपूर्वक मानो ज्ञान के दीपक जगाकर, नाना प्रकार के गाजे बाजे सहित, आपकी आरती करते हैं। नाना प्रकार के सुगन्धि रूप पदार्थों की आपके सामने धूप धुकाते हैं। इस प्रकार जो बाणी जी की आरती करते हैं, उनके सदा हो आनन्द मंगल की मानो गर्जना होती रहती है और नाना प्रकार के सुगन्धित पुष्प माला आपके ऊपर चढ़ा रहे हैं। और हे ब्रह्म बाणी दयाल रूप ! हम आपकी बारबार परिक्रमा करते हैं। मानो यही आपकी सार सेवा पूजा है। हे निरंजनरूप बाणी ! आप ही हमारे दिव्य उपास्यदेव हैं। इस प्रकार भाव भक्ति द्वारा, जो ब्रह्म बाणी की आरती करते हैं, वही पुरुष जुग जुग में सजीवन भाव को प्राप्त हो जाते हैं।

442

अविचल आरती देव तुम्हारी, जुगि जुगि जीवनी राम हमारी ।।टेक।।
मरण मीच जम काल न लागै, आवागवन सकल भ्रम भागै।
जोनी जीव जनम नहिं आवै, निर्भै नाउं अमर पद पावै।
कलिविष कुसमल बंधन कांपै, पारि पहूंचे थिर करि थापे।
अनेक उधारे तैं जन तारे, दादू आरती नरक निवारे।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निरंजन राम की आरतो की विधि बताते हुए आरती कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! उस निश्चल दिव्य स्वरूप निरंजन देव की आरती इस प्रकार करो, कि हे देव ! आप अविचल हैं और अविचल स्वरूप ही आपकी आरती है। हे निरंजन राम ! यह आपकी आरती, जुग जुग में हमारे जीव की जीवन रूप है। इस प्रकार जो अविचल निरंजनदेव की आरती करते हैं, उनके मरण रूप मृत्यु और जम रूप काल कभी भी पास नहीं आते हैं। और फिर आवागवन रूप चक्र, तथा सम्पूर्ण भय भ्रम, उनके अन्तःकरण से भाग जाते हैं। फिर वह जीव, गर्भवास में नहीं आता, और न चौरासी में जाकर जन्म लेता है। उस रिरंजन राम की नाम स्मरण रूप आरती करने वाले, काल कर्म के भय से निर्भय होकर,

अमर पद को प्राप्त कर लेते हैं । इस प्रकार निरंजन देव की आरती करने से, नाना प्रकार के विकार और कलिकाल के पाप रूपी बन्धन कट जाते हैं । ऐसे साधक पुरुष, आपकी आरती करके, संसार से पार होकर, आपके स्वरूप को प्राप्त होते हैं । आरती करने का फल, उनको आप पारब्रह्म के स्वरूप में स्थिर करके, स्थापन करता है । आपकी आरती करने वाले, अनेक भक्तों का, आपने जन्म मरण रूपी दुखों से उद्धार करके, उन्हें संसार समुद्र से, पार किये हैं । यह आपकी आरती, प्राणी के नरक आदि कलेशों को निवारण कर देती है ।

अथवा हे संतो ! इस अविचल स्वरूप ब्रह्म बाणी की जो आरती करते हैं और यह जानते हैं कि हे ब्रह्म बाणि ! आप जुग जुग में हमारी जीवन रूप हैं । उनके मरण रूप मृत्यु और जम रूप काल कभी नहीं लगता है । और सम्पूर्ण भय भ्रम भाग जाते हैं । वह जीव योनी में होकर, कभी नहीं जन्मते हैं । गुरु बाणी का स्मरण करते हुए, निर्भय होकर अमर पद को प्राप्त कर लेते हैं । कलि काल के सम्पूर्ण विकार, और पाप रूपी बन्धन सब कट जाते हैं । और ऐसे भक्तों का यह ब्रह्म बाणी, संसार समुद्र से पार करके, ब्रह्म स्वरूप में स्थापन करती है । हे गुरु बाणी ! आपने अनेकों भक्तों को संसार समुद्र से तारकर, उद्धार किया है । हे संतो ! इस प्रकार जो बाणी जी की आरती करते हैं उनको यह आरती, नरक के दुखों से मुक्त कर देती है ।

443

निराकार तेरी आरती, बलि जाऊं अनन्त भवन के राइ ।।टेक।।
सुर नर सब सेवा करैं, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
देव तुम्हारा भेव न जानै, पार न पावै सेस ।।
चन्द सूर आरती करैं, नमो निरंजन देव ।
धरनि पवन आकाश अराधैं, सबै तुम्हारी सेव ।।
सकल भवन सेवा करैं, मुनियर सिद्ध समाधि ।
दीन लीन व्है रहे संतजन, अविगत के आराध ।।
जै जै जीवनि राम हमारी, भगति करैं ल्यौ लाइ ।
निराकार की आरती कीजै, दादू बलि बलि जाइ ।।

टीका :-ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निरंजन राम की आरती की विधि बताते हुए आरती कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! हम तो निरंजन निराकार रूप राम की, आरती इस प्रकार करते हैं कि हे निरंजन निराकार रूप राम ! अनन्त भवनों के राजा, हम आपकी आरती करते हुए, आपके बार बार बलिहारी जाते हैं। हे नाथ ! आपकी सुर-देवता, नर-नारद आदि सभी आरती रूप सेवा करते हैं। ब्रह्मा विष्णु महेश भी आपकी आरती गाते हैं। परन्तु हे देव ! आपके स्वरूप का कोई भी भेद नहीं पाया है। शेष जी भी, एक हजार मुख में, दो हजार जिह्वा द्वारा, आपका नाम स्मरण रूप, आपकी आरती करते हैं, किन्तु वह भी आपके स्वरूप का अन्त नहीं पाया है। चन्द्रमा सूर्य आदि सभी आपकी सेवा रूप आरती करके, बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं। धरती, पवन, आकाश, सम्पूर्ण भूत, आपकी आरती रूप सेवा में लग रहे हैं। सभी सम्पूर्ण भवनों के निवासी, आपकी आरती रूप सेवा कर रहे हैं। मुनि लोग, सिद्ध लोग समाधि द्वारा, आपकी आरती रूप सेवा में लग रहे हैं। और सम्पूर्ण समाज के उत्तम भक्तजन, आपकी आरती रूप सेवा कर रहे हैं। सम्पूर्ण संत भक्त दीन होकर, आपकी आरती रूप सेवा में लीन हो रहे हैं। हे अव्यक्त ! उपरोक्त सभी, आपकी आराधना रूप आरती कर रहे हैं। हे राम जी ! आप की जय हो, जय हो। आप ही हमारे जीवन रूप हो। हे नाथ ! हम तो अब आपकी आरती रूप भक्ति, आपकी दया से आपमें लय लगाकर कर रहे हैं। हे जिज्ञासुओ ! इस प्रकार निरंजन निराकार रूप राम की आरती रूप सेवा करके, उनके ऊपर बार बार बलिहारी जाइये।

अथवा हे जिज्ञासुओ ! यह निरंजन निराकार रूप ब्रह्म बाणी की आरती करिये कि हे ब्रह्म बाणी ! आपकी अनन्त भवनों में निवास करने वाले, सभी आरती रूप सेवा करते हैं। सुर भी, नर भी, ब्रह्मा विष्णु महेश भी, ब्रह्म बाणी की सेवा में लग रहे हैं। हे ब्रह्म बाणी रूप दिव्य स्वरूप देव ! आपका कोई भी अन्त नहीं पाया है। शेष जी भी, ब्रह्म बाणी के नामों की रटना रट कर, अन्त नहीं पा रहे हैं। चन्द्रमा सूर्य भी हे ब्रह्म बाणी ! आपकी आरती कर रहे हैं। धरती पवन आकाश सम्पूर्ण भूत आप ब्रह्म बाणी की आरती रूप सेवा कर रहे हैं। सम्पूर्ण भवनों के निवासी, सभी ब्रह्म बाणी की सेवा में लगे हैं। मुनि लोग सिद्ध लोग समाधि द्वारा, ब्रह्म बाणी की आरती रूप सेवा कर रहे हैं। सम्पूर्ण संत भक्त, ब्रह्म बाणी के सामने दीन होकर, आरती रूप सेवा में लीन हो रहे हैं। हे ब्रह्म बाणी ! हे गुरू बाणी। हे दयाल बाणी ! आपकी जय हो ! जग हो ! जय हो ! आप ही हमारी जीवन रूप हैं। हे राम रूप ब्रह्म बाणी ! आपके संत भक्त, आपमें लय लगाकर, आपकी सेवा रूप आरती करते हैं। हे निराकार रूप ब्रह्म बाणी ! हम आपकी आरती रूप सेवा करके, आपके बारबार बलिहारी जाते हैं।

तेरी आरती ए, जुगि जुगि जै जै कार ॥टेक॥
जुगि जुगि आतम राम, जुगि जुगि सेवा कीजिये।

जुगि जुगि लंघै पार, जुगि जुगि जगपति को मिलै।
जुगि जुगि तारणहार, जुगि जुगि दरसन देखिये।
जुगि जुगि मंगलचार, जुगि जुगि दादू गाइये।

टीका :- ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव इसमें, निरंजन राम की आरती की विधि बताते हुए आरती कर रहे हैं कि हे जिज्ञासुओ ! उस निरंजन राम की आरती हम तो अन्तःकरण में ही, उनकी जय जयकार ध्वनि सहित, आराधना रूप आरती कर रहे हैं कि हे निरंजन देव राम आत्म स्वरूप ! आपकी आरती आपके संत भक्त, निरन्तर हृदय में करते आ रहे हैं, जुग जुग में। हे प्रभु ! आप दीन दयालु भक्त वच्छल हैं। आप जीवात्मा के पास ही, प्रतियुग में निजरूप होकर बास करते हैं। प्रतियुग में ही आपकी संत भक्त भक्ति करते आ रहे हैं। हम भी आपके बारम्बार वारणै जाते हैं और आपकी आरती करते हैं। हे राम जी ! जुग जुग में आपकी आरती करके ही, प्राणी संसार समुद्र से पार हुए हैं। और हे विश्वपति राम ! जुग जुग में आपके भक्त आपकी आरती करके ही आपको मिले हैं। हे प्रभु ! आप जुग जुग में अपने भक्तों को तारने के लिये तत्पर रहते हो। हे मुमुक्षुओ ! इस प्रकार निरंजन राम की आरती करके, हम तो उनका हृदय में ही आत्म रूप से साक्षात्कार रूप दर्शन कर रहे हैं। आप भी उस निरंजन आत्म स्वरूप राम की, निष्काम निरन्तर, आरती रूप भक्ति करके, जय ध्वनि सहित अन्तर्मुख वृत्ति से, ज्ञान नेत्रों द्वारा दर्शन करिये। इस प्रकार ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव कहते हैं कि जो उपरोक्त प्रकार से, निरंजन रूप राम की आरती करते हैं, उनके युग युग में मंगलाचार होता रहता है। सम्पूर्ण दुःख कलेश नष्ट हो जाते हैं और इस प्रकार भक्तजन, बारम्बार जय जयकार ध्वनि करते रहते हैं।

अथवा हे संतो ! इस प्रकार ब्रह्म बाणी की आरती करिये कि हे ब्रह्म बाणी ! तेरी यही आरती है कि आपके संत भक्त, जुग जुग में आपकी जय जयकार करते रहते हैं। हे ब्रह्म बाणी ! आपके द्वारा ही, जुग जुग में जीवात्मा राम रूप होते हैं। हे गुरू बाणी ! जुग जुग में ही आपकी आराधना रूप सेवा, संतजन करते आये हैं और जुग जुग में आपके द्वारा ही संतजन, संसार समुद्र से पार उतरे हैं। जुग जुग में ही जगतपति परब्रह्म को आप संत भक्तों को मिलाती हो। हे गुरू बाणी ! जो संत भक्त जुग जुग में आपकी आरती करते आये हैं, उनको आपने सभी को संसार समुद्र से तारे हैं। हे गुरू बाणी ! आपकी आरती करके ही, जुग जुग में आत्म स्वरूप परब्रह्म का संतजन दर्शन करते हैं। इस प्रकार गुरू बाणी की आरती गाने वाले संत भक्तों के हृदय में सदैव मंगलाचार बना रहता है। ब्रह्मऋषि सतगुरूदेव महाराज कहते हैं कि हे संतो ! उपरोक्त प्रकार से

ब्रह्म बाणी की आरती गाकर, अपना आतम कल्याण करो । बोलिये, दादू दयाल महाराज की जय । गुरू बाणी की जय । दयाल बाणी की जय । वक्ता श्रोताओं की जय ।

॥ इति राग धना श्री टीका सहित सम्पूर्ण समाप्तः ॥

* * *

अनन्त विभूषित श्री ब्रह्मऋषि जगत् गुरू दादू दयाल महाराज का अनुभव, श्री दयाल वाणी के उत्तरार्ध भाग की, दृष्टान्तों सहित, सजीवनी टीका, सम्पूर्ण समाप्तः ।

दोहा :- दादू दीन दयाल की, बाणी सागर रूप ।
पंडित भूरादास ने, टिप्पणी करी अनूप ॥

मिती आसोज, कृष्ण पक्ष ॥ तिथि चौदस ॥ सोमवार ॥ सवंत २०२० को श्री दादू आश्रम में बाणी जी की टीका समाप्त की ॥ रेनवाल किसनगढ़ ॥ श्री दयाल बाणी को बांचै विचारै, उन प्रेमी संत भक्तों को मेरा सत्यराम ॥ इति ॥ शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !

卐 ॐ 卐

।। अथ श्री दयाल बाणी का महात्मय ।।

दादू दयाल दिन कर दुति, जिन बिमल बृष्टि बाणी करी ।।टेक।।
ज्ञान भक्ति वैराग्य, भाग बहु भेद बतायो ।
कोटि ग्रंथ को मत, पंथ संक्षेप लखायो ।।
विशुद्ध बुद्धि अबिरूद्धि, शुद्ध सर्वग्य उजागर ।
परमानन्द प्रकाश, नास निगड़ंद महाधर ।।
बरण बूंद साखी सलील, पद सलिता सागर हरि ।
दादू दयाल दिन कर दुति, जिन बिमल बृष्टि बाणीं करी ।।
अवनि कलप तरू प्रगट भई, दादू कीं बाणी ।
साखी सबद दोइ ग्रंथ, सुतो पद सकंध पिछाणी ।।
साखि सकंद मे डार, अंग सैंतीस सुनाऊं ।
पद सकंद मैं डार, सप्त अरू बीस बताऊं ।।
पचीसै पैंसठ साखि, सो उप साखा ।
चारसै पैंतालीस पद, सो उप दाखा ।।
पत्र अक्षर लक्ष ऐक है, साठ सहस पुनि और गणि ।
भक्ति पऊप वैराग्य फल, ब्रह्म बीज जगन्नाथ भणि ।।

शिखरणी छंद :-

कथी, स्वामी दादू, प्रति पद, महा मोह दमनी ।
कहो, कौनै जानी, भव निधि तरई, दुख समनी ।
जिन्ह, निश्चय कीनी, सुख तर भये, संत सब ही ।
पढै, जो या बानी, निसदिन लहै, ब्रह्म तबहि ।।

दोहे :-

बाणी बिमल दयाल की, सरस साखि पद रूप ।
तिन अंतर अद्भुत रचे, अंग प्रभेद अनूप ।।१।।
सुगम पठन ग्रंथ सु यह, कठिन मनन गंभीर ।
चित्त दे चारू बिचारि है, सुघर सु संत सधीर ।।२।।
साखी सकंद मध हारड़ै, तिनके किते स्वरूप ।
संत विवेकी के लवै, काढै अर्थ अनूप ।।३।।
दादू दीन दयाल को, कृत्त कलि कुंदन रूप ।
भूस[illegible] कृत तब भूरि मति, घरि हैं घाट अनूप ।।४।।
सलिता सलिल प्रवाह जिम, जलनिधि गवन प्रचंड ।
इम अनुभव सिद्धान्त यह, बरनत ब्रह्म अखंड ।।५।।
सबद साखी समूह इहै, संख्या ग्रंथ सुजाणि ।
पंच सहस्त्र पावन परम, मंगलमय सुख खानि ।।६।।
पापारि मन हारि हित, तापारि सुख कारिबा ।
बन्द हरण पुनित अति, जिव जग हरि पद आइबा ।।७।।

तातैं अति महिमा अधिक, बाणी गुण गंभीर ।
है मानस तीरथ बिमल, सब अंग सुमिरण सीर ।।८।।
वेद पुराण शब्द शास्त्र, ग्रंथ जिते जग मध्य ।
तत्त सार तिनको सबै, पद पद मांहि प्रसिद्ध ।।९।।
योग यज्ञ तीरथ सु ब्रत, जप तप सत्य कहंत ।
तो पण तुलै न नाम सम, यह वरणत सिद्धान्त ।।१०।।
यामैं एक उपास्य है, शुद्ध तत्व सुखधाम ।
तासु उपासन न अन्य क्रिया, गवन कह्यो मुख्य नाम ।।११।।
पर उपकारी संत जग, करन जीव निसतार ।
बरन्यो ब्रह्म विचार बर, बचनामृत रस सार ।।१२।।
श्रवण पठन मनन ही करत, उपजत उर आनन्द ।
श्रोत्र मगन मन ब्रह्म सर, समन सकल दुख द्वन्द ।।१३।।
यातैं अति अद्भुत अनूप, प्रेम भक्ति रस पुंजु ।
कहिये महिमा महा वाक्य की, मधुर बिमल अति मंजु ।।१४।।
जो याको बरनन करै, पढै सुनै जे कोइ ।
ताके उर हरि भक्ति रस, उदै अवश्य ही होइ ।।१५।।
जिनके या हृदय बसी, याही मै मन दीन ।
ते बिसारि जग भ्रमना, रहै भक्ति रस लीन ।।१६।।
बोलें दादूदास जी, सांचे सबद रसाल ।
तिनकी उपमा को कहै, मानो उगले लाल ।।१७।।
अविचल मंत्र जपै निस वासुर, अविचल आरती गावै ।
अविचल इष्ट रहै सिर उपरि, अविचल ही पद पावै ।।१८।।

त्रिभंगी छंद :-

तो हृदय प्रकाशं रटते श्वासं, भया उजासं तम नासं ।
पुनि धरणि अकाशं, मध्य निवासं, कीया बासं अनयासं ।
सो है निज दासं, प्रभु के पासं, करत बिलासं गुण गासी ।
दादू गुरू आया, शब्द सुनाया, ब्रह्म बताया अविनासी ।।१।।
तो जिन की बाणी, संत न मानी, अमृत बखानी सुखदानी ।
जिन करि प्रानी, हिरदय आनी, बुद्धि थिरानी उनजानी ।
ये अकथ कहानी प्रगट परमानी, नांहि न छानि गंगासी ।
दादू गुरू आया शब्द सुनाया, ब्रह्म बताया अविनासी ।।२।।

दोहा :-

अनुभव सेजा कूप का, निगम कलस हैं चार ।
जन रज्जब ता नीर कों, सब पंडित पनिहार ।।१।।
चार वेद छै शास्त्र, सब कंचन को ढेर ।
अनुभव पारस की कणी, तामें अनन्त सुमेर ।।२।।
दादू दीन दयाल की, बाणी कंचन रूप ।
कोइ ऐक सोनी संतजन, घड़ि ये घाट अनूप ।।३।।

।। इति श्री दयाल बाणी को महातमय सम्पूर्ण समाप्तः ।।

।। अथ आरती अष्टक ।।

आरती 1

अधम उधारण हे राम जी, गाइये हे श्री दयाल ।।टेक।।
दादू अविचल हे आरती, जुग जुग हे देव अनन्त ।
सदा अखंडित हे एक रस, हे सकल उतारैं ।
संत उतारैं हे आरती, तन मन हे मंगलाचार ।
दादू बलि बलि हे वारणौ, हे तुम पर सिरजनहार ।

आरती 2

आरती दादूदास तुम्हारी, तुम पूर्वो सतगुरू आस हमारी ।।टेक।।
प्राण पिण्ड न्यौछावर कीजे, परसन होइ परम सुख दीजे ।
परफुलित प्राण मुदित गुण गाऊं, दीन होइ चरणों चित्त लाऊं ।
दरवो देव दयानिधि स्वामी, सकल शिरोमणि अन्तर्यामी ।
विनती यहि करूं जिन दूरी, चैन कहै मोहि राख हजूरी ।

आरती 3

आरती गुरू दादू की कीजे, दर्शन देख जुगै जुग जीजे ।।टेक।।
नूर तेज में तेरा बासा, झिलमिल चमकै ज्योति प्रकासा ।
काले आरती साधु गावैं, दर्शन देख परम सुख पावैं ।
प्रेम पियाला भर भर दीजे, गरीबदास अपनो कर लीजे ।

आरती 4

आरती परब्रह्म की कीजै, और ठौर मेरो मनन पतीजै ।।टेक।।
गगन मंडल मै आरती साजी, शब्द अनाहद झालरि बाजी ।
दीपक ज्ञान भया परकासा, सेवक ठाढे स्वामी पासा ।
अति उछाव अति मंगल चारा, अति सुख बिलसै बारम्बारा ।
सुन्दर आरति सुन्दर देवा, सुन्दर दास करै तहां सेवा ।

आरती 5

रंरकार गुरू शब्द सुनाया, ताको आरती कर मन भाया ।।टेक।।
आपा मेट गरीबी कीजे, गुरू की आरती करे सो मरै न छीजे ।
ब्रह्मा विष्णु महादेव पीव की आरती गावै, और दुनी सब
धंधै ल्यावै ।
धर्मराय डरतां आरती गावै, हरि का हुकम न मेट्या जावै ।
गुरू दादू चेला बनवारी, आरती करतां मिलै मुरारी ।

आरती 6

आरती गुरू दादू की गाऊं, निसदिन हृदय भीतर ध्याऊं ।।टेक।।
चरन रावरे कवंल सुरगां, मकरंद लेवत मो मन भगां ।

धद तुम दरस तुम्हारे धन दासा, मैं गुण गाऊं श्वांसउ श्वांसा।
नूर रूप तुम स्वामी मेरा, कहां लग वरणूं जस बहू तेरा।
जन प्रहलाद शरण है तेरी, यह अरदास मानियो मेरी।

आरती 7

आरती कैसे करूं गुसांई, तुम ही व्याप रहे सब ठांई ।।टेक।।
तुम हीं कुम्भ नीर तुम देवा, तुमहीं कहिए अलख अभेवा।
तुम हीं दीपक धूप अनूपा, तुम ही घंटा नाद स्वरूपा।
तुम हीं पाती पहुप प्रकासा, तुम ही ठाकुर तुम ही दासा।
तुम ही जल थल पावक पवना, सुन्दर पकड़ रहें मुख मौना।

आरती 8

ओ३म् जय सतगुरूदेवा, हो स्वामी जय सतगुरूदेवा।
सकल पदारथ दायक, सकल पदारथ दायक, चरण कवंल सेवा।
ओ३म् जय सतगुरूदेवा ।।टेक।।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर, सब देवन रूपा, हो स्वामी
सब देवन रूपा।
हो पूरण परमेश्वर, हो पूरण परमेश्वर, योगिन में भूपा,
ओ३म जय सतगुरू देवा० ।।१।।

त्रिविधि ताप के हारक, मन सीतल कीन्हा, हो स्वामी
मन सीतल कीन्हा।
आनन्द मंगल दायक, आनन्द मंगल दायक, पापन के हेता।
ओ३म जय सतगुरू देवा० ।।२।।

दुख दारिद्र विनासक, सुख सम्पत्ति दाता, हो स्वामी
सुख सम्पति दाता ।
तीन लोक के सवांरण, तीन लोक के सवांरण,
आश्रय जन आता । ओ३म जय सतगुरू देवा० ॥३॥
भव सागर के तारक, मुक्ति के दाता, हो स्वामी
मुकति के दाता ।
जीवन जन्म सुधारक, जीवन जन्म सुधारक,
शरणा गति आता । ओ३म जय सतगुरू देवा० ॥४॥

अष्टक १ (हरि गीतक छंद)

उपदेश श्रवण सुनाइ अद्भुत, हृदय ज्ञान प्रकासियो ।
चिरकाल को अज्ञान पूरण, सकल भ्रम तम नासियो ।
आनन्द दायक पुनि सहायक, करत जन निष्काम है ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सतगुरू, ताहि मोरि प्रणाम है ॥१॥
जिन बचन बाण लगाय उर में, मृतक फेरि जिवाइया ।
मुखद्वार होई उचार करि निज, सार अमृत पाइया ।
अत्यन्त करि आनन्द में हम, रहत आठों याम हैं ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सतगुरू, ताहि मोरि प्रणाम है ॥२॥
जे आइ शरणहि होइ प्राप्ति, ताप तीन तन की हरै ।
पुनि फेर बदलै घाट उनको, जीव ते ब्रह्महि करै ।
कछु ऊंच नीच न दृष्टि जिनके, सकल को विश्राम है ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सतगुरू, ताहि मोरि प्रणाम है ॥३॥

संसार सागर महा दुस्तर, ताहि कहु अब को तिरै ।
जो कोटि साधन करै कोऊ, वृथा ही पचि पचि मरै ।
जिन बिना परिश्रम पार कीये, प्रगट सुख के धाम हैं ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सतगुरू, ताहि मोरि प्रणाम है ।।४।।

यह स्वप्न तुल्य दिखाइ दियो, स्वर्ग नरक उभय कहै ।
सुख दुःख हर्ष विषाद पुनि, मान अपमान सब ही गहै ।
जिन जाति कुल अरू वरण आश्रम, कहत मिथ्या नाम है ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सतगुरू, ताहि मोरि प्रणाम है ।।१।।

उपज्यो प्रपंच अनादि को यह, महामाया विस्तरी ।
नानात्व व्है करि जगत भास्यो, बुद्धि सबयन की हरी ।
जिन भ्रम मिटाइ दिखाइ दीयो, सर्व व्यापक राम हैं ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सतगुरू, ताहि मोरि प्रणाम है ।।६।।

रज्जू माहीं जैसे सर्प भास्यो, सीपि में रूपो यथा ।
मृग तृष्णा को जल बुद्धि देखै, विश्व मिथ्या है तथा ।
जिन लह्यो ब्रह्म अखंड पद, अद्वैत सब ही ठाम है ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सतगुरू, ताहि मोरि प्रणाम है ।।७।।

जो पढ़ै नित्य प्रति ज्ञान अष्टक, मुक्ति होइ सो सहज ही ।
संशय न कोऊ रहै ताकै, दास सुन्दर यूं कही ।
जिन होय कृपालु अनेक तारे, सकल विधि उद्दाम है ।
दादू दयालु प्रसिद्ध सतगुरू, ताहि मोरि प्रणाम है ।।८।।

गुरू महिमा अष्टक २ (भुयंग प्रयात छंद)

प्रकाशं स्वरूपं, हृदय ब्रह्म ज्ञानं, सदाचार येही, निराकार ध्यानं ।
निरीहं निजानंद जानै जुगादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ।।१।।
अच्छेदं अभेदं, अनन्तं अपारं । अगाधं अबाधं निराधार सारं ।
अजीतं अभीतं गहे हैं समादू, नमो देव दादू नमो देव दादू ।।२।।

हते काम क्रोधं, तजे काल जालं । भगे लोभं मोहं गये सर्व सालं ।
नहीं द्वन्द कोऊ, डरे हैं यमादू । नमो देव दादू नमो देव दादू ।।३।।
गुणातीत देहादि इंद्री जहालं । किये सर्व संहार बैरी तहालं ।
महा शूरवीरं नहीं को विषादू । नमो देव दादू नमो देव दादू ।।४।।
मनो काय वाचं तजे हैं विकारं । उदै भान होते, गयो अंधकारं ।
अयोनी अनायास पाये अनादू । नमो देव दादू नमो देव दादू ।।५।।
क्षमावंत भारी दयावंत ऐसे । प्रमाणिक आगे भये संत जैसे ।
गह्यो सत्य सोई, लह्यो पंथ आदू । नमो देव दादू नमो देव दादू ।।६।।
किए आप आपा, बड़े तत्व ज्ञाता । बड़ी मौज पाई नहीं पक्षपाता ।
बड़ी बुद्धि जाकी तज्यो है विवादू । नमो देव दादू नमो देव दादू ।।७।।
पढ़ै याहि नित्यं भुजंग प्रयातं । लहै ज्ञान सोई, मिलै ब्रह्म तातं ।
मनो कामना सिद्धि पावै प्रसादू । नमो देव दादू नमो देव दादू ।।८।।

अष्टक ३

अहो देव स्वामी, अहम् अज्ञ कामी । कृपा मोहि कीजे, अभय दान दीजे ।
बड़े भाग्य मेरे, लहै अंघ्रि तेरे । तुम्हें देख जीजे, अभय दान दीजे ।
प्रभू हूं अनाथा, गहो मोरे हाथा । दया क्यों न कीजे, अभय दान दीजे ।
दु:खी दीन प्राणी, कहो ब्रह्म बाणी । हृदो प्रेम भीजे, अभय दान दीजे ।
जती जैन देखे, सभी भेख पेखे । तुम्हें चित्त धीजे, अभय दान दीजे ।
फिर्यो देश देशा, किये दूर केसा । नहीं यूं पतीजे, अभय दान दीजे ।
गयो आयु सारो, भयो सोच भारो । वृथा देह छीजे, अभय दान दीजे ।
करो मौज ऐसी, रहै बुद्धि वैसी । सुधा नित्य पीजे, अभय दान दीजे ।

अष्टक ४

अहो हरिदेव न जानत सेव । अहो हरि राय परूं तेरे पाय ।
सुनो यह गात गहो मम हाथ । अनाथ अनाथ अनाथ अनाथ ।।१।।

अहो प्रभु नित्य अहो प्रभु सत्य, अहो अविनासी अहो अविगत्य ।
अहो प्रभु भिन्न दृशै जू प्रकृत्य, निहत्य निहत्य निहत्य निहत्य ।।२।।
अहो प्रभु पावन नाम तुम्हार, भजैं तिनके सब जाय विकार ।
करी तुम संतन की जो सहाय । अहो हरि हो हरि हो हरि राय ।।३।।
अहो प्रभु हो सर्वज्ञ सयान । दयो तुम गर्व थके पय पान ।
सो तो अब क्यों न करो पतिपाल । अहो हरि हो हरि हो हरि लाल ।।४।।
भजै पुनि ब्रह्म पुरिन्द्र महेश । भजै सनकादिक नारद शेष ।
भजै पुनि और अनेकइ साध । अगाध अगाध अगाध अगाध ।।५।।
अहो सुखधाम कहैं मुनि नाम । अहो सुख दैन कहैं मुनि बैन ।
अहो सुखरूप कहैं मुनि भूप । अरूप अरूप अरूप अरूप ।।६।।
अहो जग आदि अहो जग अन्त । अहो जग मध्य कहैं सब संत ।
अहो जग जीवन हो जग अन्त । अनन्त अनन्त अनन्त अनन्त ।।७।।
अहो प्रभु बोल सकै कह कौन । रहे सिद्ध सादिगही मुख मौन ।
गिरा मन बुद्धि न होइ विचार । अपार अपार अपार अपार ।।८।।

दोहा :- बहुत प्रशंसा कर कहूं, हूं प्रभु अति अज्ञान ।
पूजा विधि जानत नहीं, सरन राख भगवान ।।

अष्टक ५

सूर्यवंत बपु कान्ति शोभित, नूर तेज झिलामिलं ।
दीन हित कलि काल प्रगटें, श्री नमामि दादू दयालुहं ।।१।।
श्वेत अम्बर कोटि छवि, धृत कृष्ण डंड करमंडलुं ।
चारू तिलक सुभाल केसरं, श्री नमामि दादू दयालुहं ।।२।।
चरन कोमल अरुण पंकज, ध्यान धृत सुख कारणम् ।
कोटि छवि नख चन्द्र जोति, श्री नमामि दादू दयालुहं ।।३।।
पंच सहस्त्र रसाल बाणी, अगम अनुभव उच्चरम् ।

भक्ति ज्ञान वैराग्य पूरण, श्री नमामि दादू दयालुहं ।।४।।
प्रगटे सांभर दरश दीयो, नृपति मान अकब्बरम् ।
उभय पक्षहि चरण पूजे, श्री नमामि दादू दयालुहं ।।५।।
केवल कर धर शीश ऊपर, सिद्ध किये सत बावनं ।
और जीव अनेक तारे, श्री नमामि दादू दयालुहं ।।६।।
स्तुति करते हैं दास सुन्दर, छन्द अष्टक चावरम् ।
दास टीला चंवर ढ़ोरैं, श्री नमामि दादू दयालुहं ।।७।।
पढ़त नित्य प्रति ध्यान अष्टक, प्रीति कर अति पावनं ।
दास सेवा दरश पावैं, श्री नमामि दादू दयालुहं ।।८।।

~~जन्म~~

अष्टक ६ (~~जीव~~न लीला)

जन्म

संवत सौलह सौ लागत ही, गुजरात धरा मध्य अहमदाबादू ।
ब्रह्म प्रकाश उदय भयो भानु जू, आन दूनी मध्य औतरे दादू ।
हर्ष उछाव भयो तिहु लोक में, गावत यश मुनि सिद्ध साधू ।
शेष महेश ब्रह्मा ध्रुव लोक में, सूर सू यश करैं संत आदू ।।१।।

गैब को बालक आयो गगन से, नदी प्रवाह में खेलत पायो ।
पाछली पहर को स्नान गयो विप्र, बालक देख उठा उर लायो ।
आपनी नारी को आन दयो घर, गैब को दूध प्रभू ने बहायो ।
गावत मंगल नारि दशों दिशि, बांट बधाई उछाव करायो ।।२।।

अहमदाबाद नदी माहीं बालक, खेलत देखरू गोद लयो है ।
बहुत हि हर्ष उछाव सु आनरू, ऐसी कही प्रभु पुत्र दयो है ।
दूज के चन्द्रकला ज्यूं बढ़ै नित, गैब को मंगल ज्ञान गह्यो है ।
शाह अकब्बर मान नराधिप, तासम दादू अवतार भयो है ।।३।।

और औतार अनेक भए जग, मार असंतरू संतहि तारे ।
श्री दादू दयाल औतार भये जग, संत असंत अनन्त उद्धारे ।

सो मेरो भगत बंध्यो भव सागर, आदिरू अंतलुं ऊधरे सारे ।
श्री दादू दयाल जी माफ जगत में, सोई सदा उर इष्ट हमारै ।।४।।

गैब के बाज्यन्त बाजे गगन में, देवता पुष्प अपार बरसावैं ।
ब्रह्माहु आरती आन उतारत, सारद तम्बुर बैन बजावैं ।
नारद नृत्य करैं सब देवता, हर्ष उछाह को तुल्य करायो ।
छाये विमान गगन दशों दिशि, वरसत नूर सदा सुख पायो ।।५।।

वालक खेलत देख मैदान में, वृद्ध स्वरूप हरी ने बनायो ।
बाल सुफेद कियो तन दीरघ, बालसु आनरू बैन सुनायो ।
और भयभीत हो भाज गए सब, दादू जी दौड़ समीप सु आए ।
पान पइसा के लाय दयाकर, होय मुदित तामूल जु लाए ।
ब्रह्म प्रकाश उदय भए भान जू, दादू औतार दूनी मध्य आए ।।६।।

दोहा :- जनम उछाह की षटपदी, पढ़ै सुनै चित्त लाइ ।
संतदास असी कहै, सो बैकुंठा जाय ।।

सात सै साह जहाज में बैठेरू, सातहि करोड़ को माल भर्यो है ।
ताण न पाण लगे न काहू के, जहाज समुद्र बीच अड़ी है ।
देश ढुंढाहड़ मान नराधिप, वासम राम जी की भक्ति करी है ।
हो रज्जब साह पुकार करी; गुरू दादू के नाम से जहाज तरी है ।।७।।

दोहे :- जहाज तिरि चीरीं फिरी, गयंद रहे मुख मोड़ ।
दादू दीन दयाल के, परचे करोड़न करोड़ ।।१।।
हूं बापुरो एक हूं, कहा करूं भगवंत ।
कहो कहां मस्तक नाइए, दादू भए अनन्त ।।२।।
औगण हारे की बीनती, सुनियो ग़रीब निवाज ।
जे हम पूत कपूत हैं, बहुरि पिता कूं लाज ।।३।।

औसर राखी द्रौपदा, संकट ज्यूं गजराज ।
कहन सूनन की कूछ नहीं, शरण पड़े की लाज ।।४।।

मैं पापी पापन भर्यो, जैसे भरी जहाज ।
तुम हरी तारण योग्य हो, श्री दादू जी महाराज ।।५।।

दादू दीन दयाल जू, तुम लग मेरी दौड़ ।
जैसे काग जहाज में, सूझत और न ठोर ।।६।।

अन्नाथों के आसरा, निर्धारों आधार ।
निर्धन के धन राम हैं, दादू सिरजनहार ।।७।।

सेवग की रक्षा करै, सेवग की प्रतिपाल ।
सेवग की बाहर चढै, दादू दीन दयाल ।।८।।

महा अपराधी एक मैं, सारे इहि संसार ।
औगण मेरे अति घणे, अंत न आवे पार ।।९।।

बे मरजादा मिति नहीं, ऐसे किए अपार ।
मैं अपराधी बाप जी, तुमहीं एक अधार ।।१०।।

दोष अनेक कलंक सब, बहुत बुरा मुझ मांहि ।
मैं कीए अपराध सब, तुमथैं छाने नांहि ।।११।।

गुनहगार अपराधी तेरा, भाज कहां हम जांहि ।
दादू देखा सोधि सब, तुम बिन कहीं न समाइ ।।१२।।

बहुत प्रशंसा कर कहूं, हूं प्रभु अति अज्ञान ।
पूजा विधि जानत नहीं, शरण राख भगवान ।।१३।।

अष्टक ७ (इंदव छंद)

मौज करी गुरूदेव दया करि, शब्द सुनाय कह्यो हरि नेरो ।
ज्यूं रवि के प्रगटे निशि जात सु, दूरि कियो भ्रम भान अंधेरो ॥
कायक वाचक मानस ऊकरि, हौ गुरूदेव हि बंदन मेरो ।
सुन्दर दास कहै करि जोरि जू, दादू दयालु को हूं नित चेरो ॥१॥

पूरण ब्रह्म विचार निरन्तर, काम न क्रोध न लोभ न मोहै ।
श्रोत्र त्वचा रसना अरू घ्राण सु, देखि कछू कहुं नैन न मोहै ।
ज्ञान स्वरूप अरूप निरूपण, जासु गिरा सुनि मोहि न मोहै ।
सुन्दरदास कहै कर जोरि जु, दादू दयाल हि मोरि नमो है ॥२॥

धीरजवंत अडिग्ग जितेन्द्रिये, निर्मल ज्ञान गह्यो दृढ़ आदू ।
शील संतोष क्षमा जिनके घट, लागि रह्यो सु अनाहद नादू ।
भेख न पक्ष निरन्तर लक्ष जु, और कछू नहिं वाद विवादू ।
ये सब लच्छन हैं जिन मांहि सु, सुन्दर के उर हैं गुरू दादू ॥३॥

भौजल में बहि जात हुते जिन, काढि लियो अपनो करी आदू ।
और संदेह मिटाय दिये सब, काननि टेर सुनाय के नादू ।
पूरन ब्रह्म प्रकाश कियो पुनि, छूटि गये सब वाद विवादू ।
ऐसी कृपा जू करी हम ऊपर, सुन्दर के उर हैं गुरू दादू ॥४॥

कोउक गोरख को गुरू थापत, कोउक दत्त दिगम्बर आदू ।
कोउक कंथर कोउक भरथरी, कोउ कबीर की राखत नादू ।
कोउ कहै हरिदास हमार जु, यूं करि ठानत वाद विवादू ।
और तो संत सबै सिर ऊपर, सुन्दर के उर हैं गुरू दादू ॥५॥

आइ मिले गुरू दादू को जे जन, ते जन जान पारगंत कीने ।
पापरू ताप उड़ाय सबै भ्रम, ज्ञान सुनाय रू सोध सो सीने ।
रंक निवाज किये जग में पुज्य, भाव भगति भंडार सु दीने ।
छीतर नीच सु ऊंच किए जीव, दादू दयाल के जे रंग भीने ॥६॥

दाकर दादनि देत जगत मै, दूकर दूषण दूर निवारे ।
राकर राखहि लेत भगत को, माकरि मुनिजन पार उतारे ।
ये चारों हि अक्षर ब्रह्म अनादि के, संतन हेत सदा तन धारे ।
दादू ही राम रटै निस वासुर, दास मनोहर पार उतारे ॥७॥

दादू को आसन ब्रह्म सिंहासन, ता पर दास गरीब विराजै ।
संतन में सुख दायक लायक, जोग जुगति लिए नित गाजै ।
ग्यान अरू ध्यान सबै विध पूरण, धीर गम्भीर महा मुनि छाजै ।
छीतर ओपमा नारद की छवि, दास गरीब सबै सिर ताजै ॥८॥

अष्टक ८ (स्तुति)

कैसे तुम तेजो माही तखत दिखायो नाथ ।
आगरा निकट शहर सीकरी अकब्बर को ।
बादशाह बोल्यो मैं तो दादू जी खुदाई जानूं ।
ऐसो वचन कियो सो तो मुश्लिम शाह अकब्बर को ।
बादशाह बीरबल के संशय सब दूर कीये ।
अध्रम छुड़ायो स्वामी धर्म विस्तार्यो है ।
कैसे तुम सांभर में सात नोते जीमे प्रभु,
कैसे तुम चीरीहु के अंक पलटाये हैं ॥१॥

कैसे तुम नागर निजाम हुं की मेटी ताप,
बैठे गोविन्द गावै परसाद जो पवायो है ।
खाटू गजराज माथो आय के झुकाय दीयो ।
सूंड से चरण छूये शीश जो निवायो है ।
सात सह साहूकार सात करोड़ माल भर्यो ।
सिंधु बिच आयकर झाज अड़ गई है ।
हिंगोल कपिल मुनि दादू जी को धरो ध्यान ।
सब मिल टेर करी सागर पार भई है ॥२॥

केदार देश टापू मांही नृपति आराध कीयो।
अन्न जल त्याग दियो नर नारी सब हू।
हाहाकार भयो जब अम्बावत सुन्यो तब।
बेगहि पधारे स्वामी दुख मेट्यो सब हू।
बीड़द तिहारो जाय दीन भयो शरणे आइ।
लाज हू शरम मेरी तुम ही को सबहू।
अनेक उधार दीये अनेक कारज कीये।
केवल दास भगति मांगे सब गुण अब हूं ।।३।।

पिया को अंदेशो भारी, तोसे कहूं सुन ले प्यारा।
यारी तोर गये सो तो अजहूं न आए हैं।
मेरे तो जीवन प्रान निसदिन यो ही ध्यान।
मुख से न कहूं आन, नैना भर लाए हैं।
जब ते गए बिछोय कल न पड़त मोय।
तातहू पूछत तोय, किन्ह बिरमाए हैं।
सुन्दर बिरहनि के सोच सकी बार बार।
हमको बिसार अब कौन के कहाये हैं ।।४।।

करोली के देश मांहो रामत करन काज।
स्वामी जी पधारे तहां निकन्दन काल के।
जहां जहां जाइ तहां तहां दादू दादू कहैं।
यही बैन प्रिय लागै मन में कृपाल के।
यद्यपि अदेह राम देह धार ठाढे भये।
ओत प्रोत चाहै बैन स्वामी जन लाल के।
राम कहै दादू कहो, दादू कहै राम कहो।
दादू राम दादू राम रटो इमै बालके ।।५।।

वेदन में सामवेद स्मृति में गीतासार।
पुराणों में भागवत तत्व के समान हैं।

देवन में इन्द्रराज, तारन में चन्द्रराज।
वृक्षन में कल्प वृक्ष, पशु सिघ जानिए।
तीरथ में गंगा जैसे, सागर में रतनागर।
पक्षिन में गरूड़ गुणानवाद ठानिये।
कहै शाह अकबर सुनो बीर तानसैन।
सन्तन में ऐसे गुरू दादू जी प्रमाणिये ।।६।।

दादू जी को सेवक हूं, दादू जी सहाय मेरे।
दादू जी को ध्यान धरूं, दादु मेरे धन है।
दादू जी रिझाऊं नित नाम लेऊं दादू जी को।
दादू गुण गाऊं, बड़ो दादू जी से प्रण है।
दादू जी से रातो रस, मातो रहूं दादू जी से।
दादू जी आधार मेरे, दादू तन मन है।
कहै राघोदास मो भरोसो एक दादू जी को।
दादू जी से काम दादू अघ के हरण है ।।७।।
नूर ही को तखत रू पाए जाके नूर ही के।
नूर ही के दादूदास, नूर मन भाव ही।
नूर ही के गुणीजन, गावत गुणानवाद।
नूर ही की सभा कर, जोर शीश नाव ही।
धरणि आकाश नाहीं, देखे सो अधर मांही।
नूर के दीदार कीये पाप ताप जाव ही।
राघो कहै ताको छवि, मानू उदय कोटि रवि।
तखत की शोभा कछू, कहत न आवही ।।८।।

अष्टपदी

दयानिधि दादू शुभकारी, अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी।
भक्त हित पृथ्वी पर आए, देव मुनि मानस मन भाए।

अभय कर अमृत रस पाए, सन्त मुद मिल मंगल गाए।
अधम उधारण विरद है, नाम गरीब निवाज।
जो जाकें शरणें रहै प्रभु, वाको वाकी लाज।
शरण चल आयो मैं थारी, दया निधि दादू शुभकारी।
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी ।।१।।

हरी की आज्ञा सुन लीनी, माल एक भूसर को दीनी।
पलट अंक पत्नी के चीनी, भक्त की मन भाई कीन्हीं।
गयंद रहे चित राम ज्यों, ठाढे सूंड झुलाय।
उर निर्मल वाको भयो जी, गए युगल छवि पाइ।
एक से लीला एक न्यारी, दया निधि दादू शुभकारी।
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी ।।२।।

नीर पर बैठे हरि ध्यावैं, सप्तान धर भोजन पावैं।
दुष्ट के मन में नहीं भावैं, युगल तन वाको दर्शावैं।
अटक रही सुन साह की, नौका उलटी बयार।
प्रातः समय करूणानिधि स्वामी, वाकी सुनी पुकार।
झाझ जलनिधि से कर पारी, दयानिधि दादू शुभकारी।
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी ।।३।।

करूणा निधि करूणा उरधारी, गऊ मग में जातां तारी।
ब्योम सुर पुष्पन झरपारी, कुमति भूपति की जिन टारी।
रचि बिवान सुरपति ले आए, मुदित भए सब साध।
दादू दीन दयाल दया करि, दयो दया प्रसाद।

परस्पर मिलि हरषें भारी, दया निधि दादू शुभकारी।
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी ॥४॥

पर्‍यो हिमगिरि ते कर सहाई, विराजें सर तट पर आई।
प्रकृति को आज्ञा फरमाई, जलेबी ताजा मंगवाई।
भोजन कर वा बन्द पै, करी भक्त की सहाइ।
प्रातः समय मेलो भरवाओ, सहस्त्र स्वरूप दिखाइ।
कुमति दुविध्या उनकी टारी, दयानिधि दादू शुभकारी।
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी ॥५॥

कृपा के आले हम जाना, दियो पशु नर को अभय दाना।
देव मिल केशर वरसाना, शब्द कियो जय जय गुण गाना।
ब्रह्मादिक मुनि सुरपति, स्तुति करी कर जोर।
हम शरणागति रावरी प्रभु कठिन काल से छोड़।
प्रीति या पूरबली पाली, दयानिधि दादू शुभकारी।
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी ॥६॥

शरण के पालक सुखदाई, देव यक्ष सिद्धों ने समझाए।
सन्त चहुं युग के सुख पाए, परस्पर मिल मंगल गाए।
एक सुनो अद्‌भुत कथा, गुप्त किए चितराम।
भक्त वछल भक्तन हितकारी, युग युग प्रगटे राम।
मोक्ष कर दीने नर नारी, दया निधि दादू शुभकारी।
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी ॥७॥

पतित के पावन सुन पाए, ताहि तैं शरणें चल आए।
अबै प्रभु कीजो मन भाए, कृपा कर लीजो कर सहाए।
अपनो विरद विचारियो, ना चित्त धरियो आन।
आतम राम कहै कर जोरि, सुनियो श्री भगवान।
करो भव अम्बुज से पारी, दया निधि दादू शुभकारी।
अरज एक सुनियो प्रभु म्हारी ॥८॥

ब्रह्मांडष्टक (भुजंग प्रयात छन्द)

अखंडं चिदानन्द देवाधिदेवं, मुनींद्रादी रूद्रादि इंद्रादि सेवं।
मुनींद्रादि इंद्रादि चंद्रादि मित्रम्, नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्रं ॥१॥
धरात्वं जलाग्नी मरूत्वं नभस्त्वं, घटस्त्वं पटस्त्वं अणुत्वं महत्वं।
मनस्त्वं वचस्त्वं दृशस्त्वं श्रुतस्त्वं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते समस्त्वं ॥२॥
अडोलं अतोलं अमोलम् अमानं, अदेहं अछेहं अनेहं निदानं।
अजापं अथापं अपापं अतापं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमापं ॥३॥
न ग्रामं न धामं न शीतं न उष्णं, न रक्तं न पीतं न श्वेतं
न कृष्णं।
न शेषं अशेषं न रेखं न रूपं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते अनूपं ॥४॥
न छाया न माया न देशो न कालो, न जाग्रं न स्वपनं
न वृद्धो न बालो।
न ह्रस्वं न दीर्घं, न रम्यं अरम्यं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं ॥५॥

न बंधं न मुक्तं, न मौनं न वक्तं । न धूम्रं न तेजो न यामी न नक्तं ।
न युक्तं अयुक्तं न रक्तं विरक्तं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अशक्तं ।।६।।
न रूष्टं न सुष्टं न इष्टं अनिष्टं, न ज्येष्ठं कनिष्ठं न मिष्टं अभिष्टं ।
न अग्रं न पृष्ठं न तुल्यं न गृष्टं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते अधिष्ठं ।।७।।
न वक्रं न घ्राणं, न कर्णं न अक्षं । न हस्तं न पादम्, न शीशं न लक्षं ।
कथं सुन्दरं सुन्दरं नाम ध्येयं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते प्रमेयं ।।८।।

।। अथ जैमल जी महाराज का राम रक्षा मंत्र ।।

ॐ राम बिना इस जीव को कोई न राखणहार ।
जैमल सतगुरू आपणा राखै बारम्बार ।।१।।
ओ३म् आकासे रक्षा करै, पाताले रक्षपाल ।
घट माँहि रक्षा करैं, जैमल दीनदयाल ।।२।।
शीश रक्षा सांई करै, श्रवणों सिरजनहार ।
नैन रक्षा नर हरि करैं, नासा अपररूपार ।।३।।
मुख रक्षा माधो करै, कंट रक्षा करतार ।
हृदय रक्षा हरि करै, भुज रक्षा भवतार ।।४।।

पेट रक्षा पुरूषोत्तमा, नाभी त्रिभवन सार ।
जंघ रक्षा जगदीस जी, पिंडी परम उदार ॥५॥
ग्रह रक्षा गोविन्द करै, पगथली प्राण अधार ।
जहां तहां रक्षा करे, सांचा सिरजनहार ॥६॥
आगै राखै राम जी, पीछै राखणहार ।
बावैं दहनैं राख ले, करगहि तूं करतार ॥७॥
जम डंका लागै नहीं विघ्न काल भै दूर ।
राम रक्षा जिनकी करै, बाजै अनहद तूर ॥८॥
भेजी राखै भूधरा जिह्वा को जगदीश ।
कलेजो राखै केशवा, अस्थि राखै सब ईस ॥९॥
मींजी राखै माधवा मन कौं मोहनराय ।
मनसा की रक्षा करै, कबहु दूरन जाय ॥१०॥
आत्म को अकला रखै, जीव को जोति स्वरूप ।
सुरति को राखै सांईयां, चित्तको अमर अनूप ॥११॥
दिन मै राखै राम जी, सोतां राम सहाय ।
सुपना ही में संग रहै, जैमल एकै भाय ॥१२॥
सर्प सिंह व्यापै नहीं, डायन नजर मसाण ।
अन्तकाल रक्षा करे, कालन झंपै प्राण ॥१३॥
राख राख शरणागती, हमको अबकी बार ।
जैमल की रक्षा करो सांचा सिरजनहार ॥१४॥
हरि जी तुम बिन को नहीं, हमको राखणहार ।
यह जैमल की बीनति, सूणिये बारम्बार ॥१५॥

।। हरिदास जी महाराज राणीला के पद ।।

पद 1

म्हानै ऐसा सतगुरू भावे हो, आठों जाम रहे मतिवाला,
भरि भरि प्रेम पिलावे हो ।।टेक।
नरक जाण के नाके मूंदे, उरझ्या कूँ सूरझावे हो ।
जगत पुनीत तिरण तारण कूं, भाग हमारे आया हो ।।१।।
मन कूं मारि करे भल भेटा, दिल के दाग मिटावे हो ।
पांचों पकरि परै ले पटके, अन्तरि ध्यान लगावे हो ।।२।।
हरि बिन और न हिरदे राखै, गोबिन्द के गुण गावे हो ।
जीवनि जड़ी सदा उरि जाके, मृतक जीव जिलावे हो ।।३।।
आदि पुरूष सों अरस परस करि, पड़दा खोलि दिखावै हो ।
गुरू दादू के चरन कमल परि, हरीदास बलि जावे हो ।।४।।

पद 2

म्हारी सतगुरू करी सहाई हो, भूलि न परे उलटि नहीं आवे,
ऐसी जुगति बताई हो ।।टेक।।
काम क्रोध मोह मद मछर, दुरि किये दुखदाई हो ।
दया करी दारूण दुख मेट्या, सरणि लीये सुखदाई हो ।।१।।
पर उपगार कीया परमारथ, प्रगट अमी पिलाई हो ।
जीवनि जड़ी जगत में बांटी, मृतक मांड जिवाई हो ।।२।।

हरीदास जन गुरू दादू की, कित लग करे बड़ाई हो ।
कर गहि केश नरक तैं काढे, जम की मार मिटाई हो ।।३।।

पद 3

सोई जन मस्ताना मस्ताना, जिन पाया पद निर्बाना ।।टेक।।
मग्न होय चढ गए गगन में, अधर धार धर ध्याना ।
लगन लाय बिसराय विश्व को, अनहद शब्द पिछाना ।।
मान सरोवर मथा जुगत कर, मन उनमन ठहराना ।
मोती मुक्त उझल अनुभव की, करे हंस अस्नाना ।।
लक्ष कला ले चन्द्र प्रकाशा, सहज कला ले भाना ।
जग मग लगी महल के भीतर, देखे दरश दिवाना ।
ब्रह्म शून्य में परचा हूआ, चेतन चरण समाना ।
निर्गुण सेज तेज की नगरी, दे अवगत अस्थाना ।।
वर्षैं पद्म दामिनी दमकैं, हर हीरों की खाना ।
गम से दूर अगम से आगे, अद्भुत अजब ठिकाना ।।
खिल गया कमल नवल वर पाया, नित प्रति अमृत पाना ।
अमर कन्द भव बंध न व्यापै, जिस घट भ्रम भगाना ।।
पांच पचीस पुरी तज भाजी, जीत लिया मैदाना ।
नितानन्द महबूब गुमानी, अब निश्चय कर जाना ।।

पद 4

जो दगा करै गुरूदेव सै नर चयार जन्म दुख पावै ।।टेक।।
पहले जनम बनैगा कुत्ता, रस्ता बीच पड्या रहै सूता ।
भूक भूक मर जाइसी नर, सोट पड्या चिल्लावै ।।
दूजे जनम बनैगा ढांढा, तेली के घर रहसी बांध्या ।
तेरा पेट भरै नहीं घास सें नर, अंखिया पट्टी बंधावै ।।
तीजे जनम बनैगा बन्दर, रस्सी बांध ले जाय कलन्दर ।
तैने डुग डुग चाल चलाय सी, नर घर घर भीख मंगावै ।।
चौथे जनम बनैगा ऊंटा, अण तोल्या तोहे बोझ धरैगा ।
कहै कबीरा पूरब पश्चिम लद्या फिरै, फिर बोझ धर्‍यां अरड़ावै ।।

दिनांक ७-१-१९८२

महामण्लेश्वर ब्रह्मनिष्ठ स्वामी भूरादास जी महाराज, दादू तपस्वी भवन (दादू बाग), कनखल (हरिद्वार) द्वारा प्रकाशित तथा
मदान प्रिंटर्स नई दिल्ली से मुद्रित ।

श्री दयाल बाणी की सजीवनी टीका प्रकाशन अर्थ, धनराशि देने वाले प्रेमी श्रद्धालु भक्तों के नाम निम्न प्रकार हैं :-

नाम	निवासी	राशि (रूपयों में)
१. महामण्डलेश्वर ब्रह्मनिष्ठ पं० श्री १०८ स्वामी भूरादास जी महाराज की शिष्या श्री कृष्णा बाई जी	श्री दादू आश्रम रैनवाल तथा श्री दादू तपस्वी भवन (दादू बाग) कनखल - हरिद्वार	२५,०००
२. श्री लखीराम जी, बाबू गजानन्द जी	सांवड़िया (खरसिया)	७,१००
३. श्री रामगोपाल बनारसी दास जी	चन्डीगढ़	५,१०१
४. श्री मुखराम भोलाराम जी	रायगढ़ (सांवड़िया)	५,०००
५. श्री भगवानदास नत्थू लाल जी	रायगढ़ (सांवड़िया)	५,०००
६. श्री विश्वेश्वर लाल जी	दिल्ली	५,०००
७. श्री गुलाब चन्द जी मांगे लाल जी	सांवड़िया (खरसिया)	३,०००
८. श्री कृष्ण जी	मातनहेल (रोहतक)	२,१२१
९. बाबू हरबंस लाल बाबू इन्द्रराज जी	शामली (मुज्जफर नगर)	२,१००
१०. श्री गोरधन लाल शर्मा	मंढा (जयपुर)	२,१००
११. श्री शीश राम जी भक्त	खरसिया	१,१०१
१२. श्री रामलुभाया नय्यर	राजौरी गार्डन (नई दिल्ली)	१,१०१
१३. श्रीमती सरबती बाई	नई दिल्ली	१,१०१
१४. बाबू मुरलीधर गुप्ता जी	नई दिल्ली	१,१०१
१५. श्री बूजाराम जी मोहनलाल जी	सांवड़िया (खरसिया)	१,१००
१६. श्री गोविन्द राम जी	सांवड़िया (रायगढ़)	१,१००

नाम	निवास	राशि (रूपयों में)
१७. श्री राम सरूप जी रतेरिया	रायगढ़	१,१००
१८. बाबू विष्णुदास जी	नई दिल्ली	१,१००
१९. श्री सत्यनारायण जी	नई दिल्ली	१,१००
२०. बाबू सुरेश कुमार जी	नई दिल्ली	१,१००
२१. श्रीमती गीता बाई जी	जयपुर	१,१००
२२. श्री ठाकुर साहब बने सिंह जी चेला बना	रामजी पुरा	१,१००
२३. श्री मांगे लाल जी	देवर हट्टा	१,१००
२४. श्रीमती शीला बाई	रायपुर	१,००१
२५. श्रीमती मीना बाई	रायगढ़	१,००१
२६. श्री अन्य प्रेमी शिष्याओं के	खरसिया	२,३००
२७. श्री अन्य प्रेमी भक्तों के	दिल्ली	७५४
२८. श्री अन्य प्रेमी भक्तों के	रायगढ़	७६१
	कुल योग	८१,६४३

व्यय (रुपयों में)

कागज	३३,७७६
छपाई	३०,४००
फोटो की छपाई तथा फोटो का कागज	३,५६७
किताब की जिल्द	९,०००
स्वामी जी का खर्चा (नौ माह का)	३,०००
किराया तथा लेबर	१,९००
कुल योग	८१,६४३

STOCK VERIFY
2020
S.K.V. Library

Compiled
1999-2000